Sarasmati
1936 - I

सरस्वती

सचित्र
मासिक पत्रिका

भाग ३७, खण्ड १
जनवरी-जून
१९३६

सम्पादक
देवीदत्त शुक्ल
श्रीनाथसिंह

प्रकाशक
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

वार्षिक मूल्य साढ़े छः रुपये

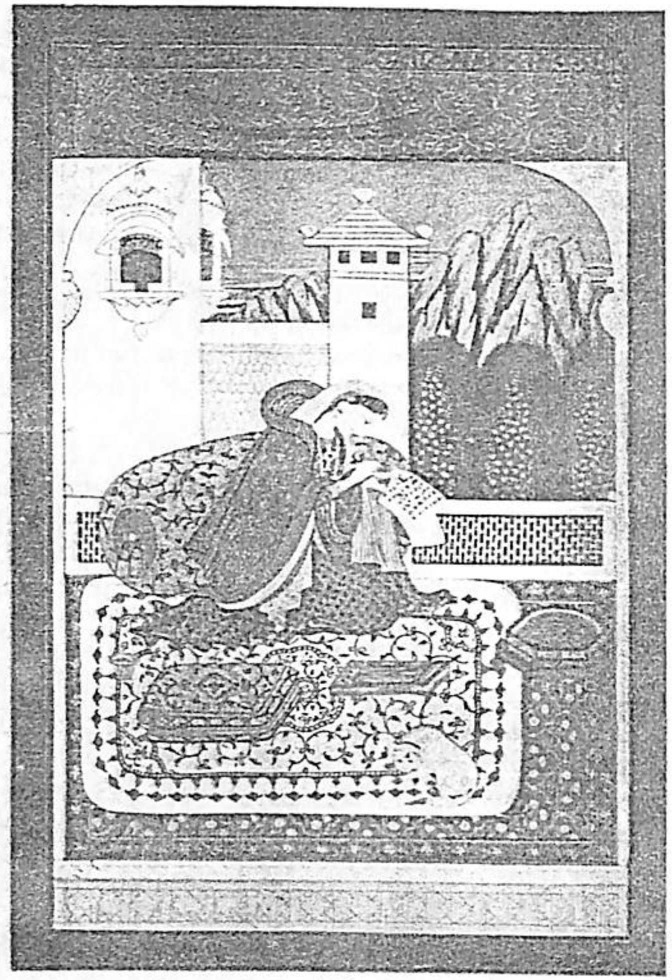
लेख-सूची

चित्र-सूची

रंगीन चित्र

सादे चित्र

Printed and Published by K. Mittra at the Indian Press Ltd., Allahabad.



शिशिर

१८वीं शताब्दी के सम्पन्न गार्हस्थ्य जीवन का एक आलेखन। परदेशी प्रियतम को एक अज्ञात युवती अँगीठी के सामने बैठी पत्र लिख रही है।

—श्रीयुत एन० सी० मेहता, आई० सी० एस० के सौजन्य से प्राप्त

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

जनवरी १९३६ } भाग ३७, खंड १ (संख्या १, पूर्ण संख्या ४३३ { पौष १९९२

सृष्टि

लेखक, श्रीयुत सुमित्रानन्दन पन्त

मिट्टी का गहरा अन्धकार
डूबा है उसमें एक बीज,—
वह खो न गया, मिट्टी न बना,
कोदों, सरसों से क्षुद्र चीज !
उस छोटे उर में छिपे हुए
हैं डाल, पात औ' स्कन्ध-मूल,
गहरी हरीतिमा की संसृति,
बहु रूप, रंग, फल और फूल !
वह है मुट्ठी में बन्द किये
वट के पादप का महाकार,
संसार एक, आश्चर्य एक,
वह एक बूँद सागर अपार !
बन्दी उसमें जीवन-अंकुर
जो तोड़ निखिल जग का बन्धन
पाने को है निज सत्व—मुक्ति,
जड़-निद्रा से जगकर चेतन।
आः, भेद न सका सृजन-रहस्य
कोई भी ! वह जो क्षुद्र-पोत
उसमें अनन्त का है निवास,
वह जग-जीवन से ओत-प्रोत !
मिट्टी का गहरा अन्धकार
सोया है उसमें एक बीज,—
उसका प्रकाश उसके भीतर
वह अमर-पुत्र, वह तुच्छ चीज ?



हिन्दुओं की नैतिक चुनौती

लेखक, श्रीयुत सेठ घनश्यामदास बिड़ला

डाक्टर अम्बेदकर ने जब से हिन्दू-धर्म त्यागने का अपना निश्चय प्रकट किया है तब से चारों तरफ़ एक तहलका-सा मच गया है। हिन्दू-जाति पर आज सदियों से आफ़त आ रही है और कब इसका अंत होगा, इसका कोई ठिकाना नहीं है। पर हिन्दू-जन-समाज में जैसी सामुदायिक जागृति आज दिखाई देती है, वैसी शायद सैकड़ों वर्षों में भी न देखने में आई होगी। इसी लिए इस चोट से सार्वजनिक खलबलाहट-सी दिखाई देती है और हिन्दू-नेता जी-जान से इस फ़िक्र में हैं कि अम्बेदकर हिन्दू नाम को न छोड़ें। किसी एक आर्यसमाजी सज्जन ने तो यहाँ तक कह डाला है कि यदि अम्बेदकर के कोई सुपुत्र हो तो वे अपनी लड़की उसे ब्याह देने को तैयार हैं। अन्य सज्जन हिन्दू-धर्म की महत्ता दिखाते हुए अम्बेदकर से धर्म-त्याग न करने की प्रार्थना करते हैं। सुना है, पूज्य मालवीय जी अम्बेदकर को समझाने जानेवाले हैं, पर इसका कोई फल होगा, ऐसी उम्मीद करना बेकार है।

ईसाई, मुसलमान आदि भी अम्बेदकर का दरवाज़ा ज़ोरों से खटखटा रहे हैं और उन्हें अपने अपने धर्म की महत्ता दिखा रहे हैं। क्या हिन्दू, क्या ईसाई और क्या मुसलमान सभी यह समझ बैठे हैं कि जहाँ एक अम्बेदकर ने धर्म छोड़ा, लाखों हरिजन हिन्दू-धर्म को तिलाञ्जलि दे देंगे और हिन्दुओं को जिस बात का भय है वही बात ईसाई और मुसलमानों के लिए आशा की किरण है। इसलिए हिन्दू एक तरफ़ और अन्य धर्मी दूसरी तरफ़! इनके बीच काफ़ी खींचातानी है।

दोनों पक्षवाले ख़ाहमख़ाह धर्म की महत्ता दिखाते हैं। धर्म तो—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

यह है। और यह कहना चाहिए कि जिसमें ये दस लक्षण पाये जायँ वही भागवत, आर्य या हिन्दू है। इसी तरह मुसल्लम-बा-ईमान (पूर्ण धार्मिक) ही मुसलमान कहलाना चाहिए। पर आज तो ये सब बातें पोथी-पत्रों तक ही सीमित हैं। न तो इन दस लक्षणों की कसौटी पर कसे जाने के कारण ही कोई हिन्दू कहला सकता है और न मुसलमान कहलाने के लिए मुसल्लम-बा-ईमान होने की ज़रूरत है। हिन्दू, मुसलमान आदि शब्दों की परिभाषा तो अब समाज-विशेष तक ही परिमित है। अम्बेदकर को भी कोई आध्यात्मिक उधेड़-बुन नहीं है, जो अन्वेषण करने में लगे हों कि इन दस लक्षणोंवाला धर्म श्रेष्ठ है या इस्लाम। उन्हें तो 'हिन्दू' नाम अखरता है और वे उसे छोड़ने की फ़िक्र में हैं। हमें भी इसी बात की फ़िक्र है कि वे बराय नाम भी हिन्दू बने रहें, चाहे उसमें सत्य बचे रहे, चाहे जाय। संख्या बनी रहे, यही चिंता है; और यह तृष्णा यदि स्वच्छ हो तो कोई अनुचित भी नहीं है। "धरा जीवैरे राजिया"। "कलौ संघशक्तिः"। पर क्या इस कूद-फाँद या बेतुकी बौखलाहट से हमारी संख्या बढ़ सकती है अथवा जितनी है उतनी भी क़ायम रह सकती है?

हिन्दुओं के सामने इस समय सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि डाक्टर अम्बेदकर हिन्दू-धर्म न छोड़ें। परन्तु अखिल भारतीय हरिजन-सेवा-संघ के सभापति श्री सेठ घनश्यामदास बिड़ला कहते हैं—"क्या हम अम्बेदकर को भूलकर समाज की सफ़ाई में नहीं लग सकते?"

दुःख के साथ कहना पड़ता है कि अम्बेदकर की इस चुनौती से जहाँ उत्तेजना भरपूर है, वहाँ शांत और सुस्पष्ट सूझ का दीवाला-सा दिखाई पड़ता है। एक रोगी की जान बचाने के लिए पचासों उपचारक भिन्न भिन्न दवाइयाँ लेकर उसे पिलाने का हठ करें तो रोगी के रहे-सहे दिनों का भी ख़ातमा ही समझना चाहिए। एक बहुत बड़े बाँध में जो चलनी की तरह छिद्रोंवाला हो गया हो और जिसमें से फ़ुहारे बड़े ज़ोर से फूट रहे हों, निकलते हुए पानी को लोटों लोटों भर भरकर रोकने का प्रयास करना हास्यास्पद ही होगा। इस सम्बन्ध की हमारी क्रिया भी कुछ वैसी ही है। अम्बेदकर के भीतर रखने की जितनी चिंता हो रही है, उसका शतांश भी हिन्दू-शरीर को स्वस्थ करने की नहीं। बेमरम्मत हिन्दू-समाज-रूपी घर चाहे अम्बेदकर को रख ले तो भी वह और लाखों अम्बेदकर खो बैठेगा। हमारी संख्या का आधार हिन्दू-जमात के सुधार पर ही अवलम्बित है।

आश्चर्य तो यह है कि ऐसे विकट समय में भी हम वस्तुस्थिति को देखने से इनकार कर रहे हैं।

आज तक हजारों विधवायें, अनाथ और हरिजन विधर्मी बन गये हैं और बनते जा रहे हैं। मैं एक भी ऐसे नव-विधर्मी को नहीं जानता जिसने कुरान या बाइबिल पर आशिक़ होकर चुटिया कटाई हो। किसी ऐसे समाज-परित्यक्त से पूछिए, वह बतायेगा कि हिन्दू-समाज को उसने नहीं, किन्तु समाज ने उसे त्याग दिया है। फिर अम्बेदकर के इस निश्चय पर इतनी घबराहट क्यों? और यदि रोग से मुक्त ही होना अभीष्ट है तो हम यह क्यों नहीं देखते कि अम्बेदकर भी उसी पुरानी लकीर पर जा रहे हैं जिस पर से करोड़ों हिन्दू त्रस्त होकर हिन्दू-समाज को तिलाञ्जलि देते हुए गुज़र गये हैं। जब कोई लड़की मुसलमान-द्वारा भगाई जाती है तब हमें मुसलमानों पर रोष आता है; पर क्यों नहीं हम अपनी नालायक़ी पर रोष करते जो उस भगाई गई लड़की के भगाये जाने की जिम्मेवार थी?

कुछ वर्षों की बात है। एक मारवाड़ी लड़की को एक मुसलमान भगाकर ले गया। समाज को काफ़ी रोष हुआ। ख़िलाफ़त का ज़माना था, इसलिए यह मसला मुसलमान-नेताओं तक पहुँचाया गया। उन्होंने शर्माशर्मी में आकर कुछ मदद भी की, पर लड़की के जब वापस आने की आशा बँधी तब सबके चेहरों पर स्याही दौड़ गई। सवाल यह हुआ कि उस लड़की को उसके घरवाले रख सकते हैं या नहीं? पंचों ने व्यवस्था दी कि वह घर में नहीं आ सकती। नौजवानों ने रोष दिखाया, पर उनकी एक न चली। आख़िर वह लड़की नहीं आई, वहीं अपघात करके मर गई। हिन्दू-समाज ने यह साबित कर दिया कि लड़की ने हमको नहीं, किन्तु हमने लड़की को छोड़ा। यह पन्द्रह वर्ष की बात हुई। आज भी किसी विधवाश्रम में जाकर वहाँ रहनेवाली किसी विधवा का इज़हार लीजिए। कुछ ऐसी ही कथा सुनने को मिलेगी।

पर अब कुछ तुरत-ताज़ा बानगी भी देखिए। वर्धा के पास एक छोटा-सा सिंदी ग्राम है। वहाँ मीरा बहन (मिस स्लेड) ने ग्रामोत्थान का कार्य प्रारंभ किया है। वहाँ वे एक छोटी-सी झोपड़ी बना कर रहने लगी हैं। जब पहले-पहल वहाँ पहुँचीं तब कौतूहलवश लोग इकट्ठे हो गये और उनसे तरह तरह के प्रश्न पूछने लगे। पानी की ज़रूरत पड़ी तब एक नौजवान पानी ले आया और घड़े में पानी डालकर चला गया। पर यह कौतूहल कब तक ठहरता? आख़िर दूसरे दिन मीरा बहन को पानी की ज़रूरत पड़ी तब घड़ा लेकर कुएँ पर पहुँचीं। जिन चेहरों पर पहले मैत्री का प्रकाश था वही आँखें दिखाने लगे और बोले—"आप यहाँ पानी नहीं निकाल सकतीं, पानी चाहिए तो अपना अलग कुआँ बनवा लो"। एक बनिये के कुएँ पर गईं, महारों (हरिजनों की एक दूसरी उपजाति) के कुएँ पर गईं, मांगों (हरिजनों की एक दूसरी उपजाति) के कुएँ पर गईं, पर मीरा बहन के घड़े को कुएँ में डलवाकर कुआँ कौन अपवित्र करावे! गाँववाले मीरा बहन की प्रार्थना में आते हैं, अपना दुःख-दर्द सुना जाते हैं, पर अपने कुएँ में मीरा बहन का घड़ा नहीं जाने देते। मीरा बहन दवा देती हैं तब सब लोग ले जाते हैं; ब्राह्मण भी ले जाते हैं, पर दवा बिना स्पर्श किये ऊपर से डालनी पड़ती है, नहीं तो ब्राह्मण अपवित्र हो जाय! मीरा बहन कितना ही उपकार क्यों न करें, पर पानी नहीं मिलने का। अम्बेदकर के जाने से हमारा समाज नहीं डूबेगा, पर यह सुलूक है जो हमारे समाज को डुबो देगा।

जो हमारी संख्या क़ायम रखना चाहते हैं उन्हें अक़्ल से काम लेना चाहिए। चाहे एक हिन्दू लड़की मुसलमान-द्वारा भगाई जाय या एक लावारिस धोखे से मुसलमान बना लिया जाय, चाहे एक हरिजन प्रलोभन से ईसाई बन जाय अथवा अम्बेदकर हिन्दू-समाज को तिलाञ्जलि देने का निश्चय करें, ये सब एक ही रोग के भिन्न भिन्न लक्षण हैं। जानेवाले ख़ुद नहीं जा रहे हैं, उन्हें हम भगा रहे हैं। हिन्दू-घर को हमने हरिजन, विधवा, अनाथ और जाति-बहिष्कृतों के लिए रहने लायक़ नहीं रक्खा; ऐसी हालत में जो हो रहा है वह अनिवार्य है। संख्या क़ायम रखना है तो अम्बेदकर को या किसी अन्य बाहर जानेवाले को रोकने से नहीं, अपने घर की सफ़ाई करने से ही तात्पर्य सिद्ध होगा। कलेजे को चाक करके साँस को क़ायम रखने का प्रयास करना मूर्खता नहीं तो क्या है?

हिन्दू-समाज का भला हो यदि अम्बेदकर के इस निश्चय से हमें कुछ सबक़ मिले। क्या हम अम्बेदकर को भूलकर समाज की सफ़ाई में नहीं लग सकते? सौ कथनी से एक करनी हज़ार बार अच्छी है, पर इस समय तो केवल कथनी का हो-हल्ला है, इसमें करनी का नितान्त अभाव है।

मेरे वैभव का कहाँ अन्त ?

लेखक, श्रीयुत नगेन्द्र

मेरे वैभव का कहाँ अन्त ?
मेरे उर की सुख-सुषमा से—
हर्षित वसन्त शोभित दिगन्त !
ऊषा-सन्ध्या मेरी छाया,
मुझसे लाली लेते पाटल,
मेरे गायन, कल-कूजन से
चञ्चल चिड़ियों की चहल-पहल !
मुझसे ले मीठी मुसकानें
खिलती हैं डालों में कलियाँ,
मुझसे मस्ती ले ले उठतीं
जल में लहरों की रँगरलियाँ !
हाँ, मुझसे हँसना सीख सीख
झुक झूम झूलते फूल फूल,
पी मेरी सौरभ-श्वास कभी
मधुकर जाते मधुपान भूल !
जब मेरी लघु मुसकान-रेख
अङ्कित होती नभ के मन में,
दो-एक कलायें खिलीं और
बस दूज उदय होती क्षण में !
धुल मेरी मानस लहरों में
पूनो आती ले हास सरस,
फिर फेर लिया यदि मुख मैंने
छिप गया इन्दु, आई मावस !
भर दिया शून्य को तारों से
फेंके जब मुट्ठी भर हीरे;
ज्यों ज्यों मेरी मुसकान बढ़ी
शशि-कला बढ़ी धीरे धीरे।
मेरा साम्राज्य नापने को
मार्तंड नित्य बन माप-दण्ड,
दिखलाता रहता निशि-वासर
उस विपद-राज्य के खण्ड खण्ड;
मेरी अखण्ड गौरव-गाथा
गाते हैं लहराते सागर,
निज कुशल करों से मारुत जब
वन्नाद-सदृश भरता है स्वर;
उत्तुङ्ग-शृङ्ग हिम-पर्वत के
हैं मेरे मुकुट-किरीट-सदृश,
तूफ़ान ध्वजायें फहराते
सरितायें गातीं मेरा यश !
यों जल में, थल में, अम्बर में
फैला हूँ मैं बनकर अनन्त !
मेरे वैभव का कहाँ अन्त !!

साम्प्रदायिकता के जन्मदाता कौन हैं ?

लेखक

श्रीयुत भाई परमानन्द, एम० ए०,
एम० एल० ए०



साम्प्रदायिकता का विष हमारे देश में दिन पर दिन फैलता जा रहा है, यहाँ तक कि सरकार ने क्रिमिनल ला एमेंडमेंट एक्ट को जारी करने के लिए इसे भी एक कारण बताया है। यह विष कौन बोता है और यह कैसे दूर हो सकता है, इस लेख में भाई जी ने यही बताने की चेष्टा की है।

गत कई वर्ष से इँग्लेंड, फ्रांस आदि देश लीग आफ़ नेशंस के नाम पर एक खास काम में संलग्न रहे हैं। वह यह कि योरप की विभिन्न जातियों के लिए शस्त्रों की एक सीमा नियत कर दी जाय जिसका कोई उल्लङ्घन न कर सके। अपने इस उद्देश की पूर्ति के लिए योरप के कई स्थानों में निःशस्त्रीकरण सम्मेलन हुए हैं। पहले मिस्टर हैंडरसन जिनको मृत्यु हुए बहुत थोड़ा समय हुआ है, और उनके बाद सर जान साइमन कभी पेरिस, कभी रोम, कभी बर्लिन, कभी लेनिनग्राड जाते। संसार में कहा यह जाता था कि यह सारी दौड़-धूप युद्ध की सम्भावनाओं को रोकने के लिए की जा रही है। कोशिश तो युद्ध को रोकने और शस्त्रों को कम करने की होती थी, लेकिन वास्तव में हर एक देश अपने शस्त्रों की संख्या बढ़ाने में लगा हुआ था। फ्रांस का बहाना था कि जर्मनी क्यों हथियार बनाता है। जब जर्मनी, फ्रांस, रूस और इटली अपने यहाँ हथियार बढ़ाने में लगे हों तब इँग्लेंड क्यों पीछे रहे? जैसा कि कहा गया है, कोशिश तो शस्त्रों को कम करने की थी, परन्तु शस्त्र बढ़ रहे थे! ऐसा क्यों हुआ? इसका कारण किसी से छिपा नहीं है। योरप के मित्र-राष्ट्रों ने जर्मनी को चारों खाने चित गिराकर उससे इक़रार लिखवा लिया है कि वह किसी प्रकार के हथियार न तैयार करेगा। अगर जर्मन-निर्देशक हर हिटलर इसी इक़रार पर क़ायम रहता तो इन देशों को अपने शस्त्र बढ़ाने की जरूरत न पड़ती। लेकिन जर्मनी का शस्त्र न तैयार करना एक ही मानी रख सकता था। वह यह कि जर्मनी सदा के लिए मित्र-राष्ट्रों का मोहताज बना रहे।

भारत में कम्युनलिज्म या साम्प्रदायिकता बढ़ रही है। गवर्नमेंट कहती है कि इस साम्प्रदायिकता ने बड़ा भयानक रूप धारण कर लिया है। गवर्नमेंट अपने तरमीमी फ़ौजदारी क़ानून (क्रिमिनल लॉ एमेंडमेंट एक्ट) को जारी करने के लिए जहाँ पहले अराजकता (अनारकिज्म), भद्र-अवज्ञा-भंग आन्दोलन (सिविल डिसओबीडियंस) और बर्गवाद (कम्युनिज्म)—केवल ये तीन कारण बतलाया करती थी, वहाँ अब वह एक और कारण कम्युनलिज्म या साम्प्रदायिकता भी बताती है। ऐसा मालूम होता है कि गवर्नमेंट को इस नई वृद्धि का खयाल पञ्जाब में शहीदगंज की घटना एवं उसके आन्दोलन से हुआ है। सिर्फ़ गवर्नमेंट ही नहीं, कांग्रेस के राजनैतिक नेता भी (चाहे वे अन्य कारणों को स्वीकार करें या न करें) गवर्नमेंट के इस चौथे कारण को स्वीकार करते हैं। जालंधर-कमिश्नरी के गत असेम्बली-निर्वाचन में कांग्रेस के बड़े-बड़े नेता पञ्जाब पधारे थे। उन्होंने अपने भाषणों में लोगों को बताया है—"आप साम्प्रदायिकता की भयानक लहर में बह रहे हैं। पञ्जाब तो पागल हो गया है। पञ्जाब के हिन्दुओं को चाहिए कि इस साम्प्रदायिकता को मिटाने के लिए कांग्रेसी उम्मीदवार को वोट दें।" इस बारे में कहा जा सकता है कि कांग्रेस का दृष्टि-कोण गवर्नमेंट के दृष्टि-कोण जैसा है। दोनों ही साम्प्रदायिकता की जिम्मेदारी पञ्जाब पर डालते हैं और अपनी तरफ़ से उसे मिटाने के दावे करते हैं।

इससे पूर्व कि मैं इस साम्प्रदायिकता के वास्तविक स्रोत का ज़िक्र करूं, मैं यह कहने को तैयार हूँ कि इस साम्प्रदायिकता को फैलाने और मज़बूत करने का उत्तरदायित्व उन दोनों पार्टियों पर आता है जो इसको हटाने के लम्बे-चौड़े दावे बाँधते हैं। मैंने कई बार इस बात को प्रेस में और प्लेटफ़ार्म से कहा है कि विधान-सम्बन्धी साम्प्रदायिक निर्णय और मुलाजमतों से सम्बन्ध रखनेवाला साम्प्रदायिक निर्णय—जिन दोनों का प्रचलन भारत-सरकार ने अपनी ज़िम्मेदारी पर किया है—भारत में साम्प्रदायिकता की जड़ों को मज़बूत करते हैं। इधर वही कांग्रेसी नेता हैं जो हिन्दुओं को तो यह उपदेश देते हैं कि साम्प्रदायिकता को हटा दो (जैसा कि योरप के मित्र-राष्ट्र जर्मनी को निःशस्त्रीकरण का उपदेश देते थे), लेकिन जिन लोगों की बदौलत इस देश में साम्प्रदायिकता क़ायम है (और शायद एक समय तक क़ायम रहेगी) उनसे वे कुछ कहने को तैयार नहीं हैं। न गवर्नमेंट ही इस बारे में उनसे कुछ कहती है।

जिस समय भारत में मुसलमान नहीं आये थे, हिन्दू ही इस देश में रहते थे—यह बात साफ़ है कि

उस समय हिन्दुओं में चाहे अन्य कमजोरियाँ रही हों लेकिन साम्प्रदायिकता (वर्तमान अर्थ में) नहीं थी। हिन्दुओं के सामाजिक संस्थान में निःसन्देह बहुत-से मत-मतांतर थे, परन्तु जहाँ तक राजनीति और अर्थशास्त्र का सम्बन्ध है, वहाँ न तो साम्प्रदायिकता उत्पन्न हो सकती थी, न उसका खयाल ही पाया जाता था। मुसलमान आक्रमणकारी आये और कुछ मुसलमान घराने यहाँ आबाद हो गये। मुस्लिम शासन-काल में हिंदू-आबादी के एक भाग ने अपने धर्म तथा जातीयता को छोड़ दिया और अरब का मजहब तथा जातीयता ग्रहण कर ली। इस नये मजहब ने जिसमें जातीयता भी सम्मिलित थी, भारत में साम्प्रदायिकता की नींव रख दी। साम्प्रदायिकता का आरम्भ इस्लाम के आने से हुआ। इससे यह निष्कर्ष साफ निकलता है कि इस मजहब का फैलाव एवं उन्नति ही इस वर्तमान साम्प्रदायिकता के लिए उत्तरदायी है।

भारत के मुसलमानों के लिए इस साम्प्रदायिकता को मजबूती से पकड़े रहना एक स्वाभाविक बात है। वे अपने आपको एक पृथक् जाति समझते हैं। भारत में वे अपनी जुदा जातीयता क़ायम रखना चाहते हैं। इसके लिए उनमें पृथक् राजनैतिक अधिकार और पृथक् मुस्लिम-प्रान्त क़ायम करने की प्रबल इच्छा है। इसी नीति पर चलते हुए मुसलमानों ने हर मौक़े पर इस बात पर जोर दिया है कि वे किसी हालत में भी 'जनरल इलेक्टोरेट' (सामान्य निर्वाचन) को मंजूर नहीं करेंगे। इसी नीति पर चलकर वे साम्प्रदायिक निर्णय को अपने लिए बड़ा भारी 'चार्टर' समझते हैं। इसी नीति पर चलकर वे हर महकमे और लाइन में चाहे उनके अन्दर उसकी योग्यता हो या न हो, मुसलमानों का पृथक् अनुपात नियत करवाने में लगे रहे। इसी कारण वे सीमाप्रान्त, सिंध और बिलोचिस्तान को पृथक् प्रान्त बनवाना चाहते थे। यह ठीक है कि गवर्नमेंट भी उनकी इस चाल में मदद कर रही थी। फिर भी जिस प्रकार कांग्रेस साम्प्रदायिकता के फैलाने का इल्जाम गवर्नमेंट के सिर थोपना चाहती है, मैं उसे ठीक नहीं समझता। गवर्नमेंट ने अगर इस चाल के लिए रास्ता बनाया तो इस कारण कि मुसलमान इस रास्ते की तलाश में थे। वे इस मार्ग पर चलना चाहते थे। यह मार्ग मुसलमानों के आंतरिक झुकाव (Instinct) के अनुकूल था। हमारे कांग्रेसी नेता अगर इस तथ्य की ओर अपनी आँखें बन्द कर लेते हैं तो इसके मानी यह नहीं कि यह तथ्य दुरुस्त नहीं है। इसके विपरीत मुसलमानों को ख़ुश रखने की उनकी अपनी इच्छा कांग्रेसी नेताओं को गुमराही के गड्ढे में गिरा रही है। जब तक वे इस झूठी इच्छा से मुक्ति न पायेंगे तब तक उनका यह कहना कि "पञ्जाब पागल हो गया है: पञ्जाब के हिन्दुओं को साम्प्रदायिकता से बचना चाहिए", उनकी अपनी बेसमझी ज़ाहिर करता है। हिन्दू तो स्वभाव से ही सम्प्रदायवादी नहीं हो सकते और न वे सम्प्रदायवादी सिद्ध हुए हैं। इस देश में उनकी जो पोज़ीशन या स्थिति है वह उनको सम्प्रदायवादी नहीं बना सकती। हिन्दुओं को साम्प्रदायिकता के हटाने का उपदेश देना ऐसा ही है, जैसा इंग्लैंड, फ्रांस, इटली आदि मित्र-राष्ट्रों का जर्मनी को निःशस्त्रीकरण का उपदेश करना।

इसके विपरीत मैं यह समझता हूँ कि देश से यह साम्प्रदायिकता सिर्फ़ एक ही तरीक़े से हटाई जा सकती है। वह यह कि हिन्दुओं के अन्दर हिन्दुत्व पैदा कर दिया जाय। हमारे सामने सिक्खों का एक सुस्पष्ट उदाहरण विद्यमान है। सिक्खों की एक छोटी-सी श्रेणी है, जिसने थोड़ी संख्या में होते हुए भी अपनी शक्ति का प्रदर्शन बार बार किया है। दुनिया में लोहे को लोहा ही काटता है। साम्प्रदायिकता सिर्फ़ ख़ुशामदों और चापलूसियों से नहीं दूर हो सकती; बल्कि ज्यों-ज्यों ख़ुशामद और चापलूसी ज्यादा की जायगी, त्यों-त्यों साम्प्रदायिकता बढ़ती जायगी।

मैंने इस विषय को स्पष्ट करने की आवश्यकता इसी लिए अनुभव की है कि जो डाक्टर या वैद्य किसी रोगी का इलाज करना चाहता है उसके लिए सबसे पहली ज़रूरी बात यह होती है कि वह रोगी के रोग का अच्छी तरह से निदान करे। आम कहावत है कि रोग के ठीक निदान से रोगी का आधा इलाज हो जाता है। एक मनुष्य को बुखार आता है। बुखार तो उसके किसी आन्तरिक गड़बड़ का बाह्य चिह्न है; ख़ुद बुखार कोई बीमारी नहीं। डाक्टर या वैद्य के लिए यह देखना ज़रूरी है कि वह गड़बड़ शरीर के किस भाग में है। अगर किसी रोगी के आमाशय में पत्थर का टुकड़ा हो और डाक्टर उसके दिमाग़ का इलाज करता रहे तो इस प्रकार के इलाज से रोग दूर नहीं हो सकता (चाहे डाक्टर वह इलाज कितने ही परिश्रम और योग्यता से करे)। डाक्टर का काम रोग की असली जगह को ढूँढ़ना और उस स्थान पर दवाई लगाना है। यही बात जातीय या राष्ट्रीय शरीर (बाडी पालटिक) के विषय में भी दुरुस्त समझनी चाहिए।

हम यहाँ तक तो सब एकमत हैं कि भारत के राष्ट्र शरीर में कहीं न कहीं रोग है, जिसके बाह्य चिह्न हमें स्पष्ट दिखाई देते हैं। परन्तु जब हम निदान की तरफ़ आते हैं तब हमारे दर्मियान एक बड़ा भारी फ़र्क़ पड़ जाता है। कांग्रेसी भाई यह कहते हैं कि साम्प्रदायिकता का विष हिन्दुओं में है और अगर उनका यह विष निकाल दिया जायगा तो साम्प्रदायिकता मिट जायगी। केवल यही नहीं, वे यहाँ तक कहते हैं कि हिन्दू-महासभा इस विषय को फैला रही है; वह हमारी राष्ट्रीय बीमारी को बढ़ा रही है। मैं इस निदान को बिलकुल ग़लत समझता हूँ। मेरी राय यह है कि साम्प्रदायिकता हिन्दुओं में नहीं है और अगर हिन्दू महासभा उनमें हिन्दुत्व उत्पन्न करना चाहती है तो इस कारण कि उससे मुसलमानों की साम्प्रदायिकता कट जाय। वास्तव में साम्प्रदायिकता मुसलमानों के अन्दर ही पाई जाती है। उसका आरम्भ भी उन्हीं की बदौलत हुआ। इसलिए हमारी कोशिश स्पष्ट यह होनी चाहिए कि हम मुसलमान भाइयों को यह बता दें कि अगर वे देश के हित के मार्ग पर आगे बढ़ना चाहते हैं तो वे अपने अन्दर से इस साम्प्रदायिकता को कम करने का प्रयत्न करें। यह ठीक है कि मुसलमान इस इलाज को तुरन्त ही स्वीकार नहीं करेंगे, बल्कि इसके ख़िलाफ़ शोर करते रहेंगे। लेकिन क्योंकि इलाज का दुरुस्त तरीक़ा यही है इसलिए कुछ देर के बाद ऐसा समय आयगा जब मुसलमानों के अन्दर एक ऐसी पार्टी पैदा हो जायगी जो सच्चे देश-प्रेम से प्रेरित एवं प्रभावित होकर देश की उन्नति के मार्गों पर हिन्दुओं के साथ मिल कर क़दम उठाने पर तैयार होगी। मेरी राय है कि इस इलाज को क्रियात्मक रूप देने का सबसे बड़ा साधन यही है कि बग़ैर किसी प्रकार की साम्प्रदायिकता के भाव के हिन्दू अपने अन्दर एकता की शक्ति उत्पन्न करें। इनके अन्दर ऐक्य के होने पर ही हिन्दू-मुस्लिम एकता होगी। जैसा कि एक अन्य स्थान में मैंने कहा है, यह शक्ति ही वास्तविक स्वराज्य है; यह शक्ति ही है जिसमें स्वराज्य का रहस्य निहित है, यह शक्ति ही है जिसमें स्वतन्त्रता का बीज पाया जाता है।

कामायनी

लेखक, श्रीयुत जयशङ्कर 'प्रसाद'

संध्या अरुण-जलज-केसर ले अब तक मन थी बहलाती,
मुरझा कर कब गिरा तामरस, उसको खोज कहाँ पाती !
क्षितिज-भाल का कुंकुम मिटता मलिन कालिमा के कर से,
कोकिल की काकली वृथा ही अब कलियों पर मँडराती ॥

कामायनी कुसुम वसुधा पर पड़ी, न वह मकरंद रहा;
एक चित्र बस रेखाओं का, अब उसमें है रङ्ग कहाँ !
वह प्रभात का हीनकला शशि, किरन कहाँ चाँदनी रही,
वह संध्या थी, रवि शशि तारा, ये सब कोई नहीं जहाँ ॥

जहाँ तामरस इंदीवर या सित शतदल हैं मुरझाये,
अपने नालों पर, वह सरसी श्रद्धा थी, न मधुप आये ।
वह जलधर जिसमें चपला या श्यामलता का नाम नहीं,
शिशिर-काल का क्षीण स्रोत वह जो हिमतल में जम जाये ॥

एक मौन वेदना विजन की, झिल्ली की झनकार नहीं,
जगती की अस्पष्ट उपेक्षा, एक कसक, साकार नहीं ।
हरित कुञ्ज की छाया भर थी वसुधा आलिङ्गन करती,
वह छोटी-सी विरह-नदी थी जिसका है अब पार नहीं !

नील गगन में उड़ती-उड़ती विहग-बालिका-सी किरनें,
स्वप्न-लोक को चलीं थकी-सी नींद-सेज पर जा गिरने ।
किन्तु विरहिणी के जीवन में एक घड़ी विश्राम नहीं,
बिजली-सी स्मृति चमक उठी तब, लगे जभी तम घन घिरने ॥

संध्या नील सरोरुह से जो श्याम पराग बिखरते थे,
शैल-घाटियों के अञ्चल को वे धीरे से भरते थे;
तृण-गुल्मों से रोमाञ्चित नग सुनते उस दुख की गाथा,
श्रद्धा की सूनी साँसों से मिलकर जो स्वर भरते थे ।

× × × ×

"जीवन में सुख अधिक या कि दुख, मंदाकिनि कुछ बोलोगी ?
नभ में नखत अधिक, सागर में या बुदबुद हैं गिन दोगी ?
प्रतिबिम्बित हैं तारा तुममें, सिन्धु-मिलन को जाती हो,
या दोनों प्रतिबिम्ब एक के इस रहस्य को खोलोगी !

इस अवकाश-पटी पर जितने चित्र बिगड़ते बनते हैं,
उनमें कितने रङ्ग भरे जो सुर-धनु-पट से छनते हैं ।
किन्तु सकल अणु पल में घुलकर व्यापक नील शून्यता-सा,
जगती का आवरण वेदना का धूमिल पट बुनते हैं ॥

दग्ध श्वास से आह न निकले सजल कुहू में आज यहाँ !
कितना स्नेह जलाकर जलता ऐसा है लघु दीप कहाँ ?
बुझ न जाय वह साँझ-किरन-सी दीप-शिखा इस कुटिया की,
शलभ समीप नहीं तो अच्छा सुखी अकेले जले यहाँ !

आज सुनो केवल चुप होकर, कोकिल जो चाहे कह ले,
पर न परागों की वैसी है चहल-पहल जो थी पहले;
इस पतझड़ की सूनी डाली और प्रतीक्षा की संध्या,
कामायनि तू हृदय कड़ाकर धीरे-धीरे सब सह ले !

विरल डालियों के निकुञ्ज सब ले दुख के निश्वास रहे,
उस स्मृति का समीर चलता है मिलन-कथा फिर कौन कहे ?
आज विश्व अभिमानी जैसे रूठ रहा अपराध बिना,
किन चरणों को धोयेंगे जो अश्रु पलक के पार बहे !

अरे मधुर हैं कष्ट-पूर्ण भी जीवन की बीती घड़ियाँ !
जब निःसम्बल होकर कोई जोड़ रहा बिखरी कड़ियाँ,
वही एक जो सत्य बना था चिर सुन्दरता में अपनी,
छिपा कहीं, तब कैसे सुलझें उलझी सुख-दुख की लड़ियाँ !

विस्मृत हों वे बीती बातें, अब जिनमें कुछ सार नहीं;
वह जलती छाती न रही अब वैसा शीतल प्यार नहीं;
सब अतीत में लीन हो चलीं, आशा, मधु अभिलाषायें,
प्रिय की निष्ठुर विजय हुई, पर यह तो मेरी हार नहीं !

वे आलिङ्गन एक पाश थे, स्मिति चपला थी, आज कहाँ ?
और मधुर विश्वास ! अरे वह पागल मन का मोह रहा;
वञ्चित जीवन बना समर्पण यह अभिमान अकिञ्चन का,
कभी दे दिया था कुछ मैंने ऐसा अब अनुमान रहा ॥

विनिमय प्राणों का यह कितना भय-संकुल व्यापार अरे,
देना हो जितना दे-दे तू, लेना ! कोई यह न करे !
परिवर्तन की तुच्छ प्रतीक्षा पूरी कभी न हो सकती;
सन्ध्या रवि देकर पाती है इधर-उधर उडुगन बिखरे !

वे कुछ दिन जो हँसते आये अन्तरिक्ष अरुणाचल से,
फूलों की भरमार स्वरों का कूजन लिये कुहक बल से,
फैल गई जब स्मिति की माया, किरन कली की क्रीड़ा से,
चिर प्रवास में चले गये वे आने को कहकर छल से !

जब शिरीष की मधुर गन्ध से मान-भरी मधु-ऋतु रातें,
रूठ चली जातीं रक्तिम-मुख, न सह जागरण की घातें ।
दिवस मधुर आलाप कथा-सा कहता छा जाता नभ में,
वे जगते सपने अपने तब तारा बनकर मुसक्याते" ॥

वन-बालाओं के निकुञ्ज सब
भरे वेणु के मधु स्वर से,
लौट चुके थे आनेवाले
सुन पुकार अपने घर से;
किन्तु न आया वह परदेशी
युग छिप गया प्रतीक्षा में,
रजनी की भीगी पलकों से
तुहिन-बिन्दु कण-कण बरसे !

श्रीयुत प्रसाद जी ने 'कामायनी' नाम का एक नया काव्य लिखा है। यह उसके १० वें सर्ग का एक विशेष अंश है। इसमें कामायनी का विरह वर्णन किया गया है। इस नये काव्य में प्रसाद जी ने वैदिक कालीन एक कथानक का चित्रण किया है। आपकी यह रचना शीघ्र ही प्रकाशित होगी।

मानस का स्मृति-शतदल खिलता, झरते बिन्दु मरन्द बने,
मोती कठिन पारदर्शी ये, इनमें कितने चित्र बने !
आँसू सरल तरल विद्युत्कण नयनालोक विरह-तम से,
प्राण पथिक यह संबल लेकर लगा कल्पना-जग रचने ॥

अरुण जलज के शोण कोण थे नव तुषार के बिन्दु भरे,
मुकुट चूर्ण बन रहे प्रतिच्छवि कितनी साथ लिये बिखरे !
वह अनुराग हँसी दुलार की पंक्ति चली सोने तम में,
वर्षा विरह कुहू में जलते स्मृति के जुगनू डरे डरे ॥

सूने गिरि पथ में गुञ्जारित शृङ्गनाद की ध्वनि चलती,
आकांक्षा लहरी दुख-तटिनी-पुलिन-अंक में थी ढलती ।

जले दीप नभ के, अभिलाषा शलभ उड़े, उस ओर चले,
भरा रह गया आँखों में जल बुझी न वह ज्वाला जलती ॥

"माँ"—फिर एक किलक दूरागत गूँज उठी कुटिया सूनी,
माँ उठ दौड़ी भरे हृदय में लेकर उत्कंठा दूनी;
लुटरी खुली अलक, रज-धूसर बाहें आकर लिपट गईं,
निशा तापसी की जलने को धधक उठी बुझती धूनी !

"कहाँ रहा नटखट ! तू फिरता अब तक मेरा भाग्य बना !
अरे पिता के प्रतिनिधि, तूने भी सुख-दुख तो दिया घना ।
चञ्चल तू, बनचर मृग बनकर भरता है चौकड़ी कहीं,
मैं डरती तू रूठ न जाये करती कैसे तुझे मना !"

"मैं रूठूँ माँ और मना तू, कितनी अच्छी बात कही,
ले मैं सोता हूँ अब जाकर, बोलूँगा मैं आज नहीं ।
पके फलों से पेट भरा है
नींद नहीं खुलनेवाली,"
श्रद्धा चुंबन ले प्रसन्न कुछ,
कुछ विषाद में भरी रही ॥

जल उठते हैं लघु जीवन
के मधुर-मधुर वे पल हलके,
मुक्त उदास गगन के उर में
छाले बन कर जा झलके ।
दिवा-श्रांत आलोक-रश्मियाँ नील निलय में छिपी कहीं,
करुण वही स्वर फिर उस संसृति में बह जाता है गल के ॥

प्रणय किरण का कोमल बन्धन मुक्ति बना बढ़ता जाता,
दूर, किन्तु कितना प्रतिपल वह हृदय समीप हुआ जाता !
मधुर चाँदनी-सी तन्द्रा जब फैली मूर्च्छित मानस पर,
तब अभिन्न प्रेमास्पद उसमें अपना चित्र बना जाता !
कामायनी सकल अपना सुख स्वप्न बना-सा देख रही,
युग-युग की वह विकल प्रतारित मिटी हुई बन लेख रही ।
जो कुसुमों के कोमल दल से कभी पवन पर अङ्कित था,
आज पपीहा के पुकार-सी नभ में खिंचती रेख रही ॥

गान्धी और कबीर



लेखक, डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल

गांधी इस युग के सबसे महान् पुरुष माने जाते हैं और झोपड़ियों से लेकर महलों तक कबीर का भी नाम आदर के साथ लिया जाता है। इसका कारण यह है कि दोनों की विचारधारायें एक-सी हैं और उनमें लोक-कल्याण की भावना अत्यन्त प्रबल है। इस लेख में विद्वान् लेखक ने देश की वर्तमान प्रवृत्तियों—हरिजन-आन्दोलन, सत्याग्रह, स्वराज्य, स्वदेशी और ग्रामोद्धार-आन्दोलन का उल्लेख करके इन दोनों की विचार-धाराओं की बड़े ही सुन्दर ढङ्ग से विवेचना की है तथा उनका साम्य दिखाया है। कहना नहीं होगा कि हिन्दी में इस विषय का यह पहला लेख है जो ख़ास तौर से 'सरस्वती' के लिए लिखा गया है।

अपनी पिछली हरिजन-यात्रा में जब महात्मा गांधी काशी आये थे तब कबीरमठ में उनके मुख से यह सुनकर कि मेरी माता कबीरपंथी थीं, उपस्थित जनसमुदाय को विस्मय-सा हुआ था, परन्तु जो लोग महात्मा गांधी और कबीर की विचारधारा से परिचित हैं उनके लिए इसमें विस्मय की कोई बात नहीं, क्योंकि वे जानते हैं कि उन दोनों में कितना अधिक साम्य है। उनके लिए तो आश्चर्य की बात यही है कि लोग महात्मा गांधी की विचारधारा का मूल-स्रोत ढूँढ़ने के लिए रूस, इँग्लिस्तान और अमरीका जाते हैं। गांधी के निर्माण में टाल्स्टाय, रस्किन और संभवतः लायड गैरिसन आदि के विचारों का भी हाथ रहा है सही, पर गौणरूप से गांधित्व की गंगा का गोमुख मूलतः कबीर की शिक्षाओं में है, जिन्हें उन्होंने माता के दुग्ध के साथ पान किया था और जो इसी कारण उनकी नस नस में व्याप्त हैं। टाल्स्टाय आदि के विचार तो उनके हृदय में सोती हुई उस चिनगारी को सुलगाने-मात्र में कारणरूप हुए हैं जिसे उन्होंने अपनी माता के द्वारा कबीर से आध्यात्मिक दाय में प्राप्त किया था।

गांधी की सबसे बड़ी विशेषता जो उन्हें कबीर के साथ ले जाकर रखती है, उनकी आध्यात्मिक प्रेरणा है। वे हमेशा उस परम तत्त्व तक पहुँचने का प्रयत्न करते रहे हैं जिसे उन्होंने कबीर के-से शब्दों में अनिर्वचनीय ज्योति अथवा परम प्रकाश कहा है। इस प्रकाश की उन्हें थोड़ी सी ही नहीं, झलक अवश्य प्राप्त हो गई थी। उसी परम ज्योति में अपनी जीवन-ज्योति को मिला देने का उन्होंने सफल प्रयत्न किया है, उनकी आत्मकथा से यह बात स्पष्ट हो जाती है। उनके सब कामों में वही ज्योति जगमगा रही है। उस दुर्बल-से शरीर को लोक-कल्याण में प्रवृत्त होने की अनन्य शक्ति उसी ज्योति के दर्शन से प्राप्त हुई है।

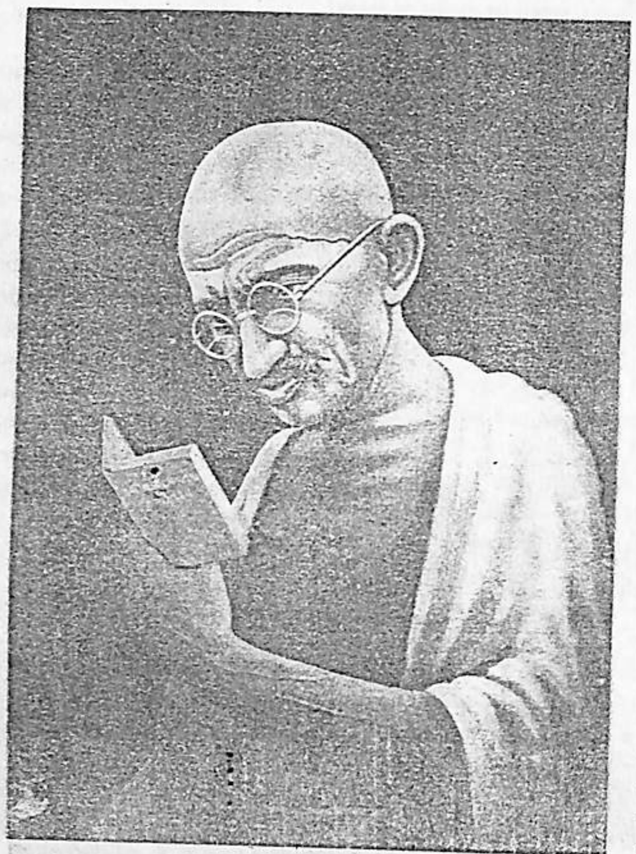
उनके दर्शन ने उनको सत्य का सबसे बड़ा समर्थक बनाया है। कबीर की ही भाँति उनके लिए सत्य ही एक-मात्र परमात्मा है। सत्य की स्वानुभूति के प्रकाश में ही वे जगत् की सब बातों को देखना चाहते हैं। उनके लिए कार्याकार्य का वही एक मानदंड है। अपने प्रत्येक कार्य के लिए वे उसी की अनुज्ञा चाहते हैं। उसी के भीतरी

शब्द की ओर वे हमेशा अपने कान लगाये रहते हैं और उसी के आदेश के अनुसार आचरण करने का प्रयत्न करते हैं। फिर चाहे ऐसा करने में सारी दुनिया के विरुद्ध जाना पड़े। इसी अभिप्राय से कबीर अपने को 'सत्यनाम का उपासक' और गांधी अपने जीवन को 'सत्य के प्रयोग' कहते हैं।

कबीर की ही भाँति गांधी भी राम-नाम की महिमा खूब गाया करते हैं। परन्तु कबीर की ही भाँति उनका भी राम से अभिप्राय दाशरथि राम से न होकर परब्रह्म सत्य राम से है जो अज, अनादि और अनाम है। जहाँ कबीर कहते हैं, "दशरथसुत तिहुँ लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना," वहाँ गांधी जी के सेक्रेटरी भी लिखते हैं—"प्रार्थना में गांधी जी का ध्यान निराकार सर्वव्यापी प्रभु की ओर रहता है। राम जिसको वे पूजते हैं, उनकी कल्पना का है, न तुलसीरामायण का, न वाल्मीकि का।" ईश्वर अवतार लेता है अवश्य, परन्तु उसी अर्थ में जिसमें प्रत्येक मनुष्य ईश्वर का अवतार है। कबीर का अनुसरण करते हुए गांधी सबके हृदयस्थ परमात्मा की ओर संकेत कर जनसमाज के सामने महत्त्व का अभिनव मार्ग खोल रहे हैं। अटूट लगन और दृढ़ सचाई के साथ यह मार्ग सबके लिए सुगम है। मनुष्य को यदि अपने इस तात्त्विक महत्त्व का सच्चा अनुभव हो जाय तो वह कितना ऊँचा उठ सकता है, सच्चे देवलोक को, इन्द्रियलोलुपों के कल्पित स्वर्ग से अभिप्राय नहीं—पृथ्वी पर उतार ला सकता है। सब राम और कृष्ण हो सकते हैं। गांधी का यह व्यवहार—और—प्रयोगानुमोदित-संदेश अन्याय और अत्याचार के लिए खुली ललकार है।

परन्तु इसे गर्व और अहंकार को खुल खेलने के लिए निमंत्रण नहीं समझना चाहिए। उनमें झूठी मान-मर्यादा (प्रेस्टीज) का ज़रा भी विचार नहीं, जो नाम-मात्र के बड़े आदमियों से ज़रा ज़रा से पापों को छिपाने के लिए बड़े बड़े पाप करवाती है। वे तो हिमाचलाकार ग़लतियों को स्वीकार करने में भी नहीं हिचकते। वास्तविक विनय की अनुभूति के साथ ही उसे सीखना और काम में भी लाना चाहिए। साम्राज्य को कँपा देनेवाली धमकी गांधी घुटने टेककर देते हैं। जो अपने लाल की लाली में लाल होना चाहता है, परमात्मा के प्रेम में रँगकर स्वयं परमात्मा होना चाहता है, उसे पहले सर्वत्र लाल की लाली देखना, परमात्मा का दर्शन करना चाहिए—* अपने में ही नहीं, प्रत्येक जीव में, चर और अचर में, अणु-परमाणु में। यह मुँह से कहना तो आसान है किंतु इसकी वास्तविक कठिनाई तब जान पड़ती है जब अपने भेजे की भूखी लाठी, खून की प्यासी तलवार प्राणों की गाहक गोली तथा इनका प्रयोग करनेवाला विरोधी सामने होता है। इनमें भी परमात्मा के दर्शन कर सकना मानवता की सबसे बड़ी विजय है, जिसे गांधी जी ने सबके लिए आदर्श बतलाया है और जिसे उन्होंने अपने जीवन में सफलता के साथ उतारा है। यही सर्वग्राही प्रेम कबीर का बल था, यही गांधी का बल है। भौतिक शक्ति न

* लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल।
लाली ढूँढ़न मैं चली, मैं भी हो गइ लाल॥—कबीर



[महात्मा गांधी]

उससे वर पाई, न इससे। प्रेम का क्षेत्र ही कुछ ऐसा विचित्र है कि उसमें पराजय भी विजय हो जाती है। क्योंकि पराजित प्रेमी के अलक्ष्य प्रभाव का प्रतिरोध ही नहीं हो सकता।

गांधी का धर्म सब विशेषताओं और आडम्बरों से शून्य सरल धर्म है, जो सर्वदा और सर्वत्र एक रस रहता है। यदि कबीर के शब्दों में गांधी के धर्म का सार बतलाना चाहें तो कह सकते हैं—

"साईं सेंती साँच रहु,
औरों सूँ सुध भाइ।"

परमात्मा में सच्ची लगन और प्राणि-मात्र के साथ शुद्ध व्यवहार—यही धर्म का सार है। इसको काम में लाने के उपाय देश और काल की परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते हैं, परन्तु यह मूलधर्म स्वयं बदल नहीं सकता। कबीर सब धर्मों में से पाखंड को हटाकर धर्म के इसी शुद्ध स्वरूप को लोगों के सामने रखना चाहते थे, और गांधी भी सब धर्मों के आवरण की ओर दृष्टि-पात न कर इसी मूल-तत्त्व की ओर दृष्टि-पात करते हैं। इसी कारण सब धर्म और सब धर्म-प्रवर्तकों में उनकी श्रद्धा है। हिन्दू-धर्म में उनकी विशेष श्रद्धा का कारण यह है कि वे उसी में इस सिद्धान्त का पूर्ण प्रतिपादन पाते हैं। वह उनकी दृष्टि में सार्वभौम अथवा विश्व-धर्म है। गांधी जात-हिन्दू हैं सही, परन्तु उनकी आत्म-कथा से पता चलता है कि उन्होंने हिन्दुत्व को अपने लिए फिर से ढूंढ़ा है। हिन्दुत्व की जो विशेषता गांधी जी को हिन्दुत्व के क्षेत्र में रख सकी है वही जात-मुसलमान होने पर भी कबीर को हिन्दुत्व के क्षेत्र में खींच लाई थी। कबीर हिन्दू-भावनाओं और आदर्शों से इतने ओत-प्रोत थे कि मिस्टर विल्सन को यहाँ तक संदेह हो गया कि हो-न-हो कबीर किसी हिन्दू-सुधारक का उपनाम-मात्र है।

गांधी और कबीर दोनों कथनी और करनी में पूर्ण साम्य के समर्थक हैं। जो वे कहते हैं वही करते भी हैं। वे मन, वचन और कर्म—सबमें सामंजस्य बनाये रखते हैं। जीवन की वह शुद्धता जिसको वे लक्ष्य करते हैं, वाणी तक ही सीमित नहीं। वे उसे 'रहकर' दिखाते हैं। यही कारण है कि उनके विरोधी को भी उनकी सत्यता में अविश्वास नहीं होता और यही कारण है कि जगत् के कोने कोने में उनकी सत्य-प्रचारक वाणी श्रद्धा के साथ सुनी जाती है।



महात्मा कबीर

'मनस्यन्यद्वचस्यन्यद्' ने ही आज सब धर्मों को चौपट कर रक्खा है। सिद्धान्त रूप में तो सब परमात्मा की सर्वव्यापकता मानते हैं, सबमें परमात्मा का अंश और सबको परमात्मा के सम्मुख बराबर समझते हैं, परन्तु जब सिद्धान्तों को कार्य में परिणत करने का अवसर आता है तब मनुष्य का आभिजात्य गर्व, अहंकार और अधिकार-मद ठेस खाकर व्याकुल हो उठता है, और जो परमात्मा के सम्मुख बराबर हैं वे आदमी के सम्मुख ऊँच-नीच हो जाते हैं। हमारे सब दर्शनों का जन्म ही संसार-दुःख का अन्त करने के उद्देश से हुआ है। परन्तु मनुष्य अपने ही व्यवहार से जिन विषमताओं, अन्यायों और अत्याचारों का अन्त कर सांसारिक जीवन में यत्किंचित् शान्ति और सुख-संचार कर सकता है, दार्शनिक क्षेत्र का परमार्थ—और—व्यवहार-भेद कथनी—और—करनी-भेद का आवरण बनकर उसे भी नहीं होने देता। कबीर का पदानुसरण करते हुए गांधी ने इस स्थिति के निराकरण का प्रयत्न किया है। इसी ने दोनों को पद-दलित शूद्रों का बन्धु बनाया है। गांधी जी ने तो शूद्रों के अन्तुत्थान-यज्ञ में अपने प्राण ही होम दिये थे। उनके लिए यह एक सामाजिक सुधार-मात्र नहीं, एक पारमार्थिक कर्तव्य है, परमात्मा को प्रसन्न करने का एक प्रधान उपाय है। शूद्रों के प्रति अन्याय करके हम परमात्मा की अप्रसन्नता के भाजन बन रहे हैं। बिहार और क्वेटा के भूकम्प उनकी दृष्टि में इसी अप्रसन्नता के द्योतक हैं। अस्पृश्यता को वे हिन्दू-जाति का कलंक मानते हैं। अछूत, अछूत नहीं हैं। उन्हें अछूत मानकर हम स्वयं अछूत बन रहे हैं।

इस प्रकार गांधी के हरिजन-आन्दोलन का आरम्भ कबीर ने ही कर दिया था। कबीर के लिए हरिजन होने से बढ़कर जाति नहीं—'हरिजन सर्वी न जाति।' इसी लिए शूद्रों को उन्होंने हरिजन बनने का आदेश दिया।

गांधी भी उन्हें हरिजन कहकर यही जता रहे हैं कि हरिजन का पद सब जातियों से ऊपर है। पर कबीर ने हरिजन शब्द को शूद्र का पर्याय नहीं बनाया है। सब शूद्रों को हरिजन न कहते हुए भी उन्होंने शूद्रों को नीच समझने के लिए हिन्दुओं को खूब फटकारा है।

गांधी की दलित-हितैषणा कबीर से किसी प्रकार कम नहीं। वे प्राण-पण से शूद्रों की उन्नति करने में लगे हुए हैं, यह सर्वथा सिद्ध बात है। पर प्रश्न यह है कि शूद्रों को अपनी उन्नति के लिए दूसरों पर ही अवलम्बित रहना चाहिए अथवा उनके हृदय में भी बल उत्पन्न होना आवश्यक है। जो शूद्र हरिभक्त नहीं है उसका भी आदमी की तरह रहने का अधिकार है या नहीं? मुझे तो ऐसा जान पड़ रहा है कि शूद्रों को हरिजन कहकर हम उनके हृदय में आत्मसम्मान की जड़ काट रहे हैं। उनके मन में यह भाव बिठला रहे हैं कि शूद्र होना बुरा है। साथ ही ऐसा करने से हम उनकी दलितावस्था को अप्रतिकार्य बतलाकर उनके भविष्य को नैराश्य से आच्छादित कर रहे हैं। वे जो कुछ हैं वही रहकर अन्य वर्णों के साथ महत्त्व का स्थान नहीं प्राप्त कर सकते! फिर भी दूसरा उपाय ही क्या है? महात्मा जी भी करें तो क्या? हमारी कट्टरता की दृढ़ दीवारों को तोड़कर उदारता का हमारे हृदय में प्रवेश होना सचमुच परमात्मा के ही चमत्कार से संभव हो सकता है, समस्या ही इतनी जटिल है। हरिजन शब्द की द्योतन-शक्ति का ह्रास तो जो हुआ सो हुआ, डर तो यहाँ तक है कि इस नैराश्य से हरिजन-आन्दोलन के मूलोद्देश पर ही आघात न पड़े और शूद्र शब्द के पर्यायों में एक और बढ़कर न रह जाय।

जात-मुसलमान होने के कारण कबीर को वर्ण-व्यवस्था का विशेष ज्ञान न था। जिस व्यवस्था में शूद्रों के साथ ऐसा अन्याय होता है उसे उनकी दृष्टि में अवश्य ही हेय होना चाहिए। साथ ही उनका यह भी मत था कि वर्ण-व्यवस्था आध्यात्मिक महत्त्व से सर्वथा शून्य है। उसका ध्येय आदमी को केवल धन्धों पर जोतना है, जिनसे सकाम कर्म बढ़ते जाते हैं और आवागमन का बंधन दृढ़तर होता जाता है। इसी लिए उन्होंने क्षत्रियों को उद्दिष्ट करके कहा है—

खत्री करै खत्रिया धरमो, तिनकूँ होय सवाया करमो ॥
जीवहिं मारि जीव प्रतिपारैं, देखत जनम आपनो हारैं ॥

परन्तु गांधी का मत इससे भिन्न है। उनकी विचार-दृष्टि से देखें तो कबीर को उत्तर दिया जा सकता है कि फल से पेड़ पहचाना तो अवश्य जाता है, परन्तु यह न भूल जाना चाहिए कि उचित रक्षा, कर्षण और सिंचन के अभाव में कभी कभी पेड़ और फल दोनों विकार-ग्रस्त हो जाते हैं। ऐसी दशा में उचित उपचार वृक्ष का समूल नाश कर डालना नहीं है, प्रत्युत विकार के कारणों को हटाकर विकार को हटाने का प्रयत्न करना है। गांधी जी तो यहाँ तक कहते हैं कि वर्ण-व्यवस्था के बिना काम ही नहीं चल सकता है। किसी न किसी रूप में वर्ण-व्यवस्था सर्वत्र है, परन्तु हिन्दू-धर्म ही उसे पूर्ण वैज्ञानिक स्वरूप दे सका है, जिसके कारण हमारे जीवन को भौतिक लक्ष्य की दृढ़ एक-मुखता प्राप्त होती थी तथा भौतिक जीवन के अनिश्चय और संदेह से मुक्ति हो जाने के कारण आध्यात्मिक अन्वेषण के लिए कुछ अवकाश भी सुलभ हो जाता था।

वर्तमान की आवश्यकता है इस प्रशस्त व्यवस्था में घुसे हुए विकार को दूर करना। यह विकार दो कारणों से आया है। एक तो वर्ण गुण-कर्म-विभागशः निर्दिष्ट न होकर जन्म से निर्दिष्ट होने लगा है, अर्थात् वर्ण जाति समझा जाने लगा है, जिससे व्यक्ति के लिए अपनी प्रवृत्ति के अनुकूल जीवन-मार्ग बन्द हो गया है। दूसरे, वर्ण के साथ सामाजिक उच्चता-नीचता का सम्बन्ध हो जाने के कारण स्थिति और भी बिगड़ गई है। इससे लोगों की दृष्टि में परिश्रम का महत्त्व बहुत कुछ घट गया है।

जन-साधारण की दृष्टि में जाति से वर्ण का सम्बन्ध माना जाना बहुत कुछ स्वाभाविक भी है, क्योंकि गुण-कर्मों के निर्माण में परिस्थितियों का ही हाथ रहता है, और परिस्थितियाँ जन्म से ही अपना प्रभाव डालना आरम्भ कर देती हैं। इसी लिए आनुवंशी पेशों में व्यक्ति जो कौशल प्राप्त कर सकता है वह बाहरी पेशों में उसे कदाचित् ही मिले। परन्तु इस बात को भी न भूलना चाहिए कि जन्म से लेकर पड़नेवाले प्रभाव हमेशा माता-पिता के ही नहीं होते और जीवन में ऐसे भी प्रबलतर बाहरी प्रभाव पड़ सकते हैं जो माता-पिता के प्रभाव को मिटा डालते हैं। जाति से वर्ण का निर्णय यदि सामान्य नियम माना जाय तो उसमें अपवादों के लिए भी उदारता-पूर्ण स्थान होना चाहिए। दूसरे कारण के सम्बन्ध में इतना ही कहना काफ़ी होगा कि अब वह समय दूर नहीं है जब लोग उद्योग का पूरा महत्त्व समझने लग जायँगे। ऊँचे ऊँचे वर्णों का नीचे से नीचे समझे जानेवाले व्यवसायों को ग्रहण करना इस बात का साक्षी है कि इस सद्बुद्धि का बहुत कुछ उदय हो चला है। इसमें संदेह नहीं कि आज की स्थिति में नीच समझे जानेवाले व्यवसायों के कारण ही किसी वर्ण के साथ सामाजिक नीचता जोड़ बैठने का छिछलापन खूब स्पष्ट हो रहा है।

प्राचीन काल में अध्यात्मवादी लोग भौतिक वस्तुओं को इतना तुच्छ समझते थे कि सब छोड़छाड़ कर जङ्गलों में जाकर एकान्त सेवन करते थे। जगत् उनके महान सिद्धान्तों का व्यावहारिक लाभ नहीं उठा सकता था। काननों में सिंह मुनियों के तलुए सुहलाया करते थे और बस्तियों में महाभारत होते थे। राजा जनक का पादानुसरण करते हुए कबीर ने एक और पहलू से भी तपस्या को देखा। उन्होंने उस निर्बल तप की तुच्छता बतलाई, जिसका लोभ, मोह, मद, मत्सर से दूर काननों और कंदराओं में ही निर्वाह हो सकता है। जिस तप में इतना बल नहीं कि इनके बीच में रहकर इनसे प्रभावित न हो वह नाम ही का तप है। तप का उद्देश शृंगी ऋषि बनाना नहीं, जनक बनाना है। वास्तविक तप वह है जिसके सामने मायिक शक्तियाँ स्वयं अप्रतिभ हो जायँ। लोक को क्षेत्र बनाकर चलनेवाला तप वास्तविक अन्तःशुद्धि का स्वतः प्रमाण है और साथ ही लोक-शुद्धि का जनक भी। इसी तप ने रामानन्द और कबीर को मध्य-युग की बहुत-सी सामाजिक विषमताओं को दूर करने के प्रयत्न में लगाया था।

परन्तु गांधी इससे एक पग और आगे बढ़ गये हैं। वे सामाजिक ही नहीं, राजनैतिक क्षेत्र में भी आध्यात्मिक

भावना का प्रयोग करना चाहते हैं। उनकी शिकायत है कि सारी बुराई की जड़ आध्यात्मिकता का अभाव है। यही कारण है कि और जगह जो छल-कपट समझा जाता है वह राजनीति की सीमा में अनुचित नहीं माना जाता। राजनीति की सब निरंकुशताओं को दूर करने के लिए वे राजनीति के क्षेत्र में भी धर्म-भावना का उदय चाहते हैं। इसी लिए उन्होंने सत्याग्रह के अस्त्र का निर्माण किया है। उन्हीं के शब्दों में सत्याग्रह राजनीति में धर्मभावना के प्रवेश का प्रयत्न है। राजनैतिक जीवन की कुटिलताओं को वे उसके द्वारा दूर करना चाहते हैं, इसी लिए उनके अनुसार वह बड़े से बड़े अत्याचारी को घुटनों पर ला सकता है।

यह कबीर की आध्यात्मिक प्रवृत्ति के विरुद्ध नहीं। बल्कि उनके सिद्धान्तों का सर्वाङ्गीण प्रयोग-मात्र है। यदि कबीर आज होते तो वे भी संभवतः गांधी की ही भाँति राजनीति में कूदते दिखाई देते। कुछ लोगों का विश्वास है कि कबीर ने राजशक्ति का विरोध किया भी था। फ़रिश्ता का कहना है कि किसी फ़क़ीर ने सिकन्दर लोदी को हिन्दुओं के धार्मिक अधिकारों में हस्तक्षेप करने के लिए फटकारा था, जिससे क्रुद्ध होकर सिकन्दर तलवार लेकर उसे मारने दौड़ा था। विल्सन आदि विद्वानों का अनुमान है कि यह फ़क़ीर कबीर ही था। यद्यपि मैं इससे सहमत नहीं, फिर भी इससे इतना तो स्पष्ट है कि साधु-संत राजाओं का विरोध करना बुरा नहीं समझते थे। कबीर ने राजनीति में उतना हस्तक्षेप नहीं किया। इसके दो कारण हो सकते हैं। या तो यह कि उस समय सम्भवतः पशुबल का इतना ज़ोर था कि आध्यात्मिकता की ही रक्षा के लिए यह श्रेयस्कर समझा गया हो कि वे राजनीति से अलग रहें अथवा यह कि तत्कालीन शासन जनता के जीवन में उस प्रकार व्याप्त न रहा हो जिस प्रकार आज है और सुलतानों का अत्याचार, महामारी, भूकम्प आदि ईश्वरीय प्रकोपों की भाँति कभी ही कभी आ वहराता रहा हो और जनता के जीवन पर कोई स्थायी प्रभाव डाले बिना चला जाता रहा हो।

परन्तु गांधी जी के कार्य-सम्पादन के शस्त्रास्त्रों में से

आमरणोपवास अथवा भूख-हड़तालवाला उपाय शायद कबीर को पसन्द न होता। आमरणोपवास की तो बात ही क्या है, कबीर व्रतोपवास तक में विश्वास नहीं करते थे। व्रतोपवास के सम्बन्ध में कबीर ने बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा है—

अन्ने बाहर जे नर होवहिं, तीन भवन नहिं अपनो खोवहिं।
अन्ने बिना न होइ सुकाल, तजिए अन्न, न मिले गोपाल।

अन्न त्यागने से गोपाल नहीं मिल सकते, आध्यात्मिक सिद्धि नहीं हो सकती, यह कबीर का मत है।

परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि यदि कबीर गांधी जी के स्थान में होते तो वे भी आमरणोपवास का व्रत न ठान बैठते। क्योंकि जिन महापुरुषों को किसी लक्ष्य की एकतान लगन होती है, औरों के लिए उनके विचारों की गति समझना बहुत कठिन काम है। सामान्य तर्क वहाँ बे-काम हो जाता है। ऐसे लोग बहुधा तर्काश्रित होने के बदले भावनाश्रित हो जाते हैं। समर्थ कवि की भाँति वे बेजाने अपनी भावनाओं में डुबकी मारते—बहते—चलते हैं और साथ में जन-समाज को भी बहा ले जाते हैं। कबीर का यह व्यञ्जित करना कि बकरी की खाल इसलिए निकाली जाती है कि वह पत्ती खाती है* और गांधी का यह घोषित करना कि बिहार और क्वेटा के भूकम्पों का कारण अछूतता का कलङ्क है, कुछ इसी प्रकार के हैं। इन कथनों की ओर दोनों महात्माओं का उतना ध्यान नहीं, जितना कबीर का इस पर कि बकरी नहीं खाई जानी चाहिए और गांधी का कि अछूत भाव को मिट जाना चाहिए। मेरे कहने का यह अभिप्राय न समझना चाहिए कि कबीर या गांधी प्रचार की दृष्टि से जान-बूझकर घटनाओं को तोड़ते-मरोड़ते हैं और इस प्रकार जनता की भावुक प्रवृत्ति से अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं। असल में उनकी भावना-मग्न दृष्टि में वे घटनायें दिखाई ही वैसी देती हैं। तार्किक दृष्टि से चाहे जो कहा जाय, मेरा हृदय इस बात का तीव्र अनुभव करता है कि इस मङ्गल-मूल भावनाश्रितता के आगे संसार का सारा तर्क निछावर कर दिया जा सकता है। संसार में यदि शास्त्रार्थी तार्किकों के स्थान पर टाल्स्टाय के मूर्ख इवानों की सृष्टि होती जिन पर गांधी इतने अनुरक्त हैं, तो संसार अधिक शांत और सुखी होता।

* बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जो बकरी को खात है, तिनको कौन हवाल॥
—कबीर

जनता गांधी को विशेषकर स्वराज्य-आन्दोलन के नायक के रूप में जानती है। परन्तु उनका स्वराज्य भी आध्यात्मिक है। जनता का भौतिक स्वराज्य तो उसका एक बाहरी लक्षणमात्र है। स्वराज्य से उनका मूल अभिप्राय अपने 'स्व' के ऊपर यम,नियम,शम,दम के द्वारा अपने 'स्व' के ऊपर राज्य करना है। इंद्रियों को वश में कर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि षड्रिपुओं के प्रभाव से बाहर निकलकर 'स्वराट्' होना ही असली स्वराज्य है। इसके प्राप्त हो जाने पर देश का स्वराज्य अपने आप साथ लगा चला आवेगा। इसी शर्त पर उन्होंने एक वर्ष के भीतर स्वराज्य ले आने का आश्वासन दिया था। परन्तु उनकी शर्त असम्भव-सी थी। सबका गांधी होना, स्वराट् होना असाध्य है। इसी से लोगों की आशा पूरी नहीं हुई और चाहे जो हो, गांधी जी के लक्ष्य के संबंध में दो मत नहीं हो सकते। इसमें भी संदेह नहीं कि कबीर ने भी शुद्ध संयत जीवन के द्वारा आध्यात्मिक राज्य में प्रवेश करने की ही प्रेरणा जनसमाज को की थी।

गांधी ने अपने अहिंसा-सिद्धान्त के द्वारा भारत के राजनैतिक जीवन में जिस सरलता, पवित्रता और ऋजुता को लाने का प्रयत्न किया है उनके संबंध में संदेह को जगह नहीं, और मानव-जाति के जीवन के लिए जो महान् संभावनायें दिखला दी गयी हैं उनका तो कहना ही क्या है। यह कहने के लिए उनके वास्तविक क्रियात्मक उपायों का अनुमोदन करना आवश्यक नहीं है। गांधी की शिक्षा आतंकवादी युवकों को सन्मार्ग पर लगाने का आज एक प्रधान साधन है। केवल राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने में ही नहीं, अंतर्राष्ट्रीय उलझनों को सुलझाने में भी सत्याग्रह का सिद्धांत काम में लाया जा सकता है। चाहे व्यक्तिगत व्यवहार हो, चाहे राष्ट्रीय, चाहे अंतर्राष्ट्रीय। गांधी बतलाते हैं कि यदि सत्य पर सदैव दृष्टि रक्खी जाय तो ऐसी स्थितियाँ आ ही नहीं सकतीं जो आदमी को एक दूसरे के खून का प्यासा बना दें। ऐसी दशा में यदि ग़लतफ़हमी हो भी जाय तो सत्य के न्यायालय में उसका निराकरण आसानी से हो सकता है। बुराई का नाश करने के लिए बुरे का शत्रु होना ज़रूरी नहीं है। बुरे का मित्र होकर भी बुराई का नाश कर दिया जा सकता है। सत्य में निष्ठा और असत्य का बहिष्कार—यही एक सीधी-सादी-सी बात है, जिससे मनुष्य-जाति के प्रायः सब संकट दूर हो सकते हैं। गांधी की सत्य-निष्ठा ने उन्हें अमर बना दिया है। यदि मानव-जाति उनके संदेश को खाली सिर झुकाकर ही न सुने, उसे उत्साह के साथ काम में भी लावे, तो उसका अस्तित्व धन्य हो जाय। राष्ट्र-संघ यदि इस नीति को सर्वांश में बरत सके तो गैसों, बमगोलों और तोपों का डर ही न रह जाय। प्रवंचना और कुटिलता-पूर्ण राजनीति के क्षेत्र में सरल सत्य का इस प्रकार प्रवेश करने के कारण महात्मा गांधी इस युग के ही नहीं, सब काल के सबसे बड़े शान्ति के दूत हैं।

लोक-कल्याण तथा आत्म-कल्याण दोनों की दृष्टि से कबीर और गांधी दोनों ने ग़रीबी को अपनाया है। दैन्य—ग़रीबी—आध्यात्मिक जीवन की एक बहुत बड़ी आवश्यकता है। गोलमेज़-कान्फ़रेंस के दिनों जिस समय गांधी जी लंदन में ग़रीबी पर व्याख्यान दे रहे थे उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो उनके मुँह से कबीर बोल रहे हैं। आध्यात्मिक अर्थ में अर्थ-संकट का नाम ग़रीबी नहीं है, जो मनुष्य की इच्छा के विरुद्ध उसके ऊपर आ पड़ती है। वह तो एक स्वयं आमंत्रित अवस्था है, जिसमें मनुष्य अपने को शून्य में परिणत कर देता है। ग़रीबी में गर्व के बिना आत्मप्रतिष्ठा, मूर्खता के बिना सरलता और ग़ुलामी के बिना विनय प्रतिष्ठित है। इस ग़रीबी में धन के प्रति एक मानसिक समस्थिति रहती है, जिसके संतोष और त्याग दो पक्ष हैं। कबीर और गांधी के समान दीन न अर्थाभाव से दुखी हो सकते हैं और न धनागम से भयभीत। धनाभाव से दुःख उसी को हो सकता है जो धन में ही सुख की अवस्थिति मानता है। पर जो जानता है कि आते हुए धन को नाव में भर आते हुए पानी के समान दोनों हाथों से परोपकार के लिए उलीच देना चाहिए वह धन के आने से भयभीत क्यों होने लगा?

यह ग़रीबी मनुष्य को परावलंबी नहीं, स्वावलंबी और उद्योगी बनाती है। गांधी जी उद्योग की महिमा से घर-घर में शांति और संतोष का साम्राज्य देखना चाहते हैं। परिश्रम का उनके मत में आध्यात्मिक महत्त्व है। वे नित्य नियमित रूप से चरखा काता करते हैं, और प्रत्येक मनुष्य को काम करता हुआ देखना चाहते हैं। इसी लिए वे कांग्रेस का चन्दा चवन्नी के बदले कुछ हाथ का कता सूत रखना चाहते हैं। उनका तो यहाँ तक कहना है कि दरिद्र भारत में परिश्रम ही परमात्मा है। भूखी हालत में परमात्मा का दूसरा रूप स्वीकार ही नहीं किया जा सकता। इसका सक्रिय स्वरूप उनके ग्रामोद्योगसंबंधी नवीन आंदोलनों में देखने को मिलता है। परमात्मा का आदेश है कि आदमी परिश्रम करके खाय। जो बिना काम किये खाता है वह उनके मत में चोर है। कबीर का भी यही मत है। वे कहते हैं कि धंधे में ही लगा रहना तो ज़रूर जीवन को धूल बनाना है, परन्तु जो जीविको-पार्जन के लिए कोई धंधा नहीं करता वह भी धुल नहीं सकता, पवित्र नहीं हो सकता, परमात्मा को नहीं पा सकता।

जो धंधै तो धूलि, बिन धंधै धूलै नहीं।

कबीर स्वयं करघे पर कपड़े बुना करते थे। महात्मा गांधी का चरखा परिश्रम की आवश्यकता का ही द्योतक है। वह सब उद्योगों का प्रतीक है। स्वदेशी-आन्दोलन वस्त्र से आरंभ हुआ है। इसलिए चर्खे का प्रतीक गृहीत होना स्वाभाविक ही था। फिर भी क्या यह आश्चर्यजनक संयोग नहीं कि गांधी जी के हाथ से राष्ट्रीय जीवन में तथा राष्ट्रीय पताका पर एक ऐसा प्रतीक प्रतिष्ठित हुआ जिसका कबीर के आनुवंशी पेशे से इतना घनिष्ठ संबंध है? क्या गांधी के चरखे का कबीर के करघे से कोई सीधा लगाव है?

औद्योगिक उत्थान को गांधी वास्तविक सुखशांति

का प्रसारक बनाना चहते हैं। नामदेव और त्रिलोचन की जीवनी से कबीर ने जो शिक्षा प्राप्त की थी—"हाथ पाँव कर काम सब चित्त निरंजन नालि"* वह गांधी के हृदय में भी प्रतिष्ठित है। सत्य के प्रकाश के सम्मुख खुली रहने-वाली उनकी आँखों को वर्तमान औद्योगिक सभ्यता की चकाचौंध चौंधिया नहीं सकती। चकाचौंध-मात्र से कलों को स्वीकृति नहीं मिल सकती। वे तभी स्वीकार की जा सकती हैं जब मानव-जीवन में सुख और शांति की वृद्धि करने में अपनी व्यावहारिक उपयोगिता सिद्ध कर सकें। वर्तमान परिस्थिति में तो कलें मनुष्यों को पीसती हुई चल रही हैं। वर्तमान औद्योगिक सभ्यता में आत्मा को कोई स्थान ही नहीं। इसी लिए वह अग्राह्य है। चरखा और सीने की कलें भी कलें ही हैं, परन्तु वे इसलिए ग्राह्य हैं कि उनके द्वारा मनुष्य की मनुष्यता, उसकी आध्यात्मिकता नष्ट नहीं होती। वे मानव-जाति की सुखशांति में सहायक होती हैं।

गांधी की शांति-प्रसारक वाणी जगत् के कोने कोने में पहुँच चुकी है। सारा जगत् आज उन्हें एक-स्वर से इस युग का सबसे बड़ा महापुरुष मानता है। मुँह से कहने में चाहे कोई हिचके, परन्तु रंक से लेकर सम्राटों तक के हृदय में उनके प्रति अटूट श्रद्धा अंकित है। कबीर का नाम भी झोपड़ियों से लेकर महलों तक में अत्यंत आदर के साथ लिया जाता है। इसका कारण यह है कि दोनों भारतीय आध्यात्मिकता के सच्चे प्रतिनिधि हैं। भारत अग्रजन्माओं का देश है, जो अपने चरित्र से संसार को शिक्षा देते रहे हैं। भारत का यह अग्रजन्मत्व पाँच शताब्दी पहले कबीर के रूप में प्रकट हुआ था और आज गांधी के रूप में प्रकट हुआ है। परमात्मा की जो विभूति, मानवता का जो महत्त्व सोलहवीं शताब्दी में कबीर कहलाया, वही आज गांधी है। केवल आवरण का भेद है, तथ्य का नहीं।

यदि कबीर अपनी ही कविता के समान, सीधी सादी भाषा में उल्लिखित आदर्श हैं, तो गांधी उसकी और भी सुबोध क्रियात्मक व्याख्या। यदि प्रत्येक व्यक्ति इस विशद व्याख्या की प्रतिलिपि बन सके तो जगत् का कल्याण हो जाय।

* त्रिलोचन एक महाराष्ट्री साधु थे। नामदेव की प्रशंसा सुनकर वे बड़ी उत्कण्ठा से उनके दर्शनों को गये। वहाँ जाकर देखा तो उन्हें छींट छापते हुए पाया। उन्होंने नामदेव से ग्लानिपूर्वक पूछा—

नामा माया मोहिया, कहै त्रिलोचन मीत।
काहे छापै छाइलै राम न लावै चीत॥

नामदेव ने इसका उत्तर निर्विकार रूप से दिया—

नामा कहै तिलोचना मुखाँ राम सँभालि।
हाथ पाँव कर काम सब चित्त निरंजन नालि॥

कबीर के ये दोहे आदि ग्रंथ में संगृहीत हैं।—लेखक

अन्तर्दृष्टि

लेखक, श्रीयुत हरिकृष्ण 'प्रेमी'

आग जल उठी है अन्तर में,
कर जग की छवि-मदिरा पान।
इच्छा है प्रत्येक कुसुम की,
पी लूँ मैं मादक मुसकान॥
जब से तुमको बाहर खोजा,
क्षण भर भी है शांति न पाई।

ऊषा और निशा दोनों ने,
मुझ पर पीड़ा ही बरसाई॥
जो आँखें बाहर लखती हैं,
उनको ज्योति-हीन अब कर दो।
रहे न आश्रित हृदय 'बाह्य' का,
चिर वसन्त प्राणों में भर दो॥

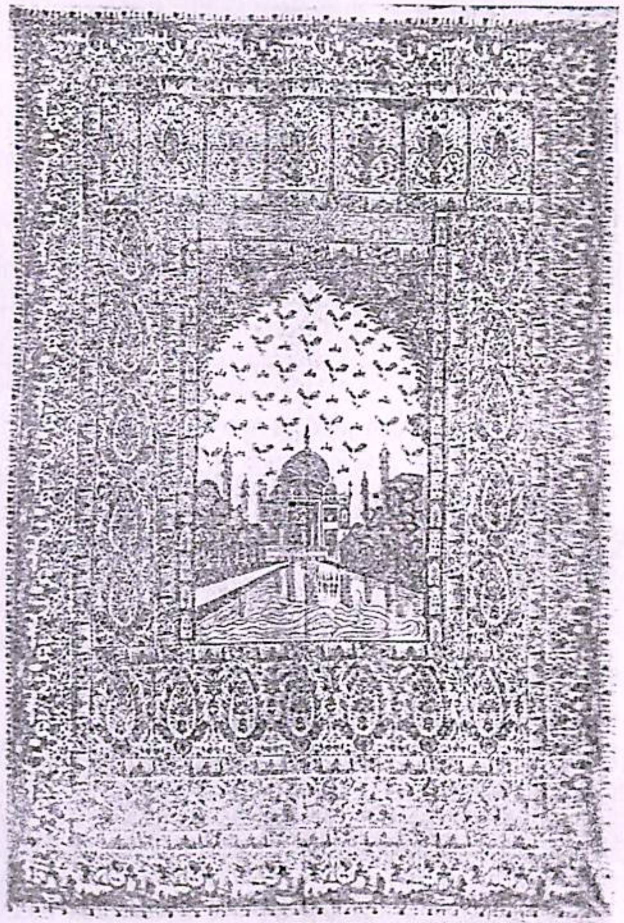


लेखक, श्रीयुत उमेशचन्द्रदेव, विद्यावाचस्पति

फ़र्रुख़ाबाद के साध भारत के प्राचीन कलाविदों के जीवित नमूने हैं। हमारे प्रान्त के कई एक गवर्नर इनकी कला देख चुके हैं और उसकी प्रशंसा कर चुके हैं। कपड़े पर रँगाई और छपाई का काम ये इतना उत्तम रीति से करते हैं कि इँग्लेंड, अमरीका आदि देशों में इनकी बड़ी धूम है और वहाँ इनकी कितनी ही कोठियाँ खड़ी हैं। इस लेख के लेखक महोदय गुरुकुल (काँगड़ी) के स्नातक हैं और टैगोर के शान्तिनिकेतन में भी शिक्षा पा चुके हैं। साध-जाति के सम्बन्ध में यह लेख आपने बड़े ही परिश्रम से तैयार किया है। कहना नहीं होगा कि हिन्दी में यह इस विषय का पहला लेख है और इसके चित्र भी अभी तक कहीं नहीं छपे हैं।

अपने धर्म और व्यवसाय के विषय में किसी को कुछ न बताना साध-जाति का प्रथम और स्वयंसिद्ध गुण है। बाबा के लाख पूछने पर भी पौत्र न बतायेगा कि उसका पिता कहाँ गया है और किस काम के लिए! और तो और, ये लोग अपने कारखानों का फ़ोटो भी नहीं लेने देते। इन्हें भय रहता है कि 'कोई हमारी नक़ल न कर ले'। शिक्षितों की विरलता के कारण अब तक इस सम्प्रदाय में रूढ़ि की उपासना अधिक है। साधों के लड़के कालेज तो पहुँचते ही नहीं, हाई स्कूल की सीमा पार करने का साहस भी अभी विरले ही शूर कर सके हैं।

इस जाति का विशेष महत्त्व व्यापारिक दृष्टि से है। संख्या में ये लोग सब मिलाकर पाँच-छः हज़ार से अधिक नहीं, पर छः-सात लाख रुपये के कपड़े, पर्दे, मेज़पोश आदि छापकर प्रतिवर्ष इँग्लेंड और अमरीका तथा अन्यान्य विदेशों को भेजते हैं। भारत में साध-जाति ही एक ऐसी जाति है जो अपनी स्वतन्त्र कला-द्वारा विदेशों से धन भारत में लाती है। इँग्लेंड और जर्मनी के कलाविज्ञों ने अनेक बार इस कला को अपनाने का प्रयत्न किया, जिससे उनके देशों में भारत के इस पक्के माल की खपत कम हो सके, पर वे सदा असफल रहे। न तो उनके रंगों में ऐसा पक्कापन आया, जो धूप और नाँद में एक-सा ठहर सके, न ऐसी तड़क-भड़क। इँग्लेंड और अमरीका में साधों की कई कोठियाँ हैं, जहाँ इनका माल विलायती माल के मुक़ाबिले में अधिक मँहगा लिया जाता है। विदेशों में इनकी

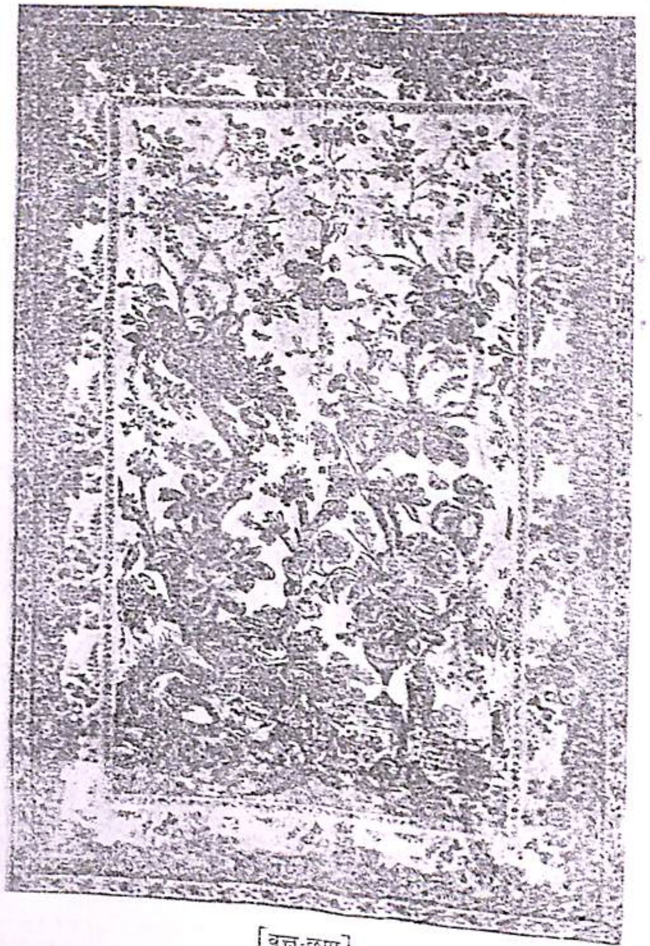


[परदे में ताजमहल]

कला की ऐसी धाक है कि अमरीका के जिन शहरों में विदेशी अपने देश की पोशाक में नहीं जा सकता, वहाँ भी साध जी की टोपी का निषेध नहीं है।

यों तो साध लोग क़ायमगंज, रोहतक, दिल्ली, अमृतसर, बैजवाड़ा, मिर्ज़ापुर आदि कई स्थानों में बसे हुए हैं, पर छपाई का काम फ़र्रुख़ाबाद में ही होता है। इस छपाई के साथ इस नगर के जलवायु का विशेष सम्बन्ध है। कपड़े छापने के पश्चात् गंगाजल में दो-तीन दिन तक डुबाये जाते हैं। इस कार्य के लिए गंगा की धार में दो खूँटे आमने-सामने गाड़कर उनमें रस्सी बाँध देते हैं। इसी रस्सी पर कपड़े लटका दिये जाते हैं। इस प्रकार रँगाई के सभी रंग नितान्त पक्के हो जाते हैं। पर यह काम साध लोग करते हैं अत्यन्त छिपाकर। हमें इसका चित्र बड़ी कठिनता से मिला है। गंगाजल तो अन्यत्र भी है, पर वहाँ उसमें रंगों को पक्का करने का यह गुण नहीं पाया जाता !

सत्तनामी-सम्प्रदाय का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। बतलाते तो ये लोग अपनी उत्पत्ति अनादिकाल से हैं, जैसा कि सभी धर्मावलम्बी अपने अपने विषय में कहा करते हैं, पर वर्तमान इतिहास में इस जाति का नाम औरंगज़ेब के शासन-काल से ही आता है। इनकी 'निर्वानवानी' में लिखा है कि औरंगज़ेब की सेना ने जब सत्तनामी-सम्प्रदाय पर चढ़ाई की उस समय ये लोग नितान्त वीतराग साधु-मात्र थे, लड़ना-भिड़ना कुछ नहीं जानते थे। साध-स्त्रियाँ रोटी कर रही थीं कि शाही सेना ने चारों ओर से आकर घेर लिया। स्त्रियों के सत से चूल्हे पर के तवे उड़े और लगे चक्र की भाँति सिपाहियों के गले काटने। सेना भाग गई। साधों के इस अलौकिक तेज के समक्ष उसके शस्त्रास्त्र निष्फल हो गये। औरंगज़ेब ने तब एक चाल चली। उसने सैनिकों को विश्वास दिलाने के लिए अपने झंडों पर हदीस की आयतें लिखीं और घोषणा कर दी कि हमारी आयतों के आगे साधों का मंत्र-बल व्यर्थ हो जायगा। उसकी चाल चल गई और सेना ने द्विगुण उत्साह से साथ फिर धावा बोल दिया। इसके आगे 'रियान' का तो मत है कि साध-जाति पराभूत हुई और औरंगज़ेब ने उसे छिन्न-भिन्न कर दिया; पर 'निर्वानवानी' के अनुसार बादशाह ही फिर पराजित हुआ और उसे सत्तनामी साधों की अलौकिक शक्ति के समक्ष सिर झुकाकर क्षमा-याचना करनी पड़ी। यह युद्ध नारनौल में हुआ था, इससे इस जाति का उत्पत्ति-स्थान दिल्ली के आस-पास ही ज्ञात होता है। यों तो इन लोगों के विषय में थोड़ा-बहुत 'कबीरवचनावली' की भूमिका, शुक्ल जी के 'हिन्दी-साहित्य के इतिहास' एवं प्रोफ़ेसर विल्सन के 'हिस्ट्री ऑफ़ दि इंडियन रिलीज़न' (ऑक्सफ़ोर्ड एडीशन) में भी लिखा है, पर विस्तृत विवरण 'नौरंगनामा' के दूसरे भाग में है, जो फ़ारसी में है और कलकत्ते में छपा है। इस पुस्तक में उक्त युद्ध का भी पूरा-पूरा विवरण आया है।

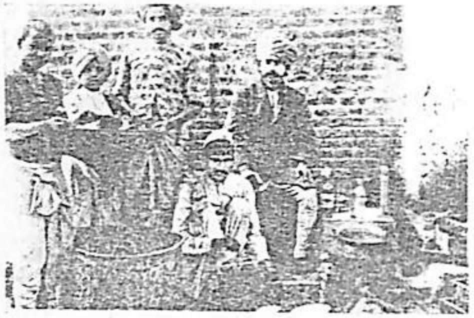


[वृक्ष-छाप]

सवर्ण हिन्दू किसी जनश्रुति के आधार पर इन्हें अन्त्यज—वर्णसंकर मानते हैं, इसी लिए वे इनके हाथ का पानी नहीं पीते। फ़र्रुख़ाबाद में दो हज़ार के लगभग साधलोग 'सधवाड़ा' नाम के एक पृथक् मोहल्ले में आबाद हैं। यहाँ इन लोगों को नवाब बङ्गस ने ५७ के ग़दर से कुछ वर्ष पूर्व क़ायमगंज से लाकर बसाया था। साधलोग बड़े वीर, निर्भीक और साहसी होते हैं। अतः नवाब को फ़र्रुख़ाबाद के उद्दंड ब्राह्मणों को दबाने में इनकी सहायता अपेक्षित थी। आर्य-समाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती के विरुद्ध जब फ़र्रुख़ाबाद के पण्डितों ने उपद्रव करना चाहा था, उस समय साध-जाति ने स्वामी जी की अत्यन्त सतर्कता-पूर्वक रक्षा और सहायता की थी। पर इस सहायता में नैतिक कारण न था। बात वस्तुतः यह थी कि स्वामी जी मूर्तिपूजा और सनातन-धर्म का खण्डन करते थे, और यह बात साधों के मन की थी।

च

नम्बर
१०१
१०२
१०३
१०४
१०५
१०६
१०७
१०८
१०९
११०
१११
११२
११३
११४
११५
११६
११७
११८
११९
१२०
१२१
१२२
१२३
१२४
१२५
१२६
१२७
१२८
१२९
१३०
१३१

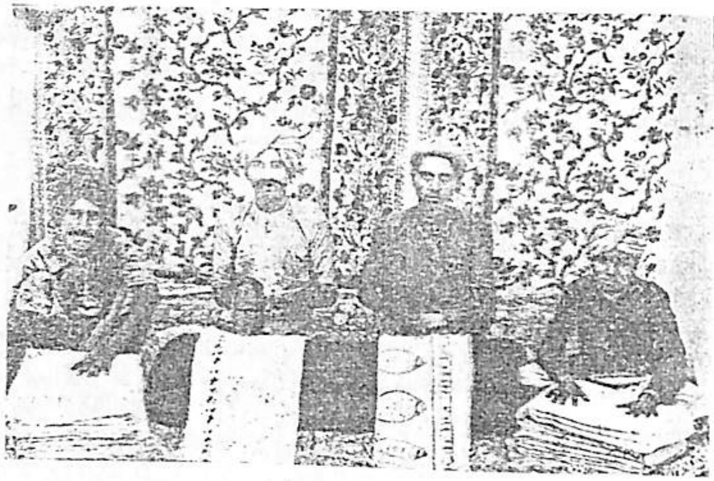


[छपाई के लिए पक्के रङ्ग बन रहे हैं।]



[गंगा की धार में कपड़ों का रङ्ग पक्का करना।]

इस जाति के रहन-सहन में कुछ विशेषता है। बलिष्ठ होते हुए भी प्रकृति से ये लोग शान्तिप्रिय और बड़े राजभक्त हैं। ये लोग सदैव श्वेत वस्त्र ही पहनते हैं। यदि रंगीन फ़र्द ओढ़ेंगे तो उसके ऊपर सफ़ेद चादर अवश्य डाल लेंगे। सिर पर कूँड़ी की आकृति की सफ़ेद ऊँची टोपी लगाते हैं। यही टोपी इस जाति का विशेष चिह्न है। रोते समय इनके बच्चे 'हाय राम रे!' या 'हाय दैया!' न कह कर 'दाता मालिक!' या 'बाबा जी' कहते हैं। घृणा या मनोवेगव्यञ्जक 'राम! राम!' के स्थान पर ये 'बाबा जी!', 'बाबा जी!' कहेंगे। धार्मिक नियमों में ये लोग बड़े कट्टर और हठधर्मी हैं। इस सम्प्रदाय में हैं तो अवान्तर जातियाँ भी, पर ये लोग इतने सुसंगठित हैं कि बाहर से इस बात का भेद नहीं मिलता। दूसरी बात यह भी है कि फ़र्रुखाबाद में आकर ये लोग छपाई या व्यापार के अतिरिक्त अन्य काम करते भी नहीं। अपनी जाति के किसी व्यक्ति को ये लोग बेकार नहीं रहने देते। फ़र्रुखाबाद में एक बार एक साध जी कहीं से आकर जूते गाँठने लगे। जब सम्भ्रान्त साधों को इसका पता लगा तब ये लोग तुरन्त जाकर उसे अपनी 'चौकी' में लिवा लाये! वहीं उसे खाने-पहनने को देते रहे और बनाये रक्खा। हाँ, जब इन लोगों में परस्पर गाली-गलौज होता है तब अवश्य "तैं तो भंगी है", "तैं तो धोबी है" आदि वाक्य सुनाई पड़ते हैं। 'आप' तो ये लोग लाट साहब को भी नहीं



[कुंदी (फ़िनिश)]

कहते। शिष्टाचार में दोनों हथेलियाँ दिखाकर 'साध जी आनन्द' या 'सुख-आराम है' कहते हैं। यही प्रणाम है, यही आशीर्वाद। 'मालिक (ईश्वर)' के सिवा किसी को सिर नहीं नमाते, न सलाम करते हैं। अफ़सरों को मिलने के पूर्व ही इनकी शिष्टाचार-पद्धति की सूचना दे दी जाती है। युक्त-प्रान्त के कई गवर्नर और मिनिस्टर साधों की कला देखने के लिए फ़र्रुखाबाद आये। हेली साहब के लिए तो स्टेशन से 'चौकी' तक पर्दों की वीथिका बनाई गई थी; और एक भवन भी पर्दों का निर्माण किया गया था। अपने प्रशंसापत्र में उन्होंने इनकी इस कला की बड़ी प्रशंसा की है।

फ़र्दों की छपाई का काम साध लोग मुग़लकाल से बराबर करते आये हैं। पर विलायत से इनका सम्बन्ध



[ब्लाक और डिज़ाइन बन रहे हैं।]



[परदों की सिलाई हो रही है।]

सन् १८८२ ईस्वी से ही हुआ है, जब साध बाजीला[illegible] जी ने अपना माल लंदन की किसी प्रदर्शिनी में भे[illegible] था। इन लोगों को विदेशी प्रदर्शिनियों से अनेक पद[illegible] व प्रशंसापत्र प्राप्त हुए हैं। फ़र्रुखाबाद में साधों के क[illegible] बड़े बड़े कारखाने हैं। इन कारखानों में लाखों रुपये [illegible] वस्त्र प्रतिवर्ष छापकर बेचा जाता है। छपाई-सम्बन्[illegible] छोटा-मोटा सभी काम साध-जाति के ही हाथ में है। अन[illegible] जाति को कारखाने में घुसने का भी अधिकार नहीं है— ऐसा सुनते हैं। कुछ दिनों से ये लोग राजनीति में भी भा[illegible] लेने लगे हैं। गत सत्याग्रह-आन्दोलन के सिलसिले [illegible] कई साध-युवक जेल गये थे।

इस सम्प्रदाय को इतिहासकारों ने 'सत्तनामी-सम्प्रदा[illegible]' लिखा है, क्योंकि ये लोग 'सत्त अवगत' नाम से निर्गु[illegible] की उपासना करते हैं। उसे ये 'मालिक' कहते हैं। 'ईश्व[illegible]



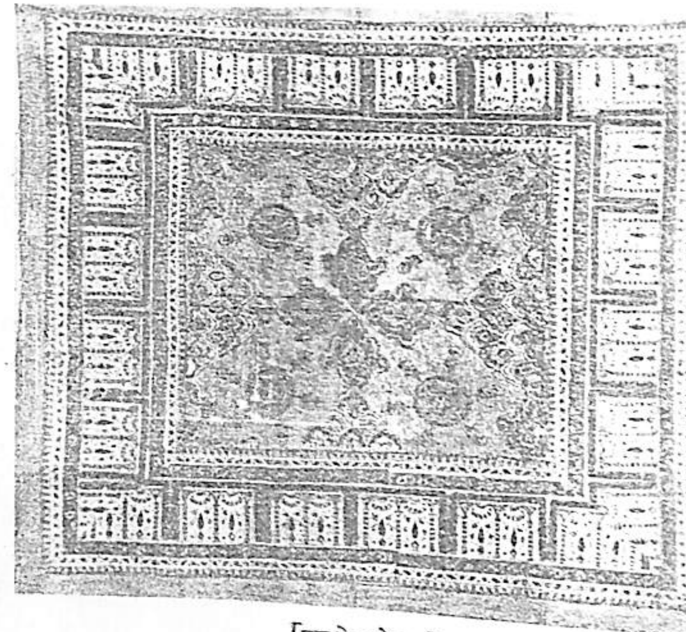
[चौकी का एक भाग ।]

को मालिक से छोटा समझते हैं। इनके मतानुसार ईश्वर महादेव के ज्येष्ठ पुत्र थे। महादेव को ये लोग 'साध' मानते हैं।

इनकी सामाजिक प्रथाओं पर हिन्दूत्व की स्पष्ट छाप है। विवाह से पूर्व लड़के टोपी में सुनहली लेस लगाये रहते हैं, जो उनकी कुमारावस्था का द्योतक है। स्त्रियों का पहनावा एक चारखाने का लहँगा, और झीनी ओढ़नी है, पर अब उनमें साड़ी और जम्पर का प्रवेश हो चुका है। आभूषणों की प्रथा हिन्दुओं के अनुसार है। संस्कार हिन्दुओं से मिलते-जुलते हैं; केवल कुछ संस्कारों में भेद है। यज्ञोपवीत के स्थान पर इनके यहाँ जो दीक्षा-संस्कार होता है उसे 'ज्ञान कबूल करानो' कहते हैं। जब बच्चा समझदार हो जाता है तब यह संस्कार किया जाता है। 'चौकी' में बच्चे को ले जाते हैं; वहाँ बिरादरी के लोग एकत्र होते हैं। पुरोहित के स्थान पर दो साध बैठते हैं, जो 'साखी' कहलाते हैं। बच्चे के सिर पर 'जुगत धरी' जाती है। 'जुगत' दोने को कहते हैं, जिसमें प्रसाद रक्खा होता है। साखी लोग बच्चे को साध-धर्म के चार सिद्धान्तों और बत्तीस नियमों का उपदेश देते हैं। जब बच्चा कहता है—"मैं समझ गया, आज से इनका पालन करूँगा" तब उक्त प्रसाद सब लोगों में बाँट दिया जाता है और बच्चा धर्म में दीक्षित हो जाता है। उस समय से उसे 'निर्वान-बानी' पढ़ने का अधिकार प्राप्त होता है। विवाह में मँगनी की प्रथा है। दहेज का नियम नहीं है। हाँ, लड़कीवाला चाहे तो दे सकता है। विवाह माता-पिता के कुल को बचाकर किया जाता है। सेहरा बँधता है, घुड़-चढ़ी भी होती है। वेश्या इनके किसी उत्सव में नहीं जाने पाती। 'बखेर' ये अधिक करते हैं। विवाह प्रायः फाल्गुन के महीने में होते हैं। इन्हीं दिनों इनके यहाँ 'सरवरा' होता है। वार्षिक भंडारे को ही सरवरा कहते हैं। जिस कन्यावाले को सामर्थ्य नहीं होता वह तीसरे या चौथे 'सरवरा' की भाँवरें बद देता है। तब बिरादरी की उपस्थिति में वहीं संस्कार सम्पन्न हो जाता है। लड़केवाला इस विषय में आपत्ति नहीं कर सकता। सुनते हैं, भाँवरें इनके यहाँ तकिए के आस-पास पड़ती हैं!

मृतकों को ये लोग जल में डुबाते हैं। श्मशान से लौटकर सब लोग चौकी में एकत्र होते हैं, जहाँ धर्म-पुस्तक का पाठ होता है। शोक तीन दिन तक मनाया जाता है। तीन दिन के बाद ये लोग बाज़ार से शाक-तरकारी लाने निकलते हैं। चौथे-पाँचवें दिन एक प्रीतिभोज होता है।

साध लोगों में अब दो पार्टियाँ हैं। अव्वल सनातनी पार्टी और दोयम सुधारक पार्टी। दूसरी पार्टी के लोग नई रोशनी के अनुकूल हैं। विलायत-यात्रा भी करते हैं। पर वहाँ भी रहते हैं स्वयंपाकी ही। भोजन में स्वच्छता व सुरुचि को विशेष महत्त्व देते हैं। रसोई के पात्र और वस्त्र स्वच्छ चमचमाते हुए रखते हैं। सन् १९२८ में दोयम पार्टी के नेता साध प्रेमनारायण जी व्यापारिक कार्यवश इँग्लैंड जा रहे थे। जहाज़ पर आपने प्रचुर व्यय करके अपने लिए स्वयंपाक की व्यवस्था पूर्व से ही कर ली थी। संयोगवश उसी जहाज़ से बिहार-रत्न राजेन्द्र बाबू भी इँग्लैंड जा रहे थे। आप जहाज़ी भोजन से परेशान आ चुके थे कि साध जी की रसोई ने आपको आकृष्ट किया। आप भी बना-बनाया पाने लगे। इँग्लैंड तक बड़ा आनन्द रहा। कई इँगलिश लेडियाँ भी इस रसोई के लिए ललचाया करती थीं। वे बिना चूके नित्य यह दृश्य देखने आती थीं। उस जहाज़ में कुछ भारतीय छात्र भी थे, जो 'विलायत पास करने' जा रहे थे और भावी साम्पिपता का सामना करने के लिए जहाज़ पर से ही तैयार हो रहे थे। वे इस ठेठ हिन्दीपन से खूब कढ़ते थे।



[एक मेज़ पोश ।]

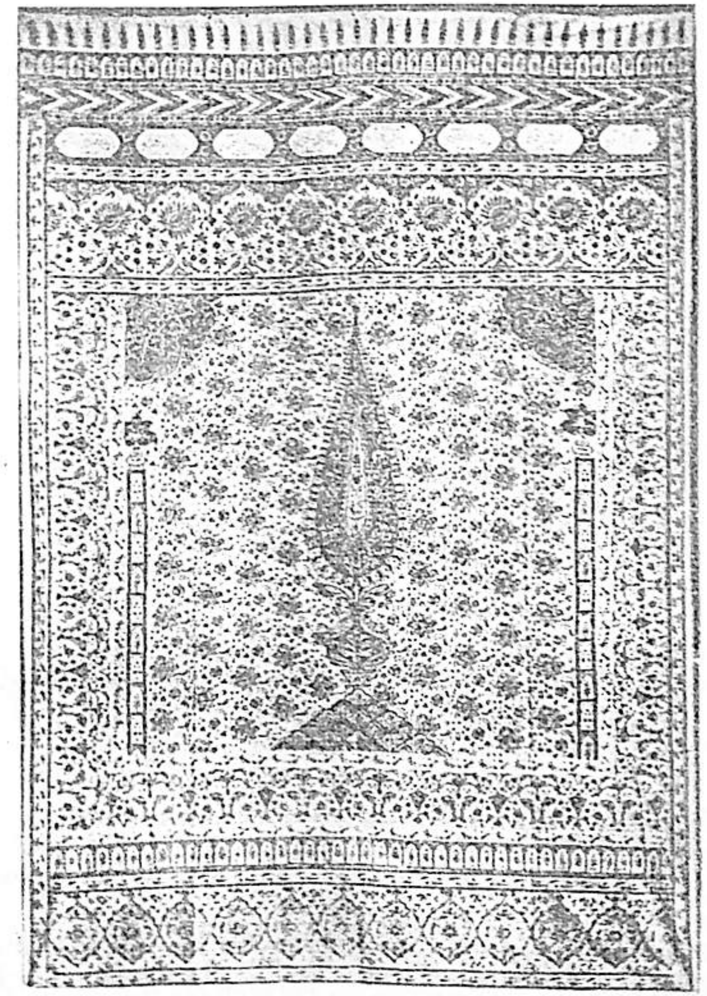
साध लोग एकेश्वरवादी हैं। ऊदादास और कबीरदास को ईश्वर का अवतार मानते हैं। इनका अहिंसावाद जैनियों से एक हाथ आगे है। बाज़ार में स्वयं जाकर ड्योढ़ा-दूना दाम देकर अनाज मोल लायेंगे, जिससे घुना अनाज न आ जाय। गंगा जी और हिन्दू-तीर्थों में श्रद्धा नहीं रखते। आर्यसमाज के व्याख्यानों में 'खण्डन' सुनने के लिए अवश्य जाते हैं। हाँ, सनातनधर्म के कट्टर विरोधी हैं।

इनके धर्ममंदिर को 'चौकी' कहते हैं। सब साध स्त्री-पुरुष इसमें एक बार नित्य जाते हैं। वहीं बैठकर भजन किया करते हैं। परस्त्रीगमन और हिंसा ये दोनों अपराध इनके यहाँ अमार्जनीय माने जाते हैं। मादक द्रव्य कभी नहीं छूते। हाँ, इलायची और सुपारी अधिक खाते हैं। तम्बाकू पीनेवाले को अपने पात्र नहीं छूने देते। पुनर्जन्म मानते हैं; कर्मानुसार जन्म मानते हैं; मुक्ति को अपरिमित काल के लिए मानते हैं। मुक्ति के समय ईश्वर में जीव की लय न मानकर अन्ततः सामीप्य मानते हैं। अतः इनका मत विशिष्टाद्वैत के समीप है। सूफ़ी-संप्रदाय की कल्पित मोक्ष-भूमि 'अमरपुरी' इनकी मोक्षभूमि है। अन्य कबीरपंथियों की भाँति "अजपाजाप" का इनके यहाँ बड़ा आडम्बर है। सामान्यतः इनका धर्म कबीरमत की शाखा-विशेष है, जिसका रूप खण्डनात्मक अधिक और विधानात्मक कम है। ये लोग शिखा तो रखते हैं, पर सूत्र नहीं। इनका 'सुरत-योग' वही है जो पलटू, दादू आदि का है। चौकियों में कोई मूर्ति नहीं होती। इन्हें आर्यसमाज या ब्रह्म-समाज के मन्दिरों-सा समझिए। सब सात चौकियाँ हैं, इनमें रोहतकवाली चौकी का वही स्थान है, जो हिन्दुओं के काशी विश्वनाथ का। वर्ष में एक बार उस चौकी में सातों चौकियों के प्रतिनिधि एकत्र होते हैं। प्रायश्चित्त की समस्या यहीं निपटती है। दण्ड-स्वरूप दंडित व्यक्ति को भंडारा करना होता है। यह भंडारा कि...

चौकी में होगा, इसका निर्णय भी वहीं होता है। जब अपराधी सभा के समक्ष अपना अपराध स्वीकार कर लेता है तब मुखिया खड़े होकर भंडारे की 'हेला' (घोषणा) करता है। परिषद् की बैठक समाप्त होने पर प्रति चौकी को दो-दो व्यक्ति भंडारा-स्थान की सूचना और परिषद् का निर्णय सुनाने को भेजे जाते हैं। ये लोग सीधे चौकी में न जाकर नगर के बाहर निर्दिष्ट स्थान पर ठहर जाते हैं। इनके आगमन की सूचना लौटे हुए प्रतिनिधियों-द्वारा पूर्व से ही मिल जाती है। निश्चित समय पर नागरिक साध उन दोनों का स्वागत करने को एकत्र होकर जाते हैं। स्वागत की विधि विलक्षण है। सामने पहुँचकर सब उन्हें दण्डवत् करते और उनकी चरणरज को अपने अपने दुपट्टों से झाड़ते हैं। दण्डवत् के उत्तर में दोनों व्यक्ति आकाश की ओर हाथ उठाते हुए 'पहुँचे' कहते हैं। नर-शरीर को साध इसी अवसर पर सिर झुकाते हैं। उन दोनों को फिर अपनी चौकी में ले जाकर ठहराते हैं, जहाँ उनका सम्मान-सत्कार होता है। सन्ध्या-समय सब एकत्र होकर श्रद्धापूर्वक भण्डारे की 'हेला' श्रवण करते हैं। भंडारे में बिरादरी भर को लड्डू-कचौड़ी कम-से-कम चार दिन खिलाई जाती है। नियम तो इस अवसर पर नगर भर को खिलाने का है। पर सवर्ण हिन्दू और मुसलमान भला इसमें क्यों जाने लगे?

फ़र्रुख़ाबाद की चौकी तीन-चार लाख रुपये की लागत का एक विशाल भवन है। बीच में मन्दिराकार गुंबद बना हुआ है। एक कुँआ इसके बीचोंबीच बना है, जो तख्ते से पाट दिया गया है। इसमें ऊँची बैठक नाम की एक बड़ी भव्य इमारत है। चौकी के दो प्रवेश-द्वार हैं। एक पश्चिम और दूसरा दक्षिण की ओर। बीच में बड़े बड़े सहन और कमरे हैं। कमरों में तख्त और गद्दे बिछे रहते हैं। इन एकान्त कमरों में बैठकर साधजन भजन किया करते हैं या धार्मिक चर्चा करते हैं। भण्डारा व अन्य उत्सव ऊँची बैठक में होते हैं। सामाजिक विवादों का निर्णय भी चौकी में ही होता है। अन्य धर्मावलंबियों के जाने का निषेध है, हाँ, साहब लोगों को रोक-टोक नहीं। उनके लिए तो स्वर्ग के द्वार भी खोल दिये जाते हैं। चौकी का वायुमंडल शान्त, धार्मिक व प्रभावोत्पादक रहता है। स्त्री-पुरुषों का आवागमन रात-दिन के हर भाग में होता ही रहता है, अतः यहाँ हर समय बड़ी चहल-पहल रहती है। जिस प्रकार आर्यमन्दिरों पर वेदों की ऋचाओं और मस्जिदों पर आयतों का प्रदर्शन होता है, उसी प्रकार साधों की चौकी में भी स्थान-स्थान पर "ॐ सही सत्तनाम,-सत्त अवगत्त, गोरख, उदै-कबीर, सत्त अवगत्त गरीबनेवाज, सत्त अवगत्त बाबा जी" आदि वाक्य पत्थरों पर खुदे हुए हैं। चौकी में एक खुला कुआँ तथा कई गुम्बददार बैठकें भी हैं। सन् १६२६ के बड़े दौरे में महात्मा गांधी जी जब फ़र्रुख़ाबाद आये थे तब वे साधों की चौकी में भी गये थे। वहाँ उन्हें पाँच सौ रुपये की थैली भेंट में दी गई थी। महात्मा जी को यह जानकर बड़ा खेद हुआ कि यहाँ के सवर्ण हिन्दू साधों के हाथ का जल भी नहीं लेते। आपने अपने भाषण में सवर्णों के इस व्यवहार की बड़ी निन्दा की और कहा—"मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि साध लोग बड़े सफ़ाई-पसन्द हैं। हमारे स्वराज्य का बड़ा भाग तो आप लोगों ने पहले से ही पा रक्खा है। साध-जाति का यह प्रशंसनीय गुण है कि वह योरप को पक्का माल भेजती है और उसके ज़रिए से रुपया विलायत से भारत को लाती है। ये लोग किसी की नौकरी भी नहीं करते—व्यवसाय ही करते हैं। यह भी बड़े गौरव की बात है। आपके इन दोनों गुणों में हमारे स्वराज्य का अंतर्भाव हो जाता है। इस आस्तिक, अत्यन्त स्वच्छ और स्वावलम्बी जाति के प्रति सवर्णों का यह असहयोग बड़े शर्म की बात है।"

महात्मा जी की वाणिक भला चूकनेवाली थी! उसने सवर्णों और साध-जाति दोनों के हृदयों को समान उत्तेजना दी। पहले-पहल कांग्रेस ने इनके हाथ खाना-पीना आरंभ किया। सधवाड़े में ही साधों की एक दूकान मिठाई की है। उसकी मिठाइयों की उत्कृष्टता सवर्णों की प्रशंसा पा रही है। हाई स्कूलों के लड़के तो साध जी के रसगुल्ले ही 'कम्पीटीशन-प्राइज़' में चाहते हैं। सन् १६३२ में अम्नेस्टी में छूटे हुए कांग्रेस-सैनिकों को साध फूलचन्द जी ने जो कांग्रेस के पक्के अनुयायी हैं, 'घरे-बाहिरे' खद्दर का ही प्रयोग करते हैं और जेल भी हो आये हैं, प्रतिभोज दिया था। साध-जाति के इतिहास में यह एक नया युग था। मेहमान थे साध-लोग और उनकी स्त्रियाँ, और मेहमान थे ज़िले भर के 'कांग्रेस-सफ़री'—सवर्ण-अवर्ण सब! अद्भुत दृश्य—अपूर्व सम्मिलन था! साध-स्त्रियों ने खद्दर की साड़ियाँ पहनकर चूल्हे में पूड़ी बेलने और राष्ट्रीय सैनिकों को अपने हाथ से परोसकर खिलाने का सुवर्ण अवसर जीवन में प्रथम बार पाया था। केवल एक हज़ार व्यक्तियों के भोजन का प्रबन्ध किया गया था, पर लोगों को आश्चर्य हुआ जब दो हज़ार से ऊपर व्यक्ति खा चुके और भंडार फिर भी खाली न हुआ! बात यह थी कि भोजकों की संख्या बढ़ते और सामान कम होते देखकर देवियाँ अपने-अपने घरों से मैदा-घी ला-लाकर बढ़ा देती थीं। 'भगवती शक्ति' उस दिन 'अन्नपूर्णा' के रूप में प्रकट हुई थी। साधों पर भी इस सम्मिलन का प्रभाव पड़ा।



[एक परदा ।]

इससे पहले ये लोग छापने के लिए विलायती कपड़ों का ही उपयोग करते थे। तब से खद्दर को भी अपनाने लगे। खद्दर पर इनकी कला का ऐसा निखार आया कि अमरीका और फ़्रांस की लेडियों ने समुद्र-स्नान के पीछे साधों के छपे खद्दर के वस्त्र पहनने का फ़ैशन ही चला दिया। कांग्रेस तो विलायतवालों को खद्दर देने में सफल न हो सकी, पर साध-लोगों ने उनके 'उत्तरार्द्ध (Better half) को खद्दर पहनाकर ही छोड़ा। सवर्णों और साध-जाति के बीच की यह खान-पान की खाई भी अब धीरे-धीरे भर रही है, यह हर्ष की बात है। इनकी धर्म-पुस्तक का नाम 'निर्वानवानी' है। यह छपाई नहीं जाती, हस्त-

लिखित ही रहती है। अन्य धर्मावलम्बियों को यह देखने को भी नहीं मिल सकती। इसके ये लोग तीन कारण बतलाते हैं। एक तो यह कि पुस्तक अत्यन्त कठिन है, समझ में न आयेगी। दूसरा यह कि पुस्तक में खंडन अधिक है, अतः उसे देखकर किसी का दिल दुखेगा और तीसरा यह कि पुस्तक पढ़कर कोई कुतर्क या शंका करेगा, इससे उसका अपमान होगा। पुस्तक छपाते इसलिए नहीं हैं कि छप जाने पर सतगुरु की बानी अधिकारी-अनधिकारी सबके पास घर-घर मारी-मारी फिरेगी। छपी पुस्तक कभी पैरों के पास भी पड़ सकती है, इस प्रकार उसकी महत्ता कम हो जायगी। ये धर्म को श्रद्धा का आवरण देना चाहते हैं, उसे तर्क की कसौटी पर नहीं कसना चाहते।

आप कितनी ही देर इनसे बातें करें, पर अपनी धर्म-पुस्तक का एक भी वाक्य आपको न सुनायेंगे। इस पर साधलोगों की उतनी ही आस्था है, जितनी किसी भी सच्चे मुसलमान की क़ुरान पर हो सकती है। इसमें आये हुए पदों या दोहों को 'हुरूफ़' कहते हैं। इनकी दृष्टि में निर्वान-बानी वेद-पुराण सभी से उच्च कोटि की है। पहले मेरी धारणा थी कि यह पुस्तक सतगुरु ऊदादास जी के वचन-रत्नों की मंजूषा होगी, पर अनुशीलन से निराश होना पड़ा। पुस्तक सधुक्कड़ी हिन्दी में है। यत्र-तत्र मारवाड़ी और जोधपुरी के शब्द भी आ गये हैं, जिनके कारण कहीं-कहीं भाव अस्पष्ट भी हो गया है। समस्त पुस्तक निर्गुण-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से भरी पड़ी है। ऊदादास जी का इसमें एक भी वचन नहीं है; नामदेव, तेजराम, देवीदास, गोमा आदि साधों के वचनों का इसे संग्रहमात्र समझिए। ये सब ऊदादास जी को सतगुरु मानकर साधना करते पाये जाते हैं, स्वयं गुरु होने का दावा नहीं करते। हर्ष की बात है कि केवल पुरुष ही इस मार्ग के ठेकेदार नहीं हैं, गोमा जैसी स्त्रियाँ भी सतगुरु की कृपा से अनुभूति-लाभ होने पर कहती हैं—

"आज मेरे प्राणपति आये—
जुग परलय की कौन बतावे महा परलय से बचाये।"

यह सम्प्रदाय ऊदादास जी को सतगुरु और कबीर साहब को उनका पूर्व अवतार मानता है। इस पोथी की 'सतगुरु' की परिभाषा विलक्षण है। 'सतगुरु' वही हो सकता है जो रजोवीर्य के संयोग से उत्पन्न न हुआ हो। ऊदादास जी स्वयं 'मालिक' के अवतार थे—यथा 'बानी' में लिखा है—

"काशी में दास कबीर कहाये, यहाँ ऊदा जी के दास"।

रामकृष्ण को ये लोग पूर्ण-साध तो मानते हैं, पर 'मालिक' का अवतार नहीं मानते, कारण ये लोग गर्भ से होकर आये थे। कबीरपंथियों की यह बात सर्वविश्रुत है कि कबीर साहब बालक रूप में आकाश से उतरकर लहरतारा तालाब के एक सुन्दर कमल पर आ विराजे थे। नीरू और उनकी धर्मपत्नी ने तो उनका लालन-पालन-मात्र किया था। इस पुस्तक में ऊदादास जी केवल 'मालिक' के अवतार रूप में ही उल्लिखित नहीं हैं, वे कहीं-कहीं पैग़म्बर के रूप में भी दिखाई देते हैं। इस प्रकार पाठक कुछ चक्कर में अवश्य पड़ जाता है। बात वस्तुतः यह है कि इस धर्म पर 'हिन्दू' और 'इस्लाम' दोनों धर्मों की छाया समान रूप से पड़ी है। फलतः इस पोथी में इन दोनों धर्मों के प्रकीर्ण सिद्धान्तों के समन्वय का असफल प्रयत्न लक्षित होता है। पैग़म्बरवाद सेमिटिक धर्म की विशेषता है और अवतारवाद आर्य-धर्म की। यहाँ ऊदादास जी दोनों सूत्रों में अनुस्यूत रहने के कारण कुछ उलझ-से गये हैं। जिस प्रकार मुसलमान नबी का दामन पकड़कर ख़ुदा से निजात की उम्मीद रखता है. उसी प्रकार साध भी 'सतगुरु ऊदादास जी' का दामन पकड़कर 'अमरपुरी' की आशा रखते हैं। सेमिटिक धर्मों का प्रभाव इस पुस्तक के कई हुरूफ़ों में है। देखिए—

"आदि हुकुम तें किया दास।
तुम बिन और न दूजा पास।"

यह इस हदीस से मिलता है—

"अव्वलो मा खलक़ अल्लाहो नूरी
लौ लाक़ लमा खलक़त-उल्-अफ़लाक़।"

दोनों सन्दर्भों में पैग़म्बरवाद की समान व्याख्या है। यही भाव अन्यत्र भी है—

"वह तौ जोगी आप अकेला
उनके आगे गुर औ चेला।"

"होता सतगुर आप अकेला
सतगुर दास कबीर जी चेला।"

निम्न भाग "ला इला इलिल्लिलाह मुहम्मद रसूल अल्लाह" का अनुवाद ही तो है।

'पैग़म्बर के परवाने के बिना ईश्वर के निकट प्रवेश नहीं हो सकता'—मुसलमानों का यह विश्वास है।

"कहता था ख़ुदा दिल में न घबराए मुहम्मद
बख़्शूँगा उसी को जिसे फ़रमाए मुहम्मद।"

यह एक आयत का उर्दू अनुवाद है। यही भाव हुरूफ़ में देखिए—

"एक महल में दोनों बैठा गुरु चेला कहलाया,
[illegible] कोई छीदा बन्दा जाहिर दरसन पाया।"
"ऊदा जी का दास गोरख जी का सिष है जिन जुग-
जुग पार उतारा।
सतगुरु दरस तेजराम पाये म्हारा सबही कारज सारा।"

क़ुरान में लिखा है कि "खुदा ने 'कुन' कह कर सृष्टि को पैदा किया और मुहम्मद साहब को उस सृष्टि पर वज़ीर बनाया"। यही बात यहाँ भी है—

"हुआ" होते हुकमी दास कबीर।
पैदायस ऊपर किया वज़ीर।
उस घर का उजीर कबीर।
अवगत का सिष दास कबीर॥"

अब इधर देखिए। जिस प्रकार वेदान्त के प्रतिबिम्ब-वाद के अनुसार जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है, इसी प्रकार एक हुरूफ़ में सतगुरु को 'सत्त अवगत्त' का छाया-रूप कहा गया है—

"वह तौ जोगी सत्त स्वरूपी।
उसका चेला सतगुरु छायारूपी।"

जिस प्रकार ऋग्वेद के नासदीय-सूक्त में लिखा है कि ब्रह्म ने "इच्छा" की, चट सूर्य-प्रकाश के समान उसकी किरणें ऊपर-नीचे चारों ओर फैल गईं,* उसी प्रकार इस पुस्तक में भी इच्छा-सृष्टि का उल्लेख है—

"वह तौ जोगी अगम अगाध,
जिन इच्छा सेती किया साध।"
"इच्छा सेती किया कबीर।"
"इच्छा का नाम दास कबीर।"

बायबिल में लिखा है कि "यहोवा परमेश्वर ने आदम को भूमि की मिट्टी से रचकर उसके नथनों में जीवन का श्वास फूंक दिया"। अथवा ऐतरेय उपनिषद् के अनुसार "उसने जल से पुरुष को निकालकर पिण्ड से युक्त किया।" वही सिद्धान्त इस पोथी में इस प्रकार कहा है—

'पिण्डो धाप गरमाई दीनी
सतगुरु ऊपर छाया कीनी'

अनादित्व का सिद्धान्त देखिए—

"आपु अमर सतगुर अमर अमर जो सत का नाम।
अमर हंस जुग-जुग रहे जो पहुँचे निज धाम।"

चाँद और सूर्य ईश्वर के अस्तित्व के प्रमाण हैं—

"यह रचना क्यों देखौ नाहीं
चाँद सुरज चलें गगन के माँहीं।

सतगुरु-मिलने का उपाय सुनिए—

"मिलना होय जो मन को मूँदै
छाँड़ै झूठ साँच कौ ढूँढ़ै।
साँच गहे बिन कछू न पावै
जो पावै—सत सै चित लावै।"

पूर्ण साध बनने के लिए बत्तीस साधनाओं की अपेक्षा है। इस पोथी में लिखा है कि राम ने उनमें से केवल तीस की साधना कर पाई थी। सत्त अवगत्त ने उनके परिश्रम पर प्रसन्न होकर अपनी कृपा-द्वारा शेष दो गुणों को छूट दे दी। इस प्रकार राम पूरे साध मान लिये गये। जब राम-लक्ष्मण को पकड़कर अहिरावण पातालपुरी ले गया तब राम ने सहायतार्थ सत्त अवगत्त का स्मरण किया। सत्त अवगत्त ने तुरंत हनूमान का रूप धारण किया और पाताल जाकर राम-लक्ष्मण को छुड़ाया। हिन्दू-धर्म के अन्य महापुरुषों के नाम भी इस पोथी में आये हैं—

"राम किसन को सतगुरु दरसा
बिन सत का नाम सही कर परसा।"

*तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी ३ दुपरि स्विदासी ३त्।

—ऋग्वेद

"सत्य की टेक प्रहलाद झेले रहा
अगिनि में ऊबरी देह काची।"

सृष्टि-विकास की कथा पुराणों-सी रोचक है। लिखा है कि मालिक ने प्रथम 'शब्द' से ब्रह्मा, विष्णु, महादेव और शक्ति को उत्पन्न किया। शेष सृष्टि को बिन्दु (वीर्य) से बनाया। अतः पूर्व-सृष्टि नाद-सृष्टि कहलाई और पर-सृष्टि बिन्दु-सृष्टि।

"बिकसी पिंडी निकसी माँड
तीन पुरुष औ चौथी राँड।"

कुछ दिन बाद ब्रह्मा ने बृहद् यज्ञ किया, जिनमें समस्त सृष्टि ने योग दिया, केवल महादेव अपने आठ अनुयायियों समेत अलग रहे। यही लोग साध कहलाये और यहीं से साधों का विस्तार हुआ—

"सत की भगति महादेव पाई
जग्य जाय न भीखा खाई।"

हिन्दूत्व और इस्लामियत की इस पुस्तक में खूब खबर ली गई है—

"तुरक ख़ुदाई मुहमद धावै
तसबी* फेरि अल्लाह नहिं पावै
अपनी मारी कहै हलाला
हुकुम की मारी कहै मुरदारा।"

× × × ×

"जसरथ के घर बेटा जाया
वाको जस कछु दुनिया गाया।
उनको परा भगति का पाया
दुनिया ने करता ठहराया।
रामचंद मन रही कचाई
वह तकसीर कहूँ नहिं जाई।

"रंचक करी कमाई खोटी
खाये बनफल जुरी न रोटी
लछमन राम अहूँ जब करी
तब वा सीता रावन हरी।"

इस पुस्तक में वर्णित योग 'सुरत-योग' है, जो 'नाद-योग' का अंग है। यह हिन्दू-ग्रन्थों में भी प्रकीर्णतया उपलब्ध होता है। यहाँ वेदान्तकेसरी के अनवरत गर्जन के कारण शब्द-ब्रह्म की छलना सन्त-संप्रदाय की अटपटी वाणी और गोरख-पंथियों के दिमाग़ में जा छिपी। वेदान्त के आगे यहाँ इसकी दाल न गली, क्योंकि वेदान्त ने 'शब्दनिर्विशेषात्' का फ़तवा देकर शब्दवादियों के मुँह पर सात नंबर का ताला लगा रक्खा था। यों तो कबीर साहब का 'शब्द' बायबिल में भी है। उसमें तो गाड को भी 'शब्द' का प्रतिरूप लिखा है। सुचनदास ने अपनी संतबानी में भी लिखा है—

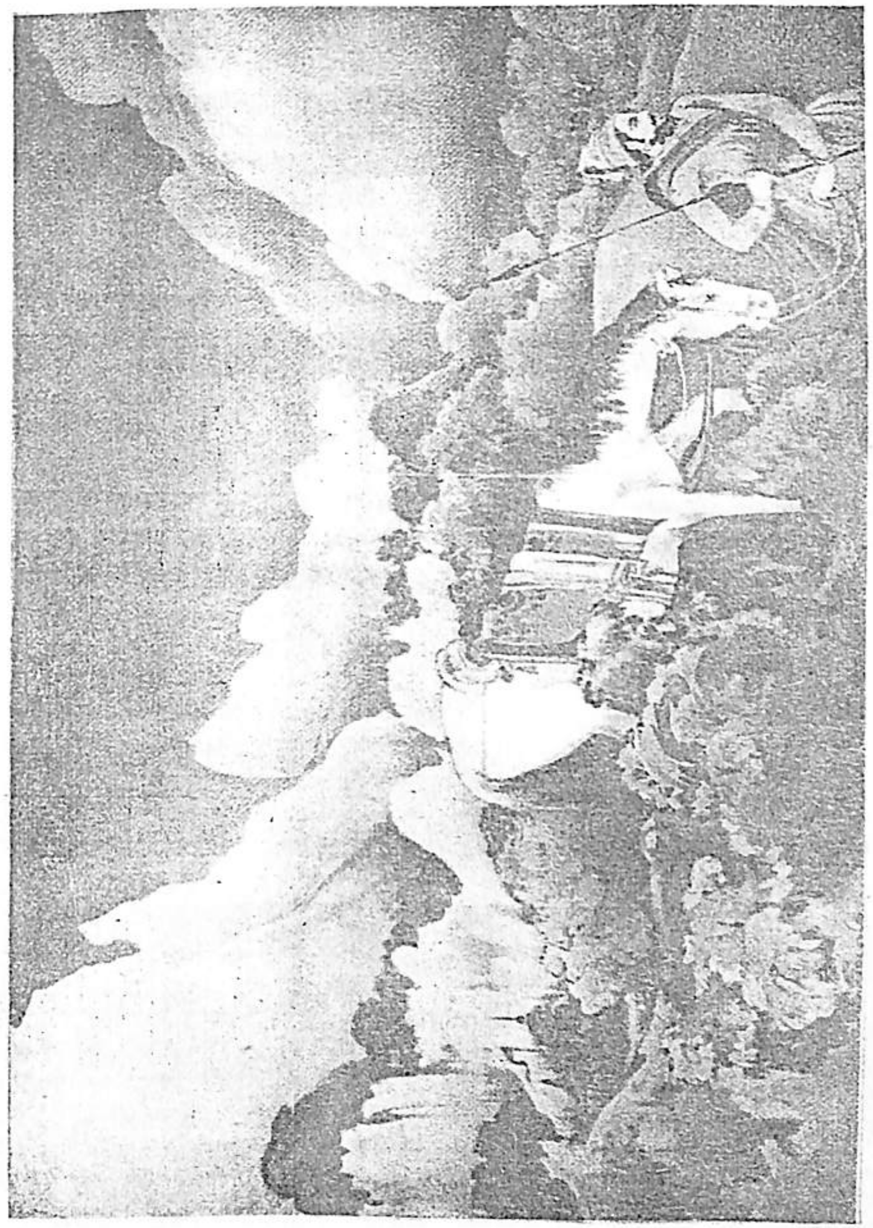
"संत चरन गुरु दया ते, कछु हिय सबद समाय,
ना मैं जानूँ यह कछु अपूरब शब्द घट माँय।"

'सप्तशती सर्वस्व' में इसका वर्णन इस प्रकार आया है—

"अर्द्धमात्रा स्थिता नित्या यानुचार्या विशेषतः।
अकारश्च ततो कारो मकारश्चाक्षरत्रयम्॥
एता एव त्रयो मात्रा सत्वराजसतामसाः।
निर्गुणा योगि गम्यान्या चार्धमात्रा च संस्थिताः।
पिपीलिका गतिस्पर्शाः प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते।"

युगों का क्रम इस पुस्तक में हिन्दू-ग्रन्थों से कुछ भिन्न है। अवतार-क्रम भी इनका अपना है। शिव और शक्ति से सतयुग में गोविन्द और ईश्वर—ये दो बालक उत्पन्न हुए। द्वापर में यही दोनों राम-लक्ष्मण हुए। त्रेता में बलभद्र व कृष्ण और कलियुग में जोगीदास व बीरभान कहाये। द्वापर में 'द्व' और त्रेता में 'त्र' देखकर शायद इन्हें क्रमशः द्वितीय व तृतीय युग मान लिया गया है।

* साधों की माला भी चार-चार गज़ लम्बी होती है।
—लेखक



शिवाजी

ज़ोर से धक्का मारो

श्रीयुत सन्तराम बी० ए०

...व्यवहार करते हैं। अधिकांश यात्री उसे चुपचाप सह लेते हैं, क्योंकि वे सोचते हैं कि शायद इस मामले में उनकी सुनवाई न हो। श्रीयुत संतराम जी ने व्यक्तिगत अनुभव से इस लेख में सिद्ध किया है कि सरकार ऐसी शिकायतें अवश्य सुनती है बशर्ते कि कोई उसका दरवाज़ा खटखटाये।

हम भारतीयों का कुछ ऐसा स्वभाव हो गया है कि जब कोई व्यक्ति हमें सताता है तब हम उसके प्रतिकार का कुछ यत्न न करके केवल कुड़कुड़ाकर रह जाते हैं। गाँव का पटवारी हमें तंग करता है, कचहरी का मुहर्रिर हमसे पैसे ऐंठता है, कोतवाल हमें अनुचित रूप से धमकाता है, रेल का टिकट चेक करनेवाला हमारा अपमान करता है, तहसीलदार घूँस लेता है, हम चुपचाप उसे सहन करते हैं या केवल कुड़कुड़ाकर शान्त हो जाते हैं। यह मनोवृत्ति बड़ी हानिकारक है। इसका शायद एक कारण है। हम समझते हैं, हम इनके विरुद्ध शिकायत करेंगे तो उसका कुछ परिणाम न होगा, वरन उलटा हम पर और भी अधिक अत्याचार होने लगेगा। परन्तु हम लोगों की यह धारणा निराधार है। यह ठीक है कि राजनैतिक आन्दोलन को दबाये रखने के लिए सरकार पुलिस-कर्मचारियों के विरुद्ध की गई शिकायत पर उतनी जल्दी ध्यान नहीं देती, परन्तु उसके दरवाज़े को बार-बार खटखटाने से, उस पर ज़ोर से धक्का मारने से, वह प्रजा की शिकायत को ज़रूर सुनती है। हो सकता है कि वह पुलिस का दबदबा बनाये रखने के लिए किसी कर्मचारी को प्रत्यक्ष रूप में दण्ड न दे, परन्तु उसका अपराध सिद्ध हो जाने पर वह उसके विरुद्ध भीतर ही भीतर डिपार्टमेण्टल कार्रवाई ज़रूर करती है—उसे अपने महकमे की ओर से दण्ड ज़रूर देती है। किन्तु मुश्किल यह है कि हम लोग अन्याय सहने के ऐ... अभ्यस्त-स्वभाव हो गये हैं कि हम उसके वि... आवाज़ तक उठाने को तैयार नहीं होते। ... भारतीय जनता की यह दूषित मनोवृत्ति ठीक ... की जायगी तो कौंसिलें और असेम्बली के बन ... पर भी हम उत्तरदायित्वपूर्ण शासन के योग्य ... नहीं हो सकेंगे।

इस समय अवस्था क्या है? कौंसिलों ... असेम्बली के ख़र्च को पूरा करने के लिए जनता ... इतना भारी टैक्स लादा गया है कि गाँव में ... लोगों को दो जून पेट भरकर अन्न भी नसीब ... होता उन ग़रीबों पर भी दस दस बारह ... रुपये हैसियत-टैक्स लगा हुआ है। प्रोफ़ेशनल टै... या व्यवसाय-कर के नाम पर न केवल लोगों ... रक्त ही चूसा जाता है, वरन उनका सरे बा... अपमान भी किया जाता है। जिस देश की प्र... में आत्म-सम्मान ही नहीं उसके लिए स्वराज्य ... उत्तरदायित्वपूर्ण शासन बंदर के हाथ में नारियल ... समान है। मैं तो देखता हूँ, जब से ये कौंसिलें ... असेम्बली बनी हैं तब से जनता के कष्टों में ... तो कुछ नहीं हुई, हाँ, टैक्सों के भार से कचूमर ... निकल रहा है। इसलिए ज़रूरत है कि जनता ... अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने का भाव ... किया जाय; उसे बताया जाय कि पुलिस हमा... सेवक है, हमारा शासक नहीं—अपने टैक्स के ... में हम उसे वेतन देते हैं। उसे समझाया जाय ... हमारा अपमान करने का अधिकार किसी ... कर्मचारी को नहीं। सारांश यह कि जनता में आत्म-... सम्मान की रक्षा का भाव जाग्रत किया जाय। ज...

तक इस प्रकार जनता को स्वराज्य के लिए तैयार न किया जायगा, अँगरेज़ों की ओर से मिलनेवाले राजनैतिक अधिकार सुख के बजाय दुःख का ही कारण सिद्ध होंगे।

स्वराज्य मन की एक विशेष अवस्था है। जो व्यक्ति उस अवस्था को पहुँच गया है वह पत्थर की दीवारों और लोहे की सलाखों में बंद कर दिया जाने पर भी ग़ुलाम नहीं, वह सदा स्वाधीन है। उदाहरणार्थ, जर्मनी को ले लीजिए। जर्मन-जाति एक स्वराज्य-प्राप्त जाति है। वह एक ऐसी अवस्था को पहुँची हुई है जिसमें कोई भी बाह्य शक्ति उसे दास नहीं रख सकती। जर्मनी बेशक लड़ाई में हार गया, परन्तु संसार की सारी शक्तियाँ मिलकर भी उसे दास नहीं बना सकीं—उसकी स्वतंत्रता का अपहरण नहीं कर सकीं। आज भी यदि कोई महाप्रबल राष्ट्र जर्मन-जाति को परास्त करके उसे पराधीन बनाने की कुचेष्टा करे तो इसमें उसे कभी सफलता नहीं हो सकती। जब तक एक भी जर्मन-बच्चा जीता है, वह जर्मनी पर किसी दूसरे का अधिकार नहीं होने देगा। सारी जर्मन-जाति को मार डालने के बाद ही कोई विदेशी जर्मनी पर राज्य कर सकता है। कारण यह कि वह सारी की सारी जाति ऐसी अवस्था को प्राप्त हो चुकी है जिसमें उसे ग़ुलाम रखना संभव ही नहीं। मैं तो समझता हूँ, हमारा भारत राजनैतिक रूप से ग़ुलाम होने के पहले ही मानसिक रूप से ग़ुलाम बन चुका था। भौतिक स्वराज्य प्राप्त करने के लिए पहले मानसिक स्वराज्य प्राप्त करने की जरूरत है, और मानसिक स्वराज्य की पहली सीढ़ी आत्म-सम्मान है।

मुसाफ़िर रेल के डिब्बों में भेड़-बकरी की तरह भर दिये जाते हैं। जहाँ दस मनुष्यों का स्थान रहता है, वहाँ बीस ठूँस दिये जाते हैं। मुसाफ़िर आपस में लड़ते-झगड़ते हैं और गाली-गलौज करते हैं; "अच्छा गुज़र ही करनी है, दो घड़ी तकलीफ़ से या आराम से कट ही जावगा। आपस में क्यों लड़ते हो"? बस, इतना कहकर ही सब शान्त हो जाते हैं। रेलवे के इस अनुचित व्यवहार के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं करता। समझे हुए हैं कि शिकायत करने से कुछ लाभ नहीं होगा।

कुछ दिन हुए, मेरे गाँव में एक सिपाही वारंट लेकर आया। मैं उस समय वहाँ नहीं था। वह वारंट 'बसी ग़ुलाम हुसैन' नामक एक दूसरे गाँव के किसी कुन्दनलाल के पुत्र दुर्गादास के नाम का था। मेरे गाँव का नाम 'पुरानी बसी' है। सिपाही से लोगों ने कहा कि यह वारंट तो 'बसी ग़ुलाम हुसैन' का है, तुम 'पुरानी बसी' में क्यों ले आये हो? वह बोला, सुना है, दुर्गादास इस गाँव में आकर रहने लगा है। लोगों ने कहा, इस गाँव में तो इस नाम का कोई आदमी ही नहीं। गाँव में एक शरारती आदमी रहता है। वह पुलिस की नौकरी कर चुका है। उसने सिपाही के कान में कह दिया कि यहाँ द्वारिकादास नाम का एक व्यक्ति है। उसके पास कुछ पैसा भी है। वह पहाड़ को जाने के लिए आज तैयार बैठा है। चाहो तो उससे तुम कुछ ऐंठ सकते हो। यह सूचना पाकर वह सिपाही लोगों से बोला—यहाँ एक द्वारिकादास रहता है। वह कहाँ है? द्वारिकादास उस समय अपना असबाब आदि बाँधकर मण्डीराज्य में अपनी दूकान को जा रहा था। इतने में सिपाही ने उसे जा पकड़ा कि चलो, तुम्हारे नाम का वारंट है, तुमने अमृतसर के सेठ श्यामजीमल के रुपये का ग़बन किया है। वह बोला—मैंने तो सेठ श्यामजीमल का नाम ही आज सुना है, ग़बन की बात तो दूर रही! दूसरे, वारंट में 'कुन्दनलाल का पुत्र दुर्गादास' लिखा है, मेरा नाम द्वारिकादास है और मेरे बाप का नाम कूड़ाराम है। यह वारंट मेरे नाम का कैसे हो सकता है? इस पर सिपाही बोला—लिखनेवाले मुंशी से लिखने में ग़लती हो गई है। ऐसी ग़लतियाँ अक्सर हो जाया करती हैं। इस पर द्वारिकादास बेचारा तंग हो गया। वह चलने को तैयार बैठा था, असबाब घोड़ों पर लदा था, भोजन करके वह प्रस्थान करने को था कि बीच में यह क़ज़िया आ गया। गाँववालों ने सिपाही से बहुतेरा कहा-सुना, मिन्नत-समाजत की, पर वह एक न माना। फिर, सुना है, द्वारिकादास ने उसे पाँच रुपये दिये तब बेचारे का छुटकारा हुआ। स्वराज्य की अवस्था को पहुँचे हुए किसी देश में ऐसी घटना कदापि सम्भव नहीं।

हाँ, मैं कह रहा था कि कोई अत्याचार और अन्याय होने पर कुड़मुड़ करने के बजाय ख़ूब ज़ोर से धक्का मारना चाहिए—उसके प्रतीकार के लिए पूरा प्रयत्न करना चाहिए। यह समझ लेना कि सरकार प्रजा की उचित शिकायत पर भी ध्यान नहीं देती, भारी भूल है। यदि ऐसी ही बात हो तो फिर कौंसिलों और असेम्बली का कुछ अर्थ ही नहीं। इस सम्बन्ध में मैं कुछ आप-बीती घटनायें आगे देता हूँ।

सन् १८ या १९ की बात है, मैं पट्टी, ज़िला लाहौर, से होशियारपुर आया। मेरे साथ मेरा परिवार भी था। स्टेशन से बाहर निकलकर मैं एक टाँगेवाले से किराया ठीक करने लगा। टाँगेवाला अधिक माँगता था और मैं कुछ कम देता था। उसने बिना फ़ैसला किये ही मेरा असबाब उठाकर टाँगे में रखना शुरू कर दिया। मैंने उसे रोका और अपना असबाब नीचे उतार लिया। इस पर एक सिपाही आकर मुझे डाँटने लगा। मैंने उससे कहा—तुम मुझे क्यों डाटते हो? मैं उसके टाँगे में नहीं बैठना चाहता। तुम मुझे मजबूर नहीं कर सकते। तुम्हारा काम मुसाफ़िरों की तकलीफ़ों को दूर करना और शान्ति रखना है, न कि मुसाफ़िर को तंग करना। वह बड़ी उजड्डता से बोला—तुम्हें उसी टाँगे में बैठना पड़ेगा और जितने पैसे वह माँगता है उतने ही देने पड़ेंगे। मैंने कहा—मैं ऐसा करने को तैयार नहीं। इस पर उसने बकवाद करना शुरू कर दिया और मुझे पकड़कर ढकेलने लगा। मैंने उसकी इस कुचेष्टा का प्रतिवाद करते हुए कहा अच्छा तुम मेरे साथ स्टेशन-मास्टर के पास चल पहले तो उसने मेरे साथ चलने से इनकार दिया, परन्तु मेरे ज़ोर देने पर फिर स्टेशन-मास्टर के पास चला गया। स्टेशन-मास्टर समझा-बुझाकर मामला रफ़ा-दफ़ा कर दिय मैं अभी स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर ही था कि सज्जन ने आकर मुझसे कहा—यहाँ की रेलवे-पुलि मुसाफ़िरों को बहुत तंग करती है। जिस सिपाही आपके साथ दुर्व्यवहार किया है वह विशेष से बहुत बुरा है। इसको ठीक करने के लिए स्टेश मास्टर के पास नहीं, वरन पुलिस के उच्च अफ़सर पास शिकायत करनी चाहिए। यहाँ की रेलवे-पुलि का बड़ा अफ़सर फ़ीरोज़पुर में रहता है। आप व शिकायत कीजिए और ज़रूर कीजिए। इससे दूस को भी आराम हो जायगा।

घर पहुँच कर मैंने पहला काम यही किया। कु दिनों के बाद पुलिस का एक सिपाही मुझे बुल आया कि आपको हमारे इंस्पेक्टर साहब याद क हैं। मैं वहाँ पहुँचा। इंस्पेक्टर साहब का बर्ताव ब सज्जनोचित था। उन्होंने मेरे सामने सारे सिपा बुलाकर पंक्ति में खड़े कर दिये और पूछा कि इन से किसने आपसे दुर्व्यवहार किया था। मैंने उ सिपाही बलीदाद की ओर संकेत कर दिया।

जब उन्होंने सिपाही से उस दुर्व्यवहार का कारण पूछा तब उसने इससे साफ़ इनकार कर दि और बोला कि मैंने तो इनसे कुछ भी नहीं कहा

मैं तो वहाँ से चला आया। मेरी शिकाय पर सिपाही को क्या दण्ड मिला, यह भी मु मालूम नहीं। परन्तु इसके कुछ दिन बाद से व सिपाही होशियारपुर में नहीं रहा और वहाँ रेलवे पुलिस के दुर्व्यवहार की शिकायत भी सुनने नहीं मिली।

इसी प्रकार सन् २६ की बात है। मैं काश्मीर लाहौर आ रहा था। मेरे पास लिहाफ़ और लो

आदि गरम कपड़े थे। लाहौर-स्टेशन पर एक टिकट-चेकर ने मेरा फूला हुआ असबाब देखकर कहा कि तुम्हारा असबाब ज़्यादा है, तुलवाओ। मैंने कहा— यह विस्तरा लिहाफ़ आदि के कारण फूला हुआ है, इसमें है कुछ नहीं, फिर भी यदि आप तुलवाना ही चाहते हैं तो तुलवा लीजिए। मेरे साथ बच्चे हैं, मैं इनको सँभाल लूँ, फिर मैं आपके साथ चलता हूँ। परन्तु सभ्यतापूर्वक बात करने के बजाय वह बक-वाद करने लगा। उधर जब विस्तर को खोलकर देखा गया तब उसमें से कुछ भी न निकला, और तोलने पर भी हमारा असबाब अधिक न हुआ। इस पर वह खिसियानी बिल्ली की तरह वहाँ से भागने लगा। पाठकों को शायद मालूम नहीं। नार्थ वेस्टर्न रेलवे के कर्मचारी बाक़ी सभी रेलवे कम्पनियों के कर्मचारियों की अपेक्षा बहुत अधिक असभ्य और उजड्ड हैं। बी० आई० पी० और ई० आई० आर० में मुझे सफ़र करने का मौक़ा मिला है। उनके कर्मचारियों को मैंने सदा अपेक्षाकृत बहुत अधिक सभ्य, सज्जन और नम्र पाया है। मैंने उस टिकट-चेकर से कहा कि तुम्हारा व्यवहार सज्जनता तो दूर, मनुष्यता से भी गिरा हुआ है। मालूम होता है, तुममें सभ्यता नाम को भी नहीं। यदि किसी मुसाफ़िर का असबाब अधिक भी हो तो तुम उससे किराया चार्ज कर लो, तुम्हें उसका अपमान करने का क्या अधिकार है?

घर पहुँच कर मैंने नार्थ वेस्टर्न रेलवे के एजेंट महाशय के पास टिकट-चेकर के दुर्व्यवहार की शिकायत लिख भेजी। एक सप्ताह के भीतर ही उन्होंने उस पर 'एक्शन' ले लिया।

९ मई सन १६ की बात है। मैंने अपने दो मित्रों के साथ कुछ भूमि खेती के लिए ठीके पर ली। उसकी रजिस्टरी कराने के लिए जब हम कसूर, ज़िला लाहौर, के रजिस्ट्रार के पास गये, तब उनके मुहर्रिर ने हमसे ३) ख़र्च के लिए लिये। परन्तु उनकी जो रसीद हमें दी वह केवल डेढ़ रुपये की थी। मैंने पूछा—यह क्यों? वह टाल-मटोल करने लगा। मेरे मित्रों में आर्य-समाज के एक उपदेशक थे। मैंने उनसे कहा कि आप लोग अपने व्याख्यानों में जनता को ईमानदारी का उपदेश दिया करते हैं; यहाँ यह व्यक्ति हमसे ज़बर्दस्ती घूँस ले रहा है। इसका प्रतिवाद आप क्यों नहीं करते? ऐसे ही समय तो बर्स की परीक्षा के होते हैं। तब हम सबने उस मुहर्रिर को डाँटना शुरू किया। हमारा कोलाहल सुनकर वहाँ बहुत-से लोग इकट्ठे हो गये। जिस अर्ज़ीनवीस श्री अर्जुनदास ने हमारी रजिस्टरी लिखी थी उसने भी मुहर्रिर से आकर कहा कि तुम आदमी-कुआदमी देखकर तो काम किया करो। इन्होंने यदि तुम्हारे विरुद्ध शिकायत कर दी तो फिर क्या करोगे? इस पर उस मुहर्रिर ने बारह आने हमें वापस कर दिये। हमने पूछा, बाक़ी बारह आने? तब वह बोला कि वह तो रजिस्ट्रार के साले के हिस्से के हैं। वे मैं नहीं दे सकता। अपना आधा हिस्सा मैंने आपको दे दिया। यदि बाक़ी बारह आने भी मैं लौटाता हूँ तो वे मुझे अपने पल्ले से रजिस्ट्रार के साले को देने पड़ेंगे। उसकी दयनीय स्थिति को देखकर हम बारह आने वापस पाकर ही सन्तुष्ट हो गये।

इसी प्रकार सन २२ की बात है। मैं होशियारपुर से लाहौर आ रहा था। मेरे पास रेल का तीसरे दर्जे का टिकट था। डिब्बा मुसाफ़िरों से खचाखच भरा था। खिड़की के आगे उनका असबाब पड़ा था। इससे खिड़की को खोलने में ज़रा दिक़्क़त होती थी। इतने में एक टिकट-चेकर आया। उसने दरवाज़ा खोलना चाहा तब लोगों ने अपना अपना असबाब उठाकर इधर-उधर खिसका दिया, ताकि खिड़की खुल जाय। परन्तु उसने आते ही गंदा बकना शुरू कर दिया। उसको गंदी गालियाँ निकालते देखकर मैंने उससे कहा—तुम मनुष्य हो, कुछ पढ़े-लिखे भी हो, ऐसा गंदा बकने पर तुम्हें शर्म आनी चाहिए। तुम कौन हो जो इस प्रकार मुसाफ़िरों को

गाली दे रहे हो? मेरा इतना कहना था कि वह मुझ पर बरस पड़ा और उसने मुझे निहायत गंदी गाली दी। यह देखकर मुझे बड़ा क्रोध हो आया। मैंने उसे गले से पकड़ लिया और दो एक घूँसे मारे। उसने भी मुझ पर कई प्रहार किये। ख़ैर, जब हाथा-पाई ख़त्म हो चुकी तब वह बोला कि अच्छा, तुम लाहौर चलो, वहाँ तुमसे असबाब का किराया चार्ज करूँगा। मैंने कहा—यदि मेरा असबाब ज़्यादा है तो मैं किराया दे दूँगा, परन्तु मैं तुम्हें सबक़ सिखाना चाहता हूँ कि मुसाफ़िरों का अपमान करके तुम भी अछूते नहीं रह सकते। मैं उसके विरुद्ध रेलवे एजेंट के पास शिकायत करना चाहता था। इसलिए उस डिब्बे के बैठे हुए कुछ लोगों से मैंने कहा कि आप कृपा करके मुझे अपना नाम और पता लिखा दीजिए, ताकि मैं आपको गवाह के तौर पर पेश कर सकूँ। परन्तु टिकट-चेकर को सबक़ सिखाने के लिए मेरी प्रशंसा करते हुए भी वे गवाही देने के लिए तैयार न हुए। हमारी जनता की ऐसी उदासीनता और भय ही हमारी दासता के लिए अधिकांश में ज़िम्मेदार है।

इसलिए आवश्यकता है कि जो लोग राजनैतिक अधिकारों के लिए संग्राम कर रहे हैं और चाहते हैं कि यह देश भी स्वराज्य-भोगी हो, जनता में आत्म-सम्मान का भाव पैदा करें और अत्याचार होता देखकर कुड़कुड़ करने के बजाय उसके विरुद्ध ऊपर के अफ़सरों के पास शिकायत करें, और यदि वे लोग इस पर ध्यान न दें तो कौंसिलों और असेम्बली में इस विषय को लायें। इस प्रकार ही भारतीय जनता में अन्याय और अत्याचार को बुरा समझने और आत्म-सम्मान से जीवन व्यतीत करने का भाव जाग्रत होगा, अन्यथा दासवृत्तिवाले लोगों के ऊपर स्वराज्य लादने से उनकी वही दुर्दशा होगी जो पेचिश के रोगी को घी खिलाने से होती है।

आँसू की माला

लेखक, श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

आँसू की मेरी प्रिय माला।
जीवन को दुख में भर मैंने,
इसे गले में डाला।

करुण निराशा में नित धोकर,
कष्टों के जल को इसमें भर,
दो रोकर चुनि अति उज्ज्वल कर,

मैंने इसे गले में डाला,
आँसू की मेरी प्रिय माला॥

रक्त-लसित अपने हाथों से,
जीवन के बिखरे तारों से,
पोकर पापों के काँटों से,
मैंने इसे गले में डाला,
आँसू की मेरी प्रिय माला॥
जीवन के दुखमय उपवन में,
शान्ति-खोज हित बहुत फिरा मैं,
पाकर सुख को भी दुख ही में,
मैंने इसे गले में डाला,
आँसू की मेरी प्रिय माला॥

लेखक,
श्रीयुत सेठ गोविन्ददास



पात्र तथा स्थान—

पात्र-पात्री—

त्रिवेणीशंकर—वकील, यूनियनक्लब का सेक्रेटरी

मिस कृष्णाकुमारी—वकील, यूनियनक्लब की ज्वाइन्ट सेक्रेटरी

यूनियनक्लब का सभापति, आठ पुरुष सदस्य, दो स्त्री-सदस्या, मार्कर आदि।

स्थान—एक नगर

स्थान—यूनियनक्लब का हाल

समय—संध्या

[हा]ल—वर्तमान क्लबों के मुख्य हाल के सदृश सजा हुआ है। तीन ओर दीवारें दिखतीं हैं। दाहनी और बाईं दीवारों के बीच में एक दरवाज़ा है, जिसके किवाड़ों में काँच लगे हैं। सामने की दीवार में दो बड़ी खिड़कियाँ हैं। इनके किवाड़ भी काँच के हैं। दरवाज़ों और खिड़कियों के किवाड़ खुले हुए हैं, जिनमें से बाहर के उद्यान का कुछ भाग दिखाई देता है, जो डूबते हुए सूर्य की सुनहरी किरणों में रँग रहा है। दोनों खिड़कियों के बीच में दो ऊँचे 'बिलियर्ड सोफ़ा' रक्खे हैं और इनके ऊपर दीवार में एक घड़ी लगी है, जिसमें पाँच बज रहे हैं। दोनों सोफ़ों के सामने बिलियर्ड टेबिल है, जिसके ऊपर छः बत्तीवाला बिजली का झाड़ भूल रहा है। दाहनी खिड़की के एक ओर 'क्यू (बिलियर्ड खेलने के डंडे) स्टेंड' है और बाईं खिड़की के एक ओर बिलियर्ड का 'मार्किङ्ग बोर्ड'। दाहनी ओर की दीवार के द्वार का सामने का भाग छोड़कर 'कार्ड (ताश) टेबिल' है, जिसके चारों ओर चार कुर्सियाँ रक्खी हैं और बाईं ओर की दीवार के द्वार का सामने का भाग छोड़कर एक चौखूँटी टेबिल पर 'कैरम-बोर्ड' है। इस टेबिल के चारों ओर भी चार कुर्सियाँ हैं। हाल में चटाई की बिछायत है, और बीच का बहुत-सा भाग खाली है। सीलिंग से कई बिजली की बत्तियाँ और पंखे भूल रहे हैं। मार्कर को छोड़कर हाल में इस समय कोई नहीं है। मार्कर सफ़ेद कोट और पतलून पहने तथा सिर पर तुर्की टोपी लगाये हैं। नेपथ्य में टेनिस के गेंदों के चलने एवं 'फ़िफ़्टीन लव' इत्यादि टेनिस के प्वाइन्ट गिनने के शब्द सुन पड़ते हैं। बाईं ओर के द्वार से दो युवकों का प्रवेश। एक की अवस्था लगभग पैंतीस वर्ष की है और दूसरे की पचीस। दोनों अँगरेज़ी ढँग के कपड़े पहने हैं; हाथ में हैट लिये हैं।]

एक—(अपने साथी से) सीरियस! अवश्य सीरियस बात है। (कैरम-बोर्ड की टेबिल के निकट बढ़ता है।)

दूसरा—(उसी टेबिल के निकट जाते हुए) हमारे यूनियन-क्लब की विशेषता ही पुरुष और स्त्री-वर्ग का यूनियन है, मिस्टर अग्निहोत्री।

[दोनों कैरम-बोर्ड के दोनों ओर की दो कुर्सियों पर बैठ जाते हैं।]

अग्निहोत्री—हाँ, इसमें क्या सन्देह है? भारतीय समाज में अब तक स्त्रियाँ क्लबों की सदस्या ही कहाँ होती हैं! न उनके जीवन में कोई आनन्द है और न उनका स्वास्थ्य ही अच्छा रहता है; कठिनाई से तीन महिलायें हमारे क्लब में आई हैं।

दूसरा—और उन्हें आते साल भर भी न हुआ कि एक सदस्य और सदस्या के बीच में ही जूती चल गई।

अग्निहोत्री—वह भी साधारण सदस्य और सदस्या के बीच में नहीं मिस्टर वाजपेयी पुरुष-सेक्रेटरी और महिला ज्वाइन्ट सेक्रेटरी के बीच।

वाजपेयी—फिर मिस्टर शर्मा की पार्टी ने मिस कृष्णाकुमारी पर जो आक्षेप किये हैं वे अत्यन्त निन्दनीय हैं।

अग्निहोत्री—अत्यन्त निन्दनीय।

वाजपेयी—चुनाव क्या हुआ, नंगा नाच हो गया।

अग्निहोत्री—इससे अधिक नंगा नाच क्या हो सकता है कि एक प्रतिष्ठित महिला के चरित्र पर आक्षेप और वह भी पुरुष की ओर से!

वाजपेयी—(कुछ ठहरकर घड़ी की ओर देखते हुए) कुछ देर खेलोगे नहीं? अभी तो मीटिंग में विलम्ब है।

अग्निहोत्री—हाँ, हाँ, आरम्भ करो!

[दोनों कैरम खेलना आरम्भ करते हैं।]

अग्निहोत्री—(खेलते-खेलते) क्यों मिस्टर वाजपेयी, कृष्णाकुमारी पर उस विज्ञापन में जो आक्षेप किये गये हैं उनमें कुछ सत्यता है?

वाजपेयी—(खेल रोककर, सिर उठा, कुछ मुस्कराते हुए) मुझसे पूछते हो? मेरी अपेक्षा तो तुम्हारा उनसे कहीं अधिक सम्बन्ध है। कई लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि तुमसे और उन......।

अग्निहोत्री—(खेल रोककर बीच में ही) राम राम! क्या कहते हो मिस्टर वाजपेयी?

वाजपेयी—(पुनः खेलते हुए) क्यों? क्या तुम भी मोरेलिटी (सदाचार) पर विश्वास रखते हो?

अग्निहोत्री—(पुनः खेलते हुए) चाहे मैं इस प्रकार की सेक्स-मोरेलिटी पर धार्मिक दृष्टि से विश्वास न रखता होऊँ, परन्तु समाज के सुख के लिए उस पर मेरा दृढ़ विश्वास है। मेरा और कृष्णाकुमारी का वकालत की सीनियारिटी और जूनियारिटी के अतिरिक्त और किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है।

वाजपेयी—मैं यह नहीं कहता कि है। मैं तो केवल इतना ही कहता हूँ कि कई लोग ऐसा कहते हैं।

अग्निहोत्री—लोगों को कुछ भी कहने में क्या लगता है? उस पर्चे में तो यहाँ तक लिख डाला गया है कि विद्यार्थी अवस्था में भी कृष्णाकुमारी का यही हाल था। इस देश में महिलाओं ने पर्दा छोड़कर जहाँ किसी प्रकार के भी सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया कि उनके चरित्र पर ही आक्षेप होने लगते हैं। उनका किसी से बात करना, किसी के घर जाना ही उनके चरित्र को दूषित मान लेने के लिए यथेष्ट समझ लिया जाता है।

वाजपेयी—परन्तु मिस्टर अग्निहोत्री, मिस कृष्णाकुमारी के सम्बन्ध में जो चर्चा हो रही है उसमें तो अवश्य सचाई जान पड़ती है।

अग्निहोत्री—मैं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता, इसी लिए तो मैंने तुमसे पूछा कि जो आक्षेप उन पर किये गये हैं उनमें कुछ सत्यता है या...।

[दाहने द्वार से चार पुरुषों का प्रवेश। चारों युवक हैं। टेनिस शर्ट, ढीला पतलून और टेनिस शू पहने हैं। एक हाथ में टेनिस रेकेट लिये हैं और दूसरे हाथ में लिये हुए रुमाल से मुँह और गर्दन का पसीना पोंछ रहे हैं।]

एक—(अपने साथियों से अँगरेज़ी में) आज चोखा खेल रहा।
दूसरा—(अँगरेज़ी में) निस्सन्देह।
तीसरा—(अँगरेज़ी में) वास्तव में।
चौथा—(अँगरेज़ी में) ज़रूर।
पहला—(अग्निहोत्री और वाजपेयी को देखकर) ओ! मिस्टर अग्निहोत्री और वाजपेयी तशरीफ़ ले आये!
दूसरा—(कार्ड-टेबिल की ओर बढ़ते हुए) आज का इतना इंपार्टेन्ट मीटिंग का डिन भी न आवेगा डॉक्टर खान।

[चारों कार्ड-टेबिल के चारों ओर बैठ जाते हैं।]

तीसरा—(मार्कर से) लो मार्कर, इन रेकिटों को रख दो; और देखो फ़ौरन केल्ड ड्रिंक लाओ; बहुत पसीना आ रहा है। (अपने साथियों से) कहिए, सब लोग पिईयेगा न।
चौथा—मैं तो ज़रूर पियूँगा।
खान—मैं भी पियूँगा।
दूसरा—ओर मैं टो ज़ुरूर।

[मार्कर चारों रेकिट उठाकर बायें द्वार से जाता है।]

खान—(अग्निहोत्री से) कहिए मिस्टर अग्निहोत्री, आपके जुनियर पर तो निहायत गंदा कीचड़ फेंका गया है।
अग्निहोत्री—निःसंदेह; और वह भी डॉक्टर, एक पुरुष ने एक महिला पर!
खान का दूसरा साथी—(अँगरेज़ी में) मोस्ट अनशिविलरस एक्ट इन्डीड! (वास्तव में अत्यन्त ही अपुरुषोचित कार्य है)।
खान का तीसरा साथी—आप लोगों को कदाचित् एक बात नहीं मालूम है।
खान—क्या?
वही—मिस्टर शर्मा पर इससे भी कहीं बुरे आक्षेप मिस कृष्णाकुमारी की पार्टी ने इसके पूर्व किये थे।
अग्निहोत्री—हाँ, हाँ, वह तो मालूम है, किन्तु मिस्टर शर्मा पुरुष हैं और मिस कृष्णाकुमारी महिला।
खान का दूसरा साथी—(अँगरेज़ी में) मोस्ट अनशिविलरस एक्ट इन्डीड!
खान का चौथा साथी—बात यह है कि आज-कल की पब्लिक-लाइफ़ ही निहायत गन्दी हो गई है।
खान—बेशक, बेशक।

[मार्कर का एक बैरा के साथ प्रवेश। मार्कर एक छोटी-सी टेबिल लिये है और बैरा एक बड़ी-सी रकाबी में चार काँच के गिलास। गिलासों में बर्फ़ और लेमनेड आदि हैं। बैरा कार्ड-टेबिल के निकट अपनी छोटी टेबिल रख देता है और बैरा उस पर रकाबी। फिर दोनों एक ओर हटकर खड़े हो जाते हैं।]

खान का तीसरा साथी—(एक गिलास उठाकर घड़ी की ओर देखते हुए) मीटिंग में तो अभी देर है। तब तक ब्रिज न हो जाय।
खान—(दूसरा गिलास उठाकर) हाँ, हाँ, तब तक तो शायद रबर भी हो जायगा।

[खान का तीसरा साथी थोड़ा-सा लेमनेड पीकर गिलास टेबिल पर रख ताश फेंटता और बाँटता है उसके दो साथी सिगरेट जलाते हैं।]

वाजपेयी—(दाहनी ओर के द्वार की ओर देखते हुए) लीजिए, बिलियर्ड के चेम्पियन साहब और मिस्टर मजूमदार आ रहे हैं।

[दाहनी ओर के द्वार से दो युवकों का प्रवेश। दोनों की अवस्था लगभग तीस वर्ष की है। दोनों अँगरेज़ी ढंग के कपड़े पहने हैं।]

खान—हलो! मेसर्स वर्मा और मजूमदार पहुँच ही गये। भई, मीटिंग का कोरम तो हो गया!
मजूमदार—हाँ, हाँ, आज तो बड़ा आवश्यक ठो मीटिंग होना है। पर अबी मिस्टर शर्मा और मिश कृष्णाकुमारी तो आयाई नेई।
वर्मा—और सभापति महाशय भी तो नहीं आये (घड़ी की ओर देखकर)। देर भी है। तब तक चलो न मिस्टर मजूमदार, बिलियर्ड ही उड़ जाय।
मजूमदार—हाँ, हाँ, हम तैयार हैं, चलो।

[दोनों बिलियर्ड-टेबिल के निकट बढ़ते हैं।]

खान—ताश के अपने पत्ते देखते हुए ट्रंप बोलते हैं।
खान का दूसरा साथी—डबल।

[खान का दूसरा साथी पत्ता चलता है और तीसरा साथी अपने पत्ते खोलकर टेबिल पर रखता है।]

वर्मा—बिलियर्ड खेलते हैं।
वाजपेयी—वाह, मिस्टर वर्मा! वाह! खेलना आरंभ करते देर न हुई और गोलियाँ लड़ने लगीं।
अग्निहोत्री—ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार युनियनक्लब में महिला सदस्या होते देर न हुई और लड़ाई आरंभ हो गई।
खान का दूसरा साथी—मोस्ट अनशिविलरस एक्ट इन्डीड!
खान—लीजिए जनाब, हमारे क्लब में तो शायर भी मौजूद हैं। गज़ब की उपमा दी है मिस्टर अग्निहोत्री!
वर्मा—अरे मिस्टर अग्निहोत्री तो आज के असली हीरो हैं।
खान—यह कैसे?
वर्मा—अपने जूनियर को बचाकर ये वीरता न दिखावेंगे?
खान—उनका बचाव करना तो हर मेम्बर का फ़र्ज़ है।
वर्मा—यह क्यों?
खान—इसलिए कि आदमियों का काम ही औरतों की हिफ़ाज़त करना है।
वर्मा—और शर्मा पर जो उससे कहीं घृणित आक्षेप हुए हैं!
मजूमदार—देखो महाशय लोगो, दोनों का विरुद्ध जो ठो विज्ञापन निकला है उसमें किसी का नाम नेई है। हम लोग कैसे कह सकता है कि मिस्टर शर्मा ने मिश कृष्णाकुमारी का विरुद्ध विज्ञापन निकाला और मिश कृष्णाकुमारी ने मिस्टर शर्मा का विरुद्ध?
वर्मा—पर, मेरा तो इस संबंध में मत ही दूसरा है।
खान—वह क्या?
वर्मा—इस प्रकार का अपवाद समाज का सच्चा जीवन है। समाज से अपवाद निकाल दीजिए, बस, समाज मुर्दा हो जायगा, फिर चुनाव तो आज-कल की सभ्य होली है। इस समय भी यदि एक दूसरे को गालियाँ न दी जायँगी तो फिर कब दी जायँगी? जिन्होंने वे दोनों इश्तहार लिखे हैं वे रसिक व्यक्ति हैं। गालियाँ

अवश्य दी हैं, पर कितनी सुन्दरता से! एक एक वाक्य, शब्द और मात्रा से रस टपकता है।
खान का तीसरा साथी—और फिर एक लेखक है और दूसरी लेखिका।

[अग्निहोत्री को छोड़कर सब हँस पड़ते हैं।]

अग्निहोत्री—मुझे बड़ा दुःख है मिस्टर वर्मा कि आप इस विषय को इतना साधारण समझ रहे हैं।
खान का दूसरा साथी—मोस्ट अनशिविलरस एक्ट इन्डीड!
वर्मा—मैंने तो पहले ही कहा था कि आज के हीरो मिस्टर अग्निहोत्री हैं। हाँ, तो, मेरा इस विषय को साधारण ढंग से लेना आपको पसंद नहीं आया; लीजिए मैं अत्यन्त गम्भीर हो जाता हूँ।

[वर्मा कैरम-टेबिल के निकट की एक कुर्सी पर बैठ जाता है और अपना मुख हथेली पर रख लेता है। उसकी मुख-मुद्रा अत्यन्त ही गम्भीर हो जाती है, आँखें बंद हो जाती हैं, भौंहें ऊपर को चढ़ जाती हैं और नाक के नथुनों से ज़ोर ज़ोर से साँस निकलने लगती है। सब लोग ज़ोर से हँस पड़ते हैं।]

खान—लीजिए जनाब, हमारे क्लब में शायर ही नहीं, पर अभिनेता भी हैं।

[सब लोग फिर हँस पड़ते हैं।]

वर्मा—(फिर खड़े हो जाते हैं और बिलियर्ड खेलने लगते हैं) देखिए मिस्टर अग्निहोत्री, मेरे मतानुसार संसार में हर बात को साधारण रूप में ही लेना चाहिए। मेरी समझ में नहीं आता कि गंभीरता की आवश्यकता ही क्या है।
खान—है तो ठीक।
खान का तीसरा साथी—अजी, बिलकुल ठीक।
वर्मा—ईश्वर ने जीवन गंभीर बनाकर मुँह लटकाये रखने के लिए नहीं दिया है, वरन हँस-बोल कर आनंद में बिता देने को दिया है।
अग्निहोत्री—आशा है, आप उपदेश देने का प्रयत्न नहीं कर रहे हैं।
वर्मा—ओ क्षमा कीजिए मिस्टर अग्निहोत्री, मैं देखता हूँ

च

नम्बर
१०१
१०२
१०३
१०४
१०५
१०६
१०७
१०८
१०९
११०
१११
११२
११३
११४
११५
११६
११७
११८
११९
१२०
१२१
१२२
१२३
१२४
१२५
१२६
१२७
१२८
१२९
१३०
१३१

कि आप मुझे बिलकुल ही नहीं समझ रहे हैं। जब मैं गम्भीर होना ही निरर्थक समझता हूँ तब फिर उपदेश देने का प्रश्न ही कहाँ उठता है? पर, ठहरिए; (फिर खेलना छोड़ सबकी ओर मुख कर) मैं एक प्रश्न पूछता हूँ और आशा करता हूँ कि सभी लोग उसका ठीक उत्तर देंगे।

खान—मैं तो ज़रूर दूँगा और चाहे कोई न दे।

खान का तीसरा साथी—नहीं, नहीं, सब देंगे।

वर्मा—जो इश्तहार मिस्टर शर्मा और मिस कृष्णाकुमारी के विरुद्ध निकले हैं उन्हें इन लोगों में से किस-किसने कितनी बार पढ़ा है?

खान—मैं तो हिन्दी नहीं जानता, मेरे कम्पाउण्डर ने दोनों पर्चे मुझे सुनाये थे और एक-एक को मैंने तीन दफ़ा सुना।

खान का दूसरा साथी—और मेरा क्लार्क ने मुझे एक-एक को दो दो दफ़ा सुनाया।

खान का तीसरा साथी—मैंने भी दो-दो बार पढ़ा।

खान का चौथा साथी—मैंने सिर्फ़ एक बार पढ़ा।

बाजपेयी—मैंने दो-दो बार।

मजूमदार—और हमने अपना सिरश्तेदार से चार-चार बार सुना है।

[सब लोग हँस पड़ते हैं।]

अग्निहोत्री—अच्छा, मैंने भी दो-दो बार पढ़ा है, पर इससे आप क्या निष्कर्ष निकालना चाहते हैं?

वर्मा—(बिलियर्ड-टेबिल से टिक कर) मैं यह निष्कर्ष निकालना चाहता हूँ मिस्टर अग्निहोत्री कि इस प्रकार के पर्चे यथार्थ में हमको अच्छे मालूम होते हैं, इन अपवादों से हमारे हृदय को आनन्द प्राप्त होता है। चाहे हम कितना ही गम्भीर मुख बनाकर अपवादियों की निन्दा क्यों न करें, परन्तु उनकी बातें हमें अगाध सुख पहुँचाती हैं। हममें से यहाँ कोई भी ऐसा नहीं है जिसने उन पर्चों को बड़े चाव से दो-दो, तीन-तीन और चार-चार बार न पढ़ा हो। यही दशा सारे नगर की होगी! मैंने तो एक एक इश्तहार को पाँच पाँच बार पढ़ा है।

[सब लोग हँस पड़ते हैं।]

खान—(हँसते हुए) मिस्टर वर्मा, ख़ुद नहीं खेल रहे हैं और मालूम होता है, किसी को न खेलने देंगे। (ताश के पत्ते टेबिल पर पटक देता है।)

वर्मा—डाक्टर खान, मैं तो बीच बाज़ार में छप्पर पर खड़े होकर कहने को तैयार हूँ कि मनुष्य-स्वभाव इस प्रकार की बातों से आनन्द पाता है। आप लोगों की ज़बान कभी बन्द नहीं कर सकते; लोग खाते घर का हैं और बात पराई करते हैं। आप किसी के कान बन्द नहीं कर सकते। इस प्रकार के अपवाद लोग बड़े चाव से सुनते और फिर उनमें नमक मिर्च लगाकर दूसरों में फैलाते हैं। जिन समाचार-पत्रों को हम 'लोकमत' बनाने और जाग्रत करनेवाला समझते हैं वे तक इस प्रकार के अपवादों की सदा मुँह-फाड़ कर प्रतीक्षा किया करते हैं। किसी भी समाचार-पत्र के कार्यालय में जाकर पूछ आइए। पत्र के जिस अंक में इस प्रकार के अपवाद छपते हैं उसी की सबसे अधिक बिक्री होती है। सबसे शीघ्र और अधिक यदि कोई समाचार फैलता है तो अपवादजनक। अपवाद मनुष्य का सबसे अधिक प्रिय विषय है। हम लोगों में से प्रत्येक मनुष्य अपवाद करता है, सुनता है, नमक-मिर्च लगा उसे बढ़ाता है और उससे आनन्द पाता है। पर हाँ, इतना अन्तर अवश्य है कि मिस्टर अग्निहोत्री और उनके सदृश विचारवाले व्यक्ति यही कार्य बुरा कहते हुए करते हैं और मैं उसे बुरा कहता ही नहीं। मैंने कहा न कि मैं तो अपवाद को समाज का जीवन मानता हूँ। (फिर खेलने लगता है।)

अग्निहोत्री—पहले तो मैं यही नहीं मानता कि इन इश्तहारों को पढ़कर सबको आनन्द हुआ है। मनुष्य केवल आनन्ददायक वस्तु को ही बार बार नहीं पढ़ता और सुनता, किन्तु उन बातों को ही बार बार पढ़ता या सुनता है जो गम्भीर होती हैं।

वर्मा—तो उन पर्चों में बड़ी गम्भीर बातें थीं?

[सब लोग फिर हँस पड़ते हैं।]

अग्निहोत्री—अवश्य ऐसी बातें थीं जिनका परिणाम अत्यन्त गम्भीर निकल सकता है।

वर्मा—और उन्हें पढ़कर किसी को आनन्द नहीं आया?

अग्निहोत्री—मुझे नहीं आया, इतना मैं कह सकता हूँ।

वर्मा—आपकी क्या बात है, आप तो साधु हैं।

[सब लोग फिर हँसते हैं।]

अग्निहोत्री—(चिढ़कर ऊँचे स्वर से) देखिए मिस्टर वर्मा, मज़ाक तो संसार में किसी का भी उड़ाया जा सकता है।

वर्मा—अब कोई धमकी न दे बैठिएगा, नहीं तो न जाने मेरी क्या दशा हो जायगी? आपका ऊँचा स्वर सुनकर ही मेरे हाथ-पैर काँपने लगे हैं। [हाथ-पैर काँपने लगते हैं, आँखें बन्द हो जाती हैं और क्यू हाथ से छूट ज़मीन पर गिर पड़ता है। सब लोग ज़ोर से हँस पड़ते हैं।]

खान—(हँसते हुए) सुन्दर अभिनय! सहज नाटकीय।

अग्निहोत्री—(मुस्कराकर) इसमें सन्देह नहीं, मिस्टर वर्मा सुन्दर नट हैं।

वर्मा—(अग्निहोत्री के निकट जा, झुककर तीन बार सलाम करते हुए) आदाब अर्ज़ है, आदाब अर्ज़ है।

[सब लोग फिर हँस पड़ते हैं। वर्मा क्यू उठाकर खेलने लगता है।]

अग्निहोत्री—(लंबी साँस लेकर) मिस्टर वर्मा, मैं आपसे फिर कहता हूँ कि जिस विषय को आप इतना साधारण ले रहे हैं, तथा मुझे भय है कि आपके कारण यहाँ अब तक के उपस्थित सभी सदस्य ले रहे हैं, वह विषय इतना साधारण समझने का नहीं है।

खान का दूसरा साथी—मोस्ट अनशिविलरस एक्ट इन्डीड!

वर्मा—पर, मैं क्या करूँ मिस्टर अग्निहोत्री, मैं संसार में किसी विषय को गम्भीर मानता ही नहीं, परन्तु यदि आप हर वस्तु को गम्भीर दृष्टि के अतिरिक्त अन्य किसी दृष्टि से देखना ही नहीं चाहते तो अपवाद को गम्भीर दृष्टि से ही देख लीजिए। मैं सिद्ध किये देता हूँ कि अपवाद समाज के लिए कितना आवश्यक है।

अग्निहोत्री—समाज के लिए अपवाद आवश्यक!

वर्मा—नितान्त। बिना इसके समाज का एक व्यक्ति [illegible] सुखी नहीं रह सकता। (फिर खेलना रोक कर [illegible] को घुमाते घुमाते) देखिए मिस्टर अग्निहोत्री, [illegible] जीवन-पथ फिसलन से भरा हुआ है और मनुष्य चा[illegible] वह अपने को कितना ही ज्ञानवान् क्यों न माने, ए[illegible] अज्ञानी बच्चे से अधिक नहीं है। हर एक व्यक्ति बार बार फिसलन में फिसलता है। जब वह फिसलता है तब किसी फिसलते हुए बच्चे के समान चार[illegible] ओर दृष्टि घुमा-घुमाकर देखता है कि कोई उसक[illegible] फिसलना देख तो नहीं रहा है, परन्तु उसी बाल-प्रवृत्ति के अनुसार दूसरों का फिसलना बड़े ध्यान से देखत[illegible] और उसे बढ़ा-बढ़ाकर दूसरों से कहता है। य[illegible] इसलिए कि यदि कभी उसका फिसलना और गिरना किसी ने देखा या सुना हो तो दूसरे के फिसलने औ[illegible] गिरने से उसका फिसलना और गिरना छिप जाय इस प्रकार यह अपवाद एक दूसरे की फिसलन को ढाँककर हर एक को सुख देता है। अब कहिए अपवाद अच्छी वस्तु है या बुरी।

खान—वाह! मिस्टर वर्मा वाह! आप तो इस वक्त बिलकुल ही फ़िलासफ़र हो गये!

अग्निहोत्री—परन्तु आपकी यह फ़िलासफ़ी आदि से अन्त तक भूलों से भरी हुई है। अपवाद करने और सुनने वाले अधिक इसलिए हैं कि संसार में इस समय मूर्ख ही अधिक हैं।

वर्मा—और संसार सदा ऐसा ही रहनेवाला है। एक दूस[illegible] पर हँसते हुए समय व्यतीत करना यदि मूर्खता ही मान ली जाय तो इससे अधिक बुद्धिमानी की [illegible] दूसरी कोई बात भी तो नहीं देखता। हँसी-ख़ुशी से इस जीवन को व्यतीत करने की अपेक्षा बुद्धिमानी की और बात ही क्या हो सकती है।

खान—बेशक!

खान का दूसरा साथी—सर्टेन्ली (निस्सन्देह)।

वर्मा—(फिर खेलना रोककर) अच्छा देखो, अब अपवाद को एक दूसरी दृष्टि से देखो।

खान—वह कौन-सी ?

वर्मा—वह यह कि इसके बिना मनुष्य-समाज के वार्तालाप में कोई आनन्द रहेगा या नहीं। मनुष्य और पशु-समाज में सबसे बड़ा अन्तर यही तो है न कि मनुष्य अपने समाज में सभ्यता-पूर्वक संभाषण कर सकता है और पशु चिल्लाते हैं।

खान—बेशक।

वर्मा—इस संभाषण का जीवन ही अपवाद है।

अग्निहोत्री—अपवाद नहीं, व्यंग्य को आप अवश्य कुछ दूर तक संभाषण का जीवन कह सकते हैं।

वर्मा—अजी अग्निहोत्री जी, थोड़े-बहुत अपवाद के मिश्रण के बिना व्यंग्य हो ही नहीं सकता।

खान—यह 'व्यंग्य' कौन-सा जानवर है ?

वर्मा—अँगरेज़ी में आप इसे 'विट' कह सकते हैं।

खान का दूसरा साथी—ओ !

खान—अच्छा, अच्छा !

अग्निहोत्री—नहीं, यह बात नहीं है। व्यंग्य बिना अपवाद के मिश्रण के भी हो सकता है। हाँ, व्यंग्य में अपवाद सरलता से मिलाया जा सकता है; परन्तु वैसा व्यंग्य तो आनन्ददायक न होकर विषैले डंक के सदृश दुःखदायी होता है। अपवाद-रूपी शस्त्र को लिये हुए तीन इंच लम्बी जीभ बड़े से बड़े मनुष्य को आहत कर सकती है। तलवार का प्रहार चाहे खाली भी जाय, पर अपवाद का प्रहार खाली नहीं जाता। वह बड़े से बड़े मनुष्य को भी धक्का लगा सकता है, चाहे वह भाषण-द्वारा जीभ की नोक से किया जाय या पर्चों के द्वारा क़लम की नोक से। फिर मिस्टर वर्मा, यह तो पुरुष ने एक प्रतिष्ठित महिला के चरित्र पर घृणित आक्षेप किया है।

खान का दूसरा साथी—मोस्ट अनशिविलरस एक्ट इन्डीड !

वर्मा—और जो मिस्टर शर्मा पर उससे भी कहीं बुरे आक्षेप हुए हैं वे ?

अग्निहोत्री—वह बिलकुल दूसरी बात है।

खान—पर जैसा अभी मिस्टर मजूमदार ने कहा है कि इन इश्तहारों के लिखनेवाले हमें कहाँ मालूम हैं ? दोनों पर्चे गुमनाम हैं, यहाँ तक कि जिन प्रेसों में छपे हैं उन तक का नाम नहीं छपा।

मजूमदार—अवश्य।

अग्निहोत्री—पर लेखकों का अनुमान करना कठिन नहीं है।

वर्मा—(फिर खेलना बन्द कर) अच्छा, मिस्टर अग्निहोत्री, अब सारे विषय को थोड़ा ज्ञान-दृष्टि से देखिए।

अग्निहोत्री—किस प्रकार ?

वर्मा—जो आक्षेप मिस कृष्णाकुमारी और मिस्टर त्रिवेणी-शंकर पर किये गये हैं वे उनके चरित्र के सम्बन्ध में ही हैं न ?

अग्निहोत्री—हाँ।

वर्मा—अब देखिए कि चरित्र-सम्बन्धी सदाचार ही कहाँ तक स्वाभाविक और उचित है।

[सब लोग हँस पड़ते हैं। दाहनी ओर के द्वार से त्रिवेणीशंकर का प्रवेश। उनकी अवस्था लगभग तीस वर्ष की है। वे शेरवानी और चूड़ीदार पायजामा पहने तथा खादी की टोपी लगाये हैं। सोने के फ्रेम का चश्मा भी लगाये हुए हैं।]

वर्मा—ओ ! ये मिस्टर शर्मा आये ! हिप-हिप हुर्रे।

शर्मा—(मुस्कराते हुए) ओहो ! आज तो आपने मेरा बड़े ज़ोर का स्वागत किया।

खान—आज भी अगर वेलकम न किये जायँगे तो फिर कब किये जायँगे मिस्टर शर्मा ?

[शर्मा बिलियर्ड-सोफ़ा पर बैठ जाता है। नेपथ्य में मोटर आने और खड़े होने की ज़ोर से आवाज़ होती है।]

वर्मा—ओ ! अब प्रेसीडेंट साहब आये ! नगर भर में सबसे अधिक यही मोटर चिल्लाता है। ठीक भी है, जितने ज़ोर से प्रेसीडेंट चिल्लाते हैं, उतने ही ज़ोर से तो उनके मोटर को भी चिल्लाना चाहिए।

[सब लोग फिर हँस पड़ते हैं। बाईं ओर के द्वार से एक अधेड़ व्यक्ति का प्रवेश। शरीर में ये अन्य उपस्थित लोगों की अपेक्षा कुछ मोटे हैं। अँगरेज़ी ढंग के कपड़े पहने हैं। मोटे फ्रेम का चश्मा लगाये हैं और मोटा-सा सिगार पी रहे हैं। सब लोगों से मिल-भेंटकर ये भी बिलियर्ड-सोफ़ा पर त्रिवेणीशंकर के निकट बैठ जाते हैं।]

खान—(घड़ी को देखते हुए) तो अब मीटिंग में बहुत देर नहीं है ?

सभापति—हाँ, समय होता ही है। बस, मिस कृष्णाकुमारी भर का विलम्ब है। पर वे तो ठीक समय पर आ ही जायँगी। (मार्कर से) मार्कर, बीच में एक टेबिल और कुछ कुर्सियाँ लगा दो।

मार्कर—जो हुक्म हज़ूर।

[बाईं ओर के द्वार से मार्कर बाहर जाता है। कुछ देर तक सन्नाटा रहता है। बिलियर्ड, ताश और कैरम के खेल चलते रहते हैं। मार्कर एक बड़ी-सी गोल टेबिल तथा टेनिस के गेंद उठानेवाले लड़के (जो खाकी वर्दी पहने हैं) कुर्सियाँ लेकर बायें द्वार से आते हैं। इसी समय नेपथ्य में घोड़े के टाप, घुँघरू और ताँगे की घंटी के शब्द सुनाई देते हैं। कुछ ही देर में ताँगा के खड़े होने की आवाज़ आती है। दाहनी ओर के द्वार से मिस कृष्णाकुमारी अन्य दो महिलाओं के साथ आती हैं। तीनों महिलायें सुन्दर युवती हैं। भिन्न-भिन्न रंगों की साड़ियाँ, शलूके, मोज़े और ऊँची एड़ी के जूते पहने हैं। कान में 'इयररिंग', गले में 'नेकलस', हाथों में काँच की दो-दो चूड़ियाँ और बाईं कलाई पर रिस्टवाच है। एक महिला सोने के फ्रेम का चश्मा भी लगाये है। सब लोग उठकर उनका स्वागत करते हैं। वे तीनों भी बिलियर्ड के दूसरे सोफ़ा पर बैठ जाती हैं। कुछ ही देर में मार्कर और लड़के हाल के बीच के खाली स्थान में एक गोल टेबिल और उसके चारों ओर १५ कुर्सियाँ रख देते हैं।]

सभापति—(घड़ी की ओर देखकर) मीटिंग का समय हो चुका। मैं समझता हूँ, हम लोगों को अपना कार्य आरम्भ कर देना चाहिए।

त्रिवेणीशंकर—जी हाँ, समय तो हो चुका।

खान—फिर देर क्यों की जाय ? दर्दनाक सबजेक्ट ज़रूर है, पर फ़ैसला तो करना ही होगा।

[सब खेल बन्द कर देते हैं। सभापति उठकर बीच की कुर्सी पर बैठते हैं। उनकी दाहनी ओर मिस कृष्णाकुमारी और बाईं ओर त्रिवेणीशंकर बैठते हैं। बाक़ी सब व्यक्ति भी अन्य कुर्सियों पर बैठते हैं। दो कुर्सियाँ खाली रहती हैं।]

सभापति—(खड़े होकर) बहनो और भाइयो, आज हम लोग यहाँ जिस कार्य के लिए एकत्र हुए हैं उसे आप लोग भली-भाँति जानते हैं। हमारे यूनियनक्लब के इतिहास में आज का दिवस अत्यन्त सन्तापकारी है। जिस यूनियनक्लब का उद्देश पुरुषों और महिलाओं का यूनियन कर सच्चे सामाजिक जीवन का निर्माण करना है उसी के पुरुष और महिला पदाधिकारियों में जब आज इस प्रकार का झगड़ा उठ खड़ा हुआ है तब हमारे लिए आज से अधिक दुःखदायक और कौन-सा दिवस हो सकता है ? (कुछ ठहर कर गला साफ़ करते हुए) कौंसिल का चुनाव होनेवाला है। चुनाव में एक ही क्षेत्र से खड़े होनेवाले दो प्रतिस्पर्द्धी उम्मीदवारों में स्पर्द्धा होना स्वाभाविक है; परन्तु स्पर्द्धा एक बात है और झगड़ा सर्वथा दूसरी। स्पर्द्धा में प्रतिस्पर्द्धियों की आलोचना भी स्वभाव-सिद्ध है, परन्तु आलोचना एक बात है और गालियाँ बिलकुल दूसरी। फिर आपके सामने जो विषय उपस्थित है वह साधारण कलह और तू-तू मैं-मैं का भी नहीं है, किन्तु आपके क्लब की पदाधिकारिणी महोदया के चरित्र पर घृणित आक्षेप का है और वह आक्षेप भी एक पुरुष के द्वारा किया गया है। जो पुरुष अपने को स्त्रियों के रक्षक मानते हैं, जो अपनी परित्राण-शूरता की दुहाई देते हैं वे यदि……।

खान का दूसरा साथी—मोस्ट अनशिविलरस एक्ट इन्डीड !

वर्मा—(खड़े होकर) सभापति महोदय, यद्यपि आपके भाषण के बीच में मेरा हस्तक्षेप करना असंगत जान पड़ेगा, तथापि जब मैं देखता हूँ कि जहाँ आपको अपनी कार्यवाही निष्पक्ष करनी चाहिए, वहाँ आप अपना आरम्भिक भाषण ही एक पक्ष में दे रहे हैं, तब मुझसे बिना बोले नहीं रहा जाता। मैं समझता हूँ, विषय को मीटिंग के सम्मुख उपस्थित कर देने के अतिरिक्त किसी एक पक्ष में आपका इस प्रकार का

भाषण युक्ति-संगत नहीं है। मुझे क्षमा कीजिएगा, मैंने आपके भाषण के बीच में दखल दिया है, परन्तु !

सभापति—(मुस्कराते हुए) मिस्टर वर्मा, मैं अपने कर्त्तव्य को भली-भाँति जानता हूँ (वर्मा बैठ जाता है।) सभापति को किसी भी विषय पर अपना व्यक्तिगत मत देने का पूर्ण अधिकार है; परन्तु ख़ैर, मुझे जो कुछ कहना था वह मैं कह चुका; और मुझे कुछ नहीं कहना है। अब आपके सामने मिस विजया अपना प्रस्ताव उपस्थित करेंगी, जिसके लिए आज की मीटिंग बुलाई गई है। (बैठ जाता है। कुछ तालियाँ बजती हैं।)

विजया—(खड़ी होकर) जो प्रस्ताव मैं आपके सामने उपस्थित करना चाहती हूँ वह इस प्रकार है। (एक काग़ज़ ब्लाउज़ के जेब से निकालकर पढ़ती है।) 'यूनियनक्लब के सदस्यों की यह सभा मिस्टर त्रिवेणी शङ्कर शर्मा की पार्टी के द्वारा मिस कृष्णाकुमारी के चरित्र पर किये गये आक्षेपों को सर्वथा मिथ्या, अत्यन्त निन्दनीय और महान् घृणित समझती है। इस सभा की सम्मति है कि पुरुषों का महिलाओं पर इस प्रकार का आक्षेप समाज में पुरुषों की-ही प्रतिष्ठा को घटाता है और महिलाओं की रक्षा के उनके नैसर्गिक अधिकारों की इतिश्री करता है। बीच में ही खान का दूसरा साथी निस्सन्देह अत्यन्त ही अपुरुषोचित कार्य है।

विजया—'चूँकि मिस्टर शर्मा ने अपनी पार्टी के इस घोर पापाचार का अब तक कोई खण्डन नहीं किया है, इसलिए यह सभा घोषित करती है कि मिस्टर त्रिवेणीशंकर पर इस सभा का विश्वास नहीं है और जनता कौंसिल के लिए मिस कृष्णाकुमारी को ही अपने वोट देवे।' (कुछ ठहर कर) भाइयो और बहनो, (लम्बी साँस लेकर) इस प्रस्ताव पर मैं क्या भाषण दूँ। इसे पढ़नेमात्र से मेरा हृदय भर आया है। मिस कृष्णाकुमारी पर किये गये आक्षेपों से केवल उन्हें दुःख पहुँचा हो, केवल उनका अपमान हुआ हो, यह बात नहीं है, इन आक्षेपों से नगर के समस्त नारी-समाज को दुःख पहुँचा है; उसका अपमान हुआ है।

खान का दूसरा साथी—मोस्ट अनांशविलरस एक्ट इन्डीड !

कुछ व्यक्ति—शेम शेम, शेम शेम। शर्म है! शर्म है!

विजया—जो आक्षेप मिस कृष्णाकुमारी पर हुए हैं वे किस प्रकार के हैं, यह केवल आप ही लोग जानते हों यह नहीं, सारे नगर-निवासी, और वे ही नहीं, इस नगर के बाहर भी दूर दूर तक की जनता जानती है, पुरुष महिला पर इस प्रकार के आक्षेप करें, यह संसार के इतिहास में नवीन घटना है। जब मिस कृष्णाकुमारी किसी कार्य के निमित्त घर से बाहर निकलती हैं तब सड़कों पर अनेक पुरुष मुँह फेरकर हँसते और तरह-तरह के ठट्ठे उड़ाते हैं। क्या यही सब पुरुषों का स्त्रियों की रक्षा करने और उन्हें समानाधिकार देने का दावा है? खान का दूसरा साथी—निस्सन्देह अत्यन्त ही अपुरुषोचित कार्य है।

कुछ व्यक्ति—धिक्कार है, धिक्कार है!

विजया—यह कहा जाता है कि किस व्यक्ति ने मिस कृष्णाकुमारी पर ये आक्षेप किये हैं, यह ज्ञात नहीं है; परन्तु यह तो बड़ी पोच दलील है। यदि मिस कृष्णाकुमारी पर किये गये आक्षेपों में मिस्टर शर्मा और उनकी पार्टी का हाथ नहीं है तो उन्होंने और उनके दल ने उस पर्चे का अब तक खण्डन क्यों नहीं किया? यदि इस इश्तहार के लेखक या मुद्रक का नाम हमें मालूम होता तो विश्वास रखिए, इस विषय को हम क्लब में न लाकर अदालत में ले जातीं, परन्तु आज तो हमारे पास इसे इस क्लब में लाने के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं है। पुरुषों ने इस क्लब को पुरुष और स्त्री दोनों वर्गों के सच्चे यूनियन (एकता) के लिए स्थापित किया है। पुरुषों के अनुनय-विनय करने से हम तीन महिलायें इसकी सदस्या हुई हैं। यदि आप सचमुच यह चाहते हैं कि दोनों वर्गों के उत्कर्ष, दोनों वर्गों के सामाजिक जीवन के विकासार्थ इस क्लब में स्त्री-सदस्याओं की संख्या बढ़े तो यह अवसर है जब आप मेरे प्रस्ताव को पास कर स्त्री-समाज को विश्वास दिला दीजिए कि पुरुष स्त्रियों को सामाजिक और राजनैतिक जीवन में सचमुच आगे बढ़ाना चाहते हैं। इस क्लब में आज पुरुष ही अधिक संख्या में हैं, अतः उन्हें अच्छे प्रकार विचार कर लेना चाहिए कि मेरे प्रस्ताव पर मत देते समय उनका कितना बड़ा उत्तरदायित्व है। (बैठ जाती है।)

कुछ व्यक्ति—सुनो! सुनो! (तालियाँ भी बजती हैं।)

अग्निहोत्री—(खड़े होकर) सभापति महोदय, बहनो और भाइयो, मैं मिस विजया के प्रस्ताव का हार्दिक समर्थन करता हूँ। इस प्रस्ताव पर भाषण आरम्भ करते समय मिस विजया ने कहा था कि प्रस्ताव पढ़नेमात्र से उनका हृदय भर आया है, परन्तु उसके पश्चात् तो हम लोगों ने मिस विजया का करुणापूर्ण भाषण भी सुना है, अतः मेरा विश्वास है कि यहाँ एक भी पुरुष ऐसा न होगा जिसका केवल हृदय ही नहीं, परन्तु शरीर का प्रत्येक परमाणु गद्गद न हो गया हो।

कुछ व्यक्ति—सुनो! सुनो!

अग्निहोत्री—मैं यहाँ उपस्थित समस्त पुरुष सदस्यों की ओर से मिस कृष्णाकुमारी और उनके मित्र दोनों अन्य महिलाओं को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि यदि इन आक्षेपों से उन्हें और समस्त महिला-समाज को दुःख पहुँचा है तो पुरुष-समाज में भी सभी विचारशील और प्रतिष्ठित व्यक्तियों को दुःख के साथ लज्जा भी आ रही है।

कुछ व्यक्ति—सुनो! सुनो!

अग्निहोत्री—मिस विजया ने सड़कों पर कुछ पुरुषों के हँसने और ठट्ठ उड़ाने की बात कही है। ऐसे व्यक्तियों को मैं गुण्डा कहता हूँ। परन्तु इस प्रकार के व्यक्ति पुरुष और स्त्री दोनों समाजों में रहते हैं। चूँकि इस देश में बहुत कम महिलायें घरों से निकलती हैं, अतः पुरुष ही इस सम्बन्ध में अधिक दोषी पाये गये हैं; परन्तु मैं कृष्णाकुमारी और उनकी अन्य दोनों मित्रों को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि ऐसे इने-गिने व्यक्तियों को सारा पुरुष-समाज अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखता है।

कुछ व्यक्ति—अवश्य! अवश्य! अवश्य! अवश्य!

अग्निहोत्री—मैं मानता हूँ कि मिस कृष्णाकुमारी के विरुद्ध जो पर्चा निकला है उससे यथार्थ में पुरुष-वर्ग की परित्राण-शूरता पर गहरा आघात हुआ है।

खान का दूसरा साथी—मोस्ट अनशिविलरस एक्ट इन्डीड!

अग्निहोत्री—मैं इस क्लब के समस्त पुरुष सदस्यों की ओर से मिस कृष्णाकुमारी तथा उनके साथ की उनकी दोनों मित्रों एवं समस्त नारी-समाज के इस महान् दुःख में हार्दिक सहानुभूति प्रकट करता हूँ। मुझे विश्वास है कि इस क्लब के सदस्य मिस विजया के प्रस्ताव को स्वीकार कर तथा नगर के नागरिक मिस कृष्णाकुमारी को ही कौंसिल के लिए चुनकर मेरे इस कथन का पूर्ण समर्थन करेंगे। (बैठ जाता है।)

कुछ व्यक्ति—सुनो! सुनो! (तालियाँ।)

त्रिवेणीशंकर—(खड़े होकर) सभापति महाशय, मैं भी अपनी सफ़ाई में दो शब्द निवेदन करने का इच्छुक हूँ।

सभापति—हाँ, हाँ आप कह सकते हैं।

त्रिवेणीशंकर—बहनो और भाइयो, सर्वप्रथम तो ईश्वर को साक्षी देकर और सत्य के नाम पर मैं यह कह देना चाहता हूँ कि मिस कृष्णाकुमारी के चरित्र के विरुद्ध जो पर्चा निकला है उसमें परोक्ष या प्रत्यक्ष, किसी भी रूप से मेरा कोई हाथ नहीं है; न मुझे उसके लेखक या मुद्रक का ही कोई पता मालूम है।

खान का दूसरा साथी—आप गाड (ईश्वर) और ट्रूथ (सत्य) पर बिलीव (विश्वास) करता है?

त्रिवेणीशंकर—यदि मुझे ईश्वर और सत्य पर विश्वास न होता तो मैंने उनका आश्रय न लिया होता; पर ख़ैर जाने दीजिए इसे, अब इसका उत्तर सुनिए कि मैंने उस पर्चे का खण्डन क्यों नहीं किया। आपको मालूम होगा कि उस पर्चे से भी कहीं अधिक कुत्सित आक्षेपों से भरा हुआ एक पर्चा मेरे चरित्र के सम्बन्ध

में उस पर्चे के बहुत पूर्व निकला था। उसका कोई खण्डन मिस कृष्णाकुमारी और उनके दल ने नहीं किया था। अतः मैंने भी इस सम्बन्ध में मिस कृष्णाकुमारी और उनके दल का ही अनुसरण किया है।

खान का दूसरा साथी—मोस्ट अनशिविलरस एक्ट इन्डीड!

त्रिवेणीशंकर- अपुरुषोचित कार्य से आपका क्या अभिप्राय है? क्या आप समझते हैं कि हर परिस्थिति में महिलाओं की रक्षा का भार पुरुषों के ही कन्धों पर है?

खान का दूसरा साथी—नो डाउट (निस्सन्देह।)

त्रिवेणीशंकर—कदापि नहीं।

कुछ व्यक्ति—धिक्कार है! धिक्कार है!

कुछ व्यक्ति—शर्म है! शर्म है!

त्रिवेणीशंकर—चाहे आप मुझे धिक्कारें, शर्म कहें या इससे भी कड़े शब्दों का उपयोग करें, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को अपना मत रखने तथा उसके प्रकट करने का पूर्ण अधिकार है।

खान का दूसरा साथी—हम आपका मट नई सुनना चाटा।

कुछ व्यक्ति—बैठ जाइए, बैठ जाइए।

त्रिवेणीशंकर—सभापति महाशय, मैं आज यहाँ एक अभियुक्त की हैसियत से बोल रहा हूँ। सरकारी अदालतों में भी अभियुक्त को अपनी रक्षा और बचाव के लिए कुछ कहने का अधिकार रहता है, फिर यह तो सार्वजनिक क्लब है। भाषण और लेखन स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन करनेवाले पढ़े-लिखे लोगों का यह व्यवहार सचमुच ही आश्चर्यजनक है। कहिए मैं अपना कथन पूर्ण करूँ या चुप होकर बैठ जाऊँ (बैठ जाता है।)

वर्मा—सचमुच, यह तो बड़ा अन्याय है।

कृष्णाकुमारी—(खड़े होकर) मैं सब लोगों से प्रार्थना करती हूँ कि उन्हें मिस्टर शर्मा के कथन को अवश्य सुनना चाहिए। (बैठ जाती हैं।)

सभापति—(खड़े होकर) मैं आशा करता हूँ कि सब लोग मिस्टर शर्मा के कथन को अवश्य सुनेंगे। (शर्मा से) आप अपना कथन आरंभ कीजिए। (बैठ जाते हैं।)

त्रिवेणीशंकर (खड़े होकर) धन्यवाद। मैं फिर कहता हूँ कि महिलाओं की रक्षा का भार हर परिस्थिति में पुरुषों के कन्धों पर नहीं है। वह समय अब बहुत कुछ बीत चुका है तथा शीघ्रता से बीतता जा रहा है जब महिलाओं की रक्षा का भार हर परिस्थिति में पुरुषों पर था। उस समय पुरुष अपने सुख-दुःख की कोई चिन्ता न कर, अपने शरीर की परवा न कर, अपने प्राणों को हथेली पर रखकर महिलाओं की रक्षा करते थे; इतना ही नहीं, उन्हें गृहदेवियाँ मान कर उनका सत्कार और उनका पूजन तक करते थे।

कृष्णाकुमारी—(खड़ी होकर) बीच में बोलने के लिए क्षमा कीजिए।

त्रिवेणीशंकर—नहीं, नहीं, आप मुझे बराबर टोंक सकती हैं। (बैठ जाते हैं।)

कृष्णाकुमारी—आपके कथन से तो यह जान पड़ता है कि महिलायें पुरुषों के लिए कुछ करती ही न थीं। सच तो यह है कि महिलायें तो अपने सुखों की उतनी चिन्ता भी न करती थीं और न आज करती हैं, जितना पुरुष अपने सुखों की। वे तो पुरुषों के ही सुख में अपना सुख मानती थीं, उन्हें ईश्वरवत् समझती थीं। (बैठ जाती हैं।)

कुछ व्यक्ति—सुनो! सुनो!

त्रिवेणीशंकर—(खड़े होकर) हाँ, यह भी मैं मानता हूँ मिस कृष्णाकुमारी, महिलायें भी पुरुषों को ऐसा ही मानती थीं और अनेक आज भी मानती हैं, जैसा आप कह रही हैं। वे भी उनके सुखों में ही अपना सुख समझती थीं और इस प्रकार उनका परस्पर संबंध...!

कृष्णाकुमारी—(खड़ी होकर) फिर बीच में बोलने के लिए क्षमा कीजिए मिस्टर शर्मा। (शर्मा बैठ जाते हैं।) जिस प्रकार का सम्बन्ध आप कहते हैं वह 'परस्पर' नहीं था। महिलाओं पर अधिकतर पुरुषों के अत्याचार ही होते थे और आज भी होते हैं। (बैठ जाती हैं।)

त्रिवेणीशंकर—(खड़े होकर) यह भी होता था और होता है, यह भी मैं मानता हूँ मिस कृष्णाकुमारी, परन्तु इससे जिस बात का मैं प्रतिपादन कर रहा था उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। मैं कह रहा था कि हर परिस्थिति में पुरुषों पर महिलाओं की रक्षा का भार नहीं है। जिस परिस्थिति में पुरुषों पर महिलाओं की रक्षा का भार था वह अब बदल रही है।

विजया—अर्थात् निम्न क्षेत्र से महिलायें पुरुषों के बराबरी के क्षेत्र में आ रही हैं।

त्रिवेणीशंकर—पहले वे निम्नक्षेत्र में थीं, यह तो मैं नहीं मानता, परन्तु हाँ, इतना मानता हूँ कि उनके और पुरुषों के कार्यों का एक क्षेत्र नहीं था। मेरा तो अब भी यही मत है कि निसर्ग ने ही दोनों को भिन्न-भिन्न प्रकार से बनाया है, अतः दोनों के कार्य-क्षेत्र भी भिन्न-भिन्न होना भी स्वाभाविक है और दोनों में से कोई भी निम्न कोटि का नहीं कहा जा सकता। परन्तु जब महिलाओं ने उसी क्षेत्र में पदार्पण किया है जिसमें पुरुष हैं, तब वे यह आशा नहीं कर सकतीं कि पुरुष फिर भी उनके रक्षक ही रहेंगे। ऐसी परिस्थिति में जिस प्रकार का संघर्ष पुरुषों-पुरुषों के बीच में है, उसी प्रकार का संघर्ष पुरुषों-स्त्रियों में होगा। उदाहरणार्थ, अब महिलायें सेना का कार्य सीख रही हैं। यदि वे सेना में भरती हुईं, जैसा कहीं-कहीं होने भी लगा है, और उन्होंने युद्ध किया जैसा कहीं कहीं वे करने भी लगी हैं, तो क्या वे आशा करती हैं कि स्त्री-सेना को देखते ही पुरुष-सेना अपने शस्त्र रख देगी और परित्राण-शूरता के नाम पर अपने को नष्ट हो जाने देगी?

वर्मा—(मुस्कराते हुए) ऐसा तो होना ही चाहिए। महाभारत में तो जो पूर्व-जन्म में स्त्री था ऐसे शिखंडी के सामने आते ही भीष्म पितामह ने शस्त्र रख दिये थे।

त्रिवेणीशंकर—(मुस्कराकर) शिखण्डी एक ... भीष्म पितामह सब नहीं हो सकते। यदि उ... भी स्त्रियों की सेनायें होतीं और वे युद्ध करते तो पुरुष-सेनायें कभी शस्त्रों को न रख देतीं। दूसरा उदाहरण लीजिए। अब महिलायें पु... मल्ल-युद्ध तक करने को अग्रसर हो रही हैं। ... दिन हुए, आस्ट्रेलिया के सिडनी नगर में ... पहलवान डारिस एकोरोने (Doris Akron... एक पुरुष पहलवान लेस बीर्स (Les Byers) ... कुश्ती लड़ी थी। क्या महिलायें यह आशा ... कि वे पुरुषों को कुश्ती के लिए ललकारेंगी इतने पर भी पुरुष या तो उनसे कुश्ती लड़ेंगे ही क्योंकि न लड़ने पर भी उनकी शूरता में बट्टा ल... और या परित्राण-शूरता के नाम पर चुप-चाप धक्का देते ही चित हो जायँगे। यही कार्य अन्य के सम्बन्ध में भी है। जहाँ-जहाँ संघर्ष होगा, वहाँ जीवन-संग्राम के नियम का उपयोग होगा; परि... शूरता का नहीं। यद्यपि मैं सत्य कहता हूँ कि मैं नहीं जानता कि मिस कृष्णाकुमारी के चरि... सम्बन्ध में वह विज्ञापन किसने निकाला है, तो मैं इतना कह सकता हूँ कि यदि मेरे चरित्र आक्षेप करनेवाला विज्ञापन न निकला होता कदाचित् वह भी न निकलता।

वर्मा—कदाचित् क्यों, निश्चयपूर्वक न निकलता।

त्रिवेणीशंकर—नहीं मिस्टर वर्मा, निश्चयपूर्वक तो नहीं कह सकता।

वर्मा—क्यों?

त्रिवेणीशंकर—इसलिए कि जिस प्रकार मिस कृष्णाकुमा... के चरित्र पर आक्षेप हुए बिना ही मेरे चरित्र प... आक्षेप हुआ, उसी प्रकार मेरे चरित्र पर आक्षेप हु... बिना ही मिस कृष्णाकुमारी के चरित्र पर भी हो सकता था। एक बार संघर्ष होने के पश्चात् प्रहार किस ओ... से होता है, यह कभी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। हाँ, घात पर प्रतिघात होता है, यह स्वाभाविक नियम है। (कुछ ठहर कर) अब मुझे और

कुछ न कहकर केवल इतना ही कहना है कि यदि आप लोग गंभीरतापूर्वक विचार करके देखेंगे तो आपको मालूम हो जायगा कि यथार्थ में यूनियन-क्लब में आज जो प्रश्न उठा है वह केवल मिस कृष्णाकुमारी और मुझसे सम्बन्ध नहीं रखता। यह तो स्त्री और पुरुष-समाज के पारस्परिक व्यवहार की जड़ से सम्बन्ध रखता है। मेरे चरित्र पर आक्षेप करनेवाले इश्तहार निकलने के पश्चात् भी मेरे हृदय में मिस कृष्णाकुमारी के प्रति किसी प्रकार के रोष की उत्पत्ति नहीं हुई थी, मैंने यह निश्चय नहीं कर लिया था कि उसमें उनका और उनके दल का ही हाथ है, यद्यपि मैं यह सच-सच कह देना चाहता हूँ कि मुझे भी उनके दल पर सन्देह हुआ था, पर इतने पर भी मैंने यूनियनक्लब में उनके या उनके दल के विरुद्ध कोई प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया, और न किसी से कराया ही था। मुझे खेद है कि मिस कृष्णाकुमारी उनके चरित्र पर आक्षेप होनेवाले पत्रों के निकलते ही मुझे और मेरी पार्टी को ही निश्चयपूर्वक उसके लिए दोषी मानती हैं, और मिस विजया इस प्रकार का प्रस्ताव इस क्लब में उपस्थित कर रही हैं। मैं इस प्रकार के विज्ञापनों को बहुत बुरा मानता हूँ, मेरा यह भी मत है कि सार्वजनिक जीवन का यह बड़ा काला पहलू है, किन्तु क्या किया जाय? संघर्ष का यह अनिवार्य परिणाम जान पड़ता है। इस संघर्ष में स्त्री-समाज का खिंच आना मुझे अत्यन्त दुःख पहुँचाता है। मेरा मत है कि उनके इस क्षेत्र में आ जाने से हमारे यहाँ से जो थोड़ा-बहुत सुख रह गया है वह भी न रह जायगा। परन्तु कदाचित् मनुष्य-समाज के भाग्य में अभी और दुःख बदा है। (बैठ जाता है। तालियाँ बजती हैं।)

कृष्णाकुमारी—(खड़ी होकर) सभापति महोदय, भाइयो और बहनो, मैं सर्वप्रथम मिस्टर त्रिवेणीशंकर शर्मा को उनके अत्यंत सुन्दर भाषण पर बधाई देती हूँ।

कुछ व्यक्ति—सुनो! सुनो!

कृष्णाकुमारी—मिस्टर शर्मा ने, इसमें सन्देह नहीं, अपने भाषण में विषय का तात्त्विक दृष्टि से प्रतिपादन किया है। यद्यपि उनकी कही हुई अनेक बातों से मैं सहमत नहीं हूँ, तथापि इतना मैं अवश्य मानती हूँ कि यदि महिलायें समाज के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों से स्पर्द्धा करना चाहती हैं तो उन्हें पुरुषों से परित्राण-शूरता के नाम पर किसी बात की आशा न करनी चाहिए, वरन मैं तो मिस्टर शर्मा के भाषण के पश्चात् उस समय का स्वप्न देखने लगी हूँ, जब महिला-वर्ग पुरुष-वर्ग की रक्षा का भार अपने कन्धों पर लेगा।

त्रिवेणीशंकर—(मुस्कराकर) बीच में बोलने के लिए क्षमा। (कृष्णाकुमारी बैठ जाती है।) पुरुष-वर्ग की रक्षा का भार तो एक प्रकार से अब तक भी आप लोगों के कन्धों पर रहा है मिस कृष्णाकुमारी, और भविष्य में भी रहनेवाला है। आप ही तो पुरुषों को उत्पन्न करती हैं। उनकी उस समय रक्षा करती हैं, जब आपके अतिरिक्त कोई उनकी रक्षा का सामर्थ्य ही नहीं रखता। उन्हें पाल-पोसकर आप ही बड़ा करती हैं और तब अपनी रक्षा का भार उनके कन्धों पर रखती हैं। (बैठ जाता है।)

कृष्णाकुमारी—(खड़े होकर) नहीं, पुरुषों के बड़े होने पर भी अब हम उनकी रक्षा करना चाहती हैं। अपनी सीमा-बद्धता से हम ऊब उठी हैं।

त्रिवेणीशंकर—सीमा-बद्धता नैसर्गिक नियम है।

कृष्णाकुमारी—कौन-सी सीमा नैसर्गिक है और कौन-सी कृत्रिम, यह कहना सरल नहीं है मिस्टर शर्मा। खैर, जो कुछ हो, इस स्पर्द्धा में, इस संघर्ष में हमने सोच-समझकर ही पैर रक्खा है और हम पुरुषों के द्वारा अपनी रक्षा नहीं चाहतीं। (विजया से) बहन, मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि तुम अपना प्रस्ताव वापस ले लो। (बैठ जाती है। तालियाँ बजती हैं।)

यवनिका-पतन



प्रलोभन

श्रीयुत [illegible]

वह कभी बेकार नहीं बैठता था। उसकी दूकान सवेरे सात बजे खुल जाती और रात में भी नौ बजे तक खुली रहती। दूकान ही पर बैठे हुए वह घर की व्यवस्था भी कर लेता था। उसके परिवार में उसकी बुड्ढा पत्नी के अतिरिक्त एक छोटी लड़की उसकी नातिन ही थी।

वह लोहे की चीजें बनाया करता था। चाकू और सरौते बनाने में वह विशेष कुशल था। इनके लिए दूर-दूर तक उसका यश भी फैला हुआ था। परन्तु वह जहाँ तक हो सकता, लोहे की किसी भी चीज के बनाने से कभी इनकार नहीं करता था। यद्यपि वह गाँव में रहता था, तथापि कभी-कभी शहर के लोग भी इन चीजों के लिए उसके यहाँ आ जाते थे।

उसकी अवस्था अब पैंसठ वर्ष से ऊपर हो गई थी। उसके मुख की त्वचा कहीं-कहीं इतनी ढीली हो गई थी कि लटकने लगी थी। उसकी नासिका कुछ अधिक फैलकर चौड़ी हो गई थी। उसकी आँखों की ज्योति मन्द पड़ गई थी, इसलिए एक पुराने ढङ्ग का चश्मा उसकी आँखों पर सदा चढ़ा रहता था। उसके लेंस खूब मोटे और कमानियाँ पीतल की थीं। कमानी का जो भाग कान पर चढ़ता और कनपटी से लिपटा रहता था, यत्र-तत्र पसीने के संयोग से हरा हो रहा था।

उसका नाम गंगू था।

सरदी के दिन थे और उस दिन कुछ बदली भी थी। सवेरे के नौ बजने का समय रहा होगा पुनिया उसके पास आ पहुँची। उसके सिर के बाल बिखरे हुए थे, नाक में सोने की एक छोटी नथुनी भी वह पहने हुए थी। अपनी चंचल प्रकृति के अनुसार जमीन पर पैर पटकती हुई आकर वह

गंगू के निकट बोली—नाना, बड़ी अम्मा कहती हैं, आज तो बाजरे के पुवे बनाने का दिन है। और घर में तेल थोड़ा-सा ही है।

यह पुनिया गंगू की नातिन है। जब यह मा के उदर में ही थी तभी इसका पिता रेल से कटकर मर गया था। फिर जब यह पैदा हुई तब तीन वर्ष के बाद इसकी मा भी प्लेग में चल बसी थी। इसका पालन-पोषण इसकी नानी ने ही किया। प्रारम्भ से ही यह अपनी नानी को 'बड़ी अम्मा' कहती आ रही है।

गंगू उस समय एक अस्तुरा बना रहा था। उसे तुरन्त बनवाने के लिए एक नाई भी उसके पास बैठा हुआ था। अस्तुरा क़रीब-क़रीब बन चुका था। केवल उस पर सान रखने भर की देर थी।

गंगू चाहता तो पैसे उस नाई से दिला सकता था। पर उसके ग्राहक का काम अभी पूरा नहीं हुआ था और बिना उसका काम पूरा किये वह उससे पैसे माँगना नहीं चाहता था।

गंगू बोला—ज़रा ठहरना पड़ेगा बिट्टी। अभी पैसे नहीं हैं।

पुनिया लौट गई। नानी से उसने जाकर कह दिया—पैसे नहीं हैं अभी। नाना ने कहा है, ज़रा देर में मिलेंगे।

"वह तो मैं पहले से ही जानती थी" कहती हुई बुढ़िया बड़बड़ाने लगी। जब कभी मैं अपनी ओर से कोई चीज़ खाने या बनाने की बात कहती हूँ तब मुझे इसी तरह का उत्तर मिलता है। आज यह नई बात थोड़े ही है।...अच्छी बात है। तू भी बैठी रह पुनिया, आज कुछ भी खाना बनाने की ज़रूरत नहीं है। इस तरह दो-चार बार मैं जी भर कर झगड़ा कर लेना चाहती हूँ। फिर देखती हूँ, कैसे नहीं इनकी यह आदत छूटती है।

"लेकिन बड़ी अम्मा", पुनिया बोली—"तुम तो भूखी रह जाओगी, पर मुझसे तो नहीं रहा जायगा। मैं क्या खाऊँगी ? कुछ चना-चबेना भी तो आज नहीं है। जाती हूँ, रोटी बनाने। पुवे शाम को बनाऊँगी।"

"क्यों नहीं--क्यों नहीं ? तू भी राँड़ उन्हीं के मन की करेगी। अच्छा-अच्छा, देखती हूँ। तू कैसे रोटी बनाती है! उसी दम--उसी दम मैं तुझे झाड़ू मारकर घर से निकाल दूँगी। शैतान की आँत—मेरा कहना नहीं मानती! जैसे तेरी मा मर गई, वैसे ही तू भी मर जाती तो मुझे चैन मिलता! हरामख़ोर कहीं की!

पुनिया अपनी नानी के स्वभाव से परिचित न हो, सो बात नहीं थी! "परन्तु वह अब निरी छोकरी तो नहीं है। वह दस-ग्यारह बरस की हो गई है। बहुत कुछ समझने लगी है। पड़ोसिनें जिन्हें वह मामी कहती है, उससे कहा करती हैं कि उसका बाप रेल में नौकर था। कहने को वह खलासी था; पर उसकी तनख्वाह ग्यारह रुपया थी। धोखे से वह रेल से कटकर मरा था। इसके लिए उसकी मा को पाँच सौ रुपये भी परवरिश के लिए मिले थे। तिस पर भी उसकी यह नानी उसे हरामख़ोर कहती है। वह इतनी नादान नहीं है, जो इन बातों को समझती न हो। उसके माता-पिता बने होते तो वह क्यों इतनी दुखी होती। अब तक तो उसकी सगाई भी हो गई होती।"

पुनिया मन-ही-मन सोच रही थी--"और कोई बात होती तो दूसरी बात थी, पर नानी ने उससे कहा है—मैं तुझे झाड़ू मारकर निकाल दूँगी।...वह मर जाती तो उसे चैन मिलता।...वह हरामख़ोर है!"

वह एक ओर उदास होकर बैठ रही। उसकी आँखों में आँसू छलछला आये।

[२]

विचार-धारायें अपना अपना काम कर रही थीं।

बुढ़िया धूप में जाकर बैठ रही। उसने निश्चय कर लिया कि वह आज खाना नहीं बनायेगी। देखें, आज बुड्ढ क्या खाये लेते हैं। कुछ उसी को

भूख थोड़े ही सताती है। आख़िर भूख उनको भी तो लगती है। फ़सल की नई चीज़ें क्या उसी को बहुत स्वादिष्ठ लगती हैं? क्या उनकी कभी तबीयत ही नहीं चलती है? ये चीज़ें उन्हें सुहाती नहीं हैं, उन्हें पसन्द नहीं आती हैं, तो बार-बार माँग-माँग कर क्यों खाते हैं—खाते-खाते और दिन से सवाया कैसे खा जाते हैं? बात बस इतनी ही है कि जब कभी मैं कुछ कह डालती हूँ तभी उसका प्रबन्ध नहीं होता।... आज उनकी भी तबीयत ठीक हो जायगी। भूख से जब आँतें कुलकुलाने लगेंगी तब अपने आप दौड़े आयेंगे। सोचेंगे--रोटी तैयार मिलेगी। पर जब यहाँ कहीं कुछ भी भोजन का रङ्ग-ढङ्ग न पायेंगे तब अपने आप होश ठिकाने आ जायेंगे। अगर मुझसे कुछ पूछेंगे तो पहले तो मैं अनसुनी कर जाऊँगी। फिर जब मेरी ज़बान खुलेगी तब उन्हें आटा-दाल का भाव मालूम हो जायगा।

उधर गंगू सोच रहा था – उसका अब चलाचली का समय आ लगा है तो क्या हुआ? अपने काम में वह किसी तरह की कोर-कसर क्यों रक्खे? मर जाने पर यहीं सब तो रह ही जाता है। और न होगा, इतना तो लोग याद रक्खेंगे कि कोई गंगू लुहार था। वह जो काम हाथ में लेता था उसे मेहनत और ईमानदारी से पूरा करता था।...पचासों वर्षों तक लोग याद रक्खेंगे, यह चीज़ गंगू की बनाई हुई है।

नाई मन-ही-मन कह रहा था--बुड्ढ में अजीब सनक है। अस्तुरा बिलकुल साफ़ बन गया है, फिर भी उसको रेते ही डालते हैं—रेते ही डालते हैं।

गंगू अस्तुरे पर सान रखता जाता है। नाई सान के पत्थर का चक्का घुमाये जा रहा है। उससे कभी घर्र-घर्र और कभी सर्र-सर्र का स्वर बराबर निकल रहा है। कभी-कभी उससे चिनगारियाँ भी फूट निकलती हैं। चमड़े की बद्धी के साथ-साथ नाई का कभी दायाँ हाथ सान के पत्थर के नीचे तक, उसकी बग़ल में, जाता है, कभी बाँया। गंगू सोचता जाता है—अभी थोड़ी कसर है। ज़रा-सा और ठीक कर दूँ तो एकदम लक़दक़ हो जायगा। जब पैसे लेता हूँ तब काम भी ऐसा करके देना चाहिए कि उसकी एक निशानी रह जाय। वैसे मैं चाहता तो अब से पहले ही दे सकता था। पैसे भी मिल जाते और अपने काम आते।...बुढ़िया अलग बड़बड़ा रही होगी। वह भला यह काहे को सोचेगी कि मैं जो इतनी मेहनत कर रहा हूँ इसकी भी कुछ क़ीमत है, मैं पागल थोड़े ही हो गया हूँ।...बस ज़रा-सी कसर और है।

इसी समय नाई ने टोंक दिया—दादा, अब तो मैं समझता हूँ, अस्तुरा बन गया।

"हाँ, बन गया, बन क्या ऐसे ही जाता है! बनाने में मेहनत पड़ती है। अभी तो नहीं बन गया, पर हाँ अब बना जाता है। ज़रा हाथ बढ़ाकर चक्का घुमाओ। हाँ, बस ठीक है। जान पड़ता है, तुम थक गये हो। जवान होकर काम पड़ने पर इतनी जल्दी थक जाते हो! मैं जब तुम्हारी उमर का था तब दिन-रात काम में जुटा रहता था और थकता न था, और अब भी मैं जितना काम करता हूँ, दूसरा, मेरी उम्र का, करके दिखा दे तो जानूँ। बस, ठहरो।..अरे, यह नोक रह ही गई। इसको भी ठीक कर दूँ। हाँ, दो हाथ और तो घुमाओ। कोई जानकार देखेगा तो कह देगा—गंगू कारीगर तो ज़रूर था, लेकिन...। और इसी लेकिन ने मुझे चिढ़ है। किसी भी काम में जहाँ यह 'लेकिन' घुसा कि सब मटियामेट हुआ। हाँ, लो; अब यह बन गया। लाओ, अब पैसे दो...। धूप भी निकल आई है। अरे! दोपहर लौटने को हुई। बड़ी देर हो गई! लेकिन ख़ैर, तुम्हारा काम तो पूरा हो गया।

गंगू पैसे लेकर घर चला आया।

[३]

घर आकर वह देखता है, बुढ़िया दूसरी ओर को मुँह किये बैठी है। रोटी तैयार होने के कोई चिह्न नहीं देख पड़ते हैं। आँगन से ही उसने पुकारा—

बिट्टी ! ए बिट्टी !! पुनिया ने सुना, उसने जाना कि उनके नाना उसे पुकार रहे हैं।

गंगू भीतर की ओर चला, उसने देखा पुनिया बैठी हुई है और सिसक रही है।

गंगू उसके निकट चला गया। बोला—अरे! तू तो रो रही है!

वह उसी चारपाई पर बैठ गया और पुनिया को अपने पोपले मुँह से पुचकारने लगा। पुनिया ने रोते-रोते कहा—वह रोटी बनाने जा रही थी, पर बड़ी अम्मा ने...। वह सिसकी भरती हुई और आगे न कह सकी।

"अच्छा, तो यह बात है!" उसे अपनी गोद में लेकर, उसके सिर पर हाथ फेरता हुआ गंगू कहने लगा—"उस चाण्डालिन ने तुझे कुछ बुरा-भला कहा है। तू अभी उसे जानती नहीं है। उसका स्वभाव ही ऐसा चिड़चिड़ा है। बड़ी दुष्ट है वह! ले, ये पैसे ले। तेलिन के यहाँ से तेल झट ले तो आ। मैं तब तक नहा आऊँ। रो मत। रोने की क्या ज़रूरत है? तू अब ऐसी निरी बच्ची नहीं है। मैं जानता हूँ, तू समझदार है। तेरा दोष नहीं है। कड़ी बात तुझे लग जाती है! बस, इतनी ही बात है।

पुनिया ने आँसू पोंछ डाले और झट एक छोटा बर्तन लेकर तेल लेने चली गई।

थोड़ी देर में जब गंगू नहाकर लौटा तब पुनिया पुवे बना रही थी। उसने कहा—आओ नन्ना, पुवे तैयार हैं। बड़ी अम्मा को भी बुला लो।

बुढ़िया मन-ही-मन कह रही थी—कोई अगर मुझसे खाने को कहेगा तो उसे बताऊँगी। ऐसी ऐसी सुनाऊँगी जो धोये न छूटेंगी।

गंगू के मन में आया कि वह बुढ़िया के पास जाय। परन्तु वह न जा सका। क्षण भर स्थिर रहकर प्रसन्नता झलकाता हुआ कुछ सोचता हुआ-सा वह कहने लगा—अरे कहाँ गई? सुनती है कि नहीं?—कानपुर की नुमाइश में मेरे बनाये हुए सरौते पर बीस रुपये का इनाम मिला है। ये देख, पाँच-पाँच रुपयेवाले चार नोट अभी चिट्ठी-रसा दे गया है।

बुढ़िया तुरन्त उठकर आँगन में उसके सामने आती हुई कहने लगी—लाओ, लाओ, मुझे दो—मैं अब हँसुली बनवा लूँ। बुढ़िया का स्वप्न टूट गया, वह सभी कुछ भूल गई।

उसका पोपला मुख प्रसन्नता के अनन्त आलोक से ऐसा फैल गया कि होंठ तो होंठ, उसकी आँखें तक हँसने लगीं और उसी समय गंगू खूब ठट्ठा मारकर हँस पड़ा।

अनुमान

लेखक, कुँवर हरिश्चन्द्रदेव वर्मा 'चातक' कविरत्न

यदि शशि के है हृदय, हृदय में—है कुछ भी छवि की पहचान।
तो वह तुम्हें देखकर नभ से—पाता होगा मोद महान।

सम्भव नहीं देखना नन्दन-वन के—फूलों की मुसकान।
किन्तु तुम्हारे मन्द हास के—वह भी होंगी नहीं समान।

यद्यपि नहीं श्रवण सुन सकते—स्वर्गङ्गा का कलकल गान।
पर उससे मीठी ही होगी—नाथ! तुम्हारी मादक तान॥

वंशी-विजय

लेखक, श्रीयुत अनूप शर्मा "अनूप", एम० ए०, एल-टी०



जब तू अनूप इन्द्रचाप हो सजाती व्योम,
आता रङ्ग मेघ में, प्रसून में, सलिल में।
और जब वादन-निरत बन जाती तब,
होता गान पल्लवों में, वीचि में, अनिल में।
छेड़ती स्व-राग श्रुति-मधुर सरस जब,
व्यापता फलों में स्वाद और स्नेह तिल में।
प्यारी! मेरे काम का कलेजा लीन होता तब,
तेरी अभियन्त्रित व्यथा के उस दिल में॥

श्रावण के घोर घन-मण्डल की छायातले,
कामिनी सुगन्ध फैलती है यथा मन्द-मन्द।
अथवा शरद के सरोरुह-समाज मध्य,
परिमल सौरभ सुनाता कथा मन्द-मन्द।
या कि चञ्चरीक मधु-ऋतु में प्रसव की ज्यों,
कलिका प्रफुल्ल से नसाता प्रथा मन्द-मन्द।
तेरी गान-ज्योति सारा जगत जगाती हुई,
उर-उदयाचल पै आती तथा मन्द-मन्द॥

प्रेम वह तेरा, योग-क्षेम वह मेरा आज,
हिलमिल खिलता प्रसून सौरभीला-सा।
जिसका विलास फैलता है अन्तरिक्ष मध्य,
कालिमा विहाय हो रहा है नभ नीला-सा।
बरस सरसता चुकी है तू निशा में ऐसी,
घास का ग़लीचा हो रहा है वह गीला-सा।
अश्रु-रूप-ओस-बुन्द-आकर में बिम्ब-युक्त
रवि अरुणारुण, निशेश पड़ा पीला-सा॥

रच के प्रथम अति उच्च राशि आनँद की,
तारा-तारा नायक-तरीख चमका दिया।
तुमने छिपाया, पर फूल पै तितलियों ने,
चित्त का निहित भेद प्रकट दिखा दिया।
तो भी आज जाने क्यों समुत्थित तरङ्गवती,
जीवन-नदी को उस ओर पलटा दिया।
गिरता जहाँ पै कर्म-सलिल-प्रपात, जहाँ,
विद्युत ने स-रव प्रकाश प्रकटा दिया॥

चटक चटक पुष्प-राजि खिलती है मञ्जु,
मटक मटक भृङ्ग-भीड़ मँड़राती है।
भटक भटक बादलों के परदों से ज्योति,
छटक छटक क्षिति-मण्डल पै छाती है।
तेरी मुस्कराहट की आहट स-राग बन,
ऐसे अन्त-हीन दिवा-स्वप्न दिखलाती है।
तारों के समेत तारा-अधिप नगण्य होता,
चन्द्र के समेत रवि-छवि छिप जाती है॥

पूर्व और पश्चिम

लेखक, श्रीयुत सत्यकेतु विद्यालंकार

श्रीयुत सत्यकेतुजी इतिहास के पंडित हैं और इस विषय में एक सुन्दर ग्रंथ लिखकर मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त कर चुके हैं। इस लेख में आपने ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि पूर्व और पश्चिम में कोई मौलिक भेद नहीं है और शीघ्र ही पूर्व भी उतनी उन्नति कर जायगा जितनी कि इस समय पश्चिम की है।

East is east and West is west
And never the Twain shall meet.

किपलिंग का यह विचार आज-कल एक सर्वसम्मत सिद्धान्त-सा हो गया है। इसी भाव को हिन्दी के एक कवि ने निम्न-लिखित पंक्ति में प्रकट किया था—

"मैं पूरबी तू पच्छिमी, तेरी मेरी क्या एकता"

पूर्व पूर्व है और पश्चिम पश्चिम है, इन दोनों में एक मौलिक भेद है। प्राच्य और पाश्चात्य सभ्यतायें मौलिक दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न हैं, यह विचार उन्नीसवीं सदी के कुछ योरपीय विचारकों ने पहले-पहल प्रतिपादित किया था। तब से इतिहास, अर्थ-शास्त्र, राजनीति आदि सभी सामाजिक विभागों में यह अपना लिया गया है। इस विचार की पुष्टि में प्रायः निम्नलिखित बातें कही जाती हैं—

(१) पाश्चात्य जातियाँ प्राच्य जातियों के मुक़ाबिले में अधिक उत्कृष्ट हैं। यही कारण है कि सारे संसार में उनकी विजयपताका फहरा रही है। एशिया योरप के अधीन हो गया है। पाश्चात्य देशों के साम्राज्य सब जगह व्याप्त हो गये हैं। जब कभी पाश्चात्य और प्राच्य देशों का मुक़ाबिला हुआ, पाश्चात्य देश विजयी रहे। पश्चिम की तरफ़ से भारत पर जिस जाति ने हमला किया उसे सफलता मिलती रही। यूनानी आये, शक आये, अफ़ग़ान और मुग़ल आये और अब अँगरेज़ आये। पाश्चात्यों के मुक़ाबिले में प्राच्य लोग कभी विजयी नहीं हुए। इतिहास में हमें यही नज़र आता है कि पूर्वी लोग पश्चिमी लोगों से हमेशा मार ही खाते रहे।

(२) पाश्चात्य देशों का जलवायु ठण्डा है। वहाँ मनुष्य स्वाभाविक रूप से परिश्रम करने के लिए प्रेरित होता है। वहाँ के लोग परिश्रमी, बुद्धिमान्, चुस्त और महत्त्वाकांक्षी होते हैं। इसके विपरीत पूर्व के लोग आलसी, सुस्त और थोड़े में संतुष्ट हो जाने-वाले हैं। पूर्व का जलवायु गरम है। वहाँ प्रकृति-माता बहुत उदार है। थोड़े-से श्रम से मनुष्य अपनी आवश्यकतायें पूर्ण कर लेता है। अतः पूर्व के लोग स्वाभाविक रूप से सुस्त और स्वल्प सन्तोषी बन गये हैं।

(३) प्राच्य लोग सांसारिक उन्नति की उपेक्षा कर सदा अध्यात्म की स्वप्नमयी दुनिया में विचरना

पसन्द करते हैं। उन्हें इहलोक की अपेक्षा परलोक का ध्यान अधिक रहता है। इसके विपरीत पाश्चात्य लोग सांसारिक उन्नति को अपना ध्येय समझते हैं। यही कारण है कि पाश्चात्य ने विज्ञान के क्षेत्र में इतनी उन्नति की है। पूर्वी लोग विज्ञान से विमुख हो आध्यात्मिक रहस्यों को ढूँढ़ने में तत्पर रहे हैं।

(४) लोकतन्त्र-शासन, राष्ट्रीयता आदि विचारों का पूर्वी देशों में कभी विकास नहीं हुआ—'कोउ नृप होय हमें का हानी। चेरि छाँड़ि न होउब रानी।' पूर्वी देशों का यही सबसे बड़ा राजनैतिक सिद्धान्त है। 'ओरियन्टल डिस्पोटिज़्म' (प्राच्य निरंकुशतावाद) एक मुहावरा-सा बन गया है। पूर्वी देशों का शासन सदा स्वेच्छाचारी राजसत्ता के सिद्धान्त पर आश्रित रहा है। पूर्वी लोग सदा राजा को ईश्वर समझते रहे हैं। इसके विपरीत पश्चिम लोकतन्त्रवाद का अनुयायी है। ग्रीस और रोम के प्राचीन राज्य लोकतन्त्र थे। वर्तमान योरप 'पार्लियामेन्टरिज़्म' और उत्तरदायित्वपूर्ण शासन का अनुयायी है।

उन्नीसवीं सदी के वातावरण में इन विचारों का विकास बिलकुल स्वाभाविक था। उस समय योरप के लोग बड़ी तेज़ी के साथ उन्नति कर रहे थे। व्यावसायिक क्रान्ति के कारण सर्वत्र कल-कारख़ानों का विकास हो रहा था। रेल, तार, बिजली आदि के आविष्कार हो रहे थे। विज्ञान अपना अद्भुत चमत्कार दिखला रहा था। राजनीति के क्षेत्र में सब जगह लोकतन्त्रशासन और राष्ट्रीयता के लिए संघर्ष चल रहा था। योरपीय जातियाँ बड़ी तेज़ी से अपने साम्राज्यों का विस्तार कर रही थीं। अफ़्रीका के जंगलों में ब्रिटेन, फ़्रांस और बेलजियम के झण्डे फहरा रहे थे। एशिया की प्राचीन सभ्यताओं पर ब्रिटेन, फ्रांस और रूस बड़ी तेज़ी से हाथ साफ़ कर रहे थे। इस दशा में यदि किपलिंग और अन्य योरपीय विचारकों ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तो इसमें आश्चर्य ही क्या?

पाश्चात्य शिक्षा के साथ-साथ भारत में इस



विचार का भी प्रवेश हुआ। हमारे कुछ [illegible]
इस विचार के प्रवाह में इस प्रकार बह गये [illegible]
उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता की तुलना में भारत[illegible]
सभ्यता को बिलकुल तुच्छ समझना प्रारम्भ [illegible]
दिया। जिन लोगों में आत्मसम्मान था उन्हें[illegible]
यह तो सहन नहीं किया कि अपनी सभ्यता [illegible]
पाश्चात्य सभ्यता से हीन समझें, पर वे भी [illegible]
विचार के प्रभाव से बच नहीं सके। इन लोगों [illegible]
कहा—यह तो ठीक है कि पूर्व और पश्चिम ए[illegible]
दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं, पर पूर्वी सभ्यता पश्चि[illegible]
सभ्यता से अधिक उत्कृष्ट है। इन आत्माभिमा[illegible]
देशभक्तों ने पूर्व और पश्चिम के मौलिक भेद [illegible]
एक और ढंग से जनता के सम्मुख उपस्थित कि[illegible]
जो इस प्रकार है—

(१) प्राच्य लोग धर्मप्राण हैं। पाश्चात्य [illegible]
धर्म की ज़रा परवा नहीं करते। प्राच्य लोग अ[illegible]
त्मवादी हैं। पाश्चात्य लोग भौतिकवाद के अनुया[illegible]
हैं। प्राच्य लोग जीवन का उद्देश परमेश्वर की प्रा[illegible]
समझते हैं, जो इस संसार की परम सत्ता [illegible]
मनुष्य-जीवन केवल इसलिए नहीं है कि हम खा[illegible]
पीवें और मौज उड़ावें। इसका कुछ ऊँचा उद्देश [illegible]
है। पाश्चात्य लोग केवल भौतिकवाद के पीछे [illegible]
रहे हैं। प्राच्य लोग भौतिकवाद से ऊँचे उठकर संस[illegible]
के अज्ञात रहस्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करते [illegible]

(२) प्राच्य सभ्यता त्याग पर आश्रित है। पाश्चात्य सभ्यता का मूलमन्त्र भोगवाद है। यही कारण है कि पश्चिम ने विज्ञान, कला-कौशल और व्यावसायिक क्षेत्र में उन्नति की है। पाश्चात्य लोग आवश्यकतायें बढ़ाने में सभ्यता की उन्नति समझते हैं। इसके विपरीत प्राच्य लोग आवश्यकताओं को न्यून-से-न्यून कर देना ही उत्कृष्ट सभ्यता का चिह्न मानते हैं; क्योंकि उनका ध्येय ही त्याग है।

(३) प्राच्य लोग सादगी और तपस्या पर जोर देते हैं। पाश्चात्य लोग फ़ैशन के पीछे भागते हैं।

(४) प्राच्य लोग उस चीज़ को पसन्द करते हैं जो पुरानी हो। उसी सिद्धान्त को प्रामाणिक मानते हैं जो प्राचीन हो। इसके विपरीत पाश्चात्य लोग 'अप-टु-डेट' रहते हैं। उनकी दृष्टि में वह सिद्धान्त ठीक है जो बिलकुल नया हो। प्राच्य लोगों का धर्म, कर्मकाण्ड, विधि-विधान, रहन-सहन बदलता नहीं, क्योंकि वे 'श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त' बातों का अनुसरण करने में ही कल्याण समझते हैं। दूसरी तरफ़ पाश्चात्य लोग सदा 'अप-टु-डेट' रहने के लिए अपने अन्दर निरन्तर परिवर्तन लाते रहते हैं।

हमारी सम्मति में पूर्व और पश्चिम के भेद की ये दोनों ही कल्पनायें ग़लत हैं। पूर्वी और पश्चिमी सभ्यताओं में कोई आधारभूत भेद नहीं है। अपने मत को प्रतिपादित करने के लिए हम दोनों विचारों की क्रमशः आलोचना करते हैं—

(१) पश्चिम के लोग पूर्व के लोगों से अधिक उत्कृष्ट हैं, क्योंकि पश्चिमी लोग सदा विजेता और आक्रान्ता रहे हैं तथा पूर्वी लोग सदा विजित और आक्रान्त, यह विचार इतिहास के उथले अध्ययन का परिणाम है। निस्सन्देह आधुनिक समय में पश्चिमी लोग विजेता हैं, पर वे सदा ऐसे नहीं रहे। इतिहास पर एक दृष्टि डालिए। ग्रीक लोगों पर ईरानी सम्राटों ने बहुत-से हमले किये। डेरियस और जर्क्सीज़ की एशियाई सेनाओं ने योरप में प्रवेश कर मैसिडोनिया, थ्रेस, एथेन्स आदि 'पाश्चात्य' देशों को परास्त किया। एक सदी के लगभग ग्रीक लोग आक्रान्त बने रहे और प्राच्य एशियाई लोग आक्रान्ता। यह ईसवी सन प्रारम्भ होने से चार सदी पहले की बात है। इसके बाद अरब की प्राच्य सेनाओं ने योरप पर आक्रमण शुरू किये। कोन्स्टेन्टिनोपल का 'रोमन-साम्राज्य' अरबों के आक्रमण को नहीं सँभाल सका। अनेक बार अरबों के मुक़ाबिले में रोमन-साम्राज्य की सेनायें परास्त हुईं। अरब लोग आक्रमण करते हुए योरप के पश्चिम में स्पेन और फ़्रांस तक पहुँच गये। स्पेन तो अरब-साम्राज्य का एक प्रान्त ही बन गया था। इसके बाद 'प्राच्य' तुर्कों के हमले योरप पर शुरू हुए। तुर्की सेनायें आक्रमण करती हुईं वीएना तक पहुँच गईं। सदियों तक ग्रीस, रूमानिया, बलगेरिया आदि योरपीय राज्य 'पूर्वी' तुर्क-साम्राज्य के अधीन रहे। मंगोल सम्राटों की विजयपताका नैपियर नदी और कैस्पियन सागर के तट तक फहरानी थी। चीनी सेनापति याब्बू से रोमन-साम्राज्य के सेनापति भय खाते थे। सम्पूर्ण प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास में हमें यही बात दिखाई देती है। इस लम्बे ऐतिहासिक काल में योरप ने एशिया पर कितनी बार आक्रमण किया? एक-दो बार से अधिक नहीं। सिकन्दर की विश्वविजयिनी सेनायें भारत में व्यास नदी से आगे नहीं बढ़ सकीं। उसका विशाल साम्राज्य दस वर्ष तक भी क़ायम नहीं रहा। यही गति अन्य पाश्चात्य आक्रान्ताओं की भी हुई। सत्य यह है कि जितनी बार और जितने समय तक पाश्चात्य जातियों ने पूर्व पर विजय की, उससे बहुत अधिक बार और बहुत अधिक समय तक पूर्व ने पश्चिम को विजय किया।

यदि आधुनिक समय में ऐतिहासिक परिस्थितियों से विवश हो पूर्व पश्चिम से परास्त हो गया तो इससे यह परिणाम कभी नहीं निकाला जा सकता कि पश्चिम पूर्व से उत्कृष्ट है। आधुनिक समय में ही देखिए। जापान ने रूस को बुरी तरह परास्त कर यह भली भाँति सिद्ध कर दिया है कि पूर्व और पश्चिम में कोई मौलिक भेद नहीं है। पूर्वी लोग भी पश्चिमी लोगों का सफलता के साथ मुक़ाबिला कर सकते हैं।

(२) यह ठीक है कि एशिया गरम है और योरप ठण्डा। पर गरमी लोगों को अवश्य ही सुस्त और आलसी बनाती है और सर्दी अवश्य ही चुस्त और परिश्रमी—यह बात नहीं है। यदि भारत की गरमी दुखदायी है तो ब्रिटेन की सर्दी भी कम दुखदायी नहीं है। यदि यहाँ लू तंग करती है तो ब्रिटेन में बरफ़ और कुहरा परेशान करता है। यदि शीत देशों के लोग अवश्य ही परिश्रमी और चुस्त होते तो कश्मीर और तिब्बत में इतनी ग़रीबी और सुस्ती क्यों नज़र आती? कश्मीर का जलवायु ब्रिटेन के मुक़ाबिले में अधिक अच्छा है, शीत भी वहाँ बहुत होता है। यदि शीत और गरमी ही किसी जाति के भाग्यविधायक हैं तो कश्मीरी लोग भी ब्रिटिश लोगों के समान समृद्ध और उन्नत क्यों नहीं हैं? मौर्य और गुप्त सम्राटों के समय में भी भारत का जलवायु गरम ही था। पर उस समय भारत इतना उन्नत क्यों था? ब्रिटेन का जलवायु सोलहवीं सदी में भी इतना ही ठण्डा था। पर उस समय वहाँ रेल और तार क्यों नहीं बने थे?

(३) प्राच्य लोग सांसारिक उन्नति की सर्वथा उपेक्षा कर केवल अध्यात्म की स्वप्नमयी दुनिया में ही निवास करते हैं, यह विचार वे लोग तो रख सकते थे जिन्होंने अठारहवीं सदी में पहले-पहल संस्कृत पढ़ी थी। उस समय उपनिषदों और दर्शन-ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य संस्कृत-ग्रन्थ सामने नहीं आये थे। पर आज जब संस्कृत-साहित्य के विविध अंगों पर ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, यह विचार बहुत ही भद्दा और अनुचित प्रतीत होता है। प्राचीन भारत में अध्यात्म-विद्या के अतिरिक्त इतिहास, पुराण, पितृविद्या, राशिविद्या, दैवविद्या, भूतविद्या, युद्ध-नीति, नक्षत्रविद्या, सर्पविद्या, खनिविद्या, दण्ड-नीति, अर्थशास्त्र, ज्योतिष आदि का भी पर्याप्त विकास हुआ था। शिल्प, चिकित्सा, राजनीति आदि पर प्राचीन भारतीय बहुत ध्यान देते थे। भारतीय विचारकों के कुछ सम्प्रदाय तो ऐसे भी थे जो त्रयी और अध्यात्म को ढोंगमात्र समझते थे और ऐहलौकिक उन्नति को ही चरम लक्ष्य मानते थे। धर्म और अध्यात्म राजनीति के अधीन है यह विचार तो प्राचीन ग्रन्थों में स्थान स्थान पर पाया जाता है।

केवल विचारों में ही नहीं, क्रिया में भी प्राच्य लोग सांसारिक उन्नति को कभी उपेक्षणीय नहीं समझते रहे। गणित, ज्योतिष, चिकित्सा, कलाकौशल, शिल्प आदि में जितनी उन्नति प्राचीन समय में भारत व चीन में हुई, उतनी पाश्चात्य देशों में उस काल में नहीं हुई। भारत का बना कपड़ा पुराने ज़माने में सारे पाश्चात्य में जाता था। गणित और ज्योतिष के प्रारम्भिक सिद्धान्त योरप के लोगों ने अरबों-द्वारा भारत से सीखे थे। यदि आज विज्ञान और शिल्प में योरप एशिया से आगे बढ़ गया है तो यह कोई बड़ी असाधारण बात नहीं है। इतिहास में ऐसा प्रायः होता ही रहता है। ऐतिहासिक परिस्थितियाँ उन्नति की दौड़ में कभी किसी देश को आगे कर देती हैं, कभी किसी को। आज एक प्राच्य देश जापान भी उन्नति के क्षेत्र में पाश्चात्य देशों का पूरी तरह मुक़ाबिला कर रहा है। कौन जानता है कि कल भारत व चीन योरपीय देशों से आगे न बढ़ जायेंगे? आधुनिक समय की दशा से यह सिद्धान्त बना लेना कि प्राच्य लोग केवल अध्यात्म की ही चिन्ता करते हैं, सर्वथा अशुद्ध है।

(४) लोकतन्त्रवाद पाश्चात्य देशों की चीज़ है, यह बात ऐतिहासिक तथ्यों के सर्वथा विरुद्ध है। आज से १½ सदी पूर्व योरप में लोकतन्त्र-शासन कहाँ था? फ़्रांस, जर्मनी, आस्ट्रिया, स्पेन—सर्वत्र एकतन्त्र स्वेच्छाचारी राजा राज्य करते थे। राजा के दैवी अधिकार का सिद्धान्त सर्वत्र प्रचलित था। लुई १६ वाँ बड़े अभिमान के साथ कहा करता था—

'मेरी इच्छा ही क़ानून है'। लोग समझते थे, जिस प्रकार ब्रह्माण्ड पर ईश्वर का एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन है, उसी प्रकार देश पर ईश्वर के प्रतिनिधि राजा का। लोकतन्त्रवाद की प्रवृत्ति फ्रांस की राज्यक्रान्ति से शुरू हुई। पर इस प्रवृत्ति को सफल होने के लिए योरप में कितना समय लगा? १८४८ तक तो इसे प्रायः कहीं भी सफलता नहीं हुई। अब बीसवीं सदी में लोकतन्त्रवाद कुछ-कुछ क्रिया में आने लगा है। सन् १९१८ तक तो योरप के अधिकांश देशों में वंशक्रम से आये हुए राजा ही राज्य करते थे। इँग्लेंड भी सदा से लोकतन्त्रवादी नहीं चला आ रहा। हेनरी (आठवाँ) और जेम्स (द्वितीय) यदि लोकतन्त्रवादी थे तो औरङ्गज़ेब और मुहम्मद तुग़लक लोकतन्त्रवादी क्यों नहीं थे? क्या इँग्लेंड के स्टुअर्ट राजा शासन के सम्बन्ध में वही सिद्धान्त नहीं रखते थे जो फ्रांस के बोर्बोन-वंश के राजा रखते थे?

यह स्पष्ट है कि योरप के इतिहास में लोकतन्त्रवाद एक बिलकुल नई प्रवृत्ति है। सदियों तक योरप में भी 'ओरियण्टल डिस्पोट' राज्य करते रहे। हाँ, यह ठीक है कि प्राचीन योरप में अनेक स्थानों पर लोकतन्त्र-शासन विद्यमान था। एथेन्स, कारिन्थ, रोम आदि नगर-राज्य लोकतन्त्र थे। पर क्या इसी काल में भारत के वज्जि, अन्धक-वृष्णि, मालव, शिवि आदि गणराज्यों में इसी ढंग का लोकतन्त्र शासन नहीं था?

अच्छा, अब अपने देशभक्त भाइयों के मत की समीक्षा कीजिए।

(१) प्राच्य लोग धर्मप्रधान हैं, यह बात ठीक है। यह भी ठीक है कि पाश्चात्य लोग आज धर्म से विमुख हो गये हैं। पर वे लोग सदा धर्म से विमुख नहीं थे। आज से एक सदी पहले तक पाश्चात्य लोग भी धर्म, सम्प्रदाय या मज़हब पर जान देते थे। वे उन्हीं अर्थों में धर्मप्राण थे, जिनमें आज भारत के हिंदू व मुसलमान धर्मप्राण हैं। कौन नहीं जानता कि प्राचीन रोमन लोगों ने ईसाई पादरियों पर कैसे कैसे भयंकर अत्याचार किये थे? हज़ारों ईसाई उस समय रोमन लोगों-द्वारा जीते-जी आग में जलाये जाते थे। मध्यकाल में योरप में जब प्रोटेस्टेन्ट-आन्दोलन शुरू हुआ तब उनके साथ रोमन कैथोलिकों ने कैसा व्यवहार किया? सम्राट् चार्ल्स (पञ्चम) के शासनकाल में अकेले नीदरलेंड में ५० हज़ार लोग केवल इसलिए आग में जलाये गये, क्योंकि वे प्रोटेस्टेन्ट थे। इन्क्विज़िशन कोर्टों-द्वारा प्रोटेस्टेन्ट लोगों पर जो क्रूर अत्याचार किये जाते थे उनसे योरपीय इतिहास का कौन पाठक अपरिचित है? इँग्लेंड में ही देखिए। मेरी और एडवर्ड (छठे) के शासनकाल में विधर्मियों पर कैसे-कैसे अत्याचार किये गये। इँग्लेंड तक में कोई ऐसा व्यक्ति किसी भी राजकीय पद पर नियत नहीं किया जा सकता था जो राजधर्म को न मानता हो और यह क़ानून उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भिक भाग तक विद्यमान था! अभिप्राय यह है कि पाश्चात्य लोग भी उन्हीं संकीर्ण अर्थों में धर्मप्रधान व धर्मप्राण रहे हैं जिनमें हमारे हिन्दू व मुसलिम भाई आज-कल हैं। बल्कि भारत में तो इतने संकुचित और विकृत रूप में धर्मप्राणता कभी रही ही नहीं—न आज-कल है, और न पहले कभी थी।

योरप में भी धर्म का प्रायः वही रूप रहा है जो हमारे देश में है। वहाँ के लोग भी पुरोहितों के प्रति अन्धश्रद्धा रखते रहे हैं—वापी, कूप, देवमन्दिर आदि के निर्माण में पुण्य तथा स्वर्ग-प्राप्ति समझते रहे हैं। वर्तमान वैज्ञानिक युग ने योरप की धार्मिक भावना को बहुत धक्का पहुँचाया है। वहाँ अब कट्टरता के स्थान में उदारता आगई है। पर क्या यही प्रक्रिया धीरे धीरे एशिया में भी नहीं हो रही है? क्या तुर्की, ईरान आदि में भी धर्म का वही रूप नहीं आता जा रहा जो योरप में आ चुका है?

पर शायद इस मत के प्रतिपादक 'धर्मप्रधान' शब्द का प्रयोग इन संकुचित अर्थों में नहीं करते। उनका अभिप्राय यह है कि प्राच्य लोग धर्म के उदात्त स्वरूप को दृष्टि में रखकर सदा परमतत्त्व की खोज में व्याप्त रहे हैं। उन्होंने भौतिकवाद और ऐहलौकिक सुखों को हेय समझकर पारलौकिक सुख की सदा चिन्ता की है। ठीक है। इस दृष्टि से भी हमें विचार करना है। इसकी समीक्षा हम यहाँ दूसरी बात के साथ में करेंगे।

(२) यह ठीक है कि पाश्चात्य लोग भौतिकवाद के अनुयायी हैं, पर कब से? आज से केवल १½ सदी पहले व्यावसायिक क्रान्ति से पूर्व योरप ने भौतिकवाद के क्षेत्र में क्या उन्नति की थी? न वहाँ रेल थी, न तार, न बड़े-बड़े कल-कारख़ाने थे। चरखे और तकवे पर सूत कतता था, वायु व पाल से जहाज़ चलते थे। घोड़े से ज़्यादा तेज़ चलनेवाली कोई सवारी नैपोलियन के ज़माने तक भी योरप के पास नहीं थी। आज से दो सदी पूर्व योरप की अपेक्षा भारत अधिक भौतिकवादी था। औरङ्गज़ेब के ज़माने तक इँग्लेंड की अपेक्षा भारत में अधिक बढ़िया कपड़ा बनता था। भारत के जहाज़ ज़्यादा बड़े और आरामदेह होते थे। भारत के शिल्पी और व्यापारी अधिक कुशल और उत्साही होते थे। जिस युग में भारत में लाल क़िला और ताजमहल बने, उस समय योरप के शिल्पी ऐसी इमारतें तैयार नहीं कर सकते थे। अधिक प्राचीन इतिहास में जाइए। जब भारत के शिल्पी सारनाथ में उस अशोकस्तम्भ का निर्माण कर रहे थे, उस समय ब्रिटेन और फ्रांस के निवासी जंगली और असभ्य दशा से ऊँचे नहीं उठे थे। यह बात बिलकुल ग़लत है कि भौतिकवाद के क्षेत्र में योरप भारत या प्राच्य देशों से सदा आगे रहा है। आज वह बेशक आगे है। ऐतिहासिक परिस्थितियों से वह कुछ समय के लिए अवश्य आगे होगया है। पर इससे कोई सिद्धान्त नहीं स्थिर किया जा सकता है।

आध्यात्मिकता की स्वप्नमयी दुनिया में विचरते रहने का सौभाग्य भी केवल प्राच्य लोगों को प्र नहीं है। प्राचीन ग्रीस के ऋषि-मुनि भी परमत की खोज में बड़े उत्साह के साथ व्याप्त रहते मध्यकालीन योरप में बहुत-से ऐसे सन्त-महात्मा हैं जो सांसारिक सुखों को लात मारकर त्याग जीवन व्यतीत करते थे। आज भी योरप में लोग मौजूद हैं जो भोग की अपेक्षा त्याग अधिक महत्त्व देते हैं। भारत में ही ऐसे लोग अधिक हैं? सच्चे अर्थों में त्यागी तो कोई मिलेंगे। ऐसे लोग अवश्य हैं जो गेरुवे कपड़े रँ साधु बन जाते हैं और गृहस्थों की अपेक्षा अ सुख प्राप्त करते रहते हैं। यही हालत योरप वहाँ के रोमन कैथोलिक मठ बहुत-से साधु साधुनियों से सदा भी भरे रहते हैं। मध्यकाल इन ईसाई साधुओं की संख्या लाखों तक रहती थी। ये सब साधु भी यही कहते थे— तुच्छ भोगमय जीवन को लात मारकर त्याग आश्रय लिया है। हमारा उद्देश आवश्य बढ़ाना नहीं, पर उन्हें कम-से-कम करना है।

प्राच्य देशों के सर्वसाधारण नागरिक त्यागवादी नहीं हैं, उनका जीवन भी परमत खोज में व्यतीत नहीं होता। वे रुपये-पैसे के हाथ-पैर पटकते हैं, कमाई के लिए लहू-पसीन करते हैं। हाँ, सुबह-शाम राम का नाम लेते हैं संसार की परमशक्ति के डर से दबे अपना व्यतीत करते हैं। यही दशा पाश्चात्य लोगों की यह ठीक है, उनमें से बहुत-से पढ़े-लिखे सुसमृद्ध आदमी धर्म और ईश्वर से विमुख हो रहे हैं। पर क्या यही रुख हमारे देश के नवयुवकों का नहीं है? विज्ञान और कला के प्रचार के साथ-साथ हमारे भारतीय युव भी उसी प्रकार तेज़ी के साथ परिवर्तन आ जैसा कि अब से कुछ समय पूर्व योरप में आय

(३) अभी तक प्राच्य लोग सादे और इसलिए हैं, क्योंकि वे ग़रीब हैं। ग़रीबी के

सादगी और तपस्या स्वयं आ जाती है। पर भारत, चीन और जापान में जो लोग अच्छे अमीर हो गये हैं, क्या वे मोटर नहीं रखते, बढ़िया बढ़िया कपड़े नहीं पहनते, मौज-बहार में अपना जीवन व्यतीत नहीं करते? भारत के ही उन समृद्ध घरों के लड़कों-लड़कियों को देखिए जो कालेजों में शिक्षा पा रहे हैं। उनमें कितना फ़ैशन है? त्याग, तपस्या और सादगी उनमें कहाँ है? यह कहा जा सकता है कि ये परिवर्तन उनमें पाश्चात्यों की नक़ल से आ रहे हैं। पर यदि पूर्व और पश्चिम में कोई मौलिक भेद है तो इतना परिवर्तन नक़ल से भी नहीं आना चाहिए। अब से कुछ समय पूर्व तक योरप के लोग भी बड़े सादे थे, उनकी स्त्रियाँ भी पर्दा करती थीं, कपड़ों से सारे तन को भलीभाँति ढँकती थीं। मर्द भी मोटा पहनते और मोटा खाते थे। पर आधुनिक युग में जब वहाँ पैसे की वृद्धि हुई, अमीरी के साथ फ़ैशन बढ़ता चला गया। यही प्रक्रिया अब भारत तथा अन्य प्राच्य देशों में हो रही है। वहाँ भी रुपये के साथ साथ फ़ैशन तेज़ी से बढ़ रहा है।

(४) आधुनिक युग से पूर्व योरप भी 'श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त' बातों का अनुसरण किया करता था। मध्यकाल के ईसाई पण्डित लकीर के फ़क़ीर थे। धर्म के क्षेत्र में कोई भी नया मन्तव्य उन्हें सह्य नहीं था। सत्य क्या है, यह जानने के लिए वे परीक्षणों या वैज्ञानिक विचारों का आश्रय नहीं लेते थे। अपितु बाइबिल और उसके भाष्यों की पंक्तियाँ 'लगाया' करते थे। जैसे आज-कल काशी के पण्डित सूत्र, भाष्य, वृत्ति आदि की पंक्तियों की बड़ी बारीकी से समीक्षा करते हैं, वैसे ही तब रोम, पेरिस व आक्सफ़ोर्ड के पण्डित करते थे। केवल धार्मिक क्षेत्र में ही नहीं, वैज्ञानिक क्षेत्र में भी यही हाल था। पृथ्वी गोल नहीं है, अपितु चपटी है, क्योंकि बाइबिल में ऐसा लिखा है। पृथ्वी सूर्य के चारों तरफ़ नहीं घूमती, अपितु सूर्य पृथ्वी के चारों तरफ़ घूमता है, क्योंकि प्राचीन शास्त्रों का यही मन्तव्य है। जब कुछ विचारकों ने बाद को पहले-पहल इन 'शास्त्रीय' मन्तव्यों के विरोध में आवाज़ उठाई तब वे जीते-जी आग में जलाये गये। योरप में जो आज 'श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त' व्यवस्था उठकर 'अप-टु-डेट' होने का युग आ गया है, इसके लिए बीसों वैज्ञानिकों को अपने जीवन की बलि देनी पड़ी है।

और क्या आज प्राच्य देशों में प्राचीन रूढ़ियों के विरुद्ध एक घोर संघर्ष नहीं चल रहा है? आधुनिकता (मोडर्निज़्म) की लहर क्या पूर्व को उसी प्रकार आन्दोलित नहीं कर रही है, जैसे योरप को कर चुकी है? क्या आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से परिचित प्राच्य देशों के नवयुवक प्राचीन विश्वासों और रूढ़ियों को छोड़कर नवीन सिद्धान्तों की ओर नहीं झुक रहे हैं?

वास्तविकता यह है कि पूर्व और पश्चिम में कोई मौलिक भेद नहीं है। भेद प्राचीन, मध्यकालीन और अर्वाचीन सभ्यताओं में होता है। समय समय पर युग-भेद से धर्म, सभ्यता और संस्कृति की प्रवृत्तियों में भेद आता रहता है। यदि सब देशों में यह प्रगति एक साथ होती तो हमें विविध देशों की विविध सभ्यतायें दृष्टिगोचर न होतीं। पर क्योंकि उन्नति की दौड़ में कुछ देश आगे निकल जाते हैं और कुछ पीछे रह जाते हैं, इसलिए हमें उनकी सभ्यता में भेद नज़र आता है। इतिहास पर दृष्टि डालिए। प्राचीन भारत और प्राचीन ग्रीस (योरप) की तुलना कीजिए। राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक—सभी क्षेत्रों में हमें समता नज़र आवेगी। ईसवी सन् से पाँच सदी पूर्व दोनों देशों में नगर-राज्य थे, दोनों में लोकतन्त्र-शासन था, दोनों में देवी-देवताओं की पूजा थी, कर्मकाण्ड का महत्त्व था, दोनों में विविध ऋषि-मुनि अध्यात्म तथा गहन तत्त्वों की चिन्ता में व्यापृत रहते थे। दोनों में शिल्पी लोग सुन्दर इमारतें और महीन वस्त्र बनाने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। दोनों देशों की सभ्यता एक-सी थी। यदि प्राचीन ग्रीस और प्राचीन भारत की सभ्यताओं में कोई मौलिक भेद ढूँढ़ना हो तो उसमें कभी सफलता न होगी।

ऐसे ही मध्यकाल पर आइए। इस काल में योरप में सर्वत्र एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन प्रचलित था, सामन्तपद्धति (फ़्यूडल सिस्टम) विद्यमान थी। समाज में ऊँच-नीच का भेद था। धर्म के क्षेत्र में लोग अन्धविश्वासी तथा पुरानी रूढ़ियों व परम्पराओं के अनुयायी थे। ज्ञान-विज्ञान का विकास बन्द था। ठीक यही हालत भारत तथा अन्य प्राच्य देशों में थी। आधुनिक काल का प्रारम्भ अठारहवीं सदी में हुआ। इस काल में कुछ समय के लिए योरप और एशिया की सभ्यता में भारी भेद नज़र आने लगा। यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि वर्तमान उन्नति का प्रारम्भ पश्चिमी योरप से हुआ है। पर धीरे धीरे प्राच्य देशों ने भी इन सब बातों को अपना लिया। विचार व ज्ञान किसी देश-विशेष की सम्पत्ति नहीं होता। एक तथ्य का पता एक देश लगाता है, दूसरा तथ्य दूसरे देश में आविष्कृत होता है। आज एशिया के देश भी ज्ञान-विज्ञान में योरप की बराबरी करने लगे हैं। दोनों की सभ्यता एक-सी नज़र आने लगी है। जापान और ब्रिटेन में क्या मौलिक भेद आज दिखाया जा सकता है? यह निश्चित है कि आधी सदी नहीं तो एक सदी के अन्दर अन्दर एशिया के अन्य सब देश भी जापान के समान ही उन्नति कर जायँगे। तब पूर्व और पश्चिम में क्या भेद रहेगा?

ऐतिहासिक परिस्थितियों से जब कोई देश अ
देशों की अपेक्षा अधिक तेज़ी से उन्नति करने ल
है तब कुछ समय के लिए वह दूसरों की अ
अधिक उत्कृष्ट प्रतीत होने लगता है। पर शीघ्र
दूसरे देश भी उस 'लेवल' (स्थिति) पर पहुँच
हैं। सातवीं सदी में अरब लोगों ने कुछ सम
लिए असाधारण उन्नति कर ली थी। ज्ञान, विज्ञ
राजनीति, धर्म, शिल्प सब क्षेत्रों में अरब लोग अ
बढ़ गये थे। एक ऐतिहासिक के अनुसार '
योरप में अविद्यान्धकार छाया हुआ था, तब इ
का दीपक अपनी दीप्ति से अरब को प्रकाशित
रहा था।' क्या उस समय यह सिद्धान्त बन
ठीक होता कि अरब लोग योरपीय लोगों के मुक़ा
में अधिक उत्कृष्ट हैं, और इसी लिए अरब ह
शासक और विजेता रहेंगे और योरपीय सदा शा
और विजित? आधुनिक समय में उन्नति प
पश्चिमी योरप से शुरू हुई, इसी लिए कुछ स
के लिए पश्चिमी योरप के देश सभ्यता, विज्ञ
राजनीति आदि के क्षेत्र में पूर्वी लोगों से आगे
गये। उन्नीसवीं सदी योरपीय लोगों के इस सामा
उत्कर्ष का युग था। इसी लिए तब पूर्व और पश्चि
के सम्बन्ध में इस सिद्धान्त का विकास हु
जिसकी इस लेख में हमने समीक्षा की है। पर
सिद्धान्त ग़लत है, और पश्चिम का यह उत्कर्ष के
सामाजिक है, इस बात में ऐतिहासिक विवेचन
कोई सन्देह नहीं रह जाता।

मंचूरिया



[मुक्‌दन् (एक मीनार का खंडहर)]

लेखक,

श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन

श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन ने जापान से कोरिया होते हुए मंचूरिया की यात्रा की थी। मंचूरिया में जापान का प्रभाव कितने वेग से बढ़ रहा है यह आपने अपनी आँखों से वहाँ जाकर देखा। इस लेख में आपने मंचूरिया की वर्त्तमान स्थिति का बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया है।

(१) मुक्‌दन

अन्तुङ् शहर यलु नदी के दाहने तट पर बसा है। समुद्र यहाँ से बहुत दूर नहीं है, और छोटे जहाज़ अन्तुङ् तक पहुँच जाते हैं। अनाज के निर्यात के अतिरिक्त यलु-द्वारा ऊपर की बहुत-सी लकड़ी लाई जाती है, और वह यहाँ से भिन्न-भिन्न जगहों को भेजी जाती है। अब तो यहाँ कितनी ही नई चिमनियाँ भी आकाश को धूमिल करती जा रही हैं। अन्तुङ् दिन पर दिन उन्नति कर रहा है। शहर की जन-संख्या १,३४,२०० है, जिसमें ११,७७१ जापानी हैं।

यलु के पार होते ही सफ़ेद रंग लुप्त हो जाता है, और उसकी जगह नीली पोशाकवाले चीनी किसान दिखाई पड़ने लगते हैं। भूमि पर अब भी जहाँ-तहाँ पहाड़ ही पहाड़ दिखाई पड़ते हैं, किन्तु अब खेत अधिक हो गये हैं। आखिर आलसी कोरियनों के देश से निकल कर मेहनती चीनियों के प्रदेश में आ न गये हैं। खेती में बाजरे, उड़द, सोया, सवाँ, तथा कितनी ही भाँति की साग-सब्ज़ियाँ पाई जाती हैं। वर्षा का दिन होने से एक अंगुल भी भूमि ऐसी नहीं दिखाई पड़ती जो हरियाली से आच्छादित न हो। वृक्षों में सूचीपत्रक देवदार की जाति भी शामिल है। कोई स्टेशन मुश्किल से मिलता है जहाँ हमें जापानी नर-नारी न दिखाई पड़ते हों। यह बतला रहा था कि मंचूरिया में जापानी प्रभाव कितने वेग से बढ़ रहा है। हर जगह की तरह यहाँ भी ट्रेनों में भोजन-गाड़ी है, जिसमें जाकर मुसाफ़िर भोजन कर सकते हैं। भोजन जापानी और योरपीय दोनों ही प्रकार का मिलता है। इनके अतिरिक्त लकड़ी के बक्स में रखकर बिकता हुआ सस्ता बिन्तो (= भोजन) भी सुलभ है। सस्तापन तो जापानी-शब्द का दूसरा पर्याय ही है।



[चाङ्-सूर्य-लियाङ्—मंचूरिया के भूतपूर्व तानाशाह अपनी पत्नियों के साथ।]

दोपहर बाद हम अन्शाङ् स्टेशन पर पहुँचे। यहाँ लोहे का कारखाना है। यहाँ के खनिज पत्थरों में लोहे का परिमाण अधिक तो नहीं है, तो भी जापान को अपनी लोहे की कमी तो किसी न किसी तरह पूरी करनी ही है। अब मंचूरिया के पश्चिमी भाग में भी अच्छे लोहे की खानें मिल गई हैं, जिन्हें जापान शीघ्र ही अपना कार्यक्षेत्र बनाने जा रहा है।

यलु नदी के इस पार एक बात और देखी। जहाँ कोरिया के स्टेशनों पर साधारण पुलिस का भी अभाव-सा था, वहाँ इधर मंचूरिया के हर एक स्टेशन पर मोर्चेबंदी है। दीवारों पर बंदूक़ के सूराख़ हैं तथा कहीं कहीं गढ़े खोद कर बालू की बोरियाँ रखकर मोर्चेबंदी की गई है। और सशस्त्र जापानी और मंचूरियन सिपाही तो हर स्टेशन पर हैं ही। जापानी और मंचूरियन (चीनी) सिपाही में कितना फ़र्क़ है, इसका उदाहरण भी मिल गया। एक स्टेशन पर ट्रेन ३-४ मिनट के लिए खड़ी हुई थी। जापानी सिपाही गाड़ी के पहुँचने पर वहाँ मौजूद था; और चीनी सिपाही जब ट्रेन सीटी देकर खिसकने लगी तब तो दौड़ता हाँफता पहुँचा। पेटी उसने अब पहुँचकर बाँधी। शाङ्घाई की भाँति मंचूरिया में भी चीनी स्त्रियों में बाल कटाने की बीमारी बुरी तरह से फैली है। जापानी स्त्रियाँ यहाँ भी केशवती ही अधिक देखी जाती हैं, और यदि किसी ने बाल कटाया भी तो आधा तीतर आधा बटेरवाला फ़ैशन नहीं स्वीकार किया है।

१½ बजे हमारी ट्रेन मुक्‌दन् स्टेशन पर पहुँची। उतर कर बहुत तरद्दुद करने की आवश्यकता नहीं हुई। हिगाशी होङ्गान् जी के मंदिर के पुरोहित श्री कोर्यो ने आकर नमस्कार किया। सोल् से उन्हें चिट्ठी और तार दोनों मिल चुके थे। सीधे मोटर से उनके मंदिर पर पहुँचे। यह सारा मुहल्ला ही जापानियों का है। वैसे दक्षिण-मंचूरिया-रेलवे—जो कि जापानी सम्पत्ति है—का एक केन्द्रीय स्थान होने से यहाँ पहले भी जापानियों की संख्या काफ़ी थी, किन्तु सितम्बर १९३१ के बाद से यह संख्या तिगुनी से ऊपर हो गई है। पहले यहाँ २० हज़ार जापानी थे, और अब वे साठ हज़ार से ऊपर हैं। सारे शहर की आबादी साढ़े चार लाख से ऊपर है।

मंचूरिया



[मुकदन (एक मीनार का खंडहर)]

लेखक,
श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन

श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन ने जापान से कोरिया होते हुए मंचूरिया की यात्रा की थी। मंचूरिया में जापान का प्रभाव कितने वेग से बढ़ रहा है यह आपने अपनी आँखों से वहाँ जाकर देखा। इस लेख में आपने मंचूरिया की वर्त्तमान स्थिति का बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया है।

(१) मुकदन

अन्तुङ् शहर यलु नदी के दाहने तट पर बसा है। समुद्र यहाँ से बहुत दूर नहीं है, और छोटे जहाज़ अन्तुङ् तक पहुँच जाते हैं। अनाज के निर्यात के अतिरिक्त यलु-द्वारा ऊपर की बहुत-सी लकड़ी लाई जाती है, और वह यहाँ से भिन्न-भिन्न जगहों को भेजी जाती है। अब तो यहाँ कितनी ही नई चिमनियाँ भी आकाश को धूमिल करती जा रही हैं। अन्तुङ् दिन पर दिन उन्नति कर रहा है। शहर की जन-संख्या १,३४,२०० है, जिसमें ११,७७१ जापानी हैं।

यलु के पार होते ही सफ़ेद रंग लुप्त हो जाता है, और उसकी जगह नीली पोशाकवाले चीनी किसान दिखाई पड़ने लगते हैं। भूमि पर अब भी जहाँ-तहाँ पहाड़ ही पहाड़ दिखाई पड़ते हैं, किन्तु अब खेत अधिक हो गये हैं। आख़िर आलसी कोरियनों के देश से निकल कर मेहनती चीनियों के प्रदेश में आ न गये हैं। खेती में बाजरे, उड़द, सोया, जवाँ, तथा कितनी ही भाँति की साग-सब्ज़ियाँ पाई जाती हैं। वर्षा का दिन होने से एक अंगुल भी भूमि ऐसी नहीं दिखाई पड़ती जो हरियाली से आच्छादित न हो। वृक्षों में सूचीपत्रक देवदार की जाति भी शामिल है। कोई स्टेशन मुश्किल से मिलता है जहाँ हमें जापानी नर-नारी न दिखाई पड़ते हों। यह बतला रहा था कि मंचूरिया में जापानी प्रभाव कितने वेग से बढ़ रहा है। हर जगह की तरह यहाँ भी ट्रेनों में भोजन-गाड़ी है, जिसमें जाकर मुसाफ़िर भोजन कर सकते हैं। भोजन जापानी और योरपीय दोनों ही प्रकार का मिलता है। इनके अतिरिक्त लकड़ी के बक्स में रखकर बिकता हुआ सस्ता बिन्तो (= भोजन) भी सुलभ है। सस्तापन तो जापानी-शब्द का दूसरा पर्याय ही है।

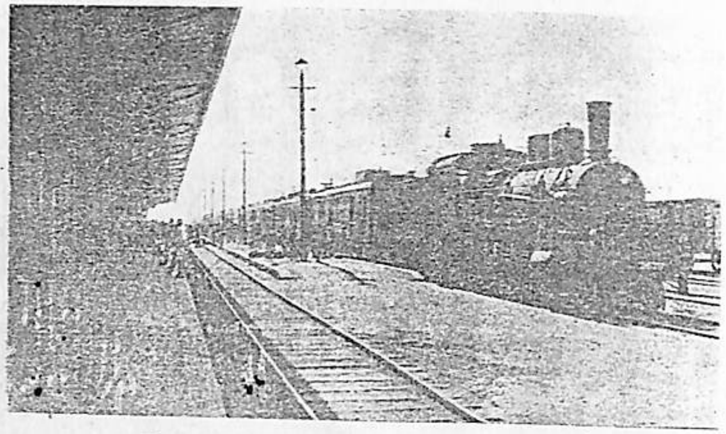


[चाङ्-सूई-लियाङ्—मंचूरिया के भूतपूर्व तानाशाह अपनी पत्नियों के साथ।]

दोपहर बाद हम अन्शङ् स्टेशन पर पहुँचे। यहाँ लोहे का कारखाना है। यहाँ के खनिज पत्थरों में लोहे का परिमाण अधिक तो नहीं है, तो भी जापान को अपनी लोहे की कमी तो किसी न किसी तरह पूरी करनी ही है। अब मंचूरिया के पश्चिमी भाग में भी अच्छे लोहे की खानें मिल गई हैं, जिन्हें जापान शीघ्र ही अपना कार्यक्षेत्र बनाने जा रहा है।

यलु नदी के इस पार एक बात और देखी। जहाँ कोरिया के स्टेशनों पर साधारण पुलिस का भी अभाव-सा था, वहाँ इधर मंचूरिया के हर एक स्टेशन पर मोर्चेबंदी है। दीवारों पर बंदूक़ के सूराख़ हैं तथा कहीं कहीं गढ़े खोद कर बालू की बोरियाँ रखकर मोर्चेबंदी की गई है। और सशस्त्र जापानी और मंचूरियन सिपाही तो हर स्टेशन पर हैं ही। जापानी और मंचूरियन (चीनी) सिपाही में कितना फ़र्क़ है, इसका उदाहरण भी मिल गया। एक स्टेशन पर ट्रेन ३-४ मिनट के लिए खड़ी हुई थी। जापानी सिपाही गाड़ी के पहुँचने पर वहाँ मौजूद था; और चीनी सिपाही जब ट्रेन सीटी देकर खिसकने लगी तब तो दौड़ता हाँफता पहुँचा। पेटी उसने अब पहुँचकर बाँधी। शाङ्घाई की भाँति मंचूरिया में भी चीनी स्त्रियों में बाल कटाने की बीमारी बुरी तरह से फैली है। जापानी स्त्रियाँ यहाँ केशवती ही अधिक देखी जाती हैं, और यदि किसी ने कटाया भी तो आधा तीतर आधा बटेरवाला फ़ै[शन] नहीं स्वीकार किया है।

१½ बजे हमारी ट्रेन मुकदन् स्टेशन पर पहुँची। उ[स]... कर बहुत तरद्दुद करने की आवश्यकता नहीं हु[ई]। हिगाशी होङ्गान् जी के मंदिर के पुरोहित श्री सार्यो ने आ[कर] नमस्कार किया। सोल् से उन्हें चिट्ठी और तार दोनों [मिल] चुके थे। सीधे मोटर से उनके मंदिर पर पहुँचे। सारा मुहल्ला ही जापानियों का है। वैसे दक्षिण-मंचूरि[या] रेलवे—जो कि जापानी संपत्ति है—का एक केन्द्रीय स[्थान] होने से यहाँ पहले भी जापानियों की संख्या काफ़ी [थी], किन्तु सितम्बर १९३१ के बाद से वह संख्या तिगुनी से उ[पर] हो गई है। पहले यहाँ २० हज़ार जापानी थे, और [अब] वे साठ हज़ार से ऊपर हैं। सारे शहर की आबादी स[ात]... चार लाख से ऊपर है।



[सिङ्-किङ्—इसी रेलवे को सोवियट से खरीदा गया है।]

था। जेनरल महाशय जेहोल्-प्रान्त के गवर्नर थे, वे वहीं रहते थे। एकाएक जापानियों ने हमला बोल दिया। संग्रहीत वस्तुओं में मूर्ति, चित्रपट, चीनी बर्तन, पत्थर का छापा आदि हैं। कला की दृष्टि से ये सभी वस्तुएँ बहुमूल्य हैं। इस तिमहले मकान के सभी कमरे इन संग्रहों से भरे हैं। जेनरल ताङ् का यह काम तो ज़रूर चिरस्थायी रहेगा।

चीन का सम्राट् होने से पूर्व मंचूवंश की राजधानी मुकदन् था। मंचूवंश-संस्थापक नू-हाचू वहीं रहते थे। उनके पोते शुन्-ची के समय में राजधानी पेकिङ् हो गई, और वहीं से १६४४ से १९११ ईसवी तक मंचूवंश ने सारे चीन पर शासन किया। पुराने मंचू-राजप्रासाद मुक्दन् में आज भी मौजूद हैं। मंचूरिया के वर्तमान राजा खाङ्-ते अथवा पु-यि चीन के दसवें और अन्तिम मंचू-सम्राट् थे, जिन्हें गद्दी से हटाकर चीन ने प्रजातंत्र की स्थापना की। उक्त प्रकार से मुक्दन् मंचूवंश के लिए बहुत महत्त्व रखता है। किन्तु मंचूरिया में फिर से राजतंत्र स्थापित होने पर मुक्दन् को राजधानी बनने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ; और उसकी जगह एक गुमनाम नई आबादी चाङ्-चुङ् 'सिङ्-किङ्' के नाम से राजधानी बन गया। कारण, सिङ्-किङ् का अधिकेन्द्रीय होना तथा नये सिरे से नगर बनाने में योजना के अनुसार निर्माण का सुभीता होना है।

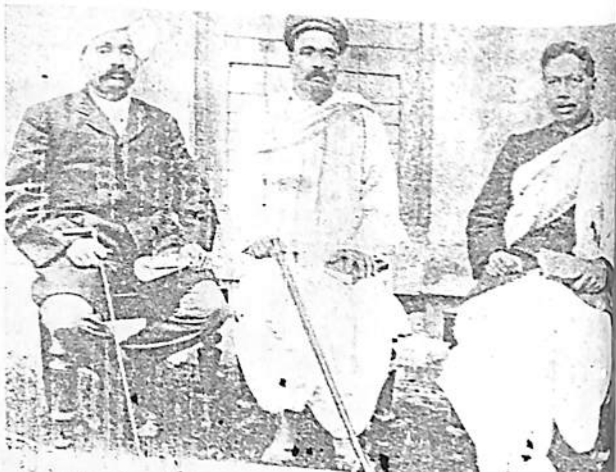
२० अगस्त को मुक्दन् देखने निकले। पहले राष्ट्रीय संग्रहालय गये। वहाँ की सभी संग्रहीत वस्तुएँ चाङ्-सो-लिन् के पार्श्वचर जेनरल ताङ्-यु-लिन् ने एकत्र की थीं। मंचूरिया दखल होते समय अभी मकान अधूरा ही

वहाँ से हम प्राकारवेष्टित पुराने नगर में गये। अन्य पुराने नगरों की भाँति इसकी गलियाँ भी बहुत सँकरी हैं। आज-कल बरसात के दिन में तो कीचड़ के मारे चलना मुश्किल है। हम लोग पहले पुराने राजप्रासाद में गये। आज-कल यह प्रासाद संग्रहालय (जादूघर) के रूप में परिणत हो गया है। सिंहासनवाले कमरे में सम्राट् के उपयोग की बहुत-सी चीज़ें हैं। एक कमरे में चंगेज़ और उसके मंगोलवंश के सम्राटों तथा सम्राज्ञियों के चित्र टँगे हैं। दूसरे कमरे में उसके उत्तराधिकारी मिङ्वंश के राजा-रानियों के चित्र हैं। तीसरे में मंचूवंश के गद्दीधरों के हैं। भिन्न-भिन्न समय के हथियारों तथा वेषभूषा के भी बहुत-से नमूने हैं।

मंचूरिया के शासक चाङ्-सो-लिन और उनके पुत्र चाङ्-सुये-लियाङ् का भी शासन-केन्द्र मुक्दन ही रहा। हम लोग उस महल को भी देखने गये, जिसमें वे रहा करते थे। पास में सिपाहियों की बारकें तथा दूसरी सरकारी इमारतें हैं। शहर के बाहर चाङ् का बारूदखाना था। इसकी तैयारी में चाङ् पिता-पुत्र ने रुपयों को पानी की भाँति बहाया था, किन्तु जापान के मुक़ाबिले के समय चाङ् पेकिङ् की सैर कर रहे थे, और यह सारा बारूद-



कांग्रेस के वर्तमान सभापति बाबू राजेन्द्रप्रसाद जिन्होंने स्वतंत्रता के मनाने का आदेश दिया।



कांग्रेस के लाल-बाल-पाल—लाला लाजपतराय, बाल गंगाधर तिल[क] विपिनचन्द्रपाल। ये कांग्रेस के लाल-बाल-पाल कहलाते थे और किसी ... कांग्रेस के राजनैतिक क्षेत्र में इनकी बड़ी धूम थी।



२२ वीं कांग्रेस (कलकत्ता १९०६) के प्रमुख व्यक्तियों का एक ग्रूप

बैठे हुए (बाईं ओर से)—बी० चक्रवर्ती, ए० चौधरी, कृष्णस्वामी अय्यर, दरभंगा के महाराज, दादा भाई नौ... रासबिहारी घोष, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी। खड़े हुए (बाईं ओर से)—रतन ताता, गोपालकृष्ण गोखले, डी० ई० ... रमेशचन्द्र दत्त, भूपेन्द्रनाथ बसु, सत्येन्द्रप्रसन्नसिंह।



प्रसिद्ध जापानी कवि प्रोफ़ेसर
ागुची—आप भारतीय विश्व-
ेद्यालयों में जापानी संस्कृति
र भाषण देने पधारे हैं।



हिज़ हाइनेस नवाब भोपाल [illegible]
प्रयाग-विश्वविद्यालय में इस [illegible]
दीक्षान्त भाषण किया।



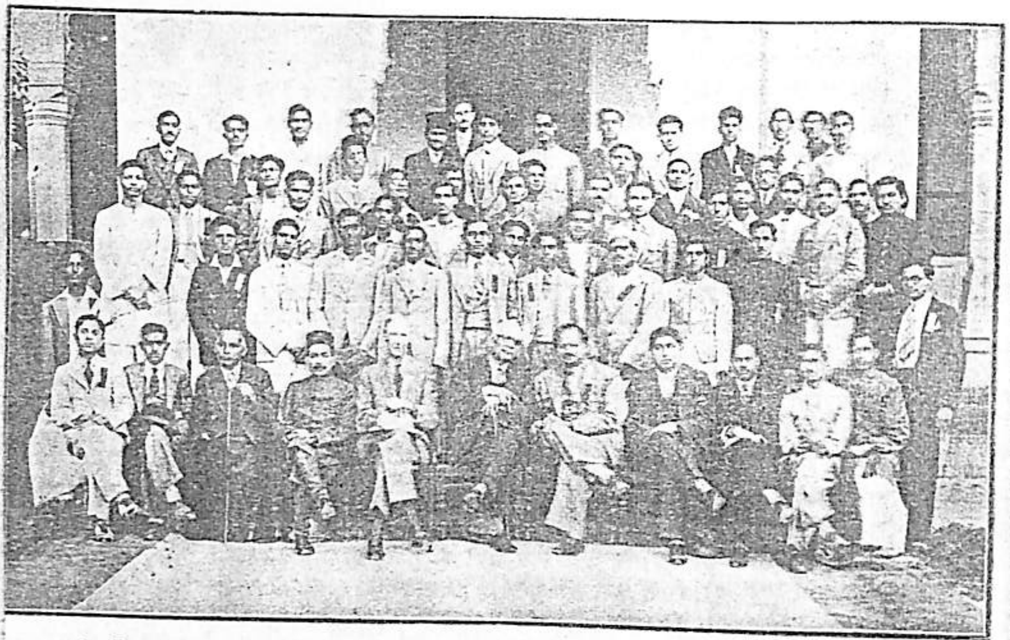
पण्डित इक़बाल नारायण गुर्टू प्रयाग-विश्वविद्यालय के [illegible] वायसचान्सलर चुने गये हैं।



इटली और अबीसीनिया के युद्ध में अबीसीनियावाले आश्चर्य्यजनक रण-कौशल का परिचय दे रहे हैं। साधन-हीन होने पर भी उन्होंने इटली के छक्के छुड़ा दिये हैं। सम्राट् हेल सिलासी वीर, परिश्रमी और कार्य्य-कुशल हैं। वे सब मोर्चों पर पहुँचते हैं और सैनिकों को उत्साहित करते हैं। इस चित्र में वे आदिस अबाबा के पास सैनिक मोर्चेबन्दी का निरीक्षण कर रहे हैं।



बेडेनवीलर जर्मनी में पंडित जवाहर
नेहरू और उनकी पुत्री कुमारी इन्दिरा ने



यूनिवर्सिटी स्टूडेंट्स कान्फ़रेंस प्रयाग की स्वागत-समिति के सदस्य और कार्यकर्ता। सभापति राइट आनरेबल सर तेजबहादुर सप्रू बीच में बैठे हैं।



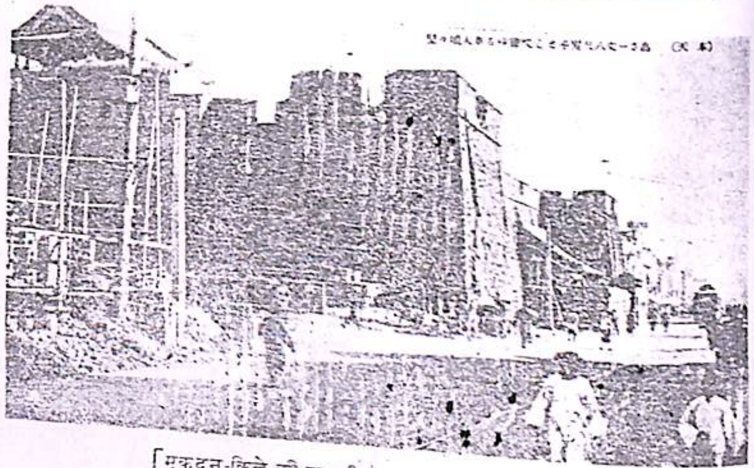
हिज़ हाइनेस महाराजा त्रिपुरा (बङ्गाल) आपने लंदन में अपने व्यय से एक सुन्दर हिन्दू-मंदिर बनवाया है। इसके पहले वहाँ कोई हिन्दू-देवस्थान नहीं था।



मिसेज़ बी० दत्त और मिस बाटलीवाला हाल में ही २
से शिक्षा-सम्बन्धी नये अनुभव प्राप्त करके वापस लौटी हैं।



हवाई-द्वीप की दो अल्पवस्त्र नर्तकियों का नृत्य के बीच में जलपान और विश्राम।



[मुकदन्-किले की यह दीवार अठारह फ़ुट ऊँची है।]

खाना जापान के हाथ लग गया। मंचूरिया पर जापान के अधिकार की कथा एक स्वतंत्र लेख का विषय है, इसलिए उस पर यहाँ कुछ नहीं कहा जा सकता। पुराने शहर को देखते हुए हम वन्-सु-सि के बौद्धमठ में पहुँचे। यह मंचूरिया के बड़े बौद्धमठों में है। इसकी स्थापना चार सौ वर्ष पूर्व हुई थी। आज-कल ८० भिक्षु रहते हैं। वैसे मठ अच्छी दशा में हैं; किन्तु जापान के मठों की सफ़ाई से अभ्यस्त आँखें चारों ओर मैलापन ही देख रही थीं। यहाँ हमें एक जापानी बौद्ध-भिक्षु भी मिले। आशा है, चीनी बौद्ध भिक्षु अपने जापानी भाइयों के संपर्क में आकर उनसे बहुत कुछ सीख जायँगे।

फिर नगर के छोर पर अवस्थित लामा-मंदिर में गये। मंदिर की इमारतों और हाते को देखने से मालूम होता है कि अवस्था अच्छी नहीं है। यह मंगोल-भिक्षुओं का जो तिब्बत के बौद्धधर्म को मानते हैं, मठ है। मंचू-राजाओं के दान से इसकी स्थापना हुई थी। आज-कल भी ३०-४० मंगोल-भिक्षु यहाँ रहते हैं, किन्तु उनका विद्या और वर्तमान काल की ओर कोई ध्यान नहीं। मठ में तिब्बती-भाषा जाननेवाले व्यक्ति की खोज में हम पीछे के एक मकान में पहुँचे। मालूम हुआ, यहाँ टशीलामा के आदमी रहते हैं। मुखिया तो नहीं मिले, किन्तु सहायकों के साथ देर तक बातें होती रहीं। बेचारे टशीलामा के तिब्बत लौटने से निराश-से जान पड़ते थे।

(२) सिङ्-किङ्

रात की गाड़ी से चलकर २३ अगस्त को सिङ-किङ पहुँचे। यहाँ भी स्टेशन पर हिगा शी होङ्गान् जी शाखा-मंदिर के पुरोहित मौजूद थे। मंदिर केन्द्रीय स्थान पर है, किन्तु वह राजधानी के लायक़ नहीं है। इसलिए नई इमारत के लिए काफ़ी भूमि शहर के बिलकुल गर्भ में ली गई है। मंचूको की राजधानी होने से पूर्व सिङ्-किङ् का नाम चाङ्-चुङ् था। राजधानी होने के साथ जहाँ तूफ़ान के वेग से नये नये मकान बनते जा रहे हैं, वहाँ जन-संख्या भी उसकी बड़े वेग से बढ़ रही है। देखिए—

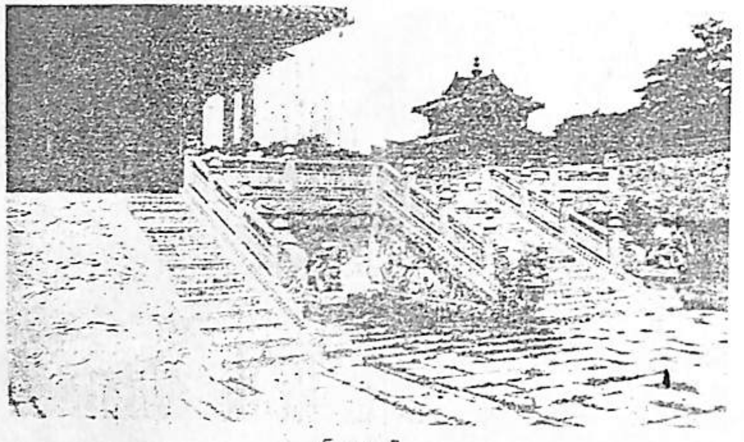
जन-संख्या	जून १९३२	१,५२,०१७
	" १९३३	१,९३,५१८
	" १९३४	२,१८,९८६

जिनमें जापानियों की वृद्धि—

पूर्व	१०,०००
जून १९३२	१६,३५०
" १९३३	२८,३४९
" १९३४	३९,३३२

शहर बनाने में धन कैसे बहाया जा रहा है, इसे भी देखिए—

	१९३२ ई०	१९३३ ई०	१९३४ ई०
मंचूरिया-सरकार	७,००,०००	२५,००,०००	६०,८४,०००
जापान-सरकार	२५,००,०००	९१,१५,०००	४४,२१,०००
प्राइवेट (जापानी)	२६,८१,०००	३७,१३,०००,	१,१५,८६,०००



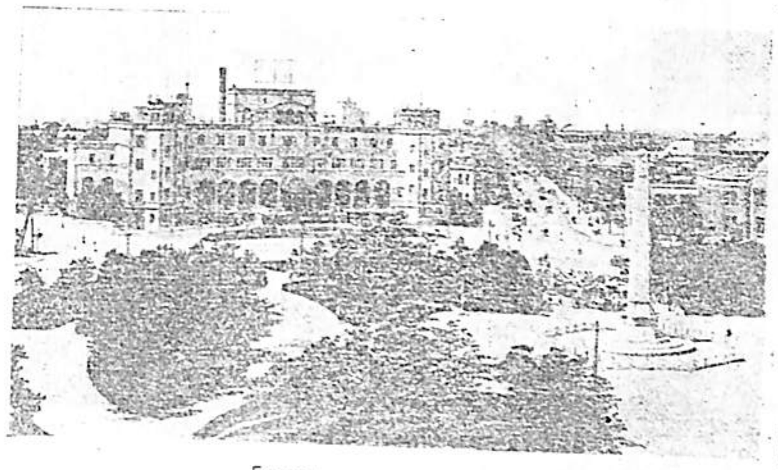
[मुकूदन्]

शहर की सड़कों, राजपथों, बाग़ों आदि की योजना तैयार हो चुकी है और उसी के अनुसार मीलों तक शहर में चारों ओर नये मकान बन रहे हैं। सिङ्-किङ् को पूर्व का पेरिस बनाने के लिए जापान जी-जान से लगा हुआ है। उसका रुपया, उसकी बुद्धि दिल खोलकर खर्च की जा रही है। हज़ारों चीनी मज़दूर काम करने में लगे हैं। यहाँ आकर आप देख सकते हैं कि जापान को अपने भविष्य पर कितना विश्वास है।

मुकूदन् में दो दिन डायरिया (दस्त) के फेर में पड़ गये थे, इसलिए कमज़ोरी बहुत थी, किन्तु उधर प्रोग्राम के अनुसार चलना भी ज़रूरी था। २३ अगस्त को पहले जापानी सेना के केन्द्रीय कार्यालय में गये। इमारत भव्य तो ख़ैर चीनी जनरल भी बना सकते हैं, किन्तु यहाँ ईंटों का वैभव थोड़ा ही है। सैकड़ों आदमी काम कर रहे हैं। सादे किन्तु प्रभावोत्पादक वर्दी पहने सैनिक अफ़सर इधर से उधर जा रहे हैं, किन्तु मालूम होता था कि सारा काम किसी नई तुली गति से हो रहा है। दरवाज़े पर कार्ड देने पर हम लोगों को एक एक बिल्ला लगाने को मिला। प्रतीक्षागृह में थोड़ी देर जाकर बैठे, उसके बाद एक बड़े लिफ़ाफ़े में कुछ पुस्तकें लिये एक सज्जन आये। मालूम हुआ, आप कान्तोङ् सेना के दोभाषिया हैं। शिष्टाचार के बाद काम पूछा। मैंने कहा—मैं नई सरकार के काम को जानना चाहता हूँ। उन्होंने लिफ़ाफ़ा सामने रखते हुए कहा—ये अँगरेज़ी में छपे बुलेटिन तथा पुस्तकें हैं। इनसे आपको कुछ परिचय मिलेगा। वैसे आपको सिङ्-किङ् पर एक सरसरी निगाह फेंकने से भी मालूम हो जायगा कि नई सरकार क्या कर रही है, किन्तु जो आप देख रहे हैं उससे कहीं अधिक निर्माण-कार्य के लिए सरकार कमर कस चुकी है। सरकार राष्ट्र को सांस्कृतिक, आर्थिक सभी दृष्टियों से ऊँचे तल पर रखना चाहती है, और उसे सफलता पर पूरा विश्वास है।

न्याय-विभाग की भव्य इमारत को देखते हुए हम शिक्षा-विभाग में पहुँचे। उसके एक अफ़सर श्री हयाशो के लिए एक मित्र ने पत्र दिया था, किन्तु आज वे आफ़िस में न थे। थोड़ी दूर पर एक चीनी बौद्धमंदिर है। जापानी लोग इसे हञ्जाजी (प्रज्ञामंदिर) कहते हैं। मंचूरिया-सरकार के सेक्रेटरियट के बीच में इतना विस्तृत मंदिर बतलाता है कि अभी इस देश में बौद्धधर्म जीवित है। जहाँ तक मंदिरों की सजावट, निर्माण, विस्तार आदि का संबंध है, चीन में हाल में बहुत-से बड़े बड़े मंदिर बने हैं, किन्तु जापानी बौद्धों की भाँति जनता के लिए नाना कामों को हाथ में लेना अभी चीनी भिक्षुओं ने नहीं सीखा है।

लौटने पर हमारे मेज़बान ने बतलाया कि यहाँ दो भारतीय दूकानें भी हैं। मुकूदन् में भी दो भारतीयों का पता लगा था, किन्तु तबीयत ठीक न रहने से नहीं मिल सका था। पता पूछ कर हम लोग वहाँ पहुँचे। दौलतराम एण्ड संस और बूलचन्द—दो सिंधी दूकानें हैं। दोनों के मालिक हैदराबाद (सिंध) के रहनेवाले हैं। बड़े प्रेम से मिले। मालूम हुआ, इन्हीं दोनों दूकानों की शाखायें मुकूदन् और हर्बिन में भी हैं। रोज़गार की हालत पूछने पर उन्होंने कहा—न अच्छा है, न खराब। उन्होंने यह भी बतलाया कि उनके विदेशी कपड़ों के खरीदार जापानियों में एक-आध नर्तकियों को छोड़ दूसरा नहीं है। जापानी लोग हमेशा अपने देश का कपड़ा बरतते हैं।



[मुकूदन् नगर का एक दृश्य]

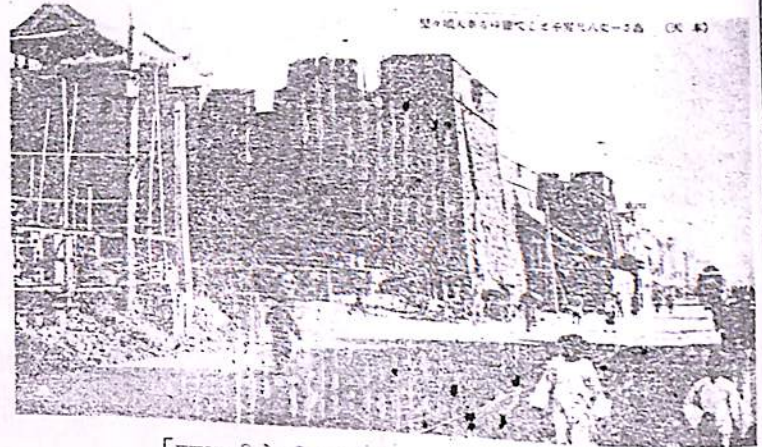
(३) हर्बिन

२४ तारीख़ को हम फिर शहर देखने गये थे। लौटने पर मालूम हुआ, हर्बिन के हिगाशी होङ्गान् जी के पुरोहित आये हुए हैं और वे आज ही पौने तीन बजे की गाड़ी से लौट जानेवाले हैं। साथ का ख़याल कर हमने भी निश्चय किया और पौने तीन बजे (दिन) की गाड़ी में जा बैठे। देखा, इस गाड़ी का तो रङ्ग-रवैया ही दूसरा है। जापान से लेकर अब तक की रेलों में तीसरे दर्जे की बेंचों पर भी गद्दे बिछे होते हैं, किन्तु यहाँ सूखी लकड़ी और उस पर भी कहीं कहीं वार्निश चिपचिप कर रही थी। यही लाइन है, जिसे सरकार ने सोवियट से ख़रीदा है। इस ट्रेन के इंजन, डिब्बे आदि सबसे पुरानापन टपक रहा था। प्लेटफ़ार्म पर जहाँ दो-तीन चीनी सिपाही खड़े थे, वहाँ दो-एक रूसी भी वर्दी लगाये डटे थे। गाड़ी ठीक वक़्त पर चली। ६॥ बज रहे थे। उसी समय एक स्टेशन पर जा इंजन बिगड़ खड़ा हुआ। लोगों ने नाक-कान ऐंठा, किन्तु कुछ नहीं। अन्त में हर्बिन से इंजन भेजे जाने की बात सुनी। चार घंटे तक वहीं बैठे रहे। नया इंजन आया और ६ बजे की जगह १२½ बजे रात को हम हर्बिन के हिगाशी होङ्गान् जी के मंदिर में पहुँचे। यह स्थायी मकान है। नया मंदिर चौरस्ते पर बन रहा है। मंचूरिया क्या, जहाँ कहीं भी जापानी जाकर बसते हैं, घरों के बनने के साथ साथ उनके मंदिर भी स्थापित हो जाते हैं। और परिवारों की संख्या और सम्पत्ति के साथ साथ मंदिर का भी वैभव बढ़ता है। कितने ही मंदिरों ने अपने हाते के भीतर कुछ रहने की कोठरियाँ और घर बना रक्खे हैं, जिनमें जापान से आये नये परिवार नाममात्र किराये पर कितने ही महीनों तक रह सकते हैं। शिक्षा का कोई प्रबन्ध न होने पर ये मंदिर प्रारम्भिक शिक्षा देते हैं। बच्चों की धार्मिक शिक्षा के लिए रविवार का स्कूल तो हर मंदिर में है। इसके अतिरिक्त जन्म, मृत्यु तथा दूसरे समय के धार्मिक कृत्य तथा धार्मिक उपदेश की व्यवस्था करना तो इनका स्वकर्त्तव्य ही ठहरा। कार्य के न्यूनाधिक के साथ प्रधान पुरोहित अपने सहायक भी रखता है, जो एक से दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह या अधिक हो सकते हैं।

आधी रात से ऊपर हो चुकी थी, इसलिए झटपट सोना था, किन्तु उस समय भी मैंने देखा—घर किसी रूसी परिवार से ख़रीदा गया है। इसके दो कमरे जापानी



हवाई-द्वीप की दो अल्पवयस्क नर्तकियों का नृत्य के बीच में जलपान और विश्राम।



[मुकदन-क़िले की यह दीवार अठारह फ़ुट ऊँची है।]

खाना जापान के हाथ लग गया। मंचूरिया पर जापान के अधिकार की कथा एक स्वतंत्र लेख का विषय है, इसलिए उस पर यहाँ कुछ नहीं कहा जा सकता। पुराने शहर को देखते हुए हम वन्-सु-स्सि के बौद्धमठ में पहुँचे। यह मंचूरिया के बड़े बौद्धमठों में है। इसकी स्थापना चार सौ वर्ष पूर्व हुई थी। आजकल ८० भिक्षु रहते हैं। वैसे मठ अच्छी दशा में हैं; किन्तु जापान के मठों की सफ़ाई से अभ्यस्त आँखें चारों ओर मैलापन ही देख रही थीं। यहाँ हमें एक जापानी बौद्ध-भिक्षु भी मिले। आशा है, चीनी बौद्ध भिक्षु अपने जापानी भाइयों के संपर्क में आकर उनसे बहुत कुछ सीख जायँगे।

फिर नगर के छोर पर अवस्थित लामा-मंदिर में गये। मंदिर की इमारतों और हाते को देखने से मालूम होता है कि अवस्था अच्छी नहीं है। यह मंगोल-भिक्षुओं का जो तिब्बत के बौद्धधर्म को मानते हैं, मठ है। मंचू-राजाओं के दान से इसकी स्थापना हुई थी। आजकल भी ३०-४० मंगोल-भिक्षु यहाँ रहते हैं, किन्तु उनका विद्या और वर्तमान काल की ओर कोई ध्यान नहीं। मठ में तिब्बती-भाषा जाननेवाले व्यक्ति की खोज में हम पीछे के एक मकान में पहुँचे। मालूम हुआ, यहाँ टशीलामा के आदमी रहते हैं। मुखिया तो नहीं मिले, किन्तु सहायकों के साथ देर तक बातें होती रहीं। बेचारे टशीलामा के तिब्बत लौटने से निराश-से जान पड़ते थे।

(२) सिङ्-किङ्

रात की गाड़ी से चलकर २३ अगस्त को सिङ्-किङ् पहुँचे। यहाँ भी स्टेशन पर हिगा शी होङ्गान् जी शाखा-मंदिर के पुरोहित मौजूद थे। मंदिर केन्द्रीय स्थान पर है, किन्तु वह राजधानी के लायक़ नहीं है। इसलिए नई इमारत के लिए काफ़ी भूमि शहर के बिलकुल गर्भ में ली गई है। मंचूको की राजधानी होने से पूर्व सिङ्-किङ् का नाम चाङ्-चुङ् था। राजधानी होने के साथ जहाँ तूफ़ान के वेग से नये नये मकान बनते जा रहे हैं, वहाँ जन-संख्या भी उसकी बड़े वेग से बढ़ रही है। देखिए—

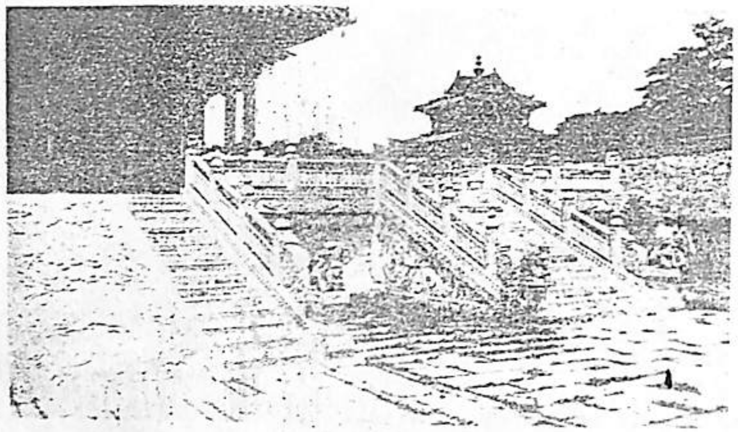
जन-संख्या	जून १९३२	१,५२,०१७
,,	१९३३	१,९३,५१८
,,	१९३४	२,१८,३८६

जिनमें जापानियों की वृद्धि—

पूर्व	१०,०००
जून १९३२	१६,३५०
,, १९३३	२८,३४९
,, १९३४	३९,३३२

शहर बनाने में धन कैसे बहाया जा रहा है, इसे भी देखिए—

	१९३२ ई०	१९३३ ई०	१९३४ ई०
मंचूरिया-सरकार	७,००,०००	२५,००,०००	१०,८४,०००
जापान-सरकार	२५,००,०००	९१,१५,०००	४४,२१,०००
प्राइवेट (जापानी)	२६,८१,०००	३७,१३,०००	१,१५,८६,०००



[मुकदन्]

शहर की सड़कों, राजपथों, बाग़ों आदि की योजना तैयार हो चुकी है और उसी के अनुसार मीलों तक शहर में चारों ओर नये मकान बन रहे हैं। सिङ्-किङ् को पूर्व का पेरिस बनाने के लिए जापान जी-जान से लगा हुआ है। उसका रुपया, उसकी बुद्धि दिल खोलकर खर्च की जा रही है। हज़ारों चीनी मजदूर काम करने में लगे हैं। यहाँ आकर आप देख सकते हैं कि जापान को अपने भविष्य पर कितना विश्वास है।

मुकदन् में दो दिन डायरिया (दस्त) के फेर में पड़ गये थे, इसलिए कमज़ोरी बहुत थी, किन्तु उधर प्रोग्राम के अनुसार चलना भी ज़रूरी था। २३ अगस्त को पहले जापानी सेना के केन्द्रीय कार्यालय में गये। इमारत भव्य तो खैर चीनी जनरल भी बना सकते हैं, किन्तु यहाँ ईंटों का वैभव थोड़ा ही है। सैकड़ों आदमी काम कर रहे हैं। सादे किन्तु प्रभावोत्पादक वर्दी पहने सैनिक अफ़सर इधर से उधर जा रहे हैं, किन्तु मालूम होता था कि सारा काम किसी नई तुली गति से हो रहा है। दरवाज़े पर कार्ड देने पर हम लोगों को एक एक बिल्ला लगाने को मिला। प्रतीक्षागृह में थोड़ी देर जाकर बैठे, उसके बाद एक बड़े लिफ़ाफ़े में कुछ पुस्तकें लिये एक सज्जन आये। मालूम हुआ, आप कान्तोङ् सेना के दोभाषिया हैं। शिष्टाचार के बाद काम पूछा। मैंने कहा—मैं नई सरकार के काम को जानना चाहता हूँ। उन्होंने लिफ़ाफ़ा सामने रखते हुए कहा—ये अँगरेज़ी में छपे बुलेटिन तथा पुस्तकें हैं। इनसे आपको कुछ परिचय मिलेगा। वैसे आपको सिङ् किङ् पर एक सरसरी निगाह फेंकने से भी मालूम हो जायगा कि नई सरकार क्या कर रही है, किन्तु जो आप देख रहे हैं उससे कहीं अधिक निर्माण-कार्य के लिए सरकार कमर कस चुकी है। सरकार राष्ट्र को सांस्कृतिक, आर्थिक सभी दृष्टियों से ऊँचे तल पर रखना चाहती है, और उसे सफलता पर पूरा विश्वास है।

न्याय-विभाग की भव्य इमारत को देखते हुए हम शिक्षा-विभाग में पहुँचे। उसके एक अफ़सर श्री हयाशी के लिए एक मित्र ने पत्र दिया था, किन्तु आज वे आफ़िस में न थे। थोड़ी दूर पर एक चीनी बौद्धमंदिर है। जापानी लोग इसे हञाजी (प्रज्ञामंदिर) कहते हैं। मंचूरिया-सरकार के सेक्रेटरियट के बीच में इतना विस्तृत मंदिर बतलाता है कि अभी इस देश में बौद्धधर्म जीवित है। जहाँ तक मंदिरों की सजावट, निर्माण, विस्तार आदि का संबंध है, चीन में हाल में बहुत-से बड़े बड़े मंदिर बने हैं, किन्तु जापानी बौद्धों की भाँति जनता के लिए नाना कामों को हाथ में लेना अभी चीनी भिक्षुओं ने नहीं सीखा है।

लौटने पर हमारे मेज़बान ने बतलाया कि यहाँ दो भारतीय दूकानें भी हैं। मुकदन् में भी दो भारतीयों का पता लगा था, किन्तु तबीयत ठीक न रहने से नहीं मिल सका था। पता पूछ कर हम लोग वहाँ पहुँचे। दौलतराम एण्ड संस और बूलचन्द्र—दो सिंधी दूकानें हैं। दोनों के मालिक हैदराबाद (सिंध) के रहनेवाले हैं। बड़े प्रेम से मिले। मालूम हुआ, इन्हीं दोनों दूकानों की शाखायें मुकदन् और हर्बिन में भी हैं। रोज़गार की हालत पूछने पर उन्होंने कहा—न अच्छा है, न खराब। उन्होंने यह भी बतलाया कि उनके विदेशी कपड़ों के खरीदार जापानियों में एक-आध नर्तकियों को छोड़ दूसरा नहीं है। जापानी लोग हमेशा अपने देश का कपड़ा बरतते हैं।

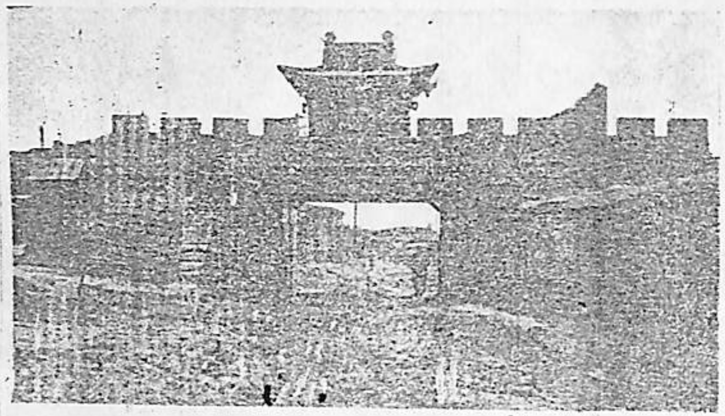


[मुकदन् नगर का एक दृश्य]

(२) हर्बिन

२४ तारीख़ को हम फिर शहर देखने गये थे। लौटने पर मालूम हुआ, हर्बिन के हिगाशी होङ्गान् जी के पुरोहित आये हुए हैं और वे आज ही पौने तीन बजे की गाड़ी से लौट जानेवाले हैं। साथ का खयाल कर हमने भी निश्चय किया और पौने तीन बजे (दिन) की गाड़ी में जा बैठे। देखा, इस गाड़ी का तो रङ्ग-रवैया ही दूसरा है। जापान से लेकर अब तक की रेलों में तीसरे दर्जे की बेंचों पर भी गद्दे बिछे होते हैं, किन्तु यहाँ सूखी लकड़ी और उस पर भी कहीं कहीं वार्निश चिपचिप कर रही थी। यही लाइन है, जिसे सरकार ने सोवियट से खरीदा है। इस ट्रेन के इंजन, डिब्बे आदि सबसे पुरानापन टपक रहा था। प्लेटफ़ार्म पर जहाँ दो-तीन चीनी सिपाही खड़े थे, वहाँ दो-एक रूसी भी वर्दी लगाये डटे थे। गाड़ी ठीक वक्त पर चली। ६॥ बज रहे थे। उसी समय एक स्टेशन पर जा इंजन बिगड़ खड़ा हुआ। लोगों ने नाक-कान ऐंठा, किन्तु कुछ नहीं। अन्त में हर्बिन से इंजन भेजे जाने की बात सुनी। चार घंटे तक वहीं बैठे रहे। नया इंजन आया और ९ बजे की जगह १२½ बजे रात को हम हर्बिन के हिगाशी होङ्गान् जी के मंदिर में पहुँचे। यह स्थायी मकान है। नया मंदिर चौरस्ते पर बन रहा है। मंचूरिया क्या, जहाँ कहीं भी जापानी जाकर बसते हैं, घरों के बनने के साथ साथ उनके मंदिर भी स्थापित हो जाते हैं। और परिवारों की संख्या और सम्पत्ति के साथ साथ मंदिर का भी वैभव बढ़ता है। कितने ही मंदिरों ने अपने हाते के भीतर कुछ रहने की कोठरियाँ और घर बना रक्खे हैं, जिनमें जापान से आये नये परिवार नाममात्र किराये पर कितने ही महीनों तक रह सकते हैं। शिक्षा का कोई प्रबन्ध न होने पर ये मंदिर प्रारम्भिक शिक्षा देते हैं। बच्चों की धार्मिक शिक्षा के लिए रविवार का स्कूल तो हर मंदिर में है। इसके अतिरिक्त जन्म, मृत्यु तथा दूसरे समय के धार्मिक कृत्य तथा धार्मिक उपदेश की व्यवस्था करना तो इनका स्वकर्त्तव्य ही ठहरा। कार्य के न्यूनाधिक के साथ प्रधान पुरोहित अपने सहायक भी रखता है, जो एक से दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह या अधिक हो सकते हैं।

आधी रात से ऊपर हो चुकी थी, इसलिए झटपट सोना था, किन्तु उस समय भी मैंने देखा—घर किसी रूसी परिवार से खरीदा गया है। इसके दो कमरे जापानी



[सिङ्-किङ् (पुराना) पूर्वी द्वार]

ढङ्ग पर बदल दिये गये हैं, जिनमें एक कमरे में पहले ही से पाँच बिस्तरे बिछे हुए थे, मेरे आने से छः हो गये। अब वहाँ ज़रा भी जगह बाक़ी न थी। दूसरे छोटे कमरे में पुरोहितानी और उनकी सखी थी। ऐसे संकीर्ण स्थान में दो-तीन दिन रहना परिवार को कष्ट में डालना था, इसलिए दूसरे दिन अन्यत्र रहने का निश्चय करके सो गये।

सवेरे उठने पर मालूम हुआ, अभी मकान में अधूरा जापानीपन नहीं पहुँच सका है। पीछे के हाते में लोहे-लक्कड़ का ढेर था; और आस-पास की कोठरियों में, मालूम होता है, दस-पन्द्रह और जापानी रहते हैं। सबके लिए सिर्फ़ दो पाख़ाने की कोठरियाँ थीं, जो बहुत गंदी थीं। आपनी घर का पाख़ाना इतना गंदा नहीं हो सकता। हाथ-मुँह धोने के बाद नाश्ता हुआ। दोपहर के बाद चीनी बौद्ध-मठ निरोस्सु को जाने की बात पक्की हुई। मठ को टेलीफ़ोन भी कर दिया गया। थोड़ी देर ठहर कर जापान-टूरिस्ट ब्यूरो (जापान-यात्री सेवक-मंडल) को चले। बाहर आने पर देखा, कितनी ही घोड़ागाड़ियाँ खड़ी हैं। उनमें कुछ तो कुर्सीदार इक्के की-सी हैं, और कुछ फिटन जैसी। ये फिटनें सभी पुरानी तथा अधिकतर मैली-कुचैली दिखलाई पड़ती थीं। इनमें अच्छे क़द के कज्ज़ाक घोड़े जुते थे, जिनके कंधों के ऊपर एक मेहराब-सी लगी थी। और कोचवान प्रायः सारे भूरे बालों तथा नीली या कंजी आँखोंवाले रूसी थे। वस्त्र में एक मैली-कुचैली पतलून, एक बिना कालर-टाई की वैसी ही कमीज़ या बनियायन। एक गाड़ी किराये में कर हम बैठ गये। रास्ते में देख रहे हैं, सैकड़ों रूसी नर-नारी इधर से उधर जा रहे हैं। और उनकी ग़रीबी? कुछ न पूछिए! कितने ही बच्चे नंगे पैर घूम रहे थे। कितनी ही स्त्रियाँ जापानी छःअन्नियाँ रबर के जूते पहने हुए थीं। कोई कोई फ़ैशनवाली स्त्रियाँ भी थीं, किन्तु उनकी संख्या बहुत कम थी। कुछ बनी-ठनी घूमती हुई तरुणियों के बारे में कहा जाता था कि वेश ही से इनकी जीविका चलती है। कितने ही गौरांगों को मैंने पगडंडी या दूसरी जगह धरती पर बैठे देखा। अधिकांश लड़कों की दुबली-पतली तथा मुर्झाई सूरत ही कह रही थी कि इन्हें पर्याप्त भोजन नहीं मिल रहा है। कई जगह सड़कों पर रूसी भिखमंगे भी मिले। उन्हें—काम क्यों नहीं करते—कहकर टालना मेरे सामर्थ्य के बाहर था। हर्बिन क्या, दुनिया में कहाँ सबके लिए काम धरा है? और उनकी सूरत देखने से मालूम होता था कि महीनों से उन्हें मलेरिया या पांडु-रोग ने पकड़ा है। रूसियों की कठिनाइयाँ इसलिए भी बढ़ गई हैं, क्योंकि मज़दूरी के सस्तेपन में वे चीनियों का मुक़ाबिला नहीं कर सकते। दूकान, टैक्सी, मोटर-बस, फेरी, कुलीगिरी आदि सभी काम वे करने के लिए तैयार हैं, किन्तु सबके लिए काम नहीं। सवाल होता है—तो फिर ये रूसी यहाँ मर क्यों रहे हैं? क्यों नहीं अपने देश को लौट जाते, जहाँ सबके लिए काम मौजूद है! लेकिन रूस जाने का रास्ता इनका बन्द है। लाल क्रांति के समय ये उससे लड़े थे। और परास्त होने पर भाग कर यहाँ पहुँचे हैं। इन्हें सफ़ेद रूसी कहते हैं। १९३३ ई० में हर्बिन की चार लाख अठारह हज़ार (१६,१०० जापानी) की आबादी में सफ़ेद रूसी २६ हज़ार और लाल रूसी २५ हज़ार थे। इस साल उत्तरी मंचूरिया रेलवे के बिक जाने पर लाल रूसी चले गये, किन्तु सफ़ेद रूसियों के लिए कहीं जाने का ठौर नहीं। लाल रूसियों की जगह अब जापानियों ने ग्रहण की है, जिनकी संख्या इस वक़्त चालीस हज़ार से ऊपर होगी।



[हर्बिन—रूसी जनाज़े की गाड़ी।]

जापान टूरिस्ट ब्यूरो से पता लगा—हमारी कोई चिट्ठी नहीं आई है। यहाँ से मंचूली (सोवियट-सीमा पर) के लिए सवेरे ८½ बजे सिर्फ़ एक ट्रेन रोज़ प्रस्थान करती है, और चौबीस घंटे में वहाँ पहुँचती है। मंचूली से मास्को को सप्ताह में दो बार सोमवार और बृहस्पति को ट्रेन छूटती है।

भोजनोपरांत प्रधान पुरोहित के साथ चिरो-सु मठ को चले। यह शहर के ऊँचे भाग पर रूसी क़ब्रगाह तथा जापानी छावनी के समीप अवस्थित है। चहारदीवारी से घिरा एक विशाल हाता है, जिसमें सुनहरी खपड़ेलोंवाले चार-पाँच मंदिर तथा भिक्षुओं के रहने के कितने ही निवासगृह बने हुए हैं। भिक्षुओं की संख्या १७० है। यह मठ सारे मंचूरिया में सबसे बड़ा बौद्ध-मठ है। मंचूरिया के भिन्न-भिन्न भागों में इसकी सात बड़ी शाखायें तथा बहुत-सी उपशाखायें हैं। दूसरे चीनी मठों की भाँति यहाँ के भिक्षु भी गृहस्थों को उपदेश या शिक्षण नहीं करते।

मेरे पहुँचने पर भोजन का समय हो रहा था। सभी भिक्षु भोजनागार में एकत्र होकर सूत्रपाठ कर रहे थे। मैं भी भोजन के लिए निमंत्रित किया गया। एक अलग कमरे में हम पाँच-छः आदमियों के लिए मेज़ पर प्रबन्ध था। गाँठ गोभी, बैंगन तथा और दो-तीन तरह की तरकारियों की तश्तरियाँ बीच में रख दी गईं। इनसे सबको एक प्याला होना था। सबके सामने भात खाने की लकड़ियों की जोड़ी रख दी गई। फिर दो बड़े प्यालों में से एक में टोमाटो और खड़े गेहूँ का सूप, तथा दूसरे में उबली सेवइयाँ थीं। सभी चीनी भिक्षु घासाहारी होते हैं, यह जान लेना चाहिए। खाना तो खाकर आये थे, तो भी आग्रह तोड़ा नहीं जा सकता था। जापानी भोजन की अपेक्षा यह भारतीय भोजन के ज़्यादा समीप था, इसमें शक नहीं।

भोजनोपरान्त लम्बे चीनी चोगे पर भारतीय चीवर (भिक्षु-वस्त्र) धारण किये भिक्षु लोग फिर सूत्रपाठ करते हुए बुद्ध-मंदिर की ओर चले; और बुद्धमूर्ति के सामने तब तक परिक्रमा करते रहे जब तक पाठ समाप्त नहीं हो



[हर्बिन (एक चंडूखाना)]

गया। मालूम हुआ, इस मठ में पाँच बार सूत्रपाठ किया जाता है, जिसमें चार-पाँच घंटे लगते हैं। छोटे भिक्षुओं के लिए एक पाठशाला है। पाठशाला में कुर्सी-मेज़ तथा बेंच और डेस्क का प्रबन्ध है। मठ के और भागों में भी देखा। कुछ जापानी ढंग इस्तेमाल करने का प्रयत्न किया जा रहा है, यद्यपि उससे उतना लाभ नहीं उठाया जा रहा है। उदाहरणार्थ सभी दरवाज़ों में पतली जालियोंवाले दुहरे कपाट हैं, तो भी किवाड़ों को लगाने तथा पेंच की असावधानी से वे खुले छोड़ दिये जाते हैं और भीतर हज़ारों मक्खियाँ भिनभिनाती रहती हैं। पेशाबखाने, पाखाने की दुर्गन्ध के बारे में कुछ पूछिए ही नहीं, और इतने बड़े मठ में स्नान का भी कोई प्रबन्ध नहीं है।

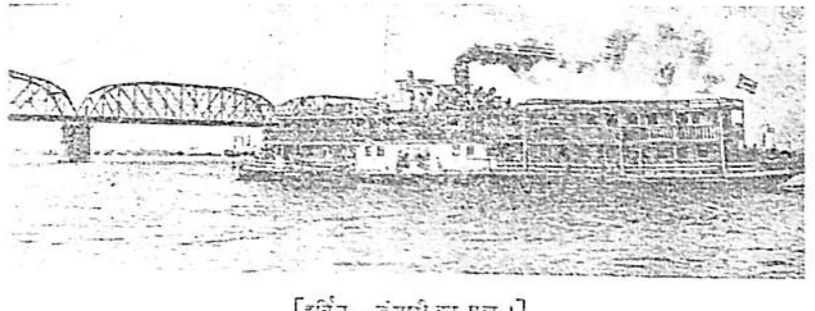
दो बजे शहर देखने चले। मठ के प्रधान तथा एक जापानी भिक्षु (इस मठ में छः-सात जापानी भिक्षु भी रहते हैं) साथ थे। जापानी भिक्षु थोड़ी-सी अँगरेज़ी जानते थे, और वे ही हमारे दुभाषिया थे।

हर्बिन शहर ४५˚ ४५' उत्तरी अक्षांश में बसा है, इसलिए जाड़े की सर्दी का सहज ही अनुमान हो सकता है। जाड़े में मकानों को गर्म रखने की सख्त ज़रूरत होती है, इसी लिए सारे शहर में ऊँची चिमनियों का जंगल खड़ा है। १८९६ ईसवी से पूर्व यहाँ ज़ुंगारी नदी के तट पर खाली ज़मीन थी। रूस ने जब चीन में पैर बढ़ाते हुए अपनी रेल यहाँ से निकाली, उसी समय इस भूमि का भाग्य खुल गया और रूसियों ने यहाँ पर एक शहर की नींव डाल दी। सारे शहर पर रूस की छाप है। सड़कों के नाम रूसी हैं। साइनबोर्डों में रूसी अक्षरों का सबसे अधिक प्रयोग है। कुलियों, कोचवानों और ड्राइवरों के मुँह की ओर देखने से भी वही भाव पैदा होता है। रेस्तोराँ (भोजनालय), होटल (विश्रामगृह) भी रूसी नौकरों से भरे पड़े हैं। इसके अतिरिक्त कोई कोई मुहल्ले तो अधिकांश रूसियों के ही हैं, जैसे नहरोफ़्काट या माचिश्राङ्।

हम लोग परिस्तान के बाग़ में गये। आज रविवार होने से लोगों की बड़ी भीड़ थी। उद्यान पर धीरे-धीरे जापानी मुहर-सी लगती जान पड़ रही है। सादगी और स्वाभाविकता के साथ बाग़ को सजाने का प्रयत्न किया जा रहा है। बाग़ के भीतर कितने ही रेस्तोराँ, सिनेमा भी हैं। एक छोटा-सा चिड़ियाख़ाना है। उद्यान से निकलकर हम ज़ुंगारी के तीर पर गये। ज़ुंगारी बड़ी नदी है। आज-कल बरसात में पानी बहुत है। किन्तु और दिनों में भी काफ़ी पानी रहता होगा। तभी तो स्टीमर यहाँ से माल लाने ले जाने में व्यस्त रहते हैं।

किनारे पर देखादेखी हमने भी एक नाव की और चले बहाव के ऊपर की ओर। थोड़ी दूर पर रेल का पुल मिला। वहाँ से और कितनी ही दूर तक जाकर हमने नाव छोड़ दी। फिर चीनी मुहल्ले में घुसे। भीड़ बहुत थी।

सफ़ाई का कुछ ध्यान नहीं। हर्बिन की अधिकांश सड़कों की भाँति यहाँ की भी सड़क अच्छी नहीं है।



[हर्बिन—ज़ुंगारी का पुल।]

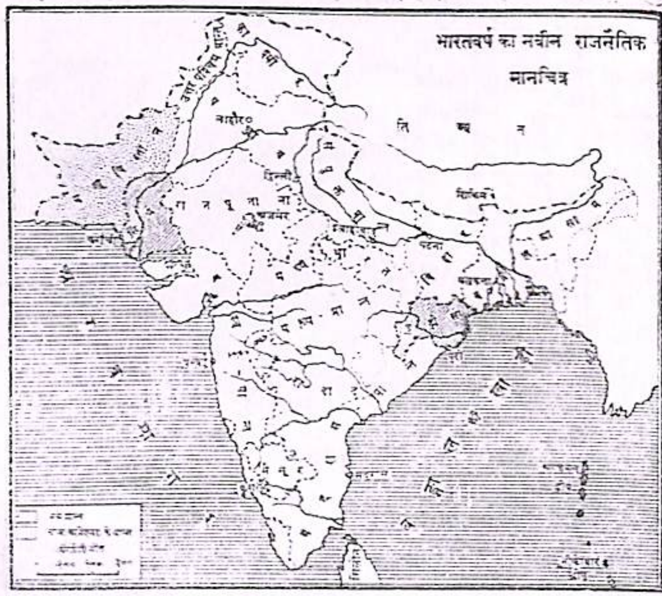
शहर घूमकर जब हम लोग लौटकर मठ को आ रहे थे तब देखा कि किसी सम्भ्रान्त रूसी के मरने पर उसकी लाश के साथ कई हज़ार रूसी नर-नारी जा रहे हैं। सफ़ेद रूसी समाज के हर प्रकार के स्त्री-पुरुषों को देखने का यह अच्छा मौक़ा था। कुछ लोगों के बाद लम्बे बालों तथा विचित्र टोप और चोग़ा पहने रूसी ईसाई साधु चल रहे थे। उनके पीछे सफ़ेद कपड़े से ढँके चार घोड़ों की सफ़ेद गाड़ी में जनाज़ा सजाया गया था, जिनके पीछे अपार भीड़ चल रही थी। भीड़ में वर्दी पहने कितनी ही टुकड़ियाँ थीं। कुछ ज़ारशाही जंगी वर्दी में थे। कुछ लोग स्वस्तिक झंडे के साथ वर्दी पर स्वस्तिक लगाये जा रहे थे। यह नात्सीदल था, इसके बतलाने की आवश्यकता नहीं। ऐसे ही और भी दल थे। कुछ लोग अपनी मोटरों में अच्छे लिबास में जा रहे थे। कुछ लोग टैक्सी पर सवार थे। कुछ घोड़ागाड़ी पर हचहच कर रहे थे, क्योंकि रास्ता बहुत ख़राब है। और अधिकांश जनता पैदल चल रही थी। इनमें कितने ही लड़के दो पैसहे जाँघिया कमीज़ में नंगे पैर चल रहे थे। सारे दृश्य को देखने से पता लगता था कि हर्बिन के सफ़ेद रूसियों में दरिद्रों की ही संख्या अधिक है।

२६ अगस्त को जापान टूरिस्ट ब्यूरो में जाने पर एक बात तो यह मालूम हुई कि तोक्यो से लिये हुए टिकट का आख़िरी दिन कल है। यदि कल यात्रा नहीं की गई तो टिकट का उपयोग नहीं हो सकेगा। अब रास्ते में भी कहीं नहीं उतरा जा सकता, सीधे सोवियट-सीमा पर मंचूली पहुँचना होगा। उसी वक़्त यह भी निश्चय कर डाला कि चलो रूस का टिकट भी कटवा लें। वेगन्‌लिट् कम्पनी ने १६० डालर से कुछ अधिक ले मंचोली मास्को-बाकू का टिकट दिया। टिकट काठ के बेंचवाले तीसरे दर्जे तथा रात को सोने की जगह के लिए था।

२७ अगस्त को प्रातराश के बाद मठ से विदाई ली। दो भिक्षु स्टेशन तक पहुँचाने आये। गाड़ी खुलने का समय ८½ बजे था, किन्तु वह रवाना हुई ९ बजे। "प्रथमग्रासे मक्षिकापातः"।

नया शासन-विधान

लेखक,
श्रीयुत सीतलासहाय
और
श्रीयुत श्रीपतिसहाय



भारतवर्ष का नवीन राजनैतिक मानचित्र

ब्रिटिश पार्लियामेंट ने गवर्नमेंट आफ़ इंडिया एक्ट नामक जो क़ानून बनाया है और जिसके अनुसार भारत के शासन में शीघ्र ही एक बड़ा परिवर्तन होने वाला है वह ५०० सफ़्हे की पुस्तक है। सरस्वती के पाठकों की जानकारी के लिए विद्वान लेखकों ने ख़ास तौर से उसका अध्ययन करके यहाँ उसके एक महत्त्व के भाग का परिचय दिया है।

देश में कुछ दिनों से इस बात की काफ़ी चर्चा हो रही है कि निकट भविष्य में, इस देश की शासन-प्रणाली में, बहुत बड़ा परिवर्तन होनेवाला है। २ अगस्त १९३५ को ब्रिटिश पार्लियामेंट ने 'गवर्नमेंट आफ़ इंडिया एक्ट' नाम का एक नया क़ानून भी इस सम्बन्ध में बना दिया है। भारतवर्ष में शासन-सम्बन्धी जो कुछ परिवर्तन होंगे इसी क़ानून के मुताबिक़ होंगे। 'गवर्नमेंट आफ़ इंडिया एक्ट' ५०० सफ़े की किताब है। इसमें ४७७ धारायें हैं और अनेक लम्बे लम्बे परिशिष्ट और श्येड्यूल हैं। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि हिन्दी-भाषा-भाषी पाठकों के सामने इस नये 'गवर्नमेंट आफ़ इंडिया एक्ट' का सच्चा और सरल चित्र रक्खा जाय। और यह पुस्तक के रूप में ही हो सकता है। अभी तक समाचार-पत्रों में भी इस नये क़ानून के सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा नहीं हुई है। अलबत्ता इस विषय पर गत वर्ष २ लेख 'सरस्वती' के जनवरी-अंक में प्रकाशित हुए थे। एक श्रीयुत आनरेबुल पंडित प्रकाशनारायण सप्रू का लिखा हुआ था जिसमें सुयोग्य लेखक ने ब्रिटिश पार्लियामेंट की 'ज्वायंट सिलेक्ट कमेटी' की रिपोर्ट पर विचार किया था और दूसरा श्रीयुत ओंकारनाथ मिश्र का था जिन्होंने भावी विधान के क़रीब क़रीब सभी अंगों पर संक्षेप में प्रकाश डाला था। मिश्र जी का लेख भी ज्वायंट सिलेक्ट कमेटी की रिपोर्ट पर ही अवलम्बित था। लेकिन जिस समय ये लेख लिखे गये थे, भावी विधान ने क़ानून का रूप नहीं धारण किया था, बल्कि वह केवल एक

रिपोर्ट की सूरत में ही था और इसलिए अनिश्चित था। यद्यपि ज्वायंट सिलेक्ट कमिटी की रिपोर्ट में और अन्तिम रूप से निश्चित इस नवीन शासन-विधान में अधिक फ़र्क़ नहीं है, फिर भी यह आवश्यक जान पड़ता है कि अब नवीन विधान की रूप-रेखा हम 'सरस्वती' के पाठकों के सामने स्पष्ट रूप से रक्खें। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस नवीन योजना से देश की वर्तमान शासन-पद्धति में अनेक तब्दीलियाँ आई हैं। शासन-सम्बन्धी अनेक विषयों के बारे में नये क़ानून बन गये हैं—नया राजनैतिक ढाँचा तैयार किया गया है। ब्रिटिश पार्लियामेंट, भारतीय गवर्नमेंट और देशी रियासतों के सम्बन्ध में नवीनता आ गई है। गवर्नर-जनरल और गवर्नरों को विशेषाधिकार मिले हैं। उन्हें विशेष उत्तरदायित्व भी प्राप्त हो गया है। संघ-सरकार (Federation) नाम की एक नई केन्द्रीय राजनैतिक संस्था बन गई है। कहा जाता है कि प्रान्तीय 'स्वराज्य' (?) भी क़ायम कर दिया गया है। इन बातों के अतिरिक्त अदालतों के सम्बन्ध में, रेलवे के सम्बन्ध में तथा इसी प्रकार की अनेक छोटी छोटी बातों के बारे में नये नियम बनाये गये हैं। ज़ाहिर है कि इस परिमित लेख में इन सब विषयों पर सविस्तर विचार करना असम्भव है। इसलिए और विषयों को आगे के लिए छोड़कर इस स्थल पर हम केवल प्रान्तीय स्वशासन पर ही संक्षेप में विचार करेंगे।

प्रान्तीय स्वशासन—कहा जाता है कि नये शासन-विधान से भारतवर्ष में प्रान्तीय 'स्वराज्य' क़ायम हो जाता है। इसके पहले समाचार-पत्रों में नये शासन-विधान के सम्बन्ध में जो लेख निकले हैं उनमें 'प्रान्तीय स्वराज्य' का शब्द अनेक विद्वान् लेखकों ने इस्तेमाल किया है। हमारे मतानुसार नये विधान में प्रान्तों को जो राजनैतिक अधिकार प्राप्त हुए हैं उनके लिए 'स्वराज्य'-शब्द का इस्तेमाल करना 'स्वराज्य'-शब्द का घोर दुरुपयोग और साहित्यिक अत्याचार है। हम 'प्रोविंशियल अटोनोमी' के लिए इस लेख में 'प्रान्तीय स्वशासन' शब्द का प्रयोग करेंगे, और वह भी संकोच के साथ।

प्रश्न यह होता है कि प्रान्तीय स्वशासन क्या है, नये विधान के अनुसार प्रान्तीय गवर्नमेंट की रूप-रेखा कैसी होगी, व्यवस्थापक सभाओं को क्या अधिकार मिले हैं, गवर्नर के अधिकार किस हद तक परिमित किये गये हैं?

नये विधान के अनुसार भारतवर्ष में ११ प्रान्त ऐसे होंगे जिन पर गवर्नर शासन करेंगे और ये गवर्नर के प्रान्त कहे गये हैं। ६ प्रान्त ऐसे होंगे जिन पर चीफ़ कमिश्नर शासन करेंगे और वे चीफ़ कमिश्नर के प्रान्त कहे जायँगे। (१) मदरास, (२) बम्बई, (३) बंगाल, (४) संयुक्त-प्रान्त, (५) पंजाब, (६) बिहार, (७) मध्यप्रदेश, (८) आसाम, (९) उत्तर-पश्चिम-सीमा-प्रान्त, (१०) उड़ीसा और (११) सिन्ध—इन प्रान्तों पर गवर्नर शासन करेंगे। (१) ब्रिटिश बिलोचिस्तान, (२) दिल्ली, (३) अजमेर और मारवाड़ा, (४) कुर्ग, (५) अंडमन और नीकोबार द्वीप और (६) पंथ पिप्लोदा पर चीफ़ कमिश्नर का शासन होगा।

उड़ीसा और सिन्ध के प्रान्त नये बनाये गये हैं। अभी तक उड़ीसा बिहार-प्रान्त का अंग था। अब उसमें अन्य प्रान्तों की कुछ और भूमि जोड़कर वह एक नया प्रान्त बना दिया गया है। सिन्ध अब तक बम्बई में शामिल था। लेकिन यद्यपि अभी तक अपना आर्थिक भार सहन कर सकने की क्षमता उस प्रान्त में नहीं है, फिर भी मुसलमान लोग यह चाहते थे कि सिन्ध का प्रान्त अलग कर दिया जाय, इसलिए नये विधान में सिन्ध का प्रान्त भी एक अलग प्रान्त बना दिया गया है। इसके अलावा भी इस नये विधान में ब्रिटिश गवर्नमेंट ने यह अधिकार अपने हाथ में रख छोड़ा है कि वह जब आवश्यकता समझे, संघ-व्यवस्थापक सभा और प्रान्तों की व्यवस्थापक सभाओं की राय से—

(१) नया प्रान्त बना सकती है,
(२) किसी प्रान्त का क्षेत्रफल बढ़ा सकती है,
(३) किसी प्रान्त का क्षेत्रफल घटा सकती है,
(४) किसी प्रान्त की सीमा बदल सकती है (दफ़ा २९०)।

गवर्नर के अधिकार—गवर्नर नये विधान में प्रान्तीय स्वशासन के अन्तर्गत मुख्य शासक माना गया

है। वही सम्राट् के प्रतिनिधित्व और शासन के लिए ज़िम्मेदार समझा गया है (दफ़ा ४९)। शासन-कार्य में अपनी सहायता के लिए वह एक मंत्रिमण्डल बनायेगा और उसे वह प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के सदस्यों में से चुनेगा (दफ़ा ५०)। इस मंत्रि-मण्डल को गवर्नर जब चाहे बरख़ास्त कर सकता है। इसकी जीवन-अवधि सम्पूर्ण रूप से गवर्नर की स्वेच्छा पर निर्भर होगी। (गवर्नमेंट आफ़ इंडिया एक्ट, दफ़ा ५१)

लेकिन सम्राट् की तरफ़ से जो हिदायतनामा गवर्नर को दिया गया है और जो अभी से प्रकाशित कर दिया गया है उसमें यह है कि—

"गवर्नर का यह कर्तव्य होगा कि वह अपने मंत्री निम्नलिखित ढंग से चुनने का प्रयत्न करे, अर्थात् 'गवर्नर उस व्यक्ति की सलाह से मंत्रियों को नियुक्त करे 'जो उसकी राय में व्यवस्थापक सभाओं के अन्दर बहुमत के विश्वास-पात्र हों'। (हिदायतनामा; दफ़ा ८)

व्यवस्थापक सभा—प्रान्त-सम्बन्धी क़ानून बनाने के लिए प्रत्येक प्रान्त में व्यवस्थापक सभायें होंगी। अब तक प्रत्येक प्रान्त में केवल एक ही व्यवस्थापक सभा होती थी। नये विधान के अनुसार मदरास, बम्बई, बंगाल, संयुक्त-प्रान्त, बिहार और आसाम में दो दो व्यवस्थापक सभायें होंगी (दफ़ा ६० ए)। पंजाब, मध्य-प्रान्त और बरार, सरहद्दी-प्रान्त, उड़ीसा और सिन्ध में केवल एक एक व्यवस्थापक सभा होगी (दफ़ा ६० बी)। जिन प्रान्तों में दो दो व्यवस्थापक सभायें होंगी उनमें से एक का नाम लेजिस्लेटिव कौंसिल होगा और दूसरी लेजिस्लेटिव असेम्बली कहलायेगी (दफ़ा ६०-२)। लेजिस्लेटिव असेम्बली में साधारण लोग जायँगे, और इसकी जीवन अवधि केवल ५ वर्ष होगी (दफ़ा ६१-२)। इसका अधिवेशन साल भर में एक दफ़ा ज़रूर होगा। गवर्नर को अधिकार है कि असेम्बली को जब चाहे भंग कर दे (दफ़ा ६२ सी)। लेजिस्लेटिव कौंसिलों के मतदाता केवल बड़े ज़मींदार होंगे और इसलिए वही लेजिस्लेटिव कौंसिलों के सभासद् हो सकेंगे। यह संस्था असेम्बली के विपरीत मुस्तक़िल संस्था है, अर्थात् कभी भंग न की जायगी, किन्तु प्रत्येक तीन वर्ष के बाद इसके एक तिहाई सभासद् हट जाया करेंगे और उनकी जगह की पूर्ति नये सिरे से चुनाव-द्वारा कर ली जाया करेगी। गवर्नर इसको भी बरख़ास्त कर सकेगा। (दफ़ा ६१-३)

युक्तप्रान्त में प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिल में १७ जगहें मुसलमानों की होंगी, १ योरपीय लोगों की, और ३५ साधारण जगहें हिन्दुओं की होंगी। गवर्नर कम-से-कम ६ और ज़्यादा-से-ज़्यादा ८ आदमी इस कौंसिल के लिए मुक़र्रर करेगा। इस प्रकार युक्तप्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिल में ज़्यादा-से-ज़्यादा ६० और कम-से-कम ५८ सदस्य होंगे। बिहार की लेजिस्लेटिव कौंसिल में ४ जगहें मुसलमानों की हैं; १ योरपीय लोगों की; ९ साधारण जगहें हिन्दुओं की, १२ मेम्बर लेजिस्लेटिव असेम्बली चुनकर भेजेगी। गवर्नर ज़्यादा-से-ज़्यादा ४ और कम-से-कम ३ मेम्बर नियुक्त करेगा। इस प्रकार बिहार की लेजिस्लेटिव कौंसिल में ज़्यादा-से-ज़्यादा ३० और कम-से-कम २९ सभासद् होंगे। अन्य प्रान्तों की लेजिस्लेटिव कौंसिल के मेम्बरों का ब्योरा आगे पृष्ठ ८३ पर दिया गया है। लेजिस्लेटिव असेम्बलियाँ ग्यारहों प्रान्तों में होंगी। युक्तप्रान्त की लेजिस्लेटिव असेम्बली में कुल २२८ मेम्बर होंगे—१४० साधारण हिन्दू, २० हरिजन, ६४ मुसलमान, १ एंग्लो इंडियन, २ योरपीय, २ हिन्दुस्तानी ईसाई। ३ जगहें व्यापार-व्यवसाय-सम्बन्धी समितियों के प्रतिनिधियों के लिए, ३ श्रमजीवियों के प्रतिनिधियों के लिए और ६ स्त्रियों के लिए, जिनमें दो मुसलमान स्त्रियाँ होंगी और ४ हिन्दू स्त्रियाँ।

गवर्नमेंट आफ़ इंडिया एक्ट में एक सूची उन विषयों की दी गई है जिनके सम्बन्ध में प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं को क़ानून बनाने का हक़ है। यह सूची बहुत लम्बी-चौड़ी है और उसमें ५४ मदें हैं, जैसे—प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं को यह अधिकार है कि वह पुलिस के सम्बन्ध में, जेल के सम्बन्ध में, सरकारी क़र्ज़ के सम्बन्ध में, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और म्युनिसिपल बोर्ड के सम्बन्ध में, जङ्गल, नहर, धर्मशाले इत्यादि के बारे में क़ानून बनावे। यह सूची हम सम्पूर्ण रूप से यहाँ स्थानाभाव के

प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिल

१	२		३	४	५	६	७	८	
नाम प्रान्त	कुल जगहें		साधारण हिन्दू	मुसलमान	योरपीय	भारतीय ईसाई	लेजिस्लेटिव एसेम्बली-द्वारा भेजे प्रतिनिधि	गवर्नर-द्वारा मनोनीत	
	कम-से-कम	ज़्यादा-से-ज़्यादा						कम-से-कम	ज़्यादा-से-ज़्यादा
मदरास ...	५४	५६	३५	७	१	३	...	८	१०
बम्बई ...	२९	३०	२०	५	१	...	...	३	४
बंगाल ...	६३	६५	१०	१७	३	...	२७	६	८
संयुक्तप्रान्त ...	५८	६०	३४	१७	१	...	...	६	८
बिहार ...	२९	३०	९	४	१		१२	३	४
आसाम ...	२१	२२	१०	६	२	...	...	३	४

प्रान्तीय लेजिस्लेटिव एसेम्बली

प्रान्तों के नाम	कुल संख्या	कुल साधारण जगहें	साधारण जगहों में हरिजनों की संख्या	अर्ध सभ्य क्षेत्र और फ़िर्के	सिक्ख	मुसलमान	ऐंग्लो-इंडियन	योरपीय	हिन्दुस्तानी ईसाई	व्यापार-व्यवसाय-सम्बन्धी समितियों की जगहें	ज़मींदार	विश्व-विद्यालय	श्रमजीवियों के प्रतिनिधि	स्त्रियों की जगहें: साधारण हिन्दू	सिक्ख	मुसलमान	ऐंग्लो-इंडियन	हिन्दुस्तानी ईसाई
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९
मदरास ...	२१५	१४६	३०	१	...	२८	२	३	८	६	३	१	६	६	...	१	...	१
बम्बई ...	१७५	११४	१५	१	...	२९	२	३	३	७	२	१	७	५	...	१	...	..
बंगाल ...	२५०	७८	३०	...	...	११७	३	११	२	१९	५	२	८	२	...	२	१	..
संयुक्तप्रान्त	२२८	१४०	२०	...	...	६४	१	२	२	३	६	१	३	४	...	२	...	..
पंजाब ...	१७५	४२	८	...	३१	८४	१	१	२	१	५	१	३	१	१	२	...	..
बिहार ...	१५२	८६	१५	७	...	३९	१	२	१	४	४	१	३	३	...	१	...	..
मध्यप्रान्त और बरार	११२	८४	२०	१	...	१४	१	१	..	२	३	१	२	३	...	...	...	..
आसाम ...	१०८	४७	७	९	...	३४	...	१	१	११	...	...	४	१	...	...	...	..
उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त	५०	९	...	...	३	३६	...	...	...	...	२	...	...	...	...	...	..	..
उड़ीसा ...	६०	४४	६	५	...	४	...	...	१	१	२	...	१	२	...	...	...	..
सिन्ध ...	६०	१८	...	...	...	३३	...	२	...	२	२	...	१	१	...	१	...	..

(१) बम्बईप्रान्त की साधारण हिन्दू जगहों में सात जगहें मरहठों के लिए सुरक्षित रहेंगी।
(२) पंजाब में जो जगहें ज़मींदारों के लिए हैं उनमें से एक स्थान तुमानदार के लिए होगा।
(३) आसाम और उड़ीसा में स्त्रियों का निर्वाचन असाम्प्रदायिक रूप से होगा।

कारण प्रकाशित नहीं कर रहे हैं। किन्तु गवर्नमेंट आफ़ इंडिया एक्ट के श्येड्यूल नं० ७ में पाठक इसे पा सकते हैं। कुछ मदें ऐसी भी हैं जिनके विषय में प्रान्तीय और केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाओं को दोनों को क़ानून बनाने का समान रूप से अधिकार है। ये विषय भी ३६ हैं और सबके सब इस स्थान पर प्रकाशित नहीं किये जा सकते। किन्तु इसका मतलब कोई यह न समझे कि प्रान्तीय व्यवस्थापक सभायें जो क़ानून चाहें बना सकेंगी। नये विधान के अनुसार व्यवस्थापक सभायें गवर्नर की मंज़ूरी के बिना कोई भी ऐसा क़ानून पास नहीं कर सकतीं जो—

(१) पार्लियामेंट के किसी क़ानून का जो ब्रिटिश भारत पर लागू है, संशोधन करता हो,

(२) या गवर्नर-जनरल के किसी क़ानून या आर्डिनेंस को संशोधित करे,

(३) या गवर्नर-जनरल के उन अधिकारों पर हस्तक्षेप करता हो जो उसे नये विधान में मिले हैं,

(४) या फ़ौजदारी की अदालत की किसी कार्यवाही पर असर डालता हो जिससे ब्रिटिश योरपीय प्रजा का सम्बन्ध है। (दफ़ा १०८।२)

गवर्नर स्वयं ऐसे क़ानून या ऐसे प्रस्तावों को व्यवस्थापक सभाओं में पेश होने से रोक सकता है जो उसके बनाये हुए किसी आर्डिनेंस के ख़िलाफ़ जाता हो या पुलिस के महकमे से सम्बन्ध रखनेवाले किसी क़ानून के विरुद्ध हो (दफ़ा १०८।२।३)। इसका मतलब यह हुआ कि यद्यपि नये विधान में पुलिस के सम्बन्ध में क़ानून बनाने का हक़ व्यवस्थापक सभाओं को दिया गया है, तथापि व्यवस्थापक सभायें इस हक़ का इस्तेमाल उसी दशा में कर सकती हैं जब गवर्नर उन्हें इस बात की मंज़ूरी दे। गवर्नर को यह पूरा अधिकार है कि अगर किसी व्यवस्थापक सभा का कोई सदस्य पुलिस के बारे में कोई क़ानून पेश करना चाहता है और गवर्नर उसे पसन्द नहीं करता तो वह उक्त सभासद् को प्रस्ताव पेश करने से रोक सकता है। और वह प्रस्ताव किसी भी हालत में व्यवस्थापक सभा के सामने पेश न हो सकेगा। अगर गवर्नर ने या गवर्नर-जनरल ने कोई आर्डिनेंस निकाला है तो व्यवस्थापक सभाओं को इस बात का बिलकुल अधिकार नहीं है कि वे उस आर्डिनेंस के सम्बन्ध में कोई भी प्रस्ताव अपने सामने ला सकें (गवर्नमेंट आफ़ इंडिया एक्ट दफ़ा १०८)। दूसरी बात यह भी है कि अगर गवर्नर ने किसी बिल या प्रस्ताव को लेजिस्लेटिव कौंसिल के सामने पेश करने की इजाज़त भी दे दी तो वह उस बिल या प्रस्ताव को पास हो जाने के बाद भी अपने अधिकार से रद कर सकता है (दफ़ा १०९)।

गवर्नर के विशेषाधिकार—नये विधान के अनुसार गवर्नर को अनेक विशेषाधिकार दिये गये हैं। विशेषाधिकार से मतलब यह है कि वह अपने अधिकार से और बिना मंत्रिमंडल या व्यवस्थापक सभा के पूछे अनेक विषयों के सम्बन्ध में जो चाहे कर सकता है और व्यवस्थापक सभा को या किसी को भी उसकी आज्ञाओं पर हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार न होगा।

(१) अगर गवर्नर यह समझे कि प्रान्त की या प्रान्त के किसी हिस्से की शान्ति और अमन में कोई भयङ्कर ख़तरा आनेवाला है तो उसको रोकने के लिए वह जो कुछ मुनासिब समझे, कार्रवाई कर सकता है।

(२) अगर गवर्नर देखे कि उसके शासन-क्षेत्र में अल्प-संख्यक सम्प्रदायों के स्वत्वों में अनुचित हस्तक्षेप किया जा रहा है तो उसकी रक्षा के लिए वह जो उचित समझे करे। (दफ़ा ५२।१)

उदाहरण के तौर पर जैसे अगर किसी गवर्नर को मालूम हो कि उसके प्रान्त में कोई संस्था सत्याग्रह आरम्भ करने की योजना कर रही है या किसी आन्दोलन का संगठन कर रही है जिससे प्रान्त में अशान्ति फैल जायगी तो वह जो मुनासिब इन्तिज़ाम समझेगा, करेगा और मंत्रिमंडल या व्यवस्थापक सभा को हस्तक्षेप करने का कोई अख़्तियार न होगा। या यह कि अगर वह देखे कि कहीं नौकरी के सिलसिले में या शिक्षा के बारे में या व्यापार के बारे में हिन्दुओं के हक़ों का या मुसलमानों के हक़ों का निरादर होता है तो इस स्वत्व-अपहरण को मिटाने के लिए जो क़ायदा या क़ानून वह मुनासिब समझे बना देगा। इस क़ानून या क़ायदे पर मंत्रिमंडल या व्यवस्थापक सभा कुछ हस्तक्षेप न कर सकेगी।

(३) अगर गवर्नमेंट-द्वारा किसी सरकारी नौकर को या उसके आश्रित लोगों को कोई पेंशन, जागीर या अधिकार दिये जा चुके हैं और व्यवस्थापक सभा या मंत्रिमंडल ऐसा क़ानून बनाना चाहे जिससे उन पेंशनों, जागीरों या अधिकारों पर हस्तक्षेप होता है तो गवर्नर का कर्त्तव्य होगा कि अपने विशेषाधिकार से व्यवस्थापक सभा या मंत्रिमंडल की बात को मन्सूख़ करके सरकारी नौकरों या उनके आश्रितों के अधिकार की रक्षा करे।

(४) अगर किसी प्रान्त की व्यवस्थापक सभा ऐसा क़ानून बनावे जिससे ब्रिटिश व्यापार पर, ब्रिटिश कम्पनी पर या व्यक्ति पर असाधारण टैक्स लग जाता हो तो गवर्नर को विशेष अधिकार है कि ऐसे क़ानून को न पास होने दे और न अमल में आने दे (दफ़ा ५२।डी)।

(५) वाइसराय अपने अधिकारों के अनुसार जो हुक्म गवर्नर के पास भेजेगा उसे वह अक्षरशः मानेगा और उस पर अमल करेगा, चाहे व्यवस्थापक सभा या मंत्रिमंडल उसके विरुद्ध ही क्यों न हों (दफ़ा ५४)। इस सिलसिले में नये विधान के अनुसार गवर्नर को विशेषाधिकार प्राप्त है और वह मजबूर नहीं है कि व्यवस्थापक सभा से या मंत्रिमंडल से कुछ भी पूछे।

(६) गवर्नर को इस बात का भी अख़्तियार है कि वह अपने ही क़लम से आर्डिनेंस निकाल दे (दफ़ा ८९)।

(७) अगर किसी प्रान्त के गवर्नर को मालूम हो कि कोई आदमी या दल इस बात की कोशिश या तैयारी कर रहा है कि हिंसात्मक अपराध करे जो गवर्नर की राय में गवर्नमेंट को पलटने के उद्देश से हो तो वह उसके रोकने के लिए किसी भी नीति का प्रयोग कर सकता है (दफ़ा ५८। हिंसात्मक अपराधों के संबंध में जो कुछ सूचनायें गवर्नमेंट के पास होंगी, गवर्नर उन्हें अपने पास सुरक्षित रक्खेगा और ये सूचनायें वह किसी को भी बताने से इनकार कर सकता है। इसका मतलब यह हुआ कि जो मंत्री व्यवस्थापक सभा की ओर से पुलिस-विभाग का कर्त्ता-धर्त्ता और ज़िम्मेदार माना जायगा उसे भी हिंसात्मक आन्दोलनों के सम्बन्ध में यह पता नहीं रहेगा कि उसके मातहत पुलिस अफ़सर क्या कर रहे हैं।

चीफ़ कमिश्नर के प्रान्त

गवर्नर-द्वारा शासित प्रान्तों के अतिरिक्त निम्नलिखित ६ और भी प्रान्त होंगे जिन पर गवर्नर-जनरल चीफ़ कमिश्नर-द्वारा शासन करेगा।

(१) ब्रिटिश बिलोचिस्तान, (२) देहली, (३) अजमेर मारवाड़, (४) कुर्ग, (५) अंडमन और नीकोबार द्वीप, (६) पंथ पिप्लोदा।

उपर्युक्त प्रान्तों का प्रबन्ध गवर्नर के प्रान्तों से भिन्न होगा। गवर्नर के स्थान पर वहाँ चीफ़ कमिश्नर होगा, जिसे वाइसराय अर्थात् गवर्नर-जनरल अपने इच्छानुसार नियुक्त किया करेंगे। इन प्रान्तों में कोई व्यवस्थापक सभा न होगी। ब्रिटिश बिलोचिस्तान के प्रबन्ध के लिए गवर्नर-जनरल को विशेषाधिकार प्राप्त है। यदि गवर्नर-जनरल आवश्यक समझे तो वह अपने इच्छानुसार संघ-सरकार अर्थात् केन्द्रीय सरकार के किसी भी क़ानून को ब्रिटिश बिलोचिस्तान पर लागू होने से रोक सकता है। या इस प्रान्त के लिए क़ानून की कुछ धाराओं में परिवर्तन कर सकता है। इस प्रान्त की शान्ति और शासन के लिए यदि गवर्नर-जनरल आवश्यक समझता है तो वह स्वयं रेग्यूलेशन जारी कर सकता है, जिसका महत्त्व वही होगा जो संघ-सरकार-द्वारा बनाये किसी क़ानून का होगा। अंडमन और नीकोबार द्वीपों के शासन के सम्बन्ध में भी गवर्नर-जनरल को यह विशेषाधिकार प्राप्त है। प्रान्तीय शासन इस देश में उस दिन से जारी किया जायगा जिस दिन सम्राट् और उनकी कौंसिल इस बात की घोषणा निकालेंगे (दफ़ा ४७७); किन्तु घोषणा निकालने के पहले यह आवश्यक है कि प्रान्तीय स्वशासन के आर्थिक पहलू पर विचार करने के लिए आर्थिक जाँच-कमिटी प्रान्तवार दौरा कर ले। भारत-सचिव मारक्वीस आफ़ ज़ेटलैंड ने

१९३५ की पहली जुलाई के इस जाँच-कमिटी की घोषणा कर भी दी है और जाँच जारी है।

नये शासन-विधान पर हमारा यह लेख अधूरा है। इस लेख में हम फ़ेडरेशन के ऊपर कुछ नहीं बता पाये। वाइसराय के विशेषाधिकार पर कुछ प्रकाश नहीं डाला। फ़ेडरेशन का संगठन और देशी नरेशों का उससे सम्बन्ध भी इस लेख में नहीं आ सका। फ़ेडरेशन अर्थात् संयुक्त केन्द्रीय शासन में व्यवस्थापक सभाओं का क्या स्थान होगा, यह भी हम नहीं बता सके। मतदाताओं की योजना और वोटों के अधिकार का महत्त्वपूर्ण प्रश्न भी छूट गया। सबसे बड़ी बात जो ब्रिटिश व्यापार और अर्थनीति के सम्बन्ध की भी इस लेख में नहीं आई है। किन्तु इस अपूर्णता को अच्छी तरह समझते हुए भी इस लेख को हम इसी स्थान पर इस आशा से समाप्त करते हैं कि यदि सम्भव हुआ तो इन विषयों पर हम अगले अंकों में निवेदन करेंगे।

कहानी

लेखक, कुँवर सोमेश्वरसिंह, बी० ए०

जीवन की करुण कहानी,
किस भाँति कहूँ मैं किससे ?
सुनने का साहस खोते,
कह चलता हूँ जिस जिससे॥

पर कहे बिना रह सकता,
था मौन कहाँ तक धारे।
है रोक कौन रख सकता,
आँसू के प्रबल पनारे ?

राकापति से जा रोया,
आँखों में आँसू भर भर।
वे चले गये मनमारे,
ठंडी निःश्वासें भरकर॥

बैठी रसाल-डाली पर,
कोयल से कही कहानी।
वह कुहू कुहूकर भागी,
काली बसन्त की रानी॥

एकान्त मृदुल कलिका से,
बतलाई अपनी पीड़ा।
वह लगी किन्तु मृदु करने,
चंचल समीर से क्रीड़ा॥

तारों को लगा सुनाने,
निस्तब्ध निशा नीरव में।
जा छिपे न-जाने वे भी,
किस अन्धकारमय भव में॥

घनघोर घटाओं से जब,
नभ का आँगन भर आया।
प्रेमी मयूर ने अपना,
उत्साह अपूर्व दिखाया॥

कुछ सहानुभूति पाने को,
आकुल मन उससे खोला।
पर नाच नाच मस्ती से,
विषरस उसने भी घोला॥

× × × ×

यदि एक बार भी तुमसे,
कहने का अवसर पाता।
सम्भव है भार हृदय का,
अपने कुछ कम कर पाता॥

आयस्टर के बीजों से लाखों रुपया





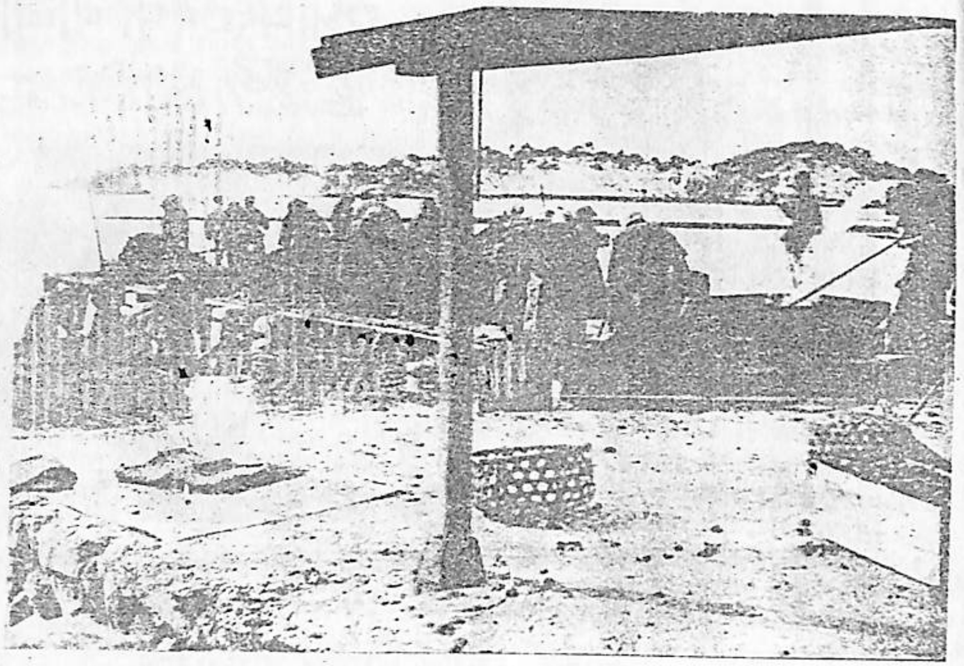
[(१) सीपियों के हार समुद्र में रहने के बाद। (२) सीपियाँ तार में पिरोई जा रही हैं।]

लेखक, श्रीयुत धर्मवीर, एम० ए०

आयस्टर एक प्रकार की मछली है जिसे योरप अमरीका में लोग खाते हैं और बहुत बड़े पैमाने में इसका व्यापार करते हैं। जापानी इसके बीज अमरीका को भेजते हैं और इस सिलसिले में लाखों रुपये पैदा करते हैं। ये बीज किस प्रकार तैयार किये जाते हैं यह श्रीयुत धर्मवीरजी ने अपनी जापान-यात्रा में स्वयं देखा था। इस लेख में आपने उसी का वर्णन किया है।

सिंगापुर की म्युनिसिपैलटी ने चीनियों के लिए शहर का एक भाग एक प्रकार से अलग कर रक्खा है। नगर भर के सब चीनी उसी हिस्से में आबाद हैं; इधर-उधर नहीं रहते। पहले दिन जब हम सैर करते हुए उधर जा निकले तब इतनी सख़्त दुर्गन्ध आई कि नाक के सामने रूमाल रखकर वापस भागे। इस दुर्गन्ध का कारण यह था कि चीनी लोग विभिन्न प्रकार के मांस को उस समय खाते हैं जब वह सड़ने लगता है। कहते हैं, इस हालत में उसको खाने में उन्हें बहुत मज़ा आता है।

परन्तु सिर्फ़ चीनियों के बारे में ही यह बात नहीं कही जा सकती। पेरिस के होटल में जैसा कि योरपीय देशों का नियम है, प्रतिदिन दोपहर को भोजन के अन्त में हमारे सामने पनीर रक्खा जाता



[समुद्र से निकालकर सीपियाँ धोई जा रही हैं। बाईं ओर पानी की मोटी धार उन पर गिर रही है।]

था। वह पनीर वैसा नहीं होता जैसा कि हम यहाँ भारत में खाते हैं। वह बहुत पुराना होता है। ('ताजा पनीर' सर्वथा भिन्न वस्तु है और उसे अपेक्षाकृत बहुत कम लोग खाते हैं। पुराने पनीर की उम्र जितने साल ज्यादा हो, उतनी ही ज्यादा उसकी क़ीमत होती है। उसका ज़रा-सा टुकड़ा मैंने एक बार मुँह में डाल लिया और सो भी बिस्कुट के ऊपर रख कर। बस, खाई हुई सभी चीज़ों का स्वाद जो मुँह में बना हुआ था, जाता रहा।

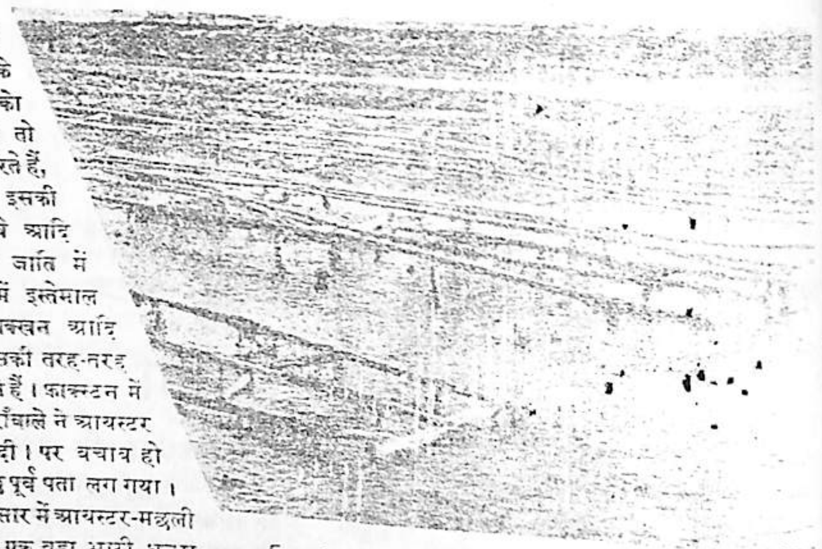
भारत में हम गौ के ताजा घी को बहुत अच्छा समझते हैं। उसमें पकाई हुई साग-सब्जी प्रायः बहुत अच्छी और स्वादिष्ट खयाल की जाती है, लेकिन मुझे याद है कि जब एक बार तिब्बत के रहनेवाले कुछ पड़ोसियों तक घी की छौंक की खुशबू जा पहुँची तब वे अपने कमरे से बाहर निकल आये और नाक बन्द करके बड़े गुस्से में कहने लगे—"आपने यह दुर्गन्ध क्यों फैला रक्खी है? यहाँ मनुष्य रहते हैं, आपको इस बात का ध्यान रहना चाहिए!"

मैंने छौंक या तड़का लगवाना बन्द कर दिया और सोचने लगा कि सचमुच हम पशु हैं या मनुष्य।

वास्तव में बात यह है कि खुशबू और बदबू की कोई एक मीयाद नहीं है। यही हाल जीभ के स्वाद का है।

× × × ×

इँग्लेंड, फ्रांस, इटली आदि देशों में आयस्टर नाम के छोटे-से जानवर को (जिसे आम लोग तो मछली में शुमार करते हैं, परन्तु वैज्ञानिक इसकी गणना शंख, घोंघे आदि जल-जन्तुओं की जाति में करते हैं) खाने में इस्तेमाल करते हैं। इसे मक्खन आदि में भूनकर वे इसकी तरह-तरह की भाजियाँ बनाते हैं। फाक्स्टन में तो एक बार रेस्तराँवाले ने आयस्टर सामने धर भी दी। पर बचाव हो गया। खाने से कुछ पूर्व पता लग गया।



[लकड़ी के चौखटे समुद्र में गड़े हुए हैं। इनके सहारे तार में पिरोई सीपियाँ लटकाई जाती हैं।]

आज-कल संसार में आयस्टर-मछली का उत्पन्न करना एक बड़ा भारी धन्धा हो गया है। अधिकतर यह अमरीका और फ्रांस में तैयार की जाती है। यों इँग्लेंड, हालेंड, कनाडा आदि देशों में भी यह धन्धा चल रहा है।

फ्रांस में रहते हुए एक बार इस धन्धे को देखने का इरादा किया, बल्कि तैयारी भी कर ली। परन्तु आख़िरी वक़्त पर उधर न जा सका। जापान आज-कल कनाडा और अमरीका को इस मछली के बीजों की सप्लाई करता है। यही वजह है कि इस धन्धे में लाखों जापानी काम करते हैं। मछुवे किनारों पर काम करते हैं, कुली बक्सों को ढोते हैं, औरतें और लड़कियाँ सीपियों को काटती और छाँटती हैं। यह उद्योग ख़ास जापान में ही नहीं जारी है, बल्कि जापान के अधीनस्थ फारमोसा-द्वीप और कोरिया-देश में भी। हर साल जापान पन्द्रह लाख रुपये के मूल्य के आयस्टर के बीज कनाडा और अमरीका को भेजता है।

इस उद्योग को देखने के लिए मात्सुशीमा की खाड़ी के किनारे अन्तर्राष्ट्रीय आयस्टर-कम्पनी में जाना था। तोकियो से रेलगाड़ी का बारह घंटे का रास्ता है। रात को मात्सुशीमा शहर में ठहरे। अगले दिन प्रातः उठकर समुद्र की ओर गये। कई एक जहाज और दर्जनों किश्तियाँ पानी में खड़ी थीं। तीस-पैंतीस के करीब ऐसे मकान बने हुए हैं जिनमें आयस्टर-मछली के बीज लकड़ी के बक्सों में बन्द कर के बाहर भेजे जाते हैं। इनके अन्दर जाकर देखने से पूर्व हमें यहाँ के केन्द्रीय कार्यालय के एक सज्जन समुद्र की ओर ले गये। यहाँ पानी बहुत ही कम था। गहरा बिलकुल न था। इसी कारण लकड़ी के लम्बे-लम्बे ढाँचे बना कर समुद्र में डाल दिये गये हैं। उनके ऊपर सीपियाँ लोहे के तारों में पिरोकर लटका दी



[कृपि-विभाग के कर्मचारी आयस्टर के बीजों का मुलाहिज़ा कर रहे हैं।]

गई हैं। हर एक सीपी का घेरा ढाई-तीन इञ्च होता है। लोहे का तार प्रायः पाँच फ़ुट होता है। इसमें अस्सी के क़रीब सीपियाँ पिरोई जाती हैं। ये सीपियाँ पानी के अन्दर लगभग डेढ़ मास तक रहती हैं। (समुद्र के पानी में नमक ज़रूर होना चाहिए)। आयस्टर के छोटे छोटे बच्चे इस बीच में सीपियों के साथ चिपट जाते हैं। एक एक सीपी के साथ प्रायः कई सौ आयस्टर होते हैं। इस अवस्था में एक आयस्टर लम्बाई में आध इञ्च से कम होता है।

अब तार में पिरोई हुई सीपियाँ पानी में से निकाल ली जाती हैं। (यदि वे समुद्र-जल में इसी तरह डेढ़-दो बरस तक पड़ी रहें तो लम्बाई-चौड़ाई में बड़ी होने से खाने के क़ाबिल बन जाती हैं। आयस्टर की आयु ज़्यादा से ज़्यादा पन्द्रह साल होती है।) बाहर लाकर ये सीपियाँ तारों से अलग कर दी जाती हैं क्योंकि इनके अन्दर ही आयस्टर के बीज होते हैं। फिर सीपियों को टोकरों में भरकर खुले पानी में ख़ूब अच्छी तरह धोते हैं।

साफ़ पानी में धुलने के बाद ये सीपियाँ उन मकानों में आती हैं, जहाँ ये लकड़ी के बक्सों में बंद की जाती हैं। यहाँ सैकड़ों औरतें और लड़कियाँ रबर के बूट पहने हुए मेज़ों के सामने तैयार खड़ी रहती हैं (यदि ये रबर के लम्बे बूट न पहनें तो पानी के कारण इनके पैर गल जायें और शायद गठिया आदि रोग भी हो जायँ)। ज्यों ही सीपियाँ आती हैं, वे उनको फोड़ना शुरू कर देती हैं। ऐसा करने से हर एक सीपी के दो टुकड़े हो जाते हैं ताकि आयस्टर के बढ़ने में किसी प्रकार की कोई रुकावट न हो।

कृषि और जंगल के सरकारी महकमों के अफ़सर यहाँ प्रायः विद्यमान रहते हैं। वे इन सीपियों का बाक़ायदा इम्तिहान करते हैं। देखते हैं कि हर एक सीपी में लगभग बीस बीज तो हैं। अगर किसी में इतने बीज न हों या अगर स्टारफ़िश नाम की मछली ने सीपी के अन्दर घुसकर आयस्टर के बीजों को खाना शुरू कर दिया हो या उसे कोई और हानिकारक रोग चिपट गया हो तो वे उस सीपी को एक तरफ़ कर देते हैं। ये बातें आम तौर पर कारख़ाने की मुलाज़िम स्त्रियाँ और लड़कियाँ भी देखती रहती हैं, परन्तु इसके होते हुए भी कृषि और जंगल के महकमों के अफ़सर इन बातों का ख़ास ख़याल रखते हैं। वे जानते हैं कि अगर एक भी बीमार सीपी जापान से बाहर चली गई तो कनाडा, अमरीका आदि देशों पर इसका बहुत बुरा असर पड़ेगा। पाँच-सात रुपये की मुलाज़िम लड़की के लिए शायद यह बात इतनी महत्त्वपूर्ण न हो, परंतु इन सरकारी कर्मचारियों के लिए यह बहुत महत्त्व रखती है।

लकड़ी के बक्स जिनमें आयस्टर के बीज पैक किये जाते हैं, साइज़ में बहुत बड़े नहीं होते। बस, उतने ही बड़े जितने हमारे यहाँ आम आदि भेजने के होते हैं। एक बक्स में प्रायः डेढ़ हज़ार ऐसी सीपियाँ होती हैं जिनके साथ आयस्टर के बीज चिपटे होते है।

बक्सों में सीपियाँ भर दी जाती हैं तब उधर से कील और हथौड़ी लेकर कारख़ाने के दो नौकर आ जाते हैं। बक्सों को बन्द करना शुरू कर देते हैं। बन्द करने के बाद वे उन्हें एक दूसरे के ऊपर रखते जाते हैं। दो आदमी और आ जाते हैं। वे हर एक का मुलाहिज़ा करते हैं। देखते हैं कि हर बक्स के एक पहलू में कारख़ाने की मोहर ठीक लगी हुई है या नहीं। जिस पर नहीं लगी होती या जिस पर ज़रा मध्यम होती है तो उसे वे चुन कर एक तरफ़ रख देते हैं।

अब इस क्रिया का अंतिम भाग रह जाता है। बक्सों को कश्तियों में भर-भर कर मल्लाह लोग उन्हें समुद्र में खड़े जहाज़ तक ले जाते हैं। जहाज़ का क्रेन कश्तियों की तरफ़ मुँह करके तैयार होकर खड़ा हो जाता है। कश्तियों ने जहाज़ को छूआ कि क्रेन ने रस्सा नीचे फेंकना शुरू किया। मल्लाहों ने कुलियों की सहाय से दस-दस बक्सों के बंडल रस्से के घेरे में दे दिं क्रेन उन्हें ऊपर उठाकर ले जाता है। जहाज़ के कु घरड़ घरड़ की आवाज़ करनेवाले क्रेन का स्वाग करते हैं। रस्सा खोलकर उन्होंने बक्स एक तरफ़ र लिये और एक के ऊपर दूसरी पंक्ति लगाने लगे उधर क्रेन फिर बाहर समुद्र में खड़ी कश्ती की ओ मुँह करता है। कुछ ही मिनट में यह कश्ती ख़ाल हो जाती है। दूसरी उसकी जगह ले लेती है जहाज़ भर गया। वह चल देता है। दूसरा उस स्थान में आकर खड़ा हो जाता है।

कुलियों, कश्तियों, जहाज़ों, औरतों औ लड़कियों का यह सिलसिला कई मास तक जार रहता है। यह धन्धा वास्तव में ऐसा ही भारी है उद्यमशील जातियाँ साधारण साधारण वस्तुओं दे धन्धे को कितना विराट् स्वरूप प्रदान कर सकती है उसका आयस्टर का यह धन्धा एक मामूली उदाहरण है। और यह उसी सामान्य वस्तु का धन्धा है जिसकी गन्ध तक हमें सह्य नहीं हुई!

गीत

लेखक,
श्रीयुत सूर्य्यकान्त
त्रिपाठी 'निराला'

बुझे तृष्णाशा-विषानल झरे भाषा अमृत-निर्झर,
उमड़ प्राणों से गहनतर छा गगन लें अवनि के स्वर।
ओस के धोये अनामिल पुष्प ज्यों खिल किरण-चूमे,
गन्ध-मुख मकरन्द उर सानन्द पुर-पुर लोग घूमे।
मिटे कर्पण से धरा के पतन जो होता भयङ्कर,
उमड़ प्राणों से निरन्तर छा गगन लें अवनि के स्वर।
बढ़े वह परिचय विंधा जो क्षुद्र भावों से हमारा,
क्षिति-सलिल से उठ अनिल बन देख लें हम गगन-कारा।
दूर हो तम-भेद यह जो वेद बनकर वर्ण-सङ्कर,
पार प्राणों के करें उठ गगन को भी अवनि के स्वर।



"मैं तुम्हारा भाई हूँ।"

रोगी को देखते ही अच्छा कर देनेवाले एक अज्ञात परिव्राजक की कहानी

"तुम मेरे कौन हो?"



(१)

गौंगीपुर नामक एक ग्राम था। उसके एक किनारे पर एक छोटे-से कुटीर में एक विधवा निवास करती थी। उसकी अवस्था अधिक नहीं थी। उसका नाम था विमला। सुधा विमला की एकमात्र कन्या थी। वह तेरह वर्ष की थी। घर में एक चरखा था, विमला उससे सूत काता करती थी। वह सिलाई का भी काम जानती थी। इससे कपड़े सीकर भी थोड़ा-बहुत उपार्जन कर लिया करती थी। कुटीर के सामने थोड़ी-सी ज़मीन पड़ी थी, जिसमें उसने तरह तरह के फूलों और तुलसी के पौधे लगा रक्खे थे। एक किनारे पर साग-तरकारियाँ भी लगी थीं। तरकारी वह कुछ तो स्वयं खाती और कुछ बेच देती। इस प्रकार विमला को इतनी आय हो जाया करती थी कि वह गृहस्थी का कार्य किसी प्रकार चला लेती थी, उसे भोजन-वस्त्र के लिए कोई विशेष कष्ट नहीं था।

दस दिन से सुधा ज्वर से पीड़ित थी। किसी समय ज्वर उतर जाता था और बाद को फिर चढ़ आता था। गाँव के वैद्य ने एक बार आकर सुधा को देखा और ओषधि की व्यवस्था कर दी, परन्तु उससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। सुधा बहुत ही शान्त और सुशील लड़की थी, रोग की दशा में वह छटपटाती नहीं थी, यन्त्रणा नहीं प्रकट करती थी।

रात हो गई थी, अधिक नहीं, केवल नौ बजे थे। सुधा को बड़े वेग से ज्वर चढ़ा था। ज्वर के आवेग से वह अंट संट बक रही थी। शय्या के पास बैठी माता आकुल भाव से उसकी ओर ताक रही थी। इधर कई दिनों से नींद न आ सकने तथा दुश्चिन्ता के कारण विमला का मुख मलिन हो गया था, आँखों में कालिमा छा गई थी। उस समय उसकी आँखों में आँसू भर आये थे। कभी कभी अंचल से वह उन्हें पोछ दिया करती थी।

इतने में किसी ने दरवाज़े पर धक्का दिया— ज़ोर से नहीं, मानो किसी ने हाथ से धीरे धीरे थपथपाया था। विमला उठकर बाहर दरवाज़े के पास आई। उसने पूछा- रात के समय मेरा दरवाज़ा कौन ठेल रहा है? बाहर से किसी ने कहा- मैं अतिथि हूँ। दरवाज़ा खोल दो। किसी प्रकार का भय नहीं है।

कण्ठस्वर कोमल, मधुर और स्निग्ध था। विमला एक असहाय और अकेली रमणी थी। भला वह रात को किसी अपरिचित पुरुष को घर में कैसे प्रवेश करने देती? किन्तु कण्ठस्वर सुनते ही उसका सारा भय जाता रहा। उसके दिल में यह बात आई कि आशंका का कोई भी कारण नहीं है। जिसके मुँह की बात सुनने में इस प्रकार है, वह कभी दुष्ट पुरुष नहीं हो सकता। विमला ने सावधानी के साथ दरवाज़ा खोला, जिससे सुधा के कानों तक उसका शब्द न पहुँच सके।

लेखक, श्रीयुत नगेन्द्रनाथ गुप्त

दीपक के क्षीण आलोक में विमला ने देखा, द्वार के पास एक अपूर्व सौम्यमूर्ति विराजमान है। आकार कुछ बड़ा था, शरीर न तो अधिक स्थूल था और न अधिक पतला। बाल काले और कोमल थे। आँखें बड़ी बड़ी और दृष्टि स्निग्ध थी, जिसमें करुणा मूर्तिमान होकर दृष्टिगोचर हो रही थी। उस मूर्ति को देखकर विमला का मस्तक आदर से झुक गया। उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। विमला ने कहा - आप तो इस गाँव में रहते नहीं हैं। आप कौन हैं ?

पुरुष ने उत्तर दिया—मैं परिव्राजक हूँ। क्या तुम्हारे घर में कोई बीमार है ?

विमला ने विस्मित होकर पूछा—आपको किसने बतलाया ?

"किसी ने बतलाया नहीं है। मुझे कुछ ऐसा ही मालूम पड़ रहा है।"

विमला की आँखों में फिर आँसू भर आये। उसने कहा—मैं अनाथिनी विधवा हूँ। मेरे एक ही लड़की है। वह भी दस दिन से बीमार है। ज्वर के आवेग में इस समय वह अंट-संट बक रही है।

ममतापूर्ण मधुर स्वर में परिव्राजक ने कहा—क्या मैं उसे एक बार देख सकता हूँ ?

कुटीर में दो कमरे थे। भीतरवाले कमरे में तख्त पर सुधा लेटी हुई थी। विमला ने कहा—आइए, देख लीजिए।

कमरे में दरिद्रों के यहाँ की-सी गन्दगी नहीं थी। कमरा बहुत साफ़ सुथरा था। तख़्त पर धुला हुआ बिलकुल साफ़ कपड़ा बिछा था। सुधा मस्तक सञ्चालन कर रही थी, बीच बीच में वह अंट-संट भी बकने लगती थी।

"तू कौन है ? तेरे साथ मैं न चलूँगी।"

पुरुष शय्या के पास जाकर सुधा के मुँह की ओर ताकने लगा। वह बहुत ही ध्यान से उसकी ओर देख रहा था। विमला ने ज़रा देर तक खड़ी रहकर देखा, पुरुष युवा है। अवस्था ठीक ठीक नहीं मालूम पड़ती थी, किन्तु वार्द्धक्य का कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ता था।

पुरुष की दृष्टि स्थिर हो गई। विमला को ऐसा जान पड़ा, मानो इसके भावों में कुछ परिवर्तन हो गया है। धीरे-धीरे सुधा का अंट-संट बकना बन्द हो गया। मस्तक सञ्चालन करना भी उसने बन्द कर दिया। अब उसके अंग स्थिर हो गये। सुधा ने आँखें खोलकर उस पुरुष की ओर देखा और विस्मित होकर पूछा—आप कौन हैं ?

सुधा का दिमाग़ बिलकुल ठीक था, विकार का कोई लक्षण नहीं था। पुरुष ने कहा—मैं चिकित्सक हूँ। क्या तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट मालूम पड़ रहा है ?

"इस समय तो कोई क्लेश नहीं है, किन्तु पहले बड़ी पीड़ा थी।"

पुरुष ने सुधा को स्पर्श किये बिना ही कई बार उसके अंगों के ऊपर हाथ फेरा। उसके मस्तक को सहलाकर उसने कहा - अब तुम सोओ। कल सबेरे जब तुम्हारी नींद खुलेगी तब तुम अपने को बिलकुल अच्छी पाओगी।

आँखें मूँदकर सुधा सो गई। उसके श्वास-प्रश्वास स्वाभाविक रूप से चलने लगे। मुँह में कोई बात नहीं थी, अंगों में किसी प्रकार की चञ्चलता नहीं थी।

विमला की ओर घूमकर उस पुरुष ने कहा—रात को नींद नहीं खुलेगी। कल सबेरे तुम्हारी लड़की अच्छी हो जायगी।

विस्मय से अभिभूत होकर विमला ने कुछ भीत स्वर से पूछा—महाराज, आप कौन हैं ?

पुरुष ने उत्तर दिया—मैं तो पहले ही कह चुका हूँ कि मैं परिव्राजक हूँ।

यह कहकर वह दूसरे कमरे में आया और वहाँ से बाहर निकला। विमला ने कहा—रात में आप कहाँ जायँगे, कहाँ रहेंगे ?

पुरुष ने मुस्कराकर कहा—कहीं भी रह जाऊँगा। किसी मन्दिर में रहूँगा या किसी वृक्ष के नीचे ही सो जाऊँगा। मैं गृहस्थ नहीं हूँ, इसलिए घर में मेरे लिए स्थान नहीं है।

विमला ने कहा—आपने घर में प्रवेश करने से पहले कहा था कि मैं अतिथि हूँ। आज रात में आप मेरा आतिथ्य स्वीकार कीजिए।

पुरुष ने कहा—मैं तुम्हारे यहाँ आया हूँ, इससे अतिथि हूँ। किन्तु रात्रि के समय मैं घर के भीतर नहीं रहता। यदि तुम कहो तो घर के बाहर चबूतरे पर रात्रि व्यतीत कर सकता हूँ।

विमला ने पूछा—क्या आपके के लिए भोजन बनाऊँ ?

"मैं रात्रि के समय कुछ खाता भी नहीं।"

विमला ने ज़रा सा कुण्ठित भाव से कहा, मैं आपको क्या कहकर पुकारूँ ?

"मेरा नाम है आनन्द। तुम मुझे इसी नाम से पुकार सकती हो।"

"आप संन्यासी हैं ?"

"नहीं, मैं पूरा संन्यासी तो नहीं, बल्कि ब्रह्मचारी हूँ।"

आनन्द ने कुछ खाया नहीं, चबूतरे पर चटाई बिछाकर सो गया। उसके आज्ञानुसार दरवाज़ा बन्द करके विमला भीतर जाकर सो गई।

(२)

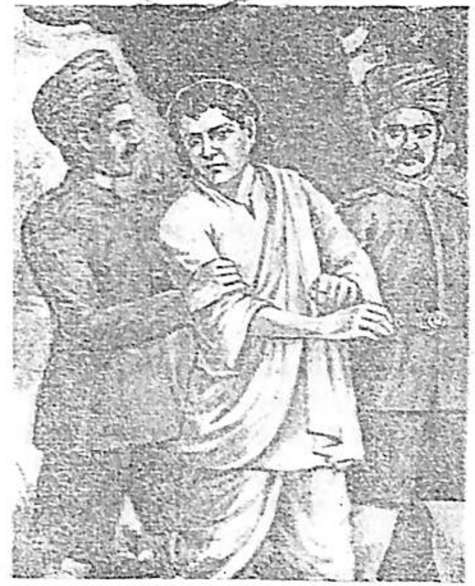
रात्रि में विमला की नींद नहीं खुली। सुधा एक बार भी नहीं उठी, गम्भीर निद्रा में उसने रात्रि व्यतीत की। विमला को कई दिनों से सोने का मौक़ा नहीं मिला था, आज वह भी निश्चिन्त होकर सो सकी।

सबेरे उठकर विमला ने देखा, आनन्द नहीं थे, वे कहीं चले गये थे। विमला का मन दुखी हो गया। उसे आशा थी कि जाने से पहले आनन्द उससे कहकर जायँगे।

सुधा ने उठकर हाथ-मुँह धोया। वह अच्छी तरह से चलने-फिरने लगी, मानो उसे कुछ हुआ ही नहीं था। विमला ने उसे दूध और लाई दी।

ज़रा देर के बाद आनन्द आकर द्वार के पास खड़े हो गये। विमला ने भूमि पर लेटकर अभिवादन किया। उसने सुधा से कहा—इन्हीं की कृपा से तुम अच्छी हो सकी हो।

सुधा ने आनन्द को प्रणाम किया। उसने कहा क्या तुम देवता हो ? मुझे कोई ओषधि नहीं दी, फिर भी मुझे किसी प्रकार का क्लेश नहीं है। तुम मेरे कौन हो ?



"इनको पुलिसवाले क्यों पकड़े लिये जा रहे हैं ?"

आनन्द ने कहा - मैं तुम्हारा भाई हूँ।

सुधा ने माता के मुँह की ओर ताककर कहा—क्यो माँ, यह सच है ? क्या ये मेरे भैया हैं ? यदि ऐसी बात है तो मैंने इससे पहले इन्हें क्यों नहीं देखा ?

विमला ने कहा—ये जो कुछ कहते हैं वही हैं। ये हमारे भगवान् हैं, हमारे ऊपर कृपा की है।

आनन्द से विमला ने कहा—यदि आपने इतनी दया की है तो आज मेरे ही यहाँ भोजन कीजिए। आपके लिए क्या बनाऊँ ? मैं ब्राह्मणी नहीं हूँ, कायस्थ हूँ। क्या आप मेरा बनाया भात खायँगे ?

आनन्द ने कहा—मेरे घर द्वार नहीं है, जाति भी नहीं है। आप जो देंगी, मैं वही खाऊँगा। सबेरे उठकर तालाब में स्नान कर आया हूँ। सन्ध्या-पूजा भी कर आया हूँ। मैं निरामिषभोजी हूँ। सुधा को मछली-शोरबा और भात दे सकती हो।

विमला ने चकित होकर कहा—आज ही ? कल रात

को उसे कितने ज़ोर का ज्वर हुआ था ? उसका ज्वर उतरे एक दिन भी तो नहीं बीता है।

"कोई चिन्ता नहीं है। मेरे कहने से तुम उसे पथ्य दे दो।"

सुधा ख़ुश होकर करतलध्वनि करने लगी। उसने कहा वैद्य हो तो ऐसा हो। मा ने ज़रा सा दूध और लाई दी थी। भला उतने से मुझे क्या तृप्ति हो सकती है ?

आनन्द ने विमला से कहा—तुम कामकाज करो, मैं ज़रा-सा घूम आऊँ।

यह कहकर आनन्द चले गये। विमला ने बग़ीचे से तरकारी तोड़ी, हलवाई की दूकान से दही और रसगुल्ला ले आई, सुधा के लिए मछली खरीद लाई। आटा चावल वग़ैरह सब घर में था।

विमला ने भोजन की तरह तरह की सुस्वादु चीज़ें बनाई। सुधा के लिए मछली का शोरबा और भात बनाया।

आनन्द जिस समय लौटे, प्रायः दोपहर हो चुका था। विमला ने कहा—आपको भोजन परोस दूँ ? बड़ी देर हो गई है।

"परोस दीजिए।"

आनन्द ने गेरुआ वस्त्र नहीं धारण किया था। उनके पैर में जूते नहीं थे। पैर धोकर वे आसन पर विराजमान हुए और आचमन करके भोजन करना आरम्भ किया। सुधा पंखा लेकर हवा करने लगी। विमला सामने खड़ी रही।

भोजन के लिए जो तैयारी की गई थी उसे देखकर आनन्द ने कहा इतनी तैयारी ? मैं मार्ग का एक भिखारी हूँ। मेरे लिए इतना प्रबन्ध करने की क्या आवश्यकता थी ?

विमला ने कहा—यदि मेरी इतनी शक्ति होती तो मैं आपके लिए राजभोग सजा देती। आप यदि न आ जाते तो पता नहीं कि मेरी लड़की को कितने दिनों तक भोगना पड़ता ?

"उसे जितना कुछ भोगना था वह भोग चुकी। अब उसे किसी प्रकार का कष्ट न होगा।"

आनन्द मिताहारी थे, अधिक भोजन नहीं करते थे। भोजन करते समय वे हर एक चीज़ की तारीफ़ भी करते जाते थे।

बहुत ही प्रसन्न होकर विमला ने कहा—यदि मुझे भोजन बनाना आता है तो आज मेरा भोजन बनाना सार्थक हो गया।

भोजन कर चुकने के बाद आचमन करके आनन्द ने कहा—मुझे एक बार गाँव के बाहर मदनमोहन के मन्दिर में जाना है। आज मैं यहाँ से चला जाऊँगा। जाते समय तुमसे मिलूँगा। बाद को भी जब कभी इधर आऊँगा, तुमसे मिलूँगा।

आँखों में आँसू भरकर विमला ने कहा—मैं आप से क्या निवेदन करूँ ? आपने मुझ अनाथिनी की कन्या को जीवनदान दिया है; मेरी इस झोपड़ी में चरण रक्खा है। यह सब आपकी अकारण कृपा है। बाद को भी जब कभी मेरे भाग्य में होंगे, आपके दर्शन मिल सकेंगे।

आनन्द चले गये। विमला के भोजन कर चुकने के बाद गाँव की तीन-चार स्त्रियाँ आईं। उनमें से एक ने कहा—सुधा की तबीयत कैसी है ? इतने दिन से उसे ज्वर आ रहा है। बेचारी को बड़ा कष्ट है।

विमला घर के बाहर बैठी सिलाई कर रही थी। सुधा घर के भीतर थी। अपना नाम सुनते ही वह बाहर निकल आई। मुस्कराकर उसने कहा—कहो, क्या बात है ? मुझे क्या हुआ है ?

उसे देखकर सब स्त्रियाँ अवाक् हो गईं। जो लड़की ज्वर के आवेग से कल बिछौने पर पड़ी थी, जिसने दस दिन तक उपवास किया है, वह किस तरह एक ही दिन में इस प्रकार आरोग्य हो गई ?

इन स्त्रियों ने सुधा के आरोग्य होने का हाल विमला से सुना। जिन्होंने बिना औषधि के ही विमला को आरोग्य किया है वे कौन हैं ? क्या वे योगी हैं या कोई अवधूत या सिद्ध हैं ? वे कहाँ से आये हैं, कहाँ गये हैं आदि आदि तरह तरह के प्रश्न होने लगे।

विमला ने इन सभी प्रश्नों का उत्तर एक साथ ही दे दिया। उसने कहा—वे ब्रह्मचारी परिव्राजक हैं। इसके



संगीत (श्रीराग कनाद)

—श्रीयुत एन॰ सी॰ मेहता, आई॰ सी॰ एस॰ के सौजन्य से प्राप्त

अतिरिक्त उन्होंने अपना कोई विशेष परिचय नहीं दिया है। उनका नाम है आनन्द। इस समय वे मदनमोहन के मन्दिर में गये हैं, आज ही चले जायँगे। जाने से पहले सुधा को एक बार देखेंगे।

देखते ही देखते सारे गाँव में कोलाहल मच गया। गाँव भर के सभी पुरुषों तथा स्त्रियों के मुँह में यही एक बात थी, यह कौन ऐसा अलौकिक शक्तिशाली व्यक्ति इस गाँव में आया है, देखने में कैसा है, कौन-सी विद्या जानता है। आनन्द को देखने के लिए सभी लोग उत्सुक हो उठे।

(३)

बहुत-से लोग मदनमोहन के मन्दिर की ओर दौड़े। कुछ लोग गाँव के बाहर जानेवाले रास्ते में ही जाकर खड़े हो गये।

कौन-सी ऐसी बस्ती है, जहाँ के लोग सर्वथा रोगमुक्त हों? गाँववालों में से कोई दमा से पीड़ित था, किसी को खाँसी आती थी और कोई किसी विशेष सांघातिक रोग से पीड़ित था। यदि कोई स्वयं नहीं रोगी था तो उसकी लड़की या लड़का ही किसी-न-किसी रोग से पीड़ित था। गाँव में एक बूढ़े वैद्य थे। उनकी दवा से किसी को कोई विशेष लाभ नहीं होता था। इधर गाँव में जब एक ऐसे व्यक्ति आये हैं जिन्होंने दस दिन के रोगी को केवल एक दृष्टि से देखकर ही आरोग्य कर दिया तब उनकी कृपा से तो सभी लोग आरोग्य हो सकते हैं।

तीन-चार बजे आनन्द विमला के कुटीर में लौट आये। वहाँ स्त्रियों का एक दल जमा हुआ था। आनन्द के पीछे एक दल था पुरुषों का। आनन्द को देखते ही सब लोग स्तब्ध हो गये। इस बहुत ही शान्त और गम्भीर नंगे पैरवाली मूर्ति को देखकर सभी लोगों ने आदर से अपना मस्तक झुका दिया। विमला ने आनन्द को देखते ही उनके चरणों की वन्दना की। सुधा ने भी उनके चरणों की धूलि अपने मस्तक में लगाई।

आनन्द ने कहा—यहाँ इतने लोग क्यों एकत्र हैं?

विमला ने कहा—आपने सुधा को आरोग्य किया है, यह बात इन लोगों को मालूम हो गई है।

आनन्द ने कहा—यह तो कोई वैसी बात है नहीं

दूसरी स्त्रियों ने आनन्द को घेर लिया। बहुत-सी उनके चरणों में लिपट गईं। उन सबने कहा—ज आप इस गाँव में आये हैं तब हम सभी के घर में पदधूलि डालनी पड़ेगी। गाँव में जितने रोगी हैं, उन सब प कृपा करनी पड़ेगी।

आनन्द ने एक बार दृष्टि ऊपर उठाई, बाद को फि नीची कर ली। उन्होंने कहा—मुझमें कौन-सी शक्ति है मैं गृहत्यागी हूँ, गली गली घूमता-फिरता हूँ।

गाँव की स्त्रियों ने उन्हें बड़े ज़ोर से पकड़ा—किस तरह भी छूटने नहीं दिया। पुरुष लोग ज़रा दूर खड़े थे वे इस ताक में थे कि यदि अवसर मिले तो आनन्द क ले चलें।

"यदि तुम लोगों की इच्छा ही है तो तुम अपने अपने घर ले चल सकती हो, किन्तु मुझे रोकना मत।"

यह सुनते ही सभी स्त्री-पुरुष एक-स्वर से कहने लगे—पहले मेरे यहाँ चलिए।

आनन्द ने हाथ उठाया। सभी लोग निस्तब्ध हो गये। आनन्द ने कहा—गाँव का पहले-पहल जो मकान मिले उसी में मुझे ले चलो। बाद को आवश्यक होगा तो दूसरे मकान में भी ले चलना।

स्त्रियाँ घेरकर आनन्द को ले गईं। उनके पीछे-पीछे पुरुष भी गये। युवकों तथा बालकों ने सोचा कि यह भी एक बड़े मज़े का तमाशा है।

उस दिन गाँव में जो जो बातें हुईं उनकी कथा आज भी लोगों के मुँह से सुनने में आती है। मनुष्य का स्वभाव है कि वह बात को कुछ बढ़ाकर कहता है। इसलिए इसमें अतिशयोक्ति हो सकती है; किन्तु वह घटना अलौकिक थी, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।

आनन्द ने रोगियों को देखा। कुछ को देखकर वे कुछ बोले नहीं, किसी प्रकार की चेष्टा भी नहीं की। शेष रोगियों को उन्होंने केवल हाथ फेरकर या स्पर्श करके आरोग्य कर दिया।

गाँव के लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही। लोग आपस में एक-दूसरे से कहने लगे, ये कौन हैं। कोई

देवता हैं या महापुरुष हैं जो इनके छूने से रोग दूर हो जाता है? यदि ये रोज़गार कर लें तो बहुत-सा रुपया कमा सकते हैं।

जिन लोगों ने आरोग्य-लाभ किया उनके घरवालों ने कृतज्ञता के रूप में यथाशक्ति आनन्द को कुछ देना चाहा। कोई रुपया ले आया, कोई और ही चीज़ ले आया।

आनन्द ने कुछ लिया नहीं। उन्होंने कहा—यह सब लेकर मैं क्या करूँगा। मैं अपने हाथ में कुछ रखता नहीं हूँ। मुझे यह भार-वहन करने को मत कहो। कोई वस्तु ग्रहण करने का मुझे निषेध है। केवल भोजन भर लेता हूँ। वह भी एक बार मिल जाने पर दिन कट जाता है। मुझे आचार का या और किसी प्रकार का बन्धन नहीं है। मेरे पास न तो धन है और न मुझे किसी वस्तु का अभाव ही है। बात यह है कि मुझे किसी प्रकार की कामना नहीं है। तुम लोगों का मंगल हो। मैं जिस प्रकार एक रमता योगी हूँ, उसी प्रकार अपनी राह जाना चाहता हूँ।

आनन्द ने किसी प्रकार भी कुछ नहीं लिया। वे गाँव से विदा हो गये। गाँव के निवासी कुछ दूर तक तो उनके साथ गये। बाद को एक स्थान पर खड़े होकर एक दृष्टि से उनकी ओर ताकने लगे। आनन्द ने एक बार भी पीछे की ओर नहीं देखा। वे धीरे-धीरे अपनी राह चले गये।

(४)

छोटा-सा गाँव था। उसमें इस तरह की अद्भुत घटना का होना किसी से छिपा तो रह नहीं सकता था! गाँव के कई वृद्ध वैद्य जी के यहाँ पहुँचे। उनमें से एक व्यक्ति ने कहा—कहिए महाराज, आपने सुना है कि गाँव में क्या हो गया। कभी किसी ने ऐसा होते न तो देखा है और न सुना है।

वैद्य जी चतुर व्यक्ति थे। उन्होंने चतुरता के साथ कहा—बहुत सुना है। बात क्या है? ज़रा बतलाओ तो।

"बतलाने से भी क्या आपको विश्वास होगा? जब आँख से देखने पर भी विश्वास नहीं होता तब फिर भला कान से सुनकर आप कैसे विश्वास कर सकेंगे? पता नहीं, कहाँ से कोई एक आदमी आ गया, जिसने गाँव के सारे रोगियों को केवल हाथ फेरकर ही अच्छा कर दिया।"

एक दूसरे आदमी ने कहा—सबके ऊपर तो उसने हाथ भी नहीं फेरा। किसी किसी को तो उसने कुछ भी नहीं किया।

पहले आदमी ने कहा—यह एक ही बात रही। कोई दवा-दारू नहीं की, यों ही रोगी को आरोग्य कर दिया! मैं समझता था कि किसी साधु-संन्यासी से कोई दवा या जड़ी-बूटी सीखी होगी। परन्तु यह सब कहीं कुछ नहीं। उसने केवल हाथ फेरकर ही रोगियों का रोग दूर कर दिया।

वैद्य जी ने पूछा—क्या वह आदमी कोई साधु या संन्यासी है?

"यदि वह साधु-संन्यासी होता तो भी एक बात थी। संन्यासियों में भी इस प्रकार की शक्ति हो सकती है। परन्तु वह तो संन्यासी नहीं है! उसके पैर में जूते नहीं थे। परन्तु शायद पैसे के अभाव के ही कारण उसने जूते नहीं ख़रीदे हैं"।

"देखने में वह कैसा है? उसकी अवस्था क्या होगी?"

"देखने में वह पाखंडी या ठग भी नहीं मालूम पड़ता। अवस्था भी उसकी अधिक नहीं है। मस्तक पर बड़े बड़े बाल हैं, परन्तु वे जटा के रूप में नहीं हैं। उसके दाढ़ी है। चेहरा भी कोई वैसा ख़राब नहीं मालूम पड़ता।"

एक दूसरे आदमी ने कहा—सच पूछिए तो देखने में वह सुन्दर है। बहुत शान्त और गम्भीर है, बात बड़े अच्छे ढंग से करता है।

वैद्य जी ने कहा—आदमी को फँसाने के लिए अच्छे ढंग से तो बात करनी ही पड़ती है। उद्धत भाव से बातें करने पर थोड़े ही कोई फँसता है? पहले वह किसके यहाँ गया था?

"विमला के यहाँ। उसकी लड़की सुधा की आपने चिकित्सा की थी। उसे दस दिन से ज्वर हो रहा था। गाँव की स्त्रियाँ जब उसे देखने गईं तब वह आराम से हँस-खेल रही थी, मानो उसे कभी कुछ हुआ ही नहीं था। बाद को विमला ने सब को बतलाया कि सुधा किस तरह इतनी जल्दी अच्छी हो गई।"

वैद्य जी ने कुछ अप्रसन्न भाव से कहा—तो शायद मेरी दवा ने कुछ काम ही नहीं किया!

"किया क्यों न होगा? परन्तु एक ही दिन में इस तरह बिलकुल आराम हो जाना सचमुच आश्चर्य की बात है। इसके अतिरिक्त और जो इतने आदमी आरोग्य हुए हैं उन्हें तो किसी प्रकार की दवा भी नहीं दी गई थी।

वैद्य जी ने कहा—सभी मेरे रोगी हैं। मैं सभी की चिकित्सा किया करता हूँ, किन्तु और किसी के यहाँ न जाकर वह पहले विमला के ही यहाँ क्यों गया? वह अकेली स्त्री है, उसके यहाँ जाने से इसका मतलब? तुम लोग क्या समझते हो इस बात को?

"कोई क्या समझता है, यह कैसे मालूम पड़े, क्योंकि दूसरों के मन की बात कोई जान तो सकता नहीं! परन्तु इस सम्बन्ध में कोई विमला की किसी प्रकार की निन्दा नहीं करता।"

"मैं भी विमला की निन्दा नहीं करता, लेकिन उस आदमी की बात कहता हूँ। अच्छा, उसे किसने क्या दिया है?"

"यह तो और भी अद्भुत बात है। सभी लोग उसे कुछ-न-कुछ देना चाहते थे। परन्तु उसने किसी से कुछ नहीं लिया—एक पैसा भी नहीं लिया। किसी चीज़ में हाथ तक नहीं लगाया। एक बीड़ा पान तक नहीं खाया। जैसे वह ख़ाली हाथ आया था, वैसे ही चला गया।"

वैद्य जी ने मुँह बनाकर कहा—हुँ! बिना मतलब कभी कोई कुछ करता है? वह एक-दम से कृष्ण भगवान् नहीं है कि उसी की कृपा से सब कुछ हो जाता है। यदि कोई गले भर गंगाजल में खड़ा होकर कहे कि उसने निःस्वार्थ होकर ही यह सब किया है, तो भी मैं विश्वास न कर सकूँगा। यह आदमी बड़ा घुटा हुआ है। परन्तु किस मतलब से उसने यह सब इन्द्रजाल रचा है, यह समझ में नहीं आता। शायद वह फिर कभी इस गाँव में आवेगा और लोगों को ख़ूब मज़े में लूटेगा। गाँववालों को उससे पिंड छुड़ाना कठिन हो जायगा। अच्छा यह तो बतओ कि वह कहाँ का रहनेवाला है, कौन जाति का है और उसका नाम क्या है। यह कुछ मालूम हुआ है?

"सुनने में आया है कि उसका नाम आनन्द है। परन्तु उपाधि आदि कुछ मालूम नहीं है। कहता था कि घर-द्वार नहीं है, राह-राह भटकता फिरता हूँ। किस देश का रहनेवाला है यह भी नहीं मालूम हो सका।"

"नाम आनन्द है? वाह, कैसा बढ़िया नाम है! एक दिन लोगों को मालूम हो जायगा कि यह विकटानन्द है।"

(५)

आस-पास के गाँवों से समाचार आने लगा कि एक आदमी ने बिना किसी प्रकार की औषधि के ही बहुत-से रोगियों को आरोग्य कर दिया है। वह संन्यासी तो नहीं है, क्योंकि उसने संन्यासी का वेश नहीं धारण किया, किन्तु वह साधु अवश्य है। किसी से वह किसी प्रकार का दान नहीं लेता। रोग दूर करने के लिए भी वह कुछ नहीं लेता।

गौरीपुर में वैद्य जी का दल क्रमशः बल पकड़ने लगा। जो लोग पहले आनन्द की प्रशंसा किया करते थे, अब उनका भी मत परिवर्तित होने लगा। जो आदमी इस तरह दूसरों को भुला सकता है वह ठग या पाखंडी न होकर और हो ही क्या सकता है? वैद्य जी के यहाँ सदा इस बात की चर्चा हुआ करती थी। वैद्य जी कहा करते—इस तरह की चालाकी कितने दिन तक चल सकेगी? उसके मन में कोई-न-कोई चालाकी ज़रूर होगी। किसी दिन यह सुनने में आवेगा कि उसके हाथ जो कुछ लगा वह सब लेकर चम्पत हो गया। मैंने इस तरह के बहुत-से मामले देखे हुए हैं।

वैद्य जी ने कब कहाँ क्या देखा था, यह किसी को मालूम नहीं था। वैद्य जी ने भी कभी किसी को यह सब बतलाने की ज़रूरत नहीं समझी।

पासवाले गाँव में पुलिस के एक सब-इन्सपेक्टर रहते थे। उनका नाम था गोपाल हाजरा। उनके यहाँ यदि

कभी कोई बीमार पड़ता तो वैद्य जी बुलाये जाते थे। वे पुलिस के आदमी थे, इससे वैद्य जी को पैसा नहीं देते थे। दवा का दाम भी नहीं देते थे। परन्तु वैद्य जी की वे खातिर किया करते थे, दूसरे रोगियों को उनके पास भेजा करते थे।

एक दिन वैद्य जी गोपाल हाजरा के यहाँ पहुँचे। गोपाल तकिया की आड़ लगाये तम्बाकू पी रहे थे। वैद्य जी को देखते ही उन्होंने कहा—आइए वैद्य जी। कोई है? ज़रा हुक्का तो ले आओ।

तम्बाकू पीते-पीते वैद्य जी ने कहा—बड़े दुःख की बात है कि आपके रहते हुए भी कुछ धूर्त और पाखंडी लोगों को ठगते फिरते हैं।

"नहीं तो। वैद्य जी, यहाँ कौन ऐसा बदमाश है जो हमारा जाना हुआ नहीं है?"

"यह जो गाँव-गाँव एक आदमी झूँठ-मूँठ के रोग अच्छा करता फिरता है उसके बारे में भी क्या आपने कुछ सुना है?"

"सुना क्यों नहीं? परन्तु उसके खिलाफ़ किसी ने मुझसे किसी प्रकार की शिकायत तो की नहीं!"

"अजी साहब, जिन लोगों को वह बेवकूफ़ बनाता है वे कभी आपके पास उसकी शिकायत करने आयेंगे? आप लोग पुलिस के आफ़िसर होकर भी यदि इस प्रकार के धोखेबाज़ों के चंगुल से लोगों को बचाने की कोशिश न करेंगे तो हो चुका। वह न तो वैद्य है, न कोई साधु-संन्यासी है और न कुछ पढ़ा-लिखा ही है।

"लोगों की आँखों में धूल झोंककर चारों तरफ़ कहता फिरता है कि मैं सब तरह के रोग अच्छा कर देता हूँ। इसी तरह वह कितने ही लोगों को ठग चुका है। भविष्य में भी कितने लोगों को ठगेगा, यह कौन कह सकता है!"

"इस समय वह कहाँ है?"

"मुझे क्या मालूम? इन सब बातों का पता तो आपको अधिक रह सकता है। हमारे लिए यह कहाँ सम्भव है कि तमाम देश भर की खबर रख सकें?"

"लेकिन एक बात है वैद्य जी। यदि वह वास्तव में ठग होता तो कहीं-न-कहीं पकड़ा अवश्य जाता। क्या संसार में सब बेवकूफ़ ही हैं जो उसके खिलाफ़ आवाज़ नहीं उठती है? फिर भी वह जब कभी इधर दिखाई पड़ेगा, कोई व्यवस्था करूँगा।"

"इसी आशा से तो आपके पास आया हूँ। इस तरह के लोगों को यदि ठिकाने पर न ला सके तो आपकी बहादुरी ही क्या है?"

"आप निश्चिन्त रहिए। मैं इसकी उचित व्यवस्था करूँगा।"

वैद्य जी उठ खड़े हुए। उनके विदा होने से पहले गोपाल हाजरा एक व्यंग्य कसने का प्रलोभन न रोक सके। उन्होंने कहा—वैद्य जी, उस आदमी ने आपके रोगियों को तोड़ तो नहीं लिया है?

"राम राम कहिए। आपने भी अच्छा सोचा! भला इस तरह के धूर्त से मुझे क्या हानि पहुँच सकती है?"

(६)

एक महीने के बाद एक दिन आनन्द गौरीपुर में दिखाई पड़े। तुरन्त ही उनके पहुँचने का समाचार बिजली की तरह फैल गया। पहले वे गये विमला के यहाँ। विमला और सुधा ने उन्हें प्रणाम किया। उन दोनों को आशीर्वाद देकर उन्होंने उनका कुशल पूछा। विमला ने उत्तर दिया कि आपके आशीर्वाद से हम लोग अच्छी तरह हैं। आप कृपा करके एक रात्रि हमारे यहाँ निवास कीजिए।

गाँव के और भी बहुत-से स्त्री-पुरुष आकर उपस्थित हो गये। वैद्य जी को भी सूचना मिलने में विलम्ब न हुआ। उन्होंने एक आदमी भेजकर गोपाल हाजरा को सूचित किया कि वह व्यक्ति फिर यहाँ आया है।

आनन्द को विमला के यहाँ से एक दूसरा आदमी अपने यहाँ ले गया था। वे एक रोगी को देख रहे थे, इतने में सिर पर पगड़ी बाँधे हुए दो सिपाही आ पहुँचे। उन लोगों ने आनन्द से कहा—आपको हमारे साथ चलना होगा। दारोग़ा जी ने बुलाया है।

आनन्द ने ज़रा-सा विस्मित भाव से सिपाहियों की ओर देखा। वे सोचने लगे कि पुलिस के आदमियों को मुझसे क्या प्रयोजन, जो दारोग़ा जी बुला रहे हैं। उन्होंने धीर भाव से कहा—अच्छी बात है, मैं चलता हूँ।

रास्ते में आकर सिपाहियों ने आनन्द के दोनों हाथ पकड़ लिये। आनन्द ने कहा—मेरे हाथ पकड़ने की क्या ज़रूरत है? मैं भागूँगा नहीं। तुम लोग जहाँ कहोगे, वहाँ चला चलूँगा।

सिपाहियों ने आनन्द के मुँह की ओर देखा। पता नहीं, उनके मन में कौन-सी बात आई। उन्होंने उनके हाथ छोड़ दिये।

गाँव में एक प्रकार की हलचल मच गई। लोग कहने लगे—आनन्द को पुलिसवाले क्यों पकड़े लिये जा रहे हैं? बहुत-से लोग पीछे-पीछे चले।

जो लोग वैद्य जी के यहाँ आया-जाया करते थे उनमें से भी कुछ लोग थे। वे सब आपस में एक-दूसरे से कहने लगे कि यह तो पहले से ही मालूम था कि इसे पुलिस गिरफ़्तार करेगी। आश्चर्य है कि इतने दिनों तक क्यों नहीं गिरफ़्तार किया। देखो, कितने दिनों की क़ैद होती है।

थाने में रुद्रमूर्ति धारण किये हुए सब-इन्स्पेक्टर गोपाल हाजरा कुर्सी पर बैठे थे। दोनों सिपाहियों ने ले जाकर आनन्द को उनके सामने खड़ा कर दिया। सब-इन्स्पेक्टर ने आनन्द को नीचे से ऊपर तक बड़े ध्यान से देखा। उन्होंने सोचा कि यह आदमी देखने में ठग-सा तो नहीं मालूम पड़ता! परन्तु बहुत-से ऐसे भी छिपे रुस्तम पुलिस को मिले हैं जो देखने में तो पक्के भले आदमी मालूम पड़ते हैं, किन्तु वास्तव में होते हैं वे पल्ले दर्जे के बदमाश।

सब-इन्स्पेक्टर ने कर्कश स्वर से कहा—तुम कौन हो? तुम्हारा क्या नाम है? कौन-सी जाति है? घर कहाँ है? व्यवसाय क्या है?

आनन्द आनन्द की मूर्ति थे। वे निर्विकार और निर्भीक थे। स्निग्ध और प्रशान्त दृष्टि से सब-इन्स्पेक्टर की ओर ताक कर उन्होंने मधुर कंठ से कहा—मैं परिव्राजक हूँ। मेरा नाम है आनन्द। जाति नहीं है, घर नहीं है। व्यवसाय है भिक्षा। सब-इन्स्पेक्टर का गला एक पर्दा और चढ़ गया—तुम साधु नहीं हो, संन्यासी नहीं हो, गेरुआ वस्त्र नहीं पहनते हो, जवान आदमी हो। भिक्षा माँगकर क्यों खाते हो?

आनन्द धैर्य से विचलित नहीं हुए। उन्होंने कहा मैं किसी से माँगता नहीं हूँ। रुपया-पैसा नहीं लेता हूँ दिन भर में केवल एक बार खाता हूँ। जिस किसी जब बुलाकर कहा तब खा लिया। यही मेरी भिक्षा है।

"तब तो तुम पूरे साधु हो। और यह जो वंचना कर लोगों के रोग दूर करते फिरते हो, इसका क्या मतलब है तुम डाक्टर हो, वैद्य हो या कोई स्वप्नलब्ध ओषधि तुम्हा पास है जो चारों ओर तन्त्र-मन्त्र करते फिरते हो?"

"मैं डाक्टर नहीं हूँ, वैद्य नहीं हूँ, कोई मन्त्र-तन्त्र नहीं जानता हूँ। शुद्ध चित्त से रोग शान्त करने प्रयत्न करता हूँ। इसी का अच्छा परिणाम होता है।"

"इस तरह की चालबाज़ी मैंने बहुत देखी है। इ तरह तुम लोगों को चकमे देकर कितना धन कमाते हो?

"कुछ भी नहीं। धन कमाने का मुझे निषेध है रोगियों को आरोग्य करके मैं उनसे कुछ ले नहीं सकता।

सब-इन्स्पेक्टर ने क्रुद्ध भाव से कहा—तुम लो को धोखा देकर ठगते फिरते हो। इस अपराध के लि मैं तुम्हारा चालान करूँगा। इस समय मैं तुम्हें हिरास में लेता हूँ।

आनन्द ने मुस्कराते हुए प्रसन्न भाव से कहा—मे लिए सर्वत्र समान है।

ठीक उसी समय सब-इन्स्पेक्टर के घर से दौड़ता हुआ एक आदमी आया। हाँफते हाँफते उसने कहा—दारोग़ा जी, जल्दी घर चलिए। माँ जी की तबीयत खरा हो गई है। कुछ मालूम ही नहीं पड़ता कि उन्हें क्य हो गया है!

गोपाल हाजरा का थानेदारी का रोब जहाँ का तहाँ हो गया। अब वे पुलिस का प्रताप त्यागकर एक साधारण मनुष्य हो गये। उनकी स्त्री युवती थी, सुन्दरी थी और गुणवती थी। स्त्री को गोपाल प्राणों से भी अधिक प्रिय समझते थे। कहाँ गया उनका क्रोध से तमतमाया हुआ चेहरा, निष्ठुर और कठोर दृष्टि तथा रूक्ष कर्कश स्वर! गोपाल हाजरा व्याकुल हो उठे। कुर्सी छोड़कर खड़े होगये और एक भले आदमी के रूप में उन्होंने आनन्द से कहा—आप ज़रा देर तक बैठिए। मैं आता हूँ।

गोपाल हाजरा उसी क्षण घर चले गये। उनके निर्देश के अनुसार सिपाहियों ने आनन्द से बैठने को कहा।

गोपाल दौड़ते हुए घर गये। वहाँ उनकी पत्नी पद्मावती पृथिवी पर पड़ी थीं उनके हाथ-पैर एठ गये थे और आँखें चढ़ी हुई थीं। वे बेहोश पड़ी थीं, उन्हें किसी बात का ज्ञान नहीं था। बीच-बीच में वे झिझक उठती थीं। दासी पास ही बैठी उनके मुँह पर पानी के छींटे दे रही थी। पाँच वर्ष का एक बालक एक बगल खड़ा माता की इस प्रकार की अवस्था हो जाने के कारण भय से रो रहा था।

गोपाल के मन में न जाने क्या बात आई। उन्होंने एक नौकर को बुलाकर कहा कि तुम दौड़कर थाने चले जाओ। वहाँ आनन्द नामक एक आदमी पकड़कर लाया गया है। उसे मैं बैठने को कह आया हूँ। उससे कहना कि दारोगा जी आपको बुला रहे हैं।

नौकर दौड़ता हुआ थाने पर गया और आनन्द को लेकर तुरन्त ही वापस आ गया। उन्हें देखते ही गोपाल ने शोकाकुल कण्ठ से कहा—आपने कितने ही रोगियों को आरोग्य किया है। कृपा करके मेरी स्त्री का भी रोग दूर कर दीजिए।

आनन्द ने कुछ कहा नहीं। थोड़ी देर तक स्थिर भाव से खड़े रहकर उन्होंने पद्मावती के समस्त अंगों पर हाथ फेरा। बाद को पास ही बैठकर उनके नेत्रों की ओर उन्होंने दृष्टि स्थिर की। दासी खिसक गई, बालक का रोना बन्द हुआ, गोपाल अनिमेष दृष्टि से आनन्द की ओर ताकते रहे।

क्रमशः पद्मावती की दृष्टि में परिवर्तन हुआ। उनकी दृष्टि आनन्द की दृष्टि की ओर आकर्षित होकर स्थिर हुई। तब आनन्द रमणी के मस्तक से लेकर पदतल तक दोनों ही हाथ फेरने लगे। पद्मावती का छटपटाना बन्द हुआ। शरीर की एठन भी जाती रही। आनन्द ने कनिष्ठा अँगुली के अग्र-भाग से पद्मावती के दोनों भौंहों के मध्यस्थल का स्पर्श किया। पद्मावती ने आँखें मूँद लीं। साँस स्वाभाविक रूप में चलने लगी।

आनन्द उठकर खड़े हुए। उन्होंने कहा कि चिन्ता की अब कोई बात नहीं है। गोपाल के मुँह से कोई बात नहीं निकल रही थी। इतनी देर तक वे आनन्द के मुँह की ओर एक दृष्टि से देख रहे थे। अब उन्होंने पत्नी के मुँह की ओर दृष्टि फेरी।

ज़रा ही देर के बाद पद्मावती अपनी स्वाभाविक अवस्था में आगई। वह उठकर बैठ गई और आनन्द को देखकर अपना घूँघट खींच लिया। आनन्द ने बहुत ही कोमल और विनीत स्वर से कहा—माँ, मैं तो तुम्हारा बालक हूँ। मुझसे लज्जा करने की ज़रूरत नहीं है।

गोपाल हाजरा आनन्द के चरणों के समीप लेट गये और उनके धूलिधूसरित चरणों को उन्होंने खूब ज़ोर से पकड़ लिया। तब वे अश्रुगद्गद स्वर से कहने लगे—हे प्रभु, मुझे क्षमा कीजिए। मैंने अज्ञानवश दूसरे के कहने से आपका अपमान किया है।

आनन्द ने कहा—मेरा मान-अपमान कुछ भी नहीं है। आपको मैं किसी प्रकार भी अपराधी नहीं समझता हूँ। फिर भी यदि मेरे क्षमा करने से आपको तृप्ति हो तो मैंने आपको निष्कपट-भाव से क्षमा कर दिया है।

गोपाल ने आनन्द की पदधूलि मस्तक से लगाई। स्त्री और बालक के भी मस्तक से लगा दिया। हाथ जोड़कर उन्होंने विनयपूर्वक कहा—महाराज, यदि आपने मेरा अपराध क्षमा कर दिया है तो आज दास के घर का अन्न ग्रहण कीजिए।

पद्मावती ने उठकर मस्तक का कपड़ा खोलकर कहा—महाराज, मैं आपकी कन्या हूँ। मेरे हाथ का रींधा हुआ ज़रा-सा साग-भात मुँह में डाल लीजिए।

पद्मावती के मस्तक पर हाथ रखकर आनन्द ने कहा—माँ, बालक माँ के पास खायगा, इसमें कौन-सी विचित्रता है? मैं आनन्द हूँ, आनन्द से आपके यहाँ भोजन करूँगा।

यह वृत्तान्त सुनकर वैद्य जी ने कहा—कलिकाल में अब बाक़ी क्या है? जब स्वयं पुलिस के दारोगा को उसने फाँस लिया तो वंचक की ही जय-जयकार होगी।

मोतीलाल नेहरू

लेखक, पंडित मोहनलाल नेहरू

एक ऐसे समय में जब कि सारे देश में कांग्रेस की स्वर्णजयन्ती की धूम है, स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरू की ओर हमारा ध्यान जाना स्वाभाविक है। इसी लिए पंडित मोहनलाल नेहरू का यह लेख जो उन्होंने अपने व्यक्तिगत अनुभव से लिखा है, हम खास तौर से इस अङ्क में प्रकाशित कर रहे हैं। इस लेख में स्वर्गीय पंडित जी के जीवन की वे निजी और छोटी छोटी बातें हैं जो आज तक कहीं भी प्रकाशित नहीं हुईं और जो उनके महान् व्यक्तित्व को अधिक स्पष्ट करती हैं। इस सिलसिले में हम कुछ अप्राप्य चित्र भी प्रकाशित करना चाहते थे, पर वे अभी मिल नहीं सके। आशा है, उन्हें हम लेख के शेषांश के साथ फ़रवरी में प्रकाशित कर सकेंगे।

(१)

किसी विद्वान ने हमें बताया है कि "कुछ लोग तो पैदायशी बड़े होते हैं, कुछ में बड़ाई ठूँस दी जाती है और कुछ लोग अपनी सेवाओं-द्वारा बड़ाई प्राप्त करते हैं"। असली बड़ा वही आदमी है जो अपनी ज़ात से, अपने व्यवहार से, अपनी जनता की सेवाओं-द्वारा बड़ाई प्राप्त करे। ऐसे ही आदमियों में मोतीलाल नेहरू की गिनती है।

लगभग छः वर्ष हुए उनका स्वर्गवास हो गया, परन्तु आज भी उनकी सेवाओं की याद गली-गली और गाँव-गाँव उनकी याद को ताज़ा बनाये है, और जब तक भी देश में स्वतन्त्रता का आन्दोलन जारी रहेगा, ताज़ा बनाये रहेगी। यह शरीर नाशवान् है, समय आने पर इसका नाश हो जायगा, मगर जो भी सेवा वह अपने बन्धु-बान्धवों की कर चुका है वह उसकी याद को नष्ट नहीं होने देगी। यदि हमारा देश स्वतन्त्र होता तो वैसे आदमी की, जैसे मोतीलाल नेहरू थे, न मालूम कितनी पत्थर तक की यादगारें बन चुकी होतीं, मगर हमारी म्यूनिसिपलिटी के कान तक पर आज तक जूँ न रेंगी, जिसके वे वर्षों सदस्य भी रहे थे। मगर पत्थर की यादगारें वैसी स्थायी नहीं होतीं, जैसी जनता के दिलों में जगह बनानेवाली होती हैं। स्वराज्य-प्राप्ति का आन्दोलन कभी तो खत्म होगा और स्वराज्य भी प्राप्त होगा। उस वक़ लोग इन महान् आत्मा का स्मरण करेंगे और हमारे बच्चे या बच्चों के बच्चे उनका गुण गावेंगे।

मोतीलाल जी के राजनैतिक जीवन पर कितने ही लेख छप चुके हैं। मुझसे अधिक योग्य सज्जन उस पर प्रकाश डाल चुके हैं और डालेंगे। फिर भी मुझे सरस्वती के सम्पादकों के आग्रह पर यह छोटा-सा लेख लिखना पड़ रहा है और मैं केवल उनके जीवन की उन छोटी-छोटी बातों का ही उल्लेख यहाँ करूँगा जो राजनैतिक विषयों से बहुत कम सम्बन्ध रखती हैं और जिन्हें जानकर यह मसल याद आती है कि "होनहार बिरवान के होत चीकने पात"। इन्हीं बातों के लिखने की सम्पादकों की आज्ञा भी मिली है। जो कुछ भी मैं लिखूँगा वे ऐसी बातें होंगी जो या तो मैंने स्वयं देखी हैं या उन्हीं के मुँह या अपनी माता के मुँह से सुनी हैं।

लड़कपन में मोतीलाल बड़े नटखट लड़कों में ही न थे, वरन उनके सरदार रहा करते थे। लड़कपन से ही

उनके साथी उन्हें खेल-कूद और शरारत इत्यादि में अपना नेता माना करते थे। शायद प्रकृति ने ही उन्हें नेता बनाया हो। मरते दम तक किसी दूसरे व्यक्ति का नेतृत्व उन्होंने न माना। वे थे कौन और कहाँ से आये थे, यह भी मुझसे पूछा गया है।

मुग़ल-सम्राट् फ़र्रुख़सियर के समय में एक ग़रीब विद्वान् कश्मीरी ब्राह्मण, जो फ़ारसी-भाषा में भी निपुण थे जीविका की तलाश में दिल्ली आये थे। उनका नाम राज कौल था। उनको सम्राट् के दरबार में नौकरी मिल गई। कहा जाता है कि वे लड़कों के पढ़ाने पर तैनात हुए। उनका ख़ानदान दिल्ली में नहर के किनारे बस गया। आज जहाँ चाँदनी-चौक है, वहाँ उस ज़माने में एक नहर थी। कश्मीर से बहुत आदमी दिल्ली में आकर बसे थे और आते जा रहे थे। इनमें कौल बहुत थे। कश्मीरियों में नाम बना लेने की एक ज़बर्दस्त आदत प्राचीन काल से चली आई थी। सो उन्होंने तरह-तरह के नाम बना लिये और राज कौल के परपोते लक्ष्मी नारायण नेहरू (नहर पर रहनेवाले) कहलाने लगे। बहुत दिनों तक वे और उनके ख़ानदान के लोग 'कौल नेहरू' कहलाते रहे, किन्तु मोतीलाल के समय से 'कौल' का शब्द उड़ा दिया गया और अब कश्मीरियों तक में बहुत कम आदमी ऐसे हैं जो यह जानते हैं कि नेहरू-परिवार असल में कौल है।

(२)

गंगाधर अपने पिता लक्ष्मीनारायण के इकलौते बेटे थे। सन् १८५७ के उस ग़दर में जो बलवे के नाम से प्रसिद्ध है, गंगाधर पूरे जवान थे और देहली में या उनके आस-पास पुलिस में कोई अफ़सर थे। पुलिसवालों की तनख्वाह कम होती थी और शायद उनको वह आमदनी न थी जिसे लोग ऊपर की आमदनी कहते हैं। बलवे में उनका कुछ ज़ेवर शायद लुट भी गया था। उनकी धर्म-पत्नी 'जियो बीबी' उन स्त्रियों में थीं जिनके सामने पैसे की क़द्र न थी। थोड़ा-बहुत पैसा आता वह जैसा कश्मीरियों में दस्तूर था, उनके हाथ में चला जाता और वे उसे खरचने में देर न लगातीं। कुछ भी हो गंगाधर ग़रीब थे और अमीर होने का समय भी न मिला। पैंतीस वर्ष की अवस्था में १८६१ ईसवी के शुरू में उनका स्वर्गवास हो गया। उस समय उनके दो पुत्र बंशीधर और नंदलाल अँगरेज़ी की शिक्षा पा रहे थे और उस दर्जे में पहुँच चुके थे जो उस समय सबसे ऊँचा था और आज इंट्रेंस के बराबर कहा जा सकता है। बंशीधर की अवस्था १८ और नंदलाल की १६ वर्ष थी और दोनों के विवाह हो चुके थे। दो पुत्रियाँ भी उन्होंने छोड़ी थीं, जिनके विवाह होने को थे। पिता की मृत्यु के दो-तीन महीने बाद मोतीलाल का जन्म मई के महीने में हुआ।

जिस परिवार में दो छोटी 'छुनमुन' करती पुत्र-वधुएँ, दो ब्याहने को कुमारी कन्यायें, एक माँ और एक छोटा बच्चा था, वहाँ भोजन का सहारा न था, न कुछ बुज़ुर्गों ने जमा ही छोड़ी थी। इस संकट में स्कूल के हेड-मास्टर ने जो अँगरेज़ थे, बंशीधर और नंदलाल को नौकरी दिलवा दी। बंशीधर को तो कहीं स्कूल मास्टरी अस्सी रुपये पर मिली और नंदलाल को खेतड़ी-रियासत में सौ रुपये पर एक पद मिला। आज-कल लोग आश्चर्य करेंगे कि इतना कम पढ़े, कम उम्र के लड़कों को इतनी बड़ी तनख़्वाह कैसे मिली जो आज ग्रेजुएटों को नहीं नसीब है। मगर उस ज़माने में अँगरेज़ी जाननेवाले कम थे और माँग ज़्यादा थी। इसके अलावा बेकारी भी इस दर्जे की नहीं थी जो आज है और मुशतरका ख़ानदान भी नहीं टूटे थे। हाँ इन सबकी बातों की नींव पड़ रही थी।

जयपुर-राज्य के मातहत कई रियासतें हैं। उनमें से शेखावाटी की एक छोटी-सी रियासत का नाम खेतड़ी है। यह वह ज़माना था जब राजपूतों में 'हमीर' और 'साँगा' के ख़ून का जोश बाक़ी था और वे अपनी इज़्ज़त को अपनी जान से ज़्यादा समझते थे। उनकी तलवारें हर दम मियानों से बाहर आने को उत्सुक रहा करती थीं और वीरता का आदर करनेवाले अँगरेज़ तक उनकी क़द्र करते थे, चाहे वे अपनी किसी गरज़ से उन्हें कायर बनाने की कोशिश में भले ही लगे रहे हों। कर्नल टाड ने कुछही दिन पहले अपने राजा से यह सिफ़ारिश की थी कि राजस्थान मुक्त कर दिया जाय। शेखावाटी के डाकू भी उसी ज़माने में जगत्प्रसिद्ध हो रहे थे। ऐसी जगह नंदलाल को १६ वर्ष की अवस्था में जाना पड़ा। वे अकेले गये। घरवालों को आगरे में छोड़ा, जहाँ वे कभी-कभी अपने राजा फ़तेहसिंह के साथ आया-जाया करते थे।



[स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल नेहरू]

मोतीलाल बचपन से ही चतुर और चालाक थे और नंदलाल उन्हें अपने लड़के की तरह मानते और प्यार करते थे। नंदलाल की स्त्री स्वरानी से वे बहुत हिले हुए थे। बचपन से वे उन्हें बड़े प्यार से पालती आई थीं और स्वयं अपने बच्चों के होने पर भी वही प्यार उनसे बनाये रक्खा था। यद्यपि भाइयों में कोई अलहदगी न थी, बंशीधर ज़्यादातर अपनी धर्मपत्नी-सहित नौकरी पर रहे। माता के आगरे में रहने से वही हेडक्वार्टर हो रहा था और नंदलाल का घर असल में वहीं था। इसी से मोतीलाल का रहना नंदलाल के जीते-जी उन्हीं के साथ हुआ।

नंदलाल या तो वीर राजपूतों की संगति से या अपने ही स्वभाव से बड़े निडर आदमी थे और शेखावाटी के वीरों की तरह उनका भी रहन-सहन था। उस समय शेखावाटी के डाकुओं का दौरदौरा था। बड़ी दूर-दूर से उनके पकड़ने के वास्ते माँगें आ रही थीं। जयपुर की सशस्त्र पुलिस उनका पीछा कितने ही दफ़े कर चुकी थी, किन्तु असफल रही थी। खेतड़ी की पुलिस को वे कब गिनते थे। नंदलाल ने उनके एक सरदार को स्वयं पकड़ा और शायद इसी से वे नौकर होने के साल ही दो साल में दीवान बना दिये गये और सारे राज्य का काम उनके हाथों में सौंप दिया गया। राजा फ़तेहसिंह जी उन्हें बहुत मा थे और उनसे मित्रता रखते थे। प्रजा से भी नये दीवान मित्र-भाव रक्खा और जब तक खेतड़ी में रहे, बड़े सरदार लेकर छोटे काश्तकार तक उन्हें अपना हितैषी ही मानते र

मोतीलाल भी बहुधा खेतड़ी आते-जाते थे। के मित्र शेखावाटी के सरदार उनकी चतुरता और अ



[पण्डित मोतीलाल नेहरू सन् १८८६ में
जब आपने वकालत शुरू की थी]

व्यवहार पर मुग्ध हो गये थे। यहाँ तक कि भाई की मृत्यु के बरसों बाद जब वे स्वयं वकालत में यश कमा रहे थे और खेतड़ी-नरेश राजा अजीतसिंह के बुलाने पर खेतड़ी पहली बार गये थे तब उनका बड़ा आदर-सत्कार हुआ था। केवल राज्य के अधिकारियों ने ही नहीं, वरन प्रजा ने जब खबर पाई कि नंदलाल के छोटे भाई की शिकरम पहुँची है तब पुराने लोगों के आदर्श पर सैकड़ों आदमी मीलों तक गाड़ी के साथ लगे गये थे। खेतड़ी-नरेश से उनकी मित्रता हो गई थी, दोनों एक ही अवस्था के थे। खेतड़ी के कुछ झगड़े दूसरी रियासतों से चल रहे थे। मोतीलाल विद्वान् और नामी वकीलों में थे। अजीतसिंह ने फिर अपने राज्य का राज्य के पुराने हितैषी परिवार से ही सम्बन्ध क़ायम किया।

(३)

कश्मीरियों में फ़ारसी पढ़ाने की उस समय बहुत चर्चा थी और अब भी कम से कम उर्दू पढ़ना ज़रूरी समझा जाता है। यों तो कोई भाषा भी पढ़ना बुरा नहीं होता, वरन उस ज़माने में न मालूम किस वजह से वे लोग यह समझते थे कि हिन्दी-भाषा या तो स्त्रियों के पढ़ने की भाषा है या पुरोहितों की। पुरुष के वास्ते केवल उतनी हिन्दी जानना उचित थी जिससे वे अपनी माता, बहन, स्त्री आदि से पत्र-व्यवहार कर सकें। यह भी ग़नीमत थी कि हिन्दी भाषा स्त्रियों के पढ़ने की भाषा मानी जाती थी अगर ऐसा न होता तो सम्भव था कि कश्मीरी ब्राह्मणों में हिन्दी के अक्षर भी जाननेवाला कोई आदमी न रह जाता। स्त्रियों की बदौलत उनमें हिन्दी टिक गई। मोतीलाल को बचपन से ही उर्दू, फ़ारसी, अरबी पढ़ाई गई और बारह वर्ष की अवस्था में वे फ़ारसी के अच्छे विद्वान् समझे जाने लगे थे। अरबी भी वे काफ़ी सीख चुके थे।

अँगरेज़ी पढ़ने की ज़रूरत लोग जान गये थे। लड़कों की पाठशालायें कितनी ही खुल चुकी थीं और वे सभी विद्यार्थियों से भरने लगी थीं। नंदलाल स्वयं ही अँगरेज़ी पढ़े होने की वजह से इतने ऊँचे ओहदे पर पहुँच चुके थे। फिर मोतीलाल को इससे कैसे वंचित रखते? वे यह जानते थे कि एक भाषा का जाननेवाला दूसरी भाषा बहुत जल्दी सीख लेता है और फिर मोतीलाल तो शुरू से ही इतने तेज़ बुद्धिवाले थे कि फ़ारसी और अरबी तक में छोटी-सी अवस्था में ही विद्वान् हो गये थे। बारह बरस के बाद अँगरेज़ी की शिक्षा शुरू हुई और चार ही वर्ष के भीतर लगभग १६ वर्ष की अवस्था में वे इंट्रेंस पास हो गये।

इस बीच में राजा फ़तेहसिंह का देहांत होने और अजीतसिंह को राजगद्दी पर बैठाने के बाद नंदलाल ने खेतड़ी की नौकरी छोड़ दी थी। अजीतसिंह पिछले राजा के बहुत दूर के सम्बन्धी के लड़के थे। अजीतसिंह बच्चे थे, किन्तु बड़े होनहार थे। फ़तेहसिंह अगर मामूली ज़मींदार होते तो अजीतसिंह को उनकी जगह पगड़ी बाँधने में कोई बाधा न डालता। राजा फ़तेहसिंह के दीवान ने यह ज़्यादती की कि मामूली ज़मींदारों के वारिसों की तरह अजीतसिंह का राजतिलक कर दिया। सरकारी रेज़िडेंट जो जयपुर में रहते थे, दीवान की यह धृष्टता बर्दाश्त न कर सके और सन् १८७० या १८७१ में नंदलाल को खेतड़ी छोड़नी पड़ी।

आगरे में हाईकोर्ट का इजलास लगा करता था। वहाँ के दो बढ़ते हुए वकील अयोध्यानाथ और विश्वम्भर-नाथ से नंदलाल का कुछ दूर का नाता भी था और घनिष्ठ मित्रता तो थी ही। कश्मीरी स्त्रियाँ उस ज़माने में पर्दे में रहती थीं, किन्तु वे उन ग़ैर-कश्मीरी मर्दों से जो अपनी स्त्रियों को उनके पुरुषों के सामने नहीं आने देते थे, पर्दा करती थीं। आपस में पर्दे का नाम भी न था। नंदलाल के खेतड़ी के ज़माने से ये लोग बहुधा उनके घर आते-जाते थे और उनके बाल-बच्चों की देख रेख भी करते थे। मोतीलाल की तेज़ तबीयत और चतुरता पर उनके सब जाननेवालों की तरह ये दोनों बुज़ुर्ग भी मुग्ध थे! इन्हीं की सलाह से नंदलाल आगरा-हाईकोर्ट में मुतरज्जिमी करने लगे। खेतड़ी के ज़माने में उन्होंने अँगरेज़ी की अच्छी लियाक़त हासिल कर ली थी और कहते हैं कि थोड़े से ही समय में हाईकोर्ट में अच्छी आमदनी होने लगी थी। तब मुतरज्जिम सरकारी नौकर नहीं होते थे, वरन वकील काग़ज़ों का अनुवाद स्वयं करा देते थे, मगर वे सनद पाये हुए मुतरज्जिमों में थे। हाईकोर्ट के इलाहाबाद आने पर मोतीलाल का कुल परिवार वहाँ जा बसा।

इंट्रेंस पास करने के बाद मोतीलाल म्योर-कालेज में एफ़० ए० क्लास में भर्ती हुए। उस ज़माने में म्योर-कालेज उस कोठी में लगता था जो आज-कल दरभङ्गा-कासल के नाम से प्रसिद्ध है। चार ही वर्षों में अँगरेज़ी ज़बान में भी उन्होंने उतनी ही योग्यता प्राप्त कर ली जितनी फ़ारसी में थी—उससे ज़्यादा। उनकी तबीयत की तेज़ी और पढ़ने-लिखने की योग्यता को देखकर प्रिंसिपल हैरिसन साहब और फ़ारसी के प्रोफ़ेसर मौलवी ज़काउल्ला उनसे अत्यन्त ख़ुश रहते और उन्हें अपना प्रिय शिष्य मानते थे और नन्दलाल से उनकी बहुधा प्रशंसा भी करते रहते थे। उस समय अध्यापकों और शिष्यों में काफ़ी मेल रहता था और आज-कल की तरह यह हाल न था कि शिष्य का नाम तक अध्यापक न जानें।

असल में मोतीलाल रट्टू लड़कों में न थे। वे ज़्यादा समय पढ़ने में नहीं लगाते थे, किन्तु जो कुछ पढ़ते वह उन्हें याद रह जाता था। पढ़ने की तेज़ी के साथ वे शरीर भी काफ़ी थे। कालेज में जब कभी प्रोफ़ेसर की निगाह चूकती, वे दूसरे लड़कों पर काग़ज़ की गोलियाँ फेंकते या बेर आदि खाने के पदार्थ उछालकर दूसरों को देते। बहुत सीधे लड़कों से कुछ न कुछ छेड़खानी लगाये ही रहते थे। उनकी राय थी कि लड़के में बहुत सीधापन पाप है, क्योंकि यह बेवक़ूफ़ी की निशानी है। प्रोफ़ेसर लोग कुल चंचल लड़कों को जानते थे और इन्हें उनका सरदार समझते थे। सबके पहले हर शरारत पर वे इन्हीं पर शक करते, मगर धोखा खा जाते। एक उदाहरण लीजिए। बेर की फ़सल पर एक दफ़े इन्होंने कुछ फल लड़कों में बाँटे, और यह तय हुआ कि ज्यों ही प्रोफ़ेसर लेकचर शुरू करें, सब लोग एकदम बेर खाना शुरू कर दें। समय आने पर ख़ुद जेब से बेर निकाला और दूसरों को इशारा किया। मुँह में लगाकर अपना बेर तो जेब में रख लिया। औरों में किसी किसी ने टुकड़ा खाया। बेर के कटने का शब्द होते ही प्रोफ़ेसर ने आँख उठाई और इनकी तरफ़ देखकर बोले—"मोतीलाल, मुँह खोलो"। मोतीलाल के मुँह में कुछ न था। दूसरा एक लड़का पकड़ा गया।

घर में मोतीलाल को किसी बात की मनाही न थी। भाई वकील थे। उनकी आमदनी अच्छी थी। वे पैसे की इन्हें रोक-टोक नहीं करते थे। कालेज में मित्रों को ये कुछ-न-कुछ रोज़ ही खिलाते। उनमें ये सर्वप्रिय थे। जैसे पढ़ने में तेज़ थे, वैसे ही खेल में, कालेज के गेंद के खिलाड़ियों में इनका ऊँचा दर्जा था। ग़रज़ यह कि प्रोफ़ेसरों से लेकर, खिलाड़ियों तक में उनका बड़ा मान था। एक में पढ़ाई की वजह से, दूसरे में खेल-कूद के कारण। साधारण लड़के खिलाने-पिलाने के कारण उनके मित्र हो रहे थे। कुछ लड़कों से यों ही मित्रता, क्या रखनी थी। ऊँचे दर्जे से नीचे तक—एक लड़का भी ऐसा न था जो इन्हें जानता और मानता न हो।

स्वर्गीय पण्डित सर सुन्दरलाल भी इसी ज़माने में म्योर-कालेज में पढ़ते थे। वे इनसे तीन-चार दर्जे ऊपर थे, किन्तु उनसे भी इनकी मित्रता हो गई थी। यहाँ तक कि वे भी एक मर्तबा अपने एक साथी को बेवक़ूफ़ बनाने में इनके सहायक हो गये। सुन्दरलाल का एक साथी लड़का लगभग तीन साल से बोर्डिंग-हाउस से नहीं निकला

था। वह पैसा खरचने में बहुत दुःख मानता था। बराबर घर से महीने पर खर्च आता और वह उसमें भी कुछ-न-कुछ बचा ही लेता। जब इन्हें इस बात की खबर हुई तब कुछ लड़कों में आपस में सलाह हुई और फिर उसके पिता के नाम से एक पोस्टकार्ड लिखा गया कि "तुम्हारी स्त्री को लड़का हुआ है"। किसी मित्र के ज़रिये मोतीलाल ने यह पोस्टकार्ड उस लड़के के घर के डाकखाने में छुड़वा दिया और फिर कई लड़के जिनमें सुन्दरलाल और मोतीलाल भी मौजूद थे, उसके पास पहुँचे। उसे ये मुंशी जी कहते थे। "आज तो मुंशी जी बहुत ख़ुश हैं—" एक ने कहा। "कोई ख़ुशख़बरी घर से आई है—" दूसरा बोला। "क्या बात है मुंशी जी ?"—तीसरे ने बार-बार पूछा। ग़रज़ कि किसी तरह वह पोस्टकार्ड निकलवाया। "मगर मुंशी जी तो तीन साल से यहीं हैं। यह हो कैसे सकता है ?"—एक साहब बोले। स्वयं मुंशी जी बोल उठे—"परमेश्वर की देन है"। इस क़िस्म के लड़कों को मोतीलाल ने कभी नहीं छोड़ा।

मोतीलाल का हाथ बचपन से ही खुला था। घर में वे सबके लाड़ले थे। माता को पैसे की क़द्र न थी। भाई बहुत जल्द ऊँचे पाये के वकीलों में हो गये थे और छोटे भाई के खुले हाथ को रोकना नहीं चाहते थे। वह आदत जो बचपन से पड़ी थी, मरते दम तक उनके साथ रही। उनका कहना था कि पैसा खर्च को होता है, और वे उसी पर अमल करते रहे।

कलकत्ता-यूनिवर्सिटी का बी॰ ए॰ का इम्तिहान आगरे में होता था। बी॰ ए॰ के वास्ते मोतीलाल ने काफ़ी तैयारी नहीं की थी, इससे उन्होंने इम्तिहान की फ़ीस देने से इनकार किया। हैरिसन साहब ने नन्दलाल को लिखा कि "मोतीलाल पास ज़रूर होगा। इसे इम्तिहान में बैठने के वास्ते मजबूर करो।" भाई का कहना वे कभी नहीं टालते थे। उनके कहने से फ़ीस भेज दी और आगरे चले गये, किन्तु सिर्फ़ पहले दिन इम्तिहान में बैठे, बाक़ी दिन आगरे का क़िला और ताजमहल इत्यादि देखने में बिताये।

(४)

मोतीलाल किसी से हार नहीं मानते थे। अपने से बड़े लड़कों से बिना कुछ सोचे-समझे भिड़ जाते थे। इलाहाबाद शहर में क्रिसमस के ज़माने में उस समय रेलवे के अँगरेज़ और अधगोरे एक उत्सव मनाया करते थे। शायद कुछ कमी के साथ वह अब भी होता है। उसमें तरह तरह के खेल-तमाशों के साथ जगह-जगह जुआ भी होता था। कहीं फिरकी पर सुई नाचती थी तो कहीं बन्दूक़ का निशाना लगाया जाता था। एक जगह पर एक बड़ी लम्बी क़रीब २० फ़ुट की मेज़ पर छोटे छोटे पहियेदार घोड़ों की घुड़दौड़ होती थी और जीतनेवाले को पैसे मिलते थे। कहा जाता था कि बड़े दिन पर जुआ खिलाने की उन लोगों को इजाज़त मिल जाती थी। खिलाड़ियों के अलावा देखनेवाले भी इसी मेज़ के चारों तरफ़ भीड़ लगाये रहते थे। बच्चों को घोड़ों के दौड़ने में ख़ास मज़ा आता था। इसी मेज़ का तमाशा देखने को मोतीलाल भी एकटक भीड़ के पीछे उचक रहे थे कि एक अँगरेज़ लड़के ने जो क़द और डील-डौल में उनसे दूना था, पीछे से उनको घसीटकर अलग कर दिया और ख़ुद आगे आकर देखने लगा। फिर भला उन्हें कहाँ चैन आनेवाला था ? जब तक बदला न ले लें कोई काम कैसे करें ? वह ज़माना ऐसा था जब अँगरेज़ के नाम से हमारे देशवासी डर जाते थे और शक्ल देखकर तो होश ही उड़ जाते थे। किन्तु मोतीलाल को शिक्षा दूसरी ही मिली थी। अगर हम कहें कि अँगरेज़ों का डर निकालनेवालों में वे अगुआ थे तो ग़लत न होगा। कुछ देर के बाद मौक़ा हाथ आ ही गया। वह लड़का खड़ा देख ही रहा था कि पीछे एक स्टूल खाली होगया। वे उस पर चढ़कर उसके सिर तक पहुँच गये और दाँतों से ज़ोर से उसका कान पकड़ लिया। कान से ख़ून बहने लगा वह चिल्लाया और चारों तरफ़ से लोग दौड़ पड़े। हिन्दुस्तानियों ने लड़के की वीरता की बड़ी प्रशंसा की। मामला बढ़ा नहीं, वहीं तय हो गया।

इस तरह की वारदातें अक्सर होने लगीं। एक दफ़े कुछ लड़के कम्पनी-बाग़ में टहलने गये थे। अँगरेज़ भी बहुत बाग़ों में घूमने आते थे। कुछ देशी लड़कों को विदेशी या अर्ध विदेशी लड़के छेड़ रहे थे। वह इस तरह कि वे उनके पीछे-पीछे चलते और उनके जूते की एड़ियाँ अपने जूतों के पंजों से दबा देते और फिर 'बेग पार्ड्न' (माफ़ कीजिए), कहकर हँसते। कहीं मोतीलाल ने देख लिया और वे अपनी टोली के साथ उनके पीछे जा पहुँचे और दो-एक को ठोकर जमा दी और बोले 'बेगपार्ड्न'। उन्होंने कुछ लड़ाई की, मगर फ़ौरन ही भाग खड़े हुए। क्यों ? जो सदा कमज़ोर को मारा करते थे और जानते थे कि हमसे कोई बोल नहीं सकता वे लड़ाकू के सामने ठहर नहीं सकते थे।

मोतीलाल को शौक़ यह था कि उनकी सब चीज़ें बहुत बढ़िया हों। कालेज में पढ़ने के ज़माने में वे एक दिन टमटम हाँके चले जा रहे थे, जिसमें एक तेज़ घोड़ी जुती थी। कोई अँगरेज़ अपनी बग्घी पर आगे जा रहा था। वे अपना टमटम उसके आगे निकाल ले गये। बस साहब को कहाँ सहन होता ! एक काला आदमी, लड़का ही सही, गाड़ी पीछे से आगे निकाल ले जब कि बड़े बड़े राजा-महाराज और रईस-साहूकार गाड़ी खड़ी करके स्वयं उतरकर उन्हें सलाम करते थे ? साहब ख़ुद कलक्टर थे। टमटमवाले लड़के का नाम मालूम करने में देर न लगी, क्योंकि वह भी शहर के एक प्रसिद्ध घराने का लड़का था। दूसरे दिन सम्मन आ पहुँचा। रैश ड्राविंग (बेतहाशा हाँकने) का मुक़द्दमा क़ायम हुआ। ख़ुद उनके तो कान पर जूँ भी नहीं रेंगी, किन्तु अयोध्यानाथ और विशम्भरनाथ ऐसे प्रसिद्ध वकील जो उन्हें अपने पुत्र के समान मानते थे, बहुत घबराये और पेशी के दिन हज़ार रुपये लेकर कचहरी पहुँचे। कलक्टर का चलाया हुआ मुक़द्दमा आज भी कोई उसका मातहत ख़ारिज करते डरता है। फिर उस ज़माने का क्या पूछना ? मगर जुर्माना थोड़ा ही हुआ।

(५)

सन् १८८३-८४ के वकालत के इम्तिहान में मोतीलाल बैठे और पास होनेवालों में प्रथम स्थान पाया। हाईकोर्ट के वकील एसोसियेशन से सोने का पदक इनाम में मिला। शुरू से ही हाईकोर्ट में वकालत कर[ने] की नीयत थी, किन्तु उस समय के क़ायदों के अनुसा[र] दो वर्ष ज़िले की कचहरी में वकालत करना ज़रूरी था इस ज़िले की वकालत के वास्ते मोतीलाल ने कानपु[र] का शहर चुना और पंडित पृथिवीनाथ और मुंशी श्याम लाल से जो वहाँ के नामी वकीलों में थे, टक्कर लेने [में] उन्हें देर न लगी। कोई पेचीदा मुक़द्दमा ऐसा न होत[ा] जिसमें एक तरफ़ से मोतीलाल न होते हों। बाज़ आदम[ी] समझते हैं कि किसी पेशे में बढ़ना भाग्य की बात होत[ी] है, मगर यह बात सोलहों आना ठीक नहीं है। तदबी[र] बग़ैर तक़दीर कुछ नहीं कर सकती। अगर तक़दीर [में] खाना बदा है तो बिना हाथ से उठाये मुंह तक कै[से] पहुँच सकता है ?

मोतीलाल की समझ बचपन से ही बहुत अच्छ[ी] थी। तबीयत तेज़ पाई थी और दिमाग़ बहुत ही सुलझ[ा] हुआ पाया था। किसी बात की तह तक पहुँचने में उ[न्हें] देर नहीं लगती थी। वकालत का एक ऐसा पेशा है जह[ाँ] हर प्रकार की विद्या काम में आती है और अच्छे वकील को कुछ न-कुछ हर मज़मून का जानकार होना ज़रू[री] है। जब कभी वे कोई ऐसा पेचीदा मुक़द्दमा पाते जिस[में] कोई ख़ास विज्ञान जानने की ज़रूरत होती तो वे रा[त] और दिन एक करके पहले उस विज्ञान को पढ़ते औ[र] समझ लेते। शुरू ही वकालत में एक ऐसा मुक़द्दमा [पा] गये जिसमें यह सवाल था कि एक ख़ास व्यक्ति पाग[ल] था या नहीं। पचासों डाक्टरों की गवाहियाँ हुईं। आ[धों] ने उसे पागल बताया, आधों ने उसके ख़िलाफ़ कहा उन्होंने अपने ख़िलाफ़वाले डाक्टरों से जिरह करने [के] वास्ते सैकड़ों किताबें 'पागलपन' पर पढ़ीं और जिरह [में] डाक्टरों के छक्के छुड़ा दिये। उन डाक्टरों में उनके रो[ज़] के मिलनेवाले एक मित्र भी थे, जिन्होंने जिरह के पहले य[ह] कहा था कि 'तुम वकील लोग भला हमारे विज्ञान [पर] मुझसे क्या जिरह करोगे।' उन्हें यह मालूम न था कि [वे] सैकड़ों किताबें इस विषय की अध्ययन कर चुके हैं।

कानपुर की वकालत के ज़माने में ही उनकी जिर[ह] की शक्ति, उनका हाकिमों से निडर होना, उनकी बह[...]

का ज़ोर ज़िले भर में, मुक़द्दमेवालों की दुनिया में, मशहूर हो गया था और उनका बुलावा उन्नाव इत्यादि से बहुधा आया करता था। फ़ौजदारी के मुक़द्दमे में वे बहुत कम भाग लेते थे, मगर एक दफ़ा उन्नाव के कलक्टर के इजलास में जाना पड़ा। साहब बहादुर ने एक नौजवान अँगरेज़ी कपड़ों में सुसज्जित वकील को अपने सामने देखा। आज यह भले ही रोज़ देखने में आता हो कि वकील अँगरेज़ी कपड़े पहने हैं, किन्तु पचास वर्ष पहले यह बड़े हिम्मत की बात थी। नाक-भौं तो साहब ने चढ़ा ही ली, किन्तु कुछ कहा नहीं। बहस के वास्ते खड़े होने पर उन्होंने अँगरेज़ी में वक्तृता शुरू की ही थी कि साहब गरज उठे—"अदालत का ज़बान फ़ारसी है। फ़ारसी बोलो।" मोतीलाल को मज़ाक़ हाथ आया। फ़ारसी में वे फ़ाज़िल थे। उन्होंने फ़ारसी बोलनी शुरू की। कुछ देर तक कलक्टर उनका मुँह देखता रहा, फिर ख़ुद ही अँगरेज़ी में कहने लगा कि अच्छा अँगरेज़ी में ही कहो। मुवक्किल हमेशा ही हाज़िर जवाब वकील से ख़ुश रहते हैं और उनके मुवक्किल उम्र भर उनसे ख़ुश रहे। मुवक्किलों से भी काम के साथ वे मज़ाक करते रहते थे। काम चाहे कितना ही ज़्यादा हो, वे शाम के दो-तीन घंटे मिलने आने-जानेवालों में बिताते। कानपुर के कितने ही रईसों से उनका मेल-जोल था। उनमें एक रईस ऐसे थे जिन्होंने पान खाने-खिलाने में अपनी सारी दौलत लुटा दी थी। जब तक उनके पास पैसा था, वे मोती के चूने के सिवा पान पर दूसरा चूना नहीं लगाते थे। इस वक़्त उनकी आर्थिक दशा बिगड़ चुकी थी, जूता तक फटा पहने पैदल घूमते-फिरते थे। मगर पानदान बग़ल में रखते और बहुधा मोतीलाल को अपने हाथ का बनाया पान खिलाने आते।

(६)

वकालत पास करते ही वकील तजरुबेकार मुंशी ढूँढ़ते हैं। ऐसे मुंशी नये वकीलों को अपनी मुट्ठी में रखते हैं और जो नाच चाहें नचाते हैं। मोतीलाल ने इसकी परवा न की। उनके मुंशी भी उन्हीं की तरह नवयुवक थे, मगर थे पुराने घराने के लड़के। उस लड़ाई में जिसे हार होने से ग़दर का नाम दिया गया है, उनके पिता को घर छोड़कर भाग जाना पड़ा था और मुबारकअली को लड़कपन में ही जीविका ढूँढ़ने निकलना पड़ा था। नये वकील की मुहर्रिरी में उन्हें भी कोई संकोच न हुआ। मुबारकअली और मोतीलाल की एक तरह मित्रता-सी हो गई थी। वे बड़े सज्जन पुरुष थे और अपने मालिक के सच्चे शुभचिन्तक थे। ज़िले की वकालत का ज़माना ख़त्म होने पर वे भी मालिक के साथ इलाहाबाद चले आये और उसी घर में साथ ही रहने लगे।

नन्दलाल उस ज़माने में हाईकोर्ट के बड़े वकीलों में थे। मोतीलाल भाई के ही जूनियर होकर काम करने लगे। दोनों भाइयों में आपस में बहुत मेल था और एक ही घर में रहते थे। उन्हें इलाहाबाद आये साल भर भी नहीं हुआ था कि अप्रेल सन् १८८७ में बड़े भाई का हैज़े की बीमारी में एकाएक ४२ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हो गया। ज़िले की कचहरी में उन्होंने अपनी क़ानूनी लियाक़त और जिरह करने का परिचय पूरी तरह दे दिया था। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता था कि हाईकोर्ट में भी वही सफलता होगी और अब तक तो उन्हें अच्छी तरह कोई मौक़ा भी नहीं मिला था। [illegible] के देहांत पर उनके सब मुक़द्दमों में उन्होंने वकालत-नामे दाख़िल किये।

[अगले अङ्क में समाप्य

नाम की प्यास

लेखक, श्रीयुत सियारामशरण गुप्त

"मैं हूँ यहाँ, नीर यह मैं हूँ यहाँ,
आओ बन्धु, आओ तुम मेरे पास।
मरु हो, परन्तु मैं नहीं वहाँ,
प्यासे ही न जाओ, यहाँ आकर बुझाओ प्यास।"
सुनता न हाय! कोई देके ध्यान
मेरा वह प्रेमाह्वान।
यात्रि-दल आते, चले जाते सभी;
ध्यान भी न लाते कभी
नीचे यहाँ मैं हूँ, तलातल है;
ऊपर ही सूखा यह थल है।
रट बस मेरी यही—"आओ अरे
मुझको उबारो इस मृत्तिका की कारा से;
आये तुम दूर से तृषा से भरे,
परिचय प्राप्त करो मेरी मृदु धारा से।"
हाँ यह यथार्थ,—यह मरु है;
इधर-उधर दोनों ओर
बीस बीस कोस है विजन घोर;
बस कुछ झाड़,—नहीं कोई यहाँ तरु है।
सीधी है सपाट मही;
किन्तु देखने को बस है क्या यही?
डालो दृष्टि और कुछ गहरी।
निर्मल सुनीर यह पाओगे,
[illegible] जाओगे;
उछल उठेगी मंजु मानस की लहरी।
सुनता परन्तु कौन मेरी यहाँ,
कहते हुए भी—"अरे पानी कहाँ, पानी कहाँ?"
जान गया इनकी समस्त तृषा
निश्चय नितान्त मृषा;
कोई सुनता ही नहीं,—"मैं हूँ यहाँ, मैं हूँ यहाँ!"
उस दिन ज्ञात हुआ, मेरा भाग
जाग उठा आज निज निद्रा त्याग;
दोपहर को ही सही जागा तो!

कठिन कृशानु को ही धूप में तरल कर,
बरसा रहा था जब भानु भूमितल पर,
आया वह पान्थ-धनी; आया अनुरागी तो!
बैठा हुआ सज्जित सुरथ में,
आया दूर से था उस पथ में।
एकाएक आके यहाँ ठहरा।
गौर उसी सैकत मरुस्थल-सा
देह ताप-तृष्णा से विकल था;
क्लान्ति-भाव मुख पर था गहरा।
बोला—"अब और कहाँ जावेंगे;
कोसों तक छाया नहीं पावेंगे।
सहना कहीं है, क्यों न सह लें यहीं की धूप?
ओहो यहाँ कितना कठोर दाह!
कैसा यह ठौर आह!
गिर पड़ने को भी नहीं है यहाँ कोई कूप!
अच्छा यहीं कूप खनवाऊँगा;
अच्छी पान्थशाला बनवाऊँगा।
यात्री यहाँ यात्रा का सुवास लें;
स्नेहाशीष देते हुए,
प्रेम से किसी का नाम लेते हुए,
तप में भी [illegible]
[illegible] सुगन्धि ले।
करके प्रबन्ध यह आगे तब जाऊँगा।"
धन्य धनी, अच्छी गुनी;
मेरी गिरा आज तुमने ही सुनी!
नीर यह पावेगा सफलता।
बीच में ही यात्रा की विकलता
यात्री तृप्ति-पूर्वक सिरायगा।
स्वाद वह एकाएक पायगा
क्लान्त मरु-जीवन में जीवन का,
इष्ट निज मन का;
दूर कर ग्लानि खेद,
छाँह में सुखा के स्वेद,

बीती को भुलाके यहाँ आगे तब जायगा।
  निश्चय धनी का वह
श्रम सह
होने लगा पूर्ण उपक्रम से;
पर दिन से ही क्रम क्रम से
आने लगे श्रमिक अनेकों वहाँ।
होती यह कूप की खुदाई इस ओर यहाँ
और उस ओर वह पान्थागार
शीघ्र शीघ्र पाकर नवीनाकार
ऊँचा उठ ताक-झाँक करता।
भीतर ही भीतर मैं मोद में विचरता।
  पूरी हुई बन कर
कुछ ही दिनों में यह शाला तो मनोज्ञकाय:
किन्तु इस कूप का खनन कर
पा न सके नीर एक बूँद भी श्रमिक हाय!
ढीले पड़े हाथ उन सबके।
खोदो बन्धु, खोदो कुछ और यहाँ अब के।
निश्चय ही नीर तुम पाओगे।
बीच में ही थक यों न ठहरो,
हाँ हाँ, श्रम थोड़ा कुछ और करो।
इतना यहाँ है एक साथ छक जाओगे।
  निखिल प्रयास व्यर्थ!
पानी-सा बहाके धन पा न सके पानी ये।
हार गये हा अनर्थ,
सम्पदा के कैसे स्वाभिमानी ये!
खोद लिया इतना गंभीर गर्त्त;
जाकर भी दूर तक गहरे,
देख यह अन्तिम शिला का पर्त्त
होके असमर्थ यहीं ठहरे।
  जा रहे हो? जाओ धनी,
जान लिया नाम की तुम्हें थी प्यास।
जिसके निमित्त था कठोरायास
नाम को तुम्हारे यह कृति तो तुम्हारी बनी!
खेद करते हो अरे!
खेद छोड़ थोड़ा कुछ और तुम करते,
जाते तो कदापि यों न श्री से हरे,
एक क्षण में ही नया नीर तुम भरते।
तुम कहते हो—"नीर रक्खा कहाँ?"
यह कहता मैं सुनो—"मैं हूँ यहाँ।"
छोड़कर रिक्त यह पक्का कूप
तुम तो यहाँ से चले,
नाम-शिला-लेख निज घोर यह भार-रूप
सर्वदा को बाँध गये हाय! इसके गले।
  जा जाकर आने लगे वर्ष-मास,
कूप रहा सूखा,—निरा सूखा ही।
पाकर अँधेरे में विफल वास,
मेरा उर रूखा रहा,—रूखा ही!
आके कभी नीचा झुक कोई झाँक जाता उसे;
कोई कभी ऊपर से ढेले मार,
खोटी-खरी जी भर सुनाता उसे।
हाय! इस जीवन में ऐसा सार!
किसको बताऊँ नीर मानी मैं!
ऊपर जो देखते, नहीं हूँ वह।
नीचे यहाँ मैं हूँ यह,
ओतप्रोत पानी, बस पानी मैं।
  उस दिन ग्रीष्म का था सायंकाल।
दिन का दुरन्त धूप-धूम तो विगत था,
दहक रहा था बस उसका ज्वलन-ज्वाल।
निश्चल प्रभञ्जन भी मानो बुद्धिहत था।
ऐसे इस दुस्समय
यात्रि-दल कौन यह छोड़ भय
आया यहाँ पथ में विचरता?
आह! उस ऋतु की प्रखरता
छा रही थी एक-सी ही सब पर।
बाल-वृद्ध, नारी-नर
दीखते सभी थे कुम्हलाये-से:
प्राण तक हार कर आये-से।
देखकर पक्का कूप,
खुली हुई शाला का सुरम्य रूप,
लोग कुछ हर्ष-सह चिल्ला पड़े—
"रुको, रुको पानी का सुपास यहाँ!"
पाकर नवीन बल, थे जो जहाँ
एकाएक होगये तुरन्त खड़े।
अश्वारूढ़ अश्वों की लगाम थाम,
वृषभों की जोड़ियों को थाम कर गाड़ीवान,
कूद पड़े नीचे झट एक संग।
फैल गई हर्ष की नई उमंग।
"ढीलो गाड़ियों को यहीं,
घोड़ों के उतारो साज।
और अब आगे नहीं;
होगा यहीं रात का विराम आज।
धन्य अहा! कौन पुण्यशाली वह
पक्का कूप जिसने बँधाया इस मरु में;
सुधा-बिन्दु मरते हुए के गले डाली यह;
ऐसा फल किसने फलाया शुष्क तरु में!"
यह कह हर्षित प्रधान वह,—
निश्चय प्रबल ही, हाँ, रूप-गुणवान वह,—
घाट ओर आगे बढ़ा;
उसने वहाँ का वह भारी शिलालेख पढ़ा।
तब तक लोटा और रस्सी लिये
भृत्य कुछ दौड़े हुए आये वहाँ;
सबने स्वपात्र निज कूप में उतरा दिये।
अब क्या करूँ हा मैं नहीं हूँ यहाँ!
लौटो बन्धु, लौटो, यहाँ नाम नहीं जल का।
कूप यह माया का प्रपंच है!
मैं हूँ यहाँ बन्दी शिला-तल का,
मेरे लिए विधि की दया-ममता न रंच है।

  कुछ ही क्षणों के बाद;
जाके टकराये पात्र नीचे के अँधेरे में।
पत्थर ही पाया हाय! करके कठोर नाद
मीन-सा पटक उठे घूम चक्कर में।
रिक्त पात्र अत्यधिक भारी पड़े,
खींचे गये जैसे के तैसे ही।
लोग सब होकर निराश बड़े,
रह गये भौंचक-से वैसे ही।
क्षण भर पूर्व ही जो हर्ष-स्रोत
उमड़ पड़ा था जन जन में,
जानता था कौन यह झूठा तोत?
सूखा वह तत्क्षण वहीं का वहीं मन में;
तरुण प्रधान वह,
यह सब देख-सुन क्रोध से भभक उठा।
सह न सका वञ्चना महान यह:
दोपहर का-सा सान्ध्य ज्वाला में धधक उठा।
"वञ्चक, धड़े का धूर्त्त!
आओ सब, कूप यह पाट अभी देंगे हम।
सबके लिए ही यह शाप-मूर्त्त:
घृण्य पाप-मूल यह काट अभी देंगे हम।
और कुछ होगा फिर,
पहले उखाड़ो शिला-लेख ही धनिक का।
देख ले स्वयं ही यह नीचे गिर
अपने अमार्जनीय अघ की अधिकता!"
  जोर का धमाका एक!
लेख शिला नीचे गई दुर्निवार रिस-सी:
घाट तक काँप-सा उठा कुछेक,
नीचे की धरित्री कुछ नीचे और खिसकी।
टूटा अहा! तत्क्षण ही टूटा अहा!
पत्थर कठोर यह निम्न कूप तल का।
छूटा अहा! तत्क्षण ही छूटा अहा!
मेरा अवरुद्ध स्रोत ऊपर उछलता।
बस बस बन्धु, अब रोको हाथ
घाट को न तोड़ो और देखो भर आया मैं
उमड़ उठा हूँ अहा! एक साथ,
मुक्त हो गया हूँ नये जीवन से छाया मैं।
सच्ची कहो—कैसी थी तुम्हारी प्यास?
नीर देखते ही वह भागी कहाँ!
भूलो मत, देखो अपने ही पास:
हूँ मैं यहाँ, नीर यह हूँ मैं यहाँ।

कुछ इधर उधर की

ऊँट के बारे में कहा जाता है कि वह इतना सीधा जानवर होता है कि एक बच्चा भी उसकी नकेल पकड़कर उसे जहाँ चाहे ले जा सकता है। एक कहानी है कि एक बार एक चूहा किसी ऊँट की नकेल पकड़कर उसे अपने बिल के द्वार तक खींच ले गया था। परन्तु समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ है कि लरकाना-ज़िले के कुन्वर गाँव में एक ऊँट ने अपने मालिक को दाँत से पकड़कर ज़मीन पर पटक दिया और मार डाला। कारण यह था कि मालिक थक जाने पर भी उससे काम लेना चाहता था और इसी लिए उसने ऊँट को बहुत पीटा था, जिससे उत्तेजित होकर ऊँट ने उसकी हत्या कर डाली। उस मालिक की हत्या के लिए हमें अफ़सोस है। परन्तु उससे हमें एक नई बात भी मालूम हुई। वह यह कि अत्यन्त छेड़े जाने पर ऊँट में भी बदला लेने का भाव जाग्रत हो सकता है और वह आक्रमण कर सकता है।

× × × ×

करतारपुर (जालंधर) की स्माल टाउन कमेटी की हाल की बैठक में एक विचित्र प्रस्ताव पास हुआ है। पुस्तकालय के लिए कुछ पुस्तकें मँगाने का विचार हो रहा था। सूची में महात्मा गांधी की लिखी 'आरोग्यदर्शन' नामक पुस्तक भी थी। एक मेम्बर ने आपत्ति की कि 'गांधी क्रान्तिकारी व्यक्ति हैं। उनकी लिखी पुस्तक न मँगाई जाय।' दूसरे ने कहा—"पुस्तक में स्वास्थ्य और रोग की चर्चा है। क्रान्ति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। पंजाब की कितनी ही म्युनिसिपैल्टियों में गांधी जी के चित्र तक टँगे हैं।" परन्तु वह मेम्बर अपनी ज़िद पर अड़ा रहा और अन्त में यही प्रस्ताव पास हुआ कि वह पुस्तक न मँगाई जाय। इस घटना से कम-से-कम यह पता तो चलता ही है कि उक्त टाउन कमेटी अपने कार्य्य में कैसी सतर्क है और उसके मेम्बर कितने ज़ोरदार हैं।

× × × ×

पूज्य मालवीय जी की ७५वीं वर्ष-गाँठ के उपलक्ष्य में भाषण देते हुए श्रीयुत सी० वाई० चिन्तामणि ने कहा है कि "गांधी जी यदि महात्मा हैं तो मालवीय जी धर्मात्मा हैं।" हम महात्मा गांधी और धर्मात्मा मालवीय जी का समान आदर करते हैं। हमारे लिए दोनों पूज्य हैं, दोनों महात्मा हैं और दोनों धर्मात्मा हैं। परन्तु इस अवसर पर हम लीडर-सम्पादक श्रीयुत सी० वाई० चिन्तामणि को बिना बधाई दिये नहीं रह सकते, क्योंकि उन्होंने अँगरेज़ीदाँ होते हुए भी हिन्दीवालों के प्रयोग के लिए एक नये शब्द की वृद्धि की है। व्यक्तियों के साथ अब तक महात्मा शब्द का ही प्रयोग होता आया है। अब लोग धड़ल्ले से धर्मात्मा शब्द का भी प्रयोग किया करेंगे।

× × × ×

लखनऊ में हाल में एक महिला-सम्मेलन हुआ था। उसमें सबसे महत्त्व का यह प्रस्ताव पास हुआ है कि अवध की स्त्रियाँ उर्दू सीखें। मूल प्रस्ताव हमें देखने को नहीं मिला, पर उस सम्बन्ध में जो भाषण हुए थे उनका संक्षिप्त विवरण समाचार-पत्रों में पढ़ने को मिला है। उन भाषणों से हमें ज्ञात हुआ है कि भारतवर्ष में सिर्फ़ उर्दू ही एक ऐसी भाषा है जो स्त्रियों की वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है। उर्दू के बारे में कहा जाता है कि वह 'कैम्प लैंग्वेज' थी। घर में नहीं 'कैम्प' में उत्पन्न हुई थी। चूँकि स्त्रियाँ गृह-जीवन से ऊब रही हैं और 'कैम्प जीवन' की ओर अग्रसर हो रही हैं, इसलिए उनकी यह माँग सर्वथा स्वाभाविक जान पड़ती है। हमें चिन्ता सिर्फ़ इस बात की है कि उन्होंने सिर्फ़ स्त्रियों से ही उर्दू सीखने की अपील क्यों की? क्या वे उर्दू को भी साड़ी की भाँति निरा स्त्रियों की वस्तु बनाना चाहती हैं?

× × × ×

रीवाँ में पहले यह नियम था कि राज्य के गऊ आदि पशु बिक्री के लिए रीवाँ से बाहर नहीं भेजे जा सकते थे। इससे किसानों को बहुत कुछ आर्थिक हानि उठानी पड़ती थी, क्योंकि रीवाँ में उन्हें अपने पशुओं का समुचित मूल्य नहीं मिल सकता था। इस आर्थिक प्रश्न को सामने रखकर वर्तमान रीवाँ-नरेश ने अब वह नियम उठा दिया है। इस पर 'श्री वेंकटेश्वर-समाचार' में एक प्रेषित पत्र-द्वारा रीवाँ-नरेश से यह प्रार्थना की गई है कि वे गोरक्षा के सम्बन्ध में अपने पूर्वजों का अनुकरण करें और उक्त पुराने नियम को ज्यों का त्यों बना रहने दें। यह तो ठीक है। परन्तु पत्र-प्रेषक महोदय को यह भी बताना चाहिए कि रीवाँ के महाराज अपने राज्य के किसानों की आर्थिक स्थिति कैसे सुधारें? किसान की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होगी तो वह राज्य को कर कहाँ से देगा? यदि पत्र-प्रेषक महोदय यह लिखते कि राज्य का कर चुकाने के लिए ही किसान अपनी गायें राज्य के बाहर बेचने पावें अन्यथा नहीं तो शायद उनकी सुनाई हो सकती थी।

× × × ×

सिलहट के डिस्ट्रिक जज ने कालीकुमार धर नामक एक ६४ वर्षीय वृद्ध को अपने दो छोटे बच्चों की हत्या के अपराध में कालेपानी की सजा दी है। वृद्ध ने अपना अपराध स्वीकार करते हुए कहा था कि घर में ग़रीबी के कारण कुछ न रह जाने के कारण बच्चे भूख से मरे जा रहे थे। घुल घुलकर मरने से, मैंने सोचा, उनका एक-दम मर जाना अच्छा है। यह तो स्पष्ट ही है कि वृद्ध ने क्रोध या घृणा के आवेश में नहीं, बल्कि प्रेम और दया के आवेश में आकर अपने बच्चों की जान ली है। शायद जज महोदय ने इसी लिए उसे फाँसी की सजा न देकर कालेपानी की सजा दी है और इस मामले को प्रान्तीय सरकार के पास भेजा है कि वह चाहे तो उस दयनीय वृद्ध को माफ़ करदे और छोड़ दे। वृद्ध तो दया के आवेश में आकर अपनी विवेक-शक्ति गवाँ ही बैठा था। जज साहब ने भी मामले को प्रान्तीय सरकार के पास भेजकर बहुत अच्छा नहीं किया है। क्योंकि ऐसे आदमी के लिए आजन्म क़ैद दंड नहीं, सबसे बड़ा दान है। उसे मरते समय तक पेट भर भोजन तो मिलेगा।

× × × ×

पञ्जाब और बङ्गाल में युवतियों को हवाई जहाज़ों पर उड़ने का अवसर देने के लिए क्लब क़ायम हो रहे हैं। कहा जाता है कि इससे स्त्रियों में साहस का संचार होगा। सहयोगी 'वर्तमान' ने संयुक्त-प्रान्त के धनी व्यक्तियों से अपील की है कि संयुक्त-प्रान्त में भी ऐसे क्लब खुलवाकर अपने धन का सदुपयोग क्यों न करें। आसमान में मुक्त उड़नेवाला पक्षी स्वाधीनता का सर्वश्रेष्ठ चिह्न माना गया है। भारत की स्त्रियाँ तब तक कैसे स्वाधीन मानी जा सकती हैं जब तक वे मुक्त पक्षी की भाँति गगनविहारिणी न बनें। इस दृष्टि से ऐसे क्लबों की सर्वत्र आवश्यकता है और वे जितनी ही अधिक संख्या में खुलें, उतना ही अच्छा।

कुछ इधर उधर की

ऊँट के बारे में कहा जाता है कि वह इतना सीधा जानवर होता है कि एक बच्चा भी उसकी नकेल पकड़कर उसे जहाँ चाहे ले जा सकता है। एक कहानी है कि एक बार एक चूहा किसी ऊँट की नकेल पकड़कर उसे अपने बिल के द्वार तक खींच ले गया था। परन्तु समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ है कि लरकाना-ज़िले के कुन्दर गाँव में एक ऊँट ने अपने मालिक को दाँत से पकड़कर ज़मीन पर पटक दिया और मार डाला। कारण यह था कि मालिक थक जाने पर भी उससे काम लेना चाहता था और इसी लिए उसने ऊँट को बहुत पीटा था, जिससे उत्तेजित होकर ऊँट ने उसकी हत्या कर डाली। उस मालिक की हत्या के लिए हमें अफ़सोस है। परन्तु उससे हमें एक नई बात भी मालूम हुई। वह यह कि अत्यन्त छेड़े जाने पर ऊँट में भी बदला लेने का भाव जाग्रत हो सकता है और वह आक्रमण कर सकता है।

× × × ×

करतारपुर (जालंधर) की स्माल टाउन कमेटी की हाल की बैठक में एक विचित्र प्रस्ताव पास हुआ है। पुस्तकालय के लिए कुछ पुस्तकें मँगाने का विचार हो रहा था। सूची में महात्मा गांधी की लिखी 'आरोग्यदर्शन' नामक पुस्तक भी थी। एक मेम्बर ने आपत्ति की कि 'गांधी क्रान्तिकारी व्यक्ति हैं। उनकी लिखी पुस्तक न मँगाई जाय।' दूसरे ने कहा—"पुस्तक में स्वास्थ्य और रोग की चर्चा है। क्रान्ति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। पंजाब की कितनी ही म्युनिसिपैल्टियों में गांधी जी के चित्र तक टँगे हैं।" परन्तु वह मेम्बर अपनी ज़िद पर अड़ा रहा और अन्त में यही प्रस्ताव पास हुआ कि वह पुस्तक न मँगाई जाय। इस घटना से कम-से-कम यह पता तो चलता ही है कि उक्त टाउन कमेटी अपने कार्य्य में कैसी सतर्क है और उसके मेम्बर कितने ज़ोरदार हैं।

× × × ×

पूज्य मालवीय जी की ७५वीं वर्ष-गाँठ के उपलक्ष्य में भाषण देते हुए श्रीयुत सी० वाई० चिन्तामणि ने कहा है कि "गांधी जी यदि महात्मा हैं तो मालवीय जी धर्मात्मा हैं।" हम महात्मा गांधी और धर्मात्मा मालवीय जी का समान आदर करते हैं। हमारे लिए दोनों पूज्य हैं, दोनों महात्मा हैं और दोनों धर्मात्मा हैं। परन्तु इस अवसर पर हम लीडर-सम्पादक श्रीयुत सी० वाई० चिन्तामणि को बिना बधाई दिये नहीं रह सकते, क्योंकि उन्होंने अँगरेज़ीदाँ होते हुए भी हिन्दीवालों के प्रयोग के लिए एक नये शब्द की वृद्धि की है। व्यक्तियों के साथ अब तक महात्मा शब्द का ही प्रयोग होता आया है। अब लोग धड़ल्ले से धर्मात्मा शब्द का भी प्रयोग किया करेंगे।

× × × ×

लखनऊ में हाल में एक महिला-सम्मेलन हुआ था। उसमें सबसे महत्त्व का यह प्रस्ताव पास हुआ है कि अवध की स्त्रियाँ उर्दू सीखें। मूल प्रस्ताव हमें देखने को नहीं मिला, पर उस सम्बन्ध में जो भाषण हुए थे उनका संक्षिप्त विवरण समाचार-पत्रों में पढ़ने को मिला है। उन भाषणों से हमें ज्ञात हुआ है कि भारतवर्ष में सिर्फ़ उर्दू ही एक ऐसी भाषा है जो स्त्रियों की वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है। उर्दू के बारे में कहा जाता है कि वह 'कैम्प लैंग्वेज' थी। घर में नहीं 'कैम्प' में उत्पन्न हुई थी। चूँकि स्त्रियाँ गृह-जीवन से ऊब रही हैं और 'कैम्प जीवन' की ओर अग्रसर हो रही हैं, इसलिए उनकी यह माँग सर्वथा स्वाभाविक जान पड़ती है। हमें चिन्ता सिर्फ़ इस बात की है कि उन्होंने सिर्फ़ स्त्रियों से ही उर्दू सीखने की अपील क्यों की? क्या वे उर्दू को भी साड़ी की भाँति निरा स्त्रियों की वस्तु बनाना चाहती हैं?

× × × ×

रीवाँ में पहले यह नियम था कि राज्य के गऊ आदि पशु बिक्री के लिए रीवाँ से बाहर नहीं भेजे जा सकते थे। इससे किसानों को बहुत कुछ आर्थिक हानि उठानी पड़ती थी, क्योंकि रीवाँ में उन्हें अपने पशुओं का समुचित मूल्य नहीं मिल सकता था। इस आर्थिक प्रश्न को सामने रखकर वर्तमान रीवाँ-नरेश ने अब वह नियम उठा दिया है। इस पर 'श्री वेंकटेश्वर-समाचार' में एक प्रेषित पत्र-द्वारा रीवाँ-नरेश से यह प्रार्थना की गई है कि वे गोरक्षा के सम्बन्ध में अपने पूर्वजों का अनुकरण करें और उक्त पुराने नियम को ज्यों का त्यों बना रहने दें। यह तो ठीक है। परन्तु पत्र-प्रेषक महोदय को यह भी बताना चाहिए कि रीवाँ के महाराज अपने राज्य के किसानों की आर्थिक स्थिति कैसे सुधारें? किसान की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होगी तो वह राज्य को कर कहाँ से देगा? यदि पत्र-प्रेषक महोदय यह लिखते कि राज्य का कर चुकाने के लिए ही किसान अपनी गायें राज्य के बाहर बेचने पावें अन्यथा नहीं तो शायद उनकी सुनाई हो सकती थी।

× × × ×

सिलहट के डिस्ट्रिक जज ने कालीकुमार धर नामक एक ६४ वर्षीय वृद्ध को अपने दो छोटे बच्चों की हत्या के अपराध में कालेपानी की सजा दी है। वृद्ध ने अपना अपराध स्वीकार करते हुए कहा था कि घर में ग़रीबी के कारण कुछ न रह जाने के कारण बच्चे भूख से मरे जा रहे थे। घुल घुलकर मरने से, मैंने सोचा, उनका एक-दम मर जाना अच्छा है। यह तो स्पष्ट ही है कि वृद्ध ने क्रोध या घृणा के आवेश में नहीं, बल्कि प्रेम और दया के आवेश में आकर अपने बच्चों की जान ली है। शायद जज महोदय ने इसी लिए उसे फाँसी की सजा न देकर कालेपानी की सजा दी है और इस मामले को प्रान्तीय सरकार के पास भेजा है कि वह चाहे तो उस दयनीय वृद्ध को माफ़ करदे और छोड़ दे। वृद्ध तो दया के आवेश में आकर अपनी विवेक-शक्ति गवाँ ही बैठा था। जज साहब ने भी मामले को प्रान्तीय सरकार के पास भेजकर बहुत अच्छा नहीं किया है। क्योंकि ऐसे आदमी के लिए आजन्म क़ैद दंड नहीं, सबसे बड़ा दान है। उसे मरते समय तक पेट भर भोजन तो मिलेगा।

× × × ×

पञ्जाब और बङ्गाल में युवतियों को हवाई जहाज़ों पर उड़ने का अवसर देने के लिए क्लब क़ायम हो रहे हैं। कहा जाता है कि इससे स्त्रियों में साहस का संचार होगा। सहयोगी 'वर्तमान' ने संयुक्त-प्रान्त के धनी व्यक्तियों से अपील की है कि संयुक्त-प्रान्त में भी ऐसे क्लब खुलवाकर अपने धन का सदुपयोग क्यों न करें। आसमान में मुक्त उड़नेवाला पक्षी स्वाधीनता का सर्वश्रेष्ठ चिह्न माना गया है। भारत की स्त्रियाँ तब तक कैसे स्वाधीन मानी जा सकती हैं जब तक वे मुक्त पक्षी की भाँति गगनविहारिणी न बनें। इस दृष्टि से ऐसे क्लबों की सर्वत्र आवश्यकता है और वे जितनी ही अधिक संख्या में खुलें, उतना ही अच्छा।

जाग्रत नारियाँ



१—स्वप्न

प्रियतम का मुक्त द्वार था—न कोई प्रहरी न द्वारपाल। मैंने स्वच्छन्दता-पूर्वक उसमें प्रवेश किया। असंख्य तारों की शीतल चन्द्रिका में अगणित पथ दिखाई दिये—मैं चलते चलते थक गई। ढूँढ़ते ढूँढ़ते विकल हो गई, पर उस प्रासाद के स्वामी का पता न था!

रजत-रश्मियों की मुस्कान धूमिल हो गई। रजनी ने अपना विस्तृत प्रसार समेटा। और काले मेघों ने वक्र रूप धारण कर लिया। श्रान्त गात, आहत-सा गिर पड़ा—हताश हो मन ने शृङ्खलायें तोड़ दीं। अचेत शरीर में हृत्कम्पन का वेग बढ़ गया—जीवन का काल मन्द नाड़ी छू गया—किन्तु टिमटिमाते दीपक की अन्तिम लपटों की भाँति नयनों में ज्योति घूम गई। प्रतीक्षा के उस नन्हें पल में जीवन भर का सम्पूर्ण उत्साह छलक गया—अमिट आशा भर गई।

अदम्य उत्सुकता से द्वार की ओर देखा—वह मेरे पास था……!!!

सब आश्चर्य में थे—प्रफुल्ल हो हृदय-गति की परीक्षा की। वह निस्पन्द थी। नाड़ी की गति रुक गई—जीवन का अमर प्रसाद पा आत्मा मुक्त होगई।



[हमें यह लिखते हुए दुःख होता है कि सरस्वती की इस होनहार लेखिका श्रीमती रामेश्वरीदेवी गुप्त, एम० ए० का प्रसूति-ज्वर से असमय में ही स्वर्गवास हो गया। अपनी मृत्यु से कुछ दिन पूर्व आपने एक गद्य गीत लिखा था उसे हम यहाँ प्रकाशित करते हैं।]

× × × × ×

चाहता है। भक्ति-मार्ग भी उतना ही पुराना है, जितने प्राचीन वेद हैं। वेदों में कई स्थानों पर परमात्मा को पिता, माता तथा पुत्र के सदृश प्रिय कहा गया है। ऋग्वेद में परमात्मा और जीवात्मा की तुलना दो पक्षियों से की गई है, जो एक दूसरे के मित्र तथा सखा हैं। उपनिषदों में भी उपासना का वर्णन है। महाभारत के काल तक पहुँचते पहुँचते हम इस उपासना को भक्ति में परिणत होते देखते हैं। भगवान् कृष्ण ने योग-प्राप्ति के अनेक मार्गों का वर्णन कर अन्त में यही कहा—"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज"।

महाभारत के युद्ध के पूर्व तक धार्मिक क्षेत्र में ऋषियों ने जितना भी विचार किया था, 'गीता' उस सबके एकीकरण का फल और सार है। ईसा के चार-पाँच शताब्दी पूर्व जिस समय बौद्ध और जैन मतों का उदय हुआ, उस समय भी 'वासुदेव' की भक्ति के प्रचलित होने के ऐतिहासिक प्रमाण मिले हैं। स्वयं ये मत भी भक्ति-भावना से पूर्ण थे। भागवत-धर्म के अनुयायी के हृदय में जितनी श्रद्धा वासुदेव के लिए थी, उतनी ही श्रद्धा बौद्ध के हृदय में



महात्मा सूरदासजी

बुद्ध के लिए और जैनियों के अन्तःकरण में मह
स्वामी के लिए थी।

सम्राट् अशोक का आश्रय पाकर बौद्ध-मत कई श
ब्दियों के लिए भारत का प्रधान मत हो गया था, प
उस काल में भी गीता का भागवत-धर्म लुप्त नहीं हुआ
पतञ्जलि के :
राजाओं के स
वैष्णव-धर्म
चिनगारी
प्रज्वलित हो उ
कई गुप्त सम्र
के सिक्कों पर उ
नामों के :
परम भाग
विशेषण मिल
हैं। सम्राट् ह
र्धन बौद्धों
अन्तिम आ
था। उसकी म
के पश्चात् वैष्ण
मत ने और
ज़ोर पकड़
बौद्ध-धर्म कुमारि
भट्ट के प्रयत्नों
आठवीं शता
तक प्रायः निर्जी
सा हो गया।
जिस प्रक
बौद्ध-धर्म के उ
के पूर्व भारत
धर्म-सम्बन्धी चर्चा ने युगान्तर उपस्थित किया, उसी प्रक
बौद्ध-धर्म के पराभव के पश्चात् अनेक विचार
उत्पन्न हुए। बौद्ध-काल में वेद, उपनिषद्, पुराण आ
का पठन-पाठन कम हो गया था। अब उनका प्रच
द्विगुणित वेग से बढ़ा। इसी नये विचार-प्रवाह ने स्वा

शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, माधवाचार्य तथा वल्लभाचार्य को जन्म दिया। यद्यपि शंकराचार्य के पन्थ में भी भक्ति को स्थान है, तथापि उनके मायावाद के सिद्धान्त में हृदय की भावुकता की अपेक्षा बुद्धि की तीक्ष्णता का ही अधिक अधिकार है। गीता में ज्ञान-मार्ग के ऊपर भक्ति-मार्ग को प्रधानता दी गई है, परन्तु मायावादी शंकर ने अज्ञान के पर्दे को हटाने के लिए ज्ञान-मार्ग पर ही अधिक ज़ोर दिया। जहाँ मानव-हृदय-द्वारा अनुभूत दुःख और सुख की यथार्थता पर ही सन्देह था, वहाँ प्रेम को उच्च स्थान नहीं मिल सकता था। ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या-वाद से उपनिषदों के ब्रह्मवाद का प्रचार बढ़ा, परन्तु भगवद्-गीता के भक्ति-मार्ग को अधिक प्रोत्साहन न मिला। इस कमी की पूर्ति रामानुजाचार्य, माधवाचार्य तथा वल्लभाचार्य ने की।

आश्चर्य की बात तो यह है कि शंकराचार्य से लेकर वल्लभाचार्य तक जितने धर्माचार्य हुए, सभी दक्षिण में उत्पन्न हुए। यद्यपि ऐतिहासिक प्रमाणों से यह निश्चित हो चुका है कि बौद्ध-धर्म के बहुत पहले भागवत-धर्म का उदय उत्तर-भारत में हो चुका था, तथापि चारों आचार्यों के दक्षिण में उत्पन्न होने के कारण यह अनुमान करना स्वाभाविक है कि बौद्ध-धर्म के इस देश से लुप्त हो जाने के पश्चात् नवीन रूप में भक्ति-मार्ग का विकास दक्षिण में ही हुआ। सुप्रसिद्ध मदरासी पुरातत्त्ववेत्ता श्री कृष्णास्वामी आयङ्गर ने अपनी खोजों-द्वारा इस अनुमान को पुष्ट किया है। उनकी मातृ-भाषा तामिल में 'प्रबन्धम्' नामक एक काव्यग्रन्थ है, जो १२ तामिल-कवियों के काव्यों का संग्रह है। आयङ्गर महोदय ने इनका काल ईसा की पाँचवीं शताब्दी से आठवीं शताब्दी तक अर्थात् ईसवी सन् ४०० से ईसवी सन् ७०० तक माना है। इन कविताओं में कहीं भगवान् के विरह से व्याकुल भक्त-हृदय की वेदना है, कहीं दार्शनिक विचारों की गम्भीरता है और कहीं सूफ़ियों के से प्रेम गीत हैं। नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

(१) नारायण मेरा स्वामी एवं सखा है। वह मेरे वर्तमान तथा भावी जीवन का एक-मात्र आश्रय है। उसने अपने पवित्र करों से मेरे कर का स्पर्श किया है।

(२) ग्राम ग्राम यह चर्चा फैल चुकी है कि मैं कुल-कलंकिनी हूँ; माता, पिता तथा अन्य कुटुम्बी जनों की उपेक्षा कर अकेले ही उसके पथ पर चलती हूँ। क्या इस बदनामी के डर से उसे भूल जाऊँ? नहीं, यह नहीं हो सकता—देखो, देखो, वह मायापति आ रहा है, उसकी प्रतिमा मेरे नेत्रों के सामने झलकने लगी है!

(३) समुद्र-मन्थन से उद्भूत अमृत से जैसे कोई अपना घड़ा भरे, वैसे ही मेरी भूखी आत्मा ने तुझे पीकर अपने को परिपूर्ण कर लिया है।

(४) जैसे भीत पर चित्र चित्रित किया जाता है, वैसे ही मैंने तेरे वैभव को अपने हृदय पर चित्रित कर लिया है।

(५) न जाने मुझ अभागिनी की पुत्री को क्या हो गया है! जब वर्षा की झड़ी लगती है तब वह 'नारायण आ गये' कहती हुई नाचती है।

जब वह वंशी-ध्वनि सुनती है तब उसे कृष्ण की मुरली का रव समझ उसको रोमाञ्च हो आता है। जब वह ग्वालिनों को दधि ले जाते देखती है तब 'यह वही दही है जिसे कृष्ण ने खाया था' यह कह उठती है।

यह किशोरी तुझे देखने की अभिलाषा से घुली जा रही है, परन्तु तुझे दया नहीं आती। अग्नि के सम्मुख रक्खे हुए मोम की-सी उसकी दशा है। परन्तु तू हृदयहीन है।

(६) तेरे दर्शन की अभिलाषा से मैं रोता हूँ, प्रार्थना करता हूँ, गाते गाते थक जाता हूँ; चारों ओर प्रतीक्षा के नेत्रों से देखता हुआ मैं तुझे न पाकर लज्जित हो जाता हूँ।

(७) हे मायापति! हे सुन्दर नेत्रवाले! हे लाल पुष्प से हाथ, पैर तथा नेत्रवाले! हे स्वामी! तुम किसी दिन आओ जिससे मैं तुम्हें देख सकूँ!

(८) अगणित पापों का अन्त कर मैंने नवजीवन प्राप्त कर लिया है; मैंने तेरी सेवा स्वीकार कर ली है। क्या मैं तुझे कभी छोड़ सकता हूँ?

(९) वह मेरी दृष्टि से दूर नहीं होता; वह मेरे ज्ञान-चक्षुओं में समा गया है। सत रागों के उस माधुर्य ने आज मेरे हृदय में प्रवेश किया है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि इन सभी कवियों के काव्य संस्कृत में न होकर तामिल-भाषा में हैं। यदि यह कहा जाय कि इन पर श्रीमद्भागवत की छाया है तो इसे इतिहास स्वीकार न करेगा। विद्वानों का मत है कि भागवत ईसा की आठवीं शताब्दी के लगभग बना और ये कवि इसके पहले हुए हैं। इसमें कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है, क्योंकि तामिल भारत की सभी भाषाओं से प्राचीन है। जिस समय उत्तर-भारत में संस्कृत तथा प्राकृत-भाषाओं का अखण्ड राज्य था, उस समय भी द्रविड़ देश में तामिल बोली जाती थी। हिन्दी, बँगला, मराठी, गुजराती आदि आर्य-भाषाओं का तब जन्म भी नहीं हुआ था। अतएव यही अनुमान करना पड़ता है कि भागवत की छाया इन कवियों पर नहीं पड़ी, प्रत्युत इन तामिल-देशोत्पन्न कवियों के काव्य को ही परिष्कृत करके श्रीमद्भागवत की रचना हुई है।

यह अनुमान आश्चर्यजनक अवश्य प्रतीत होगा, परन्तु स्वयं श्रीमद्भागवत की एक आख्यायिका से ही इसकी पुष्टि होती है जो इस प्रकार है—

नारद जी ने मथुरा के पास एक स्त्री को रोते हुए देखा। उसके पास दो बच्चे मृतप्राय पड़े थे। उसने अपना नाम भक्ति और पुत्रों का ज्ञान और वैराग्य बताया। अपनी जन्म-कथा बतलाते हुए उसने कहा कि द्रविड़ देश में उसका जन्म हुआ था, महाराष्ट्र में उसका लालन-पालन हुआ और गुजरात में उसने युवावस्था प्राप्त की।

प्रसंग-वश यहाँ श्रीयुत कृष्णास्वामी आयङ्गर के एक और कथन का उल्लेख करना अनुचित न होगा। उन्होंने अपने एक ग्रन्थ में लिखा है कि हिन्दुओं के आराध्य देव कृष्ण तथा राम श्यामवर्ण तथा रक्तोत्पल नेत्रवाले कहे गये हैं, अतएव वे आर्य न होकर द्रविड़-वंश के होंगे। वे सगर्व लिखते हैं कि युवावस्था में तामिल देशवासी विशुद्ध द्रविड़ के नेत्र अरुण ('रतनारे') होते हैं। कलकत्ता-हाईकोर्ट के एक पुरातत्त्वज्ञ योरपीय न्यायाधीश पार्जिटर ने राम को तो आर्य किन्तु कृष्ण को द्रविड़-वंशोत्पन्न सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। ऊपर जिन बारह तामिल कवियों का उल्लेख किया गया है उन्होंने भी विष्णु को श्याम तथा पुण्डरीकाक्ष लिखा है। यदि हमारा यह अनुमान कि श्रीमद्भागवत का बहुत कुछ आधार इन कवियों का काव्य है तो कृष्ण तथा राम को द्रविड़-वंशोत्पन्न मानने के अतिरिक्त यह कहना ही ठीक होगा कि बौद्ध-धर्म के बाद जब उत्तर-भारत के प्राचीन वैष्णव-धर्म को इन तामिल कवियों ने नया रूप दिया तब अरुण नेत्रों की कल्पना उन्होंने अपने इष्टदेव विष्णु में स्वदेश-वासियों के श्याम वर्ण तथा अरुण नेत्रों की कल्पना कर ली। आज-कल भी भारत के विभिन्न प्रान्तों से कृष्ण तथा राम के जो चित्र प्रकाशित होते हैं उनकी वेष-भूषा में प्रान्तीयता की झलक अवश्य रहती है।

यदि यह सच है कि तामिल-भाषा के उपर्युक्त बारह कवियों-द्वारा वैष्णव-धर्म का विकास हुआ तो दक्षिण के आचार्यों का इनसे प्रभावित होना भी सिद्ध होना चाहिए। सौभाग्य-वश इतिहास भी इसका साक्षी है। आचार्यों का काल इन कवियों के बाद आता है। एक दूसरे द्रविड़ विद्वान् श्रीयुत गोविन्दाचार्य स्वामी ने 'द्रविड़ सन्तों का पवित्र ज्ञान' नामक अपनी अँगरेज़ी पुस्तक में यह सिद्ध कर दिखाया है कि विशुद्ध भक्ति-मार्ग के प्रथम प्रवर्तक रामानुजाचार्य पर इन तामिल-कवि सन्तों का पूर्ण प्रभाव पड़ा और उन्हीं के ज्ञान तथा भावों का वेद, उपनिषद्, गीता के आदि प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों से सामञ्जस्य कर इन आचार्य ने अपने मत की नींव डाली। सुप्रसिद्ध महाराष्ट्र पुरातत्त्ववेत्ता भण्डारकर का भी मत है कि रामानुजाचार्य ने तामिल-कवियों के काव्यों का केवल अध्ययन ही नहीं किया, प्रत्युत उनके भक्ति-सागर में जी भरकर गोते भी लगाये।

रामानुजाचार्य का जन्म संवत् १०७४ (१०१७ ईसवी) में हुआ था। वे यदि चाहते तो विशुद्ध भक्ति-मार्ग का प्रचार करते। परन्तु उनसे पहले शंकराचार्य मायावाद

का प्रचार कर गये थे, अतएव उन्हें उसके खण्डन के लिए उपनिषदों का आश्रय लेना पड़ा। इसी कारण उनका भक्ति-मार्ग उपनिषदों की उपासना के आगे न बढ़ सका। भगवान् का चिन्तन करने तक ही उनकी भक्ति परिमित रह गई। चिन्तन के लिए ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है और सभी मनुष्यों का ज्ञानी होना असंभव है। इसी लिए उन्होंने केवल द्विजों को भक्ति का अधिकार दिया। शूद्रों के लिए उन्होंने प्रपत्ति का उपदेश दिया, जिसका अर्थ ईश्वर पर सर्वथा आश्रित होकर अपना विस्मरण कर देना है। रामानुजाचार्य का भक्ति-मार्ग गीता से आगे न बढ़ पाया। उनके अनुयायियों की अधिक संख्या दक्षिण-भारत में ही है।

रामानुजाचार्य के कुछ ही समय पश्चात् आन्ध्र-देश में निम्बार्क उत्पन्न हुए। इन्होंने भक्ति और प्रपत्ति में भेद न कर रामानुजाचार्य की प्रपत्ति को ही भक्ति का रूप दे दिया। रामानुजाचार्य ने नारायण तथा लक्ष्मी को अधिक महत्त्व दिया था, परन्तु निम्बार्क ने कृष्ण तथा राधा को उपास्य माना। इनके अनुयायी व्रज तथा बंगाल में पर्याप्त संख्या में पाये जाते हैं।

रामानुजाचार्य के लगभग दो सौ वर्ष बाद संवत् १२०० के आस-पास माधवाचार्य का जन्म हुआ। इन्होंने वैराग्य तथा नवधा भक्ति का प्रचार किया। छोटों के साथ स्नेह, बराबरीवालों के साथ प्रेम तथा बड़ों के प्रति श्रद्धा को इन्होंने महत्त्व दिया। इन्होंने विष्णु को परमात्मा माना और उनके राम तथा कृष्ण अवतारों को उपास्य ठहराया।

दक्षिण के आचार्यों के भक्ति-मत को अधिक सार्वजनिक रूप देकर उत्तर-भारत में प्रचार करने का श्रेय स्वामी रामानंद को प्राप्त है। यद्यपि इनके सिद्धान्त रामानुजाचार्य से मिलते-जुलते थे, तथापि इन्होंने शूद्रों तथा अछूतों को भक्ति का पूर्ण अधिकार दिया। इनके द्वारा किया हुआ दूसरा सुधार यह था कि इन्होंने अपने मत के प्रचार के लिए संस्कृत का आश्रय छोड़कर प्रचलित 'भाषा' का व्यवहार किया। इन दोनों महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों के कारण उत्तर-भारत में भक्ति की लहर दौड़ गई। इन्होंने विष्णु के अवतार राम को उपास्य देव माना। कबीर पहले इन्हीं के शिष्य थे। आगे चलकर गोस्वामी तुलसीदास इन्हीं के शिष्य-सम्प्रदाय में हुए।

अब तक हमने जितने मत-संस्थापकों पर विचार किया है उनमें से एक भी ऐसा नहीं था जिसने वात्सल्य तथा शृंगार को अपने भक्ति-योग में स्थान दिया हो। इसकी पूर्ति बंगाल में महाप्रभु चैतन्य तथा व्रज, राजस्थान एवं गुजरात में महाप्रभु वल्लभाचार्य ने की। चैतन्य का जन्म संवत् १५४२ के लगभग (सन् १४८५ ई० में) हुआ। वल्लभाचार्य इनसे सात-आठ वर्ष पूर्व संवत् १५३५ (सन् १४७६ ई०) में उत्पन्न हुए। चैतन्य ने राधा और कृष्ण के अनन्य प्रेम में स्वयं तन्मय होकर सारे बंगाल को तन्मय कर दिया। वल्लभकुल-सम्प्रदाय के ग्रन्थों में लिखा है कि वल्लभाचार्य के बाल्यावस्था के गुरु तथा पश्चात् उनके शिष्य माधवेन्द्रपुरी ही चैतन्य के गुरु थे। जो कुछ हो, चैतन्य तथा वल्लभ के मतों में बहुत कुछ ऐक्य है। यदि कोई भेद है तो यही कि चैतन्य-सम्प्रदाय में प्रारम्भ से अन्त तक भावुकता का प्राधान्य रहा और वल्लभकुल-सम्प्रदाय में आगे चलकर पूजा-विधि को अधिक महत्त्व प्राप्त हो गया।

यद्यपि वल्लभाचार्य तैलंग ब्राह्मण थे, तथापि उनका जन्म मध्य-प्रदेश के चम्पारण्य स्थान में हुआ था। उनके पिता सपत्नीक काशी-यात्रा को निकले थे, परन्तु विश्वनाथपुरी में कुछ उपद्रव की संभावना देखकर स्वदेश की ओर लौट पड़े। मार्ग में वल्लभ का जन्म हुआ। तब तक उपद्रव शान्त हो जाने का समाचार पाकर वे नवजात शिशु को लेकर फिर काशी लौट आये। वहीं माधवेन्द्रपुरी से जो पहले माध्व-सम्प्रदाय के अनुयायी थे, उन्होंने विद्याध्ययन किया। छोटी अवस्था में ही उन्होंने सारे वेद-शास्त्र पढ़ लिये। पिता की मृत्यु के पश्चात् वे अपने मामा से मिलने के लिए दक्षिण गये। इस समय उत्तर-भारत में लोदी सुल्तानों का राज्य था, परन्तु दक्षिण में इतिहास-प्रसिद्ध विजयनगर-साम्राज्य समृद्धि की स्थिति में था। कृष्णदेवराय उस समय सिंहासनासीन थे। राजा की अध्यक्षता में वल्लभ ने अद्वैत-

मतवालों के साथ शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित किया। राज्य की ओर से उनका सम्मान हुआ। उनकी कीर्ति समस्त दक्षिण में फैल गई। स्थानीय वैष्णवों ने उन्हें अपना आचार्य स्वीकार कर लिया। उन्होंने दक्षिण में ही अपने शुद्धाद्वैत-पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों को निश्चित किया और अपने मत के प्रचारार्थ पृथ्वी-प्रदक्षिणा (भारत-भ्रमण) के लिए निकल पड़े। जिस समय वे झारखण्ड में थे, गोवर्धनधारी भगवान् कृष्ण ने उनसे स्वप्न में कहा कि मैं गिरिराज गोवर्द्धन पर प्रकट हुआ हूँ, आप आकर मेरी प्रतिष्ठा कीजिए। वल्लभाचार्य तत्काल व्रज में आये और श्रीनाथ जी की मूर्ति गिरिराज पर स्थापित की। उनके उपदेशों तथा श्रीनाथ जी के प्रादुर्भाव से आकर्षित होकर अनेक लोग उनके शिष्य हो गये। एक छोटा सा मन्दिर बनवाकर और पूजा का उत्तरदायित्व कुछ शिष्यों को सौंपकर वे फिर यात्रा के लिए निकले। इस प्रकार तीस वर्ष की आयु में उन्होंने तीन बार भारत-भ्रमण किया और सहस्रों लोगों में कृष्ण-भक्ति का प्रचार किया। दूसरी यात्रा के समय उन्होंने काशी में अपना विवाह किया। तीसरी यात्रा समाप्त हो चुकने पर वे प्रयाग के समीप अरैल नामक ग्राम में अपना घर बनाकर गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करने लगे। वहीं उनके दो पुत्र हुए। ढलती उम्र में उन्होंने संन्यास ग्रहण किया। संन्यासी होने के कुछ ही मास बाद काशी में उनका देहावसान हो गया।

वल्लभाचार्य अद्वैतवादी थे। उनका मत शुद्धाद्वैत के नाम से प्रसिद्ध है। उनके अनुसार यह अखिल जगत् ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है। ब्रह्म और जीव में कोई अन्तर नहीं है। सत्, चित् और आनन्दमय ब्रह्म से जगत् की उसी प्रकार उत्पत्ति हुई है, जिस प्रकार अग्नि से अग्नि-कण उत्पन्न होते हैं। जीवात्मा भी सत् तथा चित् से पूर्ण है, परन्तु आनन्द का भाग तिरोहित है। 'माया' नाम का कोई चौथा तत्त्व जीव में नहीं है। जीव भी ब्रह्म ही है; केवल आनन्द का तत्त्व अदृश्य हो गया है।

जीवात्मायें दो प्रकार की हैं। एक अमुक्त और दूसरी मुक्त। अमुक्त जीवात्मायें जन्म-मरण के बन्धन में बँधी हुई हैं। मुक्त आत्मायें इस बन्धन के परे हैं। मु
आत्माओं के भी तीन प्रकार हैं। पहली वे जो अप
ज्ञान के बल पर किसी पहले जन्म में ही मुक्त हो चु
हैं। दूसरी वे जो सच्चिदानन्दमय विष्णु के वैकुण्ठ
निवास करती हैं। तीसरी वे जिन्होंने भक्ति के द्वा
लीलामय तथा आनन्दमय श्रीकृष्ण के परम वैकुण्ठ
उनके साथ लीला करने के अधिकार को प्राप्त किया है

श्रीकृष्ण परम ब्रह्म और परम पुरुषोत्तम हैं। वि
तो उनका अंश-मात्र हैं। विष्णु का निवास साधार
वैकुण्ठ है और श्रीकृष्ण का विहार-स्थल परम वैकुण्ठ है
परम वैकुण्ठ को गोलोक भी कहते हैं। इस गोलोक
वृन्दावन है, यमुना प्रवाहित हो रही है, लता और कु
हैं। यमुना-तट पर लता-कुञ्ज से शोभित वृन्दावन
परमानन्दमय श्रीकृष्ण गोपी-ग्वाल-स्वरूप अपने भ
के साथ अनन्त क्रीड़ा में निमग्न रहते हैं।

सच्चे भक्त मुक्ति अथवा वैकुण्ठ को तुच्छ समझकर इ
परम वैकुण्ठ अथवा गोलोक में पहुँच आनन्दमय श्रीकृ
के समीप जाकर उनकी लीला में भाग लेने को ही अप
लक्ष्य बनाते हैं। भक्तों के हृदय में इस लक्ष्य की ओर
जानेवाली भक्ति उनके अपने प्रयत्नों से नहीं उत्पन्न होती
श्रीकृष्ण जिस पर पुष्टि अथवा अनुग्रह करते हैं वही इ
ओर झुक जाता है। इसी लिए इस मार्ग को पुष्टिमा
अर्थात् केवल अनुग्रह-द्वारा प्राप्त मार्ग कहते हैं। इ
प्रकार की भक्ति धीरे धीरे विकसित होकर चरम सीमा
पहुँचती है। भक्त के हृदय में पहले भगवान् के प्रति 'प्रे
उत्पन्न होता है। धीरे धीरे यह प्रेम 'आसक्ति' में परिण
हो जाता है। अन्त में जब भगवान् भक्त के लिए 'व्यस
हो जाता है तब यह गोलोक का अधिकारी होता है
व्यसनी भक्त स्वभावतः भगवान् की भक्ति करता है। उस
अनुराग उसके लिए अखिल विश्व को कृष्णमय कर दे
है। संसार में यह मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों के द्वारा जो कु
अनुभव करता है, सब उसे कृष्ण ही कृष्ण जान पड़ता है

गोलोकवासी कृष्ण ने संसारी प्राणियों को अप
लीला का आभास दिखाने के लिए ही व्रज में अवत
लिया था। व्रज का वृन्दावन, उसके लता-कुञ्ज, उस

प्रवाहित होनेवाली यमुना, उसमें उत्पन्न ग्वाल-गोपी—सभी गोलोक का प्रतिबिम्ब है। परम वैकुण्ठ का गोलोक व्रज का गोकुल है। गोकुल के कृष्ण-द्वारा की हुई मानवीय लीला के आधार पर गोलोक के आनन्दमय श्रीकृष्ण की आदि-लीला की झलक देखी जा सकती है। इसी लिए वल्लभमतानुयायियों के लिए व्रज-भूमि का कण कण प्राणों से अधिक प्यारा है।

वल्लभाचार्य के कृष्ण ही आनन्दमय नहीं हैं, उनके सारे विचार आनन्दमय हैं। वल्लभमतानुयायी भक्त भगवान् के सामने नाक नहीं रगड़ता, वह अपने पापों के लिए पश्चात्ताप के आँसू नहीं बहाता। श्रीकृष्ण की आनन्दमयी प्रतिमा के दर्शन करते ही वह आनन्द के संसार में प्रवेश पा जाता है। भगवान् के मृदुस्मित से आलोकित मुखारविन्द को देखकर वह रोना भूल जाता है। पाप उसे आप ही छोड़कर भाग जाते हैं। ज्यों ज्यों उसका कृष्ण-प्रेम कृष्णासक्ति में परिणत होता जाता है, त्यों त्यों वह कृष्ण की महत्ता तथा अपनी क्षुद्रता को भूलता जाता है। वह कृष्ण का सखा बन जाता है। कृष्णासक्ति के कृष्ण-व्यसन में परिवर्तित होते ही जिस प्रकार जीवात्मा परमात्मा बन जाता है, उसी प्रकार भक्त भी अपने को कृष्ण समझने लगता है। पुष्टिमार्ग से प्राप्त इस शुद्ध अद्वैतावस्था तक पहुँचानेवाले वल्लभ के मत को ही शुद्धाद्वैत-पुष्टिमार्ग कहते हैं।

वल्लभाचार्य के कृष्ण में परम पुरुषोत्तम होते हुए भी मानवता है। वे जितनी भी लीला करते हैं वह सब मानवीय हैं। मनुष्य का हृदय जितने हास्य, रुदन, सुख-दुःख का क्रीड़-स्थल है उस सबको कृष्ण ने अपनी लीलाओं में स्थान दिया है। परन्तु कृष्ण का रुदन तथा दुःख सच्चा नहीं है। वह तो हास्य तथा सुख की वृद्धि का साधन-मात्र है। उनके अश्रु-कणों में हास्य से भी अधिक आनन्द की छटा है। सारा व्यापार आनन्दमयी लीला-मात्र है।

वल्लभ-कुल-सम्प्रदाय की पूजा-विधि में भगवान् श्रीकृष्ण की इस मानवता को प्रारम्भ से अन्त तक महत्त्व दिया गया है। भगवान का पूरे चौबीस घण्टे का कार्यक्रम आनन्दप्रिय मनुष्य का-सा रहता है। उनकी प्रातःकाल सोकर उठने से रात्रि में शयन तक की दिन-चर्या में आठ दर्शन होते हैं, जो इस प्रकार हैं—(१) मंगला, (२) शृङ्गार, (३) ग्वाल, (४) राजभोग, (५) उत्थापन, (६) भोग, (७) सन्ध्या-आरती, (८) शयन।

यहाँ यह लिखना आवश्यक प्रतीत होता है कि यद्यपि वल्लभाचार्य ने श्रीकृष्ण-प्रिया राधा को अपने मत में स्थान दिया है, तथापि उनके इष्टदेव बालक कृष्ण ही थे। श्रीनाथ जी के सिवा बालकृष्ण, गोपालकृष्ण, नवनीतप्रिय आदि नामों का ही उनके समय में अधिक प्रचार था। गोकुल में जो वल्लभ-कुल-सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र है, नवनीतप्रिय (माखनचोर) भगवान् का ही मन्दिर भक्तिभावना का केन्द्र है। वल्लभाचार्य की मृत्यु के पश्चात् इस सम्प्रदाय में राधा का महत्त्व बढ़ा। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि इसका कारण बंगाल के चैतन्य-मत का प्रभाव था। महाप्रभु वल्लभाचार्य के समय में ही श्रीनाथ जी के मन्दिर में बंगाली वैष्णव पूजा के लिए नियुक्त किये गये थे। यद्यपि उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ के समय बंगाली हटा दिये गये थे, तथापि चैतन्य के राधाकृष्ण-प्रेम का प्रभाव कम न हुआ। स्वयं गोस्वामी जी ने जब जगन्नाथ जी की यात्रा की तब वे चैतन्यमतावलम्बियों-द्वारा विशेष रूप से प्रभावित हुए। अनुमान किया जाता है कि राधा की प्रशंसा में उन्होंने 'स्वमिन्यष्टक' तथा 'स्वामिनीस्तोत्र' नाम के जो दो स्तोत्र लिखे वे जगन्नाथपुरी से लौटने पर ही लिखे गये होंगे। 'कृष्णप्रेमामृत' तथा 'शृङ्गाररस-मण्डन' पर उनकी जो टीकायें हैं उन पर भी चैतन्य-मत का असर दिखता है। सच बात तो यह है कि यह युग ही ऐसा था जब राधावाद की लहर समस्त उत्तर-भारत में बह रही थी। कुछ लोगों ने तो राधा को कृष्ण से भी अधिक महत्त्व देकर अपना पंथ ही अलग चलाया। इस पंथ के पुरुषों का भी सखी-भाव यहाँ तक बढ़ा कि स्त्रियों के वेष-भूषा आदि का अनुकरण करना अपना धर्म बना लिया। यद्यपि वल्लभ-कुल-सम्प्रदाय में इस प्रकार का अनाचार नहीं बढ़ा, तथापि राधाकृष्ण के प्रेम की कथाओं का अनधिकारियों पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। धनी-मानी स्त्री-पुरुषों के विपुल संख्या में शिष्य होने पर और कुछ कुल-गुरुओं की अशिक्षा के कारण एक-दो शताब्दी बाद इस सम्प्रदाय में भी आचार की शिथिलता दिखलाई पड़ी।

वल्लभाचार्य की मृत्यु के लगभग सौ वर्ष के पश्चात् ही इस नैतिक शैथिल्य की ओर कुछ लोगों का ध्यान गया। संस्कृत के एक तत्कालीन नाटक में जिसका नाम 'पाखण्ड-धर्मखण्डन' है, वल्लभ-कुल-सम्प्रदाय की कड़ी आलोचना हुई। प्रारम्भ में ही सूत्रधार नटी से कहता है—"प्रिये! वेद न जाने कहाँ भाग गये? उनके रक्षण की कथा से भी कोई परिचित नहीं है। योग एवं सांख्य, पुराण और स्मृतियाँ लुप्त हो गई हैं। श्रीमान् वल्लभ विट्ठलेश्वर ने वेदों के अर्थ का सत्यानाश कर दिया है। उनके उपदेशों के कारण अब नव युवतियाँ 'आत्म-निवेदन' की प्रतिज्ञा किया करती हैं।"

यद्यपि नैतिक शैथिल्य की जितनी तीव्र निंदा की जाय उतनी ही थोड़ी है, तथापि इस आलोचना को एकाङ्गी ही मानना पड़ेगा। वल्लभाचार्य के समय तक संस्कृत जनता की भाषा नहीं रही थी। उसमें लिखे हुए वेदों तक इने-गिने लोगों की ही पहुँच थी। मुसलमान-धर्म राजाश्रय प्राप्त कर अपने अनुयायियों की संख्या बढ़ा रहा था। शूद्र तथा अछूत हिन्दू-धर्म से विमुख हो रहे थे। ऐसे समय में उत्पन्न होकर महाप्रभु वल्लभाचार्य ने जनता की भाषा में हिन्दू-जाति की सभी उपजातियों को समता, आशा और आनन्द का सन्देश सुनाया। हिन्दू-धर्म में नवजीवन का संचार हुआ और लोगों की धार्मिक पिपासा शान्त हुई। इस दशा में वल्लभमत को पाखण्ड-धर्म कहना द्वेष की पराकाष्ठा है।

सम्प्रदाय के प्रारम्भिक इतिहास में नैतिक शैथिल्य का केवल अभाव ही नहीं है, प्रत्युत उसके प्रभाव से उच्च कोटि के सन्तों का जन्म हुआ। चौरासी वैष्णवों की वार्ता को पढ़ते पढ़ते ऐसा जान पड़ता है, मानो हम किसी स्वतन्त्र, स्वस्थ, सुखी तथा सुन्दर वायुमण्डल में विचरण कर रहे हैं।

वल्लभाचार्य-द्वारा चलाये हुए वैष्णव-धर्म ने तत्कालीन हिन्दू-समाज को केवल स्वतन्त्र और निर्लोभी ही नहीं बनाया, उसने मानव-सभ्यता की भी वृद्धि की। मुसलमानों-द्वारा पराजित होने पर हिन्दू-जाति की संस्कृति दिन प्रतिदिन नीचे गिर रही थी। मानव-जीवन सरसता तथा सौन्दर्य से विहीन हो गया था। वैष्णव-मत का आगमन होते ही भारत का सूखा उपवन एकदम हरा-भरा हो गया। निर्जीव हिन्दू साहित्य, संगीत तथा कला में प्राण फूँक दिया गया। वल्लभाचार्य के पश्चात् कई शताब्दियों तक यह प्रभाव बना रहा।

वल्लभकुल के मन्दिरों में भगवान् कृष्ण की सेवा करने के लिए सारा कला-कौशल खर्च कर डाला गया। सूरदास तथा उनके समकालीन कवियों का काव्य-रस जिसने कई शताब्दियों तक साहित्य के विकास को अनुप्राणित किया, 'कृष्णार्पण' के लिए ही तैयार किया गया था। भगवान् को गीतों-द्वारा रिझाने के लिए गायकों की आवश्यकता हुई और संगीत-शास्त्र का पुनरुत्थान हुआ। वल्लभाचार्य के पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ स्वयं कुशल गायक थे। गोविन्द स्वामी श्रीनाथजी तथा नवनीतप्रिय के सामने कीर्तन करते करते गायनाचार्य हो गये और तानसेन से भी बाज़ी मार ले गये। भगवान् के भोग के कारण पाक-शास्त्र में उन्नति हुई। भगवान् वस्त्र तथा आभूषण पहनते थे, अतएव सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण बनने लगे। भगवान का आवास ग्रीष्म में शीतल तथा शिशिर में उष्ण रहना चाहिए, अतएव अनेक आराम की वस्तुओं की वृद्धि हुई। वर्ष भर में जो अनेक उत्सव होते थे उनको उनमें सर्वत्र कला-कौशल-क्रीड़ा सा करते हुए देख पड़ते थे। आज भी वल्लभकुल के मन्दिरों से इनका सर्वथा लोप नहीं हुआ है।

इस सम्प्रदाय ने साहित्य तथा संगीत से भी अधिक चित्रकला की उन्नति की। जिस प्रकार इटली में कैथलिक भावनाओं को मूर्तिमन्त करने के लिए मध्ययुग में वहाँ की चित्रकला का जन्म हुआ, उसी प्रकार वैष्णव-हृदय की आशा एवं आकांक्षा ने 'राजपूत-चित्रकला' को उत्पन्न किया। विद्वानों ने इसके दो भेद कर 'राजस्थानी' तथा 'पहाड़ी' (काँगड़ा कला नाम रख दिये हैं। भगवान् कृष्ण

के जन्म से लेकर उनके स्वर्गारोहण तक की सभी लीलाओं को व्यक्त करने के प्रयत्न में ही 'राजपूतचित्रकला' का आविर्भाव हुआ था। कुछ ही वर्ष हुए डाक्टर आनन्द-कुमार स्वामी ने इस कला की विशद आलोचना तथा नमूने अपने एक ग्रन्थ-रत्न में प्रकाशित कर सरस संसार को मुग्ध कर दिया था। सूरदास के पदों में निरानन्द की जो धारा प्रवाहित हो रही है उसी से ये चित्र भी ओत-प्रोत हैं। वसन्त-ऋतु के पुष्पों से ये चित्र सुवासित हैं; निदाघ के लता-कुञ्जों की शीतलता से ये शीतल हैं। पावस की बूँदों से ये सिञ्चित हैं; शरद्-शशि की ज्योत्स्ना से ये आलोकित हैं; हेमन्त की वायु से ये शीतल हैं; शिशिर के प्रगाढ़ प्रेम से पुलकित हैं। सारा संसार नवल उद्यान हो गया है और उसमें नवल गोपाल और नवेली राधा की प्रेम-लीला हो रही है। कृष्ण का स्वर्गिक सौन्दर्य वन, उपवन, पुष्प, पवन, आकाश, पृथ्वी, पुरुष और स्त्री सभी को सौन्दर्यशाली बना रहा है। वस्तुएँ सब वही हैं जिन्हें हम नित्यप्रति देखते रहे हैं, परन्तु उनमें अलौकिक माधुर्य एवं लावण्य का आलोक पड़ रहा है। साधारण मिट्टी की ढेरी दिव्य मणियों की ढेरी में परिणत हो गई है। डाक्टर आनन्दकुमार स्वामी का कहना है—"इन चित्रों से जो पाठ हम पढ़ते हैं वह यही है कि यदि हम सौन्दर्य को अपने घर में, अपनी चिरपरिचित वस्तुओं में नहीं पा सकते तो फिर वह हमें कहीं नहीं मिल सकता। इन चित्रों का पुण्यमय संसार हमारे प्रतिदिन के अनुभव का संसार है। यदि इनमें हमें सौन्दर्य नहीं दिखता तो हम उसे दूर की अपरिचित वस्तुओं में कैसे देख सकते हैं?"

डाक्टर आनन्दकुमार का उपर्युक्त कथन केवल तत्कालीन चित्रकला पर ही नहीं, प्रत्युत काव्य पर भी सोलहो आने घटित होता है। महाकवि सूरदास ने अपने शब्द-चित्रों (पदों)-द्वारा हमारे चिरपरिचित प्रतिदिन के संसार में ही हमें अब तक अदृश्य सौन्दर्य के दर्शन कराये हैं। अनेक दम्पतियों को पुत्र-रत्न प्राप्त होता है, वह उनके प्राङ्गण में गिरता-पड़ता, हँसता-खेलता, तुतलाता-बतराता हुआ बढ़ता है। उसकी प्रत्येक चेष्टा माता-पिता में वात्सल्य-रस का प्रादुर्भाव कर सकती है। परन्तु उनकी आँखें इस सौन्दर्य को देख नहीं सकतीं। सूरदास ने बाल-कृष्ण की बाल-लीला में वात्सल्य की सरिता बहाकर हमारे नेत्रों को स्वच्छ कर दिया है। कृष्ण की सभी लीलाओं का वर्णन कर महाकवि ने सौन्दर्य के इसी हमारी आँखों के सामने छिपे हुए खज़ाने को प्रकट कर दिया है और हमें सिखा दिया है कि यदि हमें अपने में सुख नहीं प्राप्त हो सकता तो वह हमें लोक-परलोक में अन्यत्र कहीं भी नहीं प्राप्त होगा। सद्गुरु वल्लभाचार्य से दिव्य दृष्टि प्राप्त कर सूरदास जी के हृदय में सुख में अनिर्वचनीय आनन्द का सागर उमड़ पड़ा—

अपुनपौ आपुनही में पायो।
सब्दहिं सब्द भयो उजियारो, सतगुरु भेद बतायो॥
ज्यों कुरङ्ग नाभी कस्तूरी, ढूँढ़त फिरत भुलायो।
फिरि चेत्यो तब चेतन ह्वै करि, आपुन ही तनु छायो॥
राजकुमार कंठ मनि भूषन, भ्रम भो कहूँ गँवायो।
दियो बताइ और सतजन तब, मन को पाप नसायो॥
सपने माँहि नारि को भ्रम भो, बालक कहूँ हिरायो।
जागि लख्यो ज्यों के त्योंही है, ना कहुँ गयो न आयो॥
सूरदास समुझे की यह गति, मन ही मन मुसुकायो।
कहि न जाइ या सुख की महिमा, ज्यों गूँगो गुर खायो॥



बुद्ध-वैराग्य

[चित्रकार—श्रीयुत रामगोपाल विजयवर्गीय

योरप—जैसा कि मैंने उसे देखा

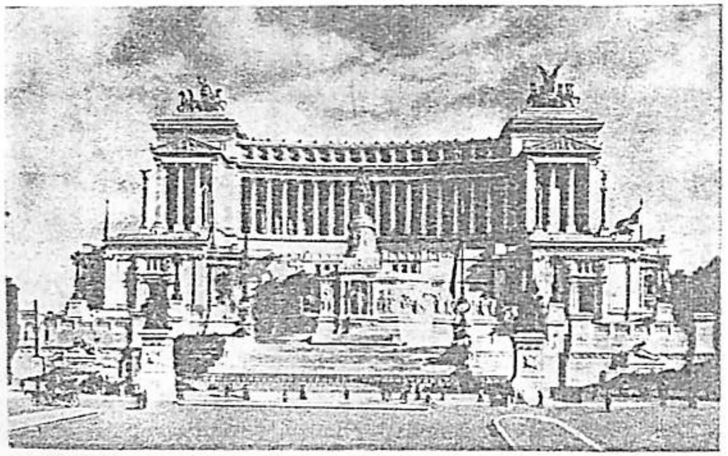


४—सौन्दर्यशाली रोम

लेखक, श्रीयुत हरिकेशव घोष

(श्रीयुत हरिकेशव घोष रोम में चार दिन ठहरे थे। यह समय आपने वहाँ की हज़ारों वर्ष पूर्व की इमारतों के ध्वंसावशेष और प्रसिद्ध संग्रहालयों के देखने में बिताया। वहाँ आपके पूर्व-परिचित कतिपय भारतीय मित्र भी मिले, कतिपय इटालियनों से आपकी बातें हुईं, आपने वर्तमान फैसिस्ट शासन का प्रभाव भी देखा और पूर्व और पश्चिम में क्या भेद है, इसका अनुभव किया। इस लेख में इन्हीं सब बातों पर आपने बड़े सुन्दर ढङ्ग से प्रकाश डाला है।)

कोई भी भारतीय यात्री जहाज पर से उतर कर जब योरप के समुद्रतट पर पैर रखता है तब वह जिस ओर भी दृष्टि डालता है, उसे विचित्रता ही विचित्रता दिखाई पड़ती है। वहाँ के मनुष्य, उनका रहन-सहन, पशु-पक्षी तथा प्राकृतिक दृश्य आदि वस्तुएँ भारतवर्ष से सर्वथा भिन्न हैं, अतएव अकस्मात् इस परिवर्तित जगत् में आकर वह चकित हो जाता है और कुछ दिनों तक जब तक कि वह वहाँ की हर एक वस्तु से अभ्यस्त नहीं हो जाता, हत-बुद्धि-सा बना रहता है। अपनी मातृभूमि के जिस वातावरण में उसका पालन-पोषण हुआ है तथा जिस संस्कृति से वह सदा से प्रभावित होता आया है, योरप का वातावरण तथा वहाँ की संस्कृति उससे सर्वथा भिन्न है, अतएव वहाँ पहुँच-कर भारतवासी जहाँ कहीं भी जाते हैं या जो कुछ भी करते हैं, उन्हें एक प्रकार की उद्विग्नता का सा अनुभव होता है। योरप की सामाजिक तथा आर्थिक अवस्था में भारतवर्ष की सामाजिक तथा आर्थिक अवस्था में आकाश-पाताल का अन्तर है। हमारा भारतवर्ष भूमण्डल के मध्य उष्ण कटिबन्ध पर स्थित एक कृषि-प्रधान देश है। यहाँ की संस्कृति और प्रकृति मानव-जाति में एक ऐसी मनो-वृत्ति उत्पन्न करती है जो योरप के निवासियों को



[विक्टर इमैनुअल द्वितीय का स्मारक]

मनोवृत्ति के सर्वथा प्रतिकूल है और उसके कारण भारतवासियों में एक विशेष प्रकार के जीवन के दृष्टिकोण का निर्माण होता है। हमारे देश में परम्परा से यह शिक्षा चली आ रही है कि समस्त भौतिक विभूतियाँ निःसार एवं निरर्थक हैं, अतएव सरल जीवन व्यतीत करके धर्मचिन्तन में समय व्यतीत करना ही मनुष्य का प्रधान कर्तव्य है। इस शिक्षा के कारण मनुष्य के हृदय में एक भिन्न प्रकार की ही प्रवृत्ति उत्पन्न होती है और यही एक ऐसी बात है जिसके कारण पूर्व और पश्चिम कभी मिल नहीं सकते। इस विचार-धारा और प्रवृत्ति के ही कारण जब कभी हमारे देशवासी पाश्चात्य सभ्यता तथा रीति-नीति का कुछ अंश अस्वाभाविक भाव से ग्रहण कर लेते हैं तब उनमें सामञ्जस्य नहीं आता, उनके उस पूर्व और पश्चिम के सम्मिश्रण में तेल और जल का सा पार्थक्य स्पष्ट रूप से विद्यमान रहता है। वास्तव में हमारे देशवासियों के लिए यह बहुत ही कठिन बात है कि वे पाश्चात्य संस्कारों को ग्रहण करके अपने जीवन में इस प्रकार मिला लें कि उनमें ज़रा भी कृत्रिमता न मालूम पड़े। हमारे नागरिक जीवन में धीरे धीरे पाश्चात्य रीति-नीति की बहुत-सी बातें सम्मिलित होगई हैं, तथापि ग्राम्य जीवन में यह बात नहीं है। देहातों का जीवन नागरिक जीवन से बहुत ही भिन्न प्रकार का है। आज भी देहातों में हमारी कुछ प्राचीन प्रथायें बहुत ही अधिक मात्रा में अपनी प्रभुता स्थापित किये हुए हैं। ग्रामीण और नागरिक जीवन में इस प्रकार की भिन्नता का कारण है वहाँ की आर्थिक भिन्नता।

एशिया की तुलना में योरप एक नया महादेश है। यहाँ की सभ्यता के विकास का आरम्भ उस समय हुआ है जब एशिया की सभ्यता की काफ़ी उन्नति हो चुकी थी। ईसवी सन् जब आरम्भ हुआ था तब से योरप के भिन्न-भिन्न देशों के आन्तरिक सम्बन्धों में अधिक घनिष्ठता आ गई है। इससे हमें ज्ञात होता है कि वर्तमान युग में योरप की संस्कृति के मूल-स्रोत में इस प्रकार की विभिन्नता नहीं है, जैसी एशिया के देशों की संस्कृति में है। धर्म ने ही इस प्रकार की एकता स्थापित की है। इसमें सन्देह नहीं कि ईसाई योरप में भी साम्प्रदायिक विभिन्नता है और भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों—रोमन कैथलिक तथा प्रोटेस्टेंट आदि—के धार्मिक सिद्धान्तों में भी कुछ अन्तर है, किन्तु इस अन्तर के कारण उनकी मूल-संस्कृति से इतनी अधिक विभिन्नता नहीं है, जितनी एशिया में है।

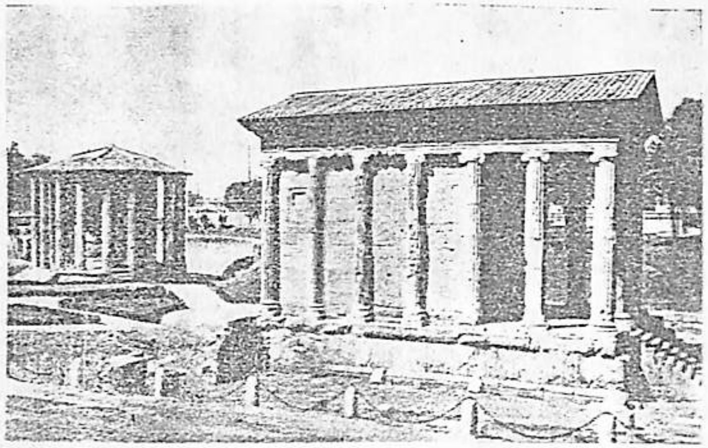
एशिया में तीन ऐसे धर्म हैं जो प्रधान रूप से व्यापक हैं। वे हैं हिन्दू, मुसलमान और बौद्ध, जिनके सिद्धान्त मुख्य संस्कृति का निर्माण करने में एशिया के निवासियों को विशेष रूप से प्रभावित कर सके हैं। परन्तु आज-कल चीन और जापान के निवासी बौद्ध-धर्म के मूलसिद्धान्तों का अटल श्रद्धा के साथ अनुसरण नहीं कर रहे हैं। वे लोग इस समय अपनी शक्तिभर अधिक से अधिक मात्रा में पाश्चात्य सभ्यता का अनुसरण करने का प्रयत्न कर रहे हैं। पाश्चात्य सभ्यता के अपनाने में जापानवालों को जो सफलता मिल रही है उसका कारण उनकी औद्योगिक उन्नति है, क्योंकि इस औद्योगिक उन्नति के लिए जापान को योरप के अधिक सम्पर्क में आना पड़ा है। परन्तु भारत की परिस्थितियों में तो बहुत ही विभिन्नता है। हमारे लिए यह सहन करना सम्भव नहीं है कि अपनी परम्परागत प्रथायें और आचार-व्यवहार छोड़ दें। भौतिक विभूतियों के लिए हम योरप की संस्कृति भी नहीं ग्रहण कर सकते। इस प्रकार भारत के लिए इस समस्या का कोई समाधान ही नहीं है।



[सेंट पीटर्स का गिर्जा और चौक]

रोम सचमुच नागरिकों की राजधानी है। यह नगरी हमें बहुत ही पसंद आई। संयोगवश जिस होटल में हम ठहरे उसी में हमारे देश के और भी बहुत-से लोग थे और उनमें से कतिपय ऐसे व्यक्ति भी थे, जो हमारे परिचित थे। इन लोगों से अकस्मात् मिलकर हमें बड़ा सुख मिला। मेरे मित्र एस— से आज दस वर्ष के बाद मेरी मुलाक़ात हुई। विद्यार्थी-जीवन में वे मेरे बड़े ही घनिष्ठ मित्र थे। इनकी जीवन-यात्रा का मार्ग बहुत ही घटनामय है और उसी सिलसिले में इन्होंने एक इटालियन कन्या का पाणिग्रहण कर लिया है। परन्तु खेद है कि पाँच वर्ष तक बहुत ही सुखमय दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने के बाद इन्हें उससे सदा के लिए वञ्चित हो जाना पड़ा। इन महोदय से मिलकर मैं सचमुच बहुत ही सुखी हुआ। इनसे मुलाक़ात होने पर यौवन के उन्मेष-काल की बहुत-सी मधुर स्मृतियाँ जागृत हो आईं और इनके साथ जितना भी समय व्यतीत हुआ वह बड़े ही आनन्द से कटा। किसी समय इन्हें बड़ा अच्छा काम मिल गया था। उस समय ये बहुत ही सुखी थे। परन्तु आज-कल ये वहाँ के टूअरिस्ट आफ़िस में गाइड का काम करते हैं और उससे इन्हें इतनी ही आय होती है कि ये किसी प्रकार अपना निर्वाह कर लेते हैं।

रोम में आने पर रात्रि व्यतीत करके चारपाई पर से उठते ही हमारे दल ने वहाँ के स्थानीय टूअरिस्ट आफ़िस से अपने भ्रमण का कार्यक्रम स्थिर



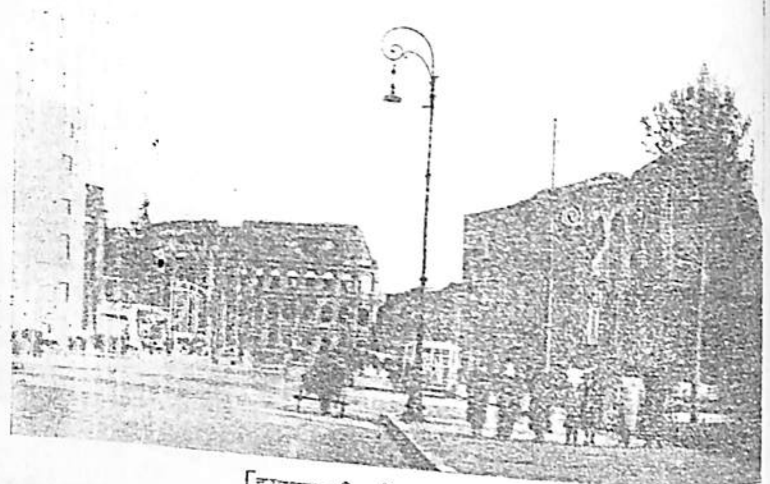
[विस्टा का मंदिर]

हैं। रोम के टूरिस्ट आफ़िसों में तीन सौ से भी अधिक गाइड हैं, जो समय समय पर काम किया करते हैं। उनमें से कुछ तो इतने सुविज्ञ हैं कि वे वहाँ के ध्वंसावशेषों तथा स्मृति-चिह्नों का पूर्ण ऐतिहासिक विवरण अधिकार-पूर्वक जानते हैं और विषय को आसानी के साथ दूसरों को हृदयङ्गम कराने के लिए आवश्यक नक़्शे तथा चित्र आदि प्रमाण की सामग्रियाँ भी अपने साथ रखते हैं।

करने में सहायता माँगी। हम लोगों ने निश्चय कर लिया था कि यहाँ का भ्रमण हम चार दिन में समाप्त कर देंगे। अन्त में हमारा कार्यक्रम स्थिर होगया और हम लोग एक ऐसे 'गाइड' के साथ जो अँगरेज़ी ख़ूब अच्छी तरह बोल सकता था, सवेरे दस बजे एक साथ निकल पड़े। उत्तम श्रेणी के गाइड को बहुत-सी भाषायें सीखनी पड़ती हैं और उसके लिए यह आवश्यक है कि वह भिन्न-भिन्न देश के निवासियों का कौतूहल निवृत्त कर सके। नेपिल्स का गाइड चार मुख्य भाषायें बोलता था और वह सर्वसाधारण के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ। योरप के हर एक नगर में स्त्री और पुरुष, दोनों ही प्रकार के गाइड उपलब्ध होते हैं। कभी कभी तो, यदि किसी विशेष प्रकार के यात्री ने इच्छा प्रकट की तो, उसके कला, पुरातत्त्व तथा इतिहास-सम्बन्धी कौतूहलों की निवृत्ति के लिए विश्वविद्यालयों के अवसरप्राप्त अध्यापक तक गाइड के रूप में बुलाये जाते हैं। ये लोग यात्री को हर एक बात पूर्ण विवरण के साथ बतलाया करते

रोम के नामकरण के सम्बन्ध में एक परम्परागत किंवदन्ती है। उस किंवदन्ती से यह ज्ञात होता है कि इसके पास से होकर जो रूमा नामक महानदी बहती थी, किन्तु आज-कल जो एक क्षुद्र नदी के रूप में परिणत हो गई है, उसी के नाम पर इसका नामकरण हुआ है। पैलेटाइन नामक सुप्रसिद्ध नगर को जीत कर इट्रस्कन ने इसका यह नामकरण किया था। इस नगरी में अतीत युग के गौरव के कितने ही मनोमुग्धकारी ध्वंसावशेष वर्तमान हैं, जिनके कारण दर्शक यहाँ के गत विभव का अनुमान अनायास ही कर लेता है, और उसे अत्यधिक श्रद्धा के कारण घुटने टेक देने पड़ते हैं। योरप के ध्वंसावशेषों की खोज के सम्बन्ध में अभी हाल में जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है उसमें इस बात के यथेष्ट प्रमाण विद्यमान हैं कि इस नगर के पहले के निवासी ईसा से लगभग चौदह शताब्दी पूर्व विद्यमान थे।

पहले दिन के भ्रमण में हमने जो जो वस्तुएँ देखीं उनमें रोम के मुख्य मुख्य गिरजाघर भी हैं। उन समस्त गिरजाघरों में से दो विशेष महत्त्व के हैं। उनमें से एक है सेंट पीटर्स का और दूसरा सेंट जान का। हम लोग रोम की मुख्य मुख्य सड़कों से होकर अपने गाइड के साथ कार से गये। रास्ते में वर्तमान रोम के जितने भी सार्वजनिक संस्थाओं तथा सरकारी कार्यालयों के भवन मिले, गाइड उन सबके सम्बन्ध में हम लोगों को बराबर बतलाता रहा। हम लोगों ने विक्टर एमैनुअल द्वितीय के सुप्रसिद्ध स्मारक को घूमकर देखा। यह स्मारक स्थापत्यकला का एक अद्भुत नमूना है और यह पन्द्रह-सोलह वर्ष में बनकर तैयार हुआ है। यह स्मारक एक बहुत ऊँची भूमि पर बनाया गया है। इसके सामने जो बरामदा है, उसके ऊँचे ऊँचे खम्भे एक बहुत ही मनोमुग्धकारी दृश्य उपस्थित करते हैं। सामने के चबूतरे के बीच में विक्टर एमैनुअल द्वितीय की एक चमकीली और आकर्षक काँसे की स्वर्णरंजित मूर्ति बनी है। स्तम्भ के चारों ओर मुख्य मुख्य घटनायें लिखी हैं। इस भवन में रोम का सर्वश्रेष्ठ म्यूज़ियम है, जिसमें बहुत-से महत्त्वपूर्ण चित्र तथा मूर्तियाँ सुसज्जित रक्खी हुई हैं। यह स्मारक अढ़ाई सौ फ़ुट ऊँचा है और इसकी परिक्रमा करती हुई एक बहुत चौड़ी सड़क चली गई है। यह वही भव्य भवन है, जिसके छज्जे पर खड़े होकर मुसोलिनी ने गत अक्टूबर में फ़ासिस्ट इटली को



[इम्पायर स्ट्रीट और कोलिसियम]

यह घोषणा सुनाई थी कि अबीसीनिया में इटली की क्या नीति होगी।

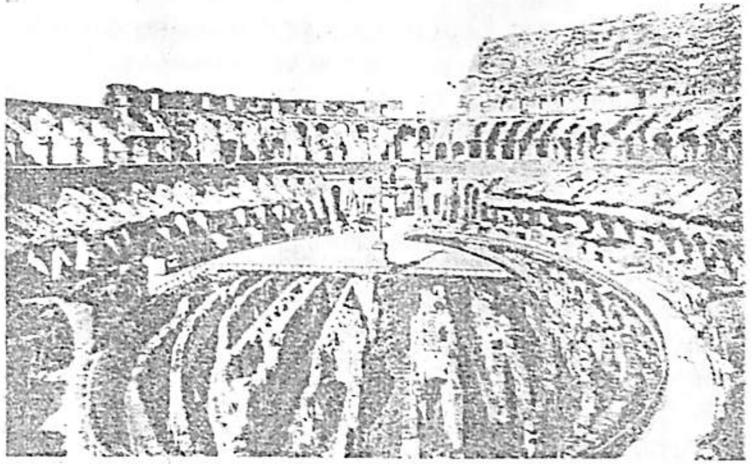
एक चौड़ी नई बनी हुई सड़क इस स्मारक से कोलिसियम के ध्वंसावशेषों तक जाती है। यह कोलिसियम प्राचीन रोमन-काल का एक बृहत्काय प्रासाद है। गत बीस वर्षों से सरकार इस महान् प्रासाद के हर्म्यमुख को यथासम्भव पूर्णरूप देने में संलग्न थी। रोमन-गृह-निर्माण-कला का यह नमूना जो अब खंडहर-मात्र रह गया है, २,००० वर्ष से अधिक प्राचीन है। प्रसिद्ध रोमन शिल्पी 'वेस-पासियन' ने इसकी रचना की थी। यहाँ वन-पशुओं के भयानक खेल होते थे, रथों की दौड़ होती थी और योद्धा लोग अपनी सम्पूर्ण उग्रता-व्यञ्जक शक्ति का प्रदर्शन करते हुए लड़ते थे। राज्य के शत्रु यहाँ मृत्यु-पर्यन्त लड़ने के लिए वन-पशुओं के आगे डाल दिये जाते थे। रङ्गाङ्गण चार मंजिलों का बना था: प्रथम डोम, द्वितीय आयोनिक, तृतीय और चतुर्थ कारिन्थियन। तोरणों में प्रसिद्ध राजाओं और पौराणिक देवी-



[रोमन फ़ोरम]

देवताओं की मूर्तियाँ लगी थीं। नष्ट होने से जो थोड़ी मूर्तियाँ बची हैं वे संग्रहालयों में हटा दी गई हैं। प्रासाद का घेरा १६०० फ़ुट से कुछ अधिक है और ऊँचाई लगभग २०० फ़ुट है। कुछ सुरंगें भी हैं। इन्हीं में से वन-पशु खुले स्थान में ले जाये जाते थे। कहा जाता है कि इसके उद्घाटनोत्सव में जो १०० दिन तक मनाया गया था, ५००० से अधिक भयावने वन-पशु मारे गये थे। बाद के वर्षों में असि-क्रीड़ा उठा दी गई थी। कहानियों से ज्ञात होता है कि एक बार एक एशियाई साधु जो ईसाई था, यहाँ के वीभत्स खेल से त्रस्त होकर जिस स्थान पर योद्धा एक दूसरे का प्राण लेने में संलग्न थे वहाँ दौड़कर जा पहुँचा और उसने अपने आपको उनके बीच में डाल दिया ताकि वे पृथक् हो जायँ। साधु के इस कार्य्य से दर्शकों के आनन्द में इतना विघ्न पड़ा कि उन्होंने उसको क्रोधावेश में मार डाला। परन्तु इस बलिदान का नैतिक प्रभाव बहुत बड़ा पड़ा और इसके बाद वन-पशुओं की लड़ाई भी ईसा के ५०० वर्ष पहले बन्द हो गई थी। इमारत का पहला विनाश ईसा से १,००० वर्ष पूर्व हुआ जब शत्रुओं ने इसमें लूट-मार मचाई थी। उसके बाद एक गढ़ के रूप में इसका उपयोग किया जाने लगा। चौदहवीं शताब्दी के भूचाल में इसकी भीषण हानि हुई। बाद को कई महलों के निर्माण में इसने पत्थर की खान का काम दिया।

कोलिसियम देखने के बाद हम सेंट पीटर्स का गिर्जा देखने गये। योरप के कैथलिक गिर्जों में यह सबसे अधिक सुन्दर कहा जाता है। इसके चौक के मध्य में पत्थर का एक मिस्री स्तम्भ है। पर इसमें कोई चित्राक्षर नहीं है और यह बहुत बड़ा है। यह विशाल स्तम्भ रोम में प्रसिद्ध सम्राट् कैलीगोला-द्वारा लाया गया था। सेंट पीटर्स गिर्जे के चौक का नक़्शा महान् इटालियन शिल्पी बरनिनि ने तैयार किया था। गिर्जे के सामने दो सुन्दर फ़ौवारे हैं, जिनमें दूर के पहाड़ के झरने से पानी आता है। गिर्जे का भीतरी भाग संगमरमर की मूर्तियों-द्वारा आश्चर्य-जनक रीति से सजाया गया है। कुछ मूर्तियाँ बहुत ऊँची हैं और दुर्लभ कारीगरी की द्योतक हैं। खम्भों की बनावट यूनानी ढङ्ग की है और वे स्वर्णमंडित हैं। छत में पच्चीकारी-द्वारा ईसा और उनके शिष्यों के चित्र और टेस्टामेंट (बायबिल) की बहुत-सी कहानियाँ अङ्कित हैं। गुम्बज की ऊँचाई का क्या कहना! जब हम पहुँचे, वहाँ उपासना हो रही थी। कैथलिक पादरी स्वर्ण के दीपाधारों में जलती हुई मोमबत्तियों से प्रकाशित वेदी के सामने लेटिन में मंत्र-पाठ कर रहे थे। वातावरण अत्यन्त शान्त प्रतीत हो रहा था। बहुत-सी वृद्ध और कुछ युवती स्त्रियाँ हाथ जोड़े और घुटने टेके प्रार्थना कर रही थीं।



[कोलिसियम का भीतरी भाग]

श्रीमती चटर्जी ने राह चलते हुए लोगों का अत्यधिक ध्यान आकर्षित किया। इसका कारण यह था कि उन्हें भारतीय स्त्रियों के देखने का बहुत कम अवसर मिलता है। इसी प्रकार अपने साँवले रंग के कारण मेरे मित्र श्रीयुत एल० भी आकर्षण के केन्द्र बने हुए थे। एक इटालियन महिला श्रीमती चटर्जी के मस्तक पर सिंदूर की लाल बिन्दी देखकर उस सम्बन्ध में अपने कौतूहल को न रोक सकी। श्रीमती चटर्जी ने उससे उस चिह्न का मर्म बताया। उसने क़रीब आधे घंटे तक हमसे भारतवर्ष के बारे में बातें कीं और श्रीमती चटर्जी की साड़ी की बड़ी प्रशंसा की। उसने हमें भोजन के लिए निमंत्रित भी किया, परन्तु अपने भारी कार्य-क्रम के कारण हम उसे स्वीकार न कर सके।

इटली की स्त्रियाँ प्रायः सुन्दर होती हैं। उनके केश काले, बरोनियाँ और आँखें बड़ी और सुन्दर होती हैं। अपनी इँग्लेंड और जर्मनी की बहनों की अपेक्षा क़द में वे छोटी होती हैं। समस्त योरप में सामाजिक पोशाक एक-सी ही है। गाँव की स्त्रियाँ अपनी देशी पोशाक में मुश्किल से देख पड़ती हैं। धूप-प्रधान दक्षिणी जलवायु के कारण वहाँ के निवासियों का ज़ैतूनी सफ़ेद रंग होता है। परन्तु यह जलवायु उनमें आलस्य और थकान भी, विशेष कर जून और जुलाई के गर्म महीनों में उत्पन्न करती है।

रोम में बहुसंख्यक सुन्दर फ़ौवारे हैं जिन्हें बराबर जारी रखने के लिए पर्वत का पानी आता रहता है। वे सब संगमरमर के बने हैं, परन्तु उनमें से कुछ एक हज़ार वर्ष से भी अधिक पुराने हैं। बीच बीच में सड़क की मोड़ों पर हमें सुन्दर फ़ौवारे दिखाई पड़े, जिनसे हमें श्रेष्ठ रोमन शिल्प-कला का परिचय मिला। फ़ौवारों के चतुर्दिक् मूर्तियों का सौन्दर्य्य देखते ही बनता है। ट्रिवी का फ़ौवारा इटालियन-कला का अद्भुत नमूना है।

सेंट पीटर्स और कोलिसियम देखने के बाद हम रोम की मुख्य सड़कों से होते हुए अपने होटल को लौट आये। मार्ग में हमें 'पैंथियन' मिला। यह एक अत्यन्त उल्लेखनीय ऐतिहासिक इमारत है। पैंथियन का अर्थ है नीरो के समय से लेकर अब तक के रोमन देवताओं की पूजा का स्थान। द्वार-प्रकोष्ठ के दोनों बड़े प्रतिमा-स्थानों में अगस्टस और अग्रिप्पा की मूर्तियाँ थीं।

इसके पश्चात् हम वेस्टा नामक एक छोटे और गोल मंदिर के पास से गुजरे। यह मंदिर सम्भवतः सूर्य्य को समर्पित किया गया था। कदाचित् यह हरकुलीज़ का मंदिर रहा हो। इसके चारों ओर एक अत्यन्त सुन्दर प्रकोष्ठ है, जिसमें कोरिंथियन ढङ्ग के १९ स्तम्भ हैं।

अब हम लोग सर्वथा थक गये थे और गाइड से पुरानी यादगारों की दुःखान्त कथायें सुनते-सुनते हमारा मन उदास हो गया था, इसलिए हमने संध्या-समय ६ बजे तक पूर्ण विश्राम किया। बाद को हमारे गाइड ने होटल के पास ही एक विस्तृत वाटिका में खुली हवा में नाटक देखने का आग्रह किया। यद्यपि हमारी समझ में एक शब्द भी नहीं आया, तथापि हमने इसका अत्यधिक आनन्द लिया। इटालियन गीत बहुत मधुर होते हैं और हमने उन्हें बहुत पसन्द किया। पर उनके कुछ मज़ाक हमें मूर्खतापूर्ण प्रतीत हुए। बाग़ में ख़ूब तेज़ रोशनी हो रही थी और ५०० से ऊपर सुसज्जित स्त्री-पुरुष पेड़ों के नीचे हलका भोजन करते हुए संगीत का आनन्द ले रहे थे।

दूसरे दिन हम प्राचीन रोमन फ़ोरम देखने गये। इसकी खुदाई बहुत कुछ गत शताब्दी में हुई है। रोमन राजाओं के अतीत गौरव का यह आश्चर्य्य-जनक स्मारक है। इस फ़ोरम में रोमन इतिहास में वर्णित बहुत-से ऐतिहासिक ध्वंसावशेष हैं। व्योस-पासियन का मंदिर और सैटर्न के मंदिर के प्रकोष्ठ के स्तम्भ अत्यन्त उल्लेखनीय हैं। शिल्प-कला का यहाँ पूर्ण प्रदर्शन हुआ है। यहाँ जिन देवताओं की मूर्तियाँ थीं वे अब रोम के बहुत-से संग्रहालयों में हैं। अपोलो का मंदिर बहुत ध्यान देने योग्य है। इन ध्वंसावशेषों के देखने में हमें पूरा एक दिन लग गया और उनकी संख्या इतनी अधिक है कि सबका वर्णन नहीं किया जा सकता।

दूसरे दिन हम वेटिकन संग्रहालय देखने गये। इसमें शताब्दियों से जमा की गई दुर्लभ वस्तुएँ एकत्र हैं। यह संसार के अति सम्पन्न संग्रहालयों में से एक है और इसमें हज़ारों ऐसी प्रदर्शन की वस्तुएँ हैं जिनके जोड़ की वस्तुएँ संसार में कहीं भी प्राप्त नहीं हैं। इसमें कलाविदों के बहुत-से दुर्लभ चित्र और कल्पित ऐसे रत्नजटित आभूषण हैं जिनमें बहुत-से गत शताब्दियों के पोपों के शरीर की शोभा बढ़ा रहे थे।

रोमन तहख़ाने विख्यात हैं। इन्हें भी हमने देखा। ये पृथ्वी के नीचे कमरों और मार्गों के रूप में बने हैं। रोमन इतिहास के आरम्भ-काल में ग़ैर-ईसाइयों से सताये जाने पर इनमें छिपकर ईसाई लोग अपनी जान बचाते थे। ये गुफायें भी हैं, जिनमें शुरू के ईसाई पत्थर के काफ़िनों में अपने मृतकों को गाड़ते थे। ये पृथ्वी के अन्दर के मार्ग और कमरे कई वर्गमील में हैं। आरम्भिक शताब्दियों में ईसा के अनुयायियों पर किस सीमा तक अत्याचार होता था, इसका स्मरण करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

रोम में हम चार दिन रहे और इस समय में वहाँ हमारा ख़ूब मन लगा। प्रत्येक घंटा हमने स्मरणीय इमारतों, प्रसिद्ध संग्रहालयों और योरप के सब प्राचीन ध्वंसावशेषों के देखने में जो हमें ईसा के पूर्व की कितनी ही शताब्दियों की याद दिलाते हैं, मन बहलाया। जिस समय हम रोम में थे, नगर में रौनक़ थी। फ़ैसिस्ट शासन से वह नये सिरे से समृद्धिशाली हो रहा था और चारों ओर महान् सैनिक प्रदर्शन हो रहे थे, यद्यपि युद्ध की कोई चर्चा नहीं थी। मुसोलिनी की शक्ति सर्वत्र व्याप्त हो रही है। इसमें सन्देह नहीं कि फ़ैसिज्म ने करिश्मे दिखलाये हैं, पर इसका स्थायित्व संदिग्ध है।

सम्पादकीय नोट

कांग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती

इसी पिछले दिसम्बर में कांग्रेस के जीवन के पचास वर्ष पूरे हो गये, अतएव उसकी स्वर्ण-जयन्ती सारे देश में धूमधाम से मनाई गई। यह इस देश के निवासियों के लिए गर्व की बात है कि उनकी इस प्रमुख राजनैतिक संस्था ने कैसी विकट कठिनाइयों का सामना करते हुए अपने जीवन का यह दीर्घकाल व्यतीत किया है, साथ ही अपने उद्देशों की सिद्धि का यत्न करते हुए उन्हें असाधारण रूप से व्यापक रूप देने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। संसार के सर्वप्रधान साम्राज्य के शासन के अन्तर्गत होने पर भी यह इस हमारी कांग्रेस का ही काम था कि अपने वर्षों के प्रयत्न से भारत को प्रतिनिधिमूलक शासन-व्यवस्था प्रदान करने में ही समर्थ नहीं हुई थी, किन्तु संघ-सरकार का प्रवर्तन करवाने में भी सफलता प्राप्त कर ली है। यही नहीं, उसने महात्मा गाँधी के नेतृत्व में असहयोग तथा सत्याग्रह के जो विकट आन्दोलन सञ्चालित किये तथा इनके सिलसिले में उसने जैसी सुसंगठित एवं सर्वसाधनसम्पन्न भारत-सरकार से जो भीषण टक्करें लीं, उसका यह सब काम भी भारतीय राजनैतिक इतिहास में स्वर्णाक्षरों में तो लिखा ही जायगा, विश्व के राजनैतिक इतिहास में भी एक विशिष्ट स्थान ग्रहण करेगा और भारतीय अहिंसात्मक संस्कृति का एक गौरव-वर्द्धक उदाहरण माना जायगा। अपनी ऐसी सर्वोच्च संस्था की यह स्वर्ण-जयन्ती आज देशनिवासियों के प्रोत्साहन के लिए हर्ष और उत्साह का ही विषय न होगी, किन्तु इससे उन्हें इस बात की भी अनुप्राणता मिलेगी कि हमें इसके उद्देशों की सिद्धि के लिए और भी अधिक दृढ़ता तथा त्याग-भावना से बद्धपरिकर होना चाहिए और अपने उन देशभक्त बन्धुओं की तन, मन, धन से बराबर सहायता करते रहना चाहिए जो इस पर अपना सब कुछ न्योछावर किये हुए देश-सेवा के काम में संलग्न हैं।

योरप की राजनीति

संसार की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति इस समय विशेष रूप से बिगड़ गई है। इटली अबीसीनिया पर बलपूर्वक अधिकार जमाकर यह प्रकट करना चाहता है कि ब्रिटेन और फ़्रांस की भाँति उसे भी निर्बल देशों को अपने शासनाधीन करने का हक़ है। उसकी इस उग्रनीति से ब्रिटेन और फ़्रांस की मर्यादा को जो ठेस पहुँची है वह तो है ही, ब्रिटेन की तो विशेषरूप से हित-हानि के भी होने की सम्भावना प्रत्यक्ष हो गई है। यही कारण है कि ब्रिटेन भूमध्य-सागर में अपनी जल-शक्ति का असाधारण रूप से प्रदर्शन कर रहा है। किन्तु मुसोलिनी के इटली को इस सबकी ज़रा भी परवा नहीं है, उलटा वह इन राष्ट्रों से भी युद्ध करने को ललकार रहा है। परन्तु फ़्रांस इटली से मैत्री बनाये रखना चाहता है, क्योंकि जर्मनी का उसे बहुत भय है। इधर इटली से ब्रिटेन भी अकेले युद्ध करके योरप में महायुद्ध छेड़ने की अपने ऊपर ज़िम्मेदारी नहीं लेना चाहता। इसके सिवा वह ऐसे युद्ध में फँसना इस समय उपयुक्त भी नहीं समझता है, क्योंकि योरप की इस संकटपूर्ण अवस्था से जापान अधिक से अधिक लाभ उठा लेना चाहता है। वह चीन का अंग-भंग करने में लग भी गया है। यहाँ तक कि उसके षड्यंत्र से उत्तर-चीन के दो प्रान्त राष्ट्रीय सरकार के नियंत्रण से स्वतंत्र हो

गये हैं और शेष तीन वैसा करने की तैयारी कर रहे हैं। कहने को तो ये सब प्रान्त स्वतंत्र हो रहे हैं, परन्तु अन्त में इनकी भी वही दशा होगी जो मंचूरिया की हुई है। अतएव ब्रिटेन के आगे अबीसीनिया की अपेक्षा कहीं अधिक टेढ़ा चीन का प्रश्न आ उपस्थित हुआ है। पहले जापान ने ही मंचूरिया को हथिया कर यह प्रकट किया था कि जब उसमें अपना नया साम्राज्य क़ायम करने की शक्ति है तब वह चुप क्यों रहे। ऐसी दशा में संसार में अपने को सर्वप्रधान महाशक्ति होने का दावा करनेवाला ब्रिटेन कैसे सँभल कर काम न करेगा? और सो भी उस दशा में जब उसके अपने पुराने मित्रों के ही दृष्टिकोण में इतना भेद हो गया है। आज योरप के सभी छोटे-बड़े राष्ट्र खुल्लमखुल्ला अस्त्र-शस्त्र बढ़ाने के काम में लग गये हैं, मानो अब उन्हें किसी का कोई डर ही नहीं रहा। ऐसी दशा में अब कहाँ कब क्या न संघटित हो जाय, यह समझ कर ब्रिटेन, फ़्रांस तथा इनके साथ रूस और संयुक्त-राज्य भी इस समय बहुत सँभल सँभल कर अपने अपने दाँव-पेंच दिखा रहे हैं। परन्तु अब यह बात पूर्णरूप से प्रकट हो गई है कि ब्रिटेन और फ़्रांस पहले की तरह प्रत्येक बात को एक ही दृष्टिकोण से नहीं देखते हैं। जब हिटलर ने वर्सेलीज़ की सन्धि की उपेक्षाकर उसके विरुद्ध सैन्य-संगठन की घोषणा की थी उस समय ब्रिटेन ने उस बात को उसी दृष्टिकोण से नहीं देखा था जिस दृष्टिकोण से फ़्रांस ने उसे देखा था। आज इटली के मामले को फ़्रांस अपने दृष्टिकोण से देखना चाहता है तो इसमें ब्रिटेन कैसे एतराज़ कर सकता है? और जब योरप के इन दो प्रधान राष्ट्रों का यह हाल है तब यही कहना पड़ता है कि योरप की राजनैतिक अवस्था बहुत नाज़ुक हो गई है।

राष्ट्र-संघ के प्रतिबन्धों की निस्सारता

इटली के विरुद्ध राष्ट्र-संघ ने आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिये हैं। यदि उसके आदेश का पालन समुचित रीति से सभी राष्ट्रों ने किया तो कुछ ही दिनों में इटली को राष्ट्र-संघ के आगे घुटने टेक देने पड़ेंगे, क्योंकि इटली कच्चे माल के लिए अन्य देशों का मुहताज है। एक भी कच्चे माल की आवश्यकता वह अपने यहाँ से पूरी नहीं कर सकता। ब्रिटेन, जर्मनी तथा पोलैंड से कोयला; कोलंबिया, रूमानिया, संयुक्त-राज्य तथा रूस आदि से तेल, पेट्रोलियम आदि; आस्ट्रेलिया, ब्रिटेन और मिस्र से ऊन; अलजीरिया और रूस से कच्चा लोहा; फ़्रांस, स्वीज़लैंड और बेल्जियम से फ़ौलाद आदि और स्पेन से वह सीसा मँगाता है। यदि ये देश जैसा कि राष्ट्र-संघ के द्वारा इन्होंने निश्चय किया है, अपने अपने यहाँ का माल इटली को नहीं जाने देंगे तो इटली वास्तव में भारी मुसीबत में पड़ जायगा। परन्तु परिस्थिति ऐसी नहीं है, क्योंकि उस दशा में उन राष्ट्रों को भी भारी मुसीबत का सामना करना पड़ेगा। आख़िर वही अपना वह सब माल कहाँ खपावेंगे? कदाचित् इसी से इटली के पड़ोसी स्वीज़रलैंड, आस्ट्रिया और यूगो-स्लाविया अभी से कुड़मुड़ाने लगे हैं और यदि उसके ये पड़ोसी राज्य प्रतिबन्ध लगाने में ढील रक्खेंगे तो फ़्रांस, ब्रिटेन और रूस जैसे दूरस्थ राष्ट्र प्रतिबन्ध लगाकर इटली को वाञ्छित चोट नहीं पहुँचा सकेंगे। इटली अपने पड़ोसी राज्यों से तथा उनके पड़ोसी जर्मनी से कच्चा माल मँगाकर अपनी अधिकांश आवश्यकतायें पूरी कर सकेगा। अब रहा सैनिक प्रतिबन्ध लगाना अर्थात् इटली के समुद्री किनारे का घेरा डालना और उसके लिए स्वेज़-नहर का मार्ग बन्द कर देना, सो यह भी नहीं हो सकेगा। एक तो इटली यह कह चुका है कि यदि ऐसा कुछ किया जायगा तो वह उसे युद्ध घोषणा के तुल्य समझेगा, दूसरे ऐसी कार्रवाई करना राष्ट्र-संघ की नीति भी नहीं है। सारांश यह कि राष्ट्र-संघ की यह सारी कार्रवाई उतनी प्रभावोत्पादक नहीं सिद्ध होगी। यही कारण है कि ब्रिटेन और फ़्रांस इटली के उपेक्षा-भाव को देखते हुए भी सन्धि की चर्चा बराबर जारी किये रहे हैं। परन्तु हाल में उनकी इस चर्चा का भी रहस्य खुल गया है और अब सन्धि की बात-चीत नहीं होगी। देखना है ये शान्ति-प्रेमी राष्ट्र किस मार्ग को ग्रहण करते हैं।

योरप की उलझन

इटली और अबीसीनिया के युद्ध ने योरप की राजनैतिक परिस्थिति का सर्वांश में नहीं तो अधिकांश में भंडाफोड़ कर दिया है और यह प्रकट कर दिया है कि योरप के राष्ट्रों के नेता कितने चाणाक्ष यथा स्वार्थी हैं। राष्ट्र-संघ ने इटली पर जो आर्थिक प्रतिबन्ध लगाने की घोषणा की थी उनमें तेल की रुकावट भी शामिल कर दी गई थी। और तेल की रुकावट की बात जानकर इटली इतना अधिक उबल पड़ा कि उसके राजदूत ने फ़्रांस के प्रधान मंत्री मोशिये लावेल से साफ़ कह दिया कि तेल की रुकावट का अर्थ इटली में युद्ध की घोषणा लिया जायगा। इटली का उग्र रूप देख कर मोशिये लावेल ने पैतरा बदल दिया और ब्रिटेन के वैदेशिक मंत्री सर होर से मिलकर सन्धि की बात-चीत ही नहीं शुरू कर दी, किन्तु उसकी शर्तें भी तैयार करके उन्हें इटली और अबीसीनिया की सरकारों को स्वीकार करने के लिए भेज दिया। इस नये कूट-नीति के शिगूफ़े ने राष्ट्र-संघ की दण्ड-व्यवस्था को पीछे डाल दिया। परन्तु उक्त कार्रवाई का चारों ओर ज़ोरों से विरोध शुरू हो गया। ब्रिटेन का लोकमत तो इतना विक्षुब्ध हो उठा कि विरोधी दल ने पार्लियामेंट में सरकार के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव तक उपस्थित करने की सूचना दे दी। इसके फलस्वरूप सरकार के प्रचण्ड वैदेशिक मंत्री सर सैमुअल होर को तत्काल त्यागपत्र दे देना पड़ा। निस्सन्देह यह एक असाधारण घटना हुई है। परन्तु इससे राष्ट्रसंघ के सिद्धान्तों की रक्षा नहीं हो जायगी। इटली और अबीसीनिया के मामले में फ़्रांस प्रारम्भ से ही अगर-मगर की नीति ग्रहण किये हुए है। और इटली की अबीसीनिया-विजय से ब्रिटेन की सबसे अधिक हितहानि है। इससे वह प्रारम्भ से ही इटली का विरोध करता आ रहा है। परन्तु फ़्रांस के बीच बीच में कतराकर निकल भागने से वह अकेले राष्ट्र-संघ के लिए इटली से लड़ने को तैयार न होगा, भले ही ब्रिटेन का लोकमत उसकी सरकार के वर्तमान मनोभाव का विरोधी हो। चाहे जो हो, इस अवस्था से यह भी प्रकट होता है कि फ़्रांस और ब्रिटेन में कम से कम इस समय पहले का-सा सहयोग नहीं है। और योरप के ये दोनों राष्ट्र इधर कुछ समय से अपने अपने हित को सामने रख कर ही एक दूसरे से व्यवहार कर रहे हैं। योरप की वर्तमान उलझन का एक यही कारण है।

युद्ध की प्रगति

अबीसीनिया और इटली के युद्ध की जो ख़बरें पिछले दिनों मिली हैं, यदि वे सत्य हैं तो उनसे युद्ध का पाँसा पलटा हुआ दिखाई देता है। इटली की जिन सेनाओं ने प्रारम्भ में विजय करती हुई अबीसीनिया के उत्तरी और दक्षिणी युद्ध-क्षेत्रों में बढ़कर जिन प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था, वे सब वहाँ से बहुत पीछे हट आई हैं। कहा जाता है कि पिछले दिनों अबीसीनिया को काफ़ी गोला-बारूद मिल गया है तथा सैनिक विशेषज्ञों की भी सहायता प्राप्त हो गई है, अतएव उसकी सेनायें अब अधिकाधिक उत्साह से इटली की सेनाओं पर छापा मार मार कर उन्हें ध्वंस और त्रस्त कर रही हैं। इसके सिवा इस बीच में काफ़ी वर्षा हो जाने से भी इटली की सेनाओं को विकट स्थिति का सामना करना पड़ा है। फलतः अब इटलीवाले या तो अपनी आत्म-रक्षा कर रहे हैं या केवल हवाई आक्रमण कर अबीसीनिया की आगे बढ़ती हुई सेनाओं का ध्वंस करने का प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु इटली के सौभाग्य और अबीसीनिया के दुर्भाग्य से संसार की शान्ति के ठेकेदार ब्रिटेन और फ़्रांस ने इस बीच में सुलह की ऐसी शर्तें पेश कर दी थीं कि इटली को बिना समुचित बलिदान किये ही सारा का सारा मनोभिलषित प्राप्त हो गया था परन्तु ब्रिटेन के लोकमत ने यह सब नहीं होने दिया। यह वास्तव में बड़े महत्त्व की बात हुई है। और अब जब कभी अबीसीनिया और इटली में सन्धि होगी तब उसकी बात-चीत का आधार ये शर्तें नहीं होंगी। अबीसीनिया इस समय उत्साह के साथ युद्ध में लगा हुआ है और यद्यपि उसको हवाई जहाज़ों की बमवर्षा से अपार हानि हो रही है, तो भी वह अपना छापे का युद्ध बराबर जारी किये हुए है। देखना है कि राष्ट्रसंघ अब अपने कर्तव्य का पालन किस तरह करता है। इस समय इस युद्ध के सम्बन्ध में यही सबसे टेढ़ा प्रश्न है।

जर्मनी की गति-विधि

इस समय इटली अबीसीनिया के युद्ध में लिप्त है और विश्व-शान्ति के नाम पर फ़्रांस, ब्रिटेन आदि योरपीय राष्ट्र

राष्ट्रसंघ-द्वारा उसे रोकने का यत्न कर रहे हैं। उधर जर्मनी वर्सेलीज़ के सन्धिपत्र को फाड़ फेंकने के काम में व्यस्त है। उसने अपनी सैन्य-संख्या पहले ही बढ़ा ली थी और अब उसने अपनी सवा सौ वर्ष पुरानी 'जर्मन वार अकेडमी' (जर्मनी का युद्ध-विद्यालय) को भी खोल लिया है। वर्सेलीज़ के सन्धिपत्र की एक धारा-द्वारा यह विद्यालय भी बन्द कर दिया गया था। परन्तु इसके जन्म-दिवस के गत अवसर पर इसका उद्घाटन-कार्य बड़े समारोह के साथ किया गया। १९वीं सदी के आरम्भ में जब नेपोलियन जर्मनों को युद्धों में बार-बार पददलित कर रहा था तब इस संस्था की स्थापना जर्मनी के योद्धा सार्नहार्स्ट ने की थी। जर्मनों में सैनिकता का भाव इसी संस्था ने नये सिरे से भरा था और पिछले महायुद्ध में जो पुरुषार्थ जर्मन-सेना ने प्रकट किया था उसका सारा श्रेय इसी विद्यालय को दिया गया है। आज वही विद्यालय फिर चालू किया गया है और इसके उद्घाटन-समारोह में जर्मन-सरकार के युद्ध-मंत्री, प्रधान सेनापति आदि उच्चाधिकारियों ने जो महत्त्वपूर्ण भाषण किये उनसे यही प्रकट होता है कि जर्मनी अपना पहले जैसा ही सामरिक बल पुनः सञ्चय करने का समुचित रूप से आयोजन करने का पूर्ण निश्चय कर चुका है। ऐसी दशा में यदि फ्रांस या ब्रिटेन सशंक होते हैं तो यह बात सर्वथा स्वाभाविक ही है। परन्तु इस समय योरप में एक जर्मनी को ही क्या, किसी को भी इसकी परवा नहीं है और योरप के सभी छोटे-बड़े राष्ट्र अपनी भविष्य की सुरक्षा के लिए यथाशक्ति तथा यथा उत्साह अपनी सामरिक तैयारी कर रहे हैं, यहाँ तक कि वे इस बात की ओर भी नहीं देखते कि उनकी इस प्रगति का परिणाम दूसरा महायुद्ध होगा। इतने पर भी जो राष्ट्र निःशस्त्रीकरण आदि करने की बातें कर रहे हैं उनका धैर्य वास्तव में प्रशंसनीय है, भले ही वे अन्त में असफल क्यों न हों।

मिस्र का सुअवसर

इटली-अबीसीनिया के युद्ध की बदौलत, जान पड़ता है, मिस्र के भी भाग्य खुल गये हैं। उसे सन् १९२३ में जो प्रतिनिधि-मूलक शासन प्राप्त हुआ था और जो पिछले छः वर्ष से उससे छीन लिया गया था वह उसे संयोगवश फिर प्राप्त हो गया है। बात यह हुई कि जब ब्रिटेन को इटली के विरोध में भूमध्य-सागर में अपनी नौ-सेना का प्रदर्शन करना पड़ा तब वह अलेक्ज़ेंड्रिया को अपना सैनिक अड्डा बनाने को लाचार हुआ। ब्रिटेन की यह बात मिस्रवालों को नागवार गुज़री और इसका विरोध करने के लिए वहाँ के सभी दलों के नेता मिल गये। यही नहीं, वहाँ के विद्यार्थियों ने इसके विरोध में बड़ा उग्र प्रदर्शन किया, जिसके फलस्वरूप पुलिस को दो अवसरों पर उग्रता के साथ उनका दमन करना पड़ा। परन्तु जब वहाँ का असन्तोष बढ़ता ही गया तब अन्त में ब्रिटिश सरकार को नरम होना पड़ा। अतएव बादशाह फ़ुआद ने पुराने १९२३ वाले शासन-विधान को जारी करना स्वीकार कर लिया है। फलतः मिस्र के संयुक्त नेता-मण्डल ने ब्रिटिश सरकार को सूचित किया है कि वह १९३० वाली सन्धि को भी स्वीकार करेगा और जब तक इटली अबीसीनिया का युद्ध जारी है, ब्रिटेन की सेनायें अलेक्ज़ेंड्रिया में रह सकेंगी। मिस्रवालों की यह अभीष्ट-सिद्धि उनके लोक-नेताओं की सूझ-बूझ के कारण ही हुई है। उन्होंने उपयुक्त अवसर का सदुपयोग करके अपनी दूरदर्शिता का खूब परिचय दिया है, अतएव वे सर्वथा प्रशंसनीय हैं।

कांग्रेस का विरोध

इस समय कांग्रेस का रंग कुरंग है। उसका संगठन पारस्परिक मतभेद के कारण अस्तव्यस्त हो गया है। यही कारण है कि उसके विरोधी उसकी अवमानना कर रहे हैं। इधर कुछ दिनों से उस पर यह आरोप किया जा रहा है कि उसने तिलक-स्वराज्य-कोष का दुरुपयोग किया है। परन्तु ये आरोपक यह बात भूल जाते हैं कि उसी कांग्रेस ने कम-से-कम १० वर्ष तक देश में अभूतपूर्व लोकव्यापी उग्र आन्दोलन का ही सञ्चालन नहीं किया था, किन्तु भारत की वर्तमान सुव्यवस्थित प्रबल ब्रिटिश सरकार से विलक्षण युद्ध भी किया था। उस दशा में यदि उससे उक्त क्षुद्र कोष का दुरुपयोग भी हो गया होता तो भी कांग्रेस की उस पैमाने की कार्यवाही को देखते हुए उसका वह काम उपेक्षणीय होता। परन्तु जो लोग कांग्रेस को या उसके उस विराट् आयोजन को ही कुछ महत्त्व नहीं देना चाहते वे तो वैसे आक्षेप करेंगे ही। कांग्रेस का मखौल उड़ाकर उसे जनता की निगाह में गिराने का कोई आधार चाहिए ही; और इसके लिए धन के दुरुपयोग की बात मार्के की भी होती है। अतएव आज जब कांग्रेस में फूट है तब यह सब होना स्वाभाविक ही है। परन्तु जिन्हें कांग्रेस का महत्त्व स्वीकार है और जिन्होंने देखा है कि उसने गत १५ वर्ष के भीतर देश को स्वाधीनता के युद्ध में किस विराट् आयोजन के साथ सन्नद्ध किया था वे उसके द्वारा सवा करोड़ क्या, यदि सवा दस करोड़ भी खर्च हो जाते, तो भी उसकी परवा न करते। तथापि इस सिलसिले में कांग्रेस ने उक्त कोष के आय-व्यय का समुचित हिसाब प्रकाशित भी कर दिया है, और यदि वह उसके विरोधियों को सन्तोषप्रद नहीं है तो लाचारी है। रहा दुरुपयोग या सदुपयोग, सो यह अपने अपने दृष्टिकोण की बात है।

नेहरू जी और हिन्दी का साहित्य

हाल में पण्डित जवाहरलाल नेहरू के हिन्दी में तीन-चार लेख प्रकाशित हुए हैं। अपने एक लेख में उन्होंने हिन्दी के साहित्य के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए उसकी दरिद्रता की चर्चा की है और हिन्दी के महारथियों से पूछा है कि अमुक अमुक विषय की हिन्दी में कौन कौन पुस्तकें हैं। जो लोग हिन्दी का नहीं, हिन्दुस्तान का भी पिछली ८ सदियों का इतिहास भले प्रकार जानते हैं और हिन्दी की वर्तमान प्रगति की प्रशंसा के गीत गाते नहीं अघाते वे राष्ट्र के महान् स्तम्भ नेहरू जी जैसे नरकेसरी से साधारण मतभेद के लिए विवाद नहीं करेंगे, उलटा वे उनके इस आरोप का स्वागत करेंगे, क्योंकि वे तो नेहरू जी के हिन्दी के इन लेखों को उनके द्वारा माँगे गये साहित्य के अभाव की पूर्ति के आयोजन का श्रीगणेश समझते हैं। परन्तु यहाँ हमें इस ओर अपनी उन साधन-सम्पन्न संस्थाओं का ध्यान अवश्य आकृष्ट करना है जो यदि इच्छा करें तो साल भर में ही भिन्न भिन्न विषयों के ६०-७० तक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित कर सकती हैं और उनके तीन-चार वर्ष के ऐसे सतत प्रयास से नेहरू जी के मन्तव्य के अनुसार हिन्दी का कुछ का कुछ स्वरूप हो जा सकता है। परन्तु ये हमारी संस्थायें इस समय हिन्दी के दुर्भाग्य से ऐसे महानुभावों के हाथों में पड़ गई हैं जो केवल अपने दृष्टिकोण के आगे किसी के विचार को ज़रा भी महत्त्व नहीं देना चाहते। उनकी अपनी खास साहित्यिक अभिरुचि है, अतएव ये हमारी साहित्यिक संस्थायें उसी के अनुसार ग्रन्थ-प्रकाशन का काम करती हैं, और वे जो ग्रन्थ प्रकाशित करती हैं उनमें से अधिकांश वास्तव में आधुनिक युग के मतलब के नहीं होते और न आशा है कि वे अपनी प्रवृत्ति बदलने में कभी समर्थ होंगी। ऐसी दशा में हमारे उन सामयिक पत्र-पत्रिकाओं का कुछ कर्तव्य है, जो आये दिन छोटी से छोटी बातों को लेकर कलकत्ते से लाहौर तक एक-स्वर से बोलने लगती हैं और तिल का ताड़ बनाकर खड़ा कर देती हैं। उनका काम है कि वे अपनी इस गन्दी साहित्यिक मनोवृत्ति को बदलकर वास्तविक साहित्यिक मनोवृत्ति धारण करें और इस बात का आन्दोलन करें कि हिन्दी में प्राञ्जल तथा लोकोपयोगी साहित्य की रचना प्रारम्भ हो। श्रीमान् नेहरू जी ने हमारा ध्यान ठीक मौक़े पर आकृष्ट किया है और इस अवसर का हमें उनकी सहायता प्राप्त करके सदुपयोग करना चाहिए।

स्वर्गीय दीपनारायणसिंह

बिहार के प्रसिद्ध नेता श्रीयुत दीपनारायणसिंह का इसी नवम्बर को स्वर्गवास हो गया। आपका व्यक्तित्व सबसे अधिक आकर्षक था। अपनी सरलता एवं मिलनसारी के कारण जो कोई भी आपके सम्पर्क में आता उसे आप मुग्ध कर लेते थे। धनी, ग़रीब, बूढ़े, नवयुवक सभी से सदैव आप एक-सा व्यवहार करते थे। साम्प्रदायिकता का भाव आपमें कभी भी नहीं आया। आपकी वक्तृत्व-शक्ति, महान् उदारता,

लोकोपकारी चरित्र, आपके अद्भुत त्याग का ही फल था कि आपकी गणना प्रान्त में ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण देश के महापुरुषों में होती थी। आपके असामयिक एवं अचानक निधन से बिहार ही नहीं, सारे भारत को बड़ी क्षति पहुँची है। आपका जन्म सन् १८७५ में हुआ था। आपके पिता बाबू तेजनारायणसिंह एक लक्ष्मीवान् व्यक्ति थे। अतः आपकी शिक्षा आरम्भ से ही कलकत्ते में हुई। उसके बाद १७ वर्ष की अवस्था में आगे पढ़ने के लिए इँग्लेंड भेज दिये गये। वहाँ आपने केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अपना नाम लिखाया तथा 'मिडिल टेम्पेल' में भर्ती हुए। इस प्रकार १८९६ में आप ने बार-ऐट-ला की उपाधि ली तथा वहीं प्रैक्टिस करने लगे। पिता के स्वर्गवासी हो जाने पर पैत्रिक सम्पत्ति की निगरानी करने के लिए आप भारत लौटे। आपने संस्कृत की शिक्षा इँग्लेंड में प्रसिद्ध विद्वान् मैक्समूलर से प्राप्त की थी।

देश-सेवा की लगन आपको बचपन से ही थी। कांग्रेस से आपका सम्बन्ध बहुत पहले से रहा है। सन् १९१० में आप बङ्गाल प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के सभासद् नामज़द किये गये थे और प्रान्त के राजनैतिक आन्दोलनों में सदा अग्रगामी बने रहे।

महात्मा गांधी के चम्पारन के पीड़ित किसानों के सेवा-कार्य में आपने भी पूरा सहयोग दिया था और जब १९२० में महात्मा जी ने असहयोग-आन्दोलन शुरू किया, आप सबसे पहले महात्मा जी के अनुयायी हुए और अपने विलासितामय जीवन के समस्त सुखों को लात मारकर सत्याग्रह-समर में कूद पड़े और बिहार के आन्दोलन में जान डाल दी। सन् १९३० के सत्याग्रह-आन्दोलन में भी आपने पूरा भाग लिया। बिहार के प्रथम डिक्टेटर भारत के वर्त्तमान राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी के जेल-गमन के उपरान्त प्रान्त की बागडोर आपको ही सौंपी गई। कार्य-कारिणी समिति के अन्य सभी सदस्यों के साथ आपने भी जेल के कष्ट झेले। गत वर्ष जब कांग्रेस की नीति में परिवर्तन हुआ और कांग्रेस पार्लियामेंटरी-बोर्ड का निर्माण हुआ तब आप भागलपुर से निर्विरोध असेम्बली के सदस्य निर्वाचित हुए और अपनी मृत्यु के काल तक इस पद पर आसीन रहे।

आप केवल देश के ही नहीं, समाज के भी सच्चे सेवक थे। आपने प्रान्त की शिक्षण-सम्बन्धी बड़ी सेवा की है। सबसे अधिक त्याग का कार्य्य तो आपने यह किया है कि अपनी मृत्यु के पहले ही अपनी अपार सम्पत्ति का अधिकार आप 'लीला दीपनारायण' नामक एक ट्रस्ट को दे गये हैं, जिसके अनुसार आपकी सम्पत्ति का अधिकांश बिहार-प्रान्त में टेकनिकल शिक्षा के प्रचार में लगाया जायगा।

गोत्रों की ओर

हरिजनों का नया आन्दोलन, जान पड़ता है, काफ़ी रंग लायेगा। जब से उनके दूरदर्शी नेता डाक्टर अम्बेदकर ने यह घोषणा की है कि यदि उनके समाज को हिन्दू-समाज में पूर्ण समानता का दर्जा नहीं प्राप्त होगा तो वे हिन्दू-धर्म छोड़कर किसी दूसरे धर्म में मिल जाने का आदेश अपने समाज को देंगे। उनकी इस घोषणा से तथा इसके समर्थन के लिए हरिजनों की जो दो-तीन सभायें अब तक हो चुकी हैं उनकी रोषपूर्ण कार्यवाही से सुधारवादी नेताओं के आसन हिल गये हैं, और इस समस्या का हल ढूँढ़ने के लिए वे इस समय बेतरह व्यस्त हैं। कोई कहता है कि हिन्दू-महासभा वर्ण-व्यवस्था मंसूख करने का प्रस्ताव पास कर दे, कोई कहता है कि हरिजनों के लिए एक नया सम्प्रदाय स्थापित कर दिया जाय, कोई उनकी आरज़ू-मिन्नत करने में ही लगे हुए हैं। परन्तु इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न की मीमांसा सम्यक्-रूप से अभी तक निश्चित नहीं हो सकी है। हाँ, इस सम्बन्ध में काशी के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर भगवानदास ने बेशक एक बहुत ही उपयुक्त परामर्श दिया है। उन्होंने कहा है कि हरिजन लोग अपने को चमार, भंगी, धोबी आदि कहना छोड़ दें। उनके स्थान में वे अपनी जाति अपने पेशे के अनुसार बताया करें। जो हरिजन पढ़ने-लिखने का काम करते हों वे ब्राह्मण, जो सैनिक हों वे क्षत्रिय, जो खेती व्यापार करते हों वे वैश्य और जो सेवा-टहल करते हों वे शूद्र कहा करें। परन्तु सवर्णों में इन जातियों के मौजूद होने से हरिजनों की जातियों के इस नये नामकरण से क्या उनका उद्देश सिद्ध हो सकेगा? इस उपाय का सहारा परिमित क्षेत्र में आर्य-समाज ने बहुत पहले लिया था, परन्तु उसे सफलता कहाँ मिली है? और जब जात-पाँत ही तोड़ने का ज़ोर दिया जा रहा है तब फिर ये जातियाँ [illegible] रखने से क्या लाभ होगा? अच्छा तो यह था कि भेद-सूचक ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नामों का सर्वथा त्याग कर दिया जाता और उनके स्थान में क्या सवर्ण और क्या अवर्ण सभी हिन्दू केवल अपने अपने गोत्र के ही नाम का उपयोग करते। इसमें हरिजनों का ही अछूतपन नहीं मिट जायगा, किन्तु उनके साथ सवर्णों का भी अछूतपन मिट जायगा, साथ ही यह होगा कि उनमें आर्यों की वास्तविक वैदिकता के आने के लिए एक प्रशस्त मार्ग भी खुल जायगा।

महाकवि नागुची और भारत

जापान के महाकवि नागुची आज-कल भारत में भ्रमण कर रहे हैं। उनका कलकत्ते में हिन्दी के कवियों ने भी विशेष रूप से स्वागत-सत्कार किया है। इस समय वे जगह जगह घूमकर भिन्न भिन्न विद्या-केन्द्रों में कला और साहित्य पर भाषण कर रहे हैं। परन्तु नागुची महोदय कोरे भावना-लोक में ही विचरण करनेवाले जीव नहीं हैं। उनके हृदय में कविजनोचित मानवता का भी वास्तव रूप में निवास है। इसी से उन्होंने अपने अल्प प्रवासकाल में भारतीयों की दरिद्रता का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। उन्होंने एक पत्र-प्रतिनिधि की भेंट में कहा है कि "भारतवर्ष की निम्न श्रेणियों की ग़रीबी और दुःखों को देखकर मुझे बड़ा धक्का पहुँचा है। ऐसा मालूम पड़ता है कि उनमें मानवता नष्ट हो गई है। देश की उच्च श्रेणियों में तथा बाज़ारों के लोगों में भी तो वही मानवता है। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय जन-साधारण में यह समझ पैदा की जाय कि वे जान जायँ कि हम भूखे हैं।" यही नहीं उन्होंने यह भी कहा है—"भारत में इतनी निरक्षरता है कि देखते लज्जा आती है। जापान में बाज़ार के भिखारी तक समाचार-पत्र पढ़ सकते हैं। सरकार की सहायता पर ही पूर्ण रूप से निर्भर मत करो। व्यक्तिग उपाय काफ़ी लाभ पहुँचा सकते हैं। भारत में मध्य-श्रे को सुदृढ़ बनाना चाहिए। भारत की संस्कृति इतनी जटि है कि वह भारत जैसे निर्बल देश के लिए हानिकर है।"

कविवर नागुची का यह सारा कथन [illegible]हो आ ठीक है, और इससे इस देश के निवासी अपरिचित भी न हैं। भारतीय राष्ट्र के प्रधान नेता जिन महात्मा गांधी ने उन्होंने स्वप्न देखनेवाला बताया है और जिनकी बातों हृदयंगम करने में अपने को असमर्थ पाया है वे दीर्घकाल दरिद्रता का जीवन इसी कारण व्यतीत कर रहे हैं कि इस दे की दरिद्रता का उन्हीं ने सबसे पहले अनुभव किया य यही नहीं, अपने उन्हीं 'प्रिय दरिद्रनारायण' की सेवा लिए अपना सर्वस्व निछावर कर चुके हैं। तथापि नागु महोदय ने हमारी दरिद्रता आदि दुःखों के प्रति जो सहानुभू प्रकट है उसके लिए हम उनके आभारी हैं, क्यों उनकी इस सहृदयता से भारतीय लोक-सेवकों को कम कम प्रोत्साहन तो अवश्य ही मिलेगा।

कलकत्ते में एक नया हिन्दू-मंदिर

कलकत्ते के केन्द्र बालीगंज में एक अभिनव मन्दि की स्थापना हुई है। इसमें शिव और बुद्ध की प्रतिमा एक साथ स्थापित की गई हैं और यह सभी श्रेणी हिन्दुओं के लिए खुला रहेगा। इस मन्दिर की स्थाप राजा बलदेवदास जी बिड़ला ने की है। इसका ए दम हिन्दू ढंग के अनुसार निर्माण हुआ है। इस निर्माण में हिन्दू-गृह-निर्माण-कला के विशेषज्ञ श्रीश चट की सहायता ली गई है। इससे सम्बन्ध रखनेवाले विश्रामालयों में हिन्दू, बौद्ध, सिख, जैन कोई भी धर्मो देशक ठहर सकेगा। मन्दिर-उद्घाटन बड़े समारोह साथ हुआ। नगर के अनेक गण्यमान्य स्त्री-पुरुष सम्मिलि हुए थे। बहुसंख्यक बौद्ध-भिक्षुओं, हिन्दू-संन्यासि और पंडितों ने अपनी उपस्थिति से उत्सव की शो बढ़ाई। चीन के कौंसिल के सेक्रेटरी भी पहुँचे थे।

इस अवसर पर श्रीयुत युगलकिशोर जी बिड़ला ने ए भाषण भी पढ़कर सुनाया। उसमें उन्होंने कहा है—

"यह मन्दिर सार्वजनिक रहेगा। जिस तरह कालीघाट आदि कुछ मन्दिरों में हिन्दू-मात्र दर्शन करते हैं, उसी प्रकार यह मन्दिर सभी हिन्दुओं के दर्शन के लिए खुला रहेगा तथा मन्दिर के साथ जो छोटा-सा विश्राम-गृह बना है उसमें भी हिन्दू (आर्य)-धर्मान्तर्गत सभी बौद्ध, सिक्ख, सनातनी आदि सम्प्रदायों के साधु और धर्म-प्रचारक निवास कर सकेंगे तथा मन्दिर में शिवजी की सुन्दर ध्यानस्थ एक बड़ी मूर्ति की भी प्रतिष्ठा की गई है और साथ में भगवान् बुद्ध की भी वैसी ही सुन्दर और ध्यानस्थ मूर्त्ति की प्रतिष्टा की गई है। यही इस मन्दिर की विशेषतायें हैं।

"कलकत्ते में यों तो कई एक मन्दिर हैं जिनमें एक मुक़ीम बद्रीदास जी का जैन-मन्दिर और दूसरा गङ्गा-तट पर रानी रासमणि का बनाया हुआ शिव-मंदिर है। ये दोनों ही मंदिर ऐसे हैं कि हिंदुओं के गौरव के स्थान हैं। किन्तु नगर के मध्य-भाग से दोनों दूर हैं। कालीघाट का सार्वजनिक और प्रसिद्ध मंदिर भी बड़ा महत्त्व रखता है, किंतु मंदिर और उसके आस-पास का स्थान उतना बड़ा नहीं जितना कि होना चाहिए था। इसलिए आवश्यकता यह है कि नगर के मध्य में कलकत्ते के हिंदुओं के स्वरूप के योग्य एक बृहत् और सुंदर सार्वजनिक मंदिर हो, जहाँ जाति की सामाजिक, धार्मिक अनेक प्रकार की आवश्यकतायें पूरी होती रहें।"

आशा है कि कलकत्ते के हिंदू इस अभिनव मंदिर का सदुपयोग करेंगे।

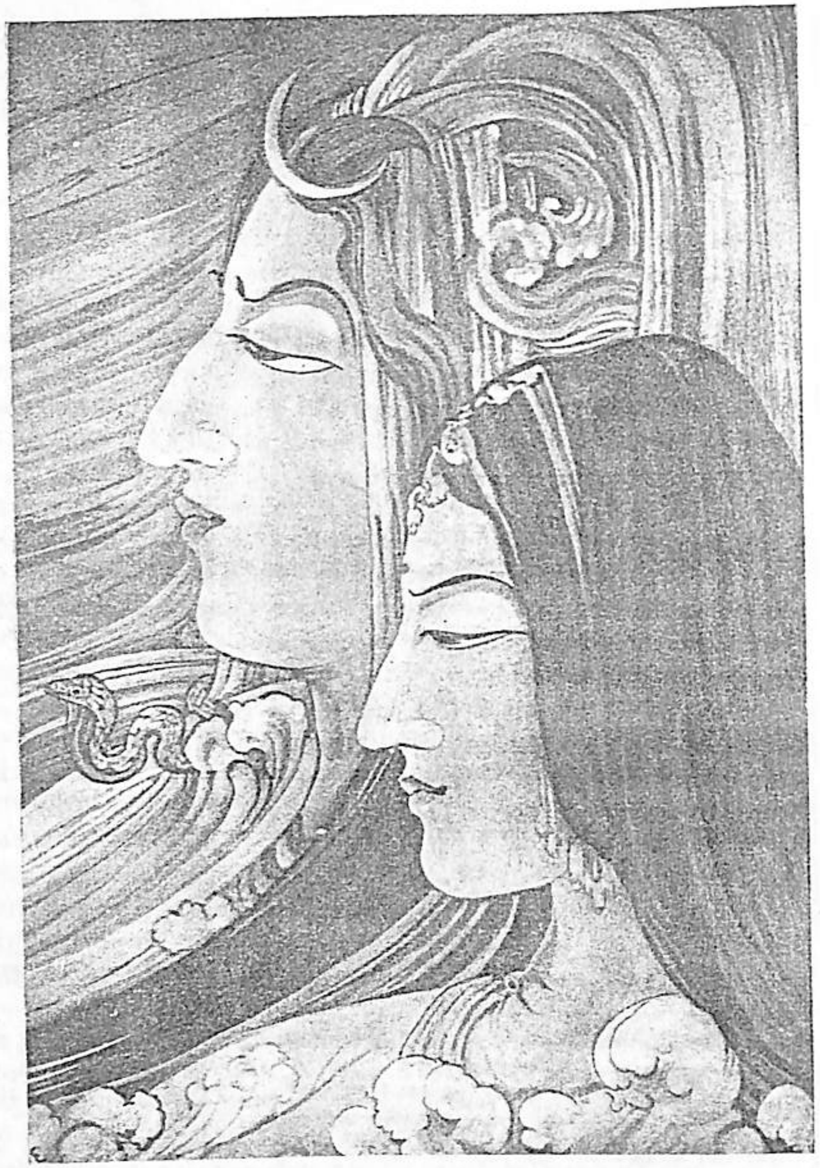
ज़ंज़ीबार-प्रवासी भारतीयों की दुर्दशा

ज़ंज़ीबार की सरकार ने जो नये क़ानून पास किये हैं और जिनका विरोध सी० एफ़० ऐंड्रूज़ जैसे साधु पुरुष बार बार कर चुके हैं उसका भयंकर परिणाम अब दिखाई देने लगा है। हाल में इस सम्बन्ध में बम्बई के प्रसिद्ध नेता सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने भारत-सरकार के पास एक लम्बा खरीता भेजा है, जिसमें ज़ंज़ीबार के भारतीयों की दुर्दशा का ख़ासा वर्णन किया गया है। उसका जो ब्योरा दिया गया है उसमें से कुछ इस प्रकार है—

"पेम्बा के तेजा कानजी नामक एक प्रसिद्ध व्यापारी ने दिवालिया हो जाने के डर से आत्मघात कर लिया है। उसे २५०००) लोगों से वसूल करना था और १८०००) देना था। इसी डर से और १५० भारतीय व्यापारी अपना व्यवसाय छोड़-छोड़कर ज़ंज़ीबार से भाग खड़े हुए हैं। ८० के लगभग वहाँ अभी ऐसे मौजूद हैं जो कारबार छोड़कर बेकार हो गये हैं। २० से अधिक व्यापारियों का दिवाला हो गया है। ७ पर अदालत में मुक़दमे चल रहे हैं और ६० पर मुक़दमे चलाने की तैयारी हो रही है। वहाँ ३१ भारतीय व्यापारी ऐसे थे, जो बाहर माल भेजते थे। उनमें अब कुल ३ रह गये हैं, क्योंकि उन्हें २०००) लायसेन्स फ़ीस देनी पड़ती है। ब्रिटिश रेज़ीडेंट ५०००) तक माँग सकता है। ८० ऐसे भारतीय हैं जो १००) से ३००) तक की साधारण व्यापारिक फ़ीस भी नहीं दे सके। ३१ भारतीयों के यहाँ पहले लौंग के स्टाक थे। अब एक के यहाँ भी नहीं है।

इस प्रकार के उदाहरण देकर उस खरीते-द्वारा भारत-सरकार से शीघ्र ही हस्तक्षेप करने की प्रार्थना की गई है। आशा है, भारत-सरकार ज़ंज़ीबार के भारतीय प्रवासियों की रक्षा करने के लिए उचित कार्रवाई करने को प्रवृत्त होगी।

Printed by K. Mittra at the Indian Press Ltd., Allahabad.



शिव-पार्वती

[प्रोफ़ेसर अमरनाथ झा के सौजन्य से प्राप्त

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

फ़रवरी १९३६ } भाग ३७, खंड १ संख्या २, पूर्ण संख्या ४३४ { माघ १९९२

गीत

लेखक, श्रीयुत निराला

अस्ताचल रवि, जल छलछल-छवि,
स्तब्ध विश्व-कवि-जीवन उन्मन;
मन्द पवन बहती सुधि रह रह,
परिमल की कह कथा पुरातन।
दूर नदी पर नौका सुन्दर,
दीखी मृदुतर बहती ज्यों स्वर,
वहाँ स्नेह की प्रतनु देह की,
बिना गेह की बैठी नूतन।
ऊपर शोभित मेघ छत्र सित,
नीचे अमित नील जल दोलित;
ध्यान-नयन-मन चिन्त्य प्राण-धन;
किया शेष रवि ने कर-अर्पण।

नये विधान का वास्तविक रूप

लेखक, श्रीयुत सीतलासहाय



कहने की आवश्यकता नहीं है कि हमारे देश में नये विधान के स्वागत के लिए ज़ोरदार तैयारियाँ हो रही हैं। प्रत्येक राजनैतिक दल प्रान्तीय असेम्बली में और कौंसिल आफ़ स्टेट में जाने का प्रबन्ध कर रहा है। यहाँ तक कि कांग्रेस ने भी नये सुधारों में हिस्सा लेने का निश्चय कर लिया है और उसके सदस्यों में एक दल ऐसा भी है जो नये विधान के अन्तर्गत सरकारी पदों को भी स्वीकार करने को तैयार दिखाई देता है। ऐसी स्थिति में यह उचित है कि हम नये विधान का वास्तविक रूप जान लें।

इँगलिस्तान के पत्रों में और दुनिया के सामने कुछ लोग इस बात की काफ़ी चर्चा कर रहे हैं कि नये विधान के ज़रिये भारतवासियों को एक ऐसी शासन-प्रणाली प्रदान की गई है जिसमें प्रजातन्त्र का बहुत ज़्यादा अंश है। कुछ लोगों ने तो नये विधान-द्वारा दी हुई प्रान्तीय शासन-प्रणाली को प्रान्तीय 'स्वराज' का भी नाम दे दिया है। इस बात की विशेष आशा नहीं है कि भारतवासी नये विधान के सम्बन्ध में कभी कोई अच्छी राय क़ायम करेंगे, क्योंकि इस देश के किसी भी राजनैतिक दल ने आज तक उसकी प्रशंसा नहीं की है। कांग्रेस-दल, राष्ट्रीय दल, उदार-दल—सभी ने एक-स्वर से उसकी निन्दा ही की है। कांग्रेस की ओर से, पूज्य पंडित मदनमोहन मालवीय जी की ओर से, पंडित हृदयनाथ कुँजरू और मिस्टर सी० वाई० चिन्तामणि की ओर से उसके सम्बन्ध में समय समय पर जो विचार प्रकट होते रहे हैं वे इस ग़लत-फ़हमी के दूर करने के लिए काफ़ी हैं कि नये विधान में कोई अद्भुत बात पैदा की गई है या उसमें प्रजातन्त्र का बहुत ज़्यादा अंश है। तथापि पत्रकार की हैसियत से इस बात को सप्रमाण पुष्ट करने की आवश्यकता है कि नये विधान में प्रजातन्त्र की वैसी कोई अद्भुत बात नहीं है।

नये विधान के अनुसार सम्राट् की ओर से गवर्नर-जनरल और प्रान्तों के गवर्नरों को आदेश-पत्र दिये गये हैं। अँगरेज़ी में इनका नाम 'इंस्ट्रूमेंट आफ़ इन्स्ट्रक्शन' है और ये नये विधान के क़ानून पर छपी होंगे। इन आदेश-पत्रों का मसविदा भी गवर्नमेंट आफ़ इंडिया ऐक्ट के साथ प्रकाशित कर दिया गया है। इन आदेश-पत्रों को पढ़ने से नये विधान का वास्तविक रूप हमारे सामने आ जाता है। आदेश-पत्र दो हैं। एक तो गवर्नर-जनरल के लिए है और दूसरा प्रान्तों के गवर्नरों के लिए।

गवर्नर-जनरल के आदेश-पत्र को पूरा-पूरा इस स्थान पर उपस्थित करना आवश्यक नहीं है। हम यहाँ केवल आदेश नं० १० का अनुवाद देते हैं—

"यह हमारी आज्ञा और इच्छा है कि संघ-सरकार की आर्थिक स्थिति और साख सुरक्षित रखना हमारे गवर्नर-जनरल की 'खास* ज़िम्मेदारी' होगी और इस ज़िम्मेदारी को पूरा करने के लिए हमारे गवर्नर-जनरल के लिए यह आवश्यक है कि वह इस बात का ठीक तौर से इन्तज़ाम रक्खे कि संघ-सरकार के बजट और क़र्ज़ की नीति इस तरह की न हो जाय जिससे उसकी राय में हिन्दुस्तान दुनिया के आर्थिक बाज़ार में अपनी हैसियत खो बैठे या जिससे फ़ेडरेशन को अपनी आर्थिक ज़िम्मेदारियों को पूरी करने में अड़चन पड़े।"

गवर्नर की यह 'खास ज़िम्मेदारी' है कि संघ-सरकार की आर्थिक स्थिति सुरक्षित रक्खे। इसलिए आर्थिक विषय के किसी भी क़ानून को जो प्रजापक्ष से पास होगा, गवर्नर-जनरल को इस विचार पर रोक देने का अख़्तियार रहेगा कि उसकी राय में उससे हिन्दुस्तान की आर्थिक साख के नष्ट होने की सम्भावना है। इतना ही नहीं, आदेश नं० १४ देखिए। उसमें लिखा है—

"हमारे गवर्नर-जनरल को यह अपनी खास ज़िम्मेदारी समझनी चाहिए कि इँग्लैंड के बने हुए माल के खिलाफ़ हिन्दुस्तान में कोई ऐसा क़ानून न बन सके जिससे उस माल पर इतना टैक्स लग जाय या उस पर ऐसी कड़ी बन्दिश कर दी जाय जिससे और माल के मुक़ाबिले में उसका पलड़ा नीचा हो जाय या उसका बिकना असम्भव हो जाय।

"हमारे गवर्नर-जनरल को चाहिए कि अगर उसकी गवर्नमेंट या फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभा इँग्लैंड से या दूसरे देशों से कुछ व्यापारिक समझौते और टैरिफ़* कर के

नये विधान में सम्राट् की ओर से गवर्नर-जनरल और गवर्नरों को बहुत-से विशेषाधिकार दिये गये हैं। इन अधिकारों के होते हुए उसमें प्रजातन्त्रात्मक शासन नाम-मात्र को रह जाता है। इस लेख में बाबू सीतलासहाय ने नये विधान के इसी पहलू पर विचार किया है और देश के विविध राजनैतिक दलवालों से पूछा है कि इस विधान की बंदिशों में रह कर वे अपने उद्देश्य में किस हद तक सफल होंगे?

* नये विधान में दो-चार शब्द ऐसे हैं जिनको प्रारम्भ से ही समझ लेना हमारे लिए लाभदायक रहेगा। 'विशेष ज़िम्मेदारी' उनमें से पहला शब्द है। इसका अर्थ यह होता है कि जिस विषय में गवर्नर या गवर्नर-जनरल की विशेष ज़िम्मेदारी है उस विषय में वह कौंसिल की राय या अपने मंत्रियों की राय लिये बिना ही जो चाहे कर सकता है। इसी सिलसिले में दो और शब्द हैं—'इन हिज़ डिस्क्रीशन' अर्थात् अपने मज़ाज़ से और 'इन हिज़ इन्डिवीडुअल जजमेंट' अर्थात् अपनी राय के अनुसार। इन दो शब्दों का प्रयोग नये विधान में ख़ूब हुआ है। गवर्नर और गवर्नर-जनरल बहुत-सी बातें अपने 'मज़ाज़' से कर सकते हैं और बहुत-सी बातें अपने 'निज़ाज' से, अर्थात् अपनी राय से। जिन बातों में उन्हें इस प्रकार की छूट मिली है उन बातों में वे बिना अपने मंत्रियों या अपनी व्यवस्थापक सभा से पूछे शासन कर सकेंगे। इसका मतलब यह नहीं है कि उन्हें उन बातों में निरंकुशता हासिल होगी। नये विधान में यह साफ़ कह दिया गया है कि जिन बातों में गवर्नर या गवर्नर-जनरल को अपने 'मज़ाज़' से या 'निज़ाज' से काम करने का हक़ है उन बातों में वे भारत-सचिव के अधीन होंगे।

* टैरिफ़-कर उस चुंगी का नाम है जो विदेश से आये हुए माल पर देश में आते समय लगाया जाता है।

सम्बन्ध में पारस्परिक रियायतों का मुआहिदा कर रही है और इस तरह अपनी आर्थिक और व्यापारिक नीति का निर्माण कर रही है तो वह हस्तक्षेप न करे। लेकिन अगर वह देखे कि उसकी गवर्नमेंट या व्यवस्थापक सभा की नीति से भारतवर्ष की इतनी आर्थिक भलाई नहीं है जितनी यह बात है कि इँग्लेंड के व्यापार को व्यापारिक प्रतिबन्धों से नुक़सान पहुँचाया जाय तो उसे टैरिफ़-कर-सम्बन्धी नीति के निर्माण में और समझौते की बात-चीत में हस्तक्षेप करना चाहिए। और हम उसे हुक्म देते हैं और ताक़ीद करते हैं कि अगर प्रत्यक्ष पक्षपात किया जा रहा है (जैसे यदि इँग्लेंड से आये माल पर दूसरे देशों की अपेक्षा ज़्यादा कर लगाया जाता है या और देशों की अपेक्षा इँग्लेंड के माल को भारतवर्ष में आने से ही रोका जाता है) या अप्रत्यक्ष पक्षपात किया जा रहा है (जैसे, भिन्न-भिन्न माल के ऊपर भिन्न-भिन्न कर लगाया जाता है) तो हमारे गवर्नर-जनरल की यह ख़ास ज़िम्मेदारी है कि ऐसे कर और प्रतिबन्धों को न लगने दे। वह उन क़ानूनों को भी रद कर दे जो ज़ाहिरा तो पक्षपात-पूर्ण नहीं हैं, लेकिन वास्तव में उनका प्रभाव वही पड़ेगा जो पक्षपात-पूर्ण क़ानूनों का।"

यह आदेश कितना अधिक व्यापक है और इसका राष्ट्रीय आर्थिक नीति पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह अपने आप स्पष्ट है।

सच तो यह है कि नये विधान में गवर्नर-जनरल को और (गवर्नरों को भी) इतने अधिकार दे दिये गये हैं कि जो कुछ नाममात्र की प्रजातन्त्रता नये विधान में है वह भी उनसे ख़त्म हो जाती है। भारतीय जनता जिन बातों में सुधार करने का प्रयास बरसों से कर रही है और जिस अर्थ-नीति का प्रतिपादन राष्ट्रीय दल बहुत दिनों से करता आया है उन सब बातों में नये विधान के अनुसार भारतवर्ष के प्रतिनिधि सम्पूर्ण रूप से गवर्नर-जनरल, भारत-सचिव और ब्रिटिश शासक-मण्डली के अधीन रहेंगे। और देखिए। आदेश नं० २७ में लिखा है—

"हमारे गवर्नर-जनरल का कर्तव्य है कि वे हमारे नाम पर किसी ऐसे क़ानून के मसविदे को स्वीकार न करें, बल्कि उसे हमारे हुक्म के लिए हमारे पास भेज दें—

(१) जिसकी दफ़ायें ब्रिटिश भारत पर लागू होनेवाले पार्लियामेंट के किसी भी क़ानून की दफ़ाओं के ख़िलाफ़ हैं या उनको मनसूख़ करती हैं।

(२) जो किसी प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा ने पास करके उनके पास विचार के लिए भेजा है और जिससे बन्दोबस्त इस्तमरारी में फ़र्क़ आता है।

(३) जिसके बारे में उनको यह शक हो कि उससे आदेश नं० १४ में बयान किया हुआ व्यापारिक पक्षपात होता है।"

फ़ौज के बारे में यह आदेश है—

"यह हमारी आज्ञा है कि गवर्नर-जनरल फ़ौज का ख़र्च अपने मज़ाज़ से कर सकता है, लेकिन संघ-सरकार के ख़ज़ाने के मुहकमे को इस ख़र्च के सम्बन्ध में बराबर परिचित रखने का उचित प्रबन्ध कर लेना चाहिए। फ़ौज के ख़र्च का तख़मीना बनाने के पहले और उसे फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभा के सामने रखने के पहले अर्थ-सचिव और अर्थ-विभाग की सलाह ले लेनी चाहिए (आदेश नं० १९)।

"यह हमारी आज्ञा और इच्छा है कि फ़ौजी मुहकमें के प्रबन्ध के मामले में हमारे गवर्नर-जनरल को चाहिए कि वे कमांडर-इन-चीफ़ की राय ऐसे मामलों में ले लें जिन मामलों में कमांडर-इन-चीफ़ के कर्तव्य का प्रश्न है और अगर कमांडर-इन-चीफ़ कहें तो हमारे भारत-सचिव के पास उनकी राय भेजकर पत्र-व्यवहार कर लें (आदेश नं० १८)।"

मुसलमान, हिन्दू और हरिजनों के स्वत्व-सम्बन्धी झगड़ों के फ़ैसला करने की विशेष ज़िम्मेदारी गवर्नर-जनरल की है। आदेश नं० ११ देखिए—

"हमारे गवर्नर-जनरल को यह अपनी ख़ास ज़िम्मेदारी समझनी चाहिए कि वह अल्पसंख्यक लोगों के मुनासिब स्वत्वों की रक्षा करे और इस बात का प्रबन्ध करे कि उन जातीय या धार्मिक सम्प्रदायों के लोगों पर जिनको फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभा में ख़ास प्रतिनिधित्व मिला है या उन वर्गों पर जो अपनी संख्या की कमी के कारण या शिक्षा या सम्पत्ति के अभाव की वजह से या किसी दूसरे

कारणों से फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभा में संयुक्त राजनैतिक चेष्टा से अपने स्वत्वों की रक्षा नहीं कर सकते, उन पर कोई ज़ुल्म न हो और न बेपरवाही हो और न ज़ुल्म तथा बेपरवाही से डरने के कोई कारण पैदा हों।

"हमारे गवर्नर-जनरल को यह अपनी ख़ास ज़िम्मेदारी समझनी चाहिए कि हमारी नौकरियों में वे अनेक सम्प्रदायों को मुनासिब हिस्सा दें। उनका कर्तव्य है कि इस मामले में इस आदेश-पत्र के निकलने के पहले जो नीति चल रही थी उसी का अवलम्बन करें। लेकिन अगर पूर्ण रूप से उन्हें इस बात का विश्वास हो जाय कि सार्वजनिक हित के लिए या उन सम्प्रदायों की भलाई की दृष्टि से यह आवश्यक है कि इस नीति में परिवर्तन किया जाय तो वे परिवर्तन कर सकते हैं।"

संघ-सरकार की व्यवस्थापक सभा निम्नलिखित विषयों पर बिना पहले गवर्नर-जनरल की मंज़ूरी लिये कोई क़ानून नहीं बना सकती।

नये विधान की १०८ वीं दफ़ा में लिखा है—"जब तक गवर्नर-जनरल अपने मज़ाज़ से स्वीकृति देना उचित नहीं समझते तब तक न तो फ़ेडरेल असेम्बली में और न कौंसिल आफ़ स्टेट में कोई ऐसा बिल या संशोधन पेश हो सकता है जो—

(क) पार्लियामेंट के किसी ऐसे क़ानून के जो ब्रिटिश भारत पर लागू है, ख़िलाफ़ हो या उसका संशोधन करता हो या उसको मंसूख़ करता हो।

(ख) गवर्नर-जनरल के द्वारा या गवर्नर के द्वारा बनाये हुए किसी क़ानून या उनकी क़लम से निकाले हुए किसी भी आर्डिनेंस के ख़िलाफ़ हो, उसका संशोधन करता हो या उसे मंसूख़ करता हो।

(ग) जिन बातों में वर्तमान विधानानुसार गवर्नर-जनरल को अपने मज़ाज़ से या मिज़ाज से शासन करने का अख़्तियार हासिल है उन पर हस्तक्षेप करता हो।

(घ) पुलिस से सम्बन्ध रखनेवाले किसी भी क़ानून पर हस्तक्षेप करता हो, उसका संशोधन करता हो या उसे मंसूख़ करता हो।

(च) किसी भी फ़ौजदारी की अदालती कार्रवाई पर असर रखता हो, जिस कार्रवाई में योरपीय ब्रिटिश रिआया का सम्बन्ध है।

(प) जो भारत से बाहर रहनेवाले लोगों पर भारत के रहनेवाले लोगों की अपेक्षा अधिक टैक्स बाँधता हो या जिन कम्पनियों का ब्रिटिश भारत में प्रबन्ध या संचालन नहीं होता है उन पर भारत की कम्पनियों की अपेक्षा अधिक कर बाँधता हो।

फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभा को या प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा को इस बात का अख़्तियार नहीं है कि वह—

(१) ऐसा क़ानून बना ले जिसका भारत के सम्बन्ध में या भारतवर्ष के किसी भी भाग के सम्बन्ध में पार्लियामेंट के क़ानून बनाने के हक़ पर हस्तक्षेप होता हो।

(२) या ऐसा क़ानून बना ले जिसका सम्राट् पर या सम्राट के कुटुम्ब पर या उनके उत्तराधिकार पर या भारतवर्ष में या उसके किसी भाग में सम्राट् के आधिपत्य पर प्रभाव पड़ता हो या ब्रिटिश क़ौम के क़ानून पर, फ़ौजी क़ानून पर, हवाई सेना के क़ानून पर 'नेवल डिसिप्लिन ऐक्ट' पर कोई असर पड़ता हो।

(३) या कोई ऐसा क़ानून बना ले जिसका नये विधान की धाराओं पर या प्रिवी कौंसिल के आर्डर या भारत-सचिव के बनाये हुए या गवर्नर-जनरल या गवर्नर-द्वारा अपने क़लम से या अपनी स्वेच्छा से बनाये हुए किसी क़ायदे पर असर पड़ता हो।

(४) या जो सम्राट् के उस विशेषाधिकार पर प्रभाव डाले जो किसी अदालत के फ़ैसले के ख़िलाफ़ अपील की इजाज़त देने के सम्बन्ध में उन्हें हासिल है (११०)।"

फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभाओं में टैक्स-सम्बन्धी कोई बिल इस प्रकार का नहीं पेश हो सकता जिससे प्रान्तों को दिलचस्पी हो (१४१)।

फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभायें किसी भी ऐसे बिल पर विचार नहीं कर सकतीं जिससे टैक्स लगता हो या बढ़ता हो, क़र्ज़ लेने या उसकी मात्रा निर्धारित करने के सम्बन्ध में हो या जो किसी ख़र्च को फ़ेडरेल सरकार के ख़ज़ाने से बतौर ख़र्च स्वीकृति दिलाता हो, जब तक गवर्नर-जनरल ने उस बिल को पेश करने की स्वीकृति न दी हो।

गवर्नर-जनरल को यह भी अख़्तियार है कि अपनी क़लम से अर्थात् बिना किसी से पूछे क़ानून बना डालें। ऐसे क़ानून 'गवर्नरजनरल्स ऐक्ट' कहलायेंगे। गवर्नर-जनरल आर्डिनेंस भी बना सकते हैं और गवर्नर-जनरल 'घोषणा' करके विधान के द्वारा दिये हुए प्रजातंत्र के सम्पूर्ण अधिकारों को अपने हाथ में ले सकते हैं।

गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकार—

किसी भी समय जब फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभा की परिषद् न हो रही हो, यदि गवर्नर-जनरल को इस बात का यक़ीन हो जाय कि ऐसी परिस्थिति पैदा हो गई है कि उनके लिए यह ज़रूरी है कि वे कुछ कार्रवाई फ़ौरन करें तो उन्हें अख़्तियार है कि जिस क़िस्म का आर्डिनेंस वे आवश्यक समझें, निकाल दें। इस आर्डिनेंस का वही महत्त्व होगा जो व्यवस्थापक सभा-द्वारा किसी भी क़ानून का होता है। लेकिन शर्त यह है कि यह आर्डिनेन्स फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभा के सामने ६ महीने के अन्दर पेश करा के पास करा लिया जाय। अन्यथा यह ६ महीने के बाद मंसूख़ समझा जायगा (४२)।

अगर किसी भी समय (चाहे व्यवस्थापक सभाओं की परिषद् हो रही हो या न हो रही हो) गवर्नर-जनरल को यह विश्वास हो जाय कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है कि वे अपने कर्तव्य का पालन करने के हित में या उन ज़िम्मेदारियों को पूरा करने के लिए जिन पर उन्हें स्वेच्छा से या विशेषाधिकार से अमल करने का हक़ है, कोई कार्रवाई करें तो वे जिस प्रकार का आर्डिनेंस चाहें, जारी कर सकते हैं। (४३) इस धारा के अनुसार जो आर्डिनेंस जारी किया जायगा वह ६ महीने तक जारी रहेगा, लेकिन ६ महीने के बाद फिर ६ महीने तक के लिए बढ़ाया जा सकता है। लेकिन ऐसी स्थिति में आर्डिनेंस की नक़ल भारत-सचिव के पास भेजी जायगी और हाउस आफ़ लार्ड्स और हाउस आफ़ कामन्स के सामने पेश की जायगी।

आर्डिनेंस निकालने के अलावा गवर्नर-जनरल को यह भी अख़्तियार है कि बिना व्यवस्थापक सभा की मंज़ूरी के क़ानून बना दें। ये क़ानून 'गवर्नर-जनरल के क़ानून' के नाम से प्रसिद्ध होंगे (४४)।

अगर गवर्नर-जनरल को यह विश्वास हो जाय कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है कि फ़ेडरेशन की गवर्नमेंट को इस विधान के अनुसार चलाना असम्भव हो गया है तो उनको अख़्तियार है कि वे एक 'घोषणा' अपनी ओर से जारी करें और जो अख़्तियार संघ-सरकार की व्यवस्थापक सभा को प्राप्त हैं या किसी भी शासन-मण्डली को प्राप्त हैं, सबके सब उन संस्थाओं से लेकर अपने हाथ में कर लें (४५)। दफ़ा ४५ के अनुसार विशेष स्थिति में गवर्नर-जनरल संघ-सरकार में प्रजा को प्राप्त अधिकारों का अपहरण करके अपनी इच्छा से शासन कर सकेंगे। यह 'घोषणा' तुरन्त भारत सचिव के पास भेजी जायगी, जो उसे पार्लियामेंट के सामने रख देंगे। यह 'घोषणा' दूसरी घोषणा से संशोधित हो सकेगी। पार्लियामेंट को अधिकार है कि अपने प्रस्ताव-द्वारा इस घोषणा को जब तक चाहे क़ायम रक्खे। अगर कभी ऐसा हो जाय कि हिन्दुस्तान का शासन घोषणा-द्वारा ही तीन वर्ष तक बराबर करना पड़े तो तीन बरस के बाद घोषणा मंसूख़ समझी जायगी और पार्लियामेंट भारतवर्ष के शासन का काम स्वयं करेगी। नये विधान में फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभा को यह भी हक़ नहीं है कि इस देश के व्यवसाय, व्यापार आदि की रक्षा और उन्नति के लिए जिस प्रकार का क़ानून चाहे, बना ले। गवर्नर-जनरल की यह ख़ास ज़िम्मेदारी है कि वे अपने अख़्तियार से तमाम ऐसे क़ानूनों को रद कर दें जिनसे ब्रिटिश या बर्मा के बने हुए माल पर विषम व्यवहार होता हो। फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभा में कोई भी क़ानून ऐसा नहीं बनाया जा सकता जिससे ब्रिटिश व्यापार को नुक़सान पहुँचे। ब्रिटिश कम्पनियों के लिए और ब्रिटिश व्यापार तथा व्यापारियों के लिए न तो फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभा और न प्रान्तीय व्यवस्थापक सभायें ऐसा क़ानून बना सकती हैं जिससे उन्हें नुक़सान पहुँचता हो। कोई क़ानून जिससे किसी अँगरेज़ का हिन्दुस्तान में आना, व्यापार करना, जायदाद हासिल करना या नौकरी करना या कोई पेशा करना रुकता हो, नाजायज़ समझा जायगा (१११)। भारत में रजिस्ट्री की हुई कम्पनियों के साथ इँगलैंड में

रजिस्ट्री की हुई कम्पनियों की अपेक्षा कोई रियायत नहीं दी जा सकती (११२)।

व्यवसाय की उन्नति के लिए अगर कोई रियायत भारत की कोई सरकार भारतीय कम्पनियों को देगी तो उसी प्रकार की रियायत उसे ब्रिटिश कम्पनी को भी देनी होगी (११६)।

प्रान्त के गवर्नरों को जो आदेश पत्र मिला है वह भी क़रीब क़रीब गवर्नर-जनरल के आदेश-पत्र के समान ही है। गवर्नर का आदेश नं० १८ वही है जो गवर्नर-जनरल का आदेश नं० २७ है। गवर्नर का आदेश नं० १० वही है जो गवर्नर जनरल का आदेश नं० ११ है। इसी प्रकार जितनी विशेष ज़िम्मेदारियाँ गवर्नर-जनरल को हैं, गवर्नरों को भी प्राप्त हैं।

प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं में बिना गवर्नर-जनरल की मंज़ूरी के कोई ऐसा क़ानून पेश ही नहीं किया जा सकता जो—

(क) पार्लियामेंट के किसी ऐसे क़ानून के जो ब्रिटिश भारत पर लागू है, ख़िलाफ़ हो या उसका संशोधन करता हो या उसको मंसूख़ करता हो।

(ख) गवर्नर-जनरल के द्वारा या गवर्नर के द्वारा बनाये हुए किसी क़ानून या उनकी क़लम से निकाले हुए किसी भी आर्डिनेंस के ख़िलाफ़ हो, उसका संशोधन करता हो या उसे मंसूख़ करता हो।

(ग) जिन बातों में वर्तमान विधानानुसार गवर्नर-जनरल को अपने 'मजाज' से या 'मिज़ाज' से [illegible] का अख़्तियार हासिल है उन पर इसके [illegible]

प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा में बिना उ[illegible] गवर्नर की मंज़ूरी के कोई क़ानून पेश नहीं हो [illegible]

(१) गवर्नर के क़ानून को या उनके द्वारा [illegible] किसी आर्डिनेंस के ख़िलाफ़ हो, उस[illegible] करता हो या उसे रद करता हो।

(२) पुलिस से सम्बन्ध रखनेवाले किसी क़ानू[illegible] करता हो, उसका संशोधन करता हो या [illegible] करता हो। जिस प्रकार गवर्नर-जनरल [illegible] प्रकार गवर्नर को भी अख़्तियार हासिल [illegible] चाहे अपने अख़्तियार से आर्डिनेंस [illegible] (दफ़ा ८८-८९), अपने अख़्तियार से क़ा[illegible] सकते हैं (दफ़ा ९०) और 'घोषणा' [illegible] सकते हैं (९३)।

प्रश्न यह है कि नये विधान में जब इ[illegible] हैं तब फिर राष्ट्रीय दल उसके अनुसार देश की [illegible] प्रकार करेगा। जो लोग नये विधान को स्वीका[illegible] तैयार हो रहे हैं उनका भी यह कर्तव्य है कि [illegible] ख़ूबियों को प्रकट करें। इसी प्रकार जो कांग्रेस[illegible] पदग्रहण करने की बात सोच रहे हैं उनको भी [illegible] चाहिए कि उनका क्या उद्देश है और नये [illegible] बन्दिशों में रहकर वे अपने उद्देशों में कि[illegible] सफल होंगे।

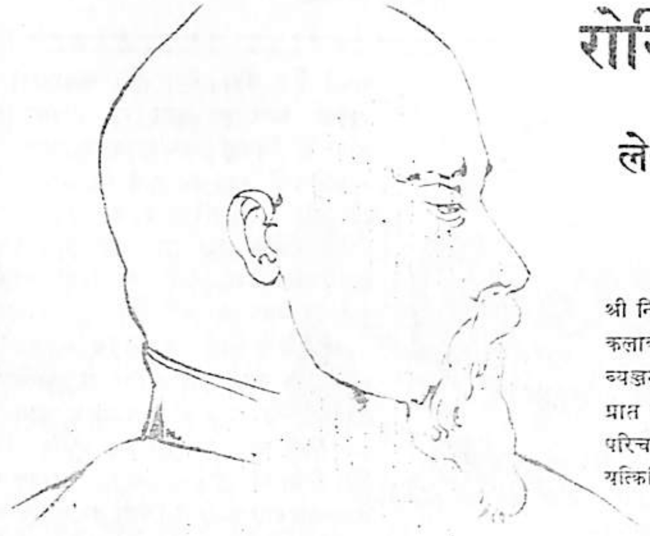
अपराध

लेखक, श्रीयुत हरिकृष्ण 'प्रेमी'

स्नेहमयी मा, निज प्राणों के,
मधुर नीड में मुझको पाला।
पर उड़ चला हुआ मैं जिस दिन
थोड़ा-सा भी उड़नेवाला॥
गगन लाल था सकल विहग-दल,
उड़ते थे अंबर की ओर।

मैं कैसे रुकता मेरे भी,
पङ्ख कर उठे थे कुछ [illegible]
इतना-सा अपराध तुम्हारा,
आँखों को किसलिए न [illegible]
द्वार बन्द कर लिया, कहो क्यों,
संध्या को जब मैं घर आ[illegible]

रोरिक की चित्रकला



लेखक, श्रीयुत रामचन्द्र टंडन, एम० ए०

श्री निकोलस रोरिक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के कलाकार हैं। उन्होंने चित्राङ्कण में अपनी व्यञ्जनात्मक भावना में अत्यधिक सफलता प्राप्त की है। ऐसे ही सिद्ध कलाकार का संक्षिप्त परिचय तथा उनकी महत्त्वपूर्ण कला का यत्किञ्चित् दिग्दर्शन लेखक महोदय ने अपने लेख में कराया है।

कलाकार निकोलस रोरिक की प्रतिभा बहुमुखी है। वे न केवल एक जगद्विख्यात चित्रकार हैं, वरन एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक, पुरातत्त्व-विद्, अन्वेषक, दार्शनिक और कवि भी हैं। हमें उनकी कृतियों में पूर्व की गहन कल्पना का, तथा पाश्चात्य की दृढ़ कार्य-शीलता का अपूर्व और सुंदर संयोग मिलता है।

कविवर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने रोरिक के चित्रों को देखकर उन्हें लिखा था—"आपके चित्रों ने मुझ पर गहरा प्रभाव डाला है। उनके द्वारा मुझे एक ऐसी बात का अनुभव हुआ जो कि स्पष्ट है, परन्तु जिसे प्रत्येक व्यक्ति को अपने लिए बार-बार खोजने की आवश्यकता है, अर्थात् सत्य असीम है। आपके चित्र स्पष्ट हैं, फिर भी उनका वर्णन शब्दों की सीमा में नहीं आ सकता। आपकी कला महान् है, इसी हेतु वह अपनी स्वतंत्रता के लिए सतर्क है।"

निकोलस रोरिक का जन्म सन् १८७४ ईसवी में, १० अक्तूबर को, रूस के प्रसिद्ध नगर सेंट पीटर्सबर्ग में हुआ था। उनके पिता एक सुविख्यात बैरिस्टर थे। दस वर्ष की अवस्था से ही बालक रोरिक की चित्राङ्कण में अभिरुचि थी। पन्द्रह वर्ष की अवस्था



को प्राप्त करते करते उन्होंने इस कार्य में अच्छा अभ्यास कर लिया था। वे कला-विषयक लेख तथा चित्र सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में भेजने लगे थे और ये लेख तथा चित्र प्रकाशित भी होते थे। पिता की इच्छा थी कि वे क़ानून की शिक्षा प्राप्त करके उनके कार्य में सहायता दें। इस शिक्षा के लिए वे सेंट पीटर्सबर्ग की यूनिवर्सिटी में भरती भी हुए। वहाँ उन्होंने क़ानून का अच्छा अनुशीलन किया, परन्तु उन्हें कला से विशेष प्रेम था। अतएव वे वहीं की 'एकेडेमी आव् फ़ाइन आर्ट्स' में प्रविष्ट होकर चित्र-कला सीखते रहे और यहाँ से भी यथा-समय स्नातक-पद प्राप्त किया। इस एकेडेमी में रोरिक ने ऐसी प्रतिभा दिखाई कि एक वर्ष में उन्होंने तीन दर्जे पास कर लिये। कुछ दिनों तक उन्होंने पेरिस में भी चित्रकला सीखी। सन् १८९६ से सन् १९१६ तक वे अपने देश में ललित-कला तथा पुरातत्त्व से सम्बद्ध अनेक संस्थाओं के सभापति अथवा उत्साही कार्यकर्ता रहे। इस बीच वे चित्राङ्कण के अतिरिक्त कतिपय कला-सम्बन्धी पत्रों का सम्पादन भी करते रहे और राजकीय पुरातत्त्व-समिति के तत्त्वावधान में अध्यापक भी रहे। इन्हीं वर्षों में उन्होंने अपने चित्राङ्कण में उस विशेष शैली का विकास किया जिसे हम उनके नाम के साथ सम्बद्ध करते हैं और जिसके थोड़े ही वर्षों में योरप में अनेक अनुयायी या नक़ल करनेवाले हो गये।

रूसी राज्यक्रांति से कुछ समय पूर्व रोरिक फ़िनलेंड चले गये थे। राज्यक्रांति के अनन्तर सोवियट सरकार ने उन्हें ललित-कलाओं के मंत्री का पद देने का प्रस्ताव किया, परन्तु इसे उन्होंने स्वीकार नहीं किया और वे रूस न लौटे। उनका विशाल कला-सम्बन्धी संग्रह सोवियट सरकार-द्वारा ज़ब्त कर लिया गया। फ़िनलेंड से वे स्वीडेन और डेनमार्क गये और रूस से बाहर ही घूमते तथा चित्र-कला का प्रदर्शन करते रहे। सन् १९२० में वे लंदन में थे और यहाँ पर भी उन्होंने अपने चित्रों की प्रदर्शिनी की। जहाँ जहाँ वे गये, उनके अनुयायियों की संख्या बढ़ी तथा उनकी विशेष शैली का सम्मान हुआ।

सन् १९२० में रोरिक महोदय का कार्यक्षेत्र योरप से अमरीका में परिवर्तित हुआ। इस वर्ष उनको शिकागो नगर की एक प्रसिद्ध कला-संस्था की ओर से अमरीका आकर अपनी चित्रकला का प्रदर्शन करने का निमन्त्रण मिला। इस अवसर से लाभ उठाकर उन्होंने यूनाइटेड स्टेट्स के लगभग चालीस प्रमुख नगरों में अपने चित्रपटों का प्रदर्शन किया तथा उन पर व्याख्यान भी दिये। अमरीका में रोरिक के प्रशंसकों तथा अनुयायियों की संख्या बहुत बढ़ी। सन् १९२३ में वहाँ के कुछ मित्रों ने तथा संस्थाओं ने मिलकर प्रसिद्ध रोरिक-म्यूज़ियम की स्थापना की। रोरिक-म्यूज़ियम तथा यूनाइटेड स्टेट्स की सरकार की ओर से प्रायः बारह वर्षों से रोरिक मध्य-एशिया में अन्वेषण का कार्य भी कर रहे हैं और भारत की सीमा में, पञ्जाब की सुरम्य कुलू-घाटी में, नग्गर नामक स्थान पर उनकी एक संस्था भी स्थापित हो गई है, जहाँ से इस अन्वेषण का कार्य चलता रहता है। इस संस्था का नाम "उरुस्वती हिमालयन रिसर्च इन्स्टीट्यूट" है और यह अमरीका के रोरिक-म्यूज़ियम की एक शाखा है।

सन् १९२४ से लेकर आज तक रोरिक महोदय हिंदुस्तान, छोटा तिब्बत, काराकोरम, चीनी तुर्किस्तान, तिब्बत, मंगोलिया आदि देशों की कई बार यात्रा कर चुके हैं और इस बीच में न केवल उन्होंने वैज्ञानिक अध्ययन की प्रचुर सामग्री ही प्राप्त की है, वरन इन प्रदेशों की संस्कृति तथा जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले हज़ारों चित्रपट भी तैयार किये हैं। चित्रकला को वे एक सार्वलौकिक भाषा सदा बताते रहे हैं, और इस भाषा-द्वारा वे पूर्व तथा पाश्चात्य की विभिन्न संस्कृतियों में संपर्क स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं।

रोरिक महोदय का मुख्य कार्य कला के ही क्षेत्र में रहा है। यह बात कही गई है कि "विज्ञान के क्षेत्र में जो स्थान आइन्स्टाइन को तथा उद्योग के क्षेत्र में फ़ोर्ड को प्राप्त है, वही स्थान कला के क्षेत्र में रोरिक को प्राप्त है।" रोरिक की कला का मूल्य आँकने का कार्य सहज नहीं है। कारण यह है कि इस क्षेत्र में भी इस दीर्घ काल में, रोरिक की रचनात्मक प्रतिभा इतने विविध रूपों में और इतने बाहुल्य के साथ प्रकट हुई है और उनके संबंध में साहित्य इतना प्रचुर है और अनेक भाषाओं तथा देशों में फैला हुआ है कि हम केवल कुछ अंशों की झलक पा सकते हैं तथा उनका परिचय दे सकते हैं। रोरिक ने अपने जीवन में लगभग साढ़े तीन हजार चित्र अंकित किये हैं, जो पचीस से अधिक देशों में, सैकड़ों निजी तथा सार्वजनिक संग्रहों में फैले हुए हैं। हजार से अधिक चित्रपट तो केवल न्यूयार्क के रोरिक-म्यूज़ियम में ही एकत्र हैं। इसके अतिरिक्त उनके चित्रों के निर्माण-काल में भी एक-दूसरे के बीच महान् अंतर है। सारांश यह कि सम्पूर्ण रूप से रोरिक के चित्रों का अध्ययन करना आज अत्यंत कठिन है।



[शान्ति की जननी।]

फिर भी ऐसी कला के पारखी जिन्होंने रोरिक के समस्त चित्रों का अवलोकन तथा अध्ययन किया है, इस बात में सहमत हैं कि रोरिक महोदय का स्थान न केवल रूसी चित्रकला के इतिहास में महत्त्वपूर्ण है, वरन संसार के चित्रकला के इतिहास में।

रोरिक महोदय की जन्मभूमि रूस अवश्य है और उनका शिक्षण भी अधिकांश वहीं हुआ है, परन्तु उनकी चित्रकला किसी रूसी चित्र-परंपरा के अंतर्गत नहीं आती। मौलिकता उनके चित्रों की महान् विशेषता है। वे अपनी विशेष शैली जिसे 'रोरिक-शैली' कहते हैं, के निर्माता हैं। और यह शैली उनके गहन चिंतन तथा विस्तृत अध्ययन का परिणाम है।

स्पेन के प्रसिद्ध चित्रकार ज़ुलोआगा ने इन चित्रों की मौलिकता के अतिरिक्त उनकी सार्वलौकिकता तथा भविष्य पर प्रभाव का भी अनुभव किया है। वे लिखते हैं—"महान् कलाकार! हमें इस बात का प्रमाण मिल रहा है कि रूस से एक बड़ी शक्ति संसार में अवतरित हो रही है। मैं उसका



[ज्योति अन्धकार पर विजय प्राप्त करती है।]

अनुमान नहीं करता, उसका वर्णन नहीं कर सकता, लेकिन वह वहाँ है अवश्य।" स्पेन के प्रसिद्ध चित्रकार के ही भावों का उद्गार अपने अनुपम ढंग से कविवर रवीन्द्रनाथ ने भी किया है। दोनों ही रोरिक की कृतियों से प्रभावित हैं तथा दोनों ही उन्हें वर्णन के बंधन में लाने में संकोच प्रदर्शित करते हैं।

रोरिक की सार्वलौकिकता का रहस्य कदाचित् उनकी आध्यात्मिकता में है। एक आलोचक ने लिखा है—"जहाँ कुछ कला-प्रेमियों में, रोरिक के चित्र, अपने रंगों की व्यवस्था तथा आकृतियों के कारण श्रद्धा उत्पन्न करते हैं, वहाँ औरों के लिए वे आंतरिक चिंतन के आधार-स्वरूप बन जाते हैं।"

रंगों के सजावट के विषय में विशेष नहीं कहना है। रोरिक रंगों के जादूगर कहे गये हैं। रोरिक के चित्रपटों को देखनेवाले ही उनके चमत्कार का यथार्थ रूप में अनुभव कर सकते हैं। चीन देश के कलाकारों ने उनका स्वागत करते हुए कहा था—"आप शब्द और छाया के चित्रण का सामर्थ्य रखते हैं।" अन्य समालोचकों का कहना है कि रोरिक के चित्रों में हमें एक चतुर्थ-परिमाण के गुण मिलते हैं। यह प्रभाव रोरिक महोदय निस्संदेह अपने विस्तृत शिल्प-ज्ञान तथा रंगों की चमत्कारिक व्यवस्था द्वारा ही उत्पन्न कर सके हैं।

रोरिक के चित्रों के विषय में एक प्रमुख बात यह है कि उनमें एक प्रकार से भविष्यवाणी की गई है। ऐसे चित्रों में स्पष्ट उनके ज्ञान, मनन और पारदर्शिता का निरूपण कर सकेंगे। ऐसे बहुत-से लोग हैं जो यह जानने के लिए उत्सुक रहते हैं कि आज-कल रोरिक किन चित्रों का अंकण कर रहे हैं। उनका कहना है कि रोरिक के चित्रों में भविष्य में घटित होनेवाली घटनाओं के संकेत मिलते हैं। रोरिक के विषय में जो साहित्य प्रकाशित हुआ है उसमें इस बात का कई स्थलों पर वर्णन आया है। कहा जाता है कि सन् १९१३ तथा १९१४ में रोरिक महोदय ने जो चित्र अंकित किये थे उनमें जगद्व्यापी महायुद्ध की भविष्यवाणी थी। रोरिक के कुछ



[पवित्र नेपाल।]



रोरिक महोदय का मुख्य कार्य कला के ही क्षेत्र में रहा है। यह बात कही गई है कि "विज्ञान के क्षेत्र में जो स्थान आइन्स्टाइन को तथा उद्योग के क्षेत्र में फ़ोर्ड को प्राप्त है, वही स्थान कला के क्षेत्र में रोरिक को प्राप्त है।" रोरिक की कला का मूल्य आँकने का कार्य सहज नहीं है। कारण यह है कि इस क्षेत्र में भी इस दीर्घ काल में, रोरिक की रचनात्मक प्रतिभा इतने विविध रूपों में और इतने बाहुल्य के साथ प्रकट हुई है और उनके संबंध में साहित्य इतना प्रचुर है और अनेक भाषाओं तथा देशों में फैला हुआ है कि हम केवल कुछ अंशों की झलक पा सकते हैं तथा उनका परिचय दे सकते हैं। रोरिक ने अपने जीवन में लगभग साढ़े तीन हज़ार चित्र अंकित किये हैं, जो पचीस से अधिक देशों में, सैकड़ों निजी तथा सार्वजनिक संग्रहों में फैले हुए हैं। हज़ार से अधिक चित्रपट तो केवल न्यूयार्क के रोरिक-म्यूज़ियम में ही एकत्र हैं। इसके अतिरिक्त उनके चित्रों के निर्माण-काल में भी एक-दूसरे के बीच महान् अंतर है। सारांश यह कि समष्टि रूप से रोरिक के चित्रों का अध्ययन करना आज अत्यंत कठिन है।



[शान्ति की जननी।]

फिर भी ऐसी कला के पारखी जिन्होंने रोरिक के समस्त चित्रों का अवलोकन तथा अध्ययन किया है, इस बात में सहमत हैं कि रोरिक महोदय का स्थान न केवल रूसी चित्रकला के इतिहास में महत्त्वपूर्ण है, वरन संसार के चित्रकला के इतिहास में।

रोरिक महोदय की जन्मभूमि रूस अवश्य है और उनका शिक्षण भी अधिकांश वहीं हुआ है, परन्तु उनकी चित्रकला किसी रूसी चित्र-परंपरा के अंतर्गत नहीं आती। मौलिकता उनके चित्रों की महान् विशेषता है। वे अपनी विशेष शैली जिसे 'रोरिक-शैली' कहते हैं, के निर्माता हैं। और यह शैली उनके गहन चिंतन तथा विस्तृत अध्ययन का परिणाम है।

स्पेन के प्रसिद्ध चित्रकार जुलोआगा ने इन चित्रों की मौलिकता के अतिरिक्त उनकी सार्वलौकिकता तथा भविष्य पर प्रभाव का भी अनुभव किया है। वे लिखते हैं—"महान कलाकार! हमें इस बात का प्रमाण मिल रहा है कि रूस से एक बड़ी शक्ति संसार में अवतरित हो रही है। मैं उसका अनुमान नहीं करता, उसका वर्णन नहीं कर सकता, लेकिन वह वहाँ है अवश्य।" स्पेन के प्रसिद्ध चित्रकार के ही भावों का उद्गार अपने अनुपम ढंग से कविवर रवीन्द्रनाथ ने भी किया है। दोनों ही रोरिक की कृतियों से प्रभावित हैं तथा दोनों ही उन्हें वर्णन के बंधन में लाने में संकोच प्रदर्शित करते हैं।

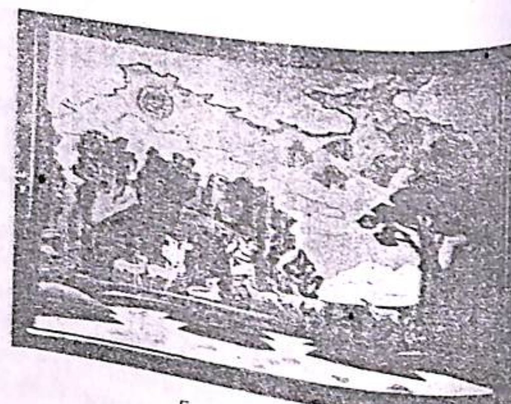


[ज्योति अन्धकार पर विजय प्राप्त करती है।]

रोरिक की सार्वलौकिकता का रहस्य कदाचित् उनकी आध्यात्मिकता में है। एक आलोचक ने लिखा है—"जहाँ कुछ कला-प्रेमियों में, रोरिक के चित्र, अपने रंगों की व्यवस्था तथा आकृतियों के कारण श्रद्धा उत्पन्न करते हैं, वहाँ औरों के लिए वे आंतरिक चिंतन के आधार-स्वरूप बन जाते हैं।"

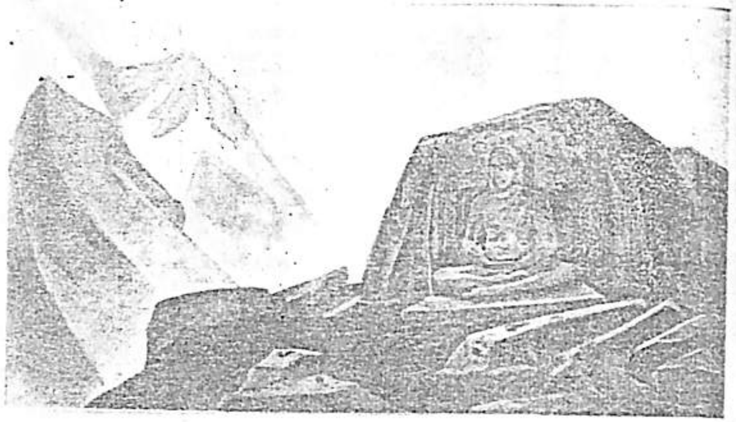
रंगों के सजावट के विषय में विशेष नहीं कहना है। रोरिक रंगों के जादूगर कहे गये हैं। रोरिक के चित्रपटों को देखनेवाले ही उनके चमत्कार का यथार्थ रूप में अनुभव कर सकते हैं। चीन देश के कलाकारों ने उनका स्वागत करते हुए कहा था—"आप शब्द और छाया के चित्रण का सामर्थ्य रखते हैं।" अन्य समालोचकों का कहना है कि रोरिक के चित्रों में हमें एक चतुर्थ-परिमाण के गुण मिलते हैं। यह प्रभाव रोरिक महोदय निस्संदेह अपने विस्तृत शिल्प-ज्ञान तथा रंगों की चमत्कारिक व्यवस्था द्वारा ही उत्पन्न कर सके हैं।

रोरिक के चित्रों के विषय में एक प्रमुख बात यह है कि उनमें एक प्रकार से भविष्यवाणी की गई है। ऐसे चित्रों में [illegible] उनके ज्ञान, मनन और पारदर्शिता का [illegible] कर [illegible]। ऐसे बहुत-से लोग हैं जो यह जानने के लिए उत्सुक रहते हैं कि आज-कल रोरिक किन चित्रों का अंकण कर रहे हैं। उनका कहना है कि रोरिक के चित्रों में भविष्य में घटित होनेवाली घटनाओं के संकेत मिलते हैं। रोरिक के विषय में जो साहित्य प्रकाशित हुआ है उसमें इस बात का कई स्थलों पर वर्णन आया है। कहा जाता है कि सन् १९१३ तथा १९१४ में रोरिक महोदय ने जो चित्र अंकित किये थे उनमें जगद्व्यापी महायुद्ध की भविष्यवाणी थी। रोरिक के कुछ



[पवित्र मेषपाल।]

भक्तों ने तो १८९७ से लेकर १९३२ तक की उनकी रचनाओं में से शीर्षक लेकर यह बताया है कि उन चित्रों में हमें आगे आनेवाली घटनाओं के लाक्षणिक संकेत मिलते रहे हैं। इधर 'सैक्टा प्रोटेक्ट्रिक्स' तथा हिमालय के कुछ चित्रों को देखते हुए यह बताया गया है कि हमें उनमें कलाकार की उस मनोवेदना की सूचना मिलती है जो किसी महान् लोक-संकट के भय से उनमें उत्पन्न हुई है। इस संकट के निवारण के लिए ही कलाकार ने अपने प्रसिद्ध शांति-पैक्ट तथा पताका की आयोजना की है।



[मैत्रेय।]

रोरिक ने अधिकांश लाक्षणिक चित्रों का अंकण किया है। उनके द्वारा हमें 'सत्यं शिवं सुंदरम्' के प्राचीन पाठ की पुनः शिक्षा मिलती है। यदि इन चित्रों से हमें भावी महान् संकट की सूचना मिलती है तो साथ ही साथ आश्वासन भी प्राप्त होता है। हम यह समझ पाते हैं कि संकट, समय की विशालता का ध्यान रखते हुए क्षणिक है. और भविष्य संस्कृति के लिए सुरक्षित है।

हमारे लिए यह बड़े हर्ष का विषय है कि इस प्रान्त में—बनारस तथा इलाहाबाद में दो ऐसे 'हाल' खुल गये हैं जिनमें रोरिक महोदय की मौलिक कृतियाँ सुरक्षित तथा प्रदर्शित हैं। ये 'हाल' न्यूयार्क के प्रसिद्ध रोरिक-म्यूज़ियम की शाखायें हैं। बनारस में श्रीयुत राय कृष्णदास जी के उद्योग से यह हाल भारत-कला-भवन के अंतर्गत है और इलाहाबाद में श्रीयुत व्रजमोहन व्यास जी के उद्योग के परिणाम-स्वरूप म्यूनिसिपल-म्यूज़ियम में है। बनारस में बारह तथा इलाहाबाद में तेरह, इस प्रकार कुल मिलाकर पचीस चित्र हमारे प्रान्त में हैं। इन दोनों स्थानों के चित्रपटों को देखकर हम प्रसिद्ध कलाकार की शैली से परिचय प्राप्त कर सकते हैं और किंचित् अंश में उनकी सार्वलौकिक प्रतिभा का भी अनुमान कर सकते हैं।

बनारस-कला-भवन के चित्रों में 'नेता का भाग्य-नक्षत्र', 'दाता बुद्ध', 'श्री भगवान्', 'चरक', 'कल्कि-अवतार', 'त्रिरत्न', 'मैत्रेय' तथा हिमालय और तिब्बत के कुछ विशाल दृश्य हैं। 'नेता का भाग्य-नक्षत्र' मध्य-रात्रि की गंभीरता तथा नीलिमा प्रदर्शित करता है। समस्त वातावरण एक गहरी निद्रा में जान पड़ता है। एक होनहार यशस्वी बालक, जिसका हमें केवल छायांश दिखाई पड़ रहा है, आकाश में अपने ज्योतिर्मान भाग्य-नक्षत्र का एकटक अवलोकन कर रहा है। 'दाता बुद्ध' नीलिम-धूमिल सूर्यास्त के रंगों में चित्रित है। इसमें भगवान् बुद्ध के एक यात्री से भेंट करने की कथा चित्रित है। 'श्रीभगवान्' में भगवान् 'ओ३म्' का चिह्न लेकर

हिम-शिखर से उतर कर त्रस्त संसार में अवतरित होते हैं। 'कल्कि-अवतार'-शीर्षक चित्र में कलाकार हिमांचल के ऊपर जाज्वल्य बादल-दल के भीतर से उठते हुए अवतार की बहुत गहरे रङ्गों में कल्पना करता है। 'चरक' प्रसिद्ध आयुर्वेदिक भिषक् हैं। हिमालय के पर्वत-प्रदेश में जड़ी-बूटियों की खोज करते हुए दिखाये गये हैं। 'मैत्रेय'-शीर्षक चित्र में ऋषि पश्चिमी तिब्बत अर्थात् लाहुल में साधना में लीन दिखाये गये हैं। 'त्रिरत्न' गहरे ताम्र रंग में अंकित है। इसमें एक घायल हिरन की एक ऋषि की रक्षा में आने की कथा चित्रित है।



[वह जो मार्ग प्रदर्शित करती है।]

इलाहाबाद के चित्रों में भी हिमालय-चित्रण की प्रधानता है। अधिकांश चित्रों के शीर्षक इस प्रकार हैं --'पवित्र मेषपाल' 'शंबला-संदेश', 'ज्योति अंधकार पर विजय प्राप्त करती है', 'अर्हत', 'व्यास-कुंड', 'गूगा चौहान और नरसिंह', 'मैत्रेय' तथा 'वह जो मार्ग प्रदर्शित करती है।'

'पवित्र मेषपाल' में स्लैव-जातीय परंपरा के लेल का चित्रण है। इस लेल में और हमारे श्री कृष्ण में जो सादृश्य है वह ध्यान देने योग्य है। लेल के दो चर कृष्ण की गोपियों के स्थान पर हैं। गायों के स्थान पर हम भेड़ें पावेंगे, परन्तु मुद्रा बिलकुल श्री कृष्ण-सी है। 'ज्योति अंधकार पर विजय प्राप्त करती है' नामक चित्र में एक पुराना विषय ग्रहण किया गया है, अर्थात् ज्योति और अंधकार का द्वंद्व। इसमें ज्योति की आत्मा का साकार नेता अंधकार-रूपी दानव का दमन करता है। चित्र में गहरा रक्तवर्ण संघर्ष का वातावरण उपस्थित करता है। यह चित्र लाक्षणिक है। 'अर्हत' भी एक लाक्षणिक चित्र है, परन्तु इसमें संघर्ष व्यतीत हो चुका है। अर्हत पर्वत की शिला पर आसीन एक महत्कल्पना में लीन है। दानव इसमें भी उपस्थित है, परन्तु अर्हत प्रशांत है। वह जानता है कि दानव में उसकी शांति भंग करने का सामर्थ्य नहीं है। 'व्यासकुंड' महाभारत के संकलनकर्ता की तपस्यास्थली में स्थित है। 'गूगा चौहान और नरसिंह' कुलू-घाटी की दंत कथाओं को लेकर चित्रित है। 'मैत्रेय' कलाकार की कल्पना का एक प्रिय पात्र है। अति शीत के कारण हिमावृत पहाड़ी मार्गों पर भविष्य के स्वामी मैत्रेय की विशाल प्रतिमा निदर्शित है। 'वह जो मार्ग प्रदर्शित करती है' एक ऐसी देवी की कल्पना है जो यात्रियों को हिम-शिखरों पर मार्ग प्रदर्शित करती तथा प्रोत्साहन देती है।

इन सभी चित्रों में हिमालय की विशालता के साथ साथ एक उसी के समान महान् खोज तथा उद्योग की कामना अंतर्हित जान पड़ती है।

यह निस्संदेह यथार्थ ही कहा गया है कि आज तक संसार के किसी चित्रकार ने हिमालय का चित्रण इतनी पटुता, इतनी गहन दृष्टि तथा इतनी विशेषता के साथ नहीं किया है। जब हम इतने विस्तृत भूखंड के बहु-संख्यक चित्रों का अवलोकन करते हैं तब हमारे भीतर मानो हिमांचल की आत्मा प्रवेश करने लगती है। रोरिक ने एक स्थल पर लिखा है—"उच्च शिखरों पर गुफाओं में ऋषि निवास करते हैं। यहाँ से नदियों का उद्गम होता है। यहाँ अनंतकाल से हिम अपनी धवलता की रक्षा कर रहा है...... अपनी कठिनाइयों के कारण ही पर्वत-पथ हमें आकृष्ट करते हैं। यहाँ अवर्णित बात घटित होती है। यहाँ मनुष्यों के विचार परंतप के चिंतन में लगते हैं।" कलाकार के इन शब्दों में हिमालय के गिरि-शृंगों से अपनी महती प्रेरणा प्राप्त करने का रहस्य निहित है।

कला का आदर्श रोरिक के लिए बहुत उच्च है। वे एक स्थल पर लिखते हैं—"कला-द्वारा हम प्रार्थना करते हैं। कला में हमारा सम्मिलन होता है। अब हम इन शब्दों को हिमावृत पर्वत-शिखरों से नहीं दुहराते, वरन नगर के कोलाहल के बीच और सत्य के मार्ग का अनुशीलन करते हुए हम भविष्य का अभिनंदन करते हैं।"

जिन लोगों ने कलाकार की कृतियों से तथा जीवन से कुछ भी परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न किया है वे इसे स्वीकार करेंगे कि रोरिक ने अपने उपर्युक्त शब्दों का सत्वता और निष्ठा के साथ अपने जीवन में भी पालन किया है।

अभिमान

लेखक, श्रीयुत राजाराम खरे

कहते हो क्या कि—तुम जानते नहीं हो मुझे,
ऐसे अपरिचित न किञ्चित भी ध्यान है?
भ्रम ही था व्यर्थ—मृगजल ही था—सोचता था—
—तुमसे तो मेरी भी कभी की पहचान है॥
परिचय? अब वह दे न सकता हूँ प्रिय!
इतना ही कुछ अवशेष मेरा मान है।
तुम हो महान तो महान के अतिथि रहो—
मुझको भी निज लघुता का अभिमान है॥

मोतीलाल नेहरू

लेखक, पंडित मोहनलाल नेहरू

इस लेख का पूर्वार्द्ध जनवरी के विशेषाङ्क में छप चुका है। उसी की भाँति इस भाग में भी स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरू के जीवन की वे निजी और छोटी छोटी बातें बताई गई हैं जो आज तक कहीं भी प्रकाशित नहीं हुईं और जो उनके महान् व्यक्तित्व को स्पष्ट करती हैं। वादे के अनुसार हम यहाँ कुछ अप्राप्य चित्र भी प्रकाशित कर रहे हैं। इन चित्रों में कुछ हमें स्वयं पंडित मोहनलाल नेहरू से और कुछ स्वर्गीय पंडित जी की बड़ी पुत्री श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित से प्राप्त हुए हैं।

(७)

भाई के मरने के समय दो कठिनाइयाँ उनके सामने उपस्थित हुईं। हाईकोर्ट में सर जान एज चीफ़ जस्टिस थे। वे बड़े खरे आदमी थे, किन्तु मिजाज़ बड़ा शक्की था। जिस किसी पर, हिन्दुस्तानी हो या अँगरेज़ हो, उन्हें शक हो जाता कि वह दलाली देता है तो वे उसके पीछे पड़ जाते। तब या तो उसे अपने तरीक़े बदलने पड़ते या हाईकोर्ट के काम से हाथ धोना पड़ता। वे अँगरेज़ थे और यह नहीं जानते थे कि हिन्दुस्तानी मुवक्किल अभी तक एक



[मोतीलाल (भाइयों और उनके बच्चों सहित १८७६)]
(खड़े बाईं ओर से—मोतीलाल, बंसीधर, नंदलाल। संभवतः हाथ में छड़ी लिये हुए इस लेख के लेखक महोदय पंडित मोहनलाल नेहरू हैं)

आदमी के मरने पर उसके छोटे भाई या लड़के से ही अपना काम कराना ज़्यादा पसंद करता है, अगर वह उस काम के करने के योग्य हो। उन्होंने सोचा कि नन्दलाल के कुल मुक़द्दमों में एक युवक जूनियर जो केवल ४ वर्ष से वकालत कर रहा है, वकील कैसे हो सकता है जब तक कोई बेजा कार्रवाई न की हो? यह सोचकर वे मोतीलाल पर शक करने लगे। उन्हें यह मालूम न था कि अगर कोई वकील ऐसा है जिसने एक पैसा दलाली कभी नहीं दी तो वह यह नौजवान है।



[विलायत में]
(सम्राट् के दरबार में जाने की पोशाक में)

नंदलाल के मित्रों में एक अँगरेज़ भी थे। उनका नाम वाल्टर काल्विन था और इन्हें पीछे से 'सर' की उपाधि भी मिली थी। सर जान एज ने अपना शक इनसे कहा और इन्होंने हिन्दुस्तानी मुवक्किलों का दस्तूर उन्हें बताया जिससे उनका शक दूर हो गया। यह सच है कि अगर काल्विन चाहते तो मोतीलाल को नुक़सान पहुँचा सकते थे, चाहे वह थोड़े ही दिन को होता, मगर न तो उन्हें कोई ज़रूरत थी और न यही खबर थी कि वह दिन बहुत तेज़ी से आ रहा है जब यह नौजवान वकील कुल वकील-बैरिस्टरों से बढ़ जायगा और वे स्वयं भी उससे द्वेष करने लगेंगे। सर जान पर मोतीलाल की तेज़ी और लियाक़त का तो असर था ही और अब उनकी ईमानदारी पर भी पूरा भरोसा हो गया। काल्विन साहब से भी मोतीलाल की दोस्ती बनी रही।

दूसरी दिक़्क़त मोतीलाल की स्वयं ही खड़ी की हुई थी। कालेज के पढ़ने के ज़माने में वे किसी बात पर अयोध्यानाथ से नाराज़ हो गये थे, यद्यपि ये उनके बड़े भाई के मित्र और उनके बुज़ुर्ग थे और उन्हें लड़कों की तरह मानते आये थे। पर जब वे किसी से नाराज़ हो जाते थे तब फिर ऊँच-नीच नहीं देखा करते थे। एक नाटक उन्होंने लिखा, जिसमें अयोध्यानाथ का बहुत मज़ाक़ उड़ाया और उसे किताब के रूप में छपवाकर मित्रों में बाँटा। इस किताब की खबर ज्यों ही नंदलाल को मिली, उन्होंने जितनी किताबें बची थीं, जलवा दीं और जो बाँटी गई थीं वापस मँगाकर नष्ट कर दीं। बड़े भाई के आज्ञानुसार मोतीलाल ने अयोध्यानाथ से क्षमा-प्रार्थना भी की, किंतु वे आसानी से किसी को क्षमा नहीं करते थे। नंदलाल की मृत्यु पर अयोध्यानाथ की नाराज़गी की खबर मुवक्किलों तक को हो गई और नये वकील को शायद कुछ हानि भी पहुँची हो। कोई मामूली लियाक़त का वकील होता तो वह उस नाराज़गी के होते हुए पनप न सकता, किंतु मोतीलाल इस धक्के को सह गये। स्वयं अयोध्यानाथ इस बात को मानते थे कि ग़ैर मामूली क़ाबिलियत इस युवक ने पाई है। नंदलाल की मृत्यु के बाद उनके मामा से अयोध्यानाथ ने कहा कि "मैं जानता हूँ कि वह बहुत जल्दी बड़े वकीलों में हो जायगा। ऐसी हालत में मेरा सहायता करना उसकी एक तरह नेकनामी को रोकना है"। वास्तव में यह सच भी था। भाई के मरने के पाँच बरस के बाद ही वे हाईकोर्ट के ऊँची श्रेणी के वकीलों में गिने जाते थे और सुन्दरलाल के साथ साथ ही एडवोकेट बनाये गये जब, आज की तरह, एडवोकेट हर शख़्स नहीं हो सकता था। हाईकोर्ट को अधिकार था कि जिस वकील को चाहे उसे एडवोकेट की पदवी दे, और उसने पहले ही दफ़े इस अधिकार का उपयोग किया था।

(८)

वकालत के पहले या उसके बीच में मोतीलाल कभी 'किताब के कीड़े' न थे। फिर भी उनकी अँगरेज़ी की लियाक़त के सब अँगरेज़ जज तक क़ायल थे। अगर वे कोई ग़लती भी कर देते तो हाकिम लोग डिक्शनरी देखे बग़ैर उनकी ग़लती मानते ही न थे। एक दफ़ा सर जान स्टैनली, चीफ़ जस्टिस, के सामने एक अँगरेज़ी शब्द का ग़लत उच्चारण उनके मुँह से निकल गया। जज लोग आपस में सलाह करने लगे। थोड़ी देर के बाद वेब्स्टर्स डिक्शनरी आई और इधर-उधर उलट-पुलट कर उन्होंने कहा "वेल पंडित, तुमने इस शब्द को इस तरह उच्चारण किया है। क्या वह ठीक है?" उन्होंने अपनी भूल स्वीकार की, क्योंकि वह मुँह से निकल गया था। तब सर जान स्टैनली कहने लगे कि हमें तुम्हारे कहने से भ्रम हो गया था कि शायद हमारी ही ग़लती हो।

इसके बीसों बरस पहले जब राजा अजीतसिंह ने उनसे एक दरख़्वास्त गवर्नर जनरल के एजेंट के नाम लिखवाई थी तब उसने उसे पढ़कर पूछा कि यह किस अँगरेज़ की लिखी है। उसने बहुत मुश्किल से माना था कि एक हिन्दुस्तानी वकील ने लिखी है। अब तो शायद हज़ारों हिन्दुस्तानी अच्छी शुद्ध अँगरेज़ी लिखनेवाले मिल जायँगे, किन्तु उस समय यह मामूली बात न थी।

वकालत के दौरान में भी वे लॉ रिपोर्ट लेते तो सब थे, मगर पढ़ते बहुत कम थे। सिर्फ़ जब किसी मुक़दमे की तैयारी में उनकी ज़रूरत होती तो पढ़ते। वे कहा करते थे कि "अच्छे वकील के वास्ते यह ज़रूरी नहीं है कि वह नज़ीरों को जानता हो। वही अच्छा वकील है जो क़ानून



[फ़्राक कोट और टोप हैट में विलायत में पहली बार]

को तुरंत ढूँढ़ निकाल सकता हो।" जब कभी किसी ख़ास तरह की नज़ीर की ज़रूरत होती तब उसे ढूँढ़ निकालने में उन्हें देर नहीं लगती थी।



[मोतीलाल नेहरू (खड़े दाहनी तरफ़) मित्रों-सहित]

उनकी कामयाबी केवल क़िस्मत का खेल नहीं था। काम करने में रात और दिन का उन्होंने कभी खयाल नहीं किया। काम है तो क्या रात क्या दिन उनके वास्ते एक है। शुरू वकालत में एक मुक़द्दमे में उनके साथ कालविन भी वकील थे। उन्होंने मुक़द्दमे को हारू बताकर कह दिया कि वे बहस न करेंगे। मोतीलाल ने कई रातों तीन बजे तक बैठकर उस मुक़द्दमे को तैयार किया। दिन भर तो कचहरी से फ़ुर्सत नहीं मिलती थी। वही-खातों का मुक़द्दमा था। कई रोज़ बहस करके उसे जीता। मुक़द्दमे की दुनिया में बड़ा नाम पाया और जजों ने भी बहुत प्रशंसा की। इनके बाद वकालत नित्य बढ़ती गई। मगर कोई भी मुक़द्दमा हो, उसकी तैयारी वे पूरी तरह करते। छोटे-बड़े का खयाल न था।

यह खाली शुरू वकालत में ही मुवक्किलों पर रंग जमाने की तरकीब न थी। वकालत छोड़ने के समय भी ऐसा ही एक मुक़द्दमा उनके हाथ में था, जिसमें प्रश्न यह था कि किसी खास स्त्री को तीन बरस पहले बच्चा पैदा हुआ था या नहीं। इस मुक़द्दमे की तैयारी के वास्ते कुछ दाइयों के हुनर जानने की आवश्यकता थी और दोनों तरफ़ से गवाही देनेवाले डाक्टर लोग उपस्थित थे। पचासों किताबें इस विषय पर उन्होंने पढ़ डालीं और इस विद्या को भी वे उतना ही जान गये जितना डाक्टर या दाइयाँ किताबों-द्वारा जान सकती थीं।

वकालत छोड़कर कांग्रेस का काम उठाया। इस काम में भी वही दिलचस्पी उन्होंने ली जो वकालत के कामों में लिया करते थे। सुबह नहा-धोकर अपने घर के बरामदे में बैठ जाते और दोपहर को थोड़ी देर आराम करने के सिवा दम लेना नहीं जानते थे। पंजाबवाले मार्शल ला के अत्याचारों की तहक़ीक़ात कांग्रेस ने उनके सुपुर्द की। वे ऐसे काम की दिक़्क़तों को जानते थे। फिर भी सहर्ष यह सेवा अपने ऊपर ले ली। कितने ही युवक उनकी सहायता को साथ थे। सुबह आठ बजे नहा-धोकर वे काम पर बैठ जाते और फिर ४ बजे शाम तक सिवा भोजन करने के समय के कुर्सी नहीं छोड़ते थे। चा-पानी के बाद कुछ देर आराम करते और फिर झुटपुटा होते ही शहर के दौरे को जाते। ज़माना बड़ा खराब था, जनता डरी हुई थी। कितने ही आदमी डर के कारण घरों से नहीं निकलते थे। उनसे वे अँधेरे में जाकर घरों पर मिलते और उनके दुखों को सुनते और उन्हें कांग्रेस की तरफ़ से दिलासा और बढ़ावा देते।

काम वे कितना भी करें, मगर बीच-बीच में हँसी-ठट्ठा ज़रूर करते जाते थे। उनके मित्रों, उनके मुवक्किलों या अन्य मिलनेवालों में उनका ज़ोरों का 'क़हक़हा' लगाना बहुत मशहूर था और अब तक कितनों ही के कानों में गूँज रहा है।

(६)

दुनिया में सदैव उलट-फेर होता रहा है। जो बात आज प्रचलित है वह कल बदली जायगी और अपना समय पूरा होने पर उसमें भी कुछ परिवर्तन होगा। मगर परिवर्तन करनेवाले आदमी ही होते हैं। छुआ-छूत का दौर-दौरा हमारे अभागे देश में बहुत पुराना हो गया है। भगवान् बुद्ध, स्वामी दयानंद, गुरु नानक इत्यादि प्रयत्न कर चुके और गांधीजी अब कर रहे हैं। जब कोई चीज़ पुरानी हो जाती है तब हम उसमें कोई ऐब ही नहीं देखते। जब ग़ुलामी की रस्म प्रचलित थी तब आदमियों को मोल लेना या बेचना बुरा नहीं समझा जाता था। अब भी विवाह-संस्कार के पहले लड़कीवालों को दबाने या उन्हें नीचा दिखाने में कोई बुराई नहीं मानी जाती है। और अधिकतर उनसे कसकर वर का मोल लिया जाता है। फिर भी कुछ लोग ऐसे पैदा हो जाते हैं जिन्हें बुरी रस्मों में बुराई दिखने लगती है। वे सुधारक इस मानी में चाहे न हों कि उनके विरुद्ध लेक्चरबाज़ी करते फिरें, मगर उसे बदलने की अपने भरसक चेष्टा करते हैं। मोतीलाल उन्हीं आदमियों में एक थे।



[भतीजों के जनेऊ में मोतीलाल भिक्षा दे रहे हैं—सन् १८९३]

अपने लड़कपन से ही उन्हें छुआ-छूत का आचार-विचार न था। कश्मीरी ब्राह्मण ठंडे मुल्कों के रहनेवालों में हैं और अपने तरीक़े और अपनी रस्में वे साथ लेकर वहाँ



[मोतीलाल नेहरू पत्नी-सहित सन् १८८३]

आ ही नहीं बने, वरन उन्हें क़ायम भी रक्खा। ठंडे मुल्कों में ब्राह्मण के वास्ते मांस खाना कोई ग़ैरमामूली बात नहीं। यों तो मांस खाने का ब्राह्मण को गर्म मुल्कों में भी कहीं निषेध देखने में नहीं आया। महाभारत में तो लिखा है कि बड़े बड़े ऋषियों के वास्ते मांस पकाया जाता था और अगस्त्य जी तो आदमी के ही मांस को हज़म कर गये थे। रवाज ने आज-कल गर्म देशों में कहीं कहीं ब्राह्मण के वास्ते मांस खाना रोक रक्खा है, मगर ठंडे मुल्कों में आम तौर पर अब भी जारी है। मोतीलाल का खानदान मांसभक्षी था और वे भी मांस खाते थे, किन्तु वे खानदान से इस बात में निराले थे कि कच्ची रसोई किसी की भी छुई हुई हो, खा लेते थे और कभी इस बात के छिपाने की कोशिश नहीं की कि वे होटलों में खाते-पीते हैं। उनके बड़े भाई देखी को अनदेखी कर देते थे, क्योंकि वे स्वयं कट्टर-पन्थियों में न थे, तथापि ख़ुद इस तरह होटल आदि में न खाते थे। छुआ-छूत तोड़नेवालों में भी वे अगुआ थे। ज़बान से तो लोग पहले भी कहते आये थे और अब तक कहते आ रहे हैं कि खाने से धर्म नहीं जाता, किन्तु मोतीलाल ने उसे करके दिखाया। सुधार की पहली सीढ़ी तो ज़बान से कहना ही है, दूसरी सीढ़ी कर दिखाना है।

देखा गया है कि बिरादरी के झगड़े तब ज़ोर पकड़ते हैं जब घर से विरोध शुरू हो। यहाँ घर में विरोध न था। इतना ही नहीं, उनके बड़े उनकी इस हरकत से परिचित थे और उनकी माता तक ने कभी रोक-टोक नहीं की। हाँ, इतना उनसे अवश्य वादा करा लिया था कि उनके मरने पर विधिपूर्वक क्रिया-कर्म करेंगे और इस वादे को उन्होंने पूरा भी किया, यद्यपि वे क्रिया-कर्म में ज़ाहिरा विश्वास नहीं रखते थे।

बहुत दिनों तक बिरादरी की कुछ बड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ जो मोतीलाल को अपने लड़कों-सा मानती थीं, इस बात की कोशिश करती रहीं कि वे इस 'अधर्म' के रास्ते को छोड़ दें, मगर घर में किसी बड़े-बूढ़े ने रोक-टोक करने की कोशिश तक न की। नन्दलाल के स्वर्गवास हो जाने के बाद भी नंदरानी ने कभी उनकी इस बात का विरोध नहीं किया। स्वयं वे मरते दम तक पुराने दस्तूरों पर डटी रहीं, परन्तु कहा यही करती थीं कि खाने-पीने से 'धर्म जा ही नहीं सकता'। वे अपढ़ गँवार नहीं थीं—पढ़ी-लिखी विद्वान् थीं और पति के देहांत के बाद ही बहुत कुछ पढ़ा था। हाँ, अँगरेज़ी की शिक्षा उन्होंने बिलकुल नहीं पाई थी।

एक समय ऐसी घटना हो गई जिससे कश्मीरी बिरादरी में हलचल मच गई। यद्यपि वह कोई ऐसी बात नहीं थी जिसकी वजह से दो पार्टियाँ बनतीं, फिर भी कुछ फ़िसादी लोग खड़े हो गये और मक्खी को मल-मलकर भैंसा बना दिया। हर जगह ऐसे फ़िसादी मौजूद होते हैं। इस छोटी-सी बिरादरी में भी हैं। एक युवक जिनका नाम बिशननरायन दर था, विलायत पढ़ने की ग़रज़ से घर से चले गये। बस मानो आसमान टूट पड़ा।

कुछ बेकार किन्तु मालदार लोगों ने धर्म का झंडा फहरा दिया और 'धर्म-संकट में' की दोहाई देने लगे। उनके वास्ते इससे अधिक पाप का कोई काम ही नहीं हो सकता था कि कोई हिन्दू जहाज़ पर चढ़कर विदेश जाय, क्योंकि वहाँ ग़ैर मज़हब के लोगों के हाथ का छुआ खाना पड़ता है। अपने देश में ऐसे खाने-पीनेवालों की भी संख्या काफ़ी बड़ी हो चुकी थी, मगर दूसरों पर वो ज़ाहिर नहीं थी। उन्होंने बिशननरायन को धर्मच्युत समझकर उनके घर भर को बिरादरी में ख़ारिज कर दिया। हिन्दुओं ने सिवा ख़ारिज करने के अपने में मिलाना तो सीखा ही नहीं है। आर्य-समाज का ज़ोर कुछ भी न था। सौभाग्य से कुछ नवयुवकों ने उनका साथ दिया और दो पार्टियाँ बन गईं। मगर उस नई पार्टी ने भी बिशननरायन से प्रायश्चित्त कराया।



[मोतीलाल के पिता गंगाधर]

मोतीलाल नई पार्टी में सम्मिलित हुए और उनके बड़े भाई वंशीधर पुरानी में, जिनमें वे उस वक़्त तक रहे जब तक ख़ुद विलायत-यात्रा को नहीं गये। आपस का यह झगड़ा बहुत दिन नहीं चला। शुरू में गरमा-गरमी काफ़ी रही। मोतीलाल जब एक बात ठान लेते तब किसी की परवा न करके उसे अपने ढंग पर पूरा करते। जो लड़कपन में अपने से बड़े लड़कों से भिड़ सकता हो, जो आगे चलकर बड़ी ताक़तवर गवर्नमेंट से टक्कर ले सकता हो उसके वास्ते बिरादरी से ख़ारिज होने में कब डर था? इस नई पार्टी के लीडरों में से वे भी एक थे। उन्होंने यह तय किया कि नई पार्टी का कोई स्त्री या पुरुष, लड़का या लड़की पुरानी पार्टीवाले का छुआ पानी तक न पिये यद्यपि चमार-पासी के हाथ का खाने-पीने में उसे संकोच न हो। इस बायकाट के कारण तसफ़िया जल्दी हो गया क्योंकि इसकी वजह से बेटी माँ से अलग होने लगी और ऐसा बहुत दिन तक नहीं हो सकता था।

यह झगड़ा पूरी तरह तय भी न हो पाया था कि मोतीलाल स्वयं पत्नी और बच्चों के सहित योरप-यात्रा को चले गये। वहाँ से लौटने पर उनसे नई पार्टी के लीडरों ने कहा कि प्रायश्चित्त कर लें। उन्होंने साफ़ इनकार किया। कारण यह बताया कि "प्रायश्चित्त तो भूल-चूक होने पर किया जाता है। जो बात मैंने की वह ठीक समझ कर की और आगे भी करूँगा"। इस इनकार पर सनसनी फैल गई और तीसरी पार्टी स्थापित हो गई। मगर छोटी-सी बिरादरी में पार्टीबन्दी चल नहीं सकती थी, शादी-ब्याह तो आपस में ही करने थे। उस वक़्त तक अंतर्जातीय विवाह का किसी को ख़याल तक पैदा नहीं हुआ था। ये तीनों पार्टियाँ आहिस्ता आहिस्ता फिर मिलकर एक हो गईं।

दूसरी बात जिससे उन्होंने बिरादरीवालों को नाराज़ किया, पर्दे को तोड़ना था। यों तो कश्मीरी स्त्रियाँ पर्दे में रहती थीं, किन्तु आपस में पर्दा न था। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, कोई भी कश्मीरी पुरुष बिरादरीवाले के घर में चला जा सकता था और उसी तरह स्त्रियों से बात-चीत कर सकता था, जैसे अपनी माँ-बहन या बेटी से। इतना ही नहीं। अगर किसी घर का एक नौकर, चाहे वह मुसलमान ही क्यों न हो, उस घर की स्त्रियों के सामने जाता हो और उनसे बात-चीत कर सकता हो तो वह किसी दूसरे कश्मीरी घर में भी बुला लिया जाता था। घूँघट काढ़ना तो उन स्त्रियों ने सीखा ही न था। कश्मीरी स्त्रियाँ पुरुषों से बात-चीत कर सकती थीं। यहाँ तक कि कभी ग़ैर कश्मीरी से साक्षात् हो जाता और उन्हें मालूम न होता कि वह कश्मीरी नहीं है तो उससे भी बेतकल्लुफ़ बात-चीत कर लेती थीं। मोतीलाल ने उन्हें बाहर सैर कराने ले जाना शुरू किया। पहले रात को, फिर दिन को भी जब कभी फ़ुर्सत होती, हवा खिलाने ले जाते। यह रवाज के खिलाफ़ था और बहुत से बुज़ुर्ग नाराज़ हो गये। जो कोई भी रवाज के खिलाफ़ बात करेगा वह नक्कू है ही। किन्तु युवकगण जो चाहे उनके कड़े स्वभाव से उनसे नाराज़ रहते हों, उनकी नक़ल करने में ही गौरव समझते थे।

इसका एक बहुत ही दिलचस्प उदाहरण सुनिए। जहाँ मोतीलाल के और पचासों शौक़ थे, वहाँ गरमी में बहुत ही ठंडा पानी पीने का भी शौक़ था। पैसे की कमी न थी, नौकर बहुत ज़्यादा बर्फ़ गिलास में डालकर पानी लाता। पानी बर्फ़-सा ठंडा हो जाने पर भी उसमें बहुधा बर्फ़ बच रहती। वे उसे उगालदान में उलट देते। एक दफ़े एक नये ग्रेजुएट जो उनसे बातें कर रहे थे, बर्फ़ को फेंकते देखकर समझे कि यही लेटेस्ट फ़ैशन है। शाम को उन्होंने कटरे के बाज़ार में लेमोनेड की एक बोतल खोलवाई और बर्फ़ डलवा कर बिना उसके ठंडे होने का इन्तज़ार किये पी गये और जो बर्फ़ बची उसे नाली में फेंक दिया। एक मित्र वहीं खड़े थे। उनके पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया कि "लेटेस्ट फ़ैशन यही है"। मित्र महोदय मोतीलाल के रोज़ के मिलनेवालों में थे। वे हँसकर चुप हो गये।



नंदरानी

समाज से वे सदैव ही टक्कर लेते रहे और देर-सबेर जीत उन्हीं की होती। जब तक समाज उनकी एक बात को ग्रहण करता, वे दूसरा क़दम ले चुके होते। यहाँ तक कि अपनी वृद्धावस्था में उन्होंने सबसे बड़ी टक्कर यह ले डाली कि ग़ैर कश्मीरी घर में अपनी प्रिय पुत्री का विवाह कर दिया। उनके एक मित्र भी पहले ऐसा कर चुके थे। अभी तक समाज इस बड़े परिवर्तन को पूरी तरह ग्रहण करने को तैयार नहीं हुआ है। अतएव ऐसा होते देखकर वह चका-चौंध रह गया है। मगर रास्ता खुल गया है और ख़ुशी या नाराज़गी से समाज इस कड़वे घूँट को निगल रहा है।



[खेतड़ी के दीवान नंदलाल]

(१०)

नंदलाल के साथ ही मोतीलाल भी इलाहाबाद शहर की एक गली में रहते थे। वह मुहल्ला अब तोड़ा जा चुका है और उस मकान की जगह जिसमें उनका लड़कपन कटा था, अब मुहम्मदअली-पार्क बना हुआ है और उसमें मोटरें घूमा करती हैं। मगर वह घर जिसमें नंदलाल का पहले दफ़्तर था और देहान्त भी हुआ था, अभी तक क़ायम है। उसी दफ़्तरवाले मकान में मोतीलाल १८९२ तक रहे। सन् १८८७ और १८९२ के बीच में वकालत दुनिया में उन्होंने बहुत बड़ा यश पा लिया था। काम हाथ में बहुत होने पर भी वे कचहरी से लौटकर उसी दफ़्तरवाले घर की छत पर पतंग भी अक्सर उड़ाया करते थे। शाम को हिन्दुस्तानियों के क्लब में जाते; वहाँ टेनिस बिलयर्ड के खेल में कुछ देर दिल बहलाया करते।

सन् १८९२ में उन्होंने शहर की गली से उठकर सिविल लाइन्स में बँगले में रहने का विचार किया। उस समय इलाहाबाद में बँगलों में हिन्दुस्तानी इने-गिने ही रहा करते थे। अयोध्यानाथ भी कुछ वर्ष पहले एक बँगले में उठकर गये थे, मगर थोड़े ही दिन पीछे फिर शहर में वापस आ गये थे। इस वजह से मित्रों ने बँगले में उठ जाने की सलाह नहीं दी। उनका खयाल था कि शहर से दूर मुवक्किलों को आने में दिक्क़त होगी और वकालत में कमी हो जायगी। मगर मोतीलाल ने इसकी परवा न की, क्योंकि वे किसी दिक्क़त का सामना करने से नहीं डरते थे। सिविल स्टेशन में उठ जाने से वकालत को कोई हानि नहीं पहुँची, बरन वह रोज़ बढ़ती ही गई।

सिविल लाइन्स में चले जाने पर पतंग का शौक़ छूट गया, क्योंकि चारों तरफ़ पूरे या आधे अँगरेज़ रहते थे। क्लब क़रीब था, वहाँ बिलियर्ड खेलने जाया करते, मगर घर में ही टेनिस का प्रबंध कर लिया। मकान का हाता बहुत बड़ा था। टेनिस खेलने बहुधा मित्रगण वहीं आने लगे। और आते क्यों न! क्लब में चंदे के गेंदों से खेलना होता था। यहाँ मुफ़्त के ही गेंद मिलते थे। और ऊपर से मज़ा यह भी था कि सोडा-लेमोनेड, चाय-पानी सबका प्रबंध क्लब से अच्छा था, दस्तख़त भी नहीं करने पड़ते थे और न महीने के ख़त्म होने पर बिल आने का ही डर था।

उस ज़माने में आज-कल जो बाइसिकलें प्रचलित हैं, नई नई चली थीं। पहले वे ठोस टायर की होती थीं। फिर न्यूमेटिक टायर्स निकले। बाइसिकल पर चढ़ने का शौक़ यहाँ आकर पैदा हुआ। यद्यपि बाइसिकल पर चढ़ना सिखानेवाले की ज़रूरत नहीं होती और इस बात को वे जानते थे, फिर भी एक अँगरेज़ उन्हें सिखाने के वास्ते रक्खा गया और कितने ही मित्रों ने उन्हीं के साथ बाइसिकल पर चढ़ना सीखा। गाड़ी-घोड़े घर में मौजूद थे, मगर वे शाम को सैर करने बाइसिकल पर ही जाते। स्वर्गीय सुन्दरलाल और उनके छोटे भाई बलदेवराम दवे भी बहुधा बाइसिकल पर ही सैर को उनके साथ निकला करते। मगर यह शौक़ बहुत दिन क़ायम न रहा। मोटरकार निकल आई

और इलाहाबाद में सबसे पहली मोटरकार उन्होंने मँगाई। उसका शौक़ पैदा होते ही बेचारी बाइसिकल कूड़े में जा पड़ी। मोटरों की मँहगाई का खयाल भी दिमाग़ में न घुसा। बाइसिकलें भी सस्ती न थीं। आजकल की तरह पचीस या पचास रुपये में कोई बाइसिकल नहीं मिलती थी। अच्छी बाइसिकल के वास्ते ४ या ५ सौ देने पड़ते थे, मगर उनके वास्ते वह कूड़े के समान हो गई। शौक़ जाता रहा था। यह नहीं था कि उनके पास पैसा बहुत जमा हो गया था; मगर वे जमा करने की फ़िक्र ही नहीं करते थे। उनका उसूल शायद यह था कि 'जमा किया तो दूसरे का, खर्चा तो अपना'।



[पिता-पुत्र (सन् १९१३ में)]

इतना ही न था कि वे पैसा अपने ऊपर या अपने कुटुंब पर खर्च करते, मित्रों पर भी उसी खुले हाथ से खरचते थे जैसा अपने ऊपर। उनके मित्र बहुत थे, जैसे शायद हर पैसेवाले के होते हैं, मगर तीन सज्जन उनके गहरे मित्रों में थे। ये लोग रोज़ शाम को अपने कामों से फ़ुर्सत पाकर उनके घर पर आ बैठते और शायद ही कोई दिन ऐसा होता जब नौ बजे रात के पहले वे घर जाते हों और अधिकतर तो ११ बजे जाते थे।

मोतीलाल के पास वकालत का काम बहुत था और वे टेनिस खेलने के बाद साढ़े आठ या नौ बजे रात तक मुवक्किलों से घिरे रहते। इस बीच में ये तीनों मित्र उनके खास कमरे में बैठकर ह्विस्की पिया करते और एक बोतल तो ज़रूर ही खर्च हो जाती। उन्हें ख़ुद भी पीने की आदत थी, मगर वे खाने के पहले एक या दो पेग पिया करते थे। मित्रों के रोज़ एक या ज़्यादा बोतलें साफ़ कर देने पर उनके माथे पर कभी बल तक न आता, बल्कि नौ बजे के बाद भी वे उन्हें भोजन खिलाने के वास्ते बहुधा रोक लिया करते थे।

अँगरेज़ी तर्ज़ के रहन-सहन का, खान-पान का उन्हें शौक़ था, मगर पुराने तरीक़े भी पूरी तरह नहीं छोड़ देना चाहते थे। नतीजा यह था कि उनके घर में दोनों तरह का इन्तज़ाम रहा करता था। एक तरफ़ ब्राह्मण रसोइया रसोई बनाता तो दूसरी तरफ़ खानसामा अँगरेज़ी तरह के खाने पकाता। आये दिन वे मित्रों को खिलाते रहते। अँगरेज़ों को पार्टी देने का भी काफ़ी शौक़ था और आज तक उनकी वे पार्टियाँ मशहूर हैं जिनमें अँगरेज़ बैरिस्टरों या हाकिमों और उनकी आड़ में हिन्दुस्तानी वकील-बैरिस्टरों इत्यादि ने हज़ारों रुपये की शैंमपेन पी डाली।

पहले-पहले अँगरेज़ों को पार्टी देने का शौक़ उन्हें जब पैदा हुआ जब वे भारद्वाज पर अपना मकान खरीद कर उसमें रहने लगे थे। उन्होंने अपने अँगरेज़ मित्रों से इस बात की चर्चा की तब उन्होंने कहा कि हमारा दस्तूर है कि जब तक हम पर 'काल' न करो, हम दावत मंज़ूर नहीं कर सकते। उस ज़माने में ३ बजे तीसरे पहर 'काल' करने का क़ायदा था। वही उन्हें बताया गया। उसे सही मानकर वे दोपहर की गरमी में अँगरेज़ों के घर कार्ड छोड़ते फिरे। मगर जब कार्ड दावत के गये तब उन्हीं लोगों ने अपने उन मित्रों के वास्ते जिनको उन्होंने 'काल' नहीं किया था, खत लिखकर कार्ड मँगाये। उसी दफ़े नहीं, बरन हर एक अगली दावत में लगभग पाँच सौ कार्ड अँगरेज़ों को जाया करते थे। हिन्दुस्तानी मित्र भी बुलाये जाते और कट्टर पंथियों के वास्ते देशी मिठाई का इन्तज़ाम भी होता था। जिन अँगरेज़ मित्रों से ज़्यादा परिचय था वे देशी मिठाई भी माँग लेते। पहली ही दावत के बाद वे जान गये थे कि अँगरेज़ के खिलाने के वास्ते इस बात की ज़रूरत नहीं कि वे 'काल' किये जायँ।

आज-कल इलाहाबाद में अँगरेज़ बहुत कम हैं, मगर जितने भी हैं उन्हें पार्टियाँ मिलती ही रहती हैं। मगर अँगरेज़ी क़िस्म की पार्टियाँ तो अब बहुत ज़्यादा प्रचलित हैं। क़ायदा यह हो गया है कि किसी ठेकेदार को ठेका दे दिया और स्याह या सफ़ेद होना उसी पर छोड़ दिया। मगर उनका यह क़ायदा न था। वे कुल इन्तज़ाम अपनी ही निगरानी में कराते। यहाँ तक कि जब कभी वे डिनर देते तो मेज़ पर फूल सजाने तक का बंदोबस्त ख़ुद ही करते। उन्होंने खाने और खिलाने का शौक़ अपनी माता से तरके में पाया था।

(११)

हिन्दू रवाज के अनुसार जो कोई भी छुआछूत को हिन्दू-धर्म का एक मुख्य अंग न माने, जो होटलों में कुजाति या विधर्मियों के हाथ का छुआ खाना-पीना खा-पी ले, जिसे शराब तक पीने में संकोच न हो, जो देवी-देवताओं की उपासना न करे, जो गंगास्नान में कोई महत्त्व न माने, वह हिन्दू है ही नहीं। कम से कम मोतीलाल के ज़माने में यही रवाज था। एक उदाहरण लीजिए। एक कश्मीरी पंडित उसी ज़माने में थे, जिन्होंने किसी ग़लती से एक मुसलमान का छुआ भोजन कर लिया था। यह उनके वास्ते ऐसी घटना थी जिससे वे अपने तईं ख़ुद भ्रष्ट समझने लगे थे। इस घटना के बाद उन्होंने अपने ही घर में बर्तन-भाँडा तक नहीं छुआ और खाने के समय वे अपनी थाली डेवढ़ी पर रख देते थे, जिसमें घर की कोई स्त्री और कभी कभी उन्हीं की पत्नी खाना दूर से परोस देती थी। उनकी स्त्री भी उन्हें विधर्मी समझती और मरते दम तक समझती रही। इसके थोड़े ही दिनों के अन्दर और उनके जीते-जी न केवल मोतीलाल बरन और कितने ही सज्जन छुआछूत को तोड़ बैठे, मगर उन्होंने अपना वही दस्तूर रक्खा। आदत तो बड़ी ज़बर्दस्त चीज़ है।

जब आप कोई नई बात करें तो पहले लोग मज़ाक उड़ाते हैं, किन्तु हलके हलके वही करने लगते हैं। जब मोतीलाल को कुजातियों के हाथ का छुआ खाते देखते तो हज़ारों ही उँगलियाँ उनके तरफ़ उठतीं। कुछ दिनों में लोग वही बात छिपकर करने लगे और अब खुले-ख़ज़ाने लाखों आदमी वैसा करते हैं। मगर उस वक़्त अँगरेज़ तक उन्हें बेधर्म समझते थे। एक मुक़द्दमे में मोतीलाल जज बरकिट के सामने बहस कर रहे थे। किसी नाम पर उसने कहा कि ब्राह्मण के नाम में 'लाल' शब्द नहीं होता। इस पर इन्होंने उदाहरण के वास्ते 'सुन्दरलाल

और अपना' नाम बताया और कहा कि हम ब्राह्मण हैं। वह हँसकर बोला "Ah! you are an instance in point!"

लोग उन्हें रवाज के अनुसार चाहे जो भी कहते हों मगर वे अगर किसी धर्म को मानते थे तो हिन्दू-धर्म को चाहे इस बात को वे ख़ुद स्वीकार न करते हों। ख़ुद वे हिन्दू-धर्म की कितनी ही बुराई करें, मगर दूसरों के सामने उसके गुण ही बताते थे। एक दफ़े योरप-यात्रा में एक बड़े पादड़ी से जहाज़ पर भेंट हो गई। उसने यह देखकर कि एक हिन्दू सबके हाथ का छुआ खाता-पीता है और फिर भी ईसाई नहीं है, ईसाई-मत की बड़ाई करनी शुरू कर दी। उसने कहा कि "देखो, हिन्दू लाखों देवताओं को पूजते हैं और ऐसे गँवार हैं कि पत्थर की भयानक मूर्तियाँ बनाते हैं और उनके सामने हाथ जोड़ते हैं"।

इन्होंने उत्तर में कहा कि हिन्दू वास्तव में एक ही परमेश्वर को मानते हैं और उसी की उपासना करते हैं, परन्तु सब ही तो समझदार नहीं हो सकते। इस वास्ते हिन्दू ऋषियों ने इन मूर्खों के वास्ते मूर्तियाँ बनवा दी हैं और उन्हें तरह तरह की शकलें दी हैं। उनमें कुछ भयानक भी बनाई हैं और पाप-मार्ग पर चलनेवालों से कहा है कि तुम्हारे वास्ते परमेश्वर भयानक मूर्तियों की तरह भयानक हो जायगा।

कुछ देर बहस के बाद वह कहने लगा कि "हाँ यह हो सकता है। इस पहलू पर मैंने विचार नहीं किया था।"

अपनी माता के मरने पर क्रिया-कर्म विधि-पूर्वक उन्होंने किया। यह कहा जा सकता है कि वे श्रद्धा बग़ैर भी ऐसा कर सकते थे, क्योंकि उनकी माता की यह आख़िर चाहना थी। मगर यदि उन्हें इसमें बिलकुल श्रद्धा न थी तो अपने मरते समय उन्होंने अपना क्रियाकर्म करने की मनाई क्यों न कर दी। वे जानते थे कि यह उनकी आख़िरी बीमारी है, जिससे वे अच्छे न होंगे, मगर एक दफ़े भी अपने क्रिया-कर्म की रोक-थाम के बारे में एक शब्द भी न बोले। इतना ही नहीं, लेखक के सामने की बात है कि एक मित्र ने जिसकी उन्हें बड़ी क़द्र थी, पूछा कि आपको गायत्री याद है, उन्होंने कहा, हाँ और सुना दी।

अपने पुत्र जवाहरलाल का जनेऊ बड़ी धूमधाम से किया। उस जनेऊ में और फिर उनके और उनकी छोटी बहन के विवाह के समय सारे ही संस्कार शास्त्र के अनुसार किये गये। अगर श्रद्धा नहीं थी तो क्यों इनमें परिवर्तन नहीं किया? जिस आदमी को इतनी हिम्मत हो कि रहन-सहन, खान-पान में रस्म-रिवाज तोड़ सके उसके वास्ते यह नहीं कहा जा सकता कि उसने दुनिया से डरकर कोई भी बात की हो। अपनी पुत्री का विवाह तक उन्होंने जाति के बाहर किया, किन्तु उसमें भी शास्त्र के अनुसार सब संस्कार किये।

जो भी हो! कम-से-कम देखनेवाला यह कह सकता है कि उन्हें हिन्दू-धर्म में पूरा विश्वास था। यह सच है कि वे उस धर्म की अधिकांश बातों को ढोंग बताते थे जैसी कि वे वास्तव में हैं भी।

[आगामी अंक में समाप्य

मधु-वात

लेखक, श्रीयुत 'सूर्य'

विहग-बाला-सी, री! गतिमान्।
व्यर्थ कर 'अथ', 'इति'-का पट तान!
स्मरण-पट कर धूमिल- अज्ञान!
'आज'-को, कल कर देती हो म्लान!
वायु! क्यों बहती हो सुनसान!
कहाँ जाती हो बन महमान!

तुहिन-कण-सी बिखराती गात!
अश्रु-दल पल ढलकाती गात!
जीर्ण तरु की क्षणभङ्गुर-सी पात!
लहर-सी लोल! स्वयं अज्ञात!
समय के पंख लगा 'दिन-रात'!
कहाँ उड़ जाती हो 'मधु-वात'!

हलाहल

लेखक, श्रीयुत बच्चन

(१)

जगत-घट को विष से कर पूर्ण किया जिन हाथों ने तैयार,
लगाया उसके मुख पर, नारि! तुम्हारे अधरों का मधु-सार।
नहीं तो कब का देता तोड़ पुरुष विष-घट यह ठोकर मार,
इसी मधु का लेने को स्वाद, हलाहल पी जाता संसार!

(२)

विजय करके सारा संसार न जिनको हो सकता था सत्र,
न करवट लेने की भी एक जगह उनको देती है क़ब्र!
वही भुजदंड सके जो तोड़ गढ़ों की गर्वीली दीवाल,
न सकते पतली, छोटी, क्षीण शिला अपने ऊपर से टाल!

(३)

कहाँ है अब नृप औरँगज़ेब? कहाँ उसकी नंगी तलवार?
कहाँ अब उसका क्रोध कराल, कँपा जो देता था संसार!
एक मिट्टी-पत्थर की क़ब्र ढक रही उसका आज शरीर,
बता करती उसका उपहास बंद है इसमें 'आलमगीर'*।

(४)

किसी ने बनवाया भी ताज किसी की यदि रखने को याद,
न क्या हो जायेगा वह जीर्ण, न क्या हो जायेगा बर्बाद!
ताज का एक-एक पाषाण कहा करता दिन-रात पुकार—
मुझे खा जायेगी दिन एक इसी यमुना की भूखी धार!

* आलमगीर औरंगज़ेब का दूसरा नाम था। शाब्दिक अर्थ आलमगीर का है दुनिया भर को पकड़नेवाला।

(५)

एक दिन दृढ़ चीनी दीवार गिरेगी गिर कर होगी क्षार !
धरा-लुंठित होगी दिन एक कुतुब की नभचुंबी मीनार !
धँसेंगी मरु में मिस्र-समाधि, किसी दिन कुटिया तनिक विचार,
अर्थ क्या रखता गिरना सोच मचाना तेरा हाहाकार !

(६)

एक दिन काल प्रबल के हाथ हिमाचल के धर स्कंध विशाल,
एक झटके में नस-नस तोड़ धरा पर श्रम से देंगे डाल !
रजत का उसका मुकुट विराट बनेगा रज के कण का ग्रास !
लिखा जाते मानव सम्राट् शिलाओं पर अपना इतिहास !

(७)

एक दिन हंस-कमल-युत दीर्घ सरोवर होंगे जल से हीन !
करेंगी 'प्यास-प्यास' दिन एक जगत की नदियाँ होकर दीन !
एक दिन काल-अग्नि-शर चंड सोख लेंगे सागर गंभीर !
कौन-सी गिनती में, नादान ! तुम्हारी आँखों का यह नीर !

(८)

एक दिन बुझ जायेगा सूर्य प्रकाशित जिससे सब संसार !
एक दिन बुझ जायेगा चाँद निशा का सुंदरतम शृंगार !
एक दिन बुझ जायेंगे दीप गगन के सब, खद्योत, विचार,
अर्थ क्या रखता बुझना सोच मचाना तेरा हाहाकार !

(९)

एक दिन चिर-विनाश की श्वास फूँक देगी सब वेद-पुराण !
फूँक देगी पावन इंजील ! भस्म कर देगी पूत कुरान !
राख होंगे, सब, कवि सम्राट् ! तुम्हारे गौरव-काव्य-किरीट !
हमारी तुकबंदी के हेतु बहुत होंगे लघु-लघु कृमि कीट !

(१०)

प्रतिक्षण देख हमारा नाश अधर पर अमरों के मुस्कान,
अमरता का करती अभिमान मर्त्य के स्वप्नों की संतान !
तुम्हारी सत्ता ही क्या, देव ! मुझे कहना कुछ और महान,
न रह जायेगा जिस दिन भक्त नहीं रह पायेगा भगवान !

(११)

उठाने में होंगे असमर्थ लेखनी जिस दिन कवि-कर-क्षीण,
उसी दिन होगी शत-शत खंड गिरे ! गिर तेरे कर की बीन !
कल्पना-कवि-रवि-रश्मि-प्रकाश पड़ेगा जग में जिस क्षण मंद,
उसी क्षण तेरे नीरज-नेत्र कमल-वन-चारिणि ! होंगे बंद !

(१२)

मिटा ज्यों-ही रजनी-पति चन्द्र अमित हिम-किरणों का आगार,
जहाँ सूखी शिव-सिर-आसीन सदा-शीतल सुरसरि की धार,
गरल बदला लेने के हेतु करेगा तैयारी तत्काल,
उफन उर से ऊपर की ओर विदारेगा शंकर का भाल !

(१३)

इधर है मरुथल-शून्य अनादि उधर है लय-मरुदेश अनंत,
बसा है इन दोनों के बीच एक लघु कण पर सृष्टि-बसंत !
एक लघु क्षण ले कोकिल कूक, चतुर्दिक आँधी के आसार,
एक लघु कंपन भर की देर, मरुस्थल होता एकाकार !

(१४)

'अचल' ! रे 'अचल' नहीं, गिरि-शैल, 'अचल' है चलने का व्यापार,
मिला जिसको है 'अचला' नाम, रही है ढो जीवन का भार !
नहीं अक्षय अक्षय-वट वृक्ष, एक अक्षय है क्षय निःशेष।
'अमर' ! ओ 'अमर' नहीं सुर-देव, अमर है मरने का संदेश !

(१५)

सभी जब हो जायेगा नष्ट, मरेगा भूखों काल महान !
दैव एकाकीपन से ऊब तजेगा आत्मघात कर प्राण !
शून्य में उठ-उठ नीरव नाद करेगा प्राप्त अनंत विकास—
प्रलय, लय, नाश ! प्रलय-लय-नाश ! प्रलय, लय, नाश ! प्रलय-लय-नाश !

'मधुशाला' के समान मैं 'हलाहल' पर भी चतुष्पदियों में एक 'तुकबंदी' लिख रहा हूँ। पूरी रचना में सम्भवतः सौ-सवा सौ से ऊपर पद रहेंगे। अब तक रचे हुए पदों में से कुछ चुनकर 'सरस्वती' के लिए भेज रहा हूँ। यहाँ लिये गये सभी पद अक्रम हैं। पूर्ण रचना पुस्तक-रूप में यथासमय प्रकाशित की जायगी।

—बच्चन

शेक्सपियर की जन्म-भूमि

लेखक, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०



शेक्सपियर का जन्मस्थान अँगरेज़ी के साहित्यिकों और साहित्यप्रेमियों के लिए तीर्थ हो रहा है। अँगरेज़ी-साहित्य से विशेष अनुराग होने के कारण हमारे इस लेख के लेखक महोदय भी इँगलैंड की यात्रा करने पर शेक्सपियर की जन्म-भूमि बिना देखे न रह सके। इस लेख में आपने अपने उसी आनन्ददायक अनुभव का वर्णन किया है।

स्ट्रेटफोर्ड-आन-एवन को देखने की मुझे बहुत दिनों से लालसा थी। आखिरकार दो मित्रों को जिनके पास मोटर थे, वहाँ चलने के लिए राज़ी किया और हम लोग एक दिन सुबह शेक्सपियर की जन्म-भूमि की ओर चल दिये। लन्दन से स्ट्रेटफोर्ड लगभग ९० मील है। लेकिन इँग्लैंड में बहुत अच्छी सड़कें होने के कारण मोटर में यात्रा करना बहुत सुहावना लगता है, और फिर चारों ओर की प्रकृति और गाँव तो सचमुच बहुत ही सुन्दर थे। घास के ऊँचे-नीचे मैदान जिन पर जगह जगह हरे हरे वृक्ष शोभायमान थे, बड़े चित्ताकर्षक प्रतीत हुए। ऐसा मालूम पड़ता था, मानो प्रकृति ने स्वयं चारों ओर अपना सुन्दर बाग़ लगाया है। मार्ग में बहुत-से गाँव पड़े, जिनमें यात्रियों के लिए सब प्रकार की सुविधायें थीं।

लगभग तीन घण्टे में हम लोग स्ट्रेटफोर्ड पहुँचे। सबसे पहले तो पेट-पूजा करने की सूझी। पास के ही एक केफ़े में गये और सबने अपनी भूख शान्त की। लेकिन बिल देखने पर बड़ा क्रोध आया। यहाँ तो लन्दन से भी दुगुना दाम ले लिया! स्ट्रेटफोर्ड में यात्रियों की भरमार रहती है, इसलिए लोगों को अधिक से अधिक दाम लेने में किसी प्रकार का संकोच नहीं होता।

अपना अपना बिल चुकाकर हम लोग शहर घूमने निकले। सबसे पहले शेक्सपियर की मूर्ति के दर्शन किये। यह सड़क के किनारे एक पार्क में है। दो साल हुए, यह मूर्ति इस स्थान पर स्थापित की गई थी। इसके पास ही शेक्सपियर के नाटकों के चार मुख्य पात्रों की भी मूर्तियाँ हैं। कुछ ही दूर पर एवन नदी बहती है। मैं कुछ देर तक इस प्रतिमा को ग़ौर से देखता रहा, और मेरे मन में कई विचार आये। मनुष्य अपनी स्मृति को स्थायी बनाने के लिए भिन्न भिन्न प्रकार के यत्न करते हैं। शाहजहाँ ने अपनी प्रेयसी की यादगार के लिए कितना सुन्दर ताजमहल बनवाया! मिस्र-देश के प्राचीन बादशाहों ने अपनी स्मृति स्थायी करने के लिए विशाल पिरामिड बनवाये। लेकिन ये कब तक कायम रहेंगे? शेक्सपियर की मूर्ति भी चिरस्थायी नहीं है। किन्तु क्या उसका नाम मिट सकता है? साहित्य और कला के प्रति मनुष्यों का कैसा आदरणीय भाव है, यह विचार कर मुझे बहुत आनन्द हुआ।

शहर से कुछ दूर चलकर हम लोग शेक्सपियर के जन्मस्थान पर पहुँचे। टिकट लेकर अन्दर गये और इस प्राचीन घर की पुरानी चीज़ें देखने लगे। इस बड़े मकान के दाहने भाग में शेक्सपियर के

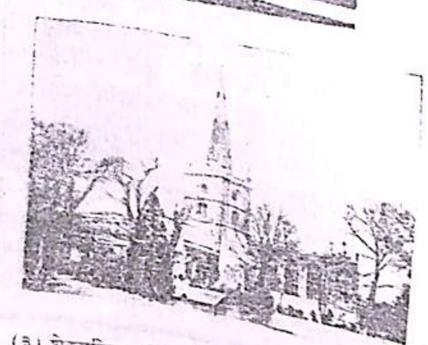


(१) शेक्सपियर का जन्मस्थान



(२) एनहैथवे का कुटीर





(३) शेक्सपियर की मूर्ति के पास लेखक की पार्टी

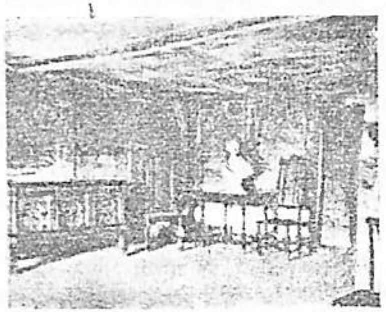
(४) ट्रिनिटी गिर्जा जिसमें शेक्सपियर की क़ब्र है।

माता-पिता रहते थे। उसके सम्बन्ध में बहुत-से काग़ज़ और किताबें रक्खी हुई थीं। इन सबको ग़ौर से देखने और पढ़ने का तो समय नहीं था, किन्तु कमरे का वातावरण बहुत ही विचित्र था। मकान के बाईं ओर ऊपर वह कमरा है, जहाँ शेक्सपियर का जन्म हुआ था। यहीं इस महान कवि और नाट्यकार की एक मूर्ति रक्खी हुई है। इस कमरे में मैं कुछ देर तक खड़ा रहा। "क्या सचमुच इसी छोटे से कमरे में इतना प्रसिद्ध साहित्यिक पैदा हुआ था?" मैंने सोचा। मैं मूर्ख की भाँति सोचने लगा कि शायद इस कमरे में कुछ देर रहने से मुझमें भी शेक्सपियर का कुछ चमत्कार आ जाय। लेकिन अधिक समय तक वहाँ खड़े रहने से तो लोग मुझे पागल ही समझते। चुपचाप बाहर निकलकर घर के सुन्दर बाग़ में चला गया। कुछ देर बाद और मित्र भी आ गये और हम सब लोग न्यू प्लेस म्यूज़ियम और नेश के घर की ओर चल दिये।

यहाँ भी टिकट लेना पड़ा। हर जगह जेब से दाम निकालना बुरा लगने लगा। लेकिन यह स्थान बिना देखे ही वापस जाना तो मूर्खता थी। शेक्सपियर की नातिन ने टामस नेश से विवाह किया था और इस मकान में बहुत दिनों तक रही थी। इस मकान के कुछ भाग चार सौ वर्ष पुराने







(१) एवन नदी के तट का दृश्य ।
(२) शेक्सपियर मेमोरियल थियेटर ।
(३) इस कमरे में शेक्सपियर ने जन्म लिया था ।

हैं। इसमें एेंग्लो-सेक्सन-काल की पुरानी चीज़ें रक्खी हुई हैं। शेक्सपियर के नाटकों के कुछ अभिनेताओं, विशेष कर गैरिक-सम्बन्धी चित्र भी यहाँ रक्खे हुए हैं। इस मकान के पीछे शेक्सपियर का भी मकान था, जिसकी अब केवल नींव ही रह गई है। कहा जाता है कि शेक्सपियर की मृत्यु के बाद इस मकान में एक पादरी रहता था। जब बहुत-से लोग कवि की स्मृति के लिए उस मकान को देखने आते तब उस पादरी को बड़ा बुरा लगता। जिस मनुष्य के नाटक बाइबिल के बजाय पढ़े जाने लगे थे उसकी यादगार बनाये रखना पादरी महोदय के लिए पाप था। इसलिए एक दिन क्रोध में आकर उन्होंने शेक्सपियर के पुराने घर को गिरवा दिया। हमारे गाइड ने ही यह बात बतलाई, और अन्त में मुस्कराकर बोला—"भाग्य से वह पादरी कुछ समय बाद शहर से निकाल दिया गया। नहीं तो शायद वह उस मकान के ये चिह्न भी न रहने देता।" उस मकान में शराब का तहखाना और एक कुआँ अब भी बना हुआ है। उस कमरे की नींव जिसमें शेक्सपियर ने अपना अन्तिम नाटक 'टेम्पेस्ट' लिखा था, अभी तक ठीक बनी हुई है। घर के पास एक शहतूत का पेड़ है। कहा जाता है कि इस वृक्ष के पूर्वज को शेक्सपियर ने स्वयं लगाया था। मकान के एक ओर दो सुन्दर बाग़ हैं, जहाँ यह महान् कवि और नाट्यकार किसी समय टहला करता था। पास ही वह पुराना 'ग्रामर-स्कूल' जिसमें शेक्सपियर ने बचपन में शिक्षा पाई थी, अभी तक चला जा रहा है। स्कूल के बाहर का हिस्सा लकड़ी का बना हुआ है, जो अब बहुत पुरानी पड़ गई है। शेक्सपियर को तो शायद इस स्कूल में पढ़ना पसन्द नहीं था, लेकिन स्कूल के आज-कल के विद्यार्थी सचमुच अपने को बड़ा भाग्यवान समझते होंगे।

इसके पश्चात् हम लोग ट्रिनिटी-चर्च देखने गये, जहाँ शेक्सपियर और उसके कुनबे की समाधियाँ हैं—उसकी और उसकी स्त्री, लड़की, दामाद और टामस नेश की। शेक्सपियर की क़ब्र के पास ही दीवार पर कवि की एक स्मारक मूर्ति बनी हुई है। इसी गिर्जे में शेक्सपियर को बपतिस्मा दिया गया था, और वह पुराना रजिस्टर अभी तक रक्खा हुआ है। शेक्सपियर की क़ब्र के ऊपर पत्थर पर चार लाइन की एक कविता लिखी हुई है, जिसका अर्थ इस प्रकार है—"हे मित्र, यीशू के नाम पर इसके अन्दर की मिट्टी को न खोदो। जो इन पत्थरों को न छुएगा उसको आशीर्वाद मिले; और जो मेरी हड्डियों को हटावेगा उसको शाप मिले।" शेक्सपियर को नहीं ज्ञात था कि इन पंक्तियों की आवश्यकता न होगी। जब तक संसार जीवित है तब तक उसका नाम रहेगा और जब तक जगत् में सभ्य लोग रहेंगे तब तक उसकी क़ब्र की भी रक्षा की जायगी। ट्रिनिटी-चर्च एवन नदी के किनारे एक बहुत ही सुहावने स्थान पर बना हुआ है। इस गिर्जे के कुछ भाग बारहवीं शताब्दी के हैं। शेक्सपियर के कारण इस गिर्जे का भी नाम अमर होगया है।

शेक्सपियर के जन्म-स्थान से लगभग एक मील की दूरी पर एक कुटीर है, जिसमें कवि की स्त्री एन हेथवे बहुत दिनों तक रही थी। यह कुटीर एलिज़ाबेथ के काल की है और फूस से पटी हुई है। इसके सामने एक बहुत सुन्दर बाग़ है। कुटीर के अन्दर जो कुछ सामान रक्खा हुआ है, सब उसी काल का है। हमारे गाइड ने भिन्न भिन्न कमरों में ले जाकर सब चीज़ें दिखलाईं। हेथवे का रसोईख़ाना, सोने का कमरा, हेथवे के पिता का कमरा, मेहमानों के लिए पृथक् कमरा इत्यादि देखकर बड़ी ख़ुशी हुई। ओढ़ने-बिछाने के पुराने कपड़े, रसोई के बर्तन, मेज़, कुर्सी अभी तक रक्खे हुए हैं। लेकिन सबसे रोचक यहाँ वह बेंच भी अभी तक रक्खी हुई है जिस पर शेक्सपियर और हेथवे साथ बैठकर आमोद-प्रमोद किया करते थे। जब गाइड ने उसके बारे में हम सबको बतलाया तब सब लोग मुस्कराने लगे। शेक्सपियर भी साधारण मनुष्यों की भाँति किसी समय हेथवे के लिए पागल रहता था। हेथवे उससे सात साल बड़ी थी, लेकिन प्रेम के आगे उम्र क्या है? कहा जाता है कि यह प्रेम बहुत दिनों तक नहीं चला, और इसी लिए शेक्सपियर स्ट्रैटफ़ोर्ड छोड़कर लन्दन चला गया। बेचारी एन हेथवे का जीवन तो शायद दुःख में ही कटा होगा, किन्तु यदि शेक्सपियर से विवाह न किया होता तो उसको कौन जानता? लेकिन उसको क्या मालूम था कि उसका पति इतना महान् पुरुष हो जायगा। शेक्सपियर स्वयं भी अपने गौरव को न समझ सका होगा! वह यह कभी न सोच सका होगा कि उसकी मृत्यु के बाद हज़ारों किताबें उसके सम्बन्ध में लिखी जायँगी, और वह संसार का एक मुख्य नाट्यकार और कवि माना जायगा। यदि शेक्सपियर जीवित होकर फिर अपने बारे में सुने तो सचमुच उसके आश्चर्य और ख़ुशी का ठिकाना न रहेगा। उसकी कला के सम्बन्ध में लिखी हुई हज़ारों पुस्तकों को पढ़ना और समझना शायद उसके लिए भी कठिन होगा।

एवन नदी के किनारे शेक्सपियर-मेमोरियल-थियेटर की सुन्दर इमारत है, जिसमें अप्रैल से सितम्बर तक भिन्न भिन्न नाटक खेले जाते हैं। पहला थियेटर उन्नीसवीं शताब्दी (सन १८७९) में बनाया गया था, लेकिन सन १९२६ में आग लग जाने के कारण वह नष्ट होगया। इस नवीन थियेटर-गृह में लगभग १,१०० व्यक्तियों के बैठने का प्रबन्ध है। स्टेज बहुत अच्छा बना हुआ है और हज़ारों पोशाकें काम में लाई जाती हैं। शेक्सपियर के नाटकों के सर्वोत्तम अभिनय के लिए यह थियेटर संसार भर में प्रसिद्ध है। खेद है, हम लोग समयाभाव से कोई अभिनय न देख सके।

इसी थियेटर-घर के पास शेक्सपियर-मेमोरियल-लायब्रेरी और पिक्चर-गैलरी भी हैं। पुस्तकालय में शेक्सपियर-सम्बन्धी पुस्तकों का सबसे अच्छा संग्रह है। यहाँ हज़ारों किताबें एकत्र हैं। तो भी दिन

पर दिन इन किताबों की संख्या बढ़ती ही जाती है। शायद ही कोई ऐसा सप्ताह होता होगा जब किसी न किसी देश में शेक्सपियर के सम्बन्ध में कोई नवीन पुस्तक न छपती हो। शेक्सपियर के नाटकों के बहुत पुराने संस्करण भी इस पुस्तकालय में रक्खे हुए हैं। पिक्चर गेलरी में बहुत-सी पुरानी तसवीरें एकत्र हैं। गेरिक, केम्बिल, सिडन्स इत्यादि शेक्सपियर के नाटकों के बहुत-से अभिनेताओं के चित्र यहाँ टँगे हुए हैं।

स्ट्रेटफ़ोर्ड से तीन मील की दूरी पर शेक्सपियर की मा मेरी आर्डिन का पुराना घर है। विवाह होने के पहले वह उसी में रहा करती थी। इस मकान में सोलहवीं शताब्दी का बहुत-सा सामान सुरक्षित रक्खा हुआ है। उस काल के खेती के पुराने औज़ार भी यहाँ रक्खे गये हैं। स्ट्रेटफ़ोर्ड में हार्वर्ड-यूनिवर्सिटी के संस्थापक जान हार्वर्ड की मा का भी पुराना मकान बना हुआ है। यह भी महारानी एलिज़ाबेथ के काल का ही है।

स्ट्रेटफ़ोर्ड एक छोटा किन्तु सुन्दर शहर है। यद्यपि इसका इतिहास बहुत पुराना है, तो भी बहुत-से मकान नये ढंग के बने हुए हैं। पहले यह एक छोटा-सा गाँव था। लेकिन यात्रियों की भरमार के कारण अब यहाँ बहुत-से होटल बन गये हैं और आबादी भी बढ़ गई है। होटलों में भी 'शेक्सपियर-होटल' सबसे पुराना है। यद्यपि इसमें आधुनिक समय के सब आरामों की व्यवस्था है, तो भी इसकी बनावट ट्यूडर-काल की है। भूत और वर्तमान काल का यह मिश्रण सचमुच विचित्र है।

स्ट्रेटफ़ोर्ड के चारों ओर का प्राकृतिक दृश्य बहुत ही सुहावना है। शाम को हम लोग शहर के बाहर उत्तर की ओर गये। इसी ओर प्रसिद्ध आर्डन का जंगल है। शेक्सपियर के 'एज़ यू लाइक इट' नामक नाटक में इस जंगल का वर्णन मिलता है। उसको देखकर मेरे मन में बहुत-से विचार उठने लगे। अगर समय होता तो उसमें कुछ देर घूमने का प्रयत्न करता। लेकिन अँधेरा हो चला था और रात में लन्दन वापस पहुँचना था, इसलिए मोटर में बैठकर हम सब लोग स्ट्रेटफ़ोर्ड से लगभग सात बजे चल दिये।

अँगरेज़ लोग धन एकत्र करने में किसी से पीछे नहीं रहना चाहते। लेकिन ये लोग अपने साहित्य और कला के सेवकों का उचित सम्मान करना भी नहीं भूले हैं। यदि भारत में भी हम लोग इस ओर अधिक ध्यान दें तो कितना अच्छा हो?

आओगे?

लेखक, श्रीयुत हरिभाऊ उपाध्याय

देव, क्या सचमुच आओगे?
तृषित, थकित इन नयनों को क्या छवि दिखलाओगे?
बन करके विराट मत आना, कहाँ समाओगे?
चेतन-कण बन आओगे, उर में बस जाओगे॥
बन आँधी, तूफ़ान न आना, दीप बुझा दोगे!
आओगे बन साँस हृदय की, मुझे जिलाओगे॥
प्रखर सूर्य-से आओगे तो उर झुलसा दोगे!
प्रेम-ज्योति शीतल बन आओ हिय हुलसाओगे॥
स्वामी बनकर मत आओ तुम मुझे डराओगे।
प्रेमी बनकर आओगे तो जय पा जाओगे॥
देव, क्या सचमुच आओगे?

मुसलमानों की न्याय-प्रणाली

लेखक, श्रीयुत नागेश्वरनाथ वर्मा, बी० ए०, एल-एल० बी०

मुसलमानों के शासनकाल में भारतवर्ष में कोई निश्चित न्याय-प्रणाली न थी। न्याय बहुत कुछ बादशाहो की व्यक्तिगत रुचि पर निर्भर था। पर इस बात के उदाहरण मिलते हैं कि कुछ बादशाहों ने यह अनुभ किया कि भारतवर्ष पर 'शरअ मुहम्मदी' के अनुसार शासन करना कठिन है। इसलिए उन्होंने उसमें कुछ परिवर्तन किया और वे सफल हुए। पर जो ऐसा नहीं कर सके और एक ही लाठी से सबको हाँकने की चेष्टा की वे असफल ही नहीं हुए मुसलिम साम्राज्य के विध्वंस के भी कारण हुए। इसी बात को इस लेख में लेखक महोदय ने ऐतिहासिक प्रमाणों के साथ सिद्ध किया है।

मुसलमान भारत में अपना निज का शासन-विधान और नवीन दंड-प्रथा अपने साथ लेकर आये। प्रत्यक्ष है कि आक्रमणकारियों को विजातीय शासितों से कोई सहानुभूति नहीं हो सकती, अतएव उस मार-काट के युग में जो क़ासिम के प्रथम आक्रमण से लेकर ग़ोरी की अंतिम चढ़ाई तक विस्तीर्ण है, दलित भारतवासियों के सम्बन्ध में न्याय किये जाने की चिन्ता के बजाय यदि विजयी मुसलमानों को उन पर नित्य नये अत्याचार करने की ही धुन रही हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। तो भी इस बीच में कोई कोई मुसलमान शासक ऐसा भी हुआ है जिसने अपनी 'शरअ' के अनुसार न्याय करने की चेष्टा करके लोगों को मनमानी कार्यवाही करने से रोका है। किन्तु 'शरअ मुहम्मदी' के प्रयोग से भी ग़ैर मुसलिम जातियों के साथ न्याय के बजाय उलटा अन्याय ही हुआ।

जान पड़ता है कि हिन्दू-जनता महमूद ग़ज़नवी के न्याय से संतुष्ट थी। इसी लिए अब तक उसकी न्याय-प्रियता के विषय में कितनी ही कहावतें उत्तरी भारत में प्रचलित हैं। किन्तु उसके स्थायी रूप से देश में न टिकने के कारण उसकी नीति का भारतीय मुसलमानों की न्याय-प्रणाली पर कोई विशेष प्र नहीं पड़ सका।

मुसलमान शासकों में ऐसे कितने ही तो मुस मिलेंगे जो किसी-न-किसी कारण हिन्दू से मु मान होने पर विवश हुए हों। ऐसे लोगों ने हि धर्म-शास्त्रों का थोड़ा-बहुत ज्ञान होने के कारण स समय पर उसका सदुपयोग करने की चेष्टा अ की और इसका नवीन न्याय-पद्धति पर गहरा प्र भी पड़ा। और तो मुग़लों तक ने वह बात सोची जो अँगरेज़ों को प्रारम्भ से ही सूझ ग वास्तव में मुसलमान-साम्राज्य के विध्वंस का कारण यह भी है कि उन्होंने विभिन्न प्रकृति जातियों को एक ही लाठी से हाँकने की भूल की।

डाक्टर फ़रमिंगर की राय में मुग़लों की न्या प्रणाली के विषय में निश्चयरूप से कुछ नहीं क जा सकता, क्योंकि इसके बारे में विद्वानों में भ मतभेद दिखाई देता है। यह कठिनाई उस स और भी बढ़ जाती है जब हम मुसलमानों के भा में आने के समय की पूर्ण स्थिति की खोज क बैठते हैं।

'मुसलमानों के शासनकाल में भारत' (इंडि अंडर मोहम्मेडन रूल) के सुप्रसिद्ध लेखक रुई (R का कहना है कि इस विषय की पड़ताल करने समुचित साधन उपलब्ध नहीं हैं। जिन हस्त

साधनों से इस मामले पर थोड़ा-बहुत प्रकाश पड़ता है वे ये हैं—

१—तोज़क या शासकों का स्ववृत्तान्त, जैसे तैमूर, बाबर और जहाँगीर की रचनायें या उनके कुटुम्बियों अथवा नौकरों-द्वारा लिखे और लिखाये गये वृत्तान्त, जैसे आईन अकबरी या गुलबदन बेगम और जौहर इत्यादि के वर्णन।

२—समकालीन विदेशी इतिहासलेखकों की कृतियाँ जो अरबी और फ़ारसी भाषाओं से इलियट और डौसन-द्वारा अनूदित होकर अँगरेज़ी में आईं।

३—डच, इटालियन, फ्रांसीसी, अँगरेज़ और अरब—मनकी, सर टामस रो और फ्रैन्सिसको पिल्सैरेट जैसे यात्रियों के भ्रमण-वृत्तान्त।

४—शाही फ़र्मान, फ़तवे, सुक्के, फ़ैसले और क़ानून इत्यादि।

उक्त साधनों से जो कुछ ज्ञात होता है उस पर भी आँख मूँद कर विश्वास नहीं किया जा सकता। बहुत-सी रचनायें तो घटनाओं का सच्चा वर्णन होने के बजाय काल्पनिक गाथाओं से भरी पड़ी हैं और उनसे पग पग पर पक्षपात तथा अंधविश्वास टपका पड़ता है। होल्डन ने अपनी 'भारत के मुग़ल सम्राट्' नामक अँगरेज़ी पुस्तक में तैमूर की आत्म-कथा (तोज़क) को 'झूठा वृत्तान्त' लिखा है।

इलियट और डौसन की राय में भारतीय इतिहास-सम्बन्धी ग्रन्थों में बहुत कम सत्य है। अतएव मुसलमानों के क़ानूनों से भारतवासियों को जो क्षति पहुँची है उसका ठीक ठीक अनुमान करना भी सम्भव नहीं है। मनकी का विवरण तो एक-दम गपोड़ ही समझा जाता है। यदि उस समय का क़ानून धारा-रूप में मुद्रित होता तो खोद-विनोद का यह दुर्गम मार्ग बहुत कुछ सुगम हो जाता। किन्तु शासन-प्रणाली की स्थानीय तथा सामयिक विभिन्नता (जो अधिकतर शासक की न्याय-प्रियता या अन्ध पक्षपात पर निर्भर होती थी) के कारण कदाचित ऐसा नहीं हो सका।

सर टामस रो का कथन है कि "मुसलमानों का कोई क़ानून स्थायीरूप से लागू नहीं है। शासकों और कभी कभी अन्य राजकर्मचारियों के ही निर्णय के अनुसार दण्ड इत्यादि दिया जाता है। इन फ़ैसलों की अपील तो आज तक सुनी ही नहीं गई। एक ही तरह के दो मामलों में दो प्रकार के निर्णयों के कई कई उदाहरण भारत के मुसलमान शासकों को छोड़ कर किसी दूसरी जगह मिलना कठिन है।

"बादशाह दीवानी और फ़ौजदारी आदि के सारे अभियोगों को ध्यानपूर्वक सुनकर अपने इच्छानुसार उनका निपटारा करता है। कभी कभी अपराधी हाथियों से रौंदवाकर मरवा दिये जाते हैं। ख़ूनी हाथियों को दंडित के ख़ून में लथपथ देखकर बादशाहों का बड़ा मनोरञ्जन होता है।

"शाही फ़र्मान (राजाज्ञा)-द्वारा मुसलमान गवर्नर प्रान्तों के स्वामी नियत होते हैं। गवर्नर अधिकतर स्वेच्छाचारी तथा स्वार्थी देखे गये हैं। प्रजा के जान-माल के सम्बन्ध में उनकी इच्छा ही उनका क़ानून समझना चाहिए। वे जब चाहें उस पर हाथ साफ़ कर सकते और करते रहते हैं। इन अत्याचारों की या तो सुलतान को सूचना ही नहीं मिलती या वह इस विषय में जान-बूझकर हस्तक्षेप नहीं करना चाहता"।

फ्रांसिसको ने जहाँगीर के आगरे के दरबार में क़ाज़ियों के पास क़ानून की किताबें देखकर लिखा है—"ये पोथियाँ केवल दिखाने के लिए रक्खी गई हैं। उनके आदेशानुसार चलने की चिन्ता किसी को नहीं है"। पिल्सैरेट ने अपने 'जहाँगीर' नामक ग्रंथ में लिखा है कि "शासन-विधान एक-दम मनमौजी है।...क़ानून-सम्बन्धी जो इनी-गिनी रचनायें देखी जाती हैं उनमें क़ुरान, हनफ़ी, शाफ़ई, मलिकी और अन्य मुसलमान मुजतहिदों तथा धर्मशास्त्रज्ञों की तफ़सीरें और आलोचनायें उल्लेखनीय हैं।" इस्लामी शरअ की आलोचना करते हुए इसी लेखक ने लिखा है कि "इन क़ानूनों में न्याय से अधिक बदले का भाव छिपा हुआ है।"

'फ़तवये आलमगीरी' वास्तव में एक ऐसी पुस्तक ज़रूर है, जो देश के क़ानून का संग्रह कही जा सकती है। 'मुग़ल-शासन-प्रबन्ध' के प्रसिद्ध लेखक सरकार के कथनानुसार औरंगज़ेब ने दो लाख रुपया ख़र्च करके मुसलमान धर्मशास्त्रज्ञों से 'फ़तवये आलमगीरी' लिखाई थी। 'फ़तवये आलमगीरी' उस न्याय-प्रथा का वास्तविक रूप नहीं है जो मुग़लों के शासनकाल में यहाँ प्रचलित थी, बल्कि उस न्याय-प्रथा को बहुत कुछ भ्रष्ट करके ऐसे नियम बनाये गये हैं जिनका औरङ्गज़ेब के दृष्टि-कोण से हर मुसलमान बादशाह को व्यवहार करना चाहिए।

मुसलमानों के राज्य में क़ानून-पेशा वकील नहीं होते थे। कदाचित इसलिए क़ानून भी नियम-बद्ध न हो सका और खोद-विनोद का कार्य्य नियमित रूप से किये जाने की व्यवस्था न की जा सकी। मालूम होता है कि उन दिनों मुक़दमे की उचित पैरवी नहीं की जाती थी। साधारणतया क़ानून के फेर में पड़ जाना सर्वनाश का लक्षण समझा जाता था। फिर भी यह सत्य है कि न्याय जो कम से कम मुसलमानों को तो दुर्लभ न था, आज-कल की तरह इतना महँगा न बिकता था।

डाक्टर बेनीप्रसाद ने अपने 'जहाँगीर' नामक ग्रंथ में मुग़लों के युग में वकीलों के अभाव से संतुष्ट होकर लिखा है कि "हर्ष का विषय है कि उन दिनों ऐसे लोग भारत में न थे जो अपनी गोटियों के मोह में अपनी आत्मा, अपना मस्तिष्क और अपना ज्ञान इधर-उधर बेचते फिरते थे। और दूसरों का ख़ून चूस-चूसकर सारे देश और समाज को सर्वनाश के घाट उतार देते थे"। इस विवरण से भी मुसलमानों के शासन-विधान और न्याय-प्रणाली पर धुँधला सा प्रकाश पड़ता है।

यदि उस समय की संसार की प्रगति और भारतवर्ष की स्थिति को सामने रखकर मुस्लिम न्याय-प्रणाली का अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होगा कि सिंध में मुसलमानों के युग में जो प्रथायें प्रचलित थीं वे दो महान् जातियों के सम्पर्क और उनके अपने पुराने रवाजों के संयोग का ही स्वाभाविक परिणाम थीं। यह मेल-जोल वास्तव में इतना गहरा था कि अब पारस्परिक भेद-भाव का पहचानना भी किसी तरह सम्भव नहीं है। सिंधवासी और नवागन्तुकों के मिलाप से धीरे धीरे प्राचीन पद्धति तथा नवविधान एक दूसरे के इतने निकट आ गये कि उनकी स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी कोई बाधा उपस्थित होने की सम्भावना ही न रही।

पहले-पहल मुसलमान भी अँगरेज़ों की ही तरह भारत से व्यापारिक सम्बन्ध स्थिर करने के लिए यहाँ आये। इसी लिए उन्हें सिंधवासियों को प्रसन्न रखने की आवश्यकता हुई। मुसलमानों के इस अनुभव का उनकी न्याय-प्रणाली पर कुछ-न-कुछ प्रभाव पड़ना अनिवार्य था।

सिंध पर अरबों आदि के जितने आक्रमण हुए उनका लक्ष्य मुस्लिम साम्राज्य का निर्माण न था। यह भाव तो केवल उसी समय उदित हुआ जब मुहम्मद ने इस्लाम फैलाया। इस प्रकार का पहला आक्रमण मुहम्मद बिन क़ासिम ने किया और लोगों को भयभीत करके इस्लाम फैलाने की चेष्टा की। उसने सिंध-निवासियों पर जज़िया लगाया, किन्तु तलवार के ज़ोर से भारत में बहुत दिनों तक रसूल के क़ानून और क़ुरान के फ़र्मानों का सिक्का न चल सका। एलद्रीसी के 'नाबिश्त उलमुश्ताक़' से पता चलता है कि "क़ासिम ने बाध्य होकर मालगुज़ारी वसूल करने के लिए बहुत-से ब्राह्मणों को बिना ज़मानत लिये ही नौकर रक्खा। इससे उसका ख़लीफ़ा और स्वामी बहुत प्रसन्न हुआ। हज्जाज से उसके नाम जो पत्र आया उसमें लिखा था—'सर्वसाधारण की नीति का अनुसरण करने के लिए उत्साहित करने से राज्य की पुष्टि होगी और अशान्ति तथा विरोध का भय नष्ट हो जायगा'......।"

'जामय उलहिक़ायत' में यूफ़ी ने लिखा है कि "नौशेरवाँ ने अपने एक सरदार को आदेश दिया

था—'भारतीय प्रजा के लिए उचित है कि वह अपनी परिपाटी का ही अनुकरण करे, इसलिए भारतीय शास्त्रों को ठुकराकर नये क़ानून लागू करने की मूर्खता न की जाय'।" इसका परिणाम यह हुआ कि सिंधवासियों के पुराने रवाजों में कोई विशेष परिवर्तन न हो सका। और प्राचीन ग्राम्य स्थिति पूर्ववत् बनी रही। किन्तु नागरिक जनता बराबर मुल्लाओं के फ़तवों की कड़ाई झेलती रही।

इलियट और डौसन का कहना है कि "सिंध में जहाँ की अधिकांश जनता अपने सनातन-धर्म की अनुयायी थी, अदालतें नहीं थीं। पीड़ित और सताई गई प्रजा की कुछ दाद-फ़रयाद न हो सकती थी। हर सरदार जो किञ्चित् भी स्वतंत्र था, मौत तक की सजा दे सकता था। अमीर-उमरा भी मृत्युदंड देने के अधिकारी थे। इस अधिकारी-वर्ग में से कोई क़ाज़ी-द्वारा न्याय किया करते थे, जो क़ुरान और शरअ के अनुसार विचार-विमर्श करने को विवश था। क़ाज़ी धनादि के लोभ में अपनी आत्मा को बेच डालने में किञ्चित् भी संकोच न करते थे।

"अमीर राज्य-सम्बन्धी अपराधों का मनमाना दंड दिया करते थे। जायदाद, विरासत तथा उत्तराधिकार आदि के झगड़े-बखेड़े हिन्दू अपनी पञ्चायतों में आप तय किया करते थे। साधारणतया जाति से बहिष्कृत किये जाने का डर ही हिन्दुओं का रक्षक था। अन्यथा इस्लामी अदालतें तो हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का ही साधन थीं। हिन्दू अपराधियों को इन अदालतों से इस्लाम स्वीकार कर लेने पर बड़े दण्डों से छुटकारा मिल सकता था।

"हिन्दुओं का घोड़ों पर चढ़ना अदालतों-द्वारा वर्जित था। हाँ, मुसलमानों की-सी दाढ़ी और उन्हीं का-सा वेश-भूषा होने पर घोड़े की सवारी का कोई निषेध न था। हिन्दुओं के धार्मिक जलसे और जलूस क़ानून के विरुद्ध समझे जाते थे। उन्हें बाजा तक बजाने की आज्ञा न थी।"

उक्त वर्णन के अनुसार डाक्टर बर्निस की धारणा है कि कदाचित् मुसलमानों के अनुचित व्यवहार के ही कारण हिन्दुओं को उनसे कोई सहानुभूति न थी और होती भी कैसे जब कि उन्हें अपने शासकों से न्याय की कोई आशा न थी। किन्तु बर्निस की यह राय अखण्ड सत्य नहीं कही जा सकती। अँगरेज भारत में मुग़लों के ही समय में आये और उन्होंने उस समय देश की जो हालत देखी उसी के अनुसार अन्य मुसलमानों की शासन-पद्धति का अनुमान करके इस विषय में अपना मत प्रकट किया। किन्तु उन्होंने यह भुला दिया कि जो मुसलमान सिंध से होकर भारत में प्रविष्ट हुए वे अरब थे और अपने साथ अपना नया विधान भी अरब से ही लाये थे। उन पर उस समय तक यूनानियों का कोई प्रभाव न पड़ सका था। अरबों की न्याय-प्रियता में कोई संदेह न था। मुग़लों में यह बात न थी। वे न तो अरबों की तरह उदार थे और न उनकी तरह सुशिक्षित और न्यायप्रिय थे।

अरबों को समय समय पर बग़दाद के ख़लीफ़ा से सहायता मिलती रहती थी, ख़लीफ़ा की आज्ञायें बड़े बड़े राजनीतिज्ञों और विद्वानों के मनन-चिन्तन का परिणाम होती थीं, इसी लिए उनकी और मुग़लों की न्याय-प्रणाली में आकाश-पाताल का अन्तर था। भारत में आने से पहले वे क़ाबुल और क़न्धार में लड़ते-भिड़ते और लूट-मार करते रहते थे। किन्तु अरबों का उनके आक्रमण से बहुत पहले भारत से व्यापारिक सम्बन्ध स्थिर हो चुका था। अरब सत्य की खोज में तत्पर रहते थे। जहाँ तक बन पड़ता वे अन्य जातियों के अधिकारों पर कुठाराघात न होने देते और अपने क्षमतानुसार उनकी रक्षा करने की चेष्टा करते।

क़ासिम के विषय में लिखा है कि "ब्राह्मणवाद के प्रबन्ध के लिए उसने ओवरसियर और अन्य कर्मचारी नियत किये और माल-जायदाद आदि के सारे अधिकार चार व्यापारियों को सौंप दिये।" इससे सिद्ध है कि क़ासिम और उसके उत्तराधिकारियों के शासनकाल में सिन्ध का जो हाल था वह मुग़लों के समय में अदृष्ट था।

जब मुग़लों ने अपने राज्य को विस्तृत किया तब देश की स्थिति एक-दम बदल गई। अकबर और जहाँगीर ने आरम्भ में अलाउद्दीन का ही अनुसरण किया। मुग़ल उत्तर-पश्चिम से जो शासन-विधान और न्याय-आदर्श अपने साथ लाये वह उतना उन्नत न था जितना सिन्ध के अरब शासकों का था। उन्होंने तुर्कों, अरबों और ईरानियों से जो कुछ थोड़ा-बहुत राजनैतिक ज्ञान प्राप्त किया था वह उन्हें कार्य-क्षेत्र में सफल बनाने के लिए पर्याप्त न था। इसी से उनकी सत्ता दृढ़ होने के बजाय दिन दिन गिरती ही गई। यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि—"तुर्क विजेता मिस्र और ईराक़ से नया शासन-विधान अपने साथ लेकर भारत में आये। इसका एक कारण यह था कि वे भारतवर्ष को पहचानने में असमर्थ थे और उससे कुछ सीख सकने की योग्यता तथा रुचि न होने के कारण जो कुछ देखते आये थे उसी पर चलने के लिए विवश थे।"

'फ़तवये आलमगीरी' के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उन दिनों भारत में जो क़ानून प्रचलित थे उनसे हिन्दुओं के साथ कितना अन्याय होता था। मुग़ल न्यायाधीश सदा क़ुरान को सामने रखकर विचार किया करते थे। किन्तु जो क़ानून एक विशेष प्रकृति और चरित्र के समाज के लिए बनाये गये हों वे अन्य जातियों के लिए किस प्रकार उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं और वह भी उस समय जब वे बहुत पहले से अपने धर्मशास्त्रों का अवलम्बन करती चली आ रही हों। मुसलमानों के भरसक प्रयत्न करने पर भी क़ुरान का यथोचित सम्मान न हो सका।

बाबर और उसके उत्तराधिकारियों ने अनुभव किया कि भारत पर 'शरअ मुहम्मदी'-द्वारा शासन करना केवल कठिन ही नहीं, हानिकारक भी है। अतः उन्होंने इस विषय में लोकमत बदलने की कुछ न-कुछ चेष्टा अवश्य की। डाक्टर होल्डन का मत है कि अकबर ने अच्छी तरह समझ लिया था कि हिन्दुओं को क़ुरान के सूत्र में बाँधे रखना मुसलमानों के वश की बात नहीं है। इसी लिए उसने उन्हें अपनाने का प्रयत्न किया। जहाँगीर ने भी स्वीकार किया है कि अकबर ने मूर्तियों को अपवित्र करने का निषेध कर दिया था। जहाँगीर के प्रश्न करने पर अकबर ने उत्तर दिया था कि—"यदि मैं ऐसा करूँ तो इसका मतलब यह होगा कि मैं देश की पाँच हिस्सा आबादी को मुट्ठी भर लोगों की प्रसन्नता के लिए मौत के घाट उतार दूँ।"

बाबर के आगमन पर इर्स्किन ने लिखा है कि "उत्तरीय भारत ने अपनी सनातन रीतियों को कभी नहीं छोड़ा और उनका सारा कारबार बहुत-सी बाधाओं की उपस्थिति में भी उसी क्रमानुसार चलता रहा। अन्त में हार कर विदेशी शासकों को भी यही उचित दिखाई दिया कि जनता अपने पुराने नियमों का पालन करने में वहाँ तक स्वतंत्र कर दी जाय जहाँ तक क़ुरान की अवज्ञा या दूसरे शब्दों में शाही क़ानून का अपमान होने की सम्भावना न हो।" फिर भी अकबर की नीति से इस्लामी क़ानून में भारी परिवर्तन होता गया और हिन्दू संतुष्ट होकर धीरे धीरे पिछले संकटों को भूलने लगे। किन्तु यह सुख-स्वप्न शीघ्र ही भंग होकर नूरजहाँ के चरणों में गिर पड़ा। औरङ्गज़ेब के आते-आते जज़िया और क़ुरान अर्थात् 'फ़तवये आलमगीरी' का ज़माना लाया गया और उनके साथ साथ मुसलमानी साम्राज्य का भी विध्वंस हो गया। देश में अराजकता राज्य करने लगी। अब जो मुसलमान नाममात्र के बादशाह थे वे दूसरों के हाथों के खिलौना थे और महलों तक में उनकी आज्ञा पर कान देनेवाले दिखाई न देते थे।

जीवन-तरु

लेखक, प्रोफ़ेसर मनोरञ्जन, एम० ए०

मेरे जीवन-तरु की डाली।
कितनी कोमल, कितनी सुन्दर,
कितनी मनमोहक है आली॥
जीवन मदिरा पी झूम रही,
स्वच्छन्द हवा में घूम रही॥
कुछ हँसती सी कुछ मस्ती से।
डाली डाली को चूम रही॥
कुछ झुक झुक कर, कुछ उझक उझक
है नाच रही हो मतवाली॥
मेरे जीवन-तरु की डाली॥
मस्ती से लचक लचक डोली,
झुक कर अस्फुट स्वर से बोली,
जागो आली, मधु-ऋतु आया
मधुवन में है कोकिल बोली॥
वह देखो, वन की सखियों में
जागी नवकुसुमों की लाली।
मेरे जीवन-तरु की डाली॥
कुछ सकुची-सा आ गई कली,
घिर आई मधुपों की अवली,
धीरे से अवगुंठन सरका
मृदु मन्द सुरभि ले वायु चली॥
खुलकर इसको खिल लेने दे,
मत तोड़, अरे निष्ठुर माली।
मेरे जीवन-तरु की डाली॥
यह आप स्वयं झड़ जायेगी,
गिर कर भू पर पड़ जायेगी,
फिर बात न पूछेगा मधुकर,
आँधी भी धूल उड़ायेगी॥
इसकी जग में परवाह किसे,
सब नाचेंगे दे दे ताली।
मेरे जीवन-तरु की डाली॥

ताण्डव

लेखक, श्रीयुत मोहनलाल महतो

नाच, नाच मेरे प्रलयङ्कर,
महारुद्र, हे विश्वम्भर!

नाच, नाच उत्थान-पतन पर,
अन्तर की धड़कन, धड़कन पर,
जीवन के प्रति कोमल क्षण पर,
नाच जरा तू शिवशंकर,
महारुद्र, हे विश्वम्भर!

जन्म-मरण का निर्मम फेरा,
सुख-दुख चिड़िया रैन-बसेरा,
देखा तुझे जिधर मुँह फेरा—
नाच रहा है कण कण पर,
महारुद्र, हे विश्वम्भर!

छलक पड़ी करुणा की धारा,
डूबा धीरज कूल-किनारा,
बहा ज्ञानगरिमा गुण सारा,
बचा अशेष शेष रहकर,
महारुद्र, हे विश्वम्भर!

जाग, जाग भूखों की ज्वाला,
जग पीड़ा पी बन मतवाला,
आज शम्भु उगलेंगे हाला,
बनो हृदय, प्याला सुन्दर,
महारुद्र, हे विश्वम्भर!

हँसी-रुदन की ताल-ताल पर,
थिरक रहा है विश्व निरन्तर,
बजता डमरू घोर-भयङ्कर,
गूँज रहा है 'बम बम, हर हर'
महारुद्र, हे विश्वम्भर!
नाच, नाच मेरे प्रलयङ्कर!

जाग्रत नारियाँ



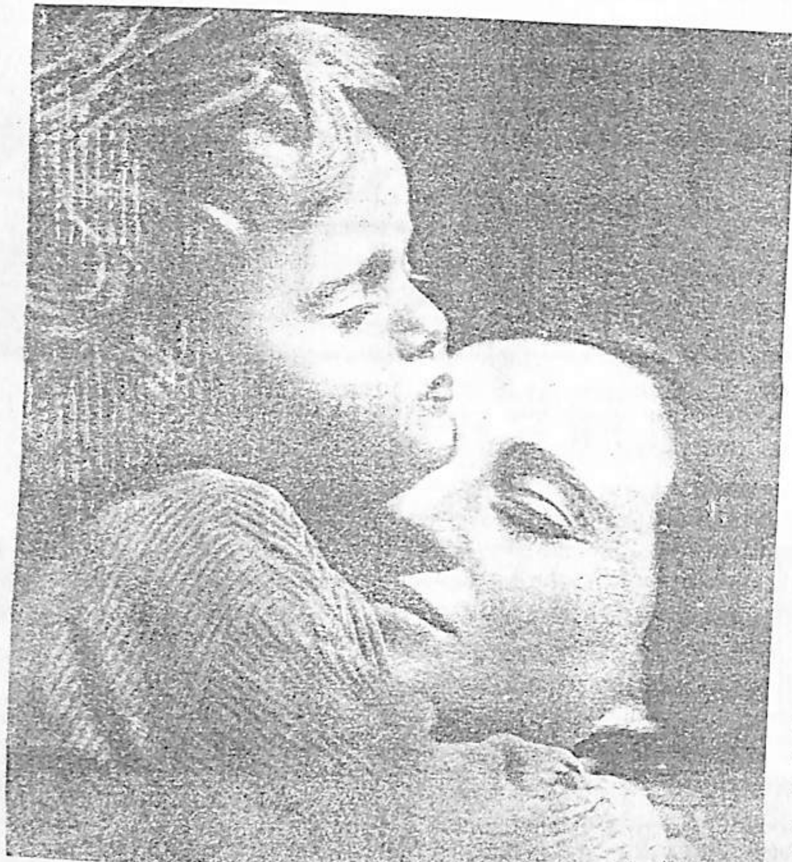
काश कि मैं पुरुष होती!

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

आज-कल नारी-स्वातंत्र्य का युग है। जिधर देखो, स्त्रियाँ बड़े झपाटे के साथ आगे बढ़ रही हैं। वे डाक्टर बन रही हैं, इंजीनियर बन रही हैं, वकील बन रही हैं, असेम्बली और प्रान्तिक कौंसिलों के मेम्बर बन रही हैं। इतना ही नहीं सरकारी नौकरियों में भी दिन पर दिन उनकी संख्या बढ़ती जा रही है। योरप में तो उन्होंने पुरुषों का काफ़िया तंग कर दिया है। बेचारे बेकार फिरने लगे हैं। भारतवासियों ने स्त्रियों को ऊँचा चढ़ाने में योरप को भी मात कर दिया है। आज तक न योरप और न अमरीका के ही किसी देश ने अपनी राष्ट्रीय महासभा की सभानेत्री किसी स्त्री को चुना है। परन्तु हमारी कांग्रेस ने श्रीमती सरोजिनी नायडू को राष्ट्र-नेत्री का पद प्रदान कर इस कसर को भी पूरा कर दिया है। इस पर भी पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ, विशेषकर धनाढ्य घरों की फ़ैशनेबल स्त्रियाँ, कहती सुनाई देती हैं—काश कि मैं पुरुष होती! पुरुष-जाति से सम्बन्ध रखने के कारण मैं अपनी स्थिति को ख़ूब समझता हूँ। इसलिए मैं यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि ये देवियाँ भूल कर रही हैं। किसी स्त्री की, विशेषतः किसी सम्पन्न घराने की पढ़ी-लिखी स्त्री की, बात का खंडन करना, न केवल एक भारी सामाजिक भूल है, वरन एक ऐसे खेल में जिसे पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक अच्छी तरह से खेल सकती हैं, एक भयावह चाल चलना है। कोई अनाड़ी गँवार पुरुष ही कह सकता है कि यह इन देवियों की भूल है।

परन्तु मैं समझता हूँ, इतना कहने में कोई हर्ज नहीं कि स्त्री होने के कारण इन देवियों को जो विशेष अधिकार प्राप्त हैं, उन्हीं के कारण ये यह इच्छा—काश कि हम कुछ और होतीं—प्रकट कर सकती हैं। यदि कोई पुरुष कहता, काश कि मैं स्त्री होता तो फ़ौरन, उसकी हँसी उड़ाकर या उसकी निन्दा करके, वह दबा दिया जाता। यदि कहीं वह सार्वजनिक कार्यकर्ता होता तो जहाँ भी वह जाता उसके पीछे लोग तालियाँ पीटते। यदि वह राजनीतिज्ञ होता तो लोग उसे स्त्रैण समझते।

पुरुष बनने की इच्छा रखनेवाली स्त्रियाँ प्रायः कहा करती हैं—हम पुरुष होतीं तो संसार को स्वर्ग



किन्तु आज तक किसी स्त्री ने अपनी गोद में स्त्रियों का सबसे सुखप्रद भार लिये हुए कभी यह नहीं कहा—"काश कि मैं पुरुष होती।"

बना देतीं, हम संसार की सारी खराबियों को एकदम ठीक कर देतीं। वे आश्चर्य करती हैं कि पुरुषों को इतने अवसर प्राप्त होते हुए भी वे ये काम क्यों नहीं करते! उनके रास्ते में उनका स्त्री होना ही एक भारी रुकावट है। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह निकलता है कि यदि सभी स्त्रियाँ किसी प्रकार पुरुष बन जायँ तो कल ही इस संसार के सभी झगड़े-झमेले और दुःख-दारिद्र्य दूर हो जायँगे। तब इटली अबीसीनिया का गला नहीं घोंटेगा, जापान मंचूरिया को नहीं हड़प करेगा, हिन्दू-मुस्लिम फ़िसाद नहीं होंगे, कोई मनुष्य भूखा नहीं मरेगा, ब्राह्मण अछूत से घृणा नहीं करेगा, और टैक्सों से प्रजा का कचूमर नहीं निकलेगा। सारे संसार में समता और बन्धुता एकदम फैल जायगी।

इस प्रकार स्त्रियों की पुरुष होने की आकांक्षा वास्तव में पुरुषों की और उनकी कार्य-पद्धति की एक कड़ी समालोचना है। राजनैतिक क्षेत्र को छोड़कर तनिक गृहस्थी के क्षेत्र में आइए। तब स्त्रियों के इन शब्दों का अर्थ यह निकलता है—

"यदि मैं पुरुष होती तो मैं लकड़ी फाड़ती, कोयले तोड़ती, मोटर का तेल बदलती, सीढ़ी पर चढ़कर दीवार पर चित्र लगाती, फूलों के गमलों को पानी देती।"

"काश कि मैं कहीं पुरुष होती! बेचारी निर्बल स्त्री इस संसार में क्या कर सकती है? लकड़ी फाड़ने और कोयले तोड़ने से मेरे सुन्दर रँगे हुए नाखून खराब हो जाते हैं। सीढ़ी पर चढ़कर चित्र लटकाने के पहले मुझे फ्राक बदलना पड़ता है ताकि कहीं कपड़े खराब न हो जायँ। मैं गमलों को पानी तो दे सकती हूँ, परन्तु क्या आप मेरे पास खड़े होकर मुझे ऐसा करने देंगे? काश कि मैं पुरुष होती"!

पुरुष अपने कपड़े उतारकर ये सब काम कर लेता है। जब वह काम कर चुकता है तब उसे बड़े ज़ोर से अनुभव कराया जाता है कि कोई भी स्त्री यह काम उसकी अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी तरह कर सकती है, यदि उसके मार्ग में उसका स्त्री होना रुकावट न हो।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि स्त्री प्रायः वह सब काम कर सकती है जो पुरुष कर सकता है। वह लोहार का हथौड़ा चला सकती है, ऊँचे मचान पर बैठकर दीवार बना सकती है, लकड़ी के बड़े बड़े गट्ठे उठाकर ला सकती है। जो स्त्री मल्लयुद्ध में पुरुषों को पछाड़ सकती है, जो इँगलेंड की जल-प्रणाली (चैनल) को तैरकर पार कर सकती है, जो इँग्लेंड से आस्ट्रेलिया तक हवाई जहाज़ में दौड़ लगा सकती है, उसके सामने ये काम क्या हैं? परन्तु बात तो यह है कि किसी भी स्त्री को ये काम करने नहीं पड़ते। जब कोई स्त्री करती है तब यह एक शोशा खड़ा हो जाता है। उसके चित्र समाचार-पत्रों में छपते हैं। वह प्रसिद्ध हो जाती है। जो पत्र-प्रतिनिधि उससे मिलने जाते हैं उनसे वह कहती है—"काश कि मैं पुरुष होती!"

ये शब्द मुँह से निकालना स्त्री का एक बहुमूल्य विशेषाधिकार है। मैंने अपने जीवन में कभी किसी पुरुष को कहते नहीं सुना—"काश कि मैं स्त्री होता"! समाज के नियम उसे ऐसा कहने से रोकते हैं।

परन्तु स्त्रियाँ, जो पुरुषों की स्वतन्त्रता का डाह करती हैं, ऐसे नियमों के अधीन नहीं हैं। वे चाहे जितना भी पुरुषोचित आचरण कर सकती हैं। उनको सब कोई यही कहता है कि देखिए, ये कितनी चतुर हैं। यदि मैं स्त्री होता, और किसी लोकोत्तर



[पूना की श्रीमती ताराबाई कालूराम राव उदनकर जिनके सभानेतृत्व में बैंगलौर में अखिलभारतीय भवसार-क्षत्रिय-महिला-सम्मेलन हुआ।]

क्रिया से पुरुषों की प्रकृति, उनकी रुचि, उनका झुकाव, उनका स्वभाव, उनकी निर्बलता के विषय में उतना कुछ जान सकता जितना कि मैं अब जानता हूँ, तो मैं सचमुच बड़े मज़े से जीवन व्यतीत कर सकता।

इस ज्ञान के बिना भी मैं जहाँ जाता, लोगों से सम्मान करा सकता, ट्राम में या बस में उनको उठवा कर अपने लिए जगह खाली करा सकता, मोटर में बैठते समय उनसे खिड़की खुलवा सकता। लोग मेरी विद्यमानता में कभी एक दूसरे को अपशब्द न कहते, कभी जोश में आकर हाथा-पाई न करते। मेरे एक बार चेतावनी देने से ही वे शान्त हो जाते। प्रत्येक स्त्री को, चाहे वह नवयुवती हो और चाहे बुड्ढी, चाहे रूपवती हो और चाहे कुरूपा, चाहे धनवान हो और चाहे निर्धन, ये विशेषाधिकार प्राप्त हैं।

जब कोई पुरुष स्त्री के साथ होता है तब उसे सब



[श्रीमती धर्मशीला लाल एम० ए० (लंदन), बार-ऐट-ला, सुपुत्री श्री० काशीप्रसाद जी जायसवाल।]

काम करने पड़ते हैं। अपने कर्तव्य का पालन करने के बाद उसे इनाम क्या मिलता है?—स्त्री एक विशेष ढंग से उसकी ओर कृपा-कटाक्ष करती है। उसका स्पष्ट आशय यह होता है—एक बलिष्ठ पुरुष होना बड़ी शान की बात है।

मैं एक स्वाभाविक और भावप्रधान प्रकृति का पुरुष हूँ। पौष-माघ की ठंड में जब मैं किसी स्त्री को सवेरे तड़के उठकर छाछ बिलोते, गोबर थापते, चरखा कातते या जेठ-आषाढ़ की दोपहरिया में रोटी बनाते देखता हूँ तब मेरे हृदय में हूल-सी उठने लगती है। मुझे खयाल आता है कि बेचारी स्त्रियों से ये काम नहीं लिये जाने चाहिए। परन्तु ये स्त्रियाँ वे नहीं जो कहती हैं—"काश कि मैं पुरुष होती!" मैं यह बात प्रायः उन्हीं स्त्रियों के मुख से सुनता हूँ जिनको पुरुष न होने के कारण ही सब सुख और भोग-विलास प्राप्त हैं।

वे पुरुषों की स्वतन्त्रता के बारे में बातें तो बहुत करती हैं, परन्तु वस्तुतः अपने पतियों और भाइयों की तुलना में वे पवन के समान स्वतन्त्र हैं। वे रोज सिनेमा देखती हैं, ब्रिज खेलती हैं, मोटरों में सैर करती हैं, क्लबों में बैठकर गपशप लगाती हैं और उनके पतियों की कमाई का अधिकांश उन्हीं के हाथ से खर्च होता है।

छः में से पाँच दूकानें उन्हीं के उपयोग की वस्तुओं से भरी रहती हैं। उन्हीं को प्रसन्न करने और फुसलाने के लिए दूकानों की खिड़कियाँ सजाई जाती हैं। बुक-स्टाल और पुस्तकों की दूकानें उन्हीं के काम की पत्रिकाओं और पुस्तकों से भरी रहती हैं। उनकी मनभाती कहानियाँ वे होती हैं जिनमें पुरुषों की खूब गत बनाई गई होती है।

मैं इससे इनकार नहीं करता कि स्त्री होना भी उनके लिए एक काम है और इसके लिए उन्हें घोर श्रम करना पड़ता है। जब मैं ट्राम या बस में बैठता हूँ (यद्यपि बहुधा खड़ा ही रहना पड़ता है) या अनारकली के जनाकीर्ण बाजार में से होकर निकलता हूँ तब मैं देखता हूँ कि इन देवियों ने अपने केशकलाप को, अपने कपोलों को, अपनी पलकों को और अपने होंठों को सजाने में कई घंटे कड़ी मेहनत की होगी। मैं नहीं कहता कि यह समय और श्रम वे व्यर्थ गँवाती हैं, क्योंकि उनके दर्शन से मुझे एक विशेष सौन्दर्य-सुख प्राप्त होता है।

परन्तु जब वे कहती हैं कि हमें पुरुषों की स्वतन्त्रता, उनके दायित्व, उनके बल और उनके दूसरे लाभों को देखकर ईर्ष्या पैदा होती है तब मुझे क्षमा माँगते हुए कहना पड़ता है, उनको पता ही नहीं कि वे सुखी कब होती हैं। किन्तु आज तक किसी भी स्त्री ने अपनी गोद में स्त्रियों का सबसे भारी, सबसे सुखप्रद, सबसे हलका, और सबसे अधिक आनन्द-दायक भार—बच्चा—लिये हुए कभी यह नहीं कहा—"काश कि मैं पुरुष होती!"

चिट्ठी-पत्री

डाक्टर भगवानदास और जात-पाँत

हाल में ही जात-पाँत के प्रश्न पर 'जात-पाँत-तोड़क मंडल' के प्रधान मंत्री श्रीयुत सन्तराम बी० ए० और डाक्टर भगवानदास में एक महत्त्वपूर्ण पत्रव्यवहार हुआ है अतएव उसे हम यहाँ श्रीयुत सन्तराम जी की अनुमति से प्रकाशित करते हैं।

जात-पाँत तोडक मंडल, लाहौर

पूज्यवर, ११-१-३६

यद्यपि आपने अपने पहले पत्र में भी डा० अम्बेदकर के नाम लिखी अपनी चिट्ठी का उल्लेख किया था, परन्तु तब वह ट्रिब्यून में छपी न थी। इसलिए मैं उसके सम्बन्ध में कुछ न लिख सका था। अब कल, १० जनवरी के अंक में वह प्रकाशित हुई है। मैंने उसे बड़े ध्यान से पढ़ा है। आपने बहुत अच्छा लिखा है, विशेषतः आपका भाव बहुत सहानुभूतिपूर्ण है। मैं नहीं जानता, डा० अम्बेदकर की क्या राय होगी और वे आपको क्या उत्तर देंगे, परन्तु, मुझे क्षमा कीजिए, आपकी योजना मुझे करणीय नहीं जान पड़ती, आदर्श रूप में वह बेशक ठीक हो। यदि अछूत लोग अपने को ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कहने भी लग जायँ, तो उनको कोई द्विज ब्राह्मण या क्षत्रिय मान नहीं लेगा। शुद्ध हुए अछूतों का नाम पंजाबी आर्य-समाजियों ने महाशय, भक्त, और आर्य रक्खा, परन्तु ये शब्द भी अछूत के पर्यायवाची ही बन गये, अछूतपन को कुछ कम नहीं कर सके। यही हाल 'हरिजन' शब्द का है। कोई जन्मना ब्राह्मण या जन्मना क्षत्रिय इन गुण-कर्म के ब्राह्मण-क्षत्रियों के साथ रोटी-बेटी या समता-बन्धुता का व्यवहार करने को तैयार नहीं होगा। फिर एक मुश्किल यह है कि यदि अछूत लोग अपने को ब्राह्मण-क्षत्रिय कहते हुए किसी सवर्ण हिन्दू के होटल में भोजन करते पकड़ लिये जायँगे तो उन पर धोका देने का अपराध लगाकर उनको दण्डित और साथ ही अपमानित भी होना पड़ेगा। सच पूछिए तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र शब्द के साथ जो उचता और नीचता का भाव चिपका हुआ है। वह दूर नहीं हो सकता। इन शब्दों को नष्ट कर डालने से ही हिन्दू-समाज का परित्राण सम्भव हो सकता है।

डा० अम्बेदकर को आपकी योजना पर चलने को कहने के बजाय उचित यह है कि आप द्विजों को कहें कि ब्राह्मणों में जो बनियों का काम करते हैं वे अपने को बनिया कहें और बनियों के साथ ही बेटी-व्यवहार करें। इसी प्रकार बनियों में जो कर्म से शूद्र हैं वे अपने को शूद्र कहें और शूद्रों के साथ ही बेटी-व्यवहार करें। यही सवर्ण-विवाह होगा। जब आपकी योजना द्विजों में चल जायगी तो अछूत इसे अपने आप ग्रहण कर लेंगे। यदि आप इसे द्विजों में प्रचलित नहीं करा सकते, तो अछूतों को उसे स्वीकार करने की सलाह देना उनको एक ऐसी दलदल में ढकेलना है जिससे वे कभी निकल ही न सकेंगे। आर्य-समाज ५० वर्ष से गुण-कर्म-स्वभाव की वर्ण-व्यवस्था की डफली पीट रहा है। पर क्या इस लंबे काल में वह एक भी जन्मना ब्राह्मण या क्षत्रिय को शूद्र बना सका? वैसे कथन-मात्र के लिए किसी संस्कृतज्ञ जन्मना शूद्र को पण्डित या ब्राह्मण कह देना कुछ भी अर्थ नहीं रखता, जब तक कि सामाजिक रूप से उसे ब्राह्मण लोग अपने में नहीं मिलाते। आपको याद होगा, कुछ वर्ष हुए, काशी के 'आज' ने आपको ब्राह्मण लिख दिया था। इस पर 'ब्राह्मण-समाचार' बहुत बिगड़ा था और उसने आपको 'ब्राह्मण' बनने की आकांक्षा छोड़कर 'वैश्य' ही बना रहने का उपदेश दिया था। तब आपने अपने गुण, कर्म और स्वभाव की पड़ताल का विफल प्रयत्न करने के बाद लिखा था कि मैं निश्चय नहीं कर सकता कि मेरा वर्ण क्या है। जब आप जैसे विद्वान्

अपने गुण-कर्म-स्वभाव की पड़ताल करके अपने वर्ण का ठीक ठीक निश्चय करने में असमर्थ हैं, तो बताइए साधारण अल्प शिक्षित या अशिक्षित हिन्दू, और विशेषतः अछूत लोग, अपने वर्णों का निश्चय कैसे कर सकेंगे? मेरी राय में भारत की महाव्याधि को दूर करने का एक ही उपाय है और वह है वर्ण-व्यवस्था का विध्वंस। इस समय गुण-कर्म की वर्ण-व्यवस्था का समर्थन करना दूसरे शब्दों में जन्मना वर्ण-व्यवस्था को बनाये रखने में सहायता देता है। गुण-कर्म-स्वभाव को तोलने की तराज़ू न किसी के पास है और न कोई द्विज इसे मानने के लिए तैयार है। किसी जन्मना ब्राह्मण या वैश्य को जिसे आप कर्मणा शूद्र समझते हैं, क्रियात्मक रूप से अपने को शूद्र मानने पर आप कभी राज़ी नहीं कर सकते। ऐसी अवस्था में यही अच्छा है कि मौक़े की महत्ता को समझते हुए आप जन्मना और कर्मणा के झगड़े को छोड़कर इस वर्ण-व्यवस्था की गन्दगी को एकदम नष्ट कर डालने का यत्न कीजिए। यह गन्दगी साफ़ हो जाने के बाद फिर गुणी के सच्चे गुणों की क़द्र अपने आप होने लगेगी। आपका—सन्तराम

विश्राम, चुनार
१६-१-३६

नमस्कार,

आपका पत्र, ता० ११-१-३६ का मिला—

आपकी शंका ठीक है कि मेरी योजना, आदर्श होकर भी 'करणीय' अर्थात् व्यवहार्य नहीं होगी। पर क्या आपका केवल निषेधात्मक, अतः अन्-आदर्श, 'जात-पाँत-तोड़क' आयोजन, कुछ भी व्यवहार्य हो रहा है? यदि हाँ, तो मैं भी उसी पर ज़ोर दूँगा। यदि नहीं, तो 'अन्-आदर्श और अव्यवहार्य' से 'आदर्श और अव्यवहार्य' अच्छा है।

अम्बेदकर जी की चिट्ठी में मैंने 'विकल्प' रूप से यह भी लिख दिया है कि यदि 'ब्राह्मण', 'क्षत्रिय', आदि शब्दों को अब बिलकुल ही रूढ़ियों के कारण भ्रष्ट समझो तो दूसरे शब्दों का प्रयोग करो।

अपने को 'ब्राह्मण' आदि 'ऊँची' जाति माननेवाले लोग 'बनिया' आदि कहने में अधिक संकोच करेंगे। इसलिए (यद्यपि उनसे भी कह रहा ही हूँ—यह तो आपको विदित होना चाहिए) 'छोटी' 'जाति' कहलानेवालों से अधिक आशा रखता हूँ कि वे अपने को 'ऊँची' जाति के नाम से पुकारने में कम संकोच करेंगे। 'रोटी-बेटी' का सवाल 'कर्मणा वर्णः' के साथ कम उठता है। जब तक स्त्रियाँ 'जीविका' न कमावें, तब तक उनका 'वर्ण' तो जो पति का 'वर्ण' हो वही हो जायगा। 'कर्म' का अर्थ यहाँ 'जीविका कर्म' है—इस पर आप ध्यान दें। अम्बेदकर जी की चिट्ठी में इसको स्पष्ट लिखा है। 'स्वभाव, गुण, कर्म' तौलने की तराज़ू की ज़रूरत 'जीविका कर्म में लगाने से पहले अध्यापकों को चाहिए (vocational guidance के लिए)। जब 'जीविकोपार्जन' में लग गया तब उसी से उसके वर्ण का निर्णय हो गया। जैसे Dr. So & So, Professor So & So, Captain So & So, Farmer So & So. (शर्मा, वर्मा आदि)।

यदि 'अछूत' लोग, आपस का अछूतपन छोड़कर, घोषणा कर दें कि आज से हमने 'कर्मणा वर्णः' का सिद्धान्त स्वीकार किया, और इसी पर अपना 'वर्ण' नाम रक्खेंगे, तो फिर किसी को यह कहने का अवसर या धाष्ट्र्य नहीं हो सकेगा कि ये धोखा दे रहे हैं। आपकी शंकाओं के इन समाधानोंपर ध्यान दीजिएगा—

शुभचिंतक—भगवान्दास

× × ×

श्रद्धेय बाबू जी,

आपने 'जात-पाँत-तोड़क आयोजन को केवल निषेधात्मक, अतः अन्-आदर्श' लिखकर पूछा है कि क्या यह कुछ भी व्यवहार्य हो रहा है। उत्तर में निवेदन है कि यह आयोजन अन्-आदर्श नहीं। इसका उद्देश्य जन्ममूलक ऊँच-नीच के भाव को दूर करके हिन्दू-समाज में समता और बन्धुता लाना है। इसमें हमें सफलता भी हो रही है। हम सैकड़ों अन्तर्वर्णीय विवाह करा चुके हैं।

विनीत—सन्तराम

बिहारी के विषय में मत-भिन्नता

लेखक, पण्डित कामताप्रसाद गुरु



बिहारी का नाम क्या था? वे ऊँचे दर्जे के कवि थे या नहीं? उनके अश्लील दोहे उनके संग्रहों में रक्खे जायँ या नहीं और उनके दोहों का क्रम क्या हो आदि प्रश्न अभी तक हल नहीं हुए हैं। इस लेख में हिन्दी के वयोवृद्ध लेखक पंडित कामताप्रसाद गुरु ने इन्हीं सब प्रश्नों पर विचार करने के लिए संक्षिप्त पर महत्त्वपूर्ण सामग्री उपस्थित की है।

बिहारी हिन्दी के एक प्रसिद्ध कवि हैं। वृद्ध साहित्यज्ञ और तरुण रसज्ञ से लेकर साधारण विद्यार्थी तक उनके नाम और काव्य से थोड़े-बहुत परिचित हैं। इतना ही नहीं, अनेक विदेशी विद्वान् भी इस कवि और इसकी कविता से न्यूनाधिक परिचय रखते हैं। ऐसी अवस्था में यह स्वाभाविक है कि भिन्न-भिन्न प्रकृति, प्रवृत्ति और रुचि के अनुसार बिहारी के विषय में लोग भिन्न-भिन्न मतवाले हों।

सबसे पहले कवि के नाम ही के विषय में मत-भिन्नता है। यह विरोध विशेषतया 'बिहारी-रत्नाकर' में पाया जाता है। जो 'बिहारी-सतसई' पर सबसे पिछली टीका है और दूसरी टीकाओं की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक मानी जाती है। रत्नाकर जी ने इनका नाम 'बिहारीदास' लिखा है। इस पुस्तक में जो चित्र छपा है उसके नीचे 'महाकवि श्रीबिहारीदासः' लिखा गया है; पर राय बहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास के 'हिन्दी-भाषा और साहित्य' में जो 'बिहारी-रत्नाकर' से चार वर्ष पीछे प्रकाशित हुआ है उसी चित्र के नीचे (४५४ वें पृष्ठ के पश्चात्) 'बिहारीलाल' नाम छापा गया है। श्रीयुत दुलारेलाल भार्गव ने 'बिहारी-रत्नाकर' में जो सम्पादकीय निवेदन लिखा है उसमें उन्होंने टीकाकार का अनुकरणकर (११ वें पृष्ठ पर) कवि का नाम 'बिहारीदास' ही लिखा है—"सर्वप्रथम सुपरिचित, सहृदय सुकवि बिहारीदास की सुप्रसिद्ध सतसई का सुन्दर, सटीक और संशोधित संस्करण ही साहित्य-संसार की सेवा में समुपस्थित किया जाता है*"; पर आठ बरस पीछे (सं० १९९१ में) प्रकाशित की गई 'दुलारे-दोहावली' में प्रायः सर्वत्र 'बिहारीलाल' नाम का प्रयोग किया गया है। इतना ही नहीं, 'बिहारी-रत्नाकर' में जो पत्र-व्यवहार

* इस गद्यावतरण में (कदाचित् संगति-दोष से) आई हुई अनुप्रास-छटा दर्शनीय है।

छपा है उसमें भी 'विहारीलाल' नाम आया है। ऐसी दशा में बहुमत 'विहारीलाल' नाम ही के पक्ष में है। स्वयं कवि ने 'सतसई' में श्लेष-रूप से 'विहारीलाल' नाम का उल्लेख किया है—

"इहिं बानिक मो मन बसौ, सदा बिहारीलाल"।

'विहारी-दास' नाम के आधार-भूत कुछ दोहे पाये जाते हैं, जिनमें से दो का उल्लेख 'विहारी-रत्नाकर' में और शेष का अन्य टीकाओं में है। वे दोहे किसी अन्य कवियों के लिखे जान पड़ते हैं, क्योंकि उनमें विहारीलाल की व्यक्ति-गत प्रशंसा अथवा परिस्थिति का वर्णन और साधारण पद्य-रचना है। उन दोहों से दूसरे (अप्रचलित) नाम की सिद्धि कठिनाई से होती है। ये दोहे ये हैं—

(१) सुचि-सिँगार में बूड़िकै भयो विहारी-दास।
जग में फिरत उदास अब सुकवि विहारीदास॥
(२) किये सात सौ दोहरा सुकवि विहारी-दास।
बिनहिं अनुक्रम ये भये महि-मंडल सुप्रकास॥
(३) कविता सों मन हटि गयो, लग्यो कान्ह सों ध्यान।
लाल-विहारी ह्वै गये दास-विहारी मान॥
(४) ब्रज-भाषा बरनी कविन बहु विधि बुद्धि-विलास।
सबकी भूषन सतसई रची विहारीदास॥*

दूसरा मत-भेद विहारी के 'महाकवि' कहे जाने के सम्बन्ध में है। नवम्बर १९३५ की 'वीणा' के शब्दों में "हिन्दी में हर एक बात बड़ी सरलता से मिल जाती है। साधना और तपस्या तो हिन्दीवालों के लिए आवश्यक ही नहीं। आचार्य और सम्राट् तो हिन्दी में नित्य पैदा होते हैं। उसके लिए न तो कोई विशेष कसौटी है और न कोई विशेष योग्यता की ही जरूरत समझी जाती है। हिन्दी के कितने ही लोग उस समय से सम्राट् हैं जब उन्हें शुद्ध हिन्दी लिखने का भी ज्ञान नहीं था"! स्वर्गीय पंडित पद्मसिंह शर्म्मा ने अनेक उदाहरण देकर और युक्तियों का प्रयोग करके विहारी को 'महाकवि' सिद्ध करने का भरसक प्रयत्न किया है। दूसरे टीकाकारों और समालोचकों ने विहारी की कविता में जो दोष बताये हैं उनका भी उन्होंने परिहार कर दिया है और यहाँ तक कर दिया है कि "सतसई में किसे कहें कि यह सूक्ति है और यह साधारण उक्ति है! इस खाँड़ की रोटी को जिधर से तोड़िए, उधर से ही मीठी है। इस जौहरी की दूकान में सब ही अपूर्व रत्न हैं, बानगी में किसे पेश करें"! मिश्र-बन्धुओं ने उन्हें महाकवियों में तो स्थान दिया है; पर उनको 'काइयाँ' बताया है। श्रीयुत रमाशंकर-प्रसाद के 'संक्षिप्त विहारी' में डाक्टर बेनीप्रसाद ने जो प्राक्कथन लिखा है उसमें वे कहते हैं कि "कई वर्तमान लेखकों ने विहारी को हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों में रक्खा है, पर यह अन्य कवियों के साथ अन्याय है, कविता पर बलात्कार है। विहारी का क्षेत्र इतना संकुचित है, विचारों का इतना दौर्बल्य है, उसकी स्वाभाविक प्रतिभा कृत्रिम नियमों के नीचे ऐसी दब गई है कि वह साहित्य में इतना ऊँचा स्थान नहीं पा सकता"। प्रायः इसी से मिलती-जुलती सम्मति राय बहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास की है जो अपने 'हिन्दी-भाषा और साहित्य' में लिखते हैं कि "विहारी उस श्रेणी के समीक्षकों में सबसे अधिक प्रिय हैं जो अलग-अलग दोहों की कारीगरी पर मुग्ध होते और बात की करामात पसन्द करते हैं। सौन्दर्य और प्रेम के सुन्दरतम चित्र विहारी ने खींचे हैं; पर अलंकरण की ओर उनकी प्रवृत्ति सबसे अधिक थी। उनकी कविता आवश्यकता से अधिक नपी-तुली हो जाने के कारण सर्वत्र स्वाभाविकता-समन्वित नहीं है। विहारी ने घाट-बाट देखने में जितना परिश्रम उठाया होगा, उतना वे यदि हृदय की टोह में करते तो हिन्दी-कविता उन्हें पाकर अधिक सौभाग्य-शालिनी होती।"

* स्व० पं० पद्मसिंह शर्म्मा ने इस दोहे को 'विलास' के बदले 'विसाल' और 'दास' के स्थान में 'लाल' करके अपनी 'विहारी की सतसई' में छापा है, अर्थात् 'विहारी-दास' का 'विहारीलाल' किया है।

ऊपर हिन्दुस्तानियों (हिन्दी-भाषियों) की सम्मतियाँ दी गई हैं। अब एक मुसलमान सज्जन की सम्मति दी जाती है, जिनका शुभ नाम डाक्टर ज़ाफ़र हसन है। आप हैदराबाद 'दकन' के उसमानिया-विश्वविद्यालय में अध्यापक और हिन्दी-ज्ञाता हैं। आपने अपनी 'मुन्तख़बात-हिन्दी-कलाम' नामक उर्दू-पुस्तक में पण्डित पद्मसिंह शर्म्मा की तरह विहारी के एक दोहे* की तुलना मिर्ज़ा ग़ालिब और शेख़ सादी के शैरों से करके विहारी के दोहे को सर्वश्रेष्ठ ठहराया है। डाक्टर साहब अपनी भाषा में लिखते हैं कि "अब ग़ौर फ़र्माइए कि मिर्ज़ा ग़ालिब के शैर में माशूक़ के आने से मुँह पर रौनक़ आ जाती है और सादी के शैर में माशूक़ के आने से ग़मे-दिल काफ़ूर हो जाता है, मगर विहारी के दोहे में महज़ माशूक़ के आने की ख़ुश-ख़बरी से आशिक की हालत बदल जाने का यक़ीन है। मेरे नज़दीक तो शाइर ने नाज़ुक-ख़याली की हद कर दी! इसके अलावा विहारी ने जिन हिन्दी-महावरात को नज़्म किया है—जिस बंदिश की सफ़ाई और शौकत-अलफ़ाज़ से काम लिया है, इसका ज़िक्र करना ही फ़िज़ूल है।"

अब हिन्दी के अँगरेज़ विद्वानों की राय सुनिए। डाक्टर ग्रियर्सन साहब जिन्होंने लल्लूजी लाल की 'लाल-चंद्रिका' नामक टीका का एक संस्करण निकाला है, एक जगह लिखते हैं कि "मैंने विहारी के दोहों का अनुवाद अँगरेज़ी में करने का प्रयत्न किया; पर मुझे मालूम हुआ कि मूल का आधा रस मार्ग ही में बह जाता है।" डाक्टर साहब का मत है कि "काव्य-कला के सम्बन्ध में सबसे प्रसिद्ध हिन्दी-लेखक विहारीलाल चौबे हैं।" विलायती विश्व-कोष के नवें संस्करण में स्वर्गीय जे० टी० प्लाट्स महोदय ने (जो हिन्दुस्तानी-कोष और व्याकरण के रचयिता हैं) विहारीलाल के विषय में लिखा है कि "विहारीलाल सतसई की रचना के कारण प्रसिद्ध हैं। यह सात सौ दोहों का संग्रह हिन्दी-काव्य-कला का बहुत ही प्रसिद्ध ग्रन्थ है, यद्यपि इसमें वर्णनात्मक और सरल रचना-शैली नहीं है। वैष्णव-धर्म-गत कृष्णोपासना की प्रेरणा से इन दोहों की सृष्टि हुई है, जो राधा और दूसरी गोपियों तथा उनके वल्लभ के बीच प्रणय-संवाद के समान हैं।"

ये सब सम्मतियाँ विहारी और उनकी कविता के प्रायः अनुकूल हैं; परन्तु काशी के पादरी ग्रीव्ज़ साहब ने अपने 'हिन्दी-साहित्य के संक्षिप्त इतिहास' में* इस विषय पर बहुत ही प्रतिकूल मत प्रकट किया है, जिसका खंडन-मण्डन करना हिन्दी के प्रत्येक उत्तरदायी समालोचक का कर्त्तव्य होना चाहिए। पादरी साहब लिखते हैं कि "निस्संदेह विहारी में अनेक चुने हुए सुन्दर शब्दों को सुडौलपन से दोहे में जमाने की विलक्षण योग्यता थी, पर प्रश्न यह है कि क्या इतने ही से कोई लेखक कवि हो सकता है? यदि विहारीलाल के पास सचमुच में कुछ कहने को होता, यदि वे अपने हृदय का उतना प्रदर्शन करते जितना उन्होंने मस्तिष्क का किया है, तो वे महाकवि हो जाते। जो हो, उनके ७०० वा ७२६ दोहे बड़ी चतुराई की पद्य-रचना के उदाहरण हैं; परन्तु जब उन सबको जोड़ते हैं, तब वे ग्रंथकार को महाकवि बनाने में असमर्थ पाये जाते हैं। कोई-कोई तो यहाँ तक कह सकते हैं कि यह लेखक कवि ही नहीं है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो केवल ढाँचा बना सकते हैं; पर पूरा चित्र नहीं उतार सकते। ऐसे लोग केवल कला-कुशल कहला सकते हैं; उनकी गणना बड़े चित्रकारों में नहीं हो सकती। जो लोग विहारी के लिए ऐसी पदवी का दावा करते हैं उन्हें इस दृष्टान्त पर विचार करना चाहिए। दूसरा दुर्भाग्य यह है कि कई एक दोहे ऐसे तुच्छ विषयों

* जो वाके तन की दसा देख्यो चाहत आप।
तो बलि नेकु विलोकिए चलि औचक चुपचाप॥

* A Sketch of Hindi Literature.

पर हैं कि यदि उन पर कविता न की जाती तो संसार की कोई हानि न होती। फिर कुछ विषय तो ऐसे हैं कि उन पर ध्यान न देना ही अच्छा था। सारांश यह है कि विहारीलाल ने हिन्दी-साहित्य को न ऊपर उठाया है और न आगे बढ़ाया है।"

तीसरी मत-भिन्नता विहारी की कविता के विषयों से सम्बन्ध रखती है। पादरी ग्रीव्ज के मतानुसार विहारी के ७२६ दोहों में से लगभग ६०० दोहों में स्त्री-पुरुषों के कामुक सम्बन्ध, स्त्रियों की शारीरिक सुन्दरता, श्रीकृष्ण के रूप की मनोहरता और इसी प्रकार के दूसरे विषयों का वर्णन है। शेष १०० दोहों में ज्ञान, भक्ति और नीति के प्रायः वैसे ही उपदेश हैं जैसे और कवियों ने लिखे हैं। इन कामुक और अश्लील विषयों का समर्थन करते हुए पंडित पद्मसिंह शर्मा लिखते हैं कि "जो बात जैसी है, कवि उसका वैसा वर्णन करने के लिए विवश है। शृङ्गार की सामग्री—तत्सम्बन्धी नाना प्रकार के दृश्य जब जगत् में प्रचुर परिमाण में विद्यमान हैं, तब कवि उनकी ओर से आँखें कैसे बन्द कर लें? तद्विषयक वर्णन क्यों न करें? फिर कवि ही ऐसा करते हों, केवल वे ही इस 'असभ्याभिधान' अपराध के अपराधी हों, यह बात भी नहीं। राजशेखर कहते हैं कि इस प्रकार का वर्णन जिसे तुम असभ्य और अश्लील कहते हो, श्रुतियों और शास्त्रों में भी तो पाया जाता है।" उधर 'संक्षिप्त विहारी' के लेखक ने जिन्होंने अपनी यह पुस्तक महाविद्यालयों के लिए लिखी है, उसमें प्रेम और विरह के सैकड़ों दोहों का संग्रह किया है, तो भी आपकी शिकायत है कि "स्थान-स्थान पर इनके दोहों में ऐसी बातें आ जाती हैं जिनका स्पष्ट रूप से वर्णन करने में बड़ी हिचकिचाहट होती है। कहीं-कहीं ऐसे पद लिखे हैं जो अविवाहित पाठकों के लिए दुर्बोध्य हैं। कतिपय दोहों का पठन करना बालक-बालिकाओं के लिए असामयिक हो जाता है, जिससे उनके आचार-विचार पर अस्पृहणीय प्रभाव पड़ने की अधिक आशंका रहती है। प्रेमिका-सम्बन्धी बातें इतनी स्पष्टता से दिखलाई गई हैं कि उनका पढ़ना अनेक पाठकों को हानिकारक हो सकता है"।

सतसई के विषयों के सम्बन्ध में दो-तीन सुधार तो बहुत ही आवश्यक हैं। एक तो इस पुस्तक के अगले संस्करणों में वे दोहे* छोड़ दिये जायँ जो अश्लीलता की पराकाष्ठा को पहुँच गये हैं और जिन्हें इस लेख में लिखना भी अश्लील समझा जायगा। दूसरे टीकाकार अन्य अश्लील दोहों का अर्थ न लिखें। तीसरे स्त्री-विद्यार्थियों के लिए (कालेजों में) अश्लील दोहे न नियत किये जायँ। इसके सिवा परीक्षक लोग विद्यार्थियों से नायिका-भेदवाले दोहों का विवरण, व्याख्या, अर्थ आदि न पूछें।

चौथा मत-भेद सतसई के शब्दों के शुद्ध रूपों के विषय में है। बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने इन शब्दों का रूप, व्याकरण की दृष्टि से, निश्चित करने में बड़ा परिश्रम किया है; पर ये सब रूप जयपुर तथा उदयपुर में प्राप्त हुई प्रतियों के हैं, जहाँ व्रजभाषा नहीं बोली जाती। फिर जो एकता उन्होंने स्थापित की है वह सर्वत्र नहीं पाई जाती। उदाहरणार्थ ये दोहे देखिए—

१—आवत जात न जानियतु, तेजहिं तजि सियरानु।
घरहँ जँवाई लौं घस्यौ खरौ पूस-दिन-मानु ॥
२—रनित-भृङ्ग-घंटावली झरित दान मधु-नीरु।
मंद-मंद आवतु चल्यौ कुंजर-कुंज समीरु ॥

इन दोहों में एक जगह 'आवत' और दूसरी जगह 'आवतु' है। इसी प्रकार 'मान' का तो 'मानु' हो गया; पर 'दान' का 'दान' ही रहा। अब पहले दोहे के शब्द-रूपान्तर को पंडित पद्मसिंह शर्मा और लाला भगवानदीन के पाठों से मिलाइए—

आवत जात न जानिये, तजि तेजहिं सियरान।
घर हि जमाई लौं घस्यौ खरौ पूस दिन मान ॥
—पं० पद्मसिंह शर्मा

* लाला भगवानदीन की 'बिहारी-बोधिनी' के क्रमानुसार ३३१—३४६ नम्बरवाले।

आवत जात न जानिये तेजहिं तजि सियरान।
घरहिं जँवाई लौं घस्यौ खरो पूस दिन मान ॥
—लाला भगवानदीन

यहाँ इस बात का निर्णय करने की आवश्यकता नहीं है कि कौन-सा रूप शुद्ध है और क्यों, पर मैं इतना अवश्य कहूँगा कि पिछले दोनों दोहों में सम्पादन-कला की कुदृष्टि से सामासिक शब्द (संयोजक चिह्न-द्वारा) मिलाकर नहीं छापे गये।

पाँचवीं मत-भिन्नता दोहों की संख्या के सम्बन्ध में है। अभी तक टीकाकारों ने इन दोहों की पूर्ण संख्या ७२५ वा ७२६ मानी है, जिसमें से लगभग १०-१२ दोहे संदिग्ध होने के कारण किसी-किसी पुस्तक में 'अधिक दोहे' के नाम से परिशिष्ट के रूप में छापे गये हैं। इन अधिक दोहों की संख्या बढ़कर 'विहारी-रत्नाकर' में १४२ हो गई है! कहीं-कहीं ऐसा भी हुआ है कि जिन दोहों को एक टीकाकार ने विहारी-कृत माना है उन्हें दूसरे ने क्षेपक समझ लिया है। जिस दोहे में 'विहारीलाल' के बदले 'विहारीदास' नाम आया है उसमें तो 'सात-सौ दोहरा' की स्पष्ट सूचना है।

सतसई के दोहों के क्रम के सम्बन्ध में भी मत-भेद है: पर इस विवाद के निर्णय में विशेष कठिनाई नहीं है। पाठक लोग बहुधा उसी क्रम को पसंद करते हैं जिसमें उन्हें किसी विषय को खोजने तथा उसका प्रसंग और अर्थ समझने में सरलता होती है। मेरी समझ में 'विहारी-बोधिनी' का विषयानुसारी क्रम सबसे अच्छा है। इस पुस्तक में विषय-सूची के साथ प्रत्येक दोहे की प्रथम पंक्ति की अनुक्रमणिका अकारादि क्रम से दी गई है और शब्द-कोश में प्रत्येक शब्द के साथ उसके दोहे का अंक भी दे दिया गया है। सुसम्पादित ग्रंथ में विषय को बोधगम्य कराने के लिए बहुधा अनेक प्रकार की सूचियाँ और अनुक्रमणिकायें दी जाती हैं।

उपर्युक्त मत-भेदों के कारण यह आवश्यक प्रतीत होता है कि विहारी के भावी टीकाकार उनकी सतसई का एक ऐसा निर्दोष और सटीक संस्करण प्रकाशित करावें जिस पर, अधिकांश में, कोई किसी प्रकार का आक्षेप न कर सके और जिसमें विहारी की भारती दुर्व्याख्या के विष से मूर्छित न हो।

आशा है कि विहारी के वर्तमान पाठक, टीकाकार और प्रकाशक इस विषय पर विचार करने की कृपा करेंगे।

सागर-लहरीं

लेखक, श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

अविरल, निर्मल, चंचल, प्रतिपल,
झरझर झरतीं, सागर-लहरीं।
क्या यह हैं सुखपूर्ण उमङ्गें?
सागर की उन्मत्त तरङ्गें?
या हैं ये आतपमय श्वासें,
आहें निधि के व्यथित हृदय की?
अश्रु-हासमय क्रीडा करतीं,
अविरल, निर्मल, चंचल, प्रतिपल,
झरझर झरतीं सागर-लहरीं।

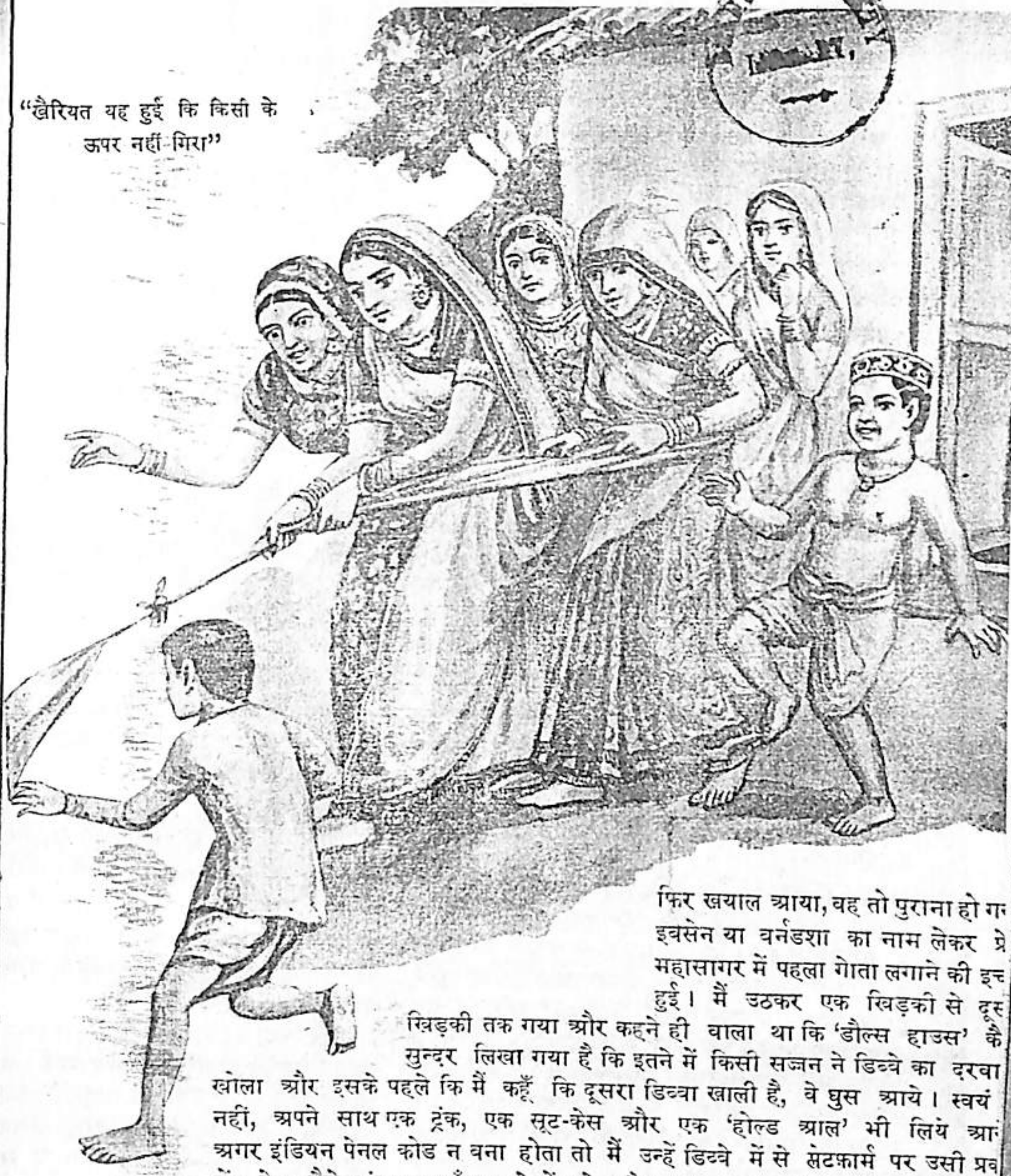
होंगीं हर्षित हृदय-तरङ्गें,
निज प्रेयसि प्रति प्रेम-उमङ्गें,
आह-पूर्ण प्रेमी की क्रीडा,
प्रेयसि! देखो सागर-तट पर!
जग को प्रेम-गान से भरतीं
अविरल, निर्मल, चंचल, प्रतिपल,
झरझर झरतीं सागर-लहरीं।

कहिए भेंट हुई ?

लेखक, श्रीयुत कृष्णदेवप्रसाद गौड़ एम० ए०, एल-टी०

ज्यों ज्यों बनारस छावनी का स्टेशन नज़दीक आता जाता था, मेरे हृदय की वही अवस्था हो रही थी जो ब्राह्मण-भोजन का समय निकट होने के समय निमंत्रित ब्राह्मण की होती है। वह कैसी होगी, कर में कितनी कोमलता होगी, नयन कमल-से होंगे कि नरगिस-से, बाल कितने फ़ुट लम्बे होंगे, लंक में कितनी लचक होगी—फ्रेंच कमानी-सी कि अमेरिकन, इसी उधेड़-बुन में मैं तल्लीन था। जब बरेली से हम लोग चले तब और लोग तो दूसरी गाड़ी में बैठे, पर हम और वह इंटरक्लास में। जब हम लोग सवार हुए, डिब्बा खाली था। मैंने सोचा बाज़ी मार ली है। बनारस तक खूब बातें होंगी। अभी सोच ही रहा था कि कैसे आरम्भ करूँगा। पहले सोचा कि बिहारी का एक दोहा कहकर हिन्दी-साहित्य के उद्भट विद्वान् होने की सूचना देते हुए परिचय आरम्भ करूँगा। फिर सोचा, कहीं वह यह न समझ ले कि बड़ा कुरुचिपूर्ण मनुष्य है। सम्भव है, हिन्दी-नवरत्न पढ़ा हो। तब तो और भी कठिनाई होगी। पहला ही अनुभव कटु हुआ तो सारी ज़िन्दगी कुनैन की पुड़िया हो जायगी। सोचा कि शेक्सपियर से आरम्भ करूँ।





"खैरियत यह हुई कि किसी के ऊपर नहीं गिरा"

फिर खयाल आया, वह तो पुराना हो ग
इबसेन या बर्नडशा का नाम लेकर प्रे
महासागर में पहला गोता लगाने की इच
हुई। मैं उठकर एक खिड़की से दूस
खिड़की तक गया और कहने ही वाला था कि 'डौल्स हाउस' कै
सुन्दर लिखा गया है कि इतने में किसी सज्जन ने डिब्बे का दरवा
खोला और इसके पहले कि मैं कहूँ कि दूसरा डिब्बा खाली है, वे घुस आये। स्वयं
नहीं, अपने साथ एक ट्रंक, एक सूट-केस और एक 'होल्ड आल' भी लिये आ
अगर इंडियन पेनल कोड न बना होता तो मैं उन्हें डिब्बे में से प्लेटफ़ार्म पर उसी प्रक
फेंक देता, जैसे अंजन धुआँ भक् से फेंक देता है। परन्तु क़ानून के शिकंजे का धूमिल चि
मेरी चश्मा-युक्त आँखों के सामने आगया और मैं मन में गालियों का पहाड़ा पढ़ते हुए बैठ गया। गाड़ी चल पड़

ठंडी हवा लगने से क्रोध का पारा कुछ नीचे गिरा और रावर्ट ब्रूस की भाँति मैंने एक वार हिम्मत की और पूछा, 'महाशय, आप कहाँ तशरीफ़ ले जायँगे ?'

'मैं बनारस जाऊँगा'—हँसते हुए आनेवाले महाशय ने उत्तर दिया।

सारा उत्साह वासी भात के समान ठंडा हो गया। मैंने अपनी क़िस्मत ठोंकी। मुँह तो उस दिन मैंने सवेरे आइने में अपना ही देखा था, क्योंकि सव कार्यों से पहले मैंने नये ब्लेड से दाढ़ी बनाई थी। अब लोग समझ सकते हैं कि मेरी क्या हालत हुई होगी। बनारस का स्टेशन निकट आने पर मेरी जान में थोड़ी जान आई। अव तो घर पहुँचना ही था, और प्रथम सम्मेलन का स्वप्न देखने लगा। मेरे लिए असेम्बली अथवा कौंसिल आफ़ स्टेट का चुनाव अथवा वाइसरीगल लाज का डिनर सब वही था।

ज्यों ही गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर लगी, मैं उसका हाथ पकड़कर गाड़ी से उतारने ही वाला था कि और डिब्बों से वराती लोग आ गये। चलिए, यह भी नसीब में न था। क्रोध तो अवश्य आया, परन्तु अव घर आ ही रहा था। दो-चार घण्टों की बात थी, फिर तो बातों का सिलसिला चेरापूँजी की बरसात की भाँति आरम्भ ही होगा। स्टेशन पर एक सेकंड भी ठहरना मुझे उतना ही ख़राव मालूम होता था जितना किसी के घर भोजन करने के पश्चात् ठहरना; और यहाँ तो लोगों को, मालूम होता था, घर ही नहीं जाना है। असवाव ही सहेजने में सारा दिन समाप्त होना चाहता था। एक आदमी एक वार एक ट्रंक गिन जाता था तो दूसरे साहब आते थे, कहते थे, 'क्यों रामू, सब ट्रंक गिन डाले? एकतीस हैं न? वह चाकोलेट कलरवाला ट्रंक नहीं दिखाई देता। गुलावपाश वग़ैरह उसी में हैं। देखो, मैं गिनता हूँ'। मेरा विश्वास दृढ़ हो रहा था कि गिनने की यह क्रिया-प्रक्रिया यदि जारी रही तो हम लोगों को स्टेशन से लौटने का समय उसी वक़्त आयेगा जव फिर ब्रिटिश पार्लियामेंट भारतीय शासन-पद्धति को दोहराने के लिए तैयार होगी। मैंने एक वहाना सोचा। मैंने कहा, मेरे सिर में चक्कर आ रहा है, और मालूम नहीं, कैसी तवीयत हो रही है। मैं गाड़ी पर तब घर चलूँ। मुँह भी मैंने ऐसा बनाया कि मालूम होता था कि अब गिरा। और किसी को तो कोई आपत्ति थी नहीं। मेरी श्रीमती महोदया दाई के साथ दूसरी ओर मुँह किये खड़ी थीं, मानो स्टेशन का इंस्पेक्शन करने के लिए डी० टी० एस० ने उन्हें भेजा है। मैं चलने को तैयार हुआ कि एक बूढ़े महानुभाव मेरे सामने आये और बोले—'सब जगह लड़कपन अच्छा नहीं होता। आख़िर यह गौना है, कोई खिलवाड़ नहीं है। आप पहले कैसे चले जायँगे? कुछ तो हिन्दू-धर्म की रक्षा करो। अँगरेज़ी पढ़ने से सब तो चौपट हो ही गया।'

मेरे शरीर में वेसूवियस ज्वाला-मुखी के समान आग धधकने लगी। मैंने बहुत सँभाल कर कहा—'मेरे सिर में बड़े ज़ोरों का चक्कर आ रहा है। मैं अधर्म क्या कर रहा हूँ? कहिए तो मैं दो-चार महीने तक स्टेशन में ही बैठा रहूँ।' बूढ़े सज्जन ने कहा—'मेरे पास लवणभास्कर चूर्ण है, खा लो। सिर का चक्कर पेट की ख़राबी से आता होगा। ससुराल में अंड-बंड खाया होगा। मेरी दाल गली नहीं—गलना तो दूर रहा, गरम भी नहीं हुई। यह तो मैं जानता ही था कि घर जल्दी या देर में पहुँचूँगा ही, परंतु मालूम नहीं क्यों उत्सुकता भारत के ऋण की भाँति बढ़ती ही चली जा रही थी। तो भी सारा प्रबंध करने में दो घण्टे के लगभग लग गये। मुझे मालूम हुआ कि दो साल से कम न लगे होंगे। किसी किसी प्रकार घर पहुँचे।

घर पर बड़ी भीड़ थी, मानो कांग्रेस का कोई अधिवेशन मेरे ही घर पर होनेवाला है। बड़े आदर-सत्कार से मेरी श्रीमती जी गाड़ी से उतारी गईं। घूँघट तो ट्रेन पर भी था, परंतु स्टेशन से घर तक आने में, मालूम होता है, गंगा की सन् १६ की

बाढ़ की भाँति बढ़ गया था। और इतना बढ़ गया था कि यदि रात में देखा जाता तो हाथी नहीं तो हाथी के बच्चे की सूँड़ का भ्रम तो अवश्य ही हो जाता। उन्हें देखने के लिए चारों ओर से निगाहों का 'फ़ोकस' पड़ने लगा, जैसे 'जू' से कोई विचित्र जंतु भाग आया हो। मुझे तो कोई पूछता भी नहीं था। लोग पहचानते थे या नहीं, इसका भी कुछ मुझे संदेह होने लगा।

रेल पर श्रीमती जी लाल गठरी-सी प्रतीत होती थीं, परंतु घर में इस समय तो कुछ अजीव रंग था। यद्यपि दृष्टिकूट कविता की भाँति आवरण-युक्त उन्हें मैं देख नहीं सका, परन्तु गाड़ी से उतरते समय मैंने यह देख लिया कि उनकी दाहनी कलाई में सोने की एक घड़ी है। दाहनी कलाई में घड़ी का होना बिलकुल 'अप-टु-डेट' होने का चिह्न है। ज्यारजेट की साड़ी पर खद्दर की घूँघट-युक्त चादर, पैर में कड़ा और छड़ा, उस पर पूना का चप्पल, कलाई में कड़ा और आठ-आठ चूड़ियाँ, उस पर रिस्टवाच, पूर्वी और पश्चिमी संस्कृतियों के अनुपमेय सम्मेलन की छटा दिखा रही थी। मुझे यह देखकर बड़ी आशा हुई कि लीग आफ़ नेशन्स के विशिष्ट आशीर्वाद से विभिन्न मानव-जातियों की संस्कृति का यदि ऐसा ही मिलाप रहा तो आगे युद्ध होने की सम्भावना नहीं है।

जिस द्वार से हम लोगों को घर में प्रवेश करना था, वहाँ स्त्रियों की बड़ी भीड़ थी, जिसमें पाँच साल की वालिका से लेकर साठ साल की वृद्धा तक सभी प्रकार के 'माडल' थे। द्वार पर पैर रखते ही एक वृद्धा ने मेरी स्त्री के कोमल कपाल के चारों ओर एक बृहदाकार मूसल घुमाना आरम्भ किया। पूछने पर वाद को पता चला कि भारतीय संस्कृति की रक्षा के निमित्त यह 'कपाल-क्रिया' की जाती है। हिन्दी में इसको 'परछन' कहते हैं। मैंने इस पर बहुत विचार किया। अँगरेज़ी विवाहों में गिर्जाघर से निकलने पर वर-वधू पर स्लीपरों की कोमल वर्षा की जाती है। मेरी समझ में दोनों का अभिप्राय एक ही है। भावी जीवन में घर की मालकिन जिस वस्तु का उपयोग करें उसी की यह शिक्षा होती है। भेद केवल वस्तु का है—विलायत में स्लीपर, भारत में मूसल। एक महामहोपाध्याय जी से भी मैंने इस विषय पर प्रश्न किया था। उन्होंने अनेक पुराण, गृह्य सूत्र और महाभाष्य से मनोहर संगीतमय उद्धरण सुनाते हुए कहा कि इसका अभिप्राय यह है कि जीवन में उन्हें अब गार्हस्थ्य-धर्म धारण करना है। मैं तो समझता हूँ कि धर्मराज युधिष्ठिर और महाराज विक्रमादित्य के ज़माने में सम्भव है यह बात ठीक रही हो। परन्तु अब समय बदल गया है। यदि 'परछन' का अभिप्राय भावी जीवन की ही ओर संकेत करना है तब तो आज-कल किसी सुन्दर उपन्यास और किसी बढ़िया फ़िल्म से 'परछन' होनी चाहिए, क्योंकि बीसवीं शताब्दी में गृहस्थी में उपन्यास पढ़ने और सिनेमा देखने से अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य मुझे नहीं सूझ पड़ा।

परछन के पुनीत प्रकरण के पश्चात् पाँवड़े पर मंद-मंद गति के साथ श्रीमती जी अपने पद-पद्मों का परिचालन करने लगीं। मैं पीछे पीछे उसी प्रकार चल रहा था, जैसे दिल्ली-दरबार में वाइसराइन महोदया के गाउन का पुच्छला हाथों में उठाये हुए भारतीय नरेशों के राजकुमार चला करते हैं। भेद इतना ही था कि मुझे हाथ में उठाने के लिए कोई वस्तु न थी। मेरा महत्त्व भी उस समय कुछ नहीं था; लोग मेरी ओर देख भी नहीं रहे थे, यद्यपि मेरी शेरवानी उनकी साड़ी से थोड़ी ही कम क़ीमत की रही होगी। घर के भीतर प्रवेश करने पर हम लोगों को लोग एक कमरे में ले गये, जिसे साहित्यिक भाषा में देवताओं का घर कहते हैं। यह घर देखकर आप कह सकते हैं कि हमारे हिन्दुओं के देवता बिना साँस लिये जी सकते हैं, क्योंकि इस कोठरी में 'वेंटिलेशन' के लिए कहीं पिन के बराबर भी छेद नहीं था। यदि विज्ञान का कोई प्रयोग 'वैकुअम' में करना हो तो यह कोठरी

काम में लाई जा सकती थी और अँधेरी तो इतनी थी कि बिना दरवाज़ा बन्द किये कोई फोटोग्राफ़र इससे डार्क-रूम का काम ले सकता था। वहाँ क्या क्या हुआ, मैं नहीं कह सकता। जो कुछ हुआ उसे लोग पूजा के नाम से पुकारते थे। मैंने जिसने स्वास्थ्य-विज्ञान पर योरप के बड़े बड़े धुरन्धर विद्वानों की पोथियाँ पढ़ डाली थीं, ज़रा भी एतराज़ नहीं किया कि यह कमरा किसी मनुष्य के रहने योग्य है कि नहीं, देवता भले ही रहें। भारतीय रस्म-रवाज का टोना इस प्रकार मेरे ऊपर असर कर गया था कि मैं अकर्मण्य हो गया था। किसी प्रकार ज्यों ही पता चला कि पूजा-रूपी नाटक का ड्रापसीन गिरा, मुझमें कुछ चेतनता आई और मैं जल्दी से खड़ा-होकर भागा, परन्तु तुरन्त ही एक झटका लगा, मानो डी० सी० करेंट का झटका लगा हो। उस समय मुझे पता चला कि मेरी शेरवानी किसी ने श्रीमती जी की चादर से बाँध रक्खी है और उसका कुछ भाग मेरे साथ खिंच आया है और सम्भवतः क़ुल खिंच आता यदि वहाँ की उपस्थित महिलाओं ने चादर पकड़ न ली होती। मैं उस झटके को सँभाल नहीं सका और उसी भाँति गिर पड़ा जैसे बिहार के भूकंप में जमालपुर का स्टेशन। ख़ैरियत यह हुई कि किसी के ऊपर नहीं गिरा, नहीं तो बड़ा दुख होता। मेरा गिरना क्या था, मानो हँसी की रेलगाड़ी का लाइनक्लियर था। चारों ओर से अट्टहास की सदा गूँज पड़ी। मैं किसी प्रकार उठा, गाँठ खोली और बाहर भागा। लोग चिल्लाते ही रह गये कि 'सुनिए, सुनिए।' मैंने बाहर बैठक में आकर दम लिया और कपड़े उतार कर फेंके तब कहीं जान में जान आई।

पुरानी सभ्यता के लोग घड़ियाँ गिनते थे; मैं घड़ियाँ देखने लगा। मेरे घर में तीन घड़ियाँ थीं। बारी बारी से प्रत्येक घड़ी देखता था। घड़ियों ने तेज़ न चलने के लिए सत्याग्रह कर लिया था। भोजनोपरान्त मैं चारपाई पर ढुलक गया इस विचार से कि नींद आ जायगी तो शाम तो हो ही जायगी, क्योंकि सोने में मैं कुंभकर्ण का संक्षिप्त संस्करण हूँ। परन्तु उस दिन नींद ने पूर्ण असहयोग कर रक्खा था। मुझे एक यह भी चिन्ता हुई कि इस समय नींद न आने से कहीं रात में नींद न आ जाय। मैं इसी विचार-वीथी में टहल रहा था कि कोई बेवक़ूफ़ पंडित जी को बुला लाया। पंडित जी हमारे पुरोहित थे। उनके पितामह हमारे पितामह के पुरोहित थे। यह परम्परा उस समय से चली आ रही थी जब से उनके लकड़दादा के लकड़दादा मेरे लकड़दादा के लकड़दादा के साथ तैमूर के हमले के समय दिल्ली से भागे थे।

पण्डित जी ने पत्रा निकाला और कुछ गिनकर यह बतलाया कि मंगलवार को गङ्गा जी का पूजन करने का शुभ मुहूर्त है। उस दिन ग्यारह बजे से एक बजे तक गङ्गा जी का पूजन हो सकता है। बनारस में रहनेवालों का यह दस्तूर है कि पहले-पहल जब वधू घर आती है तब गङ्गा जी का पूजन होता है। दुर्भाग्य से उस समय मैं भी बनारस में ही रहने लगा था। शुक्रवार को हम लोग घर लौटे थे, फिर शनिवार, रविवार, सोमवार, चार दिन की तपस्या करनी थी। क्योंकि हमारे कुल का नियम था कि जब तक गङ्गा का पूजन न हो जाय तब तक वर वधू से भेंट नहीं कर सकता। मैं पंडित से कुछ कह भी नहीं सकता था। कोई और अवसर होता अथवा वहाँ पर गुरुजन लोग उपस्थित न होते तो पंडित जी के हाथ में धीरे से एक अठन्नी रखता और शुक्रवार की सन्ध्या को ही मुहूर्त और शुभ घड़ी निकल आती, क्योंकि कचहरी के अहलकारों और पंडितों के हाथ में चाँदी का टुकड़ा रख देने से अनहोनी बात भी हो सकती है।

मैं बी० ए० में पढ़ता था, देश पर जान देने के लिए कई बार कालेज में बोल भी चुका था, अपने व्याख्यानों में यह भी कह चुका था कि वीर और निर्भीक बनना चाहिए। कालेज में जब कभी



सम्राट् एडवर्ड (अष्टम)

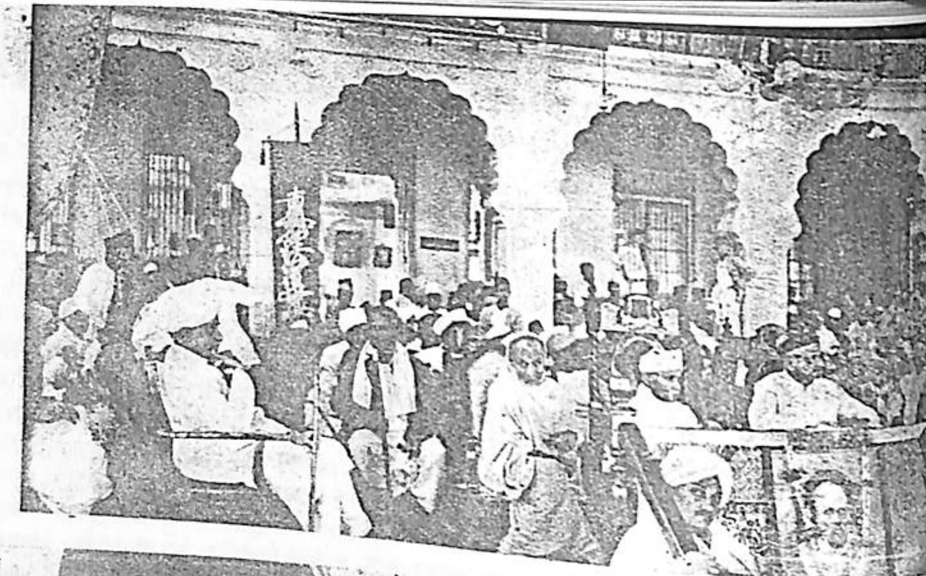
स्वर्गीय सम्राट् जार्ज के दिवंगत होने पर उनके ज्येष्ठ पुत्र प्रिन्स आफ़ वेल्स ने सम्राट् एडवर्ड 'अष्टम' के नाम से ब्रिटिश साम्राज्य का शासन-दण्ड ग्रहण किया है। आपका वय इस समय ४२ वर्ष है और युवराज के रूप में आपने अपने विस्तृत साम्राज्य के भिन्न-भिन्न देशों और टापुओं का भ्रमण कर उनका अनुभव तथा अपनी नाना जाति की प्रजाओं का हार्दिक प्रेम प्राप्त किया है। आप भी अपने पिता की भाँति न्यायपरायण, उदार तथा मिलनसार हैं!



कांग्रेस-प्रीति-भोज (बम्बई) का एक दृश्य। इस भोज में सब वर्णों और जातियों के लोग शामिल हुए थे। पहली कांग्रेस बम्बई में हुई थी, इसलिए वहाँ उसकी जयंती भी खूब धूम-धाम से मनाई गई।



इस प्रीति-भोज में कांग्रेस के नेताओं और हरिजनों ने एक साथ बैठकर भोजन किया। इस चित्र में श्रीमती सरोजनी नायडू और श्रीयुत नरीमैन दिखाई दे रहे हैं।



हिन्दू-महासभा (पूना) के वार्षिकोत्सव में सभापति आसन पर महामना मालवीय जी और मंच पर हुए अन्य नेता।



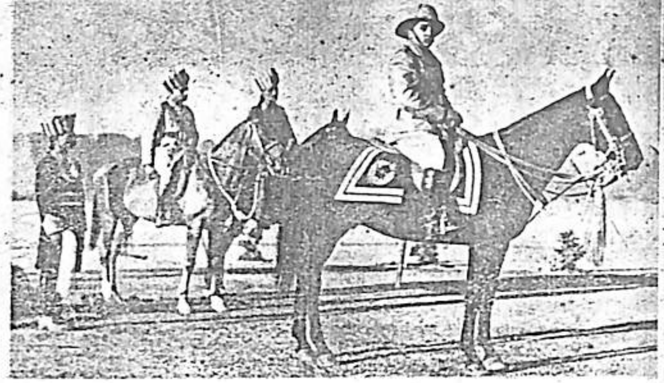
हिन्दू-महासभा के स्वागताध्यक्ष श्रीयुत एन० सी० केलकर अपना स्वागत-भाषण पढ़ रहे हैं।



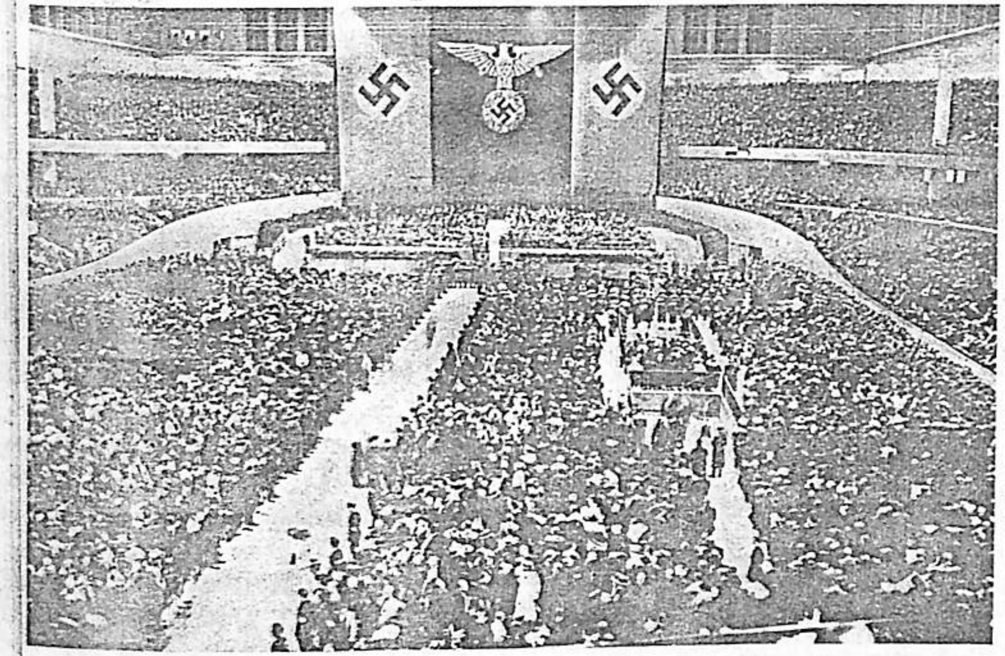
कुमारी एम० ई० ओल्डफ़ील्ड। आप चित्रकला निपुण एक अँगरेज़ महिला हैं। आपने हाल हिन्दू-धर्म ग्रहण किया है।



ाल में बड़ौदा में महाराज बड़ौदा की ीरक जयंती मनाई गई थी। इसमें हिज़ क्सेलेंसी लार्ड विलिङ्गडन भी सम्मिलित ुए थे। चित्र में वे महाराज से बातें कर रहे हैं।



हीरक जुबली के उपलक्ष्य में किये गये एक सैनिक प्रदर्शन के समय महाराज की ओर से महाराजकुमार प्रतापसिंह गायकवाड़ सैनिकों की सलामी ले रहे हैं।



जर्मनी में हाल में एक विशाल सभा-भवन निर्मित हुआ है, जिसमें ३०,००० आदमी बैठ सकते हैं। यह दृश्य उसके हाल के एक अंश का उस समय का है जब इस भवन में हर हिटलर का भाषण हुआ था।

अधिकारियों का विरोध करना होता था तब मैं सबसे आगे रहता था। हिम्मत का हाल यह था कि रात में चाहे पुलिस का पुरखा भी चौमुहानी पर खड़ा हो मैं विना लैंप की साइकिल फर्र-फर्र उड़ाये चला जाता था, और अँगरेज़ों के सामने तो मैं ऐसा अकड़ कर चलता था जैसे कानवोकेशन में नये ग्रेजुएट चलते हैं। परन्तु सारी वीरता, सम्पूर्ण निर्भीकता और सब हिम्मत मालूम नहीं कहाँ गंजी खोपड़ी के बाल की भाँति उड़ गई। हज़ार हज़ार आदमियों की भरी सभाओं में मैं विरोध करने के लिए तैयार, परन्तु वहाँ एक बूढ़े पंडित, पिता, चाचा और मामा का विरोध करने के लिए मेरा हृदय तैयार न हुआ और मेरी जीभ पर मालूम होता था कोकीन रगड़ दी गई है।

उस समय तो मैं कुछ न बोला, परन्तु जब पंडित चले गये तब मुझमें चेतना-शक्ति जागृत हुई और घर में मैं स्त्रियों में जाकर बिगड़ने लगा। बहुत-से लोगों की हिम्मत घर के बाहर खुलती है, बहुत-से लोगों की घर के भीतर। मैंने कहा, तुम लोगों को कुछ समझ तो है नहीं। मैं जाऊँगा गङ्गा का पूजन करने! इन सब ख़ुराफ़ात में मैं नहीं पड़ता। तुम लोगों का पढ़ना-न-पढ़ना एक-सा है। मैं पढ़-लिख कर ऐसे अंध-विश्वास में योग नहीं दे सकता। तुम लोग जाकर पूजा करो।

मैंने सोचा इस बात से चारों ओर सन्नाटा छा जायगा, किन्तु फल विपरीत हुआ। अल्पवयस्का ललनायें मेरी बात सुनकर हँसने लगीं। एक ने कहा–'आप अपना रिफ़ार्म कालेज के लिए रहने दीजिए, यहाँ तो वही करना होगा जो हम लोग कहेंगी। इस शरारत का क्या उत्तर हो सकता था? मैं बहुत झुँझलाया और बड़े रोब से पैर पटकता हुआ बाहर चला आया। मेरे आने के समय फिर खिलखिलाहट की आवाज़ मेरे कानों में आई।

अब मेरी अवस्था वही थी जो नेपोलियन की सेंट हेलेना में हुई होगी। घर भर ने मेरे विरोध में युद्ध की घोषणा कर दी थी और मैं सहायकहीन था। लीग आफ़ नेशन्स के नियमों में कोई भी धारा इस विवाद की नहीं थी नहीं तो मैं वहीं अपील करता। एकाएक मेरे मन में ऐसी बात बैठी कि मैंने सोच लिया कि इन लोगों के भी कान काटूँगा। मैंने सोच लिया कि मैं किसी न किसी भाँति आज ही रात में भेंट कर लूँगा, इनकी पूजा होती रहेगी।

मेरे विवाह को एक साल समाप्त हो चुके थे, परन्तु कभी बीच में अपनी सौभाग्यवती श्रीमती से मिलने की इतनी उत्कंठा नहीं हुई थी। आज जब उन्हें घर पधारे एक दिन भी नहीं बीता था, क्यों कवियों के शब्दों में अभिलाषा इतनी तीव्र हो उठी, अरमान इतने जाग गये, हृदय की तंत्री झंकृत हो उठी, कलेजे में 'कौलिक' होगया, फेफड़ा फड़फड़ाने लगा? सन्ध्या होते होते मैंने तरकीब ढूँढ़ निकाली।

मेरा एक छोटा-सा छः साल का भतीजा था। उसे मैं सदा मिठाई और 'लेमनड्राप' खिलाया करता था। अपने पिता से अधिक वह मुझे मानता था। मैंने सोचा कि इससे काम सध जायगा। मैंने उसे बुलाकर कहा—"कल्लू, मैंने तुम्हारे लिए चाकोलेट मँगवाया है। लोगे? वह मुझसे लिपट गया और बोला—'कहाँ है, कहाँ है, दीजिए, लाइए'।

मैंने कहा—'तुम्हारी जो नई चाची आई हैं, जानते हो।'

कल्लू ने कहा—'हाँ, हाँ, मैं जानता हूँ, वही जो आज दोपहर को आई हैं, गूँगी हैं।'

'गूँगी हैं, सो कैसे'? मैंने घबराकर पूछा।

'सब लोग हँसते हैं, बोलते हैं, वे चुपचाप बैठी हैं।' कल्लू बोला।

मैंने हँस दिया, और कहा—'अच्छा हाँ, ठीक है। ज़रा भीतर जाकर देख आओ कि उनके सोने की चारपाई किस कमरे में बिछी है।'

कल्लू दौड़ा हुआ गया और दस मिनट में मुसकराता हुआ मेरे पास आकर उसने कहा—'वह जो ऊपर अम्मावाला कमरा है, उसी के बग़ल की

कोठरी में उनके सोने के लिए ठीक हुआ है। जिस कमरे का बयान कल्लू ने किया उस कमरे में कभी कोई सोता नहीं था। यों ही ख़ाली पड़ा रहता था। मैंने सोचा, शायद शीघ्रता में और कोई स्थान न ठीक हुआ हो। अस्तु। मैंने सोचा, मेरा मतलब तो निकल ही गया। अब चाहे गंगा जी की पूजा मंगलवार को हो या छः महीने बाद। मैं आज उस मुखमण्डल को देखनेवाला था जिसके बारे में कवि-कुल-कुमुद-कलाधर, कविता-कुञ्ज-कोकिल, कविता-कश्मीर-केसर कालिदास ने लिखा है—

'कमलिनी मलिना दिवसात्यये,
शशिकला विकला क्षणदाक्षये।
इति विधिविदधे रमणीमुखम्,
भवति विज्ञतमः क्रमशो जनः॥'

और जिस मुख की उपमा के लिए, यदि मैं कवि होता तो नूरजहाँ, और रंभा और इंद्र के अखाड़े की सभी अप्सराओं को ढूँढ़ लाता, इस प्रसन्नता और आनन्द में मैं इतना तल्लीन हो गया, मानो समाधि में श्री अरविंद के बाद मैं ही हूँ।

दस बजे होंगे, सारे घर में सन्नाटे के संसार का साम्राज्य था। मालूम पड़ता था, छोटे-बड़े, नौकर-चाकर सभी ने अफ़ीम की चुसकी ली है। मैं दबे पाँव उठा। बिल्ली भी चूहे की ताक में इस शांति से न चलती होगी और भारत-सरकार की सी० आइ० डी० भी इतने चुपके से न चलते होंगे। आँगन में आया। एक बिजली का बल्ब मेरे प्रयास पर मानो मुसकरा रहा था। सीढ़ी पर चढ़ा, कभी कभी पीछे फिरकर देख लेता था कि कोई मेरे पीछे आ तो नहीं रहा है। हृदय के स्पन्दन की गति पाँच सौ प्रति मिनट रही होगी। आँखों में एक विचित्र नशा, हृदय में उल्लास, पाँव में शांति, हाथ में बढ़िया गुलाब की रूह से तर किया हुआ रूमाल, शरीर पर सिल्क का कुर्ता, यह मेरी उस समय की अवस्था थी। सीढ़ी भी पार हो गई। जिस समय मैं आँगन के पार हुआ, मैंने समझा एन्ट्रेंस पास किया, सीढ़ी पार करने में एम० ए० पास होने का भास हुआ। बस अब डिगरी मिलने में थोड़ी ही कसर रह गई थी।

अपनी भाभी के कमरे की ओर मैंने देखा भी नहीं। उसके बग़ल के कमरे की ओर जिसे कल्लू ने बताया था, मैं बढ़ा। उसका दरवाज़ा बन्द था और मंद-मंद प्रकाश छनकर आता हुआ मालूम हो रहा था। मैं थोड़ी देर तक रुका रहा। किसी ओर से किसी प्रकार का शब्द न सुनाई दिया। मेरी सफलता निश्चित थी। मैं अपने को वैसा ही समझ रहा था, जैसा जयद्रथ को मार डालने पर अर्जुन ने समझा होगा। मैंने समझा, दिन भर की थकावट के कारण निद्रारूपी भंग-भवानी ने अपना प्रभाव दिखा दिया है। मैंने धीरे से दो बार अपनी उँगली से दीवार पर खटखट किया। उसी समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कोई ज़ोर से हँसा हो। यदि मेरे कान कुछ बड़े होते तो वे तुरन्त खड़े हो जाते। मैं कुछ घबरा-सा गया, यद्यपि मैं चोरी करने नहीं जा रहा था, न मैकबेथ की भाँति ख़ून करने जा रहा था। जा रहा था अपनी नियमपूर्वक सनातन धर्मानुसार पंडितों के मंत्रों-द्वारा अभिषिक्त स्त्री से भेंट करने। परन्तु मालूम नहीं क्यों एक बार घबराया। चारों ओर देखने पर मैंने समझा कि मैं संदेहालंकार और भ्रमालंकार का निरूपण कर रहा हूँ। फिर मैंने दरवाज़ा खटखटाया, कोई आवाज़ नहीं; फिर खटखटाया, कोई आवाज़ नहीं। मैंने सोचा कि नींद गहरी है। ज़ोर से मैं खटखटा भी नहीं सकता था। मैंने धीरे से किवाड़ दबाये। किवाड़ बन्द नहीं थे, मुर्दे की आँख की तरह खुल गये। एक सेकंड मैं रुका, फिर भीतर मैंने प्रवेश किया।

सबसे पहले मैंने किवाड़ चिपका देना अपना कर्त्तव्य समझा। फिर कमरे में मैंने निगाह फेरी। वहाँ क्या देखता हूँ कि छत पर से एक बिजली का बल्ब त्रिशंकु की भाँति लटका हुआ है। एक चारपाई बिछी हुई है, जिस पर बड़ी साफ़ चादर पड़ी हुई है। परन्तु उस कमरे में मेरे सिवा और एक चूहे के सिवा जो मुझे देखते ही बिल्ली का भ्रम करके भाग गया, और कोई नहीं था। मैंने समझा, संभवतः दरवाज़ा खटखटाने और किवाड़ खुलने के कारण वह शायद छिप गई हो। मैंने प्रत्येक कोने का 'शर्लाक होम्स' की भाँति निरीक्षण किया, छत की ओर भी एक बार देख लिया। मुझे संदेह हुआ, हो न हो चारपाई के नीचे हों। वहाँ भी देखा, परन्तु निराकार ब्रह्म की भाँति दर्शन न हुआ। सब तैयारी वहाँ सोने की तो है। कल्लू ने ग़लती तो की न होगी। यही बात समझ में आई कि वह अभी कमरे में आई न होंगी। लौट जाना और फिर आना तो एवरेस्ट पहाड़ की चढ़ाई थी। निश्चय मैंने यह किया कि यहीं लेटूँ, जब उनकी आहट मिलेगी, चुपके से कोने में दबक रहूँगा। अभी सवा दस बजे थे। चारपाई पर मैं लेट गया। दो मिनट भी न लेटा हूँगा कि भनन भनन के शब्द मेरे कान में पड़े और शीघ्र ही मशक महाराजाधिराज ने मेरी कोमल नासिका पर अपना कठोर कृपाण चला ही दिया। अभी मैं इसे सहला ही रहा था कि कान पर, कपोल पर, कलाई पर, कमर पर, कंठ पर, कुहनी पर ताबड़-तोड़ हमले होने लगे। फिर तो क्या देखता हूँ कि छोटे मच्छड़, मोटे मच्छड़, लम्बे-नाटे, काले-गोरे, मलेरिया के, फ़ाइलेरिया के चारों वर्णों और चारों आश्रमों के मच्छड़ जिनकी वह कोठरी 'कोलोनी' मालूम पड़ती थी, मेरे ऊपर टूट पड़े। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि चीन पर जापान का हमला इतना ज़बर्दस्त न हुआ होगा। हाथ दो ही हैं हमारे और मच्छड़ इतने! कैसे रक्षा होती? अब मैंने समझा कि भगवान् ने चालाकी से अपने लिए और अपनी पत्नियों के लिए चार हाथ क्यों रक्खे हैं? क्षीरसागर में मच्छड़ों की बड़ी ज़बर्दस्त पलटन होगी। कभी मुँह पर, कभी पीठ पर तो कभी कान पर तो कभी जाँघ पर मेरे हाथ ऐसे चलने लगे, मानो रणभूमि में मैं तलवार भाँज रहा हूँ। जाँघ का ख़ून मच्छड़ों को मालूम होता है, विशेष रुचिकर होता है, वहाँ उन्होंने अड्डा बना लिया।

इधर मच्छड़ों ने बेचैन कर रक्खा था, उधर उनकी प्रतीक्षा की बेकली थी। इतने में किसी के पैरों की आहट मिली और जान में जान आई कि इतने बलिदान के बाद मनोरथ तो सफल हुआ। मैं साँस लेकर आँख मूँद कर सोने का बहाना करने लगा। क्या सुनता हूँ कि बाहर से किसी ने कुंडी बंद कर दी। अब मुझे कुछ कुछ मालूम होने लगा कि किसी ने मेरे साथ गहरा मज़ाक़ किया है। फिर मैंने सोचा कि शायद कोई खिलवाड़ कर रहा हो। क्रोध तो बहुत आया, परन्तु वह वैसा ही था जैसे पिंजड़े के सिंह का सर्कस के मैनेजर के ऊपर होता है। अब मुझे मच्छड़ों के डंक और घड़ी की सुई की चाल गिनने के अतिरिक्त कुछ नहीं करना था। मैं रात भर सोया कि जागा कि मर के उठा, कह नहीं सकता। आश्चर्य यही है कि रात बीत गई। पाँच बजे मैं खाट से उठा। किवाड़ बंद थे। शरीर में मालूम पड़ा, रक्त है ही नहीं। कहाँ गया? यदि उस समय कोई डाक्टर देखता तो बता सकता। मेरी समझ में उसका ब्योरा इस प्रकार है—

मच्छड़ों ने चूसा	१½ पौंड
वियोग-व्यथा से जल गया	३ पौंड
बंद कमरे में सोने से ख़राब हो गया	१ पौंड
मानसिक व्यथा से नष्ट हो गया	२ पौंड
फुटकर	½ पौंड

अब मैंने सोचा कि क्या करूँ। एक प्रकार से जेल में था। और जेल में तो सी क्लास में भी भोजन तो मिलता ही है। यहाँ उसकी भी गुंजाइश नहीं थी और मैं बड़े तड़के 'टोस्ट' खाने का आदी था। इधर भूख के मारे पेट में अँतड़ियाँ जिमनास्टिक कर रही थीं, उधर यह सोच था कि लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे। इतने में किवाड़ किसी ने खोला और मेरी भाभी साहबा मुसकराती हुई कमरे में दाखिल हुई और बोलीं—'कहिए भेंट हुई, क्या क्या बातें हुईं, रात कैसे कटी?'



बहुविवाह-प्रथा

लेखक, ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा

ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा हिन्दी के पुराने लेखकों में हैं। शुरू शुरू में जब 'अभ्युदय' निकला था तब आप भी उसके सम्पादकों में थे। आपने झाँसी की रानी का एक प्रामाणिक जीवनचरित्र भी लिखा है। इस लेख में आपने बहुविवाह-प्रथा के कारण हिन्दू परिवार की विषम स्थिति पर विचार किया है और यह सम्मति प्रकट की है कि या तो हम इस प्रथा को बन्द कर दें या स्त्रियों को भी इसका अधिकार दें।

हिन्दू-धर्म को छोड़कर अन्य सभी धर्मों में विवाह एक सामाजिक रीति है। हिन्दू-धर्म में विवाह उन सोलह संस्कारों में से एक है जिनका जन्म से मरण तक मनुष्य-जाति में होना आवश्यक है। अतएव जिस प्रकार अन्य संस्कार एक ही बार होते हैं, उसी प्रकार यह संस्कार भी धर्मानुसार एक ही बार होना चाहिए। परन्तु बहुधा देखने में आता है कि हिन्दू लोग भी अपना यह संस्कार दो-तीन बार कर डालते हैं और इस कार्य को अपनी प्राचीन व्यवस्था तथा अपने आर्य-धर्म के प्रतिकूल भी नहीं समझते।

बहुविवाह की यह प्रथा हिन्दू-धर्म में ही नहीं प्रचलित है, मुसलमानी धर्म में भी इसका प्रचार है। मुसलमानों के धर्म-ग्रंथ उनको ऐसा करने की इजाज़त देते हैं, परन्तु हिन्दू-धर्म-शास्त्र ऐसा करने की प्रायः इजाज़त नहीं देता। हिन्दू-धर्म में विवाह एक आवश्यक संस्कार है, जिसका उद्देश केवल सन्तानोत्पत्ति बताया गया है। भोग-विलास के लिए विवाह करना शास्त्रकारों ने अनुचित ही नहीं, निन्दनीय भी ठहराया है। इसी कारण केवल ऋतुमती होने के पश्चात् ही स्त्री-पुरुष का संयोग होने का उल्लेख शास्त्रों में पाया जाता है। विवाह-सम्बन्धी जितने मंत्र वेदों में पाये जाते हैं, और जिन्हें विवाह-संस्कार के समय पति-पत्नी प्रतिज्ञा-रूप में पढ़ते हैं, उन सबों का प्रायः यही अर्थ है कि हम दोनों आजीवन परस्पर प्रेमपूर्वक रहकर एक-दूसरे का आदर करते हुए उत्तम धार्मिक, कार्य-कुशल, वीर, साहसी तथा विद्वान् सन्तान उत्पन्न करके पितृ-ऋण चुकावेंगे। केवल हिन्दू-धर्म को छोड़कर और किसी धर्म में विवाह का इतना ऊँचा आदर्श लौकिक तथा पारलौकिक दोनों दृष्टियों से नहीं रक्खा गया है।

मुसलमानी धर्म में बहुविवाह की भी इजाज़त है और विवाह-विच्छेद की भी इजाज़त है। हिन्दू-

धर्म में न बहुविवाह की इजाज़त है और न विवाह-विच्छेद की व्यवस्था है। एक पुरुष को एक ही पत्नी करनी चाहिए और एक स्त्री को एक ही पति करना चाहिए। यही हिन्दू-शास्त्रों का आदेश है। एक-पत्नीव्रत तथा पातिव्रत-धर्म की महिमा का ही उल्लेख हिन्दू-धर्मशास्त्रों में पाया जाता है। अतएव हिन्दू-धर्म में विवाह-बन्धन केवल सामाजिक प्रथा नहीं समझी गई है, वरन उसे धार्मिक रूप दिया गया है। मुसलमानी तथा ईसाई धर्मों में विवाह केवल सामाजिक प्रथा ही मानी गई है और इसी कारण उनमें बहुविवाह तथा विवाह-विच्छेद दोनों की इजाज़त दी गई है।

मुसलमानी धर्म में तो पत्नी-त्याग करने से पहले भी दूसरा विवाह करने की इजाज़त है, यहाँ तक कि एक पत्नी के होते हुए और कई सन्तानों के रहते हुए भी दूसरे चार विवाह तक करने की इजाज़त है, परन्तु ईसाई-धर्म में एक पत्नी का त्याग हुए बिना दूसरी पत्नी नहीं की जा सकती। ईसाइयों में दूसरी पत्नी करने के लिए पहली पत्नी का त्याग अनिवार्य है।

परन्तु विचारणीय बात यह है कि जिस समाज का उच्च ध्येय एक-पत्नीव्रत और पातिव्रत रहा हो उसमें इस कलुषित प्रथा का प्रचार क्यों और कैसे हुआ? हिन्दुओं में भी यह बुरी प्रथा कोई नवीन नहीं है, बहुत प्राचीन काल से इसका प्रचार है। त्रेता-युग में राजा दशरथ के तीन स्त्रियाँ थीं। रामायण, महाभारत और पुराणों में राजाओं को छोड़कर ऋषियों तक के बहु-पत्नियाँ होना पाया जाता है। हिन्दू-समाज ने धर्म-मर्यादा क़ायम रखने के लिए बहुत प्रयत्न किया और यदि कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी कि यह धर्म अपनी इसी मर्यादा-रक्षा के कारण अब तक जीवित है। ऐसे पवित्र धर्म में बहुविवाह का विधान कहाँ से आ गया, यह समझ में नहीं आता। मनुष्य के सोलह संस्कारों में जब विवाह भी एक संस्कार है तब क्या बहुविवाह-प्रथा से इस संस्कार की मर्यादा भंग नहीं होती?

हिन्दू-धर्म में विवाह-संस्कार का उद्देश ही केवल सन्तानोत्पत्ति बतलाया गया है और इसका मुख्य कारण पितृ-ऋण चुकाना समझा जाता है, अतएव यह अनुमान करना कुछ कठिन नहीं मालूम होता है कि एक पत्नी-द्वारा सन्तान उत्पन्न होने की सम्भावना नष्ट होने पर ऋषियों ने आपद्धर्म के रूप में दूसरे विवाह की इजाज़त दी होगी और इसी उद्देश को आगे रखकर बहुविवाह का सूत्रपात हुआ होगा। परन्तु एक बार आज्ञा मिल जाने पर सुखोपभोग की आकांक्षापूर्ति के लिए भी पुरुषों ने इसका उपयोग किया और शुद्ध धार्मिक कार्यों के लिए दी हुई ऋषियों की आज्ञा का दुरुपयोग होने लगा। काम-वासना-तृप्ति के लिए निन्दनीय बहुपत्नी-प्रथा ने हिन्दू-धर्म की मर्यादा को घटाया और समाज में उच्छृङ्खलता का भाव उत्पन्न किया। बहुविवाह-प्रथा कोई सनातन-धर्म न था, आपद्धर्म था। इसका उपयोग ऐसे कठिन समय में ही करने की शास्त्रकारों ने आज्ञा दी थी जब पितृ-ऋण चुकाने के लिए संतान की आवश्यकता समझी जाय, अन्यथा यह प्रथा अत्यन्त वर्जित समझी जाना चाहिए।

पुरुष बहुपत्नियाँ कर सकते हैं, क्योंकि उद्देश ही पितृ-ऋण चुकाना विवाह का फल बताया गया है। परंतु क्या स्त्रियाँ भी ऐसा कर सकती हैं? क्या शास्त्रों में स्त्रियों को भी बहुविवाह अर्थात् बहुपति करने की आज्ञा दी गई है? क्या एक पति की मौजूदगी में दूसरे पति का होना हिंदू-धर्म के अनुकूल है या नहीं और ऐसा काम करने के लिए कोई विधान शास्त्रों में पाया जाता है या नहीं? द्रौपदी के पाँच पति थे, यह बात सभी जानते हैं। उसका विवाह-संस्कार भी शास्त्रानुकूल हुआ था, यह भी कहा जाता है। अतएव शास्त्रों में ऐसा विधान अवश्य होना चाहिए। परंतु ऐसा विधान कहीं नहीं मिलता। विधान चाहे मिले या न मिले, पुराणों में

ऐसे उदाहरण अलबत्ता बहुत-से पाये जाते हैं कि उस समय एक स्त्री के अनेक पति होते थे। महाभारत में जटिला नामक स्त्री के सात ऋषि पतियों के होने का उल्लेख है। भागवत में कंडु नामक मुनि की कन्या ने प्रचेत नामक पुरुष की पत्नी होकर उसके दस भाइयों से व्यवहार रक्खा। जाबाल ऋषि का उदाहरण भी इसी प्रकार का है। मत्स्य-पुराण में उशीज मुनि के भाई बृहस्पति की भी एक ऐसी ही कथा मिलती है, जिससे प्रकट होता है कि स्त्री भी परपुरुष को अंगीकार कर सकती थी।

उपर्युक्त दृष्टान्तों से इस बात का पता तो चलता है कि इस प्रकार की प्रथा तो प्राचीन काल में प्रचलित थी और यह प्रथा निन्दनीय नहीं समझी जाती थी और न इस प्रथा के सम्बन्ध से उत्पन्न हुई सन्तान समाज में घृणा की दृष्टि से देखी जाती थी। इतना ही नहीं, इस पर धर्म की छाप लग जाने से इस प्रकार का व्यवहार धर्मानुमोदित माना जाता था।

सन्तानोत्पत्ति करना ही स्त्री-पुरुष के संयोग का मुख्य उद्देश था और इसी उद्देश-पूर्ति के लिए इसकी लोग प्रायः इच्छा करते थे। स्त्रियाँ भी पुत्र-कामना के हेतु पर-पुरुषों से सहवास करके सन्तान उत्पन्न करती थीं और यह नियोग-प्रथा कहलाती थी। नियोग से उत्पन्न सन्तान औरस पुत्र के ही समान समाज में उच्च स्थान पाती थी। परन्तु ज्यों ज्यों कामवासना के विचारों की वृद्धि होकर मनुष्यों के भावों में परिवर्तन होने लगा—उच्च ध्येय से मनुष्य च्युत हुआ, ऋषियों ने इस प्रथा को वर्जित कर दिया। यदि मनुष्य-स्वभाव में उच्छृङ्खलता के भाव की जागृति न होती, पवित्रता तथा धर्म-भाव का प्राबल्य बना रहता, तो यह प्रथा निन्दनीय न समझी जाकर त्याज्य न मानी जाती। जब वर्तमान काल में विवाह का वह उच्च आदर्श न रह गया तब एक स्त्री के बहुपति होने अथवा नियोग-प्रथा के प्रचार से समाज की क्या गति होती, यह तो भगवान् ही जाने। विवाह की धर्म-मर्यादा टूट जाने पर भी पुरुषों ने तो अपने लिए बहुपत्नी-प्रथा बनाये रक्खी, परन्तु स्त्रियों के लिए बहुपति-प्रथा को रोक दिया। इसे पुरुषों का स्त्रियों पर अत्याचार कहना चाहिए या नहीं, इस बात पर विज्ञ पाठक ही विचार कर सकते हैं। विवाह-प्रथा का प्रारम्भ ही केवल सन्तानोत्पत्ति के विचार से हुआ था, अतएव सन्तान के अभाव में जहाँ पुरुषों को दूसरी पत्नी करने की आपद्धर्म समझकर इजाज़त दी गई, वहीं स्त्री को ऐसे अवसर पर ऐसी इजाज़त देने में क्यों आपत्ति की जानी चाहिए, यह समझ में नहीं आता। यदि यह प्रथा दूषित है तो दोनों के लिए इसका समान व्यवहार क्यों न हो? धर्म-शास्त्र की सूक्ष्म गति का आडम्बर रचनेवाले लोग चाहे इन सदाचारों की निन्दा करें, परन्तु संसार के प्रवाह को रोकना उनके लिए तभी सम्भव होगा जब स्त्री और पुरुष दोनों के लिए समान मर्यादा का संगठन किया जायगा। अब वह समय नहीं रहा है कि केवल शास्त्र का नाम लेकर लोग धर्मात्मा बनाये जा सकें। धर्म धर्म चिल्लाने से अब कल्याण की आशा नहीं है। या तो बहुविवाह की प्रथा को धर्मानुसार स्त्री तथा पुरुष दोनों के लिए त्याज्य समझना होगा या दोनों को इस विषय में समान अधिकार प्रदान करना होगा। समाज के कल्याण के हितार्थ पुरुषों से भी इस प्रथा का बन्द होना ही श्रेयस्कर है। ऐसा होने से स्त्री-समाज के संतोष का कारण होगा और पुरुषों में संयम की वृद्धि होकर इहलोक तथा परलोक दोनों में सुख की प्राप्ति होगी। धर्म-मर्यादा की रक्षा भी हो सकेगी। स्त्रियों में वर्तमान काल में उच्छृङ्खलता का जो भाव बढ़ रहा है और जिसके कारण समाज में बहुत-कुछ व्याकुलता उत्पन्न हो गई है उसमें भी कमी होकर देश का कल्याण होगा। जिस प्रकार ऋषियों ने स्त्रियों में बहुपति-प्रथा को बन्द करके धर्म और समाज को उस समय नष्ट होने से बचा लिया था, उसी प्रकार वर्तमान समय के धर्माचार्यों का भी कर्तव्य है कि वे पुरुषों से भी इस प्रथा

को उठाकर भविष्य के लिए हिन्दू-समाज की रक्षा करें। नहीं तो स्त्रियाँ भी पुरुषों को भोग-विलास का आनन्द लेते हुए देखकर अपने लिए भी कोई ऐसा रास्ता निकालेंगी जो हिन्दू-समाज को अधिक नीचे ले जायगा और ऋषियों के तपोबल से जो मर्यादा स्थापित हुई है वह नष्ट-भ्रष्ट होकर हिन्दुओं का और भी पतन होगा।

इसी के साथ यह कहना कुछ अनुचित न होगा कि जो लोग हिन्दू-समाज में बहुविवाह-प्रथा को बन्द करना नहीं चाहते—इसके लिए कोई आन्दोलन नहीं करते और चाहते यह हैं कि हिन्दू-समाज में पत्नी-त्याग-प्रथा का प्रचार हो, वे ग़लती करते हैं, क्योंकि इसका प्रचार होने से जहाँ पुरुषों के एकपत्नी-व्रत का लोप होकर हिन्दू-समाज की प्राचीन पवित्रता नष्ट हो गई है, वहाँ अब इस प्रथा के प्रचार से पातिव्रत की रही-सही पवित्रता भी नष्ट हो जायगी। पवित्रता नष्ट हो जाने के अलावा देखना यह भी तो है कि जिन जातियों में अर्थात् मुसलमानों तथा ईसाइयों में यह प्रथा प्रचलित है उनकी क्या दशा है। क्या उस समाज के लोग इस प्रथा के प्रचार से सुखी हैं? जहाँ तक देखा जाता है इन दोनों धर्मों में भी पत्नी-त्याग-प्रथा का स्त्री-समाज पर बड़ा भयंकर परिणाम हुआ है। जो गृह सुख के आगार होना चाहिए वे बहु-विवाह-प्रथा के कारण नरक-धाम बन गये हैं। इस निन्दनीय प्रथा के कारण अनेक गृहों में नित्यप्रति कलहाग्नि धधका करती है। योरप तथा अमरीका की ओर निगाह उठाकर देखिए। वहाँ इस प्रथा का प्रचार होने से वहाँ के लोगों का कौटुम्बिक जीवन अत्यन्त कष्टमय हो रहा है। पति-पत्नी-त्याग-सम्बन्धी काम वहाँ इतना बढ़ गया है कि इस काम के लिए अलग अदालतें क़ायम करना पड़ी हैं। थोड़ा-सा भी मनोमालिन्य होने पर झट सम्बन्ध-विच्छेद की दरख्वास्तें अदालत में पेश हो जाती हैं। एक दूसरे को समझने, प्रेम बढ़ाने तथा सहनशीलता से काम लेने का प्रयत्न ही नहीं होता। उन देशों में स्त्री-पुरुषों में अविश्वास के कारण सच्चे प्रेम का सदा अभाव रहता है। सांसारिक वासनाओं की तृप्ति के अभाव में और सुख-कामनाओं के साधनों की कमी होने पर स्त्रियों में उदासीनता का भाव उत्पन्न होकर प्रेम में कमी होने लगती है और यही कमी आगे चलकर विकारों का कारण बनकर विवाह-विच्छेद की सामग्री जुटाती है।

मृत्यु

लेखक, श्रीयुत मदनमोहन मिहिर

मृत्यु लिये जाती है मुझको
जीवन-पथ की ओर।
मिलता है न विराम एक पल
पथ का ओर-न-छोर॥

नित्य नये आते हैं सम्मुख
जटिल चढ़ाव-उतार।
पड़ती कितनी रात राह में
होते कितने भोर॥

नर्त्तकी की पूजा

अनुवादक, श्रीयुत ब्योहार राजेन्द्रसिंह

[एक बार भगवान् बुद्ध ने मगध-राज बिम्बसार के प्रासादोद्यान में स्थित अशोक-वृक्ष के नीचे अपना आसन लगाया था और धर्म का उपदेश किया था। उस पवित्र स्थान पर भगवान् के उपासक भक्त राजा ने एक वेदिका बनवा दी थी। उसने अपने प्रासाद की राजकुमारियों को यह आज्ञा दी थी कि प्रत्येक संध्या को वे अपनी भक्ति-पुष्पाञ्जलि भगवान् के चरणों में अर्पित किया करें।

बाद में महाराज बिम्बसार अपने पुत्र अजातशत्रु को राज्यलोलुप समझकर स्वेच्छा से उसे राज्य देकर आप नगर के बाहर निवास करने लगे।

महारानी लोकेश्वरी भी पहले धर्म की उपासिका थीं, किन्तु अपने पति के राज्य-त्याग के अनन्तर अपने पुत्र चित्र के गृहत्याग के दुःख से भीतर ही भीतर जलती रहती थीं और बुद्धानुशासन (धम्म) के विरुद्ध हो गई थीं।]

विष्कम्भक

(बौद्ध-भिक्षु उपाली गाता हुआ प्रवेश करता है।

उपाली—कौन है? उपासक! भिक्षा—भगवान् बुद्ध के नाम पर भिक्षा मिले।

(प्रासाद की नर्त्तकी श्रीमती प्रवेश करती है और प्रणाम करती है। भिक्षु आशीर्वाद देता है।)

उपाली—तुम कौन हो?

श्रीमती—देव, प्रासाद की नर्त्तकी आपकी चरण-सेवा में उपस्थित है।

उपाली—क्या नगर भर में केवल तुम्हीं एक जागती हो?

श्रीमती—राजकुमारियाँ अभी शयन में ही हैं।

उपाली—मैं भगवान् के नाम पर भिक्षा-याचना करने आया हूँ।

श्रीमती—देव, मुझे आज्ञा दीजिए, मैं कुमारियों को बुला लाऊँ।

उपाली - किन्तु मेरी भिक्षा तो तुम्हीं से है।

श्रीमती—हा हन्त! देव, मैं एक अभागिनी नारी हूँ। मेरी दी हुई भिक्षा भगवान् के लिए एकत्र की हुई भिक्षा के बीच लज्जित होगी। आज्ञा दीजिए, मैं आपके भिक्षा-पात्र में क्या डालूँ?

उपाली—अपनी सर्वोत्तम वस्तु।

श्रीमती—मैं नहीं जानती कि मेरे पास सबसे बढ़कर क्या है?

उपाली—किन्तु भगवान् की अनुकम्पा तुम्हारे सिर पर अवतरित हुई है—वे सब जानते हैं।

श्रीमती—मेरे पास जो कुछ भी है उसे भगवान् स्वीकार करने की कृपा करें—पूजनीय देव, आपका यही आशीर्वाद हो।

उपाली—वे अवश्य ग्रहण करेंगे। वे तुम्हारे पत्रपुष्प को उसी प्रकार स्वीकार करेंगे, जिस प्रकार ऋतुनायक वसन्त पुष्पित कानन में आत्म-समर्पण को जाग्रत करते हैं। तुम्हारा समय आ पहुँचा है—यही मेरा संदेश है। तुम सचमुच धन्य हो—भाग्यशालिनी हो!

श्रीमती मैं अपने समय की प्रतीक्षा करती हूँ। (प्रणाम करती है।)

(दोनों का प्रस्थान—उनके पीछे राजकुमारियों का प्रवेश।)

कुमारियाँ—(प्रस्थान की दिशा में देखकर) देव, इस प्रकार मत जाइए। हम लोगों की भी अञ्जलि स्वीकार कीजिए।

(एक दूसरे से) कितने लज्जा की बात है! वे चले गये।

रत्ना—वासवि, इतनी चिन्ता क्यों? भिक्षुकों की कमी नहीं है—कमी भिक्षा देनेवालों की है।

नन्दा—नहीं रत्ना, भिक्षा ग्रहण करने के योग्य पात्र के पाने के लिए बहुत पुण्य अर्जन करना पड़ता है।

(सबका प्रस्थान)

प्रथम दृश्य

स्थान—महारानी का उद्यान।

(राजमाता लोकेश्वरी और भिक्षुणी उत्पला प्रवेश करती हैं)

रानी—महाराज बिम्बसार अब भी मेरा स्मरण करते हैं?

भिक्षुणी—हाँ, मैंने ऐसा ही सुना है।

रानी—आज वे अशोक के नीचे की वेदिका पर भेंट चढ़ायेंगे। क्या इसी कारण वे मुझे याद कर रहे हैं?

भिक्षुणी—अहा! आज वसन्त की पूर्णिमा है।

रानी—पर आज पूजा किसकी की जायगी?

भिक्षुणी - तुम तो सब जानती हो। जानती नहीं कि आज की रात को भगवान् बुद्ध का जन्मोत्सव मनाया जाता है?

रानी—जाओ, महाराज से कह दो कि मेरी सब पूजा समाप्त हो गई। दूसरे उनकी वेदिका पर चाहे पुष्पाञ्जलि चढ़ावें या दीपावली अर्पण करें, मैंने तो अपना सारा संसार खाली कर दिया है!

भिक्षुणी—महारानी ये कैसे उन्मत्त वचन हैं?

रानी—उन लोगों ने मेरे प्यारे चित्र को बहका लिया है। तुम्हारे राजकुमार को—मेरे इकलौते बेटे को बहका ले गये। वह भिक्षु-पात्र लिये दर दर मारा मारा फिरता है। क्या वे अब भी मुझसे पूजा पाने की आशा करते हैं? बेलि को जड़ से काटकर क्या वे उससे पुष्पों की अभिलाषा करते हैं?

भिक्षुणी—आपने उसका त्याग किया है, किन्तु उसे खोया नहीं है। पहले आप उसे अपने बाहुपाश में रखती थीं, आज उसे सारे विश्व में प्राप्त करती हैं!

रानी—बड़ी भली आईं! तुम्हारे कोई लड़का है?

भिक्षुणी—नहीं।

रानी—क्या कभी रहा है?

भिक्षुणी—मैं बाल-विधवा हूँ।

रानी—तब चुप रहो। जिसे तुम कभी नहीं समझ सकतीं उसकी चर्चा मुँह पर मत लाओ।

भिक्षुणी—महारानी, सबसे पहले तुम्हीं ने उस सच्चे धर्म का अपने महलों में स्वागत किया था। फिर आज यह तुम कैसी —

रानी—आह! सो अभी तक उस बात की याद है! मैं समझी थी कि तुम्हारे स्वामी इसे भूल गये होंगे। प्रतिदिन मैं धर्मभिक्षु रुचि से शास्त्रानुवचन सुनकर मुँह में दाना डालती थी। उपवास तोड़ने के पहले सौ भिक्षुओं को भोजन दिया जाता था। प्रतिवर्ष वर्षा के अंत में मैं संघ के प्रत्येक भिक्षु को नये परिधान से भूषित करती थी। भगवान् बुद्ध के प्रतियोगी देवदत्त के उपदेशों से जब लोगों का चित्त चलायमान हो गया था, मैं ही अकेली अपनी श्रद्धा-भक्ति में अटल रही और मैंने ही भगवान् को अशोक-वृक्ष के नीचे उपदेश करने के लिए अपने उद्यान में आमंत्रित किया था। किन्तु हाय निर्दय और कृतघ्न जन! क्या मेरी सेवा का यही पुरस्कार है? विष! जिन स्त्रियों ने ईर्ष्याग्नि से जलकर मुझ पर विष का प्रयोग किया था उनको क्या दण्ड मिला? कुछ नहीं! उनकी सन्तान आज भी जागीरों के सम्मान का उपभोग कर रही है।

भिक्षुणी—महारानी, संसार के साधारण मानदण्ड से सत्य के मूल्य को मत तोलिए। क्या सूर्य-किरणों और स्वर्ण-तारों की एक-सी क़ीमत है?

रानी—जब कुमार अजातशत्रु ने अपना राज्य देवदत्त को समर्पण किया था, मैं हँसती थी। मैं कितनी मूर्खा थी! मैंने कहा था कि ये भ्रम में भूले हुए मनुष्य जिस तरणी से समुद्र पार करना चाहते हैं वह नीचे से फटी हुई है!

देवदत्त की जादू की शक्ति से अजातशत्रु अपने पिता के जीते-जी ही राज्य प्राप्त करना चाहता था। और मैं अपने श्रद्धा-विश्वास में मदमत्त होकर समझती

थी कि मेरे पति की गुणगरिमा कुमार की इस अपावन अभिलाषा को चूर चूर कर देगी। मुझमें ऐसा दृढ़ विश्वास था तभी तो मैंने शाक्यसिंह को—भगवान् बुद्ध को अपने पति को आशीर्वचन देने के लिए महलों में बुलवाया था। किन्तु अंत में किसकी जीत हुई ?

भिक्षुणी - क्यों तुम्हारी जीत हुई। बाहरी दुनिया को पाने के लिए भीतरी विजय को मत फेंक देना।

रानी—मेरी जीत हुई ?

भिक्षुणी – हाँ, सचमुच तुम्हारी जीत हुई। क्योंकि जिन महाराज बिम्बिसार ने अजातशत्रु के लिए पार्थिव सिंहासन को सिद्ध किया उन्होंने एक दूसरे सिंहासन को प्राप्त कर लिया !

रानी—सिंहासन पा लिया ? भ्रम है—क्षत्रिय राजा के लिए यह सब माया-भरी चिन्ता है।

मेरी दशा पर विचार करो आज मैं क्या हूँ ? अपने पति के जीते-जी विधवा हूँ, पुत्रवती होते हुए भी बाँझ हूँ: अपने महलों में ही प्रवासिनी हूँ। सचमुच यह सब माया नहीं है ! जो तुम्हारे धर्म का पालन नहीं करते उनकी दृष्टि में क्या मैं गिर नहीं गई हूँ ? जाओ, यह सब अपने गुरु से कह दो—उस वज्रात्मा* से कह दो ! अब वे कहाँ गये ? अपने उपेक्षकों पर अब वे वज्र प्रहार क्यों नहीं करते ?

भिक्षुणी—इन सब बातों में क्या तथ्य है ? तुम तो एक बीते हुए स्वप्न की बातें कर रही हो। हँसी उड़ाने-वालों को भर पेट हँस लेने दो !

रानी—यह स्वप्न हो सकता है, पर जिस स्वप्न को मैं प्यार करती हूँ, यह वह स्वप्न नहीं है। तुझ पर मँडरानेवाले स्वप्न हैं—धन, पुत्र, राज्य और सम्मान के स्वप्न। जाओ ये सब बातें उन नारियों से जाकर कहो जो अपना सिर इतना ऊपर उठाये हुए हैं ! क्या वे अपने स्वप्नों के आनन्द में मग्न नहीं रहतीं ? उनसे कहो कि अपनी अपनी भेंट लेकर पूजा के लिए आवें।

भिक्षुणी—तब मुझे जाने दीजिए।

रानी—स्वस्ति ! पर याद रखना कि वे सब मूर्खा नहीं हैं, यद्यपि मैं थी। उनकी कुछ हानि होने की नहीं, क्योंकि वे बुद्ध में श्रद्धा-विश्वास नहीं रखतीं—शाक्यसिंह की करुणा ने उन्हें स्पर्श नहीं किया है, इसलिए वे सुरक्षित हैं—सचमुच वे सुरक्षित हैं। क्यों ? चुप क्यों ? क्या सहनशीलता का बहाना बना रही हो ?

भिक्षुणी - मैं कहूँ तो कहूँ क्या ? मुझे भय है, मेरा चित्त अभी तक क्रोध से मुक्त नहीं हुआ है।

रानी—तो भी तुम्हारी जितनी क्षमाधारा है वह सब मुझ जैसी के लिए है। यह चुप्पी की धृष्टता असहनीय है, मेरे पास से चली जाओ !

(उत्पला जाना चाहती है, पर रानी उसे बुला लेती है।)

रानी—सुनो भिक्षुणी ! मेरे पुत्र चित्र ने कोई नया नाम धारण कर लिया है। क्या तुम उसे जानती हो ?

भिक्षुणी—हाँ।

रानी—(अपने आप) अपनी मा के रक्खे हुए नाम को वह अपवित्र समझता है। कितने सहज में वह उसे उतार फेंकता है !

भिक्षुणी—महारानी ! अगर आप चाहें तो मैं उसे आपके पास ला सकती हूँ।

रानी—अगर मैं चाहूँ ! ओह ! मेरे लिए यह मरण है कि मैं जिसने उसे जन्म देकर इस संसार में उत्पन्न किया है, तुमसे कहूँ कि तू उसे मेरे पास ले आ !

भिक्षुणी—तो मैं जाऊँ न ?

रानी—ज़रा ठहरो। कभी कभी तुम उससे मिलती हो ?

भिक्षुणी—हाँ, क्यों नहीं।

रानी—अच्छा, केवल एक बार अगर वह स्वयं किन्तु नहीं—कुछ परवा नहीं।

भिक्षुणी—मैं उससे कह दूँगी। शायद तब तुम्हें उसके दर्शन हो जायँ।

रानी—शायद ! शायद ! जब मैंने उसे अपने जीवन के रक्त से पोषित किया था तब कोई 'शायद' नहीं था ! माता के ऋण का अधिकार अब इस लड़खड़ाते

* वज्रात्मा बुद्ध भगवान का एक नाम है।

हुए छोटे से 'शायद' के रूप में बाक़ी रह गया है ! और यही उनका 'धर्म' है ?

(मल्लिका का प्रवेश)

मल्लिका—महारानी !

रानी—क्या अजातशत्रु का कोई समाचार मिला ?

मल्लिका—हाँ, वे देवदत्त को बुलाने गये हैं। त्रिपिटक (बौद्ध-धर्म) के धर्म का नाम-निशान भी वे अपने राज्य में न रहने देंगे !

रानी—कायर कहीं का ! राजा होकर राज्य करने से डरता है ! बुद्ध के अनुशासन में कितनी थोड़ी शक्ति है, इसका प्रमाण स्वयं मेरा ही जीवन है। किन्तु उस ज़रा सी शक्ति का विरोध करने के लिए वह देवदत्त-सरीखे नीच की सहायता लेना चाहता है। अकेले उसका विरोध करने की हिम्मत उसमें नहीं है।

मल्लिका—जिनके पास जितना ही अधिक रहता है वे उतने ही अधिक डरपोंक होते हैं। वे इस राज्य के अधिपति हैं, अतः चाहते हैं कि दूसरे राज्यों के साथ सुलह करके रहें। जब समझते हैं कि बौद्ध-भिक्षुओं को मैंने बहुत अधिक दे डाला तब वे देवदत्त के अनुयायियों को और भी अधिक देना चाहते हैं।

रानी—मेरा भाग्य अब बिलकुल अहिंसक हो गया है। कुछ बाक़ी न रहने के कारण मुझे अब उस कायरता की ज़रूरत नहीं रह गई है जो असत्य को अपना साथी बनाती है।

मल्लिका—महारानी, आप तो आज उस भिक्षुणी के समान बातें करती हैं। वह कहती है कि हमारे राज्य की महारानी धन्या और भाग्यशालिनी हैं, क्योंकि वे भगवान् बुद्ध की दया से माया-जाल में बद्ध करने-वाले सब बंधनों से मुक्त हो गई हैं।

रानी—इन निरर्थक युक्तियों से मुझे और भी अधिक दुःख होता है। अगर तुम्हारी इच्छा है तो कोरे सत्य को लेकर उसी में मस्त होओ, किन्तु मुझे मेरा वही बन्धन लौटा दो जो मुझे पृथ्वी से बद्ध रखता है। तब मैं एक बार फिर उसी अशोक-वृक्ष के नीचे दीपावली प्रज्वलित करूँगी; एक बार फि[र] भिक्षुओं को भोजन मिलेगा; और उनके प्रत्येक मन्त्र—मेरे महलों में नित्य गूँजेंगे। कि[न्तु] यह नहीं हो सकता तो देवदत्त को आने दो।

वह सच्चा है या झूठा - मैं इसकी पर[ख] करती—मैं ऊपर से जाकर देखती हूँ कि [...] कोई दिखता है या नहीं।

(सब जाते हैं।

वीणा लिये हुए नर्त्तकी श्रीमती का प्रवेश। [...] कालीन बिछाकर वह अपनी चेलियों को बुलाती है।

श्रीमती—अब समय आ गया है। आओ ([...] गाती हैं)

(ग्रामवासिका मालती का प्रवेश)

मालती—क्या तुम्हीं श्रीमती हो ?

श्रीमती—हाँ, मुझसे तुझे क्या काम है ?

मालती – लोगों ने मुझसे कहा है कि तुमसे मैं [...] सीख सकती हूँ।

श्रीमती—क्या मैंने तुझे महलों में पहले कभी देखा है[?]

मालती—मैं अभी अपना गाँव छोड़कर आ रही हूँ। मेरा नाम मालती है।

श्रीमती—बेटी ! तुम यहाँ क्यों आई हो ? क्या तु[म्हारे] लिए जीवन भाररूप हो रहा था ? वहाँ तुम वेदी[...] फूल के समान थीं और देवता तुमसे प्रसन्न थे, कि[न्तु] यहाँ तुम विलासिता के उद्यान की कली के समान हो[...] और चुड़ैलें तुम्हें हँसेंगी। क्या तुम गीत सीख[ने] आई हो ? क्या तुम्हारी आशाओं का इतने में [ही] अन्त है ?

मालती—क्या सच सच बताऊँ ? मेरी आशायें बहु[त] लम्बी-चौड़ी हैं, किन्तु मैं उन्हें मुँह पर लाने [की] हिम्मत नहीं कर सकती।

श्रीमती—हाँ, मैं समझी—शायद किसी दिन तुम रा[नी] बन जाने की इच्छा रखती होगी ! अगर तुम्हारे पूर्व-जन्म के पाप काफ़ी हैं तो तुम्हारी इच्छा की पूर्ति होगी। जब वन-विहंगम सोने के पींजरे से शोभित हो जाता है तब अवश्य ही उसके पंखों पर चुड़ैल[...]

का निवास रहता है। अब भी अपने जंगल को वापस चली जाओ, अभी समय है।

मालती—बहन, मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझी।

श्रीमती—हार के बदले साँकल क्यों चाहती हो अभागिनी?

मालती—तुम मुझ पर अन्याय कर रही हो, मुझे अपना मतलब समझाने दो। एक बार भगवान् बुद्ध इस उद्यान में पधारे थे और मैंने सुना है एक पेड़ के नीचे बैठे थे। उसी जगह महाराज ने एक मंदिर भी बनवा दिया है।

श्रीमती—सच है।

मालती—लोग कहते हैं कि रोज़ शाम को राजकुमारियाँ आकर अपनी भक्ति-पुष्पाञ्जलि वहाँ चढ़ाती हैं। मेरे इतने भाग्य कहाँ कि मैं भेंट चढ़ा सकूँ—पर क्या मैं वेदिका को झाड़-बुहार कर साफ़ भी नहीं कर सकती? यही आशा है, जो मुझे गायन सीखने के लिए यहाँ तक लाई है।

श्रीमती—आओ बहन, मुझे बहुत आनन्द हुआ। कुमारियों के पूजा-प्रदीप रोशनी की अपेक्षा धुआँ ही अधिक देते हैं—वे तुम्हारे पावन स्पर्श के लिए प्रस्तुत हैं। पर तुमने ये बातें कैसे सोचीं?

मालती—बहन, मैं तुम्हें कैसे बताऊँ? हवा में आग के समान एक आवाज़ आ रही है। कल ही मेरे भाई ने उसे सुना था। वह १८ वर्ष का भी न होगा। मैंने उसका हाथ पकड़कर पूछा—"मेरे प्यारे भैया, तुम कहाँ जाते हो"? "उसने कहा—"उसी की खोज में"।

श्रीमती—आज समुद्र ने प्रत्येक नदी की तरंगों को निमन्त्रण दिया है। आकाश में पूर्ण चन्द्र भी प्रकाशित है। (मालती का हाथ पकड़कर यह क्या है? तुम्हारी अँगुली में यह मुँदरी कैसी है? क्या स्वर्ग के फूल ने अपने को माटीमोल बेच दिया है?

मालती—मुझे पूरी कथा बताने दो। तब तुम समझोगी।

श्रीमती—मैंने बहुत कुछ सहा है, इसलिए समझने की शक्ति आ गई है।

मालती—हम लोग ग़रीब थे और वह धनी था। मैं दूर से चुपचाप अपनी चुपकी को पारकर उसे देखा करती थी। एक दिन वह खुद हमारे घर पर आया और कहा कि मैं इसे प्यार करता हूँ। मेरे पिता ने कहा—"मालती भाग्यवती है। जब सब तैयारी हो गई, वह हमारे द्वार पर आया—वर के भेष में नहीं, किन्तु एक भिक्षु के कपड़े पहने हुए। वह मुझसे बोला—"अगर कभी हम लोग मिलेंगे तो यहीं नहीं किन्तु स्वाधीनता के पथ पर मिलेंगे।" बहन, मुझे माफ़ करो। मेरी आँखें आँसुओं से भरी हुई हैं, क्योंकि मेरा जी कच्चा है।

श्रीमती—बहन, डरो मत। अपने आँसुओं को खुलकर बहने दो। वे तुम्हारी स्वाधीनता के मार्ग की धूल को धो डालेंगे।

मालती—मैंने नमस्कार कर उससे कहा—"मेरा बंधन अभी बहुत मज़बूत है। मुझे अपने वचन दी हुई अँगूठी दो। जब यह अँगूठी मेरी अँगुली से भगवान् की वेदी पर गिरेगी तब हम दोनों स्वाधीनता के पथ पर मिलेंगे।

श्रीमती—ऐसी अनेक स्त्रियाँ हैं जो अपना भवन बना कर आज तोड़ रही हैं। ऐसी नारियाँ भी बहुत हैं जो भिक्षुणी की अलफ़ी पहनकर पथ की भिखारिणी बन गई हैं। पथ की पुकार से या पथिक से? कौन जाने? कितनी बार मैंने अपनी अंजुलि जोड़कर अपने सच्चे हृदय और पूरी आत्मा से प्रार्थना की है—"हे महापुरुष! आप ही तो महान् हो! इस प्रकार निश्चल मत रहो। आपने ही नारियों की अश्रुधारा के बाँध को तोड़ दिया है; अब आप ही उन्हें शान्ति-सुधा का पान कराइए।"

(एक तरफ़ देखकर—ये तो राजकुमारियाँ आ रही हैं)

वासवि—(प्रवेश कर) यह लड़की कौन है? भला मैं देखूँ तो सही! अपने सिर पर इतने जूड़े का कैसा पहाड़-सा उठा रक्खा है। बाल-जाल में कानों के ऊपर जवा-कुसुम खोंस रक्खा है।

देखो तो नन्दा, देखो तो जूड़े में आकण्ड पुष्पों की माला कैसी लपेट रक्खी है। क्या वह रत्न बीजों की माला है? श्रीमती, यह आई है कहाँ से?

श्रीमती—अपने गाँव से आई है। मालती नाम है।

रत्ना—तुम्हारे उपदेशों से स्वर्गीय आनन्द प्राप्त करने की इच्छा से?

श्रीमती—गाँव की लड़कियों को इन चीज़ों की ज़रूरत नहीं है कुमारी! स्वर्गीय चिह्न उनके शरीर पर बिना गहनों के कलुषित या धूलि धूसरित हुए बने रहते हैं।

रत्ना—तुम्हारे उपदेशों से स्वर्गीय आनन्द प्राप्त करने की अपेक्षा मैं उनसे वञ्चित रह जाना ही अच्छा समझती हूँ।

नन्दा—अजिता, रत्ना इस प्रकार हमेशा श्री को क्यों तंग करती रहती है? श्रीमती कभी उपदेश नहीं देतीं—

वासवि—किन्तु उसकी चुप्पी में ही उपदेश का सारा संसार भरा हुआ है। उसका मुसकुराना तो देखो! क्या यही एक बड़ा भारी उपदेश नहीं है?

रत्ना—बहुत ठीक! अगर दूसरे शब्दों में कहा जाय तो वह इस प्रकार होगा—

"अक्रोधेन जिने क्रोधं तर्कं सुस्मितया जिने॥

वासवि—श्रीमती, तुम अपने आपको इन आक्षेपों से नहीं बचातीं। अपना समर्थन क्यों नहीं करतीं? लोगों को क्रोधित करना उन्हें उन्नति करने की अपेक्षा अधिक दयालुता का काम है।

श्रीमती—यदि मैं सचमुच हृदय से अच्छी होती तो ऊपर से बुरी दिखने का प्रयत्न करती। चन्द्रमा अपनी चाँदनी पर पर्दा डाले तो उसे शोभा देता है, किन्तु अगर अँधेरी रात अपने को बादलों से ढके तो कैसा हो?

अजिता—देखो वह गाँव की लड़की आश्चर्य से चुप है। वह मन में सोचती होगी कि महल की लड़कियाँ जी में मीठी होने की अपेक्षा तीखी अधिक हैं। (मालती से) तुम्हारा नाम क्या है? मैं भूल गई।

मालती—मालती।

अजिता—अच्छा बताओ तुम अभी मन में क्या सोच रही थीं?

मालती—मैं तुम्हारे कड़े शब्दों पर दुःखित हो रही थी, क्योंकि मैं अपनी बहन (श्रीमती को बताकर) को प्यार करने आई हूँ।

अजिता—जिनको हम प्यार करते हैं उन्हें हँसी हँसी में दुःख पहुँचा देते हैं। महल के जीवन का यह एक नियम है। इसे गाँठ में बाँध रक्खो।

नन्दा—मालती, तुम और कुछ कहना चाहती थीं। मैं यह जानने के लिए उत्सुक हूँ कि तुम हम लोगों के बारे में क्या सोचती हो?

मालती—मैं कभी नहीं सोचती! मैं सिर्फ़ यह कहना चाहती थी कि "क्या तुम्हारी बातें ही इतनी मधुर हैं कि तुम संगीत का समय बातों में ही खो देती हो?"

(कुमारियाँ हँसती हैं)

वासवि—मैं ऐसा कभी नहीं करती। कभी नहीं। अपने व्याकरणाचार्य को बुलाना चाहिए। उनके लिए एक नया....... मिल गया।

रत्ना—कभी नहीं वासवि! राजमुकुट की मणि!

वासवि—कभी नहीं रत्नावली! मनोमोहक सुंदर चंद्र! नये शब्दों का कितना भण्डार चाहिए!

मालती—(श्रीमती से) क्या वे मुझसे नाराज़ हो गईं?

नन्दा—मालती डरो मत। जब आकाश ओले बरसाता है तब उसे फूलों से नाराज़ नहीं समझना चाहिए। ये तो उसके प्यार करने के तरीक़े हैं।

श्रीमती—(जाती है)

वासवि—तेरे नेत्रों में नीर क्यों भर आया मालती? इस गाने से तू क्या समझी?

मालती—मेरी बहन ने पुकार सुन ली है।

वासवि—कौन-सी पुकार? किसकी पुकार?

मालती—वही पुकार जिसने मेरे भाई को भिखारी बना दिया। वही पुकार जिसे मेरे......(हिचकती है)

वासवि—मेरा क्या?

श्रीमती—चुप मालती! आगे मत कहो। अपने आँसू पोंछ डालो। यह रोने की जगह नहीं है।

वासवि—उसे तुमने क्यों रोक दिया श्रीमती? क्या तुम

समझती हो कि हम लोग केवल हँसना ही जानते हैं ?

भद्रा—हम जानती हैं कि ऐसी भी उच्च भावनायें हैं जहाँ हँसी पहुँच ही नहीं सकती।

मालती—क्या तुम लोगों ने वे शब्द सुने हैं जो आज वायु में ध्वनित हो रहे हैं ?

नन्दा—नहीं ! प्रभात की प्रथम किरण पद्म की पँखुड़ियों को खोलती है—महलों की दीवालों को नहीं।

(रानी लोकेश्वरी का प्रवेश—कुमारियाँ उठकर प्रणाम करती हैं)।

रानी—अब मैं और अधिक सहन नहीं कर सकती। क्या तुम सड़कों से आती हुई आवाज़ों को नहीं सुनतीं ?
"नमो बुद्धाय लोकगुरवे।" ओह !
यह मेरे हृदय को दहला देता है। (कान मूँदकर)
इसे आज ही, अभी, इसी समय बन्द होना चाहिए।

मालती—शान्त हों महारानी।

रानी—मैं अपनी ईर्ष्या को किस तरह शान्त करूँ ? क्या मंत्र या श्लोक उसे शान्त कर सकता है ?—
"नमो परमशान्ताय, परमकारुणिकाय !"
इन मंत्रों से मुझे क्या होगा ? नहीं "नमो
क्रोधमूर्त्यै वज्ररूपाय महाकाल्यै नमः॥ नमो
संहारकार्यै।"
केवल रक्त-प्लावन और अग्निदाह से ही शान्ति आवेगी। नहीं तो पुत्र मा की गोद से खींच लिया जायगा—राना अपने राजसिंहासन से सूखे पत्ते के समान झड़ पड़ेगा ! (कुमारियों से) तुम सब यहाँ क्या कर रही हो ?

रत्ना—(हँसकर) हम लोग निर्वाण की प्रतीक्षा कर रही हैं—हम अपने पाप-पूर्ण हृदयों को पवित्र कर धीरे धीरे अपने गुरु श्रीमती के दर्शित पथ का अनुसरण करने का प्रयत्न कर रही हैं।

वासवि—ओह ! बहुत बनो मत !

रानी—क्या ? नर्त्तकी तुम्हारी गुरु है ? सचमुच यह धर्म इन्हीं बातों की ओर ले जा रहा है। जो महापतित है वही निर्वाण का संदेश लेकर आवेंगे। तो श्रीमती क्या साधुनी हो गई ! जब भगवान् बुद्ध हमारे उद्यान में पधारे थे, सभी उनके दर्शन करना चाहते थे। मुझे इस लड़की पर दया आ गई और मैंने इसे भी बुला लिया। मगर इस अभागिनी ने इनकार कर दिया। किन्तु अब लोग कहते हैं कि जब भिक्षु-उपासी आता है तब राजघराने की कुमारियों को छोड़कर इस नर्त्तकी के हाथ से भिक्षा ग्रहण करता है ! ओह ! मूर्ख लड़कियो ! अभी तुम लोग उस धर्म को स्वीकार करने को तैयार हो जो राज्यासनों को धूलि के बराबर मिलाना चाहता है, जिसमें राजा एक तरफ़ रह जाते हैं और भिक्षु धृष्टता कर घुस आते हैं। और यही तुम्हारे लिए सच्चा धर्म है ! वाह री आत्मघातको ! (श्रीमती) क्यों री नर्त्तकी ! दीक्षा के समय तूने उपासी से कौन-सा पवित्र मंत्र सुना है ? अब तुझे उसे उच्चारण करने की भी हिम्मत न पड़ेगी—तेरी अपवित्र जीभ अब चुप्पी धारण कर लेगी।

श्रीमती—(मंत्र कहती है) नमो बुद्धाय—शिक्ष
नमो धर्माय—रक्ष
नमो संघाय—परमश्रेष्ठाय

रानी—(उसी को कहती है) नमो बुद्धाय शिक्ष मित्र।
बस। बस। बहुत हो गया।

श्रीमती—(जारी रखती है) हे भगवान्, जो मुझ मित्र-हीन पर परम दयालु हो !
स)—

(दासी का प्रवेश)

दासी—महारानी, कुमार चित्र अपनी माता के दर्शन करने पधारे हैं।

रानी—कौन कहता है कि यह धर्म झूठा है ? पवित्र मंत्रों के उच्चारण के साथ ही साथ सब पाप दूर हो गया ! ओ श्रद्धाहीन पुरुष ! एक बार तुम मेरी दुर्दशा पर हँसते थे, किन्तु अब देखो कि मेरे दयालु प्रभु ने कैसी करुणा-धारा प्रवाहित की है ? उससे पाषाण भी गल जाते हैं ! मेरी बात सुनो ! मैं एक बार फिर कहती हूँ कि मैं अपने पुत्र को फिर से पाऊँगी—

फिर से सिंहासन पाऊँगी। एक बार फिर मैं उनके घमण्ड को चूर करूँगी जिन्होंने मेरे प्रभु को अपमानित और धूलि-धूसरित किया है।
बुद्धं शरणं गच्छामि।
धर्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं गच्छामि।
दासी के साथ प्रस्थान)

रत्ना—अब किस ओर हवा बहती है मल्लिका !

मल्लिका—आज आकाश क्षुब्ध झंझावात से पूरित है। क्या कोई जानता है कि वे कहाँ से आती हैं या वे कहाँ जायँगी या वे मनुष्यों को किस प्रकार उड़ाती फिरती हैं ?

रत्ना—अन्त में कुमार चित्र लौट ही आये।

न—देखो अन्त में क्या होता है।

मल्लिका—(श्रीमती से) क्या यह सच है बहन कि जिस दिन भगवान् उद्यान में पधारे थे उस दिन तुम उनके दर्शनों को नहीं गईं ?

श्रीमती—हाँ, सच है। अपने आपको उनके सम्मुख खड़ा करना एक भेंट उपस्थित करने के समान है। मैं अपवित्र थी—मेरी बलि तैयार नहीं थी।

मल्लिका—कितने दुःख की बात है बहन !

श्रीमती—बिना पूरी तैयारी के उनके समीप जाना व्यर्थ है। केवल चर्म-चक्षुओं से उनके दर्शन करना असली दर्शन करना नहीं है। और केवल कर्णों से उनके उपदेश सुनना यथार्थ श्रवण नहीं है।

रत्ना—ओहो ! यह तो हम लोगों पर आक्षेप है। उदारता का ज़रा-सा झोका चलने पर ही इस नर्त्तकी की सभ्यता का पर्दा उड़ जाता है।

श्रीमती—बनावटी-दिखावटी सभ्यता के मेरे दिन चले गये। मैं तुम्हारी प्रशंसा में झूठ से काम नहीं लेना चाहती। मैं स्पष्ट रूप से कहती हूँ कि तुम लोगों ने भगवान् के सम्यक् दर्शन नहीं किये हैं—
तुम्हारे चर्म-चक्षुओं ने ही उनके बाह्य रूप को देखा है।

रत्ना—वासवि, भद्रे, तुम एक नर्त्तकी की इतनी धृष्टता कैसे सहन कर सकी हो ?

वासवि—अगर हम बाहर सत्य के प्रकाश का सामना नहीं कर सकते तो हमें भीतर असत्य के अन्धकार में रहना पड़ेगा।

श्रीमती—फिर से मंत्रोच्चारण करो। और मेरे हृदय-स्थित कंटकों को अपनी तीव्रता खोने दो—

श्रीमती—नमो बुद्धाय शिक्षयित्रे।
नमो धर्माय रक्षयित्रे।
नमो संघाय सर्वश्रेष्ठाय॥

नन्दा—हम लोग भगवान् के दर्शन करने बाहर गये थे, किन्तु इसने अपने हृदय के अन्तस्तल में उनके सम्यक् दर्शन किये हैं।

रत्ना—नर्त्तकी, क्या नम्रता तुझसे बिलकुल ही दूर भाग गई है ? क्या तू इसका विरोध न करेगी ?

श्रीमती—मैं क्यों करने चली कुमारी ? अगर वे मेरे हृदय-पथ पर अपने पाद-पद्म रखते हैं तो महिमा उन्हीं की है, मेरी नहीं।

वासवि—बस, बहुत हुआ। बातों पर बातें होती हैं। जाओ,
(नेपथ्य से शब्द आते हैं)
नमो त्रिपिटकाय—नमो बुद्धाय।
नमो महाप्राणाय—नमो महाकारुणिकाय !
(भिक्षुकिनी उत्पला का प्रवेश)

कुमारिकायें—(प्रणाम करके) देवी के चरणों में प्रणाम है।
(भिक्षुकिनी आशीष देती है)

भिक्षुकिनी—श्रीमती !

श्रीमती—जो आज्ञा देवि !

भिक्षुकिनी—आज हमारे भगवान् का जन्म-दिवस है। आज बसन्त की पूर्णिमा है और आज अशोक-वृक्ष के नीचे भगवान् के आसन पर भेंट चढ़ाने का काम श्रीमती के जिम्मे होगा।

रत्ना—मैंने ठीक ठीक नहीं सुना ! तुम्हारा मतलब किस श्रीमती से है ?

भिक्षुकिनी—इन्हीं श्रीमती से जो यहाँ है।

रत्ना—यह महल की नाचनेवाली !

भिक्षुकिनी—हाँ, वही नर्त्तकी !
रत्ना – क्या बड़ों ने तुम्हें यह आज्ञा दी है ?
भिक्षुकिनी हाँ, उन्हीं की आज्ञा है।
रत्ना —वे कौन कौन हैं ? ज़रा उनके नाम तो सुनूँ।
भिक्षुकिनी – उपासी उनमें से एक है।
रत्ना – जाति का नाई ?
भिक्षुकिनी – सुनन्दा दूसरा है।
रत्ना - ग्वाले का लड़का ?
भिक्षुकिनी—अह ! कुमारी, उन सबकी ही एक ही जाति है। क्या तुम उनकी उपाधियाँ नहीं जानतीं ?
रत्ना – बिलकुल नहीं ! शायद वही नर्त्तकी जानती है। वे सब उसी की जाति के होंगे। इसी से उनकी परस्पर सहानुभूति है !
भिक्षुकिनी – ऐसी ही बात है। हमारे पूजनीय पिता बिम्बिसार आज हम लोगों की पूजा में सम्मिलित होने के लिए अपना आश्रय छोड़ रहे हैं। मैं उनका स्वागत करने को जा रही हूँ—
अ – तुम कहाँ जा रही हो श्रीमती ?
श्रीमती – अशोकतले की वेदिका का प्रक्षालन करने।
मालती – मदद देने के लिए मुझे भी साथ ले चलो बहन !
नन्दा - मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।
अ – मैं भी शायद आ जाऊँ।
वासवि—मैं भी दर्शन करने को उत्सुक हूँ।
रत्ना—कितना सुन्दर है ! श्रीमती पूजा करेंगी और तुम उसकी भक्त चेलियाँ उसको पंखा झलना।
वासवि—और तुम यहीं बैठी बैठी हम सब पर शापों की वर्षा करना। मगर कुछ हर्ज नहीं। इससे अशोक-वृक्ष में आग तो लग ही न जायगी और न श्रीमती की ही शान्ति भंग होगी।

(रत्ना और मल्लिका के सिवा सबका प्रस्थान)

रत्ना—यह नहीं चल सकता। नहीं चल सकता—यह सब प्रकृति के विरुद्ध है। मल्लिका, मैं पुरुष क्यों न हुई ? इन अलंकारों को धिक्कार है ! आह ! यदि इनके बदले मैं तलवार लिये होती तो बतलाती। और तुम मल्लिका ! तुम क्यों कुछ नहीं बोलीं ? क्या नर्त्तकी की दासी बनने की तुम्हारी उत्कट इच्छा है ?
मल्लिका—अगर चाहूँ तो भी नहीं बन सकती। वह मुझे अच्छी तरह जानती है।
रत्ना—मैं नहीं समझ सकती कि तुम इस प्रकार चुपचाप क्यों सहन करती हो ? सहनशीलता तो असहायों और गँवारों का हथियार है न कि राजकुलोत्पन्न पुरुषों का।
मल्लिका – गणना का समय निकट आ रहा है तब मैं अपनी शक्ति को नष्ट नहीं करना चाहती।
रत्ना—क्या तुम्हें निश्चय है ?
मल्लिका—हाँ, बिलकुल निश्चय।
(—अगर गुप्त बात हो तो मुझसे छिपाओ। मैं केवल यह जानना चाहती हूँ कि क्या हम राजकुमारियाँ होकर केवल हाथ जोड़े खड़ी रहेंगी और वह नर्त्तकी होकर संध्या की उपासना करेगी ?
मल्लिका—नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। इतना तो मैं तुम्हें वचन देती हूँ।
रत्ना—राजमहल की अधिष्ठात्री देवी तुम्हारे वचनों को सत्य करें !

गीत

लेखिका, श्रीमती तारा पाँडे

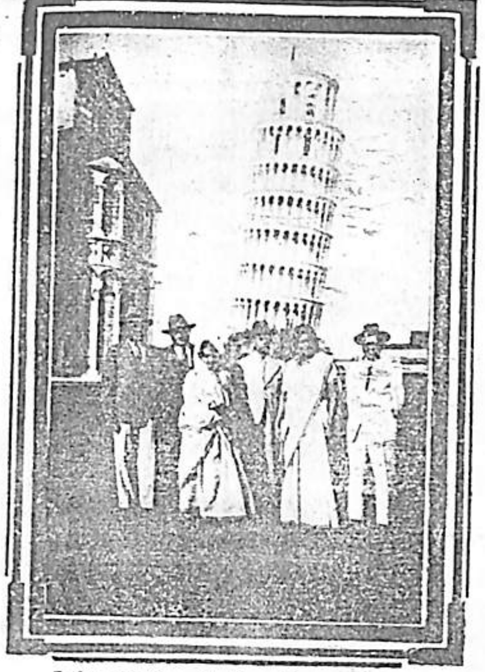
कौन-सी अनुभूति है यह ?
मृदुल-सा कुछ, स्वप्न-सा आया न जाने पास क्या,
आलोक-सा, कुछ तिमिर-सा छाया न जाने आज क्या,
स्वर्ग-लोक विभूति है यह !
कौन-सी अनुभूति है यह !

जन्म का सुख है कि या यह मृत्यु का उल्लास आया।
प्रलय को भर अंक में नव सृष्टि का आभास आया।
प्रकृति की चिर-रीति है यह !
कौन-सी अनुभूति है यह !

योरप—जैसा कि मैंने उसे देखा

५—फ़्लोरेंस वेनिस वायना और बुडापेस्ट से होकर

लेखक, श्रीयुत हरिकेशव घोष



[पीसा की मीनार के निकट लेखक की पार्टी]
(बाईं ओर से—श्रीयुत बनवारीलाल, श्रीयुत चटर्जी, श्रीमती चटर्जी, लेखक, कुमारी वस्तिखा और श्रीयुत द्रू)

रोम के बाद हम फ़्लोरेंस के लिए रवाना हुए। यह शहर अपनी चित्रशालाओं के लिए प्रसिद्ध है। हम उत्तर की ओर जा रहे थे और प्राकृतिक दृश्य का परिवर्तन हमें स्पष्ट प्रतीत हो रहा था। दक्षिणी इटली में धूप तेज़ होती है और खेती भी अधिक होती है। वर्ष के इस भाग में वहाँ उष्णता-प्रधान देशों में पाई जानेवाली अनेक धान्यों की खेती होती है। परन्तु यहाँ हरियाली कम दिखाई पड़ती है।

फ़्लोरेंस हम उपयुक्त समय पर दिन में पहुँचे। रोम में हमारे गाइड ने फ़्लोरेंस की एक यात्री-संस्था को तार दे दिया था। हमारे पहुँचते ही उसने शीघ्र ही हमारे ठहरने की व्यवस्था करनी आरम्भ कर दी। नगर के केन्द्र में हम एक अच्छे होटल में आराम के साथ ठहराये गये। तीसरे पहर के चाय-पानी के पश्चात् हम गाइड के साथ शहर घूमने निकले। मार्ग में हमें इटली के अमर कवि दान्ते का घर मिला। हमें वह विशेष स्थान दिखाया गया जहाँ दान्ते बिआट्रिस पर प्रेम-मुग्ध हुआ था। ये दोनों स्थान संरक्षित हैं। फ़्लोरेंस का गिर्जा इटालियन शिल्प-कला का एक अच्छा नमूना है। इसका निर्माण गाथिक शैली पर हुआ है और प्रवेश-द्वार पर खूब बारीक़ कारीगरी है। ऐसी कारीगरी कोलेन (जर्मनी) के गिर्जा के सिवा और कदाचित् ही कहीं देखने को मिली। फ़्लोरेंस में उसके गर्व करने योग्य वैसी विशाल इमारतें नहीं हैं।

रात में ख़ूब आराम करने के बाद सवेरे हम वहाँ की प्रसिद्ध चित्रशालायें देखने को निकले। वहाँ



"आहों का पुल"



डेला सैलूट का गिर्जा



सेंट मार्कों का गिर्जा और बेल-टावर

दो चित्रशालायें हैं और उनको अच्छी तरह से देखने के लिए साधारण तौर पर दो दिन लगते हैं। इन दोनों चित्रशालाओं ने शताब्दियों से योरप और अमरीका के हज़ारों चित्रकारों को आकर्षित कर रक्खा है। हमने वहाँ कई विद्यार्थियों को जिनमें पुरुष और स्त्री दोनों थे, प्रसिद्ध कलाविदों के चित्रों की प्रतिलिपि तैयार करने में व्यस्त देखा। उनमें बहुत-से अपनी इन प्रतिलिपियों को दर्शकों के हाथ बेचते हैं और इस प्रकार अपना जीविकोपार्जन करते हैं। एक वयस्क महिला-द्वारा अङ्कित 'टिटियन' की एक प्रतिलिपि ने हमें विशेषरूप से आकर्षित किया। मूल और प्रतिलिपि में वास्तविक अन्तर क्या है, यह जानना कठिन था। चटर्जी साहब तो उससे इतने प्रभावित और मुग्ध हुए कि उन्होंने उस महिला को २ पौंड उपहार-स्वरूप दिये।

उन चित्रशालाओं में बहुत-से धुरन्धर चित्रकारों की कृतियाँ हैं। उन सबका विस्तृत वर्णन हम यहाँ नहीं करेंगे, क्योंकि उससे पाठक ऊब जायँगे। अमर चित्रकार रैफ़ेल के तीन प्रसिद्ध चित्र यहाँ रक्खे गये हैं। मेरे पास शब्द नहीं हैं कि मैं बताऊँ कि वे कितने अद्भुत हैं। मडोना और शिशु नामक प्रसिद्ध चित्र को जो प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक रूप में अङ्कित किया गया है, हम देखते ही दङ्ग रह गये। वह इतना सजीव, इतना सुन्दर और इतना नवीन प्रतीत हुआ कि वह हमारे मानस-पट पर सदा के लिए अङ्कित हो गया और उसे अपने जीवन में हम कभी नहीं भुला सकेंगे। अल्पायु में ही स्वर्गवासी हो जानेवाले महान् रैफ़ेल के लिए इस महान् स्थान में एक विशेष स्थान अलग कर दिया गया है। यहाँ की अन्य कृतियाँ भी जो यद्यपि इतनी प्रसिद्ध नहीं हैं, ध्यान देने योग्य हैं। यह संग्रह इटालियन चित्रकारों तक ही परिमित नहीं है, बहुत-से डच, जर्मन, फ्रेंच और इँग्लिश चित्र भी इसमें रक्खे गये हैं। उस समय कुछ चित्र एक विशेष प्रदर्शन के लिए

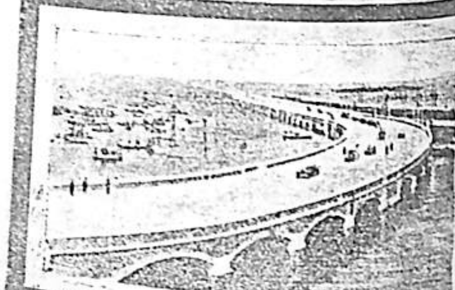
पेरिस भेज दिये गये थे अतएव उन्हें हम नहीं देख सके।

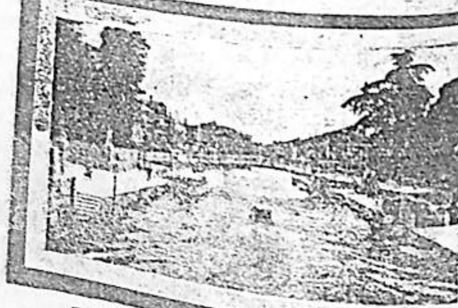
इस चित्रशाला में इटालियन तक्षण-कला का एक खास विभाग है। महान् मूर्तिकार माइकल एंजिलो और ल्योनार्डो की सांस्कृतिक कला के बहुत ही सुन्दर नमूने यहाँ मौजूद हैं। यह संग्रहालय इतना बड़ा है कि इसमें प्रत्येक काल और प्रत्येक शैली के उन कलाविदों की कृतियों के यथेष्ट नमूने भरे पड़े हैं जिनका नाम इटली में ही नहीं, तमाम योरप में घर-घर लिया जाता है।

दूसरे दिन हम मोटर-कोच से पिसा का झुका हुआ मीनार देखने गये। हमारी पार्टी में दस व्यक्ति थे और हममें से कोई भी उस आश्चर्य-जनक और रहस्य-पूर्ण मीनार को देखने से वञ्चित नहीं रहना चाहता था, क्योंकि वह संसार के सात आश्चर्यों में से एक है। निस्सन्देह यह एक महत्त्वपूर्ण इमारत है और गणित के विद्यार्थियों के लिए अध्ययन की एक मनोरञ्जक वस्तु है। इटली के गाँवों से होकर जाने से हमारी यह यात्रा बड़ी मनोरम रही। सामने कर्रारा पहाड़ी की चोटी दिखाई पड़ रही थी, जहाँ से कर्रारा का संगमरमर समस्त संसार में भेजा जाता है।

दूसरे दिन हमने फ्लोरेंस छोड़ दिया। हमारा लक्ष्य मिलन से होकर वेनिस जाना था। मिस्टर अब्दुल्ला हमारे साथ नहीं जा सके। वे हमें वहीं छोड़कर लंदन के लिए रवाना हो गये। मिलन में हम एक दिन रहे और बहुत देख नहीं सके, क्योंकि यह व्यापारिक नगर है और गिर्जाघर के सिवा यात्रियों के दिलचस्पी की कोई वस्तु यहाँ नहीं है। मिलन का गिर्जाघर अपनी आन्तरिक सजावट और मोसाइक चित्रकारी के लिए संसार भर में प्रसिद्ध है। मिलन का स्टेशन कदाचित् योरप में सबसे अच्छा है। सम्पूर्ण गिर्जाघर कर्रारा के संगमरमर का बना है और इसमें बहुत-से कारिंथियन बनावट के ऊँचे-ऊँचे स्तम्भ लगे हुए हैं। इसे बने अभी कुछ ही वर्ष हुए हैं।







[डोज का महल, लैगून के पार नया पुल, वेनिस की एक नहर।]

मिलन इटली का व्यापारिक नगर है और इटली की बहुत-सी मुख्य मुख्य व्यावसायिक संस्थायें इस नगर के बाह्य भाग में स्थित हैं। मुख्य बाज़ार बहुत सुन्दर और कलापूर्ण ढङ्ग से बसाया गया है।



[आस्ट्रिया की कृषक युवतियाँ अपनी देशी पोशाक में।]

इसके बाद हमने वेनिस की यात्रा की। मार्ग लम्बा और थकानेवाला था। मार्ग में हमें बहुत-सी झीलें मिलीं, जिनके किनारे पर सुन्दर बँगले बने हुए हैं। स्वास्थ्य-लाभ की दृष्टि से यह स्थान बहुत प्रसिद्ध है। शनिवार का दिन था, इसलिए बहुत-से लोग अपने 'वीक-एन्ड' की छुट्टी मनाने निकल पड़े थे। गाड़ी भरी थी और हर स्टेशन पर और भी भरती जा रही थी। इस छुट्टी का योरोपीयों के जीवन में एक विशेष स्थान है। चाहे कारख़ाने हों, चाहे स्कूल या दफ़्तर दोनों सरकारी और व्यावसायिक सब शनिवार को एक बजे बन्द हो जाते हैं। तब शहरों के रहनेवाले लगभग ८० प्रतिशत लोग यदि वे बीमार या दो वर्ष से कम आयु के बच्चे नहीं हैं, बाग़ों में या स्नान की जगहों में ग्रीष्म-काल की चमकीली धूप का आनन्द लेने को झुंड के झुंड निकल जाते हैं। स्थल की ओर से जाने में वेनिस का बाह्य भाग ज़रा मनहूस-सा दिखाई पड़ता है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि एड्रियाटिक सागर में यह मुख्य बन्दरों में से एक है। वेनिस हम लगभग ३ बजे दिन को पहुँचे और पहुँचते ही हमारे सामने होटल के एजंटों का एक झुंड आया। परन्तु कोई गड़बड़ नहीं हुआ। वे दो क़तारों में खड़े हो गये थे और उस अवस्था में आप अपने मन का होटल बख़ूबी पसन्द कर सकते हैं। हम स्टेशन के क़रीब ही एक होटल में ठहराये गये, और यात्रियों के लिए यही सुविधाजनक भी होता है। इससे टैक्सी और कुलियों के भारी ख़र्च में किफ़ायत भी होती है। होटल बहुत अच्छा नहीं था, परन्तु कम हवादार कमरे के कारण जो असुविधायें हुई थीं उनकी बहुत कुछ



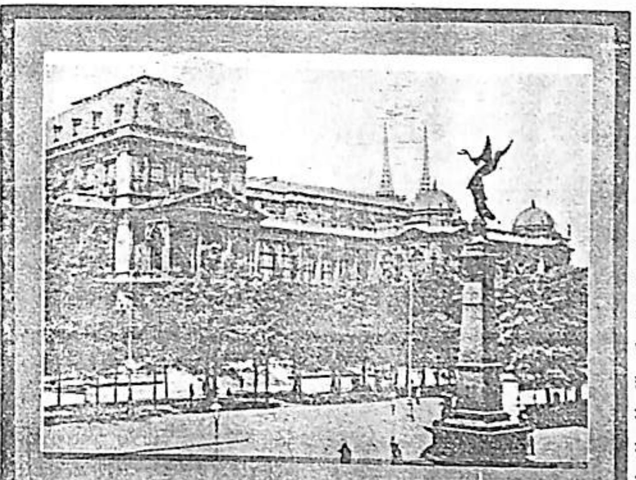
[बुडापेस्ट के निकट किसान खेत में काम कर रहे हैं।]

पूर्ति यहाँ अच्छे भोजन से हो गई। हमें यहाँ थोड़े ही समय तक ठहरना था, इसलिए हमने स्थान बदलने की बहुत पर्वा न की। यहाँ का व्यय भोजन के सहित लगभग ८ रुपया प्रतिदिन था। यह व्यय औसत दर्जे का समझा जाता है।

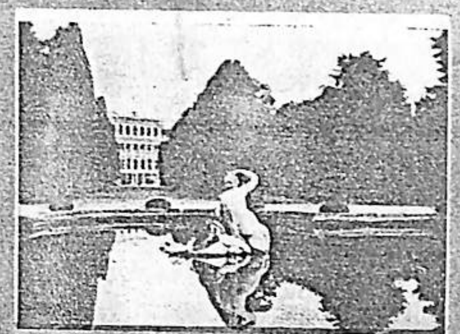
लायड ट्रिस्टिनो लाइन जिसके जहाज़ वेनिस से बम्बई तक आते-जाते हैं, यहाँ बहुत लोक-प्रिय है, क्योंकि हमारे बहुत-से भारतीय यात्री सीधे यहाँ उतरते हैं। लंदन को रवाना होने से पूर्व वे प्रायः यहाँ एक रात व्यतीत करते हैं। इस तरह वेनिस में आपको वर्ष में किसी भी समय अपने देशवासियों के दर्शन हो सकते हैं। हमें बहुत-से मित्रों से मिलने का यहाँ अवसर प्राप्त हुआ, जो वायना को विशेष चिकित्सा के लिए जा रहे थे।

वेनिस कच्छ-प्रदेश में स्थित है, इसलिए सारा शहर नहरों से घिरा हुआ है। किसी भी इमारत में जाइए, आपको नहरों से होकर ही जाना होगा। हमारा होटल 'ग्रेंड कैनल' के किनारे पर था। यह शहर की मुख्य नहर है। नहरों के बीच में द्वीप की भाँति खड़ी हुई इमारतों को देखना हमारे लिए एक अभूतपूर्व दृश्य था। यात्रियों को यह दृश्य बहुत ही सुहावना मालूम पड़ता है।

तीसरे पहर हमने एक 'गोंडोला' किराये पर लिया और नहर में लगभग ११ मील के भ्रमण का अत्यन्त आनन्द उठाया। निशा का दृश्य वास्तव में विराट् था। दोनों किनारों पर बिजली की हज़ारों बत्तियाँ जगमगा रही थीं और रात को दिन बना रही थीं। नवयुवक







(१) वायना का विश्वविद्यालय (२) आस्ट्रिया के भूतपूर्व शाह का ग्रीष्म-निवास (३) ग्रीष्म-निवास बाग़ का एक दृश्य

प्रेमी, खिलाड़ी, सुन्दरी, युवतियाँ सब सैर करने को निकले थे। सुरीली आवाज़ में गाती हुई सुन्दर स्त्रियों और अच्छी पोशाक पहने हुए दर्शनीय पुरुषों से वह स्थान अत्यन्त रमणीक हो उठा था।

इसी समय हमारी नौका एक तंग नहर से गुज़री। यह ग्रैंड कैनाल की एक शाखा थी। यहाँ पानी से दुर्गन्धि आ रही थी, और यह हमें बहुत असुखकर प्रतीत हुआ। इस नहर के मार्ग से हम 'आह के पुल' के पास पहुँचे, जिसके पार से उत्पीडन के दिनों में अभागे क़ैदी न्यायालय से क़त्ल-गाह को ले जाये जाते थे। लार्ड बायरन ने अपनी एक अमर रचना के लिए यहाँ एक रात व्यतीत करके अनुप्राणिता प्राप्त की थी। सवेरे हम इस स्थान पर पहुँचे और उन गुफाओं को देखा जिनमें बीते युग में दण्डित मनुष्य रक्खे जाते थे। नदी में एक घण्टा भ्रमण करने के बाद हम अपने होटल को लौट आये और खाना खाया। भोजन बढ़िया था और हमें बहुत-सी अच्छी निरामिष वस्तुएँ खाने को मिलीं। वेनिस के ये होटल भारतीय यात्रियों का सत्कार करना जानते हैं, क्योंकि ये हमारी रुचि से अधिक अच्छी तरह परिचित हैं।

दूसरे दिन सवेरे जलपान के बाद हम १४ वीं शताब्दी के एक भव्य महल में ले जाये गये। यह महल ग्रैंड कैनाल पर स्थित है, और इसमें डोज लोग रहा करते थे। ये पहले वेनिस के शासक थे और अपने अपार धन और शौर्य्य के लिए सारे देश में विख्यात थे। यह लगभग २५० कमरों की एक विशाल इमारत है। इसमें इटली के बहुत-से प्रसिद्ध चित्र अङ्कित हैं और छत की मोसाइक शैली की कारीगरी प्रशंसनीय है।

सेंट मार्कोस का गिर्जा और 'बेलटावर' वेनिस के एक फ़ैशनेबुल मुहल्ले में स्थित हैं। नगर की बड़ी बड़ी दूकानें भी यहीं हैं। हमने वेनिस की कौतूहलवर्धक वस्तुएँ ख़रीदीं और तब गिर्जा देखने गये। यह गिर्जा बहुत पुराना था, पर इसमें वह भव्य सजावट न थी जो रोम के गिर्जों में आम तौर पर देखने को मिलती है। किसी समय वेनिस तुर्कों के हाथ में था। कुछ प्राचीन तुर्की परिवार अब भी यहाँ रहते हैं।

वेनिस में कोई पुरातत्त्व-सम्बन्धी वस्तुएँ नहीं मिली हैं और यह नगर बहुत स्वच्छ भी नहीं है। इस शहर में नाविकों की भरमार रहती है, जो यहाँ प्रत्येक बार छुट्टी पाने पर दो-चार दिन ठहरते हैं। वेनिस का काँच का व्यवसाय बहुत विख्यात है। यहाँ की काँच की वस्तुओं की ११वीं शताब्दी से बड़ी माँग चली आ रही है और अब भी उम्दा कारीगरी की काँच की वस्तुओं के लिए यह नगर अपना निराला स्थान रखता है। नगर के प्रमुख काँच के व्यापारी से हम लोग मिले। उन्होंने हमें बड़े प्रेम से अपना कारख़ाना दिखलाया और काँच की बहुमूल्य वस्तुओं के निर्माण के विभिन्न प्रयोग बतलाये। चटर्जी साहब ने मेज़ की सजावट की काँच की चीज़ों के कुछ सेट माँगे। हमने 'आडर-बुक' भी देखा जिसमें बहुत-से भारतीय नरेशों के बहुमूल्य मोसाइक और काँच की वस्तुओं के आर्डर दर्ज थे। प्रत्येक यात्री जो इस नगर में उतरता है, इस आश्चर्यजनक संस्था में ले जाया जाता है। यहाँ मोसाइक कारीगरी की वस्तुओं में नवयुवतियाँ जिस चपल गति से पत्थर जड़ रही थीं उसे देखकर हम दंग रह गये। यह कारीगरी वास्तव में बड़े ऊँचे दर्जे की है, पर साथ ही ख़र्चीली भी है। वेनिस में अपने ठहरने के दूसरे दिन सन्ध्या को हम एक स्थानीय संगीतभवन देखने गये। हम वहाँ एक घंटे से अधिक न ठहर सके, क्योंकि वहाँ जो नृत्य हो रहे थे वे हमें पसन्द नहीं आये। इनमें कला के बजाय कामुकता का ही अधिक प्रदर्शन था और दर्शक भी शिष्ट-वर्ग के नहीं थे।

पूर्णरूप से देखने से वेनिस हमें वैसा पसन्द नहीं आया जैसा कि उसका वर्णन किया जाता है। हाँ, नहर का भ्रमण निःसन्देह बहुत आनन्द-प्रद है।

दूसरे दिन दो बजे हम आस्ट्रिया की राजधानी वायना के लिए गाड़ी पर सवार हुए। यह यात्रा ज़रा लम्बी थी और चूँकि हम कुछ अनुभव प्राप्त करना चाहते थे इसलिए हम सबने तीसरे दर्जे का टिकट ख़रीदा। केवल चटर्जी साहब हमारा साथ न दे सके, क्योंकि उनके पास इटालियन रेलवे का पास था। तीन विभिन्न स्थानों में हमें गाड़ी बदलनी पड़ी और इटली की सीमा पर चुङ्गीवालों ने बड़ी कड़ाई के साथ हमारे असबाब की जाँच की। उसके बाद हम वायना जानेवाली गाड़ी पर सवार हुए और आस्ट्रियन 'टिरोल' से होकर गुज़रे। यह टिरोल यात्रियों के समक्ष एक भव्य दृश्य उपस्थित करता है। प्रत्येक वर्ष हज़ारों यात्री यहाँ छुट्टी बिताने आते हैं। यहाँ बहुत-सी स्वास्थ्यप्रद जगहें हैं, जहाँ लोग स्वास्थ्य-लाभ करने पहुँचते हैं। यहाँ बहुत-से प्राकृतिक सोते हैं, जो अपने रोग-नाशक गुणों के लिए विख्यात हैं।

दूसरे दिन क़रीब २ बजे हम वायना पहुँचे और पूर्व-व्यवस्था के अनुसार एक नवयुवक विद्यार्थी हमसे मिलने आया। श्रीचटर्जी साहब का इस विद्यार्थी से परिचय था। नगर के मध्य में हम एक दूसरे दर्जे के होटल में ठहराये गये। चटर्जी साहब को वायना में एक महीना ठहरना था, इसलिए वे दूसरे दिन एक किराये के मकान में चले गये। अब मैं और मेरे मित्र श्रीयुत लाल अकेले रह गये। वायना में हम सात दिन ठहरे।

किसी समय वायना योरप में 'नगरों की रानी' कहलाता था और सभ्यता और ऐश्वर्य का केन्द्र था। इस समय इसकी जन-संख्या २० लाख है और इसमें बहुत-से सुन्दर बाग़, संग्रहालय और महल हैं। इसका नक़शा रोम से अधिक सुंदर है। सड़कें अत्यन्त स्वच्छ और चौड़ी हैं। यहाँ की नाटकशालायें सारे योरप में विख्यात हैं। एक दिन हम नाटक देखने गये और यद्यपि हम भाषा नहीं समझ सके, तथापि यहाँ का कलापूर्ण नाट्य हमें पसन्द आया। रङ्गमंच अब सर्वथा आधुनिक रूप में है और विशाल यन्त्रों से युक्त है। नाटकशाला की इमारत का क्या कहना! इसके निर्माण में अपार धन लगा होगा। यह इतनी सुन्दर है जितना महल। यह पत्थरों की बनी है और बहुत सुन्दर नक़्क़ाशी और मूर्तियों से सुशोभित है।

वायना चिकित्सा-पद्धति का एक प्रसिद्ध केन्द्र है। प्रतिवर्ष यहाँ सहस्रों विद्यार्थी आधुनिक शल्य-विद्या तथा अन्य चिकित्सा-प्रणालियों में योग्यता प्राप्त करने आते हैं। यद्यपि इसका राजकीय ठाट-बाट तो अब कुछ बाक़ी नहीं रहा, तथापि कला और शिक्षण के लिए इसका स्थान अब भी वैसा ही गौरव-पूर्ण है।

आस्ट्रिया की आर्थिक स्थिति निश्चय ही बुरी है। आस्ट्रिया-हङ्गरी का व्यवसाय-प्रधान भाग अब ज़ेकोस्लोवाकी के अन्तर्गत है और वर्तमान आस्ट्रिया केवल कृषि-प्रदेश ही रह गया है। इस राज्य की जन-संख्या ६० लाख से ऊपर है जो सब जर्मन हैं। राजनैतिक कठिनाइयों के कारण यहाँ के जर्मन जर्मनी से नहीं मिल सकते। वायना का शाही महल अब एक संग्रहालय में परिणत है। हमारे गाइड ने जो एक चतुर व्यक्ति था, हमें महल घुमाकर दिखाया और विस्तार के साथ हमें प्रदर्शन के लिए रक्खी गई ऐतिहासिक वस्तुओं का महत्त्व बतलाया। इसी महल में समस्त शाही ख़ज़ाना भी रक्खा है। महारानी मेरिया थेरेसा जो किसी समय आधे योरप पर शासन करती थीं, यहीं रहती थीं। बड़ी बड़ी गैलरियों में बहुत-से सुन्दर चित्र और शाही जिरहबख़्तर रक्खे हैं।

भूतपूर्व बादशाह का ग्रीष्म-निवास जो 'स्कोन-ब्रौन' के नाम से विख्यात है, एक अत्यन्त सुन्दर आरामगृह है। यह बाग़ योरप के श्रेष्ठ बाग़ों में से एक है और अब भी राष्ट्र की ओर से इसकी व्यवस्था का समुचित प्रबन्ध है। महल के भीतरी भाग के भी संरक्षण का वैसा ही प्रबन्ध है। यात्रियों

को यहाँ वह महान् ठाट-वाट देखने को मिलता है जिनके बीच में यहाँ के प्राचीन सम्राट् रहा करते थे।

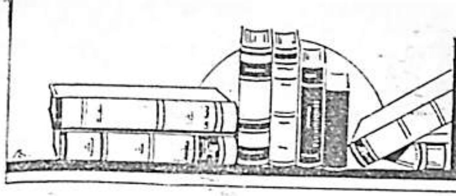
हङ्गरी की राजधानी बुडापेस्ट वायना से बहुत दूर नहीं है, इसलिए हम वहाँ भी गये। हमारे मित्र श्रीयुत रामेश्वरदयाल वहीं ठहरे थे। हम वहाँ शाम को पहुँचे और स्टेशन के निकट एक होटल में ठहरे। मिस्टर दयाल ने अपना पता हमें दिया था, इसलिए हमने होटल के दरबान की सहायता से उन्हें खोज लिया।

बुडापेस्ट में हम जितने समय तक रहे, श्रीयुत दयाल जी ने अपना सारा समय हमारे मनोरञ्जन में लगाया। यह शहर डैन्यूब नदी के तट पर है। नदी के दोनों किनारों पर बहुत-से विशाल होटल और बहुसंख्यक उपहार-गृह धूमधाम से चल रहे हैं। राजनैतिक दृष्टि से हङ्गरी बहुत निर्बल है और कुछ कृषि-सम्बन्धी यन्त्र बनानेवाली दूकानों के अतिरिक्त यहाँ कोई और व्यवसाय नहीं है। अब यह मुख्यतः कृषि-प्रधान देश है और गेहूँ, जौ और मक्का की पैदावार होती है। यह पैदावार अधिकांश में इटली को भेजी जाती है।

प्रयत्न

लेखक, श्रीयुत उदयशंकर भट्ट

सुखद घन की बूँद में उन्मुक्त था उल्लास मेरा।
पूर्ण शशि की किरण में था छिटकता मृदु हास मेरा॥
कुसुम के परिहास में थी खिल रही अभिलाष बाँकी,
भर रहे निर्भर झरों की 'फुहर' में उठ साँस झाँकी।
हाय, मन्दाकिनी-सा मैं वह रहा हूँ आज नीचे,
भव-उदधि में मधुरिमा खारी बनी है आँख मीचे॥
काल की चंचल परिधि से दूर था सुख-राग मेरा।
आज जीवन मृत्यु की अशिथिल कड़ी में भाग मेरा॥
विश्व था उलझी कहानी-सा न उसका छोर पाया,
राग था जिसमें न लय थी, स्वर न था, रव घोर छाया।
आज मैं भी हूँ पहेली है न जिसका आदि कोई,
प्रात आकर रात को जाना इसी में शक्ति सोई॥
कौन आकर बाँध चित्रित कर रहा निश्वास मेरा,
सुखद घन की बूँद में उन्मुक्त था उल्लास मेरा।
काल की कड़ियाँ हमारे हृदय पर नित तान देतीं
छेद शतशत युत असित पट रात आ परिधान देती।
सुबह केवल प्रेम स्वर भर नित जगाता और रोता,
'दिन यहाँ किसके सुखी हैं' स्वयं रविजल शीत होता।
शिथिल हो बन्धन कहीं हो दूर तारों में बसेरा।
सुखद घन की बूँद-सम फिर मुक्त हो उल्लास मेरा॥
कमल जल की सतह से उठ चाहता आकाश छूना,
किन्तु हिम का वज्र गिर करता हृदय उल्लास सूना।
भेजता हूँ खबर लेने नित्य अपनी 'आह' ऊपर,
लौट आती है समा जाती मुझी को चाह भू पर॥
फिर उड़े यदि कल्पना के पंख पर संसार मेरा।
सुखद घन की बूँद-सा उन्मुक्त हो व्यापार मेरा॥



नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१—रेणुका (कविता)—लेखक, श्रीयुत दिनकर, प्रकाशक, पुस्तक-भण्डार, लहेरियासराय, पटना हैं और मूल्य २॥) है।

२—निःश्वास—(कविता)—लेखिका, श्रीमती रामकुमारी चौहान, प्रकाशक, तरुण-भारत-ग्रन्थावली कार्यालय दारागंज, प्रयाग हैं। मूल्य ॥=) है।

३—महात्माजी का महाव्रत—लेखक, श्रीयुत ब्योहार राजेन्द्रसिंह, प्रकाशक, महाकोशल-हरिजन-सेवक-संघ, जबलपुर हैं। मूल्य ॥=) है।

४—काल्पी (नाटिका)—लेखक और प्रकाशक, श्रीयुत भगवतीप्रसाद 'पान्थरी', टेहरी, गढ़वाल हैं। मूल्य ॥=) है।

५—हिन्दी में अर्थशास्त्र और राजनीति-साहित्य—लेखक, श्री दयाशंकर दुबे और श्री भगवानदास केला, प्रकाशक, व्यवस्थापक, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन हैं। मूल्य ॥।) है।

६—फूलों की माला—लेखक, रायबहादुर सर पुरोहित गोपीनाथ, एम्० ए०-सी० आई० ई०, प्रकाशक, श्रीराजस्थान पुस्तक-मन्दिर, जयपुर हैं। मूल्य ॥।) है।

७—अम्बा (नाटक)—लेखक, श्रीयुत उदयशंकर भट्ट, प्रकाशक, मोतीलाल बनारसीदास, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर हैं। मूल्य ॥=) है।

८—सुभाषित-पद्य-रत्नाकर (गुजराती)—लेखक, श्रीयुत मुनिराज विशाल विजयजी, प्रकाशक, विजयधर्म-सूरि-जैन-ग्रन्थमाला, छोटा सराफ़ा, उज्जैन हैं। मूल्य १।) है।

९—श्री भारतधर्म अने अंधारा रंगमहेलनी राजा (गुजराती)—अनुवादक, नरसिंह भाई, ईश्वर भाई पटेल, प्रकाशक, सस्तुम् साहित्यवर्द्धक कार्यालय, अहमदाबाद, मूल्य १॥) है।

१०—श्री वैष्णव जन (गुजराती)—लेखक, श्रीयुत मथुरादास जी महाराज, प्रकाशक, अवधकिशोरदास श्री वैष्णव, अयोध्या हैं। मूल्य ।) है।

११—नव शक्ति-सुधा—सम्पादक, श्रीयुत देवव्रत, प्रकाशक, नवशक्ति-प्रकाशन-मन्दिर, पटना, हैं। मूल्य ।) है।

१२—जीवनामृतम्—लेखक, श्रीयुत मुनिराज न्यायविजय जी, प्रकाशक, श्रीमती लीलावती देवीदास, वालकेश्वर रोड, विजयमहल, नं० १२ फ़र्स्टफ़्लोर, बम्बई हैं। मूल्य =) है।

१३—अन्तर्नाद—लेखक व प्रकाशक, श्री जगदीशनारायण तिवारी, राधिका-पुस्तकालय, हिमन्तपुर, सुरेमनपुर, बलिया हैं। मूल्य ॥) है।

१४—लता (सामाजिक नाटक)—लेखक, श्रीयुत रामचन्द्र सक्सेना, बी० ए०, प्रकाशक, बाबू रामदयालसिंह, सुकविकार्यालय, फ़ीलखाना, कानपुर और मूल्य ॥) है।

१५—दक्षिण-भारत की यात्रा (यात्रा-सम्बन्धी)—लेखक, श्रीयुत सत्येन्द्रनारायण, प्रकाशक, श्रीनाथ साह, शर्माराम, दुर्गाकुण्ड, काशी हैं। मूल्य ।–) है।

१६—उच्छ्वास (कविता)—श्रीयुत कालीप्रसाद 'विरही', प्रकाशक, 'हृदय-हिलोर'-पुस्तक-माला, चाचोड़ा, ग्वालियर हैं। मूल्य ।) है।

१७—निबन्ध-माला (भाग दूसरा)—सम्पादक, श्रीयुत सूर्यकुमार वर्मा, प्रकाशक, आलीजाह-दरबार प्रेस, ग्वालियर हैं।

१८-१९—राजपूत-मराठा संघ, ग्वालियर की २ पुस्तकें हैं।

(१) राजपूत-मराठा एक हैं। (दूसरा भाग)

(२) राजपूत-मराठा एक हैं। (कुछ प्रमाण)

२०—देवी जी का वरदान—लेखक, श्रीयुत शक्तीश, प्रकाशक, ज्ञान-धर्म-प्रचार-ग्रन्थमाला, दारागंज, प्रयाग हैं।

२१—संघ-व्यायाम और वोधक पत्र—लेखक, श्रीयुत राजरत्न प्रोफ़ेसर माणिकराव, विठ्ठल-क्रीड़ा भवन, बड़ोदा हैं। मूल्य ।) है।

२२—राज्यारोहण-गौरव-ग्रन्थ – सम्पादक, श्रीयुत सूर्यकुमार वर्मा, श्री नारायणदेव केशव सोरटी, प्रकाशक, राज्यारोहण-गौरव-क़मेटी, देवास (जूनियर)

२३—गोहर वेवहा—संग्रह-कर्त्ता स्वर्गीय लाला दीवानचन्द जैन, श्रीजैनसुमतिमित्रमण्डल, रावलपिण्डी हैं।

१—कृष्ण-चन्द्रिका—सम्पादक, श्रीयुत उदयशङ्कर भट्ट, प्रकाशक, श्री मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, हिन्दी-संस्कृत पुस्तक-विक्रेता, सैदमिठ्ठा बाज़ार, लाहौर हैं। सजिल्द प्रति का मूल्य २॥) है।

कृष्ण-चन्द्रिका ब्रज-भाषा का एक पुराना महाकाव्य है। इसके रचयिता ब्रज-भाषा के कवि गुमानी मिश्र हैं। ये बुन्देलखण्ड-वासी थे। संवत् १८८३ में यह ग्रन्थ लिखा गया था। आज लगभग एक सौ दस वर्षों के पश्चात् यह पहले-पहल और सो भी अति सुन्दर ढंग से प्रकाशित हुआ है। इसके सम्पादन तथा प्रकाश में लाने का समस्त श्रेय हिन्दी के प्रसिद्ध कवि पण्डित उदयशंकर जी भट्ट को है।

केशव की रामचन्द्रिका ब्रज-भाषा का ख्याति-प्राप्त एक महाकाव्य है। जिस प्रकार उसमें विभिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है, उसी प्रकार इस 'कृष्णचन्द्रिका' में भी ब्रज-भाषा में प्रचलित अधिकांश छन्दों का प्रयोग हुआ है। श्री गुमानी मिश्र छन्द तथा अलङ्कारशास्त्र के प्रकांड पण्डित थे, यह बात ग्रन्थ के पढ़ते ही स्वीकार कर लेनी पड़ती है। इस ग्रन्थ के विद्वान् सम्पादक ने पाद-टिप्पणियों में छन्द के लक्षण आदि देकर विषय को स्पष्ट और उपयोगी बना दिया है।

इस ग्रन्थ की रचना का आधार श्रीमद्भागवत का 'कृष्णचरित' है। इस ग्रन्थ की कविता सरल, प्रसाद-गुण-समन्वित तथा मर्मस्पर्शिनी है। ब्रज-भाषा की कविता होते हुए भी इसमें कहीं भी अश्लील शृंगार नहीं आने पाया है। देव-चरित के चित्रण में लेखक ने जिस सात्त्विक मनोवृत्ति का आश्रय लिया है वह पद-पद पर परिलक्षित होता है। कविता इतनी मनोरम है कि उसे पढ़ते पढ़ते चित्त आनन्द से भर जाता है। यह ग्रन्थ केवल हिन्दी के उच्च शिक्षा के विद्यार्थियों के उपयोग के लिए ही नहीं होगा, वरन् श्रीकृष्ण-भक्तों के लिए स्वाध्याय का भी काम देगा।

पंडित उदयशंकर जी भट्ट ने ब्रज-भाषा-साहित्य के इस छिपे हुए रत्न को प्रकाश में लाकर उसकी जो गौरव-वृद्धि की है उसके लिए हिन्दी-प्रेमी उनके चिरकाल के लिए ऋणी रहेंगे।

२—राजस्थान का दूहा—संग्रहकार और सम्पादक, श्रीयुत नरोत्तमदास स्वामी, एम० ए०, विशारद, प्रकाशक, नवयुग-साहित्य-मन्दिर, पोस्ट बॉक्स नं० ७८, देहली है। मूल्य सजिल्द प्रति का २) है।

'दूहा' राजस्थानी साहित्य का एक छन्द है। जिस प्रकार हिन्दी में दोहा है उसी प्रकार दूहा छन्द इस साहित्य में बहुत अधिक प्रचलित है। इस छन्द में नैतिक, सामाजिक, धार्मिक, उपदेश-जनित कवितायें लिखी गई हैं। परन्तु राजस्थानी साहित्य का अटूट भाण्डार अभी तक अप्रकाशित पड़ा है। प्रसन्नता की बात है कि श्रीयुत नरोत्तमदास जी स्वामी ने राजस्थानी साहित्य के दूहों का संग्रह किया है। उन्होंने जो दूहे संग्रह किये हैं उनमें से लगभग सवा बारह सौ इस संग्रह में प्रकाशित किये हैं। संग्रह सिलसिलेवार और अध्यवसाय के साथ किया गया है। छपने के पहले महामहोपाध्याय रायबहादुर पंडित गौरीशङ्कर जी ओझा ने देख लिया है, अतएव इसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में किंचित् भी सन्देह नहीं रह जाता है।

समग्र राजस्थान वीरों की जन्म-भूमि है। एक माता पलने में पड़े हुए अपने अबोध शिशु को झुलाती हुई लोरी गाती है—

इला न देणी आपणी, रण-खेता भिड़ जाय।
पूत सिखावे पालणें, मरण बड़ाई माय॥

"हे पुत्र! मर जाना, प्राण दे देना, पर अपनी भूमि को दूसरों के हाथ न जाने देना।" एक वीर पत्नी युद्ध में जाते हुए अपने पति से कहती है—

कंथ लखीजै उभय कुल, नाँह धिरंती छाँह!
मुड़ियाँ मिलसी गींदवो, मिलै न धरणी बाँह॥

"हे पति, अपने और मेरे, दोनों, कुलों की ओर देखना, सांसारिक सुख तो छाया के समान आता-जाता रहता है। उसके लिए युद्ध से विमुख होकर दोनों कुलों को कलंकित न करना। यदि ऐसा किया तो तुम्हारी इच्छा भी पूर्ण होने की नहीं। लौटने पर अपना सिर तकिये पर रखकर ही सोना, तुम्हारी प्रियतमा की बाँह सिर रखने के लिए नहीं मिलेगी, यह निश्चय समझ रखना।"

बचपन के साथियों के लिए एक कवि की वेदना को देखिए—

आसी सावण मास बरखा रुत आसीवले।
साईनारो साथ बले न आसी बींझरा॥

"यह सावन का महीना फिर लौट आयगा, वर्षा भी फिर आ जायगी, पर जिन साथियों के संग बचपन में खेले हैं, उनका संग जीवन में फिर नहीं मिलेगा।"

प्रियतम युद्ध से विजय प्राप्त कर, लौटकर द्वार पर आ गये हैं। उनका सत्कार कैसे हो? उन्हें क्या भेंट दी जाय? पत्नी गजमोतियों के थाल में अपनी आँखें निकाल कर सजाकर ले आई है।

सायब आया, हे सखी, काँईं भेंट कराँह?
गजमोतियन को थाल ले, ऊपर नैण धराँह॥

प्रस्तुत संग्रह में संगृहीत इस प्रकार की राजस्थानी सामाजिक जीवन की कहानियों को पढ़कर समग्र राजस्थान का चित्र आँखों के सामने खिंच जाता है। राजस्थान का इतिहास तथा प्राचीन आचार-विचार-जनित जीवन प्रत्येक भारतवासी के गौरव तथा अभिमान की चीज़ है। प्रत्येक व्यक्ति को इस संग्रह को एक बार अवश्य पढ़कर संग्रहकार के दीर्घकालीन परिश्रम को अवश्य ही सार्थक करना चाहिए।

३—प्रदीप—लेखक, श्रीयुत वाचस्पति पाठक, प्रकाशक, भारती-भण्डार, काशी, विक्रेता, लीडर प्रेस, इलाहाबाद तथा मूल्य १) है।

पाठक जी ने अपनी कहानियों का यह दूसरा संग्रह प्रकाशित किया। 'द्वादशी' नाम से उनका एक संग्रह निकल चुका है। अपने पहले संग्रह-द्वारा यदि उन्होंने एक कुशल कहानी लेखक होने का दावा किया था तो इस संग्रह से उन्हें उसकी डिगरी मिल गई है।

इस संग्रह में कुल आठ कहानियाँ संगृहीत की गई हैं। छोटी कहानियों में व्यक्ति के जीवन के एक अंश की झलक तथा उपन्यास में अनेक व्यक्तियों की मनोवृत्ति के अनुकूल-प्रतिकूल चरित्र का उत्थान-पतन दिखाया जाता है। इस संग्रह की 'काग़ज़ की टोपी' तथा 'मुन्नू' बाल-स्वभाव को चित्रित करती हैं। बाल-स्वभाव का चित्रण कठिन होते हुए भी लेखक ने सदभिरुचि से काम लिया है। 'सूरदास', 'यात्रा' तथा 'कल्पना' इस संग्रह की श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। सूरदास के लिए संसार में जो कुछ आँखों से देखा जा सकता है तथा निगूढ़ एवं अपरिज्ञानावस्था में पाप-पुण्य का जो देन-लेन चल रहा है उसका जान सकना सम्भव नहीं है। उसी का 'सूरदास' में बड़े ही स्वाभाविक ढङ्ग से चित्रण किया गया है। 'यात्रा' एक नारी के एक ऐसे अपरिसीम दुख की कहानी है जिसे पढ़कर आँसुओं को रोकना कठिन हो जाता है। नागरिक जीवन से दूर, पहाड़ी प्रान्त में, रहकर मनुष्य सुख और शान्ति की खोज करता है। पर जब वहाँ भी उसके लिए सुख और शान्ति नहीं है तब वह कहाँ मिलेगी, यही एक प्रश्न हृदय में बारबार उठने लगता है। 'कल्पना' कहानी में लेखक ने एक मेहतर दम्पति की दिनचर्या को लेकर एक सजीव चित्र सामने रख दिया है। जिन अभागे अछूतों के लिए वज्र-हृदय हिन्दू-समाज में किंचित् भी दया-मया नहीं है उनके भी हृदयों में यह कहानी अवश्य ही सहानुभूति का भाव उत्पन्न करेगी। मनुष्य के अन्तस्थल में सदाचार,

अनाचार तथा स्वार्थान्धता से जिस एक राक्षस को अपनी नारकीय लीला दिखाने का अवसर मिलता है उस राक्षस को—दानव से देव बनाने में, नर से नारायण बनाने की ओर जिस लेखक की कला सङ्केत करती है, वही लेखक श्रेष्ठ और वन्दनीय होता है। प्रसन्नता की बात है कि पाठक जी की कला में सर्वत्र उसी का आभास मिलता है। आशा है, भविष्य में वे अपनी कला में और भी अधिक सफलता प्राप्त करेंगे।

४—करुण-सतसई—रचयिता अध्यापक रामेश्वर 'करुण'; प्रकाशक, श्रीसहदेव जी 'भगवान', करुण-काव्य-कुटीर, कृष्ण-नगर, लाहौर; हैं। मूल्य २) है।

इस सतसई के रचयिता 'करुण' वस्तुतः हिन्दी-माता की गुदड़ी के लाल हैं। वे कहते हैं-"कवि न सही, लेखक, विचारक अथवा विद्वान् भी न सही, मैं एक भुक्त-भोगी तो हूँ, दरिद्रता देवी का दारुण दृश्य तो अपनी ही आँखों देखे बैठा हूँ, क्रूर, कुटिल और सत्यनाशक समाज का अनन्य आखेट तो हूँ, विषमता की विषमयी ज्वाला से जला हुआ एक मृतप्राय प्राणी तो हूँ! बस, इतने प्रमाण-पत्र बहुत हैं।" इस दारुण अवस्था में उनके निर्मल हृदय में जो चोट पहुँची होगी वह किसी सहृदय व्यक्ति से छिपी नहीं रह सकती। वस्तुतः इस सतसई का प्रत्येक दोहा उनके चोट खाये हुए हृदय की एक हूक है, जिसे उन्होंने अविकल रूप में अभिव्यक्त करने में सफलता पाई है। जान पड़ता है, लेखक को अपने विचारों को अभिव्यक्त करने में उनकी आदर्श पत्नी अध्यापिका श्रीमती प्रफुल्लबाला देवी ने अनन्य प्रोत्साहन दिया है। योग्य जीवन-सहचरी के योग्य साहचर्य्य को पाकर लेखक के हृदय का सकरुण बाँध मानो अनन्त धाराओं में फूट पड़ा है। इस रचना का प्रत्येक दोहा बड़ी ही सरल तथा सुबोध भाषा में लिखा गया है। लेखक थोड़े पढ़े-लिखे लोगों के मर्म तक अपने संदेश को बड़ी ही सुगमता से पहुँचा सके हैं। मेरा विश्वास है, भारतवर्ष के नैतिक चरित्र को बलिष्ठ बनाने में यह रचना साधक होगी। तुलसी, रहीम तथा अन्य गण्यमान्य कवियों के उपदेशात्मक दोहों के समान, सर्वसाधारण में, किसी समय इनका भी प्रचार होगा तथा लेखक के दोहे सूक्तियों के रूप में भी प्रचलित होंगे, इसमें किंचित् भी अतिशयोक्ति नहीं। लेखक ने समय की पुकार को उच्च स्वर में साहस के साथ घोषित किया है, इसमें किसी को भी मत-भेद नहीं हो सकता।

कुछ उदाहरण लीजिए। जब दारुण विपन्नावस्था से लेखक का अन्तस्तल क्षत-विक्षत हो गया तब उन्होंने परमात्मा को भी एक उपालम्भ दे डाला—

सङ्कट क्यों न गरीब के, हरत गरीब निवाज।
बनि बैठे क्या व्यर्थ ही, सत्ताधर सिरताज?

× × × ×

देखत दारुन दीनता अकसन भये असेस!
ऐसे निठुर निसील कौं कौन कहै 'करुनेस'?

विधवाओं के आधिक्य का परिणाम क्या है—

जाति रसातल जाति क्यों मंगल-मूल पजारि?
'अमंगला' होती न तो, तरुन तपस्विनि नारि!!

× × × ×

कोटिन विधवा बाल को, आहन के अभिशाप।
लहत न छिनहू छेम हम, सहत सदा संताप॥

× × × ×

यौवन अरु सौन्दर्य कौ याँचक सकल जहान!
हिन्दू-विधवा-हेतु है क्यों ये व्याधि महान?

लेखक ने अपनी रचना को सात शतकों में विभाजित किया है। भिन्न-भिन्न विषयों पर उन्होंने अपने विचार व्यक्त किये हैं। इन उद्धृत कतिपय दोहों से उनके विचार और लेखन-प्रणाली का निदर्शन हो जाता है। कवियों के सूक्ति-जनित कौशल को नहीं, वरन उनकी अनुभूति तथा भाव-प्रकाशन की सरलता एवं सुगमता को परख की कसौटी बनाने से लेखक उत्तीर्ण होंगे। इस देश के विद्यार्थियों को प्रारम्भ से ही ऐसी रचनायें हाथ में देने से भारतीय समाज का भविष्य में यथेष्ट कल्याण हो सकता है।

—मंगलप्रसाद विश्वकर्मा

सामयिक साहित्य

अबीसीनिया के विरुद्ध प्रचार

मेजर इ० डब्ल्यू० पोलसन न्यूमैन एक प्रसिद्ध अँगरेज़ राजनीतिज्ञ हैं। इटली और अबीसीनिया का युद्ध आरम्भ होने से कुछ ही घंटे पहले आप अबीसीनिया की यात्रा समाप्त करके लंदन लौटे थे। अबीसीनिया के सम्राट्, मुसोलिनी और अँगरेज़ अधिकारियों से भी आप ने उस सम्बन्ध में बातें की थीं। आप इसी नतीजे पर पहुँचे हैं कि इटली को अबीसीनिया को जीत लेने देना चाहिए। क्यों? इसके उत्तर में आपने गत नवम्बर की 'नाइन्टीन्थ सेञ्चुरी' नामक पत्रिका में एक लम्बा लेख प्रकाशित कराया है। लेख का सारांश हम नीचे देते हैं—

मैंने एक महीना आदिस अबाबा में, कुछ दिन डीरेडाक और हरार में, दस दिन जिबूटी में, दो सप्ताह मिस्र में, दस दिन रोम में बिताये हैं और पेरिस होता हुआ इँगलैंड लौटा हूँ। मैंने इथोपिया के सम्राट् से दो बार बातें की हैं। फ्रेंच सोमालीलैंड के गवर्नर और जिबूटी में रहनेवाले फ्रांसीसी फ़ौजी अफ़सरों से विचार-विनिमय किया है। मिस्र के उच्च अधिकारियों से मैं मिला हूँ। रोम में सिगनोर मुसोलिनी ने मेरा स्वागत किया और उन्होंने मुझसे सिवा अबीसीनिया के किसी और विषय पर बात नहीं की। अँगरेज़ और फ्रेंच राजदूतों से भी मैंने बातें की हैं। लन्दन में पहुँचने के बाद ही मैंने अनुभव किया कि ब्रिटिश सरकार और ब्रिटेन-निवासी वास्तविकता की ओर ध्यान न देकर आदर्शवाद की लहर में बहे चले जा रहे हैं।

यद्यपि आदिस अबाबा में एक आधुनिक होटल, एक अप-टु-डेट सिनेमाघर और सुखप्रद मोटरगाड़ियाँ हैं, तथापि वहाँ के निवासी बिना खिड़की के अँधेरे झोपड़ों में रहते हैं। सड़कों पर मौसम के अनुसार धूल या कीचड़ फैला रहता है। सफ़ाई का कोई प्रबन्ध नहीं है। पानी कुओं से निकाला जाता है। अदालतें सड़क के किनारे लगती हैं और राह चलतों में से कोई पकड़कर जज बना दिया जाता है। क़ैदी बहुत-से एक ही ज़ंजीर में बाँध दिये जाते हैं और बुरी तरह पीटे जाते हैं। अस्पताल, स्कूल और ऐसी अन्य संस्थायें विदेशियों के हाथ में हैं। आवागमन का साधन एक-मात्र खच्चर है। हाँ, आदिस अबाबा से जिबूटी तक फ्रेंच रेलवे चलती है। उत्तर में जहाँ इस समय लड़ाई हो रही है, भारत की उत्तर-पश्चिम-सीमा की भाँति पहाड़ी मार्ग हैं। अडोवा, आक्सुम, मकाले और गोंडार आदि वहाँ की बड़ी बस्तियाँ हैं, जिन्होंने आधुनिक सभ्यता का नाम तक नहीं सुना। योरपीय दृष्टिकोण से देखा जाय तो वहाँ कोई सुसंगठित शासन नहीं है। सिर्फ़ राजधानी के आस-पास अराजकता कम है। हर गाँव में एक मुखिया होता है और ज़िले में हाकिम जो अपने अधीन निवासियों से बलपूर्वक मनमाना कर वसूल करते हैं। किसान ज़मीन के बदले सरकारी फ़ौज में बिना तनख़्वाह कुछ दिन काम करते हैं। धर्म ईसाई है, पर वह इतने नीचे दर्जे का है कि ग़ुलामी की भी स्वीकृति देता है। आबादी का पाँचवाँ भाग ग़ुलामी का जीवन व्यतीत करता है। सभी घरों में सारा काम ग़ुलाम ही करते हैं, और अबीसीनियन मोटा काम करना अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते हैं। गिर्जे के पादरी भी ग़ुलाम

रखते हैं। सरकारी नियंत्रण होने पर भी धड़ल्ले से ग़ुलाम पकड़े और बेचे जाते हैं। जवान ही नहीं, दूध पीते बच्चे तक माताओं से छीन लिये जाते हैं और उनका क़ाफ़िला का क़ाफ़िला बेचा जाता है। अबीसीनिया उपजाऊ देश है, पर वहाँ के निवासी कृषि की उन्नति करने में असमर्थ हैं -- और किसी योरपीय को वे यह कार्य्य करने देते नहीं। योरपीय की सहायता से वे कितनी उन्नति कर सकते हैं, इस प्रश्न पर वे विचार ही नहीं करते, न करना चाहते हैं। वे यह नहीं सोचते कि यदि वे योरप की बढ़ती हुई जन-संख्या के लिए अपना द्वार खोल देंगे तो उनकी कितनी उन्नति हो सकती है। इस समय उपनिवेश की खोज सबसे अधिक इटली को है, इसी लिए उनका यह अनिवार्य्य संघर्ष इटली से हुआ है।

मैंने लीबिया में इटालियनों का जो कुछ कार्य देखा है उससे मैं कह सकता हूँ कि वे अवसर पाने पर अबीसीनिया को स्वर्ग बना दे सकते हैं। कदाचित् ही कोई अनाज, तरकारी या फल हो जो अबीसीनिया में न पैदा किया जा सके। वहाँ की भूमि संसार में सर्वश्रेष्ठ है। अनुमान किया जाता है कि यदि इटली अबीसीनिया में आधुनिक ढंग से खेती का विधान करे तो वह अपनी ज़रूरत भर का ग़ल्ला तो पैदा ही कर सकता है; और दूसरे देशों को यहाँ तक कि हिन्दुस्तान को भी ग़ल्ला दे सकता है। इस तरह १० वर्ष में वहाँ दस लाख इटालियन आबाद हो सकते हैं। फिर अबीसीनिया की आबोहवा भी योरपीयों के रहने के लायक है। आदिस अबाबा के नये राजमहल में मुझसे बातें करते हुए सम्राट् ने कहा कि उन्हें योरपीय प्रभाव से चिढ़ नहीं है, पर वह सर्वथा आर्थिक होना चाहिए और राजनीति से उसका कोई सम्बन्ध न होना चाहिए। परन्तु इससे न तो इटालियनों को सन्तोष होगा और न अबीसीनियन सरदारों को। पहली बात तो यह है कि बिना संगठित सरकार के यह कार्य सम्भव नहीं है, दूसरी यह कि अबीसीनियनों के हृदय में गोरी जातियों से अत्यन्त घृणा है।

सम्राट् हेल सिलासी शिक्षित हैं और योरपीय विचार-धाराओं का उन्हें अच्छा ज्ञान है। परन्तु उनके मंत्री इतने अविश्वासी हैं कि उन्हें छोटी-से-छोटी बात की भी जानकारी रखनी पड़ती है। सम्राट् नये परिवर्तनों के इच्छुक हैं। पर वे कुछ कर नहीं सकते, क्योंकि उन्हें भय है कि तुरन्त बलवा मच जायगा।

अबीसीनिया में सभी हथियार रखते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि वे अपने पड़ोस के देशों में डाके डालते हैं और वहाँ की सरकार इस बात की उपेक्षा करती है। ये हमले कीनिया और सूडान की सीमाओं पर उसी तरह होते हैं, जिस तरह इरीट्रिया और इटालियन सुमालीलेंड की सीमाओं पर होते हैं। कई वर्षों से यह स्पष्ट सिद्ध हो रहा है कि सशस्त्र अबीसीनिया अपने पड़ोसी देशों के लिए एक भयानक ख़तरा है। इस स्थिति को इसी तरह रहने देना उचित नहीं है। लीग आफ़ नेशन्स का अबीसीनिया सदस्य है, यह माना, पर इसी लिए वह अफ़्रीका का 'प्लेग-स्पाट' नहीं बना रह सकता। उसके निवासी पिछड़े, गुंडे और घमंडी हैं। उनकी कुरीतियों के लिए उनका धर्म उन्हें आज्ञा देता है। चाहे जैसी संधियाँ हो चुकी हों, कोई सुधार तब तक सम्भव नहीं है जब तक युद्ध करके वह जीत न लिया जाय।

इटली के उपनिवेशों पर उनके हमले बराबर जारी रहते हैं। सन् १९३१ में १०,००० अबीसीनियनों ने इटली की ओगाडन-सीमा पर चढ़ाई की थी। गत वर्ष एक ऐसे ही हमले में वे ३,६५६ बैल, ५५४ बकरे, १७ ऊँट और ४ गदहे लूट ले गये। यदि केन्द्रीय सरकार ने इन हमलों को उत्साहित नहीं किया तो उसने इन्हें रोका भी नहीं। पिछले वर्षों से अबीसीनियावाले अस्त्र-शस्त्र से ख़ूब सुसज्जित हो रहे हैं। इटली ने हाल में वहाँ की सरकार को इसलिए शस्त्र दिये थे कि वह क़ानून की स्थापना करे। परन्तु वही शस्त्र आज इटली के ख़िलाफ़ काम में लाये जा रहे हैं। पर इटली के युद्ध शुरू करने का एक और भी कारण है। योरप में प्रायः सभी के पास उपनिवेश हैं। सिर्फ़ इटली के पास नहीं हैं। यदि इटली अबीसीनिया पर क़ब्ज़ा कर ले तो उससे दोनों का भला होगा।

यह दुःख की बात है कि ब्रिटिश गवर्नमेंट लीग आफ़ नेशन्स को इटली के विरुद्ध ऐसे आचरण करने के लिए

मजबूर कर रही है जिनमें योरप की ही शान्ति नहीं भङ्ग हो सकती, बल्कि अफ़्रीका की काली जातियों में योरपीय सभ्यता के विरुद्ध बग़ावत करने का भाव भी उदय हो सकता है। प्रतिबन्धों से क्या होगा? क्या मुसोलिनी पूर्वी अफ़्रीका से वापस चला आवेगा या अपने उपनिवेशों में इतनी कम सेना रक्खेगा कि अबीसीनियन पहुँचकर उसका क़त्ले आम कर दें? क्या मिस्टर ईडन यह समझते हैं कि अबीसीनिया को अस्त्र-शस्त्र देने का यह अर्थ होगा कि काली जातियाँ योरपीय सभ्यता से युद्ध करेंगी? क्या वे यह अनुभव करते हैं कि इटली की हार से काली जातियाँ मन-बढ़ हो जायँगी और ब्रिटिश साम्राज्य के लिए ख़तरा सिद्ध होंगी? प्रतिबन्धों का अन्तिम परिणाम युद्ध ही होगा। इस मामले में हमें फ़्रांस की सलाह से कार्य्य करना चाहिए, क्योंकि अपनी स्थिति के कारण वह वस्तुओं को अधिक निष्पक्ष दृष्टि से देख सकता है।

हिन्दी, उर्दू या हिन्दुस्तानी

इन प्रान्तों की भाषा का क्या नाम हो, हिन्दी, उर्दू या हिन्दुस्तानी और वह कैसी हो, इस सम्बन्ध में अलग-अलग लोग अलग-अलग सम्मतियाँ रखते हैं। इस जटिल प्रश्न को श्रीयुत सच्चिदानंद सिनहा ने भी 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' के गत सम्मेलन में सभापति के आसन से दिये गये अपने भाषण में सुलझाने का प्रयत्न किया है। आपका कहना है—

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उर्दू या हिन्दी दोनों ही के उदीयमान लेखक को पहले बड़े-बड़े दुरूह और आडम्बरपूर्ण शब्दों के व्यवहार में सिद्धहस्तता प्राप्त करनी पड़ती है। इस खेदपूर्ण परिस्थिति का कारण यही है कि यहाँ के अधिकांश लेखक और वक्ता आज भी माध्यमिक युग की ही मनोवृत्ति रखते हैं—बहुत कुछ सोलहवीं सदी के अँगरेज़ी साहित्यिक लिली तथा उसी के भाई-बन्दों के ढंग की। पर जब कि दीर्घकाल से अँगरेज़ी साहित्यिक इस मनोवृत्ति को छोड़ चुके हैं, हम अब भी इसके वशीभूत हैं और फलतः बड़ी-बड़ी कठिन, दुरूह और आडम्बरपूर्ण शब्दयोजना के मोह में पड़कर अरबी-फ़ारसी और संस्कृत की अपरिचित और दुर्बोध पदावली का सहारा लेकर अर्थ को आडम्बर की, और सरलता तथा सुगमता को दिखावट तथा पांडित्य-प्रदर्शन की वेदी पर बलिदान कर रहे हैं। एकेडेमी के अधिकारीवर्ग चाहे कितना भी पीछा छुड़ावें, पर इस प्रश्न का सामना उन्हें अब करना है, और उनके सामने प्रश्न यह है कि वे कौन-सा ऐसा उपाय करें जिससे लिखने और बोलने का एक ऐसा माध्यम विकसित हो जो सहज में सबकी समझ में आवे और जो कि सचमुच 'हिन्दुस्तानी' कहा जा सके।

सभापति के पद से दिये गये एक भाषण में हमारे वर्तमान साहित्यिक जगत् की स्थिति को सुधारने के सारे उपायों का निर्देश कर देना या इस सम्बन्ध के विधानात्मक प्रस्ताव करना सहज नहीं है। इसके लिए उन विशेषज्ञों के सम्मिलित विचार की आवश्यकता है जो हिन्दुस्तानी भाषा और साहित्य की उन्नति में दिलचस्पी रखते हैं। मैं केवल कुछ ऐसी बातों का निर्देश कर सकता हूँ जो कि हमारे भावी कार्यक्रम के विचार की आधार-भित्ति हो सकती हैं। इनमें से प्रथम तो यह है कि हमारी भाषा के दो रूपों के दो नाम न रखकर एक ही नाम स्वीकार करने का गम्भीर प्रयत्न किया जाय, क्योंकि इस हिन्दी-उर्दू-विवाद में प्रधान हाथ इन दो भिन्न नामों का ही है।

अब जहाँ तक इस भाषा के उर्दू नाम का सम्बन्ध है, यह नाम न तो प्राचीन है और न ऐसा है कि इसके पक्ष में जनता का कोई बड़ा [illegible] भाव-जन्य कारण रख सकता है। अपने विचारों के समर्थन में मैं एक प्रसिद्ध विद्वान् और कवि—पटने के स्वर्गीय शम्सुल-उलेमा सैयद अली मुहम्मद 'शाद' की प्रसिद्ध पुस्तक 'फ़िक्रे-बलीग़' से एक उद्धरण दूँगा। वे लिखते हैं—"कुछ ऐसे लोग हैं जो कहते हैं (और दुर्भाग्यवश जिनकी कुछ अपढ़ लोग पुष्टि भी करते हैं) कि यह भाषा उर्दू इसलिए कहलाई कि इसका जन्म विजेता मुसलमानों के बाज़ार में हुआ। क्या ऐसे लोग मुझे कोई भी ऐसा इतिहास, रोज़नामचा या तज़करा दिखला सकते हैं जो छठी और तेरहवीं (हिज्री) सदियों के बीच लिखा गया हो और जिसमें यह

भाषा उर्दू कही गई हो। जहाँ कहीं भी इस भाषा की चर्चा आई है, यह हिन्दी या हिन्दुस्तानी कही गई है। इस लेखक ने उर्दू का नाम ढूँढ़ निकालने के लिए इतिहास, रोज़नामचे और तज़करे छान डाले हैं, परन्तु वह यह नाम कहीं भी नहीं पा सका है। सच बात तो यह है कि यह उ॰ नाम अकस्मात् तेरहवीं सदी हिज्री के मध्य-भाग में उपयोग में आया।" जिसका तात्पर्य यह है कि यह नाम उन्नीसवीं सदी ईसवी में पहले-पहल प्रयोग में आया।

यही विचार बहुत वर्ष हुए मेरे सम्मानित मित्र स्वर्गीय शम्सुल-उलेमा सैयद अली बिलग्रामी ने भी प्रकट किये थे, और ये महोदय निस्सन्देह एक प्रकांड विद्वान् थे, जिनकी बराबरी के विद्वान् अँगरेज़ी राज्य में बहुत कम हुए हैं और जिन्हें न केवल अरबी, फ़ारसी और उर्दू पर अधिकार प्राप्त था, वरन जो संस्कृत और तद्भव कई आधुनिक देशी भाषायें भी जानते थे। इस प्रकार 'उर्दू' शब्द के 'हिन्दुस्तानी' शब्द की अपेक्षा अधिक मान्य होने के विशेष ऐतिहासिक या भाव-जन्य कारण नहीं हो सकते। मेरे इस विचार का समर्थन अल्लामा सैयद सुलैमान नदवी जैसे विख्यात विद्वान् और लेखक-द्वारा भी होता है, यह जानकर मुझे प्रसन्नता होती है। पटने में विगत सितम्बर में एक व्याख्यान देते हुए आपका यह कहना बताया जाता है—"हमारी भाषा का नाम 'उर्दू' बहुत बड़ी भूल है और इसे अब त्याग देना चाहिए। हमारी भाषा का नाम अब 'हिन्दुस्तानी' होना चाहिए - उसी सिद्धान्त पर जिस पर कि इँगलिस्तान की भाषा का नाम अँगरेज़ी है, फ़्रांस की भाषा का फ़्रांसीसी, जर्मनी की भाषा का जर्मन और इटली की भाषा का इटैलियन इत्यादि।" जिन विख्यात विद्वानों के उद्धरण मैंने दिये हैं; उनकी बातों को और भी सँवार कर कहना मेरे लिए धृष्टता होगी।

हिन्दी के समर्थकों-द्वारा यह बात कही गई है कि 'हिन्दी' शब्द के व्यवहार पर उस प्रकार की आपत्ति नहीं की जा सकती जैसी कि 'उर्दू' शब्द के व्यवहार पर। वे इस पर ज़ोर देते हैं कि उत्तरी हिन्दुस्तान की भाषा का नाम हिन्दी एक पुराना ऐतिहासिक नाम है और इस नाम का उपयोग मुस्लिम लेखकों ने अरबी और फ़ारसी पुस्तकों में भी बराबर किया है। वे यह भी कहते हैं कि ('हिन्दुस्तानी' शब्द की भाँति) 'हिन्दी' शब्द संस्कृत से बना हुआ शब्द नहीं है, 'हिन्दुस्तानी' शब्द भी नहीं है, यह ठेठ फ़ारसी शब्द है और इसलिए मुसलमानों के लिए विशेष कर आपत्तिजनक न होना चाहिए। इन दोनों तर्कों को यथार्थ मानकर भी यह कहना पड़ेगा कि 'हिन्दी' शब्द भी 'उर्दू' शब्द की भाँति एक अवांछित रीति से हिन्दी-उर्दू प्रश्न पर जो राजनैतिक विवाद छिड़ा हुआ है उससे सम्बद्ध है। इस कारण मैं यह परामर्श देने का साहस करूँगा कि एकेडेमी को न केवल हिन्दी और उर्दू शब्दों का त्याग करना चाहिए और अपने प्रकाशनों में केवल हिन्दुस्तानी शब्द का उपयोग करना चाहिए, वरन इस शब्द के प्रचार का भी जहाँ तक हो उद्योग करना चाहिए।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी और जातीय एकता

'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' के चतुर्थ सम्मेलन के अवसर पर महामान्य सर तेजबहादुर सप्रू ने स्वागताध्यक्ष के आसन से जो भाषण किया उसमें आपने दो महत्त्वपूर्ण बातें बतलाईं। पहली यह कि ऐसी एकेडेमियाँ केवल सरकारी सहायता से नहीं चल सकतीं। इसके लिए जनता का सहयोग आवश्यक है और दूसरी यह कि जातीय एकता के लिए भारत में सम्मिलित साहित्य या भाषा की परम आवश्यकता है। नीचे हम आपके भाषण का यह महत्त्वपूर्ण अंश उद्धृत करते हैं—

इस एकेडेमी की दूसरी एकेडेमियों से तुलना करना इस समय न्यायोचित न होगा। फ़्रांस में जो एकेडेमी है वह राजकीय आज्ञा से १६३५ ई॰ में स्थापित की गई थी। आरम्भ में उसके केवल चालीस सदस्य थे। सन् १७९५ ई॰ में जब कि फ़्रांस में राज्यक्रांति हो रही थी, नेपोलियन ने इसका पुनः संगठन किया और इसके बाद भी इसमें

परिवर्तन होते रहे। मैथ्यू आर्नल्ड ने इस एकेडेमी के विषय में यह लिखा है कि "यह साहित्य का सर्वोच्च न्यायालय और सच्ची साहित्यिक रुचि का केन्द्र है।" एक फ़्रांसीसी साहित्यिक ने इन साहित्य-प्रेमियों के विषय में लिखा है कि "यह न कहो कि इनके जीवन व्यर्थ गये। यद्यपि उनके नाम प्रतिक्षण लोगों के सामने नहीं हैं, तथापि उनकी कृतियाँ हमारे समस्त जीवन पर छाई हुई हैं। अर्थात् उन्हीं के कारण फ़्रांसीसी भाषा की वृद्धि तथा परिशुद्धि हुई है।"

पिछले जून में मैं पेरिस में था, उस समय इस एकेडेमी की तीसरी शताब्दी का समारोह हो रहा था। मैं भी इस अधिवेशन में उपस्थित था। इसी अधिवेशन के सिलसिले में इसके विशाल और विस्तृत भवन में प्रदर्शनी भी हुई थी, जिसके देखने के लिए एक सप्ताह भी पर्याप्त नहीं हो सकता था। इस एकेडेमी के पुस्तकालय और प्रदर्शनी के देखने के लिए एक दिन में एक लाख से अधिक दर्शकों ने टिकट खरीदे थे। फ़्रांस के एक-एक स्त्री-पुरुष को एकेडेमी के अस्तित्व पर गर्व था। उस एकेडेमी का आधार केवल सरकार की सहायता पर नहीं, वरन सम्पूर्ण जाति के उत्साह और उदारता पर है।

हमारी एकेडेमी को स्थापित हुए आठ वर्ष हुए। जिन एकेडेमियों को स्थापित हुए तीन-तीन सौ वर्ष हो गये उनसे इस आठ वर्ष के बच्चे की तुलना करना स्पष्टरूप से अनुचित और व्यर्थ है। परन्तु जब हमारी जाति में, विशेषकर इस समय, यह भावना नित्य बढ़ती जाती है कि किसी जाति की शिक्षा का अन्य भाषा में होना दुःसाध्य है, और सच्ची शिक्षा के प्रचार के लिए वास्तव में अपनी ही भाषा उपयुक्त हो सकती है, ऐसी स्थिति में यह आशा करना अनुचित न होगा कि हमारे धनी देशवासी इस एकेडेमी को भी अपनी उदारता से सहायता पहुँचावेंगे। मेरे विचार में इस एकेडेमी की नींव उस समय तक दृढ़ नहीं हो सकती जब तक इसके पास पर्याप्त धन न हो जावे और इसके कार्य के तथा पुस्तकालय के लिए एक स्थायी भवन न बन जावे। मैं आशा करता हूँ कि आप महोदय हमारे इस प्रयत्न में पूरी सहायता करेंगे।

मेरा निजी विश्वास यह है कि यदि हिन्दुस्तान में जातीय एकता की नींव कोई हो सकती है तो वह सम्मिलित साहित्य या भाषा ही है। हममें यदि एक-दूसरे के साहित्य व कविता और इतिहास तथा दर्शन के लिए आदर उत्पन्न हो जावे या दूसरे शब्दों में यदि हम एक-दूसरे को समझने लगें तो बहुत कुछ मिथ्या भेद और विरोध जो इस समय हमारे लिए लज्जाजनक है, दूर हो सकता है और इस प्रकार एक सम्मिलित हिन्दुस्तान का स्वप्न स्पष्ट रूप से फलित हो सकता है। इस एकेडेमी का यह कर्त्तव्य है कि वह इस उद्देश की पूर्ति के लिए प्रयत्न करे और हमारे देशवासी, यदि इस उद्देश को वे शुभ समझते हैं तो, इसमें उसकी सहायता करें।

सर्वज्ञ टेलीफ़ोन

फ़्रांस में एक नई संस्था क़ायम हुई है। लोकमान्य में उसका परिचय इस प्रकार छपा है—

फ़्रांस में एक ऐसी टेलीफ़ोन-कम्पनी क़ायम हुई है जो अपने ग्राहकों के लिए 'सजीव विश्वकोष' बन रही है। ग्राहक उससे किसी ट्रेन के खुलने, सिनेमा में किसी तमाशे के शुरू होने का समय पूछें या कुछ भी पूछें—कम्पनी उसकी प्रत्येक जिज्ञासा को तृप्त करेगी। कम्पनी का संक्षिप्त नाम 'एस॰ बी॰ पी॰' है। भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देने का चार्ज उत्तर-प्राप्ति की कठिनाई के अनुसार १ से २० फ़्रांक तक है। (एक फ़्रांक इस समय क़रीब ≥) के बराबर है)।

कम्पनी ने ५० साइकिलिस्ट, २० ट्रिसाइकिलिस्ट और १० मोटर साइकिलवाले नियुक्त कर रक्खे हैं। उनसे आप बाज़ार से फूल मँगाइए, किसी मित्र को मँगनी दी हुई पुस्तक का तक़ाज़ा कराइए, वे आज्ञा का पालन करने को तैयार रहेंगे। यही नहीं, सवेरे आपके बताये समय पर जाकर आपको जगा देंगे और यह भी बता देंगे कि आप आज कौन-सा विशेष कार्य करनेवाले हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति

लन्दन की नौ-बल सभा भंग हो गई। ब्रिटेन, संयुक्त-राज्य और जापान एकमत न हो सके। जापान ने ब्रिटेन और संयुक्त-राज्य के समान अपना नौ-बल रखने का दावा किया था। यह प्रस्ताव न ग्रेट ब्रिटेन को स्वीकार हुआ, न संयुक्त-राज्य को। फलतः जापान को उस सभा से अलग हो जाना पड़ा और अब इन राष्ट्रों में नौ-बल बढ़ाने में प्रतिस्पर्धा होगी। इनकी देखा-देखी अन्य राष्ट्र भी अपने जहाज़ी बेड़े बढ़ायेंगे। स्थल-सेना और वायु-सेना को बढ़ाकर जर्मनी ने पहले से ही मार्ग प्रशस्त कर दिया था। अब जापान ने समानता का दावा पेश कर सारे राष्ट्रों के लिए वही स्थिति उपस्थित कर दी है। और इस प्रगति का परिणाम महायुद्ध होगा। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जा रहे हैं, पिछले महायुद्ध का भीषण रूप लोगों के ध्यान से उतरता जा रहा है। इसके सिवा यह बात भी है कि जो राष्ट्र पिछले महायुद्ध में अधिक लाभ नहीं उठा सके, साथ ही जो अब अधिक शक्ति-सम्पन्न हो गये हैं, वे वर्तमान परिस्थिति से लाभ उठाने में प्रवृत्त हैं। इस समय संसार के सभी राष्ट्र अर्थ-संकट से पीड़ित हैं, साथ ही उनमें एक-दूसरे से वैसी घनिष्ठता भी नहीं है। परन्तु सबसे बड़ी बात यह है कि संसार के प्रधान राष्ट्र लड़ने को उत्सुक नहीं हैं। अतएव इटली अबीसीनिया को और जापान चीन को अपने अधिकार में कर लेने का उपक्रम कर रहा है। ऐसी दशा में उपर्युक्त सभा का अनायास भंग हो जाना यह व्यक्त कर रहा है कि कोई राष्ट्र अपने को सुरक्षित नहीं समझ रहा है और सभी एक-दूसरे से चौकन्ने रहते हैं। ऐसे अविश्वास के वायुमण्डल में इटली और जापान अपने अपने साम्राज्य के बढ़ाने की योजना कर रहे हैं, क्योंकि यही उनके उद्देश की सिद्धि का उपयुक्त समय है। उनके मार्ग में बाधा डालने का कोई एक राष्ट्र तो साहस ही न करेगा और न इसके लिए भिन्न-भिन्न राष्ट्र ही सहयोग करने को तैयार होंगे। यह स्पष्ट है कि संयुक्त-राज्य योरप के झमेले में नहीं पड़ेगा और न अकेले वह चीन के लिए जापान से युद्ध करेगा। योरप में इटली अबीसीनिया से लड़ ही रहा है और इसके कारण उसका ब्रिटेन से संघर्ष हो जाने की आशंका है। फ्रांस की बदौलत अभी तक मामला थँभा हुआ था, परन्तु अब वह बात नहीं रही। इस अवस्था को देखकर जर्मनी अलग चंचल हो रहा है। वह अपने उपनिवेशों की ही माँग नहीं कर रहा है, किन्तु उस राइनलेंड में भी वह फ़ौजी तैयारी करने लगा है जहाँ वैसा करना उसके लिए वर्सेलीज़ की सन्धि से वर्जित है। अभी हाल में फ्रांस के राजदूत ने जर्मनी की सरकार से इस बात की शिकायत की है और कहा है कि अगर जर्मनी अपने प्रयत्न से विरत नहीं होगा तो उसके प्रतीकार के लिए फ्रांस को सैनिक कार्रवाई करनी पड़ेगी। योरप की इस जोखिम की अवस्था में ब्रिटेन योरप के बाहर अपना ध्यान कैसे दे सकता है? जैसे फ्रांस ने इटली और ब्रिटेन के संघर्ष को अभी तक नहीं होने दिया, वैसे ही ब्रिटेन को फ्रांस और जर्मनी के संघर्ष के रोकने के लिए प्रयत्न करना पड़ेगा। कहने का मतलब यह है कि योरप में इस समय बड़ी पेचीदा राजनैतिक चालें चली जा रही हैं और वहाँ के तथा बाहर के राष्ट्र इस सारी परिस्थिति से भले प्रकार परिचित हैं, यही नहीं, उनमें से कुछ उससे लाभ उठाने में भी संलग्न हैं, और जो लाभ उठाने के लिए यत्नवान् नहीं हैं वे उसके लिए समर्थ हो जाने की भीतर ही भीतर तैयारी कर रहे हैं। उदाहरण के लिए रूस को लीजिए। उसके पास विशाल स्थल और आकाश-सेना है, तो भी यह कहकर कि उसे जर्मनी और जापान से भय है, वह बराबर अपना सामरिक बल बढ़ाये जा रहा है। ऐसी दशा में लन्दन की उक्त सभा का विफल होना सर्वथा स्वाभाविक था और अब संसार के प्रमुख राष्ट्र ब्रिटेन, संयुक्त-राज्य, जापान आदि भी अगले महायुद्ध की तैयारी की कमी पूरी करने के लिए अग्रसर होंगे। उक्त सभा में जो भाषण हुए हैं तथा योरप में इस समय जो कुछ हो रहा है उस सब पर विचार करने से यही जान पड़ता है कि योरप के पिछले महायुद्ध से संसार को कुछ भी शिक्षा नहीं मिली है।

मुसलमान राज्यों का नया प्रयत्न

एशिया के मुसलमानी राष्ट्र परस्पर मैत्री के बन्धन में आबद्ध हो रहे हैं। तुर्की के कमाल अतातुर्क ने उनका एक

संघ बनाया है। उस संघ में तुर्की, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और ईराक शामिल हुए हैं। इन राज्यों में यह समझौता हुआ है कि वे चारों परस्पर मित्र होकर रहेंगे तथा संकट पड़ने पर एक-दूसरे की सहायता करेंगे। यह देख कर अरब के स्वाधीन राज्य अर्थात् ईराक, नेज्द, यमन आदि भी आपस में ऐसा ही समझौता करने की बात-चीत बग़दाद में कर रहे हैं। यद्यपि तुर्की आदि के संघ में ईराक को छोड़ कर अरब के ये राज्य अभी शामिल नहीं हुए हैं और वे अपना एक अलग संघ बनाने की तैयारी कर रहे हैं, तथापि मुसलमानों की यह राजनैतिक कार्यवाही अपने ढंग की अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है और इससे यह प्रकट होता है कि मुसलमान राष्ट्रों में नवजीवन का काफ़ी संचार हो गया है और वे संसार में स्वाधीन रह कर ही रहना चाहते हैं। यह भी है कि इस समय सभी मुसलमान देशों के शासक काफ़ी कार्यकुशल और नीति-निपुण हैं, इसी से आज सभी मुसलमान देशों में राष्ट्र-निर्माण का कार्य ज़ोरों से हो रहा है। और अब संसार की राजनैतिक अवस्था की विषमता को देखकर वे अपना राजनैतिक संगठन भी कर रहे हैं। यदि एशिया के ये मुसलमान राज्य कुछ काल के लिए भी एकता के सूत्र में ग्रथित हो जायँगे तो इससे मुसलमानों का एक बार फिर बल बढ़ जायगा, जिससे संसार में इस्लाम का गौरव बढ़ेगा, साथ ही एशिया का वह भाग समृद्धि-पूर्ण भी हो जायगा। तुर्की के कमाल अतातुर्क, ईरान के रज़ाशाह और नेज्द के इब्न साऊद मुसलमान जाति के युगनिर्माता हैं और इनके नेतृत्व में आज वास्तव में मुसलमान देशों का कायापलट हो रहा है। अतएव यदि उनमें परस्पर सहायता करने के सुदृढ़ समझौते हो रहे हैं तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। इस समय सभी लोग जब अपने अपने अभ्युदय की बात ही नहीं सोच रहे हैं, किन्तु उसके लिए प्रयत्न कर रहे हैं तब ये चाणाक्ष मुसलमान शासक इस उपयुक्त अवसर को अपने हाथ से क्योंकर जाने दे सकते हैं?

चीनी का कारबार

चीनी का कारबार उन्नति पर है। सरकार ने व्यवसाय को संरक्षण देकर बड़ा उपयोगी कार्य कि[...] सन् १९३१ में भारत में चीनी के कुल ३१ कारखाने [...] पर १९३५ में उनकी संख्या ११५ हो गई है, और [...] संख्या में ७५ फ़ी सदी भारतीयों के कारखाने हैं। [...] वृद्धि से देश के भिन्न-भिन्न भागों में ईख की खेती [...] है। १९३३-३४ में ३३,०५,००० एकड़ भूमि में ईख की खेती हुई थी। इनमें १७,३१,००० एकड़ संयुक्त[...] ४,६७,००० एकड़ पंजाब, ४,१८,००० एकड़ बिहार [...] उड़ीसा, २,५७,००० एकड़ बंगाल, १,२०,००० [...] मदरास, १,०२,००० एकड़ बम्बई और ४,६६,००० [...] देशी राज्यों में। सरकार के कोइमबटोर के [...] कार्यालय ने एक नये ढंग की ईख चलाई है। पुरानी [...] एक एकड़ में बोने से जहाँ ३५० मन माल तैयार [...] था, वहाँ इस नई ईख के उतनी ही भूमि में बोने से [...] मन माल तैयार होता है और यदि जावा की प्रणाली [...] उसकी खेती की जाय तो एक हज़ार मन माल तैयार [...] इस प्रकार इस कारबार की चौमुखी उन्नति करने [...] सफल प्रयत्न हो रहा है। नीचे के आँकड़ों से पता लगे[...] कि इस कारबार की कितनी उन्नति हो रही है तथा उ[...] देश का कितना हित हुआ है—

साल	भारत में तैयार हुई	बाहर से आई
१९३१-३२	४,७८,००० टन	५,१६,००० [...]
१९३२-३३	६,५६,००० ”	३,६६,५०० ”
१९३३-३४	१०,००,००० ”	२,५०,००० ”
१९३४-३५		१,१०,००० ”

उपर्युक्त आँकड़ों से प्रकट होता है कि भारत [...] उतनी चीनी बनने लगी है जितनी उसकी यहाँ खपत है। [...] आशा है, अब यहाँ वह और भी अधिक परिमाण [...] बनने लगेगी ताकि बाहर भेजी जा सके।

बड़ौदा-नरेश की जुबली

महाराज सयाजी राव गायकवाड़ को अपने राज्य पर शासन करते हुए ६० वर्ष हो गये। इसके उपलक्ष्य [...]

बड़ौदा-राज्य ने बड़ी धूम-धाम से हीरक जुबली मनाई है। इस अवसर पर ग्राम-सुधार के लिए एक करोड़ रुपया खर्च करने का आदेश देकर महाराज ने जुबली-महोत्सव को और भी सार्थक कर दिया है।

बड़ौदा-राज्य भारत के चार बड़े राज्यों में एक है। इसका क्षेत्रफल ८ हज़ार वर्गमील, जन-संख्या २५ लाख और आय २॥ करोड़ रुपया है। अपने गत शासन-काल में महाराज ने अपनी प्रजा को स्वस्थ और समृद्ध बनाने में कोई उपाय बाक़ी नहीं रख छोड़ा और उसको संस्कृत बनाने के सभी प्रयत्न किये। इसी से आज बड़ौदा एक आदर्श राज्य बन सका है। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य होने से वहाँ साक्षर ३५ प्रतिशत हैं। राज्य भर में २५ सौ स्कूल हैं, जिनमें ढाई लाख छात्र-छात्रायें शिक्षा पा रही हैं। सारे राज्य में पुस्तकालयों का काफ़ी प्रचार है। नगरों में ४२७, स्त्रियों और बच्चों के लिए १४ तथा गाँवों में १ हज़ार पुस्तकालय हैं। तीन सौ चलते-फिरते पुस्तकालय हैं और १२७ वाचनालय हैं। ४० लाख रुपया प्रतिवर्ष शिक्षा पर व्यय होता है। इसी का परिणाम है कि आज वहाँ की प्रजा अधिक संस्कृत है और महाराज ने क़ानून बनाकर जो तरह तरह के सामाजिक सुधार किये हैं उनका वहाँ स्वागत हो रहा है।

कृषि की उन्नति के लिए राज्य ने किसानों को बराबर सहायता दी है। दो हज़ार सहयोग-समितियाँ किसानों की सहायता के लिए स्थापित की गई हैं, जिनके निरीक्षण में १२ हज़ार पक्के और ६० हज़ार कच्चे कुएँ बनाये गये हैं। घरेलू उद्योग-धन्धों को उन्नत करने के लिए भी सरकार ने समुचित व्यवस्था की है। इसी प्रकार सरकार की सहायता से अनेक कारख़ाने खोले गये हैं, जिससे कारबार और रोज़ी-रोज़गार की वृद्धि हुई है।

इस प्रकार महाराज ने अपने शासन-काल में अपनी प्रजा को सुशिक्षित और समृद्ध बनाने का ही सफल प्रयत्न नहीं किया है, किन्तु उसमें जो कहीं थोड़ी-बहुत कोर-कसर भी रह गई होगी उसका उन्मूलन करने के लिए महाराज ने इस शुभ अवसर पर एक करोड़ रुपये का एक ट्रस्ट क़ायम कर दिया है जो अब ग्रामों का सुधार करेगा।

दो भारत-हितैषी अँगरेज़

पंजाब यूनिवर्सिटी के लोकप्रिय वाइस चांसलर डाक्टर ऊलनर और कलकत्ता-हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज सर जान उडरफ़ उन अँगरेज़ों में थे जिन्हें भारत से तथा उसकी संस्कृति से प्रगाढ़ प्रेम था। सर जान उडरफ़ तो यहाँ तक आगे बढ़ गये थे कि उन्होंने भारत की प्राचीन और रहस्यपूर्ण तांत्रिक पूजा तक की वकालत की थी और अपनी सुन्दर पाण्डित्यपूर्ण रचनाओं द्वारा उसके गौरव को पुनः स्थापित किया। इसके सिवा उन्होंने भारत की प्राचीन संस्कृति के सम्बन्ध में जो अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं उनसे उनके पाण्डित्य का ही निदर्शन नहीं होता, किन्तु उस सच्ची सहानुभूति का भी जो उनमें भारत और उसके निवासियों के प्रति थी। इसी प्रकार डाक्टर ऊलनर भी भारत के बड़े भारी हिमायती थे। शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने देश की जो सेवा की है, सो तो है ही, साहित्य के क्षेत्र में वे और भी उत्साह के साथ लगे रहते थे। चन्द बरदाई के रासो के उद्धार के लिए उन्होंने जो महत्त्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ किया है उससे उनकी पैनी बुद्धि का ही नहीं, किन्तु भारत-प्रेम का भी पूरा पता मिलता है। दुख की बात है कि इन दोनों विद्वानों का गत जनवरी में देहावसान हो गया।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी

हिन्दुस्तानी एकेडेमी का चतुर्थ साहित्यिक सम्मेलन गत १२, १३ और १४ जनवरी को श्रीयुत सच्चिदानन्द सिनहा के सभापतित्व में समारोह के साथ मनाया गया। इसमें इन प्रान्तों के हिन्दी और उर्दू के विद्वानों के अतिरिक्त बहुत-से बाहर के भी गण्य-मान्य सज्जन उपस्थित थे। पहले दिन हिन्दी और उर्दू के विद्वानों का सम्मिलित सम्मेलन हुआ और दूसरे और तीसरे दिन प्रत्येक का अलग-अलग। यद्यपि एकेडेमी का उद्देश हिन्दी और उर्दू दोनों के साहित्यों की अलग-अलग श्रीवृद्धि करना है, तथापि जितने भाषण हुए उन सबमें यही प्रवृत्ति दिखाई पड़ी कि दोनों भाषाओं को मिलाकर एक कर देना चाहिए और उस सम्मिलित भाषा का नाम 'हिन्दुस्तानी' होना चाहिए।



[श्रीयुत सच्चिदानन्द सिनहा]

इस सम्बन्ध में हम स्वागताध्यक्ष सर तेजबहादुर सप्रू और सभापति श्रीयुत सच्चिदानन्द सिनहा के भाषण अन्यत्र उद्धृत कर रहे हैं। एकेडेमी के सुयोग्य प्रधान मंत्री डाक्टर ताराचन्द ने अपने हिन्दुस्तानी भाषा के भाषण से श्रोताओं को मुग्ध कर लिया। यह कहना ठीक हो सकता है कि उर्दूवाले आज-कल उर्दू में फ़ारसी और अरबी शब्दों की भरमार करते जा रहे हैं, पर यह कहना कि हिन्दी-वाले भी संस्कृत शब्दों को वैसे ही हिन्दी में भर रहे हैं हिन्दी के साथ अन्याय करना है। यह बात स्वयं श्रीयुत सच्चिदानन्द सिनहा के मुख से सुनकर हमें आश्चर्य हुआ। यदि वे हिन्दी का कोई भी पत्र या नव-प्रकाशित पुस्तक उठाकर देखते तो उन्हें यह मानना पड़ता कि आज-कल की हिन्दी ने सरलपने की हद कर दी है। गद्य में ही नहीं, पद्य में भी यह सरलता स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है। यह बात न होती तो उसका राष्ट्र-भाषा कहलाने का दावा सर्वमान्य कैसे होता? सच बात तो यह है कि आधुनिक 'हिन्दी' और 'हिन्दुस्तानी' में जिसे हमने डाक्टर ताराचन्द के मुँह से सुना, कोई अन्तर नहीं है। यह बात दूसरी है कि उर्दूवालों को सन्तुष्ट रखने के लिए हम उसके दो नाम बनाये रहें।

पंडित माखनलाल चतुर्वेदी के साथ अन्याय

मई सन् १९३५ की 'सरस्वती' में हमने 'कृष्णार्जुन-युद्ध का लेखक कौन है' शीर्षक एक लेख 'स्वराज्य' से उद्धृत किया था। उस लेख में श्रीयुत मोहनलाल सोहनी नाम के एक सज्जन ने यह सिद्ध किया था कि 'कृष्णार्जुन-युद्ध' नामक नाटक के रचयिता वास्तव में वे ही हैं, पंडित माखनलाल जी नहीं। पंडित माखनलाल चतुर्वेदी एक योग्य सम्पादक, कुशल लेखक और सहृदय कवि हैं। यह सब जानते हुए भी हमने वह लेख उद्धृत किया था, क्योंकि चतुर्वेदी जी पर वह अभियोग सार्वजनिक रूप से लगाया गया था। पर चतुर्वेदी जी ने उसका कोई स्पष्टीकरण नहीं किया। इस सम्बन्ध में हमने चतुर्वेदी जी से इन्दौर में 'सम्मेलन' के और अभी हाल में प्रयाग में 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' के उत्सव के अवसर पर बातें कीं, जिनसे प्रकट हुआ कि उक्त नाटक के रचयिता चतुर्वेदी जी हैं और वैसा आक्षेप करके उनके साथ अन्याय किया गया है। खेद है, चतुर्वेदी जी अपने नियम के अनुसार अपने ऊपर किये गये व्यक्ति-गत आक्षेपों का उत्तर नहीं देते, नहीं तो उस प्रश्न का निराकरण तभी हो जाता।

उज्जैन के एक प्रसिद्ध विद्वान् का स्वर्गवास

हाल में उज्जैन के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी पंडित नारायण जी व्यास का ७६ वर्ष की अवस्था में देहान्त हो गया। व्यास जी पुरानी पद्धति के उन पंडितों में थे जो परम्परागत विद्या को गुरुमुख से पढ़ते हैं और द्रव्यादि की परवा न कर अपनी विद्या-परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए आजीवन विद्या-दान करते रहते हैं। पंडित जी का जन्म संवत् १९१७ में हुआ था। आपने पंडित दीनानाथ जी से ज्योतिष पढ़ा था। आपके पढ़ाये हुए कई हज़ार छात्र मालवा एवं अन्य प्रान्तों में विद्यमान हैं। लोकमान्य तिलक ने संवत् १९६१ की ज्योतिष-परिषद् में आपको सम्मानित किया था। काशी के स्वर्गीय बापूदेव शास्त्री एवं पंडित सुधाकर द्विवेदी ने आपकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर आपको 'सिद्धान्तवागीश' की उपाधि दी थी। प्राचीनता के साथ-साथ वर्तमान राजनीति पर भी



[स्वर्गीय पण्डित नारायण जी व्यास]

आपकी आस्था कम न थी। सत्याग्रह-आन्दोलन के समय से ही आप के घर में खद्दर ने स्थान कर लिया। उज्जैन में हरिजनों के गणपति के रामघाट पर जाने में कोई हर्ज नहीं है, यह न्याय-पूर्ण सम्मति आज से आठ वर्ष पूर्व ही देकर हरिजनों के प्रति प्रेम-भाव प्रदर्शित कर चुके थे। आप उज्जैन के भूषण थे और ग़रीब तथा दुखियों के आश्रय थे।

आपके निधन से आप के कुटुम्बियों के साथ साथ नगर-निवासियों का भी बहुत अहित हुआ है। आपके ज्येष्ठ पुत्र पंडित सूर्यनारायण जी व्यास ज्योतिषाचार्य हिन्दी-साहित्यिकों में सुपरिचित हैं। द्वितीय पुत्र पण्डित चन्द्रशेखर जी व्यास ब्रह्मचर्य-अवस्था में खद्दर-प्रचार और ग्रामोद्धार के कार्य में संलग्न हैं। वे मध्यप्रान्त में एक आश्रम चला रहे हैं। आपके शेष दो पुत्र अभी विद्याभ्यास कर रहे हैं।

साम्प्रदायिक समस्या

सम्प्रदायवाद ने जिस रूप में देश का अहित किया है वह दिन की तरह स्पष्ट है। देश की यह महाव्याधि यहाँ एक ज़माने से ही अस्तित्व में नहीं है, किन्तु इसने अब व्यापक रूप धारण कर लिया है। इसके इस भीषण रूप को देखकर देश के लोकनेता और सरकारी अधिकारी तक समय समय पर इससे जनता को सावधान रखने के सचेत रहते हैं। यही नहीं, अभी उस दिन अपने एक भाषण में स्वयं वायसराय महोदय ने भी साम्प्रदायिक कलह की निन्दा की है। ब्रिटिश सरकार के उच्चाधिकारियों ने साम्प्रदायिक बँटवारा करके जिस महारोग के विनाश का उपक्रम किया था, जान पड़ता है उससे भी इसका प्रतीकार न हो सकेगा। अन्यथा जब भूतपूर्व प्रधान मंत्री मिस्टर राम्से मैकडानल्ड ने पूरा पूरा साम्प्रदायिक बँटवारा कर ही दिया है तब तो इस सम्बन्ध के सारे झगड़े अपने आप बन्द हो जाने चाहिए। यही नहीं, नूतन विधान में भी जब अल्पसंख्यकों के विशेष स्वत्वों की रक्षा के लिए वायसराय और गवर्नरों को विशेष अधिकार अलग-अलग प्रदान कर दिये गये हैं तब तो सभी तरह के साम्प्रदायिक झगड़े बन्द हो जाने चाहिए। परन्तु जान पड़ता है कि सरकार की यह सारी व्यवस्था व्यर्थ हुई अन्यथा साम्प्रदायिक समस्या इस प्रकार दिन प्रतिदिन भीषण रूप न धारण करती जाती। राष्ट्र के नेताओं को ही नहीं, सरकार को भी इसको सुलझाने के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील होना चाहिए। शान्ति और व्यवस्था की रक्षा के लिए इसका शीघ्र से भी शीघ्र सुलझ जाना परमावश्यक है।

एक बङ्गाली यात्री

एक बङ्गाली युवक ने अभी हाल में २७ हज़ार मील की पैदल यात्रा समाप्त की है। उनका नाम श्री सुशील कुमार दे है। वे अभी २१ वर्ष के ही हैं। १८ अक्टूबर १९३० को जैसोर से रवाना हुए थे और भारत, बिलूचिस्तान, मकरान, मलार, ईरान, ईराक, अरब आदि देशों का भ्रमण करके अभी हाल में कलकत्ता लौटे हैं। यहाँ से आवश्यक पासपोर्ट प्राप्त करके क्वेटा से होकर वे फिर लन्दन को पैदल जायँगे। अपनी यह दूसरी यात्रा उन्होंने जनवरी १९३६ से शुरू की है।

Printed and Published by K. Mittra at the Indian Press Ltd., Allahabad.



"मोरप्रिया"

१८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ का एक चित्र

[श्री एन० सी० मेहता आई० सी० एस० के सौजन्य से

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

मार्च १९३६ } भाग ३७, खंड १ संख्या ३, पूर्ण संख्या ४३५ { फाल्गुन १९९२

गीत

लेखिका, श्रीमती महादेवी वर्मा

शलभ ! मैं शापमय वर हूँ !
किसी का दीप निष्ठुर हूँ !
ताज है जलती शिखा चिनगारियाँ शृंगार-माला;
ज्वाल अक्षय कोप है अङ्गार मेरी रङ्गशाला;
नाश में जीवित किसी की साध सुन्दर हूँ !
होगए झर कर दृगों से अग्नि-कण भी क्षार शीतल;
पिघलते उर से निकल निश्वास बनते धूम श्यामल;
एक ज्वाला के बिना मैं राख का घर हूँ !
पलक में रह किन्तु जलती पुतलियां आगार होंगी;
प्राण में कैसे बसाऊँ कठिन अग्नि-समाधि होगी;
फिर कहाँ पालूँ तुझे मैं मृत्यु-मन्दिर हूँ !
कौन आया था न जाना स्वप्न में मुझको जगाने;
याद में उन अँगुलियों की हैं मुझे पर युग बिताने;
रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ !
शीश पर छाया हुआ है अमर झंझा का वरद कर;
तुहिन पद-तल कुहरमय पथ प्रलय रखता अंक में भर;
दूत वासन्ती न कह मैं अजर पतझर हूँ !
शून्य मेरा जन्म था अवसान है मुझको सवेरा;
प्राण आकुल के लिए संगी मिला केवल अँधेरा;
मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ !
शलभ मैं शापमय वर हूँ !

नये विधान का वास्तविक रूप

नये विधान में गवर्नर-जनरल और गवर्नर को विशेषाधिकार दिये गये हैं -जिनके होते हुए व्यवस्थापक सभायें कुछ नहीं कर सकतीं। पर यदि गवर्नर-जनरल या गवर्नर इन विशेषाधिकारों से काम न लें तब भी ये व्यवस्थापक सभायें पंगु ही सिद्ध होंगी वह कैसे? इस लेख में पढ़िए।

लेखक,
श्रीयुत सीतलासहाय



पिछले लेख में हम लिख चुके हैं कि नये विधान में गवर्नर-जनरल और गवर्नर के अख्तियार और विशेषाधिकार क्या क्या हैं। इस लेख में हम यह लिखेंगे कि प्रान्तीय और फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभाओं का तथ्य क्या है। प्रश्न यह है कि अगर गवर्नर-जनरल या गवर्नर अपने विशेषाधिकारों को न भी काम में लावें तो इन व्यवस्थापक सभाओं से देश का कितना काम हो सकता है, लोकतंत्र का इनमें कितना अंश है और इनसे देश की सेवा किस हद तक की जा सकती है।

नये विधान के अनुसार संघ-सरकार की अर्थात् अखिल भारतीय शासन से सम्बन्ध रखनेवाली दो व्यवस्थापक सभायें होंगी। एक का नाम होगा 'फ़ेडरेल असेम्बली' और दूसरी का 'कौंसिल आफ़ स्टेट'। फ़ेडरेल असेम्बली में ३७५ मेम्बर होंगे। २५० मेम्बर ब्रिटिश भारत के होंगे और १२५ देशी रियासतों के प्रतिनिधि होकर आयेंगे। ब्रिटिश भारत के जो २५० मेम्बर होंगे वे भिन्न-भिन्न जातियों और स्वत्वों के प्रतिनिधि होंगे।

असेम्बली के सभासद्

स्त्रियों	के	प्रतिनिधि	६
श्रमजीवियों	"	"	१०
ज़मींदारों	"	"	७
व्यापार और व्यवसाय		"	११
हिन्दुस्तानी ईसाइयों	के	प्रतिनिधि	८
योरपीयों	"	"	८
ऐंग्लो इंडियनों	"	"	४
मुसलमानों	"	"	८२
सिक्खों	"	"	६
हरिजनों	"	"	१९
हिन्दुओं	"	"	८६
			२५०

नोट करने की बात यह है कि ये प्रतिनिधि सीधा

जनता-द्वारा न चुने जायँगे, बल्कि प्रान्तीय व्यवस्थापक सभायें अपने सभासदों में से इन मेम्बरों का चुनाव करेंगी। (३११ सफ़ा)

कहने की आवश्यकता नहीं है कि लोकतन्त्रवाद के सिद्धान्तों को इस अप्रत्यक्ष चुनाव की प्रथा के कारण सख्त धक्का पहुँचता है और फ़ेडरेल असेम्बली के सभासद् जनता के संसर्ग से बहुत ज़्यादा दूर हो जाते हैं। फ़ेडरेल असेम्बली जनता का प्रतिनिधि नहीं रह जाती है, वह तो प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं का प्रतिनिधि हो जाती है। ऐसी अवस्था में फ़ेडरेल असेम्बली में खरे राष्ट्रवादियों का पहुँचना कठिन होगा और कांग्रेस तो बहुत मुश्किल से अपने अपने प्रतिनिधि काफ़ी संख्या में फ़ेडरेल असेम्बली में भेज सकेगी। यदि हम यह मान लें कि सम्पूर्ण हिन्दू जगहों के लिए इस असेम्बली में राष्ट्रवादी ही चुने जायँगे (जो एक असम्भव-सी बात है), तो भी उसकी निम्नलिखित शक्तियाँ बराबर राष्ट्रवाद के खिलाफ़ रहेंगी।

ज़मींदारों	के	७
योरपीयों	"	८
एंग्लो इंडियनों	"	४
मुसलमानों	"	८२
रियासतों	"	१२५
		२२६

हरिजनों के १९ प्रतिनिधियों में से राष्ट्रवाद से १० प्रतिनिधियों के टूट जाने की आशंका है। स्त्रियों के आधे (४) और हिन्दुस्तानी ईसाइयों के तीन-चौथाई (६) प्रतिनिधि अन्तर्राष्ट्रवाद की ओर जायँगे। इस प्रकार इनमें हम २० प्रतिनिधियों के क़रीब राष्ट्रवाद के खिलाफ़ मानते हैं। इस हिसाब से ३७५ की संख्या में से (२५० + २०) २७० की संख्या तो बिलकुल अराष्ट्रीय होगी ही। १०५ को हम राष्ट्रीय मान सकते हैं। यह हिसाब कोई ज्योतिषी की भविष्यवाणी नहीं है, किन्तु भावी सम्भावनाओं के बारे में कल्पना का एक प्रयत्न है। असेम्बली के इतिहास की दृष्टि से भारत के दीन और दरिद्रों के पक्ष में हम फ़ेडरेल असेम्बली में १०५ से अधिक की संख्या नहीं मान सकते। कांग्रेस, राष्ट्रवादी, उदारदल, स्वतन्त्र-दल, श्रमजीवी सभी दल मिलकर फ़ेडरेल असेम्बली में इस संख्या से अधिक कभी नहीं पहुँचेंगे। ऐसी अवस्था में यह आशा करना कि फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभा से कभी कोई ऐसा क़ानून पास हो सकेगा जो भारत की दरिद्र जनता के लिए वास्तव में हितकर हो, असम्भव-सा जान पड़ता है।

अर्थ-सम्बन्धी बिलों को छोड़कर क़ानूनों के मसविदे फ़ेडरेल असेम्बली और कौंसिल आफ़ स्टेट दोनों में पेश हो सकते हैं, लेकिन ये मसविदे क़ानून का रूप उस समय तक धारण न कर सकेंगे जब तक ये दोनों व्यवस्थापक सभायें उन्हें अपने अपने यहाँ से पास न कर दें। वे क़ानून का रूप उस समय तक धारण ही नहीं कर सकते जब तक कौंसिल आफ़ स्टेट भी उन्हें न पास कर दे।

अब कौंसिल आफ़ स्टेट का संगठन देखिए। इस कौंसिल में २६० सभासद् होंगे। १५६ ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि और १०४ देशी रियासतों के। १५६ में से १५० चुन कर आयेंगे और ६ को गवर्नर-जनरल नामज़द करेंगे। चुनाव सीधा जनता करेगी। लेकिन वोटर उच्च श्रेणी के लोग होंगे। लोकतन्त्र के इतिहास में यह कितनी असाधारण और आश्चर्य की बात है कि साधारण श्रेणी की जनता का प्रतिनिधि समझी जानेवाली असेम्बली के सदस्य प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं के द्वारा चुने जायँ और कौंसिल आफ़ स्टेट का चुनाव सीधा जनता-द्वारा हो! हमारा आक्षेप कौंसिल आफ़ स्टेट के सीधे चुनाव पर नहीं है, बल्कि असेम्बली के अप्रत्यक्ष निर्वाचन पर है। कौंसिल आफ़ स्टेट के सभासदों का बँटवारा निम्नलिखित होगा—

गवर्नर-जनरल	द्वारा	चुने	जायँगे	६	सभासद्
मुसलमानों	"	"	"	४९	"
स्त्रियों	"	"	"	६	"
सिक्खों	"	"	"	४	"
ऐंग्लो इंडियनों	"	"	"	१	"
हरिजनों	"	"	"	६	"
हिन्दुस्तानी ईसाइयों	"	"	"	२	"
हिन्दुओं	"	"	"	७५	"
योरपीयों	"	"	"	७	"
रियासतों	"	"	"	१०४	"
				२६०	

कौंसिल आफ़ स्टेट में आज भी संकुचित दल का प्राबल्य है। नये विधान में भी उन्हीं का प्राबल्य रहेगा। ऊपर के अंकों पर यदि विचार किया जाय तो यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि कौंसिल आफ़ स्टेट में राष्ट्रीय शक्तियाँ हमेशा कमज़ोर रहेंगी। नये विधान के अनुसार बनाई हुई इन दोनों व्यस्थापक सभाओं का ऐसा रंग-रूप है कि राष्ट्रवादी इन व्यवस्थापक सभाओं-द्वारा जैसा क़ानून चाहेंगे, कभी नहीं बना सकेंगे। इन दोनों व्यवस्थापक सभाओं का ऐसा निर्माण हुआ है कि इनके अन्तर्गत राजनैतिक शक्तियाँ एक-दूसरे के संघर्ष में आ जाती हैं, फलतः अन्तिम शक्ति भारतीयों के प्रतिनिधियों के हाथ में न रह कर शासकों के ही हाथ में रह जाती है।

व्यवस्थापक सभाओं की स्वतन्त्रता पर और भी बन्दिशें हैं। यदि कोई क़ानून इन दोनों व्यवस्थापक सभाओं से पास भी हो जाय तो पहले वह मंज़ूरी के लिए गवर्नर-जनरल के सामने लाया जायगा। (३२) गवर्नर-जनरल को मजाज़ है कि वे उसकी स्वीकृति दें या न दें। यदि गवर्नर-जनरल चाहेंगे तो उसे अस्वीकार कर देंगे और तब देश में उस पर अमल-दरामद न होगा। अगर गवर्नर-जनरल उस क़ानून को एक-दम मंसूख़ नहीं कराना चाहेंगे तो वे उसे व्यवस्थापक सभाओं के सामने फिर से विचार करने के लिए भेज देंगे। गवर्नर-जनरल को यह भी अख़्तियार है कि वे उस क़ानून को सम्राट् की मंज़ूरी के लिए अपने पास रख लें और अगर १२ महीने के अन्दर उस क़ानून की स्वीकृति सम्राट् की ओर से न आ जाय और गवर्नमेंट-गज़ट में वह प्रकाशित न हो तो वह व्यवस्थापक सभाओं-द्वारा स्वीकृत क़ानून मंसूख़ समझा जायगा।

अब अन्तिम बन्दिश देखिए। अगर कोई क़ानून दोनों व्यवस्थापक सभाओं से मंज़ूर हो जाय और गवर्नर-जनरल भी उसे मंज़ूर कर लें तो भी सम्राट् को (जिसका मतलब है ब्रिटिश मंत्रि-मण्डल को) यह अख़्तियार है कि उस क़ानून को १२ महीने के अन्दर रद कर दें। (३२।३) व्यवस्थापक सभाओं में जाने का अगर कोई लालच हो सकता है तो यह कि देश की आर्थिक उन्नति के लिए उसके द्वारा उपयुक्त परिस्थिति पैदा की जाय। फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभाओं में जाकर अगर कोई काम देश की भलाई का किया जा सकता है तो यह कि भारतीय व्यवसायों की उन्नति के लिए क़ानून बनाये जायँ। भारतवर्ष से प्रत्येक वर्ष धाराप्रवाह बहनेवाली करोड़ों की सम्पत्ति विदेशों में जाने से रोकी जाय। इस देश में फ़ौज और सरकारी मुलाज़िमों पर देश की हैसियत से जो ज़्यादा ख़र्च होता है वह कम किया जाय। अपने देश की दरिद्रता के इन मुख्य कारणों को मिटाने या कम करने की आशा ही हमें व्यवस्थापक सभाओं की ओर खींच सकती है। नये विधान को हम इसी कसौटी पर कस कर उसे खरा या खोटा कह सकते हैं। किन्तु नये विधान से हमारी यह आशा ज़रा भी पूरी नहीं होती। बजट के सम्बन्ध में फ़ेडरेल असेम्बली को जो अख़्तियार १९३५ के गवर्नमेंट आफ़ इंडिया एक्ट के अनुसार मिले हैं, नये विधान की अपूर्णता और निरर्थकता के ख़ासे प्रमाण हैं।

नये विधान में बजट के लिए यह नियम रक्खा गया है कि गवर्नर-जनरल फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभाओं के सामने अर्थात् फ़ेडरेल असेम्बली और कौंसिल आफ़ स्टेट के सामने प्रत्येक आर्थिक वर्ष का प्रतिवर्ष एक बजट पेश करायेंगे, जिसमें उस साल की आमदनी और ख़र्च का मदवार तख़मीना दिखाया जायगा। इस बजट में नाम (ख़र्च) की ओर नीचे की मदें अलग अलग दिखाई जायँगी।

(१) वह रक़म जिसे फ़ेडरेशन के ख़ज़ाने से अदा करना है।

(२) वह रक़म जिसे फ़ेडरेशन के ख़ज़ाने से अदा करने की तजवीज़ है।

(३) वह रक़म जिसका ख़र्च गवर्नर-जनरल अपनी विशेष ज़िम्मेदारी को पूरा करने के लिए ज़रूरी समझते हैं।

नं० १ और नं० ३ में बयान की हुई मद पर फ़ेडरेशन की व्यवस्थापक सभाओं को हस्तक्षेप करने का हक़ न होगा। (३४) नं० २ में जो मदें या माँगें आयेंगी उन पर फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभायें राय ज़ाहिर कर सकती हैं और उन माँगों को मंज़ूर या ना मंज़ूर एवं कम और ज़्यादा कर सकती हैं। लेकिन वे माँगें भी बिना गवर्नर-जनरल की सिफ़ारिश के व्यवस्थापक सभा के सामने पेश न हो सकेंगी। (दफ़ा ३४)

प्रश्न यह होता है कि नं० १, २ या ३ में बयान की हुई मदें कौन कौन होंगी। नं० १ और २ में क्या अन्तर है? गवर्नमेंट आफ़ इंडिया एक्ट की दफ़ा ३३ की उप-धारा ३ में लिखा है कि निम्नलिखित ९ क़िस्म के ख़र्च मद नं० १ में आयेंगे, अर्थात् वे फ़ेडरेशन के ख़ज़ाने से किये जायँगे—

(१) गवर्नर-जनरल की तनख़्वाह और अलाउंस एवं उनके वे ख़र्च जो कौंसिल के आर्डर से होते हैं।

(२) वे क़र्ज़ जिनकी अदायगी के लिए फ़ेडरेशन ज़िम्मेदार है, जैसे—सूद, सिंकिंग फ़ंड के ख़र्च या जो रक़म क़र्ज़ लेने में ख़र्च हुई या नौकरी के सिलसिले में किये हुए ख़र्च।

(३) मंत्रियों की तनख़्वाहें और भत्ते। कौंसिलों की, आर्थिक सलाहकार की, एडवोकेट जनरल की और आर्थिक सलाहकार के दफ़्तर की तनख़्वाहें और भत्ते।

(४) फ़ेडरेल कोर्ट के जजों की पेंशनें, तनख़्वाहें और भत्ते और हाईकोर्ट के जजों की पेंशनें।

(५) गिर्जाघर और फ़ौज के ख़र्च अर्थात् इस सिलसिले के वे ख़र्च जिन्हें अपनी ज़िम्मेदारी पूरी करने के लिए गवर्नर-जनरल ज़रूरी समझें; वे ख़र्च जो वैदेशिक शासन के लिए आवश्यक हैं - उस हद तक जिस हद तक गवर्नर-जनरल को इस सिलसिले में अपने मजाज़ से या अपने मिजाज़ से शासन करने का हक़ है। सरहदी क़ौमों के सिलसिले में जो कुछ गवर्नर की ज़िम्मेदारी है उसको पूरा करने के लिए आवश्यक ख़र्च।

(६) देशी रियासतों के सिलसिले में इस क़ानून के मुताबिक फ़ेडरेशन की मालगुज़ारी से देने के लिए सम्राट् को जो कुछ ख़र्च ज़रूरी है।

(७) किसी प्रान्त में किसी बहिष्कृत क्षेत्र पर शासन करने के लिए जिस क़दर ख़र्च की ज़रूरत पड़े।

(८) किसी अदालत की डिग्री जो फ़ेडरेशन पर है, अदा करने के लिए जिस रक़म की ज़रूरत हो।

(९) कोई भी रक़म जिसे क़ानून फ़ेडरेशन के ख़ज़ाने से दिलाता हो या फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभा ख़ज़ाने से देना तय कर दे।

अगर कभी यह प्रश्न उठे कि अमुक ख़र्च नं० १ में आता है या नं० २ में, अर्थात् वह ख़ज़ाने से दिया जायगा या उसके देने की केवल तजवीज़ की जायगी तो इस प्रश्न का अन्तिम फ़ैसला गवर्नर-जनरल अपने इच्छानुसार करेंगे। इस स्थान पर एक बात समझ लेनी चाहिए। वह यह कि जो कुछ ख़र्च होगा, फ़ेडरेशन के ख़ज़ाने से होगा। लेकिन ख़र्च दो हिस्सों में बाँट दिया गया है। एक ख़र्च तो वह है जो फ़ेडरेशन की मालगुज़ारी से दिया जायगा और दूसरा वह जिसके फ़ेडरेशन के ख़ज़ाने या मालगुज़ारी से दिलाने की केवल तजवीज़ होगी। अन्तर यह है कि पहला ख़र्च तो दिलाया ही जायगा, चाहे उसे व्यवस्थापक सभायें पसन्द करें या न करें और दूसरे ख़र्च के दिलाने की तजवीज़ होगी अर्थात् उसकी माँग गवर्नर-जनरल की तरफ़ से फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभाओं के सामने सिफ़ारिश और तजवीज़ के रूप में पेश होगी और व्यवस्थापक सभाओं को हक़ होगा कि माँगों को वह स्वीकार करें या न करें। पहला ख़र्च अनिवार्य है। यह पहले से ही निश्चित है कि उसमें किसी को हस्तक्षेप करने का अख़्तियार नहीं। ख़र्च नं० २ में व्यवस्थापक सभायें हस्तक्षेप कर सकती हैं। ऊपर जो ९ मदें बताई गई हैं उनमें गवर्नर-जनरल अपने अख़्तियार से ख़र्च कर सकेंगे। बाक़ी मदों में व्यवस्थापक सभाओं की राय के मुताबिक़ ख़र्च किया जायगा। दफ़ा ३४ में एक बात और कही गई है। वह यह कि यद्यपि इन ९ मदों में व्यवस्थापक सभाओं को हस्तक्षेप करने का हक़ नहीं है, तो भी नं० १ और नं० ६ में बताई हुई मद को छोड़कर बाक़ी हर एक मद के बारे में वे बहस-मुबाहिसा कर सकती हैं। नं० ३ में बताई मद तो साफ़ ज़ाहिर है कि गवर्नर-जनरल अपनी मर्ज़ी से ही कर देंगे। उसमें किसी से भी उन्हें पूछने की ज़रूरत नहीं। ऐसी स्थिति में कोई राष्ट्रवादी उनमें जाकर अपने सुधार का प्रोग्राम कैसे चला सकता है?

राष्ट्रीय भारत का इस बात पर दृढ़ विश्वास है कि अगर

विलायती माल पर सख़्त टैक्स लगा दिया जाय तो हिन्दुस्तान की दरिद्रता दूर हो सकती है। शकर का व्यवसाय हमारे सामने है। जब से इसको राज्य की ओर से प्रोत्साहन मिला है, इस देश में इस व्यवसाय की बड़ी उन्नति हुई है। १९३२ के शकर के व्यवसाय को संरक्षण-क़ानून ने ७।) प्रति हंडरवेट विलायती शकर पर टैक्स लगा दिया और १।।।-) प्रति हंडरवेट विशेष कर बाँध दिया। इस प्रकार फ़ी हंडरवेट ९-) टैक्स लग गया। इसका परिणाम यह हुआ कि जावा और अन्य देशों से विलायती शकर का जो व्यापार चलता था, बन्द-सा हो गया है। भारतवर्ष ने इस बात का दृढ़ निश्चय कर लिया है कि जहाँ तक शकर की माँग का सम्बन्ध है वह स्वावलम्बी होगा। १९३०-३१ में १०,०३,१ ७ टन विदेशी शकर हिन्दुस्तान में आई थी। १९३२-३३ में ४,०१,४४१ टन आई। आशा की जाती है कि विदेशी शकर का व्यापार और भी कम होगा। (भारत में ब्रिटिश व्यापार-रिपोर्ट १९३२-३३ सफ़ा २२३.)

कपड़े के व्यवसाय का भी यही हाल रहा है। अगर राष्ट्रीय भारत को अधिकार मिले तो विलायती माल पर सख़्त कर लगाकर और देशी व्यवसाय की ज़ोरदार उन्नति कर इस देश की दरिद्रता को पाँच वर्ष के अन्दर कम करके दिखा सकता है। परन्तु नये विधान में इस प्रकार के सुधार की कोई सम्भावना नहीं है। उसके द्वारा ब्रिटिश व्यापार की रक्षा की पूरी पूरी बन्दिश बाँध ली गई है। दफ़ा ११६ में इस बात का स्पष्ट इन्तज़ाम कर दिया गया है कि हिन्दुस्तानी व्यवसायों के साथ गवर्नमेंट ब्रिटिश व्यवसायों के मुक़ाबले में कोई रियायत न कर सकेगी। यूनाइटेड किंगडम अर्थात् इँग्लैंड में जो कंपनियाँ क़ायम हैं और हिन्दुस्तान से व्यापार कर रही हैं उन कंपनियों को प्रान्तीय और संघ-सरकार से सहायता प्राप्त करने का वही हक़ है जो किसी भी भारतीय कंपनी को हो सकता है। उदाहरण के तौर पर अगर हिन्दुस्तान में चाक़ू बनाने की कोई कंपनी खोले और प्रारम्भिक अवस्था में विलायती चाक़ू के व्यवसाय से अपने नवजात व्यवसाय की रक्षा करने के लिए यदि वह संघ-सरकार से या प्रान्तीय सरकार से सहायता या रियायत की कोई दरख़्वास्त करे तो वह दरख़्वास्त अगर मंजूर की जायगी तो इस सिद्धान्त पर कि इँग्लैंड के व्यवसायी भी अगर उसी प्रकार की सहायता या रियायत संघ-सरकार या प्रान्तीय सरकार से चाहेंगे तो उनको हिन्दुस्तान के ख़ज़ाने से दी जायगी। दुनिया के सारे राष्ट्र अपने राज्य-कोष से स्वदेशी व्यवसायों को प्रोत्साहन देते हैं। भारतवर्ष इतना न्यायप्रिय है कि वह ब्रिटिश व्यापार को नुक़सान नहीं पहुँचाना चाहता। ज़ाहिर है कि ऐसी अवस्था में भारतीय चिर-अनुभव-संपन्न ब्रिटिश व्यवसायों से अपने व्यवसायों की रक्षा नहीं कर सकेंगे। अगर व्यवस्थापक सभा में किसी ऐसे क़ानून का मसविदा पेश किया जाय जिससे विलायती माल पर विशेष कर लगता हो तो ऐसे क़ानून पर व्यवस्थापक सभायें विचार ही न कर सकेंगी और गवर्नर-जनरल उसे अपने विशेषाधिकार से रद कर देंगे।

नये विधान के अनुसार व्यवस्थापक सभाओं-द्वारा हम भारत की मुख्य मुख्य समस्याओं का स्पर्शमात्र भी नहीं कर सकते और समस्त महत्त्वपूर्ण सुधारों की ओर इञ्च भर भी क़दम नहीं बढ़ा सकते। जब से राष्ट्रवाद का जन्म हुआ है, देश की आर्थिक उन्नति के लिए लोग यही चिल्लाते आये हैं कि फ़ौज का ख़र्च कम करो। सरकारी अफ़सरों की तनख़्वाहें घटाओ। पेंशन, सूद, मुनाफ़ा आदि मदों में करोड़ों रुपयों की जो सम्पत्ति भारतवर्ष से प्रतिवर्ष निकल जाती है उसको रोको। देश में अपने व्यवसाय खोलो और उनकी उन्नति के लिए विलायती माल पर प्रतिबन्ध लगाओ। राष्ट्र की यह पुकार न मालूम कब से चली आ रही है। नये विधान के अनुसार हम इन प्रश्नों में से एक प्रश्न को भी नहीं छू सकते। इन सुधारों में एक सुधार को भी हम हाथ नहीं लगा सकते। यही इस विधान का तथ्य है।

मोतीलाल नेहरू

लेखक, पण्डित मोहनलाल नेहरू

"उनमें एक बड़ा ऐब था जो बहुधा उनकी सारी ख़ूबियों को ढक देता था। वह थाज वक़्त उनकी कड़वी ज़बानी थी। अगर परमेश्वर ने उन्हें ज़बान ज़रा मीठी दी होती जैसी पूज्य मालवीय जी को दी है तो शायद भारतवर्ष के पिछले पन्द्रह वर्ष के इतिहास में कोई दूसरी ही कहानी लिखी जाती।" इन सुन्दर पंक्तियों से पंडित मोहनलाल नेहरू ने अपने इस महत्त्वपूर्ण लेख को समाप्त किया है और इस खंड में १९०७ से लेकर उनके अन्तिम समय तक की बातों का, किस प्रकार वे राजनीति में आये और अपने किन गुणों से देश के पूज्य नेता बन गये, आदि का बड़े ही सुन्दर ढङ्ग से वर्णन किया है।

(१२)

१९०७ में मोतीलाल उस मानी में राजनैतिक क्षेत्र के पास भी नहीं फटके जिस मानी में वह आज-कल समझा जाता है। मगर वे हिन्दुस्तानियों के हक़ के वास्ते सदैव लड़ते रहे। १८९३ में जब जज महमूद ने हाईकोर्ट की जजी से इस्तीफ़ा दिया तब उनके स्थान में एक अँगरेज़ जज (बरकिट) बिठाये गये। मोतीलाल ने यह आन्दोलन उठाया कि हिन्दुस्तानी ही जज होना चाहिए। सर जान एज ने इस पर उनसे कहा भी कि तुम अभी उसके मुस्तहक़ नहीं हो, जल्दी क्या है। दस बरस वकालत करते नहीं हुए थे। उन्होंने यही



जवाब दिया कि अपने वास्ते नहीं कोशिश है। मुझे जजी की ज़रूरत नहीं। बहुत आन्दोलन के बाद जब प्रमदाचरण बनर्जी जज मुक़र्रर किये गये थे इसके बरसों बाद बङ्गाल विभाजन का आन्दोलन चला। उन्होंने उसमें दिलचस्पी न ली, मगर उनकी सहानुभूति बङ्गालियों के साथ थी। तो भी चाहना हो या न हो, वे उस क्षेत्र में खिंचे जा रहे थे। मुबारकअली का कुल खानदान उन्हीं के साथ रहता था। मुबारकअली के पुत्र मनज़रअली ने कालेज के ज़माने में एक लेख लिखा था, जिससे उनके प्रिंसिपल जेनिंग्ज़ नाराज़ हो गये थे और उन्हें कालेज से अलग कर दिया था।

एक अँगरेज़ की नाराज़ी सारे गवर्नमेंट की नाराज़ी थी। मनज़रअली और उनके एक मित्र सुन्दरलाल गर्मदल के युवक समझे जाते थे। उस समय गर्मदल की हार हो चुकी थी और इलाहाबाद शहर में सिवा इन युवकों के सभी नेता या भावी नेता नर्मदल में थे। मनज़रअली के पीछे सी० आई० डी० रहने लगी। हमारे सी० आई० डी० के सिपाहियों का क़ायदा था और अब भी है कि जिसका पीछा करते हैं उससे छिपाते नहीं। सब काम खुले ख़ज़ाने करते हैं। वे सिपाही मनज़रअली का पीछा करने में बहुधा आनन्दभवन के फाटक पर आकर बैठा करते थे। यह बात मकान के मालिक को बहुत नापसंद थी। मगर उस ज़माने में वे न केवल अँगरेज़ के, बरन अँगरेज़ी गवर्नमेंट के बड़े ही भक्त थे। सी० आई० डी० से पीछा छुड़ाने को मनज़रअली को घर में घुसने की मनाही होगई और उन्हें मुद्दतों देश-विदेश में घूमना पड़ा। कांग्रेस के नर्मदलवालों ने इस घटना के बाद उन्हें अपने तरफ़ समझा।

बङ्गाल-विभाजन के आन्दोलन के समय से उनकी राजनैतिक राय में कुछ परिवर्तन होने लगे थे, मगर अँगरेज़-जाति पर भक्ति बनी रही। एक दफ़े उसी ज़माने में कोई बङ्गाली युवक योगेन्द्रनाथ चौधरी के घर पर बङ्गाल से आकर ठहरा। योगेन्द्रनाथ के घर पर पुलिस की दौड़ जा पहुँची और यद्यपि वे सरकार के शुभचिन्तक और परमभक्त थे, उनके घर की तलाशी हो गई। उस ज़माने में तलाशी का होना बेइज़्ज़ती समझी जाती थी। तलाशी से चौधरी महोदय बहुत दुःखी हुए और उनके मित्रों में सनसनी फैल गई। उन्होंने इस तलाशी से अपना बड़ा अपमान माना। वे मोतीलाल के मित्र थे। जब संध्या-समय आनन्दभवन की घास पर मित्र-मंडली बैठी तब वहीं तलाशीवाली चर्चा चलने लगी। उसी दिन की वह घटना थी। मित्रमंडली में कोई भी ऐसा न था जिसने उस दिन तक राजनैतिक क्षेत्र में नाम-मात्र को भी पैर रक्खा हो। सभी मित्र सन्नाटे में बैठे थे। एक ने मोतीलाल से पूछा कि अगर तुम्हारे यहाँ तलाशी हो तो तुम क्या करो? वे बोले—"अँगरेज़ी कपड़े सब फेंक दूँ। अचकन, पायजामा और दोपल्ली टोपी लगाकर कचहरी दूसरे ही दिन से जाऊँ"। उस समय तक गवर्नमेंट के ख़िलाफ़ नाराज़गी ज़ाहिर करने का सबसे बड़ा ढङ्ग उन्होंने यही सोचा था।

हमारी शक्तिशाली सरकार को या उसके अफ़सरों को शायद कभी यह शौक़ नहीं रहा कि अपने दोस्तों को ख़ुश बनाये रहें। उसे क्या परवा, कोई ख़ुश हो या नाराज़। जब तक हमारी भक्ति उस पर बनी है वह अपना काम निकालेगी। हमारी भक्ति के हटते ही दूसरे भक्तों से वही नाता जोड़ेगी और उनसे काम निकालेगी। मोतीलाल की भक्ति को धक्का लगा तो लगे। मगर वह धक्का ऐसा न था जिससे मोतीलाल की भक्ति सारी की सारी लुप्त हो जाती। वह ज़माना आने में कुछ देर थी।

मैंने कहा है कि सरकार के ही नहीं, सरकार के अँगरेज़ अफ़सरों के भी मोतीलाल बड़े मद्दाह थे। अँगरेज़ के इंसाफ़, अँगरेज़ के इन्तज़ाम, अँगरेज़ की लियाक़त का सिक्का उन पर जमा रहता। वे स्वयं हर अँगरेज़ी बात को पसंद करते। अपना रहन-सहन अँगरेज़ी रखते। देशी सूरत के कपड़ों—विशेषकर धोती से बड़ी घृणा थी। अपने उन रिश्तेदारों तक को जो धोती पहनकर उनके सामने आते, वे नीची दृष्टि से देखते थे। ढीले पायज़ामे तक को वे केवल घर में रहने तक स्वीकार कर सकते थे। स्वयं वे घर में ढीला पायजामा पहनते।

उनकी यह कमज़ोरी अँगरेज़ों को ख़ूब मालूम थी। एक दफ़े आनन्दभवन के फाटक पर दीवार की नींव खोदी जा रही थी और इसे देखने वे स्वयं ढीले पायजामे में चले गये थे। पीछे से गाड़ी पर हाईकोर्ट के एक जज सर राबर्ट एकमन आ रहे थे। उन्हें ज्यों ही ख़बर हुई कि जज एकमन की गाड़ी आ रही है, वे नींव में कूद पड़े। मगर उसके पहले एकमन उन्हें देख चुके थे। वे बड़े मसख़रे आदमी थे। गाड़ी आगे निकल गई, मगर वे मुँह उसी तरफ़ किये रहे। जब मोतीलाल को इत्मीनान हो गया कि गाड़ी चली गई तब वे गढ़े से निकले। मगर उनकी तो आँखें इधर ही अटकी थीं। उनके निकलते ही उन्होंने दूर से हाथ हिलाकर सलाम किया और सीधे बैठ गये।

अभी तक वे राजनैतिक क्षेत्र में भाग नहीं लेते थे। कुछ युवकों ने जिनमें तेजबहादुर सप्रू अगुआ थे, यह सलाह की कि वे प्रोविंशिल कान्फ़रेंस के जो मार्च १९०७ में इलाहाबाद में होनेवाली थी, सभापति बनाये जायँ, और इस प्रकार राजनैतिक क्षेत्र में खींच लाये जायँ। मोतीलाल न केवल माडरेट थे, बरन अँगरेज़ी सरकार के भक्त भी थे। उनसे माडरेट लोगों को यह आशा नहीं हो सकती थी कि आगे चलकर वे स्वयं उनके राजनैतिक विचारों से घबराकर उनके पास आते भी डरेंगे। मगर ऐसा ही हुआ और उनके वे मित्र जो रोज़ साथ खाने-पीनेवालों में थे, उनसे आगे चलकर खिंच गये।

उस ज़माने के राजनैतिक लीडरों में शायद इस बात का विचार दो ही चार को पैदा हुआ था कि कांग्रेस का आन्दोलन सर्वसाधारण के वास्ते है और जो कुछ भी कार्रवाई की जाय वह ऐसी भाषा में की जाय जो रास्ता चलता कोई भी व्यक्ति समझ सके। कांग्रेस की बैठकों के वास्ते तो बहाना भी था कि सब प्रतिनिधि एक ही प्रांत की भाषा नहीं समझ सकते, परन्तु अपने नगर—अपने सूबे में अपने ही लोग अँगरेज़ी में ही भाषण करना अधिक पसंद करते थे। इतना ही नहीं, कुछ लोग ऐसे भी थे, और उनमें से दो-एक अब भी हैं, जो हिन्दुस्तानी बोलने की दरख़ास्त करने पर ही नाराज़ हो जाते थे। वे कहते कि हमें जो कुछ भी मिलेगा, अँगरेज़ी गवर्नमेंट से मिलेगा। इस कारण ऐसी भाषा में भाषण होने चाहिए जो सरकारी अफ़सर समझ सकें। मोतीलाल के भी यही विचार शुरू में थे और उन्होंने अपने लखनऊ के भाषण में ऐसा कहा भी था। परन्तु आगे चलकर उस विचार में बड़ा भारी परिवर्तन हो गया। इस राय के परिवर्तन पर लिबरल दल ने उन्हें ताना भी मारा था कि जिस पर उनका उत्तर था कि "एक ही राय पर स्थिर रहना गदहों की ख़ासियत है।"

(१३)

चौधरी महोदय के घर की तलाशी ने सरकार के इन्साफ़ के भक्तों की भक्ति को धक्का पहुँचा दिया था। मगर यह धक्का काफ़ी ज़बर्दस्त न था। मोतीलाल भी लीडरों की श्रेणी में पदार्पण कर चुके थे और तिलक, गोखले, मिसेज़ बेसेंट इत्यादि उनसे बहुधा मशविरा किया करते थे। गांधी का नाम भी काफ़ी फैल चुका था और उनकी सचाई व दूरन्देशी के सभी क़ायल थे। वे नये नये हिंदुस्तान लौट कर आये थे। इलाहाबाद में किसी कांग्रेस के वास्ते प्रेसिडेंट चुनने की बात हो रही थी। गोखले और मिसेज़ बेसेंट मौजूद थे। मुझे इस वक़्त यह ख़याल नहीं कि तिलक थे या नहीं, मगर कुछ शक है कि वे भी थे। प्रश्न उठा था कि गांधी कांग्रेस के प्रेसीडेंट बनाये जाने के क़ाबिल हैं या नहीं। तब यह हुआ कि अभी उन्हें प्रेसीडेंट बनाना ख़तरे से ख़ाली नहीं है। इस विषय में मतभेद न था।

मिसेज़ बेसेंट की मोतीलाल को काफ़ी क़द्र थी। वे इलाहाबाद आतीं तब उन्हीं के साथ ठहरतीं। भारतवर्ष की सेवा के वास्ते उन्होंने अपने तईं अर्पण कर दिया था। होमरूल-लीग वे स्थापित कर चुकी थीं। मगर इलाहाबाद में कोई शाखा नहीं क़ायम हुई थी। १९१७ में गवर्नमेंट ने उन्हें होमरूल-लीग के कामों की वजह से क़ैद कर दिया। वह महायुद्ध का अंत-समय था और गवर्नमेंट को शायद यह डर होगा कि यह संस्था उसे कमज़ोर समझकर सिर न उठा ले। मगर इसका असर उलटा ही हुआ। माडरेटों में भी सनसनी फैल गई। जहाँ जहाँ इस लीग की शाखायें नहीं बनी थीं, बन चलीं, और इलाहाबाद भी नहीं पिछड़ा। यहाँ मोतीलाल उस शाखा के सभापति बनाये गये और लीग के उद्देश का प्रचार ज़ोर-शोर से करने लगे। जो काम भी वे उठाते उसमें जी-जान से लग जाते और इस काम को भी उसी तरह किया। यहाँ से वे बराबर ही गवर्नमेंट से टक्कर लेते रहे।

इसके कई वर्ष पहले से वे प्रान्तीय कौंसिल के सदस्य भी रह चुके थे। पहले-पहल १९०९ में उनका चुनाव हुआ था। चुनाव के समय वे विलायत-यात्रा कर रहे थे। तब उम्मीदवार को मंज़ूरी के दस्तख़त नहीं करने होते थे। इससे उनके मित्रों ने उनका नाम भेज दिया था। सरकार के साथ उनका बराबर सहयोग रहा, किंतु तब भी वे कोई ऐसी बात बर्दाश्त नहीं कर सकते थे जिसमें वे अपनी

बेइज़्ज़ती समझते हों। एक दफ़े सर जेम्स मेस्टन से वे नाराज़ होकर कौंसिल छोड़कर चल दिये। पंडित सुन्दरलाल भी उसी कौंसिल के सदस्य थे। उन्होंने बीच-बचाव करके फिर मेल कराया।

'लीडर' अख़बार के वे उसके जन्म से डाइरेक्टर थे। उसे अब वे नर्मदल का पत्र समझते थे और इसी से उसकी डाइरेक्टरी से इस्तीफ़ा दे दिया। गर्मदल के पास कोई पत्र नहीं था और उन्होंने १६१६ में 'इंडिपेंडेंट' अख़बार निकाला। बड़े धूमधाम से इस नये पत्र ने जन्म लिया और शुरू से ही सरकार बहादुर के दरवाज़े पर टकराने लगा। जनता ने इसे तुरन्त ही अपनाया और बहुत कुछ इसकी सहायता की, जिसकी वजह से यह चार वर्ष तक जीवित रहा। इस पत्र के चलाने के वास्ते मोतीलाल ने कम्पनी क़ायम की थी, मगर अधिकतर ख़र्च अपने ही पास से देना पड़ा। कम ख़र्च पर कोई काम करने को वे बनियापन कहा करते थे और इस अख़बार को भी चलाने में मोटे वेतन पर कितने ही कर्मचारी रक्खे गये। इतना ही नहीं, उनके वास्ते चाय-पानी-टोस्ट, अंडों का भी कम्पनी के तरफ़ से प्रबन्ध हुआ। जब वे कोई भी राय क़ायम कर लेते तब वह ग़लत हो या सही, उससे मुश्किल से डिगते थे। जिस किसी ने भी उनसे ख़र्च की कमी को कहा उसे उन्होंने झिड़क दिया। ऐसा न था कि वे यह न जानते हों कि दूकानदारी 'बनियेपन' से ही चलती है। मगर उनकी चाहना यह थी कि जब तक भी वह चले, शाहख़र्ची से ही चले। मगर ऐसा होना असंभव था, क्योंकि इधर तो सरकारी अफ़सर उसके दुश्मन थे ही, दूसरा दुश्मन, पैसे की तंगी भी आ खड़ी हुई। अगर सरकारी आज्ञा से 'इंडिपेंडेंट' बंद न होता तो भी देर-सवेर वह पैसा न होने से बंद हो जाता। मगर उस नौबत के आने के पहले ही सरकार ने उसकी रोक-थाम कर दी।

रौलट-एक्ट पास कर दिया गया था। उसके ख़िलाफ़ आन्दोलन के दबाने में फ़ौजी क़ानून पंजाब में जारी था। जनरल डायर का जलियाँवाला बाग़ का काण्ड हो चुका था। पंजाब की जनता बहुत डरी हुई थी, सैकड़ों की संख्या में लोग पकड़े जाकर सज़ायें पा रहे थे, बाहर के प्रान्तों से किसी का भी पंजाब घुसना मना हो गया था। गांधी, मालवीय और मोतीलाल को ख़ास मनाई थी। कांग्रेस ने एक जाँच-कमिटी नियत की थी, जिसके सभापति मोतीलाल थे। मगर जब तक वहाँ घुसने न पावें, जाँच कैसे करें ? आज्ञा-भंग का आन्दोलन उस समय तक नहीं उठा था। मगर वहाँ जाने के पहले अपने काम का ढंग ठीक करना भी ज़रूरी था। मोतीलाल उसी में लगे थे।

जब वे पंजाब गये तब पहले तो उन बेगुनाह ग़रीब-दुखियों के जिन्हें कड़ी क़ैद हुई थी, मुक़द्दमें लड़ने में मसरूफ़ रहे। लेना तो दूर, कितना कुछ तो अपने पास से ही ख़र्च करना पड़ा। उसके बाद महीनों उन अत्याचारों की तहक़ीक़ात करते रहे जो फ़ौजी क़ानून के नाम पर जनता पर किये गये थे। इसकी रिपोर्ट भी छपी तैयार है और पढ़नेवाले उनके परिश्रम को समझ सकते हैं। अपना लाखों रुपये का काम छोड़कर यह काम बिना मेहनताना लिये वे कर रहे थे और उससे अधिक परिश्रम से जो मेहनताने के काम में करते। काम लेकर वे अधूरा करना तो जानते ही न थे।

इस समय तक उनकी उस भक्ति को जो सरकार के तरफ़ उनकी थी, पूरा धक्का लग चुका था और अब वे पूरी तरह ताल ठोंक कर लड़ने को तैयार हो चुके थे। कांग्रेस ने असहयोग की घोषणा कर दी और उन्होंने वकालत छोड़कर पूरी तरह असहयोग-आंदोलन में भाग लिया।

वकालत का बहिष्कार करना कांग्रेस की पहली पुकार थी। लोगों का ख़याल यह था कि वकील लोग नेता तो बन बैठते हैं, किंतु कुछ त्याग करने को तैयार नहीं रहते। शायद वकीलों के त्याग की शक्ति देखने को ही कांग्रेस ने 'वकालत का बहिष्कार करो' की पुकार उठाई हो। सैकड़ों वकील जिनमें मोतीलाल और चित्तरंजनदास भी थे, वकालत छोड़ बैठे। यह सच है कि बहुत पैसा कमानेवाले थोड़े से ही ऐसे थे जिन्होंने कांग्रेस की इस पुकार को सुना, किन्तु थोड़ी आमदनीवालों का त्याग बहुत आमदनीवालों से अगर अधिक नहीं तो कम भी नहीं है। जो भी हो, मोतीलाल ने लाखों रुपये की वकालत को छोड़ दिया और दिलोजान से स्वराज-प्राप्ति की तरफ़ लग गये।

दूसरी पुकार कांग्रेस की थी विदेशी कपड़ों का बहिष्कार। विदेशी कपड़ों की कमी मोतीलाल के पास न थी। अलमारियों की अलमारियाँ उन कपड़ों से भरी पड़ी थीं। विदेशी कपड़ों की होली अक्सर हुआ करती थी। इलाहाबाद में कई होलियों में हज़ारों रुपये का उनका यह कपड़ा जलाया गया। सैकड़ों शर्टें जिनके वास्ते यह ग़लत मशहूर था कि फ़्रांस से धुलकर आती हैं, पचासों सूट, टाई-कालर, हैट दम के दम में जल कर राख हो गये। किसी किसी ने कहा भी कि ये कपड़े जलाये न जाकर ग़रीबों को बाँट दिये जायँ। परन्तु बड़े नेताओं ने सुनाई नहीं की। इस भीषण अग्निकांड से केवल एक सूट बचाया गया, जो सम्राट् के दरबार में पहनकर जाने के वास्ते ख़ास तौर पर हज़ारों रुपये का बनवाया गया था। इसके बचाने की सूचना अख़बारों में दे दी गई थी। इस पर एक अँगरेज़ ने यह समझ कर कि वह रुपये के मोह से नहीं जलाया गया, उनसे पूछा कि उस सूट को क्यों बचाया। इस पर मोतीलाल ने उत्तर दिया कि अभी कांग्रेस ने 'इंडपेंडेंस' की घोषणा नहीं की है। इसके बाद से वे बराबर हिन्दुस्तानी कपड़े पहनते रहे, यहाँ तक कि धोती भी जिससे उन्हें पहले चिढ़ थी, पहना करते।

असहयोग-आंदोलन ज़ोर-शोर से जारी था। संयुक्त-प्रांत में मोतीलाल ही उसके बड़े नेता थे। यों तो उनका नेतृत्व सारे देश में माना जाता था। १६२१ में प्रिंस आफ़ वेल्स हिन्दुस्तान का दौरा करने आये थे। कांग्रेस ने उनका स्वागत करने से इनकार कर दिया था। सरकार के तरफ़ से बड़े इन्तज़ाम थे और कहा जाता था कि पैसा देकर देहाती जगह जगह जमा किये जा रहे हैं कि उनका स्वागत करें। इलाहाबाद में भी यही ख़बर थी और स्वागत के बहुत इन्तज़ाम हो रहे थे। सड़कें जिनपर से वे ले जाये जाते, ठीक-ठाक की जा रही थीं। एक वह भी सड़क थी जिस पर मोतीलाल की विशाल कोठी खड़ी थी। वहाँ अगर मैं कहूँ कि मोर्चाबन्दी थी तो ग़लत न होगा। सर हारकोर्ट बटलर गवर्नर थे। वे न मालूम कितने दफ़े इसी कोठी के मालिक की दावतें खा चुके थे। इतना ही नहीं, वे उसके मालिक की मित्रता का भी दम भरते थे। न मालूम उन्हें क्या डर था कि उन्होंने कांग्रेस-कमिटी अधिकतर सदस्यों को युवराज के आने के एक ह[illegible] पहले गिरफ़्तार करा लिया। मोतीलाल तो सबके [illegible] ही थे। वे कैसे बच सकते थे ?

अगर बटलर महोदय सारी कमिटी को क्या, [illegible] कांग्रेस के सदस्यों को कारागार भिजवा देते या उससे ज़्यादा कोई दंड देते और मोतीलाल को हाथ न लग[illegible] तो इलाहाबाद के शहर में युवराज का स्वागत अब[illegible] होता। मगर उनकी गिरफ़्तारी से सनसनी फैल गई। नती[illegible] यह हुआ कि जब युवराज आये तब बिलकुल स[illegible] सड़कों ने उनका स्वागत किया। उस दिन न तो स्कूल [illegible] बच्चे ही घर से निकले, न देहाती ही कहीं दिखाई प[illegible] इलाहाबाद ने अपने सर्वप्रिय नेता के अपमानित [illegible] जाने से बड़ा क्षोभ प्रकट किया। उन्हीं के दरवाज़े पर [illegible] मालूम कितने आदमी पकड़े गये। अभियोग यह था [illegible] उनकी दीवार पर जिसके सामने से युवराज जानेवाले [illegible] जनता की तरफ़ से लिखा जाता था "No wellcom[illegible] to Prince" (नो वेल्कम टु प्रिंस)।

(१४)

मैंने कहा, मोतीलाल सर्वप्रिय थे, हिन्दू और मुस[illegible] मान दोनों ही उन्हें आदर और प्रेम की दृष्टि से देख[illegible] थे। धार्मिक झगड़ों तक में हिन्दू उन्हें अपना नेता बना[illegible] और मुसलमान यह जानते थे कि वे कभी बेइनसाफ़ी [illegible] करेंगे। एक दफ़े रामलीला के समय आपस में झगड़ा [illegible] जाने से शहर में काफ़ी तनातनी थी। हिन्दुओं की कितनी ही सभायें हुईं, जहाँ वे बुलाये गये और आख़िर में कुछ-न-कुछ समझौता करा दिया। जो मान उन्होंने अपने शहर में पाया था वह अपने ही शहर में कम आदमियों को प्राप्त होता है। दूसरे शहरों में तो बहुतेरों का मान हो चुका है और है भी। घर की मुर्ग़ी दाल बराबर मशहूर है। वही मसला घर के बड़े आदमियों पर लागू होता है। उनका यह मान इस वास्ते नहीं था कि वे नामी वकीलों या अमीर आदमियों में थे। उनसे अधिक अमीर और नामी वकील दूसरे भी मौजूद थे। न इस मान का यही कारण था कि वे सर्वसाधारण को कुछ दे देते थे। इसका कारण बड़[illegible]

इतना ही था कि वे ज़्यादातर सबसे अमीर हो या ग़रीब, हिन्दू हो या मुसलमान, हँसकर बात करते थे। अगर कोई दुख-दर्द कहे तो सुन लेते थे, चाहे कुछ कर सकें या न कर सकें। उनका ज़ोर का 'क़हक़हा' और मज़ाक़ की बातें सबके वास्ते थीं। नौकरों तक के दुख-दर्द वे सुन लेते और उनकी सहायता करते। वे उन अमीरों में न थे जो यह समझने लगे हैं कि नौकर से सीधे मुँह बोलने से वह ख़राब हो जायगा। क्रोध के समय तो उनके सामने आने की किसी की हिम्मत तक न होती।

ऐसे आदमी को पकड़कर गवर्नमेंट ने अपने पैर में कुल्हाड़ी मारी। दूसरे दिन सुबह सारा बाज़ार बन्द था। प्रत्येक लीडर की गिरफ़्तारी में कांग्रेस-कमिटी को हड़ताल करने के वास्ते ज़ोर लगाना पड़ता था और उस वक़्त भी जब तक उसने रोज़ हड़तालें करा कर अपने को बदनाम नहीं किया था। मगर इनकी गिरफ़्तारी पर किसी को कहने की ज़रूरत नहीं पड़ी। अपने आप ही कुल हिन्दू और मुस्लिम दूकानें बन्द हो गईं। सिर्फ़ शहर ही में नहीं, इधर-उधर के सारे ही बाज़ार बन्द हो गये। वही हाल उनकी हर अगली गिरफ़्तारी और स्वर्गवास होने पर हुआ।

युवराज के पहुँचने के पाँच या छः दिन पहले वे गिरफ़्तार किये गये थे और उनकी शहर में मौजूदगी, चाहे वह जेल में ही क्यों न हो, इतनी ख़तरनाक समझी गई कि जेल में दूसरे दिन शहर के कलक्टर ने छः महीने की क़ैद का हुक्म सुनाया और उसी रात मोटरकार पर बैठा कर लखनऊ के वास्ते रवाना कर दिया। उस वक़्त यह किसी से नहीं बताया गया था कि उन्हें कहाँ भेज रहे हैं। इस कारण उन लोगों को जिन्हें जेल में उनके साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त था, बहुत परेशानी रही। मगर पीछे मालूम हुआ कि यह लुका-छिपी साथी क़ैदियों के वास्ते नहीं थी, वरन उस जयकार को बचाने को थी जिसके शहर में ख़बर होने से उनके रास्ते में होने का सन्देह था।

लखनऊ-ज़िला-जेल उन राजनैतिक क़ैदियों के वास्ते रक्खा गया था जो ऊँचे दर्जे में रक्खे गये थे। कुछ दिन तक वे आपस में मिलने भी पाते रहे थे। मोतीलाल के वहाँ रहते कोई सख़्ती उस दर्जे के क़ैदियों पर नहीं की गई थी। कुछ दिन तो वह जेल नहीं, बाज़ार बन गया था। उनका मान लखनऊ में उतना ही था, जितना कहीं और। जनता पर गवर्नमेंट यह ज़ाहिर करना चाहती थी को वह कोई ख़ास सख़्ती जेल में, कम-से-कम, उन पर नहीं करती। मेल-मुलाक़ात के सब क़ायदे तोड़ दिये गये थे और जो भी मोतीलाल से मिलना चाहे उसके हाथ पर मुहर (Interview granted) लगा दी जाती थी और वह वे तकल्लुफ़ जेल के हाते में प्रवेश कर सकता था। न कहीं उसे दस्तख़त करने पड़ते, न किसी जेल के कर्मचारी के साथ चलना पड़ता। सैकड़ों आदमी रोज़ दर्शनों को आते और खाने-पीने के तरह तरह के पदार्थ दे जाते। एक सज्जन तो जेल में उनकी तस्वीर भी खींच ले गये थे। जेल में कुछ मामूली क़ैदी थे जो इन ख़ास क़ैदियों की ख़िदमत के वास्ते दिये गये थे। उन्हें कुछ रोज़ तक काफ़ी खाना-पीना मिला। यों तो जेल में रेता मिली रोटी और उबाली दाल या तरकारी के सिवा कुछ खाना ही जुर्म था। जब तक मोतीलाल इन ख़ास क़ैदियों के साथ रहे वे आपस में मिलने पाते थे, परन्तु उनके पहाड़ भेजे जाने पर वे सब तितर-बितर कर दिये गये।

जेल की 'वीविंग फ़ैक्टरी' में जवाहरलाल भी कुछ दिन पिता के साथ ही रखे गये। मगर जब दोबारा वे उसी जेल में आये तब दूसरी बारिक में उनको स्थान दिया गया। मोतीलाल के दो भतीजे उनके पहाड़ जाने तक उनके साथ ही रहने दिये गये।

जो आदमी रात और दिन काम करता रहा हो वह जेल में बेकार कैसे बैठ सकता है? किताबें मँगाने की मनाही न थी। वे बहुधा पढ़ा करते थे। होमियोपैथिक इलाज भी करने का शौक़ था। साथी क़ैदियों का इलाज भी करते यहाँ तक कि उनके मरीज़ों में एक हकीम भी थे! कभी कभी भोजन बनाने का शौक़ भी करते।

जेल का सुपरिंटेंडेंट एक अँगरेज़ था। सरदी भर तो उसने जेल के बारिक में ताला नहीं डाला था, मगर मार्च का महीना आने पर न मालूम उसे क्या सूझी कि एक दिन कहने लगा कि सरकारी आज्ञा आई है कि ताला

डाला जाय। कहाँ तो वे यह सोच रहे थे कि अब मैदान में सोने लगें, कहाँ यह हुक्म मिला। इस पर कुछ आन्दोलन करना पड़ा, जिस पर दो-चार दिन बाद मैदान में सोने की इजाज़त मिल गई। उस वक़्त सबका ख़याल यह था कि सरकारी आज्ञा मोतीलाल के वास्ते नहीं आई है, यह केवल सुपरिंटेंडेंट की छेड़ख़ानी थी, जैसी वह कभी कभी किया भी करता था। वह आदमी ज़बान का बड़ा ही मीठा था, मगर दिल की ख़बर किसे होती है?

गवर्नमेंट को मोतीलाल की कुछ ख़ातिर अवश्य मंज़ूर थी। मगर जेल का सुपरिंटेंडेंट उसमें भी रोक-थाम करना चाहता था। गरमी में उनके वास्ते टट्टी लगाने का हुक्म आया। वह ख़ैरख़्वाही दिखाने को उनसे कहने लगा कि अगर तुम टट्टी लगाना चाहो तो अपने ख़र्च पर लगा सकते हो। उनके इनकार करने पर उसने कुछ ख़स की टट्टियाँ बनवाईं। वह रोज़ उनके पास घंटे पौन घंटे बैठता था और अपना दुखड़ा रोया करता। उसे बड़ी शिकायत यह थी कि किसी दूसरे अफ़सर को उसके होते इन्स्पेक्टर जनरल कर दिया गया था। अपनी अर्ज़ी देने में भी उसने उनसे सलाह ली थी।

दुबारा या तिबारा जेल जाने पर वह सब दिखावा हटा दिया गया। आख़िर दफ़े तो वे बीमारी की हालत में ही गिरफ़्तार किये गये और वह बीमारी जेल में ज़ोर पकड़ गई। बीमारी की रोक-थाम न देख सरकार ने उन्हें छोड़ दिया, मगर वह पूरा काम कर चुकी थी और कुछ ही दिनों के बाद उनका स्वर्गवास हो गया।

उनकी बीमारी जब बहुत ज़ोर पकड़ चुकी थी उसी समय से लार्ड अरविन से कुछ मामले की बातें गांधी जी की होने लगी थीं। यद्यपि वे बीमार थे और हालत काफ़ी नाज़ुक थी, हर बात में उनसे सलाह ली जाती थी। कांग्रेस के सबही लीडर आनन्दभवन में उपस्थित थे।

मोतीलाल ने एक दफ़े कहा था कि "मैं मौत से भी एक दफ़े लड़ जाऊँगा।" वास्तव में उन्होंने वही करके दिखा दिया। एक रात हालत बहुत ख़राब हो गई। एक मिनट वे बैठ न सके। बेचैनी बहुत थी, दम उठते और दम बैठते कभी कभी टहलने लगते। जिन लोगों को उनकी आख़िरी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त था वे हर मिनट पर उनका अन्त समझ रहे थे। मगर सवेरा हो गया। सुबह तबीयत ठहरते ही वे अपनी मामूली हँसी हँसे और मुँह-हाथ धोकर अपनी मामूली जगह बैठ गये।

वे आम-तौर पर डाक्टर या हकीम का कहना आँख बन्द कर नहीं माना करते थे। मगर उस सुबह डाक्टरों को बुलाकर कहा, तुम मुझे लखनऊ ले जाना चाहते हो तो वह भी करके देख लो। गांधी जी भी मौजूद थे। उसी दिन मोटर से लखनऊ सब चले गये। तीसरे या चौथे दिन दीपक बुझ गया।

(१५)

बेऐब कोई नहीं होता। हुनर के साथ ऐब भी लगे ही रहते हैं। रामचन्द्र जी भी बेऐब न थे। अगर होते तो बालि को छिपकर क्यों मारते?

मोतीलाल को ग़ुस्सा जल्दी आ जाता था और उसके आवेश में वे ऐसी बातें तक कर देते थे जिनके वास्ते वे पीछे पछताते थे। एक दफ़े एक कहार को किसी चीज़ की चोरी के शक पर इतना मारा कि वह बेदम हो गया। उसका फिर इलाज करवाते रहे। ग़ुस्से में वे अपना-पराया नहीं देखते थे। जवाहरलाल तक का जो उस ज़माने में छोटा-सा बच्चा था, इस शक पर कि उसने कोई चीज़ बिना पूछे उठा ली है, इतना मारा कि उसके बदन में नीलें पड़ गईं।

वे बड़े कुनबा-परवर थे। कोई भी बाप अपने पुत्रों के वास्ते उससे ज़्यादा नहीं करता जो उन्होंने अपने भतीजों-भानजों के वास्ते किया। कितनी ही विधवायें और कितने ही विद्यार्थी उनके यहाँ वज़ीफ़ा पाते जिसकी सिवा मुबारकअली के किसी को ख़बर तक न होती।

इतना होते भी उनमें एक बड़ा ऐब था जो बहुधा उनकी सारी ख़ूबियों को ढँक देता वह उनकी बाज़ वक़्त कड़वी ज़बानी थी। कभी कभी तो उनका एक शब्द उन्हीं के सारे किये-कराये को धो देता। अगर परमेश्वर ने उन्हें ज़बान ज़रा मीठी दी होती जैसी पूज्य मदनमोहन मालवीय जी को दी है तो शायद भारतवर्ष के पिछले पन्द्रह वर्ष के इतिहास में कोई दूसरी ही कहानी लिखी जाती।

वैशाली

लेखक, श्रीयुत मथुराप्रसाद दीक्षित

भारत में वैशाली जैसी कितनी ही प्राचीन नगरियों के खँडहरों में उसका प्राचीन गौरव लुप्त पड़ा है। इस लेख के लेखक ने वैशाली के इतिहास का यहाँ उल्लेख कर उसकी खुदाई करने तथा उसका एक इतिहास लिखा जाने की आवश्यकता बतलाई है।

मुजफ़्फ़रपुर से लगभग २५ मील पश्चिम और हाजीपुर से प्रायः १३-१४ मील उत्तर बसाढ़ नाम का एक गाँव है। इस गाँव से सटे हुए उत्तर की ओर एक बहुत बड़े गढ़ के खँडहर हैं, जो 'राजा विशाल का गढ़' के नाम से विख्यात हैं। इस गढ़ से क़रीब १॥ या २ मील उत्तर-पश्चिम में एक विशाल शिलास्तम्भ है, जिसे पार्श्ववर्ती ग्रामीणों ने 'भीमसेन की लाठी' के नाम से मशहूर कर रक्खा है। पुरातत्त्ववेत्ताओं का कहना है कि बौद्धकालीन लिच्छवियों की वैशाली यही है।

वाल्मीकि-रामायण में दिये गये भौगोलिक वर्णन के अनुसार इक्ष्वाकु-वंशियों की वैशाली जिसे राजा विशाल ने बसाया था, यही हो सकती है, दूसरी नहीं। आश्चर्य नहीं कि जो स्थान आज 'राजा विशाल का गढ़' के नाम से प्रसिद्ध है उस पर किसी समय राजा विशाल का क़िला अथवा प्रासाद रहा हो। सम्भव तो यह भी है कि गङ्गा को पार कर ब्रह्मर्षि विश्वामित्र के अनुशासन पर राम और लक्ष्मण इसी प्रासाद में अपने वंशीय राजा सुमति से भेंट कर मिथिला की ओर बढ़े हों।

कहने का आशय यह है कि संस्कृत और पाली, दोनों साहित्यों में वैशाली की चर्चा प्रचुर परिमाण में मिलती है। हाँ, जहाँ 'शतपथ-ब्राह्मण' में सुदूर पूर्ववर्ती प्रान्त मिथिला और विदेह की चर्चा आई है, वहाँ उसके पश्चिम पार्श्ववर्ती प्रान्त वैशाली की चर्चा का अभाव कुछ अखरता जरूर है। पर इसका यह भी कारण हो सकता है कि कदाचित् उस काल में वैशाली 'सदानीरा' के गर्भ में रही हो, अखण्ड जल-राशि से परिप्लावित हो, अतः आर्यों ने तब तक वहाँ अपना निवास-स्थान-निर्माण करना उचित और सम्भव न समझा हो।

महाभारत-काल में भी हम वैशाली की चर्चा नहीं पाते। अनुमान किया जा सकता है कि उस जमाने में वैशाली कोई स्वतन्त्र राष्ट्र न रहा हो। सम्भव है, उसकी शक्तियाँ किसी खास बात से छिन्न-भिन्न हो गई हों अथवा वह मगधराज जरासंध के अधीन हो गई हो अथवा काशिराज ने उस पर क़ब्जा कर लिया हो। बहुत सम्भव है, मगधराज जरासंध ने जिन दस सहस्र राजाओं को बन्दी कर रक्खा था उनमें वैशाली का राजा भी रहा हो। पुराण और महाभारत की कथायें आधुनिक पुरातत्त्वविदों की दृष्टि में केवल क़िस्सा-कहानी न होकर इतिहास की भी सामग्री प्रदान करती हैं।

पर एक बात जरूर है। जिस समय बौद्ध-धर्म का उदय भी नहीं हुआ था अथवा यों कहिए, बुद्धदेव के जन्म के पूर्व से ही वैशाली कतिपय राष्ट्रीय शक्तियों का शासन-केन्द्र थी। इसके संघ में सात शक्तियाँ सम्मिलित थीं, जिसकी शासन-सम्बन्धी कार्रवाई प्रजातंत्र-प्रणाली अर्थात् पञ्चायत के ढङ्ग पर चलाई जाती थी। बाद को जब बौद्ध-संघ क़ायम हुआ तब उसने इसी संघ की कार्य-प्रणाली का अनुसरण किया, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। बौद्ध-संघ के सभापति का निर्वाचन, प्रस्ताव की उपस्थिति तथा शलाका-ग्रहण (वोट लेने) की क्रियायें आदि बातें लिच्छवि-संघ का अनुकरण-मात्र थीं, ऐसी विद्वानों की धारणा है।

वाल्मीकि के कथनानुसार वैशाली के सभी

राजे धर्म्मात्मा तथा प्रतापवान् थे। रामचन्द्र ने तो राजा सुमति को आतिथ्य-सत्कार-क्रिया में महा कुशल पाया था। पुराणों ने भी वैशालिकों की प्रशंसा की है। 'ललितविस्तर' में तो वैशालिकों की तारीफ़ के पुल बाँध दिये गये हैं। इन सब वर्णनों से जान पड़ता है कि वैशालीवाले महासुन्दर, सुदृढ़ तथा सत्प्रतिज्ञ थे। शासन-सञ्चालन की क्रिया में भी वे कुशल थे। उनके सङ्गठन के भय से मगधराज बिम्बिसार तथा अजातशत्रु सदा सशंक रहते थे। वैशालिकों की वृद्धि को रोकने के ख़याल से ही राजा बिम्बिसार ने पाटलिपुत्र में एक दुर्ग बनवाया था, जो पीछे उनके वंशधरों-द्वारा राजधानी के रूप में परिणत किया गया।

बौद्ध-कालीन वैशाली तो कीर्ति-लेखों का आगार है। इसी के पास में वनिकग्राम अथवा कुण्डपुर था, जहाँ जैन-धर्मप्रवर्तक वर्द्धमान महावीर स्वामी का जन्म हुआ था। अनुमान किया जाता है कि महावीर स्वामी ने अपने विचारों का प्रचार करना गौतम के बुद्धत्व-प्राप्ति के पूर्व ही शुरू कर दिया था। पाली-पिटकों के अध्ययन से यह भी अनुमान किया जा सकता है कि बुद्धत्व प्राप्त करने के पश्चात् जिस समय वर्षावास के लिए गौतम बुद्ध वैशाली में आये, उस समय महावीर स्वामी के शिष्यगण बुद्ध से शास्त्रार्थ करने के निमित्त उनकी सभा में उपस्थित हुए थे। यह बात दूसरी है कि सभी वैशालिक अथवा उनमें बहुतेरों ने महात्मा बुद्ध का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया था।

महात्मा बुद्ध भी वैशालिकों को बहुत प्यार करते थे। उन्होंने अपने कितने ही वर्षावास वैशाली में ही व्यतीत किये थे। इसी वैशाली में उन्होंने अनेक लिच्छवि कुमारों का भोजन-अभिमंत्रण त्याग कर आम्रपाली नामक एक वेश्या के घर खाना खाकर "दुर्योधन-गृह मेवा त्यागो शाक विदुर घर खायो" की उक्ति चरितार्थ की थी। इसी वैशाली में अपने भतीजे आनन्द के विशेष अनुरोध करने पर उन्होंने महिलाओं को भी सङ्घ में सम्मिलित करने का अनुशासन किया था। महात्मा बुद्ध के निर्वाण के ठीक सौ वर्ष बाद जब सङ्घ के सिद्धान्तों में मतभेद होना शुरू हो गया था, सात सौ बौद्ध-भिक्षुओं की एक सभा इसी वैशाली में बैठी थी, जो द्वितीय संगीति के नाम से बौद्ध-साहित्य में विख्यात है।

चीनी-यात्री फाहियन और ह्वेनसाँग के भी यात्रा-वर्णनों में वैशाली एक विशेष स्थान रखती है। बुद्ध-निर्वाण के प्रायः सात सौ वर्ष बाद फाहियन वैशाली में आया था। उस समय उसने बौद्ध-वैभव की अनेक स्मृतियाँ वैशाली में देखी थीं। आम्रपाली का आम्रवन, बुद्ध का विहार, लिच्छवियों का संस्थागार आदि-आदि स्थान यद्यपि अच्छी अवस्था में नहीं थे, फिर भी बौद्ध-भिक्षुओं की देख-रेख में थे।

ह्वेनसाँग की सातवीं सदी की वैशाली का वर्णन तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह आज का ही वर्णन है। हाँ, यद्यपि उसके द्वारा वर्णित सभी स्थानों का पता लगाने में आज भी बहुतेरी दिक़्क़तें पेश होती हैं, तो भी जिस आम, केले और निम्बू आदि का जिक्र उसने अपने यात्रा-ग्रन्थ में किया है, मालूम होता है, वह आज की ही वैशाली का वर्णन है। वही उर्वर जमीन, वही साधारण किसान, वही वैशालिकों की अतिथि-भक्ति आज भी विद्यमान हैं। पर भेद इतना ही है कि इक्ष्वाकु-कालीन अथवा लिच्छवि-कालीन वैशाली का वह वैभव अब नहीं रहा। और किसका सदा एक-सा रहा ही है?

इधर के अँगरेज तथा अँगरेजी-शिक्षा-प्राप्त विद्वानों ने भी प्राचीन वैशाली-सम्बन्धी बातों का पता लगाने में कम उद्योग नहीं किया है, वरन भारत-सरकार की कृपा से वैशाली में थोड़ी-सी खुदाई का काम भी हुआ है। वैशाली की प्राचीन वैभव-सम्बन्धी कुछ मुहरें और अन्य चीजें भी मिली हैं। पर यह न कहना अयुक्तिसंगत नहीं होगा कि वैशाली की खुदाई का यह काम प्रायः समुद्र में बूँद के समान

है। जब तक वैशाली की पूरी खुदाई नहीं होती तब तक वैशाली का पूर्ण इतिहास एक प्रकार से ज़मीन के नीचे ही गड़ा रहेगा। प्रोफ़ेसर राइस डेविस के कथनानुसार भारत-सरकार का इस ओर एक महान कर्त्तव्य अभी बाक़ी है। बिहार के धन-सम्पन्न सज्जन तो अभी इस शौक़ से बहुत दूर हैं।

उपर्युक्त प्रोफ़ेसर राइस डेविस के लेखानुसार, वैशाली के लिच्छवियों ने किसी समय नेपाल पर भी राज्य किया था, बल्कि जिस समय कोशल-राज मगध पर आक्रमण कर सारे मगध को अपने राज्य में मिला लेने का स्वप्न देख रहे थे, उस समय वैशाली के लिच्छवि-संघ की ही यह सहायता थी, जिसने न केवल कोशलराज के मनोरथ विफल कर दिये थे, वरन मगध-राज की कोशल राज्य पर अपनी प्रभुता और पराक्रम प्रदर्शन करने में पर्याप्त रूप से सहायता भी प्रदान की थी।

उसी वैशाली का आज तक कोई स्वतन्त्र रूप से एक इतिहास तक नहीं लिखा गया है, यह वास्तव में दुःख का विषय है।

अभिलाषा

लेखक, श्रीप्रभातकुमार एडवोकेट

निर्जन वन की किसी कुटी का मैं प्रकाश यदि बन जाता।
पथ भूले विश्रान्त पथिक को उसका मार्ग दिखा पाता॥
पक्षी-सम स्वतन्त्र हो रमता मोद भरे मैं गाता गान।
दलित जाति का मैं बन जाता आशामय भावी उत्थान॥
स्नेह-स्मृति बन किसी मित्र के मानसपट पर करूँ विलास।
शिशु के सरल अधर पर खेलूँ बनकर मैं शैशव का हास॥
सुमनसुरभि बन वन वन घूमूँ साथ लिये मैं मलय-पवन।
विरह-पीड़िता किसी प्रेमिका का बन जाऊँ आशा-धन॥
कलित कल्पना जग में कवि बन मैं करता स्वच्छन्द विहार।
या बन जाता विदा समय के रसमय दिव्य शब्द दो चार॥
चपल कल्पना तरुण हृदय में करती है जिसका चित्रण।
सरस सुधामय उसी प्रणय पर कर देता तन मन अर्पण॥
बनकर रम्य प्रभात कमल को देता दिनकर का संदेश।
या कुमोदिनी से इठलाता रखकर रजनीपति का वेश॥
दुखियों को सान्त्वना दे सकूँ बन कर मैं उनकी आशा।
मैं स्वदेश गौरव बन जन जन में भर दूँ जय-अभिलाषा॥



देवकी

लेखक, श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त

'सरस्वती' के पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि बाबू मैथिलीशरण गुप्त अपना द्वापर नामक महाकाव्य समाप्त कर चुके और वह शीघ्र ही प्रकाशित होगा। देवकी उसी का एक महत्त्वपूर्ण अंश है जो गुप्त जी ने खास तौर से 'सरस्वती' को प्रदान करने की कृपा की है।

आधी रात जहाँ दिन में भी,
वहाँ रात फिर पूरी।
किसे ज्ञात है, कहाँ हमारे.
फिरते दिन की दूरी?

फिर भी किस निश्चिन्त भाव से,
सोते हो तुम स्वामी।
वही जानता है इस जी की,
जो है अन्तर्यामी॥

तब भी काल बीत जाता है,
जब जुग-सा पल-छिन है।
जिससे हम जी जायँ हाय! वह,
मरना महा कठिन है॥

नाथ, कंस के हाथ उसी दिन,
यदि मैं मारी जाती।
यह मरने से अधिक आपदा,
तो तुम पर क्यों आती?

दासी के पीछे दुख पर दुख,
सहना पड़ा तुम्हें है।
पुनरपि रुद्ध गुहा-से गृह में,
रहना पड़ा तुम्हें है॥

पर क्या ही विश्वासी हो तुम,
जो अब भी आनन्दी।
हे मेरे राजा, तथापि तुम,
वही अराजक बन्दी॥

बन्दी, जो जीवित रह कर भी,
जीवन से वंचित है।
धन से, जन से और स्वयं जो,
निज तन से वंचित है॥

प्रखर चेतना, आह! आग-सी,
जिसमें जाग रही है।
फिर भी जड़ीभूत लक्कड़-सा,
जकड़ा पड़ा, वही है॥

उसका घर, घिर जाय वायु भी,
यदि उसमें घुस जावे।
टकरा कर पाषाण भित्ति से,
वही साँस फिर आवे॥

तब भी कहाँ कहाँ मन उसका,
फिरता मारा मारा।
किन्तु अन्त में उस तापस की,
वही कुटी यह कारा!

सूर्य-चन्द्र की झलक इसी से,
उसे दिखाई जाती।
हैं, पर उसके लिए नहीं वे,
देखे वह अभिघाती॥

अभिघाती, सच्चा या झूठा,
दोष लगा है उस पर।
इसी लिए भय और साथ ही,
रोष जगा है उस पर॥

उसे मारना या मर-मिटना,
क्षण क्षण सूझ रहा है।
तो भी तिल तिल मरता है वह,
कण कण जूझ रहा है॥

उसके स्वजन-बन्धु भी बाहर,
बँधे बँधे रह पाते।
सबकी सुनते हैं, पर अपनी,
नहीं कहीं कह पाते॥

आँखें और कान रहते वह,
नहीं देख सुन सकता।
बोल नहीं सकता मुँह रहते,
मन ही मन गुन सकता॥

बिछड़ा ही वह नहीं वर्ग से,
मृग-सा जाल-जड़ित है।
नहीं तड़प भी पाता, यद्यपि,
भीतर भरी तड़ित है॥

कैसे, कहाँ छूट कर जावे,
आया है वह पकड़ा।
श्वास हृदय से, हृदय देह से,
देह निगड़ से जकड़ा!

आगे रुद्ध कक्ष, असिधारा,
प्रहरी, परिखा गहरी।
किन्तु अन्त में निकल जायगा,
वह मौजी, वह लहरी!

जब पुकार होगी अदृश्य से,
अरे, निकल आ, आ जा।
जीता उसे मारने को तब,
रोक सकेगा राजा?

राजा, प्रभो, यही राजा है,
तेरा प्रतिनिधि? धिक्धिक्!
क्या इस राजा और प्रजा का,
वही एक विधि? धिक्धिक्!

धिक् तुझको; तेरे राजा को,
वह है स्वेच्छाचारी।
अविचारी, अन्यायी, बर्बर,
केवल प्रशुबल धारी॥

हाहाकार हमारा है, सो,
उसका बजता बाजा।
आँखें हैं तो देख अरे तू,
यही न तेरा राजा?

बोल सके तो बता, इसी ने,
तेरी सत्ता पाई?
सुन पावे तो इस नृशंस की,
सुन तू दुरित-दुहाई॥

धिक् निरीह निर्गुणता तेरी,
अरे, धधक उठ भक हो।
तू समर्थ साकार, देखकर,
यह मदान्ध भौंचक हो॥

अरी भूमि, तू आज कहाँ है,
नहीं जानती यह मैं।
मूक न रह, ले मेरी वाणी,
बोल उठूँ क्या, कह, मैं?

कहाँ गया है राम, आज वह,
तेरा राज्य, अरे रे!
मरें—न, मारे गये अये वे,
छै छै बच्चे मेरे॥

बच्चे मेरे-मेरे बच्चे,
बोलूँ मैं क्या जै जै।
मेरा मन तो चिल्लाता है,
एक, दो, नहीं, छै छै!

ओहो, मृदुल मुकुल से भी वे,
मसल दिये इस खल ने।
मांसपिंड, मक्खन के लौंदे,
निगल लिये इस खल ने॥

उनमें क्या था? श्वास-मात्र ही,
था बस आता-जाता।
ललित-तन्त्र-सा, चलित-यन्त्र-सा,
फलित-मन्त्र-सा भाता॥

किन्तु क्या न था उन बच्चों में?
रूप-रंग थे रूरे।
जीवन अङ्कुरित, हृदय विस्फुरित,
अंग अंकुरित पूरे॥

दृष्टि डाल जननेवालों को,
हननेवालों को भी।
देखा नहीं उन्होंने पल भर,
वे हों चाहे जो भी॥

दिखा गये वे तो बस अपनी,
एक झलक हा हलकी।
प्रेम-वैर दोनों की सीमा,
इतने ही में छलकी॥

निष्फल मेरा प्रेम हो गया,
वैर फला वैरी का।
मेरा कुछ न चला, क्या चलता,
हाथ चला वैरी का॥

पर उनके अपराध बता दे,
कोई झूठे-सच्चे,
दोष यही उन निर्दोषों का—
वे थे मेरे बच्चे!

मेरे बच्चे, जैसे आये,
चले गये वैसे ही।
क्यों आये, क्यों गये अरे, वे,
ऐसे के ऐसे ही?

न तो यहाँ देखा न सुना कुछ,
न कुछ कहा निज मुख से।
रहे अपरिचित ही अनीह वे,
इस भव के सुख-दुख से॥

हा भगवन् हो गई व्यर्थ वह,
प्रसव-वेदना सारी।
लेकर यह अनुभूति-चेतना,
कहाँ रहे यह नारी?

उड़ता है छै टूक कलेजा,
कर हैं मेरे दो ही।
किसे किसे थामूँ, तूही कह,
ओ मेरे निर्मोही!

मेरे बच्चे, भूमि-भार थे?
और कंस गौरव है?
तब तो इस धरती से अच्छा,
लाख गुना रौरव है॥

ऐसे मीठे थे मेरे फल,
कंस खा गया कच्चे!
कौन कहे, कैसे क्या होते,
बच कर मेरे बच्चे?

किन्तु नहीं, वे नहीं गये, ये,
अब भी यहीं जने हैं।
जाते कैसे, कहीं अन्ततः,
मेरे ही न जने हैं॥

इस अँधियारे में दीपक से
ये क्या दमक रहे हैं?
मुझे निरखते हुए नेत्र ये,
कैसे चमक रहे हैं॥

अब तो बड़े हो गये आहा!
आओ मेरे हीरे!
किन्तु तुम्हारे तात सो रहे,
उतरो धीरे धीरे॥

मेरे षण्मुख कार्तिकेय, तुम,
मुझे घेरकर चूमो।
आओ, अब तो तुम्हें चूम लूँ,
और मुझे तुम चूमो॥

पर अब भी बन्धन में हूँ मैं,
विवश, देख लो, बेटा।
और कंस उच्छृङ्खल अब भी,
सुख-शय्या पर लेटा॥

जाओ मेरे पूत प्रेत, तुम,
प्रथम उसे लग जाओ।
सुख से सो न सके वह देखो,
'हूँ' कर उसे जगाओ!

अरे, तनिक ठहरो, ठहरो तुम,
अब भी छोटे छोटे।
उधर कंस के भाव हुए हैं,
पहले से भी खोटे॥

लो, मरवाया तुम्हें दुबारा,
हा! मा होकर मैंने।
फिर भी खोया, पाया था यह,
तुमको खोकर मैंने॥

यह कारा, यह अन्धकार, सह
बन्धन सभी सहूँगी।
भूल गई, वह बात भूल कर,
अब मैं नहीं कहूँगी॥

स्वामी! स्वामी! उठो, हाय क्या,
मैंने सपना देखा?
जगी, बुझी अपने प्रकाश की,
अभी छैमुखी रेखा!

चौंको मत, पागल हूँ? कैसे?
मुझको सभी स्मरण है।
भूला उनका जन्म मुझे या,
भूला मुझे मरण है?

वे तो चले गये पर उनका,
घातक अब भी बैठा।
चलो, दिखा दूँ, पुण्य गये, पर,
पातक अब भी बैठा!

हाँ, हाँ, धर लो, मुझे अंक में,
भर लो मेरे भोगी।
योगी हो तुम, संयोगी भी,
और तुम्हीं उद्योगी॥

इसी कोख से जनती जाऊँ,
उन्हें निरन्तर तब लौं।
ध्वंस न कर दें कंस-राज्य वे,
मेरे जाये जब लौं!

अथवा नहीं ठहर सकती मैं,
मास दूर, नौ दिन भी।
पड़े नहीं क्या तेरे मत्थे,
कुग्रह कुटिल, कठिन भी?

देखो, वही भाल यह मेरा,
अब यह क्या फूटेगा?
छोड़ो, छोड़ो, द्वार-पटल यह
अभी अभी टूटेगा!

क्या कहते हो?—जना जा चुका,
कंस काल वह काला?
काला, अहा, वही तो मेरे,
अन्तर का उजियाला॥

घन-सा काला, जाग रही है,
जिसमें विद्युज्ज्वाला।
वह लीलामय मेरा लाला,
हाँ वह मेरा लाला!

सुदृढ़ भित्ति पर जब गवाक्ष से,
आभा आ पड़ती है।
देखा करती हूँ मैं, उसकी,
झाँईं-सी झड़ती है!

लेखा करती हूँ मैं मन मन,
अब आया, तब आया।
किन्तु कहाँ आया वह मेरा,
आशा धन, कब आया?

अरे, देख तू यहाँ रही यह,
तेरी दुखिया मैया।
बोल कहाँ तू कुँवर-कन्हैया,
मेरे राजा मेरे भैया!

सुनूँ तनिक मैं भी वह मुरली,
देखूँ, दोहन तेरा।
रहे न मुझको, शंखनाद ही
मेरे मोहन, तेरा॥

मेरे तात चरण की, मेरे,
पति-दैवत, की मेरी।
मेरी जाति और ओ मेरी,
धरती माता तेरी॥

यह बन्धन-बाधा अब कब तक?
नहीं अधिक अब देरी।
भाई कंस, चेत जा अब भी,
यह काले की फेरी!

नाथ, उसी की बात करो अब,
सुनूँ तनिक मैं मन से।
वही मुक्ति देगा हम सबको,
इस दारुण बन्धन से॥

अब अपमान छूटने में भी,
क्रूर कंस के द्वारा।
मेरा लाल छुड़ा न सके तो,
भली मुझे चिरकारा!

('द्वापर' से)



[पं० माखनलाल चतुर्वेदी]



[पं० भवानीप्रसाद तिवारी]



[ब्योहार राजेन्द्रसिंह]



[ठा० लक्ष्मणसिंह चौहान]

मध्यप्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

लेखक, श्रीयुत रामधर दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी०

८-९ वर्ष के बाद गत २९, ३० और ३१ दिसम्बर को मध्य-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अष्टम अधिवेशन कर्मवीर-सम्पादक पंडित माखनलाल जी चतुर्वेदी के सभापतित्व में कटनी में बड़ी धूमधाम से हो गया।

कटनी के उत्साही नवयुवक श्रीपूरनलाल अग्रवाल को इसे सफल बनाने का श्रेय है। सम्मेलन की एक भी कार्यवाही ऐसी न थी जिसमें अप्रत्यक्ष रूप से इनकी स्पष्ट सलाह न रही हो। इनके बाद दूसरे व्यक्ति पंडित रामदत्त जी तिवारी हैं, जिन्होंने सम्मेलन के कार्य में अथक परिश्रम किया।

सम्मेलन का कारबार उसी तरह सम्पन्न हुआ जैसे अखिल भारतीय साहित्य-सम्मेलन का होता है। स्वागताध्यक्ष साहित्यरत्न पंडित बाबूलाल मायाशंकर जी दुबे के छपे भाषण के उपरान्त सभापति श्री चतुर्वेदी जी का भाषण हुआ और विषय-निर्वाचिनी समिति की बैठक हुई। दूसरे दिन कई उपयोगी और बहुत-से अनुपयोगी प्रस्ताव पास हुए और सम्मेलन का बहुत-सा काम समाप्त हो गया।



[पण्डित कामताप्रसाद गुरु]

बाहर से आये हुए लोगों को सम्मेलन का सबसे बड़ा लाभ जो मिला वह यह था कि प्रान्त के ख्यातनामा साहित्य-सेवियों से भेंट। इस वर्ष सम्मेलन में यही हो भी पाया।

सम्मेलन का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य प्रान्तीय कवि-सम्मेलन था। कविता सुनानेवाले सभी कवि मध्य-प्रान्त के थे और सभापति का स्थान भी हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्य-पारखी पंडित कामताप्रसाद जी गुरु ने ग्रहण किया था। सम्मेलन के दूसरे दिन रात को कवि-सम्मेलन में कविता की जो धारा बही वह अलौकिक थी। मध्य-प्रान्त में हिन्दी-साहित्य की प्रगति कैसी है, इसका अन्दाज उस रात की कविताओं को सुनकर किया जा सकता था। हिन्दी-कविता में हाला, प्याला और मधुशाला की जो धारा वह निकली है उसकी बाढ़ इस प्रान्त में भी आई है और यहाँ के नवयुवक कवियों पर इस प्रवाह ने विशेष असर डाला है। लोगों ने ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान, पंडित भवानीप्रसाद तिवारी, पंडित भवानीप्रसाद मिश्र, पंडित रामचन्द्र बिलौरी, बाबू रामानुजलाल श्रीवास्तव, पंडित ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी और पंडित रामकृष्ण पालीवाल की कविताओं को बड़े चाव से सुना। इस सम्मेलन में कविता की प्रगति की माप की दृष्टि से ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान की एक कविता विशेष महत्त्व की हुई है। हिन्दी में अभी ऐसी कविता नहीं लिखी जाती जो ताल और स्वर में कसी जाकर गाई जा सके। चौहान जी ने जो कविता सुनाई थी वह गीत-काव्य के साथ ही नृत्य-काव्य भी थी।

कटनी में प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन परम सफल हुआ और उसके लिए कटनी के साहित्य-सेवी कार्यकर्त्ता बधाई के पात्र हैं। आशा है, जबलपुर में इसका अगला अधिवेशन और भी धूमधाम से होगा।



[पं० रामदत्त तिवारी]



[बा० पूरनलाल अग्रवाल]

[बा० हनुमन्त राव]





मिकी माउस

लेखक, श्रीयुत रघुनाथराव जी, स्नातक

मिकी माउस एक विचित्र प्रकार का बोलता सिनेमा है जिसमें चूहे आश्चर्यजनक नाट्य करते दिखाई पड़ते हैं। आज-कल मिकी माउस की सारे संसार में धूम है। इस लेख में लेखक महोदय ने यह बताया है कि मिकी माउस फ़िल्म कैसे तैयार किया जाता है साथ ही उसके आविष्कारक श्री वाल्टर डिस्ने का भी परिचय दिया है।

मिकी माउस का वर्णन करने से पूर्व उसके निर्माता वाल्टर डिस्ने का वृत्तान्त देना उचित होगा। वाल्टर का जन्म १९०१ ईसवी में शिकागो में हुआ था। उसका पिता कनाडा-निवासी आइरिश था, माता जर्मन थी। वाल्टर को जन्म से ही चित्रों का बड़ा शौक़ था। ७-८ वर्ष की उम्र में अलकतरे से दीवारों पर ख़रगोश, घोड़े, गधे आदि के चित्र बनाने के कारण वह प्रायः ख़ूब मारा-पीटा भी जाता था। परन्तु उसके बनाये चित्रों की ख़ूबी के कारण उसके बाप को उसका यह कार्य रुचिकर प्रतीत हुआ और प्रारम्भिक शिक्षण पूरा कराने के बाद उसने उसे शिकागो के 'आर्ट इन्स्टीट्यूट' में दाख़िल करा दिया।

१९१६ में योरपीय महायुद्ध के सैनिकों का कूच देखकर वाल्टर का मन युद्ध के लिए ललचाया, परन्तु छोटी उम्र का होने से वह फ़ौज में नहीं लिया गया। वाल्टर इससे निराश न होकर 'रेडक्रास' में दाख़िल हो गया और युद्ध-क्षेत्र में जा पहुँचा। युद्ध समाप्त होने पर वह अमरीका लौट आया तथा कन्सास-सिटी में एक मोटर-गैरेज के कोने में रहने लगा। वहाँ उसने अपनी प्रयोगशाला भी बनवाई। वह स्थानीय घटनाओं पर चित्र तथा कार्टून (व्यंग्यचित्र) बनाने लगा। धीरे धीरे उसके चित्र कन्सास में ही नहीं, न्यूयार्क-शिकागो के बड़े बड़े समाचार-पत्रों में स्थान पाने लगे। पैसे की सुविधा होने पर उसने अपना धन्धा बढ़ाना प्रारम्भ किया। पहले परियों के सीरियल बनाने प्रारम्भ किये। परिचित सम्पादकों की सिफ़ारिश से स्थानिक थियेटरों में १३ फ़ुट सवा रुपये के हिसाब से देना शुरू किया।

परन्तु इतने से उसका सब ख़र्च नहीं निकलता था, अतएव अन्त में वह एक किसान-सहायक समिति में विक्रेता का काम करने लगा। मैनेजर को वाल्टर की योग्यता का पता लगने पर उसने उसे स्टोर के विज्ञापन का काम सौंप दिया। अपनी चित्रकला का पूर्ण उपयोग कर उसने स्टोर की आय की ख़ूब वृद्धि की।

स्टोर में वाल्टर को १५०) मिलते थे, और यहीं से उसके चित्रों की कल्पना का प्रादुर्भाव हुआ। स्टोर में रहते समय उसने कृषि-सम्बन्धी तथा ग्राम्य पशुओं के स्वभाव का पूर्ण अध्ययन किया।

इस समय तक वाल्टर पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुका था। इन्हीं दिनों वह 'होलीवुड' गया और 'ओसवाल्ड दि कैट' नामक चित्रपट बनाना प्रारम्भ किया। एक छोटी-सी कोठरी में ही आफ़िस तथा स्टुडियो बनाये गये, और क्रमशः चित्र बनाये जाने लगे। यहाँ उसका एक और मुसीबत ने पीछा किया। उसने अपने चित्र जिस कैन्ट्रेक्टर को बेचने के लिए दिये थे उसने यह दावा किया कि चित्रों पर हक़ बेचनेवाले का है। इस पर वह न्यूयार्क-हाईकोर्ट तक गया, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली।

मुक़द्दमा हारकर वह होलीवुड को लौटा। इस समय उसके पास न तो कोई ऐसा काम था जिससे उसे पैसा मिलता और न काम मिलने तक खाने का ही कोई साधन था। उसका नया मित्र ओसवाल्ड भी जिसके नाम पर 'ओसवाल्ड दि कैट' का फ़िल्म बनाया जा रहा था, तबाह हो चुका था। यही सब सोचता वह ट्रेन से होलीवुड जा रहा था। इन्हीं दिनों कर्नल लिंडबर्ग वायुयान-द्वारा अटलांटिक महासागर पार कर पेरिस गया था। लोगों की ज़बान पर लिंडबर्ग चढ़ा हुआ था। इस मौक़े से लाभ उठाने का उसने विचार किया। उसने लिंडबर्ग के साथ यात्रा करते हुए एक मूषक की कल्पना की।

उसके सामने की सीट पर एक महिला भी न्यूयार्क से होलीवुड जा रही थी। प्रसंगवश



[मिकी माउस फ़िल्म देखते समय जो अजीब आवाज़ें सुनाई पड़ती हैं वे इन्हीं महाशय की हैं। इनका नाम पिन्टो कोलविग है। पहले ये एक सरकस में यही कार्य करते थे।]

दोनों का परिचय बढ़ा। उसने उस स्त्री को अपनी कथा सुनाकर वर्तमान समस्या पर उसकी मदद माँगी। इस नये फ़िल्म को 'मोटीमर माउस' नाम देने की बात भी उसे बताई। उस स्त्री ने कहा कि 'मिकी माउस' नाम रक्खो। वाल्टर को उसकी यह सलाह जँच गई और इस प्रकार 'मिकी माउस' का आविर्भाव हुआ।

मिकी माउस का नामकरण करनेवाली वह स्त्री ही उसकी स्टुडियो में प्रथम मददगार और बाद में उसकी जीवन-सहचरी बनी। उसका नाम मिस लीथियन बाउंड था। मिकी माउस की कल्पना को मूर्त स्वरूप देने के लिए एक स्टुडियो भाड़े पर लिया



[मिकी माउस, आश्चर्यजनक मूषक अभिनेता अपने रचयिता श्रीयुत वाल्टर डिस्ने के साथ ।]

गया। चित्र भी बना, परन्तु कोई ग्राहक न मिला। क्योंकि अभी जनता का दृष्टि-विन्दु इतना स्पष्ट न हो पाया था, और न इस प्रकार के फ़िल्म से कोई बड़े लाभ की आशा थी। फिर भी वाल्टर ने हिम्मत न छोड़ी और जो कुछ भी हाथ में था, सब ख़र्च करके फ़िल्म को पूरा कर डाला। ग्राहक न मिलने का उस को बड़ा खेद हुआ और अतिश्रम तथा मानसिक कष्ट से कुछ काल तक बीमार भी रहा।

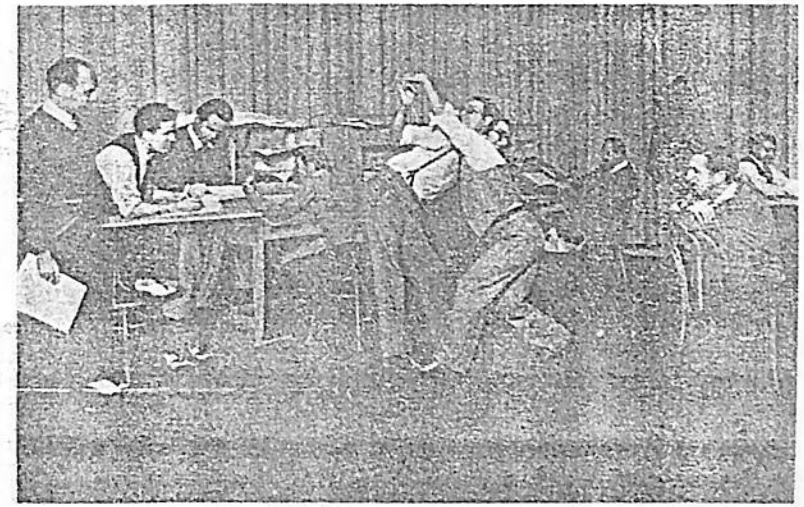
इन्हीं दिनों बोलनेवाले फ़िल्म नये नये प्रारम्भ हुए और जनता ने उत्सुकता के साथ उनका आदर किया। इस प्रकार एक आकस्मिक घटना या चमत्कार के परिणामस्वरूप 'मिकी माउस' लोकप्रिय हो गया। फ़िल्म बनानेवालों ने देखा कि 'मिकी' तालबद्ध संगीत के साथ गाता है तब उन्हें इसके आश्चर्यजनक लाभ दिखानेवाले भविष्य की यथार्थता प्रतीत हुई, और इसी विश्वास के कारण कम्पनियाँ वाल्टर को कैन्ट्रेक्ट करने के लिए भारी भारी रक़में देने लगीं।

मिकी स्टुडियो—होलीवुड में एक भव्य स्टुडियो पर बिजली से जगमगाता हुआ मिकी का एक बड़ा चित्र है। इस चित्र से स्टुडियो के साइनबोर्ड का काम निकल जाता है। स्टुडियो में २०० आदमी काम करते हैं। सभी कार्यकर्ता उत्साही युवक हैं तथा बन्धु-भाव से काम करते हैं। वाल्टर डिस्ने यद्यपि इनका मालिक है, फिर भी किसी महत्त्वपूर्ण नाम से संबोधित नहीं होता। केवल 'वाल्टर' के लाड़ले नाम से बुलाया जाता है। वह स्टुडियो में इधर-उधर घूमकर उपयोगी सूचनायें देता रहता है। यद्यपि इस कथा का वह स्वयं उत्पादक है, तथापि आज-कल वह एक भी रेखा ख़ुद नहीं खींचता। उसके सहायक तरह तरह के चित्र बनाने में पूर्ण प्रवीण हैं। एक विभिन्न प्राणियों के चित्र बनाता है, दूसरा केवल बिल्ली के तरह तरह की भावभंगीवाले चित्र खींचता है, तीसरा उत्तम चूहे चित्रित करने में सिद्धहस्त है—एक व्यक्ति मुख पर के विविध भावों को चित्रित करने में कमाल करता है, इत्यादि इत्यादि।

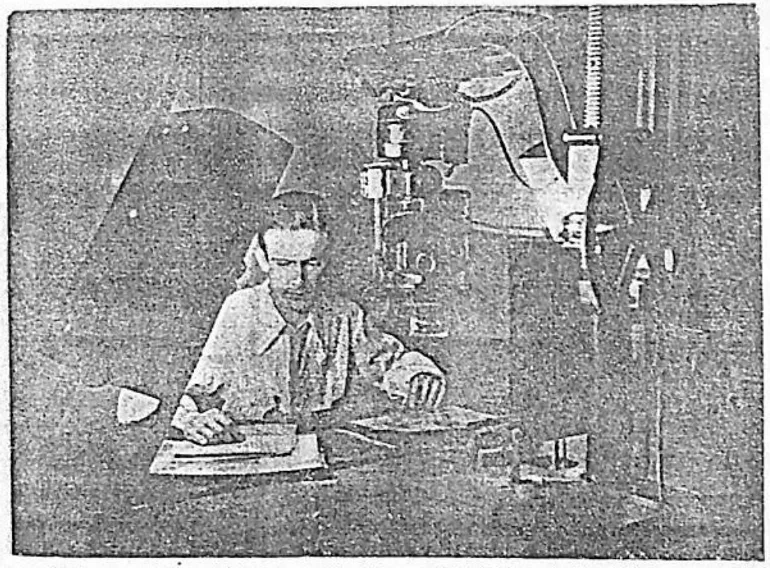
मान लीजिए कोई नया फ़िल्म बनाना है। एक कमरे में सब कलाकार बैठे हैं। उनकी सभा-सी हो रही है, फ़िल्म-सम्बन्धी योजना पर विचार हो रहा है। चित्र-सम्बन्धी विचारों का विशदीकरण हो चुका। अब दूसरा समूह सभागृह में आया और संगीत-सम्बन्धी कार्यदिशा निश्चित की गई। दोनों समूह स्वतंत्र रूप से अपना अपना कार्य करने लगे। निश्चित समय में दो स्वतंत्र रीलें तैयार हो गईं। अब चित्रपट रेकार्डिंग फ़िल्म के साथ जोड़ा गया। दोनों पट जोड़ने में इतनी सावधानी से काम लेना होता है कि अंगमरोड़-भाव

वग़ैरह के साथ पूर्ण रूप से संगीत-ताल का साम्य हो जाय।

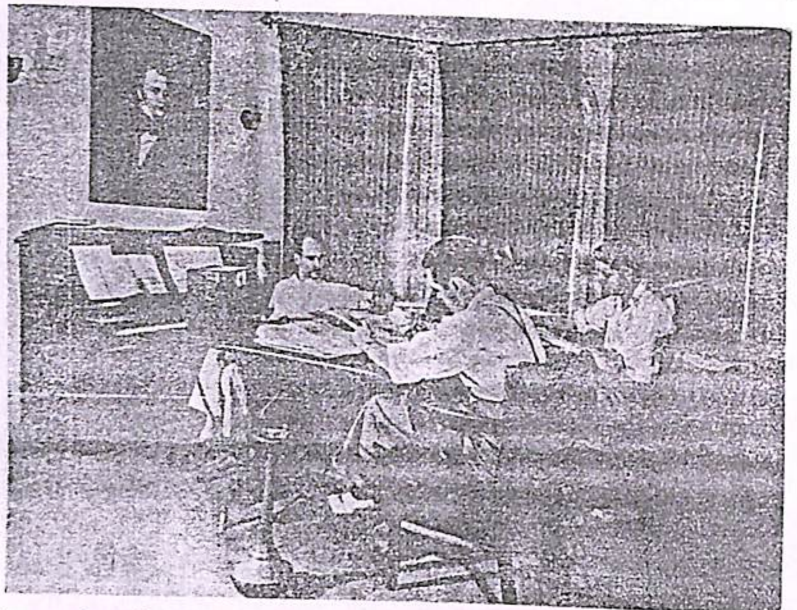
चित्रपट के लिए बड़ी सूक्ष्मता से काम लेना होता है। मिकी का मुख एक बार खुलकर बन्द होने तक की क्रिया को दिखाने के लिए लगभग ५० चित्र बनाने पड़ते हैं। इसी प्रकार ७०० फ़ुट की रील में लगभग २०,००० चित्र खींचने पड़ते हैं। बहुत-से कलाकार अर्धपारदर्शक काग़ज़ पर चित्र बनाते हैं। इसमें फ़ायदा यह होता है कि प्रकाश आर पार निकल सकता है। टेबल के बदले काँच का बोर्ड अथवा प्लेट होती है। इसका आकार ढालू होता है। प्रत्येक कलाकार शरीर के विभिन्न अवयवों के चित्र बनाता है और उसे इन अवयवों के सौष्ठव में ही अपनी शक्ति का उपयोग करना होता है। एक



[पशुओं के एक नृत्य की कल्पना; श्रीयुत डिस्ने अपने सहायकों को अभ्यास करते देख रहे हैं।]



[एक ऊँची पावरका कैमरा जो मेज़ पर रक्खे गये कारटूनों से मिकी माउस फ़िल्म तैयार करता है।]

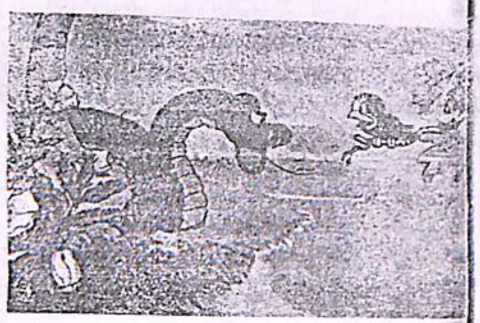


[मिकी माउस फ़िल्म में अभिनय के साथ संगीत युक्त करने का एक नाज़ुक कार्य ।]

बार चित्र बन जाने पर उस पर अर्धपारदर्शक काग़ज़ रखकर थोड़ा-बहुत फेर-फार कर दूसरी बार चित्र बनाये जाते हैं, और इसी प्रकार तीसरी बार चित्र तैयार करने के बाद पूर्णता की जाँच की जाती है।

बाद को कैमरा लाया जाता है और चित्रकार अपने अपने चित्रों को उसके सम्मुख यथास्थान रख कर फ़िल्म तैयार होने में सहायता करते हैं।

असल मुश्किल काम अब प्रारम्भ होता है। फ़िल्म में आनेवाले संवाद-कलाकार बोलना प्रारम्भ करते हैं। उनका बोलना, होंठों का हिलना तथा शब्दोच्चार का समय सब मिकी माउस के चित्रों की गति तथा भाव-भंगी के अनुसार होना चाहिए। मिकी के बदले वाल्टर ख़ुद बोलता तथा गाता है—दूसरे शब्दों में वाल्टर मिकी का पार्ट करता है। अतएव जब कभी मिकी को फ़िल्म में बोलते-गाते सुनें तब खयाल रखना चाहिए कि यह आवाज़ उसके प्रणेता वाल्टर डिस्ने की है।



[मिस्टर डिस्ने के एक चित्रपट 'सिली सिम्पोनी' का एक भय-संचारक दृश्य ।]

इस चित्रपट को सर्वाङ्ग-सुन्दर बनाने के लिए बारीक से बारीक बातों का ध्यान रखना पड़ता है। प्रत्येक फ़िल्म बनाने से पूर्व वैज्ञानिकों की तरह गम्भीर गवेषणा से काम लिया जाता है। वाल्टर ने प्राणियों के स्वभाव का ख़ूब अध्ययन किया है। अतएव फ़िल्म में नैसर्गिकता लाने में अधिकांश सफलता मिलती है।

वाल्टर गाँवों, जंगलों तथा पर्वतों में कैमरा लिये फिरा करता है और प्राणियों की विभिन्न अवस्थाओं के चित्र अपने सहायकों के लिए खींचता रहता है। इन चित्रों से कलाकारों को उपयुक्त चित्र बनाने में पर्याप्त प्रेरणा तथा मदद मिलती है। वाल्टर के अनुसन्धान में संगीतकार भी भाग लेते हैं और इस प्रकार प्राणियों की आवाज़, आवाज़ की मर्यादा तथा नैसर्गिकता अक्षुण्ण रूप से रेकार्डिंग में उतारने में सफल होते हैं।

मिकी माउस का फ़िल्म यदि एक व्यक्ति बनाने लगे तो कम से कम दो वर्ष चाहिए। परन्तु इस स्टुडियो में २०० आदमियों की मदद से वाल्टर सिर्फ़ दो सप्ताह में एक चित्रपट बना लेता है, साथ ही एक मिकी का तथा एक 'सिली सिम्पोनी' का कार्टून एक मास में तैयार करता है।

रेकार्डिंग के लिए एक स्वतंत्र भवन है। उसमें तरह तरह की आवाज़ों के परीक्षण भी होते रहते हैं।

मिकी माउस दुनिया के सभी देशों में ख़ूब प्रसिद्ध है। इसका बनानेवाला वाल्टर डिस्ने स्टुडियो के पास ही एक छोटे से बँगले में रहता है, और फ़िल्म की सारी आमदनी फ़िल्म को उन्नत करने में ही लगा देता है। उसका अपना ख़र्च सिर्फ़ ४०० पौंड है जब कि उसके स्टाक के अन्य लोग तथा स्टार प्रति सप्ताह भारी भारी रक़में वेतन के रूप में पाते हैं।

भ्रम

लेखक, श्रीयुत नर्मदाप्रसाद खरे

तुमको न अभी मैं पहिचाना !
अपने अधरों की लाली से, तुमने प्राची को लाल किया।
उसको मैंने अब तक समझा—केवल ऊषा का मुसकाना ॥
तुमने नन्दन वन से चुन-चुन, खद्योत-सुमन हँस बरसाये।
उनको तो मैंने कह डाला—रजनी का मोती बिखराना ॥
तुमने अपनी मुसकानों से, दिशि-दिशि में आभा बिखरा दी।
रह गये तरसते ये लोचन—उसको मैंने विद्युत जाना ॥
तुमने आँसू की धारा से, जग को करुणामय कर डाला।
अब तक उसको मैंने समझा—अम्बर का आँसू बरसाना ॥
पग-ध्वनि सुनते ही गूँज उठे, वन-उपवन गिरि-गह्वर सारे।
मेरा भोला मन क्यों समझा—उसको कोयल का मधु गाना ॥
कुछ पीर छिपाये उर में मैं, देख रहा अपलक पथ कब से !
छाया-सी साथ सदा रहतीं,—पर मैंने दूर तुम्हें माना ॥
तुमको न अभी मैं पहिचाना !

प्रेम-चक्र

लेखक, श्रीयुत मंगलप्रसाद विश्वकर्मा



"मिस्टर जैन ! मिस्टर जैन !"

मैं अलमस्त चला आ रहा था। कानों के भीतर इस पुकार ने प्रवेश नहीं किया। मैंने सुना नहीं। अब की बार आवाज़ ज़रा ज़ोर से आई और मुझे साफ़ सुनाई दिया—

"मिस्टर जैन !" बरामदे में खड़े होकर, हाथ हिलाते हुए मिस्टर जौहरी ने कहा—"आज-कल तुम मक्खन ज़्यादा खाने लगे हो। देखना, अगर मोटा होने लगोगे तो दुनिया के किसी मतलब के न रह जाओगे।"

मैंने कहा—जौहरी, तो क्या बीमार आदमी को तुम मकरध्वज के साथ भी मक्खन खाने के लिए मना कर रहे हो।

अब की बार जौहरी ठहाका मार कर हँस पड़ा। मैं पास आ गया। उसने कहा—ठीक है, तुम सरीखा आदमी जो भीतर की दुनिया देखता है, बाहर की दुनिया क्या देख सकता है और उसके क्या मज़े ले सकता है ? वह देखो पीछे। मेरे मुँह की तरफ़ क्या ताक रहे हो ?

मैंने आश्चर्य से पीछे मुड़कर देखा, लड़कियों की मोटर-गाड़ी में स्कूल जाने के लिए किताबों का बस्ता लिये हुए एक लड़की चट्टी चटकाते हुए सपाटे से चढ़ गई। उसके चढ़ते ही ड्राइवर ने हॉर्न बजाकर मोटर को चला दिया।

मोटर पर उसके बैठते ही मैंने उसे अच्छी तरह देखा। लड़की इकहरे बदन की, लगभग तेरह साल की, सफ़ेद साड़ी के भीतर से अपनी श्यामल आभा को छिटकाते हुए चली गई।

मैंने समझ लिया, शायद इस दुबली-पतली लड़की की तरफ़ जौहरी का ध्यान आकृष्ट हुआ है। जौहरी २४-२५ साल का एक युवक है, जिसका शरीर मोटा, बहुत ऊँचा नहीं, और रङ्ग गेहुँआ, पर चेहरे की बनावट नीग्रो कट की है। यूनिवर्सिटी में पढ़ता है। तीन साल से बी० ए० में बराबर फ़ेल हो रहा है। बुलन्दशहर का रहनेवाला है। उसके पिता शायद वहीं रेलवे में दो सौ पाते हैं। अपने एकमात्र लड़के को पचास रुपया मासिक पढ़ने के लिए भेजते हैं। जौहरी कुछ बेला बजाना भी जानता है, इसलिए गाने-बजाने का शौक़ न होते हुए, केवल गाना-बजाना सुनने के शौक़ को पूरा करने के लिए, इस शहर में आते ही पहले-पहल इसी लड़के से मैत्री बढ़ाने का प्रलोभन संवरण करना मेरे लिए संभव न रह सका। गाज़ीपुर से एकाएक बदली होने के पश्चात् जब मैं गिरस्ती का कोई इन्तज़ाम करके अपने बीबी-बच्चों को न ला सका तब मैं ज़िन्दगी में पहली बार होटल के चौके में बैठकर एक दिन भोजन करके अपनी पैतृक धर्म-भावना पर ठोकर जमा करके विधर्मियों के अखाड़े में धर्म-त्यागी किसी भी पहलवान से कुश्ती लड़ने के लिए जाँघ और ताल ठोंक कर अकड़ता हुआ आ खड़ा हुआ।

जौहरी ने मेरा ध्यान भङ्ग करते हुए कहा—अब वहाँ क्या देखते हो। मोटर चला गया।

मैंने कहा—जौहरी, भाई, माफ़ करना। मैं तुम्हारा साझीदार नहीं बनना चाहता।

उसने कहा—ख़ैर न सही, और ठीक भी नहीं। पर यह तो बताओ. कितनी सुन्दर है वह।

मैंने उसी प्रकार कविता करते हुए कहा—यौवन की प्रथम किरण से श्यामल दीप्ति को चमकानेवाली ऊषा के समान ही उसकी सुन्दरता मालूम पड़ती है।

"बिलकुल सच है, बिलकुल सच है, मिस्टर जैन।"

× × ×

दोपहर के, लगभग साढ़े तीन बजे जब मैं, पास के पोस्ट-आफ़िस में चिट्ठियाँ डालता हुआ, काम से लौट कर आया तब मैंने सड़क पर से ही देखा कि गली में होटल के दोमंज़िले पर, जौहरी के कमरे में उसके आलाप भरने की आवाज़ आ रही है। उसके गले से निकली हुई उसकी उच्च कर्कश आवाज़ के साथ ही साथ बेले के स्वर मिलाने की आवाज़ भी बीच-बीच में सुनाई पड़ रही है। मैंने सोचा, शायद मिस्टर जौहरी गाने जा रहे हैं। मैं अपने कमरे में न जाकर सीधा उनके कमरे में जाने के लिए ज़ीने पर चढ़ गया। कमरे में पहुँचते ही उसने कहा—आइए, आइए, तशरीफ़ लाइए मिस्टर जैन।

गरमी की बेचैनी से पसीने से तर मैं आराम-कुर्सी पर बैठ गया। जौहरी ने आलाप भरना और बेले के कान ऐंठना बन्द करके उसे पलँग पर रखते हुए खड़े होकर, पश्चिम से आनेवाली धूप और लू को रोकने के लिए, दरवाज़ा बन्द कर दिया; और हवा के लिए पश्चिम का दरवाज़ा खोलते हुए बाहर की तरफ़ झुककर तिमंज़िले पर काम करनेवाले नौकरों में से मल्लू को ज़ोर की आवाज़ लगाकर पुकारना शुरू कर दिया—"मल्लू, मल्लू, सुनता नहीं है बे।"

इस कर्कश आवाज़ को सुनकर मेरे कानों की झिल्ली मानो फट गई—हृदय पर मानो वज्रपात-सा हुआ। मैंने भीतर के क्रोध को बहुत दबाकर बड़े संयम के साथ कहा—जौहरी, मैं तुम्हारा गाना-बजाना सुनने के लिए आया हूँ, पर तुम यह क्या पुकार मचा रहे हो।

जौहरी ने कहा—तुम मेरे कमरे में आये हो, सोचता हूँ, तुम्हारा सत्कार कैसे करूँ ?

मैंने उत्तर दिया—भाई, यदि सत्कार करना है तो गाने-बजाने से करो। यदि तुम इस तरह चिल्लाओगे तो मेरा दम घुट जायगा।

उसने सोचा, शायद जैन गरमी से बेचैन हो रहा है, इसलिए वह टेबल पर पड़े हुए ताड़ के पंखे को मेरे ऊपर झलने लगा। मैंने कहा - जौहरी, मुझे शर्मिन्दा न करो। लाओ, पंखा मेरे हाथ में दो। इसी समय नौकर ने आकर ज़रा डरते हुए, दबी हुई ज़बान में, कमरे के बाहर दरवाज़े की ओट में खड़े होकर कहा—का है हजूर।

जौहरी ने वैसे ही गरज कर कहा—का है हजूर ! सुनता नहीं है बे। जा, दो ग्लासों में मेरी सुराही से ठंडा पानी भर ला।

मल्लू ने कहा—हजूर, सुराही में आज पानी नहीं भरा जा सका। बंबा सवेरे से ही बन्द पड़ा है।

जौहरी ने कहा—अच्छा, अच्छा, जा, ऊपर से भर ला। नालायक़, सुबह से पानी भर कर रखने में क्या तेरी छाती फटती है बेवक़ूफ़।

मैंने इस चिल्लाहट को देखते हुए कहा—जौहरी, यदि तुम कहो तो मैं चला जाऊँ।

जौहरी ने आलमारी में रक्खे हुए एक बासे-तिवासे निम्बू को हाथ में उठा कर उस पर चाक़ू चलाते हुए कहा—जाते कहाँ हो, दो मिनट बैठो, तुम्हें लाइम-जूस का शर्बत पिलाऊँगा।

दिल को ठंडा करनेवाली बात को सुनकर मेरे मुँह में पानी आ गया। कहा - अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा। जौहरी ने कहा—होटल के मालिक माँगने से निम्बू देते नहीं, इसलिए आज सवेरे जब मैं चौके में खाना खाने गया तब महाराज की आँख बचा कर दो निम्बू उड़ा लाया। एक कालेज जाते वक़्त निचोकर पी गया। जो एक बचा है उसे अब ज़िबह कर रहा हूँ।

नौकर ने दो ग्लास पानी लाकर सामने रख दिया। जौहरी ने निम्बू निचोया और तीन पैसे पाववाली मैली-कुचैली चीनी को मुश्किल से एक छटाँक हिस्से को डाल कर पानी को इस ग्लास से उस ग्लास में गट्ट-पट्ट करके कहा—लो पियो।

जौहरी पलँग पर कोहनी के बल अधलेटा बैठकर ऐसी तृप्ति के साथ शरबत पीने लगा, मानो अमृत के घूँट पी रहा हो। मैंने ग्लास ओठों से लगाया और लगाते ही अलग कर दिया। गरम पानी का लाइम-जूस गले के नीचे नहीं उतरता था। सारा मज़ा फीका पड़ गया। जौहरी ने कहा—क्यों, क्या चीनी कम है? यदि कम हो तो बोलो। ज़रा और मिला दूँ?

मैंने दुबारा ग्लास ओठों से लगाया और एक घूँट पीते ही फिर हटा लिया। जौहरी आगे कहता गया—लाइम-जूस ज़रा फीका ही अच्छा लगता है, और ख़ुद गट्ट-गट्ट पीने लगा। मैंने दिल में सोचा, कंजूस के माई-बाप, तेरे पास तो जुड़ा है इस तेज़ गरमी में टब का गरम पानी, चोरी का निम्बू और मैली-कुचैली चीनी, और ऊपर से कहता है कि लाइम-जूस ज़रा फीका ही अच्छा लगता है। मैंने कहा—मिस्टर जौहरी, मैं भी आज फीके जूस का मज़ा लेना चाहता हूँ, क्योंकि कल रात से ज़रा ज़ुकाम भी मालूम पड़ रहा है।

इसी समय मानो बाहर किसी की आवाज़ सुनकर जौहरी तूफ़ान की तरह पश्चिम की तरफ़वाला दरवाज़ा खोलकर छज्जे पर जाकर सड़क की तरफ़ देखने लगा। पश्चिम के दरवाज़े से आनेवाली धूप से मेरी आँखें चौंधिया गईं, लू से शरीर झुलस गया, और इसी बीच में जौहरी के हाथ के झटके से बेले का एक तार जिस माधुर्य के साथ झनझना उठा था, नीरव हो गया। जौहरी ने ज़ोर से आवाज़ देकर मुझे बुलाया—जैन, जैन, इधर भी आओ जी। देखो, देखो, वह पतङ्ग टूट कर जा रही है उसके साथ लगा हुआ धागा किसी टूटे हुए जिगर के तार के समान उसका पीछा किये हुए जा रहा है।

मैंने सोचा, कहीं जौहरी के हृदय को बेले के तार तो नहीं झनझना रहे हैं। बात वही थी, मोटरलारी से उतर कर वही लड़की गली से होकर अपने घर जा रही थी।

"यह बात है जौहरी!" मैंने आश्चर्य से आँखें मटकाते हुए कहा।

उसने कहा—आज उसके स्कूल में टूर्नामेंट था।

मुझे यह सुन और भी आश्चर्य हुआ कि एक पराई लड़की के प्रोग्राम का इसे कैसे पता चला। मैंने कहा—भई, बड़े जासूस हो।

जौहरी ने कहा—आओ, चलो कमरे में बैठें यह कहता हुआ एक बहुत समय के निर्बल और बीमार रोगी की तरह वह अपने पलँग पर बैठ गया। मैंने भी आराम-कुर्सी पर लेट कर उसके पलँग की पट्टी पर अपने दोनों पैर फैला दिये।

उसने गोल्ड-फ़्लेक सिगरेट को जलाकर एक कश लिया और ऊपर धुआँ फेंकते हुए कहा—मिस्टर जैन, यह जीवन वृथा है। ऐसा लगता है, आत्म-हत्या करके अपने प्राण दे दूँ। जिस ज़िन्दगी में कोई रोमांस नहीं वह ज़िन्दगी बेकार है।

मैंने ज़ोर देकर कहा—बात सच है, पर तुमने तो शायद चन्द दिनों से ही यह रोमांस शुरू किया है। इतने हताश क्यों होते हो?

"नहीं, २-३ महीने का लम्बा समय हो गया। गरमी की छुट्टियों के पश्चात् बुलन्दशहर से लौटने पर यह रोमांस शुरू हुआ, पर आज तक इसका कोई फ़ैसला नहीं हुआ। आसार अच्छे नज़र नहीं आते। इधर घर पर वालिद ने कहा, बिना बी० ए० पास हुए कायस्थ के लड़के को कोई अपनी पढ़ी-लिखी लड़की देने के लिए राज़ी नहीं होता। इसके अलावा तुम्हारी दो-दो, छोटी पर जवान बहनें, व्याहने के लिए बैठी हैं।

मैंने तुरन्त कहा—तो शायद इसी लिए तुम एक ब्राह्मण की लड़की से अपनी साँठ-गाँठ लगा रहे हो। क्या यह मुमकिन है?

"क्यों नहीं, पढ़े-लिखे नौजवान लड़के-लड़कियों में रोमांस का आरम्भ और अन्त क्या तुमने सुखद होते नहीं देखा?"

"नहीं, अब तक तो नहीं।"

इस बार जौहरी ज़ोर से हँस पड़ा। उसने कहा—गाज़ीपुर के भुच होते ही हैं। और वहाँ से बलिया-ज़िला भी पास ही लगा हुआ है। जान पड़ता है, तुम्हें भी बलिया की बुरी हवा से लकवा मार गया है।

"तुम्हें ऐसा दिखता है, पर मैं तो सही-सलामत तन्दुरुस्ती की हालत में बैठा हुआ हूँ। आज़मा लो।"

जौहरी शायद इस कटाक्ष को समझ गया। उसने बचे हुए सिगरेट का एक कश और लेकर कमरे भर में धुएँ का गुब्बारा छोड़कर सिगरेट के टुकड़े को फेंकते हुए कहा जैन, दिल्लगी जाने दो। तुम मुझे एक बात बताओ।

मैंने तपाक से उत्तर दिया—दिल्लगी क्यों जाने दूँ? तुम कहते हो, मैं आत्म-हत्या करके प्राण देना चाहता हूँ। तुम्हारी ये बातें तो मुझे भली नहीं लगतीं।

"सच है जैन," जौहरी ने कहा—"मैं भी सोचता हूँ। मेरी उम्र ही क्या है। मैंने अभी दुनियावी सुख देखे ही नहीं हैं। यह सब क्या है, जिसमें इतना नशा है. इतनी बेचैनी है?" उसने आवेश में आकर कहा—मर जाने से तो भई जैन, मेरी ज़िन्दगी की सारी तमन्नाओं पर ही पानी फिर जायगा।

मैं फिर आराम-कुर्सी-पर लेटकर पैर फैलाने का उपक्रम करने लगा। उसने कहा—तुम मेरे सच्चे दोस्त हो। क्या तुम मेरे क़िस्से को सुनकर कोई बेहतरी सूरत नहीं निकाल सकते?

"सुनाओ। सुनकर शायद निकाल सकूँ।"

जौहरी ने अपने भीतर के सारे पाप-पुण्य को खुले दिल से मेरे सामने रखकर कहना शुरू कर दिया—उसका मकान बहुत नहीं, यहाँ से पचास-सौ क़दम पर है। उसका एक ममेरा भाई मेरे क्लास में पढ़ता है। एक दिन पोस्टमैन उनके भाई की चिट्ठी लिये हुए उसका पता पूछने लगा। मैंने कहा. लाओ, चिट्ठी मुझे दे दो, वह मेरे मित्र की है। मैं उसे उसके घर अपने नौकर के हाथ पहुँचा दूँगा। उर्दू पढ़ा होने के कारण मैंने टूटी-फूटी हिन्दी में एक ख़त लिखा। इच्छा थी, लड़की के नाम लिखूँ, पर सोचते ही बड़ा डर लगा कि कहीं भण्डा न फूट जाय। उसका भाई कहीं जान न जाय और जानकर कहीं मेरा जानी दुश्मन न हो जाय, इसलिए मैंने उसके भाई को ही एक चिट्ठी लिख दी कि पोस्टमैन भूल से तुम्हारा पत्र यहाँ डाल गया है। नौकर के हाथ ख़त और चिट पहुँचाने पर मेरे जिगर में एक अजीब धड़कन पैदा हो गई। जान पड़ा, मानो कोई भूचाल आने वाला है। थोड़ी देर में नौकर लौटकर आया। उसने कहा—बाबू घर में नहीं थे, उनकी बहन थी। उन्हीं को चिट्ठी देकर चला आया। भाई जैन, तुमसे क्या बताऊँ! मैं बैठा था, मारे ख़ुशी के उछल पड़ा। हृदय बल्लियों उछलने लगा। मुझे विश्वास हो गया, मेरा प्रथम संदेश मेरी प्रेयसी तक पहुँच गया। मेरी आत्मा के देवता ने मानो अज्ञात भाव से पहले उसके कोमल कर और छि... उसका हृदय स्पर्श करते हुए उसके अनिन्द्य तथा मादक ओष्ठाधरों पर अपने उद्भ्रान्त हुए मानव-शरीर के मुख मण्डल पर स्थित, दो विद्युत् सञ्चालक अतृप्त एवं पिपासित ओष्ठाधरों को रखकर, उसके हृदय-मन्दिर में, प्रेम की बिजली के प्रदीप को जला दिया।

जौहरी ने लपक कर मेरे हाथ पकड़कर दबाते हुए कहा—क्यों जैन, मेरा यह सपना क्या कभी पूरा होगा!

× × × ×

इस बातचीत के चार-पाँच दिन के बाद लगभग साढ़े बारह बजे दिन में मैं अपने कमरे में बैठा हुआ पिछले दस-पन्द्रह दिनों की आई हुई ज़रूरी चिट्ठियों का जवाब लिख रहा था कि अचानक मैंने देखा, जौहरी साइकिल पर यूनिवर्सिटी से लौटकर सीधे मेरे कमरे में चला आया। मैंने पूछा—क्यों, आज अचानक दोपहर में कैसे चले आये?

उसने कहा—जल्दी-जल्दी में नोट-बुक भूल गया था, उसे ही लेने चला आया, और कहते-कहते सिर का टोप उतार कर, उसे खूँटी पर टाँगते हुए, बिछे हुए मेरे पलँग पर पैर पसार कर लेट गया।

मैंने कहा भाई, यह तुम्हारे पढ़ने का समय है और मेरा चिट्ठियाँ लिखने का। क्या मेरे ऊपर इतनी दया न करोगे?

"तो क्या चला जाऊँ? बल्लाह! आज-कल तुम्हारे कमरे में आकर एक बार साँस लेना भी हराम हो रहा है" कहता हुआ वह उठने लगा।

अँगरेज़ी-सभ्यता के एटीकेट ने मुझे शर्मिन्दा कर

दिया। मैंने तुरन्त ही कहा—"अच्छा, कोई ज़रूरी पीरियड न हो तो आराम करो। मुझे कोई एतराज़ नहीं है।" यह कहते-कहते मुझे याद आ गया कि आज बेवक़ जौहरी यूनिवर्सिटी से लौटकर क्यों आ गया है। उसके रङ्ग-ढङ्ग देखकर मैंने सोचा कि यह अक़्ल का दुश्मन मज़ाक़ के सहारे कठपुतली की तरह नचाया जाय। इसी इरादे से मैंने उससे कल जब कि वह लगभग ३।, ३॥ बजे यूनिवर्सिटी से लौटा था, मैंने ज़रा बनकर बड़े सच्चे हितैषी के समान उससे कहा था—अरे, अब जब दिन ढल चला तब तुम सूरत दिखाने आये हो। अफ़सोस, तुमने एक नायाब मौक़ा हाथ से चला जाने दिया!

उसने अत्यन्त आश्चर्य के साथ चकित होते ही कहा—क्यों-क्यों, क्या हुआ?

"जान पड़ता है, आज वह लड़की स्कूल से लौटते वक़ तुमसे मिलने के इरादे को लेकर आई थी। पर मुझे जान पड़ा, शायद वह मुझसे ही मुहब्बत करने लगी है, क्योंकि जिस वक़ उसने मेरी ओर देखा, त्यों ही दोपहर की गरम हवा की लपट से मुरझाये हुए उसके चेहरे पर एक मुसकान की रेखा खिंच गई और इसके साथ ही हँसी की एक अमन्द खिलखिलाहट का अस्फुट स्वर मेरे हृदय में एक गुदगुदी पैदा कर गया।

जौहरी ने कहा—सच! और उसके चेहरे पर एक गम्भीर उदासीनता का राज्य छा गया। उसने दीर्घ उच्छ्वास के साथ एक निराशा सूचक साँस ली। मानो उसके सर्वस्व पर किसी एक अनधिकारी ने उसके प्रणय को क्षण भर में पराजित कर, उसकी अपराजिता प्रणयिनी पर विजय पा ली है। जौहरी ने भीतर के उच्छ्वसित आवेग को रोकते हुए कहा—जब वह यहाँ से निकली तब कितना बजा था।

मैंने उत्तर दिया यही, एक-डेढ़ बजा होगा।

जौहरी यह सुनकर बोला—तो मुझे अब जाना है, और चला गया।

पर आज १२-१२॥ बजे इतनी जल्दी ही नोट-बुक का बहाना लेकर वह क्यों लौट आया, यह कल की घटना से मेल-मिलाने पर मेरी समझ में आने में कुछ भी विलम्ब न लगा। मैंने उससे कहा—लो जौहरी, मैं सिर झुकाकर चिट्ठियाँ लिखता हूँ तब तक तुम गली से जानेवाली लड़की से आँखें लड़ाकर, आँखों के ज़रिये, प्रेम का तार भेजना।

"पर वह आँख लड़ाये तब न?"

"क्यों, क्या वह तुम्हें नहीं चाहती?"

"जान पड़ता है, चाहती तो ज़रूर है। पर स्कूल से लौटते वक़ गली में सीधी सामने निगाह किये हुए चली जाती है, और बग़ल में जैसे एक तिरछी नज़र से देखती भी नहीं। भई, देखे भी कैसे, लज्जा भी तो कोई चीज़ है। लज्जा के पर्दे को चीर कर देवता के कर-कमलों में प्रेम के फूल चढ़ाना सम्भव नहीं। मिस्टर जैन, वह मेरे ऊपर जान देती है। यदि ऐसा न होता तो उसने अब तक मेरे ऊपर घृणा और उपेक्षा की एक वज्रहन्ता नज़र फेंककर मेरे प्रेम के क़िले का ध्वंस ही कर दिया होता। पर मैं सोचता हूँ, उसका प्रणय एक स्वर्गीय चीज़ है। मैंने पढ़ा है, मर्द ही पहले-पहल अपनी मुहब्बत का इज़हार करते हैं। मैं चाहता हूँ कि किसी दिन दोपहरिया के सन्नाटे में उससे अपनी मुहब्बत का इज़हार करूँ।"

मैं बोल उठा—तो शायद तुम आज ही ऐसा करने आ गये हो। आज का मौक़ा छोड़ना नहीं चाहते, इसी लिए घड़ी देखकर दो घण्टे पहले बारह बजे से ही मेरे कमरे पर चढ़ाई कर बैठे हो।

"भाई, तुमको मैं अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं, अपना सच्चा हितैषी मित्र समझता हूँ। इसी लिए दिल खोलकर मैंने तुमसे अपनी सारी बातें कह दीं। मैं जानता हूँ, तुम इस उम्र में किसी के दिली मंसूबों को उखाड़कर उसके सोने का संसार नहीं उजाड़ सकते? इसी लिए समय समय पर तुम्हारे सामने अपनी बातें पेश करके सहूलियत का रास्ता ढूँढ़ना चाहता हूँ।"

मैं बोला—और इस तरह अगर तुम अपने साथ मुझे भी ले डूबे तो मैं दुनिया में अपना यह काला मुँह किसी को दिखाने लायक़ न रह जाऊँगा।

"भई, तुम भी एक अजीब डरपोक मुझे मिले। अरे! जो कुछ बीतेगी—भली चाहे बुरी, मेरे सिर पर। पर तुम तो ख़याली ख़याल खड़ा कर मुझे भी नर्वस बना रहे हो। अच्छा, यह जाने दो। मैं तुमसे एक राय लेता हूँ। ज़रा बताओ, मुझे अब क्या करना चाहिए।"

"कहो कहो!" मेरे दिल ने मुसकरा दिया।

उसने कहा—मैं सोचता हूँ कि उस लड़की को एक पुस्तक भेंट करूँ।

"विचार तो कोई बुरा नहीं।"

"पर सोचता हूँ, उस पर लिखूँ तो क्या लिखूँ?"

"और लिखोगे क्या? इसमें सोचने-विचारने की ज़रूरत ही क्या है? उसके घर का रिश्ते का भाई तुम्हारे साथ पढ़ता ही है। रिश्ता ढूँढ़ने तुम्हें कहीं जाना नहीं है। बस, लिख दो प्यारी बहन या 'प्रिय भगिनी' और इसके आगे उसका नाम—नाम जो हो।

उसने ताज्जुब से कहा—यह तुम क्या कहते हो! तुम्हारी बात मानकर अगर मैं यह लिख दूँ और संसार इस बात को पढ़े, और यदि किसी दिन सौभाग्य से या दुर्भाग्य से मेरा दिली भाव लोगों पर प्रकट हो जाय तो सच कहता हूँ जैन, मुझे डूब मरने के लिए चुल्लू भर पानी भी न जुड़ेगा।

"नहीं-नहीं, तुम्हें अभी इतनी दूर तक सोचने की बिलकुल भी ज़रूरत नहीं। अभी दिली मुहब्बत बढ़ाते जाओ और एक दिन मौक़ा पाकर, बातचीत करने की कोशिश करो।"

"कोशिश—कोशिश तो मैंने बहुत की। जैन, तुमसे सच कहता हूँ, बड़े-बड़े मंसूबे बाँधता हूँ। रोज़ सोचता हूँ, आज बात करूँगा, आज बात किये बिना न छोड़ूँगा, पर जब सामना होता है तब मेरे छक्के छूट जाते हैं। मेरे मुँह में मानो दही जम जाता है। ऐसा जान पड़ता है, मेरी ज़बान और मस्तिष्क, मानो मुर्दे की तरह ठण्डे पड़ गये हैं। तब भी—तब भी मैंने इसकी एक दूसरी सूरत निकाली थी। उसके लिए बहुत दिनों से एक ख़त लिखकर रक्खा था। रोज़ सवेरे उसके जाते वक़ यही सोचता था, आज उसके हाथ में उसे ज़रूर ख़त थमा दूँगा, आज ऐसा किये बिना न रहूँगा, पर ताज्जुब तो यह है कि उसे देखते ही मेरे सारे शरीर में मानो काठ मार जाता है। पर ईश्वर की कृपा से एक दिन मौक़ा आ ही गया। वह सामने देखते हुए—ठीक सामने नज़र गड़ाये, एक हाथ में बस्ता दबाये चट्टी चटकाते सपाटे से जा रही थी। अचानक गिट्टी से ठोकर खाकर गिरते-गिरते बची; उसकी पुस्तकों का बस्ता सहसा बिखर गया। मैंने झट लपककर उसकी एक नोट-बुक में पत्र छिपाकर उसकी पुस्तकें उसके हाथ में उठाकर दे दीं। वह घबराहट में मानो बड़ी लज्जित-सी हो रही थी। ठोकर खाने से पीठ पर लटकनेवाली उसकी चोटी नागिन की तरह उसके गले से लिपट गई थी। उसने एक हाथ से उसे जल्दी से पीछे की तरफ़ फेंकते हुए मुझसे कहा—मेरा बड़ा उपकार किया—और दूसरे हाथ से पुस्तकों का बस्ता लेकर चल दिया, और मोटरलारी कर लपककर चढ़ गई।"

"तब फिर क्या हुआ?"

"होता क्या? मेरे सर्वाङ्ग में उस दिन एक तूफ़ान-सा आता हुआ दिखाई पड़ने लगा। कभी कोई ध्वंसकारी भूकम्प आता, कभी स्वर्गिक प्रभात आता, तो कभी अँधेरी रात में बादलों के घिरे हुए गर्जन-तर्जन करनेवाले आकाश में दामिनी कौंध जाती, कभी सुख की छटा दिख जाती और कभी दुख का दर्शन होने लगता, कभी आशा का उन्माद समस्त चित्त को उन्मद-विभ्रान्त बना डालता, कभी निराशा की चोटें मानो शाहजहाँ के जैसे मयूर-सिंहासन पर बैठाकर रसातल में ढकेल ले जातीं। सोचता था, स्कूल से लौटते वक़ पत्र का उत्तर मिलेगा, पर जब वह गरमी की लू की लपट की तरह मेरे सारे शरीर को झुलसाती हुई चली गई तब मेरा हृदय बैठ गया। पर बुद्धि को चारों ओर दौड़ा कर सोचा, आज शायद समय नहीं मिला, और फिर ऐसी बातें स्कूल में कोई लड़की इस प्रकार पत्र पर कैसे प्रकट कर सकती है आदि बातें सोचते-सोचते मैंने निश्चय किया, आज नहीं तो कल पत्र का उत्तर ज़रूर देगी। बस यही सोचकर दिल को ज़रा ढाढ़स बँधाया।"

मैंने पूछा—तो तुम शायद आज उसी पत्र का उत्तर पाने के तलबगार होकर इन्तज़ार करने के लिए मेरे

विस्तर पर अड्डा जमाये बैठे हो। यूनिवर्सिटी से पढ़ने के घण्टे छोड़कर नोट-बुक लेने आने का बहाना केवल बहाना-मात्र है।

जौहरी ने मुसकुराते हुए कहा—जैन, तुमसे मेरे दिल की हालत छिपी नहीं है।

इसके पश्चात् और कई दिन बीत गये। मैं जौहरी के अनुरोध से देवदास-फ़िल्म देखने गया था और लौटकर आ रहा था। शरदऋतु की चाँदनी रात की अपूर्व चन्द्रिका चारों ओर अमृत की वर्षा कर रही थी। मौसम की आरम्भिक शीतल वायु शरीर में गुदगुदी पैदा कर रही थी। मैं चाँदनी और ठण्डक का आनन्द लेता हुआ चला आ रहा था कि मैंने सड़क के कोने से ही देखा, देवदास-फ़िल्म के एक गाने की एक कड़ी, दुमंज़िले के बारजे पर, छनछन करके आनेवाली चाँदनी के प्रकाश में, कुर्सी पर बैठा जौहरी गा रहा है—'का सों कहूँ जिय के बैन।'

ऐसा जान पड़ा, मानो उसके हृदय की सञ्चित वेदना का असीम बाँध फूटकर अजस्र तथा अनन्त धाराओं में नीरव, धवल, ज्योत्स्ना के अञ्चल-मात्र में एक हूक पैदा कर रहा है। उस हूक के प्रत्येक कम्पन पर मानो जौहरी की आत्मा तड़फती हुई गा रही है—

'का सों कहूँ जिय के बैन।'

× × ×

इसके दूसरे दिन शाम को मैंने पूछा—क्यों जौहरी, भला यह देवदास-फ़िल्म तुम्हें कैसा जँचा?

उसने लापरवाही से उत्तर दिया—यों ही, रद्दी, फड़तूस।

मैंने पूछा—क्यों, क्यों? बात उसमें ऐसी कौन थी जो तुम्हें बुरी लगी?

उसने बताया—वैसे तो फ़िल्म का शुरू का हिस्सा अच्छा था, पर उसका विकास मुझे बिलकुल पसन्द नहीं आया। पार्वती देहात की एक लड़की थी। उसके बचपन का साथी था देवदास। दोनों ने अपने प्रेम से बचपन की दुनिया को सोने का संसार बना रक्खा था। दोनों चाहते थे कि दोनों के प्रेम का अभिषेक पुण्य परिणय-बन्धन से हो, पर वह न हो सका। पार्वती एक बड़े धनी खूसट को ब्याह दी गई और बेचारा देवदास दुनिया के दरवाज़े दरवाज़े जाकर ठोकरें खाने लगा। देवदास के पवित्र प्रेम से एक चन्द्रा वेश्या का जीवन सुधर गया, पर देवदास के जीवन में कभी सुख की एक किरण तक न दिखाई दी।

मैंने कहा—फ़िल्म तो तुम्हारे ही कहने से बुरा नहीं जँचता। एक प्रकार से तुम उसकी प्रशंसा ही कर रहे हो।

"नहीं जी।" उसने कहा—"बात यह है कि देवदास ने पार्वती से कहा था कि मैं जीवन में एक बार तुमसे ज़रूर मिलूँगा। वह बेचारा आपत्ति-ग्रस्त, बीमारी से दुखी उससे मिलने जा रहा था, पर लेखक ने उसे पार्वती के गाँव के किनारे ही मार डाला। उधर पार्वती जब कि बावली हुई, उससे मिलने के लिए आ रही थी तब उसके लिए भी उसके मृत शरीर तक को न देख सकने के लिए बड़े-बड़े दरवाज़े बन्द कर दिये गये। बेचारी वहीं ठोकर खाकर सीढ़ियों पर गिर पड़ी और सिर फोड़ने लगी। जैन, तुम नहीं जानते, देवदास का दिल क्या था और पार्वती का क्या? लेखक को उनकी अन्तिम इच्छा अवश्य पूरी करनी थी।"

मैंने उत्तर दिया—केवल यही बात लेखक को नहीं करनी थी, और वही उसने किया। यदि वह ऐसा कर देता तो पार्वती के निष्कलङ्क, सात्त्विक एव पातिव्रत धर्म की कसौटी से कुन्दन बने हुए उसके सती-जीवन पर एक बहुत बड़ा धब्बा लग जाता और वासनाजनित एक तुच्छ प्रेम के चित्रण के कारण भारत के सर्वोच्च आदर्श की अभिव्यक्ति न हो सकती।

जौहरी ने आवेश में आकर कहा—देखो जैन, तुम मेरे कमरे में आकर इस आदर्श की मिरची का बघार मत लगाओ। हिन्दू-समाज की छाती पर लात मारते हुए आज न-जाने कितनी युवक-युवतियाँ कोई ज़हर खाकर तो कोई पानी में कूदकर अपने प्राण दे रही हैं। यदि तुमने उनके सुकुमार प्रेम की अवस्था का कुछ भी परिचय प्राप्त नहीं किया तो अपने संग दिल को मोम की तरह कोमल बनाओ और अपनी आँखें फाड़कर उनके हृदय तक जाने की कोशिश करो। कहते कहते जौहरी का जोश ठंडा पड़ गया। उसने एक ठंडी साँस लेते हुए कहा—हाय, तुम नहीं जानते, देवदास के चोट खाये हुए हृदय में कितनी वेदना घनीभूत होकर एकत्र हो गई थी। वह रो सकता था, वह संसार को अपनी व्यथा सुनाना चाहता था, पर उसकी व्यथा किसी ने न सुनी। यह कहते ही जौहरी ने एक मधुर आलाप भरा और गाने लगा—'का सों कहूँ जिय के बैन।'

मैंने पूछा—तो जौहरी, तुम आजकल देवदास का ही पार्ट कर रहे हो?

"तुमसे मेरी कोई बात छिपी नहीं है"—यह कहकर वह उसी तरह गाने लगा।

मैंने एक साँस में ही पूछा—तो क्या तुम्हारे पत्र का उत्तर आ गया? क्या तुमने उससे मिलने का वादा किया है या वही तुमसे मिलना चाहती है?

"न न जैन, तुम नहीं जानते उसकी परवशता। न तो उसने उत्तर दिया, न मेरी उससे भेंट हुई और पता भी नहीं कि वह मुझसे मिलना चाहती है या नहीं। दोनों बातें सम्भव हैं। मैं अन्तर्यामी भगवान् नहीं हूँ जैन, जो मैं उसके हृदय की बात को जान सकूँ।"

इसके बाद और कितने ही दिन बीत गये। शायद एक महीने से ऊपर ही हो गया होगा। मैं दीपावली की छुट्टियों में ग़ाज़ीपुर हो आया और शायद वहाँ से २०-२५ दिन में लौटा। और उसके बाद शायद पन्द्रह दिन और बीत गये। इसलिए कहता हूँ, एक महीने से कुछ ऊपर ही हो गया होगा। इस बीच में काम की अधिकता से जौहरी से मिलने-जुलने का मौक़ा बहुत कम मिला। एक दिन रात को जब मैं ठंड में सिकुड़ता हुआ बाज़ार से लौट रहा था तब मुझे जौहरी के कमरे में उसके गाने की आवाज़ सुनाई दी। वही कड़ी गा रहा था—'का सों कहूँ जिय के बैन।' सूने कमरे में, अकेले, बत्ती जलाकर, मानो देवदास के समान वह अपने अन्तर्यामी देवता को बड़े ही करुण स्वरों में अपने अन्तस्तल के द्वार खोलकर, अपनी सञ्चित वेदना के इतिहास को सुना रहा था। मुझे देखते ही उसने गाना बन्द कर दिया और बोला—हॅलो मिस्टर जैन, कम ऑन, टेक योर सीट।' अरे मिस्टर जैन, आओ और बैठो।

"कहो क्या हो रहा है" कहते हुए मैं बेत की कुर्सी पर सिकुड़ कर बैठ रहा। उसने कहा—"अफ़सोस है, तुम सिगरेट पीते नहीं।" कहते हुए सिगरेट केस से एक सिगरेट निकाल कर, उसे जलाकर, एक कश लेते हुए बोला—तुम भी एक अजीब मनहूस आदमी मालूम पड़ते हो। जब यहाँ म्युज़िकल कान्फ़रेन्स थी, जब यहाँ स्वदेशी-मेला और बड़े-बड़े मज़े थे, तब तुम न मालूम ग़ाज़ीपुर क्यों चले गये?" फिर कहा—"शायद घास छीलने गये होगे"—यह कहते हुए मुसकुरा दिया। फिर अचानक बोला—"अच्छा, इस बात को जाने दो, मैं तुम्हें एक रोमेण्टिक सत्य घटना सुनाऊँ।

मैंने कहा—सुनाओ, सुनाओ। सुनने के ही लिए तो आया हूँ।

उसने बड़े इत्मीनान के साथ कहना शुरू किया—एक रात को मैं स्वदेशी-मेला घूमने गया था। उस दिन अकेला ही था। दिल बहल नहीं रहा था, इसलिए एक इलेक्ट्रिकलैंप पोस्ट के नीचे खड़ा हुआ ताज़ा लीडर पढ़ रहा था। मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो मेरे पास से कोई गुज़र रहा है। मैंने ज़रा आगे सड़क पर आँखें फेंकीं। वहाँ एक चमकती हुई कटार पड़ी हुई थी। मैंने उसे और आश्चर्य से ऊपर आँखें उठाकर जानेवाले लोगों को देखा। औरतें और एक-दो बच्चे थे। मेरा हृदय ज़ोर ज़ोर से धड़कने लगा। सोचा, शायद इन्हीं लोगों की यह कटार है, गिर गई है। मैं एक हाथ से उसे झुककर उठाने लगा और उनकी तरफ़ देखने भी। मैंने देखा, सहसा एक लड़की ने पीछे मुड़कर पहले कटार को और फिर मुझे देखते ही अपनी दृष्टि हटाकर अपना रास्ता नापा। जैन, यह वही लड़की—वही, मेरी प्रियतमा थी। वह चली गई और मैं वह कटार उठाकर खड़ा हो गया। मैं भौचक्का-सा खड़ा उसी तरफ़ देखने लगा। जान पड़ा, जैसे मेरे सारे शरीर का ख़ून ठंडा पड़ गया हो।

मैंने पूछा—तब फिर आगे क्या हुआ?

उसने कहा—होता क्या? मैं उस कटार को लेकर चला आया। यह कहते हुए कोट के नीचे लटकी हुई

कटार को निकाल कर मेरे हाथ में देकर वह सिगरेट का धुआँ कमरे में फैलाने लगा। उसने कहा—देखो।

मैंने कटार को उलट-पलट कर कई बार देखा और जौहरी से बोला—यह कटार उसकी नहीं है, और न हो सकती है।

उसने जोश में आकर कहा—तुम नहीं समझते। यह उसी की है और उसी ने मेरे लिए फेंकी थी। यह उसकी प्रेम की निशानी है।

"यदि उसकी कटार होती तो वह उसी समय उठा लेती जब कि उसने पीछे मुड़कर उसे देखा था।" मैंने कहा—"और यदि यह उसकी है तो वह तुमसे घृणा करती है, यह मैं तुमसे दावे के साथ कह सकता हूँ। पहले तो मुझे इस बात में ज़रा भी विश्वास नहीं है कि यह उसी की कटार है।"

"तुम मेरी तमन्नाओं पर पानी मत फेरो जैन। तुम्हारा दिल फ़ौलाद का बना है। तुम इन बातों को बिलकुल नहीं समझ सकते। जाओ, जाओ, तुम मेरे कमरे से बाहर जाओ। मेरा सिर घूम रहा है। मुझे चक्कर आ रहा है।"

मैं कमरे से बाहर हो गया। उसने उचक कर तड़ातड़ दरवाज़े बन्द कर दिये और बिजली बुझाकर कटार लेकर बिस्तर पर गिरकर ज़ोर-ज़ोर से साँस लेना शुरू कर दिया।

× × × ×

दूसरे दिन बड़े तड़के एक गरम शाल में अपने शरीर को छिपाकर मैं जौहरी के दिल का हाल जानने के लिए गया। पर देखा, उसके दरवाज़े बन्द हैं। सुन पड़ा, भीतर से मानो कुछ आवाज़ आ रही है। मैं मन लगाकर सुनने लगा—"सुबह से शाम होती है और शाम से रात और रात से फिर दिन। यह उम्र यों ही तमाम होती है।" अब एक नया प्रश्न सामने खड़ा हो गया है। सारी रात इसे हाथ में लिये यही सोचता रहा हूँ। यह कटार उसके प्रेम की निशानी है या मेरी मौत की निशानी। अब नहीं सहा जाता—अब नहीं सहा जाता।

बस, इसके आगे एक धमाके की आवाज़ आई और एक ज़ोर की हाय लेकर मानो जौहरी गिर पड़ा हो। पता नहीं, ज़मीन पर या बिस्तर पर। मैं केवल सन्न हुआ उसके बन्द दरवाज़े की ओर देखता हुआ खड़ा रहा।

प्रार्थना

लेखक, श्रीयुत बालकृष्ण राव बी० ए०

पथिक, तुम्हारी जय हो, जय हो!
चिर आशा में देव तुम्हारी,
मेरी क्षणिक निराशा लय हो!!
पथिक, तुम्हारी० ॥

आज द्वार पर मेरे आकर
पल भर मधुमय स्वर में गाकर,
मेरी निद्रा में सपने भर,
चले जा रहे? जाओ, जय हो!
पथिक, तुम्हारी० ॥

क्षण क्षण से संचित है जीवन;
सुमनों से निर्मित है उपवन;
ध्वनि पर अवलम्बित है गायन—
तुम स्वतंत्र हो, बन्धु, निराश्रय!
जाओ पथिक तुम्हारी जय हो!
पथिक, तुम्हारी० ॥

× ×

अविहत जागृति देव, तुम्हारी—
मेरी भी निद्रा अक्षय हो!
पथिक तुम्हारी जय हो, जय हो ॥

योरप—जैसा कि मैंने उसे देखा

६—जर्मनी का प्रधान व्यापारिक नगर हम्बर्ग

लेखक, श्रीयुत हरिकेशव घोष

योरप की सभ्यता का मूलाधार उसकी वर्तमान औद्योगिक उन्नति है। उसके अध्ययन का हम्बर्ग में अच्छा अवसर मिलता है, क्योंकि जर्मनी के माल की ८० प्रतिशत निकासी यहीं से होती है। श्रीयुत हरिकेशव घोष हम्बर्ग में एक सप्ताह ठहरे, वहाँ के धुरन्धर व्यापारियों से भेंट की, और व्यवसाय के साथ ही साथ अन्य दिलचस्पी की बातों को भी देखा। इस लेख में आपने उन सब का बड़े ही सुन्दर ढङ्ग से वर्णन किया है और इस सिलसिले में यह बताया है कि जर्मनी भारत से कच्चा माल दिन पर दिन खरीदना बन्द करता जाता है यद्यपि अब भी भारत जर्मनी से बहुत कुछ मशीनें खरीदता है। इसलिए भारत के लिए यह आवश्यक है कि वह जर्मनी से नया व्यापारिक समझौता करे।



चाइल हाउस—इससे पाठक हम्बर्ग के आधुनिक व्यापारिक भवनों का अनुमान कर सकते हैं। इस भव्य इमारत में लगभग २००० कमरे हैं और यह एक करोड़ रुपये में बनी है।]

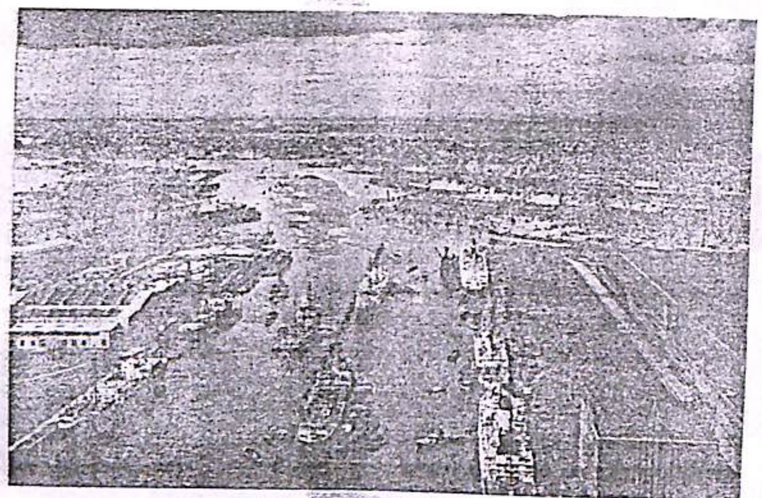
इस लेख-माला को आरम्भ करते समय मैं पाठकों को बता चुका हूँ कि मेरे योरप जाने का उद्देश दोहरा था। वायना का परिभ्रमण पूरा करने के बाद मैंने बहुत कुछ स्वास्थ्य-लाभ कर लिया था। अब मुझे सस्ते प्रकाशनों के लिए एक रोटरी मशीन खरीदने जर्मनी जाना था। मेरे मित्र श्रीयुत बी० एन० दास गुप्त भारतवर्ष में उसी फ़र्म के प्रतिनिधि हैं, जिसे मैंने एक खास तरह की रोटरी मशीन तैयार करने का आर्डर दिया था। उन्होंने मुझे अपने हम्बर्ग के कार्यालय-द्वारा यह सूचना दिलवाई कि वे हम्बर्ग में मेरी प्रतीक्षा करेंगे। मुझे उनका पत्र वायना में मिला। मेरे मित्र श्रीयुत बनवारीलाल के सामने कोई विशेष कार्यक्रम न था, इसलिए वे मेरे साथ हम्बर्ग चलने के लिए राज़ी हो गये। इस निश्चय के अनुसार हम एक लम्बी यात्रावाली रेलगाड़ी पर सवार हुए, जो २४ घंटे की यात्रा के बाद हम्बर्ग पहुँचती थी। इस यात्रा में हम कुछ बड़ी सुन्दर जगहों से होकर गुज़रे। बैवेरिया की आल्प्स-पर्वतमाला

अपने उच्च शिखरों और उनके चरणों पर लोटी बहुत सी झीलों के कारण बहुत ही सुन्दर दिखाई पड़ती हैं।

सौभाग्य से चुंगी के अधिकारी हमारे साथ बहुत ही मित्रभाव से पेश आये और हमें कोई कष्ट नहीं हुआ। श्रीयुत दास गुप्त से हमारी भेंट हो गई और वे हमें स्टेशन के क़रीब एक होटल में ले गये, जहाँ हम आराम के साथ ठहराये गये हम्बर्ग में हमारा कार्यक्रम बहुत लम्बा रहा, पर मैंने वहाँ के जिन विभिन्न व्यावसायिक कारखानों को देखा उनका विस्तृत वर्णन करके मैं पाठकों को थकाना नहीं चाहता। मैं केवल संक्षेप में वर्तमान व्यावसायिक उन्नति की मोटी मोटी बातें ही बतलाऊँगा। हम्बर्ग के निर्यात व्यापार का ब्योरेवार अध्ययन करने से इसका भली भाँति परिचय मिल जाता है। हम्बर्ग बहुत ही सुन्दर शहर है और इसमें बड़ी बड़ी नहरें हैं। यह जर्मनी का वेनिस कहा जा सकता है। यह बहुत सघन

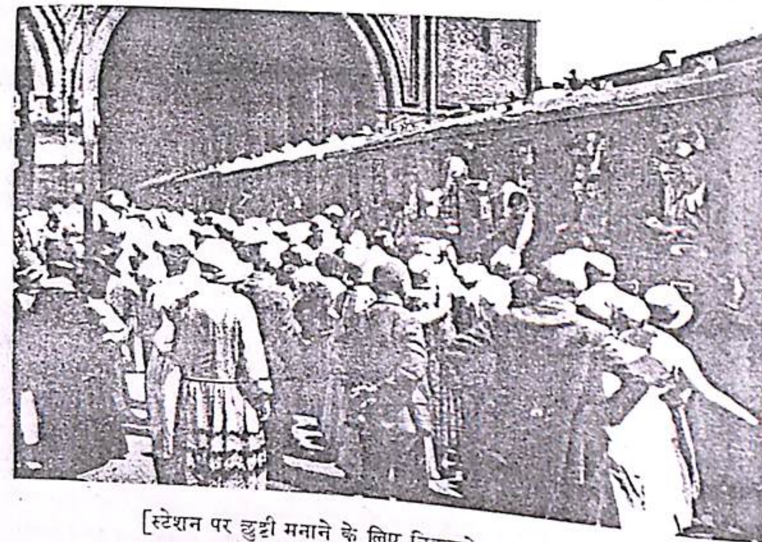


[हम्बर्ग बन्दर का एक दृश्य]

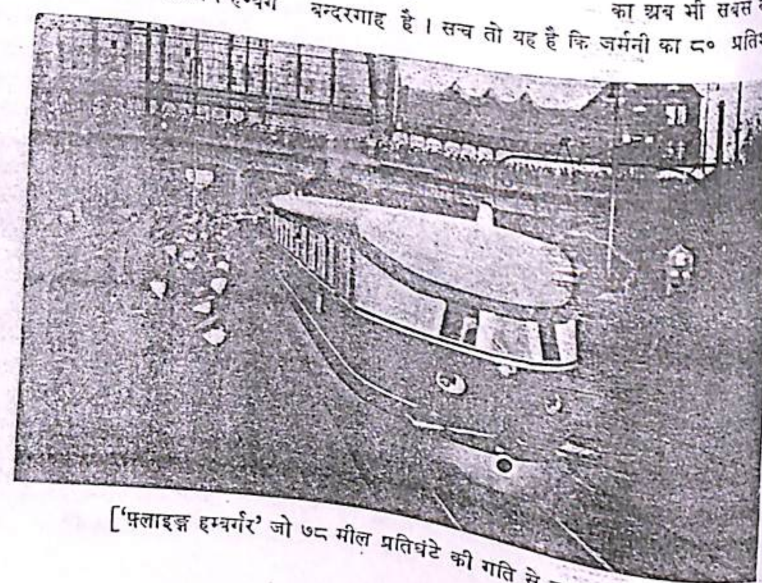


[एल्ब नदी में स्टीमरों का आना-जाना]

बसा है। जन-संख्या लगभग २० लाख के होगी। हम्बर्ग का इतिहास प्रबल सम्राट् चार्लमेगन के समय से आरम्भ होता है। कहा जाता है कि उसी ने इस नगर की नींव डाली थी। पहले यह एक पृथक् राज्य की राजधानी था और सत्रहवीं शताब्दी में यह जर्मन-साम्राज्य का स्वतन्त्र शाही नगर माना जाता था। १९वीं शताब्दी के अन्त में हम्बर्ग जर्मन-चुंगी-संघ के अन्तर्गत आ गया, इससे जर्मनी के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की वृद्धि करने में इस नगर को बहुत महत्त्व मिला। गत योरपीय महायुद्ध के आरम्भ होने के समय यह योरप का सबसे बड़ा बन्दरगाह था। लन्दन के बाद दूसरा नम्बर इसी का था। भूतपूर्व क़ैसर के शासन-काल में भी हम्बर्ग स्वतन्त्र नगर बना रहा। इसके अपने पृथक् क़ानून थे और इसका शासन म्युनिसिपैल्टी के हाथ में था। यह जर्मनी का अब भी सबसे बड़ा बन्दरगाह है। सच तो यह है कि जर्मनी का ८० प्रतिशत



[स्टेशन पर छुट्टी मनाने के लिए निकलने वालों की भीड़]



['फ़्लाइङ्ग हम्बर्गर' जो ७८ मील प्रतिघंटे की गति से चलता है।]

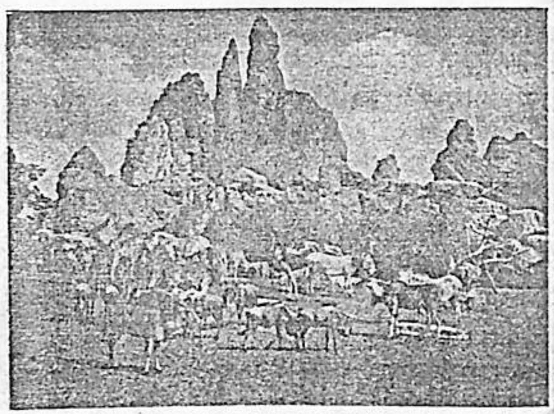


[ध्रुव-प्रदेश के रीछ (टीयर पार्क ज़ू)]

निर्यात व्यापार इसी शहर से होता है। यह एल्ब नदी पर स्थित है। यह नदी हमारी गङ्गा के समान चौड़ी तो नहीं है, पर बहुत तेज़ बहती है। जर्मनी में अगणित जल-मार्ग हैं, जो एक नगर से दूसरे को जाते हैं और विभिन्न नदियों में मिले हैं। ये मार्ग हम्बर्ग में आकर एल्ब से मिल गये हैं। गत शताब्दी में इन बहुसंख्यक जल-मार्गों से जर्मनी की औद्योगिक उन्नति में बहुत सहायता मिलती रही है। दूर के नगरों को व्यावसायिक रूप देना इन्हीं के द्वारा सम्भव हो सका है।

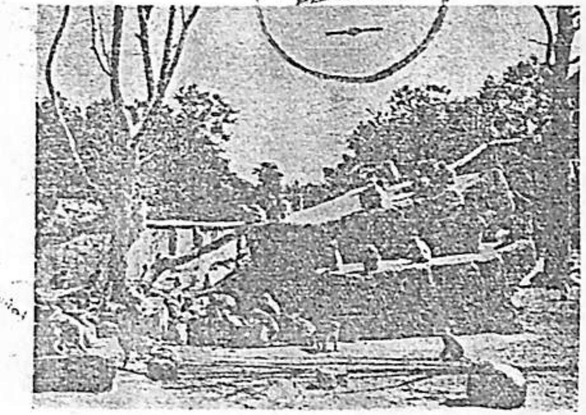
मैं श्रीयुत दास गुप्त का कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने मुझे वर्तमान जर्मनी की औद्योगिक स्थिति बतलाने और हम्बर्ग के इस प्रकार की दिलचस्पी के विभिन्न स्थानों के दिखलाने का कृपा-पूर्वक कष्ट किया। इससे मुझे जर्मनी के वर्तमान निर्यात व्यापार का एक व्यापक ज्ञान हो गया। यह व्यापार इधर जब मैं वहाँ था, बहुत गिरती हुई अवस्था में मुझे प्रतीत हुआ। हमारे पाठक यह भली भाँति जानते हैं कि युद्ध से पहले के दिनों में जर्मनी का मशीनों और वस्त्रों का व्यापार सबसे अधिक बढ़ा-चढ़ा था। वास्तव में उन्नति के उन गुज़रे हुए दिनों में जर्मनी में चारों तरफ़ से सम्पत्ति आकर जमा हुई थी और उद्योग-प्रधान नगरों में हमें अब भी इसका परिचय मिलता है।

लगभग ३ बजे हम हम्बर्ग पहुँचे। स्नान के बाद श्रीयुत दास गुप्त हमें अपने कार्यालय में ले गये। उनका कार्यालय हम्बर्ग के कारबारी भाग में है। यहाँ बैठकर हमने एक कार्यक्रम निश्चित किया। यहाँ मैं उन सुविधाओं का उल्लेख कर देना चाहता हूँ जो जर्मन-सरकार यात्रियों को प्रदान करती है। आज-कल जर्मनी की विनिमय की दर बहुत ऊँची है और जिन देशों ने स्वर्ण-माध्यम का परित्याग कर दिया है उनकी करेंसी के विरुद्ध पड़ती है। इसलिए जर्मन-सिक्का अर्थात् मार्क बहुत महँगा है। परन्तु यात्रियों के लिए जर्मन-सरकार ने एक विशेष व्यवस्था कर दी है, जिसके अनुसार यात्री मार्क उतनी ही सस्ती दर से प्राप्त कर सकते हैं जितनी कि शिलिंग। वर्तमान विनिमय की दर के अनुसार यात्रियों को एक मार्क के लिए एक रुपया से अधिक देना पड़ता,



[एक-से वातावरण में रह सकनेवाले अफ़्रीका के वन-पशु (टीयर पार्क ज़ू)]

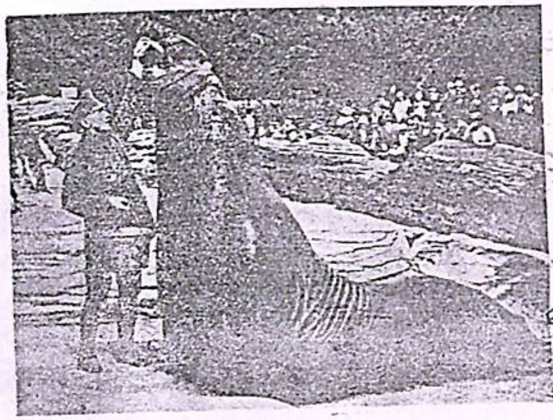
परन्तु यात्री-मार्क उन्हें क़रीब क़रीब एक शिलिंग में ही मिल जाता है जो वर्तमान विनिमय की दर से ४० प्रतिशत कम के बराबर पड़ता है। यात्रियों को जर्मनी का भ्रमण करने के लिए यह अच्छा प्रलोभन है। जर्मनी में प्रवेश करने से पूर्व वायना में मैंने कई सौ पौंड के यात्री-मार्क भुना लिये थे। हमारी जर्मनी की यात्रा में इससे बड़ी सहायता मिली। इस यात्री-मार्क की बदौलत यात्रियों को जर्मनी में आस्ट्रिया की अपेक्षा कम व्यय करना पड़ता है। इस सुविधा ने जर्मनी को एक ऐसा स्थान बना दिया है, जहाँ प्रतिवर्ष संसार के विभिन्न भागों से सहस्रों यात्री जाते हैं। हमारे पास सिक्के कम थे, इसलिए शाम को हम टामस कुक के कार्य्यालय में गये और हमने कुछ चेक तुड़ाये और व्यय के लिए जर्मन-मार्क प्राप्त किये। बाद को श्रीयुत दास गुप्त हमें एक निरामिष भोजनालय में ले गये, जहाँ हमें क्षुधा शान्त करने के लिए बहुत-से स्वादिष्ट भोज्य मिल सकते थे। हम बहुत थक गये थे, इसलिए वहाँ से अपने होटल को लौट आये और दूसरे दिन सबेरे ८ बजे तक पूर्णरूप से विश्राम किया। दूसरे दिन हमारा कार्य्य-क्रम एक 'कोआपरेटिव इन्डस्ट्री' देखना निश्चित हो चुका था। इसके लिए हम्बर्ग बहुत विख्यात है। इस कोआपरेटिव फ़ैक्टरी के मैनेजर ने अत्यन्त नम्रतापूर्वक हमारा स्वागत किया और हमें अच्छी तरह से सब स्थान घूम घूम कर दिखाया। प्रायः सभी कार्यकर्ता अच्छी पोशाकों में थे और बिना किसी जल्दबाज़ी के शान्त-भाव से अपना कार्य्य कर रहे थे। रासायनिक उन्नति और कार्य्यकर्ताओं की पूर्णता देखकर हम दंग रह गये। जर्मनी का यह कोआपरेटिव आन्दोलन विद्यार्थियों के गम्भीर अध्ययन के योग्य है। जर्मनी का यह आन्दोलन यहाँ तक सफल हुआ है कि इसके व्यवसाय की एक ख़ास शाखा में विभिन्न स्थानों पर ५० हज़ार से अधिक लोग काम कर रहे हैं और सदस्यों को सस्ते उत्पादन की सुविधायें और एक अच्छा वार्षिक बोनस प्रदान कर रहे हैं। यदि मैं विस्तार के साथ इस विषय का यहाँ वर्णन करूँ तो पाठकों का जी ऊब जायगा। उन्हें इतना ही जानना काफ़ी होगा कि हमारे देश में कोआपरेटिव आन्दोलन की जो अभी अपनी बाल्यावस्था में है, उन्नति



[बन्दरों की एक क्रीड़ास्थली (टीयर पार्क ज़ू)]



[जिराफ़ (टीयर पार्क ज़ू)]



[समुद्री हाथी (टीयर पार्क .ज़ू)]

करने की बड़ी सम्भावना है। अभी तक इटली और आस्ट्रिया हंगरी की यात्रा में मुझे योरप की औद्योगिक उन्नति के अध्ययन करने का बहुत कम अवसर मिला था। सच तो यह है कि इटली औद्योगिक देश कहा ही नहीं जा सकता। यद्यपि वर्तमान फ़ैसिस्ट शासन ने अपने कार्य्य-क्रम में देश की औद्योगिक उन्नति भी रक्खी है, तथापि जन-संख्या का आधे से अधिक भाग अभी तक कृषि-कार्य्य में ही लगा हुआ है। कृषि से सम्बन्ध रखनेवाले कुछ कारखानों का उल्लेख किया जा सकता है जैसे, डेरी या केनिंग फ़ैक्टरियाँ। इटली में किसी क़दर तम्बाकू की खेती होती है, परन्तु इसका व्यवसाय सर्वथा सरकार के अधिकार में है। इसलिए सिगरेट के कारखाने कम हैं और जनता को सिगरेट पीने का बहुत शौक़ भी नहीं है। बिजली की मशीनें बनाने में इटली शीघ्रता के साथ उन्नति कर रहा है और कुछ मोटरकार बनानेवाले कारखाने भी हैं। प्राचीन आस्ट्रोहंगारियन साम्राज्य का औद्योगिक प्रदेश अब ज़ेको-स्लावोकिया से सम्बद्ध है, इससे माल तैयार करनेवाले कारखानों से आस्ट्रिया का खंडित देश शून्य दिखाई पड़ता है।

लोक-व्यवसाय की दृष्टि से जर्मनी इटली, आस्ट्रिया और हंगरी से इतना भिन्न है कि यह अपने पड़ोस के देशों से सामाजिक, औद्योगिक और राजनैतिक सभी तरह से सर्वथा पृथक् देश प्रतीत होता है। जर्मनी के निवासियों का स्वभाव भी स्पष्ट रूप से भिन्न प्रतीत होता है। श्रमिक लोग प्रायः सरल, अपने कर्तव्यों से परिचित और धुनी होते हैं और इटालियनों की भाँति वाचाल नहीं होते। मैंने बहुत-से धुरंधर व्यापारियों से भेंट की, उनकी सफलताओं के बारे में उनसे बातें कीं और औद्योगिक उन्नति के संबंध में उनका क्या दृष्टिकोण है, इसका अध्ययन किया। ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से उनकी सफलता का रहस्य मालूम हो जाता है। वहाँ श्रमिकों को कल्पनात्मक, उत्साहपूर्ण और परिश्रमी होना सिखाया जाता है। कठोर विनियम और पूर्ण शिक्षण के द्वारा श्रमिकों के मस्तिष्क में क्रमशः अपने उत्तरदायित्व और कर्तव्य को समझने और प्रत्येक ब्योरा को अच्छी तरह जानने का भाव जाग्रत हो जाता है। परिश्रमशील



[जल-पक्षियों का एक सुख-निवास (टीयर पार्क .ज़ू)]

मनुष्यों के उत्पन्न होने में देश का जलवायु भी सहायक होता है। सादा रहन-सहन और पास-पड़ोस की स्वच्छता के कारण भी वहाँ योरप के दक्षिणी राज्यों की अपेक्षा अधिक अच्छे श्रमिक उत्पन्न होते हैं। परन्तु व्यापार के मामले में उन्हें इँग्लैंड के सामने झुकना पड़ता है। वे अपनी वस्तुओं को विभिन्न बाज़ारों में पहुँचाने का कार्य्य उतने अच्छे वैज्ञानिक ढंग से नहीं कर सकते जैसा कि अँगरेज़ लोग करते हैं। इँग्लैंड का व्यापारिक संघ कहीं अधिक पूर्ण और प्रभावोत्पादक है। जर्मन लोग अपनी वस्तुओं का विज्ञापन करना नहीं जानते और उन्हें संसार के बाज़ारों की समस्याओं का वैसा पूर्ण ज्ञान भी नहीं है जैसा कि अमरीकनों और अँगरेज़ों को है। उनकी उत्पादन शक्ति अद्भुत है, सोचने और आविष्कार करने की वे आश्चर्य्यजनक क्षमता रखते हैं, परन्तु अपनी वस्तुओं के बेचने की समस्याओं को सुलझाने की क्षमता वे नहीं रखते। अपने व्यापारिक कार्यों पर नज़र रखना और अपने ग्राहकों की माँगों पर तुरन्त और मुस्तैदी के साथ ध्यान देना अँगरेज़ लोग ही जानते हैं। परन्तु सफ़ाई में उनका दर्जा ऊँचा है। उनके कारखाने अच्छे नक़शे पर खड़े किये जाते हैं। वे अधिक हवादार होते हैं और उनमें सफ़ाई की अधिक अच्छी व्यवस्था रहती है। दफ़्तर भी अत्यन्त स्वच्छ होते हैं। कारखाने की छोटी-मोटी बात पर भी बहुत ध्यान दिया जाता है। उन्नति का क्रम जारी रखने के लिए प्रत्येक बड़े कारखाने में खोज और प्रयोग के लिए अलग विभाग रहता है और देश के आला दिमाग़ सदैव उनके सम्पर्क में रहते हैं। उद्योग और व्यवसाय की उन्नति में विज्ञान से भी पूरी पूरी सहायता ली जाती है।



[बाघ और बाघ का बच्चा (टीयर पार्क .ज़ू)]



[पहाड़ी बकरियाँ अपने अनुकूल प्रकृति में (टीयर पार्क .ज़ू)]

जर्मनी के माल की सबसे अधिक निकासी हम्बर्ग से ही होती है, इसलिए मैंने वहाँ कुछ दिन ठहरकर लोगों की व्यावसायिक प्रवृत्तियों का अध्ययन करना आवश्यक समझा। संसार के बड़े बड़े आयात-निर्यात का व्यवसाय करनेवाले फ़र्मों के अतिरिक्त जर्मनी के भी प्रायः सभी बड़े फ़र्मों के प्रतिनिधि हम्बर्ग में रहते हैं। बहुत-सी अमरीकन और इँग्लिश एजंसियाँ और निर्यात-फ़र्म यहाँ हैं। भारतीय फ़र्मों में कदाचित् श्रीयुत गुप्त बहुत अच्छा कारबार कर रहे हैं।



[बैवेरियन अल्पस का एक सुन्दर दृश्य]

एक भारतीय ट्रेड कमिश्नर भी वहाँ रहता है, जो अनुमान किया जाता है कि भारत-सरकार को भारत के साथ जर्मनी के व्यापार के सम्बन्ध में सलाह देता है। परन्तु भारतीय फ़र्म इस प्रबन्ध से वास्तव में कोई लाभ उठाते हैं, यह सन्देहजनक है।

एक दिन इन ट्रेड कमिश्नर श्रीयुत गुप्त से भारत से जर्मनी में जानेवाले, माल के सम्बन्ध में मेरी संक्षेप में बातें हुईं और मुझे यह जानकर बहुत आश्चर्य्य हुआ कि जर्मन-सरकार ने भारत से माल मँगाना बहुत कम कर दिया है, यद्यपि भारतवर्ष अब भी जर्मनी से बहुत कुछ मशीनें ख़रीदता है। उनकी रिपोर्ट भारतीय पत्रों में प्रकाशित हो चुकी है और इस मामले में असेम्बली में प्रश्न भी हुए हैं, परन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकला। अब समय आ गया है कि भारतवर्ष जर्मनी से एक अलग व्यापारिक समझौते की माँग उपस्थित करे, नहीं तो व्यापार का पलड़ा प्रतिवर्ष भारतवर्ष के विरुद्ध होता जायगा। जर्मनी ने खाद्य अन्न और अन्य कच्चा माल भारतवर्ष से मँगाना बहुत कुछ बन्द कर दिया है। यह भारतीय हितों के लिए बहुत ही विघातक है।

यथेष्ट रूप से प्राचीन नगर होने पर भी हम्बर्ग अत्यन्त सुन्दर है। मुझे मालूम हुआ कि यह संसार के अत्यन्त सुन्दर बन्दरगाहों में से एक है। बड़े बड़े व्यापारिक मुहल्लों में इसके कारबार की छाप स्पष्ट प्रतीत होती है। एल्ब नदी जहाँ शहर के बाहर निकलती है वहाँ मछुओं का एक रमणीक टापू है। वीकएन्ड की छुट्टियों में शहर के निवासी नदी और इस टापू पर आनन्द मनाते हैं। हम्बर्ग और अन्य मनोरम जगहों के बीच नदी के उतार और चढ़ाव दोनों ओर समय से स्टीमर आते जाते रहते हैं।

हम्बर्ग के क्रय-विक्रय का केन्द्र जो नगर की मुख्य नहर पर है, सुसज्जित स्त्री-पुरुषों से सदैव सुन्दर बना रहता है। हम्बर्ग में कई विभागीय भाण्डार हैं और वे सब कलकत्ता के ह्वाइट वे के भाण्डार से बहुत बड़े होंगे।

जो लोग हम्बर्ग की यात्रा करते हैं वे यहाँ का आश्चर्य्यजनक ज़ुआलोजिकल गार्डन देखे बिना नहीं रहते। यह गार्डन हेगेन बेक के परिवार के अधिकार में है और टीयर पार्क के नाम से विख्यात है। यह बाग़ बहुत ही भव्य ढङ्ग से लगाया गया है और इसमें संसार के बहुत-से भागों के पेड़-पौधे मिलते हैं। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इसमें पशु-पक्षियों को क़रीब क़रीब वही स्वाधीनता दी जाती है जो उन्हें उनकी प्राकृतिक अवस्था में प्राप्त रहती है। वे पिंजड़ों में यहाँ बन्दी नहीं रक्खे जाते और जहाँ तक सम्भव होता है वे अपने स्वभाव के अनुकूल वातावरण में ही रक्खे जाते हैं। उनकी गिरोहबन्दी उसी तरह की जाती है, जिस तरह अपनी जन्मभूमि में वे स्वयं करते हैं। इस बाग़ को घूमने में हमें पूरा दिन लग गया, परन्तु हमें आनन्द भी बहुत प्राप्त हुआ।

एक दिन हम एक ख़ास तरह के बोट में नदी के उतार की ओर 'ब्लैंकिनीज़' के नाम से विख्यात एक आश्चर्यजनक स्थान देखने गये। यहाँ से सम्पूर्ण नदी

का दृश्य बहुत ही सुन्दर दिखाई पड़ता है। नदी हम्बर्ग से मीलों चौड़ी होती हुई समुद्र की ओर बहती है। पूरा फ़ासला ३२ मील से कुछ ऊपर होगा। एक पहाड़ी की चोटी से जो लगभग एक हज़ार फ़ुट ऊँची होगी, एल्ब का यह दृश्य देखते ही बनता है। हरे पेड़ों की छाया के नीचे भीनी महक से युक्त गुलाब के बग़ीचों में हमें विश्रान्ति का इतना अधिक अनुभव हुआ कि मेरे मित्र श्रीयुत लाल एक झपकी लेने से बाज़ न रह सके।

जिसने किसी दिन संध्या को सेंटपाली जहाँ जहाज़ी लोग आमोद-प्रमोद के लिए जाते हैं, न देखी उसने मानो यहाँ आकर कुछ नहीं देखा। यद्यपि यह सच है कि सुरुचि का यहाँ बहुत कम ध्यान रक्खा जाता है, तथापि ध्यानपूर्वक निरीक्षण करनेवाले को सेंटपाली जैसे स्थान बहुत कम मिलेंगे। सब तरह के विचित्र नमूने यहाँ मिलते हैं, वायु-मण्डल में विचित्र सुगन्ध व्याप्त रहती है और तेज़ रोशनी आँखों को चकाचौंध कर देती है। केफ़ों में अलकाज़ार बहुत बदनाम है, जहाँ रात रात भर नाच-गान और आमोद-प्रमोद होता रहता है। यहाँ के रात्रि-जीवन की हमने एक झलक देखी और १२ बजे से पहले ही शीघ्रता-पूर्वक उस स्थान से हट आये। यहाँ हमारी एक पंजाबी नाविक से भेंट हुई। ये महाशय हम्बर्ग में १५ वर्ष से अधिक समय से रह रहे हैं। उन्होंने हमें भोजन के लिए निमन्त्रित किया, परन्तु हमने बहाना कर दिया और बड़ी कठिनाई से उनसे पिंड छुड़ाया। ये नाविकों के लिए एक दूकान खोले हुए हैं और हमें उनकी दशा अच्छी प्रतीत हुई।

हम्बर्ग में हवाई जहाज़ों का एक भारी अड्डा है और कदाचित् यह जर्मनी के सर्वोत्तम अड्डों में से एक है। स्वयं हवाई स्टेशन एक आश्चर्य की वस्तु है और भविष्य की उपयोगिता को खयाल में रखकर यह निर्मित हुआ है। इसकी सजावट खर्चीली और स्थिति विचित्र है। मैं, श्रीयुत लाल और श्रीयुत गुप्त एक दिन हवाई जहाज़ से उड़े और हम्बर्ग की ऊपर से सैर की।

कोई आधुनिक जर्मन-स्कूल देखने की मेरी बड़ी इच्छा थी। श्रीयुत दास गुप्त ने मेरे लिए इसका प्रबन्ध कर दिया। स्कूल शहर के एक अत्यन्त स्वच्छ भाग में स्थित था। प्रधान अध्यापिका ने विनय-पूर्वक हमारा स्वागत किया और हमें स्कूल में घुमाया। स्कूल में ४ से १० वर्ष तक की आयु के विद्यार्थी थे और उनकी संख्या लगभग २०० थी। उनकी पोशाकें बहुत साफ़-सुथरी थीं। आरम्भिक विज्ञान और भूगोल की कक्षाओं में हम शीघ्र ही ले जाये गये। इन कक्षाओं में जो अपरेटस, माडल और बहुत-से दूसरे यंत्र थे उन्हें देखकर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। हमारे पूछने पर कि आरम्भिक पाठ-शालाओं में कितने अपरेटसों की आवश्यकता पड़ती है, अध्यापक ने बतलाया कि इसके लिए ५०,००० मार्क से कम नहीं लगते। कमरे कमरे से ले कर यह स्थान हमें भली भाँति दिखाया गया। लड़के बहुत तन्दुरुस्त थे और उन्हें प्रायः सभी विषयों में व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है। प्रत्येक पाठ उनके लिए रोचक बनाया जाता है। घर पर करने के लिए उन्हें कोई काम नहीं दिया जाता। जो कुछ भी सीखते हैं, स्कूल में ही सीखते हैं। टिफ़िन के समय उन्हें मुफ़्त में जलपान कराया जाता है, जिसमें पोषक अंश यथेष्ट रूप में विद्यमान रहता है। नेचर स्टडी के लिए स्कूल से सम्बद्ध बाग़ से बालकों की रुचि और उनकी शिक्षा का पता चलता है। प्रत्येक लड़के को मुफ़्त में पुस्तकें मिलती हैं और प्रारम्भिक अवस्था में उनके माता-पिता से कोई फ़ीस नहीं ली जाती। जर्मनी में सर्वत्र अनिवार्य्य शिक्षा है।

हम्बर्ग में सात दिन रहने के बाद हम बर्लिन के लिए 'फ़्लाइङ्ग हम्बर्ग' से रवाना हुए। इसने हम्बर्ग और बर्लिन के बीच १७६ मील का फ़ासला ७८ मील प्रति-घंटा के हिसाब से तय किया।

रक्त-स्नान की ओर—

लेखक, श्रीयुत विष्णुदत्त मिश्र 'तरंगी'

विश्व को बन्धुत्व और प्रेम का सन्देश देनेवाले दार्शनिकों की वाणी अब क्षीण पड़ रही है और उसके स्थान पर चारों ओर से युद्ध के लिए ललकार की आवाज़ उठ रही है। अफ़्रीका में इटली मनमानी कर रहा है, पूर्व में जापान और योरप में जर्मनी फिर करवटें बदलने लगा है। ऐसा जान पड़ता है कि निकट भविष्य में एक ऐसा महायुद्ध हुए बिना न रहेगा जिसमें सारी दुनिया को समरंजित होना पड़ेगा। इस लेख में 'वर्तमान' के संयुक्त सम्पादक श्रीयुत विष्णुदत्त मिश्र 'तरङ्गी' ने संसार की इसी भयावह स्थिति का वर्णन किया है।

गत महायुद्ध में जब अमरीका उसमें शामिल हुआ तब प्रेसीडेंट विलसन ने दुनिया के सामने घोषणा की थी कि 'मनुष्य-जाति की स्वतंत्रता का यह अंतिम युद्ध है।' दुनिया ने भी यही समझा था कि युद्धों को नष्ट करने के लिए यह युद्ध छेड़ा गया है। लेकिन क्षणिक संधि के पश्चात् जब जर्मन उपनिवेशों के बँटवारे का सवाल सामने आया तब मनुष्य-जाति की स्वतंत्रता का सवाल उठाकर ताख़ पर रख दिया गया। जिस स्वतंत्रता के नाम पर १,०८,७३,००० लोगों ने अपनी जान क़ुर्बान कर दी थी, ५० लाख स्त्रियाँ अपने सुहाग का सिंदूर पोंछ चुकी थीं; ९० लाख बच्चे अनाथ हो गये थे तथा ६ खरब रुपया व्यय हो चुका था, वह वर्सेलीज़ के संधि-पत्र पर अंकित न की जा सकी। एक इंच ज़मीन की भी इच्छा न करने की घोषणा करनेवाले राष्ट्र ब्रिटेन ने 'मेंडेट' के नाम पर १ करोड़ वर्गमील ज़मीन अपने साम्राज्य में मिला ली। मित्र राष्ट्रों के पिछलग्गुए राष्ट्रों ने अफ़्रीका में साम्राज्य का बँटवारा कर लिया। योरप में अपने अपने फ़ायदे को देखकर राष्ट्रों की सीमा निर्धारित की गई। उदाहरण के लिए फ़्रांस ने जर्मनी का अल्सासलोरेन और सार-प्रान्त ले लिये।

वर्सेलीज़ की संधि ही भविष्य के संघर्ष को शीघ्राति-शीघ्र निकट लाने में सहायक हो रही है। फ़्रांस और जर्मनी के बीच का सीमा-निर्धारण ठीक न होने से फ़्रांस और जर्मनी के बीच कटुता के चिह्न दिनोंदिन स्पष्ट होते जा रहे हैं। गत सौ वर्षों से फ़्रांस जर्मनी की कई हज़ार वर्गमील ज़मीन दबाये हुए है। जर्मनी ने पिछला महायुद्ध जिन कारणों से छेड़ा था उनमें से एक यह भी कारण था। महायुद्ध के बाद इन प्रदेशों को जर्मनी को दे देना चाहिए था अथवा वहाँ के निवासियों को आत्म-निर्णय का अधिकार मिलना चाहिए था। लेकिन दो में से एक भी नहीं हुआ। यही कारण है कि जर्मनी हमेशा इसी ताक में रह रहा है कि कब मौक़ा पाकर वैर भजा ले।

यह तो मानी हुई बात है कि युद्ध या तो बदला लेने के लिए होते हैं अथवा साम्राज्य विस्तार करने के लिए। आज जो संघर्ष हमारे सामने मौजूद है उसमें साम्राज्य-लोलुपता ही प्रधान है। यद्यपि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि दुनिया का नैतिक धरातल भी इतनी अधिक तीव्रता से पतित हो गया है कि हर एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के लाभालाभ की परवा किये बिना अपना मतलब गाँठने के लिए तत्पर है। जब किसी राष्ट्र में यही धारणा सामूहिक प्रवृत्ति प्राप्त कर लेती है तब वही राष्ट्र साम, दाम, दण्ड, भेद से अपना मतलब गाँठता है। आज-कल इस तरह जबरन किसी राष्ट्र को घोंटने के लिए दो विशेष वाक्य प्रयोग किये जाते हैं। उन्हीं दो वाक्यों में शीघ्र प्रकट होनेवाले युद्ध के कारण छिपे हुए हैं। वे वाक्य हैं—(१) सभ्यता का संदेश पहुँचाना और (२) सूर्य के नीचे अपना स्थान बनाना।

× × ×

साधारणतः युद्ध के दो कारण होते हैं। पहला प्रत्यक्ष कारण तो एकदम किसी अघट-घटना से पैदा हो जाता है। सर्विया के राजकुमार के क़त्ल की घटना ने महायुद्ध को निमंत्रण दिया था। इसे बहाना ही कहना चाहिए। अप्रत्यक्ष कारण तो धड़ाके के लिए बारूद का पहाड़ पहले से ही तैयार कर रक्खा जाता है।

आज युद्ध की शतरंज की चालें सब पर प्रकट हैं और एक-दो नहीं, पूरे ९ स्थान दुनिया में ऐसे हैं जिनमें से कहीं भी छिड़नेवाला युद्ध महायुद्ध का रूप धारण कर सकता है। लेकिन इन सबका केन्द्र ब्रिटेन है। दुनिया का पंचमांश भूमिखंड उसके क़ाबू में है, समुद्रों के असली मोर्चे के स्थानों पर उसी की फ़ौजों का बिगुल बजा करता है। लेकिन समय का प्रभाव है। कोई ऊँचा चढ़ता है तो कोई गिरता है। उत्थान की अंतिम श्रेणी तो पतन है। इसी महान् सत्ता पर आक्रमण करने के निश्चित हौसले ही तो महायुद्ध के विधायक बन रहे हैं।

गत महायुद्ध के बाद संसार में दो नई शक्तियाँ पैदा हुईं—इटली और जापान। महायुद्ध के बाद ही मज़दूरों और साम्राज्यवादियों का संगठन भी मज़बूत हो गया। इस कारण राष्ट्र कष्टयुक्त हो गये। आर्थिक संकट और बेकारी भी साथ-साथ चल रही थीं। ऐसे मौक़े पर जापान ने अपने पड़ोसी चीन पर हाथ मारा और मंचूरिया पर क़ब्ज़ा कर लिया। आज-कल वह उत्तरी चीन में हाथ बढ़ा रहा है।

यह स्थिति बहुत ही विषम है। कोई भी राष्ट्र तभी अधिक शक्तिशाली और सम्पन्न हो सकता है जब उसके पास शोषण के लिए अन्य आश्रित देश प्राप्त हों। मंचूरिया के मिल जाने से जापान को एक और ठिकाना प्राप्त हो गया। फल-स्वरूप जापान अधिक बलवान् बन गया है। उत्तरी चीन के बाद वह धीरे धीरे सारे चीन को हड़पने में संलग्न है। ब्रिटेन, अमरीका, फ़्रांस आदि देशों की अरबों की संपत्ति चीन में लगी हुई है। उसका फिर क्या हश्र होगा? जापान अपने बल से जैसा चाहेगा, वैसा नचवा सकेगा। पूर्वी एशिया की राजनीति का केन्द्र अभी तक ब्रिटेन था। अगर जापान बलिष्ठ हो गया तो आस्ट्रेलिया, भारत आदि देशों में किसकी चलेगी? इस कारण अगर पूर्व में राज्य करनेवाले राष्ट्रों को अपनी ख़ैर की चाहना है तो उन्हें जापान को गिराना पड़ेगा।

इसके विपरीत जापान की महत्त्वाकांक्षायें भी उतनी ही बढ़ी हुई हैं, जितनी महायुद्ध के पहले जर्मनी की थीं। जापान के ज़िम्मेदार राजनीतिज्ञों ने खुल्लमखुल्ला यह घोषणा कर दी है कि जापान पूर्व का नेतृत्व करेगा। संधिपत्रों को ठुकराकर वह चीन को तो अपने जादू के डंडे के बल पर नचा ही रहा है। अभी तक प्रशान्त महासागर पर ब्रिटेन और अमरीका राज्य कर रहे थे, लेकिन जापान ने अब उनका प्रभाव दूर कर दिया है। सन् १९०७ में एक संधि करके ब्रिटेन और अमरीका ने प्रशान्त महासागर में जंगी बेड़ों का अनुपात ५:५:३ रक्खा था। जापान ने इस संधि-पत्र को फाड़ कर फेंक दिया है। तब फिर ज़ाहिर क्या होता है कि जापान किस ओर है। राष्ट्रसंघ के मेम्बर होने के नाते उसे प्रशान्त में द्वीपों का एक समूह मिल गया है, जिससे वह प्रशान्त पर क़ब्ज़ा वैसे ही जमा-सा चुका है। तब फिर उसके पास कमज़ोरी की क्या बात रह गई है? इसी कारण अमरीका भी जापान पर कड़ी निगाह किये बैठा है। दो तरफ़ से जापान के खिलाफ़ मोर्चे-बन्दी है। हवाई द्वीप और फ़िलीपाइन्स में अमरीका का सबसे ज़बर्दस्त जंगी बेड़ा तैनात है और सिंगापुर तो आज दुनिया का सबसे उत्तम और दृढ़ नौ-सेना का केन्द्र बन ही गया है। इन सबके निशाने का एकमात्र केन्द्र जापान ही है, क्योंकि अगर प्रशान्त

पर उसका सिक्का जम गया तो फिर उसकी मर्ज़ी से ही सब काम हुआ करेंगे।

यह तो एक गुत्थी है ही, लेकिन मामला यहीं समाप्त नहीं हो जाता। पूर्व में जापान का विरोध करने के लिए साथ में साम्राज्यवाद से त्रस्त सभी देशों में मौजूद विप्लव का आह्वान करनेवाला राष्ट्र बोलशेविक रूस है। मंचूरिया पर जभी जापान का पंजा बैठा, तभी रूस ने समझ लिया कि बोलशेविज़्म और रूस के ऊपर यह पहला आक्रमण है। जापान दूसरी ओर यह परख रहा है कि जब तक यह रूसी भालू बैठा है तब तक चीन को सरकार के सिवा मंगोलिया और चीनी तुर्किस्तान पर पूरा पूरा दाँव नहीं चलता। लेकिन मंगोलिया का प्रान्त है बड़ा उत्तम। रहने के अलावा कृषि-व्यवसाय एवं खनिजों के लिए वह कामधेनु है। इस कामधेनु पर इन दोनों की स्थानीय झड़पें होती ही रहती हैं। लेकिन दिनोंदिन स्थिति गम्भीर होती जा रही है। अभी कुछ दिन पहले समाचार मिले थे कि जापानी और मंगोल फ़ौजों में भिड़न्त हो गई। जापानी मंचूरिया में हमले की जबर्दस्त तैयारियाँ कर रहे हैं और रूस ने तो उसके पड़ोस में फ़ौजी आबादी भी बसवा दी है। खरीद-फरोख्त का तो सवाल इसमें उठता ही नहीं। अगर मंगोलिया जापान के क़ब्ज़े में पहुँच जाता है तो रूस की इतनी अधिक लम्बी सरहद पर जापान पहुँच जायगा कि उसके लिए यह असम्भव होगा कि उसकी रक्षा कर सके। अभी जापान थोड़ी दूर का खतरा है, लेकिन बाद को आस्तीन में साँप आ डटेगा। इस कारण रूस किसी भी क़ीमत पर अपना अधिकार मंगोलिया से नहीं जाने देना चाहता। दो वर्ष से इसी देश में सीमा के सवाल पर छोटी-मोटी भिड़न्तों के समाचार अक्सर प्राप्त होते रहे हैं। रूस की सरकार ने बार बार कई जासूसों को फ़ौजी क़िलेबन्दियों का फ़ोटो लेते पकड़ा है। यह कटुता बढ़ती बढ़ती अब ज़हर हो रही है। अतएव कोई नहीं कह सकता कि कब युद्ध छिड़ जाय। राजनीति की खेती ऐसी होती है कि सन्देशों से नहीं, तलवार से काम चलता है। पिछले एक वर्ष से जापान अपने इस युद्ध की तैयारी में लगा हुआ है। यहाँ तो स्थिति बहुत ही साफ़ है। जापान साम्राज्यवाद का अग्रदूत है; रूस साम्यवाद का। रूस ने ही चीन के कुछ प्रान्तों में लाल सरकार क़ायम करवा दी है। निश्चयतः यह केरबेर का संग है और इसका फ़ैसला युद्ध ही करेगा। जैसा कि जनरल अराकी ने घोषित किया था—"पीले और काले के अभ्युत्थान का युग आ गया है। एशिया के भविष्य के लिए उन्हें जापान का साथ देना पड़ेगा। जापान की महत्त्वाकांक्षाओं का यह प्रथम चरण है। जापान बता देना चाहता है कि पूर्व का नेता वही है और रहेगा।"

राजनीति और ज्योतिष में कभी मेल नहीं देखा गया। इस कारण यह भविष्यद्वाणी करना कठिन है कि आखिर महायुद्ध की अशुभ घड़ी कब आवेगी। सम्भवतः उस दिन जिस दिन जापानी समझ लेंगे कि रूस की हवाई सेना उनका कुछ बना-बिगाड़ नहीं सकती। जापानी जनरल रूस पर चढ़ाई करने का प्रोग्राम बना चुके हैं; पर उनकी कठिनाई यह है कि ब्लाडीवास्टक से उड़नेवाले रूसी जहाज़ तोकियो और ओसाका पर बम बरसा सकते हैं। जापान के मकान काठ के तख्तों और लकड़ी के बने होते हैं और एक ही बम सारे शहर में आग लगाने को काफ़ी है। अतएव जापान मंचूरिया को अपना युद्ध-केन्द्र बना रहा है। इसी वर्ष के अन्त तक यह युद्ध-केन्द्र तैयार हो जायगा और उसके बाद ही किसी सीमान्त से अल्टीमेटम की खबर का आ जाना आश्चर्यजनक न होगा।

× × × ×

तसवीर का दूसरा रुख अफ़्रीका में पैदा हो ही गया है। सभ्यता-प्रचार का बहाना लेकर इटली ने अबीसीनिया पर चढ़ाई कर दी है। ब्रिटेन और फ़्रांस अपने साथ ४९ राष्ट्रों को लेकर राष्ट्रसंघ की मार्फ़त इटली का विरोध कर रहे हैं। जापान की



स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष—जिनकी स्मृति में झूसी के सेंट्रल ट्रेनिंग स्कूल में श्री चिन्तामणि घोष-हाल निर्मित हुआ है। इस स्कूल का परिचय अन्यत्र दिया गया है।



[श्री] सीताराम सेकसरिया की पुत्री श्रीमती पन्नाकुमारी का विवाह [...]ल में श्री जमनालाल बजाज के भांजे श्री प्रह्लादराय [...]दार के साथ हुआ है। इस विवाह में दहेज़ आदि का [...]य नहीं किया गया। इसमें बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, [बा]बू राजेन्द्रप्रसाद, सर पी० सी० राय आदि नेता उपस्थित थे।



बौना बाबा। आप अर्द्ध-कुम्भ-मेला में प्रयाग पधारे थे। आपकी ऊँचाई दो फ़ुट और आयु २४ वर्ष है।



मिसेज़ धनराज बख़्शी—लखनऊ-डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के लिए चुनी जाने-वाली प्रथम महिला।



हिज़ हाइनेस महाराज होलकर और हर हाइनेस महारानी होलकर इंदौर के कोआपरेटिव बैंक के भवन से निकल रहे हैं। हाल में इस बैंक का महारानी ने उद्घाटन किया था।



महामाया-स्वर्ण-पदक-प्राप्त, कानपुर की कुमारी महेन्द्र कौर संयुक्त-प्रान्त की लड़कियों में वक्तृत्व-कला में सर्व-प्रथम हुई हैं।



इलाहाबाद-विश्वविद्यालय के डाक्टर एन० आर० धर। आप कृषि के सम्बन्ध में बड़े उपयोगी अनुसन्धान कर रहे हैं।



हिज़ हाइनेस सर आग़ाख़ाँ। हाल में आपकी स्वर्ण-[जयन्ती] मनाई गई थी और आप सोने से तोले गये थे। चित्र में आप अपने भक्तों को उपदेश दे रहे हैं।



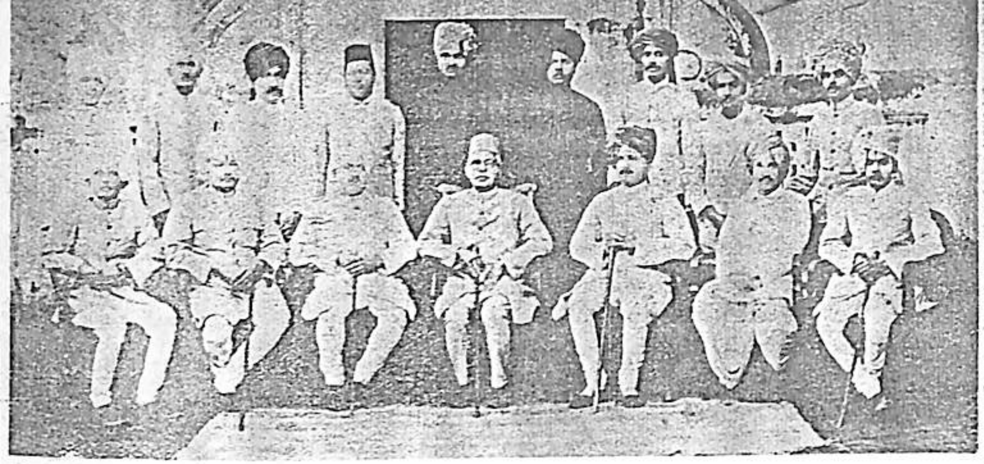
बाबू रामनिवास बागला—मोलमीन (बर्मा) के म्युनिसिपल बोर्ड के सभा-पति चुने गये हैं। आप एक सुधार-प्रेमी मारवाड़ी सज्जन हैं और आपकी अवस्था इस समय ३८ साल है।



विदेशों में भारत के विरुद्ध गंदा प्रचार करनेवाली मिस कैथरिन मेयो।



श्रीयुत सी० जिनराजदास—आपने प्रयाग में बीसेंट-मेमोरियल लाइब्रेरी का उद्घाटन किया है।



श्री रघुराजसाहित्य-परिषद् रीवाँ की कार्य्य-कारिणी के सदस्य और कार्य्यकर्ता।

खड़े हुए—मुंशी जगमोहनलाल निगम, सरदार अभयराजसिंह, लाल दर्शनसिंह, लाल यादवेन्द्रसिंह, अम्बिकेश जी, बाबू सरयूप्रसाद, पण्डित ज्ञानदत्त मिश्र, बाबू छेदालाल गुप्त और बाबू माधवप्रसाद।

बैठे हुए—लाल चन्द्रकीर्तिसिंह, लाल बलवन्तसिंह, ठाकुर गोपालशरणसिंह, पण्डित जानकीप्रसाद चतुर्वेदी, राव साहब शिवबहादुरसिंह, पण्डित नन्दकिशोर, पण्डित मथुरप्रसाद शर्मा।



प्रयाग-महिला-विद्यापीठ के महिला-गल्प-सम्मेलन में भाग लेनेवाली कुछ प्रमुख गल्प-लेखिकायें। श्रीमती प्रेमचन्द, सभानेत्री, बीच में बैठी हैं।

ज्यादतियों को सहनेवाला राष्ट्र ब्रिटेन क्यों इस तरह बौखला उठा है। नक़्शे पर अगर एक नज़र डाली जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि अबीसीनिया को हठधर्मी से जीतनेवाला राष्ट्र इटली ब्रिटेन के साम्राज्यों को जानेवाले मुख्य मार्ग का अधिपति बन जायगा। अगर अबीसीनिया जाता है तो इसका अर्थ होगा कि लाल सागर में और भूमध्यसागर में इटली का एक जंगी बेड़ा रहेगा। फलस्वरूप वहाँ से ब्रिटेन का एकाधिपत्य नष्ट हो जायगा और इटली भी समानता के साथ भूमध्यसागर पर हुक्म चलाने की हिम्मत कर सकेगा! ब्रिटेन की यह आदत रही है कि जब कभी महत् संकट पड़ता है तभी वह युद्ध में पड़ता है। अपने पूर्वी साम्राज्य को ख़तरे में डालने के बजाय उसने खुलकर खेल लेना उचित समझा है।

असल में इटली और ब्रिटेन में यह द्वन्द्व चल रहा है कि भूमध्यसागर और लालसागर पर अब कौन राज्य करे! जब से राष्ट्रसंघ की मार्फ़त इटली हास्यास्पद बनाया गया है तब से उसका आत्म-सम्मान जाग्रत हो गया है। इटली की महत्त्वाकांक्षायें अबीसीनिया विजय तक ही नहीं हैं, वरन वह मिस्र पर भी हाथ साफ़ करना चाहता है। लेकिन इसके पहले वह भूमध्यसागर में निपट लेने को उद्यत है। पिछले दिनों में ब्रिटिश नौसेना की हलचलें और उसके द्वारा माँगी जानेवाली सहायता मज़ाक या परीक्षा के लिए तो है ही नहीं!

लेकिन जो लोग यह समझते हैं कि इटली अकेला लड़ रहा है वे ग़लती कर रहे हैं। वर्सेलीज़ की सन्धि के फलस्वरूप विजित राष्ट्रों के अफ़्रीका में हिस्सा-बाँट के बहुत-से दुश्मन मौजूद हैं। मुसोलिनी जिस सिद्धान्त पर अमल करता है उसी सिद्धान्त पर हिटलर। अतएव जर्मनी भी इटली की मदद कर रहा है, ऐसा विश्वास करना कल्पना से परे नहीं है। आज भी किसी जर्मन होटल में जाइए; वहाँ देखेंगे कि एक नक़शा टँगा है, जिसमें जर्मनी के खोये हुए उपनिवेश भड़कीले रंग से चित्रित किये गये हैं और उनके नीचे लिखा है—"हमारे विस्तार के लिए ये हमारे ही क्षेत्र ख़ाली पड़े हैं।"

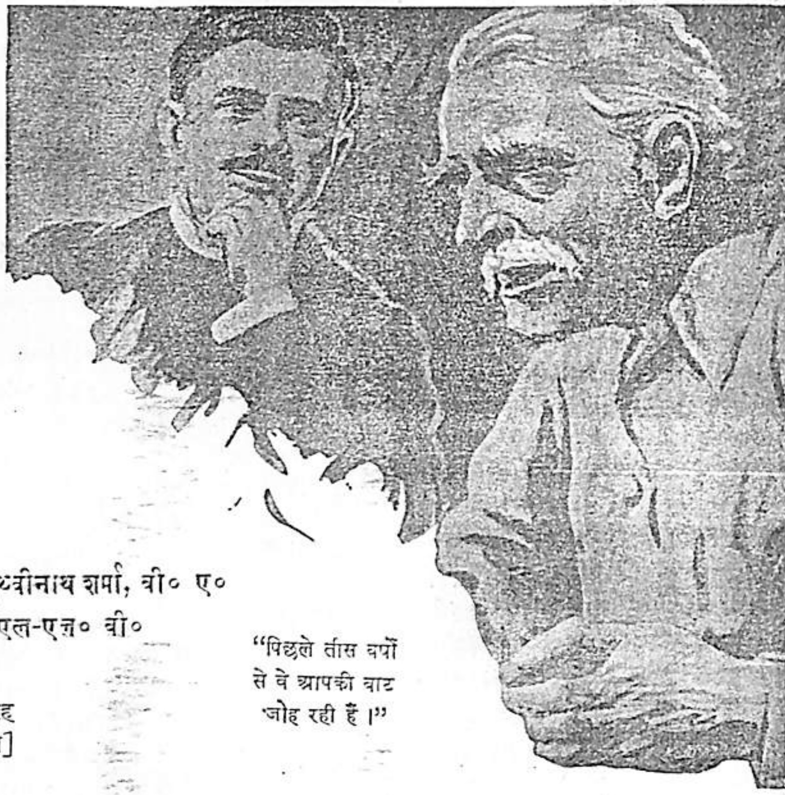
जर्मनी के सिवा आस्ट्रिया और हंगरी इटली के सहायक हैं ही। इतनी बड़ी सहायता को साथ में रखकर ही तो मुसोलिनी ने आगे क़दम बढ़ाया है। लेकिन जब अबीसीनिया के जीतने में ब्रिटेन अगुआ बनकर विरोध कर रहा है तब इटली के लिए यह लाज़िमी हो जाता है कि वह अपने मार्ग को निष्कण्टक बना ले। इसलिए अगर इटली अबीसीनिया को जीतता है तो उसे सबसे पहले राष्ट्रसंघ के अगुआ ब्रिटेन से मुठभेड़ लेनी पड़ेगी। मुसोलिनी बार बार यह घोषणा कर चुका है कि वह बढ़ाये हुए क़दम को पीछे नहीं हटा सकता। इसका तात्पर्य यह है कि वह भूमध्य-सागर में युद्ध छेड़ने के लिए तैयार हो गया है। राजनीतिज्ञों को तो यह पता है ही कि गत महायुद्ध से भी अधिक पैमाने पर भूमध्यसागर में जंगी मोर्चाबन्दी है। अतएव भूमध्यसागर में जान में या अनजाने में गिरनेवाला पहला बम ही महायुद्ध का श्रीगणेश कर देगा, इसमें सन्देह नहीं है।

× × ×

चाहे युद्ध हो योरप में या एशिया में, वह विश्वव्यापी रूप ही धारण करेगा, क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीयता के ज़माने में हर एक राष्ट्र में दूसरे राष्ट्रों के स्वार्थ फँसे हुए हैं। आज हम ख़तरे से भरे हुए विश्व में रह रहे हैं। दुनिया का कोना-कोना हथियारों से झंकृत हो रहा है—आकाश में हवाई जहाज़, ज़मीन पर तोपें और जल में जंगी जहाज़ क़ब्ज़ा जमाये मनुष्य के मद और अधिकार की इच्छाओं को सफलीभूत करने में सहायता दे रहे हैं। दिनों दिन स्वार्थों का चक्रव्यूह मनुष्यता को जंजीरों से जकड़ता जा रहा है। इतिहास बताता है कि ऐसी हालतों में युद्ध ने ही सृष्टि का संतुलन ठीक किया है। वही दिन तो आ रहा है।

—:०:—

सुवीरा का भ्रम



लेखक, श्रीयुत पृथ्वीनाथ शर्मा, बी० ए० (ऑनर्स) एल-एल० बी०

"पिछले तीस वर्षों से वे आपकी बाट जोह रही हैं।"

[मिलन और विरह की एक कहानी]

(१)

"इस मकान में कौन रहता है ?" मैंने पास के खेत में काम करनेवाले एक किसान से पूछा और एक बार फिर उस धूल-धूसरित गाँव के बाहर लाल ईंटों की बनी, छोटी-सी वाटिका से घिरी, उस छोटी-सी इमारत की ओर देखा। अनेक पुष्पों के सम्मिश्रण-द्वारा उत्पन्न एक अद्भुत महक वाटिका से उड़कर इधर-उधर फैल रही थी। वाटिका के चारों ओर बनी दीवार के एक कोने में बैठी दो-चार हरी और लाल चिड़ियाँ चहक रही थीं।

"रानी जी।" किसान ने जवाब दिया।

"रानी जी ?" मैं विस्मित होकर किसान की ओर देखने लगा।

"क्या आपने कभी रानी सुवीरादेवी का नाम नहीं सुना है ?" किसान मुझे अपनी दृष्टि से तौलते हुए बोला—"मालूम होता है, आप पहली बार इधर से गुज़र रहे हैं ?

"हाँ।"

"तभी। वे तो यहाँ बहुत दिनों से रह रही हैं, हमारे होश सँभालने से भी कहीं पहले से।" वह अपनी अधपकी मूँछों को छेड़ते हुए कहने लगा—"परन्तु मैंने उन्हें केवल एक बार देखा है और वह भी उनकी वाटिका में छिपकर। पर बाबू जी क्या रूप है, क्या बताऊँ। वे सचमुच स्वर्ग से

उतरी हुई देवी मालूम देती हैं। यद्यपि उनके सब बाल पक चुके हैं, तो भी चेहरे पर वह तेज है, आँखों में वह ज्योति है कि सँभाले नहीं सँभलती।"

"क्या वे कभी बाहर नहीं निकलतीं ?" मैंने ज़रा उत्सुकता से पूछा।

"नहीं। आज तक किसी ने उन्हें इस चारदिवारी से बाहर आते नहीं देखा।"

"वे यहाँ अकेली रहती हैं ?"

"एक बूढ़े नौकर के सिवा जो सदा द्वार पर बैठा रहता है, इस मकान में और कोई नहीं रहता।"

"यदि कोई उनसे मिलना चाहे तो मिल सकता है या नहीं।" मेरी उत्सुकता अब हाथों से निकल रही थी।

"है तो बहुत कठिन।" उसने फिर ग़ौर से मेरी ओर देखा—"पर बाबू जी, शायद आपसे मिलने के लिए वे मान जायँ। किन्तु पहले आपको उस बूढ़े को गाँठना होगा।"

किसान से विदा लेकर मैंने सीधा उस असाधारण स्त्री का द्वार जा खटखटाया। आधे क्षण के बाद ही साँकल गिरने के साथ एक छोटी-सी दरार बनाता हुआ द्वार का एक अंश खुला। दरार को चीरती हुई दो अनुभव-पूर्ण नेत्रों की तीक्ष्ण दृष्टि मुझ पर गड़ गई और समय-द्वारा क्षीण एक आवाज़ ने पूछा—"आप क्या चाहते हैं ?"

"रानी जी से मिलना।"

"रानी जी से मिलना !" सन्दिग्ध तथा विस्मय-सूचक वाणी में जो अब की ज़रा ऊँची हो उठी थी, फिर प्रश्न हुआ—"आपको उनसे क्या काम है ?"

"काम !" मैं बगलें झाँकने लगा। स्फूर्ति की एक किरण चमकाने के लिए मस्तिष्क से बहुत अनुनय-विनय की। पर व्यर्थ ! अब क्या बताऊँ, मैं यही सोच रहा था कि मकान के अन्दर से मधुर परन्तु अनुशासकों के-से स्वर में स्वयं गृह-स्वामिनी ने जो पौधों की आड़ में बैठी थीं और शायद हमारी बातें सुन रही थीं, पूछा—"मग्गू क्या बात है ?"

"हुज़ूर एक साहब हैं। आपसे मिलना चाहते हैं।"



[इस कहानी के लेखक]

"क्यों ?"

"यदि आज्ञा हो तो स्वयं ही हाज़िर होकर इस धृष्टता का कारण बताऊँ।" नौकर के बोलने से पहले ही साहस करके मैंने ज़रा ऊँचे स्वर में कहा और फिर रानी के आदेश की प्रतीक्षा करने लगा। पर इसके अनन्तर तो मानो उन्होंने चुप्पी साध ली। इसी तरह खड़े खड़े लगभग तीन मिनट बीत गये, परन्तु कुछ जवाब न मिला। अब मैं डरा। मैंने सोचा. मेरा इस तरह बीच में बोलना उन्हें शायद बुरा लगा है। अपने साहस पर मैं अब पछताने लगा। मुझे निश्चय हो गया कि मुझे अपनी राह पकड़ने की आज्ञा होगी। एक बार जी में आया कि उस निरादर से बचने के लिए वहाँ से खिसक जाऊँ, परन्तु उत्सुकता ने जो अब तक उत्कण्ठा बन चुकी थी, मुझे वहीं बाँध दिया। पाँच मिनट, दस मिनट, जब तक निश्चित उत्तर नहीं पाऊँगा, हिलूँगा नहीं; यह निर्णय करके मैं वहाँ डटा रहा।

परन्तु इसके अनन्तर कठिनता से एक मिनट और गुज़रा था कि मेरे सब अनुमानों को अस्त-व्यस्त करता हुआ सन्नाटा भङ्ग हुआ—"मग्गू, इन्हें इधर ले आओ।"

हृदय की धड़कन को सँभालता हुआ मैं मग्गू के पीछे हो लिया।

(२)

प्रसन्न होकर प्रज्वलित परन्तु अस्थिर नेत्रों से उन्होंने एक बार मेरी ओर देखा और पास पड़ी हुई चौकी पर बैठने का संकेत करते हुए पूछा—"क्या उसका कोई सन्देश लाये हो?"

सन्देश! किससे! उनके प्रश्न ने मुझे चकित कर दिया। मैं घबराकर उस गौर-वर्ण तथा श्वेत केशालंकृत स्त्री की ओर देखने लगा। इस बीच में उन्होंने अपनी दृष्टि मुझ पर से हटा ली थी। उनके घर के निकट से बल खाती हुई एक सड़क बहुत दूर तक निकल गई थी। उसी के अन्तिम छोर पर उनके नेत्र अब जा अटके थे।

"ख़ैर जाने दो"। दृष्टि को उधर ही जमाये हुए वे कहने लगीं—"परन्तु यही मास था, यही दिन था, और लगभग यही समय था। इसी राह से जिससे तुम अब आ रहे हो, वह आज से तीस वर्ष पहले अपने यौवन की मस्ती में निमग्न मेरे हृदय में सङ्गीत छेड़ने के लिए घोड़े पर उड़ता हुआ इधर आ निकला था।" यह कहकर वे सहसा रुक गईं। फिर मेरी ओर देखने लगीं और कई क्षण देखती रहीं। क्या अपने अतीत का आवरण एक अजनबी के सामने उठाना ठीक होगा? शायद यही सोचकर वे हिचकिचा रही थीं। मुझे भय हुआ कि कहीं उनकी हिचकिचाहट ज़ोर न पकड़ जाय। परन्तु वर्षों से हृदय में छिपी हुई कहानी ऐसे अवसर पर कब चूक सकती थी। सब बाँध तोड़ कर उमड़ ही तो पड़ी।

"उन दिनों यह मकान बन रहा था"। वे फिर कहने लगीं—"मेरे पिता जिन्होंने पेंशन के बाद यहीं रहने का निश्चय किया था, इमारत की देख-रेख में लगे थे और मैं उस सड़क को रौंद रही थी। मैं कठिनता से आम के वृक्षों के उस झुण्ड तक पहुँची थी कि उससे मुठभेड़ हो गई। मुझे देखकर वह घोड़े से उतर पड़ा और कोमल स्वर में पूछा—'यह रास्ता किधर जा निकलेगा'?

"मुझे इस गाँव में आये अभी एक सप्ताह भी नहीं हुआ था। मैं क्या बताती? जवाब दिया—'खेद है, मैं कुछ नहीं जानती। मैं तो स्वयं इधर के रास्ते टटोल रही हूँ'।

"यह सुनकर वह खिलखिला कर हँस दिया। उसने कहा—'मालूम देता है, आप भी मेरी तरह नई बस्तियों के गोरख-धंधे में फँस गई हैं'। यह कहकर वह घोड़े की रास पकड़े चल पड़ा। परन्तु उसकी एक झलक ने ही मुझे मंत्र-मुग्ध कर दिया था। मेरा हृदय उसके पाँवों के साथ लिपटकर चलने के लिए मचल उठा। मेरा एक-आध क़दम उसके पीछे उठ भी पड़ा और मेरे मुख से अनायास निकल गया—'सुनिए तो'।

"आज्ञा"? वहीं रुक कर मुँह मोड़ते हुए उसने कहा।

"आपको किधर जाना है"?

"घर।"

"घर?"

"हाँ, मैं रास्ता भूल गया हूँ।"

"तो चलिए मेरे पिता निकट ही मकान बनवा रहे हैं। वे शायद आपकी कुछ सहायता कर सकें।" कुछ देर और उससे बातें करने का लोभ मैं संवरण न कर सकी।

"वह मेरे साथ हो लिया। पिता के पास पहुँचने पर पता चला कि पास के गाँव के ज़मींदार के यहाँ शिकारियों का एक दल उतरा हुआ है। वह उन्हीं में से एक है और उस दिन इधर-उधर की बस्ती देखने के लिए अकेला ही निकला है। वह गाँव मेरे पिता का देखा हुआ था, इसलिए उन्होंने उसे राह पर डाल दिया। परन्तु अगले दिन सूर्य निकलते ही वह फिर आमों के उसी झुण्ड के नीचे दिखाई दिया। ज्यों ही मैंने उसे देखा, तीर की भाँति उड़कर उसके पास जा पहुँची। इसके अनन्तर तो हम प्रतिदिन एक-दूसरे से मिलने के लिए व्यग्र रहने लगे। गाँव छोड़कर शहर चले जाने पर भी वह इधर आने से किसी दिन ही चूकता था। कल्पना और स्वप्नों के द्वारा प्रणीत स्वर्गीय विमानों में उड़ते हुए हमने लगभग दो मास बिता दिये—

"फिर?" कहानी की रोचकता में डूबे हुए मेरे मुँह से निकला।

"फिर क्या?" उन्होंने एक सर्द आह लेकर कहा—"उसका इधर आना सहसा बन्द हो गया।"

"परन्तु क्यों?"

"उसकी इस अकारण विमुखता पर मैं विस्मित तथा बेचैन हो उठी।" बिना मेरे प्रश्न की ओर ध्यान दिये वे कहती चली गईं—"अब करूँ तो क्या? मुझे यह भी न पता था कि वह कहाँ मिलेगा। हाँ, इतना उसने अवश्य बताया था कि वह लाहौर में रहता है। परन्तु इतने बड़े शहर में कौन किसी को ढूँढ़ सकता है? इसलिए अपने भाग्य को कोसती हुई मन मारकर बैठ गई। परन्तु मुझे अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। सातवें दिन सन्ध्या को मुझे उन वृक्षों में एक छाया-सी दृष्टिगोचर हुई। क्या वही तो नहीं, मैंने सोचा, और बहुत ग़ौर से उधर देखा। हाँ, उसी का लंबा और सुगठित शरीर उन आमों की ऊँचाई से शान के साथ होड़ कर रहा था। मैं उलहनों से भरी दौड़ती हुई उसके निकट जा पहुँची। परन्तु मेरे उलहनों की कहानी सुनने से पहले ही उसने एक ऐसी ख़बर सुना दी जिसने मुझे स्तब्ध कर दिया। सहसा लड़ाई छिड़ जाने के कारण वह अगले दिन पेशावर से भी कहीं आगे जा रहा था और उस दिन मुझसे बिदा लेने आया था। मैं कई क्षण संज्ञाहीन खड़ी उसकी ओर शून्य दृष्टि से देखती रही। फिर अपने आपको सँभालकर पूछा—'परन्तु लौटोगे कब?'

"कौन जाने कब और यह भी क्या पता कि लौटूँगा ही?"

"उसके न लौटने की संभावना का ख़याल करते ही मैं काँप उठी। अब मुझसे न रहा गया, आँखों से झगड़ते हुए आँसू बरस पड़े। यह देखकर उसने मुझे अपनी ओर खींच लिया। उसकी छाती में सिर छिपाकर मैं सिसकियाँ भरती हुई रोने लगी।

"घबराओ मत।" मेरी पीठ सहलाते हुए उसने मुझे ढाढ़स दिया। 'न लौटने की अपेक्षा मेरे लौटने की सम्भावना बहुत अधिक है, क्योंकि मैं मारकाट करने तो जा ही नहीं रहा हूँ। मैं तो जा रहा हूँ वहाँ घायलों की मरहम-पट्टी करने—'

"क्या वे डाक्टर थे?" मैंने पूछा।

"हाँ।"

"क्या नाम था?"

"सुरेशमोहन" उन्होंने जवाब दिया और फिर अपनी कहानी में लीन हो गईं—'अच्छा जाओ, परन्तु एक प्रार्थना है।' मैंने विनीत स्वर में कहा।

"कहो।"

"लड़ाई से छुट्टी पाते ही सीधे इधर आना।"

"बहुत अच्छा।" उसने बहुत ही गम्भीर स्वर में स्वीकृति दी। यह कह उसने अपना रूमाल निकालकर मेरे आँसू पोंछे। फिर मेरी ओर करुण परन्तु स्निग्ध दृष्टि से देखा और मेरे हृदय में प्रेम की एक अमर लकीर खींच कर चल दिया। और मुझे इस लंबी प्रतीक्षा के लिए छोड़ गया।"

इतना कहते कहते उनकी आवाज़ ज़रा थिरक गई। आमों के झुण्ड के ठीक ऊपर दो-चार श्वेत मेघों के टुकड़े एक दूसरे से उलझ रहे थे। उनकी दृष्टि उन पर जा लगी। देर तक उनके लालसापूर्ण नेत्रों की टकटकी उधर ही बँधी रही। इस अनन्त प्रतीक्षा से छुटकारा पाने के लिए क्या वे प्रेम के बंधन को तोड़ कर मेघों के उस हृदय-हारी संसार में नहीं पहुँच सकतीं? इसी गुत्थी को शायद वे सुलझा रही थीं।

"क्या उसके बाद वे फिर आपको नहीं मिले?" मैंने प्रश्न किया।

"उसके बाद?" मेरे प्रश्न ने छेड़ कर अनायास उनका ध्यान भंग कर दिया। वे ज़रा चौंक कर बोलीं—"नहीं।"

"परन्तु वह लड़ाई तो जहाँ तक मैं समझता हूँ, दो-तीन वर्ष के अन्दर ही समाप्त हो गई थी।"

"हाँ, जानती हूँ।" उन्होंने ज्ञानियों के-से स्वर में जवाब दिया—"मेरे पिता ने भी इसी तर्क के बल पर कई बार मुझे विवाह करने के लिए कहा था। परन्तु यह कोई नहीं सोचता कि वह सीमान्त-प्रान्त जैसे भयानक प्रदेश में

उनके चेहरे पर शान्ति के चिह्न नहीं लौटे थे, वहाँ अभी तक बेचैनी की ही छाया पड़ी हुई थी।

"क्या आज्ञा है?" द्वार का एक पट खोलते हुए मग्गू ने पूछा।

"कृपया रानी जी से कह दो कि सुरेशमोहन जी आये हैं।" मैंने कहा।

उसने मेरे साथ खड़े हुए वृद्ध की ओर आश्चर्य से एक बार देखा, फिर रानी जी को सूचित करने के लिए चल पड़ा। दो ही मिनिट के बाद हमें अन्दर जाने की आज्ञा हुई।

रानी उसी पहलेवाले स्थान पर बैठी थीं। उनके ठीक सामने एक बड़ी-सी चौकी पड़ी थी। उन्हें नमस्कार करके उनके आदेशानुसार हम दोनों उस पर बैठ गये। वे कुछ देर शान्त और गम्भीर दृष्टि से अपने प्रेमी के मुख तथा बढ़िया कपड़ों की ओर देखती रहीं, फिर अपने स्वर में बनावटी मधुरता लाती हुई बोलीं—"तो अभी जो मोटर उधर से आ रहा था उसमें तुम थे?"

"हाँ।" डाक्टर लज्जा और संकोच से सिकुड़े जा रहे थे।

"पर तुम सुरेशमोहन तो नहीं हो?" रानी के नेत्रों में चुनौती थी।

"क्या भूल गईं?" डाक्टर ने ज़रा हँसते हुए जवाब दिया। स्थिति की कठोरता को हँसकर ही उन्होंने कोमल बनाना चाहा, पर निशाना न जम सका। भावों का समुद्र पीकर उनके सम्मुख बैठी हुई भी उसके चेहरे पर की गम्भीरता का पर्दा ज़रा भी हिल-डुल न सका।

"तुम्हें मैं जानती ही कब थी?" विष से बुझे हुए स्वर में वे जवाब देने लगीं—"परन्तु अपने हृदय-देव सुरेश को न कभी भूली हूँ, न भूलूँगी। मैं जानती हूँ, मेरा सुरेश आज भी सीमान्त-प्रान्त की किसी पहाड़ी गुफा में बन्द मेरे लिए छटपटा रहा है।"

"परन्तु—"

"ठहरिए।" डाक्टर को उन्होंने वहीं रोक दिया। अब वे उत्तेजित हो उठी थीं—"और मैं यह भी जानती हूँ कि मेरा सुरेश यदि कहीं मुझे भूलकर किसी और के प्रेम में फँस भी जाता तो तीस वर्षों के अनन्तर इस भाँति मेरा उपहास करने और वर्षों से संचित मेरे सुखद स्वप्नों तथा आशाओं को ठुकरा कर खाक में मिलाने के लिए कभी न आता। मुझे अपने भ्रम में अपनी धुन में ही बहने देता।"

"सुबीरा,—" डाक्टर का गला भर आया, उनके नेत्रों में आँसू छलकने लगे।

"जाओ।" सुबीरादेवी की आवाज़ अब टूट चली थी—"और इस अनजान तथा पगले युवक को भी जो बैठे-बिठाये तुम्हें घर से पकड़ लाया है—अपने साथ लेते जाओ।"

हम दोनों उठ खड़े हुए। करुणा और विषाद की मूर्ति बने हुए डाक्टर उस वाटिका के पौधों से उलझते हुए मेरे आगे आगे बाहर निकले और सिर झुकाये मोटर की ओर चल दिये। हम कुछ ही पग गये थे कि पीछे से आवाज़ आई—"बाबू जी"।

मग्गू घबराहट से पागल की तरह हमारी ओर दौड़ा आ रहा था। मैंने कहा—"क्या है?"

"रानी जी चौकी से गिर कर मूर्छित हो गई हैं।"

"आओ, देखे जाओ।" मोटर की ओर बढ़ते हुए डाक्टर ने जहाँ का तहाँ रुक कर मुझे वेदना-भरे तथा उखड़े हुए स्वर में कहा—"यह टूटनेवाली मूर्छा नहीं है।"

उनके नेत्रों में आँसुओं का राज्य था।

जापानी राष्ट्र का शरीर

लेखक, श्रीयुत धर्मवीर, एम० ए०



जापान की इधर अभूतपूर्व उन्नति हुई है। उसकी इस उन्नति के बहुत-से कारण हैं पर इसका स्थायित्व जनता के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर ही निर्भर है। इसके लिए जापानी क्या करते हैं यह बात इस लेख में श्रीयुत धर्मवीर जी ने अपने व्यक्तिगत अनुभव से बड़े ही सुन्दर ढङ्ग से बताई है।

शाम के वक्त डेक पर इधर-उधर टहलते हुए कुछ देर हो गई थी, इसलिए वहाँ से वापस कमरे को जल्दी-जल्दी आया कि कपड़े बदल लिये जायँ। अभी कमरे के दरवाजे को हाथ ही लगाया था कि निचली गली से किसी के सितार बजाने की आवाज आई। कपड़ों का ख़याल भूलकर उधर हो लिया। बाहर जाकर देखा कि जहाज़ के सबसे अंतिम भाग में जहाँ जापानी मुलाज़िम रहते थे, एक पार्टी-सी बैठी है। गरमी के कारण उसके कई व्यक्ति सिर्फ़ जाँघिये ही पहने हुए थे। पार्टी में नौजवान, अधेड़ और बूढ़े—सब तरह के पुरुष थे। बैठे हुए जापानियों में से एक सितार बजा रहा था। बाक़ी के सदस्य गीत की लय के अनुसार हाथ हिलाते और चुटकियाँ बजाते थे। दर्मियान में एक नवयुवक हाथ मटका-मटकाकर नाच रहा था।

उनके गीत को समझना मेरे लिए संभव न था। (ठेठ जापानी समझने के लिए बरसों का अभ्यास चाहिए)। परन्तु गीत के आन्तरिक भाव का जानना आवश्यक था। मैं वहीं खड़ा रहा। कुछ देर और वहाँ ठहरता, अगर स्टीवर्ड आकर इत्तिला न देता कि भोजन की घंटी को बजे बहुत देर होगई है।

खाना खाया। मेज़ पर बैठे मित्रों से बातें भी कीं, परन्तु मशीन की तरह। वास्तव में ध्यान जापानी मुलाज़िमों की उस मनोवृत्ति या रवैये की तरफ़ ही रहा जो उन्होंने जीवन के बारे में ग्रहण कर रक्खा है दिन-भर शहद की मक्खी की तरह काम करते हैं। जहाज़ पर लगभग सभी चीज़ें और पुर्ज़े प्रतिदिन इस्तेमाल में आते हैं। जो नहीं आते वे काम न होने पर भी इस्तेमाल में लाये जाते हैं (ताकि आवश्यकता होने पर उसके इस्तेमाल में देर न हो)। लोहे के कई भारी पुर्ज़ों को वे तोड़ते हैं, कइयों को बनाते हैं। फिर भी कभी चूँ नहीं करते। लेकिन जब साँझ होती है और उनकी ड्यूटी ख़त्म होती है तब थकान के मारे वे अपने रहने की जगह पर जाकर लेट नहीं रहते। "काम कर-करके मर गये हैं, इसलिए अब आराम करना चाहिए," यह ख़याल उनके दिल में नहीं आता। शारीरिक शिथिलता के लिए तो रात को सोना ही होगा, इस कारण इस समय वे दिमाग़ी थकावट को दूर करने के वाले मनोरञ्जन के सामान पैदा करते हैं। कभी सितार पर गीत के साथ नृत्य करने लगते हैं, कभी बाँसुरी



[किसी अकेली लड़की की नौका-प्रतियोगिता]

का सुर अलापते हैं और कभी शतरंज आदि के मैच शुरू कर देते हैं।

जापानियों के अन्दर काम के बाद खेल-कूद और मनोरञ्जन का यह भाव छोटे-से-छोटे मजदूर और बड़े-से-बड़े कर्मचारी के अन्दर पाया जाता है। इसका फल यह होता है कि उनकी यह मनोवृत्ति उनके व्यक्तिगत एवं समष्टिगत जीवन को सुंदर तथा सुरीला बना देती है।

× × ×

रेवरेंड शिमिज़ू कोबे-नगर के एक बौद्ध सम्प्रदाय के नेता हैं। उनका मन्दिर शहर के एक तरफ़ पहाड़ की चोटी पर बना हुआ है। मन्दिर में बैठे हुए आदमी को एक तरफ़ कोबे के लाखों मकान दिखाई पड़ते हैं, दूसरी तरफ़ समुद्र में चलनेवाली छोटी-छोटी आबादियाँ, अर्थात् जहाज़ और तीसरी तरफ़ शहर-भर की सप्लाई के लिए पीने के पानी का 'रेजर्वायर' या जख़ीरा है। यदि भोजन का निमन्त्रण न होता तो भी यहाँ जाना एक अच्छी बात थी।

खाने के बाद हमारे मेज़बान ने बताया कि अपनी आयु के पहले भाग में, अर्थात् भिक्षु बनने से पूर्व, वे एक स्कूल में शिक्षक थे। विद्यालय में इतिहास या भूगोल, गणित या ड्राइंग, जर्मन या फ्रेंच नहीं पढ़ाया करते थे, बल्कि उनके ज़िम्मे लड़कों को कुश्ती लड़ाना था। इस समय भी उनके पास कुश्ती लड़ने-लड़वाने का सामान पड़ा हुआ था। कुश्ती के अतिरिक्त वे एक प्रकार का गदका (फ़ेंसिंग) भी लड़कों को सिखलाया करते। गदका खेलते समय विद्यार्थियों को एक विशेष प्रकार का ज़िरह-बख़्तर पहनना पड़ता है। अपने ज़िरह को निकाल कर उन्होंने पहले ख़ुद पहना और फिर मुझे पहनाया। बहुत हलका था। पहनाने के बाद उन्होंने मेरे सामने आईना रख दिया। आदमी वैसा ही मालूम देता है, जैसे योरप के वे वीर योधा जो किसी ज़माने में स्त्रियों और पीड़ितों की सहायता के लिए इधर-उधर फिरते रहते थे। क्योंकि किसी जापानी को गदका खेलने या कुश्ती लड़ते नहीं देखा था, इसलिए उन्होंने एक दिन प्रातः हमारे लिए इसका प्रबन्ध कर दिया।

ख़ास कुश्ती लड़ने के एक शिक्षणालय में हमने देखा कि विभिन्न आयु के आदमी—बच्चे, बूढ़े और जवान इस कला के सीखने का बड़ा शौक़ रखते हैं। एक समय हर रोज सौ-सौ विद्यार्थी आते हैं। कुश्ती और गदका के अतिरिक्त यहाँ तलवार और खंजर चलाना भी सिखलाया जाता है। भारतीयों के समान जापानी खिलाड़ी भी खेल शुरू करने से पूर्व देवता और शिक्षक की सलामी उतारते हैं। बिलकुल उसी ढङ्ग पर तलवार ज़मीन पर रखने के बाद एक-एक क़दम आगे बढ़ते हैं। फिर दोनों बाज़ुओं पर थपकियाँ देने के बाद तलवार को हाथ में लेते हैं। अपने देवता एवं गुरु की सलामी उतारने का मतलब साफ़ है। बाँहों पर थपकियाँ देने का अर्थ यह है कि उनमें बल आवे।

कुश्ती लड़ते समय वे लोग ख़ास क़िस्म के मोटे कपड़े का जो चौसूती जैसा मालूम देता था, जाँघिया और बनियाइन पहनते हैं। इन कपड़ों को पकड़ कर ही वे एक दूसरे को नीचे गिराने की कोशिश करते



[तोकियो में स्केटिंग सिखलाने का एक स्थान]

हैं। जब दो मनुष्य परस्पर कुश्ती लड़ते हैं तब दर्शक तथा अन्य विद्यार्थी बड़ी जिज्ञासा और दिलचस्पी प्रकट करते हैं। इन खेलों के साथ-साथ जापानियों को तीरन्दाज़ी का भी बहुत शौक़ है।

यहाँ सवाल होता है कि आज-कल जब लड़ाई में तलवार तक किसी काम नहीं आ सकती तब इस प्रकार की कुश्ती, गदकाबाज़ी, तीरन्दाज़ी आदि से क्या फ़ायदा ?

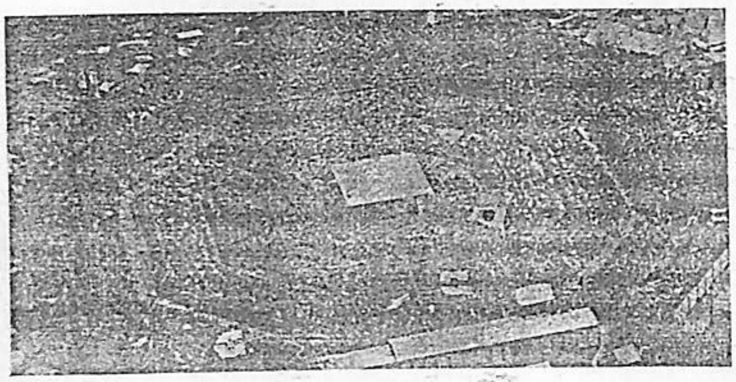
यह प्रश्न सर्वथा उचित है। परन्तु इसका उत्तर भी बिलकुल आसान है। इन खेलों से तन्दुरुस्ती के अतिरिक्त मनुष्य के शरीर में चुस्ती, चालाकी, सहिष्णुता, मुक़ाबिले का सामर्थ्य आदि वे अच्छी बातें आ जाती हैं जिनको यों सीखना आसान नहीं। एक बात और भी है। कुछ वर्ष हुए जब मलाबार के बर्बर मुसलमान मोपलों ने वहाँ के शान्ति-प्रिय लोगों को सर्वबध कर दिया तब मालूम हुआ कि उनके पास बन्दूक़ या तलवार जैसा कोई हथियार नहीं था, बल्कि वे गुलेल चलाने में इतने सिद्धहस्त थे कि जिस किसी पर उससे गुलेला फेंकते वही सिर पकड़ कर जान दे देता।

× × ×

अमृतसर आदि के कई दूकानदार जापान गये हुए हैं। भारत में उनकी बम्बई, कलकत्ता, अमृतसर, कराची आदि में शाखायें हैं। यदि ये हिन्दुस्तानी भाई अमृतसर या बम्बई में ही रहते और जापान न जाते तो शायद ही इनमें जापानियों का खेल का भाव दाखिल होता। संभवतः अमावस के दिन अमृतसर के दूकानदार छुट्टी करते हैं। (यों तो ये अपनी दूकानों को कभी न बन्द करें)। मगर जापान में नियम के अनुसार इनको शनिवार को आधी छुट्टी करनी पड़ती है और रविवार के दिन दूकान बिलकुल बंद। (समस्त फ्रांस और इँग्लेंड में भी यही क़ायदा है। उस दिन इन देशों के शहरों में हड़ताल-सी होती है; सिवा दवाफ़रोशों के कोई भी दूकान नहीं खुलती।)

अब जब जापानी दूकानदार इतवार को शहर से बाहर इधर-उधर झील, दरिया, समुद्र या पहाड़ पर चले जाते हैं तब स्वभावतः भारतीय दूकानदारों को भी ऐसा ही करना पड़ता है। इसी कारण इनमें से अधिकतर या तो समुद्र-तट पर नहाने में दिन गुज़ारते हैं या फिर झील के अन्दर पड़ी हुई किश्तियों में बैठकर दौड़ें लगाते हैं। (सिंधी व्यापारियों ने इस मतलब के लिए एक ख़ास क्लब बनाकर कोबे में समुद्र के किनारे विशेष स्थान ले रक्खा है।)

जापानी जनसाधारण में किश्ती चलाना बहुत ज्यादा प्रचलित है। चारों ओर समुद्र से घिरे होने के कारण जापानी एक प्रकार से समुद्रजीवी जाति हैं। छोटी-बड़ी नावें और जहाज़ इन लोगों को ख़ूराक और काम प्रस्तुत करते हैं। इनमें बैठकर ही ये लोग मछलियाँ पकड़ते हैं, जो इनके भोजन का आवश्यक अङ्ग हैं। जहाज़ों के द्वारा ही ये करोड़ों-अरबों का व्यापार करते हैं। ये जहाज़ ही इनको शत्रु का मुक़ाबिला करने में मदद देते हैं।



[कुश्ती के लाखों तमाशबीन]

शहरों के अन्दर छोटी झीलों या नदियों में पड़ी हुई किश्तियाँ यहाँ तक भी छोटी होती हैं कि एक में एक समय एक ही मनुष्य बैठ सकता है—दूसरा बैठे तो यह डगमगाने लगती है। इसके अतिरिक्त तब चलानेवाला इसे चला भी नहीं सकता। मनोरञ्जन की सामग्री उपस्थित करने में ये नावें बहुत ही सहायक होती हैं।

× × ×

ओसाका के क़िले में म्युनिसिपैलिटी की तरफ़ से जापानी सभ्यता के नये और पुराने, सभी तरह के नमूने पड़े हुए हैं। रहन-सहन, खान-पान और कला तथा उद्योग का प्रतिनिधित्व करनेवाली सभी वस्तुएँ धरी हैं। यों बाहर से तो यह क़िला है, परन्तु वास्तव में यह अजायबघर है।

अन्य खेलों के अतिरिक्त यहाँ बरफ़ पर चलने और फिसलने के खेलों, स्केटिंग और स्की-इंग का सम्पूर्ण सामान भी पड़ा हुआ है। लोगों के अंदर इन खेलों का शौक़ पैदा करने के लिए नमूने के तौर पर पहाड़, बरफ़ आदि के दृश्य मिट्टी के बनाकर काँच की अलमारियों में धरे गये हैं। इनके अलावा पहाड़ या जंगल में खेमे लगाकर दिन गुज़ारना भी एक अच्छा मनोरञ्जन है। इसके भी यहाँ नमूने बने हैं। पहाड़ पर चढ़ते समय क्या सामान ले जाना चाहिए, कहाँ किस प्रकार ठहरना चाहिए—ये बातें भी मिट्टी के नमूनों के द्वारा बताई गई हैं।

रोको-पर्वत पर हमने वे मैदान भी देखे जहाँ बरफ़ के मौसिम में लोग झुंड-के-झुंड इसलिए एकत्र होते हैं कि वहाँ स्कीइंग* की जाय। इन मैदानों के पास ही होटल और रेस्ताराँ (विश्रांतिगृह) बने हुए हैं, जहाँ हर तरह का आराम मिलता है।

ये खेल जापानियों ने पश्चिम से सीखे हैं। स्वभावतः इस देश में इन खेलों की उम्र अभी बहुत थोड़ी है। यही कारण है कि लोगों को इनका बहुत ज़्यादा अभ्यास नहीं। इसकी आवश्यकता अनुभव करते हुए तोकियो में स्केटिंग सिखलाने के लिए स्कूल खुले हुए हैं। चौड़े मैदान में सीमेंट का पक्का फ़र्श बना हुआ है। पाँव के नीचे अपने स्केट, अर्थात् पहिए बाँध लिये और हाथ में दो खास छड़ियाँ पकड़ लीं। अब लगे फिसलने और घूमने। एक घंटे के लिए चार-पाँच आने फ़ीस देकर आदमी अच्छी तरह वर्जिश कर सकता है, क्योंकि पाँच-सात चक्करों में ही मनुष्य पसीने से तरबतर हो जाता है। इस शिक्षणालय में कुछ दिन अभ्यास करने के बाद मनुष्य किसी भी पहाड़ पर जाकर स्केटिंग का आनन्द ले सकता है।

यहाँ भारत में बहुत कम लोगों को इन खेलों का शौक़ है। शायद यही कारण है कि यहाँ किसी शहर में ऐसा कोई स्कूल या क्लब नहीं है, जहाँ इन खेलों का शौक़ पूरा किया जाता हो या जिनमें अभ्यास करवाया जाता हो। शिमला में ऊपर मैदान के गिर्जे के पास एक छोटा-सा हाल—रिंक है। वहाँ लकड़ी के फ़र्श पर कई शौक़ीनों को स्केटिंग करते देखा है। परंतु इस क्लब की फ़ीस इतनी ज़्यादा है कि मध्यवित्त या मामूली आदमी इसे दूर से ही सलाम करेगा।

इस दृष्टि से जापानियों की प्रशंसा की जायगी। भारत में तो ऊँची श्रेणी के लोग अपने लिए इस प्रकार के खेलों आदि का प्रबन्ध ख़ास क्लबों के द्वारा कर लेते हैं। मामूली आमदनी के लोगों की तो यह उच्च श्रेणी परवा ही नहीं करती। इसके मुक़ाबिले पर जापान में हर एक क्लब और स्कूल समाज की सभी श्रेणियों के व्यक्तियों के लिए एक-जैसा खुला होता है। उसकी नजर में कोई भी मनुष्य 'अछूत' नहीं है। इसके अतिरिक्त उसके प्रबन्धक इस बात का ख़ास खयाल रखते हैं कि उसका प्रवेश-शुल्क इतना कम रक्खा जाय कि कोई भी मनुष्य उसके उपयोग से वञ्चित न रह पावे। इनकी यह मनोवृत्ति साधारण स्टोरों, दूकानों, होटलों, विश्रान्ति-गृहों, रेलवे-ट्रेनों, मोटर-बसों, ट्रामों और पहाड़ों, झीलों, तीर्थों एवं स्वास्थ्यवर्धक स्थानों पर प्रस्तुत किये गये प्रबन्धों से प्रकट होती है। ग़रीब-से-ग़रीब और अमीर-से-अमीर इनसे एक-समान लाभ उठाते हैं।

× × ×

जापान के विभिन्न शहरों तथा देहातों में भिन्न-भिन्न अवसरों पर क़िस्म-क़िस्म के खेल देखे। टेनिस और बेडमिंटन का रवाज आम है, लेकिन उन लोगों में जो पश्चिमी जातियों के संपर्क में अधिक आते हैं। क्रिकेट और फ़ुटबाल, ये खेल बहुत कम देखने में आये। जिस खेल का वहाँ ख़ास रवाज है वह बेस-बाल है। जापान में यह खेल अमरीका से आया मालूम होता है। (भारत में बहुत ही कम देखने में आता है।) यह क्रिकेट से बहुत मिलता-जुलता है। क्रिकेट में गेंद को बल्ले से चोट लगाई जाती है। बेस-बाल में गेंद को बैट या बल्ले के बजाय मुग्दर या मुँगरी से चोट लगाई जाती है। बाक़ी खेल क़रीब वैसा ही होता है। ओसाका आदि के सार्वजनिक पार्कों में कई जगह लड़कों को यह खेल खेलते पाया। यों गली-महल्ले या घर के खुले दालान में भी लड़के इसकी प्रैक्टिस करते देखे। ये बातें इस बात का सबूत हैं कि यह खेल सर्वप्रिय है।

इसके अतिरिक्त एक अन्य विदेशी खेल को जापानियों ने अपना लिया है। वह है गाफ़। यद्यपि यह एक प्रकार से अमीरों का खेल है, तथापि जापान के सर्वसाधारण में भी यह प्रचलित है। यही कारण है कि विभिन्न पर्वतों, उदाहरणार्थ रोको और माया, पर इसके लिए घास के मैदान बनाये गये हैं।

यहाँ भारत में डलहौज़ी से परे खजियार में, काश्मीर के गुलमर्ग और इसी प्रकार दूसरे पहाड़ों पर गाफ़ खेलने के मैदान बने हुए हैं। परन्तु उनमें प्रायः योरपीय ही खेला करते हैं या वे जो योरपीय-नुमा होते हैं। इसी कारण यह खेल इस देश में सर्वप्रिय नहीं हुआ। यद्यपि यों देखने में यह खेल आराम-तलब-सा है, तथापि यह बात इसके पक्ष में कही जायगी कि यह खुले मैदान में ही खेला जाता है। इसमें भी कुछ शक नहीं है कि जब किसी को गाफ़ खेलने की चाट लग जाती है तब फिर वह खाने-पीने और पढ़ने-लिखने की परवा नहीं करता, बल्कि कई बार तो अपनी सुध-बुध भी भूल जाया करता है। ऐसी अवस्था में इस खेल का खिलाड़ी दिन में बारह-पन्द्रह मील का चक्कर ज़रूर लगा लिया करता है। यह इस खेल का काफ़ी बड़ा लाभ है, क्योंकि बग़ैर मतलब के इतना चलना मनुष्य के लिए दूभर हो जाता है।

* स्की वह तख़्ता होता है जो बरफ़ पर फिसलने वाला मनुष्य अपने पाँव के नीचे बाँधता है। यह क़रीब आठ फ़ुट लंबा और चार इंच चौड़ा होता है। तख़्ता लकड़ी का होता है।

एक खेल आज-कल योरप के देशों में बहुत ज्यादा देखने में आता है। बेलजियम का वर्तमान नवयुवक बादशाह इसका बहुत शौक़ीन है। यह है उन पहाड़ों पर चढ़ना जिन पर चढ़ने का कोई रास्ता नहीं होता। कमर के गिर्द लंबा-सा रस्सा बाँध कर खिलाड़ी जेब में बहुत-से मज़बूत और विश्वसनीय कीलें डाल लेता है। हाथ में हथौड़ा लेकर वह इन कीलों को पहाड़ के पहलू में यहाँ-वहाँ गाड़ता जाता है। अब इन पर पैर रख कर वह ऊपर चढ़ता जाता है। इन पहाड़ों के नीचे अधिकतर या तो समुद्र होता है या खड्ड। अगर किसी कील पर से पाँव फिसल जाय तो जान पर आ बनती है। सङ्कट के अन्वेषी ही इस खेल के लिए उत्सुक होते हैं। लेकिन यह याद रहे कि इस खेल के खिलाड़ी को फिर जीवन के मुश्किल-से-मुश्किल काम में भी मज़ा आता है।

यह खेल भी जापान में आम प्रचलित है। जापानी युवक-युवतियों और स्त्री-पुरुषों के दल इधर-उधर दुर्गम पहाड़ों की कंदराओं और चोटियों पर चढ़ने के प्रयत्न में कई बार हफ़्ते गुज़ार देते हैं। तब दैनिक पत्र इनके फ़ोटो-चित्र बड़ी शान के साथ प्रकाशित करते हैं।

रहस्यवाद का निर्वासन

श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

नोट—आज-कल हिन्दी के लगभग सभी कवि "रहस्यवाद" की ओर झुके हुए हैं। जिस देश के अधिकांश मनुष्यों को एक बार भी भरपेट भोजन न मिलता हो, क्या उसके कवियों को "अनन्त", "अतीत" और "मधुबाला" के गीत गाना शोभा देता है? आशा है इस प्रश्न पर हमारे कविगण ध्यान देंगे। —लेखक

(१)

क्या होगा गाकर "अनन्त" का
"नीरव" ओ' "मधु"-मय सङ्गीत।
मलयानिल की उच्छ्वासों का,
"अस्फुट", अनुपम राग पुनीत?
कनक-रश्मियों के गौरव से,
होगा क्या दुखियों का त्राण,
रूखी ही रोटी में जिनको,
है यथार्थ जीवन का प्राण?

(२)

होगा क्या बनवाकर, कविते!
तुहिन-बिन्दु की निर्मल माल,
"विस्मृति" के "असीम" सागर में,
फैलाकर स्वप्नों का जाल?
कब तक सुनता रहूँ बन्धु! मैं,
"मतवाले" अलि की गुञ्जार,
क्यों "पागल" बन कर मैं घूमूँ,
भूल सकल मानव संसार?

(३)

निष्फल है निर्मम "अतीत" का,
"छाया"युत, "रहस्य"मय गान,
सार-रहित है उस अनन्त की,
सुखमय, मन्द, मदिर मुस्कान।
साधारण जीवन के सुख-दुःख,
गाऊँगा कवि-भाषा त्याग,
सम्पति, विद्याहीन जनों का,
करुणामय, रोटी का राग।

पाठकों के पत्र

[इस स्तम्भ में 'सरस्वती' में तथा अन्य सामयिक पत्रों में प्रकाशित होनेवाले लेखों आदि के सम्बन्ध में 'सरस्वती' के पाठकों के पत्र छपा करेंगे। पाठकों से निवेदन है कि वे इसका सदुपयोग करें।]

बहु-विवाह—प्रिय संपादक जी, फ़रवरी की सरस्वती में ठाकुर सूर्य्यकुमार वर्मा ने बहु-विवाह-प्रथा पर लिखते हुए लिखा है कि—"स्त्री और पुरुष दोनों को इस विषय में समान अधिकार प्रदान करना होगा।" ठाकुर साहब का कहना यथार्थ है। जब पुरुष कई स्त्रियों के साथ विवाह कर सकते हैं तब स्त्रियाँ कई पुरुषों के साथ विवाह क्यों न करें। परन्तु ऐसे विवाहों से गृहकार्य्य कैसे चलेगा? मान लीजिए श्रीमती माया देवी ने ठाकुर साहब की राय के अनुसार तीन पुरुषों से विवाह कर लिया। अब वे किस प्रकार तीनों के घरों में रहेंगी? तीनों की रोटियाँ किस प्रकार पकावेंगी। उनके जो बच्चे होंगे वे तीन में से किसके समझे जायँगे। तीनों के मरने पर शायद वे विधवा समझी जायँ, पर एक या दो के मरने पर क्या समझी जायँगी। ये सब बातें हैं जिन्हें आशा है ठाकुर साहब या आपके कोई और पाठक बताने की कृपा करेंगे।—जानकीदेवी, फ़तेहपुर

नाम की प्यास—जनवरी की 'सरस्वती' में श्रीयुत सियारामशरण गुप्त की 'नाम की प्यास' शीर्षक एक लम्बी कविता छपी है। उसमें एक छंद यह है—क्षण भर पूर्व ही जो हर्ष स्रोत
उमड़ पड़ा था जन-जन में,
जानता था कौन यह झूठा तोत

इसमें "तोत" शब्द का अर्थ मेरी समझ में नहीं आया। तीन मील जाकर एक पुस्तकालय में काशी-वाला हिन्दी-शब्दसागर देखा तब मालूम हुआ कि यह शब्द प्रान्तिक है और ढेर के अर्थ में प्रयुक्त होता है। एक उदाहरण भी दिया है, जैसे "घर घर उनही के जुरे बदनामी के तोत"। पर किस प्रान्त का है यह नहीं मालूम। गुप्त जी ने इसे शायद ढेर के अर्थ में नहीं लिया क्योंकि "ढेर" से भी कोई अर्थ नहीं निकलता। यदि केवल 'स्रोत' के मुक़ाबिले में तुक बैठाने के लिए आपने इसका प्रयोग किया है तब 'तोत' का 'त्रोत' अधिक अच्छा होता। क्या गुप्त जी इस प्रयोग का प्रयोजन बताने का कष्ट करेंगे।—कृपानाथ भगोले

हलाहल—निवेदन है कि फ़रवरी के अङ्क में 'हलाहल'- शीर्षक कविता में यह पद्यांश "एक दिन चिर का विनाश की आग फूँक देगी…………" आदि अतीव उद्दंड और असंयत विचारों का द्योतक है तथा वैदिक धर्मियों की आस्तिकता के परे है। आशा है, लेखक महोदय इस कविता का संशोधन करेंगे। —राधेश्याम गुप्त सेंथल, ज़ि० बरेली

एक लेख—मैंने एक लेख हिन्दी के एक प्रसिद्ध मासिक पत्र में भेजा था। पर सम्पादक जी ने लिखा "विचारों की विभिन्नता ही लेख को अस्वीकृत करने का कारण है"। इस समय मुझे श्री पी० सी० स्काट के निम्न शब्द स्मरण हो आते हैं—"सम्पादक जनता के सामने लेखकों के विचार उपस्थित कर देनेवाला है। कोई चिन्ता नहीं कि लेखक के विचार उसके व्यक्तिगत विचारों से मेल खाते हैं अथवा नहीं।" मुझे आशा है हिन्दी के प्रमुख लेखक इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करने की कृपा करेंगे।

—लक्ष्मणप्रसाद छेदीलाल गार्ग्य, सरधना



[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१—साखी-ग्रंथ—अवतरणिकाकार, श्री वनमाली गुप्त श्री अरविंद, बी० ए०, एल-एल० बी०, प्रकाशक, कबीर-धर्मवर्धक कार्यालय, सीयाबाग़, बड़ौदा हैं और सजिल्द पुस्तक का मूल्य ३) है। डाक-खर्च ॥)।

२—बनारसी एक्का (कहानी-संग्रह)—लेखक, श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़, एम० ए०, एल-टी०, प्रकाशक, साहित्य-सेवक, कार्यालय, काशी और मूल्य १) है।

३—आयुर्वेदीय ओषधिगुण धर्मशास्त्र (प्रथम भाग)—ग्रन्थकर्ता, श्री वै० पं० गंगाधर शास्त्री गुणे, प्रकाशक, आयुर्वेद सेवासंघ, अहमदनगर हैं और मूल्य १॥) है। डाक-व्यय अलग।

४—शंका-समाधान-मयंक (साहित्य)—टीकाकार, श्री पं० रामखिलावन गोस्वामी, प्रकाशक मु० सीयाबाग़ कबीर साहेब का मंदिर, बड़ौदा हैं और मूल्य १) है।

५—पौदा और खाद—लेखक व प्रकाशक, चौधरी मुख़तारसिंह, वकील, मेरठ हैं और मूल्य २) है।

६—जल और जुताई—लेखक व प्रकाशक, चौधरी मुख़तारसिंह जी वकील, मेरठ हैं और मूल्य २) है।

७—भूमि—लेखक, प्रकाशक और सम्पादक, चौधरी मुख़तारसिंह, वकील, मेरठ और सजिल्द पुस्तक का मूल्य १॥) है।

८—जैमिनि-दर्शन—लेखक, श्री गुप्तनाथसिंह, बी० ए०, प्रकाशक, साहित्य-मंदिर, भभुआ, बिहार है।

९—लाला देवराज जी—प्रकाशक, सरस्वती-सदन, मसूरी (यू० पी०) है।

१०—भीषण हत्या—अनु०, श्री बा० परमानन्द खत्री, एम० ए०, प्रकाशक, गुप्त ब्रादर्स, बनारस सिटी और मूल्य ।) है।

११—मेरी अबीसीनिया-यात्रा—लेखक, पं० कन्हैयालाल, प्रकाशिका, श्री सुशीलादेवी, आर्योपदेशिका काशी और मूल्य ॥) है। मिलने का पता—श्रीकृष्ण प्रेस, बुलानाला, बनारस सिटी।

१२—स्त्रीशिष्टाचार—लेखिका, श्रीमती विशन-देवी "नन्दरानी", प्रकाशक, किंग प्रेस, बरेली है और मूल्य ॥) है।

१३—धर्म-मीमांसा—लेखक, श्री पं० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, प्रकाशक, सत्यसमाज-ग्रंथमाला, कार्यालय, जुबिलीबाग़, तारदेव, बम्बई हैं और मूल्य ।) है।

१४—प्रियप्रवास की समालोचना तथा टीका—ले०, श्री केदारनाथ गुप्त बी० ए०, पं० लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी कविरत्न, प्रकाशक, विश्व-विद्यालय-परीक्षा-बुकडिपो, पानदरीबा, इलाहाबाद और मूल्य ।=) है।

१५—सती शान्तिदेवी—ले०, डा० बालमुकुन्द चतुर्वेदी, प्रकाशक, मदनमोहन चतुर्वेदी, बंगाली घाट, मथुरा हैं और मूल्य ।) है।

१६—गुरुमहिमा—प्रकाशक, कबीरधर्मवर्धक कार्यालय, बड़ौदा और मूल्य ।=) है।

१७—सदुपदेश-मणिमाला—प्रकाशक, कबीर-धर्मवर्धक कार्यालय, बड़ौदा और मूल्य ॥) है।

१८—पवनस्वरोदय—प्रकाशक, कबीरधर्मवर्धक कार्यालय, बड़ौदा और मूल्य -)॥ है।

१९—दुर्लभ योग—प्रकाशक, कबीरधर्मवर्धक कार्यालय, बड़ौदा और मूल्य -)॥ है।

२०—ज्ञानस्वरोदय—प्रकाशक, कबीरधर्मवर्धक कार्यालय, बड़ौदा और मूल्य =)॥ है।

२१—यज्ञे पशुवधो वेदविरुद्धः—संपादक, श्री नरदेव शास्त्री, मुद्रक, भास्करमुद्रणालयः, देहरादूननगरे।

१—पद्माकर-पंचामृत—सम्पादक, पंडित विश्वनाथ-प्रसाद मिश्र, एम० ए०, 'साहित्य-रत्न,' और प्रकाशक श्रीरामरत्न पुस्तक-भवन, काशी हैं। मूल्य ३) है।

पद्माकर-पंचामृत—घृत, दधि, दुग्ध, मधु और शर्करा के साथ तुलसी-दल तथा चूर्णिका (पँजीरी) के भागों में विभक्त किया गया है, अर्थात् इन्हीं शीर्षकों के अन्तर्गत पद्माकर-रचित हिम्मतबहादुर-विरुदावली, पद्माभरण, जगद्विनोद, प्रबोध-पचासा, गंगालहरी और कुछ फुटकर छंद आदि का सम्पादन के साथ समावेश किया गया है, परन्तु इस पंचामृत के निर्माण में कुछ असंगति सी प्रतीत होती है। पद्माकर की प्रतिष्ठा जैसा कि इस संग्रह के 'आमुख' में भी कहा गया है, जगद्विनोद से है। परन्तु इस ग्रन्थ में जगद्विनोद को तृतीय स्थान—दुग्धरूप से—दिया गया है। पंचामृत में पहला स्थान दुग्ध का माना जाता है, फिर क्रमशः दधि, घृत, मधु और शर्करा आदि का समुचित समझा गया है। इस विचार से दुग्धरूप जगद्विनोद का प्रथम स्थान होना चाहिए था। इसी तरह हिम्मतबहादुर-विरुदावली को घृत का रूप देना ठीक नहीं है। यह तो उनकी विरद-काव्य-रचना है। इसमें घृत जैसी मृदुता व सुस्वादुता कहाँ? ख़ैर।

पद्माकर के उपर्युक्त ग्रन्थों से प्रायः सभी परिचित हैं। इनमें हिम्मतबहादुर-विरुदावली एक वीर-प्रशंसात्मक खंड-काव्य है। रजाधान के गुसाईं अनूपगिरि उपनाम हिम्मत-बहादुर अवध के नवाब शुजाउद्दौला के एक जागीरदार थे। ये स्वयं एक अच्छे कवि थे और कवियों का अच्छा सम्मान भी करते थे। सन् १८४६ में हिम्मतबहादुर का और नौने अर्जुनसिंह का युद्ध हुआ था। पद्माकर जी उस समय हिम्मतबहादुर के आश्रय में थे। अपनी इस रचना में उन्होंने इसी युद्ध का वर्णन किया है।

परन्तु जगद्विनोद और पद्माभरण उनकी उत्कृष्ट रचनायें हैं। जगद्विनोद में नायिका-विभेद और पद्माभरण में अलङ्कारों का विशद वर्णन है। 'प्रबोध-पचासा' और 'गंगालहरी' कवि के मनस्ताप और तज्जन्य पाप-प्रक्षालनार्थ की गई स्तुति-पूर्ण रम्य-रचनायें हैं। मनुष्य के अन्तस्तल में निहित एक ऐसी उद्भट शक्ति रहती है जो कभी-कभी मर्मस्पर्शिणी—मधुर प्रतारणा से आडोलित हो उस (मनुष्य) के मार्ग को—भविष्य को, पलट देती है। प्रबोध-पचासा कुछ ऐसी ही प्रतारणा से झंकरित मङ्गल-कार्य का छोटा-सा नमूना है। यदि चरखारी-नरेश रत्नसिंह जी पद्माकर की मनोगत-सम्मान की वीणा पर फटकार रूपी मृदुमींड़ न देते तो शायद प्रबोध-पचासा जैसा ग्रन्थरत्न व्रजभाषा-साहित्य के पल्ले न पड़ता। गंगालहरी कवि-कष्ट-निवारणार्थ की गई अन्तिम रचना है जो पंडितराज जगन्नाथ-कृत गंगालहरी के सदृश स्तुतिमय सुन्दर है।

पंचामृत के साथ तुलसीदल और प्रसाद-स्वरूप चूर्णिका, अर्थात् पँजीरी का न होना ज़रा खटकता! अस्तु, सम्पादक महोदय ने इस अभाव की पूर्ति उनके स्फुट छन्दों को एकत्र करके कर दी है।

सम्पादक महोदय ने पद्माकर जी की अन्य तीन रचनाओं का—'आलीजाह-प्रकाश', 'राम-रसायन' तथा 'हितोपदेश का गद्यपद्यात्मक अनुवाद' का उल्लेख अपने 'आमुख' में किया है। परन्तु उनका अपने इस संग्रह में समावेश नहीं किया है। उनका कहना है—"आलीजाह-प्रकाश, जगद्विनोद का ही परिवर्तित, परिशोधित और परिष्कृत स्वरूप है, कोई विशेष अन्तर नहीं है। जगद्विनोद को ही कुछ अदल-बदल कर 'आलीजाह-प्रकाश' रूप दे दिया गया है।" परन्तु उनका यह कथन संगत नहीं है। हमने आलीजाह-प्रकाश मथुरा-निवासी स्वर्गीय नवनीत जी चतुर्वेदी के पास देखा है और वह 'जगद्विनोद' से सर्वथा पृथक् ग्रन्थ है। हाँ, जगद्विनोद के कुछ छंद उसमें ज़रूर आ गये हैं, जो कि यह परम्परागत परिपाटी का परिणाम है! खेद है, सम्पादक महोदय ने 'आमुख'

में इस सम्बन्ध में पद्माकर जी को आड़े हाथों लिया है, साथ ही एक सुन्दर ग्रन्थ को अपने इस संग्रह में स्थान न देकर साहित्य-प्रेमियों को उससे वञ्चित किया है, मतिराम जी ने भी तो बहुत कुछ ऐसा ही किया है। ललितललाम, रसराज और मतिराम-सतसई, इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। इन ग्रन्थों में नाम-विभिन्नता के साथ साथ उदाहरणों में विशेष सादृश्य है। यही नहीं मतिराम ने तो अपने 'रसराज' को बहुत कुछ 'रहीम' के भाव से पुष्ट किया है।

हाँ, राम-रसायन और हितोपदेश का इसमें संग्रह न कर उचित ही किया गया है; क्योंकि राम-रसायन मिलता तो है. पर जैसा कि सम्पादक महोदय ने लिखा है कि उसकी कविता शिथिल है और उसके पद्माकर की कृति होने में सन्देह भी है। हितोपदेश (गद्यपद्यात्मक अनुवाद) मिलता भी नहीं है।

सम्पादक महोदय ने 'प्रवचन'-द्वारा कहा है कि—"हमने शब्दों, क्रियापदों और विभक्तियों के स्वरूप में 'रत्नाकरी' अथवा 'मथुरिया पद्धति' नहीं ग्रहण की है, क्योंकि पद्माकर आदि कवियों ने काव्य-भाषा का सामान्य स्वरूप ग्रहण किया है और उसमें बिहारी आदि प्राचीन कवियों के गृहीत स्वरूपों से थोड़ी-सी भिन्नता है। इसलिए 'मैं' के स्थान पर 'में' ही रखा गया है। पद्माकर की आरम्भिक और उत्तरकालीन रचनाओं में जो स्वाभाविक विभेद लक्षित हुआ उसे बनाये रखने के लिए दोनों में स्वरूप-भेद भी दिखाया गया है, एकरूपता की कड़ाई में उसे बिगाड़ा नहीं गया है, जैसे—चतुर्थी की विभक्ति 'कौं' आगे चलकर 'कों' यहाँ तक कि 'को' हो गई है आदि आदि...।" परन्तु सम्पादक महोदय ने समयानुसार उक्त रचना-विभेद के दिखलाने की कृपा नहीं की। ऐसी दशा में उनका यह कार्य धाँधली करना कहा जायगा। वास्तव में देखा जाय तो नवलकिशोर प्रेस के पंडित कालीचरण जी से लेकर पण्डित 'नकछेदी तिवारी' आदि के सहित वर्तमान समय तक के व्रजभाषा-साहित्य के सम्पादकों ने व्रजभाषा की विभक्तियों को, क्रियाओं को यहाँ तक कि शब्दों को जो पूर्वीय जामा पहिनाया है वह उनका अनधिकार कार्य कहा जायगा। परन्तु इस ग्रन्थ के सम्पादन में मिश्र जी अपने पूर्ववर्ती सम्पादकों से भी आगे बढ़ गये हैं। यहाँ तक कि विभक्तियों का अपने कथनानुसार भी सही विभाग नहीं किया है। कहीं 'को' है तो कहीं 'कों' है; और कहीं 'कौ' भी मौजूद है। इनका वर्गीकरण जैसा कि आपने अपने कथन में कहा है, ग्रन्थ-क्रम-विकाश के साथ नहीं किया है अर्थात् आपने चतुर्थी विभक्ति के कारक को पहले 'कौं,' फिर 'कों' और बाद को 'को' माना है, परन्तु इसका निर्वाह स्वयं नहीं किया है।

व्रजभाषा के कवियों का चाहे वे व्रजवासी रहे हों या दूसरे देशवासी, व्रजभाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था। वे कारकों की ऐसी भूलें कैसे करते। सम्पादक महोदय ने शब्दों में भी कहीं-कहीं भद्दी तोड़-मरोड़ की है जिससे व्रजभाषा-सौन्दर्य तिरोहित-सा हो गया है। चूर्णिका (पँजीरी) में भी कहीं-कहीं कुछ अर्थ के अनर्थरूपी कंकड़ रह गये हैं, तथापि सम्पादक महोदय ने पद्माकर की इन रचनाओं का सम्पादन करने में पर्याप्त परिश्रम किया है और इसके लिए वे प्रशंसा के पात्र हैं। अपने 'आमुख' में पद्माकर का तथा उनकी कविता का जो विस्तृत विवेचनात्मक परिचय दिया है वह ज्ञातव्य बातों से परिपूर्ण है और उससे इस महाकवि की कला का सम्यक् बोध हो जाता है। पुस्तकान्त में विस्तार के साथ प्रत्येक रचना के जो शब्दार्थ दिये गये हैं, उनसे इस संस्करण की उपादेयता बहुत अधिक हो गई है। व्रजभाषा की कविता के प्रेमियों को इस 'पंचामृत' का अवश्य रसास्वादन करना चाहिए।

—जवाहरलाल चतुर्वेदी

२—उद्योग मन्दिर, अजमेर की दो पुस्तकें—

(१) वैक्युम-ब्रेक—लेखक, श्रीयुत ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम०, आई० एल० ई० और मूल्य २) है। पृष्ठ-संख्या १६० है।

लेखक ने रेलवे में काम करनेवाले इंजन-ड्राइवरों, फ़ायरमैनों, फ़िटरों और कैरिज-एग्ज़ामिनरों के लाभ के लिए इस पुस्तक की रचना की है। हिन्दी-साहित्य में यह अपने विषय की पहली पुस्तक है। पुस्तक की भाषा सरल तथा विषय को स्पष्ट रूप से समझाने के लिए उपयोगी है।

रंगीन तथा सादे चित्रों-द्वारा लेखक ने विषय को ख़ूब सुबोध बना दिया है। पुस्तक परिश्रम से लिखी गई है। आशा है, रेलवे के उपर्युक्त कर्मचारी इस पुस्तक से लाभ उठावेंगे। लेखक तथा प्रकाशक दोनों ने ही इस विषय पर पुस्तक लिखकर तथा प्रकाशित करके मातृभाषा के भाण्डार को पूर्ण किया है, जिसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

(२) यान्त्रिक-चित्रकारी (प्रथम भाग)—लेखक, श्री ओंकारनाथ शर्मा ए० एम०, आई० एल० ई०, पृष्ठ-संख्या २५६ और मूल्य २॥) है।

इस पुस्तक को ग्रन्थकार ने कारख़ाने में काम करनेवाले कारीगरों के लाभ की दृष्टि से लिखा है। यान्त्रिक चित्रकारी जैसा कि लेखक ने भूमिका में कहा है, कारीगरों की भाषा है। यान्त्रिक वस्तुओं को बनाने तथा उनकी बनावट को दूसरे कारीगरों को समझाने के लिए यान्त्रिक चित्रकारी का ज्ञान होना परम आवश्यक है। लेखक ने प्रारम्भ में यांत्रिक चित्रकारी के सिद्धान्तों का वर्णन किया है, इसके बाद रेखाओं का उपयोग, पैमाना, आन्तरिक दृश्य आदि के बनाने की विधि तथा चूड़ियाँ, उनके विभेद, रिवट, किरें आदि यंत्रोपयोगी वस्तुओं का विस्तार के साथ सरल तथा सुबोध भाषा में वर्णन किया है। रिवेटों, चौकोर, पुश्ताकार, कीटाकार आदि चूड़ियों को चित्र में दिखाने के प्रकारों को चित्रों-द्वारा सुस्पष्टतया समझाया गया है। परिशिष्ट-भाग में परिमाण, परिवर्त्तन-अंक आदि विषयक अस्सी सरणियाँ दी गई हैं। अन्त में हिन्दी-अँगरेज़ी शब्द-कोष देकर पारिभाषिक शब्दों की कठिनाई दूर कर दी गई है। पुस्तक परिश्रम से लिखी गई है और अपने विषय की उत्तम पुस्तक है। गेटअप छपाई, आदि सुन्दर है। कारीगरों तथा औद्योगिक विद्यालयों के छात्रों को इसका संग्रह करना चाहिए।

३—यास्क-युग—लेखक, श्रीयुत चमूपति, एम० ए०, प्रकाशक, आर्यप्रतिनिधि-सभा, पंजाब, लाहौर-हैं। मूल्य ॥) है।

यह पुस्तक महर्षि यास्क के निरुक्त के आधार पर लिखी गई है। यास्क के समय वेदार्थ करने की प्रचलित ग्यारह शैलियों का जिनका वर्णन निरुक्त में स्थान स्थान पर हुआ है, इस पुस्तक में बड़े सरल तथा रोचक ढंग से वर्णन किया गया है। 'आख्यान-समय' का प्रयोजन तथा ऐतिहासिक पक्ष में उसका सहायक होना, मंत्रों का नित्यत्व तथा मंत्रगत ऋषियों के व्यक्तिवाचक नामों का कारण, अपत्य प्रत्ययों का प्रयोग आदि अनेक वेदार्थ-सम्बन्धी बातों का लेखक ने युक्ति-संगत विवेचन किया है। ऐतिहासिक पक्ष में किस प्रकार मंत्रों के अर्थ करने में कठिनाइयाँ पड़ती हैं और नैरुक्त शैली से किस प्रकार से उनका निराकरण होकर वेदार्थ का सौन्दर्य निखर उठता है, इसको भी लेखक ने उदाहरणों-द्वारा अच्छी तरह समझाया है। पुस्तक अध्ययन तथा पर्याप्त छानबीन करके लिखी गई है। वेद के प्रत्येक अनुरागी को इस पुस्तक को संग्रह करना चाहिए। पुस्तक उपादेय है और वेदों का अर्थ करने के लिए नैरुक्त शैली की श्रेष्ठता को प्रमाणित करती है।

—कैलाशचन्द्र शास्त्री, एम० ए०

४—शारंगधर-संहिता—वैद्यक के ग्रन्थों में शारंगधर-संहिता को विशेष महत्त्व प्राप्त है। इसके रचयिता वैद्यवर शारंगधर महाराज पृथ्वीराज चौहान के पौत्र रणथम्भौराधीश महाराज हम्मीरराव के राज्यवैद्य थे। इन्होंने अपनी इस संहिता में प्रत्येक ज्ञातव्य विषय को पृथक् पृथक् अध्यायों में वर्णन किया है, जिससे विद्यार्थी को अध्ययन तथा भिन्न भिन्न विषयों को हृदयंगम करने में विशेष सुविधा हो गई है। इसी से इस पुस्तक का वैद्यों में ख़ूब प्रचार है। प्रसन्नता की बात है कि इसका यह नया संस्करण बहुत ही उपयोगी निकला है। इसके हिन्दी-टीकाकार आयुर्वेदाचार्य श्रीयुत हरदयाल गुप्त ने मूल श्लोकों की सरल टीका अर्थात् व्याख्यानपूर्वक अनुवाद ही नहीं किया है, किन्तु स्थल स्थल पर विस्तृत 'वक्तव्य' लिखकर प्रत्येक पारिभाषिक बात का इस तरह विवेचना के साथ वर्णन कर दिया है कि साधारण पढ़े-लिखे आदमी को भी इस पुस्तक का प्रत्येक विषय आसानी से हृदयंगम हो जा सकता है। यही नहीं, इन वक्तव्यों में स्थान स्थान पर अन्य ग्रन्थों के हवाले दे देकर सारे विषयों का पूर्णरूप से स्पष्टीकरण

कर दिया गया है और औषध-प्रकरण में अपने वक्तव्यों में प्रत्येक औषध के निर्माण की विधि इतने ब्योरे के साथ बताई गई है कि किसी को उसके सम्बन्ध में पूछपाछ करने की ज़रूरत ही नहीं रह जाती है। पुस्तक का प्रकाशन आधुनिक ढंग से किया गया है। भूमिका में ग्रन्थकर्ता का समय-निरूपण कर ग्रन्थ की रचना का समय तथा उसकी प्राचीन टीकाओं का भी उल्लेख किया गया है। विषय-क्रम की सूची के सिवा रोग-क्रम की सूची देकर पाठकों को और भी सुविधा कर दी गई है। छपाई सुन्दर और काग़ज़ भी सुन्दर। 'शारंगधर-संहिता' पर संस्कृत की कई टीकायें तथा भाषानुवाद भी प्राप्त हैं, परन्तु उसका यह नया संस्करण सबसे अनूठा और अत्यधिक उपयोगी निकला है। शारंगधर-संहिता का यह महत्त्व माना जाता है कि केवल एक इसी ग्रन्थ के पढ़ने से लोग अच्छे चिकित्सक हो जाते हैं। परन्तु इस महत्त्वपूर्ण 'टीका' के हो जाने से वह पहले की किंवदन्ती अब वास्तव में परिपक्व हो जायगी। ऐसी श्रेष्ठ टीका के लिखने के लिए आयुर्वेदाचार्य जी सर्वथा प्रशंसा के पात्र हैं। हमें आशा है कि वे अब 'माधवनिदान' की भी ऐसी ही सर्वोपयोगी उत्तम टीका लिख देने का अनुग्रह करेंगे। वैद्यों को तथा देशी चिकित्सा के प्रेमियों को 'शारंगधर-संहिता' का यह संस्करण जिसे प्रकाशक ने उत्तम ढंग से प्रकाशित किया है, अवश्य संग्रह करना चाहिए। ७२६ पृष्ठ की सजिल्द प्रति का मूल्य भी केवल ४) है। पता—श्रीमेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर है।

५—रसतंत्र-सार—लेखक, ठाकुर नाथूसिंह वर्मा, इस्तमरारदार, प्रकाशक, आयुर्वेदिक परमार्थ औषधालय, कलेड़ा अजमेर हैं। मूल्य २=) है।

यह ग्रन्थ हिन्दी में है। इसमें रसों के सिवा चूर्ण आदि के भी प्रसिद्ध शास्त्रीय योग पृथक् पृथक् अध्यायों में संग्रह किये गये हैं। विषय और रोग के क्रम के अनुसार दो सूचियों के लगा देने से अभीष्ट योग ढूँढ़ने की पूरी सुविधा कर दी गई है। पुस्तकान्त में भिन्न-भिन्न रोगों पर छोटे छोटे चुटकुले भी संग्रह कर दिये गये हैं। केवल हिन्दी जाननेवाले चिकित्सकों के लिए यह पुस्तक सचमुच बड़े काम की है। प्रारम्भ के प्रकरण में औषधों के निर्माण तथा रसादिकों के शोधन की भी पूरी प्रक्रिया बता दी गई है।

६—पर्य्यायवाची कोष—हिन्दी में यह कोष अपने विषय का पहला है, साथ ही उत्कृष्ट भी है। इसके रचयिता पण्डित श्रीकृष्ण शुक्ल विशारद ने इसकी रचना में काफ़ी परिश्रम किया है और इसको उपयोगी बनाने में उन्होंने अपनी ओर से कुछ उठा नहीं रक्खा। इसकी रचना संस्कृत-कोषों के आधार पर की गई है और सभी शब्दों के उपलब्ध पर्याय संकलित करने का ख़ासा प्रयास किया गया है। प्राचीन कविता-पुस्तकों के अध्ययन में तथा संस्कृत-बहुल नई रचना करने में इस कोष से पूरी सहायता मिल सकती है। यह कोष विषय के अनुसार ३७ वर्गों में विभाजित है तथा इसमें २,२५१ शब्दों के पर्याय दिये गये हैं। हिन्दी-कोष होने के कारण हिन्दी-पर्याय संकलित करने में भी परिश्रम किया गया है, यहाँ तक कि कहीं कहीं प्रान्तीय शब्द भी आ गये हैं। इसी प्रकार कहीं कहीं हिन्दी का पर्याय ग़लत भी दे दिया गया है, जैसे 'सभा-भवन' का पर्याय 'पञ्चायती जगह' लिखा गया है, जो पंचायत-स्थान होना चाहिए। कहीं कहीं हिन्दी का पर्याय नहीं भी दिया गया है, जैसे कि 'बाज़ार' का 'पैंठ', हालाँ कि 'पैंठ' शब्द हिन्दी में प्रयुक्त शब्द है। परन्तु ऐसी दो-चार त्रुटियों से इस ग्रन्थ के महत्त्व या उपयोगी होने में कोई अन्तर नहीं पड़ता। सजिल्द प्रति का मूल्य २॥) है। पता—भार्गव-पुस्तकालय, गयाघाट, काशी।

७—पशु-बलिदान—पिछले दिनों कलकत्ते में वहाँ के काली-मन्दिर में होनेवाली पशु-बलि के विरोध में जयपुर के पण्डित रामचन्द्र शर्मा वीर ने आमरण अनशन का व्रत आरम्भ किया था। इस अवसर पर पशु-बलि के विरोध में ख़ासा आन्दोलन शुरू हो गया था। यहाँ तक कि उसने महामना मालवीयजी को कलकत्ते जाकर शर्मा जी का व्रत स्थगित करवाना पड़ा था। यह पुस्तिका उसी प्रसंग को लेकर प्रकाशित की गई है और इसमें 'विद्वज्जनों के विचारार्थ' पशुबलिदान पर देशपूज्य महामना पण्डित मदनमोहन जी मालवीय के विचार पण्डित हीरावल्लभ शास्त्री ने एकत्र कर उन्हें शास्त्रीय प्रमाणों-द्वारा समर्थित किया है। इसे

कलकत्ते की पशु-बलि-निरोध-समिति के मंत्री ने प्रकाशित किया है। महामना मालवीय जी का विचार है कि देव-मन्दिरों में पशु-बलि नहीं होनी चाहिए तथा दुर्गा आदि की पूजा में पशु की बलि नहीं देनी चाहिए। आशा है, इस विषय के ज्ञाता इस पर सम्यक् रूप से विचार करेंगे। यहाँ हम इतना ही निवेदन कर सकते हैं कि देवीपुराण के आधार पर पशु-बलि की जो 'असात्त्विकता' प्रमाणित की गई है उसमें शास्त्री जी ने जल्दी से काम लिया है, क्योंकि वहाँ यह प्रश्न भावनापरक ही लिया गया है, वस्तुपरक नहीं।

८—भूगोल एटलस—ईविंग क्रिश्चियन कालेज, इलाहाबाद के भूगोल के प्रोफ़ेसर पण्डित रामनारायण मिश्र बी० ए० को 'भूगोल' का व्यसन है। वे एक ज़माने से अपने इस प्रिय विषय का अध्ययन ही नहीं कर रहे हैं, किन्तु उसका ज्ञान प्रत्यक्ष करने के लिए उन्होंने भारत तथा बाहर के अनेक देशों का भी भ्रमण किया है, साथ ही भूगोल-विषयक साहित्य की रचना कर राष्ट्र-भाषा के इस विषय के अभाव की पूर्ति की है और कर रहे हैं। यह एटलस भी उनके उसी सत्कार्य का एक परिणाम है। इसे मिश्रजी ने अपने 'भूगोल' मासिकपत्र के विशेषांक रूप में प्रकाशित किया है। इसमें महाद्वीपों और देशों के नक़शे दिये गये हैं। ये सब नक़शे इस दृष्टि-कोण के दिये गये हैं कि भूगोल के अध्ययन में विद्यार्थियों को विशेष सहायता मिले। वास्तव में मिश्र जी अपने 'भूगोल'-पत्र-द्वारा हिन्दी की जो सेवा कर रहे हैं वह सर्वथा स्तुत्य है। जो काम संस्थाओं का है उसे एक लगनवाला व्यक्ति किस सफलता के साथ कर सकता है उसके उदाहरण हमारे ये मिश्रजी हैं। यदि मिश्रजी की-सी लगन के दस ही पाँच हिन्दी-प्रेमी अस्तित्व में आ जायँ तो हिन्दी के अभ्युदय की कोई सीमा ही न रहे।

९—लक्षणसंग्रह—संग्रहकर्ता, श्री भिक्षु गौरीशङ्कर हैं। पृष्ठ-संख्या १७६ और मूल्य ।)॥ है। पता—श्री 'मनभरीदेवी' पुट्ठी-ग्राम, पोष्ट—जमालपुर, ज़िला—हिसार (पंजाब)।

दार्शनिक ऋषियों तथा वैज्ञानिक पण्डितों द्वारा स्वीकृत पारिभाषिक शब्दों के लक्षण इस पुस्तक में संग्रह किये गये हैं। इसकी शब्द-संख्या २७०० है और अकारादि क्रम से शब्दों का संग्रह हुआ है।

उदाहरण के लिए मुक्ति शब्द को लीजिए। संग्रहकार ने भिन्न-भिन्न शास्त्रों से इसके ३२ लक्षण दिये हैं। इस प्रकार वेद-वेदाङ्ग, दर्शन, स्मृति, पुराणादि के प्रायः सभी लक्षण इसमें दिये गये हैं और ऐसा लक्षणात्मक निबन्ध साहित्य में प्रथम ही प्रकाशित हुआ है। वास्तव में यह एक उपयोगी पुस्तक है। यह इसका दूसरा संस्करण है। संस्कृत के प्रेमियों को इसका संग्रह करना चाहिए।

१०—श्रीभगवन्नामप्रचारयोजना—लेखक, श्रीयुत श्रीनिवास पोद्दार।

यह पुस्तक भगवन्नाम का जपानुष्ठान करने के इच्छुक साधकों के लिए विज्ञापनपत्र है। जो साधक, ६ मास तक फलाहार करके, सब सांसारिक चिन्ताओं को छोड़ रामनाम के महामंत्र का जपानुष्ठान करना चाहते हों, वे श्रीयुत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, हंसतीर्थ, झूसी- प्रयाग) से पत्र-व्यवहार करें। झूसी में इसके लिए किस प्रकार एक आश्रम की योजना हो रही है, किस प्रकार के व्यक्ति उसमें प्रविष्ट हो सकेंगे, उन्हें किन नियमों का पालन करना होगा इत्यादि बातें इस विज्ञापन-पुस्तक से मालूम होंगी।

महाकाव्य

श्रीमान् कुँवर साहब की साहित्यिक लेखमाला का यह लेख भी ज्ञातव्य बातों से पूर्ण तथा काफ़ी रोचक है। महाकाव्य क्या है इसकी विवेचना पाश्चात्य विद्वान् क्या करते हैं, यही इस लेख में बताया है। इसके पढ़ने से प्रकट होगा कि महाकाव्य के सम्बन्ध में प्राच्यों का विचार पाश्चात्यों की अपेक्षा बिलकुल भिन्न है।

लेखक, कुँवर राजेन्द्रसिंह

महाकाव्य कविता का परमोच्च शिखर है, केवल यही नहीं, इससे किसी देश की सभ्यता, शिष्टता और परमता का पता चलता है, और यह भी पता चलता है कि उस समय समाज का संगठन कैसा था—आचार और व्यवहार कैसे थे और अन्यान्य विषयों पर विचार कैसे थे। महाकाव्य इस बात का प्रमाण है कि भाषा इस योग्य हो चुकी है कि वह सब प्रकार के भावों को प्रकट कर सके। मनुष्य की तरह भाषा की भी भिन्न-भिन्न अवस्थायें हुआ करती हैं—भाषा का वह शिशुकाल है जब एक शिशु की तरह वह चेष्टाओं और संकेतों के द्वारा अपना भाव प्रकट करती है; क्योंकि शब्दों की न्यूनता होती है। दूसरी कौमार अवस्था है—"कुछ जवानी है अभी, कुछ है लड़कपन उनका।" इस अवस्था में यदि शब्दों की कमी नहीं है तो बाहुल्य भी नहीं होता। यदि किसी देश के उस समय के साहित्य का अध्ययन किया जाय तो मालूम होगा कि मानो भाषा अपने भावों को प्रकट करने के लिए तड़फड़ा रही है। वही हालत होती है कि "दिल चलता है लेकिन टट्टू नहीं चलता है।" युवा अवस्था आते ही भाषा बलवती, सुदृढ़ और संस्कृत हो जाती है और स्वभावतः उसमें कोमल-से-कोमल, मृदु-से-मृदु और मधुर से मधुर भावों को प्रकट करने का सामर्थ्य आ जाता है। जब भाषा को यह योग्यता प्राप्त हो लेती है तब उस भाषा में महाकाव्य की रचना की जा सकती है, नहीं तो शृङ्गार, वीर अथवा शान्त रसों के भाव प्रकट होकर कैसे मिलेंगे। इन तीनों रसों में बड़ा अन्तर है। फिर, महाकाव्य के विषयों की भिन्नता पर ध्यान दीजिए—संध्या, सूर्य, चन्द्र, प्रदोष, रात्रि-पथ, दिवस, प्रातःकाल और मध्याह्नकाल, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, सागर, सम्भोग, विप्रलम्भ, मुनि, स्वर्ग, पुरी, यज्ञ, युद्ध, प्रयाण, विवाह, मन्त्रण और पुत्रोत्पत्ति आदि। इनके सिवा जलकेलि और मधुपान आदि भी इसके वर्णीय विषय हैं, (विश्वकोश) महाकाव्य के विषयों की इस सूची के अन्त में 'आदि' शब्द अधिक ध्यान देने योग्य है। यह शब्द सूचित कर रहा है कि सूची का अन्त नहीं हुआ है, परन्तु समय को बचाने के लिए यह शब्द अङ्गद की तरह पैर अड़ाये हुए है। किसी बड़े कवि के लिए तो यह आवश्यक है ही कि "देखै सुनै बहु लोक की बातैं"। परन्तु भाषा का बलवती होना उससे कहीं अधिक आवश्यक है।

संसार के महाकाव्यों की प्राचीनता में हमारे देश के महाकाव्यों का प्रथम स्थान है। यद्यपि हमारे लिए यह गौरव है, तथापि दूसरों के लिए ईर्ष्या का विषय नहीं होना चाहिए, क्योंकि शायद ही कोई ऐसा विषय हो जिसमें हम किसी से पीछे हों। अब चाहे अन्य देशवाले प्रसन्न हों या न हों, परन्तु हम लज्जा से गड़े जाते हैं कि अब कोई ऐसा विषय नहीं है कि हम किसी के बराबर ही हों, आगे होना तो दूर रहा। हम अब कहीं के भी नहीं हैं, औरों का तो क्या कहना कि हमको कौन किस दृष्टि से देखता है—हम स्वयं अपनी निगाहों में गिर गये हैं और गिरते जाते हैं। हाँ, क्या अभी तक हम अधोविन्दु पर नहीं पहुँचे हैं, और अगर नहीं पहुँचे हैं तो अभी न मालूम

और क्या देखना बाक़ी है। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि "आकर प्रभो रक्षा करो जाता मिटा यह देश है।" अस्तु।

हमारे देश के महाकाव्य मोहर लगी हुई बन्द पुस्तकों के समान हैं। जिस भाषा में वे लिखे हुए हैं वह आज-कल की व्यावहारिक भाषा नहीं है। संस्कृति तो दूर रही, हम हिन्दुओं को तो हिन्दी भी नहीं मालूम है। पहले तो 'गन्दुम गेहूँ नखुद चना शाली है धान' रटना पड़ता था और अब 'एस' और 'नो' ने नाक में दम कर रक्खा है। केवल अक्षरारम्भ के दिन प्रथानुसार 'ओं नमः सिद्धम्' दो-चार दफ़े कहला दिया जाता है। यही हमारी संस्कृत और हिन्दी की शिक्षा है, और इसी का कारण यह है कि हमारी बड़ी पुस्तकों के सम्बन्ध में हमारी कोई राय नहीं है। हम वही गाते घूमते हैं जो औरों ने कहा है। दूसरा कारण यह भी है कि सभ्य कहलाने के अभिप्राय से हमें दिखलाना पड़ता है कि हमारे पास समय का अभाव है, और वास्तव में है भी। कहाँ से समय आवे जब उसका अधिकांश फ़ैशन के पूजन में व्यय हो जाता है। कालेज में एक महाशय ने प्रतिवर्ष फ़ेल होने की प्रतिज्ञा-सी करली थी। अध्यापकों की समझ में नहीं आता था कि कारण क्या है। एक दफ़े कालेज में झुक कर पेंसिल उठाने में उनकी टोपी गिर गई। व्याख्यान देनेवाले अध्यापक ने कहा कि आज कारण समझ में आ गया और यह भी कहा कि जिस तरह के बाल आप सँवारे हुए हैं उनके सँवारने में दो घंटे लग गये होंगे। अस्तु। चाहे पूर्ण या अपूर्ण रूप से हम अपने महाकाव्यों के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ जानते ही हैं, और हम यह भी जानते हैं कि संसार में महाकाव्यों की सूची में हमारे ही महाकाव्यों का पहला स्थान है। अब देखना यह है कि अन्य देशवाले अपने महाकाव्यों के विषय में क्या कहते हैं।

ग्लैसगो-विद्यालय के प्रोफ़ेसर मैकनील डिक्सन ने एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम 'इँग्लिश इपिक एण्ड हिरोइक पोयट्री' है। अँगरेज़ी-भाषा में 'इपिक' शब्द संज्ञा और विशेषण दोनों है। इसका अर्थ है वह कविता जिसमें एक या एक से अधिक वीरों की वीरता का वर्णन हो, और जो मुखाग्र सुनाई जा सके। यह शब्द ग्रीक-भाषा के 'इपीकास' (epikos) शब्द से बना है। 'इपास' (epos) शब्द भी ग्रीस-भाषा का है। उस भाषा में इसका अर्थ गीत है और यह शब्द १८३५ से जैसा का तैसा अँगरेज़ी-भाषा में प्रयुक्त होता है। अँगरेज़ी-भाषा में इसका अर्थ वह 'इपिक' कविता है जो अलिखी हो। अब प्रचलित भाषा में 'इपिक पोयट्री' का अर्थ महाकाव्य है। अँगरेज विद्वानों के मतानुसार महाकाव्य का पहला गुण वर्णात्मक होना है—और जिसका आकार बड़ा हो और जिसमें सुन्दर विचार सुन्दरता से प्रकट किये गये हों, साथ ही विषय भी महत्त्वपूर्ण हो। किसी किसी का कहना है कि उसमें पवित्रता हो, शूरता हो और वर्णन रूपक में हो।

अँगरेज़ी विद्वानों ने अपनी कविता का इतिहास बतलाते हुए कहा है कि पहले कविता में केवल भजन थे और जातीय क़िस्से और कहानियाँ थीं। उनका कहना है कि पहले-पहल वर्णात्मक कविता ग्रीस देश में लिखी गई थी और यह भी उन्हीं का कहना है कि यह तब लिखी गई होगी जब होमर और हेसियड का लोग केवल नाम जानते होंगे। इसका पता लगाये नहीं लगता है कि इस ढंग की कविता को कब, कहाँ और किसने लिखा था। इसका क़रीब क़रीब प्रत्येक अंश खो गया है। यह भी उन्हीं का अनुमान है कि यह कविता लेखन-कला के आविष्कार के पहले बनाई गई होगी—जो मुखाग्र सुनाई और गाई जाती थी। इस पेश्तर गानेवाले अच्छी तरह याद कर लेते थे और अपने लड़कों को सिखला जाते थे। इसका अनुमान करना कठिन नहीं है कि यह कविता किस श्रेणी की होती होगी। इस तरह की कविता के खो जाने का अन्य देशवालों को दुख है, और हम क्या कहें जिन्होंने ख़ुद ही साहित्य के अमूल्य रत्न खो दिये हैं। ग्रीस देश के महाकाव्य 'इलियड' और 'ओडसी' हैं। इनके रचयिता होमर कहलाते हैं। यह पता नहीं लगता है कि होमर का कब जन्म हुआ था और उनका जन्मस्थान कहाँ था। शायद होमर के दिन बहुत दुख में कटे थे। उनके सम्बन्ध में अँगरेज़ी के एक कवि ने लिखा है कि आज सात शहर मरे हुए होमर को अपना कहते हैं, जिनमें ज़िन्दा होमर

ने भीख माँगी थी। हमारे देश में ऐसी कोई मिसाल नहीं है कि किसी प्रतिभाशाली कवि को ऐसी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी हों। अस्तु। हिरोडोटस (इनका समय सन् ईसवी के पाँच शताब्दी पहले बतलाया जाता है) ने कहा था कि होमर का समय उनसे चार सौ वर्ष पहले होगा। बस? अपनी गणना के अनुसार नहीं, और लोगों की गणना के अनुसार हमारे साहित्य के पूर्ण विकास का वह समय था जब अन्य देशवालों को 'श्रीगणेशाय नमः' करने में शताब्दियों की देर थी। उनका समय संसार के साहित्य-सिन्धु में एक छोटा-सा बूँद है। बहुतों का यह कहना है कि होमर का महाकाव्य अकेले उसका लिखा हुआ नहीं है, क्योंकि बहुतों को यह सन्देह है कि होमर के समय लेखनकला उस देशवालों को नहीं मालूम थी और यह सम्भव नहीं है कि इतने बड़े आकार की कविता बिना लिखे रची जा सकती हो। यह तो बहुतों का कहना है कि 'इलियड' और 'ओडसी' में बहुत-सी पुरानी कविता भी सम्मिलित है। चाहे जो हो, यह विवादरहित है कि इस महाकाव्य का प्रभाव पश्चिमीय देशों के साहित्य पर बहुत अधिक पड़ा। रोम देशवाले ग्रीस देश के लेखकों के ढङ्ग पर लिखने की चेष्टा पहले करते थे। यह हाल सन् ईसवी के पहले १७० से २३६ वर्षों तक रहा। १५० वर्ष पश्चात् उस समय के वर्जिल ने एक कविता लिखी थी, जो कविताकला की दृष्टि से आदरणीय समझी जाती है। परन्तु खुद रचयिता उससे इतना असन्तुष्ट था कि अपनी मृत्यु के समय उसने यह इच्छा प्रकट की थी कि वह जला दी जाय। परन्तु बादशाह अगस्टस ने (जिसने अपने नाम पर अगस्त महीने का नाम रक्खा था) उसका जलाना रोक दिया था।

प्राचीन भाषाओं में अँगरेज़ी लेखकों के मतानुसार तीन बड़े महाकाव्य हैं—रामायण, महाभारत और शाहनामा। उन्होंने पहला नाम महाभारत का लिया है। वे अभी तक यह निश्चित नहीं कर पाये हैं कि इन दोनों में कौन पहले लिखा गया था। उनका अब भी यही संदेह है कि महाभारत पहले लिखा गया होगा। हम इसी बात के लिए कृतज्ञ हैं कि उन लोगों ने इन दोनों को महाकाव्य मान लिया, नहीं तो कोई क्या कर लेता यदि इनके लिए भी कुछ-का-कुछ बक जाते।

अभी तक कोई एक पंक्ति भी नहीं मिली, जिसमें अपने देश की तरह यह बतलाया गया होता कि महाकाव्य का विषय क्या होना चाहिए। उनका केवल यही कहना है कि कविता विवरण-विषयक और आकार में बड़ी हो। यह हम लोगों के लिए समझना कठिन है कि महाकाव्य की रचना बिना लिखे हुए की जा सकती है, और यह भी समझना कठिन है कि गानेवाले के गीतों का स्थान महाकाव्य में हो सकता है। यह कहा जाता है कि 'इलियड' और 'ओडेसी' की भाषा में चरित्र के चित्रण करने में, विचारों और भावों में अन्तर है, यद्यपि रचयिता दोनों का एक ही है। हमारे यहाँ की किसी कविता में चाहे वह महाकाव्य हो या 'लघु' काव्य हो, यह दोष नहीं है।

अब यह देखना चाहिए कि प्रोफ़ेसर मैक्नील डिक्सन का क्या मत है। आप अर्वाचीन लेखक हैं। आपने इस विषय को आधुनिक दृष्टि से देखा होगा! आपने अपनी पुस्तक की भूमिका में यह प्रश्न उठाया है कि महाकाव्य किसे कह सकते हैं। अरिस्टाटिल का कहना है कि आकार इतना होना चाहिए कि समस्त काव्य एक दिन में पढ़ा जा सके। एक दूसरे का कहना है कि महाकाव्य में केवल एक वर्ष की घटनाओं का वर्णन हो। एक ने लिखा है कि वही महाकाव्य है जिसमें 'इलियड' के ढङ्ग की कविता हो। प्रोफ़ेसर डिक्सन कुछ निश्चित न कर पाये कि किस ढंग की कविता महाकाव्य कहला सकती है। उन्होंने केवल अनेक कवियों और लेखकों के मत प्रकट कर दिये। अब यह प्रश्न उठता है कि महाकाव्य का चरितनायक कैसा हो। अरिस्टाटिल का कहना है कि उसे या तो अवगुण-रहित या दुष्ट होना चाहिए। टैसो का कहना है कि महाकाव्य के चरितनायक को सुकृती होना चाहिए। ड्रायडेन का कहना है कि यह आवश्यक नहीं है कि चरितनायक अवगुण-रहित हो। वर्जिल का कहना है कि उस चरितनायक से जिसने साम्राज्य की स्थापना की हो वह चरितनायक अच्छा है जिसने कोई धर्म चलाया



ग्राम-पाठशाला

[श्रीयुत श्रीनारायण चतुर्वेदी के सौजन्य से

हो। एक का मत है कि महाकाव्य में देवताओं का वर्णन कदापि आवश्यक नहीं है। विशप हर्ड ने कहा है कि कविता की गूढ़तत्त्व और जादूगरी नींव है, और किसी किसी का यह भी कहना है कि प्रेत आदि का वर्णन कविता को अधिक मनोहारी बना देता है। वाल्टेर ने ट्रिस्लो के सम्बन्ध में कहा है कि यह ठीक था कि वह होमर का उपासक था, परन्तु यह उसका बड़ा दोष था कि वह उसका प्रतिरूप बनना चाहता था, क्योंकि प्रतिरूप बनने में अधिक कला-कौशल की आवश्यकता है जितना कि लोग प्रायः समझते हैं कि बहुत अच्छी तरह से भाव प्रकट किया गया है। कविता के सम्बन्ध में नहीं, एक दूसरे सम्बन्ध में एक अँगरेज़ लेखक ने लिखा है कि प्रतिरूपता सच्ची ख़ुशामद है। अस्तु, विषय न तय हो पाया कि महाकाव्य का क्या होना चाहिए। फिर यह कहकर टाल दिया गया कि हर एक कला में उदाहरणों की अपेक्षा नियमों की अधिकता है।

विदेशी विद्वानों के मतानुसार पहले गीतकाव्य था, और उनका यह कहना है कि उन्हीं से प्राचीन महाकाव्य रचा गया था। महाकाव्य की सुन्दरता का कारण वे यह बतलाते हैं कि गीतों में अनेक आदमियों के अनेक भाव होते हैं और उन्हीं को एक अच्छा कवि अपनी भाषा और कविता के द्वारा जीवित कर देता है। हम भारतवासियों का यह दृष्टिकोण नहीं है। यह कहीं से भी पता नहीं चलता है कि रामायण या महाभारत की नींव प्राचीन गीतों पर है। क्या वह भी कोई कविता है, जैसी अपने यहाँ की एक कहावत है, 'कहाँ की ईंट कहाँ का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा'। जिस कविता में मौलिकता नहीं है उसे कविता कहने में हिचक मालूम होती है।

प्रोफ़ेसर डिक्सन का कहना है कि राष्ट्रीय कविता सच्चा महाकाव्य है, और यह तब ही रची जा सकती है जब राष्ट्र इसका इच्छुक होता है। इसमें सन्देह नहीं है कि राष्ट्रीय कविता अत्यन्त आकर्षक होती है, उसका उद्देश आदरणीय होता है, उसमें ओज होता है, उसमें दुख होता है और उसमें दर्द होता है, परन्तु उस दृष्टि से जिस दृष्टि से हम इस देशवाले महाकाव्य को देखते हैं वह बात राष्ट्रीय कविता में नहीं पाई जाती है। यदि अँगरेज़ों की ही दृष्टि से देखा जाय तो महाकाव्य का आकार बड़ा होना चाहिए। ऐसी राष्ट्रीय कविता को कौन पढ़ेगा या सुनेगा? १६१६ में जब राष्ट्रीय कांग्रेस की बैठक लखनऊ में हुई थी तब भी प्रथानुसार बन्देमातरम् का गान हुआ था। मेरे पास एक महाशय खड़े हुए थे। आप घबरा गये और कहने लगे कि इससे क्या फ़ायदा है। जब चार-छः मिनट भी एक तरफ़ दिमाग़ नहीं रह सकता है तब राष्ट्रीय महाकाव्य किसके पढ़ने या सुनाने के काम आ सकता है। अपने देश के महाकाव्यों के देखने से मालूम होता है कि इनकी कला राष्ट्रीय कविता से पृथक् है। यह तो कुछ निश्चित-सा मालूम होता है कि महाकाव्य में युद्ध का वर्णन हो, परन्तु क़िस्से और कहानियों और गीतों पर किसी महाकाव्य का निर्धारित होना समझ में नहीं आता है। रामायण, महाभारत और शाहनामा—इन तीनों में से कोई भी पुराने गीतों पर अवलम्बित नहीं है। मिस्टर चैडविक ने लिखा है कि वीरकाव्य के चार दर्जे होते हैं—(१) वीरता के समय के बादशाहों के दरबारों की कविता, (२) महाकाव्य या वर्णात्मक कविता, (३) आठवीं और उसके बादवाली शताब्दियों की सर्वप्रिय कविता, (४) बारहवीं और उसके बादवाली शताब्दियों की जर्मनी की कविता जिसमें वीरता के विषय होते थे और जिसे फिर वहाँ के बड़े आदमी पसन्द करने लगे थे। यह भी महाकाव्य का निर्णायक नहीं है।

प्रोफ़ेसर डिक्सन की पुस्तक में एक परिच्छेद 'अकृत्रिम महाकाव्य' पर है। ब्योउल्फ़ ने प्राचीन समय में अँगरेज़ी-साहित्य का एक हज़ार वर्षों का इतिहास लिखा है। वह भी महाकाव्य समझ लिया गया है। कविता आकार में बड़ी होगी। सन्देह यह होता है कि अन्य देशवालों ने 'महा' शब्द का मौलिक अर्थ बड़ा मान लिया और जो कविता आकार में बड़ी हुई उसे महाकाव्य कहने लगे। अगर महाकाव्य का यही चिह्न है तो इस देश के बहुत-से उपन्यास महाकाव्यों की सूची में आ सकते हैं। आल्हा की

तो कोई बात ही नहीं है. यद्यपि वह अत्युक्ति का प्रतिरूप समझा जाता है।

उपर्युक्त प्रोफ़ेसर की पुस्तक का चतुर्थ परिच्छेद 'आदि अँगरेज़ी वीरकाव्य' है। उसी परिच्छेद में लिखा है कि विर्टबोल्ड ने इस प्रकार वीरता की व्याख्या की है—'आत्मा दृढ़ हो, हृदय साहसिक हो, बल की क्षीणता के साथ साहस और भी बढ़े। अच्छा भाव है। इस परिच्छेद के विषय में अधिक लिखना अनावश्यक है। इस कविता को भी वे लोग महाकाव्य कहते हैं। अँगरेज़ों के मतानुसार आख्यायिका का भी स्थान महाकाव्य में है। चासर की गणना महाकाव्य के लेखकों में है। यद्यपि इस लेख से कोई सम्बन्ध नहीं है, तदपि चासर की कविता का एक पद उद्धृत करना अनुचित न होगा, जो अब अँगरेज़ी में एक कहावत हो गई है। वह पद यह है, "To maken vertu of necessittee" यह प्राचीन अँगरेज़ी है। आधुनिक अँगरेज़ी में यह यों लिखा जाता है, "To make virtue of necessity." इसका भावार्थ है—आवश्यकतानुसार साधुशीलता। इतिहास को भी वे लोग महाकाव्य का एक विषय समझते हैं। एक ने कहा कि महाकाव्य पद्य और इतिहास में परस्पर मिलाप है। प्रथम वर्गीय महाकाव्यों में मिल्टन का 'पैराडाइज़ लास्ट' का नाम है। पुस्तक लिखी भी खूब है। उसके ख़िलाफ़ अब यह कहा जाता है कि उसका चरितनायक शैतान है। प्राचीन समय के विद्वानों का यह भी तो कहना था कि चरितनायक या तो महात्मा हो या दुष्ट हो। मिल्टन ने दुष्ट को चुना—शैतान से अधिक दुष्ट चरितनायक कहाँ मिलता? मिल्टन की भी कविता का एक पद अब एक विख्यात कहावत हो गई है—"Not to know me argues yourselves unknown." देवताओं को सम्बोधन करते हुए शैतान ने कहा था—मुझे न जानना इस बात का प्रमाण है कि तुम लोग स्वयं अपरिचित हो। सर वाल्टर स्काट कहा करते थे कि मेरे उद्योग करने पर भी मेरी कविता का चरितनायक कोई दुष्ट ही हो जाता है। किसी दुष्ट के मुँह से बहुत-सी ऐसी बातें कहलाई जा सकती हैं जो महात्मा के मुँह से नहीं कहला मिलेंगी। मिल्टन की कविता में शैतान ने ठीक ही कहा है। यह सम्भव है कि देवताओं को चाहे कोई न जाने, पर शैतान को न जानना असम्भव है।

यद्यपि प्रोफ़ेसर डिक्सन से हम सहमत नहीं हैं जो उन्होंने महाकाव्य के विषय में लिखा है, तथापि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्वतन्त्र राय रखने और उसे पूर्ण स्वतन्त्रता से प्रकट करने का अधिकार है। पुस्तक बड़ी खोज और योग्यता से लिखी गई है और केवल पढ़ने के ही नहीं, अध्ययन के योग्य है। इस ढंग की कोई भी पुस्तक हमारे साहित्य में नहीं है, जिसमें कविता की कला का क्रमशः इतिहास हो। ऐसी पुस्तक से यह पता चलता है कि किस तरह भावों का विकास होता गया और भाषा का स्वरूप कब कैसा था तथा उसमें, कैसे परिवर्तन हुए। हमारे देश में ऐसी पुस्तक लिखने के योग्य विद्वानों का अभाव नहीं है, केवल उनका ध्यान इस ओर आकर्षित करना है।

अब ज़रा यह देखा जाय कि ग्रीसदेशवालों का महाकाव्य किस ढंग का है, जिनके लिए कहा जाता है कि उन्हीं के नमूनों पर और देशवालों ने अपने अपने महाकाव्यों की रचना की है। उस देशवालों का यह अनुमान है कि उनके यहाँ होमर के पहले भी कवि थे, जिन्होंने भाषा का स्वरसंक्रम किया था और महाकाव्य के ढंग की छोटी कवितायें लिखी थीं और उनकी कविता षट्पदी होती थी। यद्यपि यह कहा जाता है कि उन कवियों की कविता से होमर को बड़ी सहायता मिली, तथापि उनकी कवितायें लुप्त हो गईं। बहुतों का यह अनुमान है कि उनकी स्थिति केवल नाम में है। इसका पता चलता है कि एक पौराणिक कवि जिसका नाम पैम्फ़स था और जिसके लिए पासेनियस ने लिखा है कि उसने इरास (Eros) पर कविता लिखी थी। यह इरास कौन था, इस पर दो-चार शब्द कह देना असम्बन्ध न होगा। इरास ग्रीस देश का एक पौराणिक प्रेम का देवता है। यह बहुत बली और कामी कहलाता है। यह ऐफ़्रोडाइट (शुक्र) का लड़का है। यह चुलबुले लड़के के वेष में चित्रित किया जाता है, जिसके हाथ में धनुष-बाण और जलती हुई एक मशाल है और किसी किसी

तसवीर में जो अंधा भी दिखलाया गया है। इनके विवरण और निरूपण से मालूम ही हो गया होगा कि यह कौन है—यह कामदेव है। यह भी आपकी प्रशंसा में लिखा है कि आप देवताओं को सताया करते थे। वहाँ के देवता होंगे सीधे-सादे। आपकी आदत नहीं छूटी और यहाँ भगवान् शङ्कर जी के साथ भी वही बर्ताव किया—तीसरा नेत्र खुला और आप भस्म हो गये। आपके अन्धे होने के ही कारण यह कहावत प्रचलित हुई कि—'प्रेम अन्धा होता है। इरास से अँगरेज़ी में इरोटिक (erotic) शब्द बना जिसका अर्थ कामविकार है। इनके बाप के नाम से अँगरेज़ी के aphrodisiac शब्द का निर्माण हुआ। इसका अर्थ ओषधियाँ हैं, जो कामकारी इच्छायें उत्पन्न करती हैं। अस्तु, 'इलियड' और 'ओडसी' में कामविकार के विषय पर बहुत लिखा गया है। अन्य देश की कविताओं में, चाहे वह महाकाव्य हो या किसी और तरह का काव्य, लज्जा को तिलाञ्जलि दे दी जाती है। एक नमूना देखिए। ज़ियस और हेरा के बीच में एक दफ़ा वाद-विवाद हो रहा था कि आलिङ्गन से पुरुष या स्त्री में से किसको अधिक आनन्द आता है। इन दोनों ने एक तीसरे से प्रश्न किया। उत्तर यह मिला कि साथ सोने में पुरुष को १/१० आनन्द प्राप्त होता है और स्त्री को केवल उसका दशांश। एक दूसरे का मत है कि स्त्री को सुख ९/१० और पुरुष को १/१० प्राप्त होता है। हमारे देश में ब्याह में गाई जानेवाली गालियों का विषय क़रीब क़रीब यही होता है।

अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि हम लोग किसे महाकाव्य कहते हैं और किसे अन्य देशवाले महाकाव्य समझते हैं। हमारे यहाँ नियम है और उनके यहाँ कोई नियम नहीं है। कहा जाता है कि नियमों के बन्धन कवियों के पैर में बेड़ियों का काम देते हैं। पर वाह रे हिन्दुस्तानियो, पैरों में बेड़ियाँ होते हुए भी इस मैदान में यह दौड़ लगाई कि खुले पैरवाले नज़दीक भी न फटक पाये।*

* Professor W. Macneilia Dixon की पुस्तक English Epic Poetry & Heroic Poetry से मुझे बड़ी सहायता मिली है जिसके लिए मैं आभारी हूँ।

प्रदीप

लेखक, कुंवर हरिश्चन्द्रदेव वर्म्मा 'चातक' कविरत्न

त्रयतापानल से दग्ध प्राण-
होता न विश्व जब परित्राण.
दिखलाने को सौहार्द्रभाव—
तब क्या जलने से किया चाव!

है वास मिला प्रिय के समीप,
क्या इसी लिए अब हे प्रदीप?
जलकर तप करते हो प्रचण्ड,
सामीप्य रहे प्रिय का अखण्ड।

फैला करके उज्ज्वल प्रकाश—
करते हो तम का वंश नाश,
क्या लगा इसी से हाय श्राप?
जलते जो यों चुपचाप आप?

प्रेमी ने निज कर से सँभाल—
प्रज्वलित किया है स्नेह डाल।
क्या उसका यह उपकार मान,
जलकर प्रकाश करते प्रदान?

काली कोयल को मधुर राग?
कण्टकमय फूलों को पराग?
उज्ज्वल प्रदीप को ज्वलित आग?
विधि का भी है कैसा विभाग?

"जीवन-प्रदीप की ज्योति दीन—
उगले कुकर्म कज्जल मलीन।
सोचो! समझो! कर लो विचार"
कहता प्रदीप यह बार बार!

भूसी की ग्राम्य शिक्षा-समिति और उसका सेंट्रल ट्रेनिंग स्कूल

लेखक, श्रीयुत कृष्णप्यारेलाल, एम० ए०

हमारे देश में ग्रामीण शिक्षा की जो शोचनीय दशा है वह तो सर्वसाधारण को विदित ही है, किन्तु उसका एक पहलू ऐसा है जिसकी ओर प्रायः सुधारकों तथा शिक्षा-प्रेमियों का ध्यान कम जाता है। वह है शिक्षकों की शिक्षा। एक तो हमारे ग्रामों में पाठशालाओं की संख्या ही न्यून है, दूसरे उपयुक्त शिक्षकों के न होने से उनमें दी जानेवाली शिक्षा पूर्णतया लाभदायक नहीं होती। इसका कुफल यह होता है कि बालकों तथा उनके अभिभावकों का रहा-सहा उत्साह भी जाता रहता है और वे शिक्षा की ओर से उदासीन हो जाते हैं।

ग्रामीण शिक्षा की ओर से देश के उदासीन होने का एक विशेष कारण है। उसके लिए दिये हुए धनिकों के धन से उतनी ख्याति नहीं प्राप्त हो सकती जितनी कि नागरिक पाठशालाओं को देने से होती है। इसलिए ग्रामीण शिक्षा के लिए जनता से विशेष सहायता नहीं मिली। अधिकांश शिक्षित लोग नगरों में रहते हैं और उन्हें देहातों में काम करने का अवकाश नहीं मिलता। वे वहाँ की आवश्यकताओं का भी ठीक तरह से अनुभव नहीं करते। इसलिए ग्रामीण शिक्षा के संचालन में तरह तरह की कठिनाइयाँ पड़ती हैं। किन्तु देश की अधिकांश जनता देहातों ही में रहती है। जब तक वह शिक्षित नहीं होती तब तक न तो देश का उद्धार ही हो सकता है और न हम संसार में गर्व के साथ अपना मस्तक ही ऊँचा कर सकते हैं। इसलिए शिक्षा-प्रेमियों का ध्यान अब



[श्रीयुत ए० एच० मैकेंज़ी, डाइरेक्टर आफ़ पब्लिक इंस्ट्रक्शन शिलान्यास-संस्कार कर रहे हैं।]



श्रीयुत एच० आर० हैरप एम० ए०, आई० ई० एस०
डाइरेक्टर आफ़ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन,
संयुक्तप्रान्त आगरा व अवध।



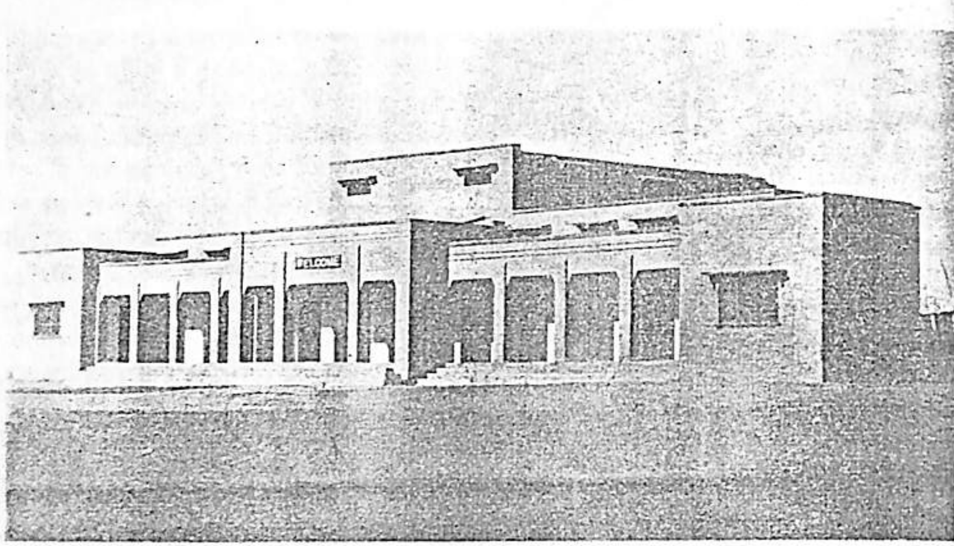
[हाल का एक दृश्य।]

देहात में शिक्षा फैलाने की ओर विशेष रूप से जाने लगा है।

इलाहाबाद-जिले की शिक्षा-सम्बन्धी आवश्यकताओं के कारण जुलाई सन् १९३२ ईसवी में पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी ने कतिपय शिक्षा-प्रेमियों की सहायता से इलाहाबाद में ग्राम्य शिक्षा-समिति (Rural Education Society) की स्थापना की। यह समिति नियमानुसार रजिस्टर्ड हो चुकी है। इसके प्रधान श्री कुमारचन्द्र भट्टाचार्य, प्रिंसिपल ट्रेनिङ्ग कालेज, आगरा, और उपप्रधान श्री भैरवनाथ झा, प्रिंसिपल गवर्नमेंट कालेज, मुरादाबाद हैं। मंत्री का कार्य दारागंज, इलाहाबाद, के मेडिकल आफ़िसर डाक्टर व्रजविहारीलाल बी० एस-सी०, एम-बी०, बी-एस० कर रहे हैं। इसकी कार्यकारिणी समिति में पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी, इन्स्पेक्टर आव स्कूल्स, फ़ैज़ाबाद; श्री मक़बूल अहमद, अध्यापक ट्रेनिङ्ग कालेज, इलाहाबाद; श्रीयुत हरिकेशव घोष, इंडियन प्रेस; आदि गण्य-मान्य शिक्षा-प्रेमी सज्जन हैं। समिति ने इलाहाबाद के सन्निकट प्रसिद्ध तथा प्राचीन भूसी ग्राम को केन्द्र निश्चित करके वहीं पर अपना कार्य आरंभ कर दिया है।

इलाहाबाद जिले में ट्रेनिंग पाये हुए शिक्षकों की संख्या अति ही न्यून है। इस कारण समिति ने पहले यहीं कार्य करना उचित समझा। इनके उपयुक्त ट्रेनिंग के लिए समिति ने प्रान्तीय शिक्षा-विभाग की स्वीकृति से भूसी में एक सेंट्रल ट्रेनिंग स्कूल स्थापित किया।

जुलाई १९३३ से स्कूल ने प्राइमरी पाठशालाओं



[सेंट्रल ट्रेनिंग स्कूल, झूसी]

के लिए उत्तम कोटि के शिक्षकों का निर्माणकार्य प्रारम्भ कर दिया। प्रथम वर्ष तो विद्यार्थी-शिक्षक केवल इलाहाबाद से ही लिये गये, किन्तु द्वितीय तथा तृतीय (अर्थात् वर्तमान) वर्षों में अन्य जिलों के विद्यार्थी-शिक्षकों को भी स्थान देना अनिवार्य हो गया। इस प्रकार इस वर्ष स्कूल में इलाहाबाद के ३२ तथा बाहर के ४—कुल मिलाकर ३६—विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

स्कूल में काम करने के लिए जो शिक्षक नियुक्त किये गये हैं वे भी सब उच्च कोटि के हैं। यह सब केवल इसी उद्देश से किया गया है कि जिससे यहाँ से निकले हुए शिक्षक उच्च कोटि के हों और गाँवों में नवीन जीवन का संचार कर सकें। इस ध्येय की पूर्ति के लिए स्कूल में शिक्षा-विभाग-द्वारा नियत पाठ्यक्रम के अतिरिक्त अनेक अन्य विषयों की भी शिक्षा दी जाती है।

शिक्षकों का दृष्टिकोण विस्तृत बनाने के लिए उन्हें साहित्यावलोकन के ढंग सिखाये जाते हैं तथा इस ओर उनकी रुचि जाग्रत करके परिष्कृत की जाती है। इसके लिए उन्हें पत्र-पत्रिकाओं तथा उत्तमोत्तम पुस्तकों के अवलोकन की सुविधायें प्रदान की गई हैं।

ग्राम्य जीवन को सुमधुर बनाने के लिए शिक्षक जो जो कार्य कर सकते हैं वे सब उन्हें यहाँ सिखाये जाते हैं तथा उनका यथासम्भव अभ्यास कराया जाता है। उदाहरणार्थ, विद्यार्थियों को खेल खिलाने के ढंग, उनको सफ़ाई से रहने की विधियाँ, उनके गृह-जीवन को अधिक सुखमय बनाने की तरकीबें, खाली समय को उचित रीति से व्यय करने के उपाय उन्हें सिखाये जाते हैं।

मानसिक शिक्षा के साथ विद्यार्थियों की शारीरिक शिक्षा पर भी यथोचित ध्यान दिया जाता है। सरकारी पाठ्यक्रम की निर्द्धारित व्यायाम-प्रणाली के अतिरिक्त विद्यार्थियों को देशी व्यायाम और योगिक आसनों की भी शिक्षा दी जाती है जिससे



[श्रीयुत एच० आर० हैरप तथा श्रीमती हैरप का स्कूल के स्काउटों-द्वारा स्वागत।]

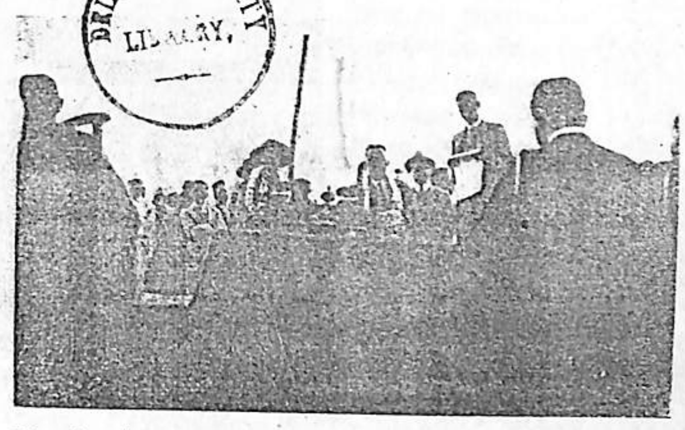
वे दोनों ही प्रणालियों के व्यायामों से परिचित हो जायँ।

अवकाश के समय में विद्यार्थी रामायण, गीता इत्यादि का पाठ करके सर्वसाधारण को सुनाते हैं तथा समय समय पर विशेष उत्सव भी करते हैं। नाटक, खेल, स्काउटिंग भी अकसर होते रहते हैं। भारत-प्रसिद्ध माघ-मेले के अवसर पर यहाँ के विद्यार्थी अमूल्य सेवा कर चुके हैं और प्रतिवर्ष करते हैं।

इसके अतिरिक्त टाट बुनाई, जिल्दसाज़ी, डलिया बनाना, खाट बिनना इत्यादि ग्रामोपयोगी कार्य भी उन्हें सिखा दिये जाते हैं, जिनके द्वारा वे अपने विद्यार्थियों को स्वावलम्बी बनाने का प्रयत्न कर सकते हैं।

पाठशाला-भवन का उद्घाटन हमारे प्रान्त के सर्वप्रिय डाइरेक्टर महोदय, श्रीयुत एच० आर० हैरप ने विगत तीस नवम्बर को किया। उस अवसर पर प्रयाग तथा प्रान्त के बहुत-से शिक्षा-प्रेमी तथा गण्य-मान्य सज्जन उपस्थित थे। शिक्षा पानेवाले अध्यापकों एवं स्कूल के स्काउटों ने श्रीयुत और श्रीमती हैरप का स्वागत किया। समिति के उप-प्रधान श्री भैरवनाथ झा ने समिति की ओर से उनका स्वागत करते हुए अभिनन्दन-पत्र पढ़ा। उसमें उन्होंने कहा—

"यह स्थान (झूसी) आधुनिक इलाहाबाद के जन्म से बहुत पहले ही गौरवशाली हो चुका था। गुप्तकाल में यह अपनी समृद्धि की चरम-सीमा पर पहुँच गया था, और यह गुप्त-साम्राज्य का एक महत्त्वपूर्ण मोर्चा समझा जाता था। यहाँ

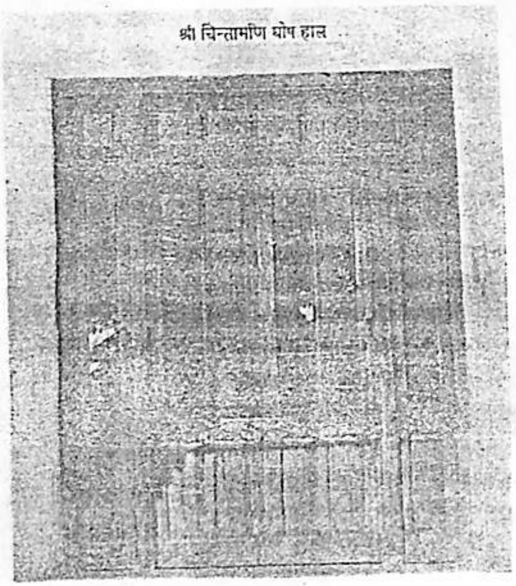


[श्रीयुत हैरप को दिये जानेवाले अभिनन्दनपत्र को श्रीयुत बी० एन० झा पढ़ रहे हैं।]

मे थोड़ी ही दूर पर समुद्रकूप स्थित है जो उस राजसूय यज्ञ का स्मारक है जिसे सम्राट् समुद्रगुप्त ने अपनी दक्षिणावर्त की विजय के उपलक्ष में किया था। किन्तु आज की भूसी केवल एक गाँव रह गई है। उसकी सुन्दरता और श्री नष्ट हो चुकी है—केवल उसका पुण्यतोया गंगा माता का नैकट्य बच रहा है।

"इस स्थान पर आपके स्वागत करने में जो हमें हर्ष है उसका एक कारण और भी है। यह समिति ग्राम्य शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रही है—और यह विषय आपको परम प्रिय है। इस प्रान्त में अभी तक आपके समान जनता की शिक्षा की ओर ध्यान देनेवाला कोई डाइरेक्टर नहीं हुआ। पिछले दस-बारह वर्षों से हम आपके दृढ़ व्यक्तित्व का लाभदायक और स्फूर्तिजनक प्रभाव इस प्रान्त की देशी शिक्षा-प्रणाली पर देख रहे हैं। हम यह भली भाँति जानते हैं कि आपको इस देश के बच्चों से कितनी हार्दिक और गहरी सहानुभूति है और आप इस देश की जनता के उत्थान के लिए कितने चिंतित हैं। आपने देशी भाषा के स्कूलों में कृषि, लकड़ी के काम, ग्रामोपयोगी शिक्षा आदि लाभदायक विषयों का समावेश कर उन्हें अधिक व्यावहारिक बना दिया है तथा प्रारम्भिक स्कूलों में खेल-द्वारा शिक्षा देने की विविध प्रणालियों का प्रचार करके उनकी उपयोगिता बढ़ा दी है।

"देशी भाषा के स्कूलों के अध्यापकों की शिक्षा की ओर आपका सदैव ही विशेष ध्यान रहा है। यह ठीक भी है, क्योंकि सुयोग्य अध्यापकों के बिना अज्ञान और निरक्षरता के विरुद्ध सफल युद्ध नहीं किया जा सकता—हाँ, स्कूलों की संख्या चाहे भले ही बढ़ा दी जाय। इस विषय में आपकी तत्परता और रुचि का यह स्कूल जीता-जागता और मूर्तिमान उदाहरण है। आपके सतत उत्साहप्रदान, पथ-प्रदर्शन तथा सहायता के बिना इस स्कूल का जन्म असंभव था। आपने इस स्कूल के लिए जो कुछ किया है उसे हम सदैव कृतज्ञतापूर्वक स्मरण रक्खेंगे।"



[श्री चिन्तामणि घोष हाल का द्वार।]

THE CENTRAL TRAINING SCHOOL JHUSI
THE BUILDING WAS OPENED BY
H. R. HARROP ESQ., M.A., I.E.S.,
DIRECTOR OF PUBLIC INSTRUCTION, U. P.
NOV. 30, 1935
ENGINEER N. K. AGARWAL, A.M.I.C.E.

मुख्य द्वार के दोनों ओर शिलान्यास और उद्घाटन के उपलक्ष में संगमर्मर पर ये दोनों लेख खुदे हैं।

THIS FOUNDATION STONE
OF
THE CENTRAL TRAINING SCHOOL, JHUSI
WAS LAID BY
A. H. MACKENZIE ESQ.,
M.A., C.S.I., C.I.E., I.E.S., M.L.C.,
DIRECTOR OF PUBLIC INSTRUCTION, U. P.
ON 7TH FEBRUARY, 1934

इस अभिनन्दन के बाद समिति के प्रधान श्री कुमारचन्द्र भट्टाचार्य ने समिति की रिपोर्ट पढ़ी। उसमें उन्होंने बतलाया कि इस स्कूल के बनाने में 'इंडियन प्रेस' के अधिकारियों ने कितनी सहायता


[श्रीयुत कुमारचन्द्र भट्टाचार्य, समिति के प्रधान।]

की है। उन्होंने कहा कि हम 'इंडियन प्रेस' के स्वामी श्री हरिकेशव घोष और उनके भाइयों के अत्यन्त आभारी हैं। उन्होंने इस स्कूल के विशाल 'हाल' (मुख्य भवन) को अपने पूज्य पिता श्रीयुत चिन्तामणि घोष की पवित्र स्मृति में बनवा दिया है। यह बड़ा ही सुन्दर हुआ, क्योंकि श्रीयुत चिन्तामणि बाबू प्रयाग के विशिष्ट और सम्माननीय नागरिक ही न थे, किन्तु उन्होंने देशी शिक्षा और देशी भाषा के साहित्य—विशेष कर हिन्दी-साहित्य—की अपूर्व और अतुलनीय सेवा की है। उन्होंने हिन्दी-भाषा की जो सेवा की है उसकी कीर्ति अक्षय है। 'सरस्वती' को जन्म देकर तथा सैकड़ों ऐसे ग्रन्थों को निकालकर जिन पर हिन्दी-संसार को यथार्थ गौरव है वे अपना अपूर्व यश छोड़ गये हैं। उच्च कोटि के स्कूली साहित्य के निर्माण करने में उन्होंने जो सहायता दी है वह इस प्रान्त के शिक्षा के इतिहासज्ञ भली भाँति जानते हैं। इन्हीं हिन्दी-प्रेमी तथा स्कूली साहित्य के सेवक श्रीयुत चिन्तामणि घोष की स्मृति में देशी पाठशालाओं के अध्यापकों के शिक्षण के लिए इस स्कूल के मुख्य भवन का आयोजन बड़ा ही सुन्दर और उचित हुआ है। इस भवन का नाम 'श्री चिन्तामणि घोष हाल' रखा गया है। इसमें उनकी एक श्वेत मूर्ति स्थापित है और दीवारों पर भारत के प्रसिद्ध शिक्षा-प्रेमियों—जैसे महामना मालवीय जी, गोपालकृष्ण गोखले, सर सैयद अहमद आदि के चित्र टँगे हैं तथा उसमें भिन्न-भिन्न युगों की पाठशालाओं के चित्रों का भी संग्रह किया गया है। इसमें प्रायः छः सौ व्यक्तियों के बैठने का स्थान है। पाठशाला-कार्य के अतिरिक्त यह भवन अन्य उपयोगी कार्यों—जैसे शिक्षा-सम्बन्धी व्याख्यानों, हरिकीर्तनों, कथाओं आदि—के लिए भी मिल सकता है।

श्रीयुत हैरप ने अपने व्याख्यान में समिति के कार्य की बड़ी प्रशंसा की। वे स्कूल का भवन देख कर बहुत प्रसन्न हुए। यह पहला ही अवसर था जब डाइरेक्टर ने इस प्रकार के भवन का उद्घाटन किया था। उन्होंने भारत की उन्नति में देशी शिक्षा के महत्त्व पर जोर दिया।

अभी यह स्कूल अपनी शैशवावस्था में है और अन्य संस्थाओं की भाँति आर्थिक कठिनाइयों से मुठभेड़ कर रहा है किन्तु अब यह आशा होने लगी है कि ज्यों ज्यों यह उन्नति करता जायगा लोग इसकी ओर अधिक ध्यान देकर इसको सहायता पहुँचायेंगे और कुछ ही समय में जैसा कि इसके संस्थापकों का विचार है यह अपने ढंग की एक अद्वितीय संस्था हो जायगा। आशा है कि यहाँ से निकल कर सुयोग्य अध्यापकगण देश और राष्ट्र के निर्माण में हाथ बटावेंगे और अज्ञान तथा निरक्षरता पर विजय पाकर देश को इन दोनों राक्षसों से मुक्त करने में सहायक होंगे।

सामयिक साहित्य

दक्षिण-भारत में हिन्दी-प्रचार

इस वर्ष दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार सभा के स्नातकों को दीक्षान्त भाषण देने के लिए पण्डित सुन्दरलाल जी निमन्त्रित किये गये थे। इस सिलसिले में आपने दक्षिण का दौरा किया और वहाँ किस तेज़ी से हिन्दी-प्रचार हो रहा है इसकी ओर भी आपका ध्यान गया। इस सम्बन्ध में आपने एक वक्तव्य प्रकाशित कराया है जिसका अंश कुछ यह है—

उपाधि वितरणोत्सव के बाद १-१-३६ से १७-१-३६ तक मैंने तेनाली, गुंटूर, बेजवाडा, मसुलिपटाम, पलूर, राजमण्ड्री और काकिनाडा आदि आन्ध्र के सात प्रधान हिन्दी-प्रचार केन्द्रों का कार्य देखा। कर्नाटक के मैसूर और बैंगलोर केन्द्रों में भी गया। हर कहीं मैंने देखा कि लोगों ने हिन्दी के प्रति कैसा आश्चर्य-जनक प्रेम बढ़ाया है। लड़के-लड़कियों से और यहाँ तक कि सयानी देवियों से भी कई जगह मैंने ज़बानी नज़्में सुनीं। हिन्दी नाटक भी देखे। मुझे यह तअज्जुब-सा मालूम हुआ कि ज़्यादातर नज़्म सुनानेवाले और नट बिलकुल सही, हिन्दी के शब्दों का उच्चारण करते हैं। बहुत-से तो बिलकुल उत्तर भारतीयों की ध्वनि में बोलते हैं। कहीं कहीं मेरे भाषण का प्रान्तीय भाषाओं में उल्था किया गया। मगर मैंने देखा कि जमातों में बड़ा हिस्सा तर्जुमा के पेश्तर ही मेरा हिन्दी भाषण समझ लेता था।

क्या कांग्रेसवाले क्या जस्टिसवाले क्या लिबरल और क्या लायलिस्ट सब विचार के लोगों द्वारा क़रीब क़रीब हर कहीं राष्ट्रभाषा हिन्दी-प्रचार आन्दोलन का स्वागत किया जा रहा है। ख़ास कर देवियों में हिन्दी-प्रचार आन्दोलन अधिक प्रचलित दिखाई देता है।

आंध्रदेश में क़रीब २५० केन्द्रों में हिन्दी सिखाई जाती है। इनमें कुछ तो दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार सभा के अधीन हैं और कुछ स्वतन्त्र केन्द्र हैं। इन केन्द्रों में प्रतिदिन हिन्दी सीखनेवालों की कुल तादाद १० हज़ार के ऊपर है। यह बड़े मार्के का काम है जिसके लिए कोई भी संस्था गर्व कर सकती है और वह भी ऐसे प्रान्त में जिसकी भाषा भारत में मधुरतम होने का तथा अगर उसके साहित्य का हिन्दी में तर्जुमा किया जाय तो हिन्दी की प्रभा और प्रतियोगिता को भी बढ़ाने का गर्व करने में सहज अधिकारी हो सकता है। यह बात ज़ाहिर है और दक्षिण के लोगों से अधिकाधिक महसूस भी की जाती है कि हिन्दी का प्रचार प्रान्तीय भाषाओं और साहित्यों की तरक्क़ी को ज़ोर देने में सहायक होगा। कई स्थानों में मैंने देखा कि प्रान्तीय भाषाओं के सिद्धहस्त लेखक राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी के हिमायती हैं।

मैसूर और बैंगलोर में, मुझे इस बात की ख़ुशी है कि मैंने देखा रियासत के अधिकारी हिन्दुस्तानी आन्दोलन की तरफ़ पूरी हमदर्दी दिखाते हैं। मैसूर के दीवान सर मिरज़ा इसमैल इस आन्दोलन की ओर सच्ची सहानुभूति रखते हैं और हर तरह से इसकी मदद करने को राज़ी हैं। इस मज़मून पर जिन जिन मुलाज़िमों से बातें करने का मुझे मौक़ा मिला है मेरा यह तजरबा है।

ख़ुशी की बात है कि हिन्दी-प्रचार-सभा जिस भाषा का प्रचार करने की कोशिश कर रही है वह न संस्कृत मिश्रित है और न वह फ़ारसी के लफ़्ज़ों से भरी है। वह आदर्श हिन्दुस्तानी है।

मेरे लिए यह संतोष की बात है कि सभा ने मद्रास कारपोरेशन से माम्बलम में एक ख़ाली ज़मीन रियायती दर में हासिल कर ली है और वहाँ मय छात्रावास के एक कालिज, एक दफ़्तर और प्रेस के लिए मकान बनवाने का निश्चय भी कर लिया है। सहायतार्थ सभा के प्रवर्तक श्री के० भाष्यम् जी बी० ए०, बी० एल० की तरफ़ से जनता से एक अपील भी की जा रही है। मेरा विश्वास है कि केवल दक्षिण के लोग ही नहीं बल्कि भारत की राष्ट्रभाषा के प्रचार में दिलचस्पी लेनेवाले उत्तर के लोग भी भरसक सहायता करेंगे।

नगरों का सुधार-कार्य्य

शहर में रहनेवाले लोगों के स्वास्थ्य के लिए यह आवश्यक है कि पुराने नगरों का नये सिरे से निर्माण हो। इसी दृष्टि से कानपुर, लखनऊ और इलाहाबाद में इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट क़ायम हुए हैं। इन तीनों ट्रस्टों की जाँच के लिए सरकार ने एक कमेटी क़ायम की थी जिसकी रिपोर्ट अब प्रकाशित हो गई है और उसमें इनके कार्य्य की प्रशंसा की गई है। यों भी देखने से तीनों शहर पहले की अपेक्षा बहुत कुछ खुले, साफ़ और सुन्दर दिखाई पड़ने लगे हैं। परन्तु सुधार के पहले जो लोग रद्दी मकानों में रहते थे उनकी स्थिति में बहुत सुधार नहीं हुआ। और यह तब तक सम्भव भी नहीं हो सकता जब तक ये ट्रस्ट अपने हानि-लाभ का बहुत विचार न करके ख़ास तौर से उन लोगों को नये मकान बनाने में सहायता दें जो अर्थाभाव के कारण रद्दी मकानों में रह रहे हैं। 'भारत' ने इस रिपोर्ट पर एक अग्रलेख लिखते हुए इन ट्रस्टों का ध्यान इस ओर भी आकर्षित किया है जो इस प्रकार है—

किसी नगर के वास्तविक और स्थायी सुधार के लिए यह आवश्यक है कि नगर के ऐसे नागरिकों को, जो अपनी निर्धनता या अज्ञान के कारण स्वास्थ्यकर और सुधरे हुए मकान बनवाने में असमर्थ रहें, सहायता दी जाय। उदाहरण के लिए कानपुर एक औद्योगिक नगर है, जिसमें कितने ही मज़दूरों के लिए अपने रहने को स्थान की ज़रूरत होती है। इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट को चाहिए कि म्युनिसिपल बोर्ड का सहयोग प्राप्त करके मज़दूरों के अस्वास्थ्यकर मकानों को तुड़वा कर सस्ते और स्वास्थ्यकर मकानों की व्यवस्था करने में सहायता करे। इसी प्रकार अन्य आधुनिक नगरों में भी निम्न मध्यम श्रेणी के गृहस्थों के सामने स्वास्थ्यकर मकानों की समस्या कठिन होती जा रही है। इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट इन लोगों को अपनी नई स्कीमों में ज़मीन के छोटे छोटे टुकड़े कम दाम पर देकर तथा नक़शा इत्यादि तैयार कराने में सहायता देकर घने बसे हुए निर्धन मुहल्लों की बुराइयों को बहुत कुछ कम कर सकते हैं। इस प्रकार के कार्य में ट्रस्टों को अन्य लाभपूर्ण कार्यों की अपेक्षा कुछ हानि अवश्य होगी, पर ऐसा करके वे अपना सबसे अधिक लाभपूर्ण कार्य कर सकेंगे। अन्य दिशाओं में इम्प्रूवमेंट ट्रस्टों को जो लाभ रहेगा, उसका कुछ भाग वे यदि इस मद में ख़र्च करेंगे तो उचित ही होगा। इसी प्रकार इम्प्रूवमेंट ट्रस्टों को अपनी स्कीम पूरी करने के लिए जिन लोगों के मकानों को कम दाम पर ख़रीद कर नष्ट कर देना पड़ता है उनके लिए नई स्कीमों में उन्हें विशेष प्रबन्ध करना चाहिए, जैसी कि कमेटी ने भी सलाह दी है। कमेटी ने कहा है कि जिन लोगों को मकान नष्ट करने के लिए हरजाना दिया जाता है, उसमें वृद्धि करना उचित नहीं होगा। हमारे सामने इस समय हरजाना किस हिसाब से दिया जाता है उसके आँकड़े मौजूद नहीं हैं, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि ट्रस्टों को अपनी नई स्कीमों में बिना हानि उठाये हुए नागरिकों के प्रति अधिक सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। अच्छा हो यदि मकान बनाने के लिए नई ज़मीन के टुकड़े देते समय इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट ऐसे नागरिकों को ज़मीन के मूल्य में कुछ प्रतिशत कमी का लाभ भी उठाने दे। यदि ऐसा किया गया तो जिन लोगों को ट्रस्ट की स्कीमों के कारण हानि उठानी पड़ती है, उन्हें अवश्य ही कुछ न कुछ सन्तोष हो जायगा। कहा नहीं जा सकता कि कमेटी के आगे इस आशय का कोई प्रस्ताव रखा गया था या नहीं। कमेटी

ने हरजाना पानेवाले नागरिकों के प्रति सहानुभूति अवश्य प्रकट की है, किन्तु सूखी सहानुभूति से हानि उठानेवालों के आँसू पुँछेंगे, इसमें सन्देह ही है।

लखनऊ और कानपुर के इम्प्रूवमेंट ट्रस्टों ने निम्न श्रेणी के अस्वास्थ्यकर मकानों के सुधार का काम बहुत ही कम किया है, जिसकी आवश्यकता हम ऊपर बता चुके हैं। कानपुर में शिशुओं की जो भारी मृत्यु-संख्या है, इसका मुख्य कारण वहाँ स्वास्थ्यप्रद मकानों का अभाव बतलाया जाता है। अनुमान किया गया है कि इस कार्य में ट्रस्ट को ८ लाख रु० खर्च करने पड़ेंगे और ४ लाख रु० की आय होगी। इसके लिए कमेटी ने सिफ़ारिश की है कि या तो घाटे को पूरा करने के लिए म्यूनीसिपल बोर्ड आधी रक़म दे और या नज़ूल ज़मीन से जो आय उसे होती है उसे ट्रस्ट के सुपुर्द कर दे। नज़ूल की आय ट्रस्टों के सुपुर्द करने की सिफ़ारिश कमेटी ने तीनों नगरों के सम्बन्ध में की है। इसके सिवाय कमेटी ने यह भी कहा है कि म्यूनीसिपल बोर्डों को तीनों नगरों में इम्प्रूवमेंट ट्रस्टों से अधिक निकट का सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए, जो कि ट्रस्टों के काम को देखते हुए वाञ्छनीय ही नहीं वरन आवश्यक है।

धर्म के नाम पर अधःपतन

अभी हाल में काशी में एक सनातनधर्म-सम्मेलन हुआ था जिसमें उन सब बातों का समर्थन किया गया था जिसे अब अधिकांश लोग सामाजिक दोष समझने लगे हैं। उदाहरण के लिए दुधमुँहे बच्चे-बच्चियों के विवाह का विरोध भी नास्तिकों का कार्य्य घोषित किया गया और यह सब हुआ उस सभा में जिसके सभापति स्वयं जगद्गुरु श्री शंकराचार्य्य थे। जब ऐसे विद्वान् भी समाज-सुधार के नाम पर एक क़दम भी आगे रखने से इनकार कर दें तब वास्तव में यही कहना पड़ेगा कि भारत की उन्नति के दिन दूर हैं। इस सम्मेलन के प्रस्तावों पर खेद प्रकट करते हुए 'आज' ने उपर्युक्त शीर्षक से एक अग्रलेख प्रकाशित किया है जिसका एक विचारपूर्ण अंश यह है—

रवाजों की ग़ुलामी करते करते और अंधविश्वासों तथा मानसिक दासता के कारण हम अपने पतन को पतन भी नहीं समझते। यही नहीं, अपितु उन सब बातों को जो हमारी जड़ता की द्योतिका तथा प्रोत्साहिका हैं, धर्म का अंग और परार्थ सिद्धि का उपाय समझते हैं। ईश्वरप्रदत्त बुद्धि से काम न लेना, कूपमंडूकत्व का आश्रय ग्रहण करना तथा आँख मूँदकर संसार की गति-विधि की उपेक्षा करते हुए तोते के समान कुछ रटे हुए वाक्यों को दुहराते जाना बुद्धिमानी नहीं है। आधुनिक जगत् की परिवर्तित स्थिति को स्वीकार न करना और कालप्रवाह के वेग को अनुपयुक्त तथा जर्जर रूढ़ियों के बल पर रोकने की चेष्टा करना टिड्डियों के पैर उठाकर आकाश का गिरना रोकने के समान है। यह दास-मनोवृत्ति और अंधविश्वास न समाज के लिए कल्याणप्रद है और न उस धर्म के लिए लाभदायक है जिसकी रक्षा करने का दम भरा जाता है। भारत के प्राचीन ऋषि-मुनियों ने समय समय पर परिवर्तित अवस्था के अनुकूल सामाजिक नियमों में परिवर्तन किये हैं। इसका प्रमाण वे विभिन्न स्मृतियाँ हैं जो विभिन्न व्यवस्था का विधान करती हैं। फिर कोई कारण नहीं है कि आज की अवस्था के अनुसार परिवर्तन न हो। सनातन धर्म, परिवर्तन की शिक्षा देता है न कि अंधविश्वासों और रूढ़ियों की पूजा की।

× × × ×

अशिक्षितों और निरक्षरों की कौन कहे, ऐसे लोग भी जिन्होंने बड़े बड़े ग्रन्थों को कण्ठस्थ कर रखा है, इसी प्रकार का व्यवहार करते दिखाई देते हैं। काशी ऐसे पवित्र तीर्थ में और जगद्गुरु शंकराचार्य के महान् पद पर आसीन स्वामी भारती-कृष्ण के समान प्रकांड पंडित की अध्यक्षता में हुए एक 'संमेलन' ने जो निश्चय किये हैं वे हमारे देश और हमारे समाज के पतन की पराकाष्ठा पर प्रकाश डालते हैं। धर्म के नाम पर सुधारों का विरोध और प्रगतिगामी उपायों के अवलम्बन के मार्ग में काँटे बिछानेवाले 'धर्मात्मा' क्या समाज की इस दुर्दशा पर कभी विचार करने का कष्ट करेंगे?



महायुद्ध की आशंका

इस समय अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र की परिस्थिति अधिक भयावह हो गई है और लायड जार्ज जैसे धुरीण कूटनीतिज्ञ शीघ्र ही महायुद्ध के छिड़ने की आशंका से भयभीत हो उठे हैं। राष्ट्र-संघ तेल का प्रतिबन्ध लगाने का उपक्रम बड़ी सावधानी के साथ कर रहा है। इटली के मामले में अब ब्रिटेन और फ़्रांस एक मत हैं, वहाँ के प्रधान मंत्री मोशिये लावेल जो इटली से सहानुभूति रखते थे और जिनके फेर में आकर अँगरेज़-सरकार के वैदेशिक मंत्री सर सैमुएल होर ग़लत राह पर चले गये थे जिससे उन्हें लाचार होकर पद-त्याग करना पड़ा, अब अधिकारच्युत हो गये हैं, और फ़्रांस की जो नई सरकार संगठित हुई है वह इटली के मामले में अँगरेज़ सरकार से सहमत ही नहीं है, किन्तु उसने अपने भूमध्यसागर के जंगी बेड़े को भी तैयार होने का हुक्म दे दिया है। उधर ब्रिटेन को इटली के उस पर भूमध्यसागर में आक्रमण करने पर युगोस्लाविया, ज़ेचोस्लोवेकिया, रूमानिया, यूनान और टर्की से सहायता करने का पूरा आश्वासन मिल चुका है। इतने पर भी इटली के मुसोलिनी का गर्जन-तर्जन पूर्ववत् जारी है। लोगों का अनुमान है कि उसका जर्मनी के हिटलर से कोई-न-कोई गुप्त समझौता अवश्य है; और यदि ऐसा है और यदि इस दशा में राष्ट्र-संघ तेल की रोक करेगा और ब्रिटेन उसके लिए इटली का घेरा डालेगा तो योरप में युद्ध छिड़ जाने की पूरी सम्भावना है। और उसमें रूस, ब्रिटेन आदि राष्ट्रों की ओर से अस्त्र ग्रहण करेगा क्योंकि वह स्वयं फ़्रांस की तरह जर्मनी से डरता है। और फ़्रांस तथा रूस ही क्यों? उसके पड़ोस अन्य राष्ट्र भी जर्मनी से डरते हैं और यदि योरप के राष्ट्र उसे सशंक दृष्टि से देख रहे हैं तो वह अकारण नहीं है। उसके पास साढ़े पाँच लाख सेना हो गई है, अप-टु-डेट नया फ़ौजी जहाज़ी बेड़ा भी उसने तैयार कर लिया है और शक्तिशाली हवाई जहाज़ों का भी एक बड़ा जंगी बेड़ा उसके है ही। और यह सब सामग्री उस जर्मनी के पास है जो अब अपनी प्राकृतिक सीमा पश्चिम में डनकिर्क, पूर्व में रीगा, और दक्षिण में फ़्यूम तक मानता है, यही नहीं, जो अपने उपनिवेशों की भी माँग कर रहा है। उसके इस दृष्टिकोण से उसके सीमावर्ती नये-पुराने सभी राष्ट्र चौकन्ने रहते हैं तो यह उनके लिए स्वाभाविक ही है। इस प्रकार जान पड़ता है कि अबीसीनिया का यह युद्ध अन्त में संसार के लिए अभिशाप ही सिद्ध होगा।

परन्तु राष्ट्र-संघ के कर्णधार असाधारण क्षमता के व्यक्ति हैं और उन्होंने अब तक जिस धैर्य और सहिष्णुता का परिचय दिया है, यदि वे उसी आदर्श पर चलते रहे तो योरप में उक्त भीषण परिस्थिति नहीं उत्पन्न होने पावेगी। राष्ट्रसंघ इस विषम अवस्था को अवश्य सँभालेगा क्योंकि योरप की वर्तमान राजनैतिक स्थिति महायुद्ध के अनुकूल नहीं है। पिछले महायुद्ध के फल-स्वरूप जो नये राष्ट्र वहाँ अस्तित्व में आये हैं या मध्य योरप के जिन विजयी राज्यों की सीमाओं में वृद्धि हुई है वे अभी इतना तैयार नहीं हैं कि आनेवाले महायुद्ध में वे किसी ओर से भाग ले सकें। इसके सिवा वे अल्पसंख्यकों के षड्यंत्रों से त्रस्त हैं। पोलैंड में जर्मन, रूमानिया में जर्मन, ज़ेचोस्लोवेकिया में स्लोवाक, युगोस्लाविया में क्रोट आदि जातियाँ अपने को पराधीन समझती हैं और वे सब अपने अपने वर्ग के राज्यों में मिल जाना चाहती हैं या अपने अपने लिए अलग अलग आत्मशासन के अधिकार चाहती हैं ऐसी दशा में योरप में महायुद्ध कहाँ होगा और

यदि होगा तो किसके साथ होगा ? तब क्या महायुद्ध अकेले इटली के साथ लड़ा जायगा ? कुछ लोगों का अनुमान है कि इटली की जर्मनी से अभिसन्धि है और इटली के साथ आस्ट्रिया और हंगरी भी है। उधर जर्मनी का पोलंड, युगोस्लेविया एवं हंगरी से मैत्रीभाव है तो क्या ये सब राष्ट्र मिलकर ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, रूस आदि से युद्ध करेंगे ? ऐसी स्थिति को देखकर योरप के अति-सतर्क राजनीतिज्ञ महायुद्ध के छिड़ने की आशङ्का कर रहे हैं। सचमुच योरप में इस समय अशान्ति और असन्तोष काफ़ी मात्रा में विद्यमान है।

परन्तु योरप की अपेक्षा तो कहीं अधिक संकटपूर्ण अवस्था सुदूर प्राच्य की है, जहाँ जापान अपने बल के अभिमान में बराबर मनमानी करता जा रहा है। अपने प्रबल कुचक्र के द्वारा, कुछ दिन हुए, उसने उत्तर-चीन के दो प्रान्तों को चीन की राष्ट्रीय सरकार से स्वतंत्र करवा दिया है और उसी की प्रेरणा से अब भीतरी मंगोलिया ने भी एक मंगोल सरदार के नेतृत्व में स्वतंत्रता की घोषणा कर दी है। इस मंगोल सरदार को मंचूको की सरकार से सैनिक सहायता का वचन मिल चुका है। अतएव वहाँ की यह धींगाधींगी कम-से-कम एशिया के उस अंचल में भयावह स्थिति उत्पन्न किये बिना नहीं मानती। जापान चीन को धीरे-धीरे इस बहाने हड़पता जा रहा है कि वह चीन में न तो अपने विरुद्ध प्रचार होने देगा, न वर्गवादियों का वहाँ प्राधान्य स्थापित होने देगा। उसकी इन चालों से रूस बहुत भयभीत है। इसी से उसका जापान से मनोमालिन्य यहाँ तक बढ़ गया है कि सोवियट और मंचूको की सीमा पर उनके सैनिकों में मुठभेड़ भी होने लग गई है। क्या आश्चर्य कि किसी दिन इन दोनों शक्तिशाली देशों में भयानक युद्ध छिड़ जाय। कौन कह सकता है कि इनका वह युद्ध बाद को संसारव्यापी महायुद्ध में परिणत नहीं हो जायगा ?

पश्चिम और पूर्व में दोनों ओर इस समय ऐसी ही संकटपूर्ण स्थिति है।

इटली और अबीसीनिया

जिस समय इटली ने अबीसीनिया पर पूरी तैयारी के साथ चढ़ाई की थी उस समय यही समझा गया था कि अर्द्धसभ्य अबीसीनिया युद्ध के वैज्ञानिक उपकरणों से सज्जित योरप के इस प्रबल राष्ट्र के आगे कदापि न ठहर सकेगा। युद्ध के प्रारम्भ में इटली ने अपनी बार बार की जीतों से लोगों के उस अन्दाज़ का समर्थन ही किया था। पुष्ट और जिस द्रुत गति से इटली की सेनाओं ने अबीसीनिया के भीतर इरीट्रिया और इटालियन सुमाली-लैंड की ओर से घुसकर टैंक-द्वारा चढ़ाइयों से तथा हवाई जहाज़ों की बम-वर्षा से उसके प्रदेशों पर अधिकार करना शुरू कर दिया था उससे भी यही जान पड़ने लगा था कि कुछ ही दिनों में इटली की सेनायें अबीसीनिया की राजधानी अदिसअबाबा में जा पहुँचेंगी। परन्तु इधर जनवरी के अन्तिम सप्ताह में अबीसीनियावालों ने आगे बढ़कर इटली की सेनाओं से जो भीषण युद्ध जमकर किया है उस एक ही युद्ध में इटली की बुरी तरह हार हुई है और उसे पीछे लौटना पड़ा है और यह विजय उसे दोनों ओर के युद्ध-क्षेत्रों से प्राप्त हुई है। इस जीत से अबीसीनिया की सेनाओं का साहस बढ़ गया है और इटली के सैनिक हिम्मत छोड़ बैठे हैं। यह सच है कि अबीसीनियावाले वीर योधा हैं और अपने इस गुण के लिए वे एक ज़माने से प्रसिद्ध हैं। परन्तु उनकी यह वीरता आमने-सामने के युद्ध में ही कारगर हो सकती है, आधुनिक ढङ्ग के वैज्ञानिक युद्ध में उनकी वीरता नहीं काम दे सकती है। परन्तु उन्होंने इस बार वही कर दिखाया, जिसकी किसी को आशा नहीं थी; और अब तो वहाँ वर्षा भी शुरू हो गई, जिससे युद्ध का काम एक प्रकार से बन्द ही रहेगा। इसमें सन्देह नहीं है कि अबी-सीनिया के सम्राट् बड़े भाग्यशाली ही नहीं हैं, किन्तु बड़े व्यवहारकुशल तथा साधन-सम्पन्न भी हैं। प्रारम्भ में शान्त रहकर उन्होंने सारे संसार की सहानुभूति तो प्राप्त ही कर ली, उसके साथ ही सरलता से आवश्यक युद्ध-सामग्री भी एकत्र कर ली। इस बीच में जब इटली की सेनायें उनके देश के भीतर काफ़ी दूर तक घुस आईं तब उनकी सेनाओं ने उन पर ऐसा भीषण आक्रमण किया कि वह हारकर फिर वहीं को लौट गईं जहाँ से वे चली थीं। इस प्रकार अबीसीनिया के सम्राट् ने अपने देश की ही रक्षा नहीं की है, किन्तु इस विजय से उन्होंने अपने गौरव की भी वृद्धि की है। परन्तु इस एक विजय से ही इस युद्ध का निपटारा नहीं हो जायगा। यदि इस बीच में कोई दूसरी अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति नहीं उत्पन्न हो जायगी तो वर्षा-ऋतु के बाद इटली इस युद्ध को और भी अधिक भीषणता से प्रारम्भ करेगा। यह अबीसीनिया का दुर्भाग्य है कि वह एक साम्राज्यवादी राष्ट्र का इस समय आखेट बन गया है।

सीरिया में विद्रोह

तुर्की के महायुद्ध में हार जाने पर उसके कई प्रदेश उससे छीन लिये गये थे। उनमें से ईराक, पैलेस्टाइन और सीरिया के प्रदेशों को राष्ट्रसंघ ने अपने अधिकार में ले लिया था और ईराक और पैलेस्टाइन का शासन-भार ब्रिटेन को और सीरिया का फ़्रांस को सौंप दिया था। यह कहा गया था कि १० वर्ष के बाद ये प्रदेश स्वाधीन राज्य बना दिये जायँगे। इनमें से ईराक को स्वाधीनता दे दी गई है और स्वाधीन राज्य के रूप में वह राष्ट्रसंघ का सदस्य भी हो गया है। परन्तु पैलेस्टाइन और सीरिया को यह सौभाग्य अभी नहीं प्राप्त हुआ है, जिससे इन दोनों देशों के निवासी काफ़ी असन्तुष्ट हैं और वहाँ स्वाधीनता के लिए आन्दोलन भी होता रहता है। इसी सिलसिले में अभी हाल में सीरिया में एक भयानक विद्रोह हो गया है, जिसमें बड़ी खून-खराबी हुई है यद्यपि वहाँ की फ्रेंच सरकार ने अपने सैन्यबल से इस विद्रोह को शान्त कर दिया है, तथापि उसके दमन का प्रभाव अच्छा नहीं पड़ा है। यहाँ तक सीरियावालों की सहानुभूति दिखलाने के लिए पैलेस्टाइन के अरबों ने अपने यहाँ हड़ताल की है। यही नहीं, ईराकवालों ने सीरिया का पक्ष लेकर राष्ट्र-संघ में फ़्रांस के विरुद्ध शिकायत तक करने की घोषणा की है। इससे एशिया के उस अंचल की वास्तविक परिस्थिति का बहुत कुछ आभास मिल जाता है। यह तो स्पष्ट ही है कि सीरिया को वह स्वाधीनता नहीं प्रदान की जा रही है जिसके प्रदान करने का उसे वचन दिया गया था। यह भी प्रकट हुआ है कि वहाँ के राष्ट्रीय नेता या तो निर्वासित कर दिये गये हैं या वे अपने स्वत्वों की रक्षा करने का आन्दोलन नहीं करने पाते। यह भी उनकी शिकायत है कि उनके देश में बाहर से लाकर यहूदी बसाये जा रहे हैं और गत १५ वर्ष के शासन में उनका देश तबाह हो गया है। वास्तव में ये भयानक आरोप हैं। परन्तु इनकी सुनवाई होगी कहाँ ? जिस राष्ट्रसंघ की संरक्षा में वे रक्खे गये हैं वह तो फ़्रांस तथा ब्रिटेन के हाथों का खिलौना भर है।

पेरिस की मंत्रणा

स्वर्गीय सम्राट् जार्ज के देहावसान के कारण लन्दन में भिन्न-भिन्न देशों के राजपुरुष तथा उच्च राजकर्मचारी एकत्र हुए थे। वहाँ से लौटते समय उनमें से अधिकांश पेरिस गये थे, जहाँ उनकी एक महत्त्वपूर्ण मंत्रणा हुई। इनकी सभा में योरप के दस राज्यों के प्रतिनिधि उपस्थित हुए थे। इनकी मंत्रणा में क्या निश्चय हुआ है, यह तो अभी नहीं प्रकट हुआ है, परन्तु लोगों का अनुमान है कि किसी नई दलबन्दी की तैयारी का इसमें अवश्य सूत्रपात किया गया है। परन्तु इस सभा की बैठक के बाद आस्ट्रिया के सम्बन्ध में यह महत्त्व की बात प्रकट हुई है कि वह अपने पड़ोसी राज्यों की सलाह से अपने राजसिंहासन पर एक बार फिर अपने पुराने राजघराने को प्रतिष्ठित करेगा, इसके सिवा वह अपनी वर्तमान सीमाओं में हेर-फेर करने का भी उपक्रम नहीं करेगा। और यह एक ऐसी बात है जो उसके मित्र तथा सहभोगी हंगरी को स्वीकार नहीं है। देखना है, पेरिस की इस महत्त्वपूर्ण राजनैतिक मंत्रणा का योरप के भविष्य पर क्या प्रभाव पड़ता है।

सम्पादकीय नोट

भावी राष्ट्रपति और कांग्रेस

सत्याग्रह-आन्दोलन के स्थगित तथा महात्मा गान्धी के राजनीति के क्षेत्र से अलग हो जाने से कांग्रेस में एक प्रकार की शिथिलता आ गई थी, क्योंकि उसके जो कार्यकर्ता उसके पार्लियामेंटरी बोर्ड में नहीं शामिल हुए थे वे या तो आपस में लड़ने में व्यस्त थे या चुप होकर घर बैठ रहे थे। अतएव इधर जब से भावी कांग्रेस के अधिवेशन के सभापति पण्डित जवाहरलाल नेहरू चुने गये हैं तब से कांग्रेस के क्षेत्र में एकप्रकार की अभिनव आशा का सञ्चार हो गया है। कांग्रेस के २१ प्रान्तों में से १९ प्रान्तों ने उन्हें एक-मत से कांग्रेस के सभापतित्व के लिए मनोनीत किया है, जिससे प्रकट होता है कि जनता का उन पर कैसा विश्वास है। यही नहीं, लोग उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करने लगे हैं कि नेहरू जी के कांग्रेस की बागडोर अपने हाथों में लेने पर उसकी वर्तमान अव्यवस्था तथा अकर्मण्यता दूर हो जायगी और कांग्रेस अपने अनुरूप कोई महत्त्व का कार्य करने को फिर अग्रसर होगी।

इसमें सन्देह नहीं है कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू अपनी एकनिष्ठा तथा त्याग-भावना की बदौलत भारत के अन्यतम नेता हो गये हैं और क्या शत्रु, क्या मित्र, दोनों उनका समान रूप से आदर करते हैं। देश के प्रति उनका कितना गहरा अनुराग है, इसका उन्होंने बार-बार प्रमाण दिया है और यह भी उनकी उसी भावना का प्रति-फल है कि वे एक हारे हुए पक्ष में फिर से नवजीवन का सञ्चार करने को आगे आ रहे हैं और सो भी अपनी रुग्ण पत्नी को अति दूर जर्मनी में शय्यागत छोड़कर! किसी देश की संकटपूर्ण अवस्था का भारी भार एकाएक ग्रहण कर लेना सब किसी का काम भी नहीं है। अतएव इस अवसर पर कांग्रेस के नेतृत्व का भार नेहरू जी को सौंपने में देशवासियों ने अपनी सद्बुद्धि का खासा परिचय दिया है। आशा है, नेहरू जी के नेतृत्व में कांग्रेस पहले से भी अधिक व्यवस्थित होकर पूरी तेजस्विता के साथ अपने कर्तव्य का पालन करेगी। अब जब कांग्रेस ने अपनी उग्र नीति का त्याग कर दिया है और वह विशुद्ध रचनात्मक कार्य ही करना चाहती है तब उसे एक ऐसे नेता की ज़रूरत है जिस पर सभी दल श्रद्धा रखते हों। पण्डित जवाहरलाल नेहरू देश के ऐसे ही अन्यतम नेता हैं।

राजनैतिक दलबन्दी का एक उदाहरण

सन् १९३७ में नये शासन-विधान के अनुसार देश में कार्यारम्भ हो जायगा, अतएव देश के भिन्न-भिन्न राजनैतिक दलों में अभी से चञ्चलता शुरू हो गई है और वे अगले निर्वाचन में अपना अपना भाग लेने के लिए अपना संगठन करने में अपनी कार्यशीलता दिखलाने लगे हैं। इसी सिलसिले में हम यहाँ एक ऐसे दल का उल्लेख करते हैं जो बड़ा महत्त्वाकांक्षी जान पड़ता है। यह महाराष्ट्र देश का 'अब्राह्मण दल' है और यह अगले निर्वाचन में कांग्रेस-दल को हराकर देश की राजनीति में उसका स्थान ग्रहण करना चाहता है।

इस दल के संगठन की नई स्कीम तैयार हो गई है। यह दल अपना संगठन देशव्यापी करना चाहता है। नये आयोजन के अनुसार इसकी रचना तथा इसका उद्देश मदरास के अब्राह्मणदल के समान होगा। बम्बई-प्रान्त के भिन्न-भिन्न विचार के इस दल के कुछ नेता इसी सिलसिले में नासिक में अभी हाल में एकत्र हुए थे और प्रान्तीय अब्राह्मणदल के सभापति श्री नवले और जनरल सेक्रेटरी श्री आर० डी० शिन्दे से इस विषय पर उन्होंने परामर्श

किया था। इस बैठक में यह तय हुआ है कि तीन महीने के भीतर एक लाख सदस्य बनाये जायँ और प्रचार के लिए १० लाख रुपया एकत्र किया जाय। प्रचार-कार्य के लिए प्रचारकों की तत्सम्बन्धी शिक्षा की व्यवस्था की जाय और उन्हें वेतन भी दिया जाय। इस आन्दोलन के पुरस्कर्ताओं का विश्वास है कि वे अपने प्रयत्न में सफल-मनोरथ होंगे, क्योंकि देश की अधिकांश जनता 'अब्राह्मण' ही है। दल के अनेक नेताओं ने इस कार्य के लिए आर्थिक सहायता देने का वचन दिया है। इसकी स्कीम के स्वीकृत होते ही उसके अनुसार शीघ्र ही कार्य शुरू कर दिया जायगा! अभी न जाने, ऐसे ऐसे और कितने दल इस देश में संगठित हों!

कोयले का उद्यम

भारत की कोयले की खानों की दशा दिन-प्रति-दिन चिन्ताजनक होती जा रही है। अभी उस दिन झरिया की एक खान में भीषण धड़ाका हुआ था, जिसमें १५-२० आदमियों के घायल होने तथा ४-५ के मर जाने की खबर है। विशेषज्ञों का कहना है कि भारत में खानों की खुदाई का काम अत्यधिक त्रुटिपूर्ण है। झरिया में १३३ खानों से कोयला निकाला जाता है। कहा जाता है, इनमें से १२ खानों में आग लग गई है और उनके कुछ भाग बराबर जलते रहते हैं। सन् १८९८ से १९३६ तक यहाँ की खानों से ६० करोड़ टन कोयला निकाला जा चुका है, अतएव यहाँ की खानों की आग, बाढ़ आदि बातों का यही मतलब है कि यहाँ के कोयले के भाण्डार में कमी आ गई है और यदि यह बात सच है तो देश के उद्योग-धन्धों पर इसका बड़ा खराब प्रभाव पड़ेगा।

उदाहरण के लिए लोहे के धन्धे को ही लीजिए। भारत के कई भागों में कच्चा लोहा बहुतायत से मिलता है। अकेले बिहार-उड़ीसा के ही प्रदेश में ३ अरब टन कच्चा लोहा होगा। और एक टन कच्चा लोहा गलाने में १ टन कोयले की ज़रूरत पड़ती है। अतएव कम-से-कम ३ अरब टन कोयला अकेले बिहार-उड़ीसा के लोहे के धन्धे के लिए ही चाहिए। अन्दाज़ किया गया है कि

झरिया की खानों से अभी ३३ वर्ष तक कोयला इसी क्रम से बराबर निकलता रहेगा।

परन्तु उनकी खुदाई वर्तमान ढंग से होती रही और वे जलती गईं या उनमें पानी भरता गया या वे बैठती गईं जैसा कि इस समय उनका हाल है, तो इस धन्धे को भारी धक्का पहुँचेगा और यह बात राष्ट्र के लिए बड़ी अहितकर सिद्ध होगी। अतएव यह ज़रूरी है कि सरकार इस धन्धे की ओर ध्यान देकर खानों की खुदाई के काम को उन्नत ढंग से करावे तथा कोयले की खपत के मार्ग की बाधायें भी दूर कर दे। यह मेशीन का युग है और कोयला इस युग की एक महत्त्व की वस्तु है। ऐसी दशा में इस राष्ट्रीय सम्पत्ति की उचित रक्षा की सब तरह की व्यवस्था सरकार को करनी ही चाहिए। प्रसन्नता की बात है कि सरकार का ध्यान पहले से ही इस ओर है और अभी हाल में झरिया में जो भयंकर दुर्घटना हो गई है उसका भी उस पर काफ़ी प्रभाव पड़ा है। आशा है, सरकार अब इसका शीघ्र ही कोई उपयुक्त प्रबन्ध करके अपने कर्तव्य का पालन करेगी।

संयुक्त-प्रान्त के ज़िला-बोर्डों की रिपोर्ट

संयुक्त-प्रान्त के ज़िला-बोर्डों की गत १९३३-३४ ईसवी की रिपोर्ट हाल में प्रकाशित हुई है। इस रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि प्रान्त के समस्त ज़िला-बोर्डों को साल भर में १,९४,४२,४३५) की आय हुई और सबने मिलाकर १,८८,९१,९७३) व्यय किये। इस प्रकार ५,५१,४६२) की उन्हें बचत हुई। परन्तु प्रान्त भर में ग्यारह बोर्ड ऐसे भी हैं, जिन्होंने आय से व्यय अधिक कर दिया है। कुछ ज़िला-बोर्डों को अपना हिसाब-किताब बराबर करने या कुछ बचत दिखलाने के लिए सार्वजनिक हित के कितने ही कार्य रोक देने पड़े हैं। फ़र्रुखाबाद, जौनपुर और गाज़ीपुर के ज़िला-बोर्डों की आर्थिक स्थिति विशेष रूप से शोचनीय है, क्योंकि इन तीनों का व्यय आय से अधिक बढ़ गया।

ज़िला-बोर्डों की समस्त आय का ४१ प्रति सैकड़ा सहायता के रूप में सरकार से मिला है और ३८ प्रति

सैकड़ा लोकल रेट या अववाब से आया है, जो ज़मींदारों से सरकारी मालगुज़ारी के साथ वसूल किया गया है। इस प्रकार अपनी समस्त आय का ६६ प्रति सैकड़ा वसूल करने में ज़िला-बोर्डों को किसी प्रकार का व्यय नहीं करना पड़ा। शेष ३१ प्रति सैकड़ा वसूल करने में उनके सञ्चालकों को अपनी अपनी कारसाज़ी दिखानी पड़ी है। परन्तु जिन जिन मदों की वसूलयाबी उनके प्रबन्ध में हुई है, उनकी आमदनी और खर्च के आँकड़े मिलाकर देखने पर यह कारसाज़ी सफल न कही जा सकेगी। उदाहरण के लिए आमदनी के टैक्स को ही ले लीजिए। इस मद में प्रान्त के समस्त ज़िला-बोर्डों को कुल ५,६०,६६६) की आय हुई, जिनमें से १,५८,१७५) उन्हें वसूल करने में ही खर्च हुए। मतलब यह कि एक तिहाई से कुछ कम खर्च में निकल गया, दो तिहाई से कुछ अधिक की बचत हुई।

कितने ही ज़िला-बोर्ड साधारण स्थिति के दूकानदारों या किसी विशेष प्रकार के व्यवसाय की सहायता से खेती का घाटा पूरा करके निर्वाह करनेवाले काश्तकारों का गला दबाकर उनसे टैक्स तो वसूल कर लेते हैं, परन्तु उस टैक्स के वसूल करने में वे इतना व्यय कर देते हैं कि लोकहित के कार्यों में व्यय करने के लिए उनके पास उस मद की आय का बहुत थोड़ा अंश बच रहता है। हरदोई के ज़िला-बोर्ड को इस टैक्स के वसूल करने में जहाँ केवल १४ प्रति सैकड़ा व्यय करना पड़ा, वहाँ गोरखपुर के बोर्ड ने ७७ प्रति सैकड़ा व्यय कर दिया। परन्तु इस दिशा में इलाहाबाद का ज़िला-बोर्ड सबसे बढ़ चढ़ कर रहा, क्योंकि इस मद से उसे जो कुछ मिला, वह तो कर्मचारियों के वेतन और भत्ते में ही बँट गया, साथ ही कुछ पल्ले से भी देना पड़ा। बलिहारी है! चिराग़ के तले अँधेरा इसी को कहते हैं।

सदा की भाँति इस बार भी रिपोर्ट में इस बात की शिकायत की गई है कि अधिकांश ज़िला-बोर्ड अपना हिसाब-किताब नियमित ढंग से नहीं रखते। प्रान्त भर में केवल चौदह ज़िला-बोर्ड ऐसे हैं, जिनका हिसाब बिलकुल शुद्ध और नियमित पाया गया है। इनके अतिरिक्त और सभी बोर्डों के हिसाब-किताब में सुधार की आवश्यकता है। परन्तु आज़मगढ़ और फ़ैज़ाबाद का हिसाब-किताब बहुत ही असन्तोषजनक है।

रिपोर्ट में मवेशीख़ानों के प्रबन्ध की भी काफ़ी शिकायत की गई है और लिखा गया है कि अधिकारियों तथा ज़िला-बोर्ड के सदस्यों के समुचित ध्यान न देने के कारण मवेशीख़ानों की आमदनी बराबर कम होती जा रही है। ग़ाज़ीपुर और बलिया के ज़िला-बोर्डों को तो मवेशीख़ानों से जो कुछ आय हुई उससे अधिक उन्हें उनके प्रबन्ध में व्यय करना पड़ा। परन्तु यह शिकायत उचित नहीं है। मवेशीख़ाने तो इसलिए हैं कि लोग अपने जानवर खुला छोड़कर खेती को हानि न पहुँचावें। वे बोर्डों की आय के साधन नहीं माने जा सकते।

देहातियों की उन्नति तथा उनकी सुविधा के लिए ज़िला-बोर्ड जो कुछ प्रयत्न करते हैं उनमें से सबसे महत्त्व का कार्य है प्रारम्भिक शिक्षा का प्रचार। शिक्षा-प्रचार के अतिरिक्त ज़िला-बोर्डों का प्रायः और कोई भी ऐसा कार्य नहीं है जिससे सर्वसाधारण को समुचित लाभ पहुँचता हो। परन्तु खेद का विषय है कि हमारे प्रान्त के ज़िला-बोर्ड अपने स्कूलों के लिए इमारत तक बनवाने में समर्थ नहीं हैं। ऐसे कितने स्कूल हैं जो किराये के या दूसरों के दिये हुए मकानों में लगते हैं और कितने ही पेड़ों के नीचे ही लगा करते हैं। वर्षा और लू के समय भगवान् ही ऐसे स्कूलों के विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के रक्षक होते हैं।

जैसा कि रिपोर्ट में लिखा गया है ज़िला-बोर्डों के अधिकांश सदस्यों में अभी वह योग्यता नहीं आई है कि वे जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समुचित रूप से समझ सकें। ग्रामीण जनता के सौभाग्य से यदि कुछ सुयोग्य सदस्य उनमें पहुँच गये तो उन्हें पार्टीबन्दी के झगड़ों से ही अवकाश नहीं मिलता। उस दशा में वे बेचारे भला जनता की भलाई का उपाय कब और कैसे सोचें? सबसे बढ़कर दुःख की बात तो यह है कि ग्रामीणों की अनभिज्ञता, असावधानी तथा असमर्थता से लाभ उठाकर कितने ही ऐसे भी व्यक्ति ज़िला-बोर्डों के सदस्य बन बैठते हैं जो बोर्ड की कमिटी में उपस्थित होने तक का समय नहीं निकाल पाते। रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि बस्ती-ज़िला-बोर्ड के एक सदस्य तथा गोरखपुर-ज़िला-बोर्ड के दो सदस्यों ने साल भर में एक बार भी कमिटी में उपस्थित होने का कष्ट नहीं स्वीकार किया। इसी प्रकार जालौन के दो सदस्यों ने केवल एक दिन की कमिटी में हाज़िरी देकर पूरे साल भर के लिए छुट्टी ले ली। इसमें सन्देह नहीं है कि इस प्रकार के महानुभाव केवल अपनी शोभा के लिए ही ज़िला-बोर्ड के सदस्य बनने का प्रयत्न किया करते हैं और उनके प्रचण्ड प्रताप के सामने मस्तक झुकाकर वोट देने के लिए सभी को विवश होना पड़ता है। जनता में तो इतना साहस है नहीं कि वह मुँह खोलकर कह सके कि आप कृपा करके अवकाश ग्रहण कर लें और हमें कोई ऐसा क्रियाशील और अध्यवसायी प्रतिनिधि चुनने का अवसर दें, जो हमारी कठिनाइयों पर विचार करने तथा उन्हें बोर्ड में उपस्थित करने के लिए आवश्यक समय निकाल सके। सरकार भी उन्हें उचित परामर्श देने की आवश्यकता नहीं समझती। यह वास्तव में दुःख की बात है।

—ठाकुरदत्त मिश्र

लखनऊ की एक महत्त्वपूर्ण सभा

पिछले दिनों लखनऊ में भारत की मनुष्य-गणना-सम्बन्धी एक महत्त्वपूर्ण सभा हुई थी। इसका उद्घाटन प्रान्तीय सरकार के फ़ाइनेन्स मेम्बर मिस्टर जे० एम० क्ले ने किया था। इस सभा में लखनऊ-विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री श्रीयुत राधाकमल मुकर्जी ने अपने भाषण-द्वारा यह सिद्ध किया कि भारत की आबादी दिन-प्रति-दिन बढ़ती जाती है और यदि उसकी वृद्धि का यही क्रम जारी रहा तो शीघ्र ही उसकी संख्या ४० करोड़ हो जायगी। और भारत की भूमि ४४ करोड़ से अधिक जन-संख्या का भरण-पोषण नहीं कर सकती। और जब वर्तमान अवस्था में ही भारत अपनी वर्तमान आबादी का भरण-पोषण करने में असमर्थ है, यहाँ तक कि उसके १६.६ लाख आदमियों को भोजन ही नहीं मिलता, तब इस वृद्धिगत आबादी को भोजन देना वास्तव में एक कठिन प्रश्न है। प्रोफ़ेसर मुकर्जी ने अपनी विचार-धारा का मनुष्य-गणना के आँकड़े देकर सिद्ध किया तथा अन्य वक्ताओं ने भी उनके ही विचारों का पुष्ट प्रमाणों द्वारा समर्थन किया। परन्तु इन विद्वानों के विरुद्ध मदरास-यूनीवर्सिटी के प्रोफ़ेसर टामस का यह कहना है कि आबादी की वृद्धि को देखकर घबराना नहीं चाहिए। यदि २० वर्षों में भारत की आबादी में १०.६ फ़ी सदी की वृद्धि हुई है तो चिन्ता किस बात की? जब किसी देश की आबादी एक सीमा-विशेष तक बढ़ जाती है तब वह अपने आप घटने भी लगती है। प्रकृति का ऐसा ही नियम है। फिर भारत की भूमि अभी इस बढ़ती हुई आबादी को अपने भीतर खपा भी सकती है। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि देश की पैदावार बढ़ाई जाय, जिससे बढ़ती हुई आबादी का समुचित रूप से निर्वाह हो। प्रोफ़ेसर टामस की दलील उत्साहवर्द्धक है ज़रूर, परन्तु अधिक लोग प्रोफ़ेसर मुकर्जी के ही पक्ष में हैं। तथापि इन विद्वानों का यह प्रयत्न लोकोपयोगी है। आशा है, इस सभा के प्रयत्नों से आबादी की वृद्धि की समस्या से देशवासी अवगत ही नहीं होंगे, किन्तु उसके हल करने के लिए भी अग्रसर होंगे।

दहेज़-प्रथा का भयंकर परिणाम

काफ़ी समय बीता, बङ्गाल में स्नेहलता नाम की एक बालिका ने इसलिए आत्महत्या कर ली थी कि उसके पिता के पास धन ही न था कि वे दहेज़ देकर उसकी किसी उपयुक्त वर के साथ शादी करते। आज भी बङ्गाल में एक नहीं, एक साथ चार स्नेहलताओं ने उसी दहेज़ की बलिवेदी पर अपना बलिदान किया है। उक्त स्नेहलता ने जब आत्महत्या की थी तब उस घटना का सारे देश पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था और ऐसा समझ पड़ा था कि कम से कम बङ्गाली अपने समाज से इस दूषित प्रथा को अवश्य ही जड़ से खोद बहायेंगे। परन्तु ज्यों ज्यों समय बीतता गया, लोगों का क्षोभ भी दूर होता गया और दहेज़ की प्रथा पहले की जैसी बनी रही, यहाँ तक आज फिर उसी बङ्गाल में चार सगी बहनों को अफ़ीम खाकर एक साथ आत्मघात करना पड़ा, जिनमें संयोगवश एक

मरने से बच गई! और दहेज़ की बलिवेदी पर बलिदान होनेवाली इन लड़कियों का पिता सरकार के यहाँ ५५०) मासिक वेतन पर नौकर था, जिनका बड़ा भाई कलकत्ता हाईकोर्ट का भूतपूर्व जज रह चुका है। परन्तु उन महाशय के ११ पुत्रियाँ थीं, जिनमें से पाँच की शादियाँ करने में उनका घर-द्वार और पेंशन तक बिक चुकी थी। इस समय वे १२३) मासिक पेंशन पाते हैं, जो उनके कुटुम्ब के निर्वाह के लिए भी काफ़ी नहीं है। और जब वे इस प्रकार अपनी कन्याओं का विवाह करने में असमर्थ हो गये और समाज ने उनका बहिष्कार करने की धमकी दी तब अपने पिता की मानरक्षा करने के लिए उनकी प्यारी पुत्रियों को उक्त लोमहर्षण साधन का आश्रय लेना पड़ा! आश्चर्य तो यह है कि समाज के सुधारकों ने सिवा व्याख्यान झाड़ने के ऐसी प्रथाओं का उन्मूलन करने के लिए कभी कोई व्यावहारिक कार्य नहीं किया। क्या ही अच्छा होता कि इन कन्याओं के इस बलिदान को वे अब व्यर्थ न जाने दें और सरकार से अनुरोध कर वे जल्दी से जल्दी ऐसा कोई क़ानून पास करावें जिससे प्रत्यक्ष या प्रकारान्तर से दहेज़ लेना या देना अपराध समझा जाय। आशा है, असेम्बली के सदस्य इस अवसर को हाथ से नहीं जाने देंगे।

पेकिंग से दिल्ली

यात्रा के साधनों की सुलभता से साहसी यात्रियों के लिए दुर्गम स्थानों की यात्रायें बहुत आसान हो गई हैं। अभी हाल में सर एरिक टीचमैन पेकिंग से स्थल-मार्ग से दिल्ली आये हैं। उन्होंने अपनी इस कष्ट-साध्य यात्रा का 'ब्राडकास्ट' किया है, जो ज्ञातव्य तथा रोचक दोनों है। उसका सारांश इस प्रकार है—

इस स्थल-मार्ग से यात्रा करने में यात्री को सारी आवश्यक सामग्री अपने साथ रखनी चाहिए—गोबी की मरुभूमि पार करते समय तो अवश्य ही। पड़ाव डालने की सामग्री, खाने-पीने का सामान, मोटरकार के फालतू हिस्से पेट्रोल आदि जैसी वस्तुएँ उसके पास काफ़ी परिमाण में होनी चाहिए, क्योंकि मार्ग में केवल भेड़ को छोड़कर और कोई चीज़ नहीं मिलती। मरुभूमि में सड़कें नहीं हैं—केवल बालू के मैदानों में क़ाफ़िलों या ऊँटों का मार्ग मिलता है। मोटरगाड़ी से भी यात्रा करने पर कठिनाइयों का सामना करना ही पड़ता है, क्योंकि उसके पहिये प्रायः बालू में धुस जाते हैं। उस दशा में पहियों को खोद निकालने और गाड़ी के फिर चलने में घंटों लग जाते हैं। वहाँ की बढ़िया से बढ़िया सड़कों से होकर यात्रा करने में भी यात्री प्रतिदिन १०० मील से अधिक यात्रा नहीं कर सकता, और दूसरे मार्गों से तो वह प्रतिदिन लगभग २० मील से अधिक नहीं जा सकेगा। ऊँट १० मील से २० मील प्रतिदिन चलते हैं।

इस मार्ग में ईंधन बेशक अधिकता से मिलता है। इमली और मरुभूमि के पोपलर की लकड़ी सबसे अधिक मिलती है। भेड़ के सिवा कहीं कहीं भूले-भटके हिरन भी मिल जाते हैं। मार्ग के समानान्तर में चलने के कारण ये आसानी से मार लिये जाते हैं। गोबी की मरुभूमि सुन्दर और कुछ कुछ भयंकर है। किसी समय यह भूभाग धनधान्य से पूर्ण रहा होगा।

सर एरिक मरुभूमि से होकर सैकड़ों मील यात्रा कर चुकने पर चीनी तुर्किस्तान के 'हमी' नामक स्थान पर पहुँचे थे। यह स्थान बर्फ़ीले 'स्वर्गीय पर्वतों' पर स्थित है। यहाँ से वे तीन्स्तांग पर्वतमाला को पार कर सिन्कियांग की राजधानी उरुमची पहुँचे। यह अञ्चल उत्तरी मंगोलिया और सैबेरिया की तरह ठंडा है। कड़ाके के जाड़े के समय यहाँ थर्मामीटर का पारा ४०० तक आ जाता है। उरुमची के आस-पास शिकार के लिए तीतर और खरगोश बहुत मिलते हैं।

उरुमची से काशगर लगभग १,००० मील है। मोटर से १२-१३ दिन में यात्री पहुँचता है। चीनी तुर्किस्तान भी एक बड़ी विस्तृत मरुभूमि है। इधर-उधर इसमें 'ओसिस' हैं तथा यहाँ नदियाँ भी हैं, जो तीन्स्तांग-पर्वतमाला से निकली हैं। इस प्रदेश में तरबूज़, बिना बीज की किशमिश, अन्य सूखे मेवे तथा भोज्य पदार्थ बहुत ही स्वादिष्ट प्राप्त होते हैं।

सर एरिक पेकिंग से काशगर तक मोटर से आये। वहाँ से मोटर छूटा और उन्होंने चीनी पामीर का पहाड़ी मार्ग लिया। चीनी पामीर ११ से १३ हज़ार फ़ुट ऊँचा एक प्रकार का पठार है। यह बड़ा ठंडा है और यहाँ तूफ़ानी हवायें बराबर चलती रहती हैं। इसको पार कर वे उन ऊँचे पहाड़ों पर पहुँचे, जहाँ हिन्दूकुश, कराकोरम तथा दूसरी पर्वत-श्रेणियाँ एक-दूसरे से मिलती हैं। यही जगह 'एशिया की छत' कहलाती है, और यहीं भारत, चीन और रूस की सीमायें मिलती हैं। यहाँ से गिलगित जाने के मार्ग जाड़ों में बन्द रहते हैं। परन्तु सर एरिक को इस मार्ग में ठंड को छोड़कर और कोई ख़ास कष्ट नहीं हुआ। गिलगित से भारत के मैदान में पहुँचने के लिए उन्हें एक पर्वतश्रेणी पार करनी थी, जिसके दर्रे बर्फ़ पड़ने के कारण उस समय अगम्य थे, अतएव वे भारत-सरकार के हवाई जहाज़ से दिल्ली चले आये। हवाई-मार्ग से २॥ घंटे में वे दिल्ली पहुँचे, नहीं तो उनको साधारण मार्ग से दिल्ली पहुँचने में १६ दिन लगते।

ऐसे विकट मार्ग ऐसे ही यात्रियों के प्रयत्नों से किसी दिन सरल और सुगम हो जाते हैं।

टीकमगढ़ का वीर-वसन्तोत्सव

इस वर्ष यह टीकमगढ़ का प्रसिद्ध वसन्तोत्सव ४ तथा ५ फ़रवरी को धूमधाम से मनाया गया। ४ फ़रवरी को रावराजा रायबहादुर पंडित श्यामबिहारी मिश्र, एम० ए०, के सभापतित्व में 'कवि-सम्मेलन' हुआ। इसके बाद ललितपुर के पंडित पुरुषोत्तमनारायण चौबे, बी० ए०, एल-एल० बी०, के सभापतित्व में 'बुन्देलखंड-साहित्य-मंडल' की स्थापना का कार्य हुआ। इसका प्रस्ताव रावराजा जी ने उपस्थित किया, जिसका ओरछा-राज्य के मेजर पंडित विन्ध्येश्वरीप्रसाद जी पाण्डेय, चीफ़ मिनिस्टर, ने समर्थन तथा रिवेन्यू-मिनिस्टर मेजर सज्जनसिंह जी ने अनुमोदन किया। इस प्रकार इस नई साहित्यिक संस्था की स्थापना हुई। दूसरे दिन ५ फ़रवरी को 'बुन्देलखंड-साहित्य-मंडल' का कार्य समाप्त करने के बाद 'कवि-सम्मेलन' फिर प्रारम्भ हुआ, जिसमें श्रीमान् ओरछा-नरेश पधारे। अनेक साहित्य-रसिकों ने अपनी ललित रचनायें पढ़ीं।

अन्त में श्रीमान् ओरछा-नरेश ने प्रयाग-विश्वविद्यालय के श्रीयुत रामकुमार वर्मा, एम० ए०, को देवपुरस्कार की दो



[श्रीयुत रामकुमार वर्मा, एम० ए०]

हज़ार रुपये की थैली भेंट की। यह पुरस्कार इनकी 'चित्ररेखा' नाम की खड़ी बोली की रचना पर दिया गया है। इस सफलता के लिए हम वर्मा जी को बधाई देते हैं।

पुरस्कार-विजेता श्रीयुत वर्मा जी ने एक रोचक कविता पढ़ी थी। पाठकों के मनोरञ्जन के लिए उसे हम उद्धृत करते हैं—

यह बुंदेल-भूमि जो अपने ही बल से अभिमानी है,
जिसने अपनी कुल-मर्यादा जानी है पहचानी है।
वीरों ने तलवार धार से अपनी कही कहानी है,
छिपी तेज की आग वीर के मुख का ऐसा पानी है!
यह बुंदेल-भूमि जिसमें अपने गौरव का त्राण हुआ,
जिसके जीवन का प्रमाण ही जीवन का परिणाम हुआ।

यह मुख दृढ़ बत्तीस दुर्ग दंतों से ही निर्माण हुआ,
जहाँ वीर बरवीर मातृ-भू के गौरव का प्राण हुआ ॥
यहीं नवल पल्लव ने हिल कर यश की गीता गाई थी,
निर्झर में केशव की कविता लहर बनी लहराई थी ।
कवियों ने अपनी प्रतिभा की सामग्री सब पाई थी,
प्रकृति वसन्तोत्सव की थी वन कलियों में मुस्काई थी ॥
यहीं आपने हिन्दी को नवजीवन देकर स्पर्श किया,
देव स्वयं बन सिंह वीर ही × × में ही हर्ष किया ।
सभी राज्य-पतियों के सम्मुख स्थित नवीन आदर्श किया,
कविता की नवीन जागृति से जागृत भारतवर्ष किया ॥
काव्य-प्रशंसा करने से ही आप प्रशंसित हुए महान,
यद्यपि अपनी कीर्ति-श्रवण से आप तटस्थ रहे मतिमान ।
श्रद्धांजलि अर्पित है मेरी इस अवसर पर है श्रीमान,
इसी भाँति करते रहिएगा अपनी हिन्दी का सम्मान ॥

हिन्दी के पत्र

हिन्दी में अखबार का व्यवसाय अभी तक आय की दृष्टि से उतना लाभदायक नहीं सिद्ध हुआ है। हिन्दी के पत्र केवल पाठकों के बल पर चल नहीं सकते। इसके लिए विज्ञापनों की ज़रूरत है, जिनका हिन्दी के पत्रों के लिए आज भी अकाल है। यही मुख्य कारण है, जिससे हिन्दी के पत्र व्यावसायिक दृष्टि से अभी तक नहीं पनप सके और वे ज्यों-त्यों कर ही चल रहे हैं। उनको जीवित रखने के लिए उनके सञ्चालकों को घोर कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है।

इसमें सन्देह नहीं कि उपयोगिता की दृष्टि से हिन्दी के पत्रों को अपना विशेष महत्त्व प्राप्त है। हिन्दी-भाषियों में आज जो जागरण दृष्टिगोचर हो रहा है तथा उनके समाज में अभ्युदय की महत्त्वाकांक्षा का जो भाव काम कर रहा है उसके एकमात्र प्रेरक हिन्दी के ये दरिद्र पत्र ही हैं। दूर की जाने दीजिए, पिछले दिनों कांग्रेस का जो प्रचार हुआ है उसे देश के कोने कोने में पहुँचाने में हिन्दी के पत्र किसी से पीछे नहीं रहे। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी उनकी दशा दयनीय ही बनी हुई है।

परन्तु हिन्दी के पत्रों की उपर्युक्त महत्ता को, खेद की बात है, हिन्दी-भाषी विद्वत्समाज नहीं स्वीकार करता। उसकी लोक-सेवा को जानते हुए भी वह अँगरेज़ी के पत्रों को ही महत्त्व देता चला जा रहा है। यह सच है कि अँगरेज़ी के पत्रों से जनता का एक अति अल्प अंश ही लाभ उठा पाता है, तथापि तूती उन्हीं की बोल रही है और जो हिन्दी-पत्र जनता की हित-भावना के लिए अहर्निश मरते-मिटते रहते हैं उनकी कहीं कोई गिनती ही नहीं। इससे अधिक विडम्बना की और क्या बात हो सकती है?

ऐसी गिरी अवस्था में होते हुए भी हिन्दी-पत्रों ने अपना एक आदर्श स्थिर कर लिया है और उस पर डटे रहकर उन्होंने जो लोक-सेवा की है उसके लिए उन्हें अभिमान भी हो सकता है। परन्तु यह सब तब तक हीन ही समझा जायगा जब तक अँगरेज़ी के पत्रों की प्रतिपत्ति देश के उस विद्वत्समाज में बनी हुई है जो देश-भाषाओं को महत्त्व ही नहीं प्रदान करना चाहते, यद्यपि उनके उदार होने के लिए हिन्दी के पत्रकार एक युग से प्रतीक्षा कर रहे हैं। इन विदेशी भाषा के उपासकों की दया की कामना में उन्होंने अपने जीवन का एक बड़ा अंश बिता दिया है। परन्तु यदि वे जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करना चाहते हैं तो उन्हें अब इस प्रतीक्षा से छुट्टी लेकर अपने लिए एक नया मार्ग बनाना होगा।

यह तो प्रकट ही है कि हिन्दी-पत्रों का सर्वसाधारण में काफ़ी प्रवेश है, और अब ज्यों ज्यों जनता अधिकाधिक शिक्षित होती जा रही है, इनका भी उसी तारतम्य से प्रचार बढ़ता जा रहा है। परन्तु यह प्रचार तब अधिक स्थायी और लाभदायक भी सिद्ध होगा जब उसके लिए समुचित प्रयत्न किया जायगा।

भारत बहुत बड़ा देश है। अकेले हिन्दी-भाषियों की संख्या १३ करोड़ है और इतनी बड़ी जन-संख्या के लिए १३ हज़ार नहीं तो १३ सौ पत्र तो ज़रूर ही निकलने चाहिए। प्रायः ज़िले की जन-संख्या दस लाख के लगभग होती है। ऐसी जन-संख्या के ज़िले में किसी भी प्रगतिशील पत्र के लिए चार-पाँच हज़ार ग्राहक मिल जाना कठिन नहीं है। कठिन है तो पत्रकारों का अपना दृष्टिकोण ठीक करना।

इस समय भी हिन्दी-पत्रों का सञ्चालन अँगरेज़ी पत्रों के अनुकरण पर होता है और यह उनके लिए घातक सिद्ध हुआ है। अँगरेज़ी पत्र सार्वदेशिक मनोभाव को लेकर चलते हैं और इसी आदर्श पर चलकर हिन्दी-पत्र उनके आगे टहर नहीं पाते। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि अब हम अपना दृष्टिकोण बदलें। यदि हम चाहते हों कि हिन्दी में पत्रकार-कला की उन्नति हो और अधिक संख्या में अच्छे-अच्छे पत्र निकलें तो सरकार और कांग्रेस की तरह पत्र-सञ्चालकों को ग्रामों की ओर झुकना होगा। उन्हें अपने पत्र को एक विशेष भूभाग का पत्र बनाकर उस का सञ्चालन करना होगा। ऐसा स्वतंत्र जीवन ग्रहण करने पर ही हिन्दी के पत्रों का अभ्युदय हो सकेगा, अन्यथा वे आज की ही दशा में पड़े सड़ते रहेंगे।

पूर्व-जन्म का एक प्रत्यक्ष प्रमाण

दिल्ली की कुमारी शान्तिदेवी ने अपनी पूर्व-जन्म की कथा ही नहीं, पूर्व-जन्म के सम्बन्धियों आदि का पूरा पता बताकर एवं उन्हें पहचान कर हिन्दुओं के पूर्व जन्म-वाद का जो दृढ़ समर्थन किया है वह आश्चर्यजनक है।

दैनिक 'तेज' के लाला देशबन्धु गुप्त, राष्ट्रीय नेता पंडित नेकीराम शर्मा और श्री ताराचन्द्र माथुर एडवोकेट ने इस मामले की जाँच कर जो लम्बा वक्तव्य पत्रों में प्रकाशित किया है उसका संक्षेप इस प्रकार है—

आरम्भ में चौथे वर्ष की अवस्था तक शांति ने इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा, पर इसके बाद वह ऐसी बातें कहने लगी, मानो अपने पूर्व-जन्म की उसे याद आती हो। वह कहा करती थी कि मैं मथुरा में इस तरह कपड़े पहनती थी, मैं जाति की चौबाइन हूँ, मेरा पति कपड़े का व्यापार करता है। मेरा घर पीले रंग का था।

पहले तो घरवालों ने समझा कि शांति लड़कपन की बातें कर रही है। उसके मा-बाप ने इस विषय में कुछ भी करना उचित नहीं समझा।

लगभग डेढ़ वर्ष हुए, एक दिन लड़की के पिता के चाचा ने उससे उसके पूर्व-जन्म के पति का नाम पूछा। लड़की ने उनके कान में धीरे से कहा—उनका नाम पंडित केदारनाथ चौबे है।



[कुमारी शान्ति देवी]

पिछले दशहरा के दिन लड़की के बाप ने इसका ज़िक्र लाला किशनचन्द, एम० ए०, से किया और उन्होंने लड़की को देखने की इच्छा प्रकट की। एक मीटिंग हुई और लड़की ने 'केदारनाथ' का पता बतलाया। श्री किशनचंद ने उसी पते से पंडित केदारनाथ को एक चिट्ठी लिखी। चिट्ठी का जवाब चौबे केदारनाथ के पास से आया, जिसमें लिखा था कि बातें वस्तुतः सत्य हैं।

पंडित केदारनाथ अपनी दूसरी स्त्री और १० वर्ष के लड़के के साथ मथुरा से १३ नवम्बर को दिल्ली आये। देखते ही लड़की ने पंडित केदारनाथ को पहचान लिया। लड़के पर भी उसका ध्यान गया। शांति देवी इन लोगों को देखकर १ घंटा तक रोती रही। उन्होंने कहा मुझे पूरा विश्वास है कि यह मेरी पहली पत्नी की आत्मा है। लड़की ने केदारनाथ के लड़के के प्रति माता का-सा बर्ताव किया।

इसके बाद लड़की बार बार मथुरा जाने की इच्छा प्रकट करती रही। हम लोग उसको मथुरा ले गये। गाड़ी पर बैठते ही लड़की असाधारण प्रसन्नता दिखलाने लगी। जब गाड़ी मथुरा के समीप

पहुँची तब खुशी के मारे उसका चेहरा लाल हो गया। गाड़ी के स्टेशन पर आते ही वह चिल्ला उठी—मथुरा आ गई, मथुरा आ गई।

पहली उल्लेखनीय घटना प्लेटफ़ार्म पर ही हुई। लड़की लाला देशबन्धु की गोद में थी। लाला देशबन्धु अभी पन्द्रह क़दम भी न चले होंगे कि एक अधेड़ उम्र के पुरुष मथुरा की पोशाक में उधर आये। लड़की उनको देख कर फ़ौरन श्री देशबन्धु की गोद से उतरी। उस अपरिचित व्यक्ति के पैर शांति ने छुए और अलग खड़ी हो गई। पूछने पर श्री देशबन्धु के कान में उसने कहा कि मेरे 'जेठ' हैं। लड़की के 'जेठ' बाबूराम चौबे की आँखों में आँसू आ गये।



[पण्डित केदारनाथ चौबे]

स्टेशन से बाहर निकल कर हमने एक ताँगा किया। लड़की आगे बिठलाई गई। ताँगेवाले से कहा गया कि लड़की के कहने के मुताबिक़ ताँगा ले चलो। लड़की ताँगे को 'होली फाटक' की ओर लिवा गई। उसने कई एक नई इमारतें दिखलाईं और कहा कि ये पहले नहीं थीं।

हम लोग बाज़ार जानेवाली एक गली के सिरे पर पहुँचे। लड़की ने ताँगा रोक कर कहा, यही गली उस मकान को जाती है। ताँगे से उतर कर हम गली में चलने लगे। शांतिदेवी रास्ता बताती रही।

यहाँ पर एक ७५ वर्ष का बूढ़ा ब्राह्मण चीथड़े पहने हुए नज़र आया। शांति ने कहा कि ये मेरे ससुर हैं। वह नीचे उतरी और उनको नमस्कार करके उसने श्रद्धापूर्वक उनके पैर छुए। इसका प्रभाव वहाँ पर उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति पर पड़ा। आगे चलकर उसने अपना घर बिना किसी कठिनाई के पहचान लिया। मकान में अब कोई दूसरा किरायेदार रहता है। लड़की अन्दर ले जाई गई। मथुरा के दो प्रतिष्ठित सज्जनों को भी हमने साथ ले लिया। लड़की ने मकान में अपने रहने का कमरा दिखलाया। ऐसा मालूम होता था, मानो वह घर के एक एक कोने से परिचित हो।

हम शांति को एक धर्मशाला में ले गये। यहाँ उसने अपने भाई को और दूसरे चचिया ससुर को पहचाना। लड़की ने कहा कि मुझे मेरे दूसरे मकान में ले चलो। लड़की बराबर मार्ग दिखलाती रही। उसने दूसरे मकान को भी आसानी से पहचाना। उसने कहा कि मेरे पिछले जीवन का ज़्यादा हिस्सा इसी घर में व्यतीत हुआ है। पंडित केदारनाथ का परिवार अब भी उसी में रहता है। इस घर में लड़की इस तरह घुसी, मानो अब भी वह घर की मालकिन हो।

एक और बात उल्लेखनीय है। दिल्ली में उसने अपने पूर्व-जन्म के माता-पिता का ज़िक्र नहीं किया था। परन्तु यहाँ वह हमको पास की ही एक गली में अपने मा-बाप के घर ले गई। शांति ने केवल घर ही नहीं बतला दिया, बल्कि अपने वृद्ध मा-बाप को ५० आदमियों के बीच पहचान लिया। लड़की उनसे लिपट गई और वे रोने लगे।

शांति एक ताँगे में द्वारिकाधीश मन्दिर के स्थान पर लाई गई। मन्दिर को देखते ही वह हर्ष के कारण चिल्ला उठी। मन्दिर के सामने शांतिदेवी ने झुककर देवता को प्रणाम किया। अन्त में उसने यमुना के विश्राम-घाट को पहचाना और कहा कि पूर्व-जन्म में मैं यहाँ स्नान किया करती थी। घाट पर उसने यमुना-जल पीने का आग्रह किया और आपसे आप अपनी माला में से फूल तोड़ कर यमुना में डाल दिया।

हमको बतलाया गया कि पंडित केदारनाथ चौबे की पहली स्त्री का देहांत ४ अक्टोबर १९२५ को हुआ। शांति देवी की जन्म-तिथि ११ दिसम्बर १९२५ है।

Printed and Published by K. Mittra at the Indian Press Ltd., Allahabad.



उमा की उपासना



सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

अप्रैल १९३६ } भाग ३७, खंड १ संख्या ४, पूर्ण संख्या ४३६ { चैत्र १९९३

गीत

लेखक, श्रीयुत सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

घोर शिशिर डूबा जग अस्थिर,
तिमिर-तिमिर हो गये दिशा-पल।
प्रति तरङ्ग पर सिहर अङ्ग भर
व्याकुल तरुणी, तरणी चञ्चल।
तरु गत-किसलय, जीवित मिस लय,
विसमय विषमय सलिल अनिल चल,
निस्स्व विश्व—भव भार, न कलरव,
लग तुषार-दव क्षार हुआ स्थल।

सौध-शिखर पर प्रात मनोहर
कनक-गात तुम अरुण चरण धर
सरणि-सरणि पर उतर रही भर
छन्द-भ्रमर-गुञ्जित नीलोत्पल।
चली स्नान-हित शोभा-वलयित,
गीत-सदृश चित प्रिय-छवि-निर्मित;
क्षालित शत-तरङ्ग-तनु-पालित
अवगाहित निकली द्युति निर्मल।



हिटलर और जर्मनी

लेखक

श्रीयुत हरिकेशवघोष

योरप की वर्तमान डाँवाडोल राजनैतिक परिस्थिति में जर्मनी ने जो रुख प्रकट किया है उससे सारा संसार एकाएक चौंक उठा है। 'रीशटाग' में हिटलर ने हाल में जो घोषणा की है और उसके साथ ही उसने सैन्यवर्जित प्रदेश में जो सेना भेजी है वह इस बात का स्पष्ट संकेत है कि गत महायुद्ध में जर्मनी ने जो खोया है उसमें से कुछ वापस लेने के लिए वह दृढ़प्रतिज्ञ है। हिटलर की शर्तें स्पष्ट और प्रत्यक्ष हैं और यह निश्चित है कि यदि योरप के राष्ट्र उसकी कुछ शर्तें स्वीकार न कर लेंगे तो जर्मनी युद्ध का खतरा उठाने से नहीं हिचकेगा। योरप की बहुरंगी राजनीति की जटिलता इधर इतनी तीक्ष्ण और प्रत्यक्ष हो उठी है कि योरप के प्रायः सभी विचारशील व्यक्ति राष्ट्रों के दावों और प्रतिदावों को तय करने के लिए उनके बीच एक अनिवार्य्य युद्ध होने की आशङ्का कर रहे हैं। फ़ैसिस्ट शासन में इटली का राजनैतिक बल बहुत कुछ बढ़ गया है और उसे अपने विस्तार के लिए अफ़्रीका में स्थान खोजना पड़ा है। गत युद्ध में जर्मनी की बहुत क्षति हुई थी। और कदाचित् वह यह अनुभव कर रहा है कि एकमात्र कुछ और देश अधिकार में आने से ही उसकी घरेलू और आर्थिक संकट की समस्या हल हो सकती है।

एक ऐसे समय में जब कि इटली की सारी शक्ति अबीसीनिया की ओर लगी हुई है, जर्मनी ने अपने उद्देश की पूर्ति के लिए यह बड़ा ही अनुकूल अवसर चुना है और इसी लिए परिस्थिति और भी विषम हो उठी है। यदि लीग आफ़ नेशन्स में अबीसीनिया के प्रश्न का निर्णय संतोष-जनक रीति से न हो सका तो सम्भवतः इटली अफ़्रीका में अपना बल-प्रयोग जारी रक्खेगा। योरप और अफ़्रीका दोनों जगह एक साथ युद्ध करना उसके लिए कठिन होगा। रूस और फ्रांस दोनों अपने हाल के समझौते से मैत्री के एक सूत्र में बँध गये हैं। इस प्रकार जर्मनी अकेला-सा पड़ गया है। हिटलर को अपनी शर्तों पर ज़ोर देने का इससे अच्छा अवसर नहीं मिल सकता था, क्योंकि उसने सोचा होगा कि रूस, इटली और फ्रांस के भावी त्रिगुट से निकलने का यही एक मार्ग है। इटली रूस का साथ देगा, इसमें भी सन्देह है, क्योंकि दोनों के सिद्धान्तों में मूल से ही भेद है। परन्तु कोई कह नहीं सकता कि इस राजनैतिक बवण्डर से जो परिस्थिति उत्पन्न होगी उसके फलस्वरूप पाँसा कैसा पड़ेगा।

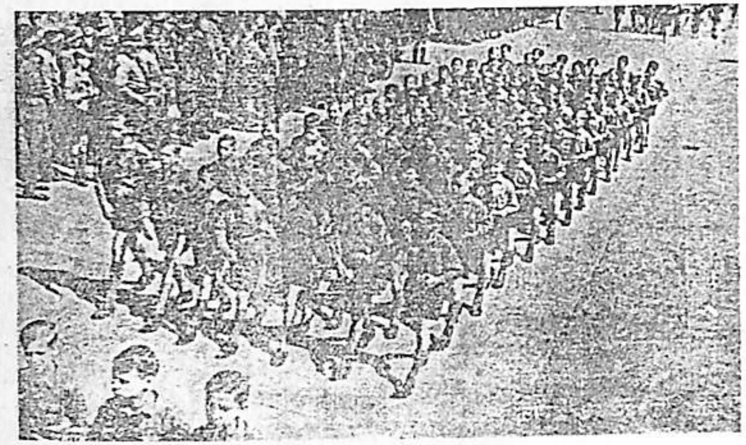
जर्मनी की वर्तमान आर्थिक स्थिति बहुत ही गिरी अवस्था में है। उसका निर्यात व्यापार अब उसका आधा भी नहीं है जितना युद्ध के पूर्व के दिनों में था। जर्मनी के श्रम-जीवियों और साधारण नागरिकों के रहन-सहन का दर्जा इटली और फ्रांस की अपेक्षा अधिक अच्छा है। इसलिए उसे अपनी ६ करोड़ की जन-संख्या के लिए जीविकोपार्जन की व्यवस्था करने में कठिनाई पड़ती है। कृत्रिम ढंग से उसने पन्द्रह वर्ष यह गाड़ी और खींची, परन्तु लोगों के रहन-सहन के दर्जे को क़ायम रखने और उनके लिए जीविकोपार्जन के साधन एकत्र करने के लिए उसके पास कोई साधन नहीं है। फिर जर्मनी के लिए यह अनि-वार्य्य था कि वह अपनी माँगों को सैनिक प्रदर्शन के द्वारा उपस्थित करे, क्योंकि आर्थिक दृष्टि से वह वर्तमान योरप के अत्यन्त निर्बल राष्ट्रों में ठहरता है। ख़ैर, समस्या यह है कि एक निर्धन देश जिसकी साख बहुत निर्बल है, कब तक ठहर सकता है? यह निश्चित है कि अकेला जर्मनी चन्द महीनों से अधिक नहीं टिक सकता। सम्भवतः हिटलर को लीग से बड़ी आशा है। कदाचित् वह सोचता है कि इस समय कोई युद्ध में पड़ना पसन्द न करेगा—विशेषकर इँगलैंड जैसे देश जिनमें राष्ट्रीय पुनरुद्धार का कार्य आरम्भ है।



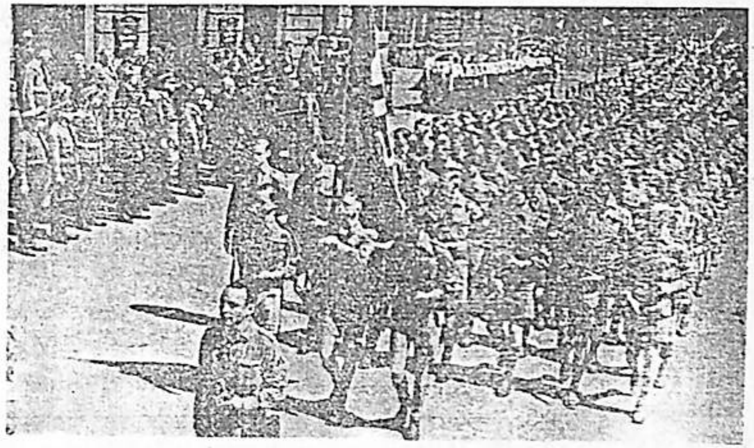
[डाक्टर गोबुल्स हर हिटलर के दाहने हाथ।]



[प्रेसिडेंट हिंडनबर्ग और हर हिटलर।]



[जर्मनी के बाल सैनिक—बच्चों को छुटपन ही से सैनिक शिक्षा दी जा रही है ताकि वे समय पर योग्य सैनिक बनें।]



[जर्मनी में सैनिक भाव किस प्रकार भरा जा रहा है, ये सैनिक बच्चे उनका एक उदाहरण हैं।]

महायुद्ध के बाद से जर्मनी पर बहुत सी मुसीबतें आ पड़ी थीं। धीरे-धीरे जर्मनों ने अपने राष्ट्रीय ऋण पर खेल कर उनमें से बहुतों से छुटकारा पाने की व्यवस्था की। बहुत-से ऋणों को चुकाने के लिए जनता पर प्रतिवर्ष भारी भारी कर लदते गये, तो भी उसका निर्यात-व्यापार तब तक किसी क़दर बढ़ता रहा जब तक इँग्लैंड और अन्य देशों में स्वर्णमान प्रचलित रहा। इस प्रकार तीन वर्ष पूर्व तक तो यह संसार के साथ व्यापारिक प्रतियोगिता करने में समर्थ रहा, परन्तु जब बहुत-से देशों ने स्वर्णमान छोड़ दिया, तब जर्मनी के लिए अपने निर्यात-व्यापार को क़ायम रखना असम्भव हो गया। फिर इस व्यापारिक प्रतियोगिता में जापान इतनी तेज़ी के साथ कूदा कि जर्मनी के वस्त्र-व्यवसाय का ख़ातमा ही हो गया। प्रायः सभी सूती मिलों को बन्द हो जाना पड़ा और इसके फलस्वरूप बेकारी की समस्या इतनी भीषण हो उठी कि गवर्नमेंट सफलता के साथ उसका सामना नहीं कर सकी। अपनी निर्बल करेन्सी के कारण जर्मनी स्वर्णमान का परित्याग नहीं कर सका। नई सरकार को देश की कठिनाइयों की बागडोर अपने हाथ में लेनी पड़ी। इस विशेष अवसर पर सिवा डिक्टेटरशाही के और कोई शक्ति देश को छिन्न-भिन्न और बरबाद होने से बचा नहीं सकती थी। हिंडनबर्ग ने भी इस बात को सोचा था। इसी लिए उन्होंने अपने अन्तिम दिनों में हिटलर की शक्ति बढ़ने दी, क्योंकि वे जानते थे कि जर्मनी के उद्धार का एकमात्र वही मार्ग है। जब हिटलर के हाथ में शासनसूत्र आया तब उसने जर्मनी के आयात व्यापार विशेषकर खाद्य पदार्थों पर कड़ाई के साथ चुंगी लगाकर नियंत्रण करना और देश के कच्चे माल के उद्‌गमों को विकसित करना आरम्भ किया और इसके लिए अपना एक कार्यक्रम बना लिया। इस प्रकार जर्मनी के सिक्कों का ५० प्रतिशत से भी अधिक बाहर जाना रुक गया; कृषि की वृद्धि की गई और बहुत-सी बेकार भूमि जोती जाने लगी। परन्तु निर्यात-व्यापार प्रतिवर्ष गिरता गया और उसके सँभालने की कोई सूरत न निकल सकी। अपने उपनिवेशों के अभाव में जर्मनी को बहुत-सा कच्चा माल विदेशों से खरीदना पड़ता था और भीषण कर-वृद्धि के कारण उसे श्रमजीवियों की मज़दूरी की दर भी बहुत अधिक बढ़ानी पड़ी। इसका परिणाम यह हुआ कि उसे माल तैयार करने में अधिक खर्च करना पड़ने लगा, जो सम्भवतः जापान की अपेक्षा दूना और इँग्लैंड की अपेक्षा २५ प्रतिशत अधिक बैठता था।

इस प्रकार जर्मनी को यह अनुभव हुआ कि देश की वर्तमान आर्थिक दुरवस्था के बीच में बीते दिनों के वैभव को फिर से प्राप्त करना असम्भव है। कदाचित् हिटलर ने यह सोचा है कि केवल दूसरा युद्ध या युद्ध का भाव उसके देश को आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से अधिक अच्छी स्थिति प्रदान कर सकता है। शान्ति भाव से प्रदेश-प्राप्ति की आशा असम्भव थी और बिना कुछ प्रदेश प्राप्त किये जर्मनी अपनी करेन्सी का सुधार करने में कभी समर्थ न होगा। यही कारण है कि हिटलर ने फिर से जर्मनी में सैनिक तैयारियाँ आरम्भ की हैं। १९३३ औ १९३५ के बीच में जर्मनी में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। विचार और कार्य-स्वातन्त्र्य कड़ाई के साथ दबाये गये हैं। यहूदी बुरी तरह पीड़ित किये गये हैं और इसके लिए राष्ट्र को बुराइयों से मुक्त करने की दुहाई दी गई है। सैनिक तैयारियाँ सर्वत्र प्रत्यक्ष हो रही थीं। इस लेख के लेखक को जिसने एक छोर से दूसरे छोर तक सम्पूर्ण जर्मनी का भ्रमण किया है, इस तैयारी की तेज़ी का बड़ी आसानी से अनुभव हुआ है। इस कार्य्य में सम्पूर्ण राष्ट्र इतने उत्साह के साथ संलग्न था कि कोई भी यह अनुभव कर सकता था कि सैनिक मनोभाव के इस जोशीले प्रदर्शन का शीघ्र ही कुछ-न-कुछ फल देखने को मिलेगा।

हिटलर ने साफ़ साफ़ यह घोषणा कर दी है कि जर्मनी लोकार्नो पैक्ट से अब एक क्षण भी बँधा नहीं रह सकता। उसके तर्क बहुत कुछ निर्बल हैं। उसका कहना है कि फ्रांस और रूस के नवीन समझौते के कारण उसे ऐसा करना पड़ा है। लोकार्नो का समझौता योरपीय देशों को एक प्रतिज्ञा में बाँधता है, जिसका आशय यह है कि वे सुलह की सन्धियों के अनुसार भौमिक समझौतों को मानेंगे। हिटलर का स्पष्ट शब्दों में यह कहना है कि जर्मनी को तत्कालीन परिस्थितियों के कारण इसे मानने के लिए विवश होना पड़ा था। और वह समझौते पर अन्य हस्ताक्षर करनेवालों को दोषी ठहराता है, क्योंकि उन्होंने जर्मनी के ऊपर सर्वथा अविवेक और अन्याय से भरी हुई शर्तें लादी थीं। इस समझौते की जर्मनी ने उपेक्षा कर दी है और हिटलर ज़ोर से इस बात की घोषणा कर रहा है। इस समझौते को 'लीग आफ़ नेशन्स' ने भी स्वीकृति दी थी, परन्तु जर्मनी अब लीग का मेम्बर नहीं है और इसलिए उसके निर्णय को मानने के लिए वह बाध्य भी नहीं है। लीग के सिद्धान्तों के विरुद्ध आचरण करने का इटली का उदाहरण अभी ताज़ा है। पाठक जानते हैं कि उसने लीग की धमकियों की किस लापरवाही से उपेक्षा की है। आशा की जाती है कि इस सम्बन्ध में जर्मनी भी उसी पथ का अनुसरण करेगा। लीग अपनी धाक बहुत कुछ गँवा चुका है और यदि यह अपने अस्तित्व के साथ न्याय करने में फिर असफल होता है तो इसकी मृत्यु निःसन्देह निश्चित है। लीग की

बाक़ी नहीं रख सकता। दूसरी ओर इससे फ्रांस की सुरक्षा की भावना बहुत कुछ नष्ट हो जायगी। और यदि उसने इस प्रदेश की स्वाधीनता अपने हाथ से निकल जाने दी तो उसे भविष्य में जर्मन लाइन से सदैव आक्रमण का भय बना रहेगा। मेज़, कोब्लेन्ज़, कोलेन और फ्रैंकफोर्ट चारों औद्योगिक नगर हैं और इन पर जर्मनी का सैनिक अधिकार एक ऐसी महत्त्वपूर्ण राजनैतिक घटना है जिसकी फ्रांस मुश्किल से उपेक्षा कर सकता है।

कौंसिल से जर्मनी के विरुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबन्ध लगाने की फ्रांस की भर्त्सनापूर्ण माँग कदाचित् ही कारगर हो और बिना एक अच्छी मात्रा में त्याग किये एक बार उठाये जाने पर यह प्रश्न प्रेमपूर्वक तय हो जायगा, इसमें भी सन्देह है। राइनलैंड जर्मन-कार्य-व्यवसाय की रीढ़ है। व्यापारिक दृष्टि से इस प्रदेश पर पूर्णरूप से अधिकार प्राप्त करने की जर्मनी की एक बहुत बड़ी लालसा है, जिसकी पूर्ति के लिए वह कुछ भी

परिवर्त्तन

लेखक, श्रीयुत प्रोफ़ेसर मनोरञ्जन, एम० ए०

मेरे इस सूने से नभ में बादल आते बिजली आती।
सूरज आता, चन्दा आता, अँधियाली ले रजनी आती॥

घनघोर अँधेरा छा जाता,
ओसों के आँसू बरसाता।
तारों के झिलमिल दीपक भी,
क्या जाने कौन बुझा जाता।
तब आशा की लाली लेकर,
मुसकान-भरी ऊषा आती,
मेरे इस सूने से नभ में।
बिखरा पड़ता रवि का वैभव,
मुखरित होता मेरा नीरव,
गुन गुन गुञ्जन करते अलिगण,
खलबल कर उठते हैं कलरव।
चमचम चमचम जगमग जगमग,
अति दिव्य ज्योति-सी छा जाती,
मेरे इस सूने से नभ में।
फिर दिन क्रमशः ढल जाता है,
रवि क्षीण ज्योति हो जाता है,
पश्चिम में एक चिता जलती,
उसके ऊपर चढ़ जाता है।
फिर सन्ध्या आकर धीरे से,
उसको चादर से ढँक जाती,
मेरे इस सूने से नभ में।

विरही-सा चन्दा आता है,
कुछ झलक दिखा छिप जाता है,
मातम करती रजनी आती,
घन अन्धकार छा जाता है।
सूने मज़ार पर जलती है,
बस तारों की दीपक बाती,
मेरे इस सूने से नभ में।
जगत स्मशान बन जाता है,
सन्नाटा-सा छा जाता है,
मरघट के पशु विचरण करते,
मरघट का पक्षी गाता है।
भरता है ठंडी आह पवन,
फिर ऊषा आकर मुसकाती,
मेरे इस सूने से नभ में।
यों होता रहता परिवर्तन,
परिवर्तन ही जग का जीवन,
तुम मौत जिसे बतलाते हो,
वह भी तो है बस परिवर्तन।
मन, सोच न कर, चुपचाप,
तमाशा देख, नियति जो दिखलाती,
मेरे इस सूने से नभ में।

परमहंस रामकृष्ण की शताब्दी

लेखक, श्रीयुत नगेन्द्रनाथ गुप्त



परमहंस रामकृष्ण की शताब्दी हाल में ही सारे भारत और संसार में मनाई गई है। इस अवसर पर 'सरस्वती' के पाठकों को बाबू नगेन्द्रनाथ गुप्त का यह लेख रुचिकर प्रतीत होगा। बाबू साहब उन इने-गिने व्यक्तियों में हैं जिन्होंने परमहंस रामकृष्ण को देखा है और उनके पास बैठकर उनका उपदेश सुना है।

गत २४ फ़रवरी को परमहंस रामकृष्ण की १०० वीं वर्ष-गाँठ भारतवर्ष के अनेक स्थानों में, इँग्लैंड, अमरीका और जर्मनी में अभूतपूर्व समारोह के साथ मनाई गई। उन्होंने ५० वर्ष की अवस्था में शरीर त्याग किया था। उनकी मृत्यु को भी पचास वर्ष हो गये।

उन्हें देखनेवाले और उनका उपदेश सुननेवाले जो थोड़े-से लोग अभी जीवित हैं उनमें एक मैं हूँ। और मैंने उनके मुख से जो कुछ सुना वह मुझे आज तक नहीं भूला। उनसे मिलने का सौभाग्य मुझे ब्राह्मोनेता और वक्ता श्री केशवचन्द्र सेन के साथ प्राप्त हुआ था। रामकृष्ण क़रीब आठ घंटे लगातार बिना बीच में रुके हुए बोलते रहे। मैंने उनको समाधिस्थ होते देखा है। यह वह स्थिति थी जिसमें उनकी आत्मा पूर्ण ब्रह्म से मिल कर एक हो गई थी। उनके होठों से सर्वोच्च ज्ञान की कितनी निधियाँ बिखरी पड़ रही थीं, उनकी उपमायें, अलङ्कार और गूढ़ोक्तियाँ कितनी आश्चर्यजनक थीं, यह कहा नहीं जा सकता। उनकी मुस्कान बहुत ही सुन्दर थी। यह सच है कि वे धाराप्रवाह नहीं बोल सकते थे और वे सफल वक्ता भी नहीं कहे जा सकते थे, क्योंकि वे थोड़ा हकलाते थे और ग्रामीण भाषा बोलते थे। बचपन में उन्हें बहुत शिक्षा ही नहीं मिली। उन्होंने किताबी ज्ञान के प्रति अपनी तीव्र अरुचि भी प्रकट की थी। वे कठिनाई से बँगला लिख-पढ़ सकते थे। उनका मूल नाम गदाधर चटर्जी था और वे बंगाल के एक गाँव में एक ग़रीब ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे।

वे कलकत्ता के पास दक्षिणेश्वर के एक मन्दिर में पुजारी थे। वे काली की मूर्ति की पूजा किया करते थे और निरन्तर उनकी वन्दना में तल्लीन रहते थे। यदि शिक्षा और पास-पड़ोस के वातावरण का उन पर प्रभाव पड़ता

तो वे अबोध, अन्धविश्वासी और कट्टर होते। पर इसके विरुद्ध उनके अन्तर में अत्यन्त गम्भीर ज्ञान की ज्योति जगती रहती थी। उनके विचार अधिकांश शिक्षित मनुष्यों की अपेक्षा उदार थे। उनकी धर्म की भावना इतनी विस्तृत थी जितनी कि कल्पना में समा सकती है। उनका अधिकांश समय तल्लीनता में व्यतीत होता था। उनकी साधना सर्वथा उन्हीं की थी और निराली थी। धन से उन्हें घृणा तो थी ही। परन्तु उनके हाथों कुछ ऐसा अभ्यास पड़ गया था कि यदि उनकी हथेली पर सोने या चाँदी का कोई सिक्का रक्खा जाता था तो उनकी अँगुलियाँ अपने आप कुछ इस प्रकार ऐंटने लगती थीं कि वह सिक्का हथेली से गिर जाता था। वे अपनी धोती मुश्किल से सँभाल पाते थे, क्योंकि वह उनकी कमर से नीचे रह रह कर खिसक जाती थी। किसी सार्वजनिक सम्मेलन में वे कभी नहीं देखे गये, परन्तु वे उच्च कोटि के चरित्रवान् तथा विख्यात परोपकारी व्यक्तियों से मिलने प्रायः जाते थे। देवाराधन के प्रत्येक स्थान की उन्होंने यात्रा की थी। वे मसजिद में, गिर्जाघर में और ब्राह्मोसमाज में गये थे। उन्होंने अल्लाह और ईसामसीह का नाम लेकर उनकी याद की थी। उनकी विचित्र उक्तियों का शीघ्र ही कलकत्ता के शिक्षित लोगों में प्रचार होने लगा। केशव बाबू ने उनमें से कुछ को अपने पत्र 'दि लिबरल एण्ड दि निउ डिस्पेंसेशन' में उद्धृत किया।

उनके बारे में मैक्समूलर ने एक छोटी-सी पुस्तिका लिखी थी। रामकृष्ण ने कहा था—'जितने मत हैं उतने ही पन्थ हैं। प्रत्येक धर्म सच्चा है और प्रत्येक धर्म का सम्मान होना चाहिए। किसी मनुष्य से स्वधर्म त्याग करने के लिए नहीं कहना चाहिए।

रामकृष्ण पूज्य हो गये थे और कुछ शिष्य भी उनके पास एकत्र हो गये थे। इन्हीं में बालक नरेन्द्रनाथ दत्त भी थे, जिनकी महत्ता की भविष्यवाणी रामकृष्ण ने की थी और जो स्वामी विवेकानन्द के नाम से समस्त संसार में विख्यात हुए। रामकृष्ण को मरे पचास वर्ष हो गये। तब यह कौन कह सकता था कि संसार के महापुरुषों में उनकी गणना होगी और सहस्रों आदमी अवतार मान कर उनकी पूजा करेंगे? उनके पास एक रुपया भी अपना कहने को नहीं था। उनके शिष्यों ने भी त्याग और ग़रीबी का व्रत लिया था। तो भी कलकत्ता के पास बेलूर में स्वामी विवेकानन्द ने जिस मठ की स्थापना की थी वह गत ५० वर्षों में बढ़कर एक महत्त्वपूर्ण तीर्थ हो गया है और सैकड़ों लोग उसकी यात्रा करते हैं। वहाँ कई एक सुन्दर इमारतें बन गई हैं और एक मन्दिर बन रहा है जो दस लाख रुपयों में तैयार होगा और भारतवर्ष के विशाल मन्दिरों में से एक होगा। रामकृष्ण-आश्रमों और मठों का सारे भारतवर्ष में निर्माण हो गया है। कुछ अमरीका में भी बन गये हैं और रामकृष्ण के उपदेशामृत का सारे संसार में प्रचार हो रहा है और सर्वत्र उनके नये नये अनुयायी उत्पन्न होते जा रहे हैं। जब पचास वर्षों की यह उन्नति है तब सौ वर्षों में क्या होगा?

शताब्दी के सिलसिले में यहाँ बम्बई के उत्सव-मंदिर में ख़ूब रोशनी की गई थी। वेद मंत्रों का ख़ूब पाठ हुआ था और रात को सब प्रकार के लोग—दक्षिणी, गुजराती, पारसी, मदरासी, बंगाली, अँगरेज़, अमरीकन, स्त्री-पुरुष एक साथ एक फ़र्श पर प्रसाद खाने बैठे थे। अन्त में एक महिला ने भावावेश में आकर उनका यशोगान गाया। वह एक ऐसा दृश्य था जो कभी भुलाया नहीं जा सकता।

यह बात याद रखने की है कि बेलूर का मठ देखने के लिए आनेवालों में बेलजियम के भूतपूर्व बादशाह अलबर्ट भी थे।

रामकृष्ण की सूक्तियों का संग्रह उनके एक गृहस्थ शिष्य स्वर्गीय महेन्द्रनाथ गुप्त ने किया था। परमहंस से भेंट करने के लिए उनसे मैंने ही अनुरोध किया था। पुस्तक के अन्तिम भाग में उन्होंने इस बात का उल्लेख भी किया है। उनकी सूक्तियों का एक संग्रह स्वामी ब्रह्मानन्द ने भी किया है। ये रामकृष्ण मिशन के प्रथम सभापति हैं। पर यह संग्रह अत्यन्त संक्षिप्त है। उनके शिष्य उनकी शिक्षाओं को अपने अन्दर प्रविष्ट करने में इतने तल्लीन रहते थे कि उन्होंने यह सोचा भी नहीं कि आनेवाली सन्तति के लाभ के लिए उनके ज्ञान की रक्षा करनी चाहिए।

परमहंस रामकृष्ण देव की जय!

भारतीय ग्रामीण-ऋण-समस्या

लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना, एम० ए०, एम० काम

किसानों की अवस्था में सुधार तभी हो सकता है जब सरकार उनका सारा ऋण अपने पास से चुका दे जैसा कि भावनगर के दीवान सर प्रभाशंकर ने किया है। उनके प्रयत्न से भावनगर रियासत के किसान ऋण-मुक्त हो जाने पर अब सर्वथा बदल गये हैं और वैज्ञानिक ढङ्ग से खेती-बारी करने लगे हैं। ऋण-मुक्त हो जाने पर समस्त भारत के किसानों में भी इसी प्रकार नवजीवन का संचार हो सकता है। यह बात विद्वान् लेखक ने इस लेख में बड़े ज़ोरदार तर्कों के साथ उपस्थित की है। आशा है, इस ओर सरकार और जनता दोनों का ध्यान जायगा।

सन् १९३० में प्रान्तीय बैंकिंग इनक्वायरी कमिटियों ने अपने अपने प्रान्तों के ग्रामीण-ऋण का जो अनुमान लगाया है उसके अनुसार ब्रिटिश भारत का ग्रामीण-ऋण* लगभग ९०० करोड़ रुपया होता है। अभी तक किसी भी कमिटी ने देशी राज्यों के ग्रामीण-ऋण का पता नहीं लगाया है और न देशी राज्यों ने ही यह जानने का प्रयत्न किया है कि उनके किसानों पर कितना ऋण लदा हुआ है। हम अपने अध्ययन के आधार पर कह सकते हैं कि देशी राज्यों के किसानों की आर्थिक दशा ब्रिटिश भारत के किसानों से भी गिरी हुई है। अतएव प्रामाणिक आँकड़ों के न होने पर भी यदि हम देशी राज्यों का ग्रामीण-ऋण ३०० से ४०० करोड़ रुपया मान लें तो यह सत्य से अधिक दूर न होगा, क्योंकि देशी राज्यों की जन-संख्या समस्त देश की एक-तिहाई के लगभग है। इस प्रकार सारे देश का ग्रामीण-ऋण १,२०० या १,३०० करोड़ रुपया के लगभग होता है।

ऋणी होना प्रत्येक दशा में आर्थिक हीनता का सूचक नहीं है। बड़े-से-बड़ा व्यवसायी भी बिना साख के काम नहीं चला सकता। संसार के आधुनिक आर्थिक क्षेत्र में कृषि, व्यापार तथा उद्योग-धंधे सभी में साख की आवश्यकता होती है। केवल दो दशाओं में ऋण भयंकर बोझ हो जाता है—(१) ऋण अनुत्पादक कार्यों के लिए लिया गया हो, अथवा (२) जितना लाभ ऋण ली हुई पूँजी से होता हो उससे अधिक उसका सूद देना पड़ता हो। अभाग्यवश भारतीय ग्रामीण का ऋण इन्हीं दोनों प्रकारों का है। किसान को अधिकतर खेती-बारी, मुक़द्दमेबाज़ी,

* भिन्न-भिन्न प्रान्तों का ग्रामीण-ऋण इस प्रकार है—

प्रान्त		ऋण रुपयों में
आसाम	...	२२ करोड़
बंगाल ...	...	१०० ,,
बिहार-उड़ीसा	...	१५५ ,,
बम्बई ...	...	८१ ,,
बर्मा ...	...	५० से ६० करोड़ के लगभग
केन्द्रीय सरकार-द्वारा शासित प्रदेश	...	१८ करोड़
मध्यप्रान्त	...	३६ ,,
कुर्ग ...	...	३५ से ५५ लाख रु० के लगभग
मदरास	...	१५० करोड़
पंजाब ...	...	१३५ ,,
संयुक्तप्रान्त	...	१२४ ,,
		८८१ करोड़

सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों तथा अपने भरण-पोषण के लिए ऋण लेना पड़ता है। प्रत्येक दशा में उसे बहुत अधिक सूद देना पड़ता है। भारतवर्ष के गाँवों में २५ प्रतिशत से ३७ प्रतिशत साधारणतः सूद लिया जाता है और कहीं कहीं तो ७५ से १०० प्रतिशत तक सूद लिया जाता है। भारतीय अदालतों में ऐसे मुक़द्दमे भी आते हैं जिनमें सूद १,००० प्रतिशत से भी ऊपर होता है। किसान ऋण ली हुई पूँजी पर इतना अधिक सूद देकर किसी प्रकार जीवित नहीं रह सकता। किसी भी धंधे से इतना लाभ नहीं प्राप्त हो सकता। फल यह होता है कि किसान को पूरी मज़दूरी भी नहीं मिलती।

गृह-उद्योगों के नष्ट हो जाने से तथा जन-संख्या के लगातार बढ़ते रहने से खेती-बारी पर अवलम्बित जन-संख्या में दोगुनी वृद्धि हो गई है। १९३१ की मनुष्य-गणना के अनुसार देश की लगभग ७३ प्रतिशत जन-संख्या केवल खेती-बारी पर निर्भर है। देश में भूमि का अकाल है। किसानों के पास इतनी भूमि नहीं है कि उसकी पैदावार से वे अपने कुटुम्ब का पालन कर सकें। तिस पर खेती-बारी एक अनिश्चित धंधा है। उदाहरण के लिए चार वर्षों में कम-से-कम एक बार फ़सल अवश्य नष्ट होती रही है। इससे किसान की अवस्था इतनी दयनीय होगई है कि फ़सल काट चुकने के उपरान्त उसके पास सब दे चुकने पर कुछ भी शेष नहीं बचता। यहाँ तक कि वह महाजन का पूरा सूद भी नहीं चुका सकता। फलतः किसान महाजन की आर्थिक दासता में बँध गये हैं। ऋण किसान के जीवन का एक अंग हो गया है। वह ऋणी परिवार में जन्म लेता है, पिता के मरने पर पैतृक ऋण का भयंकर बोझ उसके सिर पर आता है और अपने जीवन के अवसानकाल में उसे और भी बढ़ाकर अपने पुत्र के सिर पर लाद जाता है। ऐसे मनुष्य को यदि ग्राम-सुधार तथा कृषि-सुधार की बातें केवल कपोल-कल्पना प्रतीत हों तो आश्चर्य क्या है? किसान जानता है कि यदि किसी प्रकार उसके खेत की पैदावार बढ़ भी गई तो भी वह सब महाजन के ही घर जायगी। उसे तो आधा पेट भोजन भी मुश्किल से ही मिलेगा।

लेखक को राजपूताने के डूँगरपुर-राज्य के भीलों की आर्थिक दशा का अध्ययन करने का अवसर मिला है। वहाँ के भील महाजनों के क्रीतदास बन गये हैं। भीलों में विवाह में लड़कीवाला लड़के से कुछ रुपया लेता है, और रुपया भील के पास होता नहीं है। वह ऋण लेकर लड़कीवाले को रुपया देता है। ऋण के एवज़ में उसे यह इक़रारनामा लिखना पड़ता है कि वह तब तक अपने महाजन की सेवा करेगा जब तक ऋण को चुका न देगा। ऋण के भुगतान के काल में महाजन उसे केवल भोजन देता है। उसको सारा जीवन महाजन की दासता में व्यतीत करना पड़ता है, क्योंकि ऋण चुकाने के लिए वह कुछ जमा ही नहीं कर पाता। बिहार-उड़ीसा के छोटानागपुर में इससे मिलती-जुलती 'कम्यौती-पद्धति' है, जिसके अनुसार ऋण लेनेवाला (कम्यौत) १०० या २०० रुपया लेकर यह इक़रारनामा लिख देता है कि ऋण-दाता की आवश्यकता पर उसे उसका काम करना पड़ेगा। यह ऋण चुकाया नहीं जाता और न उस पर सूद ही लिया जाता है, किन्तु उसके बदले में ऋणदाता को अपने खेतों पर काम करने के लिए जब मज़दूरों की आवश्यकता पड़ती है तब वह अपने कम्यौतों को बुला लेता है। वह उन्हें दो आना प्रति दिन के हिसाब से मज़दूरी देता है। जब खेतों पर काम नहीं होता तब कम्यौत को ये दो आने भी नहीं दिये जाते और वह घास तथा ईंधन आदि बेच कर गुज़र करता है। वहाँ की प्रान्तीय सरकार ने एक क़ानून बना कर इस प्रकार के इक़रारनामों को ग़ैर-क़ानूनी घोषित कर दिया है, किन्तु अशिक्षित कम्यौत को इस क़ानून का ज्ञान धीरे ही धीरे होगा।

प्रश्न यह है कि यह ऋण घट रहा है अथवा बढ़ रहा है। प्रान्तीय बैंकिंग इनक्वायरी कमिटियों की सम्मति में भारतीय ग्रामीण-ऋण पिछले १०० वर्षों में बराबर बढ़ता गया है। पिछले सात वर्षों में तो ऋण की भयङ्करता और भी बढ़ गई है। इधर खेती की पैदावार का मूल्य लगभग ५० प्रतिशत घट गया है, अतएव किसानों के क़र्ज़ का बोझ पहले से दोगुना हो गया है। इस भयङ्कर बोझ को किसान किस प्रकार सहन कर सकेगा, यह एक कठिन समस्या है।

अभी तक अर्थशास्त्र के विद्वान् इस विषय में एक-मत नहीं हैं कि प्रतिशत कितने किसान ऋणी हैं, परन्तु अधिकतर यह अनुमान किया जाता है कि ६० और ७० प्रतिशत के लगभग किसान ऋणी हैं।

वास्तव में देखा जाय तो पुराने ऋण की समस्या अत्यन्त कठिन है। खेती-बारी की आवश्यकताओं के लिए यदि प्रयत्न किया जाय तो साख-समितियों के द्वारा प्रबंध किया जा सकता है। किन्तु पुराने ऋण को जब तक किसान नहीं चुका देता तब तक वह महाजन के चंगुल से निकल ही नहीं सकता। पुराना ऋण चुकाना किसान के लिए असम्भव हो गया है, क्योंकि एक तो महाजन का सूद इस तेज़ी से बढ़ता है कि थोड़ी-सी रक़म भी थोड़े दिनों में बहुत बढ़ जाती है, दूसरे किसान के पास महाजन इतना छोड़ता ही नहीं कि वह अपने कुटुम्ब का पालन करके कुछ बचा सके। अतः किसान निराशावादी बन गया है और यही कारण है कि विवाह तथा अन्य धार्मिक कार्यों में वह ऋण लेकर अपनी शक्ति के बाहर व्यय कर देता है, क्योंकि उसको अनुभव से ज्ञात हो गया है कि प्रत्येक दशा में जब उसे साल में केवल दो-चार महीने भर का भोजन-मात्र शेष बचता है तब वह बिरादरीवालों में अपनी हँसी क्यों करावे।

ग्रामीण-ऋण की ओर भारत-सरकार का ध्यान बहुत पहले से है। १८७७ और १८७८ के लगभग बम्बई के पूना तथा अन्य ज़िलों में, उसके बाद अजमेर, छोटानागपुर तथा मध्यभारत में किसानों ने विद्रोह कर दिया था। उन्होंने महाजनों को मार डाला, उनके मकान और विशेष कर बही-खाते जला दिये। यह हाल देखकर सरकार ने एक कमीशन बिठाया, जिसने किसानों की भयङ्कर क़र्ज़दारी को इस विद्रोह का मुख्य कारण बतलाया। तब से सरकार सिविल-ला में बराबर सुधार करती चली आ रही, जिससे किसान अत्यधिक सूद से बचाया जा सके। किन्तु यह सर्वमान्य बात है कि सिविल-ला के सुधार से किसान को अधिक लाभ नहीं हुआ, क्योंकि एक तो ९५ प्रतिशत महाजनों को किसान पर दावा ही नहीं करना पड़ता, दूसरे अदालतों के व्ययसाध्य न्याय को ग़रीब किसान प्राप्त ही नहीं कर सकता। सरकार ने क़ानून बनाकर तक़ावी देना निश्चित किया, किन्तु किसान सरकारी तक़ावी नहीं लेना चाहता। कारण यह है कि किसान को पटवारी इत्यादि की भेंट-पूजा करने के उपरान्त जो तक़ावी मिलती है वह उसकी आवश्यकताओं के लिए यथेष्ट नहीं होती, उसे फिर महाजन के पास जाना पड़ता है। इसके सिवा तक़ावी का रुपया वसूल करते समय तहसील के कर्मचारी बड़ी कठोरता का व्यवहार करते हैं। पंजाब, बुंदेलखंड तथा छोटानागपुर में किसान के हाथों से भूमि निकलती जाती देखकर सरकार ने लैंड-एलीनियेशन-ऐक्ट बनाकर इसके रोकने का प्रयत्न किया। इस ऐक्ट के अनुसार खेती की भूमि किसान के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं क्रय कर सकता। इसका फल यह हुआ कि महाजनों के हाथ में भूमि जाने से तो बच गई, किन्तु किसानों में ही महाजन उत्पन्न हो गये। अन्ततः १९०४ में सहकारी-साख-समितियों की स्थापना की गई। आज सहकारिता-आन्दोलन का श्री गणेश हुए ३२ वर्ष हो गये हैं। सहकारिता-आन्दोलन अपने उद्देश में कहाँ तक सफल हुआ है, यह इस लेख के क्षेत्र के बाहर की बात है। किन्तु इतना तो प्रान्तीय कमिटियों ने तथा प्रान्तीय सहकारिता-विभाग के रजिस्ट्रारों ने भी स्वीकार कर लिया है कि सरकारी साख-समितियाँ किसान के पुराने ऋण को नहीं चुका सकतीं। पुराने ऋण की समस्या को हल करने के लिए और ही कोई प्रबन्ध होना चाहिए। सिद्धान्त-रूप में यह ठीक भी है। साख-समितियाँ सेन्ट्रल अथवा ज़िला-सहकारी-बैंकों से पूँजी लेती हैं। ज़िला-बैंक थोड़े समय के लिए डिपाज़िट लेकर पूँजी खींचते हैं। पुराने ऋण को चुकाने के लिए २० से ३० वर्ष तक के लिए ऋण देना होगा। थोड़े समय के डिपाज़िटों को लेकर अधिक समय के लिए ऋण देना जोखिम का काम है और बैंकिंग के सिद्धान्तों के विरुद्ध है। यदि सहकारी-साख-समितियों का संगठन उचित रीति से किया जाय तो ये समितियाँ थोड़े समय के लिए किसान को आवश्यक पूँजी दे सकती हैं।

पुराने ऋण को चुकाने के लिए कई योजनायें उपस्थित

की गई हैं, यद्यपि भारत-सरकार ने किसी भी योजना को पूर्णतः अभी तक स्वीकार नहीं किया है। सन् १९२६ में रजिस्ट्रार-सम्मेलन ने पैतृक ऋण को चुकाने के लिए भूमि-बंधक बैंक स्थापित करने की आवश्यकता बतलाई और एक योजना भी उपस्थित की, जिसको कुछ संशोधनों के साथ सेन्ट्रल-बैंकिंग-इनक्वायरी-कमिटी ने स्वीकार कर लिया है। थोड़े से भूमि-बंधक-बैंक पञ्जाब, मदरास, बम्बई तथा अन्य प्रान्तों में खोले भी गये हैं।

सेंट्रल-बैंकिंग-इनक्वायरी-कमिटी के मतानुसार भूमि-बंधक-बैंक को निम्नलिखित कार्यों के लिए ऋण देना चाहिए—

(क) किसान की भूमि और मकान को छुड़ाने तथा पुराने ऋण को चुकाने के लिए।

(ख) भूमि का सुधार और खेती की उन्नति करने के लिए तथा मकान बनवाने के लिए।

(ग) विशेष अवस्थाओं में भूमि खरीदने के लिए।

कमिटी की सम्मति है कि ५,००० रुपये से अधिक ऋण किसी भी सदस्य को न दिया जाय। साथ ही सदस्य की भूमि के मूल्य का आधे से अधिक ऋण किसी भी दशा में नहीं दिया जा सकता। बैंक सदस्यों के अतिरिक्त और किसी को भी ऋण नहीं देगा। सदस्य बन जाने के उपरान्त अपनी भूमि बैंक के पास बंधक रखकर ऋण लिया जा सकता है। ऋण सूद-सहित बराबर बराबर क़िस्तों में चुकाया जायगा। सदस्य को बैंक का एक हिस्सा अवश्य खरीदना होगा। बैंक-बंधक रक्खी हुई भूमि की ज़मानत पर डिबेंचर निकालेगा और वे डिबेंचर जनता में बेचे जायँगे। डिबेंचरों को बेचकर ही बैंक पूँजी प्राप्त करेगा। योरपीय देशों में भूमि-बंधक-बैंकों के डिबेंचर खूब बिकते हैं। परन्तु भारतवर्ष में जनता इन डिबेंचरों को खरीदेगी या नहीं, इसमें संदेह है। इस कारण कमिटी की राय है कि आरम्भ में प्रान्तीय सरकार इन डिबेंचरों के सूद की गारंटी दे दे। सूद की गारंटी होने से जनता इन डिबेंचरों को खरीदेगी। ऋण आवश्यकतानुसार पाँच वर्ष से २० वर्ष तक के लिए दिया जाय। भविष्य में तीस वर्ष तक के लिए दिया जा सकता है। प्रत्येक प्रान्त में एक प्रान्तीय भूमि-बंधक बैंक स्थापित किया जाय जो प्रान्त के सब भूमि-बंधक बैंकों के लिए डिबेंचर बेचे। कमिटी ने रजिस्ट्रारों की इस माँग का भी समर्थन किया है कि एक क़ानून बनाकर बैंकों को यह अधिकार दे दिया जाय कि यदि सदस्य बैंक का रुपया न चुकावे तो बैंक बिना अदालत में गये अपना रुपया वसूल करने के लिए बंधक रक्खी हुई भूमि ज़ब्त कर लें और बेच दें।

भूमि-बंधक बैंक बहुत थोड़ी संख्या में स्थापित हुए हैं, इस कारण इनके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। यदि यह मान भी लिया जाय कि सरकार डिबेंचरों पर सूद की गारंटी कर देगी और बैंक पूँजी इकट्ठी कर लेंगे तो भी ये बैंक साधारण किसान के लिए अधिक उपयोगी न होंगे। क़र्ज़ केवल उन्हीं किसानों को दिया जा सकेगा जो भूमि बंधक रख सकेंगे। इधर कुछ प्रान्तों में किसान का भूमि पर स्वामित्व ही नहीं है।

शाही-कृषि-कमीशन ने पैतृक ऋण के विषय में अपना मत देते हुए कहा है कि ग्रामीण-ऋण बढ़ता जा रहा है, इस ओर से उदासीन रहने का फल भयंकर हो सकता है। इस समस्या को हल करने के लिए शाही-कृषि-कमीशन ने ग्रामीण 'इन्सालवेंसी (दिवाला) ऐक्ट' बनाने की सम्मति दी थी। और अब ऐसा क़ानून बन भी गया है। इस ऐक्ट का तात्पर्य यह है कि यदि ग्रामीण ऋण के बोझ से इतना दब गया हो कि सारी सम्पत्ति के बिक जाने पर भी वह अपना क़र्ज़ अदा नहीं कर सकता तो वह अदालत को दिवालिया होने का प्रार्थना-पत्र दे सकता है। यदि अदालत उसे स्वीकार कर ले तो अपनी सम्पत्ति लेनदारों को देकर वह ऋण-मुक्त हो जायगा और स्वतंत्र रूप से आजीविका उपार्जन कर सकेगा। फिर चाहे उसकी सम्पत्ति से लेनदारों को कितना ही कम प्राप्त हो, वे किसान से भविष्य में रुपया वसूल नहीं कर सकेंगे। यद्यपि यह क़ानून किसानों के लाभ के लिए है, तो भी इसका अभी तक उपयोग नाममात्र को भी नहीं हो सका है। कारण यह है कि भारतीय अदालतों में इतना खर्च बैठता है कि किसान थैलीवाले महाजनों के विरुद्ध न्याय प्राप्त ही नहीं कर सकता।

सरा कारण यह भी है कि उनको इस ऐक्ट के विषय में छ मालूम भी नहीं है। इस क़ानून से केवल वे ही ोग लाभ उठा सकते हैं जिन पर अत्यधिक ऋण है। फिर दिवालिया बनाना तो अदालत के हाथ में है, इस कारण स क़ानून का किसान को अधिक लाभ नहीं मिल सकता।

सेंट्रल-बैंकिंग-इनक्वायरी-कमिटी ने भी ऋण-परिशोध की एक योजना उपस्थित की है, जो महत्त्वपूर्ण है। इस योजना के अनुसार प्रत्येक प्रान्तीय सरकार इस कार्य के लिए विशेष कर्मचारी नियुक्त करे, जो गाँवों में दौरा करके प्रत्येक किसान के ऋण का लेखा तैयार करें। एक क़ानून बनाया जाय, जिसके अनुसार यदि कोई महाजन किसान के ऋण का ब्योरा देना अस्वीकार करे तो किसान उस ऋण से मुक्त मान लिया जाय। ऋण का लेखा मिल जाने पर कर्मचारी महाजन से इस बात का समझौता करे कि वह कम-से-कम कितना रुपया लेकर किसान को ऋण-मुक्त कर देगा। यदि सावधानी से काम किया जाय तो पचास प्रतिशत समझौता हो सकता है।

महाजन से समझौता हो जाने पर किसान सहकारी-साख-समिति का सदस्य बनाया जाय। जितना रुपया किसान स्वयं चुका सके, चुका दे और बाक़ी समिति एक-मुश्त अथवा क़िस्तों में चुका दे। समिति महाजन की देनदार हो जायगी और किसान से क़िस्तें वसूल करके महाजन को रुपया चुकाती रहेगी। यदि महाजन क़िस्तों में न लेना चाहेगा तो प्रान्तीय सरकार को उतना रुपया सहकारी-साख-समिति को ऋण दे देना चाहिए। समिति एकमुश्त महाजन का ऋण चुका देगी और किसान से क़िस्तें वसूल करके सरकार का ऋण चुकाती रहेगी। यदि किसान रुपया न दे सके तो सरकार उस हानि को सहे। यह भी सम्भव है कि महाजन समझौता न करे और इस प्रकार क़र्ज़ चुकाया जाना न स्वीकार करे। इसके लिए क़ानून बनाकर महाजन समझौता करने के लिए विवश किये जायँ।

१९३० के उपरान्त प्रत्येक प्रान्त में किसान और ज़मींदारों के रक्षार्थ अर्थात् उनके ऋण के बोझ को हलका करने के लिए कुछ क़ानून बनाये गये हैं। इन क़ानूनों से किसानों को कितना लाभ होगा, यह तो भविष्य बतलावेगा, परन्तु पैतृक ऋण की समस्या इनसे भी हल न हो सकेगी, यह प्रकट है।

यदि देखा जाय तो ये सब योजनायें त्रुटिपूर्ण हैं। लगातार पचास वर्ष से इस समस्या को हल करने का प्रयत्न किया जा रहा है, किन्तु अभी तक सफलता नहीं प्राप्त हुई है। सफलता मिलती भी कैसे? आज तक जितनी भी योजनायें सोची गईं उनमें एक भी ऐसी नहीं जो किसानों को ऋण-मुक्त कर सके। प्रत्येक योजना किसान को ऋण चुकाने की सुविधायें प्रदान करती है। सुविधाओं की आवश्यकता तो तब होती है जब ऋणी किसान में ऋण चुकाने की क्षमता हो। जहाँ क़र्ज़ चुकाने की ताक़त ही नहीं है, वहाँ सुविधाओं से क्या लाभ हो सकता है? विचार करने की बात है कि जो किसान वर्ष भर कठिन परिश्रम करने के उपरान्त केवल कुछ महीनों के लिए भोजन भर पाता हो, वस्त्र, ओषधि, शिक्षा तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं पर कुछ भी व्यय न कर सकता हो, वह किस प्रकार पुराने ऋण को चुका सकता है।

यदि हम चाहते हैं कि भारतीय किसान महाजनों की आर्थिक दासता से स्वतंत्र होकर अपने धंधे में उत्साह-पूर्वक लगकर खेती-बारी की उन्नति करे, ग्रामीण उद्योग-धंधों की सहायता से अपनी आय बढ़ावे, और मनुष्यों-जैसा जीवन व्यतीत करे तो उसे ऋण-मुक्त करना होगा। एक क़ानून बनाकर किसानों का सारा ऋण ग़ैर क़ानूनी घोषित कर दिया जाय, किसान महाजन का देनदार न रहे और ऋण-मुक्त हो जाय। जब एक बार किसान ऋण-मुक्त होकर स्वतंत्र वायुमण्डल में साँस लेगा तब उसकी मनोदशा में परिवर्तन होगा, जीवन निराशामय न होकर आशामय हो जायगा। खेती-बारी के लिए सहकारी-साख-समितियाँ उसे साख देंगी। वह वैज्ञानिक ढंग की खेती करेगा। ख़राब सालों के लिए अच्छे सालों में कुछ रुपया बचाकर रखने की बात उसकी समझ में अनायास ही आ जायगी। ग्रामीण धंधे तभी पनप सकेंगे और किसानों को अपनी फ़सल सस्ते दामों पर महाजन के हाथ बेचने पर विवश भी न होना पड़ेगा।

कतिपय सज्जन इस योजना का न्याय और वचन की पवित्रता की दुहाई देकर विरोध करेंगे। परन्तु यदि किसान के पैतृक ऋण का इतिहास जानने का प्रयत्न किया जाय तो ज्ञात हो जायगा कि किसान अथवा उसके बाप-दादों ने जितना क़र्ज़ महाजन से लिया था उसका कई गुना तो वह सूद के रूप में दे चुका है, फिर भी मूल का कई गुना उसे देना बाक़ी ही है। हिन्दू-धर्मशास्त्रों के अनुसार लेनदार (महाजन) क़र्ज़ लेनेवाले से मूल का दोगुना ही वसूल कर सकता है, (मनुस्मृति; दाम दुमत का नियम) दोगुने से अधिक वह किसी भी अवस्था में वसूल नहीं कर सकता, चाहे सूद के हिसाब से रुपया कितना ही क्यों न हो गया हो। प्राचीन समय में न्यायालय इसी नियम के अनुसार डिगरी दिया करते थे। अब भी कतिपय हिन्दू-राज्यों में यह नियम लागू है। जब किसान दोगुने से बहुत अधिक दे चुका है तब यदि उसका क़र्ज़ ग़ैर क़ानूनी घोषित कर दिया जाय तो हिन्दू महाजनों के प्रति कोई अन्याय न होगा। मुसलमान महाजन देश में कम हैं और उनके धर्मग्रन्थ क़ुरान के अनुसार तो सूद लेना ही मना है। ऐसी दशा में उनके प्रति भी कोई अन्याय न होगा। इस विषय में वचन की पवित्रता की दुहाई देना उस सुन्दर शब्द का दुरुपयोग करना है। क्या किसान ने प्रसन्नतापूर्वक महाजन के भयंकर सूद को स्वीकार किया था? प्रत्येक दशा में उसे विवश होकर ही महाजन के पास जाना पड़ता है। महाजन उसकी दीन अवस्था का अनुचित लाभ उठाता है। कभी कभी तो किसान को विवश होकर १०० रुपये लेकर २०० रुपये पर अँगूठा लगाना पड़ता है। ऐसी दशा में वचन की पवित्रता का प्रश्न ही कहाँ रहता है?

अभी हाल में भावनगर-राज्य में ग्रामीण-ऋण की समस्या को हल करने का एक सफल प्रयोग किया गया है। उस योजना को तैयार करने तथा कार्य-रूप में परिणत करने का श्रेय भावनगर के दीवान सर प्रभाशंकर पट्टनी को है। सर्वप्रथम सर प्रभाशंकर पट्टनी ने राज्य के सब किसानों के ऋण का लेखा तैयार करवाया, जिससे ज्ञात हुआ कि राज्य के किसानों पर ८६ लाख रुपये से कुछ अधिक क़र्ज़ है। इसके बाद उन्होंने महाजनों की एक सभा की और उन्हें यह भली भाँति बतला दिया कि राज्य उन्हें इस ऋण का एक चौथाई देकर किसानों को उनके ऋण से मुक्त कर देना चाहता है। पहले तो महाजन तैयार नहीं थे, परन्तु यह देखकर कि राज्य ऐसे क़ानून बनाने जा रहा है जिनके कारण किसानों से रुपया वसूल करना असम्भव हो जायगा, उन्होंने २१ लाख रुपये पर राज्य से समझौता कर लिया। राज्य ने २१ लाख रुपये ख़ज़ाने से देकर किसानों का सारा ऋण चुका दिया। सर प्रभाशंकर पट्टनी का कथन है कि इसका फल यह हुआ है कि किसानों ने वैज्ञानिक ढंग से खेती करनी आरम्भ कर दी है। उत्तम यन्त्र, बैल, खाद तथा बीज का प्रचार अपने आप बढ़ रहा है। किसान नये कुएँ खोद रहे हैं और नवीन उत्साह से खेतों की पैदावार बढ़ाने में लग गये हैं। २१ लाख रुपये से अधिक तो वे प्रतिवर्ष महाजनों को सूद में दे देते थे। सर प्रभाशंकर पट्टनी ने इस विषय पर लिखते हुए कहा है कि इस योजना के उपरान्त मेरा यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया है कि बिना किसान को ऋण-मुक्त किये उसकी दशा सँभल ही नहीं सकती।

यदि ऋण को ग़ैर क़ानूनी घोषित करने में अधिक अड़चन प्रतीत हो तो भावनगर ने जो मार्ग दिखलाया है उसी का अनुसरण करना चाहिए। प्रश्न हो सकता है कि सरकार के पास इतना रुपया कहाँ है? ब्रिटिश भारत का ग्रामीण-ऋण ९०० करोड़ रुपये के लगभग है। इसको चुकाने के लिए लगभग ३०० करोड़ रुपयों की आवश्यकता होगी। सरकार इसके लिए 'पूँजी-कर' नाम का एक विशेष कर किसानों, मज़दूरों तथा १०० रुपये से कम आयवालों को छोड़कर सब पर लगावे और उसकी आय से सारा ऋण चुका दिया जाय।

अधिकतर महाजन किसानों को वर्षों से चूस रहे हैं। इस भयंकर अन्याय को हटाने से देश की लगभग तीन-चौथाई जन-संख्या आर्थिक दासता से मुक्त होती है तो क्यों न सरकार इस कार्य को बिना विलम्ब कर डाले?

पाँगी-पर्यटन



लेखक, श्रीयुत दौलतराम गुप्त 'प्रेमी'

यह प्रसन्नता की बात है कि भारतीयों में भी अब पर्वतों पर भ्रमण करने की रुचि बढ़ रही है। नैनीताल, मंसूरी, शिमला, काश्मीर तो सभी जाते हैं। मज़ा तब है जब लोग अज्ञात और सुन्दर स्थानों का भ्रमण करें। पाँगी एक ऐसा ही स्थान है जहाँ की यात्रा इस लेख के लेखक महोदय ने गत वर्ष की थी। आशा है सरस्वती के भ्रमण-प्रेमी पाठकों को यह लेख रुचिकर प्रतीत होगा।

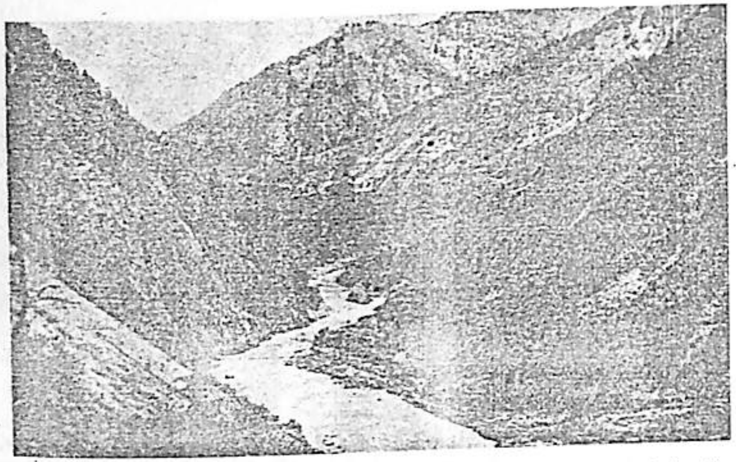
प्राचीन काल के भारतवासियों का हिमालय व हिमालय-प्रदेश के प्रति क्या दृष्टिकोण था, इसका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक नहीं है। परन्तु मध्यकालीन भारत के इतिहास से प्रकट होता है कि भारतीयों का हिमालय व हिमालय-प्रदेश के प्रति वह दृष्टिकोण नहीं था जो वर्तमान समय में है। हो सकता है कि वह समय ऐसा न था जैसा आज है। आज भी यदि भारतीयों की हिमालय के प्रति कुछ श्रद्धा है या हिमालय की मुख्य मुख्य जगहों में भ्रमण करने का शौक़ है तो वह भी पाश्चात्य सभ्यता के कारण। अँगरेज़ों को इन जगहों से स्वाभाविक प्रेम है, क्योंकि उनका देश इसी प्रकार का है। वहाँ का जलवायु और हिमालय के मुख्य मुख्य स्थानों का जलवायु एक होने के कारण उन्हें यहाँ के स्थान पसन्द हैं। इसी कारण दार्जिलिंग, आबू, शिमला, नैनीताल, डलहौजी, मंसूरी आदि ग्रीष्मकालीन अधिकारी केन्द्र बनाये गये हैं। उन्हीं की देखा-देखी भारतीयों ने भी हिमालय-पर्यटन आरम्भ कर दिया है। अगर यह कहा जाय कि केवल हिमालय-प्रदेश के महत्त्व के कारण वे ऐसा करने लगे हैं तो यह अत्युक्ति होगी।

जो हो, अब भारतीयों-द्वारा उपर्युक्त स्थान अपनाये गये हैं, यह कम प्रसन्नता की बात नहीं है। अब भारतीय भी एक बड़ी संख्या में मुख्य मुख्य पहाड़ी स्थानों के अतिरिक्त हिमालय की अन्य जगहों में भी घूमने निकल जाते हैं। यहाँ हम ऐसे ही यात्रा-प्रेमी सज्जनों व यात्रा-सम्बन्धी लेख पढ़नेवाले प्रेमियों को एक ऐसे स्थान का परिचय देते हैं जो अभी तक उतना प्रकाश में नहीं आया है।

जिन पहाड़ी जगहों पर मोटर जा सकते हैं या और कोई सवारी मिल सकती है वे अधिकांश भ्रमण-प्रेमियों को सुलभ हैं। परन्तु इस नवीन स्थान का नाम जो आज तक मनुष्य की कृत्रिमता से अछूता रहा है, आज से पहले शायद ही कभी सुना गया होगा, इसमें सन्देह है। इसी कारण 'सरस्वती' के पाठकों को जिनमें अनेक ने कई मनोहर पहाड़ी दृश्यों को देखने के अतिरिक्त उन स्थानों में रहकर वहाँ का आनन्द लिया है, एक नवीन जगह से परिचित करा देना अच्छा ही होगा।

यह स्थान पञ्जाब-प्रान्त के उत्तर में योगेन्द्रनगर तथा जम्मू-राज्य के मध्य में चम्बा-राज्य के अन्तर्गत है तथा जगत्-विख्यात कश्मीर के पड़ोस में है और यह 'पाँगी' के नाम से प्रसिद्ध है।

पठानकोट से ५२ मील प्रसिद्ध पहाड़ी स्थान डलहौजी है, जिसकी ऊँचाई प्रायः ८ हज़ार फ़ुट है।

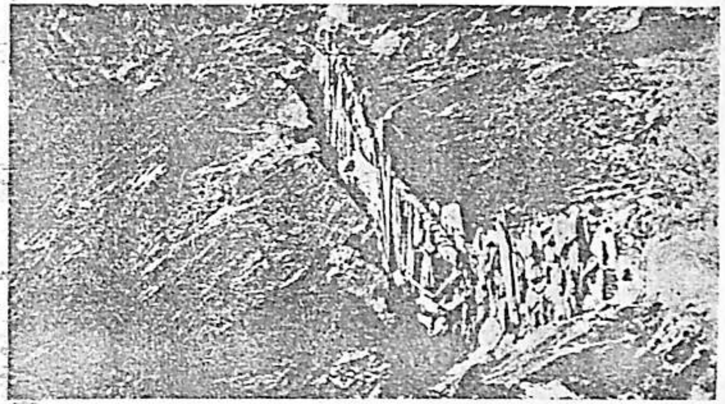


[पाँगी उपत्यका का एक दृश्य। पर्वतों के बीच में चनाव (चन्द्रभागा) बह रही है।]

डलहौज़ी से लगभग २० मील दूर प्रसिद्ध हिन्दू-रियासत चम्बा है। पाँगी चम्बा से पश्चिम-उत्तर की ओर ७५ मील पर है। यात्री चम्बा से ४५ मील तक घोड़े पर और सामान घोड़े-खच्चरों पर लेकर जाते हैं। यह ४५ मील का मार्ग अति रमणीक है। इस मार्ग में अनेक जड़ी-बूटियों से व चीड़ तथा देवदारु के ऊँचे घने पेड़ों से सुसज्जित पहाड़ियाँ पड़ती हैं तथा यात्री को चढ़ाई-उतराई का सामना करते हुए अपना मार्ग तय करना पड़ता है। परन्तु इसके आगे घोड़ा या खच्चर नहीं जा सकते और यात्री को अपना सामान कुली की पीठ पर लादकर पैदल चलना पड़ता है।

जहाँ से घोड़े-खच्चरों को विदा करके यात्री को पैदल यात्रा करनी पड़ती है, उस स्थान का नाम 'इल्वास' है। यात्री खाने-पीने की वस्तुएँ इच्छानुसार चम्बा-डलहौज़ी से ही अपने साथ ले आते हैं, क्योंकि यहाँ इल्वास में आटा-दाल, घी और लकड़ी के सिवा अन्य चीज़ें नहीं मिलती हैं और न आवश्यक वस्त्र ही प्राप्त होते हैं। और पाँगी जानेवालों के पास गरम ऊनी वस्त्रों का होना ज़रूरी है। इल्वास से पाँगी-उपत्यका का मुख्य स्थान किलाड़ ३० मील दूर है और मार्ग में तीन पड़ाव करने पड़ते हैं। इस तीस मील के मार्ग में कोई ग्राम, बस्ती या दूकान नहीं मिलती है, केवल ऐसे ऊँचे शैल मिलते हैं जिन पर बर्फ़ जमी होती है और जो स्फटिकवत् दिखलाई देते हैं या ऐसे नंगे पर्वत मिलते हैं जिन पर ११ हज़ार फ़ुट तक की ऊँचाई पर भोजपत्र के वृक्ष दिखाई देते हैं। हाँ, पीने के लिए जल की कमी नहीं है। स्वादिष्ट जल के अनेक झरने यहाँ मिलते हैं।

पहले दिन ९ मील चलकर 'सत्रूँडी' नाम का स्थान मिलता है। पहले यात्री यहाँ किसी ऊँचे पत्थर की चट्टान के नीचे जिसे इस ओर 'कुड' कहते हैं, ठहरने की व्यवस्था किया करते थे। यात्रियों की तकलीफ़ को देखकर चम्बा-राज्य के दीवान—दीवान बहादुर श्री माधोराम जी ने अब यहाँ एक धर्मशाला बनवा दी है। रात्रि यहाँ व्यतीत कर प्रातःकाल साढ़े पाँच बजे यात्री 'जोत' का रास्ता पकड़ते हैं। यहाँ से क़रीब मील सवा मील जाने के पश्चात् जोत पर जो 'सच-पास' के नाम से प्रसिद्ध है और जिसकी ऊँचाई समुद्रतट से १४,३०० फ़ुट से अधिक है, चढ़ना पड़ता है। तीन मील की चढ़ाई चढ़कर यात्री शिखर पर पहुँचता है। रास्ता टेढ़ा-मेढ़ा और पथरीला है। रास्ता उन यात्रियों को दिखाई देता है जो अगस्त या सितम्बर में आते हैं। जून व जुलाई के मध्य तक रास्ता नहीं दिखाई देता। दिखाई देता है केवल एक सीधा अंडाकार सफ़ेद पर्वत। पत्थर की तरह जमी हुई बर्फ़ पर पाँव फिसलने के डर से एक कुल्हाड़ी साथ रखनी पड़ती है। (पहाड़ी कुलियों के पास ऐसी कुल्हाड़ी सदा रहती है।)



[मार्ग का एक भयानक दृश्य; पहाड़ में लकड़ी के खम्भे डालकर उन पर तख्ते रख दिये गये हैं जो चलते समय हिलते हैं।]

यात्रियों को अगस्त-सितम्बर में ही आना चाहिए। उन दिनों यहाँ अधिक रमणीकता होती है। अनेक प्रकार के पुष्पों, पत्तियों, वनौषधियों, बूटियों से सुसज्जित यह पर्वत बड़ा चित्ताकर्षक हो जाता है। चढ़ते समय कई मनुष्यों को चक्कर आने व उल्टियाँ होने लगती हैं। पहाड़ी इसे बूटियों का प्रभाव बतलाते हैं। परन्तु यह सत्य प्रतीत नहीं होता। बूटियों का असर तो सब पर एक-सा होना चाहिए। लेकिन यह बात नहीं है। कइयों को नाम-मात्र भी कष्ट नहीं होता, कइयों को सिर-पीड़ा तक हो जाती है। सम्भवतः अधिक ऊँचाई पर ऑक्सी-जन का अभाव ही इसका कारण हो सकता है।

'जोत' की चोटी पर चढ़ जाने से वहाँ एक ओर वर्षों, क्या शताब्दियों से जमी हुई बर्फ़ का पहाड़ मिलता है। कभी किसी ने उस पर चढ़कर देखा नहीं कि आगे वह कहाँ तक गया है। ध्यानपूर्वक देखने पर उस का रङ्ग कुछ नीला-सा दिखाई देता है। यहाँ से आगे उतरना पड़ता है और मीलों तक बर्फ़ पर ही सीधे उतरते जाना होता है। वर्षों से जमी हुई बर्फ़ की वह सड़क कैसी है? यह प्रश्न देखने से सम्बन्ध रखता है और हर वर्ष इधर-उधर के पहाड़ों से सरक कर आनेवाली बर्फ़ इस पर जमती जाती है और इसके नीचे उसी बर्फ़ के पिघलने से नदी बन गई है, मानो बर्फ़ की पिघली हुई नदी पर बर्फ़ का ही पुल है।

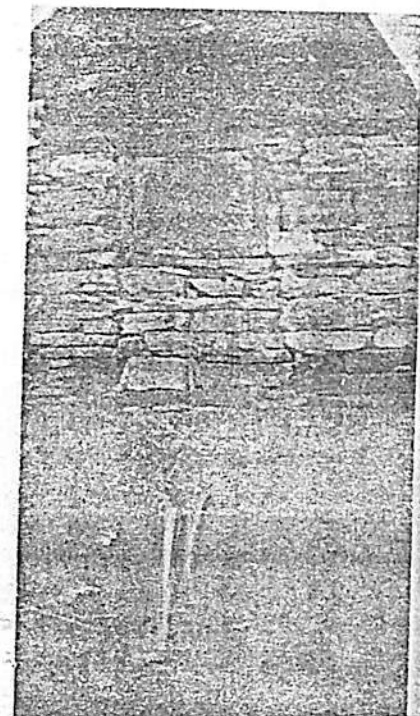
मीलों तक कोई पेड़ नहीं दिखाई देता। लाल रङ्ग के पहाड़ ही पहाड़ दृष्टि में पड़ेंगे। अकेले-दुकेले का मन भयभीत हो जाता है और सात मील की उतराई के बाद 'दुनई' नाम का स्थान मिलता है। यहाँ रहने को 'कुड' ही मिलता है। परन्तु उतराई का रास्ता होने के कारण यात्री बहुत जल्दी यहाँ पहुँच जाता है। तीन मील की चढ़ाई में जितना समय लगता है, उतना ही सात मील उतरने में लग जाता है। इस कारण यहाँ ठहरने की आवश्यकता नहीं होती। यहाँ से क़रीब ४ मील आगे 'वृन्दावनी' है। इसे पहाड़ी लोग 'विद्रावणि' कहते हैं। यह स्थान उत्तम है। जगह स्वच्छ और सुहावनी होने के कारण, साथ ही यात्री के थके होने के कारण उसका यहाँ से आगे चलने को मन ही नहीं चाहता। रियासत की तरफ़ से यहाँ एक विश्रामगृह भी बना हुआ है। परन्तु इसमें ठहरने के लिए चम्बाराज्य के



['टेढ़ापुल' यह वृन्दावनी से किलाड़ के रास्ते में है ।]

...कारियों से मिलकर आज्ञापत्र ले लेना चाहिए। ...वनी में लौहजल का एक झरना है। इसका पानी कुछ लाल रङ्ग का और गन्धयुक्त है, परन्तु नियमित रूप से पीने पर बड़ा गुणकारी सिद्ध होता है। यहाँ से 'किलाड़' ७ मील रह जाता है। रात्रि में ठहरने के बाद यहाँ से चलकर दो भीषण चढ़ाइयों व एक उतराई उतरने के पश्चात् यात्री किलाड़ पहुँचता है। यह स्थान भी रमणीक है। यहाँ एक विश्रामगृह, पोस्ट आफ़िस, सरकारी क़िला (दुर्ग), कुछ दूकानें और दो छोटे-छोटे सरकारी बग़ीचे भी हैं। यहाँ पानी के तीन चश्मे हैं। 'दाछी-चा' व 'भोसर' नाम के दो स्रोतों का पानी मीठा, स्वादिष्ट और गुणकारी है। 'थेसर' नामक स्रोत का पानी यदि कोई तीन रोज तक लगातार पीवे तो २० क़दम की चढ़ाई चढ़ने पर भी दम फूल जाता है। प्राकृतिक दृश्य अति उत्तम हैं।

'किलाड़' से देखने पर उत्तर-पूर्व की ओर एक अंडाकार पर्वत सदा हिम से ढँका रहने के कारण रजतशिला-सा प्रतीत होता है। और उस पर प्रत्येक दिन एक-न-एक समय बादल अवश्य मँडराते रहते हैं। यहाँ के लोग उसे भगवान् शंकर का स्थान मानते हैं। उसके ऊपर आज तक कोई नहीं चढ़ सका। एक अँगरेज यात्री को इन पंक्तियों के लेखक ने स्वयं देखा था, जो चोटी पर चढ़ने के विचार से लोहे की बहुत-सी कीलें बनवा कर साथ ले गया था, परन्तु चढ़ नहीं सका।



[अभ्रक का झरना जो तपेदिक़ के रोगियों का रोग दूर करने के लिए विख्यात है ।]

यहाँ के लोग इस पर्वत के पास एक बूटी लेने जाते हैं, जिसे वे गेहूँ में मिलाकर खाते हैं। इन लोगों का कथन है कि सन्ध्या व प्रातःकाल चार बजे इस पर्वत की ओर से आवाजें आती हैं मानो आरती हो रही है।

कई अँगरेज यात्रियों ने इस पर्वत का फ़ोटो लेना चाहा, पर नहीं ले सके। केमरा सेट करते ही चारों ओर बादल छा जाते हैं। नजदीक जाकर भी फ़ोटो नहीं ले सके। उस जगह का नाम 'हुण्डान' है।

किलाड़ के पश्चिम की ओर पाँच मील पर 'तिलमिली' नाम का अति स्वादिष्ट जल का एक विमल जलाशय है। यह 'अभ्रक' की खान से निकलता है। काँच के साफ़ गिलास में पानी भर कर देखने से जल में अभ्रक के अणु दिखाई देते हैं। इसका पानी मशहूर है और राजयक्ष्मा के रोगियों के लिए अति लाभदायक सिद्ध हुआ है। क़रीब दो-ढाई या तीन मास तक यहाँ रहकर जल सेवन करने पर अवश्य लाभ होता है। परन्तु प्रथम व द्वितीय स्टेज के रोगियों को यहाँ रहने के लिए अपना ख़ीमा साथ लाना चाहिए। रोगियों को 'विश्रामगृहों' में यहाँ नहीं रहने देते। भोजन पचाने की शक्ति तो इस जल में अग्नि की तरह है।



[पाँगी की स्त्रियाँ अपनी देशी पोशाक में ।]



[पाँगी की स्त्रियों का एक दूसरा ग्रूप ।]

इसी स्थान से क़रीब ११ मील पर जम्मू-राज्य की सीमा है और रास्ता कश्मीर को जाता है। किलाड़ से पूर्व की ओर कुल्लू को भी रास्ता जाता



[पाँगी का एक सभ्य पुरुष अपनी देशी पोशाक में।]

है, परन्तु है बड़ा भयङ्कर! किलाड़ ७½ हज़ार फ़ुट की ऊँचाई पर है। सात से लेकर ११ हज़ार फ़ुट की ऊँचाई तक यहाँ गाँव बसे हुए हैं।

यहाँ की स्त्रियाँ स्वस्थ और बड़ी बलवान होती हैं, पर मर्द उतने नहीं। यहाँ के निवासी निर्धन हैं और उनमें वही दोष-गुण पाये जाते हैं जो अन्य पहाड़ी स्थानों में हैं। सर्दियों में वे घर घर 'नङ्गा जौ' की मदिरा बनाकर पीते हैं। इसके लिए सरकार की ओर से कोई रोक-टोक नहीं है। मदिरा पीकर यहाँ के स्त्री-मर्द एक साथ नाचते हैं। 'नङ्गा जौ' को वे 'यौ' कहते हैं।

जाति और धर्म से यहाँ के निवासी हैं तो हिन्दू, परन्तु वर्ण-व्यवस्था उनमें नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आपस में बिना किसी रोक-टोक के विवाह कर लेते हैं। ब्राह्मण भी अपनी जाति 'राठी' बताते हैं। अब कुछ लोग अपने आपको किसी यात्री के पूछने पर ब्राह्मण व राजपूत कहने लग पड़े हैं। परन्तु कहने भर हैं, उनमें उसके भेदभाव का आपस में बर्ताव नहीं करते। यज्ञोपवीत सौ में से एक के ही होगा। हाँ, अछूत यहाँ भी हैं। परन्तु राठी उनको छूने में संकोच नहीं करते। कई सामाजिक कामों में उन्हें भी सम्मिलित कर लेते हैं। देवी व नाग-देवता के मन्दिर पाये जाते हैं। उनके प्रति श्रद्धा भी उन लोगों में पाई जाती है। बौद्ध भिक्षुओं और बौद्ध-मत पर उनको बड़ी श्रद्धा है। जादू-जन्त्र पर बड़ा विश्वास रखते हैं। रियासत की तरफ़ से यहाँ एक औषधालय भी है, परन्तु वह चलता नहीं है। उनको ओषधियों पर विश्वास ही नहीं होता। यदि उन लोगों को खून के दस्त शुरू (डायसेण्टरी) हो जायँ तो बचते मुश्किल से हैं। यहाँ के लोग 'पँगवाले' कहलाते हैं। उनकी भाषा 'पँगवाली' कहलाती है। इस भाषा में संस्कृत और फ़ारसी के शब्द अधिकता से पाये जाते हैं।

दीर्घशङ्का के पश्चात् शौच नहीं करते। पास पड़े पत्थर से ही शुद्धि कर लेते हैं। लघुशङ्का खड़े खड़े करते हैं। मांस खाने के लिए तीन तीन पाँच पाँच बकरे व भेड़ें कार्तिक मास में ही काटकर रख छोड़ते हैं और सारी सर्दियों में उन्हें खाते रहते हैं। कोई समूचा हिस्सा उबलने को डाल देते हैं। उबलने पर उसकी बोटी बोटी करके घर के सभी लोगों को बराबर बराबर भाग में बाँट देते हैं। वे कहते हैं कि मांस खाना पाप है, इसलिए इसके पाप में सबको बराबर बराबर हिस्सा होना चाहिए। पर्दे की प्रथा

बिलकुल नहीं है। योरपीय जातियों और इनमें केवल विद्या का ही भेद है। यदि ये शिक्षित हो जायँ तो सामाजिक तौर पर ये भी वैसे ही हैं।

प्रायः सारे का सारा गृह-कार्य स्त्रियाँ ही करती हैं। आक्टोबर में उन्हें विशेष कार्य करना पड़ता है, आठ महीने के लिए लकड़ी इकट्ठी करनी पड़ती है, पशुओं के लिए घास एकत्र करनी पड़ती है। आक्टोबर से लेकर मई तक वहाँ एक भी हरा पत्ता नहीं दिखाई देता, केवल बर्फ़ ही बर्फ़ रहती है। आक्टोबर से मई-पर्यन्त जब भी बादल आते हैं, बर्फ़ ही गिरती है। पशुओं का पालन सूखी घास पर ही होता है। बर्फ़ के पड़ जाने पर कुल्लू तथा चम्बा के रास्ते तो बिलकुल ही बन्द हो जाते हैं, केवल 'पाडर' (कश्मीर-रियासत) का रास्ता यदि बर्फ़ कम हो तो खुला रहता है। और डाक भी महीने में एक बार उसी रास्ते से आती-जाती है। डाक केवल जंगल-विभाग के उन राजकर्मचारियों की होती है जो सरकार की ओर से वहाँ रहते हैं या किसी अन्य एक-दो व्यक्तियों की हो तो हो। साधारण जनता तो डाक क्या वस्तु है, यह तक नहीं जानती।

पाँगी से बाहर क्या हो रहा है, और भी दुनिया है या नहीं, यह वहाँ सर्दियों में मालूम करना कठिन है। चम्बा या अन्य किसी स्थान के रहनेवाले का कोई आत्मीय 'पाँगी' में हो या पाँगीवाले का पाँगी से बाहर कहीं हो तो महीनों तक उसकी क्या अवस्था है, यह जानना कठिन है। आटा, लकड़ी, घास आदि वस्तुएँ आठ महीने के लिए एकत्र करके आक्टोबर में वहाँ के लोग निश्चिन्त हो जाते हैं।

मध्य जून से मध्य आक्टोबर तक चम्बा-राज्य के राजकर्मचारी, एक पोस्टमास्टर, एक स्कूल-टीचर, जंगल-विभाग का एक अफ़सर वहाँ जाते हैं। अदालती कार्यवाही के लिए वहाँ वालों को चम्बा आना पड़ता है। उन लोगों के मुक़दमे की तारीखें भी जून से लेकर आक्टोबर तक ही पड़ती हैं। झगड़े प्रायः ज़मीन-सम्बन्धी ही होते हैं।



[एक पाँगी-निवासी खाने के लिए रोटी गरम कर रहा है। इसके भोजनालय का सामान केवल दो बर्तन हैं।]

उन इलाक़ों में राज्य की ओर से 'चाड़' तथा 'लिखनारा' ऐसे दो कर्मचारी होते हैं। सर्दियों में यदि कोई रिपोर्ट, मुक़द्मा आदि करना हो तो उनके पास लिखवा दिया जाता है। जब जून में अन्य विभागों के राजकर्मचारी वहाँ जाते हैं तब उनका सब प्रकार का प्रबन्ध करना भी इन्हीं कर्मचारियों के हाथ में होता है।

देश के विषय में उनका ज्ञान अल्प है। चम्बा, अमृतसर, लाहौर, हरिद्वार, काशी, बम्बई, कलकत्ता, एक-दो और तीर्थस्थानों के नाम ५ प्रतिशत आदमी जानते हैं। इनके सिवा बाक़ी दुनिया भी है, यह वहाँ कम लोग जानते हैं। ऐसे लोग बहुत ही अल्पसंख्या में पाये जाते हैं जो उपर्युक्त स्थानों के सिवा दुनिया की किसी दूसरी जाति या देश के सम्बन्ध में कुछ जानते हों। महात्मा गांधी के नाम से कई लोग विज्ञ हैं। अपनी भाषा में वे महात्मा जी को 'गान्हि महातम्' कहते हैं। इन पंक्तियों के लेखक से कई बार कइयों ने प्रश्न किये हैं कि 'गान्हि महातम्' आज-कल कहाँ है, क्या करता है, उसका घर कहाँ है? वह अकेला होने पर भी अँगरेज़ 'बाछाह' (बादशाह) से क्यों लड़ता है? वह क़ैद क्यों होता है? उत्तर पाकर वे बड़े हैरान होते

हैं। ये सब बातें उन्हें समझाने में कई घण्टे बीत जाते हैं।

गांधी जी के नाम से क़लम का खद्दर व दिल्ली-क्लाथ-मिल के सफ़ेद कपड़े वहाँ बड़े मशहूर हैं। 'गान्हि कपड़े' के नाम से माँगते हैं। सन् १९३२ की बात है। कुछ पाँगीवाले चम्बा आये और एक दूकान पर 'मोहनभोग' आटे की थैलियाँ देखकर मुझसे प्रश्न करने लगे—'बाबू जी, यह आटा भी गांधी ने भेजा है?' एक पाँगीवाले ने अब की बार जब मैं पाँगी गया तब मुझे समाचार-पत्र पढ़ते देखकर पूछा—

"आज-कल लड़ाई कहाँ हो रही है?"

"आज-कल लड़ाई कहीं नहीं हो रही है!"

"अकबार (अख़बार) क्यों आया?"

वे समझते हैं कि अख़बार तभी छपता है जब लड़ाई हो या गांधी ने अँगरेज़ से लड़ाई छेड़ दी हो। मैं यह उत्तर दे देता कि इटली और अबीसीनिया में युद्ध हो रहा है तो 'इटली कौन है, काला लोग है या अँगरेज़' कितना बड़ा बाछाह (बादशाह) है, क्यों लड़ता है, आदि आदि प्रश्नों से मेरा समय नष्ट होता। ऐसे प्रश्न मेरे वहाँ के नौकर मुझसे कर भी चुके थे।

'पूर्णमासी' के अतिरिक्त जिसे वे अपनी भाषा में 'पुन्यूँ' कहते हैं, जन्माष्टमी, शिवरात्रि का व्रत वहाँवाले बड़ी श्रद्धा से करते हैं। सब नहीं, परन्तु शिवरात्रि अद्भुत ढङ्ग से मनाते हैं। शिवरात्रि को अपनी भाषा में वे 'शैरवाट' कहते हैं। एक दिन पहले, शिव चौदश को व एक दिन बाद यानी तीन दिन तक वे ५ बजे शाम से ही दरवाज़े वग़ैरह बन्द करके अन्दर बैठ जाते हैं, रात्रि भर बाहर निकलना बन्द हो जाता है। दरवाज़ों और रोशनदानों में काँटे लगा देते हैं, प्रतिद्वार और रोशनदान के आगे सफ़ेद पत्थर की कंकड़ियाँ व सफ़ेद मिट्टी की रेखायें डाल देते हैं। ऐसा करने से उनका मतलब यह है कि इन तीन दिनों में शिव जी अपनी फ़ौज—भूत, प्रेत व राक्षसों को छोड़ देते हैं। रात को जो आदमी बाहर रहेगा उसे वे खा जायँगे। जो घर उपर्युक्त ढंग से बंद न किया होगा उसमें वे घुस आवेंगे। इसी कारण द्वार आदि बन्द करके वे ५ बजे से ही अन्दर हो जाते हैं, लघुशङ्का या दीर्घशङ्का आदि के लिए भी बाहर नहीं निकलते।

कुछ लोग बौद्धधर्म के अनुयायी हैं, हिन्दू भी बौद्ध भिक्षुओं—'लामा' लोगों के प्रति बड़ी श्रद्धा रखते हैं। उनसे यन्त्र, मन्त्र, टोना आदि सब करवाते हैं। त्योहार उनके अपने ही हैं—एक-दो त्योहार देशी त्योहारों से मिलते हैं। बाक़ी सब उनके अपने ढङ्ग के ही हैं। देवताओं के स्थान पर बलि देने का आम रवाज है।

शादी-ब्याह में अधिक ख़र्च नहीं करते। हाँ, मरने पर ख़र्च शादी से कहीं अधिक हो जाता है। लड़कीवाला लड़के की तलाश नहीं करता। लड़केवाले को ही पूछताछ करनी पड़ती है। लड़की का ब्याह कर सुसराल भेजने के अतिरिक्त एक और रवाज भी है कि लड़कीवाला यदि उसके घर में काम करनेवाले कम हों तो, लड़के को अपने घर में ही रख लेता है। उसे घर-जमाई करना कहते हैं।

एक सुन्दर कहानी

चित्रकार की आकांक्षा

लेखक, श्रीयुत अस्तित्व श्रीवास्तव, बी० ए०

नागपुर के फ़्रेडकटाउन में अधिकांश मध्यम और प्रथम श्रेणी के ही लोग रहते हैं, किन्तु पोस्ट-आफ़िस के पीछे एक छोटा-सा मकान है, जिसमें पाँच छः महीने हुए एक दुबला-पतला युवक चित्रकार आकर रहने लगा है। उसका नाम सुधीर है।

चित्रकार के घर में केवल दो ही कमरे हैं, ऊपरवाले कमरे से लगी एक खुली छत है। उस घर में रहनेवाले केवल दो ही व्यक्ति हैं—सुधीर और उसकी पत्नी सुषमा।

प्रातःकाल हवाख़ोरी से लौटते समय सड़क पर जाते हुए व्यक्तियों की दृष्टि अनायास उस छत पर दौड़ जाती है, जहाँ चित्रकार किसी कुमारी का चित्र अंकित करने में तन्मय रहता है। सड़क की हलचल और थोड़ी ही दूर से हज़ारों मन कोयला जलाती हुई जानेवाली रेलगाड़ी की झकझक भी उसका ध्यान विचलित नहीं कर पाती। चित्रकार अपने काम में सदा व्यस्त रहता है। यह जानते हुए भी कि सुधीर एक ऊँचे दर्जे का चित्रकार है उसके शुष्क-व्यवहार के कारण उसके यहाँ जाकर अपमानित होने से लोग भय खाते हैं। उसके घर कोई आता-जाता नहीं। सुधीर स्वयं भी एकान्तप्रिय है। वह अकेले में ही थोड़ा-बहुत प्रसन्न रह सकता है।

× × × ×

सुधीर आज ऊपर के कमरे में पड़ा पड़ा सोच रहा है—जीवन के २५ वर्ष ३ मास व्यतीत हो चुके, आज चौथे महीने का तीसरा दिन है और अब शायद ज़िन्दगी के दस-पन्द्रह ही दिन और बाक़ी हों।

रोज़ ही पड़े पड़े सुधीर के अतीत की एक एक घटना चलचित्रों के समान उसकी नज़रों से गुज़रा करती है और उसे वह महत्त्वपूर्ण क्षण याद हो आता है जिसके बाद उसका जीवन असीम दुख के भार से वेदनामय हो गया था। उसी सन्ताप से पीड़ित होकर आज भी जब वह अपनी गरम आहों से चिर-वेदना का करुणगीत गाता है, अपनी अन्तःशान्ति के लिए आँखों से पीड़ा बहाता है, तब संसार उसका उपहास करता है कि भावुक मूर्ख किसी के प्रेम में पागल हो गया है। किन्तु उसे इस सुविशाल विस्तृत जगत् की, परलोक की और अपनी—किसी की रत्ती भर परवा नहीं है। उसके अवशेष जीवन का एक उद्देश है, दिल की एक माँग है, रोते प्राणों की एक आरज़ू है, बस उसी की प्राप्ति की आशा-तृष्णा में उसके प्राण अटके हैं; वह आत्मबलिदान करने को उतावला है। उसको इतना स्वाभिमान है कि किसी के पास अपनी इच्छा-पूर्ति की सहायता-भिक्षा माँगने नहीं जाता; स्वयं भिक्षुक है, स्वयं दाता है।

प्रतिदिन प्रातः की स्वर्णरश्मियाँ जब वातायन से प्रवेश कर उसके रुग्ण मलिन मुख पर फिसल कर उसका उपहास करने लगतीं तब अपने आप ही उसके नेत्र खुल जाते। उसके कर्ण-कुहरों में किसी अज्ञात विजय के मधुर-संगीत की तान गूँज उठती, और वह तृण-काय चित्रकार कठिनाई से उठकर न मालूम किस आह्लाद और अपनेपन में मुस्करा देता। फिर वह कोने में रक्खे हुए चित्र को एकटक निहारने लगता, आत्म-विस्मृत-सा, तन्मय-सा होकर भावुक चित्रकार उस चित्र को ही निहारता रह जाता और उसकी गड्ढे में धँसी हुई आँखों से आँसू की दो बूँदें चुपचाप लुढ़क पड़तीं। जब उसकी तन्मयता

भङ्ग होती तब वह अपने गिरे स्वास्थ्य की किंचित् चिन्ता न कर कोने से चित्र-तूलिका आदि सामग्री उठाकर कमरे से बाहर छत के प्रकाश में आजाता और वहीं चित्र बनाने में दो-तीन घण्टे संलग्न रहता। इसके बाद कहीं उसे दुनिया के अन्य नित्यकर्म करने का अवकाश मिलता।

सुधीर को अपने दुखमय जीवन की इस नीरस नियमावली को प्रतिदिन दुहराने में एक मीठापन मालूम होता था। नया नया उत्साह मिलता था, विचित्र स्फूर्ति उत्पन्न होती थी। उसने अपना विस्तृत संकुचित संसार उसी चित्र के बनाने में केन्द्रीभूत कर दिया था, जहाँ वह जीवन का दुख-सुख, आनन्द-विनोद, परिहास प्रतिबिम्बित पाता था। वह बेसुध हो नियम से नित्य उस चित्र में जीवन डाला करता था।

किन्तु आज ?

आज वह अपनी दिनचर्या के इस परमावश्यक अंग को भूला हुआ चारपाई पर पड़ा है। जिस उषातारा को देखकर किसी यक्ष के मेघदूत के समान विकल-विचलित संदेश-वाहक समझकर वह उठ बैठता था, आज वह भी निराश हो लौट गया है; किन्तु वह पड़ा है! अंशुमाली की प्रखर किरणें वातायन से प्रवेश कर उसे झुलस देना चाहती हैं, किन्तु वह पड़ा है—विचार-मग्न, चिन्तामग्न।

आज यही सोच रहा है—

जीवन के पचीस वर्ष, तीन मास और शायद तीन दिन बीत चुके हैं। अब मैं अपने दिल के अरमानों को निकालने के लिए इस दुनिया में चन्द दिनों का ही मेहमान हूँ।

× × ×

इसी प्रकार न-जाने किस विचार में लीन हो सुधीर ने करवटें बदलते हुए सारा दिन काट दिया। सुषमा ने न-जाने कितनी बार आकर सुधीर से उसकी तबीयत का हाल पूछा, किन्तु अन्यमनस्क, चिन्तित सुधीर ने चुपचाप पड़े रहने देने की ही मूक-प्रार्थना की।

सुषमा को सुधीर ने शायद ही कभी स्नेहभरी दृष्टि से देखा हो, कदाचित् ही कभी सहानुभूति-पूर्ण शब्द कहकर उसके हृदय को शान्त किया हो। वह सुधीर से उसका हाल बार बार पूछने का साहस न कर सकी! वह चारपाई पर बैठी अपने प्राण-धन की चिन्तनीय दशा को देखकर आँसू पोंछती रही। सुधीर आँखें मूँदे पड़ा रहा।

प्रतीची के अस्तंगत सूर्य की लालिमा धीरे धीरे लुप्त हो रही थी। चिड़ियाँ बसेरे को जा रही थीं। प्रकृति में निश्चलता और निस्तब्धता का साम्राज्य था। बड़ा मनोरम, बड़ा हृदयग्राही, किन्तु गोधूलि के नीरव वातावरण की मनो-मुग्धकारिता ने मृत्यु-द्वार पर खड़े सुधीर के हृदय को शान्त न कर किसी अशान्त-अतीत की आग भड़का दी, बीता जीवन आँखों के सामने फिरने लगा—

हाँ, डेढ़ वर्ष पहले। मैं पिता के काम से दिल्ली में जाकर एक जौहरी के यहाँ ठहरा हुआ हूँ। कार्य के अधिक होने पर भी चित्रकारी के लिए थोड़ा-सा समय निकाल लेता हूँ। चित्र-कला मेरे जीवन की चिरसङ्गिनी है। कभी कभी जौहरी के यहाँ की एक कुमारी मेरे काम में बाधक हो जाती है। वह शायद मेरी सनक पर हँसती है। ......आज जब कुमारी ने मेरी ओर और मैंने उसकी ओर देखा, मैंने अपनापन खो दिया और अपने को कुमारीमय देखने लगा।...... ......उसे मैं बहुत अधिक चाहने लगा हूँ—इतना जितना कि एक आराधक अपने इष्टदेव को अथवा एक चित्रकार अपने प्रिय चित्र को चाहता है।

मुझे कभी यह जानने की इच्छा भी नहीं होती कि कुमारी भी मुझे चाहती है अथवा नहीं। उससे कभी कुशलक्षेम पूछने के अतिरिक्त कोई बातचीत भी नहीं की, साहस भी नहीं होता। मैं उसका नाम तक नहीं जानता।

......पिता जी के कई पत्र आ चुके हैं, आज तार भी आगया है, 'जल्दी जबलपुर चले आओ।' मैंने दिल्ली छोड़ देने का निश्चय भी कर लिया है। ......इस समय अन्तरिक्ष में सन्ध्या-तारा जगमगा रहा है। अब मैं न मालूम कब तक के लिए कुमारी से बिदा लेने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आज सुबह से उसके दर्शन नहीं हुए हैं। एकाएक मैंने देखा, कुमारी सतृष्ण नेत्रों से देखती मेरी ही ओर चली आ रही है! मैं उतावला होगया और पूछ बैठा—'कुमारी, तुम्हारा नाम क्या है ?' 'कुमारी' ही मेरा नाम है—उसने कहा। उसके कंठ में कम्पन है। उसके बाद ही उसने जब मुझसे पूछा—'अब फिर कब मिलोगे, चित्रकार ?' मेरा हृदय उस समय न-जाने किस आनन्द से गद्गद हो गया और मैंने हँसकर कह दिया—'इसी जीवन में कुमारी!' जाते समय कुमारी ने केवल यही कहा था—'ज़रूर आना!'

थोड़ी देर के बाद मैंने जौहरी के घर से बिदा ली, ठीक ढाई महीने बाद दिल्ली छोड़ दी।

× × ×

अब जबलपुर आगया हूँ। पिता जी बीमार हैं। मुझे विवाह के लिए बाध्य कर रहे हैं। किन्तु मैंने विवाह न कर लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया है। विवाह करने को मेरी आत्मा जाने क्यों समर्थन नहीं करती ? ...पिता की बीमारी के कारण मैं स्वयं दिल्ली जाने में असमर्थ हूँ, किन्तु जौहरी के सम्बन्ध में सदा कुछ जानने की इच्छा बनी रहती है। मुझे कुमारी की कोई खबर नहीं मिल रही है। .... आज पिता की करुणार्द्र दशा देखकर मैं पिघल गया और विवाह करने की इच्छा न होते हुए भी अनुमति दे दी है .... मैं कब विवाहित हो गया हूँ.........अब न मालूम क्यों कुमारी से मिलने की कल्पना कर सिहर उठता हूँ, आत्मा पीड़ित हो उठती है ! किन्तु उससे मिलना तो आवश्यक है। मैं वचनबद्ध हूँ। कुमारी के सम्बन्ध में जानने के लिए लालायित हूँ, किन्तु रुग्ण-शय्या पर पड़े पिता को छोड़कर नहीं जा सकता।

विवाह के कुछ ही दिनों के बाद पिता का शरीरान्त हो गया है। मैं अपनी पत्नी निर्दोष सुषमा पर अपनी उदासीनता प्रकट नहीं होने देना चाहता, किन्तु अपने प्रयत्न में असफल हो जाता हूँ। स्वयं न-जाने क्यों उससे निष्ठुरता से पेश आता हूँ।........ कुमारी से अब मिलने की कोई आशा नहीं रही है! मेरा शरीर दिन-प्रति-दिन सूखता जा रहा है, खून चुस-सा रहा है। अब मेरा अस्तित्व केवल मांस-पिण्ड के निर्जीव मनुष्याकार में ही रह गया है। ....आज फिर एक आशा-प्रद्योत ने चिर-आकांक्षायें पुष्पित कर दी हैं—मैं कुमारी का वही चित्र बनाना चाहता हूँ जो उससे बिदा लेते समय हठात् मेरे हृदय में अंकित हो गया था। अवशेष जीवन की अब एकमात्र आकांक्षा यही है कि कुमारी को अपनी कला से सजीव-साक्षात् कर उसी से भेंटकर अपना वचन पूरा करूँ और अपनी संसृति को चिर-संतुष्टि पहुँचाऊँ।

मैंने इस कामना से प्रेरित होकर जबलपुर छोड़ दिया है, अब मैं नागपुर में रहता हूँ।

प्रातःकाल जब वही उषातारा जिसे संध्यातारा के रूप में मैंने कुमारी से बिदा लेते समय अन्तरिक्ष में देखा था, आकाश में अकेला ही रह जाता है। मेरी आँखें अनायास खुल पड़ती हैं और मैं कुमारी को चित्रित करने में संलग्न हो जाता हूँ।

मैंने कुमारी का चित्र पूरा कर लिया है, आज ही उससे भेंट कर कदाचित् मेरी आत्मा एक क्षण में ही चिरन्तन सुख की अनुभूति करेगी, किन्तु—आज मेरे हृदय में रह रह कर एक टीस-सी उठती है और मेरी आँखों के सामने सुषमा की दयार्द्र सूरत भूल जाती है। मेरे कानों में आज यही आवाज़ गूँज रही है—सुधीर! तूने सुषमा के प्रति घोर अन्याय किया है। सुषमा! सुषमा!

यह सोचते सोचते सुधीर के मुख से एक चीख निकल पड़ी। उसकी आँखें खुल गईं। उसने देखा सुषमा उसी के निकट बैठी उसे न-जाने कब से निहार रही है।

सुधीर ने आज विवाह के बाद प्रथम बार स्नेहप्लावित करुण-दृष्टि से सुषमा को निहारा, जैसे इस एक ही दृष्टि में जीवन भर का क़र्ज़ अदा किया चाहता हो। वह बहुत विनम्र होकर रुँधे-गले से कहने लगा—

"सुषमा! मैंने तुम्हारे प्रति घोर अन्याय किया है। क्या क्षमा के दो शब्द कहकर तुम मुझे शान्त करोगी ?"

निःसीम वेदना से उत्पीड़ित सुषमा के अधर तनिक विकसित हुए, भौंहें संकुचित हुईं और उसकी आँखों में आँसू छलक पड़े, जैसे उस भाग्य-विडम्बना पर हँस पड़े हों जिसने विवाहित जीवन की अनन्त माँग को पूरा करना आज आरम्भ किया जब देनेवाले का अन्त निकट आ गया।

सुषमा ने कुछ कहने को अपना मुख खोला, किन्तु सुधीर को निद्रित-सा देख वह चुपचाप उसके कपोलों पर धीरे-धीरे हाथ फेरती रह गई। सुषमा ने सारी रात सुधीर की चारपाई पर बैठे-बैठे काट दी।

उषागमन के पहले ही सुधीर के नेत्र खुल गये। आज उसे शिथिलतावश जो नींद आई उसमें वह कुमारी से भेंटकर चिर-शान्ति प्राप्त करने के स्वर्ण-स्वप्न ही देखता रहा। उसके मुख पर आज बड़ा उत्साह है, एक अजीव शान्ति है, एक नया अनुराग है।

उसने सुषमा को अपना मुँह धोने के लिए पानी गर्म कर लाने का आदेश किया।

प्रकाश हो चला था। उतावला सुधीर बिखरी शक्ति को संचित कर चित्र, तूलिका, रंग आदि उपक्रम ले लड़-खड़ाता हुआ छत पर जा पहुँचा। कमरे की दीवार से लगाकर सुधीर ने पिक्चर-बोर्ड खड़ा कर दिया और वह कुछ दूर हटकर चित्र को देखने लगा।

चित्रकार अपने सफल-चित्र को देख हुलसित हो रहा है, सुधीर अपनी 'कुमारी' को देख अ-धीर हो रहा है। क्या करे—उसकी एक ही आकांक्षा है, एक ही भाव है।

सुधीर ज्यों ज्यों हट हटकर चित्र देखता, उसे ऐसा ज्ञात होता, कुमारी मेरे ही निकट आ रही है, मुझसे मिलने; सबसे पहले मैं उसका नाम पूछूँगा।

सुधीर पीछे हटते हटते छत की एक ऐसी नाज़ुक जगह पर पहुँच गया, जहाँ से एक सींक भर भी पीछे हटना उसके अरमान-भरे जीवन का अन्त कर देता। सुधीर उसी स्थान पर स्थिर होकर चित्र देखने में तन्मय हो गया।

सुषमा ने ऊपर आकर देखा, प्राणेश छत के एकदम कोने में खड़े हैं, उसका ज़रा-सा 'सी' कर देना भी खतरनाक है। व्याकुल सुषमा को सुधीर के प्राण-रक्षा की एक ही सूरत नज़र आई। अपनी कोमल सद्भावना से प्रेरित हो कर वह विद्युत्गति से दौड़कर चित्र के निकट रक्खी हुई काले रंग की तूलिका 'सुधीर की सजीव-साक्षात् मौन कुमारी' पर फेरने को उद्यत हो गई।

चित्रकार उसके इस कार्य को रोकने को आगे बढ़ा, किन्तु बीच में ही उसके प्राण रो उठे, आत्मा चिल्ला उठी और वह वहीं गिर पड़ा।

मेरी वीणा

लेखक, श्रीयुत देवीप्रसाद गुप्त (कुसुमाकर) बी० ए०, एल-एल० बी०

(१)

अभी अभी तो बजा रहा था, मैं अपनी स्वरमय वीणा।
आकर आज अचानक किसने, उसको हाथों से छीना।
सारे तार तोड़कर उसके, मेरा राग बिगाड़ा क्यों?
आशा की दुनिया को मेरी, उसने आज उजाड़ा क्यों?

(२)

निकल रहे थे स्वर अति सुन्दर, मीठे मीठे न्यारे से।
कैसे थे अनुपम क्या बोलूँ, कैसे थे वे प्यारे से।
वीणा-स्वर के गुण शब्दों में, कैसे मैं कह सकता हूँ।
हूँ निस्तब्ध सशङ्कित-सा अब, मौन हुआ मैं तकता हूँ॥

रहस्यवाद क्या है?

लेखक, श्रीयुत नलिनीमोहन सान्याल, एम० ए०, भाषातत्त्वरत्न

सभ्य जगत् की नाना जातियों में, क्या प्राच्य में, क्या प्रतीच्य में, क्या प्राचीन काल में, क्या मध्य-युग में, क्या आधुनिक समय में—ऐसी एक श्रेणी के मनुष्यों का परिचय मिलता है जो इन्द्रियानुभूति पर आस्थावान् नहीं हैं। यह इन्द्रियग्राह्य परिदृश्यमान जगत् उनके निकट मिथ्या है और जो कुछ सत्य है वह इसके परे है। उस सत्य का आविष्कार करना ही उनके जीवन का एकमात्र व्रत है। इस साधना में जीवन अतिपात करके भी बहुत लोग सिद्धकाम नहीं हो सके, तथापि वे अभीप्सित वस्तु के अन्वेषण से विरत नहीं हुए। उनमें से कोई कोई कहते हैं कि उन्होंने उस अमूल्य निधि का सन्धान पाया है और समय समय पर आराध्य देवता के साथ उनका संयोग हुआ है।

इस अज्ञात राज्य के अन्वेषणकारियों की बातों को सम्पूर्ण अश्रद्धेय समझना अनुचित है, क्योंकि इनमें से जिन्होंने आदर्श-जीवन यापन किया है और आकांक्षा की वस्तु को पाने के लिए अशेष त्याग किया है, यहाँ तक कि अपने प्राणों तक का विसर्जन करने से कुण्ठित नहीं हुए। उन्होंने जिस राज्य में पर्यटन किया है उसके विषय में उनके आविष्कृत तथ्यों की आलोचना न करके उनके सम्बन्ध में मतामत व्यक्त करना उचित नहीं। अपने उद्देश की सिद्धि के लिए उन्होंने जितना कष्ट उठाया है और श्रम किया है, उतनी सहिष्णुता तथा अध्यवसाय हममें नहीं है तो क्या इसलिए कहना होगा कि वे भ्रान्त हैं।

साधारण चिन्ताधारा से उनकी चिन्ताधारा इतनी विभिन्न है कि उनके विचार-समूह तथा कार्य-प्रणाली के भीतर प्रवेश करने के लिए हमें अपने आपको उनके उपयोगी बना लेना होगा। सबसे पहले चित्तशुद्धि ही आवश्यक है। यहाँ निर्मल चित्त ही ज्ञान का द्वार-स्वरूप है। और हमें पूर्व-संस्कारों को भूलना होगा—वास्तव जगत् को सत्य मान लेने के अभ्यास को और विज्ञान ही सर्वस्व है और अध्यात्मतत्त्व अकिञ्चित्कर है, इस मनोभाव को छोड़ना होगा। मन को संस्कारशून्य कर*, सब प्रकार की मानसिक अनुभूतियों की भित्तियों की परीक्षा कर हमें तथाकथित छायावादियों की, कवि तथा भक्तवृन्दों की उक्तियों की समालोचना में प्रवृत्त होना होगा। जब तक हम एक सत्य जगत् के अस्तित्व का प्रमाण देकर इस कल्पना-राज्य के साथ उसकी तुलना नहीं कर सकते तब तक उनकी उक्तियों को असार कहने का अधिकार हमें नहीं है।

जगत् के स्वरूप का विचार दर्शन-शास्त्र के अन्तर्गत है, और दार्शनिक उलझन के भीतर प्रवेश करना मेरी शक्ति के अतीत तथा इस आलोचना के उद्देश के बाहर है। तथापि कुछ प्राथमिक तत्त्वों की बातें हमें स्मरण करनी ही पड़ेंगी।

सबसे पहला तत्त्व है 'अहम्' अर्थात् 'मैं'। 'मैं' के अस्तित्व के सम्बन्ध में कोई सन्देह ही नहीं रह सकता। साधारण मानव के अपने अस्तित्व के विश्वास को कोई भी दार्शनिक मूलच्युत नहीं कर सकता। अतएव 'मैं हूँ', इस विषय में कोई सन्देह ही नहीं है†। सन्देह है केवल 'मैं' को छोड़कर 'और क्या है' इस सम्बन्ध में।

शुक्ति की नाईं अपने देह-कोष में आबद्ध इस 'मैं' में वार्ताओं का स्रोत अविराम गति से अहरहः आ रहा है।

---

* अर्थात् मन की जिस अवस्था को बर्ट्रांड रसेल ने 'डिसइन्टरेस्टेड क्यूरिआसिटी' कहा है उस अवस्था में आकर।

† बौद्ध-मत में सब वस्तुएँ क्षणिक हैं, अर्थात् प्रतिक्षण में भिन्न हो जाती हैं। अतएव 'मैं' वा आत्मा भी प्रतिक्षण में भिन्न है। अब जो 'मैं' है, क्षण में वह 'मैं' नहीं रहेगा। अतएव "मैं" की यथार्थ सत्ता नहीं है। किन्तु इस क्षण का "मैं" पूर्व-क्षण के 'मैं' का परिणाम होने के कारण "मैं" की सत्ता में कोई बाधा नहीं पड़ती।

'मैं' अर्थात् 'आत्मा,' उनका अनुभव कर रही है। अनुभूतियों में जितनी स्पर्श-स्नायुओं की, दर्शन-स्नायुओं की तथा श्रवण-स्नायुओं की उत्तेजना से उद्भूत होती हैं, वे ही प्रधान हैं। इन अनुभूतियों का अर्थ क्या है? अर्थ यही है कि संस्कार-शून्य आत्मा के निकट ये बहिर्जगत् का परिचय देती हैं। जगत् कैसा है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए 'मैं' को, अर्थात् आत्मा को इन्द्रियानुभूतियों का मुँह ताकना पड़ता है। इन्द्रियों की सहायता से, चाहे इच्छा से हो, चाहे अनिच्छा से, चारों ओर से जो सब वार्तायें वन्या की नाईं 'मैं' के निकट उपस्थित होती हैं, उन्हीं से 'मैं' अपना बाह्य जगत् गठित करता है—वह बाह्य जगत् जिसे साधारण लोग वास्तव जगत् के नाम से जानते हैं। स्नायुमण्डल की सहायता से प्राप्त अनुभूति-समूह के योग-वियोग इत्यादि के विन्यास के द्वारा 'मैं' में एक सामान्यता का भाव उत्पन्न होता है, जिसे वह बाह्य जगत् करके ग्रहण करता है। यह 'मैं' वा 'आत्मा' ही ज्ञाता है, और जो कुछ वह जानता है वही ज्ञेय है। अपनी अनुभूतियों को कुछ अज्ञात वस्तुओं में आरोपित करते हुए आत्मा में जो सामान्यता का भाव उत्पन्न होता है वही आत्मा का ज्ञेय वा बाह्य जगत् है। कौन जानता है कि नक्षत्र-समूह धधक रहे हैं या नहीं? मेरे भीतर औज्ज्वल्य की जो अनुभूति होती है उसी को मैं नक्षत्र में आरोप करके उसे उज्ज्वल कहता हूँ। बाह्य जगत् की हममें निश्चित धारणा नहीं है। हमारा व्यावहारिक जगत् सत्य जगत् से भिन्न है।

अतएव प्रत्यक्ष जगत् के नाम से जो जगत् माना जाता है वह यथार्थ बाह्य जगत् नहीं है—वह केवल आत्मा के आभ्यन्तरीण चित्रों का बहिर्निक्षेप है—अध्यास-मात्र है—वैज्ञानिक सत्य नहीं है—कला-निष्पन्न वस्तुओं के समान कल्पना-प्रसूत है। इस प्रकार की कृत्रिम वस्तु का विश्लेषण करना व्यर्थ है। अतएव इन्द्रियानुभूति-जनित प्रमाण यथार्थता का चरम प्रमाण नहीं है। इन्द्रियज अनुभूतियों के द्वारा भृत्यों का काम चल सकता है—उनसे पथ-प्रदर्शकों का काम कराना निरापद नहीं। एतद्व्यतीत जो लोग इन्द्रिय के प्रमाणों के विश्वासी नहीं हैं, इन्द्रियज प्रमाणों के द्वारा उनके मतों का खण्डन करना भी सम्भव नहीं। स्नायु-तन्तुओं के द्वारा ही बाहर के संवाद भीतर पहुँचते हैं। कौन कह सकता है कि बाहर के कुछ कुछ तथ्य रास्ते में रुद्ध, विकृत वा लुप्त नहीं हो जाते और हमें अज्ञात नहीं रहते? अतएव देखा जाता है कि हमारा ज्ञान-भाण्डार हमारे शारीरिक यन्त्र आदि के विधान के द्वारा सीमित है। हमारी पाँच इन्द्रियाँ हमें जितना जानने देती हैं, उतना ही हम जानते हैं—उतना भी सम्पूर्ण रूप से नहीं। ऐसे बहुजातीय जीवों का रहना सम्भव है जिनके संवित्-केन्द्र के साथ बहिर्जगत् का संयोग अन्य प्रकार से सङ्घटित होता है। उनकी बहिर्जगत् की अनुभूति भिन्न प्रकार से होनी असम्भव नहीं। अतएव बहिर्जगत् के सम्बन्ध में हमारी जो धारणा है वह निर्मूल कैसे स्वीकार की जा सकती है? यदि स्नायु-तन्तुओं के गुणों वा विधानों का सामान्यमात्र हेर-फेर हो जाय तो कदाचित् वर्ण सुना वा शब्द देखा जायगा—कहते हैं कि साँप का देखने तथा सुनने का काम आँखों के द्वारा ही होता है। यथार्थ बाह्य जगत् जैसा है, वैसा ही रहेगा, केवल हमारी अनुभूतियों का व्यत्यय होगा। जगत् से यद्यपि सौन्दर्य का लोप नहीं होगा, किन्तु भिन्न रसना के द्वारा प्रकाशित होगा। कोकिल का कूजन चक्षु-स्नायु-समूह को आघात करते हुए वर्णच्छटा के कौतुक का प्रदर्शन करेगा।

अतएव जिसे हम सत्य जगत् कहते हैं वह सत्य नहीं है—वह हमारे मन के भीतर ही सीमाबद्ध है—वह हमारा व्यावहारिक जगत्-मात्र है। इन्द्रिय-निगड़ में आबद्ध हम सत्य जगत् को नहीं जान सकते। हम जानने को असमर्थ हैं, इसलिए क्या यह कहना होगा कि उसका अस्तित्व ही नहीं है? रहस्यवादीगण कहते हैं कि निश्चय है। उस सत्य के अनुसन्धान में वे निरन्तर व्यस्त हैं। जिन्होंने सत्य का सन्धान पाया है उनकी अनुभूतियाँ हमारी अनुभूतियों से भिन्न हैं। उन्होंने पहले ही अभ्यास के द्वारा* अपने

* योग के प्रथम स्तर में नाना प्रकार की शारीरिक क्रियाओं जैसे (हमारे देश में) आसन, प्राणायाम इत्यादि के द्वारा, द्वितीय स्तर में ध्यान के द्वारा, तृतीय स्तर में सम्प्रज्ञात समाधि के द्वारा, और अन्त में असम्प्रज्ञात वा निर्विकल्प समाधि के द्वारा।

स्नायु-मण्डल को सत्य-जगत् की अनुभूतियों के उपयोगी बना लिया है, और बाद को सब अनुभूतियों के ऊर्ध्व में उठकर सत्य वा आत्मा को प्रत्यक्ष किया है। सत्य जगत् की कोई भाषा न रहने के कारण उन्होंने व्यावहारिक जगत् की भाषा का अवलम्बन कर सत्य वा परमात्मा को 'दिव्य सङ्गीत', 'अजात ज्योतिः' इत्यादि वाक्यों से व्यक्त किया है।*

सब मनुष्यों की चित्तवृत्तियाँ एक-सी नहीं हैं। दो व्यक्तियों के मन में सत्य के चित्र एक ही प्रकार के हैं या नहीं, इस विषय में बड़ा सन्देह है। वास्तववादी (प्रत्यक्ष-वादी) जो इन्द्रियों के प्रमाणों पर सम्पूर्ण निर्भर करते हैं, इन्द्रियानुभूति ज्ञान ही यथार्थ ज्ञान है, ऐसा विश्वास करते हैं†। उनके निकट यह परिदृश्यमान जगत् सत्य है‡। प्रत्यक्षवादी लोग मानसिक अनुभूति-समूह को वस्तु में आरोप कर वस्तु को सत्य समझते हैं। किन्तु जो सब गुण, यथा वर्ण, स्थूलता इत्यादि, वस्तु में माने जाते हैं उनका अस्तित्व है या नहीं, यह सन्देह का विषय है-- वे मानव मन के भावमात्र हैं। जिसे हम वस्तु कहते हैं वह केवल परमाणु-पुञ्ज है§। प्रत्येक अणु के परमाणु-समूह परस्पर के चारों ओर मानो नृत्य करते रहते हैं-- सम्भवतः अति कठिन वस्तु भी कुहरे के जल-कण-समूह से अधिक घनी वा कठिन नहीं। वर्ण-समूह चक्षु-स्नायुओं की क्रियामात्र हैं। कामल-रोग-ग्रस्त व्यक्ति की दृष्टि में सब वस्तुएँ पीली लगती हैं। स्वप्न में भी नाना वर्णों की अनुभूति होती है। तब * वस्तु की सत्यता कहाँ?

बहुत लोग कहेंगे कि किसी वस्तु के सम्बन्ध में अधि-कांश मनुष्यों की अनुभूतियाँ जब एक ही प्रकार की हैं तब यही उसकी सत्यता का प्रमाण है। पहले ही कहा गया है कि किन्हीं दो व्यक्तियों की अनुभूतियाँ समान नहीं। सुविधा के लिए अधिकांश मनुष्यों की सम्मति से मतों के ऐक्य को हमने सत्य मान लिया है। प्रत्येक मनुष्य ही स्वकल्पित जगत् का अधिकारी है। एक व्यक्ति का जगत् अन्य व्यक्ति के जगत् से भिन्न है। प्रचुर अर्थ मिलने से एक व्यक्ति किस किस दान में तथा लोक-हितकर कार्य में उसका नियोग करेगा, इसी चिन्ता में लगा रहता है। दूसरा व्यक्ति ऐसी अवस्था में अपने अर्थ के द्वारा कौन कौन विलास-प्रवृत्ति चरितार्थ करेगा, इसी सोच में डूबा रहता है। रासायनिक विद्वानों में कोई मनुष्य-जाति के उपकार के और कोई ध्वंस के साधनों के आविष्कार के लिए अपने आपको नियत करता है।

हम लोगों में प्रत्येक व्यक्ति जैसे जैसे जीवन-पथ में अग्रसर होता है, वैसे वैसे अनुमान करता है कि हमारे इन्द्रिय-ग्राह्य जगत् का परिवर्तन हो रहा है। क्या यथार्थ ही जगत् की प्रकृति बदल रही है? नहीं—हम जिन सब उपादानों से निर्मित हैं, धीरे धीरे उनके गुणों तथा संस्थानों का व्यतिक्रम हो रहा है, इसलिए बाह्य जगत् हमारी अनुभूतियों में भिन्न धर्मी अनुमित होता है। बाल्य तथा यौवन में जिन सब वस्तुओं में हमारी प्रीति थी, अब वार्द्धक्य में उनमें रुचि नहीं है। किन्तु जो सत्य है वह स्थायी है—उसका परिवर्तन नहीं होता†। जब मन के

* वेदान्त में सत्य वा ज्ञान की चार अवस्थायें कही गई हैं—वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा, अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम। साधारणतः स्थूल वा वैखरी सत्य के साथ ही हम लोगों का परिचय है। सूक्ष्म, सूक्ष्मतर तथा सूक्ष्मतम ज्ञान की अनुभूति होने पर भी हमें विवश होकर स्थूल वा वैखरी शब्द-समूह के द्वारा ही उसे व्यक्त करना पड़ता है।

† (क) चार्वाक-दर्शन केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानता है—अनुमान आदि प्रमाणों को नहीं स्वीकार करता। जो वस्तु प्रत्यक्ष नहीं होती उसका अस्तित्व नहीं है। अतएव ईश्वर तथा परलोक नहीं हैं। मीमांसक, बौद्ध, दिगम्बर, कपिल—ये यद्यपि ईश्वर को नहीं मानते, तथापि परलोक को स्वीकार करते हैं।

‡ सांख्य-दर्शन ने भी जगत् को सत्य कहा है। यह जगत् प्रकृति का परिणाम है। जगत् में दो ही सत्य वस्तुएँ हैं—प्रकृति तथा पुरुष। प्रकृति क्रियाशील है। पुरुष प्रकृति के कार्यों का साक्षीमात्र है—ज्ञाता। जगत् है ज्ञेय।

§ कणाद का वैशेषिक दर्शन।

* इन्द्रिय-निचय जागतिक वस्तुओं का यथायथ ज्ञान देने में असमर्थ हैं। यदि सामर्थ्य रहता तो एक ही वस्तु निकट से वा दूर से समान प्रतीत होती, भिन्न प्रकार की अनुभूत न होती।

† यद्रूपेण यद् निश्चितं तद्रूपं न व्यभिचरति तत् सत्यम्।

—शङ्कराचार्य

परिवर्तन के साथ आत्मा की अनुभूतियों का सम्पर्क न रहेगा तभी सत्य का दर्शन मिलेगा।

ऊपर लिखी हुई उक्तियों के द्वारा मैं पाठकों को वास्तव जगत् के विषय में अपनी व्यावहारिक धारणा का परित्याग कर मानसिक शून्यवाद का अवलम्बन करने का परामर्श नहीं दे रहा हूँ। मेरा कहना यह है कि जिन अनुभूतियों को वे यथार्थ मानते हैं और वैज्ञानिकगण प्रमाण-स्वरूप जानते हैं वे सब आपेक्षिक और सर्वसम्मति से गृहीत-मात्र हैं; और जिन सब मानसिक चित्रों को रहस्यवादी अङ्कित करते हैं उनकी व्यावहारिक उपयोगिता न रहने पर भी अथवा इन्द्रियक्षेत्र के अगोचर रहने पर भी वे सम्पूर्ण अग्राह्य नहीं किये जा सकते। प्रत्यक्षवादी की अनुभूति में भी विश्व के नाना वैचित्र्य के चित्र उपस्थित होते हैं। वे चित्र एकाङ्गीभूत होकर एक समष्टिगत चरम सत्य का निर्देश करते हैं। तब प्रत्यक्ष-वादियों के मन में भी इस प्रश्न का उदय होता है—"यह अद्वितीय वस्तु क्या है?" ऐसे प्रश्न प्रत्यक्ष-ज्ञान-निरपेक्ष हैं—ये मनुष्य की स्वभावजात आकांक्षा ही व्यक्त करते हैं। जब तक वह उस सर्वाश्रय अज्ञात वस्तु को नहीं पाता तब तक उसके अन्तर की क्षुधा नहीं मिटती।

यही है वास्तववादियों वा प्रत्यक्षवादियों का कहना। जो भाववादी हैं, अब उनके मत की कुछ आलोचना लीजिए। वे इन्द्रियानुभूति को दूर हटाकर भाव को ही प्राधान्य देते हैं। वे कहते हैं कि केवल दो ही पदार्थों को हम निश्चयता से जानते हैं—एक सचेतन चिन्ताशील ज्ञाता और दूसरा उस ज्ञाता का भाव-रूप ज्ञेय। उनके मत में मन और मन की क्रिया (ज्ञान) के अतिरिक्त संसार में और कोई पदार्थ ही नहीं है। जिसे हम जगत् कहते हैं वह कुछ मानसिक चित्रों के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं—वह सत्य नहीं है—वह सत्य की देश-कालाधिकृत छाया-मात्र है। सत्य वह सम्पूर्ण तथा अविकृत ज्ञेय वा ज्ञान-समुद्र है जिसका विन्दुमात्र का संग्रह करने को भी हम असमर्थ हैं। सर्वभूत, अखिल चराचर, उस एक-मात्र शाश्वत ज्ञेय की अभिव्यक्ति है। स्वयं ज्ञाता भी ज्ञेय पर्याय-भुक्त है। इन्द्रिय-निचय तथा मन के द्वारा—देश-काल-वस्तु-जनित सीमा के भीतर—उस ज्ञेय के कुछ स्वरूपों की उपलब्धि होती है। किन्तु देश, काल तथा वस्तु को सत्य का, अर्थात् चरम ज्ञान का अंश मानने का कोई कारण नहीं। जैसे जैसे हमारा उपलब्धि-क्षेत्र अनादि, अनन्त ज्ञान-राशि की ओर प्रसरित होता जाता है, वैसे वैसे हम सत्य का अधिकतर सान्निध्य-लाभ करते जाते हैं। शाश्वत, अपरिच्छिन्न, असीम भाव ही अर्थात् ऐश्वरिक ज्ञान ही भाववादियों का चरम सत्य है। यही वह परम पदार्थ है जिसके स्पर्श से साधारण बुद्धि में, विज्ञान में, दर्शन में तथा कला में जितने भिन्न भिन्न क्षुद्र, अनित्य जगत् सृष्ट होते हैं उनकी भिन्नता दूर होती हुई सभों का एकीकरण हो जाता है। अतएव हम इस सिद्धान्त पर उपनीत होते हैं कि अतीन्द्रिय (अलौकिक) जगत् ही सत्य जगत् है।

भौतिक जगत् के इन्द्रियग्राह्य विषय-समूह के द्वारा मनुष्य का भाग्य नियन्त्रित नहीं होता। मानस-क्षेत्र में विचार-जनित जितने सामान्यता के बोध उत्पन्न होते हैं उन्हीं के द्वारा मनुष्य कर्म को प्रेरित होता है। जब वह आध्यात्मिकता के उच्च स्तर पर उन्नीत होता है तब बोध-समूह सत्य के रूप में प्रतिभात होते हैं। इन भाव-समूहों के द्वारा परिचालित होकर इन्हें कार्य में परिणत करने के लिए ही ऐसा मनुष्य प्राण-धारण करता है, कर्म में नियत रहता है, क्लेश सहता है और अन्त में धरा-धाम से विदा लेता है। प्रेम, राष्ट्रीयता, धर्म, त्याग, यश—ये सब भाव अलौकिक जगत् की सामग्रियाँ हैं। अतएव भौतिक जगत् की अपेक्षा सत्य के साथ इसका सम्बन्ध अधिक है।

भाववाद के भीतर ही हम जीवन के सर्वोच्च सिद्धान्तों को पाते हैं। यह केवल इन्द्रिय-सम्पर्कहीन मानसिक युक्तियों के द्वारा निर्णीत हुआ है, ऐसा नहीं—परमसत्ता को पाने के लिए मनुष्य के भीतर जो प्रकृतिगत प्रवणता है, यह उसी की व्यञ्जना है। किन्तु इसकी यह त्रुटि है कि यह नहीं बताता है कि किस उपाय से पूर्ण तथा सत्य सत्ता हमारे हस्तगत हो सकती है।

इसके साथ और एक मतवाद की भी आलोचना आवश्यक है। उसको हम दार्शनिक संशयवाद का नाम दे सकते हैं। सन्देहवादी सत्ता के विषय में प्रत्यक्षवादियों का मत ग्रहण करने को प्रस्तुत नहीं हैं। भाववादियों के सम्बन्ध में भी उनका मनोभाव वैसा ही है। प्रत्यक्षवादी चक्षुकर्ण के प्रमाणों के द्वारा कहेंगे कि श्याम ही यथार्थ श्याम है, किन्तु भाववादियों का कहना यह है कि इन्द्रि-गोचर श्याम श्याम नहीं है—उसके पीछे जो अतीन्द्रिय वा भावगत श्याम की विद्यमानता है वही श्याम है। उसकी गुणावली हमें अज्ञात है वा बोध के अतीत है। संशयवादी कहते हैं कि बाह्य जगत् का अस्तित्व केवल मन में है। यदि मेरा मानसिक यंत्र नष्ट हो जाय तो हम जिसे जगत् कहते हैं उसका भी अस्तित्व न रहेगा। जिसे आत्मा की अनुभूति कहते हैं, मेरे निकट केवल उसी का अस्तित्व है। अनुभूति की सीमा के बाहर क्या है या नहीं है, इस विषय में अनुमान करने का मुझे अधिकार नहीं। अतएव मेरे निकट 'नित्य अनिर्वचनीय सत्ता' यह वाक्य अर्थहीन है—चिन्ता की जटिलता-मात्र है; कारण कि मन के बहिस्थ जगत् के साथ मन का सम्बन्ध यदि सम्पूर्ण लुप्त हो जाय तो अपने भाव-समूह के अतिरिक्त अन्यत्र सत्य पदार्थ का अस्तित्व कहाँ है?

दार्शनिक संशयवाद युक्तिपूर्ण है, इसमें सन्देह नहीं—इसकी असंगति प्रमाणित करना असाध्य है। जो लोग प्रत्यक्ष में विश्वास करते हैं वे विज्ञान-चर्चा में आत्म-नियोग कर सन्तोष प्राप्त करना चाहें तो करें। अतीन्द्रिय सत्ता में जिनका विश्वास है वे भाववाद में निमज्जित रहें तो रहें। किन्तु यथार्थ धी-शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति कभी निर्विवाद रूप से सहजात-ज्ञान वा आवेग के हाथ आत्म-समर्पण नहीं करेंगे। किसी न किसी आकार में संशय उनके मन में प्रवेश करेगा ही। संशयवाद के सम्बन्ध में केवल आपत्ति यह है कि इससे मानसिक शून्यवाद की उत्पत्ति हो सकती है, किन्तु मानव-प्रकृति में परमात्मा के प्रति जो स्वभावज विश्वास निहित है उसके यथोचित पोषण के द्वारा इस अनिष्ट से बचा जा सकता है। सब मतावलम्बी दार्शनिक यदि मूल-भित्ति के रूप में गृहीत अपने अपने मतों का अनुसरण कर विचार कर देखें तो वे स्वीकार किये बिना नहीं रह सकेंगे कि हममें प्रत्येक व्यक्ति ही एक अज्ञात तथा अज्ञेय जगत् में बसकर और उस सम्बन्धी चिन्ताओं में नियत रहकर वहाँ से अन्तर्हित होता है। उस जगत् में हम नाना अनियन्त्रित, अपरीक्षित तथा अपरिज्ञात भावों तथा इङ्गितों के द्वारा पुष्ट होते हैं। किन्तु यद्यपि उसके कार्य में अभ्रान्त ऋत वा असाधारण शृंखला स्थूल नेत्रों से दृष्टिगोचर नहीं होती है, तथापि अज्ञात और अनिर्दिष्टरूप में उसके जो सब इङ्गित हमारी अनुभूति में उपस्थित होते हैं उन्हीं पर निर्भर रहकर हमें जीवन-यात्रा में अग्रसर होना होता है। जो सब प्राकृतिक नियमों को मानव-मन ने पर्यवेक्षण तथा परीक्षा के द्वारा निज सुविधा के लिए उद्भावन किया है, उन्हीं पर विश्वास-स्थापन कर हमें इस जगत् का कार्य सम्पादन करना पड़ता है।

दर्शनशास्त्र एक अज्ञात पदार्थ का इङ्गित करने को पश्चात्पद नहीं, किन्तु वह अज्ञात पदार्थ क्या है, कहाँ है और किस प्रकार से पाया जा सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में वह कहता है—"नहीं जानते।" जिस लक्ष्य की ओर वह निर्देश करता है, नाना आडम्बर दिखाते हुए भी उस तक नहीं पहुँच सकता, यहाँ तक कि वह ज्ञाता को ज्ञेय से पृथक् करने को असमर्थ है। विज्ञान की पहुँच भी कहाँ तक है? वह तो प्रत्यक्ष को लिये हुए ही व्यस्त है। किन्तु भीतर भीतर वह भी भाववादी है—उसे भी कल्पना का आश्रय लेना पड़ता है। वह जानता है कि उसका ससीम प्रसारक अनुभूति-समूह और उसका विचित्र जगत् जिसमें उसकी इतनी आस्था है, उसे एकमात्र लक्ष्य की ओर ही ले जा रहे हैं—जीवन-प्रवाह की रक्षा और उसके फल-स्वरूप विश्व-नियन्ता की अति रहस्यमय कल्पना को सफल करना।

विज्ञान कहता है—"हममें दर्शन, स्पर्शन, श्रवण तथा घ्राण शक्ति है, इसलिए हम इधर-उधर विचरण कर सकते हैं। पुञ्जाति स्त्री-जाति में सौन्दर्य का अनुभव करती है, इसलिए जीवन की धारा अक्षुण्ण रहती है। हाँ, यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि इन सहजात आदिम वृत्तियों का विकास होते हुए उच्चतर तथा पवित्रतर मनो-वृत्तियों का उदय हुआ है। तथापि ऐसा नहीं कहा जा सकता कि इनकी निजी कोई सार्थकता नहीं है। समाज के

इष्ट के लिए इनकी भी यथेष्ट आवश्यकता है । यदि जीवन-धारण करना है तो भोजन करना ही पड़ेगा । अत-एव अनेक खाद्यों से हमें सुखद अनुभूतियाँ होती हैं। फिर हम यह भी जान गये हैं कि अति भोजन का परि-णाम अप्रीतिकर है। कुछ ऐसे विषय हैं जिनकी अनुभूति यदि सर्वदा वर्तमान रहे तो नैराश्य से हमारी जीवनी-शक्ति की हानि हो सकती है—जैसे जीवन की अनिश्च-यता, शरीर का क्षय, वस्तुमात्र की अनित्यता इत्यादि। इस हेतु ये अनुभूतियाँ स्पष्ट हैं। जब हमारा शरीर सतेज रहता है तब हमारी वास्तवता, सारवत्ता तथा स्थायित्व का बोध प्रबल होता है। यह मनोभाव भ्रमात्मक तथा हास्यजनक होने पर भी जाति की रक्षा तथा योग्यता की वृद्धि के विचार से इसकी उपकारिता कम नहीं है।"

किन्तु निकट से यदि देखे जायँ, ऐसे अनेक विषय हैं जो प्रयोजनीयता की सीमा के भीतर नहीं रक्खे जा सकते। प्रयोजन से अतिरिक्त अनेक विषयों ने मानव-मन को अपने अधिकार में किया है। केवल जीवन-धारण की इच्छा से मनुष्य जिन सब वस्तुओं को उत्पन्न करता था, जिस मुहूर्त से उन सब वस्तुओं से उसकी रुचि हट गई है, उसी मुहूर्त से उसने अपने स्वाभाविक विकास को व्याहत किया है। उसकी मनोवृत्ति असन्तोष के कुहक में फँस गई है—भौतिक सीमा को अतिक्रम कर क्रमोन्नति ने मनोराज्य में प्रवेश किया है। वास्तव को त्यागकर मनुष्य अवास्तव आकांक्षाओं का दास, यथेच्छ तथा असाध्य कल्पनाओं का जनक, स्वप्न-राज्य का अधिवासी हुआ है। हाँ, यदि उसका स्वप्न उसे भौतिक वा मानसिक प्राधान्य के अति-रिक्त किसी उच्चतर लक्ष्य की ओर चालित करे तो वह स्वप्न न्यायसङ्गत विवेचित हो सकता है। यदि कला-विषयक तथा आध्यात्मिक अनुभूति-समूह भी क्रमोन्नति-वाद के अन्तर्भुक्त किया जा सके तो क्रमोन्नतिवाद भौतिक आधार में सीमाबद्ध न रहकर मानसिक आधार में पुनर्ग-ठित होगा।

अति साधारण मानव-जीवन में भी ऐसी कुछ मौलिक अनुभूतियों का पता मिलता है जिनकी विज्ञान-सम्मत व्याख्या करना असम्भव है । इन अनुभूतियों के और इनसे नाता रखते हुए आवेग-समूह के साथ जीवन के भौतिक अंश का सम्बन्ध बहुत अल्प होने पर भी चरित्र पर इनका प्रभाव असामान्य है। कार्य-कारण-मूलक वैज्ञानिक जगत् के साथ इनका सामञ्जस्य नहीं किया जा सकता। धर्म-विषयक, क्लेश-विषयक तथा सौन्दर्य-विषयक अनुभूति-समूह इस श्रेणी के अन्तर्भुक्त हैं। चिन्ताशील व्यक्तियों ने अति श्रद्धा तथा अनुराग के साथ इनकी आलोचना की है।

(१) यौक्तिकता के ऊपर धर्म की नींव नहीं डाली गई है—वह विश्वास के ऊपर डाली गई है। धर्म में ऐसे कितने ही तत्त्व मान लिये जाते हैं जो विचार के द्वारा प्रतिपन्न नहीं किये जा सकते। इसमें अतीन्द्रियता को अधिक गुरुत्व दिया जाता है और अलौकिक जगत् सत्य माना जाता है। विश्वास ही जीवन का प्रधान अङ्ग है, और विश्वास ही धर्म की भित्ति है। यद्यपि वास्तव जीवन के सरल प्रवाह में धर्म अनेक बाधायें डालता है, तथापि इसकी गति अप्रतिहत है। मानव-हृदय में इसका मूल दृढ़ रूप से प्रोथित है। असभ्य अवस्था में यह लौकिक सुविधा का साधन विवेचित होता था, किन्तु मनुष्य-जाति की जितनी ही अग्रगति हो रही है, उतना ही यह सूक्ष्म भावों से पूर्ण और अलौकिक राज्य के पदार्थों में परिणत हो रहा है।

(२) दुःखभोग का तत्त्व क्या है? जो सब शारीरिक तथा मानसिक क्लेश अभ्रान्त स्वाभाविक नियमों के अवश्यम्भावी फल हैं, और मनुष्य की निष्ठुरता, लालसा तथा अविचार के द्वारा परिवर्द्धित होते हैं उनका उद्देश क्या है? क्लेश के कुछ साधारण उदाहरण उपस्थित कर और उनके बाह्यिक कारण प्रदर्शन कर वैज्ञानिक कहेंगे कि जाति के लिए उनकी यथेष्ट उपकारिता है, कारण कि वे हमें अतीत निर्बुद्धिता के लिए शास्ति देते हैं, नवीन उद्यम के लिए उत्तेजित करते हैं और भविष्यत् उल्लङ्घनों से सतर्क करते हैं। किन्तु वैज्ञानिकगण क्लेश के गम्भीर तत्त्वों की व्याख्या करने को भूल जाते हैं। किसी अपराध के अपराधी न होकर भी बहुतों को क्लेश क्यों भोग करना पड़ता है? जगन्नियन्ता निरपराध शिशु को दीर्घकाल-व्यापी

अनारोग्य रोग की दारुण यन्त्रणा क्यों सहने देते हैं? प्रियजन-वियोग के निविड़ शोक का मनुष्य को क्यों अनुभव करना होता है? जीव को मृत्यु की नाना भीषण यातनाओं के अधीन क्यों होना पड़ता है? इस विस्मयकर व्यापार का भी कारण प्रदर्शित करना वैज्ञानिक भूल जाते हैं, क्योंकि जितनी ही सभ्यता तथा संस्कृति की प्रगति हो रही है, उतनी ही मनुष्य की क्लेश-सहिष्णुता की मात्रा बढ़ती जा रही है। और भी आश्चर्य की बात यह है कि अनेक उच्च स्तर के व्यक्तियों ने आदर तथा आग्रह के साथ क्लेश को वरण कर लिया है, और क्लेश के भीतर ही नाना रहस्यों का और अविनश्वर आनन्द का सन्धान पाया है। रहस्यवादी परमात्मा के विरह-जनित दारुण क्लेश का अनुभव करते हैं। भारतवर्ष के कृष्णभक्त वैष्णवों ने परमात्मा के अदर्शन से जीवात्मा की जो तीव्र तथा दुःसह विरह-यातना गोपियों के मुख से व्यक्त की है वह क्या ही करुण तथा मर्मस्पर्शी है! परमात्मा को प्राप्त करने के लिए योगी कठोर तपश्चरण करने के लिए व्यग्रता का प्रदर्शन करते हैं।

जिन अवस्थाओं में मन में दुःख वा दुश्चिन्ता उपस्थित होती है उन अवस्थाओं में आत्मा को पीड़ा क्यों होती है? क्लेश मानसिक क्रिया है—शरीर में अस्त्रोपचार करने से दारुण यन्त्रणा होती है, किन्तु थोड़े-से क्लोरोफ़ार्म के प्रयोग से यन्त्रणा की अनुभूति क्यों नहीं होती? मान-सिक अनुभूति सम्पूर्ण रहने की अवस्था में ही केवल आत्मा की सुख-दुःख अनुभव करने की शक्ति क्यों रहती है? स्वप्न में यथेष्ट सुख-दुःख का बोध क्यों रहता है?

क्लेश को हम चाहे जिस किसी ओर से देखें, इसमें संदेह नहीं रहता कि वह इन्द्रिय-ज्ञान-मूलक जगत् के साथ आत्मा के विरोध का भाव है। आत्मा की बाधित अवस्था ही दुःख है, और अबाधित अवस्था ही सुख है। यदि क्लेश का लोप करना चाहते हैं तो इन्द्रिय-उपलब्ध जगत् के साथ आत्मा के समीकरण का, नहीं तो जिस जगत् से उसका पटे उस जगत् के साथ उसका सख्य-स्थापन करने का प्रबन्ध करना आवश्यक है। इस विषय में आशावादियों और नैराश्यवादियों के बीच मतभेद नहीं है। किन्तु जहाँ नैराश्यवादी जगत् में केवल भीषणता का ही अनुभव करते हैं और क्लेश से परित्राण पाने का कोई मार्ग नहीं निकाल सकते, वहाँ आशावादी क्लेश को निम्न जगत् का कठोर शास्ता न समझकर उसे अतीन्द्रिय सत्य जगत् के पथ-प्रदर्शक तथा उपदेष्टा के रूप में हृदयङ्गम करते हैं। आशावादी के जानने में आता है कि क्लेश उसे ऐसे एक जगत् की ओर चालित कर रहा है जो उसका अभीष्ट है, किन्तु जो उसके विरुद्धवादी का अनभिप्रेत है। आशावादी का विश्वास है कि क्लेश के द्वारा ही प्रेम पूर्णाङ्गता प्राप्त करता है*, और दोनों मिलकर उसे अद्वितीय सत्ता की ओर चालित करते हैं। वह क्लेश को भगवान् का दान समझता है। इन्द्रिय-सुख के द्वारा प्रतारित न होकर बहुत लोग क्लेश को अपनाकर कठोर व्रती तपस्वी बनते हैं। साधु तथा वीर हृदय महापुरुषों के महत्त्व का बीज क्लेश-सहिष्णुता की भूमि में अंकुरित होता है।

योगी सत्य पदार्थ वा परमात्मा का दर्शन पाने के लिए ही अशेष कष्ट स्वीकार करते हैं। उनका विश्वास है कि परमात्मा को छोड़कर जगत् में दूसरी कोई सद्वस्तु नहीं है। जगत् में वही एकमात्र अद्वितीय सत्ता है। शङ्कराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र-भाष्य में ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई पदार्थ ही नहीं स्वीकार किया है। उनके मत में यह जगत् काल्पनिक है—मायामात्र है। जीव और ब्रह्म में भेद नहीं है। जीव ब्रह्म का ही अंश है। ब्रह्म ही सत् वा सत्य है—ब्रह्म ही चित् वा ज्ञान है। जब तक जीव माया वा अज्ञानता के आवरण से मुक्त नहीं हो सकता—जब तक उसको अपने ब्रह्मत्व की अनुभूति नहीं होती, तब तक उसे आनन्द नहीं है। योगी समाधि के द्वारा वह आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं। ध्यान की घनीभूत अवस्था को समाधि कहते हैं। समाधि में जब चित्त-वृत्ति का सम्पूर्ण निरोध हो जाता है, उस अवस्था को

* सन्तान के लिए माता का आत्म-त्याग ही प्रेम-जनित क्लेश का प्रत्यक्ष दृष्टान्त है। सर्वेन्द्रिय-निरोध ही त्याग की चरम अवस्था है। इन्द्रिय-परितृप्ति की वासना पराधीनता है, अतएव दुःख का मूल है। इन्द्रिय-निग्रह ही स्वाधीनता है, अतएव चरम आनन्द का आकर है।

फा. ५

असम्प्रज्ञात वा निर्विकल्प समाधि कहते हैं। इन्द्रिय-निग्रह को तप वा तपस्या कहते हैं। तप के बिना समाधि नहीं होती, और न निर्विकल्प समाधि के बिना सत्य वा आत्मा की उपलब्धि।

(३) सङ्गीत तथा काव्य की, लय तथा सौन्दर्य की अनुभूतियाँ हमें विस्मय, सम्भ्रम तथा आनन्द से आत्म-विस्मृत कर देती हैं। आनन्दानुभूति क्यों होती है, यह कहना कठिन है। काञ्चनजङ्घा एक उच्च पर्वतशृङ्ग-मात्र है। तुषारपात से उसका गात्र शुभ्र वर्ण धारण करता है। इस प्राकृतिक वस्तु को देखकर बहुत लोग इतने मुग्ध क्यों होते हैं? प्राकृतिक कारणों से पृथ्वी के कुछ विस्तीर्ण गह्वरों में बहुत-सा जल सञ्चित होता है। इस जलराशि को समुद्र कहते हैं। इसमें ऐसा क्या है, जिसे देखकर किसी किसी का मन विस्मय से आप्लुत होता है? चन्द्र एक सामान्य उपग्रहमात्र है। कुछ पराया आलोक उसके पृष्ठ से प्रतिफलित होता है। उसे देखकर किसी किसी का मन आनन्द से क्यों उद्वेलित होता है? पद्म वा गुलाब कुछ पत्रों की वर्णयुक्त परिणतिमात्र है। वे मानव-मन को क्यों उत्फुल्ल करते हैं? कोकिल एक सौन्दर्य-विहीन कृष्ण-वर्ण पक्षी है। उसके स्वर में बहुतों को इतने माधुर्य का अनुभव क्यों होता है? हरिण एक वन्य चतुष्पद जन्तु है। उसके नयनों में ऐसी कौन-सी मादकता है जिसके वर्णन में कवि-परम्परा मुखर है? इन समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता। हम यह भी नहीं जानते कि जो उच्च कोटि की कला कहलाती है उसके द्वारा जातीय क्रमोन्नति में क्या सहायता मिलती है? सौन्दर्य का रहस्य अभी तक उद्घाटित नहीं हुआ है। हमने इतना ही विश्वास करना सीखा है कि सौन्दर्य का आदर्श परिवर्तित होता जा रहा है। सौन्दर्य के निकट से जो स्पष्ट संवाद आते हैं, हम अभ्यास-वश अपनी चेतना में उनके पहुँचने का इङ्गित पाते हैं, किन्तु यह नहीं जानते कि भेजनेवाले का स्वरूप क्या है।

यहीं हम आत्मा की उस अनुभूति का परिचय पाते हैं जिसे लोग रहस्यवाद कहते हैं। दर्शन-शास्त्र के प्रशस्त किन्तु अन्धकार-मय राजपथ का परित्याग कर एक श्रेणी के मनोवृत्ति-सम्पन्न मनुष्यों ने आदर्श सत्ता के निकट पहुँचने के निमित्त तीन सङ्कीर्ण किन्तु सरल पथों का आविष्कार किया है। वे दृढ़ता के साथ कहते हैं कि धर्म में आत्म-नियोग करके, क्लेश को वरण करके और प्रकृति तथा कला के सौन्दर्य में निमज्जित रहकर सत्य के, कम-से-कम, द्वारदेश तक अग्रसर होने को वे समर्थ हुए हैं। इन तीनों पथों के अवलम्बन से तथा और भी कितने ही रहस्यमय उपायों के द्वारा आत्मा के निकट सत्य के सम्पूर्ण स्वरूप के संवाद आते हैं, जो इन्द्रिय-ज्ञान के अनधिगम्य हैं। हेगेल ने कहा है कि "अध्यात्म-तत्त्व की इन्द्रियानुभूति ही सौन्दर्य है।" आइकेन ने कहा है कि "सत्य, शिव तथा सुन्दर सुसङ्गत तथा यथार्थ अध्यात्म-जगत् के अंश हैं। इन तीनों में ही हमें प्रकृत सत्ता की यथार्थ मूर्ति देखने में आती है।" इन उक्तियों के द्वारा यथार्थ जगत् का आवरण बहु-परिमाण से मुक्त होता है और सुस्पष्ट रूप से हो चाहे अस्पष्ट रूप से, बद्ध आत्मा के निकट सत्य प्रतिभात होता है।

जिनका अतीन्द्रिय जगत् में प्रवेशाधिकार है वे सौन्दर्य को भास्वर रूप में स्वर्ग के देवताओं के साथ विचरण करते देखते हैं। फिर मर्त्य में चक्षुरिन्द्रिय की सहायता से भी उन्हें वह देखने में आता है। उनके दृष्टि-पथ में यदि कभी कोई सुरूप मुख वा आकृति आ पड़ती है तो उसमें ऐसी श्री का अनुभव करके वे चमत्कृत होते हैं और उनके शरीर में अद्भुत रोमाञ्च उपस्थित होता है।

बिना एकाग्रता के यथार्थ आनन्द की अनुभूति नहीं होती। विद्वान् लोग गणित वा विज्ञान के जटिल प्रश्नों के समाधान से जो अतुल आनन्द का अनुभव करते हैं वह एकाग्रता से उत्पन्न होता है। सुर तथा लय में आत्म-समर्पण न करने से सङ्गीत का आनन्द नहीं मिलता। नायक-नायिका परस्पर के मिलन में जिस निविड़ आनन्द का अनुभव करते हैं वह एकाग्रता का फल है। इन सब क्षणिक एकाग्रताओं के उदाहरणों से हम अनुमान कर सकते हैं कि स्थायी ब्रह्मानन्दानुभूति के लिए कितनी एकाग्रता की आवश्यकता है। अस्थायी खण्ड आनन्द-समूह स्थायी अखण्ड आनन्द के ही अंश हैं।

अनेकों के जीवन में ऐसे विमल मुहूर्त उपस्थित हुए हैं, जब उनकी सौन्दर्य-प्रीति अनुराग में परिणत हुई है और उनके मन में एक अपूर्व त्रास-विजड़ित आनन्द का सञ्चार हुआ है। उस समय उन्होंने अनुभव किया है कि पृथ्वी एक नवीन जीवनी-शक्ति से पूर्ण है—ऐसी एक प्रभा से उद्भासित है जो प्रतीयमान जगत् की वस्तु नहीं है—जो सर्व-सौन्दर्य के आकर से विच्छुरित है। इस प्रकार की उच्छ्रित अनुभूति की अवस्था में उनके निकट प्रत्येक घास का पत्ता अर्थयुक्त अनुभूत होता है—मानो अपूर्व आलोक का निर्झर है—मानो अमरावती-लग्न मरकत है। आत्मा—जो दर्शक है—मानो सहसा रहस्य-मन्दिर में नीत होकर विस्मय-व्याकुल नेत्रों से सत्य सुन्दर का दर्शन कर रही है। इस प्रकार की अनुभूतियों की धारा असाधारण होने पर भी इसे हम अवज्ञा की दृष्टि से नहीं देख सकते। यह किस परिमाण से सत्य है, इसका सूक्ष्म परीक्षा से निर्णय करना चाहिए।

स्नायु-वाहित संवाद के अतिरिक्त अन्य किसी अधिक विश्वासयोग्य प्रमाण के द्वारा भौतिक जगत् का अस्तित्व नहीं स्वीकृत होता, किन्तु साधारण मनुष्य का वार्तावह यन्त्र त्रुटियुक्त होता है और उसके द्वारा लोग सहसा प्रतारित हुआ करते हैं। रहस्यवादी प्रकाश्य में हों, चाहे अप्रकाश्य में, इस वार्तावह यन्त्र के सिद्धान्तों पर सन्देह करते आये हैं। वे प्रत्यक्ष दर्शन वा तर्क-जाल के द्वारा कभी प्रतारित नहीं हुए हैं। वे इन्द्रिय-ज्ञान-सापेक्ष जगत् को पुनः पुनः अस्वीकार कर चिरदिन से कहते आते हैं कि अन्य एक पथ के द्वारा—एक अद्भुत बेतार-यन्त्र के द्वारा—एक गूढ़ उपाय के द्वारा आत्मा (जो ज्ञाता है) सत्य पदार्थ का ज्ञान प्राप्त कर सकती है। इन्द्रियज ज्ञान वा तर्क पर निर्भरशील व्यक्तियों की अपेक्षा अनुभूतियों के सम्बन्ध में उनकी धारणा पूर्णतर है, इस विवेचना से जो सब वार्तायें धर्म, क्लेश तथा सौन्दर्य के भीतर होकर आती हैं उन्हें वे जीवन के केन्द्र में स्थापित करते हैं। सत्य की क्षुधा सब दर्शनों की ही जननी है। सत्य के अस्तित्व का यही भारी प्रमाण है। रहस्यवादियों के मत में चरम सन्तोष लाभ करने के लिए इन्द्रियानुभूति व्यतीत अन्य पन्था भी है। वे ससीम के भीतर असीम को पाने की आशा रखते हैं, यहाँ तक कि असीम अतीन्द्रिय जगत् में विचरण करने को समर्थ है, ऐसा भी कहते हैं। रहस्यवाद का प्रथम सूत्र है—"सत्य का अनुसन्धान करना"; और द्वितीय सूत्र है—"आत्मा स्वयं सत्य है, यह धारणा मन में रखना"। आत्मा सत्य है, इसलिए वह सत्य के पाने की आशा करती है, कारण कि समधर्मी न होने से मिलन असम्भव है*। इन दोनों सूत्रों के अनुसरण तथा अनुशीलन पर रहस्यवादियों की आध्यात्मिक जीवन-यात्रा निर्भर है।

रहस्यवादियों का मतवाद युक्ति के ऊपर प्रतिष्ठित नहीं है—वह कर्म के ऊपर है। इस मत में जीवात्मा मूलतः परमात्मा से निःसृत है; इस कारण परमात्मा का संयोग-लाभ करने को समर्थ है। अतएव रहस्यवादी इस अधिकार को स्थापित करना चाहते हैं कि युक्ति तथा तर्क के बहिर्भूत अलौकिक जगत् का रहस्य उन्हीं के निकट किसी परिमाण में उद्घाटित हुआ है। यथार्थ ही वह जगत् जो बुद्धि तथा युक्ति से अगम्य है (यतो वाचा निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह), वह कैसे रहस्यवादी-भिन्न स्थूल प्रत्यक्षवादी के ज्ञान का विषय हो सकता है? परिच्छिन्न मन तथा बुद्धि अपरिच्छिन्न सत्ता वा ज्ञान को अपने विचार का विषयी-भूत नहीं कर सकते। दार्शनिकों की नित्य-सत्ता प्राणहीन तथा दुर्लभ है, किन्तु रहस्यवादियों का परमपदार्थ सजीव, सुलभ तथा प्रेमार्पण-योग्य है।

रहस्यवादी कहता है—"हमारा मतवाद प्रयोग-सापेक्ष विज्ञान है; इसका बाहरी विवरणमात्र सुनकर इसे ग्रहण न करना। चखकर इसके स्वाद का परिचय लेना। हम ज्ञानी नहीं हैं, हम कर्मी हैं। विज्ञान तथा दर्शन का ज्ञान सीमाबद्ध है, किन्तु हमारी दृष्टि सीमा को अतिक्रम कर गई है—असीम की उपलब्धि की है। हम संख्या-लघु हैं, तो भी हमारे सम्प्रदाय का विनाश नहीं है।"

* हमारे शास्त्रकारों ने कहा है कि यदि पूजा तथा आराधना के द्वारा देवता को पाना है तो भक्त को स्वयं देवता होना चाहिए। "देवो भूत्वा देवमर्चयेत्"।

त्याग

लेखक, श्रीयुत भगवतीप्रसाद वाजपेयी

[१]

“कल जब मेरे बायें पैर की पिंडुली का आपरेशन हुआ था तब तुमने देखा था कि नहीं? वे आये थे। टिंगने शरीर के होंगे, बैंजनी रंग की नेकटाई रही होगी। चश्मा सफ़ेद सिलो-लाइट फ्रेम का लगाये रहे होंगे।” अलकनन्दा ने कहा। उसका मुख आन्तरिक वेदना से मुरझाया हुआ था। उसकी आँखों के नीचे, पलकों में, कालिमा छाई हुई थी।

“उस समय कई आदमी थे जीजी। मैं उन्हें कैसे देखती? फिर तुमने पहले से बतलाया होता तो देखती भी। अब बता रही हो, जब उस बात को गुज़रे हुए दो दिन बीत गये।” विमला ने धीरे-धीरे गम्भीरता से कहा।

“हाँ” कहकर एक शीतल निःश्वास छोड़ते हुए अलकनन्दा कहने लगी—“अब तो वे नहीं आयेंगे। इसी बार आये थे, सो मेरे बड़े भाग्य थे। नहीं तो, तुम देखती ही हो। यहाँ कितने दिन से पड़ी हूँ, वे मुझे कितनी बार देखने आये?” उसका कण्ठ भर आया, उसकी आँखें आँसुओं से भीग गईं।

विमला ने दृढ़ता के साथ कहा—घर घर ऐसे ही पुरुष हैं जीजी। वे दिन नहीं रहे, वे बातें नहीं रहीं। अब तो जो कुछ भी प्राप्त है, उसी को अपने कलेजे से चिपटाकर संतोष करना पड़ता है। किया क्या जाय? हम नारियों का जीवन ही इसी लिए है।

अलकनन्दा ने आँसू पोंछ डाले। भीतर का भीम उद्वेग सँभालते हुए उसने कहा—ऐसी बात नहीं है बहन। पहले कभी ऐसी बातें नहीं हुई थीं। इधर दो वर्षों से ही उनमें यह बात देख रही हूँ। वे मुझे कितना प्यार करते थे, यह मैं तुम्हें क्या बताऊँ? मैं तो सोचती हूँ, कोई किसी को क्या उतना चाहता होगा, जितना वे मुझे चाहते थे? पर अब तो वे बातें मेरे लिए स्वप्न हो गई हैं। उनकी कथा मैं तुम्हें क्या सुनाऊँ?

विमला अभी नवयुवती है। उसका रूप-लावण्य तरङ्गमालिका की भाँति लहराया करता है। वह जिसे प्यार करती है उसके पीछे नहीं पड़ती, वरन उसी को अपने पीछे दौड़ाया करती है। उसने कहा—यह कोई नई बात नहीं है जीजी। सभी पुरुष प्रारम्भ में अपनी नवपत्नियों को बहुत अधिक प्यार करते हैं; पर उस समय भी उनका प्यार उनकी आत्मा के प्रति न होकर उनके कमनीय कलेवर के प्रति होता है।

“मैं ऐसा नहीं मानती। मैंने उनकी प्रकृति का अध्ययन ख़ूब किया है। मेरे बारह-चौदह वर्ष उनके साथ ही व्यतीत हुए हैं। मैं जानती हूँ, उनमें कहाँ किस स्थल पर शिथिलता है। वे किसी आवश्यक काम में फँस गये हैं। वैसे तुम देखती ही हो। मुझे और किसी तरह का कष्ट तो है नहीं। कितने फल रोज़ भेजते हैं? मुझसे खाये नहीं जाते। ज़्यादातर बाँट ही देती हूँ। छोटे बाबू को दोनों वक़्त मुझे देखने के लिए भेजते ही हैं। रुपये-पैसे ख़र्च करने की भी कोई किफ़ायत मेरे सामने नहीं आती। फिर भी बहन, मैं केवल इतना चाहती थी कि एक बार—केवल एक बार, दो मिनट को ही—वे चले आया करते। मैं उन्हें देख तो लेती। वैसे, हाल-चाल तो छोटे भाई से पा ही जाते हैं, तो भी कभी पूछ लेते—“कैसी तबीयत है, पैर का दर्द गया कि नहीं।” इससे मैं कितनी सुखी होती! कहते-कहते अलकनन्दा फिर साश्रुनयन हो उठी।

विमला बोली—इतना दुख न करो जीजी। वे आवेंगे, मुझे विश्वास है; वे ज़रूर आवेंगे। एक बार वे

आ भर जायँ, फिर तो मैं सब ठीक कर दूँगी। तुम कुछ भी चिन्ता न करो जीजी।

“तुम क्या ठीक कर दोगी? तुम क्या ठीक कर सकती हो? ये बातें भी क्या किसी से कहने की होती हैं? और यदि ये बातें कहनी ही पड़ें तो फिर रह क्या गया? इनसे तो केवल अन्तःकरण की भावना का परिचय मिलता है। मैं तो मर जाना चाहूँगी, पर इस सम्बन्ध में कभी कुछ न कहूँगी। क्या बच्चों की-सी बात तुमने कह दी? यह भी न समझा कि इनकी व्यथा किस प्रकार की है? प्रेम क्या माँगने की वस्तु है? क्या प्रेम माँगा भी जाता है? छिः तुमने यह भी न समझा कि प्रेम न कभी माँगा जाता है, न कभी माँगने से मिल ही सकता है।”

“अनुभव और अवस्था में तुम मुझसे बड़ी हो जीजी। मैं तुम्हारी बातों का आदर करती हूँ। मेरा अभी ज्ञान ही क्या? मैं तुमको बतला ही क्या सकती हूँ? बतलाऊँ भी तो उसका वज़न क्या? फिर भी मुझे यह कहने दो जीजी कि प्रेम के अनन्त रूप हैं, अनन्त पथ। मानव-प्रकृति का वह एक शाश्वत अङ्ग है। निश्चयपूर्वक उसके सम्बन्ध में कोई कुछ कैसे कह सकता है? मैं तो समझती हूँ कि, प्रेम माँगा भी जाता है, मिलता भी है और लौटाया भी जाता है। भगवान् करें, तुम जल्दी चंगी हो जाओ और दस-बीस बरस असीम सुख से अपना जीवन व्यतीत करो। कभी-न-कभी तो तुम्हें मालूम होगा जीजी कि मैंने जो बात कभी कही थी वह कितनी यथार्थ थी।”

उस दिन दोनों का यह वार्तालाप यहीं समाप्त हो गया।

[२]

अलकनन्दा के पैर का घाव धीरे धीरे अच्छा हो रहा था। विजयकुमार प्रतिदिन अपनी भाभी को देखने के लिए पूर्ववत् अस्पताल आता और चला जाता। विमला साधारण बीमार थी। उस दिन के पश्चात् पन्द्रह दिनों तक वह अस्पताल में और रही। इसके अनन्तर वह भी चली गई।

दो मास और व्यतीत हो गये। इस बीच में भी कभी-कभी विमला अलकनन्दा को देखने के लिए चली जाती थी। अस्पताल में एक साथ निकट रहने के कारण वह अलकनन्दा के स्नेहाञ्चल में बँध गई थी।

एक दिन की बात है। प्रधान लेडी डाक्टर ने अलकनन्दा का पैर देखकर सशंकित मुद्रा से कहा—अगर दर्द फिर शुरू हो गया है और फ़ीवर भी है तो जान पड़ता है, मवाद फिर बहने लगा। तब तो आपरेशन फिर करना पड़ेगा।

विजयकुमार इस संवाद को सुनकर चिन्तित हो उठा। प्रधान लेडी डाक्टर से दूसरे दिन के आपरेशन का समय आदि पूछकर वह चला गया। उसी दिन सायंकाल विमला जब अलकनन्दा से मिलने आई तब उसने उसका हाल-चाल पूछा।

अलकनन्दा ने व्यथित मुद्रा से कहा—अब जान पड़ता है, अन्तर्यामी मेरी पुकार सुन रहे हैं। तीन बार आपरेशन हो लेने पर जब आज डेढ़ वर्ष के बाद भी पैर अच्छा नहीं हो रहा है तब आगे क्या आशा करूँ? कल फिर आपरेशन होगा; वे भी आयेंगे।

“वे आयेंगे?” विस्मय को आह्लाद से मिश्रित करके विमला ने झटके के साथ पूछा।

गम्भीरतापूर्वक अलकनन्दा बोली—हाँ, निश्चय ही वे आयेंगे। लेकिन आयें। आने से होता क्या है? मेरा वश चलता और मेरी भावना लेडी डाक्टर महोदया समझ सकतीं तो मैं तो अब यही चाहती कि किसी तरह मृत्यु ही आ जाय। वह इतना कहकर बिलख-बिलख कर रोने लगी।

विमला धैर्य बँधाते हुए बोली—रोओ नहीं जीजी, पैर अच्छा हो जायगा। तबीयत भी ठीक हो जायगी। अब और अधिक दुखी न होओ।

दूसरे दिन आपरेशन के समय से बहुत पहले ही बाबू शिवकुमार आये। प्रधान लेडी डाक्टर को सोलह रुपये भी उन्होंने दिये। अलकनन्दा के निकट भी वे देर तक बैठे। अलकनन्दा बोली—“अब तो मैं और कुछ नहीं, केवल मृत्यु की कामना करती हूँ। मेरे पास बैठकर तुम व्यर्थ में अपना समय क्यों नष्ट करने आये हो? क्या

तुम्हारी इच्छा यही है कि मैं मरते समय भी छटपटाती ही रहूँ, एक जलन से—एक घृणा से ? किसी प्रकार भी सुख-संतोष न पा सकूँ ? अन्तकाल में भी क्या तुम मुझे जलाना न छोड़ोगे ? आखिर तुम्हारा अभिप्राय क्या है ? क्या तुम्हारी लालसा के राज्य में अब भी मुझसे कुछ लेना शेष बच रहा है ? और क्या वह मेरे अन्तकाल की मरण-व्याकुलता ही है ?"

शिवकुमार ने अलकनन्दा की एक बात का भी उत्तर प्रारम्भ में नहीं दिया। वह शनैः शनैः ये वाग्बाण छोड़ती जाती और शिवकुमार नीची दृष्टि किये उन्हें सुनते जाते। एक-एक बात को जैसे वे अलग-अलग अपने भीतर रखते जाते हों। जब अलकनन्दा अपनी बात पूरी कर चुकी तब शिवकुमार ने कहा—पुरुष के अपराध कितने गुरुतर होते हैं, यह वे स्वयं नहीं जानते। जानने का प्रयत्न भी करें तो भी उन्हें समझ नहीं सकते। उनका अनुभव तो नारी ही करती है। पर नारी-हृदय की क्षमाशीलता कितनी महान् और विशाल वस्तु है, पुरुष इतना समझ सकता है। मैं जानना चाहता हूँ कि क्या मेरा अपराध इस सीमा तक पहुँच गया है कि वह क्षमा ही नहीं किया जा सकता ?

अब अलकनन्दा रो पड़ी, शिवकुमार भी अपनी आँखों के आँसू न सँभाल सके। इस तरह दोनों का मन-स्ताप बहुत कुछ धुल गया।

इसके बाद ऑपरेशन हुआ। सायंकाल तक जब अलकनन्दा पूर्णरूप से सचेत हो गई तब उसने देखा—शिवकुमार उसके निकट ही कुर्सी डाले बैठे हुए थे।

अब की बार आपरेशन पूर्णरूप से सफल हुआ, अलकनन्दा धीरे-धीरे स्वस्थ हो गई। उसका पैर अच्छा हो गया।

[३]

कई वर्ष व्यतीत हो गये। काल के अनन्त अगाध में इन कुछ वर्षों की गणना क्या ?

अब अलकनन्दा के दो बच्चे भी हैं। वह बड़े सुख-संतोष के साथ अपना जीवन बिता रही है। संसार में मानवजीवन का जो चरम सुख है; अलकनन्दा को वह सब प्राप्त है। बाबू शिवकुमार ने यथेष्ट सम्पत्ति और वैभव का अर्जन किया है। नौकर-चाकर, गाड़ी-घोड़े, महल आदि सभी कुछ होगया है। उनका नवनिर्मित एक बँगला नगर के प्रमुख राजपथ पर भी है। आज-कल अलकनन्दा उसी में आ गई है।

सबेरा हुए अभी एक ही घंटा व्यतीत हुआ है। हरी दूब पर बाहर धूप आ गई है। वहीं चुन्नू को लिये हुए एक सेवक खेला रहा है।

इसी समय एक फेरीवाले ने आवाज़ लगाई—ये खिलौने तो खिलौनों के लिए ले आये हैं—बड़े मीठे बनाये हैं।

चुन्नू ने सुना। पहले तो उसकी मुद्रा विस्मयात्मक हो गई। लेकिन फिर वह आवाज़ परिचित जान पड़ी। उसी ओर को उसने अँगुली उठा दी।

नौकर ने फेरीवाले को पास बुलाया। उससे एक खिलौना लेकर वह अलकनन्दा के पास चल दिया। चुन्नू उसकी गोद में था। उसने खिलौना लेने का संकेत किया। यद्यपि वह खरीदा तो उसी के लिए जा रहा है ! फिर भी नौकर ज़रा-सी भी देर और कर दे तो चुन्नू रोने लगे। चुन्नू के रोने का भी मूल्य है। क्या बात हुई जो वह रोया ? इसी लिए खिलौना सेवक ने चुन्नू के हाथ में दे दिया। नौकर जानता है कि चुन्नू के हाथ में खिलौना जाने भर की देर है। वह तुरन्त मुँह में पहुँच जायगा। तो भी उसने खिलौना चुन्नू को दे दिया। वह उसको नाराज़ कैसे कर सकता है ?

यहाँ अब प्रश्न यह उठता है कि पैसे देने से पूर्व ही फेरीवाले की चीज़ का उपयोग जब प्रारम्भ हो हो जाता है तब क्या नौकर ही अपने पास पैसे रखकर समयानुसार फेरीवाले को पैसे नहीं दे सकता, क्योंकि मुख्य इच्छा तो चुन्नू की ही है ? तो भी प्रचलन ऐसा ही है। वह सूत्र है। उसका भाष्य करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। भाष्य करने पर अनेकार्थवाची विकल्प निकलते हैं। और विकल्पों की महिमा बड़ी विचित्र होती है। तो भी एक बात समझ में आती है।

नौकर चुन्नू को गोद में लिये हुए अलकनन्दा के पास जा पहुँचा।

उधर वह ख़ुद ही इस दृश्य को देख रही है। मीठे खिलौने का रस चूसते हुए पुलकित मुद्रा से अलकनन्दा के सामने जब चुन्नू की पेशी हुई तब गोद में लेकर पहले तो अलकनन्दा ने उसे अपने वक्ष में चिपका लिया, फिर उसकी चुम्मी ली।

यही वह बात है। कैसी प्राण-प्रद ?

[४]

नवम्बर का तीसरा सप्ताह व्यतीत हो रहा है। रविवार का दिन है। बाबू शिवकुमार को भी फ़ुर्सत है। हिवेटरोड से अमीनाबाद जाने में देर ही कितनी लगती है ? एक मोटर में बैठकर बाबू शिवकुमार सकुटुम्ब स्वदेशी-प्रदर्शनी देखने आये हैं। मोटर तो बाहर खड़ा है। ड्राइवर महाशय अपने एक दोस्त से गप-शप कर रहे हैं। बाबू शिवकुमार मुख्य द्वार से प्रदर्शनी में प्रवेश कर रहे हैं। उधर दूर से ही कोई रमणी बाबू साहब और उनके परिवार को भी खड़ा हुआ देख रही है। उसका कृश गात है, कपोल चिपके हुए हैं। श्वेत खादी की एक साड़ी के ऊपर एक असमिया स्लेट रंग की अण्डी चादर ओढ़े हुए है। पैरों में चप्पल हैं। धीरे-धीरे चलकर वह मोटर-ड्राइवर के निकट जा पहुँची। उससे पूछने लगी—इस मोटर में कौन साहब आये हैं ?

ड्राइवर ने उत्तर दिया—बाबू शिवकुमार।

और भी कोई साथ में है ?

पूरी फ़ैमिली है।

उस रमणी ने फिर आगे कुछ नहीं पूछा। उसी फाटक से वह भी भीतर चली गई।

भीतर पहुँचने पर उसने सामने की ओर दृष्टि डाली। फिर कुछ सोचती हुई, किसी को खोजती हुई, वह एक ओर को चल दी।

वह देखती गई। "ये कपड़ेवाले हैं, ये जनरल मर्चेन्ट हैं। और भी बढ़ गई, वे हैं 'वे'। ये लो, किसी मित्र से नमस्कार करने लगे। फिर आगे बढ़ गये। अब पुस्तक-भांडार के सामने पहुँच गये। श्रीमती जी ने कोई पुस्तक माँगी है। हाँ, अब ठीक है।" वह स्वयं आगे बढ़ गई।

आगे तो बढ़ गई, लेकिन वे लोग भी तब तक चल खड़े हुए। तब वह सोचने लगी—तो क्या हुआ ? मैं चलती जाऊँ। वे खड़ी होंगी तब तो मिल ही जाऊँगी। वह चलती ही गई। दो दूकानों के बाद पहुँचकर वह अलकनन्दा के सामने जा पहुँची और हाथ जोड़कर उनको नमस्कार करने लगी। बाबू शिवकुमार थोड़ा अलग हटकर एक पुस्तक के पन्ने उलटने लगे।

'नमस्ते' का उत्तर 'नमस्ते' में ही देकर अलकनन्दा ने पूछा—आप ? आपको जान पड़ता है, मैंने कहीं देखा है। पर, याद नहीं आती। क्या आप बतलाने का कष्ट करेंगी ?

अलकनन्दा इस समय भूल रही है कि कभी वह अस्पताल में थी, कभी वहाँ वह अत्यधिक दुखी भी रही थी, कभी उसने मृत्यु का भी आह्वान किया था। उस समय किसी ने उससे आत्मीयता भी प्राप्त की थी।

"मेरा नाम विमला है।"

"ओहो ! तो तुम विमला हो !" कहती हुई अलकनन्दा ने उसे अपने बाहुद्वय में भरकर वक्ष से लगा लिया। फिर बोली—"आह ! आज कितने दिनों के बाद तुमसे मिलना हुआ। कहाँ रहीं अब तक ? एक ही नगर में रह कर भी मिलीं इतने दिनों के बाद ! और तुम हो कैसी गई ! क्या बीमार रहती हो ? और कोई साथ में नहीं है ? अकेली ही हो क्या ?

प्रश्नों की झड़ी लग गई। विमला बेचारी किस-किस बात का उत्तर दे। उसने साश्रुनयन होकर, चुन्नू को अपनी गोद में उठाकर, उसकी चुम्मी ली। फिर वह बोली—हाँ जीजी, बीमार हो गई हूँ।—थोड़े ही दिनों की और मेहमान हूँ।

"वाह ! ऐसा कैसे हो सकता है विमला ?" अच्छे से अच्छे डाक्टर से मैं ख़ुद तुम्हारी चिकित्सा कराऊँगी। इतनी निराश क्यों होती हो ?

नहीं जीजी, तुम अब ये सब बातें रहने दो। वह समय अब निकल गया, जब मैं अच्छी हो सकती थी।

"ऐसी क्या बात है ? ऐसी कौन-सी बात है ? देखती हूँ, तुम्हारा लड़कपन अभी तक नहीं गया ! कैसी नासमझी की बातें करती हो ! रोओ मत; देखो, कहना मानो।

"अच्छा चलो, घर चलें। तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं है। तुम ज़्यादा बीमार हो।"

"ना जीजी, अब इसके लिए माफ़ी चाहती हूँ। मुझे घर न ले चलो। वहाँ जाने से तुमको कष्ट ही होगा।"

"कष्ट क्या होगा? कुछ कष्ट नहीं होगा। चलो! चलो तो!"

लेकिन विमला नहीं चल सकी। बोली—मैं पहले ही माफ़ी माँग चुकी हूँ।

तब अलकनन्दा बोली—तो मैं ही तुम्हारे घर चलूँगी। मैं उनसे कह तो दूँ कि मुझे आज प्रदर्शिनी नहीं देखनी है।

अलकनन्दा शिवकुमार के पास चल दी। किन्तु उसी क्षण साश्चर्यभाव से—"अरे! यह बात क्या है विमला?" कहती हुई, उसको उनकी ओर मोड़कर, अलकनन्दा बोल उठी—देखो, ज़रा देखो तो सही, वे भी तुम्हारी तरह रो रहे हैं!

कवि का आत्म-समर्पण

लेखक, श्रीयुत उदयशंकर भट्ट

मेरे स्वर में बोल रहा है कौन मिलाकर अपना स्वर रे,
लज्जित स्मिति की तरल लहर से कौन खेलता हहर हहर रे।
पुलकित रोमावलि छूते ही कई बिजलियाँ हँस देती हैं,
किसने इस अन्तर में छिपकर भर दी चंचल अचल लहर रे।

मैं अब तक न जान पाया हूँ उसके मधुर गान की धारा,
मैं केवल कहता आया हूँ उसका मेरा एक किनारा।
मुझमें आकर क्या पाया है उसने यह तो वह ही जाने,
मैंने तो सब कुछ पाया है भूल भूल अपनापन सारा।

आत्म-समर्पण की बारी थी वह भी हो ली पूरी हो ली,
अब मेरे उन्मुक्त हृदय में उसकी छाया उसकी बोली।
दुनिया रूठ रही है मुझ पर यह अपमान समझकर अपना,
यह सब दोष उसी छवि का है जिसने आँखों में छवि घोली।

देख न पड़ता है अब कुछ भी डूब गया अपना जग सारा,
यह दुनिया औरों की होगी मुझको तो सब खाली खाली।
इस जीवन में मृत्यु नहीं है यह मद नहीं उतरनेवाला,
सदा खोजती राख रहेगी मेरी इसी नशे की लाली।



वासना

लेखक, श्रीयुत बच्चन

एक विज्ञ जन ने मेरे विषय में लिखा है कि 'बच्चन जी की कविता में कहीं-कहीं वासना का भी ज़बरदस्त पुट रहता है।' इसे पढ़कर मेरी लेखनी निम्नपंक्तियों में क्रंदन कर उठी है। —बच्चन

कह रहा जग, वासनामय
हो रहा उद्‌गार मेरा।
सृष्टि के प्रारंभ में
मैंने उषा के गाल चूमे,
बाल रवि के भाग्यवाले
दीप्त भाल विशाल चूमे,
प्रथम संध्या के अरुण दृग
चूमकर मैंने सुलाये,
तारिका-कलि से सुसज्जित
नव निशा के बाल चूमे,
वायु के रसमय अधर
पहले सके छू होठ मेरे!
मृत्तिका की पुतलियों से
आज क्या अभिसार मेरा!
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्‌गार मेरा।
विगत-बाल्य वसुंधरा के
उच्च तुङ्ग-उरोज उभरे,
तरु उगे हरिताभ पट धर
काम के ध्वज मत्त फहरे,
चपल उच्छृङ्खल करों ने
जो किया उत्पात उस दिन,
है हथेली पर लिखा वह
पढ़ भले ही विश्व हहरे;
प्यास वारिधि से बुझा-
कर भी रहा अतृप्त हूँ मैं
कामिनी के कुच-कलश से
आज कैसा प्यार मेरा!
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्‌गार मेरा।
इंद्र-धनु पर शीश धर कर
बादलों के सेज-सुख पर
सो चुका हूँ नींद-भर मैं
चंचला को बाहु में भर
दीप रवि-शशि-तारकों ने
बाहरी कुछ केलि देखी,
देख पर पाया न कोई
स्वप्न वे सुकुमार सुंदर,
जो पलक पर कर निछावर
थी गई मधुयामिनी वह!
यह समाधि बनी हुई है,
यह न शयनागार मेरा!
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्‌गार मेरा!
आज सीमा से घिरा हूँ,
पर उमंगें हैं पुरानी,
सोमरस जो पी चुका है
आज उसके हाथ पानी!

होठ प्यालों पर झुके तो
थे विवश इसके लिए वे,
प्यास का व्रत धार बैठा
आज है मन किंतु मानी,
मैं वही हूँ देह धर्म्मों
से वँधा, जग, जान ले तू।
तन विकृत हो जाय लेकिन,
मन सदा अविकार मेरा।
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा!

निष्परिश्रम छोड़ जिनको
मोह लेता विश्व भर को,
मानवों को सुर-असुर को
वृद्ध ब्रह्मा, विष्णु, हर को
भंग कर देता तपस्या
सिद्ध ऋषि मुनि सत्तमों की
वे सुमन के बाण मैंने
ही दिये थे पंचशर को
शक्ति कुछ रख पास अपने
ही दिया यह दान मैंने,
जीत पाएगा इन्हीं से
आज क्या मन मार मेरा?
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा।

प्राण प्राणों से सकें मिल
किस तरह, दीवार है तन,
काल है घड़िया न गिनता
बेड़ियों का शब्द 'झनझन',
वेद-लोकाचार प्रहरी
ताकते हर चाल मेरी,
बद्ध उस वातावरण में
क्या करे अभिलाष यौवन!
अल्पतम इच्छा यहाँ
मेरी बनी बंदी पड़ी है।

विश्व क्रीडास्थल नहीं रे,
विश्व कारागार मेरा।
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा।

थी तृषा जब शीत जल की
खा लिये अंगार मैंने,
चीथड़ों से उस दिवस था
कर लिया शृङ्गार मैंने,
राजसी पट पहनने की
जब हुई इच्छा प्रबल थी,
चाह-संचय में लुटाया
था भरा, भंडार मैंने,
वासना जब तीव्रतम थी
बन गया था संयमी मैं,
है रही मेरी क्षुधा ही
सर्वदा आहार मेरा!
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा।

कल छिड़ी होगी खतम कल
प्रेम की मेरी कहानी,
कौन हूँ मैं, जो रहेगी
विश्व में मेरी निशानी?
क्या किया मैंने नहीं जो
कर चुका संसार अब तक?
वृद्ध जग को क्यों अखरती
है क्षणिक मेरी जवानी?
मैं छिपाना जानता तो
जग मुझे साधू समझता।
शत्रु मेरा बन गया है
यह सरल व्यवहार मेरा।
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा।

—

बेकारी कमेटी की रिपोर्ट

संयुक्त प्रान्त में शिक्षितों की बेकारी और उसके प्रतीकार की जाँच करने के लिए सरकार की ओर से एक कमिटी नियुक्त हुई थी। इस कमेटी के सभापति राइट आनरेबल सर तेजबहादुर सप्रू थे और इसने बड़ी तत्परता और लगन से इस कार्य्य को किया है। कमिटी की रिपोर्ट में बहुत-सी ज्ञातव्य बातें संगृहीत हैं। इस लेख में विद्वान् लेखक ने उन्हीं पर प्रकाश डाला है।

लेखक, श्रीयुत सीतलासहाय

आक्टोबर सन् १९३४ में अपने मिनिस्टरों की सलाह से युक्त-प्रान्त के गवर्नर ने इस प्रान्त के शिक्षितवर्ग की बेकारी और उसके प्रतीकार की जाँच करने के लिए एक कमिटी नियुक्त की थी। राइट आनरेबल सर तेजबहादुर सप्रू, पी० सी०, के० सी० आई० ई०, एल-एल० डी०, इस कमिटी के चेयरमैन मुक़र्रर हुए थे। छतारी के कैप्टेन नवाब सर मुहम्मद अहमद सईद खाँ साहब, के० सी० एस० आई, के० सी० आई० ई०; एम० बी० ई०, एल-एल० डी०; युक्तप्रान्त के भूतपूर्व इञ्जीनियर राजा ज्वालाप्रसाद साहब, एम० आई० ई०, कानपुर के मिस्टर टी० गेविन जोन्स; आगरे के श्री साहब जी महाराज लाला आनन्दस्वरूप रायबहादुर, इलाहाबाद-विश्वविद्यालय के डाक्टर ताराचन्द एम० ए०; और डाक्टर ए० सिद्दीकी एम० ए०; तथा नैनी-एग्रीकलचर इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद, के डाक्टर एस० हिगिनबाथ, एम० ए०, इस जाँच-कमिटी के सदस्य नियुक्त हुए थे और मिस्टर सोहनलाल श्रीवास्तव, एम० ए०, बी० एस-सी० इस कमिटी के मंत्री बनाये गये थे। संयुक्त-प्रान्त की गवर्नमेंट के सेक्रेटरी के शब्दों में इस कमिटी का उद्देश यह था कि 'शिक्षित नौजवानों की बेकारी के प्रश्न पर विचार करें और उसके प्रतीकार के लिए क्रियात्मक उपाय और साधन की तजवीज़ करें।'

इस कमिटी के सेक्रेटरी महोदय ने ९ आक्टोबर से अपना काम आरम्भ कर दिया था। १० जनवरी १९३५ को इलाहाबाद में कमिटी का पहला अधिवेशन हुआ। इसके बाद बनारस, लखनऊ, अलीगढ़, आगरा, कानपुर आदि नगरों में जाकर इस कमिटी के सदस्यों ने तहक़ीक़ात की और सामग्री इकट्ठा की। १२७ सज्जनों की शहादत लीं, जिनमें ३० सरकारी अफ़सर थे और बाक़ी ग़ैर-सरकारी लोग। बड़े परिश्रम और खोज से रिपोर्ट लिखी गई। इस रिपोर्ट को कमिटी के प्रमुख ने युक्त-प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के सामने मार्च के पहले सप्ताह में पेश किया। लेकिन इसके पहले ही गवर्नर महोदय कौंसिल में अपने प्रारम्भिक भाषण में कह चुके थे कि "सप्रू-कमिटी ने जिस योजना की सिफ़ारिश की है उसमें बहुत खर्च पड़ेगा और प्रान्तीय सरकार के सामने इस समय घाटे की समस्या है।"

अतएव उसको पेश करते समय सर तेजबहादुर सप्रू ने अपना असन्तोष प्रकट करते हुए इस बात का आग्रह किया कि रिपोर्ट को कार्य का रूप देने के लिए सरकार को रुपये की व्यवस्था करनी चाहिए। फलतः स्टाम्प की ड्यूटी बढ़ाकर सरकार ने इस वर्ष तीन लाख रुपया खर्च



[राइट आनरेबुल सर तेजबहादुर सप्रू]

करने का आश्वासन दे दिया। इस प्रकार सर तेजबहादुर सप्रू तथा इस कमिटी के अन्य विद्वान् सदस्यों की डेढ़ बरस की मेहनत व्यर्थ होते होते बच गई। गवर्नमेंट-द्वारा नियुक्त की हुई इस प्रकार की जाँच-कमिटियों का यही परिणाम अक्सर हुआ है। असफलता और अव्यावहारिकता का अङ्कुर इनकी प्रकृति में ही होता है। युक्त-प्रान्त की गवर्नमेंट इस कमिटी की सिफ़ारिशों को मंज़ूर करके यद्यपि उसे कार्य का रूप देगी, तो भी इस प्रान्त की बेकारी में विशेष कमी नहीं आ सकेगी, जैसा मिस्टर टी० जोन्स ने इसी रिपोर्ट में अपने नोट में कहा है कि "बिना ग्रामीण जनता की बेकारी दूर किये शिक्षित-समुदाय की बेकारी दूर ही नहीं की जा सकती।"

असल बात तो यह है कि इस प्रकार की जाँच-कमिटियों के उद्देश का निर्माण करते समय जड़ के प्रश्न और मौलिक समस्यायें हमेशा विचार-क्षेत्र से अलग कर दी जाती हैं। कमिटी के सदस्य जड़ की बात पर न जा कर गौण बातों पर असाधारण परिश्रम से खोज करके जनता के सामने अपनी धारणा और सिफ़ारिश रख देते हैं, परिणाम कुछ नहीं निकलता, जैसे 'रायल कमीशन आफ़ एग्रीकल्चर' का हाल हुआ। लार्ड लिनलिथगो अपनी विद्वन्मण्डली के साथ विलायत से भारत की कृषि की अवस्था जाँच करने के लिए आये, लाखों रुपये उसकी रिपोर्ट की तैयारी में लग गये। लेकिन किसानों की जो मौलिक समस्यायें थीं वे उस कमीशन के सामने आई ही नहीं; क्योंकि वे उसके विचार-क्षेत्र से पहले ही अलग कर दी गई थीं। बेदखली और दख़ीलकारी का प्रश्न उस कमीशन के उद्देश से बिलकुल निकाल दिया गया था, जिसका परिणाम यह हुआ कि उस कमीशन से भारतीय किसान ने रत्ती भर फ़ायदा नहीं उठाया। इसी प्रकार यह कमिटी भी असली समस्या की जाँच करने से वंचित रही है। यह केवल शिक्षित-समुदाय की बेकारी मिटाने पर विचार कर सकती थी। जब सारे शरीर में रोग व्याप्त है तब एक अङ्ग कैसे स्वस्थ किया जा सकता है? अगर हम इस बात को मान भी लें कि शिक्षितवर्ग की बेकारी पृथक् रूप से दूर की जा सकती है, तो भी प्रश्न यह उठता है कि बहु-संख्यक ग्रामीण जनता की भयंकर बेकारी की जाँच छोड़कर अल्पसंख्यक शिक्षितवर्ग की बेकारी के प्रति पक्षपात क्यों दिखाया गया। यद्यपि इस कमिटी की जाँच का कोई वैसा परिणाम नहीं निकलेगा, तो भी इतना हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि सर तेजबहादुर सप्रू ने बड़े परिश्रम और खोज से इस रिपोर्ट को तैयार किया है। जो आँकड़े और सूचनायें इस रिपोर्ट में एकत्र की गई हैं, बहुमूल्य हैं और युक्त-प्रान्त की बेकारी की स्थिति की भयंकरता को प्रकट करती हैं।

कमिटी के मेम्बरों ने साफ़ शब्दों में प्रकट कर दिया है कि तहक़ीक़ात करने के बाद "हमारे मस्तिष्क पर जो छाप पड़ी है वह यह है कि पिछले दस और पन्द्रह वर्ष के बीच स्थिति दिन प्रतिदिन ख़राब ही होती गई है। और पिछले ५ वर्षों में तो ख़ास तौर से इस समस्या ने भयंकर रूप धारण किया है।" पैरा ५२।

मुज़फ़्फ़रनगर के कलक्टर मिस्टर एन० सी० मेहता ने बेकारी के सम्बन्ध में इस कमिटी के सामने शहादत देते हुए बताया है कि "१९३१ या ३२ में सब-रजिस्ट्रार की पाँच या छः जगहें ख़ाली हुई थीं। इन जगहों की पूर्ति के लिए विज्ञापन भी नहीं छपाया गया था, तो भी ७०० अर्ज़ियाँ आ गई थीं। अर्ज़ी देनेवालों में लंदन के एक पी-एच० डी० पास किये हुए सज्जन थे और सैकड़ों एम० ए०, एल-एल० बी० और फ़र्स्ट और सेकेंड क्लास के बी० ए० थे, जिन्होंने बहुत अच्छे नम्बरों से परीक्षायें पास की थीं और जो खेल-कूद में भी बहुत प्रवीण थे। अर्ज़ी देनेवालों में कुछ ऐसे भी थे जो आई० सी० एस० की परीक्षा में बहुत ऊँचे नम्बरों में उत्तीर्ण हुए थे, लेकिन नौकरी नहीं पा सके थे।"

ट्रेनिंग कालेज के प्रिंसपल मिस्टर वाल ने बयान किया है कि "इलाहाबाद ट्रेनिंग कालेज में मास्टरी के लिए प्रतिवर्ष ७० बी० ए० दाख़िल किये जाते हैं, जिनमें ७ लड़कियाँ होती हैं। इन ७० जगहों के लिए १९३२ में ४७३ अर्ज़ियाँ आई थीं, १९३३ में ६६६, और १९३४ में ७९७।"

पुलिस के इन्स्पेक्टर जनरल मिस्टर टी० हालिन्स ने बेकारी का विस्तार प्रकट करते हुए बयान किया है कि "पुलिस ट्रेनिंग स्कूल में सब इन्स्पेक्टरी की ट्रेनिंग के लिए जनवरी सन् १९३५ में ४२ उम्मीदवारों की बराहरास्त नियुक्ति हुई थी, जिनमें से इन्स्पेक्टर जनरल को स्वयं १० नियुक्तियाँ करने का अख़्तियार था। इन १० के लिए ३४० अर्ज़ियाँ उनके पास पहुँची थीं। मेरठ-कमिश्नरी से ५ नामज़दगियाँ होती हैं। उसके लिए ६५ उम्मीदवार आये थे। रुहेलखंड-कमिश्नरी में ३ जगहों के लिए ६०, इलाहाबाद में २ जगहों के लिए ५४, आगरे में ४ जगहों के लिए ५४, फ़ैज़ाबाद में २ जगहों के लिए ४१ और कमायूँ में एक जगह के लिए २१ उम्मीदवार हाज़िर हुए थे। इनके अलावा पुलिस के सुपरिंटेंडेंट और डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के पास भी सैकड़ों अर्ज़ियाँ पहुँची थीं। 'पुलिस ट्रेनिंग स्कूल' में वही दाख़िल हो सकता है जो कम से कम इन्ट्रेन्स पास हो। १९३५ में सब-इन्स्पेक्टरी के लिए जो ४२ उम्मीदवार दाख़िल किये गये थे उनमें ११ बी० ए० थे, २ बी० ए० एल-एल० बी० थे और ६ इन्टर्मीडियट पास थे।

"बहुत-से स्कूल-लिविंग या एफ़० ए० पास नौजवान और अनेक बी० ए० हर साल पुलिस कांस्टेब्ली में दाख़िल होते हैं, हालाँकि कांस्टेब्ली के लिए शिक्षा की कोई क़ैद नहीं है। पुलिस-दफ़्तर में इस समय २ बी० ए० और ६ एफ़० ए० क्लर्की का काम कर रहे हैं। ये ४० प्रतिमास वेतन पर मुक़र्रर हुए थे। ४ बी० ए० पास और ६ एम० ए० पास क्लर्की के लिए उम्मीदवार हैं। ये स्वीकृत कर लिये गये हैं। पुलिस के दफ़्तर में ज्यों ही जगह ख़ाली होगी, ये ३०) महीने पर मुक़र्रर कर लिये जायँगे।"

युक्त-प्रान्त के रजिस्ट्री के महकमे के इन्स्पेक्टर जनरल और एक्साइज़ कमिश्नर मिस्टर ए० एन० सप्रू आई० सी० एस० के बयान के आधार पर नीचे का नक़शा तैयार किया गया है। शिक्षितवर्ग की बेकारी को यह स्पष्ट करता है।

[आबकारी इन्स्पेक्टरी की जगहों और उनके लिए अर्ज़ियों की संख्या]

सन	कुल जगहें	एल-एल० बी० उम्मीदवार	एम० ए० एम० एस-सी० उम्मीदवार	बी० ए० बी० एस-सी० उम्मीदवार	एग्रीकलचर बी० ए० उम्मीदवार	कमर्स बी० ए० उम्मीदवार	इन्टर मीडियेट उम्मीदवार	कुल जोड़ उम्मीदवार
१९२८-२९	१०	०	४	६६	०	११	८५	१६६
१९२९-३०	७	१	२	३०	०	१	२०	५४
१९३०-३१	१०	३	९	२०	०	०	२३	५५
१९३४-३५	८	१३	६८	२३६	४	१७	१२५	४६३
	३५	१७	८३	३८५	४	२९	२५३	७७१

मिस्टर आर० सी० श्रीवास्तव का कथन है कि "मैं ऐसे ग्रेजुएटों को जानता हूँ जो दूध बेचते हैं और ऐसे एम० ए० लोग भी हैं जिन्होंने टाइपिस्ट की नौकरी के लिए अर्ज़ी दी थी और असफल रहे और ऐसे इन्ट्रन्स पास

लोगों को जानता हूँ जिन्होंने चपरासगीरी के लिए अर्ज़ी दी थी, लेकिन मंज़ूर नहीं हुई।"

सप्रू कमिटी रिपोर्ट पाँच भागों में बँटी हुई है। पहले भाग में इस कमिटी ने इस बात की सविस्तर तहक़ीक़ात की है कि सरकारी नौकरियों में क्या गुंजाइश है और सिविल इञ्जीनियर, मेकेनिकल और एलक्ट्रिक इञ्जीनियर, माईनिंग और मेटर्लगी के ग्रेजुएट, केमिस्ट (रसायनज्ञ), कमर्स के ग्रेजुएट, डाक्टर, पब्लिकहेल्थ में काम करनेवाले और वकीलों की इस समय क्या हालत है। कृषि और व्यवसाय में रोज़गार देने की कितनी सम्भावना है, इसका वर्णन रिपोर्ट के दूसरे भाग में है। रिपोर्ट के तीसरे भाग में युक्त-प्रान्त की शिक्षा की अवस्था का वर्णन है और चौथे भाग में विदेशों की शिक्षा-प्रणाली और बेकारी मिटाने के साधनों का वर्णन किया गया है। पाँचवें भाग में कमिटी की तजवीज़ें और सिफ़ारिशें दी गई हैं और अन्त में विद्वान् सदस्यों के बेकारी के विषय पर अनेक महत्त्वपूर्ण नोट हैं। एक मिस्टर एलब्रुक्स ने लंदन की शिक्षा-प्रणाली पर लिखा है। श्री साहब जी महाराज और डाक्टर हिगनबाथम ने गोशाला पर लिखा है। मिस्टर टी० गेविन जोन्स ने कृषि और मुद्रा-नीति पर लिखा है और मिस्टर एम० जी० होम्स ने नौकरी पाने और दिलवाने की संस्थाओं के निर्माण के बारे में लिखा है।

इस स्थल पर हम यदि रिपोर्ट की हर एक बात पर समालोचना करना चाहें तो असम्भव है। किन्तु उसकी कुछ महत्त्वपूर्ण बातें हम यहाँ ज़रूर उपस्थित करना चाहते हैं। मिस्टर जोन्स और डाक्टर हिगनबाथम ने बेकारी के विषय पर जो कुछ लिखा है, बिलकुल सही और अनुभवसिद्ध प्रतीत होता है और मेरा विश्वास है कि ये सज्जन वास्तव में इस समस्या की तह तक पहुँचे हैं। मिस्टर जोन्स लिखते हैं—

"बेकारी के प्रश्न पर प्रान्तीय दृष्टि से उचित रूप से विचार नहीं हो सकता, क्योंकि इस समस्या का अखिल भारतीय पहलू है और उसका प्रभाव प्रान्तीय समस्याओं पर निस्सन्देह पड़ता है। शिक्षित लोगों की बेकारी का प्रश्न भारतवर्ष के लिए ही कोई अनोखा प्रश्न नहीं है। अन्य देशों में भी शिक्षित लोगों में बेकारी पाई जाती है। लेकिन न तो योरप और न अमरीका ने शिक्षित लोगों की बेकारी पर अलग विचार किया है। वहाँ तो सर्व-साधारण की बेकारी पर विचार हुआ है और इस सार्वजनिक तहक़ीक़ात में शिक्षित लोगों की बेकारी का भी प्रश्न आ गया है। जब सर्व-साधारण की आर्थिक स्थिति बेहतर होती है और उनके रहन-सहन का आर्थिक परिमाण बढ़ जाता है तब शिक्षित लोगों को स्वभावतः विशेष सुविधायें मिलती हैं। इसलिए सर्वसाधारण की आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने और उनके रहन-सहन के ढंग को ऊँचा करने से ही शिक्षित-समुदाय की बेकारी दूर हो सकती है।"

मिस्टर जोन्स के मतानुसार इस समस्या को हल करने के लिए निम्नलिखित शर्तों का पूरा होना आवश्यक है—

(१) किसानों की आर्थिक उन्नति हो।
(२) बड़े व्यवसायों की उन्नति हो।
(३) ग्रामीण उद्योग-धन्धों और छोटे व्यवसायों की उन्नति हो।
(४) शिक्षित-समुदाय गाँवों में जाकर बसे।
(५) प्रारम्भिक शिक्षा में सुधार हो।
(६) माध्यमिक और ऊँची शिक्षा की प्रणाली का सुधार और पुनःसंगठन हो।

मिस्टर जोन्स लिखते हैं—"ग्रामीण जनता की उन्नति में ही हमारी समस्त आर्थिक परेशानियों का प्रतीकार छिपा हुआ है। जब ग्रामीण जनता की आर्थिक स्थिति सुधरेगी, उसके रहन-सहन का आदर्श ऊँचा होगा, तब शिक्षित-समुदाय की बेकारी भी दूर हो जायगी। व्यावसायिक उन्नति होने लगेगी, बेहतर सड़कें बन जायँगी और सफ़ाई तथा स्वास्थ्य भी पहले से बेहतर हो जायगा। हिन्दुस्तान एक दरिद्र देश कहा जाता है, लेकिन वास्तव में उसमें विशाल सम्पत्ति की सम्भावना छिपी हुई है।

"निम्नलिखित बातें ग्रामीण जनता के रहन-सहन की उन्नति की बाधक हैं—

(१) ज़मीन के बन्दोबस्त की प्रणाली जिससे गाँवों की उन्नति खुल्लम-खुल्ला रुक रही है।
(२) उत्तराधिकार के क़ानून।
(३) क़र्ज़ का भयंकर बोझ।
(४) सिंचाई की सुविधाओं का अभाव।
(५) उपजाऊ ज़मीन का नष्ट हो जाना और उसको क़ायम रखने या फिर से दुरुस्त करने की कोशिश का न होना।
(६) बेकार और घटिया पशुओं को बनाये रखना।
(७) लीद और गोबर का जला देना।
(८) हड्डियों का विदेश में चला जाना और इस प्रकार बहुमूल्य फ़ास्फ़ेट का नष्ट होना।
(९) ग्रामीण उपज के बेचने में दलाली, चुंगी इत्यादि का दिन-प्रति दिन बढ़ता जाना।
(१०) खाद्य-पदार्थ और कच्चे माल में मेल को रोकने के लिए क़ानून का अभाव।
(११) सड़क और रेलों की कमी।
(१२) मालगाड़ी के महसूल की विचित्र दशा।
(१३) खेती की उपज की क़ीमत में १९३० से एक-दम मन्दी का आ जाना, जिससे औसतन चीज़ों के दाम आधे रह गये हैं।
(४१) आबादी का असाधारण रूप से तेज़ी के साथ बढ़ना। अन्दाज़ा लगाया जाता है कि दो बरस में ३५ लाख मनुष्य बढ़ गये हैं।

"इन भयंकर कमज़ोरियों के होते हुए ताअज्जुब तो यह है कि किसान अभी तक ज़िन्दा हैं। ये ज़िन्दा हैं इसलिए कि किसान जो अनाज पैदा करते हैं उसी का कुछ अंश खा कर रह जाते हैं। अगर इस सम्बन्ध में इस देश में तुरन्त और साहस के साथ सुधार न किया गया तो अन्य देशों के संघर्ष में जो अधिक संगठित और ससाधन हैं, दुनिया के कच्चे माल के बाज़ार में हिन्दुस्तान की कृषि का अस्तित्व क़ायम न रह सकेगा। मेरा खयाल है कि खेत जोतनेवाले की स्थिति दिन-प्रति-दिन बदतर होती जाती है। गाँवों में जो सोना बचा रक्खा गया था, बिकता जा रहा है और विदेशों को ढोया चला जा रहा है। ग्रामीण दिन-प्रति-दिन अधिकाधिक क़र्ज़ में फँसते जाते हैं। आज-कल किसानी में कोई फ़ायदा नहीं है।

"हिन्दुस्तान पहले गेहूँ विदेशों को भेजता था, लेकिन अब मशीन के ज़रिये से खेती करनेवाले देशों के गेहूँ से उसे अपने गेहूँ के व्यवसाय की रक्षा करनी पड़ रही है।

"हिन्दुस्तान की रुई बिकती है सिर्फ़ इसलिए कि सस्ती है। रुई के किसान को अब सूडान, तुर्किस्तान, चीन और मध्य-अफ़्रीका के देशों के मुक़ाबिले के लिए तैयार होना पड़ेगा। अगर हिन्दुस्तान ने अपने माल को ऊँचे दर्जे का न रक्खा और सम्मिश्रण को न रोका तो विदेशों के बाज़ार भी उसके हाथ से निकल जायँगे।

"भारतवर्ष का तेलहन किसी समय सर्वश्रेष्ठ था, लेकिन अब अर्जेनटाइन और मंचूको से उसे मुक़ाबिला करना पड़ता है। यहाँ जूट ही एक वस्तु है जो विदेशों को जाती है और जिसका बाज़ार अभी हिन्दुस्तान के हाथ में है"।

कृषि-सम्बन्धी क़ानून के बारे में मिस्टर जोन्स लिखते हैं—"ब्रिटिश राज्य ने ज़मीन के बन्दोबस्त की वही प्रणाली क़ायम रक्खी है जो अकबर के ज़माने से चली आती थी। लेकिन साथ-ही-साथ उसने इस बात की भी कोशिश की कि इँग्लिस्तान की ज़मींदार-प्रणाली हिन्दुस्तान में भी चलाई जाय। इस नीति का परिणाम सन्तोषजनक नहीं हुआ। जब इस प्रणाली की कमज़ोरियों की उपेक्षा नहीं की जा सकी, किसानों के स्वत्वों की रक्षा करने के लिए क़ानून बनाकर त्रुटियों को मिटाने की कोशिश हुई। ज़मींदार और किसान के स्वत्वों में समझौता कराने के इस प्रयत्न के कारण स्थिति अब यह है कि न तो ज़मींदार और न किसान ही कृषि की उन्नति के लिए रुपया लगाने को तैयार हैं। गवर्नमेंट ४३ % ज़मींदार के मुनाफ़े से ले लेती है। २५ % इन्तज़ाम के खर्च और बक़ाया के लिए छोड़ देती है। जो ३५ % बचता है वह फिर ज़मीन में नहीं लगाया जाता। ऐसी स्थिति में कोई भी कृषि-प्रधान देश कैसे सम्पन्न रह सकता है?"

"प्रान्तीय गवर्नमेंट ने हाल में क़र्ज़ की समस्या को हल करने के लिए एक क़ानून बनाया है, जिसने क़र्ज़ की अदायगी के व्यतिक्रम को क़ानून के अनुकूल कर दिया है। इस क़ानून से सिर्फ़ ज़मींदार लोग जो क़र्ज़ की दृष्टि से भयंकर स्थिति में हैं, फ़ायदा उठा रहे हैं और अनेक

महाजनों के साथ अन्याय हो रहा है। साख और विश्वास नष्ट होता जाता है। इसके अलावा अनेक ज़मींदार जो इस क़ानून से फ़ायदा उठायेंगे, अधिकाधिक क़र्ज़ लेंगे। ज़मीन जोतनेवाले किसान को इससे कोई फ़ायदा नहीं।

"क़र्ज़, ज़मीन के बन्दोबस्त की प्रणाली और उत्तराधिकार के प्रश्नों का सन्तोषजनक निपटारा किसानों की दशा सुधारने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए भगीरथप्रयत्न की आवश्यकता है। ज़ेकोस्लोवेकिया और अन्य मध्य-योरपीय कृषि-प्रधान देशों में इस प्रश्न का हल इस तरह किया जा रहा है कि बहुत गहरे क़र्ज़ में फँसे हुए ज़मींदारों की रियासत गवर्नमेंट खरीद लेती है और उनका क़र्ज़ अदा कर देती है। इसके बाद उस ज़मीन को किसानों में बाँट देती है और उन्हें उसका मालिक बना देती है। बाद को उन्हीं किसानों से धीरे-धीरे छोटी छोटी क़िस्तों में गवर्नमेंट ज़मीन की क़ीमत वसूल कर लेती है।"

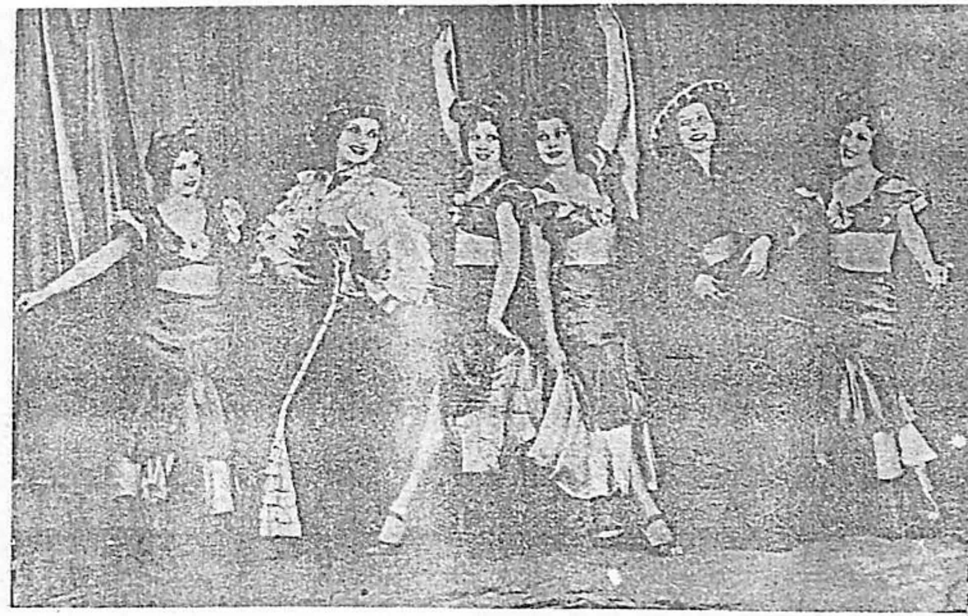
नैनी-एग्रीकल्चर इन्स्टीट्यूट के प्रमुख डाक्टर सैम हिगनबाथम ने भी जो नोट इस रिपोर्ट के साथ शामिल किया है, समस्या की तह तक पहुँचा है। उसे भी हम यहाँ अंशतः उद्धृत करते हैं। उन्होंने लिखा है—

"हिन्दुस्तान कृषि-प्रधान देश है। इस देश में खेती से जितने आदमी अपनी गुज़र-बसर करते हैं, अन्य सब पेशों में संयुक्त रूप से भी उतने आदमी नहीं हैं। कृषि की दृष्टि से भारतवर्ष को आश्चर्यजनक सुविधायें हैं। यहाँ की ज़मीन उपजाऊ है, आब-हवा बहुत अच्छी और मौसम भी बहुत अनुकूल है। इलाहाबाद में और उसके आस-पास जितने क़िस्म के पौधे पैदा किये जा सकते हैं, दुनिया में कहीं दूसरी जगह इतने क़िस्म के पौधे नहीं पैदा हो सकते। इलाहाबाद का ज़िला वर्ष के एक भाग में गर्म देश की फ़सल और तरकारियाँ पैदा कर सकता है और दूसरे भाग में समशीतोष्ण कटिबन्ध-प्रदेश के फल-तरकारी और फ़सल पैदा कर सकता है। उत्तर और मध्य-भारत के अधिकांश भाग में सिंचाई की सुविधा होने पर और खाद, जुताई और फ़सल की बोवाई के क्रम का मुनासिब इन्तज़ाम हो जाने पर एक साल में उसी ज़मीन से दो या तीन फ़सलें पैदा की जा सकती हैं।

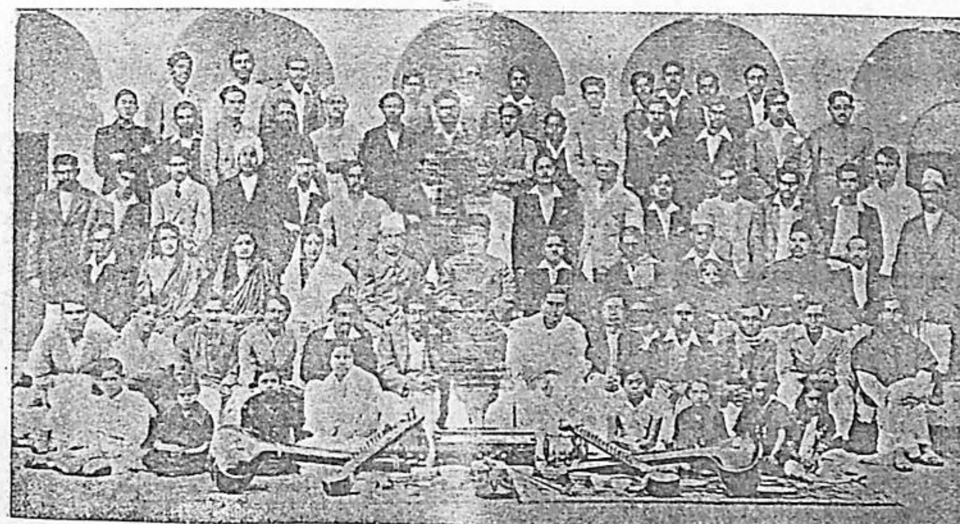
"भारतवर्ष कृषि की दृष्टि से इतनी सुविधाजनक स्थिति में है और इसके रहनेवाले बहुत कुशल किसान भी हैं और कृषि के पेशा को पसन्द भी करते हैं, लेकिन भारतवर्ष में प्रतिएकड़ और प्रतिकिसान जितनी कम उपज है, इस पृथ्वी के सभ्य देशों में कहीं भी नहीं। हालाँकि स्थिति ऐसी है कि यहाँ उपज अन्य देशों की अपेक्षा सबसे ज़्यादा हो सकती है। इस अवनति के चन्द कारण निम्नलिखित हैं—

(१) ज़मीन के बन्दोबस्त की प्रणाली में जो भारतवर्ष के अनेक भागों में पाई जाती है, सुधार की आवश्यकता है ताकि खेत के जोतनेवालों को यह अन्देशा न रहे कि वह ज़मीन से बेदख़ल हो जायँगे और उनको यह विश्वास रहे कि अगर किसानी के नये ढंगों को काम में लाकर उन्होंने उपज बढ़ाई तो उन्हें भी मुनाफ़े का कुछ हिस्सा मिलेगा। हिन्दुस्तानी किसान से अनेक रूप में ग़ैर-क़ानूनी ढंग से इतना रुपया वसूल कर लिया जाता है कि बहुत-से किसान जान-बूझकर मेहनत नहीं करते। वे हताश रहते हैं और भविष्य में उन्हें कोई आशा नहीं रहती। क्योंकि वे हमेशा लूटे गये हैं और अपने परिश्रम और अपनी ज़मीन की उपज में कभी उन्होंने उचित हिस्सा नहीं पाया है। गाँवों में सड़कें नहीं हैं। बरसात के दिनों में एक गाँव से दूसरे गाँव में आना-जाना असम्भव हो जाता है। गाँवों से निकलना या गाँवों में जाना सिवा पैदल के सम्भव नहीं होता। बैलगाड़ी भी नहीं पहुँच सकती। इसलिए बाज़ार से या बाज़ार को माल ले जाना मुश्किल हो जाता है। सड़कों के न होने की वजह से विचार और व्यापार दोनों ही मन्द हो जाते हैं।

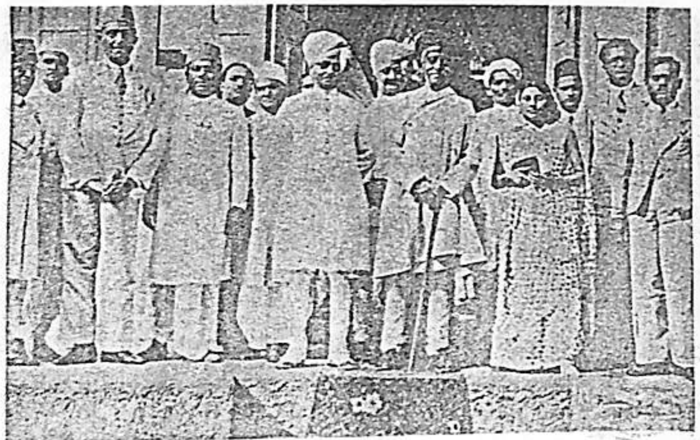
(२) सफ़ाई का अभाव है, जिससे बुख़ार, पेचिश इत्यादि बीमारियाँ पैदा होती हैं। खाने को काफ़ी नहीं मिलता और न खाने की सामग्री में परिवर्तन ही होता है। फल, तरकारी और घी-दूध के न मिलने की वजह से कमज़ोरी की बीमारी पैदा होती है, जिससे गाँववाले बहुत काफ़ी संख्या में मर जाते हैं। गाँववालों को माल बेचने में भी अनेक कठिनाइयाँ हैं। बाज़ार में कभी कभी किसानों से रुपये के माल पर १० फ़ी सदी (चुंगी या



अँगरेज़ नर्तकियों का एक जत्था जो आजकल भारतवर्ष के शहरों में घूम घूम कर अङ्ग-विन्यास की विविध भाव-भङ्गियों का प्रदर्शन कर रहा है।



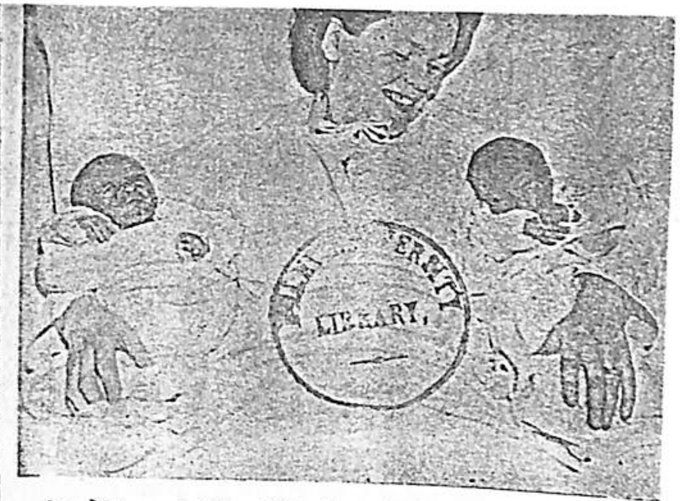
संगीत-समिति-प्रयाग के कुछ प्रमुख शिक्षक और विद्यार्थी। इस समिति ने संयुक्त प्रान्त में भारतीय संगीत का प्रचार करने में बड़ी सफलता प्राप्त की है।



म्बई का प्रथम भारतीय संगीत-सम्मेलन जिसका धर्मपुर के महाराज ने उद्घाटन किया था और जिसमें औंध के राजा साहब इत्यादि गण्यमान्य पुरुष उपस्थित थे।



प्रयाग के श्री-के० पी० दर की पुत्री कुमारी उर्मिला दर। गुलदस्ते सजाने में इन्होंने प्रथम पुरस्कार जीता है। इससे पहले हिन्दुस्तानी लड़की को यह पुरस्कार कभी नहीं मिला था।



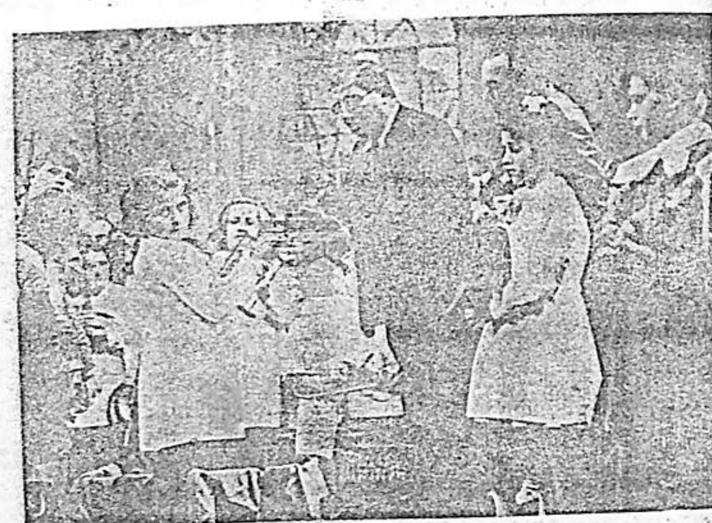
फ़िलाडेल्फ़िया की मिसेज़ चेरीज़ कोनर जिन्होंने १० महीने बाद फिर जुड़वा बच्चों को जन्म दिया है।



कैप्टन लक्ष्मण। आप कलकत्ता के पोर्ट-हे आफ़िसर नियुक्त हुए हैं। यह कार्य सीखने लिए आप बङ्गाल-सरकार की ओर से बम्ब पोर्ट-हेल्थ-आफ़िसर के पास भेजे गये थे



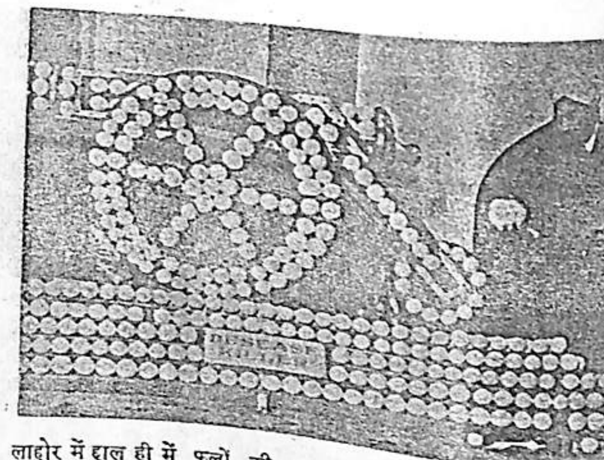
ुत पञ्चानन विस्वास—आपकी स्था १०१ वर्ष है। खुलना के र सबसे पुराने वकील हैं और अब भी वकालत कर रहे हैं।



इटली के लड़के अस्त्र-शस्त्र बनाने के लिए लोहे की चीज़ें अपने अपने घरों से लाकर देश के लिए दे रहे हैं।



ूना के कप्तान शंकरराव और अमृतसर की मिस लीला आनन्द जिन्होंने हाल ही में जात-पात तोड़कर विवाह किया है। यह प्रथम पञ्जाबी-मरहठा-विवाह है।



लाहोर में हाल ही में फलों की एक प्रदर्शनी हुई थी। उसमें एक विक्रेता ने नारंगियों की एक 'रोगनाशिनी तोप' का इस प्रकार प्रद किया था।



अँगरेज़ चित्रकार महिला कुमारी ओल्ड फ़ील्ड और लाहौर के चित्रकार रूपकिशन जिनके साथ आपका हाल ही में विवाह हुआ है। कुमारी जी ने हिन्दू-धर्म ग्रहण कर लिया है और इन्दुमती नाम धारण किया है।



एवरेस्ट पर्वत के शिखर पर इस वर्ष चढ़नेवाले दल के कुछ लोग। ये लोग हाल ही में बम्बई में जहाज़ से उतरे हैं।



बम्बई की कुमारी मेधा येध जिन्होंने नृत्यकला में अच्छी ख्याति प्राप्ति की है। इस चित्र में ये अपना प्रसिद्ध मनीपुरी नृत्य दिखला रही हैं।

ज़बर्दस्ती कर) वसूल कर लिया जाता है। गवर्नमेंट के कृषि-विभाग के कार्यकर्त्ता ग़लत सलाह देते हैं। खेत बहुत छोटे हैं और बहुत दूर पर होते हैं। अनाज के वर्तमान भाव को देखते हुए यह बिलकुल निश्चित है कि २० एकड़ से कम ज़मीन में किसी भले आदमी की गुज़र नहीं हो सकती। अगर गाँव के खेत एकजाई कर दिये जायँ, अगर मशीनों से और सहकारिता के सिद्धान्त पर काम किया जाय तो खेती में उन्नति हो सकती है और खेतों के क्षेत्रफल को बढ़ाये बग़ैर उपज बढ़ाई जा सकती है, लेकिन खेतों के एकजाई न होने की वजह से जो समस्या पैदा हो गई है वह मुश्किल से हल होगी।

"स्थिति यह है कि अगर नवीन प्रणाली काम में लाई जाय तो मौजूदा ढंग से भारतवर्ष अपने खेतों से जितना पैदा करता है उससे कहीं ज़ियादा पैदा कर सकता है। किसानी में इस समय विज्ञान की सहायता की जितनी आवश्यकता है, कभी नहीं रही। दुनिया भर में कहीं भी कोई सभ्य गवर्नमेंट कृषि की उन्नति पर इतना कम ख़र्च नहीं करती, जितना भारत-सरकार और यहाँ की प्रान्तीय सरकारें करती हैं। कृषि का बजट आज-कल की अपेक्षा दसगुना बढ़ाना चाहिए।

"अमरीका में क़रीब २५ फ़ी सदी आदमी इतना अनाज पैदा कर लेते हैं कि सारी आबादी के लिए पर्याप्त होता है और विदेशों को भेजने के लिए भी काफ़ी हो जाता है। एक सौ दस वर्ष पहले अमरीका में भी आबादी का उतना ही अंश खेती में लगता था जितना आज भारतवर्ष में लगा हुआ है। जैसे जैसे खेती की मशीनों की उन्नति हुई, मज़दूरों को छुट्टी मिली, वे व्यापार, नौकरी और व्यवसाय में लगे। अमरीका प्रतिमनुष्य खेती या व्यवसाय में जितनी मशीन-शक्ति काम में लाता है, संसार का कोई देश नहीं करता। संसार की किसी भी क़ौम की प्रति-मनुष्य इतनी आमदनी नहीं है।

व्यवसाय से उपज और आमदनी

मुल्क	उपज प्रति कार्यकर्ता	उपज प्रतिशत आबादी की	आमदनी प्रति-मनुष्य
भारत	२६५)	१२)	८२)
अमरीका	६३२७)	७२१)	२०५३)
ग्रेट-ब्रिटेन	२५००)	४१२)	१०६२)
कनाडा	७६४७)	४७०)	१२६८)
फ़्रांस	×	×	६३६)
जापान	१७६१)	१५८)	२७१)

इसका कारण यह है कि मशीनें कार्यकर्ताओं की शक्ति को कई गुना बढ़ा देती हैं।

डाक्टर गिरधरसहाय ने कुछ आँकड़े भारतवर्ष के सम्बन्ध में इस रिपोर्ट में प्रकाशित कराये हैं। ये आँकड़े अर्थयुक्त हैं और इन्हें नीचे उद्धृत करके हम इस लेख को समाप्त करते हैं। भारतवर्ष की जितनी अधिक जन-संख्या खेती पर आश्रित है, उतनी संसार के किसी देश की नहीं है। यह देश व्यवसाय में सबसे पीछे है। देखिए—

	खेती पर आश्रित	व्यवसाय और व्यापार पर आश्रित	सरकारी नौकरी पर आश्रित
हिन्दुस्तान	६६·४	१६·८	१·२
अमरीका	२१·५	५६·२	२·२
ग्रेट-ब्रिटेन	६·७	६७·६	५·६
कनाडा	२७·५५	४२·६	२·६
जर्मनी	३०·३	५७·७	२·३
फ़्रांस	३७·८५	५०·३	२·२
जापान	४८·३	३६·७	७·०

अपनी आवश्यकताओं के लिए भारतवर्ष अपने यहाँ कम-से-कम माल बनाता है और बाहर से बना हुआ माल मँगाने में अग्रणी है। अपने कच्चे माल से स्वयं फ़ायदा नहीं उठाता, बल्कि उसका अधिकांश भाग विदेशों को भेज देता है। देखिए—

	बना हुआ माल बाहर से कितना आता है (प्रतिशत)	कच्चा माल बाहर से कितना आता है प्रतिशत
भारत	७१%	४१·७%
अमरीका	२७%	४१%
ग्रेट-ब्रिटेन	२२%	१६·२%
कनाडा	५६%	२५·६%
जर्मनी	१६%	१७%

फ़्रांस	१६%	२३%
जापान	१४%	४३%

शिक्षा में भी सबसे पिछड़ा हुआ है। इसके भी आँकड़े देखिए—

मुल्क	शिक्षित	
भारत	८·५	प्रतिशत
अमरीका	७५·५	,,
ग्रट-ब्रिटेन	७६·१	,,
कनाडा	७१·६	,,
जर्मनी	८०·५	,,
फ़्रांस	८०·१	,,
जापान	७१·७	,,

भारतवर्ष बच्चे पैदा करने में सबसे आगे, मृत्यु की बहुतायत में प्रथम, और अल्पतम आयु का देश है। आँकड़े लीजिए—

	मृत्यु प्रतिहज़ार	जन्म प्रतिहज़ार
भारत	२४·५	३२·६
अमरीका	११·३	१८·६
ग्रेट-ब्रिटेन	१२·५	१६·३
कनाडा	१०·७	२३·६
जर्मनी	११·१	१७·५
फ़्रांस	१६·३	१७·४
जापान	१८·१७	३२·३५

	उम्र औसतन
भारत	२६·७
अमरीका	५६·४
ग्रेट-ब्रिटेन	५७·६
जर्मनी	४६·०४
फ़्रांस	५०·५
जापान	४५·५

मेरी कविता का जन्म

लेखिका, श्रीमती तारा पांडे

(१)

सन्ध्या की अन्तिम आभा जब
नीले अम्बर में छाई।
मेरे लिए सुदूर प्रान्त से
तव जीवन-संदेश लाई॥

(२)

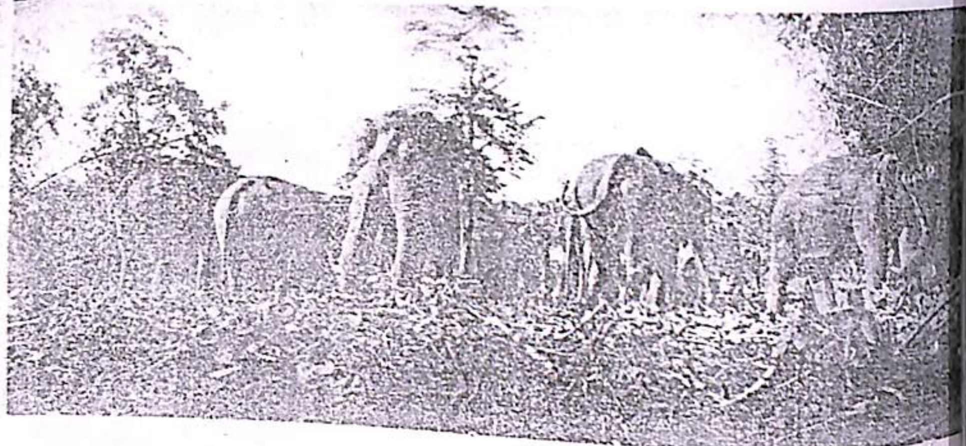
एक बार झनझना उठे सब
वीणा के कोमल से तार।
कंपन-सा कुछ हुआ हृदय में
छूटा सब कष्टों का भार॥

(३)

कुछ प्रकाश-सा देखा मैंने
स्पंदन उर में हो आया।
फिर क्या हुआ, किया क्या मैंने,
नहीं समझ में कुछ आया॥

(४)

देखा—सम्मुख खिंची हुई थीं
रेखायें काली काली।
मैं कह उठी—'यही है क्या
सन्ध्या की मोहक लाली?



[कटघरे के भीतर जंगली हाथियों का एक झुंड

जंगली हाथियों को पालतू बनाने की कला

लेखक—श्रीयुत जी० सच्चिदानन्द

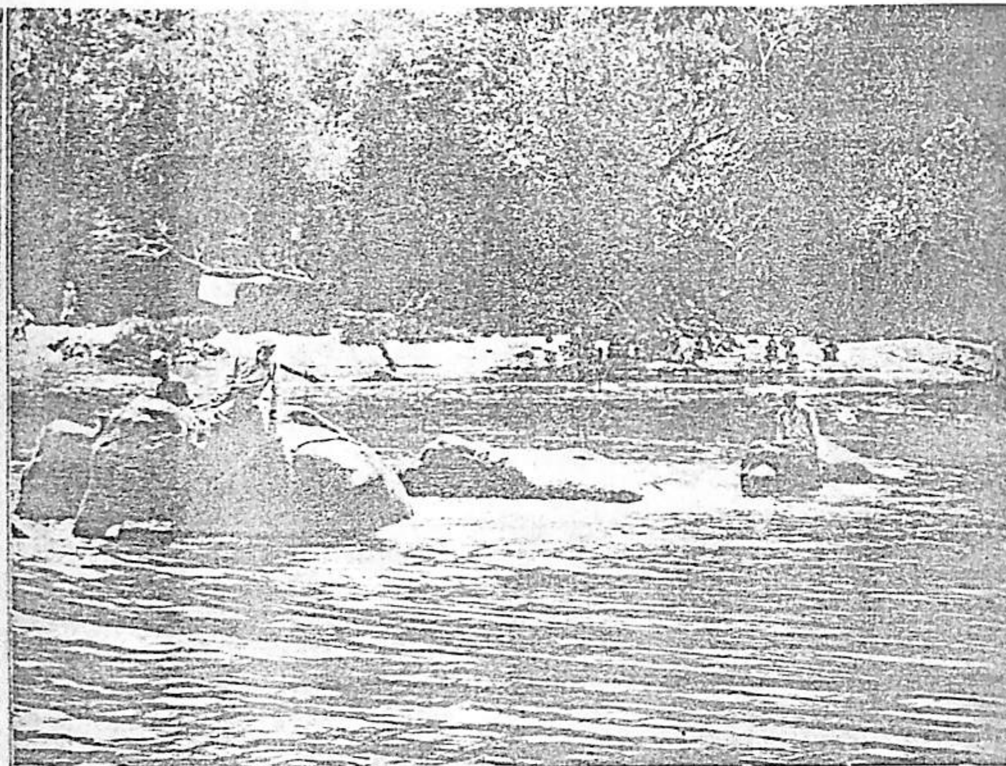
जंगली हाथियों को पकड़ने और उन्हें पालतू बनाने की कला भारत में अति प्राचीन काल से प्रचलित है। अब हाथियों का वह सैनिक महत्त्व नहीं रहा। तथापि वे अब भी बहुत-से उपयोगी कामों में लाये जाते हैं और राज-द्वारों की शोभा बढ़ाते हैं। इसलिए हाथी अब भी पकड़े और पाले जाते हैं। यह काम आसाम और ब्रह्मदेश के अतिरिक्त मैसूर में भी होता है। इस लेख के लेखक-महोदय मैसूर के रहने वाले हैं और आपने हाथियों का पकड़ा जाना देखा है। आशा है, पाठकों को इस लेख से काफ़ी मनोरञ्जन होगा।

जङ्गल में आधी रात का समय है, वहाँ का फ़ारेस्ट-अफ़सर कुछ हुक्म देता है। तुरन्त ही जङ्गलनिवासी सैकड़ों स्त्री-पुरुष और लड़के अपने-अपने पलीतों को सुलगाते हैं, जिससे आस-पास का दृश्य अजीब ढङ्ग से प्रकाशमान हो उठता है। एक-दो मिनट के बाद एक मनुष्य आता है। यह जङ्गली हाथियों के समूह का पता लगा लाने के लिए गया था। यह उस अफ़सर से कुछ कह देता है। इस पर वह फ़ौरन कुछ और हुक्म देता है। सैकड़ों पलीते एक ही साथ हवा में हिल जाते हैं, खाली कारतूस छुड़ा दिये जाते हैं, खाली टीन और ढोल पीटे जाते हैं और सब अपनी शक्ति के अनुसार हाँ[...] मारकर हो-हल्ला मचा देते हैं।

हाथियों का जो दल वहाँ से कोई २०० गज़ की दूरी पर शान्त रीति से चरता होता है, इस कोलाहलपूर्ण झिलझिलाते दृश्य को देखते ही भयभ्रान्त हो उठता है और अस्तव्यस्त होकर इधर-उधर भाग जाता है।

हाथी पकड़ने की पहली रात का आरम्भ उपर्युक्त प्रकार से किया जाता है।

जङ्गली हाथियों का पकड़ना और उनका पालना भारत में प्राचीन काल से प्रचलित है। यूनानी इतिहासकारों ने हाथी पकड़ने और पालने में भारतीयों की निपुणता का ज़िक्र किया है। इससे पता चलता है कि अति प्राचीन काल से भारत में हाथी पकड़े और पाले जा[...]

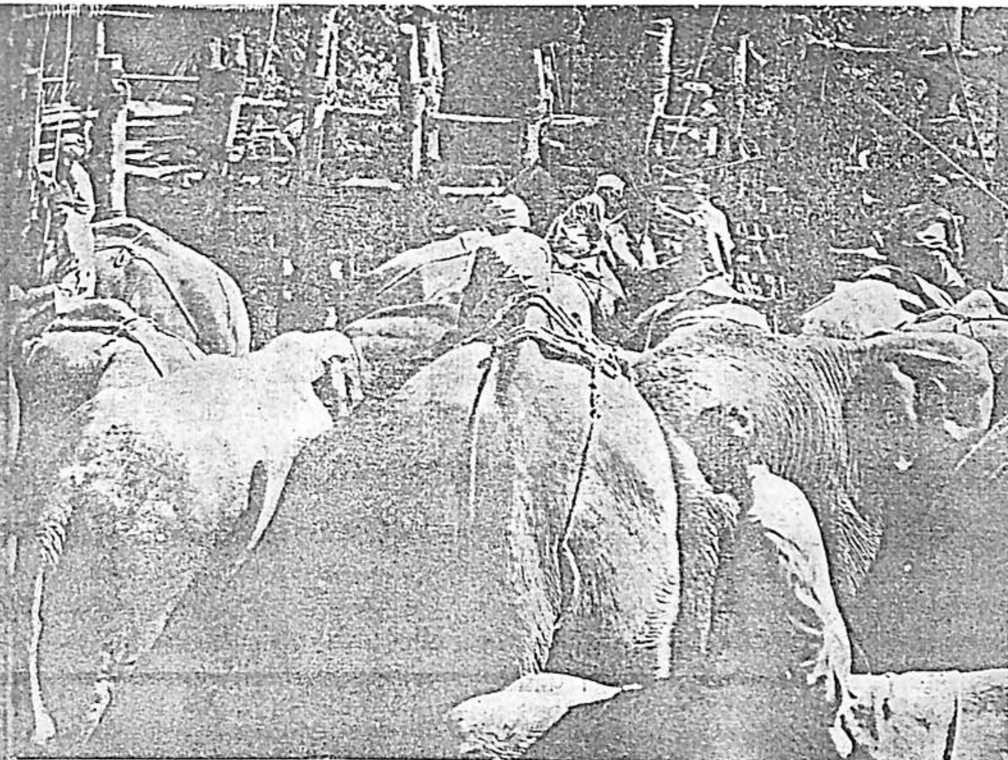


[एक पकड़ा हुआ जंगली हाथी नहा रहा है।]

थे। भारत के इतिहास से हमें चन्द्रगुप्त की प्रसिद्ध गजसेना का हाल ज्ञात ही होता है। वहाँ ऐसे और अनेक राजाओं का उल्लेख भी है जिनके सैनिक बल का अन्दाज़ उनकी सेना के लड़ाकू हाथियों से ही लगाया जाता था। एक ज़माना ऐसा था कि किसी राजा के दरबार की शान तभी परिपूर्ण समझी जाती थी जब वह सुन्दर और श्रेष्ठ हाथियों का स्वामी होता था। आजकल भी भारत में ऐसे कितने ही राजे-महाराजे और मठाधिप मौजूद हैं, जिनके यहाँ हाथियों का रखना शान का चिह्न समझा जाता है।

हाथी पकड़ने की गड्ढा, खेदा आदि प्रणालियाँ हैं। इनमें से खेदा-प्रणाली को छोड़कर शेष सब अप्रचलित हैं। श्यामदेश में पालतू मादा हाथी जङ्गल में भेज दिया जाता है। इस हाथी को इस तरह की शिक्षा दी जाती है कि जब उसको एक नर हाथी मिल जाता है तब वह उसे फुसला कर जङ्गल की एक आड़ में बिछे हुए फंदे की ओर ले जाता है, इससे वह नर हाथी फंदे में फँस जाता है और धीरे धीरे पालतू बना लिया जाता है।

पहले भारत में गड्ढा-प्रणाली जारी थी। उसमें १२ फ़ुट वर्ग के गहरे गड्ढे जङ्गल के उस भाग में खोदे जाते थे, जहाँ हाथी बहुधा घूमते पाये जाते थे। इन गड्ढों के मुँह पत्ते, घास, बाँस आदि चीज़ों से छिपा दिये जाते थे और उनके ऊपर मिट्टी फैला दी जाती थी ताकि वह मामूली ज़मीन की तरह दिखाई दे। इस कृत्रिम भूमि के ऊपर मीठी घास और गन्ना बिछा दिया जाता था। जब हाथियों का एक दल उस ओर आता, मीठी घास और गन्ने से आकृष्ट हो उसकी ओर दौड़ पड़ता।

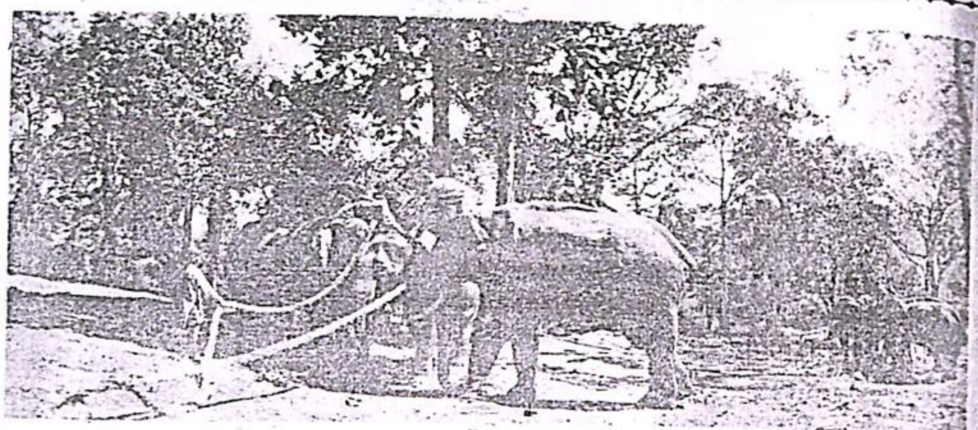


[रस्सी लगाने का तरीक़ा—जंगली हाथी (खाली पीठ के) चित्र के मध्य में देखे जा सकते हैं।]

तुरन्त ही कई हाथी गड्ढे के अन्दर गिर जाते। पहले-पहल जो हाथी गड्ढे के अन्दर गिरता वह बाक़ी हाथियों के पैरों के नीचे दब कर तुरन्त ही मर जाता। इसी तरह कई हाथी कुचल कर मर जाते और बचे-खुचे हाथियों में भी कई-एक के अंग-भंग हो जाते। जो हाथी बच जाते वे पकड़ कर पालतू बनाये जाते।

परन्तु अब गड्ढा-प्रणाली उठ गई है और खेदा-प्रणाली से ही हाथी पकड़े जाते हैं। खेदा-प्रणाली से इनके पकड़ने की व्यवस्था मैसूर में पहले-पहल सन् १८७३ में मिस्टर जी० पी० सैंडर्सन ने जारी की थी। इस प्रणाली से हाथियों के पकड़ने में अधिक सफलता हुई। सन् १८७४ के जून में इस पद्धति से ५५ हाथी पकड़े गये थे, जिनमें केवल ६ हाथी मरे थे। इन हाथियों की बिक्री से राज्य को २२ हज़ार रुपये का लाभ हुआ था। सन् १८८६ में गड्ढा-पद्धति से काकनकोटी और बेगूर के जङ्गलों में हाथियों के पकड़ने का आदेश किया था और उसके अनुसार पाँच वर्ष के भीतर कुल ५२ हाथी पकड़े गये थे। उनमें ३५ हाथी जीवित रह सके, जिनकी बिक्री से राज्य को १५ हज़ार रुपये की आय हुई। परन्तु बाद को उस अंचल में भी खेदा-प्रणाली जारी कर दी गई और गड्ढा-पद्धति बिलकुल बन्द कर दी गई है।

खेदा-प्रणाली में मनुष्य अपनी बुद्धिशक्ति और फ़ुर्ती से हाथियों को पकड़ने में समर्थ होता है। एक निश्चित स्थान पर बड़े मज़बूत पेड़ के ठूँठों से बनाये हुए कटघरे खड़े कर दिये जाते हैं। इस कटघरे का एक बड़ा और मज़बूत फाटक होता है, जो इच्छानुसार खोला या बन्द



[एक जंगली हाथी पेड़ से बाँधा जा रहा है।]

किया जा सकता है। कठघरे के स्थापन के बाद उसमें हाथी लाकर बन्द करने की कार्रवाई शुरू होती है।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, खेदा-विभाग के छोटे-बड़े कर्मचारियों के सिवा कोई तीन सौ जंगल-निवासी अनेक स्त्री-पुरुष और लड़के भाँति-भाँति के शब्द करते हुए हाथियों के समूह को तीन ओर से घेरते हैं। इससे हाथीसमूह में भगदड़ हो जाती है और वे इधर-उधर भाग जाते हैं। पर जब उनको और सभी मार्ग बन्द मिलते हैं, सबके सब कठघरे की तरफ़ भागते हैं और उसके फाटक से कठघरे के अंदर जा फँसते हैं। उनके घुस जाने पर बाहर से फाटक बन्द कर दिया जाता है और हाथी कठघरे के अंदर गिरफ़्तार हो जाते हैं। अब हाथी चारों ओर दौड़ने लगते हैं, पर अपने को चारों दिशाओं में बन्द पाते हैं। कई हाथी तो कठघरे की दीवार पर टूट पड़ते हैं और उसे रौंद डालने का प्रयत्न करते हैं, लेकिन एक तरह के कटीले हथियार से मार कर वे पीछे ढकेल दिये जाते हैं। कुछ समय के बाद हाथी यह जान लेते हैं कि यहाँ से छुटकारा पाना मुश्किल है। तब वहाँ रक्खे हुए गन्ने और अन्य खाद्य-सामग्रियों की ओर अपनी दृष्टि दौड़ाते हैं और उनको खाते हुए वहीं जम जाते हैं।

अब इस कार्रवाई का सबसे लोमहर्षक भाग शुरू होता है। इसे रस्साबन्दी कहते हैं। १०-१५ पालतू हाथी अपनी पीठ पर महावतों को लिये हुए कठघरे के अंदर जङ्गली हाथियों की जानकारी के बिना प्रवेश करते हैं। महावतों की पोशाक हाथियों के रंग की होती है, जिससे जङ्गली हाथियों को किसी तरह की शंका न हो।

इन पालतू हाथियों को दो दो करके कई दलों में विभाजित करते हैं। हर एक दल जङ्गली हाथियों में से एक को चुन लेता है। दल के दोनों हाथी अपनी सूँड से एक जङ्गली हाथी को कठघरे के एक कोने में घसीट ले जाते हैं। पश्चात् एक मनुष्य जो तेज़ और फ़ुर्तीला होता है, अपने हाथ में एक रस्सा लिये हुए कठघरे के अंदर प्रवेश करता है। वह पालतू हाथियों के पाँव के नीचे चलते हुए जंगली हाथी के पिछले पैरों को रस्से से फंदा लगा कर फ़ुर्ती से लौट जाता है। रस्से का दूसरा छोर कठघरे से बाहर किसी पेड़ से बाँध दिया जाता है। यह कार्रवाई एक क्षण के अन्दर ही हो जाती है। इस मनुष्य को बहुत ही होशियारी से काम लेना पड़ता है। अन्यथा यदि वह एक मिनट की भी देरी करेगा तो बहुत संभव है कि जङ्गली हाथी उसे कुचल डाले। बहुत से आदमी इस तरह मारे भी गये हैं और कई लोग इस विपत्ति से

अपनी चतुरता और फ़ुर्ती के कारण बच भी गये हैं।

इस तरह कठघरे के सबके सब हाथी एक एक करके बाँध लिये जाते हैं। इनको शिक्षित करने के लिए इनकी एक छावनी होती है। वहाँ ये भारी मज़बूत पेड़ों से बाँध दिये जाते हैं और महावत लोग इनसे मैत्री करना शुरू करते हैं। वे हमेशा इन्हीं के पास रहते हैं, इन्हें गन्ने और अन्य खाद्य-सामग्री अपने ही हाथों से खिलाते हैं। रोज़ दो पालतू हाथियों की रखवाली में इन्हें टहलने के लिए अथवा कभी कभी समीपवर्ती तालाब में नहाने के लिए ले जाते हैं।

क्रमशः ये हाथी अपने पूर्व-जीवन को भूल जाते हैं और इस नये जीवन की इनको आदत पड़ जाती है। जो कई मास पहले जङ्गल में घूमते-फिरते मनुष्य के लिए एक भयावह प्राणी था, वही अब मनुष्य का अत्यन्त उपयोगी सहायक और आज्ञापालक बन जाता है।

जङ्गली हाथी भारत के अधिकांश बड़े बड़े जङ्गलों में पाये जाते हैं। हिमालय के निम्न भाग के जङ्गलों से लेकर दक्षिण-भारत तथा पूर्वी बंगाल के जङ्गलों में वे रहते हैं। भारत के ये हाथी एक ही जाति के हैं।

मैसूर-राज्य में वे पश्चिमी घाट के जङ्गलों में, दक्षिण-पूर्व की बिल्लिगरंगन की पहाड़ियों में अधिक संख्या में और उत्तर के नगर डिवीज़न के भागों में भी कुछ पाये जाते हैं।

जङ्गली हाथी समूहों में रहते हैं। एक समूह में ३० से ५० तक हाथी रहते हैं। परन्तु कभी कभी १०० तक के भी झुंड दिखाई पड़ जाते हैं। जिस अंचल में चारे की कमी होती है वहाँ ये दस दस बीस बीस की टोलियों में विभक्त होकर दो-तीन मील के भीतर फैल जाते हैं और जब उन्हें जङ्गल का वह अंचल छोड़ना पड़ता है तब वे सब फिर एक समूह में होकर ही जाते हैं। भिन्न भिन्न समूह एक दूसरे से नहीं मिलते हैं, पर पालतू हथिनियाँ या बच्चे जो जङ्गलों में भाग जाते हैं, ऐसे समूहों में मिलकर उसमें हिलमिल जाते हैं। समूह में हथिनियाँ अपने बच्चों के साथ आगे रहती हैं और दँताड़े नर-हाथी पीछे पीछे धीरे धीरे चलते हैं।

हे पतङ्ग

लेखक—श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद वर्मा, एम० ए०

मत निकट दीप के जाओ तुम
निज तम को तज, प्यारे पतङ्ग !
यह कोरी कलुष कल्पना की
झूँठी-मूठी विरहाग्नि नहीं
यह सच्ची है संयोग-अग्नि
इसके समीप जाते ही तुम—
जल जाओगे, हे अन्तरङ्ग !
यह नहीं स्वप्न की झंझा है
बुझ बुझ आशा-द्युति जली जहाँ
यह भीषण वास्तविकता है
इसमें पड़ते बुझ जायेगी—
प्रज्वलित प्रणय की सब उमङ्ग।
यह मिलन नहीं यह मिलन नहीं
यह दुःसाहस है दुःसाहस
इस लय होने में छिपी प्रलय
तुम खेल समझते जिसे वही—
है डुबोती तुमको तरङ्ग।
अपने प्रियतम से अलग रहो
माना है विरह, विलगता यह;
पर कहाँ पृथकता बिना प्रेम ?
तुम अपने ही इस जीवन के—
कर रहे रङ्ग में, अरे, भङ्ग !
है न बस आत्म-रक्षा करने
का प्रश्न किन्तु इसमें सवाल
है प्रेम सुरक्षित रखने का
यह देन प्रिया की है इसको—
क्यों बना रहे कलुषित अनङ्ग।

योगी अरविन्द और उनका आश्रम

लेखक, श्रीयुत आदित्य मिश्र 'कुमार'

योगी अरविन्द का नाम कौन नहीं जानता ? किसी समय देश के लिए उन्होंने जो कार्य किया था और अब जो तपस्या वे कर रहे हैं, उसके कारण शिक्षित-समुदाय की आँखें पाँडेचेरी की ओर लगी हुई हैं। लोगों को उनके और उनके आश्रम के विषय में कुछ अधिक जानने की उत्कण्ठा होती है, परन्तु इसका कोई उपाय नहीं है।

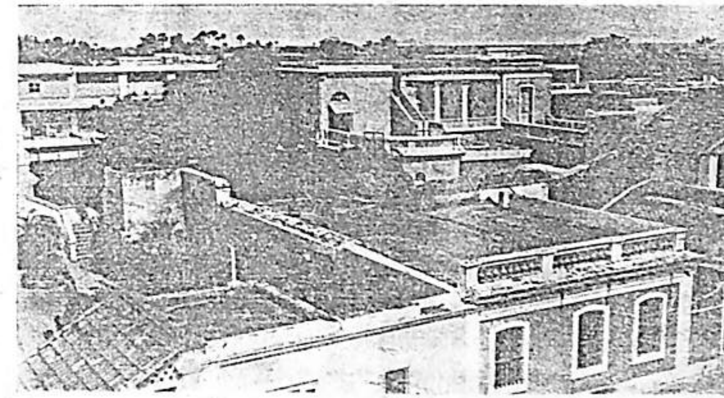
योगी अरविन्द की साधना और साधक-आश्रम के सम्बन्ध में कुछ लिखने से पूर्व एक घटना का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। फ़रवरी सन् १९१० ईसवी में जब वे कलकत्ते से एकाएक चन्द्रनगर चले गये तब उनके 'कर्मयोगिन' साप्ताहिक पत्र के एक लेख के लिए सरकार ने सम्पादक और मुद्रक पर अभियोग चलाया। सम्पादक श्री अरविन्द ही थे। ब्रिटिश भारत में वे थे नहीं, अतएव केवल मुद्रक पर अभियोग चला और उसमें उसे नीचे की अदालत से सज़ा हो गई, परन्तु हाईकोर्ट में अपील करने पर मुद्रक निर्दोष छोड़ दिया गया। और इस प्रकार अरविन्द भी इस्तग़ासे से बरी हो गये।



[योगी अरविन्द]

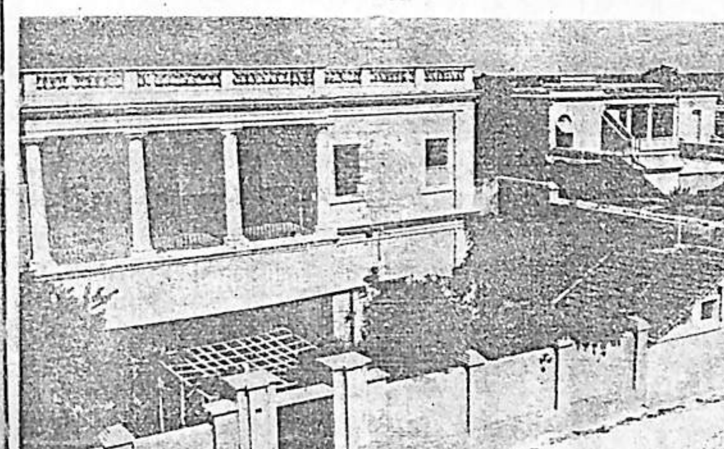
पाँडेचेरी में स्टेशन से लगभग १ मील दूर समुद्र-तट पर उनके साधक-आश्रम को इस समय जिस रूप में हम पाते हैं वह वैसा पहले नहीं था। चन्द्रनगर से जब पाँडेचेरी जाने का निश्चय हो गया तब सर्वप्रथम उनके सहकारी श्री सुरेशचन्द्र चक्रवर्त्ती पाँडेचेरी गये। वे रेल-मार्ग से गये थे। इसके अनन्तर जल-मार्ग से श्री अरविन्द और श्री नलिनीकान्त गुप्त गये। नगर में ८) मासिक किराये पर एक मकान पहले ही ले लिया गया था। उसी में वे सब रहने और योग-साधना करने लगे। कुछ समय पीछे श्री अमृत और श्री विजयकृष्ण नाग भी वहाँ पहुँच गये। ये सब युवक थे, जिन्होंने देश के लिए अपना घरबार छोड़ा

था और योगी अरविन्द के साथ रहकर बड़े से बड़ा त्याग किया था और अब जिन्होंने परमसाधना की सिद्धि के लिए परम तत्त्व की वेदी पर आत्म-समर्पण कर दिया है। पाँडेचेरी पहुँचने के बाद लगभग १० वर्ष तक योगी अरविन्द ने एकान्त-साधना की—साथ में केवल ५ शिष्य थे।



[आश्रम के भवनों का पहला दृश्य]

सत्य को विज्ञापन की आवश्यकता नहीं है। योगी अरविन्द प्रमुख महान् आत्मायें मौन-साधना के रूप में जो दिव्य कार्य कर रही थीं वह कब तक प्रकट न होता ? धीरे-धीरे साथियों और साधकों की संख्या बढ़ने लगी और योग-साधना के लिए जो अपना सर्वस्व छोड़ चुके थे, उनके रहने का बन्दोबस्त करना ही पड़ा। वर्तमान आश्रम का हेतु यही है। ध्येय की सचाई से कार्य का विस्तार स्वतः कैसे हो जाता है, इसका एक अच्छा उदाहरण पाँडेचेरी का यह आश्रम है। साधकों की संख्या बढ़ने पर एक अन्य मकान लिया गया। वही कुछ समय में आश्रम की सम्पत्ति हो गया और जब जब आवश्यकता हुई, इसके आस-पास और मकान खरीदे गये और किराये पर भी लिये गये। इस समय आश्रम का विस्तार कई मकानों में है—लगभग ४० भवन हैं, जिनमें लगभग १०० साधक साधना करते हैं। ये सब बड़े त्यागी और महान् व्यक्ति हैं, जो सांसारिक महत्त्वाकांक्षाओं को छोड़कर वहाँ पहुँच गये हैं इसलिए कि अपना शेष जीवन सत्य-चिन्तन में व्यतीत करें। इन व्यक्तियों में



[आश्रम के भवनों का दूसरा दृश्य]

'मदर' का स्थान प्रमुख है। ये फ्रेञ्चमहिला हैं। अपूर्व तेजस्विनी हैं। आश्रम की सब व्यवस्था यही करती हैं। ये कई साल तक फ्रांस और जापान में रहकर योगी अरविन्द के योग की साधना करती रहीं—फिर १९२० में पाँडेचेरी आईं और तब से आश्रम में ही हैं। ये विख्यात पाल रिचार्ड की धर्मपत्नी हैं। आश्रम में अपने पतिदेव के साथ ही गई थीं। श्री पाल रिचार्ड आश्रम में रहकर साधक-रूप में योगी अरविन्द के 'आर्य' का सम्पादन करते थे। कुछ समय पीछे जब गत महायुद्ध छिड़ा तब वे आश्रम से चले गये। कांग्रेस के अहमदाबादवाले अधिवेशन में वे सम्मिलित हुए थे। श्री नलिनीकान्त गुप्त का नाम ऊपर आ चुका है। वे योगी अरविन्द के साथी हैं। उनके साथ किसी समय जेल में भी थे। जब योगी अरविन्द का छुटकारा हुआ तब वे भी जेल-मुक्त हुए थे। वे बड़े तत्त्वज्ञानी और उच्च कोटि के साधक हैं और 'मदर' के प्राइवेट सेक्रेटरी के रूप में कार्य करते हैं। श्री अनिलबरण राय बंगाल के प्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्ता हैं। सन् १९२१ के असहयोग-आन्दोलन में और उसके बाद भी उन्होंने स्वर्गवासी देशबन्धु दास के दक्षिण हस्त रहकर काम किया था। पिछले कई वर्ष से वे आश्रम में पहुँच कर साधना कर रहे हैं। श्री सुरेशचन्द्र चक्रवर्ती बड़े ही विद्वान् और ज्ञानवान् हैं। उन्होंने योगी अरविन्द की योग-साधना के सम्बन्ध में बँगला में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। प्रोफ़ेसर चेडविक किसी समय लखनऊ-विश्वविद्यालय में कई सौ रुपये मासिक पर अध्यापक थे। नौकरी से अलग होकर वे भी आश्रम में पहुँच गये हैं। उन्हें केम्ब्रिज-विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर का पद मिलता था, परन्तु नहीं स्वीकार किया। आश्रम के साधकों में श्री दिलीपकुमार राय भी हैं। ये विश्वविख्यात गायक हैं। संगीत में इनका बड़ा नाम है। ये स्वर्गवासी द्विजेन्द्रलाल राय के पुत्र हैं। आश्रम को इन्होंने अपनी समस्त सम्पत्ति दान कर दी है। हैदराबाद-रियासत के एक बहुत ही प्रतिष्ठित नागरिक दारा हैं, जो आश्रम में सकुटुम्ब रहकर साधना करते हैं। आश्रम में अनेक साधिकायें भी हैं। ये साधकों से अलग रहती हैं। इन सब महान् व्यक्तियों के त्याग और तप के कारण आश्रम का वायुमंडल दिव्य हो गया है। दर्शक के चित्त पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ता है।

योगी अरविन्द की साधना के वे साधक जो आश्रम से बाहर सांसारिक धन्धों में रहकर भी उस मार्ग पर चलना चाहते हैं, मदरास, बंगाल, बिहार, गुजरात कई प्रदेशों में हैं। वे स्वेच्छा से समय-समय पर आश्रम में जाते और योगी अरविन्द के दर्शन करते हैं। ऐसे साधकों में मदरास के श्री डोरा स्वामी अय्यर एडवोकेट का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने अपनी समस्त सम्पत्ति आश्रम को दे दी है। भागलपुर के बाबू पूर्णमल ढंढनियाँ भी ऐसे ही विशिष्ट साधकों में हैं। उन्होंने भी आश्रम को हज़ारों रुपया दान किया है। यह बात उल्लेखनीय है कि आश्रम के लिए कभी किसी से याचना नहीं की गई है। फिर भी आश्रम के खर्च के लिए यथासमय रुपया पहुँचता रहता है। यह भगवान् का ही प्रसाद कहा जायगा।

योगी अरविन्द के दर्शन किसी को भी सब समय नहीं होते। आश्रमवासी साधकों के सम्बन्ध में भी यही बात है। दर्शनों के लिए साल में कुल तीन दिन नियत हैं—१५ अगस्त, २१ फ़रवरी और २४ नवम्बर। १५ अगस्त योगी अरविन्द का जन्म-दिन है; २१ फ़रवरी मदर का जन्म-दिवस है और २४ नवम्बर वह तिथि है जिस दिन योगी अरविन्द को सिद्धि प्राप्त हुई थी। जिस समय 'मदर' आश्रम में नहीं थीं उस समय योगी अरविन्द स्वयं आश्रम की सब व्यवस्था देखते थे और तब कम से कम आश्रम के साधकों के लिए उनके दर्शनों का कोई प्रश्न ही नहीं था। जब से मदर ने आश्रम की व्यवस्था सँभाल ली है, योगी अरविन्द का सारा समय एकान्तचिन्तन में व्यतीत होता है। इस एकान्तचिन्तन में ही वे समस्त भाषाओं के समाचार-पत्र भी पढ़ते हैं। जिस स्थान में वे रहते हैं उसमें सोने के लिए बिछौना है, परन्तु किसी को यह पता नहीं कि वे कब सोने जाते हैं, कितनी देर तक सोते हैं, और कब उठते हैं—उन्हें सोते किसी ने देखा नहीं। नियत समय पर उनके पास भोजन पहुँचा दिया जाता है। परन्तु वे कब खाते हैं या क्या करते हैं, यह कोई नहीं जानता। इस नितान्त एकान्तसाधना का परिणाम

आश्चर्यजनक हुआ है, उनके मुख पर अद्भुत तेज विद्यमान रहता है। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर योगी अरविन्द के दर्शन करने जब पाँडेचेरी गये तब उनकी बड़ी विचित्र दशा हो गई। उन्होंने विस्मयान्वित होकर अरविन्द के सामने अपना सिर झुका दिया।

केवल मनोविनोद के लिए ही यदि कोई आश्रम में जाना चाहे तो नहीं जा सकता, अलबत्ता यदि 'मदर' के दर्शन करना हो तो कोई किसी भी समय जा सकता है—शर्त यही है कि वह इसके लिए आज्ञा प्राप्त कर ले। आश्रम के द्वार पर जो साधक द्वाररक्षक के कार्य पर रहता है उसी के कहने से आज्ञा मिलने की व्यवस्था हो जाती है। परन्तु दर्शनेच्छु व्यक्ति की श्रद्धा और पात्रता पर इस आज्ञा का मिलना और न मिलना निर्भर रहता है। योगी अरविन्द के दर्शन जिन नियत तीन दिनों में होते हैं उनके लिए भी पहले से आज्ञा ले लेनी पड़ती है। यह आज्ञा मिलती है और किसी किसी को दर्शन का नियत दिन रहने पर भी नहीं मिलती। सारी बात पात्रता और श्रद्धा की है। दर्शन के लिए नियत तीन दिनों में ही आश्रम के साधक भी दर्शन करते हैं।

इस स्थान पर दर्शनवाले तीन दिनों का थोड़ा कार्य-क्रम भी लिख देना ठीक होगा। एक नियत स्थान पर योगी अरविन्द बैठते हैं। वहीं 'मदर' भी रहती हैं। दर्शन का क्रम ७ बजे से आरम्भ होता और लगभग १२ बजे तक चलता रहता है। प्रत्येक साधक और बाहर से आये हुए दर्शनेच्छु सज्जन सब बारी बारी से डेढ़ डेढ़ मिनट के लिए योगी अरविन्द के सामने जाते, फूल-माला या फूल, जो कुछ पास होता उसे भेंट में देते और फिर वहाँ से निकल आते हैं। प्रातःकाल रोटी, केला या फ़ास्फाड (फ्रेंच पेय) से जलपान करने के बाद यह कार्य आरम्भ होता है और दोपहर का भोजन इस कार्य की समाप्ति पर होता है। जो फूल-मालायें भेंट की जाती हैं वे प्रसादरूप में साधकों को लौटा दी जाती हैं। दोपहर के भोजन में चावल, शाक, दाल, दही, चीनी, रोटी, नींबू आदि होता है। शाम को ६ बजे जो भोजन मिलता है उसमें रोटी और शाक के अलावा दूध भी रहता है। आश्रम में साधकों के खाद्य में घी नहीं है। यह चर्चा तीन विशिष्ट दिनों की हुई, साधारण दिनों में कार्यक्रम भिन्न रहता है। सबेरे ही सब साधक उठते और शौच-स्नान आदि से निवृत्त होकर 'मदर' के पास जाते, उन्हें प्रणाम करते और फूलों की भेंट देते हैं। और इसके अनन्तर सब अपने अपने काम पर चले जाते हैं। आश्रम का विस्तार काफ़ी लम्बा-चौड़ा है, उसके अपने कई बाग़ भी हैं। कई साधकों को रसोईघर में काम करना होता है तो कई को बाग़ में, कई को अस्पताल में रोगियों की शुश्रूषा करनी होती है तो कई को आश्रम के किसी मकान की मरम्मत करनेवाले मज़दूरों की देख-भाल। कोई आश्रम के द्वार पर रहता है तो कोई आश्रम-सम्बन्धी किसी अन्य कार्य को देखता है। रसोईघर आदि में कुछ नौकर भी हैं, परन्तु आश्रम के बहुतेरे काम साधकों-द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। साधकों को अपने अपने कार्य में सारे दिन संलग्न रहना पड़ता है। काम समाप्त हो जाने के बाद शाम को छः बजे सब लोग शाम का भोजन पाते हैं और इसके बाद ८ बजे से १० बजे तक नित्य संयुक्त साधना होती है। सब साधक एक जगह एकत्र होते हैं, 'मदर' भी वहाँ होती हैं और सब मिलकर परम-चिन्तन करते हैं। इस समय भी जो साधक चाहते हैं, 'मदर' के चरणों में फूल आदि की भेंट ले जाते हैं। संयुक्त साधना के अनन्तर मदर अपनी विशिष्ट योग-शक्ति से एक तरल द्रव्य में जिसे आश्रम की भाषा में 'सूप' कहते हैं, हस्त-संचालन-द्वारा विशिष्ट परमाणुओं का प्रवेश करती हैं और यह सूप एक एक प्याले में सब साधकों को दिया जाता है। साधक इस सूप को पाकर अपने अपने स्थान पर विश्राम करने के लिए चले जाते हैं।

यहाँ तक आश्रम की साधारण और विशिष्ट दिनों की चर्या के सम्बन्ध में हुआ। अब कुछ अन्य बातों के सम्बन्ध में उल्लेख किया जायगा। आश्रम में एक पुस्तकालय है। संसार की अनेक भाषाओं के समाचार-पत्र इसमें आते हैं, पुस्तकें भी प्रायः सभी भाषाओं की हैं। हिन्दी-पुस्तकों की संख्या प्रायः नहीं के बराबर है। गीता-प्रेस, गोरखपुर, से जो पुस्तकें प्रकाशित होती हैं,

पहुँच जाती हैं, परन्तु अन्य किसी पुस्तक-प्रकाशक ने इस ओर ध्यान नहीं दिया।

आश्रम का एक अपना अस्पताल भी है। बीमार होने पर साधकों को वहीं से ओषधि मिलती है और चिकित्सा मदर के संकेतानुसार होती है।

आश्रम और साधक आदि शब्दों से किसी पाठक को यह कल्पना नहीं करनी चाहिए कि वहाँ के साधक लोग पीले कपड़े पहनते होंगे, रूखा-सूखा भोजन करते होंगे और दिन भर एक स्थान में बैठे राम राम कहते अथवा ध्यानस्थ रहते होंगे। योगी अरविन्द के आश्रम का मार्ग कुछ और ही है। वहाँ कोई बन्धक नहीं है। कोई साधक चाहे तो पीले कपड़े पहने और चाहे तो सफ़ेद। पीले या सफ़ेद, इस विषय में उसकी अपनी आसक्ति नहीं होनी चाहिए। यही बात भोजन के विषय में भी है। आश्रम में भोजन में चाहे कुछ भी क्यों न मिलता हो, परन्तु आश्रमवासी साधक की आसक्ति न तो किसी अत्यन्त स्वादिष्ट खाद्य में है और न उन्हें किसी खाद्य से अरुचि ही है। जो उन्हें मिल जाता है उसे भगवान् की इच्छा और प्रसाद समझकर ख़ुशी से पाते हैं। सिर्फ़ इतनी ही पाबन्दी है कि आश्रम में रहकर कोई धूम्रपान नहीं कर सकता और मांस-मत्स्य आदि नहीं खा सकता।

आश्रम के जीवन में सरलता बहुत है। सुविधा के लिए अनेक नियम भी स्थिर कर लिये गये हैं। उदाहरण के लिए प्रत्येक साधक महीने में २० से अधिक कपड़े धोबी के यहाँ धुलने को नहीं डाल सकता। नित्य काम में आनेवाली अन्य आवश्यक वस्तुएँ जैसे तेल, साबुन, इत्र आदि सब आश्रम की ओर से नियत तादाद में मिलते हैं। प्रत्येक साधक को अपने जेब-ख़र्च के लिए भी २) मासिक मिलते हैं। साधक को स्वाधीनता है कि वह इन रुपयों को जैसे चाहे व्यय करे। अधिकांश साधक इन रुपयों से अपने स्वाध्याय के लिए पुस्तकें ख़रीदते हैं। आश्रम से अनेक बहुमूल्य पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। आश्रम में फूलों की भाषा भी है, जिसे आश्रमवासी ही समझ सकते हैं। मदर को प्रतिदिन प्रातःकाल जो फूल भेंट किये जाते हैं उनमें से कोई फूल किसी किसी साधक को वे लौटा देती हैं। उसी से उनका आन्तरिक भाव समझने का प्रयत्न किया जाता है। जैसे मदर ने एक साधक को गुलाबी और दूसरे को श्वेत पुष्प लौटा दिया तो चाहे क्रिया एक ही हो, परन्तु उसका अभिप्राय दोनों के लिए पृथक् पृथक् होगा। साधक जनों को योगी अरविन्द के दर्शन वर्ष में तीन ही बार होते हैं, परन्तु उनका लिखित संदेश प्रायः आता रहता है।

यह सोचना बड़ी भारी भूल होगी कि योगी अरविन्द के आश्रम में रहकर साधक बनने के मार्ग में कोई कठिनाई नहीं है। योगी अरविन्द के आश्रम में जो प्रवेश करना चाहते हैं उनमें से बहुतों को अत्यन्त उत्कट इच्छा रहने पर भी निराश होना पड़ता है। बात यह है कि योग-शक्ति से ऐसा प्रत्येक प्रवेशार्थी देख लिया जाता है कि उसमें योग के परमाणु हैं या नहीं। जिसमें योग के परमाणु होते हैं उसे आश्रम में स्थान दिया जाता है और जिसमें नहीं होते उसकी प्रार्थना अस्वीकृत कर दी जाती है। प्रार्थना स्वीकृत होने में स्त्री-पुरुष, गोरा-काला, नीच-ऊँच आदि किसी प्रकार की द्विधा का भाव नहीं, केवल पात्रता का विचार होता है। संसार के अनेक राष्ट्रों के नागरिक उनके आश्रम में रहकर साधना करते हैं। आश्रम की यह विशेषता बरबस अपनी ओर ध्यान आकर्षित करती है और मौन भाषा में यह बतलाती है कि पाँडिचेरी के आश्रम में जिन सिद्धान्तों का अनुशीलन साधना के रूप में हो रहा है वही विश्व का भावी मानव-धर्म है।

अज्ञात दिशा की ओर

श्रीयुत सौरीन्द्रमोहन मुकर्जी बँगला के आधुनिक उपन्यास-लेखकों में एक अच्छा स्थान रखते हैं। आप डेढ़ दर्जन से भी अधिक उपन्यास लिख चुके हैं जिनमें से कईयों के कई संस्करण हो चुके हैं। आपका यह उपन्यास बँगला में बहुत लोकप्रिय है अतएव यहाँ हम इसी का अनुवाद धारावाहिक रूप से प्रकाशित करते हैं।

अनुवादक—पं० ठाकुरदत्त मिश्र

पहला परिच्छेद

फागुन की रात में

फाल्गुनी पूर्णिमा की रात्रि है। चन्द्रमा के प्रकाश से चारों दिशायें चमचमा रही हैं। तिस पर दक्षिणी हवा! यह हवा चलने से तरुण-हृदय चञ्चल हो उठता है। मन कहता है कि घर छोड़कर उड़ चलो, उड़ चलो।

प्रायः आठ बजे रात्रि का समय था। पिक्चर पैलेस से निकल कर अहीन्द्र टैक्सी बुलाने लगा। निर्मल ने उसे रोक कर कहा—अभी तो बिलकुल साँझ ही है, चलो न, ज़रा-सा टहला ही जाय। पैरों से तो कुछ परिश्रम लिया नहीं। ये भी तो भगवान् की कृपा से चलने के लिए ही मिले हैं।

हँसकर अहीन्द्र ने कहा—मुझे कोई आपत्ति नहीं है, अच्छा पैदल ही चलो।

घड़ी देखकर निर्मल ने कहा—आठ बज कर सत्रह मिनट हुए हैं। वहाँ यदि चलें तो कोई बहुत अधिक रात तो न हो जायगी। साढ़े नौ बजे तक पहुँच जायँगे। ठीक है न?

विलास-लीला का एक चपल उच्छ्वास समस्त स्थान को घेरे हुए था। शौक़ीन साहबों और मेमों के आनन्द की दीप्ति बिजली की आलोकमाला में और भी तीव्रभाव से बिखर पड़ी थी। इसके अतिरिक्त बंगाली नर-नारियों का भी अभाव नहीं था। जो सब नर-नारी सारा दिन काम-काज की भीड़ में उद्विग्नभाव से भटकते रहते हैं, जो पैसे के फेर में समस्त दिन संग्राम करते रहते हैं और आशा-निराशा की तरङ्गों से जिनका हृदय विक्षुब्ध होता रहता है, वे सारे कोलाहल और दुःख-द्वन्द्व की स्मृति को मन से मार्जित करके, विलुप्त करके यहाँ आकर एकत्र हैं। उन सबकी उस समय की मूर्ति से इस समय की मूर्ति में कितना अन्तर है! देखने पर जान पड़ता है, मानो इन्हें कभी किसी प्रकार की चिन्ता ही नहीं हुई, इन्हें किसी प्रकार की व्यथा या दुःख का क्लेश नहीं है। ये बहुत ही स्वच्छन्द हैं और इनके मन में जिस प्रकार की भी आनन्द-लिप्सा उत्पन्न होती है उसकी पूर्ति में किसी प्रकार की बाधा नहीं होती। इनका जीवन उल्लासमय है। ये लोग शायद हँसना ही जानते हैं, मनोविनोद के पीछे ही सदा दीवाने रहते हैं! संसार में कहीं दुःख, दरिद्रता या व्यथा, निराशा भी है, इस बात का मानो किसी दिन इन्हें आभास तक नहीं मिला।

निर्मल और अहीन्द्र इस भीड़ से निकलकर ग्रैण्ड होटल के पास से होकर चौरङ्गी की सड़क पर आ पहुँचे। ख़ाली टैक्सी हार्न बजाकर उनकी दृष्टि को आकर्षित करने

के लिए बार बार प्रयत्न करने लगी। खाली फ़िटिन के कोचमैन ने 'गाड़ी, बाबू' कहकर उन्हें पुकारा। उन दोनों मित्रों ने उधर दृष्टिपात तक न किया, सड़क की पटरी पकड़े वे दक्षिण की ओर चले।

अहीन्द्र और निर्मल कालेज में जब पढ़ते थे, तभी से उन दोनों में घनिष्ठता हुई थी और वह घनिष्ठता दिन दिन बढ़ती ही जा रही थी। वे दोनों ही तरुण युवा थे। अहीन्द्र का शरीर पतला था, आँख पर चश्मा था। मूँछें छोटी छोटी थीं, और उन्हें सँभाल कर ठीक ठीक रखने के लिए वह प्रतिदिन ही प्रयत्न किया करता था। आँखों की दृष्टि तीक्ष्ण थी, ओंठ पतले थे। अहीन्द्र कलकत्ते की निशाचर-सभा का सदस्य था। थियेटरों और बायस्कोपों में वह प्रायः दिखाई पड़ता था। जिस रास्ते से होकर वह निकलता था वह रास्ता एसेंस की गन्ध से सुरभित हो उठता था। बड़े बड़े समाजों और बड़ी बड़ी संस्थाओं में अबाधगति से उसकी पहुँच थी। बँगला नाटकों के रिहर्सल से लेकर साहित्यिक गोष्ठियों तक में हाज़िरी देने में वह कभी कृपणता नहीं करता था। कलकत्ते के शौक़ीनों की मण्डली में अहीन्द्र ने इतने ही समय में बाक़ायदा नाम कमा लिया था। अपनी चाल-ढाल, अपने सभ्यतापूर्ण बर्ताव तथा शिष्ट एवं निष्कपट व्यवहार के कारण अहीन्द्र ने उक्त मण्डली में सम्मानपूर्ण ही स्थान प्राप्त किया था। रुपया-पैसा उसके पास कैसा है, यह तो ठीक ठीक किसी को भी नहीं मालूम था, परन्तु अपने खर्चीलेपन के लिए वह प्रसिद्ध अवश्य था। उसकी क़ीमती गोल्डफ्लेक सिगरेट और सोने का सिगरेट-केस शौक़ीनों की मण्डली में काफ़ी प्रशंसा पाते रहे हैं।

अहीन्द्र का मित्र निर्मल बड़े आदमी का लड़का था। उसकी पोशाक बहुत साफ़-सुथरी और क़ायदे की रहती थी, गोरा रंग था, लम्बा और दोहरा शरीर था, कल्ले बलिष्ठ थे। हज़ार आदमियों के बीच में खड़े होने पर भी उसका चेहरा सबकी दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित कर लेता।

ज़रा दूर तक चलने के बाद निर्मल ने कहा—भला तुमने वहाँ ले जाकर मेरा परिचय करा देने के सम्बन्ध में कुछ कह भी रक्खा है?

अहीन्द्र ने कहा—कह रक्खा है। कहीं टैक्सी-वाले से भी पहले से कह रखने की ज़रूरत पड़ती है कि तुम्हारे लिए मैं एक सवारी ला दूँगा? वहाँ किसी के सम्बन्ध में पहले से कुछ कह रखने की ज़रूरत नहीं पड़ती। केवल पहुँचने भर की देर है। वहाँ सभी के लिए द्वार खुला है मित्र!

ज़रा-सा सहम कर निर्मल ने कहा—तो ज़रा मुझे यह तो बतलाओ कि वे वास्तव में हैं कौन?

अहीन्द्र ने कहा—वे एक काव्य हैं। रवीन्द्र बाबू की उर्वशी तुमने पढ़ी है न? यह कहकर वह कवि के ही शब्दों में उर्वशी का स्तवगान करने लगा। जिन पंक्तियों की आवृत्ति उसने की थी उनका आशय है कि तुम न तो माता हो, न कन्या हो, न रूपवती सुन्दरी बधू हो। उषा के उदय के समान तुम अवगुण्ठन से हीन हो, अकुण्ठित हो।

बाद को बहुत ही अधिक उत्साह के साथ बिना किसी क्रम के ही स्थान स्थान की उर्वशी की पंक्तियाँ गा-गाकर वह पढ़ने लगा। जितनी भी पंक्तियों की आवृत्ति उसने की थी, उनका सारांश केवल इतना ही है कि हे उर्वशी, अपने अनुपम सौन्दर्य से तुमने त्रिभुवन को विजय कर लिया है। तुम्हारी कुन्द के समान शुभ्र कान्ति की वन्दना देवराज इन्द्र भी करते हैं। संसार में भला कौन-सा ऐसा धीर मनुष्य है, जो तुम्हारी भावभंगी देखकर विचलित न हो उठे? तुम्हारी यौवन-श्री ने मुनियों का भी ध्यान भंग करके अपनी तपस्या का फल तुम्हारे चरणों में अर्पित करने के लिए बाध्य कर दिया है।

अहीन्द्र बहुत ही विह्वल भाव से रवीन्द्र बाबू के ये पद्य गा रहा था। उसे उस समय देश-काल तक का ज्ञान नहीं रह गया था। सड़क पर एक कांस्टेबल बाँस की लाठी लिये पत्थर की मूर्ति के समान खड़ा था। परन्तु अहीन्द्र से कुछ दूरी पर होने पर भी वह उसके गाने की ही ओर ध्यान लगाये हुए उसे ताक रहा था। सड़क से होकर जानेवालों में से भी दो-एक आदमी घूमकर उसकी ओर ताक रहे थे। अहीन्द्र के इस आवृत्ति के प्रवाह को रोककर निर्मल ने कहा—तुमने तो पहेली

बुझाना शुरू कर दिया भाई। मैं चाहता था कि तुम उनका परिचय दो, पर तुमने उर्वशी की आवृत्ति आरम्भ कर दी।

अहीन्द्र ने कहा—यही तो उसका परिचय है भाई। वह बिलकुल रवीन्द्र बाबू की उर्वशी ही है। उसका परिचय केवल मुग्ध करता है। उसे देखने पर पुरुष का चित्त उसी के वश में हो जाता है और वह अपने आपको सर्वथा भूल जाता है। वह धराधाम में कब अवतीर्ण हुई है, यह किसी को मालूम नहीं है, मालूम करने की कोई चिन्ता भी नहीं करता। रूप में वह उर्वशी है और मुग्ध करने में मोहिनी। उसका द्वार खुला होने पर भी उसकी मुसकान बड़े कड़े दाम पर बिकती है। लेकिन है वह पाषाण-प्रतिमा ही। अपने मन में तुम भले ही यह समझते रहो कि वह मुझे बहुत ही अधिक प्यार करती है, और उससे यदि मैं बिदा होने लगूँगा तो शायद वह रो-रोकर घर भर देगी। परन्तु बात ऐसी है नहीं। बिदाई के समय भी तुम्हें द्वार खुला ही मिलेगा, तुम्हारे वियोग का दुःख प्रकट करने के लिए किसी पेड़ की पत्ती तक न डोलेगी।

निर्मल ने कहा—तुमसे उनका परिचय कैसे हुआ?

अहीन्द्र ने कहा—मुझसे परिचय! परिचय करने में तो कोई विचित्र बात नहीं थी। जैसे मैं हर जगह जाया करता हूँ, वैसे ही एक दिन एकाएक वहाँ भी पहुँच गया। बात यह है कि इन सब स्त्रियों का हृदय उदार है न! और इनके यहाँ जो पुरुष जाया करते हैं वे सब भी एक नम्बर के बननेवाले होते हैं। बात यह है कि ऐसे स्थान पर पहुँचते ही पुरुषों का प्रेम और धर्मज्ञान बहुत ही प्रबल हो उठता है, हर एक बात में वे अपने आपको बहुत बड़े आदमी के रूप में प्रदर्शित करने का प्रयत्न करते हैं। वहाँ ज़रा-सी मुसकान के लिए पुरुष अपना सर्वस्व बेच सकता है। परन्तु ज़रा-सा ही ध्यान देने पर मालूम हो जाता है कि उनके न तो प्रेम है, न हृदय है और न धर्मज्ञान है। परन्तु इससे मेरा कोई मतलब नहीं। मुझे तो इस निर्विकार श्रेणी के लोग अच्छे लगते हैं। घर के अँधेरे कोने में जितनी भी दुःख-दरिद्रतायें हैं उन सबको आवेष्टित किये बैठे नहीं रहते, बल्कि उन सबको झाड़-पोंछ कर वे यहाँ इस भाव से आ बैठते हैं कि मानो संसार में उनके आगे-पीछे कोई है ही नहीं। उन्हें न तो किसी प्रकार का अभाव है और न उनके ऊपर किसी का उत्तरदायित्व है। इसमें एक तारीफ़ करने के लायक़ कौन-सी बात है, जानते हो? वे लोग संसार के जंजालरूपी मिट्टी के नीचे अपने आप को गाड़ नहीं देते, यह बहुत बड़ा लाभ है। संसार में जो भी आनन्द और मनोरञ्जन की सामग्री है उसका वे उचित रूप से उपभोग करना जानते हैं। जानते तो हो भाई, इस शरीर में प्राण कब तक रहें और कब न रहें। जीवन में दुःख-क्लेश का भी अन्त नहीं है। ऐसी दशा में हर दिशा में हाथ बढ़ाकर यदि जीवन के हँसने-रोने आदि सभी का स्वाद न लिया तो इस दुर्लभ मनुष्य-जन्म के ग्रहण करने की सार्थकता ही क्या है? घर में स्त्री है, लड़के-लड़कियाँ हैं...है—यह सब तो ठीक है! तो क्या इसके कारण कूप-मण्डूक की तरह हर समय उन्हीं को घेरे बैठे रहना पड़ेगा? भाई, उनके अतिरिक्त भी तो बहुत ही विस्तीर्ण जगत् बाहर पड़ा है। उससे परिचय ही न प्राप्त किया जाय? जो लोग रात-दिन केवल स्त्री-बच्चों के फेर में पड़े घर में बैठे रहते हैं, बाहर के विशाल जगत् की ओर दृष्टि जाते ही साँकड़ लगाकर चुप हो जाते हैं, वे भी कोई आदमी में आदमी हैं। वे तो कायर हैं, स्वार्थी हैं। संसार में आकर इस आनन्द के प्याले को यदि न घूँटा तो इस आनन्द की सृष्टि ही क्यों हुई है, बताओ तो? बताते क्यों नहीं? ऐसा कहकर अहीन्द्र ने ज़ोर से निर्मल का हाथ पकड़ लिया।

निर्मल ने देखा कि बायस्कोप के इन्टरवेल के समय 'बार' में घुसकर अहीन्द्र ने जिस तरल सुधा का आकण्ठ पान किया है, उसका फल इतनी देर के बाद फलना आरम्भ हुआ है। वक्तृता करते करते अहीन्द्र बहुत ही उत्तेजित हो उठा। निर्मल ने कहा—यह बात ठीक है। किन्तु यदि ऐसा ही है तो उसके साथ तुम्हारा प्रणय क्यों है?

अहीन्द्र ने कहा—मेरे साथ प्रणय! बिलकुल नहीं।

उसके साथ मेरा प्रणय न तो था और न उसकी आशा ही रखता हूँ। मैं सदा उसके यहाँ जाता अवश्य रहता हूँ, परन्तु वह उसके लिए नहीं, उसके एक लड़की है उसी के लिए......

कुछ चकित होकर निर्मल ने पूछा—उसके एक लड़की है? वही तुम जो कह रहे थे कि उर्वशी के समान है, न माता है, न कन्या है।

अहीन्द्र ने कहा—भाई, यह क्या मालूम कि उसके पेट की ही लड़की है या नहीं। कोई जन्मपत्री देखने तो गया नहीं। परन्तु वह लड़की—अहा, मानो चन्द्रमा की निर्मल ज्योति है! वह विधाता की एक विचित्र सृष्टि है। ध्यान में अङ्कित किया हुआ चित्र है, मानो मानवी है ही नहीं। वह तरुणी है, मुँह में सदा मुस्कान बनी रहती है, और सारे शरीर तथा हृदय में जीवन की इस तरह की तरंगें प्रवाहित होती रहती हैं कि उसे देखकर तुम आश्चर्य में आ जाओगे। परन्तु वह पकड़ने या हाथ लगाने की चीज़ नहीं है मित्र! इसके अतिरिक्त उसकी मा जो यह सब खेल खेलती रहती है, उसमें वह है भी नहीं। उसका ढंग ही निराला है। वह सबसे उदासीन रहती है, साथ ही सबकी हँसी में भी कैसा सुर मिला देती है! इस रत्न को जो प्राप्त कर सकेगा वह निस्सन्देह भाग्यवान् है। परन्तु उसके प्राप्त करने की आशा मुझे है, और यह आशा बनाये भी रहूँगा चिरकाल तक।

निर्मल ने कहा—वह लड़की भी उसके साथ में पड़कर मिट्टी हो जायगी। मा शायद उसे भी बाद को पेशे की ओर झुकावे।

अहीन्द्र ने कहा—मा इस सम्बन्ध में बहुत कुछ उदासीन है। वह अपनी ही चिन्ता में रात-दिन व्यग्र रहती है न। लड़की होने से ही क्या? शायद मा के हृदय में कुछ ईर्ष्या का भी भाव है। बाद को उसकी उपेक्षा करके यदि कोई कहीं लड़की की ही सौन्दर्य-रूपी बंसी में फँस जाय तो मा के हृदय के लिए तो यह सह्य न होगा। इस तरह की पहेली तुम्हें और कहीं मिलेगी नहीं, इसको तुम सच मानो।

निर्मल ने कहा—ऐसा!

अहीन्द्र ने कहा—हाँ भाई, रेखा के साथ दो-एक दिन ज़रा ज़रा देर तक एकान्त में बातचीत करने का भी आयोजन किया था। उस लड़की का नाम है रेखा। हमारा यह आयोजन देखते ही मा ने आकर इस प्रकार बिजली की-सी दृष्टि से ताका कि उसकी किरण पड़ते ही लड़की वहाँ से रफूचक्कर हो गई और मा ने उस दिन मेरे आदर-सत्कार, मेरी अभ्यर्थना का इतना अधिक घटाटोप कर दिया!

निर्मल ने कहा—तब तुम रेखा को चाहते हो। सच है न?

अहीन्द्र ने कहा—ठीक सच ही है, यह तो मैं नहीं कह सकता। परन्तु कौतूहल है। एक अदम्य कौतूहल और आनन्द जाग्रत हुआ है मेरे हृदय में। किसी प्रकार यदि मैं उसके हृदय पर विजय प्राप्त कर सकता! धन के प्रलोभन से नहीं, इसी तरह।

निर्मल ने कहा—इसी को तो चाहना कहते हैं मित्र।

अहीन्द्र ने कहा—यदि चाहना कहते हैं तो यही सही। रेखा मुझे मुग्ध करती है, आकर्षित करती है, मेरे मन को क्षुब्ध और पीड़ित भी करती है। उसे देखने से जैसे मुझे आनन्द मिलता है, वैसे ही मैं डरता भी हूँ। उसके सामने मानो मेरी बातचीत करने की भी शक्ति नष्ट हो जाती है। कभी कभी मन में ऐसा सन्देह उत्पन्न होता है, मानो वह अपनी मा के समान ही नारीत्व का दारुण अपमान एवं लाञ्छना छिपाये हुए है। शायद वह अपनी मा से भी अधिक कड़े दिल की है, उससे भी बढ़कर हृदयहीन खिलाड़ी है। परन्तु जब मैं उसे सामने देखता हूँ तब मेरा मन ऐसे दृढ़ विश्वास से ओतप्रोत हो जाता है, मेरे मन में इतना आनन्द, इतनी श्रद्धा उत्पन्न होती है कि उसे तुम्हें समझाकर बताने की शक्ति मुझमें नहीं है।

निर्मल ने कहा—इसी को कहते हैं प्रेम। उसका वर्णन करते करते तो तुम एक-दम कवि हो उठते हो।

अहीन्द्र ने कहा—साँझ के समय काम-काज की खड़बड़ाहट जब शान्त हो जाती है और मैं निश्चिन्त हो एकान्त में बैठता हूँ तब केवल रेखा की ही बात मेरे मन में जाग्रत हो उठती है। उसकी सूरत मैं भुला नहीं सकता। कभी कभी तो मन में ऐसा आता है कि रेखा को ज़बर्दस्ती वहाँ से उठा लाऊँ। रेखा का यदि ज़रा भी रुख पाता, उसकी ओर से ज़रा भी मुझे आशा मिलती...। फिर कभी मुझे ऐसा लगता है कि शायद उसने भी मा के समान ही कपट का व्यापार आरम्भ कर दिया है, आदमी को लेकर वह भी उसे खेलाती फिरती है। जैसे ही कोई पसन्द का आदमी मिल जायगा, झट उसे अपनी कटिया में फँसा लेगी। इसके बाद ही मैं उससे बातचीत भी करता हूँ। कितनी सरल होती है उसकी बात-चीत? कितना सरल है उसका हृदय! मैं तो मुग्ध हो जाता हूँ। उसकी बातें याद कर करके मुझे बहुत अधिक सुख इसलिए मिलता है कि रेखा साहित्य-चर्चा खूब करती है। बँगला की तो शायद ही ऐसी कोई किताब होगी जो उसकी पढ़ी न हो।......कभी कभी तो जी में आता है, उससे कहूँ कि यदि तुम चाहो तो मैं तुम्हारे साथ विवाह कर लूँ। विवाह करके इस संसर्ग से तुम्हें दूर ले जाऊँ।

निर्मल ने कहा—मा के इस जघन्य व्यवसाय से उसे घृणा नहीं होती?

अहीन्द्र ने कहा—इस सम्बन्ध में कभी बातचीत नहीं हुई।

निर्मल ने कहा—उसकी विवाह करने की इच्छा है या नहीं, यह तो तुम पूछ ही सकते हो। यों सीधे न पूछना चाहो तो विवाह के सम्बन्ध में किसी दिन विवाद ही छेड़ दो। उसके विचार स्पष्ट हो जायँगे।

अहीन्द्र ने कहा—विवाह करना शायद सम्भव न होगा। मा ने जो कीर्ति अर्जित की है उसके कारण समाज उसे अपनी गोद में स्थान ही क्यों देने लगा? परन्तु यदि वह चाहती हो तो किसी ग़रीब के घर में हो सकता है। वह भी ऐसी अवस्था में कि मा रुपये-पैसे लगाकर लड़के को किसी ठिकाने से लगा दे।

भौंह टेढ़ी करके निर्मल ने कहा—तो भी उसके अनुकूल विवाह न हो सकेगा। इस तरह के स्वामी से आदर और सम्मान प्राप्त करना क्या सम्भव होगा? वह स्वामी तो केवल रुपये के लोभ से उससे विवाह करेगा। इसके अतिरिक्त उसका हृदय भी उतना संस्कृत और उदार न होगा कि वह इस प्रकार की स्त्री का समुचित सम्मान कर सके।

अहीन्द्र ने कहा—यह तो उतना कठिन नहीं है। परन्तु मेरे लिए यदि कहो तो मैं विवाह नहीं कर सकता, यह मैंने खूब सोच-समझ लिया है। विवाह करके सारे जीवन के उत्तरदायित्व को अपने मत्थे मढ़ना! नहीं भाई, यह तो मुझसे नहीं होगा। मेरा ऐसा विचार भी नहीं है। विवाह करने का विचार न होने के ही कारण तो आज तक मैंने उस जाल की ओर पैर नहीं बढ़ाया।

निर्मल ने हँस कर कहा—तुम चाहते हो केवल प्रेम—रोमान्स!

अहीन्द्र ने कहा—भला इससे अधिक सुख और किसमें है? फूल की सुगन्धि ही हर एक आदमी चाहता है। शरीर में उसके काँटे घुसाना भला किसे पसन्द है, बताओ तो।

निर्मल ने कहा—मा भला अपना परिचय क्या कह कर देती है?

अहीन्द्र ने कहा—मिसेज़ बोस कह कर। इतना ही सुनकर लोग सन्तुष्ट हो जाते हैं। किसी के मन में यह जानने की इच्छा ही नहीं उदय होती कि मिस्टर बोस उसके कौन थे। मिसेज़ बोस उसका नाम ही क्यों पड़ा, यह भी कभी किसी ने नहीं पूछा। मतलब यह कि वह स्त्री उर्वशी के ही समान उदय हुई है। कहाँ कब पैदा हुई है और उसकी कितनी अवस्था है, यह सब न तो कोई जानता है और न जानने की इच्छा करता है। वह एक-दम पूर्णयौवना विलासिनी मूर्ति धारण करके पुरुष की उद्दाम-उच्छृङ्खल हृदयरूपी रंगभूमि में अकस्मात् प्रविष्ट हुई है, और उस अनन्तयौवना उर्वशी के ही समान है।

निर्मल ने कहा—इस रंगभूमि में तुम्हारे समान और कौन-कौन-से लोग विचरण किया करते हैं?

अहीन्द्र ने कहा—किसका किसका नाम लूँ? तुम्हें अभी मालूम हो जायगा। मैं तुम्हें वहाँ लिये जा

रहा हूँ उस लड़की को दिखलाने के लिए। वह देखने की चीज़ है! मिसेज़ बोस मेरी खातिर बहुत करती हैं। उसका विश्वास है कि मेरे पैसे की थाह नहीं है।...लेकिन उसका चाल-चलन तुम्हें ऐसा दिखाई पड़ेगा कि उसके मुँह की तरफ़ मुग्ध दृष्टि से देखने का किसी को साहस न होगा—आदर और विनय से मस्तक नीचा किये रहना पड़ेगा। उसके यहाँ और भी दो-चार विलासिनियाँ हैं। हाव-भाव से जान पड़ता है कि वे हैं खरी ईमानदार किन्तु उन्हें पुरुषों से मिलने-जुलने में किसी प्रकार का संकोच नहीं होता। सच बात तो यह है कि ये सब वास्तव में सभ्य रूप धारण करनेवाली वेश्यायें हैं। समझे? तुम्हें ज़रा-सा सावधान होकर रहने के लिए ही यह सब कहा है।

बातचीत करते करते दोनों आदमी पार्क स्ट्रीट को पार कर आये।

आगे पैदल चलना ठीक नहीं समझा गया, क्योंकि आगे कोई सवारी मिलने की आशा नहीं थी। इसलिए एक टैक्सी बुलाकर दोनों आदमी बैठ गये। अहीन्द्र ने ड्राइवर से कहा—बालीगञ्ज चलो।

ऋतुराज

लेखक, राजकवि अम्बिकाप्रसाद भट्ट, 'अम्बिकेश'

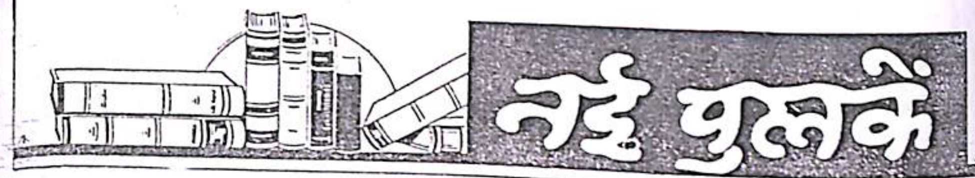
किसके अनुराग के रंग रँगी,
कलियाँ नहीं फूली समा रही हैं।
किसके पद चाव से चूमने को,
मग में सरसों झुकी जा रही हैं।
किसका सुन आगम मोद भरी,
मधुपावलियाँ मँड़रा रही हैं।
किसकी छवि में बनी बावली-सीं,
कल कोकिल गान सुना रही हैं ॥१॥

किससे मिलने को उतावली हो,
परिधान हरे नव अंग सजाती।
किसके लिए ओस के मोतियों की,
भर माँग उषा है सिंदूर लगाती।
सुमनावली से मुसक्याती हुई,
किसके लिए प्रेम पराग लुटाती।
किसकी प्रकृति-प्रिया आरती को,
यह आज पलास के दीप जलाती ॥२॥

गति मंथर से चलता है समीर,
पिकावली भी चलीं गाती हुई।
भ्रमरों की सजी हुई भीड़ चली,
कुसुमावली से इठलाती हुई।
तितली चली मोद से मत्त बनी,
क्षिति स्वर्ण-छटा छिटकाती हुई।
तरु अंक चली ये लतावली भी,
लहराती हुई, बल खाती हुई ॥३॥

मकरंद मिला मधुपावली को,
पिक को कलकंठ दराज मिला।
कवियों को मिली प्रतिभा है नई,
सुमनों को सुसौरभ साज मिला।
बन-वाटिका को नव प्राण मिला,
जग को सुख-चैन समाज मिला।
मलयानिल को मलय-राज मिला,
ऋतुराज को विश्व का ताज मिला ॥४॥

यह चार दिनों की मिला-मिली है,
किसी के पथ का बन खार न जाना।
अपनाना लगाना गले सबको,
कहीं भूल ये जीवन सार न जाना।
जिसने ये विभूति है दी, उसका,
कहीं भूल अरे उपकार न जाना।
इस माधुरी रूप के फूल में फूल के,
मूल को भी कहीं हार न जाना ॥५॥



[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१—मेरी विलायत-यात्रा—लेखक, श्रीयुत रामजीदास वैश्य, मुद्रक, आलीजाह दरबार प्रेस, ग्वालियर हैं।

२-९—गीता-प्रेस, गोरखपुर, की ८ पुस्तकें—

(१) स्तोत्ररत्नावली — (हिन्दी-अनुवाद-सहित) मूल्य ॥) है।

(२) शरणागतिरहस्य—लेखक, श्रीभट्ट मथुरानाथ शास्त्री, साहित्याचार्य, और मूल्य ॥≶) है।

(३)—उपनिषदों के चौदह रत्न—लेखक, श्रीयुत हनुमानप्रसाद पोद्दार और मूल्य ।=) है।

(४)—दि स्टोरी आफ़ मीराबाई—(अँगरेज़ी) लेखक, श्रीयुत बाँकेबिहारी, बी० एस-सी०, एल-एल० बी० और मूल्य ॥=) है।

५—शतश्लोकी—अनुवादक, श्रीयुत मुनिलाल जी और मूल्य =) है।

(६)—भगवत्प्राप्ति के विविध उपाय—लेखक, श्रीयुत जयदयाल गोयन्दका और मूल्य)॥ है।

(७)—महात्मा किसे कहते हैं—लेखक, श्रीयुत जयदयाल गोयन्दका और मूल्य)। है।

(८)—ईश्वर दयालु और न्यायकारी है—लेखक, श्रीयुत जयदयाल गोयन्दका और मूल्य)। है।

१०-१२—उपयोगी ग्रन्थ-भण्डार, उज्जैन, की तीन पुस्तकें—

(१) आरोग्य और आनन्दमय जीवन बनाने के उपाय—लेखक, श्रीयुत शिवदत्त शर्मा, और मूल्य ।=) है।

(२) ॐकार-जप-विधि—लेखक, श्रीयुत शिवदत्त शर्मा, और मूल्य ।) है।

(३) गायत्री-महिमा—लेखक, श्रीयुत शिवदत्त शर्मा और मूल्य ।) है।

१३-१४—साहित्य-सदन, अबोहर, की दो पुस्तकें—

(१) विश्वधाय—लेखक, श्रीयुत भगवानदास वर्मा, और मूल्य ।) है।

(२) ग्राम-सुधार-नाटक—लेखक, श्रीयुत सैयद कासिम अली साहित्यालंकार, और मूल्य ॥) है।

१५-१६—रघुवीरभवन चौहट्टा, पटना, की २ पुस्तकें—

(१) ब्रह्मविद्या—लेखक, श्रीयुत रामजीवनसिंह, और मूल्य -)॥ है।

(२) परलोक-जीवन—लेखक, श्रीयुत जगत्नारायण, बी० एस-सी० और मूल्य ≶) है।

१७—मधुबाला (कविता)—रचयिता, श्रीयुत बच्चन, प्रकाशक, सुषमा-निकुंज, प्रयाग और मूल्य १) है।

१८—आभास (कविता)—लेखक, श्रीयुत बालकृष्णराव, प्रकाशक, लीडर प्रेस, प्रयाग है।

१९—एजूकेशन रेफ़ार्मेशन इन इंडिया (अँगरेज़ी)—प्रकाशक, श्रीयुत जे० सी० बासक, ३६३ अपर चितपुर रोड, पो० बीडन स्ट्रीट, कलकत्ता और मूल्य १) है।

२०—क्रियात्मक मनोविज्ञान—लेखक, श्रीयुत प्रियरत्न आर्ष, १ एबटरोड, लाहौर, और मूल्य १) है।

२१-२२—छात्रहितकारी माला की २ पुस्तकें—

(१) वेदान्तधर्म—अनुवादक, श्रीयुत गणेश पाँडेय और मूल्य १।) है।

(२) मदिरा (गद्य-गीत)—लेखक, श्रीयुत तेजनारायण काक, 'क्रान्ति', मूल्य १) है।

२३—मतवाली मीरा (साहित्यिक)—लेखक, श्रीयुत तुलसीराम शर्मा, 'दिनेश' ३३६ ए० कालबादेवी रोड, बम्बई हैं।

२४—आर्य्यसमाज किस ओर—लेखक, श्रीयुत वसिष्ठ जी, प्रकाशक, सरस्वती-सदन, मंसूरी, यू० पी० हैं और मूल्य १) है।

२५—राजर्षि-ज्योति—लेखक, श्रीयुत रामदेवसिंह गहवर, 'देवेन्द्र' प्रकाशक, राजर्षि-ग्रन्थमाला-कार्यालय, मधवापुर, प्रयाग हैं और मूल्य ||=) है।

२६—कांग्रेस के इतिहास में काशी का स्थान—संकलयिता, श्रीयुत कमलापति त्रिपाठी, प्रकाशक, मंत्री, शहर कांग्रेस कमेटी, बनारस हैं और मूल्य -) है।

२७—सटीक कवितावली रामायण—रचयिता, गोस्वामी तुलसीदास, प्रकाशक, छात्रहितकारी पुस्तक-माला, दारागंज, प्रयाग और मूल्य १||) है।

२८—चींटी और दीमक—लेखक, श्रीयुत लक्ष्मी-नारायण दीनदयाल अवस्थी, प्रकाशक, मध्य-भारत-हिन्दी-साहित्य-समिति, इन्दौर हैं और मूल्य |||) है।

२९—अध्यात्मतत्त्वालोक (गुजराती)—लेखक, श्रीयुत न्यायविजय जी, प्रकाशक, श्रीसुरेन्द्र लीलाभाई झवेरी, बी० ए०, बड़ोदा और मूल्य १||) है।

३०-३१—जैन-साहित्य-मंदिर, मीठगंज, पूना से प्रकाशित गुजराती की २ पुस्तकें—

(१) स्त्री जीवनीन-विकास दिशा—मूल्य =) है।

(२) जैनदर्शन—मूल्य ||=) है।

३२—यमुनालहरी—लेखक, श्रीयुत 'मुकुन्द' प्रकाशक, 'सत्य फांसी' मानिक चौक, मथुरा और मूल्य -) है।

३३—नाड़ी-परीक्षा के सरल उपाय—लेखक, कविराज प्रभाशंकर वैद्य-शास्त्री, प्रकाशक, धन्वन्तरि-ग्रन्थ-माला, सागर और मूल्य ≡) है।

३४—मूर्त्तिपूजा की आवश्यकता—लेखक, श्रीयुत के० भुजबली शास्त्री, प्रकाशक, जैन युवकमंडल, धामपुर (बिजनौर) और मूल्य -) है।

३५—कल्याण-भक्तांक—सम्पादक, श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार, प्रकाशक, गीता-प्रेस, गोरखपुर और मूल्य १||) है।

३६—प्रमेह की अनुभूत चिकित्सा—लेखक, श्रीयुत प्रभाशंकर वैद्य-शास्त्री, प्रकाशक, धन्वन्तरि-ग्रन्थ-माला सदर बाज़ार, सागर, और मूल्य ||=) है।

३७—क्रन्दन (कविता)—लेखक, श्रीयुत "पागल", प्रकाशक, शान्तिनिलय, मैगर (गया) और मूल्य ≡) है।

३८—विमोचन—प्रकाशक, दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार-सभा, मदरास और मूल्य ||) है।

३९—श्रीकृष्ण-(भजन)—लेखिका, श्रीमती ए० आर० सक्सेना, रेलवे प्रिमिसेज़ २३५, सेन्ट्रल स्टेशन कानपुर और मूल्य 'कृष्णभक्ति' है।

१—निशीथिनी (काव्य)—रचयिता, श्रीयुत प्रणयेश शुक्ल, प्रकाशक, श्री आर० एन० त्रिपाठी, कानपुर हैं। पृष्ठ-संख्या ८३ और मूल्य |||)

इस पुस्तक में श्रीयुत प्रणयेश जी की खड़ी बोली तथा व्रजभाषा में लिखित कविताओं का संग्रह है। इस संग्रह में अधिकांश रचनायें कवि की प्रारम्भिक रचनायें हैं, तथापि भाषा, भाव एवं शैली तीनों दृष्टियों से कवि को अपने प्रयत्न में अच्छी सफलता मिली है—खड़ी बोली और व्रजभाषा दोनों पर ही प्रणयेश जी का समान अधिकार है। कविता के विषय भिन्न भिन्न हैं। इसकी कविताओं में 'विरह' और 'मिलन' के दुख-सुख की स्मृतियों और अनुभूतियों का सुन्दर चित्रण हुआ है। पंच-भूतों पर लिखी गई कवितायें कवि की कल्पना-शक्ति, प्रतिभा, और सुन्दर भाषा का उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

'प्रणयोद्गार' नामक कविता में प्रेमी के 'आत्म-निवेदन' और 'तल्लीनता' की भावनाओं का चित्रण देखिए—

मान-अपमान का किसे है बतलाओ ध्यान,
जग से विरक्त हो तुम्हारे कहलायेंगे !
छाया बन डोलेंगे तुम्हारे संग वन-वन—
मधुप तुम्हारे गुन गुनगुन गायेंगे।
'प्रणयेश' सरल तरङ्गित पियूष-प्याले
हम भी पियेंगे और तुमको पिलायेंगे !
तुम मुसकाते हुए देखना हमारी ओर,
हम बलिहार उस छवि पर जायेंगे !

व्रजभाषा की भी कवितायें बड़ी सुन्दर हुई हैं। स्थानाभाव के कारण हम उदाहरण नहीं दे रहे हैं, किन्तु हमें विश्वास है कि काव्य-रस-प्रेमी इन कविताओं में एक उदीयमान कवि की प्रतिभा की छाप, अनुभूतियों का सुन्दर और सरस चित्रण तथा काव्योचित मनोहारी गुण पायेंगे।

२—हृदय-निकुंज (काव्य)—रचयिता, श्रीयुत गया-प्रसाद द्विवेदी 'प्रसाद', प्रकाशक, साहित्य-सदन, रामनगर, अमेठी-राज्य (अवध) हैं।

यह भी कविताओं का संग्रह है। सभी कवितायें खड़ी बोली में लिखी गई हैं। प्रारम्भ में अमेठी के साहित्यिक राजवंश का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। कविता की भाषा प्रसाद-गुण-युक्त है और छन्दों की विभिन्नता तथा लयपूर्ण पदों की रचना इस पुस्तक की विशेषतायें हैं। प्रकृति का वर्णन तथा कल्पना की उड़ानें भी कुछ कविताओं में खूब सुन्दर बन पड़ी हैं।

पुस्तक में कुछ एक कवितायें भावों की दृष्टि से साधारण हैं। यदि कवि महोदय संग्रह करते समय अपनी सभी कृतियों को मुद्रित रूप में देखने का लोभ संवरण करके केवल अपनी चुनी चुनी उत्तम रचनाओं से इस 'निकुंज' को सजाते तो और भी उत्तम होता।

३—हिन्दू-धर्म और उसके नाश की नास्तिकी चेष्टा—लेखक, राजवैद्य श्री शक्तिचरण विशारद, प्रकाशक, श्री वासुदेव राय, अलोपीबाग़, प्रयाग हैं।

लेखक ने इस पुस्तक में शास्त्र-द्रोह न करने तथा शास्त्रों को भगवद्-वाक्य होने के कारण उनका आदर करने का उपदेश किया है। साथ ही उन कारणों का भी निर्देश कर दिया है जिनसे लोग शास्त्रों को नहीं मानते तथा उन बातों पर भी प्रकाश डाला है जिनसे शास्त्रों में श्रद्धा उत्पन्न हो। लेखक शास्त्रों को भगवज्जन्य होने के कारण निर्भ्रान्त सत्य मानने की वस्तु मानते हैं—विचार की नहीं।

यद्यपि हमारे शास्त्रों ने 'विचार' अथवा तर्क को सत्य निर्णय के लिए परमावश्यक माना है और "श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः" कह कर तथा तर्कशास्त्र को 'चतुर्दशविद्याओं' में स्थान देकर उसके महत्त्व का प्रतिपादन किया है, तथापि केवल पक्ष-पात-पूर्ण होकर जो लोग अपने घर की सत्य-ज्ञान-सम्पत्ति का निराकरण करने को उद्यत हो जाते हैं उन्हें अपने विचारों की पुनरावृत्ति करने को इस पुस्तक से उत्साह मिल सकता है। पुस्तक की भाषा त्रुटिपूर्ण और वाक्य-रचना स्थान स्थान पर अशुद्ध है।

४—गान्धी-विचार-दोहन—लेखक, श्रीयुत किशोर-लाल घ० मशरूवाला, प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर हैं। पृष्ठ-संख्या २१६ और मूल्य |||) है।

महात्मा गान्धी के लेखों, व्याख्यानों, उपदेशों तथा ग्रन्थों की सहायता से लेखक ने बड़े परिश्रम से उनके विचारों को—१ धर्म, २ धर्म-मार्ग, ३ समाज, ४ सत्याग्रह, ५ स्वराज्य, ६ वाणिज्य, ७ उद्योग, ८ गोपालन, ९ खादी, १० स्वच्छता और आरोग्य, ११ शिक्षा, १२ साहित्य और कला, १३ स्वयंसेवक तथा १४ संस्थायें नामक—चौदह शीर्षकों के नीचे यथाक्रम संगृहीत किया है।

महात्मा जी की सरल, मर्मस्पर्शी, सत्यवाणी का यह प्रांजल संग्रह बड़ा ही उपयोगी है। इससे महात्मा जी के विचारों की विस्तृत रूप-रेखा ही केवल सामने नहीं आ जाती, अपितु प्रत्येक सत्यान्वेषी व्यक्ति इससे अपने जीवन-पथ में उचित मार्ग का निर्देश तथा स्फूर्ति लाभ कर सकता है।

लेखक और प्रकाशक दोनों ही ऐसी सुन्दर पुस्तक जनता के सामने रखने के लिए धन्यवाद के पात्र हैं। प्रत्येक देशहितैषी, देशप्रेमी को इस पुस्तक की एक प्रति का संग्रह अवश्य करना चाहिए। पुस्तक की छपाई तथा गेट-अप भी सुन्दर हैं।

५—क़ब्ज़ या कोष्ठबद्धता—लेखक, श्रीयुत बाले-श्वरप्रसादसिंह, प्रकाशक, श्री कृष्णनन्दनप्रसाद, १ बैंक रोड, इलाहाबाद हैं। मूल्य |-) है।

वर्तमान काल में विज्ञान की उन्नति के साथ ही साथ स्वास्थ्य तथा भोजन के सम्बन्ध में भी नई नई खोजें हुई हैं। ओषधियों के प्रयोग को अप्राकृतिक सिद्ध करके प्रकृति की सहायता से रोगों को दूर करने का उपाय ढूँढ़ निकालने

के लिए योरप और अमेरिका के विज्ञानवेत्ता परिश्रम कर रहे हैं। विटामिन या प्राणप्रद तत्त्वों के आविष्कार ने भोजन-विज्ञान में एक युगान्तर उपस्थित कर दिया है। इसी प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा भी आज विज्ञान के रूप में परिणत हो रही है। इस पुस्तक के लेखक योग-व्यायाम के ज्ञाता तथा प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञान के प्रचारक हैं। इसमें उन्होंने क़ब्ज़ को दूर करने की क्रियात्मक विधियों का सांगोपांग वर्णन किया है। इसमें वर्णित उपाय सरल भाषा में लिखे गये हैं और लेखक ने उन्हें क़ब्ज़ को दूर करने में अचूक बताया है। पुस्तक में चित्रों की सहायता से हठयोग-सम्बन्धी व्यायामों तथा नौलिक्रिया का भी विशद वर्णन है। पढ़ने और लाभ उठाने के योग्य है।

६—राजपूताने के जैन वीर—लेखक, श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय, प्रकाशक, हिन्दी-विद्यामन्दिर, पहाड़ी धीरज, देहली हैं। पृष्ठ-संख्या ३४४ और मूल्य २) है।

भारतीय साहित्य को जैन लेखकों की अमर कृतियों ने जिस प्रकार अलंकृत और सम्पन्न किया है, उसी प्रकार भारतीय इतिहास और देश-रक्षा के कार्य में भी जैन वीरों ने हाथ बँटाया है। प्रस्तुत पुस्तक में राजपूताने के ऐसे ही अनेक जैन वीरों का इतिवृत्त लेखक ने बड़ी खोज के साथ लिपिबद्ध किया है। भाषा ओजस्विनी और वर्णन-शैली रोचक है। इतिहास की सन्-संवत्-सम्बन्धी त्रुटियाँ — जैसा कि भूमिका में रायबहादुर म० म० पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा जी ने निर्देश किया है—रहते हुए भी पुस्तक का महत्त्व कम नहीं होता। सम्पूर्ण पुस्तक में निष्पक्ष आलोचना और सत्य घटनाओं को सप्रमाण अंकित करने का प्रयत्न किया गया है। इतिहास-प्रेमियों तथा जैनधर्मावलम्बियों के संग्रह करने योग्य है।

७—विजातीय विवाह-मीमांसा—लेखक, श्रीयुत परमेष्ठीदास जैन, न्यायतीर्थ, हैं। पता—जिनवाणीप्रचारक कार्यालय, १६१-१, हरिसनरोड, कलकत्ता। मूल्य ॥=) है।

लेखक ने इस पुस्तक में यह प्रतिपादन किया है कि विजातीय अथवा अन्तर्जातीय विवाह धर्मशास्त्र तथा युक्त्यागम की दृष्टि से संगत और उचित है और जैनमतावलम्बी केवल अपनी विवेकहीनता तथा प्रथा या रूढ़ियों की गुलामी के कारण इसे धर्मविरुद्ध और निषिद्ध समझते हैं। लेखक ने जैन-साहित्य और धर्म-शास्त्रों से प्रमाण उद्धृत करके यह स्पष्ट रूप से सिद्ध कर दिया है कि जातियाँ सादि और आधुनिक हैं तथा अन्य मत से जैनमत में आने पर वर्णों का परिवर्तन भी होता रहा है। उपजातियों का जो इतिहास इस पुस्तक में दिया गया है, समाजशास्त्रज्ञों के लिए विशेष रूप से मनोरञ्जक है। केवल यात्रा की असुविधाओं अथवा भिन्न भिन्न स्थानों के निवास के कारण प्रदेशों के नाम के अनुसार एक जाति से नाना जाति-उपजातियाँ उत्पन्न हुई हैं। इन उपभेदों में परस्पर रोटी-बेटी का सम्बन्ध न होना, योग्य वर-वधू के ढूँढ़ने में कठिनाइयाँ, कुछ उपजातियों की ह्रास तथा लोप की ओर प्रगति, एवं नाना उपजातियों के कारण एकता और संगठन का अभाव होना आदि दोष दिखला कर लेखक ने उदाहरणों से यह सिद्ध किया है कि पूर्व-समय में इन उपजातियों में पारस्परिक विवाहादि सम्बन्ध होते थे। ऐतिहासिक जैनमतावलम्बियों तथा जैनसमाज-हितैषियों को इस पुस्तक का अवश्य मनन करना चाहिए।

८—काश्मीरदर्शक—लेखक, श्रीयुत रामचन्द्र अरोड़ा, पृष्ठ-संख्या १३४ और मूल्य १॥) है।

कश्मीर पृथ्वी का स्वर्ग कहलाता है। इसी भू-स्वर्ग की यात्रा करने की इच्छा रखनेवाले लोगों के लिए लेखक ने यह पुस्तक लिखी है। पुस्तक क्रमबद्ध तथा सरल शैली में लिखी गई है तथा काश्मीर में देखने योग्य सभी स्थानों तक पहुँचने के विभिन्न मार्ग, व्यय तथा पड़ावों का विशद वर्णन इसमें किया गया है। इसकी एक प्रति साथ रखने से यात्री की सब प्रकार की कठिनाइयाँ हल हो सकती हैं। कुछ अथवा अधिक दिनों की कश्मीर-यात्रा करते समय कितने और कैसे प्रसिद्ध प्रसिद्ध दर्शनीय स्थानों को देखना चाहिए, इसका भी प्रोग्राम इसमें दे दिया गया है। यात्रा के भिन्न भिन्न मार्गों से पड़नेवाले व्ययों के आँकड़े और ठहरने के स्थानों की सूचियाँ भी दी गई हैं। अन्त में काश्मीरी भाषा के कुछ आवश्यक शब्द और व्यवहारोपयोगी वाक्य दिये गये हैं, जिनसे यात्री अपना काम चला सकें। पुस्तक में सोलह हाफ़-टोन चित्र और दो उपयोगी मान-चित्र हैं। कश्मीर-यात्रियों के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। अतरौली, अलीगढ़ (यू० पी०) के पते पर लेखक को लिखने से मिल सकती है।

९—अमर-वचन-सुधा (उमर ख़ैयाम की रुबाइयाँ) हिन्दीकार, पंडित गिरधर शर्मा जी 'नवरत्न' हैं। मूल्य ।) है। पता—नवरत्न-सरस्वती-भवन, झालरापाटन, (राजपूताना)।

फ़ारस के महाकवि उमर ख़ैयाम की रुबाइयाँ, उनका फ़िट्ज़ जीरल्ड कृत अँगरेज़ी अनुवाद तथा इस अँगरेज़ी अनुवाद के आधार पर हिंदी-अनुवादों से सहृदय लोग ख़ूब अच्छी तरह परिचित हैं। हिंदी में इन रुबाइयों के इधर गत वर्षों में दो-तीन अच्छे संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् कवि श्रीयुत शर्मा जी ने भी इस अमर काव्य का हिन्दी-रूपान्तर कवितारूप में किया है। पुस्तक के बायें पृष्ठ पर अँगरेज़ी पद्य हैं और दायें पृष्ठ पर उनका हिंदी-पद्यों में अनुवाद। अनुवाद सुन्दर, स्वच्छ तथा मूल के भावों के, पर्याप्त अंशों में, अनुरूप हुआ है। किन्तु कहीं कहीं दो-चार पंक्तियाँ ऐसी भी हैं जिनमें अनुवाद उखड़ा हुआ-सा मालूम पड़ता है। फिर भी अनुवाद साधारणतया अच्छा है और मूल के भावों की उसमें पर्याप्त रक्षा हुई है। सहृदय पाठकों का इससे मनोरञ्जन होगा।

१०—मानव-भूगोल—लेखक, श्रीयुत युगलकिशोर मिश्र, बी० ए०, प्रकाशक, लाला रामनारायणलाल, बुकसेलर, इलाहाबाद हैं। मूल्य १।) है।

लेखक ने हाई स्कूलों में भूगोल-शिक्षा की प्रचलित प्रणाली को 'दयनीय' तथा 'दूषित' बतलाकर भौगोलिक परिस्थितियों के कारण भिन्न भिन्न देशों के निवासियों के जीवन-विकास तथा रहन-सहन पर क्या और कैसा प्रभाव पड़ता है, नदी, पहाड़ आदि प्राकृतिक वस्तुओं का मानव-जीवन के गठन में पारस्परिक घात-प्रतिघात-द्वारा कहाँ तक सम्बन्ध है, यह सब बतलाने का प्रयत्न इस पुस्तक में किया है। निःसंदेह नदी-पहाड़ों को रटा देने की प्रणाली से लेखक का दृष्टिकोण अधिक उपयोगी और चित्ताकर्षक है। मानव-भूगोल से बालकों को स्पष्ट मालूम होगा कि प्रकृति किस प्रकार कारण बन कर मानव-स्वभाव, जीवनविधि तथा उनके दैनिक कार्यकलापों पर प्रभाव डालती है। इस प्रकार की भूगोल-शिक्षा ही विद्यार्थियों के लिए लाभदायक हो सकती है, इसमें सन्देह नहीं। इस दृष्टि से लेखक का प्रयत्न स्तुत्य है। पुस्तक की भाषा सरल, छात्रोपयोगी तथा वर्णन-शैली रुचिकर एवं विषय को स्पष्टरूप से हृदयङ्गम करानेवाली है।

११—संसार किधर—लेखक, श्रीयुत गोविन्द-सहाय, बी० काम०, प्रकाशक, सोशलिस्ट पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली हैं। पृष्ठ-संख्या २४२ और मूल्य १।) है।

भारतवर्ष का राजनैतिक वायुमण्डल गत कई वर्षों से विभिन्न आन्दोलनों और विभिन्न विचारों से पूर्ण रहा है। इस पुस्तक की प्रस्तावना में श्रीयुत सम्पूर्णानन्द जी ने कहा है कि इन विभिन्न विचारधाराओं में समाजवाद के सिद्धान्तों का क्रमशः बढ़ता हुआ प्रचार भी है। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने (१) साम्राज्यवाद क्या है, (२) औद्योगिक क्रान्ति तथा साम्राज्य-वृद्धि, (३) साम्राज्यवाद के रंगमंच के खिलाड़ी, (४) साम्राज्य में मदान्ध योरप, (५) फिर योरप किधर, (६) महायुद्ध अवश्य होगा, (७) नवयुग का आरम्भ—इन सात परिच्छेदों में यह दिखलाने का सफल प्रयत्न किया है कि किस प्रकार साम्राज्यवाद की भावना से अन्धे योरपीय देश नीति-अनीति की परवा न करके संसार में युद्ध, परदेशों की स्वाधीनता का अपहरण तथा उनके रक्तशोषण की नीति पर चल रहे हैं और मानव-जाति की शान्ति में विघ्न उपस्थित कर रहे हैं। पुस्तक प्रचुर अध्ययन और परिश्रम से लिखी गई है और अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक दाँव-पेंचों तथा उनके मूल कारणों पर स्पष्ट प्रकाश डालती है। हम राजनीति से अनुराग रखनेवाले तथा अन्य देशों की परिस्थितियों तथा आन्दोलनों की दृष्टि से अपने देश की आवश्यकताओं का अध्ययन करनेवाले हिन्दी के पाठकों को इस पुस्तक के पढ़ने की सलाह देते हैं। मनोरंजक शैली तथा सरल भाषा-द्वारा लेखक ने विश्व की राजनैतिक प्रगति के चित्रपट के समान स्पष्टरूप से इस पुस्तक में अंकित किया है। यह पुस्तक विचारोत्तेजक तथा दृष्टिकोण को विस्तृत करनेवाली

है। आशा है कि हिन्दी-पाठक इसका उचित आदर करेंगे।

१२—चीफ़ स्काउट वेडन पावेल—स्काउटिंग या बालचर-संस्था आज एक विश्वव्यापी संस्था है। इस पुस्तक में इसी संस्था के मूलप्रवर्त्तक चीफ़ स्काउट वेडन पावल का जीवन-चरित लिखा गया है। अफ़्रीका के युद्धों में तथा बूअर-युद्ध में श्री बेडन पावेल ने कैसी बुद्धिमत्ता, धैर्य तथा साहस से काम लिया, उसका वर्णन पढ़कर हमारे बालक बालचर बहुत कुछ सीख सकते हैं। पुस्तक में श्री बेडन पावेल के दो चित्र भी हैं। पुस्तक बालकों तथा बालचर युवकों के लिए उपयोगी है। पुस्तक का मूल्य दस आना है और प्रकाशक हैं—श्रीयुत कन्हैयालाल दीक्षित, खलासी लेन, कानपुर।

१३-१४—ज्ञान-भण्डार, जोधपुर, के २ 'ट्रैक्ट'

(१) ग्राम-सुधार कैसे हो?—लेखक श्री 'सुमन' प्रभाकर। मूल्य)॥।

इस छोटे से "ट्रैक्ट" में लेखक ने ग्राम-सुधार के साधनों पर अपने विचार प्रकट किये हैं।

शिक्षा-परिषद्, कृषि-परिषद् तथा व्यावहारिक ज्ञान-परिषद् की योजनाओं तथा अनेक अन्य उपायों पर विचार किया गया है। इस कार्य के करनेवाले लोग इससे लाभ उठा सकते हैं।

(२) मृत्यु-भोज कैसे रुकें?—लेखक—श्रीनाथ मोदी 'विशारद' मूल्य)॥।

किसी व्यक्ति के मरने पर तेरही आदि पर दिये जानेवाले मृत्यु-भोजों की प्रथा के विरुद्ध लेखक ने यह पुस्तक लिखी है। समाज में केवल अज्ञान तथा समाज-भय के कारण अनेक अपव्ययजनक कुरीतियाँ प्रचलित हैं। मृत्यु-भोज उन्हीं में से एक है। विशेषतया ग़रीब और अशिक्षित लोग तो क़र्ज़ लेकर भी इन कुरीतियों को समाज के स्वार्थी तथा लोलुप-भोजन-भट्टों के भय और दबाव से करते चले जा रहे हैं। इसके लेखक ने इस कुरीति के विरुद्ध आवाज़ उठा कर तथा इसके रोकने के उपायों पर प्रकाश डालकर समाज की सेवा की है। उपर्युक्त दोनों 'ट्रैक्ट' जनता में वितरित होने चाहिए।

१५—संकीर्तन-सुधा—(पहला भाग)—प्रकाशक, संकीर्तन-कार्यालय, मेरठ हैं। मूल्य ।) है।

इस पुस्तक में भगवन्नाम-प्रचार के लिए मिलकर सस्वर संकीर्तन के लिए उपयोगी पदों, भजनों तथा दोहों का संग्रह है। संकीर्तन-प्रेमियों के काम की चीज़ है।

१६—आनुपातिक प्रतिनिधित्व—लेखक, श्रीयुत महावीर त्यागी हैं। मिलने का पता—विजय पुस्तक भण्डार, अर्जुन कार्यालय, श्रद्धानन्द बाज़ार, देहली। मूल्य ।) है।

यह एक उपयोगी पुस्तक है। आज-कल के कौंसिल और कमिटियों के दिनों में चुनाव और वोटरों पर ही संस्थाओं तथा देशों का भाग्य निर्भर करता है। प्रजा-सत्तात्मक राज्य-व्यवस्था की सफलता भी विभिन्न दलों के सदस्यों के आनुपातिक चुनाव पर ही निर्भर करती है। पर अशिक्षित वोटरों तथा शिक्षित अनेक वोटरों को भी इस बात का ज्ञान नहीं होता कि उनके चुनाव का क्या और कैसा प्रभाव होगा। इसलिए विवेक-पूर्ण वोट पाने के लिए चुनाव की प्रणाली का पूर्ण ज्ञान वोटरों को होना चाहिए। आनुपातिक प्रतिनिधित्व क्या वस्तु है; ट्रान्सफ़रेबल वोट क्या है, इन बातों को लेखक ने स्पष्टरूप से उदाहरण देकर इस पुस्तक में समझाया है। निर्वाचन-क्षेत्र में भाग लेनेवाले प्रत्येक वोट-दाता तथा राजनीति के अन्य विद्यार्थियों को इस पुस्तक को अवश्य पढ़ना चाहिए।

१७—सर्प—(प्रथम भाग) लेखक, श्रीयुत श्यामपद बनर्जी, एम० एस-सी०, प्रयाग-विश्वविद्यालय, प्रयाग हैं।

इस पुस्तक को लेखक ने तीन भागों में विभक्त किया है। प्रथम भाग में भारत के विषैले सर्पों के पहचानने की विधियाँ, दूसरे में विष-सम्बन्धी ज्ञान तथा तृतीय भाग में सर्प-दंशन के पीछे विषनिवारण के उपायों का वर्णन है। यह पुस्तक का प्रथम भाग है। इसमें भारतीय सर्पों का वर्णन, वर्गीकरण तथा उनके विषैले होने अथवा न होने के पहचानने की विधि बतलाई गई है। प्रारम्भ में दो पृष्ठों पर विभिन्न प्रकार के सर्पों के केचुल-पेटियों के चित्रों से विषय को स्पष्ट किया है। पुस्तक उपयोगी है और संग्रह के योग्य है। आशा है, इसके अन्य भाग भी शीघ्र प्रकाशित होंगे।

१८—भक्तामर और भोज भूप—लेखक, श्रीयुत पीताम्बरदास गुप्त, मूल्य ॥।) है। पता—श्री पीताम्बरदास गुप्त, ठि० बाँसा, पोस्ट पथरिया (दमोह) सी० पी०।

यह एक काव्य-ग्रन्थ है। लेखक महोदय ने खड़ी बोली में जैन मुनि मानतुंग-द्वारा कवि कालिदास तथा महाराजा भोज के पराजय का वर्णन इस ग्रन्थ में किया है। कालिदास की इष्टदेवी काली को भी चक्रेश्वरी देवी ने मानतुंग मुनि की रक्षा के लिए परास्त किया और अन्त में उसने भी मानतुंग के चरणों में सिर नवाया।

रघुवंश, कुमारसम्भव आदि काव्यों के कर्त्ता कवि-कुल-चूड़ामणि कालिदास तो भोज-भूपति के समकालीन थे ही नहीं, यह एक निर्विवाद ऐतिहासिक बात है। अन्य किसी भोजकालीन कालिदास के पराजय का वर्णन यदि हो तो उससे मानतुंगमुनि की प्रतिभा का विशेष महत्त्व सिद्ध नहीं होता। कविता की दृष्टि से यह पुस्तक एक साधारण कृति है। तुकबन्दी का निर्वाह ठीक हुआ है और कथासूत्र के कारण पढ़ने में मन भी लगता है। लेखक ने अपना परिचय, अपने संरक्षक महोदय का परिचय आदि भी सब तुकबन्दी में ही दिया है। कहीं कहीं भाषा भी उखड़ी हुई तथा अनेक पदों का स्वरूप भी विकृत हो गया है। हिन्दी-भाषा-भाषी जैनभक्त इससे अपना मनोविनोद कर सकते हैं।

१९—मेरी अजमेर-मुनि-सम्मेलन-यात्रा—लेखक, श्रीमुनि फूलचन्द जैन धर्मोपदेष्टा हैं। पृष्ठ-संख्या १७५ और मूल्य २।) है। मिलने का पता—लाला शिब्बूमल, वज़ीरामल जैन, मोतीबाज़ार, मु० मालेरकोटला, स्टेट (पंजाब)।

इस पुस्तक के लेखक महोदय जैन-धर्म के उपदेशक हैं। एप्रिल मास, १९३३ में अजमेर में जो बृहत् जैन-मुनि-सम्मेलन हुआ था उसमें सम्मिलित होने के लिए आप मालेरकोटला से पैदल चल कर तथा आठ सौ इक्यानवे मील का मार्ग तय कर अजमेर पहुँचे थे। इस पुस्तक में आपने अपनी इसी यात्रा का विस्तृत विवरण दिया है तथा मुनि-सम्मेलन की कार्यवाही का सुन्दर वर्णन किया है। कहीं कहीं मार्ग में जहाँ आपको उपदेश देने का अवसर मिला है वहाँ दिये गये अपने उपदेशों का भी इसमें पूरा समावेश कर दिया है। पुस्तक में मुनि-सम्मेलन के वर्णन को पढ़कर और परस्पर ज़रा ज़रा-सी बातों पर मुनियों का मतभेद तथा समय के अपव्ययकरी निर्णयहीन विवादों को पढ़कर किसे अपने देशवासियों की प्रवृत्तियों पर दुःख हुए बिना न रहेगा। पुस्तक इस दृष्टि से रोचक है तथा सम्मेलन की कार्यवाही के विशद वर्णन के अतिरिक्त पथ के स्थानों का भी सुन्दर चित्र उपस्थित करती है। परन्तु भाषा की दृष्टि से पुस्तक सफल नहीं कही जा सकती। वाक्यों का विन्यास स्थल-स्थल पर अशुद्ध तथा उनका परस्पर सम्बन्ध शिथिल है। पुस्तक के अन्त में लेखक ने संस्कृत में जो "आक्रन्दनकाव्यम्" लिखा है उसमें उन्हें अच्छी सफलता मिली है।

२०—स्त्रियों का समानाधिकार—लेखक, श्रीयुत ब्रजकुमार शर्मा 'श्रीकर' वैद्यशास्त्री, प्रकाशक, करुणा-साहित्य मन्दिर, कर्नलगंज, प्रयाग हैं। पृष्ठ-संख्या १३६, मूल्य १।) है।

इस पुस्तक-द्वारा भारतीय नारी की वर्तमान जाग्रति, प्रगति, तथा अन्य सामयिक समस्याओं का विवेचन किया गया है। अँगरेज़ों की चलाई हुई शिक्षा-प्रणाली का परीक्षण हमारे देश के नव-युवकों पर लगभग डेढ़ सौ साल से हो रहा है और उसके प्रभाव से हमारी जाति देखने-सुनने में तो भारतीय है, किन्तु आचार-विचार तथा वेष-भूषा में पाश्चात्य बनती जा रही है। खेद की बात है कि वही शिक्षा-प्रणाली हमारे पवित्र मातृ-मन्दिर में भी घर कर गई है। पुरातन के साथ नूतन के इस संगम से विक्षोभ और उद्वेग का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। जाग्रति कही जानेवाली यह प्रगति-धारा हमें किधर ले जा रही है, इस पर देश के मनीषी विद्वान् अब विचार करने लग गये हैं। प्रस्तुत पुस्तक में भी इस पिछले प्रश्न पर प्रकाश डाला गया है। आज स्त्रियाँ देश में समानाधिकार के लिए आन्दोलन कर रही हैं। शताब्दियों के अत्याचार और विवशता की अवस्था में रहने के बाद देश का 'नारी-समाज' जागा है। उसके लिए यह क्रान्ति का अवसर है और क्रान्ति के समय उत्साह की अधिकता के कारण

औचित्य-सीमा का उल्लंघन होना स्वाभाविक है। लेखक महोदय ने न तो स्त्रियों की स्वतन्त्रता का विरोध किया है और न उनकी शिक्षा का। किन्तु वर्त्तमान नारी-जागृति में आत्म-संयम का जो अभाव, देश के उच्च आदर्शों की जो हत्या तथा पाश्चात्य देशों की भौतिक सभ्यता की ओर जो अन्धप्रवृत्ति देख पड़ती है उसी का विरोध इस पुस्तक में किया गया है। इस दृष्टि से यह पुस्तक महत्त्व की है। पुस्तक के सभी विचारों से सहमत न होते हुए भी हमें लेखक के विचारों को सहृदयता से मनन करना चाहिए।

जहाँ तक आदर्शों के उपस्थित करने का प्रश्न है, वहाँ तक लेखक अपने प्रयत्न में सफल हुए हैं। परन्तु संसार में केवल 'चाहिए' से तो काम चलता नहीं। विवेचक को उपस्थित परिस्थितियों में रचनात्मक उपाय बतलाने होंगे, तभी उसका प्रयत्न सफल कहा जा सकेगा। इस दृष्टि से पुस्तक अधूरी है। पुस्तक में व्याख्यानशैली की ज़ोरदार भाषा अवश्य है, परन्तु वस्तुतथ्य को हृदयंगम करा देनेवाली युक्तियों तथा गम्भीर अध्ययन का आभास नहीं मिलता। 'गान्धर्व-विवाह' को ही ले लीजिए। लेखक ने गान्धर्व-विवाह को सदोष कहा है। इसी लिए तो स्मृतिकारों ने गान्धर्व-विवाह को 'आसुर' विवाह के बाद स्थान दिया है मनु० [६।२१]। इसी प्रकार अविवाहित रहने के विषय में लेखक के विचार एकाङ्गीण हैं। यदि योग्य वर न मिले तो कन्या को 'आमरण' अविवाहित रहने की अनुमति शास्त्र देता है। 'सन्तान-निरोध और ब्रह्मचारिणी-जीवन' नामक शीर्षक के विचार भी इसी प्रकार के हैं। केवल गुण्डों के वासनानुरंजित नेत्रों-द्वारा स्त्रियों और युवती बालिकाओं के घूरे जाने के डर से मेलों, तमाशों और नुमाइशों में उन्हें न ले जाने की लेखक की सलाह से भी हम सहमत नहीं हैं।

सम्पूर्ण पुस्तक पढ़ने से हमारे हृदय पर यही प्रभाव पड़ा है कि लेखक को नारी-जागृति के इन सभी कार्यों में सतीत्व के नष्ट हो जाने का डर हर समय लगा हुआ है! उनकी दृष्टि इतनी आशंका-पूर्ण है कि उनके विचारों पर चलनेवाली महिला कहीं किसी स्थान पर भी शान्तचित्त नहीं हो सकती और न अपने को निरापद समझ सकती है। सतीत्व को लेकर इतना ज़ोर डाला गया है कि सम्पूर्ण पुस्तक पर इसके 'हौआ' की काली छाया दिखाई पड़ती है। इन त्रुटियों को छोड़कर पुस्तक के विचार मनन करने योग्य हैं। भाषा ज़ोरदार है और लेखक के हृदय की अनुभूति का वेग उसमें स्पष्ट दीख पड़ता है। हमें आशा है, लेखक की बातों से महिला-समाज का जहाँ एक ओर मनोरंजन होगा, वहाँ दूसरी ओर उनकी एकाङ्गीण युक्तियों का विरोध करने की इच्छा भी होगी। आशा है, नारी-समाज इस पुस्तक से लाभ उठावेगा।

२१-२२—श्री रामानन्द-ग्रन्थमाला, अयोध्या की २ पुस्तकें

(१)—श्रीवैष्णवी दीक्षा—लेखक, श्री सीतारामीय श्री मथुरादास जी। मूल्य)॥ है। सोलह पृष्ठों की इस छोटी-सी पुस्तक में वैष्णवों के तिलक, माला, छाप आदि पंच संस्कारों की शास्त्रीयता वृद्ध हारीत आदि स्मृति-वचनों से सिद्ध की है। श्री वैष्णव-सम्प्रदाय के लोगों के लिए उपयोगी है।

(२)—श्री रामानन्दसंकीर्त्तन—मूल्य -) है। इसके लेखक भी श्री मथुरादास जी ही हैं। पुस्तक में स्वामी रामानन्द जी विषयक पद तथा पद्य हैं। ये पद आर्यसमाजी ढंग की तुकबन्दियाँ हैं और सम्प्रदाय के लोगों के गाने के लिए उपयोगी हो सकते हैं। पद्य अति साधारण हैं तथा कहीं कहीं छन्दों का भी पूर्ण निर्वाह नहीं हुआ है। एक उदाहरण देखिए।

"हे नाथ! हम सब आपके श्री चरण में गिर रो रहे।
निज अश्रुजल से हे प्रभो! पदपद्म तेरे धो रहे।
एक बार करुणापूर्ण दृष्टि बालकों पर कीजिए।
दीनता लखकर हमारी अज्ञता हर लीजिए॥"

कैलाशचन्द्र शास्त्री, एम० ए०

जाग्रत नारियाँ



भारतीय स्त्रियों में आत्महत्या

लेखक, श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्म्मा

समाज के सुधार की जिस समय या जब भी कोई समस्या उपस्थित होती है तब हम ठंडे दिल से उस पर धीरे-धीरे विचार करना शुरू कर देते हैं। किन्तु हम यह नहीं सोचते कि हमारा जितना समय विचार करने में लग जाता है उतने समय में संसार का कितना बड़ा अकल्याण हो जाता है। इस छोटे से लेख में इसी प्रकार की एक ऐसी समस्या का उल्लेख करेंगे जो आज वर्षों से हमारे विचार का विषय बन रही है। किन्तु एक ओर न हमारे विचार का अंत होता है और दूसरी ओर न समस्या के विनाशकारी परिणाम में ही कोई कमी हो रही है।

विधवा-विवाह की प्रथा को प्रचलित करने के लिए बड़ी बड़ी चेष्टायें की जा रही हैं, तो भी एक हिन्दू-महिला का विधवा-विवाह उतना ही दूषित समझा जाता है, जितना अच्छा एक विधुर पुरुष का अनमेल दूसरा, तीसरा, चौथा या आठवाँ ब्याह। हज़ारों विधवायें अपने यौवन के भार को न सँभाल सकने के कारण गन्दे रास्ते पर उतर जाती हैं और हम यह देखकर केवल मुस्करा या कराह भर देते हैं। हज़ारों युवतियाँ वैधव्य की यंत्रणा भोगते-भोगते अपने छोटे-मोटे सुखों को प्राप्त करने की प्राकृतिक लालसा के कारण भ्रष्ट हो जाती हैं। कितनी ही विधर्मियों के चंगुल में फँसकर अपना धर्म और कर्म दोनों खो बैठती हैं। कितनी ही विधवायें अपने घर पर होनेवाले नित्य-प्रति के अत्याचारों से ऊब कर प्राण तक दे देती हैं और हमारा हिन्दू-समाज अपनी अन्धपरम्परा की नाक ऊँची किये हुए पैशाचिक आनन्द से उनकी नारकीय यंत्रणा का आनन्द लेता रहता है।

विवाह करने में एक वैदिक मंत्र से जन्म भर का सूत्र तो बाँध देते हैं, किन्तु यह नहीं देखते कि यह विवाह कैसा परिणाम लावेगा। यदि पुरुष ने स्त्री को पसन्द न किया या स्त्री ने पुरुष को तो दोनों के लिए जीवन कितना नरकमय हो जायगा—घुलघुलकर वे दोनों कितनी यंत्रणा भोगेंगे, इसकी ओर कौन ध्यान देता है? पुरुष में उल्लास के अनेक साधन प्राप्त करने की क्षमता है, पर स्त्री में नहीं। स्त्री के लिए दो ही साधन हैं या तो हिस्टीरिया या क्षयी का शिकार बनना या असमय में प्राण दे देना और स्त्रियाँ इन दो में से किसी एक साधन को अपनाती ही हैं। पुरुष आवारा हो तो स्त्री को उसकी आवारागर्दी से अपनी रक्षा करने का कोई

साधन नहीं है। हिन्दू-समाज में उसके पास कोई न्याय नहीं है।

बाल-विवाह के कारण विधवाओं की ही संख्या नहीं बढ़ती, किन्तु उसके कारण असामयिक गर्भाधान भी बहुत होते हैं, जिससे बहुत-सी बाल-माताओं को असमय में ही मर जाना पड़ता है। इससे एक और व्याधि पैदा हो जाती है, जिसको देश में निर्जीव सन्तानों की वृद्धि होना कहते हैं। स्त्रियों की शिक्षा का प्रबन्ध न होने के कारण वे अपने लिए सूतिका-गृह का भी प्रबन्ध नहीं कर सकतीं, और इसी लिए किसी भारतीय स्त्री का बच्चा पैदा होने के बाद जीती-जागती बच जाना एक बड़ी भारी बात समझी जाती है।

भारतीय स्त्रियों की समस्यायें हिन्दू-मुसलमान दोनों में समान रूप से बराबर हैं। विधवा-विवाह, बाल-विवाह, अनमेल-विवाह या अशिक्षा ये सब बातें मुसलमानों में हिन्दुओं से कम नहीं हैं। हिन्दू तो एक चींटी को भी मारना पाप समझते हैं, स्त्रियों की माता और अन्नपूर्णा समझ कर पूजा करते हैं। किन्तु अपने सामने खड़े खड़े स्त्रियों का भीषण संहार देखते हुए उन्हें लज्जा नहीं आती। राह चलते एक भिखारिनी को एक धेला दे देने में हमें बड़ा आनन्द होता है, पर उसके भिखारिनी बनने में हमारी कितनी बड़ी ज़िम्मेदारी है, यह सोच कर हमारा कलेजा मुँह से बाहर कभी नहीं निकल पड़ता। यह है स्वयं हम पुरुषों की मूर्खता का ज्वलन्त उदाहरण।

अब हमें यह देखना है कि हमारी इन मूर्खताओं से देश की कितनी भयङ्कर हानि हो रही है, यह तो कोई भी नहीं कहेगा कि भारत में स्त्रियाँ बहुत हैं, उन्हें छँट जाने दों, छुट्टी मिलेगी। देश का प्रत्येक बच्चा अपना अनोखा मूल्य रखता है। यदि भारत की स्त्री-जाति इसी प्रकार सड़ने दी जायगी तो उसका परिणाम बड़ा भयङ्कर होगा। आज हमारे यहाँ हर साल हज़ारों स्त्रियाँ आत्महत्या कर अपने दुखों को दूर करने की चेष्टा कर रही हैं। इसका अन्त में क्या नतीजा निकलेगा? क्या इसी तरह कुछ समय बाद हमारे समाज का आधा अंग सड़ न जायगा? और क्या इसका कारण स्त्री-समाज की दुर्दशा नहीं है?

इँग्लैंड में हर साल प्रति सौ मनुष्य पीछे यानी यदि सौ मनुष्य आत्महत्या करते हैं तो छब्बीस स्त्रियाँ आत्महत्या करती हैं। समाज का आधुनिक संगठन ही ऐसा है कि आर्थिक या अनेक कारणों से आत्महत्या कर ज़िन्दगी का झमेला निपटा लिया जाता है। सभ्यता के विकास के साथ-ही-साथ जीवन की समस्यायें भी बढ़ती जा रही हैं। इसलिए आत्महत्या का रोग भी बढ़ता जा रहा है। किन्तु जीवन के संघर्ष की ज़िम्मेदारी पुरुषों पर है। इसलिए यदि वे आत्महत्या करें तो इसमें उन्हीं का दोष है। विदेशों में फ्रांस, जर्मनी, रूस, अमरीका, इटली, आस्ट्रिया, स्पेन, स्वीडन, नार्वे, डेनमार्क, हालैंड, बेलजियम, स्विट्ज़रलैंड में सौ पुरुष आत्महत्याओं के पीछे क्रमशः इक्कीस, बीस, इक्कीस, बीस, अट्ठाइस, अठारह, उन्तीस, तेइस, चौबीस, तेइस, सोलह, पन्द्रह तथा बारह स्त्री-आत्महत्यायें होती हैं यानी औसत इक्कीस का पड़ता है। किन्तु पिछली रिपोर्टों से जहाँ तक अनुमान किया जाता है और जो अनुमान कि पूरा नहीं माना जा सकता, और संख्यायें वास्तव में धोखा भी देती हैं। फिर भी यह स्पष्ट है कि भारत में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष कम प्राण देते हैं। इँग्लैंड में जहाँ दस लाख की आबादी के पीछे एक सौ चौवन आदमी प्राण देते हैं, वहीं चौवन स्त्रियाँ प्राण देती हैं। लगभग यही औसत जर्मनी और इटली में भी है। जापान में पचास प्रतिशत पुरुष अधिक प्राण देते हैं। न्यूज़ीलैंड में तो दस लाख पीछे एक सौ बानबे आदमी आत्महत्या करते हैं और केवल छियालिस औरतें। इसी के साथ यह बात भी ध्यान में रखने की है कि विदेशों में अधिकांश पचपन और पैंसठ वर्ष की उम्र में पुरुष तथा पैंतालिस और पचपन वर्ष की उम्र में स्त्रियाँ आत्महत्या करती हैं। किन्तु विद्वानों की राय है कि जहाँ तक भारतीय स्त्रियों का सम्बन्ध है, बीस और पैंतीस वर्ष की उम्र में ही आत्महत्या कर लेती हैं। इनमें से ज़्यादातर विधवायें होती हैं।

अस्तु भारत में स्त्री और पुरुषों की आत्महत्याओं में कितनी असमानता है, इसका अनुपात आगे दी हुई तालिका से लग जायगा—

(दस लाख आबादी पीछे)

प्रांत का नाम	पुरुष	स्त्री	कुल संख्या
बंगाल	२३·६	३८·७	३१·३
पंजाब	१०·७	१५·२	१२·७
मध्यप्रांत	६४·२	७७·१	७०·५
मद्रास	६२·६	६८·५	६५·६
बम्बई	४१·७	५६·६	४७·०
अवध	३७·८	६६·१	५१·४

यह तालिका पचपन वर्ष पहले की है। किन्तु इतने दिनों के ब्रिटिश-शासन के बाद भी परिस्थिति नहीं बदली है। यह स्वयं भारत-सरकार भी अपनी रिपोर्टों में स्वीकार करती है। १९२३ में प्रकाशित होनेवाली बंगाल-पब्लिक हेल्थ रिपोर्ट में यह स्वीकार किया गया है कि—"बंगाल में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में आत्महत्यायें बहुत अधिक होती हैं। यह बात योरपीय परिस्थिति के बिलकुल प्रतिकूल है।......बंगाल में गत दस वर्षों में दश लाख पीछे छप्पन पुरुष-आत्महत्याओं का औसत था, वहीं स्त्रियों का औसत छियासी था।" १९११ में बंगाल में नौ सौ इक्यासी पुरुषों ने आत्महत्यायें कीं और एक हज़ार सात सौ इकसठ स्त्रियों ने। १९२० में एक हज़ार पाँच सौ सात पुरुषों ने आत्महत्यायें कीं और दो हज़ार-दो स्त्रियों ने। उस प्रांत में दश वर्षों में बारह हज़ार सात सौ सत्तानबे पुरुषों ने आत्महत्यायें की और उन्नीस हज़ार पचपन स्त्रियों ने। इन आत्महत्याओं के कारणों की समीक्षा करने से पता चलेगा कि पुरुष-आत्महत्याओं का कारण ग़रीबी है और स्त्री-आत्महत्याओं का कारण सामाजिक कुरीतियाँ। पंजाब में सामाजिक बंधन उतना कठोर नहीं है। इसी लिए वहाँ आत्महत्यायें बंगाल की अपेक्षा कम होती हैं। यहाँ यह भी बतला देना असंगत न होगा कि सन् १९३१ में बंगाल में पुरुष-आत्महत्याओं का औसत एक हज़ार तीन सौ तेइस था और स्त्री-आत्महत्याओं का एक हज़ार छः सौ उनतालीस।

भारतीय पब्लिक हेल्थ के डाइरेक्टर ने सन् १९२१ में प्रकाशित होनेवाली चौवनवीं रिपोर्ट में यह स्वीकार कि[...] था कि स्त्रियों की आत्महत्यायें पुरुषों की अपेक्षा ती[...] प्रतिशत अधिक थीं।

अब यहाँ एक और मार्के की बात ध्यान में रखने [...] है। भारत में क्रमशः पुरुषों की संख्या बढ़ रही है औ[...] स्त्रियों की घट रही है। सन् १९११ में जहाँ फ़ी ए[...] हज़ार मनुष्य पीछे नौ सौ पैंतालिस स्त्रियाँ थीं, व[...] १९२१ में नौ सौ बत्तीस रह गईं। १९३१ में यही संख्[...] घटकर नौ सौ चौबीस रह गई। इस प्रकार स्त्रियों [...] आबादी एक प्रतिशत घटी। किन्तु जहाँ उनकी आबा[...] पुरुषों की अपेक्षा एक प्रतिशत घटी है, वहीं बीस वर्षों [...] उनकी आत्महत्याओं के औसत में भी पाँच प्रतिशत [...] कमी हुई है। १९२१-२० में जहाँ बारह सौ अस्[...] पुरुष तथा उन्नीस सौ पाँच स्त्री-आत्महत्याओं का औस[...] था, वहीं १९२१-३० में तेरह सौ ग्यारह और अठारह [...] पचास का औसत हो गया। दूसरे शब्दों में १९११-२[...] तथा १९२१-३० के बीच फ़ी हज़ार पुरुष-आत्महत्या[...] के पीछे उन्नीस सौ पाँच तथा चौदह सौ ग्यारह स्त्री-आत्[...] हत्यायें हुईं। आत्महत्याओं की इस कमी को स्त्रियों [...] शिक्षा में कुछ वृद्धि तथा सामाजिक सुधार की कतिप[...] भावनाओं का परिणाम ही कहा जा सकता है। और इ[...] के साथ ही पुरुष-आत्महत्याओं को देश की भयंक[...] आर्थिक परिस्थिति और बेकारी का ही नतीजा क[...] जायगा।

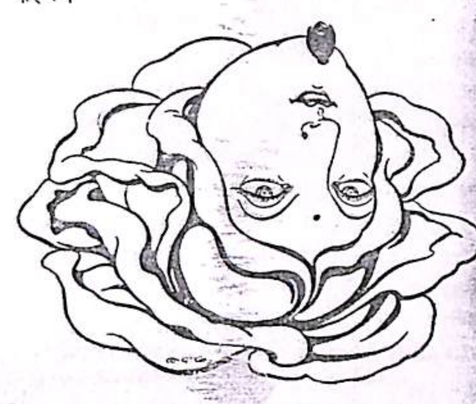
संतानोत्पत्ति तथा कुप्रथाजनित रोगों के कारण [...] स्त्री-संहार भारत में हो रहा है वह इस लेख का विष[...] नहीं है। ऊपर हमने जो आँकड़े दिये हैं वे सामाजि[...] अत्याचारों-द्वारा होनेवाले अत्याचार के परिणाम [...] बतलाने के लिए काफ़ी हैं। हमारे कुकृत्यों से पीड़ित होक[...] हर साल जो हज़ारों स्त्री-आत्महत्यायें हो रही हैं उन[...] भयंकर अभिशाप से हम कब तक अपने समाज और देश[...] की रक्षा कर सकेंगे? क्या अब भी भारतीय समाज अपन[...] आँख जल्दी नहीं खोलेगा?

कुछ इधर उधर की

जार्ज बनार्ड शा अँगरेज़ी के विख्यात नाटककार हैं। समाज की कड़ी आलोचना करने से वे कभी नहीं चूकते और हाज़िर-जवाबी उनमें इतनी है कि बड़े बड़े चलते-पुर्ज़ों को तुरन्त निरुत्तर कर देते हैं। उन्हें लाखों की आय लेखनकला से होती है। एक बार किसी ने औसत लगाया तो मालूम हुआ कि उनको एक गिनी प्रतिशब्द पड़ता है। इस पर एक महाशय ने उनके पास एक गिनी भेजी और लिखा कि मुझे एक शब्द भेज दीजिए। शा ने उनके पास तुरन्त 'धन्यवाद' लिख कर भेज दिया। एक दूसरे साहब ने कहा—"मेरी पुस्तक की भूमिका लिख दीजिए।" शा ने उत्तर दिया—"सब लोग भूमिका पढ़कर पुस्तक फेंक देंगे।" शा महाशय साम्यवादी हैं। एक सभा में आप उपदेश कर रहे थे—"संसार की सम्पत्ति में सबका बराबर हिस्सा लगना चाहिए।" इस पर एक स्त्री बोली—"नहीं, कुछ ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति जो चीज़ पैदा करे उसे वह खा सके।" शा ने तुरन्त कहा—"परन्तु मैडम, माफ़ कीजिएगा। आप जब बच्चा पैदा करेंगी तब उसको हर्गिज़ नहीं खायँगी"। बेचारी स्त्री चुप हो गई। ऐसी ही सैकड़ों घटनायें शा के जीवन में मिलती हैं। पर शा कभी नहीं हारे। हाल में होनोलूलू से समाचार आया है कि शा को एक लड़की से जीवन में प्रथम बार हार माननी पड़ी। घटना यों है। वहाँ पहुँचने पर एक लड़की ने शा महोदय का स्वागत किया और उन्हें आदरपूर्वक एक माला पहनाई। परन्तु शा ने माला को गले से उतार कर फेंक दिया और फूलों को नोच डाला। इसमें लड़की ने अपनी भारी उपेक्षा समझी और उसने गुस्से में आकर शा साहब की दाढ़ी पकड़कर खींच ली। सब दिन की कसर एक ही बार में निकल गई।

× × × ×

प्रसिद्ध चित्रकार श्रीयुत केदारनाथ शर्मा ने बिहारी के दोहों के आधार पर इधर कुछ व्यङ्ग चित्र बनाने आरम्भ किये हैं। उनमें से एक हम यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं। आपके ऐसे ही और कार्टून हम आगामी अङ्कों में प्रकाशित करेंगे।



ललित स्याम लीला ललन, चढ़ी चिबुक छबि दून।
मनु छाक्यो मधुकर परयो, मनो गुलाब प्रसून॥
'बिहारी'

× × × ×

हिज़ मेजेस्टी किंग-एडवर्ड (अष्टम) के बारे में 'कैपिटल' की 'डिचर्स डायरी' में एक टिप्पणी प्रकाशित हुई है, जो उनके महान् व्यक्तित्व को बहुतेरे समाचारपत्रों में प्रकाशित लम्बे लम्बे लेखों के मुक़ाबिले में कहीं अधिक अच्छी तरह स्पष्ट करती है। टिप्पणी यों है —

"प्रिन्स आफ़ वेल्स से अब से १३ वर्ष पूर्व पूछा गया कि क्या आप एक प्राइवेट अस्पताल में पड़े युद्ध के ३६ घायलों को देखना पसन्द करेंगे? वे घायल इतना अङ्गहीन और विकृत हो गये थे कि उनके बारे में अनुमान किया जाता था कि वे कदाचित् ही अस्पताल के बाहर निकल सकेंगे। प्रिंस उन्हें देखने के लिए तैयार हो गये। घायलों को देख चुकने पर जब वे अस्पताल के बाहर निकलने लगे तब एकाएक दरवाज़े पर रुक कर बोले—"मुझसे कहा गया था कि यहाँ ३६ घायल हैं। पर मैंने २६ ही देखे। बाक़ी ७ कहाँ हैं?" इसके उत्तर में उनसे कहा गया कि वे सातों ही अङ्गहीन और विकृत-काय हो गये हैं कि वहाँ आप जानबूझ कर नहीं ले जाये गये। प्रिन्स ने पूछा—"मेरे खयाल से या उनके।" उत्तर मिला—"आपके"। इस पर इन्होंने तुरन्त उन्हें देखने की ज़िद की। वे वहाँ ले जाये गये। प्रत्येक के बिस्तर के पास स्वयं जा-जाकर उन्होंने उनसे प्रेमपूर्वक बातें कीं और देश के लिए यह कष्ट सहने के कारण उन्हें धन्यवाद दिया। जब वहाँ से चलने लगे तब उन्हें मालूम हुआ कि एक घायल अभी देखने को रह गया है। "अभी एक घायल छूट रहा है?" प्रिन्स ने पूछा। उत्तर मिला—"हुज़ूर, वह बहुत ही विकृत हो गया है। उसकी दोनों आँखें ग़ायब हैं। मुँह बेकाम हो गया है। न बोल सकता है, न सुन सकता है। उसे देखना फ़िज़ूल है।" पर प्रिन्स का हठ कम न हुआ। वे उस कमरे में भी ले जाये गये। वह बड़ा ही करुण दृश्य था। प्रिन्स का चेहरा सफ़ेद पड़ गया। उन्होंने युद्ध की उस अन्तिम कृति के सिर झुकाया और झुककर उसका माथा चूमा। इसी एक महत्त्व के कार्य्य से यह प्रकट हो जाता है कि सम्राट् एडवर्ड जिस राजगद्दी पर आज विराज रहे हैं उसके लिए वे कितने उपयुक्त हैं?

× × × ×

भारतवर्ष में ही ज्योतिषियों का ज़ोर हो सो बात नहीं, आपको भविष्य की बातें बतलानेवाले समस्त संसार में मिलेंगे। परन्तु कभी कभी ये ज्योतिषी लोग ऐसी भविष्य-वाणी कर बैठते हैं, जिससे हज़ारों आदमियों को व्यर्थ की मुसीबत उठानी पड़ती है। कई वर्ष पहले की बात है, एक पाश्चात्य ज्योतिषी ने यह भविष्यवाणी की कि अमुक तारीख़ को पृथ्वी से एक ग्रह की टक्कर होगी, जिसके फलस्वरूप पृथ्वी बुरी तरह टूट-फूट जायगी और सर्वत्र पानी भर जायगा। उस विपत्ति से बचने के लिए जहाँ भविष्यवाणी की गई थी, वहाँ के लोग अपना गाँव, घर और शहर छोड़ कर पास के एक पहाड़ पर चढ़ गये और कई दिन तक वहीं बैठे रहे ताकि बाढ़ आने पर डूबने से बच जायँ। वैसी ही एक भविष्यवाणी एक ज्योतिषी महाशय ने हाल में हिन्दी के समाचारपत्रों में छपवाई कि ३ मार्च को साढ़े पाँच बजे भीषण भूकम्प आवेगा। इस भूकम्प से नष्ट होनेवाले शहरों की सूची में कलकत्ता भी था। बस, कलकत्ते के धनी-मानी लोग अपना अपना सोना और हीरा-जवाहर भूकम्प का धक्का सह सकनेवाले बैंकों में जमा करके कलकत्ते से भाग निकले। कहते हैं, हावड़ा स्टेशन पर इतनी भीड़ हुई कि जान पड़ा जैसे पूजा की छुट्टियाँ आ गई हों। ख़ैर, यह प्रसन्नता की बात है कि यह भविष्यवाणी भी झूठी निकली और कलकत्ता बच गया। आशा है, जो लोग अपनी जान लेकर भाग निकले थे वे अब वापस आ गये होंगे और सोच रहे होंगे कि ज्योतिषी जी ने खूब छकाया।

× × × ×

इटली और अबीसीनिया के युद्ध पर अग्रलेख लिखते हुए बम्बई के 'अखण्डभारत' ने मारवाड़ी-भाषा की एक बड़ी ही मज़ेदार कहानी उद्धृत की है। 'अखण्डभारत' का खयाल है कि इटली युद्ध से अब थक गया है। उसके समान अस्त्र-शस्त्र से लैस न होने पर भी अबीसीनिया ने उसके दाँत खट्टे कर दिये हैं। इसलिए वह चाहता है कि कोई ज़बरदस्ती बीच में पड़कर सन्धि करा दे। इटली की इस मनोवृत्ति की तुलना लेखक ने घर से रूठ कर बाहर जा बैठनेवाली एक बहू से की है, जिसको कोई मनाने नहीं गया। तब वह लाचार होकर एक भैंस की दुम पकड़ कर स्वयं भीतर चली आई और भैंस से यह कहा—

सासू जी का पाडी जी,
मती लिजाओ माडी जी।

अर्थात् हे सास की भैंस ! मुझे ज़बर्दस्ती अन्दर मत ले चल। यह मिसाल यहाँ बहुत फ़िट नहीं बैठी, क्योंकि लेखक ने स्वयं भी यह मंज़ूर किया है कि इटली अभी मग़रूर बना बैठा है और उसकी युद्ध की भूख अभी मिटी नहीं है, फिर इधर उसकी विजय भी मार्के की हुई है। अवसर के उपयुक्त भले ही न हो, यह बात मनोरञ्जक ज़रूर है।

× × × ×

बिहार के कुछ लेखकों और कवियों को एक नई धुन सवार हुई है। उन्हें जान पड़ता है, जैसे चारों ओर उनकी उपेक्षा हो रही है। उस दिन एक बिहारी सज्जन कहने लगे कि साहब, रेलवे-स्टेशन पर टिकट लेने जायँ वहाँ भी आप देखेंगे कि नालायक टिकट बाबू पहले अन्य प्रान्तवालों को टिकट दे लेता है तब बिहारियों की ओर देखता है, और तब तक गाड़ी छूट जाती है। बेशक यह बड़े ही परिताप की बात है। साहित्य-सेवियों के बारे में कहा जाता है कि वे उदार होते हैं, पर पूर्णिया के बिहार-प्रान्तीय-सम्मेलन में स्वीकृत हुए एक प्रस्ताव से यह मालूम हुआ है कि अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्थायी समिति में कोई बिहारी नहीं है। इस प्रस्ताव में सम्मेलन को धमकी दी गई है कि यदि उसका यही रुख रहेगा तो बिहार उससे सम्बन्ध-विच्छेद कर लेगा। यह ठीक है। पर एक दूसरा प्रस्ताव इस आशय का भी पास होना चाहिए था कि राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसाद जो सम्मेलन की स्थायी समिति में हैं, अब बिहारी न माने जायँ, क्योंकि इसके बिना पहला प्रस्ताव बे-बुनियाद प्रतीत होगा।

× × × ×

व्यङ्ग-विनोद

चित्रकार—
श्रीयुत केदारनाथ शर्मा



लड़के कालिज के बजाने लगे सारंगी ※ लड़कियों में हुई पैदा जो इधर नाच की धुन।
"बिस्मिल" इलाहाबादी



मुग़ल-ललना

शाहजहाँ के शासन-काल के आरम्भ में मुग़ल-चित्रकला अपनी परमोन्नति की स्थिति में पहुँच गई थी। यह चित्र तभी का है और शाही वैभव का एक उज्ज्वल उदाहरण है।

[श्रीयुत एन० सी० मेहता आई० सी० एस० के सौजन्य से

चिट्ठी-पत्री

१—नाम की प्यास

जनवरी की 'सरस्वती' में 'नाम की प्यास' नामक मेरी कविता छपी है और उसमें एक जगह 'तोत' शब्द का व्यवहार हुआ है। मार्च की संख्या में श्रीयुत कृपानाथ जी भगोले मुझसे इसका आशय पूछते हैं।

यह शब्द स्रोत के मुक़ाबिले में तुक बैठाने के लिए है, इसे स्वीकार करने में मुझे आपत्ति नहीं है। सम्बन्धित कविता की प्रत्येक पंक्ति के अन्त में जितने शब्द आये हैं उन सबके लिए भी मैं यही बात कह सकता हूँ। परन्तु इस शब्द का कोई अर्थ न हो, ऐसा नहीं है। किसी को धोखा देने के लिए झूठे दिखावे या वाग्जाल को तोत कहते हैं। हो सकता है, इस शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'त्रोटक' शब्द से हुई हो, जो नाटक का प्रकार विशेष है। "वहाँ न राजा था, न राजभवन और न रानी, वह तो त्रोटक था, शुरू से अख़ीर तक कोरी बनावट"—इस तरह के प्रयोग में प्रयुक्त हो होकर 'त्रोटक' का 'तोत' हो जाना आसान बात है। 'हिन्दी-शब्दसागर' में इस शब्द का अर्थ खेल लिखा है। इससे भी इस अनुमान का आंशिक समर्थन होता है।

कोई कोई इसे तुच्छ शब्द का तद्भव मानते हैं। कुछ हो, हमारा काम तो इतने में ही निकल जाता है कि आज के दिन इसका अर्थ क्या है।

परन्तु कदाचित् प्रश्नकर्ता महोदय केवल इतना ही नहीं जानना चाहते हैं। उनका आशय यह भी हो सकता है कि ऐसे 'प्रान्तिक' शब्द लिखने से क्या लाभ, जिन्हें समझने के लिए तीन तीन मील जाकर कोश देखना पड़े और अर्थ का फिर भी कुछ बोध न हो।

इस तरह के कष्ट के लिए खेद का अनुभव करके भी मैं ऐसे प्रान्तिक शब्दों के व्यवहार के पक्ष में ही हूँ। इन शब्दों के लिए हमारा सबसे बड़ा ग्रन्थ कोश भी यदि हमारी यथेष्ट सहायता नहीं करता तो समझना चाहिए कि कोश के निर्माण का कार्य अभी तक हम पूर्णतया सम्पन्न नहीं कर पाये हैं। जिन शब्दों को प्रान्तिक समझ कर हम अछूत समझे हुए हैं उनमें से अनेक बँगला, मराठी, और गुजराती आदि में नाममात्र के भेद से प्रचलित हैं। ऐसे शब्दों को अपनाकर हम अपनी भाषा को और भी व्यापक क्यों न बना लें?

तोत शब्द का व्यवहार अपने प्रतिदिन के अभ्यास के कारण मुझसे स्वतः हो गया था। श्री कृपानाथ जी की जिज्ञासा के बाद यह जानने के लिए कि यह शब्द अन्य प्रान्तीय भाषाओं में है या नहीं, मैंने आर्य-भूषण-प्रेस का मराठी-अँगरेज़ी-कोश देखा। 'तोतया' नामक शब्द का अर्थ उसमें इस प्रकार लिखा है—An imposture, fabrication, a fictitious story or statement इत्यादि। यह अर्थ मेरे शब्द से मेल खा जाता है। बाद में मैंने आदरणीय मुंशी श्रीअजमेरी जी से पूछा तब मालूम हुआ कि तोत शब्द इसी अर्थ में मारवाड़ में भी प्रचलित है।

आज जब कि हिन्दी को राष्ट्रीय बनाने के लिए कुछ लोग यहाँ तक चाहते हैं कि 'सन्ध्या का समय था' इस वाक्य को 'शाम का वक्त था', इस तरह लिखो, तब आशा है, किसी को एक ऐसे शब्द के व्यवहार के लिए भी आपत्ति न होनी चाहिए जिसके प्रसार का पता बुन्देलखंड से लेकर मारवाड़ और महाराष्ट्र तक जाना जा चुका है।

—सियारामशरण गुप्त, चिरगाँव

२—शांति के मरण-जन्म में सन्देह

वर्तमान विक्रम संवत् १९९२ के फाल्गुन की 'सरस्वती' में दिल्ली की कुमारी शांतिदेवी का हाल प्रामाणिक रूप में प्रकाशित हुआ है। इस भाग्यशीला बालिका ने अपने पूर्वजन्म के पति, पुत्र, माँ, बाप और

घरबार तक को पहचाना है और उनकी पूर्वजन्म की बातों को सही सही कहा है। हिन्दी,-अँगरेज़ी और उर्दू के दैनिक, साप्ताहिक या मासिक-पत्रों में शांतिसम्बन्धी काफ़ी चर्चा हो चुकी है, अतः अब उसे दुहराने की ज़रूरत नहीं। ज़रूरत सिर्फ़ उस बात के लिखने की है जिसके कारण हम चकित हुए हैं। हमारा भ्रम है या सत्य सन्देह, यह विशेषज्ञ ही बतलावेंगे।

'सरस्वती' में केदारनाथ चौबे की पहली स्त्री (इसी शांति) की मरण-तिथि ४ अक्टूबर सन् १९२५ और केदार को पूर्व-जन्म का पति बतलानेवाली शांति की जन्म-तिथि ११ दिसम्बर सन् १९२५ है। अर्थात् वर्तमान शांति अपने पूर्वमरण के पैंसठ दिन पीछे पैदा हुई है।

(१) वेद-वेदान्त और उपनिषदादि में लिखा है कि मनुष्य मरते ही इस देह को छोड़कर दूसरी देह में चला जाता है। गीता आदि के अनुसार वह फटे हुए कपड़े को बदल कर नवीन पहन लेने की तरह एक देह को छोड़ कर दूसरी में तत्काल चला जाता है। (२) आयुर्वेद के प्रत्यक्ष प्रमाण और गर्भाधानविधान से सूचित होता है कि प्रवाह वायु से प्रेरित हुआ (गतप्राण प्राणी का) प्राणवायु प्रेमाकुल पति के श्वासोच्छ्वास में प्रविष्ट होकर वीर्यग्राही जाया के गर्भस्थल में स्थित होता है, और गर्भाधान के प्रथम महीने से लेकर नौ महीने तक उसमें कलल (कीचड़), घन (जीव ग्रन्थ), अंकुर (अंग-तंतु) और अस्थि (हाड़) आदि यथाक्रम बनते हैं। (३) शास्त्र में लिखा है और प्रत्यक्ष भी देखा जाता है कि पाँच महीने के गर्भ का बालक वहीं चलने-फिरने और गर्भवती के खान-पान आदि से पोषित होने लग जाता है। (४) संस्कार-भास्कर आदि कर्मकाण्ड के ग्रन्थों में गर्भवती के प्रथम गर्भ का पाँचवें महीने में पुंसवन-संस्कार किया जाता है, जिसके द्वारा मौजूदा गर्भ को मनचाही संतान (पुत्र या कन्या) के रूप में बदल देने की वैज्ञानिक क्रिया की जाती है। (५) धर्मशास्त्रों से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि गर्भ की असह्य पीड़ाओं से परित्राण पाने के लिए गर्भगत बालक भगवान् की विनम्रभाव से स्तुति किया करता है। (६) हिन्दू-शास्त्र मानते हैं और डाक्टरों का भी मत है कि गर्भाधान के समय स्त्री के गर्भस्थल में पुरुष के कई एक जंतु प्रेमोन्मत्तता के साथ अन्तःप्रविष्ट होते हैं। और उन्हीं में 'कललघनांकुरास्थि' आदि का ९ महीने में यथाक्रम निर्माण होकर सब कुछ जानने-वाले ब्रह्मनिष्ट बालक का जन्म होता है। अथवा 'आत्मा वै जायते पुत्रः' बन जाता है। (७) सुश्रुत और वराहमिहिर का कथन है कि गर्भ को सातवें महीने में चेतन-शक्ति मिल जाती है।

इन सब सच्चे सिद्धांतों के होते हुए कैसे कहा जा सकता है कि कुमारी शांति मरने के सिर्फ़ पैंसठ दिन पीछे ही फिर प्रकट हो गई। यदि ऊपर बतलाये हुए सिद्धांत सत्य हैं तो कुमारी शांति नौ के बदले दो ही महीने में पुनर्जन्म नहीं पा सकती। अतः पूर्व-जन्म की वर्तमान शांति (जिसे केदार चौबे की पहली स्त्री अनुमान करते हैं) तारीख ४-१०-२५ को मरने और तारीख ११-१२-२५ को जन्म लेने के बदले या तो १-३-२५ को मरी और ११-१२-२५ को पैदा हुई या ४-१०-२५ को मरी और ६-७-२६ को पैदा हुई। (स्मरण रहे इन तारीखों में ५-४ दिन का फ़र्क़ हो सकता है जो दुर्बोध्य है)। इसके विपरीत 'सरस्वती' में सूचित की गई तारीखों में शान्ति का मरना और जन्म लेना सृष्टिक्रम और शास्त्र दोनों के विरुद्ध है।

संभव है, मेरे निवेदन पर कोई सज्जन पुनर्जन्म की बात का पुनर्विचार करते समय सुश्रुत और वराहमिहिर के सातवें महीने की चेतना को चित्त में रखकर उसी अवसर की ४-१०-२५ और ११-१२-२५ को शांति का मरण-जन्म यथा समय मान लें, किन्तु सुश्रुत और वराह-मिहिर की यह चेतना गर्भस्थ बालक के जीवन आरम्भ की नहीं है। यह तो उसकी चैतन्य अवस्था सूचित करने-वाली है, यदि इस चेतना को जीव का आना मान लिया जाय तो ऊपर के सब सिद्धांत शिथिल हो जाते हैं और सातवें महीने तक गर्भगत बालक को निर्जीव (या सूखे गर्भ का) मानना पड़ता है, जो सर्वथा असंगत है।

—हनूमान शर्मा, चौमूं

सामयिक साहित्य

महात्मा गान्धी और श्रीमती सेंगर

हाल में अमरीका की व्याख्यान-विशारदा तथा लेखिका मिसेज़ मार्गरेट सेंगर भारत पधारी थीं। आपने भारत के प्रायः सभी बड़े शहरों में जाकर स्त्रियों की सभाओं में उन्हें सन्तान-निग्रह की आवश्यकता बताई और इसके लिए अमरीका में प्रचलित कृत्रिम साधनों की ओर संकेत किया। इस सिलसिले में आप महात्मा जी से भी मिलीं और चाहा कि वे भी उनके पक्ष का समर्थन करें ताकि उन्हें अपने प्रचार-कार्य्य में सहायता मिले। पर महात्मा जी तो संयम के हामी ठहरे। वे उनके अनुकूल मत न दे सके। तब श्रीमती जी ने यह कहना शुरू किया कि महात्मा जी को स्त्रियों की मनोवृत्ति का कुछ ज्ञान ही नहीं है। ख़ैर, मिसेज़ सेंगर और महात्मा जी के इस वाद-विवाद को लेकर श्री महादेव देसाई ने 'हरिजन-सेवक' में एक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित कराया है, जिससे यह प्रकट होता है कि यह संतति-निग्रह का आन्दोलन भी गोरी जातियों के हित के ही लिए भारत में चलाया जा रहा है। यह बात लेख के निम्न उद्धरणों से स्पष्ट हो जायगी—

हमारे देश पर विदेशियों के अनेक आक्रमण हुए हैं, पर विदेशी जातियों के आक्रमणों की अपेक्षा विदेशी सुधारों के आक्रमण अधिक प्रबल हैं, और चूँकि वे अनेक मोहक आकर्षणों से भरे हुए हैं इसलिए उनका मुक़ाबिला करना कठिन है। नई सभ्यता के इन मोहक स्वरूपों में सबसे अन्तिम स्वरूप सन्तति-निग्रह का है। पिछले दस-पन्द्रह वर्ष से इस विषय का ढेरों साहित्य हमारे यहाँ आने लगा है, और अब तो हमारे देश के उद्धारार्थ सन्तति-निग्रह के प्रचारक—अथवा प्रचारिकायें भी आने लगी हैं। गत वर्ष इँगलैंड से हाउ मार्टन नाम की एक महिला आई थीं, और उन्होंने अखिल भारतीय महिला-परिषद् पर अपना प्रभाव डाला था, और कुछ शहरों में घूम घूम कर इस विषय पर भाषण भी किये थे। इस साल इन महिला के अलावा अमेरिका की धुरन्धर व्याख्यान-विशारदा तथा लेखिका मिसेज़ मार्गरेट सेंगर भी पधारी थीं, और इन दोनों महिलाओं ने अखिल भारतीय महिला-परिषद् में जा कर सन्तति-निग्रह के पक्ष में प्रस्ताव पास कराया। अभी अगले वर्ष भी इन लोगों की चढ़ाई होनी है। और इस चढ़ाई का हेतु है हमारे देश की स्त्रियों का उद्धार! इसकी ज़रा बारीकी से जाँच-पड़ताल करने की ज़रूरत है।

× × × ×

श्रीमती मार्गरेट सेंगर अभी थोड़े ही समय पहले गांधी जी से वर्धा में मिली थीं। गांधी जी ने उन्हें अच्छी तरह समय दिया था। भारतवर्ष छोड़ने के पहले उन्होंने 'इलस्ट्रेटेड वीकली' में एक लेख लिखा है, जिसमें यह दिखाया गया है कि गांधी जी के साथ उनकी जो बातचीत हुई उससे उन्हें कितना थोड़ा लाभ प्राप्त हुआ है। गांधी जी से वह मार्ग-दर्शन प्राप्त करने के लिए आई थीं। "अगणित लोग आपको पूजते हैं, आपकी आज्ञा पर चलते हैं, फिर उनसे आप इस सम्बन्ध में क्यों नहीं कहते? उनके लिए आप कोई ऐसा मंत्र क्यों नहीं देते जिससे वे सन्मार्ग पर चलना सीखें?"—यह वे चाहती थीं। "देश के लाखों स्त्री-पुरुषों का हित आपने किया है तो फिर इस विषय में भी आप कुछ कीजिए।" यह उनकी माँग थी। पहले दिन अच्छी तरह बात करने के बाद जब वे तृप्त नहीं हुईं तब दूसरे दिन भी उन्होंने उतनी ही देर तक बातें

कीं। अब वे अपने लेख में यह लिखती हैं कि गांधी जी को तो भारत की महिलाओं का कुछ ज्ञान ही नहीं, बल्कि उन्हें महिलाओं के मन का ही कुछ पता नहीं, क्योंकि उन्होंने तो सारी बातचीत में दो ऐसी बेहूदी बातें कहीं कि उनसे उनका अज्ञान प्रकट हो गया। गांधी जी ने इस बातचीत में अपनी आत्मा निचोड़ दी थी, अपनी आत्म-कथा के कितने ही प्रकरण हृदयंगम भाषा में बताये थे, किन्तु उन सबका मथितार्थ इस महिला ने यह निकाला कि गांधी जी को स्त्रियों की मनोवृत्ति का कुछ ज्ञान ही नहीं!

गांधी जी से श्रीमती सेंगर स्त्रियों के लिए एक उद्धारक मंत्र लेना चाहती थीं, और वह मंत्र उन्हें मिला। पर वे तो असल में यह चाहती थीं कि उनके अपने मंत्र पर गांधी जी मोहर लगा दें। इसलिए वह सुवर्ण-मन्त्र उन्हें दो कौड़ी का मालूम हुआ। उन्हें भले ही वह दो कौड़ी का मालूम हुआ हो, पर भारत की स्त्रियों को वह मंत्र देना ज़रूरी है, उन्हें वह कौड़ी मोल का नहीं जँचेगा। गांधी जी ने तो उनसे बार-बार विनय करके यह भी कहा था कि मुझसे आपको एक ही बात मिल सकती है, मेरे और आपके तत्त्वज्ञान में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। इन सब बातों को उस समय तो उन्होंने अच्छा महत्त्व दिया, पर खुद उन्होंने जो लेख प्रकाशित कराया है उसमें उन्हें ज़रा भी महत्त्व नहीं दिया।

× × × ×

गांधी जी ने तो पीड़ित स्त्रियों के लिए वह सुवर्ण-मंत्र दिया था कि—"मैंने तो अपनी स्त्री के गज़ से ही तमाम स्त्रियों का माप निकाला है। दक्षिण अफ़्रीका में अनेक बहनों से मैं मिला—योरपीय और भारतीय दोनों से ही। भारतीय स्त्रियों से तो मैं सभी से मिल चुका था, ऐसा कहा जा सकता है, क्योंकि उनसे मैंने काम लिया था। सभी से मैं तो डुग्गी पीट-पीट कर कहता था कि तुम अपने शरीर की—आत्मा की तरह शरीर की भी—स्वामिनी हो, तुम्हें किसी के वश में होकर नहीं बरतना है, तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध तुम्हारे माता-पिता या तुम्हारा पति तुम से कुछ नहीं करा सकता। लेकिन बहुत-सी बहनें अपने पति से 'ना' नहीं कह सकतीं। इसमें उनका दोष नहीं। पुरुषों ने उन्हें गिराया है, पुरुषों ने उनके पतन के लिए अनेक तरह के जाल रचे हैं और उन्हें बाँधने की जंज़ीर को भी उन्होंने सोने की जंज़ीर का नाम दे रक्खा है। इसलिए वे बेचारी पुरुष की ओर आकर्षित हो गई हैं। मगर मेरे पास तो एक ही सुवर्ण-मार्ग है, और वह यह है कि वे पुरुषों का प्रतिरोध करें। यह वे उन्हें साफ़-साफ़ बतला दें कि उनकी इच्छा के विरुद्ध पुरुष उनके ऊपर संतति का भार डाल ही नहीं सकते। इस प्रकार का प्रतिरोध कराने में अपने जीवन के शेष वर्ष यदि मैं ख़र्च कर सकूँ तो फिर संतति-निग्रह जैसी बात का कोई प्रश्न ही नहीं रहता। ....यहाँ हिन्दुस्तान तो संतति......... मैंने तो अपने निजी संपर्क में आई हुई अनेक स्त्रियों को यह प्रतिरोध की कला सिखाई है। असल प्रश्न तो यह है कि अनेक स्त्रियाँ यह प्रतिरोध करना ही नहीं चाहतीं......मेरा तो यह विश्वास है कि ६६ प्रतिशत स्त्रियाँ बिना किसी कटुता के अपने प्रेम से ही पतियों से यह प्रार्थना कर सकती हैं। यह चीज़ असल में उन्हें सिखाई नहीं गई; न माता-पिता ने ही सिखाई, न समाज-सुधारकों ने ही। तो भी कुछ पिता ऐसे देखे हैं जिन्होंने अपने दामाद से यह बात कही है, और कुछ अच्छे पति भी देखने में आये हैं जिन्होंने अपनी स्त्री की रक्षा की है। मेरी तो सौ बात की एक बात है कि स्त्रियों को प्रतिरोध का जो जन्मसिद्ध अधिकार है, उसका उन्हें निर्बाध रीति से उपयोग करना चाहिए।"

× × × ×

मगर यह बात श्रीमती सेंगर को बेहूदी-सी मालूम हुई। गांधी जी के आगे तो उन्होंने नहीं कहा, पर अपने लेख में वे कहती हैं कि इस सारी बात से गांधी जी का अज्ञान ही प्रकट होता है; क्योंकि स्त्रियों में इस तरह का प्रतिरोध करने की शक्ति ही नहीं। आज स्त्रियाँ यह प्रतिरोध नहीं करती हैं, यह तो गान्धी जी भी खुद मानते हैं, पर उनका कहना यह है कि प्रत्येक शुद्ध सुधारक का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह स्त्रियों को इस तरह का प्रतिरोध करने की शिक्षा दे। क्रोध, द्वेष और हिंसा की दावाग्नि महात्मा ईसा के ज़माने में भी सुलग रही थी, किन्तु उन्होंने उपदेश किया प्रेम का, अहिंसा का। उस उपदेश का पालन आज भी कम ही होता है, पर इससे यह कोई नहीं कहता कि महात्मा ईसा को मानव-समाज का ज्ञान नहीं था।

श्रीमती सेंगर बम्बई की चालियों में कुछ स्त्रियों से मिलकर आई थीं, और कहती थीं कि उन स्त्रियों के साथ बात करने पर उन्हें ऐसा लगा कि उन स्त्रियों को यदि संतति-निग्रह के साधन प्राप्त हो जायँ तो उन्हें बड़ी खुशी हो। ईश्वर जाने वे वहाँ किस चाली में गई थीं, और गांधी जी ने तो उनसे यह कहा कि "हिन्दुस्तान के गाँवों में आप जायँ तो आपके संतति-निग्रह के इन उपायों की वे लोग बात भी सहन नहीं करेंगी। आज इनी-गिनी पढ़ी लिखी स्त्रियों को आप भले ही बहका सकें, पर इससे आप यह न मान लें कि हिन्दुस्तान की स्त्रियों की ऐसी मनोवृत्ति है।"

× × × ×

फिर श्रीमती सेंगर तो ऐसे दुखियों की दुःख-भञ्जक ही ठहरीं। ऐसे दुखियों का मोक्ष-साधन संतति-निग्रह के सिवा और क्या हो सकता है! मैं यह कटाक्ष नहीं कर रहा हूँ। श्रीमती सेंगर ने अमरीका में सर्वधर्म-परिषद् के आगे जो भाषण किया था उसमें उन्होंने संतति-निग्रह को मोक्ष-साधन का रूप दिया है। उस भाषण में उन्होंने न तो संयम की बात की है, न केवल विवाहित दंपतियों की, वहाँ तो उन्होंने बात की है उस अमरीका की, जहाँ हर-साल २० लाख भ्रूणहत्यायें होती हैं! इतनी बाल-हत्यायें रोकने के लिए संतति-निग्रह के साधनों के सिवा दूसरा उपाय ही क्या? पर अभी ज़रा और आगे बढ़ें तो कुछ दूसरी ही बात मालूम होगी, और वह यह कि इन विदेशी प्रचारिकाओं की चढ़ाई भारत की स्त्रियों के हितार्थ नहीं, किन्तु दूसरे ही हेतु से हो रही है। अमरीका के उस भाषण में ही उन्होंने स्पष्ट रीति से कहा था कि—"जापान की आबादी कितनी बढ़ रही है! वहाँ तो जन-वृद्धि की मात्रा पहले ही चढ़ी-बढ़ी थी, और अब तो वह उसे भी पार कर रही है। इसी तरह अगर यह बढ़ती गई तो इस एशिया के राष्ट्रों का त्रास पृथिवी कैसे सहन कर सकेगी! राष्ट्रसंघ को इसके विरुद्ध कोई ज़बर्दस्त प्रतिबन्ध लगाना ही पड़ेगा। अपनी इतनी बड़ी प्रजा के लिए खाने की तङ्गी होने से जापान को और भी देशों की ज़रूरत होगी, और भी मंडियाँ चाहनी पड़ेंगी, इसी से वह पवित्र संधियों को भङ्ग कर रहा है, और विश्वव्यापी युद्ध का बीज बो रहा है।" जापान आज जिस अप्रिय रीति से पेश आ रहा है उसे देखते हुए तो जापान का यह उदाहरण चतुराई से भरा हुआ उदाहरण है, पर श्रीमती सेंगर को तो इस डर का चीपा (भयंकर स्वप्न) दबा रहा है कि संतति-निग्रह न करनेवाले एशियाई राष्ट्र योरपीय प्रजा के लिए खतरनाक हो सकते हैं! ऐसे जन-हितैषियों की चढ़ाई से हम जितनी ही जल्दी सजग हो जायँ उतना ही अच्छा।

नासिक में दलितों को मंत्र-दीक्षा

बनारस के बाद कट्टरता का केन्द्र नासिक है। वहाँ दलितों के साथ उच्च वर्ण के हिन्दुओं का व्यवहार इतना बुरा है कि डाक्टर अम्बेदकर के नेतृत्व में वहाँ के दलितों ने एक सभा करके हिन्दूधर्म ही छोड़ देने का प्रस्ताव पास किया है। इतना ही नहीं, उन्होंने क्रोधावेश में हिन्दूधर्म-ग्रन्थ भी जला डाले हैं। ऐसी स्थिति में पूज्य मालवीय जी का नासिक जाना स्वाभाविक ही था। आप अस्वस्थ होते हुए भी वहाँ गये और लगभग १५० दलितों को आपने मंत्र-दीक्षा दी। इस पर वहाँ के कट्टरपंथी आप पर बहुत बिगड़े। इस सम्बन्ध में सहयोगी 'वर्तमान' ने एक अग्रलेख प्रकाशित किया है जिसके कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

जब से डा० अम्बेदकर ने दलितों के धर्मपरिवर्तन का प्रश्न उठाया है, तब से दलितों की समस्या उग्र रूप में हिन्दुओं के सामने आई है। जो इस मरणासन्न हिन्दू-जाति को उठाना चाहते हैं, जिनके हृदय में हिन्दूत्व के लिए श्रद्धा है, जो यह नहीं चाहते कि हिन्दू-जाति भी नामशेष हो जाय, ऐसे व्यक्ति दलितोद्धार के लिए कृत-परिकर हैं। इधर जगद्गुरु शंकराचार्य कुर्तकोटि तथा

महामना मालवीय ने दलितों के सम्बन्ध में सनातनी हिन्दुओं के सामने नया आदर्श रक्खा है। वे यह चाहते हैं कि दलित भी हिन्दू-समाज का अङ्ग बने रहें। हिन्दू-जाति के लिए वह दिन दुर्दिन होगा, जिस दिन दलितों ने सामूहिक धर्म-परिवर्तन कर लिया।

भारत में कई स्थान कट्टरता के गढ़ माने जाते हैं। बनारस कट्टरता का गढ़ है। नासिक भी कट्टरपंथियों का केन्द्र है। नासिक में बहुत दिनों से दलितों और सवर्ण हिन्दुओं में वैमनस्य चला आ रहा है। मालवीय जी ने इसी प्रश्न को सुलझाने के लिए नासिक की यात्रा की थी। उनके साथ में एक विद्वन्मण्डली भी थी। इस विद्वन्मण्डली को मालवीय जी ने इस कारण अपने साथ रक्खा कि यदि कट्टरपन्थियों के साथ शास्त्रार्थ करने का कोई अवसर आ जाय तो वे उनको मुँहतोड़ जवाब दे सकें। मालवीय जी की यात्रा का उद्देश सर्वथा स्तुत्य था। और वहाँ पर जिस धूमधाम के साथ मालवीय जी का स्वागत हुआ उससे यह मालूम होता है कि जनता मालवीय जी के साथ थी। स्वागत करनेवालों में सनातनी हिन्दू तथा दलित सभी थे। मालवीय जी ने जहाँ जहाँ भाषण दिये, वहाँ हज़ारों की भीड़ होती थी। पर कट्टरपन्थियों को यह अच्छा न लगा। उन्होंने महामना के मार्ग में रोड़े अटकाये। इस प्रवृत्ति की जितनी निन्दा की जाय, थोड़ी है।

मालवीय जी ने दलितोद्धार का काम प्रारम्भ किया है। कट्टरपन्थी उनके मार्ग में बाधक बन रहे हैं। पर वे अपना कार्य तब तक न छोड़ेंगे, जब तक उन्हें सफलता न मिल जायगी। उन्होंने नासिक से विदा होते समय यह कहा है कि यद्यपि हमें काफ़ी सफलता प्राप्त नहीं हुई है, पर हम अपना प्रयत्न जारी रक्खेंगे। और एक दिन वह होगा जब नासिक के दलितों को सवर्ण हिन्दुओं के से अधिकार मिल जायँगे। मालवीय जी ने नासिक में १५० दलितों को मन्त्र-दीक्षा दी। यह कम महत्त्व की बात नहीं। यह मालवीय जी की नासिक में पहली विजय है। आज भले ही कट्टरपन्थी न मानें पर एक समय आयगा जब वे ही दलितोद्धार के अग्रगन्ता बनेंगे।

पोस्ट‌आफ़िस की दर

हमारे देश में बहुत-से छोटे-मोटे व्यापार जो नहीं चलते उनका एक यह भी कारण है कि पोस्ट-आफ़िस की दर इधर बहुत ऊँची हो गई है। इस सम्बन्ध में दैनिक 'आज' में एक महत्त्वपूर्ण टिप्पणी प्रकाशित हुई है, जिसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

बड़ी व्यवस्थापक सभा में अब आय और व्यय की अलग अलग मदों पर विचार होने लग गया है। इस अवसर पर हम पोस्टआफ़िस की दरों की ओर माननीय सदस्यों का ध्यान दिलाना चाहते हैं। पहली बात पोस्ट कार्ड की है। तीन पैसा बहुत अधिक है। विशेषकर, जब एक तोले तक के पत्र के लिए चार पैसे किया जा रहा है, तब पोस्टकार्ड के लिए तीन पैसा बहुत ही अधिक होता है। यह घटाकर दो पैसा अवश्य कर देना चाहिए। दूसरी बात रजिस्ट्रेशन की दर के सम्बन्ध में है। यह आज-कल तीन आना है। इससे और दस रुपये से कम के भी मनिआर्डर के लिए २ आना कमीशन होने के कारण वी० पी० से होनेवाले छोटे व्यापार को गहरा धक्का लगा है। उदाहरणार्थ, यदि कोई आदमी १ रुपये की पुस्तक मँगाना चाहता है तो उसे उस पुस्तक के महसूल के ऊपर रजिस्टरी के तीन आना और मनिआर्डर कमीशन दो आना कुल पाँच आना देना पड़ता है। फलतः एक रुपये की पुस्तक के लिए क़रीब क़रीब डेढ़ रुपया अथवा ड्योढ़ा देना पड़ता है। इससे ज्ञानप्रचार तथा छोटे व्यापार की बड़ी हानि हो चुकी है और हो रही है। अतः यदि (१) पाँच रुपये तक की वी० पी० के लिए रजिस्टरी कराना ऐच्छिक कर दिया जाय, (२) रजिस्टरी की दर दो आना कर दी जाय, और (३) पाँच रुपये तक के लिए मनिआर्डर कमीशन एक आना कर दिया जाय तो छोटे व्यापार चमक उठें। हमारा विश्वास है कि इन परिवर्तनों से पोस्ट-आफ़िस का नुक़सान कुछ भी न होगा। वस्तुतः लाभ बढ़ने की ही सम्भावना है। आशा है, सरकारी पक्ष भी इन सूचनाओं पर दूरदर्शिता और सहानुभूति के साथ विचार करेगा।

जापान की राजनैतिक हत्याओं का रहस्य

हाल में जापान में भीषण राजनैतिक हत्यायें हुई हैं! इनका एकमात्र कारण श्रीयुत चमनलाल जी जो जापान से लौटे हुए एक अच्छे भारतीय पत्रकार हैं, यह बताते हैं कि जापानी सैनिकों में राजभक्ति की भावना बड़ी प्रबल है और जो राजनीतिज्ञ राजा को वैध शासन के नियमों में बाँधने का प्रयत्न करते हैं उनके ऊपर उन्हें असह्य क्रोध आता है और वे उनके प्राण लेने को उतारू हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में श्री चमनलाल जी ने 'आज' में एक लेख लिखा है, जिसका कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

अन्य देशों में राजनैतिक हत्यायें जहाँ देश को विदेशी शासन, अधिनायक तंत्र, स्वेच्छाचारी शासन और राजतंत्र से छुटकारा दिलाने के लिए की जाती हैं, वहाँ जापान में मामला इसका बिलकुल उल्टा है। इस 'उदीयमान सूर्य के देश' में (जापान के झण्डे पर सूर्य का चित्र रहता है) हत्यायें 'कल्याणकारी राजतंत्र' को दृढ़ बनाने के लिए की जाती हैं।

हाल की सभी हत्याएँ उस सिलसिले की कड़ियाँ हैं जो कुछ साल पहले हामागुची की हत्या से आरम्भ हुआ। हामागुची जापान की अर्थव्यवस्था में खराई और किफ़ायत की नीति से काम लेने के लिए समर्थक थे। इसके बाद मंत्री श्री इनोव की ओर मित्सुई बैंक के अध्यक्ष बेरनदान की, जो सब दलों को महज़ औज़ार समझते थे, जिनका उपयोग देश का वाणिज्य-व्यवसाय बढ़ाने में किया जाना चाहिए, हत्यायें हुईं। चौथे नम्बर पर इनाउई की बारी आई जिनका शासन-विधान पर बड़ा प्रभाव था।

इस संघर्ष का मुख्य कारण नरम विचार के कुछ राजनीतिज्ञों के इस मत से कि 'सम्राट् एक वैधशासक-मात्र हैं,' सेना और जनता का विरोध है जो अपने राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि मानकर पूजती हैं। दुनिया में और कोई भी देश नहीं है, जहाँ राजा की जापान की तरह धर्मभाव से पूजा की जाती हो। 'राजपूजा' के विषय में जापान की भावना वही है जो मनु महाराज की है और जो राम-कृष्ण के काल में भारत में प्रचलित थी। इसी उत्कट राजभक्ति ने जापान को अब तक बोलशेविक बनाने से बचाया है। यद्यपि वर्गवाद के फैलने के लिए वहाँ काफ़ी कारण है और देश में वर्गवादी संस्थाओं का जाल बिछा हुआ है, पर मैं यह भविष्यवाणी कर सकता हूँ कि अभी कई दशकों तक जापान 'लाल' नहीं बन सकता।

साधुओं का उत्पात

हाल में सीतापुर-ज़िले के अन्तर्गत एक गाँव में साधुओं के एक दल ने बड़ा उत्पात मचाया। गाँववालों का अपराध यह था कि उन्होंने साधुओं को मुँहमाँगी लकड़ी नहीं दी। इस पर 'प्रताप' लिखता है—

घटना विगत ६ मार्च की है। चार सौ साधुओं ने सीतापुर-ज़िले के चन्द्रावली गाँव पर हमला करके खेतों में आग लगा दी, भारतीय कृषकों की एकमात्र निधि गाय-भैंसों को हाँक ले गये और जिन्होंने उनकी शैतानियत के खिलाफ़ आवाज़ उठाई उनको बुरी तरह पीटा। भारतीय जनता की साधुओं में अचल आस्था है। कुम्भ के मेले में लोग हथेली पर जान रखकर, धक्के देते और धक्के लगाते हुए वैरागी और नागा बाबाओं की सवारी का दर्शन करने के लिए उमड़ते हैं। हमारी धर्मान्ध जनता की इसी भक्ति ने हमारे साधुओं में इतना गर्व और इतना अहंभाव उत्पन्न कर दिया है कि वे जनता की ज़मीन को, उनके भोजन को, अपने बाप की मिल्कियत समझने लगे हैं। इसी के फलस्वरूप आज बहुत से अड्डों में मालपुए उड़ते हैं, जब असंख्य भारतवासी बिना कपड़े के ठिठुरते हुए, और बिना रोटी के बिलखते हुए मृत्यु के कगार पर काँपते हुए, विनाश की लहरों में विलीन होने की राह देख रहे हैं। साधुओं.........की इसी आत्म-विहीनता और उद्दण्डता का नमूना चन्द्रावली की घटना है। बाबा लोगों का सवाल था—'हमें तीन गाड़ी लकड़ी चाहिए।' ज़रा कल्पना कीजिए कि जब मायूस किसानों के बच्चे स्वयं ही लँगोटी लगाये घूमते हों, और

उनके माता पिता शिशिर की सिहरती रात पाले में करवटें बदलते गुज़ार देते हों, तब एक क्षण में, बिना चिराग़े अलाउद्दीन की सहायता के, एक-दम तीन गाड़ी लकड़ियाँ आसमान से नहीं टपक सकती थीं। फिर क्या, ईश्वर के एजेण्टों ने नंगा नाच किया, और पकी-पकाई गन्ने की खेती को जिसमें किसानों की न जाने कितनी आशायें और भविष्य की आकांक्षायें छिपी थीं, उन्हीं के सामने जला दिया और वे बेशरमी के साथ खड़े खड़े देखते रहे। रमते जोगियों ने, बेमुल्क के नवाबों ने धर्म के नाम पर बेगार की माँग रक्खी है, पर उनको यह मालूम हो जाना चाहिए कि इस तरह मज़हबी तानाशाही, धार्मिक बेगारी, चल नहीं सकती। उनके लिए तो यही मार्ग है कि वे शान्ति से रहा करें अथवा बुद्ध और शंकराचार्य बन कर देश, धर्म और संस्कृति का उद्धार करें, लोग उनकी राह पर आँखें बिछा देंगे। परन्तु चण्डू की दम लेनेवालों के लिए यह सम्भव प्रतीत नहीं होता।...... संन्यासी गाँव जलायें, खेत लूटें और फिर भी साधु कहलायें, यह नहीं हो सकता।

पद-स्वीकार करने का प्रश्न

आनेवाले शासन-विधान में कांग्रेसमैन मंत्री का पद स्वीकार करें या नहीं? इस सम्बन्ध में लखनऊ-कांग्रेस में तीव्र वाद-विवाद होने की सम्भावना है। इस समय स्थिति ऐसी है कि कहा नहीं जा सकता कि कौन-सा पक्ष प्रबल हो जायगा। यह बात बहुत कुछ पंडित जवाहरलाल नेहरू के मत पर निर्भर है, जिसे अभी उन्होंने प्रकट नहीं किया है। पर इस सम्बन्ध में दैनिक 'भारत' ने अपने एक अग्रलेख में बहुत कुछ विचार-सामग्री एकत्र कर दी है। उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

मदरास के कांग्रेसी नेताओं के अतिरिक्त देश में पद स्वीकार करने के मुख्य समर्थक डाक्टर अनसारी, डाक्टर विधानचन्द्र राय, श्री भूलाभाई देसाई आदि हैं और इस बात का विरोधी कांग्रेस का सोशलिस्ट दल तथा श्री शार्दूलसिंह कवीश्वर आदि हैं। यद्यपि नेहरू जी अपने विचारों की दृढ़ता और उन पर डटे रहने के लिए विख्यात हैं, फिर भी इस बात की सम्भावना कम जान पड़ती है कि महात्मा गांधी आदि कांग्रेस के अन्य मुख्य व्यक्तियों की नितान्त उपेक्षा करके वे अपनी ही नीति चलावेंगे। गांधी जी स्वयं पद-स्वीकार करने के पक्ष में न भी हों, किन्तु यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि पद-स्वीकार करने के समर्थक प्रमुख कांग्रेसी नेता उन्हें कम-से-कम इतना तो अवश्य ही प्रभावित कर लेंगे कि वे पद-स्वीकार करने का विरोध न करें। यह तो मानी हुई बात है कि कांग्रेस के प्रमुख नेताओं में से पद-स्वीकार करने के पक्षवाले अधिक और उसके विरोधी कम हैं। अतः ऐसी दशा में यह काफ़ी संभव है कि पंडित जवाहरलाल इस प्रश्न के प्रति अपने विरोध पर अधिक ज़ोर न दें। व्यावहारिक दृष्टि से विचार करने पर भी यही दिखाई देता है कि पद-स्वीकार की नीति ही कांग्रेसमैनों के लिए श्रेयस्कर होगी। यदि पंडित जवाहरलाल नेहरू अपनी अध्यक्षता में कांग्रेस के लिए कोई ख़ास नया कार्यक्रम रखने न जा रहे हों तो साधारण स्थिति को देखने से यही जान पड़ता है कि इस समय कांग्रेस के सामने केवल कौंसिलों के अन्दर काम करने भर का ही कार्यक्रम रह गया है। वैसे कहने के लिए कुछ अन्य कार्यक्रम भले ही हों, किन्तु व्यावहारिक क्षेत्र में सिवा कौंसिलों के कार्यक्रम के कांग्रेसमैनों के लिए और कोई ख़ास कार्य नहीं दिखाई देता। ऐसी स्थिति में कौंसिलों के अन्दर जाकर केवल विरोधीदल बनाकर ही बैठे रहना और लोकहित-विरोधी आयोजनाओं को न पास होने देने का प्रयत्न ही कांग्रेसमैनों के लिए पर्याप्त न होगा, किन्तु इसके विपरीत स्वयं मंत्रिपद स्वीकार कर के ऐसे व्यक्तियों को उस पद पर न पहुँचने देकर जो सरकार की मर्ज़ी के अनुसार ही काम करते रहें, कांग्रेसमैन अधिक मात्रा में लोकहित कर सकेंगे।

सम्पादकीय नोट

जर्मनी की सीनाज़ोरी

इटली-अबीसीनिया-युद्ध के कारण योरप की राजनैतिक अवस्था नाज़ुक थी ही, हाल में जर्मनी ने राइनलैंड में अपनी सेनायें भेजकर उसे भीषण रूप दे डाला है। फ्रांस और रूस का हाल में जो पैक्ट हुआ है उसी के विरोध-स्वरूप जर्मनी ने यह कार्रवाई की है। जर्मनी ने देखा कि अबीसीनिया के मामले में फ्रांस ने ब्रिटेन का पूरा साथ नहीं दिया, अतएव उसके लोकार्नो-सन्धि के भंग करने में ब्रिटेन भी फ्रांस का साथ नहीं देगा। और बिना ब्रिटेन की पूरी सहायता के फ्रांस जर्मनी पर आक्रमण करने का साहस न करेगा। इस प्रकार जर्मनी की उद्देश-सिद्धि हो जायगी। हिटलर अपनी चाल में सफल ही नहीं हो गये, उन्होंने एक बार फिर संसार को बता दिया कि राष्ट्र-संघ केवल धोखे की टट्टी है और अवसर पड़ने पर उसकी व्यर्थता इसी तरह बार बार प्रकट होगी।

अबीसीनिया के मामले में ब्रिटेन ने यह प्रयत्न किया था कि राष्ट्र-संघ का महत्त्व स्थापित हो जाय और उसके द्वारा इटली को उपयुक्त दंड दिया जाय, क्योंकि उसने एक सदस्य राष्ट्र पर अकारण आक्रमण किया है। परन्तु फ्रांस की अड़ंगा नीति के कारण ब्रिटेन के प्रयत्न बेकार सिद्ध हुए और मंचूरिया के मसले की तरह इस बार भी राष्ट्र-संघ को मुँह की खानी पड़ी। अब जर्मनी का मसला सामने आया है, अतएव इस बार ब्रिटेन भी फ्रांस का अनुसरण कर रहा है।

असल बात यह है कि फ्रांस का योरप में अधिक ज़ोर हो गया है। उसकी कई राष्ट्रों से घनिष्ठता तक हो गई है। एक प्रकार से योरप के सभी छोटे-बड़े राष्ट्रों से उसका मैत्री-बन्धन है। इटली से उसका थोड़ा-बहुत संघर्ष था, सो उसको उसने अपने भरसक बराबर दूर किया है। बाक़ी रूस था सो उससे उसका पैक्ट ही हो गया है। फ्रांस की इस बढ़ती हुई शक्ति को ही देखकर ब्रिटेन ने जर्मनी से जंगी जहाज़ों के सम्बन्ध में समझौता करके उसे आगे आने का मौक़ा दिया। वास्तव में फ्रांस ने सामूहिक रक्षा के बहाने योरप में अधिक प्रतिपत्ति बढ़ा ली है। उसके प्रमुख मित्र ब्रिटेन और इटली उसके इस महत्त्व से सतर्क-सा हो गये हैं। यही कारण है कि जर्मनी के बार बार सन्धियों के भंग करने पर भी उसे दंड देने में फ्रांस अपने मन की नहीं कर सका है। परन्तु इस बार उसे रूस का सहारा मिल गया है, और यदि इटली उसकी मदद नहीं करेगा तो उसका विरोध भी नहीं करेगा। केवल डर ब्रिटेन का है और ब्रिटेन का साथ बड़ी भारी चीज़ है, जो उसे जर्मनी पर आक्रमण करने के लिए प्राप्त नहीं हो सकेगा। इसी से फ्रांस के कर्णधार राष्ट्र-संघ की क़ानूनी कार्रवाई को महत्त्व दे रहे हैं। परन्तु इससे फ्रांस का उद्देश नहीं सिद्ध होगा।

जर्मनी को यह सब अच्छी तरह मालूम है और उसने ख़ूब समझ-बूझकर यह जोखिम का क़दम उठाया है। उसने देखा कि ऐसा अवसर फिर नहीं मिलेगा। योरप में वह अकेला पड़ गया है। निस्सन्देह उसने इटली, पोलेंड, हंगरी और ब्रिटेन से मेल-जोल बढ़ाया है, परन्तु युद्ध-काल में उसे इनमें से किसी की मदद नहीं मिलेगी। उधर फ्रांस का ज्रुगोस्लाविया, रूमानिया, ज़ेचोस्लेवेकिया तथा पोलेंड से घनिष्ठ सम्बन्ध है और वैसा ही सम्बन्ध हाल में सोवियट रूस से हो गया है। इधर ग्रेट-ब्रिटेन और इटली उसके साथ रहने को मजबूर हैं ही। इस भविष्य

को देखकर ही हिटलर ने लोकार्नो-सन्धि को भंग करना इस अवसर पर उचित समझा। उसका कहना है कि जब फ्रांस को लोकार्नो-सन्धि का विश्वास नहीं है और वह अपनी सुरक्षा के लिए सोवियट-रूस से सन्धि कर रहा है तब अपनी रक्षा के लिए जर्मनी को अपने राइनलैंड में सेनायें रखनी ही पड़ेंगी। निस्सन्देह इसके साथ ही हिटलर अगले २५ वर्ष के लिए नया समझौता करने को तैयार है। परन्तु फ्रांस का कहना है कि जब जर्मनी लोकार्नो के सन्धि-पत्र की इस तरह उपेक्षा कर सकता है तब इसका क्या विश्वास है कि वह इस नये सन्धि-पत्र का आदर करेगा ?

चाहे जो हो, जर्मनी के इस उग्र रुख का योरप पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। प्रायः सभी राष्ट्रों ने उसके इस कार्य को अन्यायमूलक कहा और राष्ट्र-संघ ने इसके लिए उसकी निन्दा की है, और यदि वह राइनलैंड से अपनी सेना नहीं हटायेगा अथवा किसी अन्य तरह फ्रांस को सन्तुष्ट नहीं करेगा तो राष्ट्र-संघ उसके भी साथ वही व्यवहार करेगा जो वह इटली के साथ करने जा रहा है। कम से कम राष्ट्र-संघ का दृष्टिकोण अभी तक तो ऐसा ही है। परन्तु कुछ लोगों का अनुमान है कि उस दशा में युद्ध छिड़ जाने की सम्भावना है। योरप की राजनीति का इस समय ऐसा ही उलझा हुआ स्वरूप है। देखना है कि योरप के चाणाक्ष राजनीतिज्ञ इसके सुलझाने में सफल होते हैं या नहीं। परन्तु इतना स्पष्ट है कि वे योरप में कम से कम इस घटना को लेकर युद्ध नहीं होने देंगे और यह इस समय की सबसे बड़ी बात होगी।

मंगोलिया की समस्या

जापान में पिछले दिनों बड़ा भयंकर विद्रोह हो गया। वहाँ की एक सेना एकाएक बिगड़ गई और उसने सरकार के कोई ८० उच्च पदाधिकारी मार डाले। यद्यपि बाद को विद्रोही क़ाबू में लाये गये, जिनमें से १५ ने आत्म-हत्या करके अपने पाप का प्रायश्चित्त किया। इसके बाद ५०० सैनिक अधिकारियों ने इस विद्रोह की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेकर अपने पदों से त्याग-पत्र दे दिया। तथापि जो नई सरकार अब बनी है उसे वहाँ की सेना अपने ही अधिकार में रखना चाहती है। वास्तव में जापान में राष्ट्रीयता का बड़ा ज़ोर है. साथ ही इस भाव का भी कि जापान का विस्तृत साम्राज्य स्थापित हो। यदि यह दुर्घटना न हो जाती तो अब तक उत्तरी चीन और मंगोलिया में जापान के राजनैतिक हथकंडे अधिक स्पष्ट रूप धारण करते दिखाई देते। परन्तु इस समय यद्यपि जापान की सरकार अपने घर के सुधारने में ही व्यस्त है, तथापि वह अब तक उत्तरी चीन और मंगोलिया की सीमा पर जो कुछ कर चुकी है उसका प्रभाव बहुत अधिक पड़ा है। यहाँ तक कि रूस के सर्वेसर्वा स्टेलिन को स्पष्ट घोषित करना पड़ा है कि यदि जापान मंगोलिया की राजनीति में हस्तक्षेप करेगा तो रूस उससे मंगोलिया की रक्षा के लिए युद्ध करेगा। युद्ध के लिए रूस ने अपनी पूरी तैयारी कर ली है और मंचूको की सीमा पर आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित उसकी दो लाख सेना छावनी डाले पड़ी हुई है।

इधर मंगोल कम उत्साहपूर्ण नहीं हैं। उन्हें उनका १२ वीं सदी का चंगेज़खाँ का ज़माना याद आ गया है। उस समय मंगोलों के नाम से रूस, ईरान, चीन और भारत काँपते रहते थे। उनकी विजय-पताका चीन-सागर से लेकर एडिआइटिक समुद्र तक फहराती थी। अतएव वे आज फिर अपने अभ्युदय के लौटने के स्वप्न देखने लगे हैं और इसका उन्हें जापान से प्रोत्साहन मिल रहा है।

मंगोलिया चीन-साम्राज्य का एक भाग रहा है। १९११ की क्रान्ति में उसने अपनी स्वाधीनता की घोषणा की थी। इसके बाद महायुद्ध के पहले चीन और रूस का समझौता हुआ, जिसके अनुसार चीन ने बाहरी मंगोलिया के आत्म-शासन के अधिकार को स्वीकार किया और रूस ने उस पर चीन का स्वामित्व माना। ज़ारशाही के नष्ट होने पर चीन ने बाहरी मंगोलिया पर अपनी सत्ता जमाने का प्रयत्न किया, पर वह सफल नहीं हुआ। अन्त में १९२५ में सोवियट रूस ने बाहरी मंगोलिया को चीन-साम्राज्य का एक भाग मान लिया और वहाँ से अपनी फ़ौज बुला ली। तो भी मंगोलिया पर उसका प्रभाव बराबर बढ़ता ही रहा है।

बाहरी मंगोलिया में लगभग १० लाख मंगोल रहते हैं और कोई १० लाख भीतरी मंगोलिया में रहते हैं। भीतरी मंगोलिया चीन के अधिकार में है। १० ही लाख सिनकियाँग में भी होंगे। परन्तु २० लाख मंगोल मंचूरिया के पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिम में रहते हैं और ये जापान की अधीनता में हैं, जिन्हें उसने आत्मशासन के अधिकार प्रदान कर दिये हैं। और जापान की यही प्रवृत्ति इस समय जोखिम की बात समझी जाती है। देखना है कि जापान इस परिस्थिति को किस तरह सुलझाता है, क्योंकि वह लड़ना नहीं चाहता है। जापान का व्यापार इस समय सारे संसार में बढ़ा-चढ़ा है और दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। वह किसी भारी युद्ध में प्रवृत्त होकर अपने हाथों अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार लेने की भूल कभी नहीं करेगा। ऐसी दशा में उसकी मंचूको में जो सैनिक गति-विधि दिखाई देती है वह एक-मात्र आत्मरक्षा का ही आयोजन समझा जायगा। पिछले दिनों रूस के सैनिकों की उनके सैनिकों से तीन-चार मुठभेड़ें हुई थीं, पर जापान या रूस दोनों में से किसी एक ने युद्ध की घोषणा नहीं की, केवल एक-दूसरे के प्रति रोष भर प्रकट कर चुप रह गये। परन्तु मंगोलों की नई हरकत नया रंग और सो भी आशंकाजनक प्रकट कर रही है। इस समय वह उपर्युक्त हत्याकांड के कारण कुछ समय के लिए आँखों से ओझल हो गई है।

भारत में शिक्षा-प्रचार

भारत-सरकार के शिक्षा-कमिश्नर ने अपने विभाग की जो वार्षिक रिपोर्ट निकाली है उससे प्रकट होता है कि भारत में शिक्षा की काफ़ी उन्नति हुई है। यह रिपोर्ट सन् १९३३-३५ की है। इसमें यह भी लिखा गया है कि जिन जातियों के बच्चे प्राइमरी स्कूलों के आगे नहीं बढ़ते थे वे अब यूनीवर्सिटी तक पहुँच गये हैं। इसके सिवा कई प्रान्तों में अछूतों के लड़कों के साथ स्कूलों में भेद-भाव नहीं किया जाता है और उनमें शिक्षा प्राप्त करने की रुचि अधिकाधिक बढ़ रही है। स्त्रियों में भी शिक्षा का प्रचार बढ़ गया है, यहाँ तक कि मुसलमानों में भी स्त्रियों में शिक्षा की प्रवृत्ति पहले से अधिक बढ़ गई है।

रिपोर्ट के साल में १,३७७ नये स्कूल खुले जब कि पिछले वर्ष २,४४५ बन्द हो गये थे। वास्तव में ये स्कूल जानबूझकर बन्द किये गये थे और रिपोर्ट के साल में भी उनकी संख्या में कमी दिखाई देती। परन्तु १,५६६ स्कूल बंगाल में और १७६ बिहार और उड़ीसा में खुल गये, इससे उनकी संख्या में वृद्धि हो गई। चार प्रान्तों में स्कूलों में जो कमी की गई है उसका कारण यह है कि स्कूलों की अच्छे ढंग से व्यवस्था हो सके। और यद्यपि स्कूलों की संख्या में कमी की गई तो भी छात्रों की संख्या में वृद्धि ही हुई है। जहाँ पिछले वर्ष ८६,६६५ छात्रों की वृद्धि हुई थी, वहाँ रिपोर्ट के साल ३,१६,३५८ छात्रों की वृद्धि हुई है। यद्यपि मदरास में ४५७ स्कूल बन्द कर दिये गये थे, तो भी वहाँ छात्रों की संख्या में १,०३,०७५ की वृद्धि हुई।

१९३२ और १९३३ के बीच में दिल्ली और कुर्ग जैसे प्रदेशों को छोड़कर प्रायः और सभी प्रान्तीय सरकारों ने शिक्षा के मद का खर्च घटा दिया था। परन्तु रिपोर्ट के साल संयुक्त-प्रदेश, आसाम और ब्रह्मदेश को छोड़कर और सब प्रान्तों में इस मद का खर्च फिर बढ़ा दिया गया। यद्यपि आर्थिक कठिनाई के कारण ऐसा करना सम्भव नहीं था, तो भी प्रान्तिक सरकारों ने शिक्षा-सम्बन्धी व्यय की व्यवस्था करने में सतर्कता दिखाई है।

आगे सन् १९२७ और सन् १९३४ के आँकड़े दिये गये हैं। इनसे प्रकट होगा कि सन् २७ की अपेक्षा शिक्षा के मद में प्रान्तीय सरकारें कहाँ कितना अधिक खर्च कर रही हैं।

रिपोर्ट के साल यूनीवर्सिटी के छात्रों की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हुई है। ६,८३१ से उनकी संख्या १,१३,३२८ हो गई है। ढाका, देहली, उस्मानिया, आन्ध्र और अन्नामलई यूनीवर्सिटियों में उनकी संख्या में कमी हुई है, पर वह कमी केवल ३६२ छात्रों की ही है। उधर कलकत्ता-यूनीवर्सिटी में ४,१०४ की और बम्बई एवं

	१९२७		१९३४	
	कुल व्यय (लाख रुपयों में)	शिक्षा पर राजस्व में कितना फ़ी सदी खर्च	कुल व्यय (लाख रुपयों में)	राजस्व में कितना फ़ी सदी व्यय
मदरास	२०२	१३·३	२४६	१५·९
बम्बई	१९९	१३·६	१७६	१२·१
बंगाल	१४८	१४·०	१३५	१४·९
संयुक्तप्रान्त	१९६	१७·२	१९८	१७·६
पंजाब	१५१	१३·९	१६०	१४·९
ब्रह्मदेश	९५	९·४	५८	६·८
बिहार-उड़ीसा	७२	१२·५	५५	११·१
मध्यप्रान्त	७२	१४·२	४४	१०·२
आसाम	२५	१०·२	२८	१४·०
सीमाप्रान्त	...	...	१९	११·०

मदरास की यूनीवर्सिटियों में क़रीब एक एक हज़ार की वृद्धि हुई है।

इस प्रकार यद्यपि रिपोर्ट में शिक्षा की वृद्धि का सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया है, तथापि यह सब ३५ करोड़ की आबादी के देश में कुछ भी नहीं है। यह सब होते हुए भी अभी इस देश में केवल दस फ़ी सदी लोग ही साक्षर हैं। यह बात इन रिपोर्टों की प्रगतिगाथा से कैसे भुलाई जा सकती है?

बम्बई का अनाथ-महिला-आश्रम

स्वामी श्रद्धानन्द की स्मृति में सन् १९२७ के दिसम्बर में बम्बई में एक अनाथ-महिला-आश्रम की स्थापना की गई थी। इस आश्रम के उद्देश (१) हिन्दू स्त्रियों और बच्चों को आश्रय देना और उनकी सहायता करना, (२) दीन और दुखी हिन्दू स्त्रियों और बच्चों की भलाई करना और संकट से उनकी तत्काल रक्षा करना तथा (३) ऐसी स्त्रियों और बच्चों को हिन्दू-धर्म के अनुसार धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा देना है। इसकी स्थापना का प्रस्ताव लाला लाजपतराय ने किया था। इस संस्था के ट्रस्टी श्री एम० आर० जयकर, श्री रामेश्वरदास जी बिड़ला जैसे लोग हैं। यह आश्रम गत ८ वर्ष से बड़ा उपयोगी कार्य कर रहा है। इस आश्रम में इन वर्षों में जो स्त्रियाँ और बच्चे भर्ती किये गये हैं उनके अंक इस प्रकार हैं—

सन्	स्त्रियाँ	बच्चे
१९२८	२९	२१
१९२९	७०	३९
१९३०	५३	१९
१९३१	७८	५७
१९३२	१०५	६३
१९३३	९५	४३
१९३४	९३	५२
१९३५	१०३	६८

गत आठ वर्षों में निम्न प्रकार की स्त्रियाँ आश्रम में भर्ती की गईं—

२६८ पतित, १२० ग़रीब और असहाय, १३२ दुष्टों के हाथ से बचाई गईं, ६२ पतियों-द्वारा त्यक्त, ८० पतियों को छोड़ भागनेवाली, १४१ अदालत-पुलिस-द्वारा भेजी गईं, १७८ प्रसव के लिए भर्ती की गईं (जिनमें १०९ विधवायें, ३९ अविवाहिता और ३० पतित विवाहिता थीं।)

भर्ती की हुई ६२६ स्त्रियों में २४९ विधवायें, २६४ विवाहितायें और ११३ अविवाहित थीं।

आश्रम से वापस जानेवाली स्त्रियों के आँकड़े ये हैं—५७ अपने पतियों से राज़ी हो गईं, २२३ संरक्षकों के पास भेज दी गईं, ५० स्वेच्छा से चली गईं, ४८ आश्रम में विवाह करके गईं, २७ दूसरी संस्थाओं को भेज दी गईं, ३१ ने अस्थायी आश्रय लिया था, ३५ भाग गईं, ३७ अदालत को लौटा दी गईं, ११ पुलिस को लौटा दी गईं क्योंकि वे रहना नहीं चाहती थीं, ३९ घरों में नौकर हो गईं, ४ विवाह के लिए बाहर भेज दी गईं, ९ अस्पताल में मर गईं, ३ चिकित्सा के लिए बाहर भेजी गईं।

आश्रम में स्त्रियों और बच्चों को भर्ती करने में किसी तरह का भेद-भाव नहीं किया जाता। अछूत-जाति की भी स्त्रियाँ भर्ती की गई हैं और उनकी उपयुक्त सहायता की गई है। आश्रम में केवल बम्बई नगर की ही नहीं रक्खी गई हैं। गुजरात, महाराष्ट्र के अनेक ज़िलों की तथा देशी राज्यों की भी स्त्रियाँ आश्रम में ली गई हैं। कभी कभी सुदूर कश्मीर, पंजाब, संयुक्त-प्रान्त, मध्यप्रदेश, बरार, कर्नाटक, मैसूर, मलाबार, मदरास तक की स्त्रियों ने भी इस आश्रम में आश्रय लिया है।

इस प्रकार यह आश्रम दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक लोकोपयोगी होता जा रहा है। परन्तु धनाभाव के कारण यह अपने कार्यों को अधिक विस्तृत रूप नहीं दे पाता। उदाहरण के लिए अनाथ बच्चों को ही लीजिए। फ़ंड के अभाव में आश्रम इनकी देख-भाल उपयुक्त ढंग से करने में लाचार है। इस समय आश्रम का व्यय ९००) मासिक है, जो इस महत्कार्य को देखते हुए नगण्य है।

यह आश्रम माटुँगा में खुला हुआ है और इसका सारा प्रबन्ध एक स्त्री के निरीक्षण में होता है, जो दाई के कार्य में भी निपुण है। परन्तु आश्रम की सारी व्यवस्था एक प्रबन्ध-कमिटी के हाथ में है, जिसका चुनाव निश्चित समय के भीतर होता रहता है। इस कमिटी के सदस्य सोसायटी के सदस्यों में से चुने जाते हैं। इस प्रकार आश्रम का सञ्चालन व्यवस्थित ढंग से होता है, जिससे उसने ख्याति भी प्राप्त की है। आशा है, धनी-मानी जन इस संस्था की सेवाओं की उपयोगिता को हृदयंगम करेंगे और आवश्यक धन से सहायता कर उसके एक आदर्श सफल संस्था में परिणत हो जाने में सहायक होंगे।

पुरातत्त्व-सम्बन्धी खोज

इसमें सन्देह नहीं कि भारत का सारा प्राचीन इतिहास अभी उसके नगरों के ध्वंसावशेषों के नीचे दबा पड़ा हुआ है। यही कारण है कि उसका अभी तक कोई प्रामाणिक इतिहास लिखा नहीं जा सकता। इस बात की सबसे अधिक आवश्यकता है कि देश के ऐसे खण्डहरों का व्यापक रूप से अनुसन्धान किया जाय। इस सम्बन्ध में सरकार के पुरातत्त्व-विभाग ने बहुत कुछ काम किया है और उसके अनुकरण पर कई देशी रियासतों में भी पुरातत्त्व का काम होने लगा है। परन्तु यह सब उतना तथा वैसे ढङ्ग से नहीं हो रहा है। उदाहरण के लिए हम यहाँ कोटा की पुरातत्त्व-सम्बन्धी हाल की खोज का उल्लेख करते हैं। हिन्दू-यूनिवर्सिटी के डाक्टर अल्तेकर और श्रीयुत मणीन्द्रचन्द्र नन्दी अभी हाल में कोटा गये थे। राज्य के इतिहास-विभाग के डाक्टर मथुरालाल शर्मा की सहायता से उन्होंने वहाँ के प्राचीन स्थानों की यात्रा की। इस यात्रा में उन्हें वहाँ के जङ्गलों में ऐसे बड़े नगरों के ध्वंसावशेष मिले जो किसी समय अपने सभ्य निवासियों से भरे-पूरे रहे होंगे। यहाँ उन्हें कई महत्त्वपूर्ण शिलालेख भी प्राप्त हुए हैं, जिनसे प्राचीन भारत के इतिहास पर नया प्रकाश पड़ता है। मौखरी सेनापति के तीन पुत्रों के पत्थर के तीन यज्ञस्तम्भ मिले हैं, जिन पर संस्कृत में लेख उत्कीर्ण हैं और ये २९५ विक्रमी के हैं। इन स्तम्भों से यह पहले-पहल प्रकट हुआ है कि ईसा की तीसरी सदी में ही मौखरी लोग शासक पद पर अधिष्ठित हो चुके थे। उक्त ध्वंसावशेषों में अनेक शिलालेख, मन्दिर, टूटी-फूटी मूर्तियाँ तथा अन्यान्य वस्तुएँ मिली हैं, जिनसे प्रकट होता है कि २०० ई० से लेकर १२०० ई० तक कोटा-राज्य धनधान्य से पूर्ण एक उन्नत प्रदेश था। इस एक विवरण से प्रकट होता है कि इस भारतभूमि में और न मालूम कितने ऐसे ध्वंसावशेष पड़े होंगे जिन तक अभी किसी

की पहुँच भी न हुई होगी। ऐसी दशा में यह परम आवश्यक है कि पुरातत्त्व की खोजों का काम अधिक व्यापक बनाया जाय और इस कार्य का भार केवल सरकार पर ही न छोड़ रक्खा जाय, किन्तु देश के धनी-मानी लोग भी इस ओर ध्यान दें और इतिहास के विद्वानों की संस्थाओं को इस कार्य की ओर प्रवृत्त करें।

कमला नेहरू का स्वर्गवास

एक ऐसे समय में जब कि सारे भारत में पंडित जवाहरलाल नेहरू का नवीन राष्ट्रपति के रूप में स्वागत करने की तैयारियाँ हो रही थीं, श्रीमती कमला नेहरू का इस संसार से उठ जाना बड़ी ही दुःखद घटना है। इसमें सन्देह नहीं कि वे वर्षों से क्षय-रोग से पीड़ित थीं। उनकी



[कमला नेहरू के फूल के साथ पंडित जवाहरलाल नेहरू का बमरौली में आगमन।]

चिकित्सा जर्मनी में हो रही थी। संसार में जो अच्छे से अच्छा प्रबन्ध हो सकता था वह किया गया था और इधर लोगों को आशा बँध चली थी कि वे अच्छी हो जायँगी। परन्तु



[बमरौली से चलते समय का एक दृश्य।]

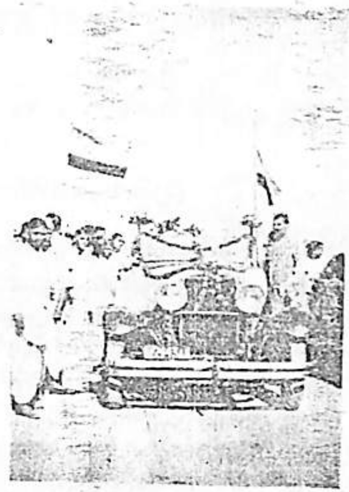
गत २८ फ़रवरी को जेनेवा से एकाएक तार आया कि उनका स्वर्गवास हो गया। इस समाचार से सारे भारत में उदासी छा गई।

पिछले असहयोग-आन्दोलन की जिन लोगों ने कड़ी निन्दा की थी उन्होंने भी उससे एक लाभ स्वीकार किया था। वह लाभ था भारतीय स्त्रियों की अभूतपूर्व जागृति। यह कहने में ज़रा भी अत्युक्ति नहीं है कि कमला नेहरू इस जागृति की साक्षात् प्रतिमूर्ति थीं। आन्दोलन के पहले आनन्दभवन के बाहर उन्हें कोई जानता भी न था। जैसे ही आन्दोलन शुरू हुआ, वे इलाहाबाद की सड़कों पर स्त्रियों के एक जत्थे के साथ पैदल घूमती हुई दिखाई पड़ीं। वे गर्मी के दिन थे और उन दिनों भी उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा न था। पर उनकी इच्छा में इतना बल था कि उन्होंने शारीरिक कष्टों की बिलकुल परवा न की। शीघ्र ही शहर का नेतृत्व उनके हाथ में आ गया। शहर से वे प्रान्त की डिक्टेटर बनीं और प्रान्त से अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी की कार्य-समिति में जा पहुँचीं।

उनका स्वभाव इतना सरल था, उनमें कार्य्य करने की इतनी धुन थी, उनमें इतना साहस और अदम्य उत्साह था कि अपने नेतृत्वकाल में उन्होंने इलाहाबाद में जो राजनैतिक चहल-पहल पैदा की थी वह इस शहर के इतिहास में अमर रहेगी और अपने स्त्रीत्व के जिस तेज से

उन्होंने सारे भारत का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था वह आधुनिक भारत के इतिहास में उनका नाम अमिट बनाये रहेगा।

स्त्री के लिए पति का वियोग बहुत दुःखद घटना है। पंडित जवाहरलाल नेहरू को अपने राजनैतिक विचारों के कारण बहुत बार और लम्बे समय तक के लिए जेल जाना पड़ा है। परन्तु कमला नेहरू ने प्रत्येक बार बड़ी



[मोटरकार जिस पर कमला नेहरू का फूल आनन्द भवन से जवाहर स्क्वायर ले जाया गया।]

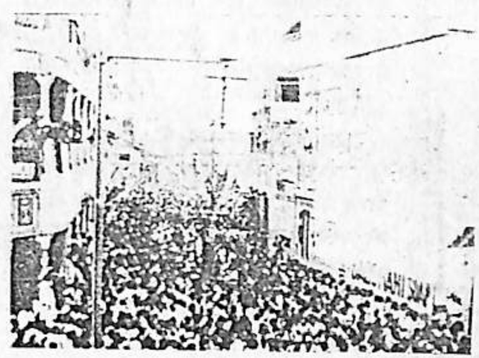
बहादुरी के साथ इस वियोग का सामना किया। उन्होंने सदैव पति को मुस्कुराहट के साथ बिदाई दी थी और किसी ने कभी उनको उदास होते नहीं देखा। उनके स्वास्थ्य के बिगड़ते जाने का यह भी एक कारण है। पर इससे हमें यह भी ज्ञात होता है कि उनमें कितना धैर्य्य था और देश के लिए किस सीमा तक वे कष्ट सहन करने के लिए तैयार थीं।

श्रीमती कमला नेहरू की अवस्था बहुत अधिक नहीं थी। अभी वे केवल ३६ वर्ष की थीं। सन् १९१७ ईसवी



[जवाहर स्क्वायर से जलूस उठ रहा है।]

में उनका विवाह हुआ था। उस समय उनकी अवस्था १७ वर्ष की थी। किसी विश्वविद्यालय की कोई उच्च कोटि की डिगरी उन्होंने नहीं प्राप्त की थी, तो भी वे अत्यन्त सुशिक्षित प्रतीत होती थीं। उनमें भाषण देने की अपार क्षमता और हज़ारों की भीड़ में भी अत्यन्त सहज भाव से घंटों धाराप्रवाह और शुद्ध हिन्दी बोलती रहती थीं। उनका स्थानीय राजनैतिक भ्रमण इलाहाबाद के शहर ही तक परिमित नहीं था। अवसर पाते ही वे ज़िले का भी दौरा करती थीं। प्रति दिन मीलों के अन्तर पर



[जलूस का एक साधारण दृश्य।]

किसानों की आठ आठ सभाओं में व्याख्यान देती थीं। शरीर से अत्यन्त निर्बल होते हुए भी वे थकने का नाम न लेती थीं। खेद है कि वे हमारे बीच में नहीं रहीं और हम उनका पूर्ण विकसित स्वरूप देखने से वञ्चित रह गये।

सारे भारत में वे कितनी लोकप्रिय थीं, इसका अनुमान उन सभाओं से किया जा सकता है जो उनके स्वर्गगत होने पर शोक प्रकट करने के लिए स्थान स्थान पर हुई हैं। इलाहाबाद में वे और भी लोकप्रिय थीं। उनके फूल के साथ लगभग ४० हज़ार व्यक्ति एकत्र हुए थे। त्रिवेणीतट पर उनकी लोकप्रियता का एक और सबूत लोगों के यह मिला कि सभी मल्लाहों ने उनके फूल के साथ गई अपार भीड़ के मुफ़्त में संगम तक ले जाने और ले आने की घोषणा कर दी। यहाँ जो चित्र दिये जा रहे हैं वे हमें श्रीलाल जी अग्रवाल से प्राप्त हुए हैं। आपने ये चित्र खास तौर से सरस्वती के लिए खींचे हैं।

दो पुरस्कार

(१) 'सूबा हिन्द' शीर्षक कविता पर ५१) रुपये की भेंट

'सूबा हिन्द' शीर्षक सर्वोत्तम हिन्दी-कविता पर ५१) रुपये भेंटस्वरूप दिये जावेंगे। 'सूबा हिन्द' से तात्पर्य आगरा व अवध के संयुक्त-प्रान्त से है, जिसमें दिल्ली तथा हिन्दुस्तानी मध्यप्रान्त को भी सम्मिलित कर लेना चाहिए।

४८ पंक्ति से अधिक की रचना पर प्रतियोगिता के लिए विचार नहीं किया जा सकेगा। कोई भी रचना वापस नहीं की जा सकेगी, अतः उसकी प्रतिलिपि रचयिता को अपने पास रोक लेनी चाहिए। प्रत्येक लेखक को अपनी रचना के प्रकाशित करने का सदा पूर्ण अधिकार प्राप्त है। रचनाओं के प्राप्ति-स्वीकार की आशा नहीं करनी चाहिए।

प्रतियोगिता का निर्णय बृहस्पतिवार श्रावण शुक्ल पंचमी १९९३ (२३ जुलाई १९३६) को समाचारपत्रों को भेज दिया जावेगा तथा सर्वोत्तम रचना के लेखक को उसी दिन ५१) रुपये मनीआर्डर से भेंटस्वरूप भेज दिये जायँगे। प्रतियोगिता में सम्मिलित करने के लिए रचना शनिवार ज्येष्ठ शुक्ल दशमी १९९३ (३० मई १९३६) तक नीचे लिखे पते से पहुँच जानी चाहिए।

धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०
४, बैंक रोड, इलाहाबाद

(२) निबन्धप्रतियोगिता

आरा-साहित्य-परिषद् ने "हिन्दी-क्षेत्र में बिहार का स्थान" और "शाहाबाद की हिन्दी-साहित्य-सेवा" विषयों पर आये सर्वोत्तम निबन्ध के लिए क्रमशः "सदल-स्वर्ण-पदक" और "शिवनन्दन-स्वर्ण-पदक" पुरस्कार देना निश्चय किया है। प्रथम विषय अखिल भारतीय प्रतियोगिता और द्वितीय प्रान्तीय प्रतियोगिता के लिए निर्धारित है। प्रतियोगिता-सम्बन्धी निबन्ध आगामी १५ अप्रेल तक मन्त्री के पास आ जाने चाहिए।

यह बात ध्यान में रहे कि प्रथम निबन्ध "फुलसकेप" आकार के ४० पृष्ठों से कम और ५० से अधिक का, तथा द्वितीय उसी आकार के ३० पृष्ठ से कम एवं ४० से अधिक का न हो।

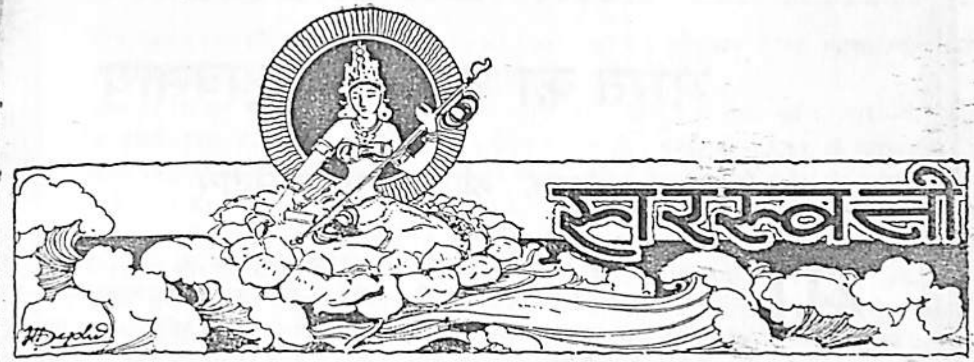
(डाक्टर) ठाकुर नन्दकिशोरसिंह "किशोर"
मन्त्री
आरा-साहित्य-परिषद्, आरा E. I. R.

Printed and Published by K. Mittra at the Indian Press Ltd., Allahabad.



वसिष्ठ की गौ

[चित्रकार—श्रीयुत रामगोपाल विजयवर्गीय



सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

मई १९३६ } भाग ३७, खंड १ संख्या ५, पूर्ण संख्या ४३७ { वैशाख १९९३

युग-प्रभात

लेखक, श्रीयुत सुमित्रानन्दन पन्त

वे डूब गये—सब डूब गये
दुर्दम, उदग्रशिर, आद्रि-शिखर !
स्वप्नस्थ हुए स्वर्णातप में
लो, स्वर्ण-स्वर्ण अब सब भूधर !
पल में, कोमल पड़, पिघल उठे
सुन्दर वन, जड़ निर्मम प्रस्थर,
सब मन्त्र-मुग्ध हो, जड़ित हुए,
लहरों-से चित्रित लहरों पर !

मानव-जग में गिरि-सदृश अड़ीं
गत युग की संस्कृतियाँ दुर्धर
बन्दी की हैं मानवता को
रच देश-जाति की भित्ति अमर !
ये डूबेंगी—सब डूबेंगी
पा नव मानवता का विकाश,
हँस देगा स्वर्णिम वज्र-लौह
छू मानव-आत्मा का प्रकाश !

भारत का शक्कर का व्यवसाय

लेखक, श्रीयुत सीतलासहाय

भारतवर्ष को इस बात का प्राकृतिक और जन्म-सिद्ध अधिकार है कि वह सारे पृथ्वी-मण्डल को शक्कर बना कर खिलावे। इस देश में ईख की खेती कोई चार हज़ार वरस से हो रही है। भारत की अधिकांश भूमि ईख की उपज के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। केवल अकेले इस व्यवसाय के विकसित हो जाने पर इस देश में लाखों आदमियों को जीवनपर्यन्त लाभदायक रोज़गार और सुखमय जीवन मिल सकता है और प्रतिवर्ष करोड़ों की सम्पत्ति पैदा हो सकती है।

केवल तीन वर्ष हुए, सरकार ने शक्कर के व्यवसाय को संरक्षण दिया है और वह भी सम्पूर्ण संरक्षण नहीं। फिर भी हम तीन वर्ष के अन्दर ही ७ लाख ८० हज़ार टन शक्कर बनाने लग गये हैं, जिसका मूल्य १५ करोड़ ६० लाख रुपये के क़रीब होता है। इसके अलावा हम कम से कम २७ लाख मन गुड़ प्रतिवर्ष बनाते हैं और ६० लाख मन खड़सारी शक्कर। अगर इस देश की सरकार इस व्यवसाय की उन्नति में उसी उत्साह के साथ दिलचस्पी ले, जिस उत्साह से ब्रिटिश गवर्नमेंट अपने यहाँ के व्यवसायों की उन्नति में दिलचस्पी ले रही है, तो दस वर्ष में हम प्रतिवर्ष १५ लाख टन शक्कर बना सकते हैं और हमारा केवल शक्कर का व्यवसाय ही ३२ करोड़ रुपये का हो सकता है। यही व्यवसाय लाखों भारतीयों को रोज़ी से लगा देगा और इस दरिद्र देश को कुछ सम्पन्न कर देगा।

समाचारपत्रों से मालूम होता है कि ब्रिटिश गवर्नमेंट ब्रिटेन में शक्कर के व्यवसाय की सहायता के लिए क़ानून बना रही है। कृषि-मंत्री मिस्टर इलियट पार्लियामेंट में एक बिल गवर्नमेंट की ओर से पेश कर रहे हैं, जिसका आशय यह है कि इस व्यवसाय के लिए गवर्नमेंट की ओर से जो सहायता अभी तक दी जाती रही है, स्थायी कर दी जाय। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह बिल स्वीकृत हो जायगा और शीघ्र ही क़ानून का रूप धारण कर लेगा। नोट करने की बात यह है कि ब्रिटिश पार्लियामेंट के सामने इस बिल का समर्थन करते हुए मिस्टर इलियट ने यह दलील पेश की थी कि इस व्यवसाय से लाखों अँगरेज़ किसानों का पालन-पोषण हो रहा है। अगर गवर्नमेंट ने सहायता बन्द कर दी तो जो आठ लाख किसान इस रोज़गार में लगे हुए हैं, बेकार हो जायँगे। बहुत मुनासिब दलील है और देश-भक्त कृषि-मंत्री मिस्टर इलियट को जैसा सोचना चाहिए वैसा ही उन्होंने सोचा है। प्रजा के रोज़गार का बढ़ाना आज-कल सभी गवर्नमेंटों का परम कर्तव्य हो रहा है।

शक्कर के ब्रिटिश व्यवसाय के बारे में पारसाल एक कमिटी बनी थी—ग्रीन-कमिटी। वह इस नतीजे पर पहुँची थी कि "हमारी यह ज़ोरदार राय है कि ऐसे व्यवसाय पर जिसके बारे में कभी इस बात की सम्भावना नहीं हो सकती कि वह अपने पैरों पर खड़ा हो सकेगा, या ऐसी फ़सल के लिए जिसकी उपज गवर्नमेंट की सहायता के बिना, शक्कर का मौजूदा भाव देखते हुए, कोई एक टके को भी लेने को तैयार नहीं होगा, लाखों पौंड प्रतिवर्ष ख़र्च करना कदापि न्याय-संगत नहीं है"।

ब्रिटिश गवर्नमेंट सन् १९२४ से आज तक ५ करोड़ पौंड अर्थात् ६५ करोड़ रुपये सरकारी ख़ज़ाने से इस व्यवसाय को जीवित रखने के लिए ख़र्च कर चुकी है, यद्यपि इस व्यवसाय से आज तक इतना मुनाफ़ा नहीं निकला है।

मिस्टर इलियट और ब्रिटिश गवर्नमेंट ने अपने शक्कर के व्यवसाय की सहायता का निश्चय ग्रीन-कमिटी की रिपोर्ट की आलोचना के बाद किया है।

ब्रिटिश गवर्नमेंट की यह नीति आश्चर्य-जनक नहीं है। वह तो बहुत दिनों से अपने अनेक व्यवसायों की रक्षा के लिए करोड़ों रुपये ख़र्च कर रही है। जहाज़ बनाने के व्यवसाय को इस वर्ष भी उसने ३ करोड़ रुपये की सहायता दी है। ब्रिटेन स्वदेशी का सच्चा अनुयायी है। ब्रिटेन में शक्कर के व्यवसाय में स्वावलम्बी होने की, ग्रीन-कमिटी की रिपोर्ट के अनुसार, कभी सम्भावना नहीं है। यह व्यवसाय ६५ करोड़ रुपया प्रतिवर्ष आज दस वर्ष से खा रहा है और ज़रा भी तरक्क़ी नहीं कर सका है। इस पर भी ब्रिटिश गवर्नमेंट इसको सहायता देती आई और अब इस सहायता को स्थायी कर रही है। भारत-सरकार को ब्रिटिश गवर्नमेंट की इस नीति का अनुसरण करना चाहिए। भारतवर्ष में शक्कर के व्यवसाय की उन्नति के लिए तो असीम सम्भावनायें हैं।

विश्वसनीय ख़बर है कि शीघ्र ही एक कमिटी बिठाई जानेवाली है, जिसका उद्देश यह होगा कि वह सन् १९३२ के शक्कर-संरक्षण-क़ानून के प्रभाव पर विचार करे और इस बात पर राय ज़ाहिर करे कि इस क़ानून को वापस ले लेना कहाँ तक मुनासिब होगा। सन् १९३२ में जब शक्कर-संरक्षण-क़ानून पास हुआ था, एक हंडरवेट विलायती शक्कर पर (जो डेढ़ मन के क़रीब होता है) गवर्नमेंट ने ७।) टैक्स बाँध दिया था। इस पर २५ प्रतिशत सर चार्ज टैक्स और लगा। विलायती शक्कर पर इस प्रकार एक हंडरवेट पर ९—) का कर लग गया। और इस क़ानून को सन् १९४६ तक जारी रखने का निश्चय किया गया। इस टैक्स की वजह से जावा और अन्य स्थानों की विलायती शक्कर हिन्दुस्तान में महँगी पड़ने लगी और देशी व्यवसाय को पनपने का मौक़ा मिल गया। सन् १९३२ से १९३५ तक अर्थात् केवल तीन वर्षों के अन्दर शक्कर के व्यवसाय ने इस देश में असाधारण उन्नति की। पूँजी जिसे कहा जाता है कि भारतवर्ष में कम लगाई जाती है, बात की बात में उबल पड़ी। २० करोड़ रुपये के क़रीब की पूँजी इस व्यवसाय में फ़ौरन लग गई। युक्त-प्रान्त और बिहार के प्रदेश तो इस क़ानून से बहुत लाभ में रहे। संयुक्त-प्रान्त के खीरी, सीतापुर, गोरखपुर, बस्ती, हमीरपुर इत्यादि ज़िलों के जो अन्तस्थल पहले उजड़े हुए थे, इस संरक्षण के कारण गुलज़ार हो गये। करोड़ों रुपये की सम्पत्ति इन स्थानों में आकार एकत्र हो गई। आस-पास के लाखों किसानों और मज़दूरों को रोज़गार मिल गया। १९३० में इस देश में शक्कर बनाने की कुल ४८ मिलें थीं—५ मदरास में, १ बम्बई में, २ पञ्जाब में, १ ब्रह्मदेश में, १३ बिहार में और २६ युक्तप्रान्त में। १९३४ में ११५ मिलें हो गईं, और १९३५ में १३८। १० मदरास में, ६ बम्बई में, ७ पञ्जाब में, ५ बङ्गाल में, २ ब्रह्मदेश में, ३५ बिहार में और ६५ युक्त-प्रान्त में। १९३१ और १९३५ के बीच मिलों की संख्या में ४०० प्रतिशत की वृद्धि हुई!

इतना हम जानते हैं कि किसानों को शक्कर-संरक्षण-बिल से काफ़ी फ़ायदा हुआ है। सारे भारत में गन्ने की खेती १९२९-३० में २६,७७,००० एकड़ में थी, १९३३-३४ में ३३,४९,००० एकड़ में हो गई। उत्तर-भारत में जहाँ पहले पोस्ता की खेती होती थी और जिसके बन्द कर दिये जाने से किसान बरबाद हो गये हैं, आज गन्ने की खेती भगवान् की कृपा समझी जाती है। रायबरेली के ज़िले में (और क़रीब क़रीब सभी ज़िलों में जहाँ पोस्ता बोया जाता था) पोस्ता के कारण ही लगान की मात्रा असाधारण रूप से बढ़ गई थी और आज तक बढ़ी चली आती है। पहले यह क़ायदा था कि एक किसान १० बीघा खेत लेता था। साधारण रूप से दुमट खेत के लिए जहाँ पानी की सुविधा है, दस बीघे के लिए ७५) रुपये लगान मुनासिब माना जा सकता है। जब पोस्ता की बुआई होती थी, इस १० बीघे के लिए १५०) रुपये दे देना किसान को ज़रा भी नहीं अखरता था, क्योंकि १ बीघा पोस्ता बोकर वह साल में १५० रुपये आसानी से पैदा कर लेता था, और इससे वह अपना लगान अदा कर लेता था और बाक़ी नौ बीघे की खेती की उपज उसके कुटुम्ब के ख़र्च के लिए और ताल्लुक़ेदार और उसके मुलाज़िमों की नज़रों और नज़रानों में ख़र्च होती थी। केवल रायबरेली-ज़िले में सन् १९०३ में २८ हज़ार एकड़ में पोस्ता की खेती होती थी। सन् १९०० में इस ज़िले में ५ हज़ार मन अफ़ीम पैदा हुई थी और इससे १५ लाख रुपये प्रतिवर्ष किसानों को लाभ होता था*। इसी प्रकार अन्य ज़िलों का भी हाल समझा जा सकता है। किन्तु जब इस प्रदेश में

* डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर सफ़ा ३३।

पोस्ता की खेती रोकी गई, तब लगान घटाने का कोई इन्तज़ाम नहीं किया गया। लगान वही १५०) का १५०) बना रहा। किसानों की आपत्ति का यह श्रीगणेश था। पोस्ता की खेती के बन्द हो जाने से जो घाटा किसान-समुदाय को हुआ है, ईख की खेती से उसकी पूर्ति हो जायगी।

गन्ने की खेती में जहाँ नहर है या जहाँ पानी की सुविधा है, किसान को लगान वग़ैरह सब ख़र्च दे देने के बाद साधारण फ़सल में ६५) रुपये प्रतिबीघा की बचत होती है। दो बीघे की गन्ने की खेती से किसान १० बीघे का लगान दे सकता है। अभी तक गन्ने की बिक्री का गाँवों में इतना अच्छा इन्तज़ाम नहीं है, जितना पोस्ता बेचने का था। उपज में भी अनेक दिक़्क़तें आती हैं। लेकिन ये सब हटाई जा सकती हैं। ज़रूरत इस बात की है कि किसान को इस बात का विश्वास हो जाय कि उसका गन्ना अगले दस वर्ष तक ५ आने या ६ आने मन के हिसाब से बिकता जायगा। इस विश्वास के बाद सारे अवध, बिहार, पञ्जाब और सीमा-प्रान्त में गन्ने की खेती बहुत तेज़ी के साथ बढ़ने लगेगी और उसके साथ ही साथ किसानों की आमदनी भी।

लेकिन कठिनाई क्या है? किसान की दृष्टि से एक कठिनाई तो यह है कि सरकार की ओर से उसे गन्ने की खेती में विशेष सहायता नहीं मिलती। अगर नहर नहीं है तो कुएँ का इन्तज़ाम कोई भी तालुक़ेदार नहीं करता। गवर्नमेंट का कृषि-विभाग आकाश में मँडराता रहता है। उसके प्रयोग ऐसी परिस्थिति में होते हैं जो सिवा प्रयोगशाला के हाते के, इस देश में कहीं भी अन्यत्र नहीं पाये जाते। इसलिए यह विभाग जिन नतीजों पर पहुँचता है या किसानों को जो सलाहें देता है, कभी उपयुक्त साबित नहीं होतीं। लेकिन यह तो दूसरी बात है।

इस समय अंदेशा किसानों को और व्यवसायियों को यह है कि कहीं १९३२ का शक्कर-संरक्षण-क़ानून अवधि के पहले ही वापस न ले लिया जाय। एक ज़ोरदार आन्दोलन चलाया जा रहा है, जिसका उद्देश यह है कि अगर यह क़ानून समय के पहले मन्सूख़ न कराया जा सके तो इसका प्रभाव तो ज़रूर ही नगण्य कर दिया जाय। एक कमिटी जैसा पहले कहा गया है, शीघ्र बिठाई जायगी जो १९३२ के शक्कर-संरक्षण-क़ानून के प्रभावों का अध्ययन करेगी, और यह सलाह देगी कि अगर संरक्षण-क़ानून समय के पहले वापस ले लिया जाय तो कहाँ तक मुनासिब होगा। इस कमिटी का बिठाना ही हम आपत्तिजनक मानते हैं। जब १९३२ के क़ानून के साथ इस बात का साफ़ आश्वासन मिला है कि यह क़ानून १९४६ तक क़ायम रहेगा, कोई वजह नहीं मालूम होती कि कोई कमिटी बिठा कर इस आश्वासन का निरादर किया जाय। हमें शङ्का होती है, क्योंकि १९३२ में दिये हुए संरक्षण में १।–) की कमी सन् १९३४ में हो चुकी है। शक्कर के देशी व्यवसाय पर गवर्नमेंट ने १ अप्रेल सन् १९३४ से १।–) प्रति हंडरवेट चुङ्गी लगा दी है।

ईख हमारी बहुत पुरानी खेती है और गुड़ हमारा बहुत पुराना व्यवसाय है। और गौड़-देश की अगर हम यह परिभाषा करें कि 'वह देश जहाँ गुड़ पैदा होता हो' तो बेजा न होगा। भारत से बढ़ कर गन्ने की उपज के लिए कोई दूसरा स्थान उपयुक्त नहीं। हमारा यह जन्मसिद्ध और ईश्वरदत्त अधिकार है कि हम शक्कर के व्यवसाय में संसार भर में सबसे आगे रहें।

क्या यह आश्चर्य और खेद की बात नहीं है कि वही भारत विदेशी शक्कर ख़रीदे। १९२१-२२ में हमने विदेशों से २७½ करोड़ रुपये की शक्कर ख़रीदी थी, जिसमें से २३½ करोड़ की जावा से आई थी। ५ वर्ष के बाद यह वैदेशिक व्यापार रुपयों की सूरत में कुछ घटा, क्योंकि शक्कर का भाव गिर गया था। हमने १९२६-२७ में १८ करोड़ ८९ लाख रुपये की विदेशी शक्कर ख़रीदी, जिसमें से १४ करोड़ रुपये की जावा से आई थी। सन् १९३०-३१ में हमारी ख़रीद घट कर १० करोड़ और ९६ लाख की रह गई। इनमें ९ करोड़ ८५ लाख की शक्कर जावा की थी। इन अंकों से यह ग़लत आभास हो जाता है कि सन् १९२० और सन् १९३० के अंदर शक्कर का वैदेशिक व्यापार घटा। वास्तव में बात यह है कि दाम तो ज़रूर घटे, लेकिन मात्रा में ज़्यादती हुई थी। सन् १९२०-२१ में इस देश में ७,८२,६६८ टन विदेशी शक्कर आई थी। सन् १९२६-२७ में ९,२२,८६२ टन और सन् १९३०-३१ में १०,०३,१७७ टन आई। संरक्षण-क़ानून के पास होने के बाद विलायती शक्कर का ज़ोर इस देश में ज़रूर कम हुआ। १० लाख ३ हज़ार ११७ टन घटकर १९३२-३३ में ४ लाख १ हज़ार ४४१ टन रह गये और क़ीमत १० करोड़ ९६ लाख रुपये से घट कर ३२-३३ में ३ करोड़ ८० लाख रह गये थे। सन् १९३४ में हमने २ लाख ६० हज़ार टन शक्कर विदेशों से ख़रीदी और सन् १९३५ में २ लाख २० हज़ार टन। अगर शक्कर-संरक्षण क़ायम रहे तो दस बरस के अंदर हम इतनी उन्नति कर सकते हैं कि शक्कर के लिए हम स्वावलंबी हो जायँगे, साथ ही दुनिया की माँग में भी हिस्सा बँटा सकेंगे। अर्थ-शास्त्रज्ञों का विचार है कि हम १९३५-३६ में केवल गन्ने से ८,८७,००० टन और १९३६-३७ में १०,०७,००० टन शक्कर बना लेंगे। हमारी स्वदेशी माँग ९ लाख टन की है। अतएव १ लाख ७ हज़ार टन शक्कर हमारे पास विदेशों को भेजने के लिए बच जायगी।

इस पृथ्वी पर शक्कर बनानेवाले प्रमुख देश चंद ही हैं। भारतवर्ष की दृष्टि से पहला नम्बर जावा का है। यह मलाया-द्वीपों में से एक साधारण द्वीप है और डच लोगों के क़ब्ज़े में है। इसका क्षेत्रफल ५० हज़ार वर्गमील होगा और इसकी आबादी २ करोड़ के क़रीब है। वहाँ की मिलें यों तो डचों की हैं, किन्तु इन मिलों में अनेक अँगरेज़ी पूँजीपतियों का भी काफ़ी हिस्सा है। भारत ने इस द्वीप का शक्कर के व्यापार में बहुत बड़ा सम्बन्ध रहा है। जावा के बाद हम मारिशस को ले सकते हैं। यह ब्रिटिश उपनिवेश है और ब्रिटिश भारतीय समुद्र में एक छोटा-सा टापू है। ७२० वर्गमील इसका क्षेत्रफल है और इसकी आबादी पौने चार लाख के क़रीब होगी, जिसमें आधे से ज़्यादा हिन्दुस्तान का कुली-समुदाय शामिल है। हिन्दुस्तान की शक्कर की माँग जावा के बाद मारिशस ही पूरी कर रहा था। सन् १९२०-२१ में इस प्रदेश से सवा ३ करोड़ रुपये की शक्कर इस देश में आई थी। लेकिन अब बिलकुल बन्द है। यद्यपि हाँग-काँग, इँग्लैंड, मिस्र, जापान, जर्मनी, और आस्ट्रिया-हंगरी, ये सब देश कुछ न कुछ शक्कर भारतवर्ष में बेचते रहे हैं, तथापि मात्रा साधारण रही है। और अब इनका व्यापार धीरे धीरे मन्द गया है।

संसार में शक्कर का व्यापार—अब हम थोड़ी के लिए संसार भर में शक्कर के व्यवसाय की ओर दें। हिन्दुस्तान की माँग तो जावा पूरी करता रहा लेकिन संसार की शक्कर की माँग योरप और अमरीका अनेक प्रान्तों-द्वारा होती रही है। इनमें क्यूबा द्वीप सबसे पहला स्थान है। क्यूबा अमरीका के दक्षि मेक्सिको की खाड़ी में एक द्वीप है। पहले यह स्पेन क़ब्ज़े में था। लेकिन इसे अमरीका ने छीन लिया अ यहाँ प्रजातंत्र की स्थापना हो गई। इसका क्षेत्रफल हज़ार वर्गमील है और आबादी ३६ लाख के क़रीब होगी इसमें ताँबे की बहुत बड़ी खानें हैं, तम्बाकू और क़ह की उपज ख़ूब है, और शक्कर का तो यह घर ही है। इ का सारा व्यवसाय अमेरिकन पूँजीपतियों के हाथ में है

संसार की शक्कर की सम्पूर्ण उपज २ करोड़ ७३ ला टन में से १९३०-३१ में ३१ लाख २२ हज़ार टन केव क्यूबा ने पैदा की थी। यह जावा और जर्मनी दोनों अधिक शक्कर पैदा करनेवाला द्वीप है, क्योंकि जावा उस वर्ष केवल २८ लाख टन और जर्मनी ने २५ ला २९ हज़ार टन शक्कर पैदा की थी। क्यूबा की सम्पूर्ण उप पहले अमरीका जाती है। अमरीकन क़ौम भी हिन्दुस्तान क़ौम की तरह बहुत मिष्टान्न-प्रिय है और वहाँ प्रतिवर्ष ६ लाख टन शक्कर खप जाती है। अमरीका के प्रजातन्त्र क्यूबा की शक्कर २० वीं शताब्दी से ही निष्कर दाख़ि होती आई है।

अन्य देशों से आई हुई शक्कर पर टैक्स लगा दि जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि अमरीका को शक्क के लिए केवल क्यूबा पर निर्भर रहना पड़ता है। अमरीक में गन्ने की शक्कर बनती है और चुक़न्दर की भी। हवाई पोर्टो रिको, और फ़िल्पाइन भी अपने अपने यहाँ शक्क बना कर उसे अमरीका में बेचते हैं।

क्यूबा के बाद जर्मनी का नम्बर है। १९३०-३१ के आँकड़ों के आधार पर संसार के शक्कर बनानेवाले देशों में इसका नम्बर तीसरा था। यहाँ उस वर्ष २५ लाख २९

हज़ार टन शक्कर बनी थी। फिर ज़ेकोस्लोवेकिया का नम्बर है। इसमें ११ लाख २६ हज़ार टन शक्कर बनी थी। इसके बाद पोलेंड का नम्बर है, जहाँ ७ लाख ९२ हज़ार टन शक्कर बनी।

इस स्थल पर १९३१ के शैडबोर्न-समझौते का ज़िक्र कर देना ज़रूरी मालूम होता है। यह शैडबोर्न-समझौता संसार के शक्कर बनानेवाले देशों का आपसी समझौता इस उद्देश से हुआ था कि शक्कर की उपज ज़्यादा न की जाय, जिससे उसका भाव न गिरे। इस समझौते में क्यूबा, पेरू, जावा, जर्मनी, ज़ेकोस्लोवेकिया, पोलेंड आदि देश शामिल थे। इसमें यह तय हुआ था कि पाँच बरस तक एक निश्चित मात्रा से अधिक शक्कर कोई भी देश बाहर न भेजेगा। इनका ख़याल था कि ऐसा करने से शक्कर का भाव ऊँचा हो जायगा और उसके व्यापार में स्फूर्ति आयेगी। लेकिन यह शैडबोर्न-योजना असफल रही।

प्रश्न यह होता है कि शैडबोर्न-समझौता क्यों हुआ? युद्ध के बाद संसार भर के राष्ट्रों को इसका अनुभव हो गया कि स्वदेशी का सिद्धान्त बहुमूल्य सिद्धान्त है। प्रत्येक राष्ट्र को अपनी आवश्यकता की चीज़ों के लिए पराये देशों पर निर्भर रहना बेहद बेवक़ूफ़ी और ख़तरे की बात है। जर्मनी ने तो अपनी पराजय का मुख्य कारण स्वदेशी के सिद्धान्तों की अवहेलना ही माना है। इसलिए युद्ध के बाद हर एक स्वतन्त्र देश ने विदेशी वस्तुओं पर ज़ोरदार कर लगाकर अपने अपने यहाँ प्रत्येक क़िस्म के व्यवसाय की उन्नति करना शुरू कर दिया। शक्कर की उपज भी सर्वत्र शुरू हो गई। जहाँ गन्ने की शक्कर नहीं बन सकती थी, वहाँ चुक़न्दर की शक्कर बनने लगी। १९१९-२० में संसार भर में चुक़न्दर से केवल ३२ लाख ५४ हज़ार टन शक्कर बनी थी। १९३०-३१ में १ करोड़ १२ लाख ६२ हज़ार टन चुक़न्दर की शक्कर बनी। प्रत्येक शक्कर बनानेवाले देश ने तो अपनी अपनी उपज ख़ूब ही बढ़ा दी। क्यूबा १९१९-२० में ३७ लाख ३० हज़ार टन शक्कर पैदा करता था, पर १९२९-३० में उसकी उपज ४६ लाख ७१ हज़ार टन हो गई। जर्मनी ने १९१९-२० में ७ लाख ३० हज़ार टन शक्कर बनाई थी, पर १९२९-३० में उसकी उपज १९ लाख ३८ हज़ार टन हो गई। ज़ेकोस्लोवेकिया ने उस साल ४ लाख ८३ हज़ार टन शक्कर बनाई थी। १९२९-३० में उसने १० लाख ७ हज़ार टन बनाई। पोलेंड ने अपनी उपज १ लाख ३९ हज़ार से बढ़ाकर ९ लाख १६ हज़ार टन प्रतिवर्ष कर दी।

परिणाम यह हुआ कि १९३१ में ७० लाख टन शक्कर मालगुदामों में जमा हो गई थी, जिसका कोई भी ख़रीदार नहीं मिलता था। क्यूबा में ही १७ लाख ७२ हज़ार टन शक्कर पटी पड़ी थी। शैडबोर्न का समझौता शक्कर के इस स्टाक को कम करने के लिए हुआ था। इस समझौते के अनुसार हस्ताक्षर करनेवाले देशों ने अपने अपने यहाँ शक्कर की उपज कम की और वैदेशिक निर्यात पर नियन्त्रण किया। इन लोगों ने १ करोड़ २५ लाख टन से अपनी उपज घटाकर ६१ लाख टन कर दी। लेकिन इससे इनका मतलब सिद्ध नहीं हुआ। इन्होंने तो अपनी उपज में ६० लाख टन शक्कर कम की, लेकिन संसार के अन्य देशों ने उसकी पूर्ति कर दी। १९२९-३० में २ करोड़ ७३ लाख टन शक्कर दुनिया भर में बनी थी। १९३३-३४ में २ करोड़ ५१ लाख टन बनी। केवल २२ लाख टन की कमी रही। शक्कर बनानेवाले देशों को ६० लाख टन का नुक़सान हुआ। अमरीका और उससे संयुक्त देशों ने अपनी उपज ३५ लाख टन से ५० लाख टन कर दी और ब्रिटिश साम्राज्य की शक्कर की उपज ४६ लाख टन से ७४ लाख टन हो गई। शैडबोर्न-समझौता इस प्रकार मिट्टी में मिल गया।

संसार भर के लोग साल भर में २ करोड़ ६४ लाख टन शक्कर खा जाते हैं। लेकिन स्वदेशी के सिद्धान्त के प्रचार के कारण अब केवल ३० लाख टन शक्कर के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की गुंजाइश रह गई है। २ करोड़ ३४ टन शक्कर भिन्न भिन्न देश अपने अपने यहाँ बना कर स्वयं काम में ले आते हैं।

(३)

भारतवर्ष में शक्कर के व्यवसाय की असाधारण उन्नति का प्रभाव यह हुआ है कि जो जावा अभी तक शक्कर का व्यापार करके मालामाल हो गया था, उसके व्यापार का

नाश हो गया है। "जावा के प्लांटरों के दृष्टिकोण से" एक सज्जन लिखते हैं—"भारत के इस राष्ट्रीय व्यवसाय के अचानक विकास का नाशकारक प्रभाव पड़ा है। इसी विकास के साथ साथ यह भी हुआ है कि जावा की चीनी का बाज़ार भी उखड़ गया है और जापान से उसका निर्यात व्यापार भी मन्द पड़ गया है। जावा के व्यापार पर इसका प्रभाव हम १९२८ और १९३३ के आँकड़ों की तुलना करके देख सकते हैं। इन दोनों सालों के बीच भारत के साथ जावा का शक्कर का निर्यात-व्यापार १० लाख ९० हज़ार टन से घट कर ३ लाख ५२ हज़ार टन रह गया। चीन और हाँग-काँग का उसका शक्कर का व्यापार ५ लाख १९ हज़ार टन से घट कर २ लाख ९२ हज़ार टन रह गया और जापान और फ़ारमोसा को २ लाख ६५ हज़ार टन के बजाय वह १ लाख ८५ हज़ार देने लगा। जावा को अपनी उपज अपने बढ़िया सालों की अपेक्षा षष्ठांश से अधिक घटाने पर विवश होना पड़ा है। व्यवसायी लोग अपनी शक्कर की मिलें जापानियों के हाथ लोहे के भाव पर बेच रहे हैं। चन्द ऐसे भी हैं जिन्होंने इन मिलों को उखाड़ लिया है और जो अब उन्हें हिन्दुस्तान में लाकर चलाना चाहते हैं।"

ब्रिटिश मंत्रि-मंडल के कृषि-मंत्री मिस्टर इलियेट ने हाल में ही जावा के पूँजीपतियों की प्रेरणा पर एक वक्तव्य दिया है, जिससे हमारा हृदय शंकित हो जाता है। वे कहते हैं कि ब्रिटिश गवर्नमेंट का विश्वास है कि शक्कर की उपज संसार की माँग के मुताबिक़ होनी चाहिए। इसलिए ब्रिटिश गवर्नमेंट विचार कर रही है कि वह शक्कर का निर्यात करनेवाले उपनिवेशों को यह लिखे कि वे ब्रिटिश गवर्नमेंट के सहयोग से इस बात पर विचार करें कि अगर समझौता की कोई सम्भावना हो तो इस विषय में अन्तर्राष्ट्रीय बात-चीत छेड़ी जाय।

यह कथन है यों तो बहुत उचित दिखता है, लेकिन राजनैतिक शब्दावली का अनुवादक इनका यह अर्थ करेगा कि ब्रिटिश गवर्नमेंट इस बात का वादा करती है कि वह शक्कर बनानेवाले देशों में चाहे वे ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर हों या बाहर, समझौता करायेगी। इस समझौते में पहले तो यह तय होगा कि जितनी शक्कर की संसार को ज़रूरत है उससे ज़्यादा न बनाई जाय। फिर यह तय होगा कि कौन देश इस ज़रूरत में से कितना हिस्सा बनावे और बेचे। ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत देशों में ख़ास कर भारत में शक्कर के व्यवसाय की उन्नति रुक जायगी और ईख की खेती को धक्का पहुँच जायगा। ज़ाहिर है कि जिन देशों का राजनैतिक प्रभाव है और जो बहुत दिनों से शक्कर बना रहे हैं, इस बँटवारे में ज़्यादा हिस्सा पायेंगे। हमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कोई भी हिस्सा न दिया जायगा और स्वदेशी बाज़ार में भी जावा आदि देश हमारा हिस्सा बँटा लेंगे। हमारा नवजात व्यवसाय नष्ट हो जायगा। ईख बोनेवाले किसान लोगों को जो लाभ मिल रहा है, नहीं मिलेगा। शैडबोर्न-स्कीम की असफलता की ख़ास वजह—ब्रिटिश साम्राज्य में शक्कर की उपज की ज़्यादती—तो जाती रहेगी, लेकिन इसके साथ साथ हमारी समृद्धि और व्यावसायिक उन्नति भी। बस, यही जावावालों के विकास और हमारे व्यावसायिक अधःपतन का प्रारम्भ होगा। अगर मिस्टर इलियट इस समझौते में सफल रहे तो निस्सन्देह हमें भयंकर नुक़सान पहुँचेगा।

हम यह कहते हैं कि इँग्लेंड कोई भी समझौता किसी से न करे और न कराये। आज उसे* १० लाख टन शक्कर साम्राज्य के बाहर के देशों से ख़रीदनी पड़ती है। पर उन देशों से न लेकर वह दस लाख टन शक्कर भारत से क्यों न ख़रीदे? हम प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये का कपड़ा लंकाशायर से ख़रीदते हैं। अगर इँग्लेंड ने हमारे यहाँ से १० लाख टन शक्कर इसके बदले में ख़रीदी तो उचित ही है।

हम तो उस दिन का स्वप्न देख रहे हैं जब केवल शक्कर के ही व्यवसाय में ही नहीं, बल्कि सारे व्यवसायों में भारत स्वावलम्बी होगा।

---

* १९३० में ब्रिटेन ने ५ लाख ४३ हज़ार टन शक्कर साम्राज्य के देशों से ख़रीदी थी और १३ लाख ७३ हज़ार अन्य विदेशों से। १९३४ में ९ लाख ५० हज़ार टन साम्राज्य के प्रदेशों से और १० लाख टन अन्य देशों से।

हिटलरवाद और यहूदी

लेखक, श्रीयुत आर० एस० पंडित

जर्मनी में हिटलर के नाज़ी शासन का ज़ोर इस बुनियाद पर बढ़ा है कि सारी बुराइयों की जड़ जर्मन-यहूदी हैं और उनके दमन से सब बुराइयाँ दूर हो जायँगी। इसी नीति के अनुसार जर्मनी में यहूदी बुरी तरह सताये गये हैं। फिर भी परिस्थिति ज्यों की त्यों है। इस लेख में श्रीयुत आर० एस० पंडित ने यहूदियों की वर्तमान दुर्दशा का सिंहावलोकन करते हुए यह बताया है कि आर्थिक समस्याएँ इस प्रकार अधिक काल तक टाली नहीं जा सकतीं।

हिटलर के हाल के एक भाषण का, इस देश में तीव्र विरोध हुआ है। हिटलर ने अपने उस भाषण में भारतवर्ष के निवासियों के प्रति घृणा का भाव व्यक्त किया है और कहा है कि वे गोरी जातियों की पराधीनता और उनके औपनिवेशिक शोषण के ही योग्य हैं। इसलिए इस अवसर पर हिटलरवाद, कुलीनता के सम्बन्ध में नाज़ियों के विचार और हिटलर के राष्ट्रीय साम्यवादी दल के उत्पीड़न से अपनी रक्षा करने में असमर्थ जर्मनी की एक अल्पसंख्यक जाति की दुर्दशा का कुछ परिचय प्राप्त कर लेना उपयोगी होगा।

जर्मनी की जन-संख्या ६ करोड़ के लगभग है। इसमें ५ लाख यहूदी हैं और ये जर्मन यहूदी आज अपनी ही जन्मभूमि में अछूत की भाँति घृणा का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। राज्य की नौकरी से वे हटा दिये गये हैं। यदि वे उदारचेता व्यक्ति हैं तो उनकी सुविधायें छिन गई हैं और उनका व्यवसाय नष्ट कर दिया गया है। वे कलाकार-संघ से निकाल दिये गये हैं। यदि वे हाथ या मस्तिष्क से परिश्रम करनेवाले व्यक्ति हैं तो उन्हें श्रम-केन्द्रों में प्रवेश नहीं मिलता। यदि वे विद्यार्थी हैं तो शिक्षा-संस्थाओं में उनका प्रवेश सर्वथा वर्जित है। यहूदियों के कृषि-सम्बन्धी विद्यालय बन्द कर दिये गये हैं और उन्हें कृषि-कार्य करने की आज्ञा नहीं है। प्राचीन काल में यहूदियों पर जब ईसाइयों ने बड़े बड़े ज़ुल्म किये थे तब भी उन्हें व्यापार करने की आज्ञा थी। परन्तु अब यह क्षेत्र भी जर्मन यहूदियों के लिए पूर्णरूप से खुला नहीं है। शुद्ध रक्त के जर्मनों से यह आशा की जाती है कि वे यहूदियों के साथ शादी-विवाह नहीं करेंगे। शासन-सम्बन्धी क़ानूनों में उस सीमा की परिभाषा दी गई है जहाँ तक यहूदियों को जीविकोपार्जन के लिए जाने की आज्ञा है। हाल में एक क़ानून बना है जिससे यहूदी व्यापारियों को फेरी लगाने की मनाही हो गई है। इससे लगभग ३० हज़ार यहूदी बेकार हो गये हैं। इस विषय में हिटलर की सबसे नवीन घोषणा यह है कि यदि इस शासन-पद्धति का 'संतोषजनक परिणाम' न निकले तो 'यहूदियों का प्रश्न' सर्वथा नाज़ीदल के हाथ में सौंप दिया जाना चाहिए। इसका क्या अर्थ है, यह अनुमान करना कठिन नहीं है।

यदि हम नाज़ी-आन्दोलन के क्रमविकास पर दृष्टिपात करें तो हमें ज्ञात होगा कि इसके नेताओं ने आरम्भ से ही यहूदियों के विरोध पर ज़ोर दिया था और यह विरोध उनकी नीति का एक आवश्यक अङ्ग था। राष्ट्रीय साम्यवादीदल का जो कार्य-क्रम २० फ़रवरी सन् १९३० में स्वीकृत हुआ था उसमें अग्रलिखित सिद्धान्त निश्चित हुआ था—

"राष्ट्र के सदस्यों के अतिरिक्त राज्य का और कोई नागरिक नहीं हो सकता। शुद्ध जर्मन रक्तवालों के अतिरिक्त उनका धर्म चाहे जो हो, और कोई राष्ट्र का सदस्य नहीं हो सकता। इसलिए कोई भी यहूदी राष्ट्र का सदस्य नहीं हो सकता।"

जर्मनयहूदियों ने इस धमकी को गम्भीरता से ग्रहण नहीं किया। जर्मन विधान और जर्मन न्याय में उनका अटल विश्वास था। उनके लिए यह सोचना कठिन था कि १९ वीं शताब्दी के मध्य से जो विधान क्रमशः बने हैं और जिनसे 'घेटो' की प्रथा उठ गई है और उन्हें जर्मन नागरिक के रूप में बराबरी के अधिकार प्राप्त हैं, वे कभी रद कर दिये जायँगे। यहूदी कई पीढ़ियों से जर्मनी में रह रहे हैं और उनमें अधिकांश जर्मनों में घुल-मिल गये हैं। जर्मन न्याय में उनका इतना गहरा विश्वास था कि किशिनीर-प्रोग्रोम के हत्याकाण्ड के दिनों में एक रूसी यहूदी ने क़ैसर विलियम (द्वितीय) को टेलिफ़ोन किया था, क्योंकि उसे उनसे सहायता मिलने की पूरी आशा थी।

३० जनवरी १९३३ से नाज़ी लोग जर्मनी के शासक हो गये। पहले उन्होंने घोषणा की कि यहूदियों के अधिकारों पर एक सिरे से आक्रमण करने का उनका इरादा नहीं है। फ़रवरी १९३३ में "राईशटाग" में आग लगने के बाद गोरिङ्ग ने घोषणा की कि "यदि यहूदियों के व्यवहार राजभक्तिपूर्ण होंगे और वे अपने व्यवसाय में लगे रहेंगे तो उन्हें कोई भय नहीं होगा। परन्तु हम नहीं चाहते कि वे राष्ट्र के कर्णधारों के आसन पर विराजमान हों और उनका वहाँ पहुँचना हमें सह्य नहीं होगा।"

नाज़ी-शासन के प्रथम मास की ये सरकारी घोषणायें शीघ्र व्यर्थ हो गईं, क्योंकि नाज़ी अधिकारियों ने ग़ैर क़ानूनी ढङ्गों से यहूदियों को सार्वजनिक पदों से हटाना आरम्भ कर दिया। यहूदी प्रोफ़ेसर और अध्यापक, यहूदी जज और वकील अपने पदों से कुछ कम या कुछ अधिक बलप्रयोग के द्वारा हटा दिये गये। यहूदी डाक्टरों और दन्तचिकित्सकों के कार्यों में भी व्याघात डाला जाने लगा और उनका रोज़गार नष्ट हो गया। यहूदियों और मार्क्सवादियों को समस्त संघों और संस्थाओं से, यहाँ तक कि शतरञ्ज खेलने और तैरने के क्लबों तक से हटा देने का उपक्रम किया गया और यहूदी सौदागर पीड़ित किये गये।

पहले-पहल अप्रेल १९३३ में यहूदियों के विरुद्ध क़ानून पास हुए। वे वास्तव में उन आर्डिनेंसों के समान थे जिनसे हम भारतवासी ब्रिटिश शासन में सुपरिचित हैं। ख़ैर, जर्मन आर्डिनेन्सों का प्रभाव भयानक था और उन्होंने यहूदियों के विरुद्ध जो ग़ैर क़ानूनी कार्य हो चुके थे उनको भी क़ानूनी ठहरा दिया। उसी महीने में यहूदियों को सिविल सर्विस से हटाने का क़ानून पास हुआ और 'आर्यन पैराग्राफ़' सार्वजनिक नौकरियों के प्रत्येक क्षेत्र में लागू हो गया और वैज्ञानिक, जज, अध्यापक या डाक्टर के रूप में यहूदियों की योग्यता की ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया गया। राईश की एक सांस्कृतिक सभा के द्वारा यहूदियों का सांस्कृतिक कार्य भी रोक दिया गया।

ऐसी परिस्थिति में लगभग १ लाख यहूदी जर्मनी से भाग गये। परन्तु लगभग ५ लाख फिर भी इस आशा में वहाँ बस रहे कि कदाचित् यह सरकारी दमन शीघ्र ही शान्त हो जायगा। परन्तु ये आशायें निराधार सिद्ध हुईं।

जुलाई १९३५ में नाज़ी-शासन की आर्थिक दुरवस्था के कारण यहूदियों के विरुद्ध और भी भयानक प्रचार आरम्भ हुआ। जनता का ध्यान आकर्षित करने के लिए यहूदियों के ऊपर इलजाम लगाया। गत वर्ष जुलाई में नाज़ियों ने 'पोग्रोम्स' का नाटक रचा। स्ट्रीचर ने यह माँग पेश की कि समस्त यहूदी नपुंसक बना दिये जायँ। जर्मन-वंशीय डाक्टरों की हैसियत से ५०० डाक्टरों ने यह क़ानून बनाने की माँग पेश की कि जो आर्यवंशीय स्त्रियाँ यहूदियों से वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ें वे नागरिकता के अधिकार से वञ्चित की जायँ, किसी श्रमिक कैम्प में नज़रबन्द कर दी जायँ और बन्ध्या बना दी जायँ। यहूदी-विरोधी यह आन्दोलन वहाँ विविध स्वरूपों में प्रकट हुआ। उदाहरण के लिए सड़क के किनारे एक भोजनालय के साइनबोर्ड पर यह लिखा देखा गया कि "हम यहूदियों के रक्त को शराब की भाँति पीते हैं।" बवेरिया की एक सड़क पर मोटर चलानेवालों के लिए एक ख़तरनाक मोड़ की सूचना इस प्रकार लगाई गई थी—"सावधान! अत्यन्त ख़तरनाक

मोड़! यहूदी १२० किलोमीटर प्रतिघंटा के हिसाब से जा सकते हैं।"

नाज़ियों ने यहूदियों के मंदिरों और क़ब्रगाहों का अपमान करके और उपासनागृहों को नाज़ी-क्लबों में परिणत करके अपने अस्तित्व का परिचय दिया। बर्लिन के जूडेन केनर यहूदियों के विरुद्ध विष उगलने में स्टीशर के भी आगे है। उसने अगस्त में यह घोषणा की कि "यहूदी-धर्म का किसी को नाम भी नहीं लेना चाहिए, क्योंकि जर्मन-मत के अनुसार यहूदियों की धमपुस्तकों में जो सिद्धान्त मिलते हैं वे धर्म नहीं हैं। हमारे कार्यक्रम में इस बात की आवश्यकता है कि यहूदियों के धर्मतत्त्व वर्जित कर दिये जायँ, उनके उपासना-गृह नष्ट कर दिये जायँ और यहूदी-सिद्धान्तों के प्रचारकों को मृत्युदण्ड दिया जाय।" धर्मद्रोही विधानों की इससे अधिक वकालत और कोई क्या करेगा?

१९३५ के पतझड़-काल में नूरेमबर्ग में दक़ियानूसी नाज़ियों की विजय के बाद हिटलर का जो घोषणापत्र पढ़ा गया उसमें यह कहा गया कि राष्ट्रीय साम्यवादी राज्य यहूदियों, मार्क्सवादियों और इनसे सम्बन्ध रखनेवाली प्रजातंत्र-प्रणाली को अपना अभिशापित शत्रु समझता है। इस घोषणापत्र के फलस्वरूप सितम्बर १९३५ में कुछ क़ानून बने जो संक्षेप में इस प्रकार हैं—

नागरिकता के अधिकारों पर रोक—पहले क़ानून के अनुसार वे यहूदी भी जिनके परिवार जर्मनी में शताब्दियों से बसे थे, नागरिकता के अधिकार से वञ्चित कर दिये गये। केवल वे ही व्यक्ति जो शुद्ध जर्मन-जाति से सम्बन्ध रखते हैं और जिन्होंने राईश के प्रति अपनी राजभक्ति का प्रमाण दिया है, नागरिक हो सकते हैं। यहूदी एक विशेष पराधीन स्थिति में डाल दिये गये हैं और वे 'राज्य की सम्पत्ति' माने गये हैं। ऐसी दशा में उन्हें किसी प्रकार का भी राजनैतिक अधिकार नहीं दिया गया है।

चलने फिरने की स्वाधीनता—यह यहूदियों को प्राप्त नहीं है। समस्त जर्मनी में ऐसी सूचनायें जैसे—"कुत्तों और यहूदियों को आने की इजाज़त नहीं है" लगा दी गई हैं और यहूदियों का 'प्रवेश' अजायबघरों, थियेटरों, स्नानगृहों आदि में भी 'निषिद्ध' ठहराया गया है। यह बात शहर और गाँव दोनों जगह एक-सी है। गोरिङ्ग के समाचारपत्र 'एसेनर नेशनल सायटुंग' में उन शहरों, ज़िलों या स्थानों के नाम प्रकाशित किये जाते हैं जिनके बारे में उसे यह पता चलता है कि वे अब यहूदियों से मुक्त हैं।

सम्पत्ति का स्वामित्व—जर्मनी के बहुत-से भागों में यहूदियों को अचल सम्पत्ति का स्वामित्व वर्जित है और वे ऐसी सम्पत्ति किराये पर भी नहीं ले सकते। बायकाट या बलप्रयोग की धमकी के कारण उन्हें अपनी सब प्रकार की सम्पत्ति और व्यापार स्वतः बेच देना पड़ा है। इसका अर्थ यह हुआ कि उन्होंने अपनी सम्पत्ति आर्यों को एक गीत के बदले में दे दी। प्रान्तीय शहरों से जहाँ का जीवन उनके लिए असह्य हो उठा था भागकर बड़े शहरों में जाने पर उन्हें उनमें बसने के अधिकार से भी वञ्चित होना पड़ा!

यहूदी और झण्डा—एक दूसरे क़ानून के अनुसार 'स्वस्तिक' राष्ट्रीय झण्डा बनाया गया है। गोरिङ्ग ने इसे संसार का 'यहूदी-विरोधी' चिह्न बताया है। इस झण्डे का यहूदी प्रदर्शन नहीं कर सकते। वे चाहें तो 'ज़ायोनिज़्म' का सफ़ेद और नीला झण्डा उड़ा सकते हैं।

जर्मन क़ानून और सम्मान—एक दूसरा क़ानून यह घोषित करता है कि जर्मन-जाति का स्थायित्व जर्मन-रक्त की शुद्धता पर निर्भर है। इसलिए यह क़ानून निम्नलिखित आदेश उपस्थित करता है—(१) यहूदी और जर्मन या जर्मन-जाति से सम्बन्ध रखनेवाली जाति के बीच विवाह वर्जित है। और इसके लिए सपरिश्रम कारावास के दण्ड का विधान है। जर्मनी से बाहर भी किये गये ऐसे विवाहों के सम्बन्ध में यही क़ानून लागू किया जाता है। (२) ऐसी जातियों में विवाह के बाहर ऐसे सम्बन्ध वर्जित हैं और उनके लिए भी सज़ा या जुर्माना या दोनों की व्यवस्था है। (३) यहूदियों को ४५ वर्ष से कम आयु की जर्मन-स्त्री को नौकर रखने की आज्ञा नहीं है। इस क़ानून का उल्लङ्घन करने पर १ वर्ष की सज़ा या जुर्माना या दोनों दण्ड दिये जाते हैं।

पृथक् निवास—सितम्बर के क़ानूनों के अनुसार यहूदी लड़कों के लिए पृथक् स्कूलों की व्यवस्था की गई है।

दुःखी जर्मन यहूदी को सिर्फ़ एक सुविधा बची है। वह है नाज़ी-सेना में भर्ती होना और कदाचित् एक दिन तृतीय राईश के यश के लिए प्राण देना।

इधर जर्मन-निवासियों पर से हिटलर का जादू अब कुछ कुछ उतरने लगा है। नाज़ियों के लिए अब कोई वैसा उत्साहपूर्ण प्रदर्शन नहीं होता। घटनाओं ने सिद्ध कर दिया है कि यह चिल्लाहट की सारी बुराइयों की जड़ यहूदी हैं, ग़लत है। बहुत-सी जगहों में लोग यहूदियों के प्रति सहानुभूति के साथ बर्ताव भी करने लगे हैं। नाज़ी शासकों को भीषण अर्थसंकट का सामना करना है। इसे वे जातीय संस्कार के द्वारा हल नहीं कर सकते। आर्थिक समस्यायें कैथलिकों और साम्यवादियों के साथ जर्मनी को जिस दिशा की ओर लिये जा रही हैं वे आख़िरकार जर्मन-यहूदियों का ही नहीं, समस्त जर्मन-निवासियों का भाग्य स्थिर कर देंगी।

वह तट

लेखक, श्रीयुत देवीप्रसाद गुप्त (कुसुमाकर), बी० ए०, एल-एल० बी०

केवट! मुझको वहाँ न ले चल, कहना मान—न जाऊँगा।
लौटा दे ऐ छली! कभी अब, तेरे साथ न आऊँगा॥
लौटा दे विनती करता हूँ, जो माँगेगा मैं दूँगा।
किन्तु न अब तो कभी भूलकर, उस तट को मैं देखूँगा॥

× × × × ×

उधर लिये ही जाता है तू, मना किये मैं जाता हूँ।
कहता हूँ बस रोक अन्यथा, नौका मैं उलटाता हूँ॥
क्या?—"व्यापार स्वर्ग सम सुन्दर सब चलते हैं उस तट पर,"
नहीं—झूठ है, मुझसे ही सब, कर मलते हैं उस तट पर॥
अभी अभी तो उस तट ही पर, चिता रचाई थी मैंने।
अपनी प्रिय स्वर्गीय आश को, वहाँ जलाई थी मैंने॥

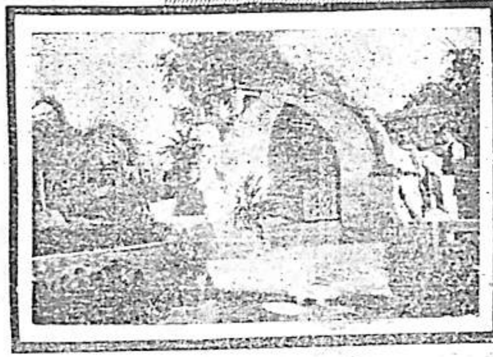
× × × × ×

हाय हाय तू नहीं मानता—वहीं मुझे ले जायेगा।
मुझे दृश्य उस जली चिता का क्या तू फिर दिखलायेगा॥

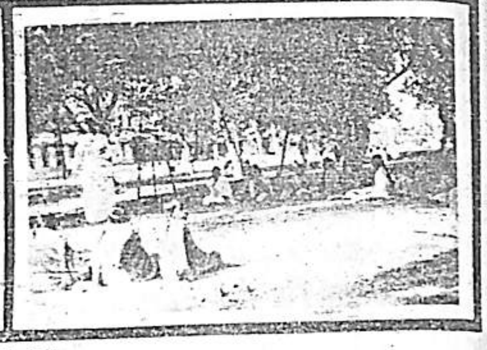
× × × × ×

डाँड़ मुझे दे और कहीं को, जीवन-नौका खेऊँगा।
यदि असफल होऊँगा इसमें तो नौका उलटा दूँगा॥

शान्तिनिकेतन के अनुभव



[गुरुदेव की प्रस्तरमूर्ति, जिसे उनकी पुत्रवधू ने बनाया है।]



[शान्तिनिकेतन का एक क्लास।]

लेखक, श्रीयुत चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार

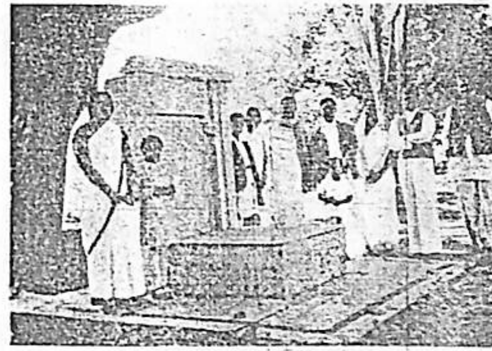
शान्तिनिकेतन देखने की उत्सुकता मुझे बरसों से थी, इसने जब विश्व-भारती के हिन्दी-समाज की ओर से मुझे वहाँ आकर एक व्याख्यान देने का निमन्त्रण मिला तब मुझे सचमुच बड़ी प्रसन्नता हुई।

कलकत्ता से एक अच्छी-ख़ासी पार्टी के साथ मैं शान्तिनिकेतन के लिए रवाना हुआ। पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी, श्रीयुत सुदर्शन, श्रीमती सुदर्शन, श्रीयुत मलिक, श्रीमती सत्यवती मलिक, पण्डित सुरेन्द्रनाथ विद्यालङ्कार, श्रीमती कौशल्यादेवी, मौलवी ज़करिया आदि सज्जन इस पार्टी में थे।

बोलपुर स्टेशन से चलकर हमारा कार जब शान्तिनिकेतन पहुँचा तब रात का अन्धकार सभी ओर व्याप्त हो चुका था। अतिथिशाला की छत पर खड़े होकर मैंने देखा। सामने अन्धकार में मग्न घने वृक्षों का एक जङ्गल-सा दिखाई दिया। इन वृक्षों के अन्तरालों में कहीं-कहीं बिजली की बत्तियाँ दिखाई दे जाती थीं। सभी ओर गहरा सन्नाटा था। वातावरण शान्त और स्वच्छ था। जब रात और बढ़ गई तब दूर पर सैकड़ों गीदड़ों के एक साथ चिल्लाने की आवाज़ आई। इस आवाज़ से रात का सन्नाटा मानो और भी अधिक गहरा हो गया। इसी समय कहीं दूर पर सङ्गीत की स्पष्ट-सी ध्वनि भी सुनाई दी। क्रमशः यह ध्वनि अतिथिशाला के निकट आने लगी। मैंने बाहर आकर देखा, समीप की वाटिका में अन्धकारमग्न कुछ मनुष्य-पंक्तियाँ-सी दिखाई दीं। लालटेन के अधूरे प्रकाश में यह टोली गाते-गाते अतिथिशाला के निकट होकर एक ओर को बढ़ी जा रही थी। पूछने पर मालूम हुआ कि यह वैतालिक समारोह है। यह अदृष्टपूर्व और अनोखी-सी चीज़ देखकर शान्तिनिकेतन के सम्बन्ध में हम लोगों की उत्सुकता और भी अधिक बढ़ गई।

सुबह नींद से जागकर सबसे पहले मैं खुली छत पर पहुँचा। सूरज निकलने में अभी देर थी। प्रभात के सभी कुछ नया बना देनेवाले प्रकाश में मैंने देखा कि सामने मौलश्री के घने घने वृक्षों का ख़ासा जङ्गल-सा है। वकुल-वृक्षों की नई-नई कोमल पत्तियाँ ओस से मानो नहाई खड़ी थीं। स्वच्छ वायु के हलके-हलके झोंके इन सैकड़ों-हज़ारों पत्तियों को झोंके दे रहे थे। उस पर प्रभात का दिव्य प्रकाश। यहाँ हिमालय नहीं था, गङ्गा नहीं थी,

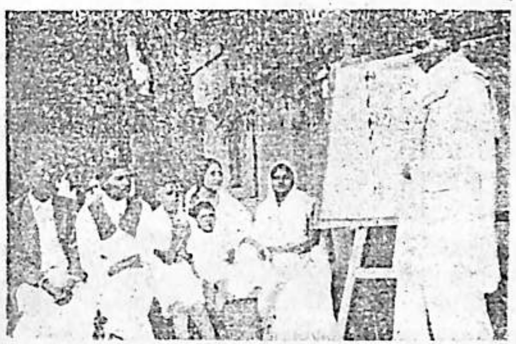
फिर भी, थोड़ी देर के लिए, जैसे मुझे जान पड़ा, यहाँ सभी कुछ है।



[वह स्थान, जहाँ गुरुदेव के पिता जी ने शान्तिनिकेतन नींव डाली थी। (सबसे दाहनी ओर श्री चतुर्वेदी जी खड़े हैं

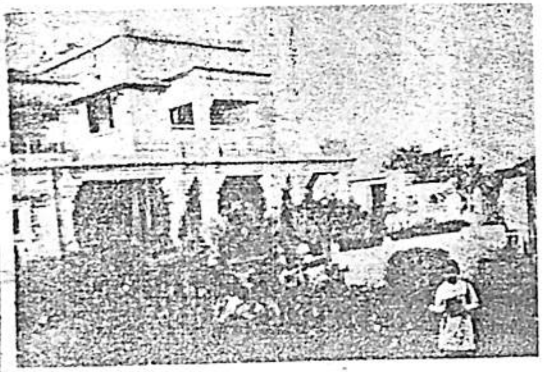
आश्रम का ख़ाका देखने की इच्छा से हम लोगों ने एक चक्कर लगाया। देखा, पक्के मकान सिर्फ़ चार हैं। गुरुदेव का निवासस्थान (परन्तु आज-कल वे उसमें नहीं रहते) सचमुच एक ख़ासे महल के समान है। अतिथिशाला जिसमें हम लोग ठहराये गये थे, पुस्तकालय और लड़कियों का आश्रम पक्के हैं। इनके अतिरिक्त सभाभवन भी पक्का है। एक मञ्चशाला भी है। शेष सभी मकान फूस का छप्पर या टीन की छतें डालकर बनाये गये हैं। दूर तक, जहाँ तक दृष्टि जाती थी, इसी तरह की कलापूर्ण कुटीरें फैली हुई दिखाई देती हैं। वृक्षों की बहुतायत है, खुले मैदान भी कम नहीं। बजरीवाली छोटी-छोटी सड़कें हैं। यहाँ सभी कुछ स्वच्छ, स्वाधीन और साथ ही साथ सुनियंत्रित भी दिखाई देता है।

सुबह सवा छः बजे निकेतन की सामूहिक प्रार्थना होती है। सब लोग पुस्तकालय के सम्मुख एकत्र होते हैं। पहले दो-एक वेदमन्त्र पढ़े जाते हैं और उसके बाद बङ्गाली में एक मधुर गीत गाया जाता है। शान्तिनिकेतन के वातावरण में स्वाधीनता की जो भावना सभी जगह ओतप्रोत-सी है उसका परिचय इस प्रातःकालीन प्रार्थना से ही i जाता है। प्रायः सभी लड़के और लड़कियाँ इस प्रार्थन सम्मिलित होती हैं। परन्तु वहाँ खड़े होने के लिए लोगों ने क़तारें लगाने का कोई निश्चित नियम नहीं रक्खा है। जिसकी जहाँ इच्छा होती है, जा खड़ा होता तीन-चार बड़ी-बड़ी और सीधी क़तारें स्वयं ही लग ज हैं। और उनके अतिरिक्त कम से कम एक दर्जन छो छोटी क़तारें, पुस्तकालय-भवन के सामने, दायें-बायें : आस-पास के वृक्षों के तले छितरा-सी जाती हैं। : पाँच- चार समवयस्क लड़के खड़े हैं, कहीं तीन- लड़कियाँ एक लाइन में एकत्र हो गई हैं। फिर सभी जगह नियम है, व्यवस्था है, शान्ति है।



[शान्तिनिकेतन के एक क्लास का दृश्य (बाईं ओर किनारे पर श्री सुदर्शन जी बैठे हैं।]

मेरे अब तक के जीवन का आधे से आ भाग शान्तिनिकेतन के सदृश एक अन्य विख राष्ट्रीय संस्था में कटा है। प्रबन्ध और स्थिरता दृष्टि से सम्भवतः काँगड़ी का गुरुकुल भारतवर्ष का सर्वश्रेष्ठ ग़ैर सरकारी शिक्षणालय है। गुरु की अपनी प्रथायें और कार्यप्रणाली विकसित हो र हैं। उसकी छाप शायद आवश्यकता से भी आ गहरी पड़ चुकी है। गुरुकुल को यह सौभाग्य ! है कि हिमालय उसके लिए छत्र का काम देता है



[गुरुदेव के निवास-स्थान का पार्श्व-दृश्य ।]

गङ्गा उसका प्रक्षालन करती है। घने जङ्गल, हरे-भरे मैदान, पहाड़ों की ऊँची चोटियाँ, गङ्गा नदी की स्वच्छन्द और तरङ्गित धारायें—यह सभी कुछ काँगड़ी के गुरुकुल के दैनिक जीवन का भाग है। इधर शान्तिनिकेतन में वैसा प्राकृतिक दृश्य नहीं है। बहुत दूर पर कोई छोटी-सी नदी बहती है, पहाड़ दिखाई नहीं देते; जङ्गल भी नहीं हैं। प्राकृतिक सौंदर्य के रूप में जो कुछ है वह जैसे प्रयत्नपूर्वक बनाया गया है।

तो भी शान्तिनिकेतन में मुझे एक ऐसी चीज़ दिखाई दी जो गुरुकुल में नहीं थी, और जिसे देखने के लिए मेरा जी बहुत समय से मानो व्याकुल-सा था। वह चीज़ है शिक्षणालय में व्यक्तित्व के स्वाधीन-विकास का अवसर। काँगड़ी का गुरुकुल जैसे सिर्फ़ एक टाइप के व्यक्ति पैदा करने के लिए खोला गया है। प्राचीन स्पार्टा में जैसे सिर्फ़ वीर पुरुषों की ही क़द्र थी, उसी तरह काँगड़ी के गुरुकुल में सिर्फ़ एक ही ढङ्ग के लोगों की प्रतिष्ठा है। बल्कि यह कहने में भी कुछ अत्युक्ति न होगी कि गुरुकुल में किसी व्यक्ति के कुछ ही गुणों के विकास का अवसर मिलता है। वहाँ के जीवन में मानव-हृदय की अनेक कोमल प्रवृत्तियों और अनुभूतियों के लिए कोई स्थान नहीं है; वे वहाँ पूरी अवशा के साथ देखी जाती हैं। यही कारण है कि अनेक व्यक्तियों को गुरुकुल का वातावरण दम घोंटनेवाला प्रतीत-सा होने लगता है। इसी से शान्तिनिकेतन पहुँचकर मैंने जैसे पाया कि यहाँ का वातावरण मानो सचमुच असीम है, खुला है, उसमें चाहे जितनी गहराई से और जिस प्रकार साँस ली जा सकती है।

और सम्भवतः यही शान्तिनिकेतन की सबसे बड़ी विशेषता है। अनेक प्रान्तीय भाषाओं तथा अँगरेज़ी के अतिरिक्त अन्य भी अनेक विदेशी भाषाओं की पढ़ाई का वहाँ प्रबन्ध है। इसके सिवा प्राच्य और पाश्चात्य दर्शन, इतिहास, साहित्य, उपनिषद्, संस्कृत आदि की उच्च शिक्षा भी वहाँ दी जाती है, साथ ही साथ चित्रकला, संगीत-वाद्य, नृत्यकला और अनेक तरह के धन्धों के सिखाने की भी वहाँ व्यवस्था की गई है। विद्यार्थी चाहे जिस तरह की शिक्षा ग्रहण कर सकता है। महाकवि श्री रवीन्द्रनाथ टाकुर के अतिरिक्त श्री नन्दलाल बोस और श्री क्षितीन्द्रमोहन सेन जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त महापुरुष शान्तिनिकेतन में शिक्षक का काम करते हैं। विद्यार्थियों को रहन-सहन आदि के सम्बन्ध में किसी तरह के कठोर नियमों का पालन नहीं करना पड़ता। अनेक दर्शकों को शान्तिनिकेतन के वातावरण की यह स्वाधीनता खटकती है। अध्यापक और विद्यार्थियों में वहाँ मित्रता



[गुरुदेव]

या बड़े भाई और छोटे भाई का-सा सम्बन्ध ही प्रतीत होता है—शासक और शासित का नहीं। इस पर भी शान्तिनिकेतन का वातावरण बहुत उच्च, श्रेष्ठ तथा शिष्ट विचारों से ओत-प्रोत है। परिणाम यह हुआ है कि पूरी स्वाधीनता के रहते हुए भी शान्तिनिकेतन के विद्यार्थी पथभ्रष्ट नहीं होने पाते। उनके सामने ऊँचे और कलापूर्ण आदर्श सदैव विद्यमान रहते हैं।

शान्तिनिकेतन में सहशिक्षा है—छोटी श्रेणियों से लेकर बड़ी श्रेणियों तक। लड़के और लड़कियाँ वहाँ एक साथ पढ़ती-लिखती हैं, एक साथ खाती-पीती हैं और एक-दूसरे की नज़रों के सामने ही खेलती-कूदती हैं। उनके आश्रम पृथक्-पृथक् हैं; परन्तु परस्पर मिलने-जुलने की उन्हें पूर्ण स्वाधीनता है। इस तरह की पूर्ण सहशिक्षा का प्रभाव वहाँ के वातावरण को अधिक संयत, शिष्ट और कलापूर्ण बनाने में विशेष रूप से सहायक सिद्ध हो रहा है। भारतवर्ष में सहशिक्षा की सफलता का उदाहरण देने के लिए शान्तिनिकेतन का नाम निस्संकोच होकर पेश किया जा सकता है।

शान्तिनिकेतन की एक और बड़ी ख़ूबी वहाँ के वायुमण्डल का अन्तर्राष्ट्रीय होना है। काँगड़ी के गुरुकुल के समान शान्तिनिकेतन का संचालन भी विशुद्ध भारतीय संस्कृति के वातावरण में हो रहा है। परन्तु वहाँ भारतीय विद्यार्थियों और छात्रों के अतिरिक्त विदेशी अतिथियों और शिक्षकों की भी पर्याप्त संख्या सदैव बनी रहती है। अमरीका, योरप, एशिया तथा आस्ट्रेलिया के अनेक देशों से बहुत-से यात्री आ-आकर इस शिक्षा-केन्द्र में एकत्र होते हैं और निकेतन के वातावरण से लाभ उठाते हैं। इन लोगों की उपस्थिति निकेतन के विचारों को अधिकाधिक उदार बनाने में विशेष सहायता देती है।

कुछ ही समय से वहाँ एक अन्य विभाग का उद्घाटन किया गया है। इस विभाग का नाम श्रीनिकेतन है। यहाँ ग्राम-सुधार तथा ग्राम्य व्यवसायों के उद्धार का प्रयत्न किया जा रहा है। हम लोग श्रीनिकेतन देखने भी गये थे। ग्रामीण बालकों को व्यवसायों और धन्धों की शिक्षा देने का जो प्रबन्ध श्रीनिकेतन में है वह सम्पूर्ण देश के लिए अनुकरणीय है। शान्तिनिकेतन के वातावरण को वास्तविकता के कठोर धरातल के निकट लाने में श्रीनिकेतन बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

यह देखकर मुझे सचमुच खेद हुआ कि भारतवर्ष के सभी प्रान्तों के विद्यार्थी शान्तिनिकेतन में नहीं हैं। पंजाब की सिर्फ़ एक छात्रा है। दिल्ली-राजपूताना आदि का भी कोई विद्यार्थी वहाँ नहीं है। संयुक्त-प्रान्त के विद्यार्थियों की संख्या भी बहुत कम है। सम्पूर्ण युक्तप्रान्त से सिर्फ़ एक ही छात्रा आज-कल वहाँ है। शान्तिनिकेतन के अधिकांश विद्यार्थी बंगाली हैं। उसके बाद गुजरात और बिहार का नम्बर है। दक्षिण-भारत के छात्रों की संख्या भी बहुत कम है। इस दृष्टि से काँगड़ी का गुरुकुल श्रेष्ठ है। भारतवर्ष के सभी प्रान्तों के अतिरिक्त प्रायः सभी भारतीय उपनिवेशों के विद्यार्थी भी काँगड़ी के गुरुकुल में हैं। और यह तथ्य गुरुकुल के वातावरण को अखिल भारतीय बनाये रखने में बहुत सहायक सिद्ध हो रहा है।

निकेतन के साहित्य-परिषद् के अतिरिक्त वहाँ हिन्दी-समाज और गुजराती-समाज नाम की दो संस्थायें भी हैं। हिन्दी-प्रेमियों के लिए यह प्रसन्नता की बात है कि श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी की अध्यक्षता में शान्तिनिकेतन का हिन्दी-समाज विशेष लोकप्रियता प्राप्त कर रहा है। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के प्रयत्न से उम्मीद है कि हिन्दी-समाज का अपना पृथक् भवन भी शान्तिनिकेतन में बहुत शीघ्र बन जायगा।

महाकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर शान्तिनिकेतन की आत्मा के समान हैं। वे वहाँ 'गुरुदेव' कहे जाते हैं। शान्तिनिकेतन के वातावरण को कलापूर्ण बनाये रखने के लिए गुरुदेव की उपस्थिति ही पर्याप्त है। वे भारतवर्ष ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व की एक बहुमूल्य विभूति हैं। हम लोग जब शान्तिनिकेतन पहुँचे तब हमें बताया गया कि वे इन दिनों बहुत थके हुए और क्लान्त-सा हैं। उन्हीं दिनों उन्हें कलकत्ता-विश्वविद्यालय में एक व्याख्यान देने के लिए जाना पड़ा था। वहीं उनके एक निकट-सम्बन्धी का देहान्त हो जाने से उन्हें भारी मानसिक कष्ट पहुँचा था। फिर कलकत्ता से वापस आते हुए बर्दवान में उन्हें एक

मारी सामूहिक स्वागत का बोझ बरदाश्त करना पड़ा। ७६ बरस की उम्र में ये सब बातें शरीर और मन को बुरी तरह थका देने के लिए पर्याप्त हैं। इसी कारण गुरुदेव ने, केवल कर्तव्य की प्रेरणा से ही, हम लोगों को केवल १५ मिनट का समय दिया था। परन्तु जब हम लोग वहाँ पहुँचे तब यह देखकर हमारे हर्ष की सीमा न रही कि गुरुदेव बहुत ही अच्छे और प्रसन्न मनोभाव में हैं।

श्री एण्ड्रूज़ ने एक बार कहा था कि गुरुदेव एक ऐसे अत्यधिक कोमल वाद्य-यन्त्र के समान हैं जिसे बजाना बड़ा कठिन होता है। परन्तु हम लोगों के सौभाग्य से उस दिन, विशेषकर उस समय, वे इतने अच्छे रूप में थे कि १५ मिनट के बजाय ४५ मिनट तक वे बड़ी प्रसन्नतापूर्वक कहानी-साहित्य के सम्बन्ध में हम लोगों से बातचीत करते रहे। अपनी कहानियों के सम्बन्ध में उन्होंने जो कुछ कहा वह हम लोगों के लिए बहुत ही शिक्षाप्रद था। गुरुदेव प्रान्तीयता के घोर विरोधी हैं। प्रान्तीयता के भाव दूर करने के लिए उन्होंने कहा कि हम लोगों को साहित्य के द्वारा एक-दूसरे के निकट आना चाहिए। जब तक हम लोग एक-दूसरे को नज़दीक से नहीं पहचानेंगे, यह समस्या दूर न होगी और निकटता से पहचानने का सबसे श्रेष्ठ साधन साहित्य ही हो सकता है। अन्त में जब हम लोगों ने छुट्टी माँगी तब गुरुदेव ने कहा कि समय पर पाबन्दी लगानेवाली बात को आप लोग अधिक गम्भीरतापूर्वक न लिया कीजिए।

इस सम्पूर्ण बातचीत में चतुर्वेदी जी ने गुरुदेव को अनेक बार हँसाया और स्वयं गुरुदेव ने भी अनेक बार हम लोगों को अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने का पूर्ण अवसर दिया। यह भेंट हम लोगों के लिए बहुत शिक्षाप्रद और उपयोगी सिद्ध हुई।

शान्तिनिकेतन की दूसरी विभूति श्री नन्दलाल बोस हैं। कला के अनेक पारखियों की राय में श्री नन्दलाल बोस आज-कल सम्पूर्ण एशिया के सबसे बड़े कलाकार हैं। श्री सुदर्शन जी तथा मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि हम लोग काफ़ी समय तक उनसे भारतीय चित्र-कला के सम्बन्ध में निर्देश ले सके।

बिना अनुमति लिये दर्शक लोग शान्तिनिकेतन के छात्रों और छात्राओं के फ़ोटो नहीं ले सकते। मुझे इस बात की अनुमति प्राप्त हो गई थी, इसके लिए मैं शान्तिनिकेतन के अधिकारियों का अनुगृहीत हूँ। शान्तिनिकेतन की यह यात्रा मेरे लिए सच्चे अर्थों में एक कला के तीर्थ की यात्रा के समान सिद्ध हुई।

गीत

लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद पांडेय

मेरा छोटा-सा उर-उपवन।
जिसमें रहता मधुमास सदा,
करते मृदु-भाव विहग कूजन।
कामना कली ले विश्वप्यार,
करती फिरती सौरभ-प्रसार;
जिसकी सुख-सुखमा का प्रतिपल,
भावुक जग करता अभिनन्दन।

श्वासों का मलयानिल बहता,
धीरे से कानों में कहता;
"तुम चिर अनन्त के रूप सुनो—
करते प्राणों के अलि गुञ्जन।"
जब मैं ही जग का आदि-अन्त,
मेरी स्वर्गिक निधियाँ अनन्त;
क्यों आज भूल मैं अपनापन,
विस्मित-सा बैठूँ बन उन्मन।

किस ओर?

लेखक, श्रीयुत विजय वर्मा

आज उनमें फिर वही झगड़ा ज़ोर-शोर के साथ हुआ, जो पाँच वर्ष पहले प्रायः प्रतिदिवस हुआ करता था।

रमा ने समझा था कि यह समय सदा के लिए समाप्त हो गया। और देवनाथ भी यही समझते थे। पर आज दोनों का भ्रम दूर हो गया। वे जिस ओर अपनी जीवन-नौका सम्मिलित रूप से ले जाना चाहते थे, उधर वह नहीं जा सकती, यह अब दोनों को निश्चित रूप से दिखलाई पड़ने लगा।

सन्ध्या हो गई। दोनों में से किसी ने कुछ खाया-पिया नहीं। देवनाथ जी लेखों के पढ़ने और संशोधन करने में ऐसे तल्लीन रहे, मानो फ़ौजी कमांडर-इन-चीफ़ लड़ाई के समय भिन्न भिन्न सेनाओं का निरीक्षण करने और उन्हें ठीक करने में लगा हुआ हो। उधर रमादेवी जी एक जम्पर सीने को ऐसी जम कर बैठीं, मानो किसी सत्याग्रही ने विदेशी माल की दूकान पर धरना दिया हो। पर जब प्रकाश-क्षीण हो गया और अन्धकार ने उसका स्थान ले लिया तब इन दोनों के काम अपने आप बन्द हो गये। देवनाथ जी अपने कमरे से निकल आये और रमादेवी अपने कमरे से।

दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा। और तुरन्त ही दोनों की ज़बानें फिर तेज़ हो गईं। देवनाथ ने कहा—जम्पर सीने में लगना ही तुम्हारे लिए सब कुछ है। इस विचित्र वस्त्र को पहनकर तुम अपनी दीन-हीन बहनों को चिढ़ाना चाहती हो और समझती यह हो कि ऐसी बात नहीं है। ब्राह्मण-पुत्री होकर भी तुम इस देश के वास्तविक गौरव की ओर जाना लज्जा की बात मानने लगी हो, इससे बढ़कर हमारे पतन का प्रमाण और क्या चाहिए?

रमा ने कहा—लेखों के संशोधन और पठन-पाठन में लगे रहना ही आप सब कुछ समझते हैं। इन लेखों को प्रकाशित करके आप अपने दीन-हीन भाइयों को चिढ़ाना चाहते हैं। ब्राह्मण-पुत्र होकर भी आप इस देश के वास्तविक गौरव की ओर जाना लज्जा की बात मानने लगे हैं। इससे बढ़कर हमारे पतन का प्रमाण और क्या चाहिए?

देवनाथ जी पहले की अपेक्षा तीव्रतर स्वर में बोले—अच्छा, जम्पर सीना और लेखों का संशोधन करना तुम्हें एक-से ही दीखते हैं। धन्य हो!

रमा ने भी कुछ तेज़ी से कहा—जम्पर शरीर-रक्षा के लिए आवश्यक है। उसे आप एक व्यर्थ वस्तु के समान समझ सकते हैं, मैं नहीं। धन्य तो आप ही हैं!

"लेख व्यर्थ हैं?"

"क्या जम्पर चिढ़ाने के लिए है?"

"यह जम्पर?"

"यह प्रकाशन?"

"और ये गहने?"

"और यह गद्य-पद्य ग्रन्थसमूह?"

"ये सब तुम्हारे गहनों के समान हैं?"

"मैं व्यर्थ या हानिकारक वस्तुओं को गहनों के समान क्यों मानूँ?"

"तुमने धन का सदुपयोग किया है—उनके गहने और कपड़े लेकर और मैंने उसका दुरुपयोग किया है ये गद्य-पद्य ग्रन्थ प्रकाशित करके, जिनसे न जाने कितने लोगों का मनोरंजन हुआ है और जो न जाने कितने लोगों-द्वारा प्रशंसित हो चुके हैं।"

"प्रशंसित तो ये गहने भी कम नहीं हुए, और अनेक बहनों का इनसे मनोरंजन भी हो चुका है। हाँ, इनके देखने में लोगों का इतना अधिक समय नष्ट नहीं हुआ, न इनका उनके मन पर इतना बुरा प्रभाव पड़ सकता है।"

"इन पुस्तकों का बुरा प्रभाव पड़ता है ?"

"मैंने तो इन्हें पढ़नेवालों में से किसी को कुछ विशेष काम के योग्य बनते नहीं पाया। यह भी कहा जा सकता है कि वास्तविक कार्य की महत्ता ही वे भूल जाते हैं।"

"और इन गहनों से ?"

"ये उतने बुरे नहीं हैं।"

"ये दीनता का गौरव सिखाते हैं ?"

"प्रकाशन में रुपये लगाने से ही लोगों को किसी गौरव का सिखाना कैसे माना जा सकता है ?"

"इनमें जो उच्च सिद्धान्त लिखे हैं—"

"वे व्यर्थ हैं—"

"व्यर्थ ?"

"जो लोग स्वयं अपने सिद्धान्तों के अनुसार काम नहीं करते उनकी बातों का किसी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।"

"यह तुम जानती हो ?"

"जानने के कारण ही तो मैं इनका लिखना-लिखाना व्यर्थ समझती हूँ।"

"यह क्यों ?"

"जो काम हम नहीं कर सकते उसे क्यों करें ?"

"पर मैं कर सकता हूँ।"

"यह तो पिछले पाँच वर्ष बता रहे हैं !"

"अगले दो वर्ष इसे बतावेंगे। मैं आज घर से जा रहा हूँ।"

× × ×

दूसरे दिन रमा ने अपनी सखी प्रभा के पास जाकर सब बातें सुनाईं।

प्रभा बोली—मैं पंडित देवनाथ जी को जानती हूँ। वे तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जा सकते—कभी नहीं जा सकते। बस, होना यही चाहिए कि तुम दोनों को घर में अपने अपने ढंग पर काम करने की स्वतन्त्रता रहे। तुम उनके लिखने-पढ़ने में लगे रहने से बुरा क्यों मानती हो, जब अब वे तुमसे कुछ भी छेड़-छाड़ नहीं करते हैं ?

रमा यह बात सुन थोड़ी देर चुप रही, मानो वह कह रही हो—क्या सचमुच इसका उत्तर देने की आवश्यकता है ? क्या नारी-हृदय से प्रभा अभी तक इतनी अधिक अपरिचित है ?

पर प्रभा ने फिर पूछा—क्या तुम्हें वह जीवन अधिक रुचिकर जान पड़ता है जब साहित्य-सेवा का यह उच्च भाव पंडित जी के मन में न रहे ?

तब वह कुछ झुँझलाहट के स्वर में बोली—मैं तुम्हें इतना अबोध नहीं समझती थी। हमारे जीवन में मिलन की, सेवा की, एकत्व की जो इच्छा है उसकी पूर्णता का क्या यह मार्ग ठीक है ? गृहस्थ-जीवन को देखो। तुम्हारे एक बच्चा हो चुका है। क्या फिर भी तुमने यह नहीं समझा कि जीवन का विकास किस तरह होता है ? क्या तुम्हारे भाई-बहनें नहीं हैं ?

प्रभा ने हँसकर कहा—हैं तो। अच्छा बताओ विकास किस तरह होता है ?

परन्तु रमा चुप हो रही।

इसी दिन दोपहर को पंडित देवनाथ जी घर से चले गये।

× × × ×

दो वर्ष बीत गये।

वही सन्ध्याकाल का समय है। रमा आँगन में खड़ी आकाश की ओर देख रही थी। उसे वह दिन याद आ रहा था जब उसमें और देवनाथ जी में अन्तिम बार बात-चीत हुई थी—"अगले दो वर्ष इसे बतावेंगे" उन्होंने कहा था। "वे तो आज समाप्त हो रहे हैं।" उसने मन ही मन सोचा—"वे कहाँ हैं ? इन दो वर्षों में उन्होंने क्या क्या किया है ? मैंने तो कभी उनका नाम किसी काम के सम्बन्ध में नहीं सुना। समाचार-पत्रों में मैंने उनके लौटने के लिए जो कुछ प्रकाशित करवाया, सब व्यर्थ हुआ। क्या वे अब नहीं लौटेंगे ?"

"अवश्य लौटेंगे।" उसने तुरन्त ही ज़ोर से कहा—"आज उन्हें आना चाहिए।" सन्ध्या समाप्त होगई। रात्रि आगई। रात्रि का भी अन्त हुआ। रमा रात्रि भर सो नहीं सकी। प्रातःकाल उसे झपकी आ गई। एकाएक उसने सुना, कोई बुला रहा है। वही आवाज़ है ! वह जग पड़ी। आवाज़ फिर आई। तब तो यह स्वप्न नहीं ! वह जल्दी से उठकर दरवाज़े के पास गई। किवाड़ा खोल दिया। देखा, देवनाथ जी खड़े हैं और उनके साथ एक वृद्ध सज्जन हैं, जिन्हें वह पहचानती नहीं थी, पर जिनका चित्र उसने जब तब पत्र-पत्रिकाओं और ग्रन्थों में देखा है।

वह दरवाज़ा खोल कर पीछे हट गई।

देवनाथ जी ने भीतर आकर कहा—मध्यमार्ग के आचार्य, मेरे गुरुदेव, मेरे साथ आये हैं। तुम इन्हें अपने सब गहने दे दो और मैं अपनी सब पुस्तकें। इस समय जिस मार्ग पर हमें चलना है वह मैंने देख लिया है। क्या तुम मेरा साथ दोगी ?

रमा कुछ बोली नहीं। चुपचाप उठ कर वह भीतर गई और अपने गहनों का सन्दूक़ लाकर उसने आचार्य के सामने रख दिया।

अपूर्व गौरव का आनन्द उसके मुख पर स्पष्टतः झलक रहा था।

× × × × ×

इसी दिन प्रभा रमा के पास आई।

बातचीत में उसने हँसकर पूछा—क्या पण्डित जी ने अब जीवन-विकास का पथ पा लिया है ? अरे, तभी तुमने क्यों नहीं कहा था कि तुम उनकी पुस्तकों के ढेर में आग लगवा देना चाहती हो ?

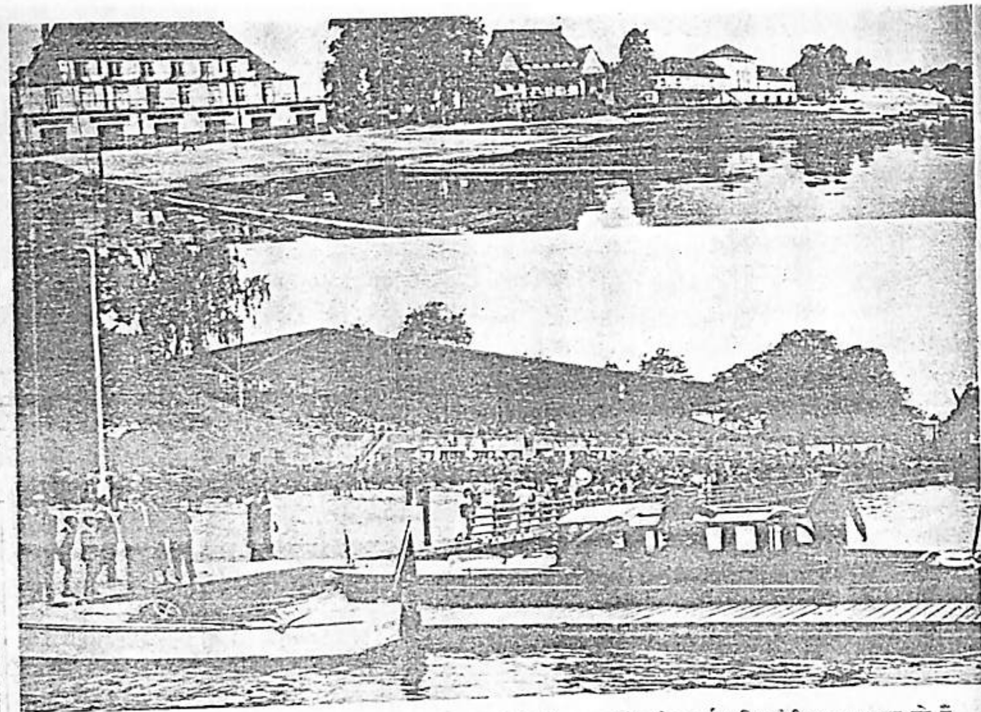
रमा भी इस बार हँसकर बोली—तुम अब भी वैसी ही अबोध बनने का स्वाँग करना चाहती हो ! मैं उनके हृदय में शुद्ध अग्नि का प्रकाश चाहती थी और अब मैं उसे देख रही हूँ। इसी के प्रकाश में सच्चा मिलन और सच्ची सेवा दिखाई दे सकती है। मेरा जीवन धन्य होगया।

पर सचमुच प्रभा अबोध की भाँति उनकी ओर देखती रह गई। वह कुछ भी समझ न सकी।

गीत

लेखक, श्रीयुत प्रणयेश शुक्ल

कैसी प्रीति—कैसा प्यार ?
मिल गये दो तार उर के, हिल गया संसार !
एक आते—एक जाते !
एक निज बीती सुनाते !
भावना की इस परिधि में
एक अपने आप गाते !
सरस-जीवन को बनाते एक,—क्षण में क्षार ! कैसी०
एक शासित—दीन—रहते !
एक बन स्वाधीन रहते !
एक परिमित—एक सीमित—
एक सीमा-हीन रहते !
यह कठिन वैषम्य कैसा,—यह जटिल-व्यापार ? कैसी०
एक सुस्मृति छोड़ जाते !
एक हैं मुँह-मोड़ जाते !
प्रिय, सतत चरचा यही है—
एक नाता तोड़ जाते !
एक आवेदन लिये है, एक मृदु-मनुहार !
कैसी प्रीति०—



ओलम्पिक खेलों में भाग लेनेवाले जर्मन खिलाड़ी अभ्यास कर रहे हैं

ओलम्पिक खेल

लेखक, श्रीयुत विष्णुदत्त मिश्र 'तरङ्गी'

जर्मनी में इस समय जगत्प्रसिद्ध ओलम्पिक खेलों का आयोजन हो रहा है। ऐसे अवसर पर तरङ्गी जी का यह लेख पाठकों को विशेष रूप से मनोरञ्जक प्रतीत होगा।

जीवन और जागृति के सिद्धान्तों में खेल-कूद का प्रमुख स्थान रहा है। "वाटरलू की लड़ाई को ईटन कालेज के मैदान में जीतनेवाले" राष्ट्र संसार में अपनी स्वाधीनता और अपने प्रभुत्व के साथ-साथ ऐश्वर्य के हिंडोले में झूलते आ रहे हैं। इस दृष्टिकोण से इतिहास को पढ़ने से पता चलेगा कि विजय की वरमाला के गूँथनेवाले दिन खेल-कूद के ही दिन थे।

सनातन से दुनिया इसी सिद्धान्त पर चली आ रही है। प्रतिस्पर्द्धा के अभाव में राष्ट्र के शारीरिक ह्रास के रोकने का अन्य साधन और कौन है? हमारे पुराण इस

तरह के व्यायाम और धर्म के कौशल की प्रतिस्पर्द्धाओं की गाथाओं से अलंकृत हैं। उसी सिद्धान्त का अन्तर्राष्ट्रीयकरण 'ओलम्पिक गेम्स' के रूप में विकसित हुआ है, जिसमें संसार के सभी देशों के चुने हुए खिलाड़ी आकर अपने कौशल दिखाते एवं अपने तथा अपने देश के शारीरिक विकास के सम्बन्ध में अपने राष्ट्र का सिर ऊँचा करते हैं।

'ओलम्पिक गेम्स' के पीछे उसका अपना एक इतिहास है। सबसे प्रथम ईसा के १३२२ वर्ष पूर्व प्रसिद्ध ग्रीक योद्धा हैकलीज़ ने अपने विजयोत्सव के समय ग्रीस के योद्धाओं के पराक्रम के कौशल का प्रदर्शन किया था। आज की प्रचलित भाषा में उसे हम एक प्रकार का टूर्नामेन्ट कह सकते हैं। लेकिन इन खेलों का सिलसिलेवार इतिहास सन् ७७६ से प्राप्त होता है। यूनानवालों ने यह टूर्नामेन्ट अपने यहाँ 'ओलम्पिया' में पहले-पहल किया था। ५० वर्ष पहले यह नगर भूगर्भ से खोद निकाला गया है, और इसमें उस टूर्नामेन्ट का विशाल 'स्टेडियम' (बैठने का गोलाकार स्थान) तथा भवन मिले हैं। इनके सिवा खिलाड़ियों के विश्राम के कमरे, प्रबन्धकर्त्ताओं के कमरे और भोजनालय आदि स्थान सब अलग अलग पाये गये हैं। उक्त टूर्नामेन्ट के जन्मदाता इसी ओलम्पिया नगर के नाम पर ही वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय खेलों की प्रतिस्पर्द्धा का नाम 'ओलम्पिक गेम्स' रक्खा गया है।

आज के और प्राचीन काल के ओलम्पिक गेम्स में महान् अन्तर है। उस समय प्रत्येक प्रतिस्पर्द्धा-इच्छुक नौजवान को १० महीने तक एक विशेषज्ञ की अध्यक्षता में व्यायाम करना पड़ता था और घर से सब सम्बन्ध तोड़ देना पड़ता था। इसके बाद खेल शुरू होनेवाला महत्त्वपूर्ण दिन आता था। तब पहले दिन बलिदान तथा धार्मिक कृत्यों के पश्चात् मंगलोत्सव होता था और निर्णायक चुने जाते थे। निर्णायकों को शपथ लेनी पड़ती थी कि वे अन्याय नहीं करेंगे और किसी तरह की रिश्वत भी नहीं लेंगे। इसके बाद समस्त खिलाड़ी उनकी अवस्था तथा प्रबन्ध की सुविधा के अनुसार श्रेणियों में विभक्त कर



[१८९६ के खेलों में भाग लेनेवाला एक प्रतिद्वन्द्वी]



[भाला फेंकने की प्रतिद्वन्द्विता]

दिये जाते थे। पहले दिन का कार्यक्रम इतने में ही समाप्त हो जाता था।

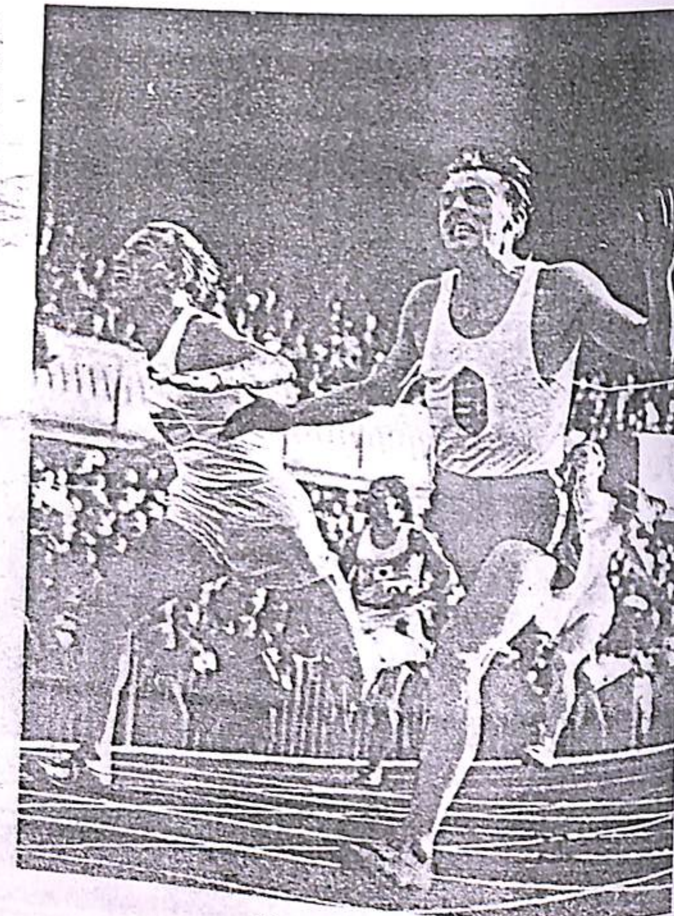
इसके बाद दूसरे दिन बच्चों के खेल होते और कुश्ती, दौड़ तथा कूद-फाँद आदि की प्रतिस्पर्द्धा बच्चे करते। तीसरे दिन वही खेल जवान करते। लेकिन इनमें सबसे प्रशंसनीय जिरहबख़्तर पहनकर दौड़ने का खेल होता था। चौथे दिन घुड़दौड़ और रथों की दौड़ होती थी। पाँचवें दिन फिर धार्मिक उत्सव होते; और ज़ैतून के ताज़े फूलों की मालायें इनाम में दी जाती थीं। विजयी की उसकी प्रशंसा में कवियों की लेखनी चलती; नागरिक मानपत्र अर्पण करते और सरकार उसे भी कर से बरी कर देती। उन दिनों ऐसे ही ओलम्पिक गेम्स होते थे। स्त्रियों को पहले तो मनाही थी, बाद में वे भी उनमें भाग लेने लगी थीं। उनके भी विजयी होने के प्रमाण मिले हैं। ग्रीक और रोमन दोनों ने इस प्रथा को क़ायम रक्खा, लेकिन ईसा के ३६४ वर्ष पहले ग्रीस के बादशाह थियोडस ने उन्हें बन्द करवा दिया।

लेकिन इन खेलों की तह में जीवित राष्ट्रों की निशानी का जो मूलतत्त्व छिपा हुआ था उसे इतिहास ऊपर कर ही चुका था। अतएव १९वीं सदी में जब योरप ने भौतिक उन्नति के स्वर्णयुग में चरण रक्खा तब इन खेलों का फिर प्रादुर्भाव हुआ। सन् १८९४ में फ़्रांस के निमंत्रण पर राष्ट्रों के प्रतिनिधि पेरिस में जमा हुए और उन्होंने यह तय किया कि विश्व में शौर्य का पैमाना स्थापित करने के लिए ओलम्पिक गेम्स पुनर्जीवित किये जायें। इसके फलस्वरूप सबसे पहला अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शन १८९६ में यूनान में ही एथेन्स में हुआ। इसमें दौड़ों के सिवा टेनिस, रिवाल्वर से निशाना लगाना, कुश्तियाँ, तैरना आदि नये खेल शामिल किये गये। लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण मेराथन-रेस थी। यह दौड़ २६ मील लम्बी थी और उस घटना का सूचक थी जब एथेन्स से २६ मील दूरस्थ मेराथन से वहाँ की यूनानियों की विजय का समाचार एक ही दौड़ में एथेन्स पहुँचाया गया था। इस समय ६५,००० हज़ार दर्शकों के बैठने का स्थान बनाया गया था। सन् १९०० में पेरिस में और सन् १९०५ में सेंटलुई में यह अन्तर्राष्ट्रीय टूर्नामेन्ट किया गया। १९०६ में फिर यही खेल एथेन्स में हुए,

के रूप में उपस्थित हुए थे। सन् १९०८ में फ़्रांको-जर्मन-प्रदर्शनी के अवसर पर यह टूर्नामेन्ट लन्दन में हुआ और तब से नियमानुसार बराबर होता आ रहा है। पिछली बार लास एंजल्स में हुआ था और इस बार बर्लिन में होने जा रहा है।

ओलम्पिक खेलों का प्रबन्ध करना कोई साधारण काम नहीं है। जर्मन-सरकार को इनके लिए अलग एक महकमा ही खोल देना पड़ा है और हज़ारों व्यक्ति दिन-रात उसकी व्यवस्था के काम में लगे रहते हैं। इस वर्ष बर्लिन के खेलों में एक लाख व्यक्तियों के बैठने के लिए स्टेडियम बनाया गया है। पाठक इसकी विशालता का अन्दाज़ एक इस बात से ही कर सकेंगे कि इसकी सबसे पहली सीढ़ी अन्तिम सीढ़ी से १६ गज़ ऊँची है। जिस स्थान पर नावों की दौड़ होगी, उस स्थान पर भी १८ हज़ार के बैठने की शानदार व्यवस्था करना कोई साधारण बात नहीं समझी जानी चाहिए।

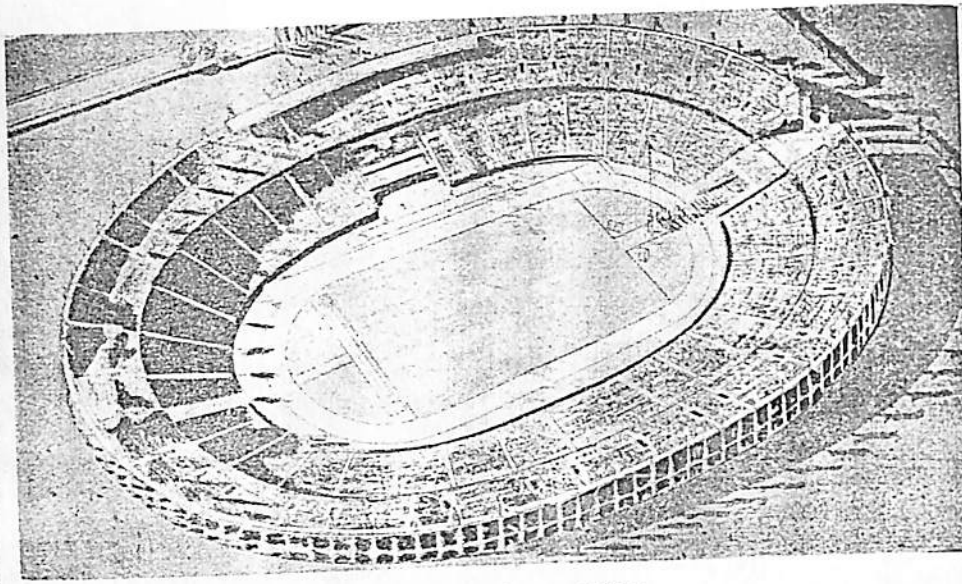
लेकिन इन खेलों के प्रारम्भ होने के समय का उत्सव भी शानदार होगा। प्राचीन यूनान में इन खेलों के समय एक तरह का यज्ञ करके अग्निदेवता की प्रतिष्ठा की जाती थी, बर्लिन में भी यही होगा। प्राचीन ओलम्पिया गाँव से २,००० मील की दूरी पर बर्लिन में आग लाई जायगी और यह आग लाने के लिए सैकड़ों आदमी मुक़र्रर होंगे, जो दौड़ दौड़ कर एक-दूसरे को आग देते जायँगे। इस प्रकार यूनान, बलगेरिया, जूगोस्लाविया, हंगरी, आस्ट्रिया, ज़ेकोस्लोवाकिया आदि देशों से होकर यह आग बर्लिन पहुँचेगी और जहाँ जहाँ से आग लानेवाले गुज़रेंगे, वहाँ वहाँ रास्ते भर उत्सव होंगे, राजधानियों में खेलों के विराट् प्रदर्शन होंगे। २१ जुलाई से शुरू होकर यह २,००० मील की दौड़ बर्लिन में १ अगस्त के दोपहर को समाप्त होगी। इस आग की स्थापना के बाद चांसलर एडाल्फ़ हिटलर इन खेलों का उद्घाटन करेंगे। होनेवाले खेलों की तालिका निम्न है—



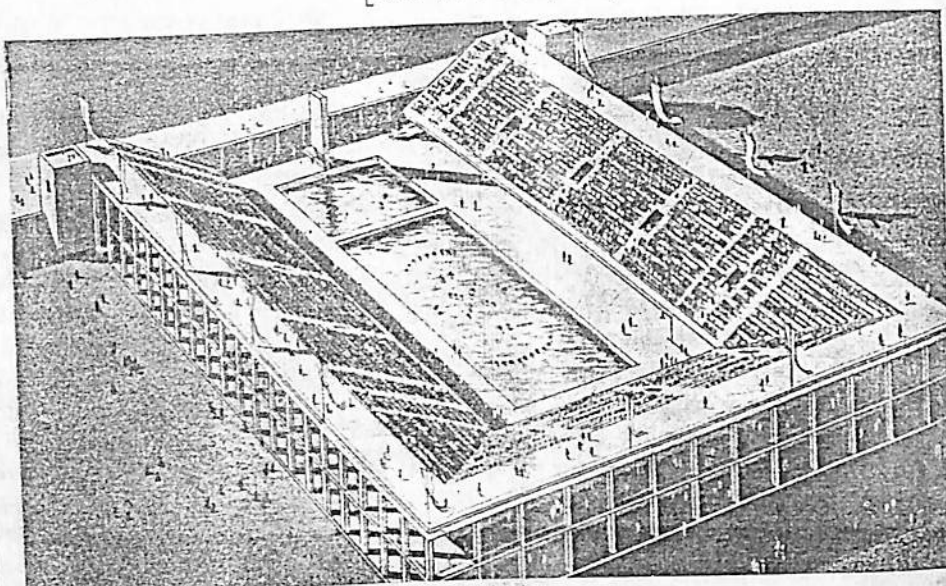
[दौड़ की प्रतिद्वन्द्विता]

मेराथनरेस, जिमनास्टिक, वज़न उठाना, कुश्ती, मुक्केबाज़ी, राइफ़ल से निशाना लगाना, घुड़सवारी, साइकिंलग, तैरना, नाव खेना, डोंगी-दौड़, फुटबाल, हॅंड-बाल, हाकी, पोलो, बास्केटबाल।

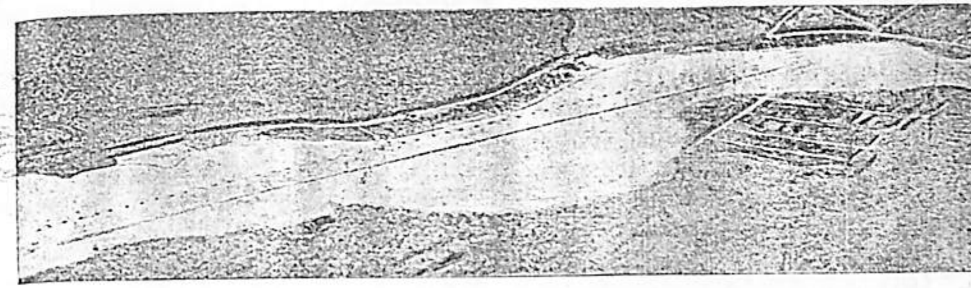
ओलम्पिक गेमों की सफलता या असफलता राष्ट्र के



['ओलम्पिया स्टेडियम', बर्लिन]



[तैराकी की प्रतिद्वन्द्विता का स्टेडियम, बर्लिन]



[बर्लिन के समीप ग्रूनौ में नौका-प्रतिद्वन्द्विता का मुख्य स्थान।]

लिए यश या अपयश का कारण बन सकती है, अतएव हर तरफ़ से लोग आकृष्ट किये जा रहे हैं। ओलम्पिक गेमों के दर्शकों को रेलवे का किराया आधा कर दिया गया है। जो निमंत्रण-पत्र भेजा गया है वह कम मनोरञ्जक नहीं। उसमें लिखा है—"जर्मन-देश खेल के प्रेमियों और मेह-मानों का हृदय खोलकर स्वागत करने के लिए तत्पर है। आधुनिक ओलम्पिक गेम युवकों का महोत्सव है, जिससे राष्ट्रों में मित्रता बढ़ती है और खेलों का आनन्द प्राप्त होता है। जर्मन-देश खेल के सभी प्रेमियों को सहर्ष निमंत्रण दे रहा है।"

क्या हमारे देश के युवक इस निमंत्रण को स्वीकार करेंगे? क्या उस दिन हमारे राष्ट्र का तिरङ्गा झंडा लेकर पचास राष्ट्रों के झंडों के साथ-साथ हमारे देश के युवक भी संसार के सामने उपस्थित होंगे? हम किसकी ओर ताक रहे हैं? हमारा शारीरिक ह्रास कब तक यों ही रहेगा? कब तक हम दुनिया में कमज़ोरों की श्रेणी में रहकर शर्मिन्दा रहेंगे? संसार के सामने योरप के बराबर एक राष्ट्र का—३३ करोड़ की भूमि के प्रतिनिधियों का अभाव किस देश-भक्त को नहीं खटकेगा?

हिन्दुस्तान के युवको, इन प्रश्नों का उत्तर देना तुम्हारा काम है।*

* लेख लिखने के बाद समाचार प्राप्त हुआ है कि हमारे देश से हॉकी की टीम इन खेलों में भाग लेने को जा रही है। —लेखक]

अमर अभिलाषा

लेखक, श्रीयुत राजाराम खरे

लिखते लिखते बीत गये युग
यह जीवन-इतिहास—
किन्तु अभी तक हुआ न पूरा
रहा अपूर्ण प्रयास।

अन्तिम शब्द रह गया फिर भी—
इति है आशा-हीन!
इस पल में ही आ जाओ तुम,
—कहीं न मेरे पास!



परदा-तोड़क क्लब

गोविन्दवल्लभ पन्त

पण्डित गोविन्द वल्लभ पन्त हिन्दी के एक प्रसिद्ध कलाविद् हैं। कहानी, नाटक और कविता लिखने में आप सिद्धहस्त हैं। आशा है, आपका यह एकांकी नाटक पाठकों का काफ़ी मनोरंजन करेगा।

चरित्र

१—नारायण—परदा-तोड़क क्लब के मेम्बर बनने के उम्मीदवार

२—चमेली—उनकी स्त्री

३—दीना—उनका चपरासी

४—एक पकौड़ीवाला

[परदा-तोड़क क्लब के सभापति, उनकी स्त्री तथा क्लब के अन्य मेम्बर।]

पहला दृश्य

[नारायण का मेज़-कुर्सियों से सजा हुआ कमरा। नारायण एक कुर्सी पर बैठे हुए परदा-तोड़क क्लब के मेम्बर बनने के नियम पढ़ रहे हैं। उनके बाईं ओर की दीवार में अंदर जाने का द्वार है। द्वार पर एक परदा पड़ा हुआ है।]

चमेली

[परदे की राह घूँघट काढ़े हुए आती है और चाय तथा मिठाई मेज़ पर रखती है।]

नारायण—[किताब मेज़ पर पटककर] अफ़सोस! ईश्वर के इस न्याय की बलिहारी! मैं ऐसा अप-टु-डेट जैंटिलमैन और परदे का जानी दुश्मन, मगर मेरी यह स्त्री ऐसी गंदी-गँवार और परदे की भगतिन! [उसका घूँघट उलटता है, स्त्री का काला मुख दिखाई देता है। वह अंदर भागने की कोशिश करती है, पर नारायण उसकी साड़ी पकड़ लेता है।] घर के भीतर पति के समीप कैसा परदा? तुझे शरम नहीं आती?

चमेली—अच्छा साड़ी छोड़िए, घूँघट न काढ़ूँगी। परन्तु आपके साथ उन नकटों के क्लब में न चलूँगी।

नारायण—चुप रहो, ज़बान में लगाम दो। वे नकटे कैसे हैं, जो हिन्दुस्तान के इस सदियों के जमे हुए मैल को धो रहे हैं! नकटी तू है, तभी तो इस काली नाक पर तीन हाथ का घूँघट डाले रहती है। [पुचकार कर] अरी मान जा चम्मो, तू भी मेम्बरिन बनेगी और मैं भी मेम्बर बनूँगा। अच्छी सोसायटी में घूमेगी, बड़े-बड़ों से जान-पहचान होगी, खुली हवा में टहलेगी, क़ब्ज़ और सिर-दर्द की शिकायत दूर हो जायगी, मनचाहा सौदा बाज़ार से ख़रीद लायेगी। नौकरों की बक-बक झक-झक से छुट्टी पा जायगी।

चमेली—ऊँ हूँ। मैं न बनूँगी मेम्बरिन। मैं जहाँ हूँ वहीं अच्छी। आप जाइए और मेम्बर बनिए। मैंने कब आपको मना किया?

नारायण—लेकिन मैं तेरे बिना मेम्बरिन बने मेम्बर नहीं हो सकता, नहीं हो सकता!

चमेली—क्यों?

नारायण—क्लब का मुख्य नियम ही ऐसा है। [पुस्तक खोल नियम पढ़ता है] "किसी भी मनुष्य को परदा-तोड़क क्लब का मेम्बर बनने के लिए यह ज़रूरी है कि वह अपने घर की कम-से-कम एक परदेवाली का परदा दूरकर क्लब का मेम्बर बनावे। ऐसा न कर सकने पर किसी भी हालत में कोई पुरुष क्लब का मेम्बर नहीं बनाया जा सकेगा।"

चमेली—तो स्वयं लहँगा और ओढ़नी पहनकर चले जाइए और वहाँ जाकर कहिए, मेरे घर में नाक कटाने के लिए कोई सूर्पनखा नहीं है।

नारायण—अरी तुझे मज़ाक सूझा है। मैं क्लबवालों से वादा कर चुका हूँ कि आज शाम की मीटिंग में मैं अपनी स्त्री के साथ मेम्बर बनूँगा।

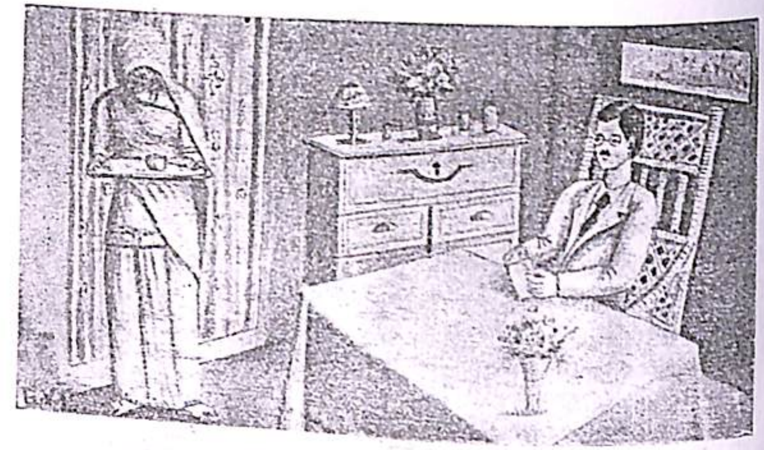
चमेली—आपका वादा पत्थर की लकीर थोड़े है। जाकर कह आइए, मैं मेम्बर-बेम्बर नहीं बनना चाहता।

नारायण—अरे! क्या बात बकती हो? वादे को पूरा करना जैंटिलमैन की पहली विशेषता है।

चमेली—सच कहिए। लेकिन आप मेरे लिए हार, साड़ी और जंपर लाने को कितने वादे कर चुके हैं?

नारायण—[मुँह बनाकर सिर खुजलाता है।] अच्छा क्लब में चलो। अगली तनख़्वाह में सबसे पहले तुम्हारी ही फ़रमाइशें पूरी की जायँगी।

चमेली—मैं लाज गँवा कर उस हार के पहनने से बाज़ आई।



[चमेली घूँघट काढ़े आती है।]

नारायण—देख, मुझे बुख़ार चढ़ने लगा है। तू ज़्यादा बक-बक मत कर। घूँघट खोलकर बाहर जाने में तेरी कौनसी इज़्ज़त का नीलाम हुआ जा रहा है? दुनिया की तमाम स्त्रियों को देख, किस तरह सुन्दर प्रकाश और ताज़ा हवा में चल-फिरकर ज़िंदगी का सुख उठाती हैं। क्या उनमें धनी-मानी नहीं हैं? बड़े-से-बड़े घरों की महिलायें बन, उपवन, बाज़ार और उत्सवों में मुँह खोले घूमती-फिरती हैं।

चमेली—वे मोटरों में जाती हैं। तुम्हारे पास तो एक छकड़ा भी नहीं है।

नारायण—अरी हिन्दुस्तान की अबला! तुझे सदियों से पुरुष-जाति ने चारदीवारी के अंदर धुँधली रोशनी और बासी हवा में क़ैद कर रक्खा है। तेरे दिमाग़ से ग़ुलामी के ख़याल जा नहीं सकते!...लेकिन मैं तुझे घसीट कर परदे के बाहर लाऊँगा और बताऊँगा कि मर्द और औरत दोनों के हक़ बराबर हैं।

चमेली—लेकिन नहीं, किसी तरह नहीं। चमेली परदा छोड़कर क्लब में!—नहीं, नहीं, मैं इस बात को ज़बान पर भी नहीं ला सकती। सीता जी के समय से जो रीति चली आई है, जो परदा स्त्रियों का आभूषण है, आप

उसे तोड़ देना चाहते हैं। नहीं, नहीं, मैं जाति-बिरादरी में अपनी हँसी नहीं कराऊँगी। मुझे उन लोगों के बीच में रहना है।

नारायण—[दीर्घ श्वास लेकर] ओ–ओ–ओ–फ़–फ़ ! पिता जी ने इस गाँव की गँवारिन का अञ्चल मेरी टाइ से बाँध कर बड़ी भूल की। [एकाएक क्रोध में आ कमर में दोनों हाथ रखकर] तू नहीं चलेगी ?

चमेली—नहीं।

नारायण—तुझे चलना पड़ेगा। [सिर पर से उसकी साड़ी खींच लेता है।]

चमेली—जीते जी नहीं। [साड़ी छुड़ा फिर सिर ढँक लेती है।

नारायण—मैं तुझे ज़बर्दस्ती ले जाऊँगा। [फिर साड़ी खींच लेता है।]

चमेली—[दोनों हाथों और घुटनों से मुँह ढँक ज़मीन पर बैठ जाती है।] मैं अपने कुल का धर्म नहीं छोड़ सकती।

नारायण—यह धर्म नहीं है, समाज का बनाया हुआ एक नियम है, जो पुराना पड़ जाने से सड़ गया है। अब ज़रूरत है कि वह बदल दिया जाय।

चमेली—[उसी तरह मुँह छिपाये चुप रहती है।]

नारायण—तू नहीं चलेगी ?

चमेली—कह तो दिया, ऊँ हूँ।

नारायण—[तर्जनी दिखाकर] नहीं ?

चमेली—नहीं ! नहीं ! नहीं !

नारायण—तो जा मर ! [परदे के अंदर ढकेल देता है।] तू मेरी कोई नहीं, मेरा तुझसे कुछ वास्ता नहीं। तेरी चाय तेरे सिर पर ! [परदा उठा चाय का प्याला और मिठाई की तश्तरी भी फेंक देता है।]

[कंधे तक बाल बढ़ाये, तरकारी की डलिया लिये दीना का प्रवेश। वह यह सब कुछ देखकर विस्मय प्रकट करता है।]

चमेली—[अंदर से रोती हुई] ऊँ ऊँ ऊँ

दीना—अरे बाप रे ! यह क्या मामला है ? [नारायण चौंककर उसकी ओर देखता है।] लीजिए बाबू जी। [तरकारी की डलिया ज़मीन पर रख पैसे लौटाकर] साढ़े चौदह आने गिन लीजिए। तीन पैसे के आलू और तीन की भिंडी लाया हूँ। [दोनों हाथों से कान पकड़कर जीभ काटता है।] बंदा चला।

नारायण—कहाँ चले ?

दीना—अपने घर को हुज़ूर !

नारायण—आख़िर कारण ?

दीना—मेरे बाप ने मुझसे कह रक्खा है, बेटा, जिस घर में मियाँ-बीवी लड़ते हों उस घर का नमक मत खाना...।

नारायण—[हाथ पकड़ उसे खींचकर] ठहर, ठहर, मूर्ख! मैं फिर भी तेरे रहने को यहाँ जगह बनाये देता हूँ। तेरे लिए बिना नमक की दाल-तरकारी अलग निकाल-कर रख दी जायगी। तू अपने हाथ से नमक मिला कर खा लेना।

दीना—वाह ! क्या बात कही है बाबू जी ! दिमाग़ इसे कहते हैं।

नारायण—[घड़ी देखकर] क्लब का वक्त हो चला दीना !

दीना—हो गया होगा, बाबू जी !

नारायण—समय आया है कि हिन्दुस्तान की औरतें परदा छोड़कर मर्दों के साथ-साथ काम करें। लेकिन कुछ औरतों के दिमाग़ में ऐसा गोबर भरा हुआ है कि बात ही समझ में नहीं आती। जो कपड़ा सिर ढँकने को मिला था उससे मुँह छिपाने लगीं।

दीना—यानी तवे से कड़ाई का काम लिया जाने लगा।

नारायण—दीना ! परदे में क्या कुछ भी फ़ायदा तुझे दिखाई देता है ?

दीना—कुछ भी नहीं सरकार ! परदा आँख का होता है। उसे ढँकने के लिए ईश्वर ने ऊपर और नीचे दो परदे दे रक्खे हैं। फिर यह एक घूँघट और—सूद-पर-सूद !—मुझे काटनेवाले जूते की तरह खट-कता है।

नारायण—तो क्या किया जाय ? जब कोई घूँघटवाली परदा छोड़ने पर राज़ी न हो तो क्या किया जाय दीना ?

दीना—तब मर्द ही साड़ी पहनकर घूमने जाय।

नारायण—[ताली बजाकर] यह बात है ! तूने मेरे मतलब की बात नहीं कही है, तो भी मैंने उसमें से अपना मतलब निकाल लिया है। मेरा सवाल हल हो गया, कुंजी मिल गई ! दीना, साड़ी पहन औरत का वेश बनाकर मेरे साथ चलेगा ?

दीना—ठेटर में सरकार !

नारायण—हाँ, तूने तो वर्नाक्यूलर मिडिल पास किया है न ?

दीना—जी सरकार, और मैं अँगरेज़ी में अपना नाम भी लिख सकता हूँ। कहीं मुन्शीगिरी ख़ाली है क्या ?

नारायण—अरे नहीं—[परदा उठा अंदर चला जाता है।]

दीना—[सिर खुजलाकर] कुछ समझ नहीं पड़ता।

नारायण—[एक ट्रंक लेकर वापस आता है।] परदा-तोड़क क्लब में चलेंगे दीना ! वहाँ तुझे यह लेक्चर पढ़ना पड़ेगा। [जेब से लिखा हुआ लेक्चर निकाल दीना को देता है।] ले पढ़ तो। [ट्रंक खोलता है।]

दीना—लाइए, देखिए अभी कैसी रेल चलाता हूँ। [काग़ज़ लेकर पढ़ता है] "प्यारी बहनो और प्यारे भाइयो, आपने परदे के ख़िलाफ़ युद्ध करने के लिए मेहरबानी कर हमें भी अपने—"

नारायण—[ट्रंक के कपड़ों में उलट-पुलट करते हुए] बस, बस, ठीक है। तू बहुत होशियार है दीना ! ले यह साड़ी पहन। [ट्रंक में से साड़ी निकालकर देता है।]

दीना—[ख़ुश होकर पहनता है।] किधर से सरकार !

नारायण—[साड़ी पहनाते हुए] मैं तुझे क्लब में अपनी औरत कहकर ज़ाहिर करूँगा।

दीना—[चौंककर भागता है।] अरे बाप रे ! [अंदर की ओर सङ्केत कर अपने कान मरोड़ता है।]

नारायण—अरे आ इधर, कोई खटका नहीं है। सिंगल डाउन है।

दीना—हु-हुज़ूर, मगर बहुआइन जी का क्या होगा ?

नारायण—अरे चुप-चुप, उस चुड़ैल का नाम न ले।

दीना—बेलन तो खींचकर न मारेंगी ?

नारायण—मूर्ख, डरता है। [दीना का हाथ खींचकर उसकी धोती के ऊपर से साड़ी पहनाता है।] तेरे हाथ लकड़ी के बने हैं क्या ? भाई, देखना बड़ी ख़बरदारी से काम लेना होगा। कहीं भंडा न फूट जाय। बराबर अपने को औरत ही समझते रहना। कुछ आवाज़ भी महीन कर लेना और हाथ-पैर भी स्त्रियों की तरह चलाना। तेरे लंबे बाल भी आज काम आ गये। कुछ छोटे ज़रूर हैं, बॉब्ड समझ लिये जायँगे। वह तो और भी अप-टु-डेट बात है। ले यह जंपर पहन। [जंपर निकाल कर पहनाता है।]

दीना—[स्त्रियों के-से हाव-भाव दिखाता है।] ज़रा आइना तो देख लेने दीजिए।

नारायण—बटन तो लगाने दे। ठहर जा। अभी जल्दी क्या है ? [बटन लगा, कंघी निकाल तीन-चौथाई सिर पर माँग निकाल हेयर-पिन लगाता है।] ले यह चप्पल पहन। [चप्पल देता है।] बस अब इसी वक्त से तू अपने को औरत समझ।

दीना—[चप्पल पहनकर] अब आइना देख लूँ हुज़ूर !

नारायण—हाँ, आइना भी देख और ज़रा हाव-भाव तथा बोल-चाल का नमूना भी दिखा।

दीना—[घूँघट सँभाल, ठोड़ी पर अनामिका रख आइना देखता है।] मगर एक बात रह गई, और सब ठीक है।

नारायण—[घबराकर] क्या बात रह गई ?

दीना—रङ्ग नहीं आया।

नारायण—रङ्ग नहीं आया ! अफ़सोस ! [गालों पर हाथ रख बैठकर सोचता है।]

दीना—[उछलकर] रङ्ग भी आ गया।

नारायण—[उठकर दीना का हाथ पकड़ता है।] किस तरह ?

दीना—बूट-पालिश की डिबिया !

नारायण—ठीक है। निकाल-निकाल बूट-पालिश। [घड़ी देखता है।] अभी उसके लिए भी वक्त है।

दीना—[बूट-पालिश की डिबिया और ब्रुश निकालकर] यह लीजिए।

नारायण—दीना ! आज तूने मेरी लाज रख ली।

दीना—सीऽऽऽ् ! आप ख़ुद भूल गये स्वामी !

नारायण—[कान पकड़कर] भूला, भूला। ठीक कहती हो प्यारी ! [लो आँखें बन्द करो।]

दीना—[अंदर की तरफ़ देखता है।]

नारायण—अरी ! उधर क्या देख रही हो ?

दीना—देखती हूँ, कोई ढेला-पत्थर तो नहीं चला आ रहा है।

नारायण—किसी की ऐसी शक्ति नहीं प्यारी ! लो आँखें बन्द करो।

[दीना आँखें बन्द करता है, सिंहनाथ ब्रश से उसके मुख में पॉलिश लगाता है।]

दीना—अहाहा ! बड़े मज़े की ख़ुशबू आ रही है। ज़रा हलके-हलके हाथों से स्वामी !

नारायण—देखो प्यारी, मर्दों के बीच में घबराना मत।

दीना—मैं औरत थोड़े हूँ, जो घबरा जाऊँगी।

नारायण—मार डाला ! मार डाला ! अगर वहाँ यह कह दिया तो बे मौत मरना होगा।

दीना—तौबा, तौबा ! [अपने गाल पर चपत लगाता है।] नहीं स्वामी ! मैं मर्दों से क्यों घबड़ाऊँगी। [उसके हाथ में गाल का पालिश लग जाता है। दीना घबराता है।]

नारायण—कोई हर्ज नहीं, हाथों में भी तो वही रङ्ग चाहिए, [दीना के हाथों में भी पालिश लगा देता है।] लो दोनों हाथों को ख़ूब मलकर बराबर रङ्ग फैला लो।

दीना—[हाथ मलकर] अब ?

नारायण—[रूमाल देकर] लो, इस रूमाल से हाथ पोंछ लो।

दीना—[हाथ पोंछता है।]

नारायण—[लिखा लेक्चर देकर] लो, यह अपना लेक्चर सँभालो।

दीना—लाइए, प्राणनाथ !

नारायण—तो चलें।

दीना—परन्तु एक बार फिर आइना देख लूँ।

नारायण—देख लो।

दीना—[आइना देखकर] अब कुछ कसर नहीं है।

नारायण—[घड़ी देखकर] चलो।

दीना—तैयार हूँ, [ज्यों ही जाना चाहता है, त्यों ही तरकारी की डलिया से उलझकर गिर पड़ता है।]

चमेली—[अंदर से] आक् छी ! आक् छी !!

दीना—[उठकर सँभलता है।] सँभालिए खोपड़ी ! आई ईंट।

नारायण—तुम बहुत डरती हो प्रिये !

दीना—औरत-ज़ात ठहरी न।

नारायण—ठीक है, बिलकुल ठीक है। [चलना चाहता है।]

दीना—[सिंहनाथ का हाथ खींचकर] पर अभी ज़रा देर ठहर जाइए।

नारायण—क्यों ?

दीना—छींक हुई है न !

नारायण—तुम बड़ी अंधविश्वासिनी हो।

दीना—औरत-ज़ात ठहरी न !

नारायण—ठीक है, बिलकुल ठीक है। लेकिन यह छींक पीठ पीछे की है, इसका कोई ख़तरा नहीं।

दीना—ठहर जाइए। हानि क्या है ? बीस तक गिनने के बाद चलेंगे। एक, दो, तीन, चार......[बीस तक गिनता है।]......बीस, चलिए।

[दोनों का बाहर को जाना और चमेली का अन्दर से आना।]

चमेली—परमेश्वर करे यह बात न छिपे, भेद खुल जाय, भण्डा फूट जाय ! [जाना।]

दूसरा दृश्य

[बाज़ार का एक मोड़, कंधे पर खोमचा, बग़ल में तसीना और दाहने हाथ में अँगीठी पर कड़ाही लिये एक पकौड़ीवाले का आना।]

पकौड़ीवाला—चाट-चाट, हाथ चाट, पात चाट। चनेऽऽ चटपटेऽ मसाऽऽलेदार ! खावे तो मज़ा आवे, चक्खे तो याद रक्खे। और पकौड़ी भी उबल रही है। क्या धुआँ आ रहा है !

[नारायण और दीना का आना। भोंपू बजाते हुए एक मोटर का प्रवेश। उससे बचने के लिए नारायण और दीना



[खोमचेवाला]

का एकाएक एक ओर को हटना और पकौड़ीवाले से टकराना। पकौड़ीवाला ज़मीन पर गिरता है। उसके थाल और अँगीठी का बिखर जाना। नारायण का दीना का हाथ खींच लंबे क़दम बढ़ा खिसक जाना। पकौड़ीवाले का लपककर नारायण का हाथ खींच लाना। उन्हीं के साथ दीना का भी आना और उनकी ओर पीठ कर खड़ा रहना।]

नारायण—[क्रुद्ध होकर] क्या बात है ? तुम्हें शरम नहीं आती। नमक-मिर्च सने हुए हाथों से तुमने इस तरह एक जैंटिलमैन का हाथ खींच लिया। तुम्हारे ऊपर इज़्ज़त-हतक का दावा हो सकता है।

पकौड़ीवाला—किस दावे के फेर में पड़े हो हज़रत ! यहाँ देखो, तुमने तो मेरा समूचा खोमचा ही उलट डाला। अभी बोहनी भी नहीं की थी। सीधा घर से ही चला आ रहा हूँ। बाबू, तुमने हमारे पेट में छुरा भोंक दिया। रात को कैसे चूल्हा जलेगा, क्या बाल-बच्चे खायँगे ?

नारायण—हाथ छोड़ दो।

पकौड़ीवाला—हाथ नहीं छोड़ूँगा। मैं चिल्ला-चिल्लाकर अभी यहाँ तुम्हारे चारों ओर भीड़ जमा करता हूँ। खोमचे के पैसे रख दो।

नारायण—कहता हूँ, हाथ छोड़ दो। एक शरीफ़ आदमी की बेइज़्ज़ती मत करो, और ख़ास कर उस वक़्त जब उसकी स्त्री उसके साथ है।

पकौड़ीवाला—आँख देखकर रास्ता चलते जनाब !

नारायण—मैं ठीक रास्ते से आ रहा था, तुम्हीं रॉंग साइड पर थे। इतना लम्बा-चौड़ा थाल कन्धे पर और हाथ में अँगीठी, उस पर कड़ाही—सारी दुनिया को लादे हुए चलते हो। एक भोंपू भी रखकर बजाते चलो कि लोग सावधान हो जायँ। छोड़ो हाथ।

पकौड़ीवाला—कभी नहीं।

दीना—[सामने मुखकर] फेंकिए इसके सिर पर कुछ। यह ऐसे न मानेगा स्वामी !

[पकौड़ीवाला शङ्कित होकर दीना की ओर देखता है।]

नारायण—हाथ छोड़ दो। [दूसरे हाथ से घड़ी निकालकर देखता है।]

पकौड़ीवाला—मेरा पूरे ६ रुपये का खोमचा है। आख़िरी पाई तक वसूल करूँगा।

[पकौड़ीवाला फिर शङ्कित होकर दीना की ओर देखता है। दीना मुख फेर लेता है।]

नारायण—हाथ तो छोड़ गये ! हाथ से पैसे भी निकालने देगा न ? [झटका देकर हाथ छुड़ा, जेब से पाँच रुपये का नोट निकालकर उसे देता है।] एक रुपया वापस कर।

पकौड़ीवाला—[नोट और उसका वाटर-मार्क देखकर] एक रुपया और टेंट से निकालो। यह तो पाँच रुपये का नोट है।

दीना—एक साथ ही बिक गया, गली-गली फिरने से बचे।

यह क्या कम है ? चलिए स्वामी ! फेंकिए पूरा नोट इसके सिर पर फेंकिए, देर हो रही है ।

[दोनों का जाना ।]

पकौड़ीवाला—[ठोड़ी में दाहने हाथ की तर्जनी रख स्त्रियों के स्वर में] देर हो रही है ! [हठात् कुछ याद आते ही उनकी ओर भागता है और दीना का हाथ पकड़कर खींच लाता है । उनके पीछे नारायण भी आता है ।] क्यों दोस्त ! आज बहुत दिनों में मिले । उधार खाकर गली-गटरों में मुँह छिपाते फिरते हो ?

नारायण—[हक्का-बक्का होकर] ओ बेईमान ! तुझे हो क्या गया है ? इस तरह पराई औरत का हाथ पकड़ लिया !

पकौड़ीवाला—[सलाम कर] आदावअर्ज़ है बाबू जी ! यह सब जाकर अंधों से कहिए । यह मुलुवा का बेटा दिनुवा है । इसे देखकर कुछ शक तो पहले ही हो गया था । अगर जाते वक्त इसकी यह छठी उँगली न देख लेता तो इसने मेरी आँखों में धूल झोंक दी थी । इसे इस तरह सजाकर कहाँ ले जा रहे हो बाबू जी ?

नारायण—[मुँह फेरकर दाँतों के नीचे जीभ दबाता है ।]

दीना—छोड़, देर हो रही है । एक जगह ठेटर में जाना है । [हाथ छुड़ाने की कोशिश करता है ।]

पकौड़ीवाला—पैसे रखते जाओ बच्चू ! अब तुम्हारी बारी है । आज बहुत दिनों में मिले हो । सीधे मुँह से रख दो । मेरे एक रुपया साढ़े सात आने । नहीं तो क़यामत तक नहीं छोड़ूँगा । आज फँसे हो पंजे में ।

नारायण—ले यह एक रुपया साढ़े सात आने । [पैसे निकालकर देता है ।]

पकौड़ीवाला—[दीना का हाथ छोड़कर पैसे लेता है ।] जीते रहो बाबू जी ! पूरे दो साल में वसूल हुए हैं । [पैसे अंटी में रखता है ।]

[नारायण दीना का हाथ पकड़ जल्दी से सरक जाता है । पकौड़ीवाला अपना खोमचा समेटकर सजाने लगता है ।]

तीसरा दृश्य

[परदा-तोड़क क्लब की मीटिंग । एक मेज़ के चारों ओर क्लब के मेम्बर स्त्री-पुरुष बैठे हुए हैं । क्लब के सभापति खड़े होकर व्याख्यान दे रहे हैं । समीप ही उनकी स्त्री बैठी है ।]

सभापति—परमेश्वर को धन्यवाद है । दिन-दिन हमारे साथी बढ़ते ही जा रहे हैं । हर बड़े शहर में परदा-तोड़क क्लब की एक-एक शाखा खुल गई है । औरतों को अपने स्वत्वों की पहचान हो रही है । परदे का घूँघट डालकर उनको दिन में ही उल्लू बनानेवाले लोग मुँह छिपाते नज़र आ रहे हैं ।

नारायण—[नेपथ्य में] और किसी तरह इसका घूँघट नोचकर मैं भी आ पहुँचा जनाब !

सभासद्—[उत्सुक होकर उधर देखते हैं ।]

[नारायण का दीना का हाथ पकड़े हुए प्रवेश ।]

नारायण—लीजिए, ले आया मैं भी इसे पिंजरे के बाहर । बड़ी विनय-प्रार्थना, ख़िदमत-ख़ुशामद और लड़ाई-झगड़े के बाद ले आया ।

सभासद्—शाबास ! मिसेज़ और मिस्टर नारायण ।

नारायण—[टोपी उतार, सिर झुका, हाथ पीछे कर] थैंक यू ।

दीना—[सिर नंगा कर, सिर झुका, हाथ पीछे कर, महीन आवाज़ में] थैंक यू ।

सभापति—हमें तुम्हारे-जैसे ही निडर सुधारकों की ज़रूरत है, जो दूसरों को लेक्चर देना छोड़कर अपने घर का परदा फेंक प्रेक्टिकल मिसाल सामने रखते हैं ।

सभापति की स्त्री—आइए, अब आपको इन्ट्रोड्यूस करायें ।

[सभापति की स्त्री नारायण का हाथ स्त्रियों के हाथों से मिलाती है । सभापति दीना का हाथ पुरुषों से मिलाता है । सब अपनी-अपनी जगहों में बैठते हैं ।]

सभापति—[उठकर] आपको परदा-तोड़क क्लब में शामिल करते हुए हमें बेहद ख़ुशी है । आप क्लब की प्रतिज्ञा याद कर आये हैं ?

नारायण—[उठकर] जी हाँ ।

सभापति—अच्छी बात है । नियमानुसार तीन बार प्रतिज्ञा कीजिए ।

नारायण—मैं धर्म्म और ईश्वर को साक्षी कर प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अपने घर के अन्दर की स्त्रियों का परदा मिटा दूँगा और उन्हें पुरुषों के समान अधिकार लेने दूँगा । [तीन बार कहकर बैठ जाता है ।]

सभापति—[दीना से] अब आप भी उठकर तीन बार प्रतिज्ञा कीजिए—मैं किसी वर्ण और जाति के जीवधारी से ऊन, सूत, रेशम, जूट आदि किसी वस्तु का बना हुआ किसी तरह का परदा नहीं करूँगी ।

दीना—[उठकर] मैं किसी वर्ण......[रुक जाता है ।]

नारायण—अभी जेलख़ाने से निकालकर ला रहा हूँ और आपने एक-दम कंपाउंड सेंटेन्स इनके सिर पर लाद दिया । आधा-आधा कहलवाइए ।

सभापति—अच्छी बात है । लेकिन प्रतिज्ञा याद हो जानी चाहिए । कहिए—मैं किसी वर्ण और जाति के जीवधारी से ऊन, सूत, रेशम, जूट आदि......

दीना—मैं किसी वर्ण और जाति के जीवधारी से ऊन, सूत, रेशम जूट आदि......

सभापति—किसी वस्तु का बना हुआ, किसी तरह का परदा नहीं करूँगी ।

दीना—किसी वस्तु का बना हुआ, किसी तरह का परदा नहीं करूँगा । [सभासद् ताज्जुब और नारायण क्रोध से उसकी ओर देखते हैं । दीना सँभलता है ।] गी, गी, गी, करूँगी, करूँगी, परदा नहीं करूँगी । [अब याद हो गया । दो बार फिर वही वाक्य कहकर बैठ जाता है ।]

सभापति—परमेश्वर आप लोगों की मदद करे । आप आँधी और भूचाल की तरह इस नवीन क्रान्ति में काम आवें । मिसेज़ नारायण ! क्लब के क़ायदे के अनुसार अब आपको एक छोटा-सा लेक्चर देना होगा ।

नारायण—उठो, उठो, शरम किस बात की ।

सभापति की स्त्री—स्त्रियों के बराबर दुनिया में और कौन हो सकता है ? उठो, इस बात को साबित करो ।

दीना—[काग़ज़ निकालकर] मगर आज पहला दिन है । इसलिए मैं घर से लिखकर लाया हूँ । [सभा ताज्जुब और नारायण क्रोध प्रकट करते हैं ।] ई, ई, ई, लाई, लाई, लिखकर लाई हूँ ।]

सभापति—कोई हर्ज नहीं । उसे ही पढ़िए ।

दीना—[उठकर पढ़ता है] प्यारी बहनो और प्यारे भाइयो, आपने परदे के ख़िलाफ़ युद्ध करने के लिए मिहरबानी कर हमें भी अपने झुंड में शामिल किया है । इसलिए हम आपको सैकड़ों धन्यवाद देते हैं । प-र-दा—यह तीन अक्षरों का वह राक्षस है, जिसने औरतों की आज़ादी को छीन लिया है, उनके सुख को कुचल दिया है और उनकी तन्दुरुस्ती को हज़म कर डाला है ! मर्द बहुत दिन तक औरतों को क़ैद कर मनमानी कर चुके । अब उनकी पोल खुल गई ।

सभासद्—हियर ! हियर !!

दीना—पुरुषों की इस ज़्यादती, स्त्रियों की इस बेड़ी और समाज के इस कलङ्क को मिटाने के लिए मैं परदा छोड़कर मैदान में आया [सभासद् फिर शक ज़ाहिर करते हैं ।] ई, ई, ई, आई, आई, मैदान में आई हूँ कि इस सड़ी रीति और गले रवाज का गला घोट डालूँ ।

सभासद्—हियर ! हियर !!

[नेपथ्य में "पकौऽड़ी गरऽऽम !, की आवाज़ । नारायण का घबराना, दीना का चुप हो जाना ।]

सभापति हाँ, हाँ, कहो, कहो ।

दीना—मैं अपनी ऊँची आवाज़ से आसमान और ज़मीन में गूँज पैदा करूँगी कि ऐ भोली-भाली स्त्रियो ! इस परदे के जाल को काटकर बाहर आओ और तितलियों की तरह सूरज की सुनहरी किरणों में नाच कर देखो कि मर्दों ने दुनिया का सबसे सुन्दर हिस्सा अपने लिए बचा रक्खा है । अन्त में आप लोगों को जो तन-मन-धन से इस बुराई की जड़ काटने के लिए पेटी कसे बैठे हैं, धन्यवाद देकर बैठता [सभा फिर ताज्जुब करती है ।] ती, ती, ती, बैठती, बैठती धन्यवाद देकर बैठती हूँ । [बैठ जाता है ।]

सभासद्—[ताली बजाते हैं ।]

पकौड़ीवाला—[आकर खोमचा और अँगीठी फ़र्श पर रखता है।] पकौऽड़ी गरऽऽऽम !

सभापति—[साश्चर्य] चपरासी ने नहीं रोका। यह यहाँ कौन आ गया ?

पकौड़ीवाला—ख़ता माफ़ हो मालिक ! इस परदा-तोड़क क्लब में कैसी रोक-टोक ! मैं परदे में नहीं बेचता, खुले आम चौराहों पर ! बड़े-बड़े राजा-रईस मेरी पकौड़ियों का मज़ा लेते हैं। एक ख़ास मसाला देता हूँ। किसी के बाप को मालूम नहीं हो सकता। और पकौड़ी भी उबलते हुए तेल में थिरक रही है ! वाह क्या बात है ! चक्खे तो याद रक्खे !

[नारायण दीना से मेज़ के नीचे छिपने का इशारा करता है। दीना मेज़ के नीचे खिसक जाता है।]

सभापति—क्या बकते हो जी ? निकलो यहाँ से।

पकौड़ीवाला—मेरी पकौड़ियों से ज़्यादा आप गरम हो नहीं सकते। किसी के ज़नानख़ाने में थोड़े घुस आया हूँ सरकार ! यह परदा-तोड़क क्लब है परदा-तोड़क क्लब ! पकौऽऽड़ि गरेऽऽम खाने तो मज़ा आवे।

सभापति—कह दिया, जाओ, यहाँ तुम्हारी पकौड़ियाँ नहीं बिक सकतीं।

पकौड़ीवाला—उसकी किसे फ़िक्र है। [अंटी से एक रुपया निकालता है।] बात यह है हुज़ूर। [रुपये को फ़र्श पर बजाता है।] देखिए सरकार ! है न खोटा ?

सभापति—बहुत हो चुका, उठो किसी सर्राफ़ के पास जाकर इसके खरे-खोटे की जाँच कराओ !

पकौड़ीवाला—मगर उसको भी तो पकड़ ले चलूँ। कम्बख़्त ! बेईमान ! दिनुवाँ मुझे खोटा रुपया दे गया। मैंने कभी उसे कच्ची पकौड़ियाँ नहीं खिलाईं हुज़ूर !

सभापति—कैसे सिड़ी हो ? यहाँ कोई दिनुवाँ नहीं है। उठाओ खोमचा और रास्ता नापो। [उसके निकट जा उसे राह दिखाता है।]

पकौड़ीवाला—वह यहीं है सरकार ! मैं बड़ी दूर से पूछते-पूछते चला आ रहा हूँ। वह यहीं आया है। मेरी पकौड़ी जल नहीं सकती और मैं धोखा खा नहीं सकता। पकौऽऽऽड़ि गरऽऽम ! उसके साथ आधी-आधी मूँछों के चश्मा पहने एक बाबू जी भी थे। उन्होंने रुपया दिया है।

[नारायण भी मुँह छिपाता है।]

सभापति—बहुत मत बको जी, ठोकर मारकर खोमचा लुढ़का दूँगा।

पकौड़ीवाला—कम्बख़्त मुँह में कारिख मल साड़ी पहन मुझे चिरका दे गया।

सभापति—[शक कर] हैं कारिख और साड़ी !

पकौड़ीवाला—हाँ हुज़ूर, कहता था ठेटर करने जा रहा हूँ। हो गया ठेटर सरकार !

सभापति—मिसेज़ नारायण ! आप गर्दन नीची किये फ़र्श पर क्या टटोल रही हैं ?

सभापति की स्त्री—और मिस्टर नारायण ! और आप भी झुके हुए किसके जूते का तस्मा खोल रहे हैं ?

नारायण—अजी क्या बताऊँ जनाब ! मेरी फ़ाउण्टेन और इनकी रिस्टवाच गिर पड़े हैं। उन्हीं को खोज रहे हैं।

पकौड़ीवाला—[झुककर देखता है और दीना को पहचान कर उछलता है।] वही है सरकार !

सभापति की स्त्री—बड़ी देर हो गई बहन !

[सभापति चकित हो कुछ विचार करता है। दीना मेज़ के नीचे छिपता है। पकौड़ीवाला जाकर नारायण का हाथ खींचकर मेज़ के बाहर निकालता है।]

पकौड़ीवाला—आदाब बजा लाता हूँ सरकार ! यह रुपया सही सुर में नहीं है, इसे मेहरबानी कर बदल दीजिए !

[दीना मेज़ के नीचे साड़ी, जंपर और चट्टी खोलता है।]

नारायण—[दूसरा रुपया देकर] लो, और चुपचाप सीधे चले जाओ।

पकौड़ीवाला—जीते रहें सरकार। [खोमचा उठाकर] गरऽऽम पकौऽऽड़ि ! पकौऽऽड़ि गरऽऽम !! [जाता है।]

सभापति—मिस्टर नारायण ! कुछ समझ में नहीं आता।

सभापति की स्त्री—बहन, आपकी रिस्टवाच नहीं मिली ?

दीना—[मेज़ के नीचे से] मेरे बाप-दादे में से किसी ने भी रिस्टवाच नहीं पहनी सरकार !

सभासद्—[चौंकते हैं।]

दीना—[साड़ी, जंपर और चट्टी लिये मेज़ के नीचे से निकलता है और उन्हें नारायण को सौंपता है। सभा चकराती है।] लीजिए सरकार ! मैंने तो तभी आपसे कह दिया था, मुझे छुट्टी दे दीजिए। यह बहू जी की साड़ी, जंपर और चट्टी सँभालिए। बन्दा चला ! जय रामजी की ! मेरे ठेटर में अगर कोई ग़लती हुई हो तो आप सब लोग कहा-सुना माफ़ करेंगे।

सभापति—अफ़सोस, अफ़सोस, बेहद अफ़सोस !

[सभासद् उठकर नारायण की तरफ़ जाते हैं, नारायण उदास होकर सिर खुजलाता है।]

सभापति—आप-जैसे पढ़े-लिखे और शरीफ़ लोग ऐसी सफ़ेद झूठ बोलें। शर्म है, शर्म है, चुल्लू-भर पानी में डूब मरने की बात है।

सभासद्—छि ! छि !! छि !!!

[सारी सभा घृणा की दृष्टि से नारायण की ओर देखती है। नारायण गर्दन नीची कर लेता है। उसके हाथ से साड़ी, जंपर और चट्टी फ़र्श पर गिर जाते हैं।]

यमुना के प्रति

लेखिका, श्रीमती तारा पांडे

यमुने, तेरे निर्मल जल में
कितनी बार नहाई थी।
तेरे वक्षःस्थल पर मैंने
दीपक-ज्योति जलाई थी ॥१॥

बैठ नाव पर तेरे उर में
कितनी बार विहार किया।
देख देखकर बचपन ही से
मैंने तुझको प्यार किया ॥२॥

कोई नहीं जानता है मा,
मेरे उर की करुण कथा।
तू ही कैसे समझ सकेगी
जीवन की वह मर्म व्यथा ॥३॥

तेरी गोदी में सोये हैं
मेरे माता और पिता।
तेरे ही समक्ष दोनों को
जला चुकी है, हाय, चिता ॥४॥

फिर भी तू मुझको प्यारी है
सत्य बताती हूँ तुझको।
एक विनय है, मा अपने में
शीघ्र लीन कर ले मुझको ॥५॥

कला का क्रमिक विकास और यथार्थवाद

लेखक, श्रीयुत उदयशंकर भट्ट

पण्डित उदयशङ्कर भट्ट सुकवि तथा नाटककार हैं। कला के सम्बन्ध में आपने अपने जो विचार इस लेख में व्यक्त किये हैं, आशा है, उनकी ओर हिन्दी के विचारवानों का ध्यान आकृष्ट होगा।

मनुष्य ने प्रारम्भकाल से जीवन के जिस सबसे बड़े पहलू में विकास पाया है वह उसके व्यक्तित्व का मधुर उपयोग है। उस व्यक्तित्व की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए उसने बहुत हाथ-पांव मारे हैं। कला की अभिव्यक्ति के द्वारा इस विचार को उसने जी-जान से सींचा है। जिसे योगी लोग 'आत्म-सुख' कहते हैं, वेदान्ती जिसे 'आत्म-चिन्तन' कहते हैं, संसार के साहित्य की शिष्टभाषा में हम उसे कला-द्वारा प्राप्त 'आनन्द' कहते हैं। अगर हम इस बात को और स्पष्ट करने के लिए प्रतिदिन होनेवाली विशेष घटना पर विचार करें जो मनुष्य के गर्व या किसी ऐसे ही भाव के साथ घटित हुई हैं, तो हमें मालूम होगा कि मनुष्य की उस क्रिया में व्यक्तित्व की एक विशेष प्रकार की ध्वनि है। उस क्रिया में उसकी आत्मा का उद्गार है। गोष्ठियाँ बनाकर रहनेवाले आर्यों ने उपनिषद्-काल में उस व्यक्तित्व की बड़ी गहरी उपासना की है। भारत के इस छोर से लेकर उस छोर तक इस लहर ने जहाँ आत्मा के अपने चिन्तन में व्यक्तित्व की मर्यादा को क़ायम रक्खा, वहाँ समाज ने उसे धर्म के नाम पर और तत्कालीन परिस्थितियों ने श्रेष्ठ व्यक्ति की उपासना के बहाने अपनेपन से हटाकर उसका रुख राजा की तरफ़ फेर दिया, उसके दृष्टिकोण को थोड़ा-बहुत वीरता, जातीयता की ओर भी कर दिया। दूसरों से अपनी रक्षा करने के विचार ने उनके गोष्ठीतंत्र को राज्यप्रणाली में बदल डाला। और समय पाकर लोग राजा में ईश्वर का अंश समझने लगे। इसका प्रभाव सांसारिक साहित्य पर इतना अधिक पड़ा कि हम अपना सञ्चित व्यक्तित्व भूलकर ईश्वर के प्रतिनिधि राजा की ओर चल पड़े, और वहाँ बढ़ते-बढ़ते अवतार तक पहुँच गये। ठीक इसी तरह हमारे व्यक्तित्व से निकलती हुई कला ने हमारे पीछे चलना शुरू किया और वह भी राजा की गोद में बहुत देर के लिए बैठ गई। यहाँ यह भी कह देना चाहिए कि संस्कृत के दोनों—शब्द और दृश्य काव्य भी कवि की कल्पना-द्वारा राजा तक जाकर ही सीमित रह गये। रघुवंश, कुमार-सम्भव, नैषध आदि काव्य एवं शकुन्तला, मालविकाग्निमित्र, स्वप्नवासवदत्ता आदि नाटक राजाओं के पराक्रम, सौन्दर्य-विलास आदि बातें दिखाने के लिए रह गये।

बल्कि संस्कृत के लक्षण-ग्रन्थों ने तो नायकों का एक नियम भी बना लिया कि नाटक में अमुक-अमुक ढङ्ग के नायक होने चाहिए। और प्रतिनायक ऐसे हों जो उसके सदा प्रतिद्वन्द्वी होने के साथ नायक से अन्त में हार जाने-वाले हों। प्रत्येक नाटककार ने उसके न हारने पर भी उसे अन्त में हरा ही दिया है। इसका कारण केवल नायक को बड़ा दिखाना और उसके पद की रक्षा करना है। प्रतिनायक की कल्पना साहित्य में नायक की परीक्षा और उसके वैभव को और अधिक आकृष्ट कर दिखाने के लिए था। काव्यों में तो प्रतिद्वन्द्वियों की कोई ख़ास ज़रूरत पड़ती ही नहीं है। इसलिए अन्य काव्यों में तो प्रतिनायक का कोई सवाल ही नहीं उठता। इसी तरह नायिका से प्रतिनायिका को भी सदा हारना ही चाहिए। ऐसा करने और दिखलाने का एक कारण यह भी तो है कि राजा के अलावा उस समय कोई व्यक्ति शायद सम्पन्न भी तो नहीं पाया जाता था। उस समय कला स्वभाव के अनुसार एक प्रकार के विशेष विलास-द्वारा ही प्रकट होने पर उन्नत समझी जाती थी। परन्तु इतना मानना पड़ेगा कि भास और कालिदास के ज़माने तक वह स्वाभाविक ज़रूर थी। उसके बाद जब से लक्षणों पर ज़ोर दिया जाने लगा तब से उसका रूप बहुत कुछ बिगड़ गया। परन्तु उस समय की जो सबसे बड़ी बात मालूम होती है वह यह है कला का

यथार्थवाद। यथार्थवाद से मेरा मतलब 'रियलिज़्म' से है। यह ठीक है कि उस समय का 'रियलिज़्म' उन मानों में नहीं था, जिन मानों में आज-कल समझा जाता है। रियलिज़्म के माने यदि बाहरी लीपापोती न होकर वस्तु की गहराई में जाने के भी हैं तो उस समय वैसा 'रियलिज़्म' था। कुमारसम्भव में पार्वती का स्वभाव, सौन्दर्य, उसके हृदय के भावों का क्रमिक उत्थान और पतन जिस ख़ूबी के साथ दिखलाया गया है, बहुत कम महाकवि वैसा वर्णन कर सके हैं। टेम्पेस्ट की नायिका से शकुन्तला की समानता की जा सकती है, परन्तु कुमारसम्भव की पार्वती तो संस्कृत-साहित्य में अद्वितीय है। उसकी समता तो केवल तुलसीदास की सीता से ही हो सकती है। जूलियस सीज़र के ब्रूटस की पत्नी भी कर्तव्यपालन और पतिहित-चिन्तना में अपना सानी नहीं रखती। परन्तु श्मशान में लेटे हुए, समाधि में रम जानेवाले भोले देहाती शिव की प्राप्ति के लिए रानी की लाड़ली बेटी की दिल थर्राने-वाली कठिन तपस्या तो लोकोत्तर है। कालिदास का सब कुछ श्रेष्ठ और उत्कृष्ट है, पर कुमारसम्भव तो उसकी उत्कृष्टतम कृति है। कला ने उस प्रकार की स्वाभाविकता को लेकर विलास के जो पवित्र प्रासाद देखे हैं वे सब तो अब देख सकना असम्भव है! कला का भी तो एक इतिहास है। उसमें भी तो उठती-बैठती धारायें कभी एक ओर तो कभी दूसरी ओर को बही हैं। उस समय की कला दिलीप की सुदक्षिणा की भोली कोख से निकली और पार्वती के समान बालिका बनकर साहित्य के भावों से खेली और अन्त में मालविका के रूप से उसने विश्व को मुग्ध-सा कर दिया। इतने पर भी कहना ही पड़ेगा कि उस कला ने सर्वसाधारण के जीवन की सादगी को छुआ तक न था। छोटे से छोटे मनुष्य को चित्रित करने में भी कला वैसी ही सुन्दर प्रादुर्भूत हो सकती है, इसका तो स्वप्न देखना भी शायद गुनाह था। एक केवल मृच्छकटिक को छोड़ दीजिए। वह तो एक छोटे-से रूप में अपवाद है। भारतीय साहित्य ने अभी बहुत दिन नहीं हुए प्रजा का मुँह देखा है। उसमें भी संस्कृत ने नहीं, हिन्दी-साहित्य ने। वह राजाओं के जीवन का साहित्य था, अब हमारा जन-साधारण का साहित्य है। शायद यह दृष्टि-विन्दु पाश्चात्य साहित्य की देन है। हमारे यहाँ का व्यक्तित्व मनुष्य को देवता बनाकर देखने का आदी रहा है। उसने ऋषि, महर्षि, भक्त, साधुओं के देखने में अपनी सफलता समझी, परन्तु उसने मनुष्य के रूप में मनुष्य को नीची श्रेणी में पैठकर देखने की कभी इच्छा नहीं की है। संसार-प्रसिद्ध मिस्टर बर्नार्डशा ने "दी एडवेंचर आफ़ ए ब्लैक गर्ल इन हर सर्च फ़ार गाड" नामक एक पुस्तक लिखी है। यह पुस्तक अफ़्रिका की एक हबशी लड़की के ईसाई हो जाने पर ईश्वर की खोज के विषय में है। इस पुस्तक में हबशी लड़की के द्वारा शा महोदय ने ईश्वर के अस्तित्व, उसकी सचाई, उसके सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रकार के वादों के आधार पर जो कुछ कहलवाया है वह अद्भुत है। एक अपढ़ हबशिन तर्क के आधार पर कहाँ तक पहुँच सकती है, कहाँ तक उसने ईश्वर के सामने मनुष्यता को स्थिर रक्खा है, इन बातों से मनुष्य के साधारण से साधारण जीवन और उसकी कला का ज्ञान होता है। हम बड़े आदमियों में जो विभूति देखते हैं, जो प्रौढ़ता, ऊँचाई, आदि महान् आत्माओं में है, उतनी ही और वैसी ही सचाई नीच कहे जानेवाले मनुष्यों में भी वर्तमान है। क्रूरता में दया के दृश्य दिखाई देते हैं, रसिक हृदय में भी वीरता पाई जाती है। सम्राट् अशोक में जहाँ इतनी हिंसा भरी थी, वहाँ उसके भीतर दया का स्रोत भी उमड़ रहा था। उसे निकलने का सुअवसर ही नहीं मिल रहा था और जब वह निकला तब उसने संसार में दया की अजस्र धारा बहा दी। परन्तु इतने से उसकी क्रूरता नष्ट हो गई, यह नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः कला का यह रूप रियलिज़्म से उसके मिल जाने पर ही प्रकट हुआ है। इस समय कला का रूप मनुष्य के अन्ततम से सम्बद्ध है। परन्तु योरप हमें जो चीज़ दे रहा है वह भी एकान्त निर्दोष नहीं कही जा सकती। मेरा मतलब उस रियलिज़्म से है जिसे योरप अपनी कविताओं और नाटकों के द्वारा प्रकट करता रहा है। गाल्सवर्दी के उपन्यास, किपलिंग की कविताओं तक रियलिज़्म ग़नीमत है, परन्तु शा महोदय का यथार्थवाद तो बहुत बढ़ा-चढ़ा है। उनके नाटकों में दोनों

का स्पष्टीकरण जहाँ कुछ लाभदायक है, वहाँ उससे हानि की भी सम्भावना है। उनके कई नाटकों का लन्दन के लार्ड चेम्बरलेन ने खेलना ही बन्द करा दिया है। शा के मतानुसार यह एक बड़ा भारी अपराध है। वे गुण के साथ समाज के दोष को भी दिखाने के प्रबल पक्षपाती हैं। उन्होंने 'दि रायल कार्ट' नामक नाटक में एक जगह बड़े भर्त्सनापूर्ण शब्दों में सेन्सर की निन्दा की है।

शा महोदय कोई भी चीज़ बाहरी तौर पर दिखाने के आदी नहीं हैं। उनका 'फ़िलेण्डरर' नाटक जिसको ब्रिटिश सरकार ने सेन्सर कर दिया है, एक बग़ीचे में एक कमरे से शुरू होता है। रात के दस बजे का समय है। दो प्रेमी परस्पर आलिङ्गन कर रहे हैं। हम इस रूप को देखकर शायद हिचकिचायें, पर शा को इसमें वास्तविकता की झलक दिखाई देती है। मेरा विचार है, इस प्रकार का 'रियलिज़्म' लाभ के बजाय हानिप्रद अधिक है। आज तीस साल से शा के नाटकों के बाद भी योरप और अमरीका का सदाचार बढ़ने के बजाय घट ही अधिक रहा है।

यह तो एक ग़रीब औरत के सुघड़ शरीर को नङ्गा देख भीतर ही भीतर भड़क उठनेवाली कामाग्नि को दबाकर बाहरी तौर पर उस पर दया करने के भाव के समान है। हम नहीं समझते कि इससे दर्शकों के चित्त दया से पिघल जायँगे या उसके शरीर को देखते रहने के प्यासे बने रहेंगे। मनोविज्ञान तो यह बताता है कि साधारण जन-प्रवाह उस स्त्री को कपड़े मिलने की सुविधा करने के बजाय उसे नङ्गा ही रहने देने का अधिक पक्षपाती होगा। शा का रियलिज़्म भी अपराध को नङ्गा देखने का पक्षपाती है। योरप से पहले शा महोदय के नाटकों का आदर अमरीका में अधिक हुआ है। उसका कारण यह है कि उनके नाटकों पर योरप के बहुत अधिक भागों में सेन्सर लगा दिया गया था। अमरीका में इस प्रकार की बातों पर कोई सेन्सर है ही नहीं। परन्तु उनके नाटकों-द्वारा मनुष्य-समाज को जहाँ चोट लगनी चाहिए, उसे उसने मनोविनोद के सहारे बड़े हर्ष के साथ सहा है। इसी लिए मैंने ऊपर कहा है कि इससे उन देशों का आचार ऊपर उठने की जगह गिर रहा है। इतना ज़रूर मानना पड़ेगा कि इससे उनमें चोट के स्थान को देखने की क्षमता ज़रूर आगई है। हमारी कला भी उसी तरफ़ चल रही है, परन्तु उससे हमें लाभ कितना होगा, हमारा आनन्द कितना स्थायी हो सकेगा, यह नहीं कहा जा सकता। मेरा यह दृढ़ विचार है कि हमारी प्राचीन कला ने यदि हमें वर्तमान यथार्थवाद से दूर रक्खा है तो उसने समाज के अंगों पर विशेष आघात नहीं किया। विलासिता केवल राजप्रासादों तक ही रही। जन-साधारण के चरित्र पर उसका कोई गहरा प्रभाव नहीं पड़ा। यह शायद इसलिए कि वह केवल विद्वानों, राजाओं की चीज़ थी। जहाँ तक कला की व्यापकता का सम्बन्ध है, वहाँ हम कला को व्यापक बनाने के पक्षपाती ज़रूर हैं, परन्तु उसके द्वारा हम अपराध को नङ्गा देखने के पक्षपाती नहीं हैं। अपराध सदा अँधेरे में पैदा होता है, उस अपराध और अँधेरे को देखना सभी चाहते हैं। जानना चाहते हैं, परन्तु उस अपराध से बचने के लिए नहीं। उस अपराध को अपराध की कोटि में रखने के लिए जिस साहस की आवश्यकता है वह समाज में नहीं के बराबर है। इसी लिए हमारा यथार्थवाद योरप के यथार्थवाद पर चलकर सच्चा मार्ग नहीं ग्रहण कर सकता। कला का उद्देश स्थायी आनन्द की उपलब्धि है। यदि हमें किसी कला से वैसा आनन्द नहीं मिलता तो हमें कला की कोटि बनानी पड़ेगी। और वह इस प्रकार कि जिस जगह जितना ही स्थायित्व कम होगा, वहाँ कला उतनी ही असमर्थ और अपरिपक्व समझी जायगी। अपराध-प्रदर्शन की कला का उद्देश बर्नार्ड शा के मतानुसार समाज के उन अंगों पर चोट लगाना है जो समाज के आचार, अर्थ आदि के विचार को ऊपर नहीं उठने देते। परन्तु सत्य की अपेक्षा झूठ, भलाई की अपेक्षा बुराई संसार में अधिक है। इस ओर मनुष्य की प्रवृत्ति किसी तरह भी हो, स्वाभाविक है। इसी तरह अपराध-प्रदर्शन के द्वारा नाटककार या कलाकार जहाँ तर्क की चोट मनुष्य के कोमल हृदय पर लगाना चाहता है, वहाँ वे तर्क प्रत्यक्ष अस्थायी आनन्द के कारण बनकर मनुष्य-समाज को नीची कोटि और अस्थायी प्रत्यक्ष आनन्द की ओर ले जायँगे और यथार्थवाद फिर सुधार की ओर न जाकर दुराचार तथा मिथ्याज्ञान का कारण होगा।

एक रोचक सामाजिक कहानी

पवित्र विधान

लेखक, श्रीयुत आत्माराम देवकर

(१)

भगुन्त पटेल चौपाल में बैठे कन्या के विवाह के सम्बन्ध में लोगों से बातचीत कर रहे थे। बिरजू चौधरी ने कहा—"दादा, लड़का तो बहुत अच्छा मिल गया है। लड़की का भाग्य खुल जायगा। पर ख़र्च कुछ अधिक करना पड़ेगा। भगुन्त पटेल ने पूछा—"तुम किस लड़के के सम्बन्ध में कह रहे हो?"

बिरजू ने उत्तर दिया—"मानकलाल के लड़के को तो जानते ही होंगे। वह ख़ूब पढ़ा-लिखा है। अभी परीक्षा में पास होकर घर आया है। आप कहें तो कल उनसे बातचीत करूँ। पर कुछ देना पड़ेगा। कई जगह उसके ब्याह की बातचीत हो रही है। आप जानते ही हैं कि अच्छे की चाह सभी को रहती है।"

पटेल कुछ सोचने लगे। उन्हें चुप देखकर पुरोहित सीताराम जी बोल उठे—"अच्छा तो है। लोग कन्या का होना बुरा समझते हैं। पर है यह सौभाग्य की बात। कन्यादान के समान दूसरा कोई दान ही नहीं है। सो चाहे किसी से कुछ धर्म्म न भी हो सके। पर यह काम ऐसा है जो आप ही धर्म करा लेता है। धन न किसी के साथ आया है, न जायगा।"

पटेल बोले—"आपका कहना ठीक है। पर लोग द्रव्य-दान को अधिक अच्छा समझते हैं।"

पुरोहित जी ने हँसकर कहा—"कन्या को दिया व्यर्थ नहीं जाता। जो देता है वह आगे पाता है।"

चौधरी जी कहने लगे—"यह तो हुआ। अब यह बतलाइए कि कल मैं उनसे मिलने जाऊँ या नहीं?

पटेल ने रुककर कहा—"जैसी तुम्हारी इच्छा हो।"

पुरोहित जी बोले—"अच्छा मैं स्वयं जाकर उनके मन की थाह लूँगा। फिर जो उचित होगा, किया जायगा।"

(२)

मानकलाल खेती के साथ-साथ बीज का लेन-देन भी करते थे। घर में स्त्री तथा एक पुत्र के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं था। ख़र्च कम और आमदनी अच्छी थी। इसी से उनके हाथ में चार पैसे हो गये थे। लड़के का नाम रूपचंद था। वह कुशाग्र-बुद्धि था। बी० ए० तक बराबर पढ़ता गया और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ।

मानकलाल श्रद्धालु एवं धर्म्म-भीरु व्यक्ति थे। कथा-पुराण सुनते रहते थे। प्रति पूर्णिमा को तो सत्यनारायण की कथा कहाते ही थे। उनकी स्त्री चाहती थी कि जहाँ अधिक दहेज़ मिले वहीं पुत्र का विवाह किया जाय। आप भी उनसे सहमत थे। जो वृक्ष लगाता है वह फल की भी आशा रखता है। यह बात कुछ अस्वाभाविक नहीं है। संसार के सभी व्यापारों का मूल कारण स्वार्थ है। वे भले ही पारमार्थिक दृष्टि से किये जायँ, पर उनमें प्रकारान्तर से स्वार्थ का अस्तित्व रहता ही है। सच्चा त्याग किसे कहते हैं, यह प्रश्न बहुत कठिन है। रेखागणित के साध्यों पर से उसे हल कर लीजिए। पर कहलायगा कल्पित ही।

रूपचंद अपने कमरे में बैठा गाँव के लड़कों को भूकम्प होने का कारण बतला रहा था। इतने में पुरोहित सीताराम आ पहुँचे। रूपचन्द ने उठकर उनका अभिवादन किया। मानकलाल हाथ जोड़कर खड़े हो गये। पुरोहित

जी ने कहा—"मैं आपसे एकान्त में कुछ बातचीत करना चाहता हूँ।" यह सुनकर मानकलाल उनके साथ दूसरे कमरे में चले गये।

(३)

थोड़ी देर तक खेती-बारी के सम्बन्ध की बातें करके पुरोहित जी ने पूछा—"आपने रूपचन्द के विवाह का कुछ ठीक-ठाक किया या नहीं"? मानकलाल ने उत्तर दिया—"बातचीत तो कई जगहों से आई है। पर अभी तक किसी को पक्का जवाब नहीं दिया गया है।"

पुरोहित—"शुभ कार्य जहाँ तक हो, शीघ्र कर डालना चाहिए।"

मानकलाल—"आप हमारे हित की बात कह रहे हैं।"

पुरोहित—"आप जानते ही होंगे कि भगुन्त पटेल की लड़की विवाह के योग्य हो गई है। वे वर की खोज कर रहे हैं।"

मानकलाल—"जानता हूँ।"

पुरोहित—"वे कुल के भी अच्छे हैं।"

मानकलाल—"अच्छे तो हैं। पर बिलकुल ग़रीब हैं।"

पुरोहित—"इसका क्या अर्थ है?"

मानकलाल—"यही कि जैसा विवाह हम चाहते हैं, वैसा नहीं कर सकते।"

पुरोहित—"आप क्या चाहते हैं?"

मानकलाल—"लड़के की मा का कहना है कि जहाँ खूब दहेज़ मिलेगा, वहीं विवाह करूँगा।"

पुरोहित—"स्त्री पुरुष की अर्द्धांगिनी है। उसके परामर्श से कार्य करना उचित ही है। पर आप अपने मन की बात भी तो बतलाइए।"

मानकलाल—"मैं अपने मुँह से कुछ नहीं कह सकता।"

पुरोहित—"तब इसमें स्त्री का ही आग्रह जान पड़ता है। यह आश्चर्य की बात है।"

मानकलाल—(हाथ जोड़कर) "आग्रह कुछ नहीं है। अकेला लड़का है। वह उसकी मा है। उसका दिल दुखाने की इच्छा नहीं होती। बस, इतनी ही बात है।"

पुरोहित—(हँसकर) "अच्छा, जब पूजा करने के लिए आऊँगा तब उनसे इसके विषय में वार्तालाप करूँगा।

(४)

दूसरे दिन पुरोहित जी मानकलाल के यहाँ पूजा करने के लिए गये। जब पूजा समाप्त हो गई तब उन्होंने गृह-स्वामिनी को बुलवाया। वे आकर दूर बैठ गईं। पुरोहित जी ने कहा—"मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ। मानना न मानना तुम्हारी इच्छा पर है।"

मानकलाल की स्त्री ने विनीत भाव से कहा—"आपकी आज्ञा न मानने से हमारा भला कैसे हो सकता है?"

पुरोहित जी ने सिर हिला कर कहा—"ठीक है। तब तुम रूपचंद का विवाह भगुन्त पटेल की कन्या के साथ करो। इससे तुम्हारे कुल का गौरव बढ़ेगा। उनका वंश प्रतिष्ठित और निष्कलंक है।"

देवी जी पर मानो वज्र टूट पड़ा। विह्वल दृष्टि से पुरोहित की ओर देखकर बोलीं—"आप हमारे कुल-गुरु हैं। आपकी आज्ञा नहीं टाल सकती। पर दहेज़ अवश्य लूँगी। इसके लिए आप मुझे क्षमा करेंगे।"

पुरोहित जी ने तीव्र स्वर से कहा—"तुम इतनी सयानी होकर यह कैसी बात कह रही हो? जो कुछ उनसे बन पड़ेगा, अवश्य देंगे। और क्या?"

देवी जी माथा ठोक कर बोलीं—"महाराज, आप जानते हैं कि हम कोई मालगुज़ार या जागीरदार नहीं हैं। खाये धाये के भोजन हैं। पेट काटकर जो थोड़ा-बहुत बचाया था, लड़के के पढ़ाने में लगा दिया है। अब उसी की आशा न करूँ तो किसकी करूँ। यहाँ और बैठा ही कौन है?"

पुरोहित जी ने हाथ हिलाकर कहा—"मैं कब कहता हूँ कि तुम उसकी आशा न करो? वह कमायेगा, तुम्हें खिलायेगा और खूब फले-फूलेगा। भगवान् का दिया तुम्हारे यहाँ सब कुछ है। तुम्हें किस बात की कमी है?"

देवी जी कहने लगीं—"कमी तो नहीं है, पर आशा बुरी होती है। वह करोड़पतियों का भी पीछा नहीं छोड़ती। मेरे यहाँ दूसरा लड़का होता तो यह एक विवाह मैं हो कर डालती। अब मेरी यही प्रार्थना है कि आप मेरी इस लालसा को पूर्ण होने दें। आपकी बात मान भी लूँ तो पहले मुझे ही सन्तोष न होगा, दूसरे जो सुनेंगे वे हम दोनों को मूर्ख समझेंगे और हँसी करेंगे।"

इस विचित्र निष्कर्ष को सुनकर पुरोहित जी मुस्कराने लगे। फिर थोड़ी देर चुप रहकर बोले—"लोग हँसेंगे या प्रशंसा करेंगे, यह बात मेरी समझ में नहीं आती। ख़ैर, जैसा उचित समझो, करो।"

(५)

भगुन्त पटेल की स्त्री का नाम सुभद्रा था। उसकी बड़ी बहन इन्दिरा दूसरे गाँव में रहती थी। वह दरिद्र-कन्या थी, पर भाग्य के बल से अच्छे घर में पहुँच गई थी। उसके परिवार के साथ मानकलाल का घनिष्ठ सम्बन्ध था। इसी से वे उसे लड़की की नाईं मानते थे। पर्व-त्योहारों में वह उनके यहाँ आया करती थी। पुरोहित जी के परामर्श से भगुन्त पटेल ने उसे अपने यहाँ बुलवाया। उसके आ जाने पर पुरोहित जी पटेल के यहाँ गये और कहने लगे—"मानकलाल जी अपने लड़के का विवाह कालिन्दी के साथ करने को तैयार हैं, पर दहेज़ चाहते हैं। तुम्हारा क्या विचार है?"

इन्दिरा ने सहज भाव से उत्तर दिया—"विचार की बात ही क्या है? पटेल जी कहें तो मैं अपनी ओर से विवाह कर दूँ। सब झगड़ा मिटा।"

पटेल जी तो कुछ न बोले, पर उनकी स्त्री सुभद्रा जो पास ही बैठी थी, कहने लगी—"बहन, तुम्हारा कहना ठीक है। पर ऐसा करके हम संसार को क्या मुँह दिखलायेंगे। हम ग़रीब हैं, इसी से यह दहेज़ की बात चल रही है। कोई हर्ज नहीं। लड़की का विवाह दूसरी जगह हो जायगा। कन्या किसी की क्वाँरी नहीं बैठी रहती।"

पुरोहित जी ने कहा—"तब क्या इच्छा है? नाहीं कर दी जाय? मैं चाहता था कि ऐसी सुलक्षणा कन्या अच्छे घर में पहुँच जाय, जिसमें वह सुख से रहे और उसे देखकर तुम्हारे नेत्र शीतल हों।"

सुभद्रा अश्रुपूर्ण नेत्रों से पुरोहित की ओर देखकर चुप हो गई। इन्दिरा ने कहा—"विवाह होगा और अवश्य होगा। तुम चिन्ता न करो। एक बार मुझे दादा जी

(मानकलाल) से मिल लेने दो। देखूँ मुझ अबला में अधिक शक्ति है या उनके सङ्कल्प में।

इतने में मानकलाल के छोटे भाई हीरालाल आ पहुँचे। पटेल जी ने उन्हें बड़े आदर से बिठलाया। पुरोहित जी ने पूछा—"इस विवाह के सम्बन्ध में आपकी क्या राय है?"

हीरालाल ने उत्तर दिया—"इसका दायित्व मा-बाप पर है, हम पर नहीं। हम लोग क्या राय दे सकते हैं? और दी भी तो वह किस काम की?

पुरोहित जी ने हास्य के रूप में कहा—"तुम सब एक ही साँचे में ढले हो। स्पष्ट क्यों नहीं कहते?"

हीरालाल तमक उठे। कहने लगे—"पण्डित जी, यह त्याग का पाठ किसे पढ़ा रहे हो? हम लोग संन्यासी नहीं हैं? गृहस्थ का अर्थ से घनिष्ठ सम्बन्ध है।"

इन्दिरा से न रहा गया। वह निकट आकर बोली—"छोटे दादा, तुम हमें दहेज़ का क्यों भय दिखला रहे हो? यह तो बतलाओ कि वे कितना चाहते हैं?"

हीरालाल के नेत्र नीचे हो गये। शिथिल स्वर से बोले—"यही हज़ार बारह सौ की बात होगी।"

इन्दिरा के नेत्र लाल हो गये। उसने कम्पित स्वर से कहा—"चलो, मैं देती हूँ बारह सौ।"

हीरालाल वहाँ से धीरे से खिसक गये।

(६)

दूसरे दिन पूर्णिमा थी। पुरोहित जी मानकलाल को सत्यनारायण की कथा सुना रहे थे। इन्दिरा भी एक ओर जाकर बैठ गई। जब कथा समाप्त हो गई तब उसने मानकलाल के निकट जाकर कहा—"दादा, मैं कालिन्दी का विवाह करना चाहती हूँ। पटेल जी मानते नहीं हैं। इससे आपके पास आई हूँ। दहेज़ में मेरा यह गहना पहले से ले लीजिए और रूपचन्द का विवाह उसके साथ कर दीजिए।"

अंकुश खाये हुए हाथी की नाईं पीछे हटकर मानकलाल ने कहा—"मैं लड़की के धन को विष के समान समझता हूँ।"

इन्दिरा ने मुस्करा कर कहा—"आपकी जैसी लड़की मैं, वैसी ही सुभद्रा। उसका धन लेकर आप क्या करेंगे?

दादा जी, अपनी कमाई का पैसा काम आता है। उसी से सच्चा सुख मिलता है। भगवान् ने आपको सुयोग्य और विद्वान् पुत्र दिया है। उसे पैसे की क्या कमी है? हज़ार दो हज़ार की बात ही क्या है? उस पर तो लाखों रुपये न्योछावर होते हैं। जिसने कन्या दी वह सब कुछ दे चुका। रही रुपये-पैसे की बात, सो जिसको भगवान् ने माना है वह कन्या को कुछ न कुछ दिये बिना नहीं रह सकता। उसे तो जन्म भर देना ही है। इसके लिए किसी पर दबाव डालने की क्या आवश्यकता है?"

मानकलाल का मन एक-दम पलट गया। उन्होंने पुरोहित जी की ओर देखकर कहा—"मैं भगवान् सत्यदेव के आगे प्रतिज्ञा करता हूँ कि रूपचंद का विवाह कालिन्दी के ही साथ करूँगा और दहेज़ के नाम से एक पैसा न लूँगा।"

देवी जी मुँह छिपा कर अन्दर चली गईं।

पुरोहित ने आशीर्वाद देकर कहा—"परमात्मा के प्रेम-राज्य का पवित्र विधान यही है।"

प्रभाती

लेखक, श्रीयुत आरसीप्रसादसिंह

चहक चहक खग, चहक चहक खग,
जग-जग मग-मग कर कल-कल रव;
यह सौरभ का श्री-प्रपात, गिरि-
निर्झर-सा झरता सुख-उत्सव!
नित-नित अमित-अमित कोलाहल,
क्षण-क्षण, पल-पल, कल-कल, कल-कल;
लो, फूटा हिम-स्नात क्षितिज के
मस्तक पर मरीचि का चन्दन;
चहक चहक खग, चहक चहक खग,
नव-प्रभात का कर अभिनन्दन!
भर-भर चंचु-पुटों में स्वर-सुर;
तरु-तरु डाल-डाल पर उड़-उड़!

रश्मि-दूत तुम प्रथम-प्रात के,
ले आओ जागृत, नव-चेतन;
चहक चहक खग, चहक चहक खग,
नव-विधान का कर आवाहन!

विकच-सुमन-गण नव-नव अभिनव,
निर्जन जनपथ, पल्लव नीरव;

विचर मुक्त, द्रुत निकल नीड से
विजन-विजन में कर आन्दोलन;
चहक चहक खग, चहक चहक खग,
भर जड़-जंगम में सुख-स्पन्दन!

जहाज़ों का व्यवसाय

लेखक, श्रीयुत चतुर्भुज औदीच्य

जहाज़ों को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। दुर्भाग्यवश भारत उस महत्त्व की वस्तु से भी वञ्चित है। इस बात को औदीच्यजी ने अपने इस लेख में प्रामाणिक रीति से स्पष्ट किया है।

समय के परिवर्तन के साथ-साथ भारतवासी इस बात को बिलकुल भूल गये हैं कि भारतवासी जहाज़ बनाते थे और यहाँ के बने हुए जहाज़ों में भारत का माल लद-लद कर विदेशों को जाता था। उन दिनों आज-कल के ढाँचे के जहाज़ नहीं बनते थे। उस समय पालों और डाँड़ों के बल से जहाज़ आते-जाते थे। संसार भर में बड़े से बड़ा जहाज़ हज़ार-पाँच सौ टन माल से अधिक नहीं ले जा सकता था।

वर्तमान काल में जहाज़ स्टीम के ज़ोर से चलते हैं। यही कारण है कि बीस बीस हज़ार टन के जहाज़ बनते हैं। युद्ध के जहाज़ों व क्रूज़रों का यहाँ वर्णन नहीं करना है, केवल माल के जहाज़ों के विषय में ही लिखना है। इस समय दुनियाँ में हज़ारों जहाज़ लाखों टन माल इधर-उधर ले जा रहे हैं। जहाज़ों का व्यवसाय करनेवाले दो-चार जहाज़ बनवाकर ख़ूब धन कमाते हैं। इस रोज़गार में पूँजी बहुत लगती है, परन्तु लाभ भी यथेष्ट होता है। जहाज़ के व्यवसायियों को गत महायुद्ध के समय बड़ा गहरा धक्का लगा था। इसी से इस व्यवसाय में युद्ध से सदा भय करना पड़ता है। योरपीय महायुद्ध में हज़ारों सौदागरी जहाज़ नष्ट हो गये। क्यूनार्ड कम्पनी के दो लाख टन से भी कुछ ऊपर के १५ जहाज़ युद्ध-काल में डुबो दिये गये। ऐंकर लाइन ने कोई ६५,४८८ टन के आठ जहाज़ खो दिये। इसी प्रकार प्रायः सभी कम्पनियों के एक-दो जहाज़ गत महायुद्ध में नष्ट हो गये। इस धक्के का असर जहाज़ी कम्पनियों पर बहुत वर्षों तक बना रहा। गत दस वर्ष से फिर माल के जहाज़ बढ़ने लगे हैं। अमरीका में प्रतिवर्ष २५ से ५० नये जहाज़ बनते हैं तथा योरप में भी प्रतिवर्ष १० से २५ नये जहाज़ बढ़ रहे हैं।

भारत के जहाज़-व्यवसाय का प्राचीन हाल नहीं प्राप्त है। गत डेढ़ सौ वर्ष से कुछ पहले तक भारत में जहाज़ तैयार होते थे, इसका पता लगा है। सन् १९१९ के मार्च में प्रसिद्ध लार्ड जेलिको बम्बई आये थे। बम्बई की म्युनिसिपेल्टी ने उन्हें एक अभिनन्दनपत्र दिया था। इसका जो उत्तर उन्होंने दिया था उसमें भारतीय जहाज़ी कारबार का इस प्रकार वर्णन किया है—

"बम्बई के सरकारी डक हाते में वाडिया-कम्पनी जहाज़ बनाने में प्रसिद्ध थी। उस कम्पनी के मालिक एक पारसी सज्जन जमशेदजी बामनजी वाडिया (१७५४-१८२१) थे। ये उन दिनों जहाज़ बनाने के एक प्रसिद्ध उस्ताद समझे जाते थे। इन्होंने बहुत-से जहाज़ तैयार किये थे। पिछले दिनों में तैयार किये हुए इनके जहाज़ों में से 'गेंजेज़' नाम के ७४ तोपोंवाले युद्ध के जहाज़ को योरपवासी ख़ूब जानते हैं। भारत-सरकार तथा अन्य व्यवसायी लोग वाडिया-कम्पनी से बराबर जहाज़ बनवाते थे। 'मिनडन' जहाज़ जो जमशेदजी की मृत्यु के कुछ सप्ताह पश्चात् (अगस्त सन् १८२१) उनके पुत्र-द्वारा समुद्र पर उतारा गया था, एक बड़ा विख्यात जहाज़ था।

"जमशेदजी के पुत्र नौरोजी वाडिया (१७७४-१८६०) भी जहाज़ बनाने में कुशल पुरुष थे। इन्होंने भी बहुत-से जहाज़ बनाये, जिनमें प्रसिद्ध 'एशिया' को कौन नहीं जानता। 'एशिया' के मालिक एडमिरल कोडरिंगटन थे और यह जहाज़ सन् १८२७ की एक लड़ाई में शामिल हुआ था।"

लार्ड जेलीको के बम्बई आने पर कलकत्ता के 'केपिटल' के बम्बई-स्थित संवाददाता ने भारतीय जहाज़ी

व्यवसाय के सम्बन्ध में बड़े महत्त्व की बात लिखी थी। उसने लिखा था—

"यदि वाडिया-कम्पनी को सहायता मिलती और इँग्लिश तथा स्काटिश कम्पनियों की प्रतियोगिता से उसकी रक्षा की जाती तो आज बम्बई में जहाज़ बनाने का कारबार अच्छी हालत में होता और सरकार को भी अवसर पर काफ़ी जहाज़ प्राप्त हो सकते। मुझे तो विश्वास नहीं कि एडमिरल जेलिको के आगमन से ब्रिटिश नाविक-विभाग अपना रुख़ बदल देगा। भारत अपना निज का जंगी बेड़ा तैयार कर लेता, यदि उसे करने दिया जाता।"

श्री ज्ञानाञ्जन नियोगी ने अपने "इंडिया" में मिस्टर टेलर का एक अवतरण उद्धृत किया है। वह यह है—

"भारत की चीज़ें भारत के ही बने हुए जहाज़ों में जब लन्दन-बन्दर में पहुँचीं तब वहाँ के जहाज़-व्यवसायों में सनसनी फैल गई। वे लोग चिल्लाने लगे कि अब उनके रोज़गार का नाश होगा और उनके कुटुम्बों को भूखों मरना पड़ेगा। इसी का परिणाम है कि भारत का जहाज़-व्यवसाय नष्ट हो गया।"

भारतवर्ष के बन्दरों में प्रायः अँगरेज़ी तथा अन्य देशों के ही जहाज़ माल लेकर आते वा जाते हैं, साथ ही विलायत में स्थापित दो-तीन कम्पनियाँ इस देश के समुद्री-तट के माल का इजारा लिये हुए हैं। भारत के बन्दरगाह उनके जहाज़ों से भरे हुए हैं। भारत के इन बन्दरों में गत सन् १९२६ में ६९,८५,९१२ टन माल जहाज़ों-द्वारा आया और ८०,५०,१५७ टन बाहर गया। सन् १९२७ में ७५,३८,७१५ टन माल आया और ७७,६१,२७४ टन गया। उक्त माल को ढोनेवाले जहाज़ों में ७० फ़ी सदी अँगरेज़ों के और ३० फ़ी सदी अन्य देशवालों के जहाज़ थे।

महायुद्ध के पश्चात् भारत में विदेशी जहाज़ ख़रीद कर माल लाने और ले जाने का व्यापार करनेवाली तीन-चार कम्पनियाँ स्थापित हुईं। किन्तु केवल एक 'सिंधिया स्टीम-नेवीगेशन कम्पनी' के सिवा और कोई नहीं चल सकी। और यह कम्पनी भी अपने दिन काट रही है। यदि उचित सहायता इसे नहीं प्राप्त होगी तो यह भी चल बसेगी। जहाज़ बनाने का व्यवसाय तो एक-दम लोप ही हो गया है। अब तो विदेशों से जहाज़ बनवाकर अथवा पुराने जहाज़ ख़रीदकर व्यवसाय करना भी भारत की कम्पनियों के हाथ से गया।

समुद्र-तट का व्यवसाय—किसी देश के एक बन्दर से उसी देश के दूसरे बन्दर को माल पहुँचाने के व्यवसाय को समुद्री तट का व्यवसाय कहते हैं। संसार के नाना देशों से भारत में माल ले आने और ले जाने का रोज़गार तो अँगरेज़ी जहाज़ी कम्पनियाँ कर ही रही हैं। इनके इस व्यवसाय में टाँग अड़ाने का सामर्थ्य अभी भारत में नहीं है, परन्तु भारत के समुद्र-तट के व्यवसाय का भी इजारा विदेशी कम्पनियों को दे देना देश की हितहानि करना है। कलकत्ता, मदरास, बम्बई, कराची आदि भारत के बन्दरों का समुद्री तट का यातायात ५० लाख टन वार्षिक के लगभग है। बम्बई के व्यवसायियों ने भारत की बची-खुची जहाज़ी कम्पनियों के लिए यह व्यवसाय 'रक्षित' कराने की इच्छा से सन् १९२८ में एक क़ानून बनवाने को एसेम्बली में एक बिल पेश किया था। इस बिल को लेकर दो-तीन वर्ष तक विलायत में गहरी चिल्लाहट मची रही। अतएव भारत-सरकार ने भी इस बिल को टाले रक्खा और अन्त में वह जहाँ का तहाँ दफ़ना दिया गया। अब यह देखिए कि विलायतवालों के विरोध में कितना सार है।

भारत के समुद्र-तट का व्यापार करनेवाली दो-तीन विलायती कम्पनियाँ हैं। आज बीसों वर्ष से ये कम्पनियाँ अच्छा लाभ कमा रही हैं। इनके मूलधन से भी कहीं अधिक लाभ इन कम्पनियों के हिस्सेदारों में बँट चुका है। इन कम्पनियों की कमाई का पन्द्रह आना भाग विलायत के धनी पूँजीपतियों के पेट में जाता है। श्रमजीवियों से कुछ सम्बन्ध नहीं है। इन कम्पनियों के जहाज़ों में काम करनेवाले प्रायः हिन्दुस्तानी मल्लाह हैं, जिनके वेतन में कम्पनी कितना व्यय करती होगी, इसका अनुमान सहज में ही लग सकता है। यहाँ ब्रिटिश इण्डिया स्टीम-नेवीगेशन कम्पनी के तीन वर्ष के लाभ के आँकड़े दिये जाते हैं। इनसे पाठक ख़ुद वास्तविक अवस्था का अनुमान कर सकते हैं।

सन्	लाभ, पौंड	लाभ, रुपया
१९२६	१,८६,०००	२७,९०,०००
१९२७	२,४०,०००	३६,००,०००
१९२८	२,९६,०००	४४,४०,०००

यदि सरकार भारतीय कम्पनियों को समुद्री तट का व्यवसाय सौंप देती तो सिंधिया-कम्पनी की अच्छी उन्नति हो जाती, साथ ही अन्य कई कम्पनियाँ जो खड़ी की गई थीं और पश्चात् जिनका दीवाला निकल गया, फिर उठ खड़ी होतीं। इस प्रकार भारत के व्यवसायियों के हाथ में आमदनी का एक अच्छा सिलसिला बना रहता।

ग्रेट-ब्रिटेन तथा अन्य राष्ट्र किस प्रकार प्रतिवर्ष जहाज़ तैयार करते हैं, उसका हिसाब यों है। जहाँ ग्रेट-ब्रिटेन ने सन् १९२८ में १४,४५,९२० टन के जहाज़ पानी पर उतारे, वहाँ अन्य सब राष्ट्रों ने उसी साल १२,५३,३१९ टन के जहाज़ तैयार किये। ब्रिटेन की अकेली क्लाइड-कम्पनी ने ५,७२,००० टन के जहाज़ बनाये। जर्मनी ने ३,७७,००० टन के, हालैंड ने १,७७,००० टन के, डेन्मार्क ने १,३९,००० टन के, स्वीडन ने १,०७,००० टन के, जापान ने १,०४,००० टन के, संयुक्त-राज्य (अमरीका) ने ९२,००० टन के, अर्थात् सब राष्ट्रों ने साढ़े बारह लाख टन के नये जहाज़ बनाये। कुल दुनिया में सन् १९२८ में ६,५१,५९,००० टन के जहाज़ थे। यह सब माल ढोने और यात्री ले जाने के जहाज़ों का हिसाब है।

नावों का व्यवसाय—भारत की नदियों में प्राचीन काल से नाव से माल का आना-जाना बहुत होता था। इस व्यापार को रेलगाड़ी ने नष्ट कर दिया। अब भी भारत में यदि सुदृढ़ नाव-कम्पनियाँ खड़ी हो जायँ तो नदियों-द्वारा फिर से माल आने-जाने लग जाय। बिना अधिक मूलधन की कम्पनियों के रेलवे से प्रतियोगिता में पार पाना कठिन है। माल के भाड़े में रेलवे-कम्पनियों ने जो मनमानी रक्खी है वह भी इस प्रतियोगिता में सुधर जा सकती कलकत्ता से कानपुर तक पहले गंगा जी-द्वारा माल बहुत आवागमन होता था। वह फिर से पनप सकता अन्य नदियों, खालों तथा नहरों-द्वारा भी बहुत माल आ सकता है। एक छोटे-से स्टीमर-द्वारा कई बड़ी बड़ी खींची जा सकती हैं।

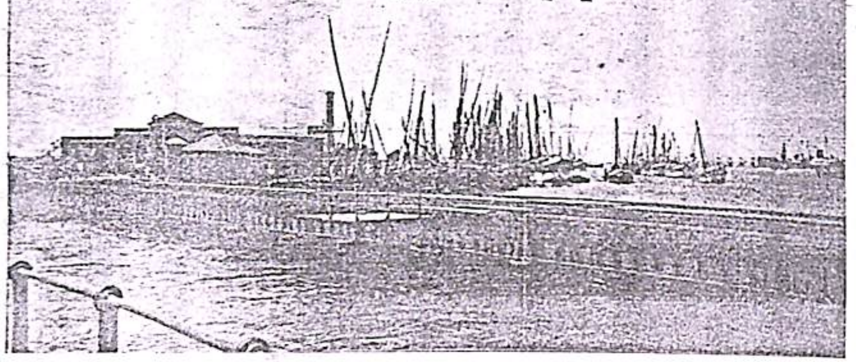
वर्तमान काल में कलकत्ता, बम्बई जैसे बन्दरों में का थोड़ा व्यवसाय चलता है। जहाज़ों से नाव-द्वारा किनारे तथा दो-चार मील तक जाता है तथा दूर दूर मिलों और कारख़ानों से जूट, रुई आदि की गाँठें, गेहूँ चावल आदि के बोरे नावों-द्वारा जहाज़ों में चढ़ाये हैं। ये नावें २५ टन से १०० टन तक की होती हैं नावें लोहे से मढ़ी होती हैं। इनका भाड़ा पहले तो २० ३०) रुपया प्रतिदिन तक था, परन्तु अब १०) से १५) है। इनसे दस-बीस मील से माल आता-जाता है। बं तथा अन्य प्रान्तों में हज़ार-पाँच सौ मन माल लादने काठ की नावें भी बहुत हैं।

भारत की नावों, स्टीमरों तथा जहाज़ों की संख्या प्रकार है। इसमें स्टीमर तथा जहाज़ों की संख्या थोड़ी ही समझिए। यह संख्या भारतवर्ष के बन्दरों में करनेवाले वाहनों की है।

सन्		संख्या
१८५७	...	३४,२८६
१८९९	...	१२,३०२
१९०१	...	१०,४९७
१९२७	...	८,६४०

देश के राजनीतिज्ञों का ध्यान इस ओर जाना चाहि उनके प्रयत्न से इस क्षेत्र में काफ़ी उन्नति हो सकती और देश का उससे अधिक हित हो सकता है।

कराची



[जहाज़ों के ठहरने का 'धक्का या जेट्टी' कराची।]

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

देश-देशान्तर की यात्रा से मनुष्य का अनुभव और ज्ञान जितना बढ़ता है, उतना पुस्तकों आदि किसी भी दूसरी चीज़ से नहीं बढ़ता। परन्तु हम भारतीयों के लिए विदेश-यात्रा सुलभ नहीं। एक तो हमारी सरकार ही हमें भारत से बाहर पैर रखने नहीं देती—बाहर जाने के लिए पासपोर्ट की ही सैकड़ों पाबन्दियाँ हैं, फिर यदि पासपोर्ट मिल भी जाय तो ख़र्च करने के लिए हमारे पास पैसा नहीं। घोर दरिद्रता के कारण जिस देश की प्रजा भर-पेट अन्न नहीं पाती, जो रुग्ण हो जाने पर दवा-दारू नहीं करा सकती, उसके पास विदेश जाने के लिए पैसा कहाँ? योरप और अमरीका के छोकरे और छोकरियाँ विश्वविद्यालय की पढ़ाई समाप्त करने के पूर्व ही संसार के प्रायः सभी बड़े बड़े देशों में भ्रमण कर लेती हैं। एक अँगरेज़ नवयुवक लन्दन से चलता है। फ्रांस, जर्मनी, तुर्की, रूस, मेसोपोटेमिया, मिस्र, बम्बई, दिल्ली आदि देखता हुआ लाहौर पहुँच जाता है। यहाँ आकर वह गवर्नमेंट-कालेज में इतिहास और भूगोल का प्रधान उपाध्याय बन जाता है। वह भूगोल का विशेषज्ञ माना जाने लगता है। कारण भारतीयों का पृथ्वी के विभिन्न देशों का ज्ञान केवल पुस्तकी होता है, परन्तु उस नवयुवक ने वे सब स्थान अपनी आँखों देखे होते हैं। सुने और देखे में फ़र्क़ होना ज़रूरी है। दूसरे देशों की बात तो दूर रही, हम ख़ुद अपना ही देश नहीं देख पाते। इसका कारण यह नहीं कि हमें यात्रा से प्रेम नहीं, बरन इसका सबसे बड़ा कारण हमारी दरिद्रता है। पचास के लगभग उम्र हो जाने पर भी मैं आज तक समुद्र नहीं देख सका था। पर्वत तो बहुतेरे देखे थे, परन्तु समुद्र देखने की लालसा बराबर बनी हुई थी। इससे पहले यद्यपि मैं सन् १९३२ में कलकत्ता हो आया था, परन्तु वहाँ असीम सागर के दर्शन नहीं हुए थे।

लाहौर से निकटतम बंदर कराची है। मदरास, गोआ, बम्बई, पोर बंदर, कच्छ, मारडवी, मंगरोल, बेरावल आदि दूसरे बंदर सभी इससे दूर पड़ते हैं। १६ मार्च १९३५ को सवेरे लाहौर से चल कर मैं १७ मार्च को सवेरे कराची पहुँच गया। जात-पाँत-तोड़क मण्डल के प्रधान श्रद्धेय भाई परमानन्द जी एम० ए०, एम० एल० ए० और मण्डल के महोपदेशक श्री भूमानन्द जी भी साथ थे। उनके साथ यह लंबा सफ़र बड़े आनन्द में कटा। लाहौर से कराची तक का सारा मार्ग बड़ा ख़ुश्क है—कहीं हरियाली का नाम-निशान नहीं। धूल इतनी उड़ती है कि कराची पहुँचते पहुँचते कपड़ों पर दो दो इञ्च मिट्टी बैठ जाती है। सिर, मुँह, नाक, आँख सब धूल से भर जाते हैं। रास्ते में पानी भी बहुत कम मिलता है। मुलतान से आगे लोधराँ स्टेशन पर पराक और समोसे बहुत अच्छे मिलते हैं। वे वहाँ की सौगात हैं। आगे बहावलपुर के मुसलमानी राज्य में रेलवे स्टेशनों के मकान भी मसजिद की शकल के ही बनाये गये हैं। कराची से कुछ पहले बड़ा ही बंजर प्रदेश है। पेड़-पौधों का नाम तक नहीं। छोटे छोटे टीले-से हैं। कराची से थोड़ी दूर इधर मालीर नाम का एक स्टेशन है। वह अच्छी जगह है। वहाँ पहुँचकर ही हरियाली के दर्शन होते हैं। मालीर से ही सब्ज़ी-तरकारी कराची को जाती है। कराची को पीने का पानी भी नल-द्वारा वहीं से जाता है।

कराची में हम समुद्र-तट पर राव बहादुर सेठ शिवरत्न मोहता के विशाल मोहता-पैलेस में ठहरे। मोहता-पैलेस एक बहुत सुन्दर और दर्शनीय भवन है। सारा का सारा पत्थर का बना है। संगमरमर भी ख़ूब लगा है। जो लोग बाहर से कराची देखने आते हैं वे मोहता-भवन भी देखते हैं। वह नगर से कोई चार मील की दूरी पर है। वहाँ से समुद्र केवल एक फ़र्लांङ्ग परे रह जाता है। वहाँ दिन भर सागर-समीर चला करता है। इस कारण, गर्मियों में भी वहाँ गर्मी नहीं मालूम होती।

समुद्र-दर्शन—समुद्र और उसकी लहरों का वर्णन तो बहुत पढ़ा था, उसका मानसिक चित्र भी आँखों के सामने नाचा करता था, परन्तु देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। अब समुद्र को समीप देख वहाँ जाने की उत्सुकता और भी बहुत बढ़ गई। समुद्र देखने के लिए मैं बच्चे के सदृश विह्वल हो उठा। यही जी होता था कि जितनी जल्दी हो सके, मैं सागर-तट पर जाऊँ और जलनाथ के दर्शनों से नेत्रों को तृप्त करूँ। जो लोग समुद्र-तट पर रहते हैं या जिन्हें बार बार समुद्र-यात्रा का मौक़ा मिला कर[ता] है, वे मेरी इस उत्सुकता का अनुभव नहीं कर सकते। जिस व्यक्ति से हम पत्र-व्यवहार-द्वारा परिचित हैं और उसके गुणों पर मोहित होकर उससे मिलने की हमारे [मन] में प्रबल लालसा उत्पन्न हो चुकी है, उसके निवासस्थान [के] निकट पहुँच कर हमारे मन की जैसी अवस्था होती है वैसी ही मेरी हो रही थी। स्नान आदि से निवृत्त हो[कर] जल-पान करने के बाद मैंने पहला काम यह किया [कि] फ़ौरन समुद्र के किनारे पर जा पहुँचा। वहाँ जाकर मैं[ने] जो कुछ देखा वह अनिर्वचनीय था।

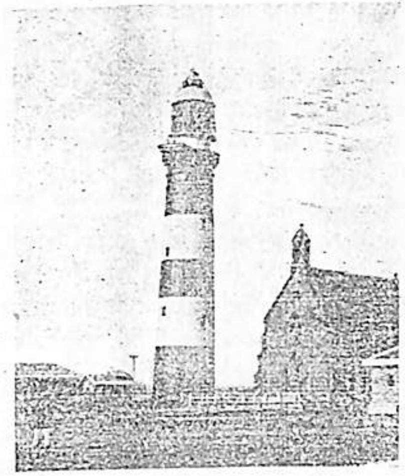
मैंने देखा, मेरे सामने जहाँ तक दृष्टि जाती है, जल [ही] जल भरा है। इस असीम जलाशय का दूसरा किनारा नहीं है, दूर से पानी की भीमकाय तरङ्गमाला बड़ी तेज़ी [के] साथ स्थल की ओर दौड़ी चली आती है, मानो इ[से] एक-दम निगल जायगी। शोर इतना था, मानो जलना[थ] क्रुद्ध होकर प्रलय किया चाहते हैं। एक लहर दौड़ती हु[ई] आती थी और हमारे पाँवों के निकट आकर वापस लौ[ट] जाती थी। उसके जल्दी ही बाद उसी प्रकार दूसरी लह[र] शोर करती हुई आती थी और पहली लहर से कुछ औ[र] आगे तक पहुँच कर लौट जाती थी। पानी के भीतर दूर त[क] मछुओं ने बल्लियाँ गाड़ कर जाल फैला रक्खे थे। इ[स] समय वे लोग उनमें फँसी हुई मछलियाँ इकट्ठी करके ल[ा] रहे थे। समुद्र के किनारे रेत में घोंघे, सीपियाँ और कौड़ियाँ पड़ी थीं। जगह जगह केकड़े दौड़ रहे थे। मैं[ने] यह जन्तु जीवित अवस्था में पहले कभी नहीं देखा था। वहाँ एक और प्रकार का केकड़ा भी हमने देखा। इस[के] दो मुँह थे। मुँह में दराँती के समान तेज़ दाँत थे। ए[क] मछली पकड़नेवाले लड़के ने हमें बताया कि केकड़े के जबड़े इतने मज़बूत होते हैं कि यदि मनुष्य की उँगल[ी] इसके मुँह में आ जाय तो यह एकदम उसे तोड़ डालता है। उस लड़के ने केकड़े को पकड़ कर उसके दोनों मुँ[ह] तोड़ डाले और फिर उसे समुद्र में फेंक दिया। मुँह या उसकी दराँतियाँ तोड़ डालने पर भी वह जल-जीव वैसे का वैसा जीता रहा। मुझे तो उसकी लंबी लंबी टाँगों को देखकर घृणा-सी होती थी, परन्तु सागर-तटवासे

लोग उसे ख़ूब मज़े से खाते हैं। उसका मांस-रस बड़ा पौष्टिक माना जाता है। केकड़ों के अतिरिक्त जगह जगह एक विचित्र जन्तु का देहावशेष भी पड़ा हुआ देख पड़ा। इसका आकार ऐसा था, जैसे हलके हरे रङ्ग का पानी का जमा हुआ तोदा पड़ा हो। यह पानी के सदृश ही पारदर्शक था। चाक़ू से काटने पर फालूदे की तरह कट जाता था। इसमें जन्तु कोई नहीं देख पड़ा। समुद्र की एक बड़ी ख़ूबी यह है कि इतना गन्द और मैल पड़ने पर भी इसका पानी सदा स्वच्छ बना रहता है। कहते हैं, इसमें कोई मृत देह तीन दिन से अधिक देर तक रहने नहीं पाती। यह उसे उठा कर बाहर फेंक देता है। इसके पानी के न सड़ने का कारण शायद इसका नमक है।

रामझरोखा—समुद्र का पूर्णरूप केवल तट पर खड़े रहने से ही नहीं देखा जा सकता। इसके लिए स्थल से दूर खुले समुद्र में जाने की ज़रूरत है। कराची के पास जहाँ आकर जहाज़ खड़े होते हैं उस स्थान का नाम केमारी है। वहाँ सागर को बाँधकर परिमित कर दिया गया है। वहाँ तट से कुछ दूरी पर एक दीवार बनाकर बाँध बाँधा गया है। इस बाँध को 'ब्रेकवॉटर वॉल' कहते हैं। ग्रीष्म और पावस में सागर बहुत क्षुब्ध रहता है। उसमें पर्वत के समान ऊँची ऊँची लहरें उठती हैं। खुले सागर में, तूफ़ान के समय, जहाज़ के डूबने का डर रहता है। इस बाँध से सागर की प्रलयङ्करी लहरें बंदर के भीतर नहीं आने पातीं। वे दीवार के साथ टकराकर पीछे हट जाती हैं। केमारी के पास बँधे हुए समुद्र की मिट्टी निकाल निकाल कर वह गहरा कर दिया गया है, जिससे जहाज़ उसके भीतर प्रवेश कर सकें। इसलिए हम नाव में बैठकर केमारी से दस-बारह मील परे खुले समुद्र का ताण्डवनृत्य देखने 'रामझरोखा' नामक टापू को गये। इसका मुसलमानी नाम 'शम्सपीर' है। यहाँ मीठे पानी का स्रोत है। इसके निकट ही 'सैण्ड स्पिट' नाम का एक और छोटा-सा टापू भी है। यहाँ सागर का निर्बाध और स्वतन्त्र रूप देखने को मिला। यहाँ समुद्र की अनन्त जलराशि उछलकर आकाश को छूना चाहती थी। वह क्रोध से घोर गर्जन करती हुई टापू की ओर दौड़ती थी, परन्तु चट्टान से टकराकर पीछे हट जाती थी। किन्तु एक बड़े आश्चर्य की बात थी। जनाकीर्ण नगरों के कोलाहल से जहाँ मनुष्य का मन अशान्त होने लगता है, वहाँ इस महासागर के निनाद से मन शान्ति-लाभ करता था। मेरी धारणा थी कि अपने चारों ओर निःसीम जलराशि को देखकर मैं भयभीत हो जाऊँगा, परन्तु हुआ इसके बिलकुल विपरीत। सागर के वक्षःस्थल पर विहारकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

मनोरा—केमारी से कोई तीन साढ़े तीन मील के अन्तर पर एक बड़ा सुन्दर टापू है। उसे मनोरा कहते हैं। वहाँ पहुँचाने के लिए नाववाले एक आना लेते हैं। वह टापू कोई एक मील लंबा और कोई पौन मील चौड़ा है। उस पर ख़ूब आबादी है। एक अच्छा ख़ासा नगर बसा है। सड़कें हैं, अस्पताल हैं, डाकघर है, पुलिस की चौकी है और दूकानें हैं। हिन्दुओं का एक सुन्दर मन्दिर भी है। उसमें एक मीठे पानी का कुआँ है। रात्रि-समय जहाज़ों का पथप्रदर्शन करने के लिए वहाँ एक प्रकाश-स्तम्भ है। उस पर फ़ौजी पहरा रहता है। ऊपर जाने के लिए पास लेना पड़ता है। प्रकाश-स्तम्भ में बड़े प्रकाशवर्धक काँच (लेन्ज़) लगे हुए हैं। उनके द्वारा बिजली का प्रकाश समुद्र में मीलों तक पहुँचता है। उसे देखकर जहाज़ चट्टानों के साथ टकराने से बच जाते हैं। वहाँ एक समुद्री क़िला भी है। उसमें गोरी सेना रहती है। किसी को भीतर जाने की आज्ञा नहीं है। वह सारा का सारा पत्थर का बना है। भूगर्भस्थ-सा दीखता है। गोली चलाने के लिए चारों ओर फ़सील में सूराख़ हैं। यदि शत्रु का कोई जहाज़ कराची पर आक्रमण करने की धृष्टता करे तो वहाँ से बम्ब बरसाकर उसका एक-दम संहार किया जा सकता है।

ब्रेकवॉटर वॉल—कराची के बंदर को खुले समुद्र की उद्दाम तरङ्गों से सुरक्षित रखने के लिए यहाँ एक बड़ी दीवार बनाकर बाँध लगाया गया है। इस दीवार के एक ओर—स्थल की ओर—तो समुद्र का पानी एक बड़े सरोवर की भाँति प्रशान्त पड़ा है, परन्तु दूसरी ओर—खुले सागर की ओर—बड़ी बड़ी लहरें उठकर दीवार से टकरा रही हैं। कई बार ग्रीष्म-काल में जब सागर



[प्रकाश-स्तम्भ, कराची]

अधिक क्षुब्ध होता है, ये लहरें दीवार को फाँदकर दूसरी ओर भी आ गिरती हैं। कई लोग इस बाँध पर सैर करते करते दूर समुद्र में चले जाते हैं। परन्तु ऐसे लोगों को सावधान करने के लिए वहाँ नोटिस लगा हुआ है कि इस बाँध पर टहलना भयावह है; सागर-तरङ्ग से उठाकर समुद्र में जा पहुँचने का डर है। सुना है, एक मर्तबा दो अँगरेज़ इञ्जीनियर इस बाँध पर टहलते हुए लहरों की लपेट में आकर समुद्र में डूब मरे थे। सचमुच वहाँ जाने में भय होता है। आश्चर्य है कि यह दीवार बनाई कैसे गई होगी! मैं भी थोड़ी दूर तक इस पर घूमने गया था। परन्तु लहरों की उच्छृङ्खल लीला देख फ़ौरन वापस आ गया। बाँध के ऊपर समुद्र का मैल और नमक के पपड़े ख़ूब जमे रहते हैं।

बॉय—बंदर के बंद समुद्र में बड़े बड़े लोहे के ढोलों को तैरा कर उन पर बिजली के लैम्प लगाये गये हैं। इन ढोलों को बह जाने से रोकने के लिए इनके साथ लोहे के भारी भारी लंगर या साँकल बाँधकर इनके दूसरे सिरे का काँटा समुद्र की तह में गाड़ा हुआ है। इनको अँगरेज़ी में बॉय कहते हैं। ये रात को नावों और जहाज़ों के लिए सड़क का काम देते हैं।

'धक्का' या जेट्टी—जहाँ पानी उथला हो, वहाँ जहाज़ तट के निकट नहीं आ सकता। उसके रेत में धँस जाने या जलमग्न चट्टान से टकरा कर टूट जाने का डर रहता है। जिस प्रकार रेलगाड़ी प्लेटफ़ार्म पर आकर खड़ी होती है, वैसे ही जहाज़ों को ठहराने के लिए भी सागर-तट के निकट समुद्र में से मिट्टी निकाल कर पानी को गहरा बनाना होता है। वहीं आकर जहाज़ ठहरते हैं। उस स्थान को (डाक) 'धक्का' कहते हैं। प्लेटफ़ार्म की तरह धक्के के भी एक, दो, तीन, चार नम्बर होते हैं। कोई जहाज़ किसी नम्बर पर खड़ा होता है, कोई किसी पर। जब जहाज़ 'धक्के' पर आकर खड़ा हो जाता है तब किनारे पर लगे हुए बड़े बड़े 'क्रेनों' के द्वारा जहाज़ की पेंदी में से माल उठा कर किनारे पर रक्खा जाता है। यह भी एक विचित्र दृश्य होता है।

कराची की सफ़ाई—कराची में मैंने एक विशेषता पाई। यहाँ के घरों, गलियों और बाज़ारों जैसी सफ़ाई शायद भारत के किसी दूसरे नगर में न मिलेगी। यहाँ के घर एक विशेष ढंग के बने हैं। एक बड़े विशाल भवन में दो-तीन मंज़िलें रहती हैं। प्रत्येक मंज़िल में पाँच-पाँच छः-छः घर रहते हैं। लोहे या लकड़ी का एक बड़ा ज़ीना ऊपर जाने के लिए होता है। प्रत्येक घर अपने आपमें पूर्ण है—उसमें टट्टी, स्नानागार और रसोई रहती है। टट्टियाँ सब फ़्लश सिस्टम की ग़र्क़ टट्टियाँ हैं। पाख़ाने के ऊपर पानी का भरा हुआ एक छोटा-सा लोहे का कुण्ड रहता है। उसके खींचते ही कुण्ड में से गड़गड़ करता हुआ पानी बड़े ज़ोर से उतरता है और सारा मल-मूत्र बहा ले जाता है। पाख़ाना एक-दम साफ़ हो जाता है। भंगी को बुलाकर साफ़ कराने की ज़रूरत नहीं रहती। कराची में गली-बाज़ार में कूड़ा-करकट फेंकने की कड़ी मनाही है। फेंकनेवाले को दण्ड मिलता है। इसलिए घरवाले घर का सारा कचरा किसी टीन के कनस्तर में फेंकते जाते हैं या मकान के किसी एक कोने में उसका ढेर लगा देते हैं। भंगी आकर उसे उठा ले जाता है।

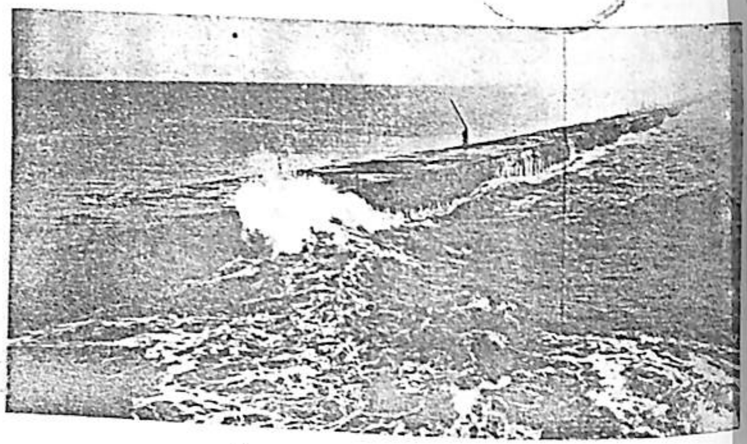
मुझे कई परिवारों में जाने का मौक़ा मिला। मैंने देखा, जो पंजाबी बहनें पंजाब में रहती हुई घर की स्वच्छता पर कुछ भी ध्यान नहीं देतीं, जिनके घरों में कचरा, जूठे बर्तन और मैले कपड़े जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े रहते हैं, उनके घर भी यहाँ बड़े साफ़-सुथरे थे। कचरे का कहीं नाम-निशान तक न था। प्रत्येक वस्तु क़रीने से अपने उचित स्थान पर धरी थी। यहाँ की सफ़ाई का एक विशेष कारण भी है। किराया महँगा होने से मकान छोटे छोटे हैं। इसलिए छोटे मकान में यदि प्रत्येक वस्तु क़रीने से न रक्खी जाय तो गुज़र नहीं हो सकती। मकान इतने मँहगे हैं कि बड़ा मकान लेने का सामर्थ्य न रहने से अधिकांश लोगों के पास तो सोने के लिए कोई खाट ही नहीं। सारा परिवार फ़र्श पर लेटता है। सफ़ाई का दूसरा कारण यहाँ धूल का न होना है। लाहौर आदि दूसरे नगरों में तो धूल उड़ उड़कर ही मकानों को भर देती है; जब तक दो वक्त झाड़ू न लगाई जाय, घर साफ़ नहीं रह सकता। परन्तु कराची में ऐसी बात नहीं। समुद्र की गीली वायु धूल नहीं होने देती। फिर यहाँ के अधिकांश मकानों में टाइल तथा संगमरमर के सुन्दर फ़र्श लगे हैं। कपड़े से पोंछ देने से ही वे साफ़ हो जाते हैं। तीसरे, म्यूनिसिपैलिटी की ओर से भी घरों की सफ़ाई पर विशेष ज़ोर दिया जाता है।

कराची की इन बिल्डिङ्गों में सभी जातियों के लोग मिलकर रहते हैं। एक घर हिन्दू का है, दूसरा ईसाई का, तीसरा पारसी का, चौथा यहूदी का और पाँचवाँ मुसलमान का। सभी के बच्चे मिलकर कम्पाउण्ड (आँगन) में खेलते हैं। यहाँ उतना छूतछात का विचार नहीं है। मुझे एक गुजराती गृहस्थ के यहाँ जाने का संयोग हुआ। उनका घर क्या था, पीतल के बर्तनों की एक प्रदर्शनी थी। एक कमरे में कुछ ऊँचाई पर चारों ओर दीवार में लकड़ी का एक छज्जा-सा लगाकर उस पर पीतल के चमकते हुए बर्तन ख़ूब क़रीने के साथ सजा कर धरे थे। वह कमरा उन्होंने हमें विशेष रूप से दिखाया। सुना है, दक्षिण में इस प्रकार घर में बर्तनों को सजाकर रखने का रवाज ही है। ये बर्तन केवल सजावट के लिए ही रहते हैं, खाने-पीने के लिए इनका उपयोग बहुत कम होता है।

कराची नगर सफ़ाई की दृष्टि से भारत में एक आदर्श नगर है। इसका श्रेय यहाँ के भूतपूर्व मेयर श्रीयुत जमशेद मेहता को है। ये लगातार कई बरस तक यहाँ के मेयर रहे हैं। मुझे भी इनसे मिलने का मौक़ा मिला था। ये एक पारसी सज्जन हैं, बाल-ब्रह्मचारी हैं। सुना है, थियासोफ़िस्ट विचार के हैं। बड़े मिलनसार, दानी और परोपकार-परायण हैं।

मेमन, खोजे और बोहरे—कराची, बन्दर होने के कारण, एक सर्वदेशीय नगर है। इसमें सभी राष्ट्रों, सभी धर्मों और सभी प्रान्तों के लोग रहते हैं। कराची में पंजाबियों, सिंधियों, मारवाड़ियों, यू० पी० वालों के अतिरिक्त मराठों, गुजरातियों और कच्छियों की भी बहुत बड़ी संख्या है। गुजराती लोग बड़े व्यापारी हैं और कराची व्यापार की एक बड़ी मण्डी है। यहाँ यहूदी, पारसी, मेमन, खोजे, बोहरे, घाटी और मकरानी लोग भी काफ़ी हैं। रामबाग़ गाड़ीख़ाना में मेमनों का अपना बाग़ है। खारादर पर खोजों की बस्ती है, और डेनिस-हाल के निकट बोहरे रहते हैं। ये तीनों जातियाँ हिन्दुओं से मुसलमान हुई हैं। मेमन लोग कच्छ के रहनेवाले हैं। ये लोग प्रायः मैले रहते हैं। इनकी स्त्रियाँ पंजाबी स्त्रियों के सदृश घुटनों के नीचे तक जम्पर पहनती हैं। इसे 'अब्बा' कहते हैं। नीचे शोख़ रङ्ग की सिलवार और सिर पर रङ्गीन चूनरी होती है। चूनरी पर तिलाई का काम किया होता है। चूनरी के नीचे सिर के ऊपर रेशमी कपड़े का एक तिकोना टुकड़ा बँधा रहता है। यह तिकोना टुकड़ा तारकशी के बेल-बूटों से मढ़ा होता है।

खोजे लोग लुवाणों से मुसलमान हुए हैं। ये असली रहनेवाले काठियावाड़ के हैं। गुजराती हिन्दुओं की तरह इनके पुरुष धोती और स्त्रियाँ साड़ी पहनती हैं। स्त्रियाँ माथे पर बिन्दी लगाती हैं। विवाह के समय पहले गणपति-पूजा की जाती है। चौके-बासन में भी ये लोग हिन्दुओं के सदृश ही सफ़ाई रखते हैं। इनके दो दल हैं—एक आग़ाख़ानी और दूसरे मसीदिए (?)। आग़ाख़ानियों की संख्या बहुत अधिक है। ये लोग नमाज़ नहीं पढ़ते, मसीदिए (?) नमाज़ पढ़ते हैं। आग़ाख़ानिये आग़ाख़ाँ को ईश्वर का अवतार मान कर पूजते हैं। शकल से इनकी स्त्रियाँ बिलकुल हिन्दू जान पड़ती हैं। इनके पुरुषों के नाम रामजी भाई, श्याम जी भाई तथा करीम भाई, और स्त्रियों के नाम हीराबाई, मोतीबाई तथा माणिकबाई आदि होते हैं।



[समुद्र का बाँध या ब्रेकवाटर वाल]

बोहरे औदीच्य ब्राह्मणों से मुसलमान हुए हैं। ये गुजरात के रहनेवाले हैं। इनकी स्त्रियाँ साड़ी और लड़कियाँ रङ्गीन रेशमी घाँघरे पहनती हैं। नाक में मोती की नथुनी होती है। इनके पुरुष लम्बे कोट, खुला पाजामा और सिर पर तिलाई पगड़ी पहनते हैं। इनके धर्म में हुक्क़ा और सिगरेट पीने की कड़ी मनाही है। आपस के लड़ाई-झगड़ों का निपटारा अपने धर्माचार्य 'मियाँ साहब' से करा लेते हैं, इसके लिए कचहरी में नहीं जाते। ये लोग हज़रत अली को बहुत मानते हैं।

ये तीनों नव-मुस्लिम जातियाँ बड़ी व्यापारी हैं। कराची में इनकी बड़ी बड़ी बिल्डिंगें हैं, ख़ूब व्यापार चलता है और ये लोग बड़े अमीर हैं। मकरानी लोग मकरान (फ़ारस) के निवासी हैं। ये लोग बड़े मज़बूत होते हैं। जहाज़ों से माल उतारते हैं। इनका काम मज़दूरी है। एक आदमी दो मनुष्यों जितना बोझ उठा लेता है।

कराची के हिन्दुओं में छूत-छात और जात-पाँत का भाव बहुत कम है। इस्लाम से उन्होंने एक अच्छी बात ज़रूर सीखी है। वे सब इकट्ठे हुक्क़ा पी लेते हैं। हुक्क़ा पीने के लिए उन्हें, दूसरे प्रान्त के हिन्दुओं की तरह, 'ब्राह्मण का हुक्क़ा है या नाई का?' पूछने की ज़रूरत नहीं। एक बहुत बड़ा हुक्क़ा रक्खा रहता है। हिन्दू-मात्र उसकी बाँस की नली को मुँह से लगाकर पी सकता है। मेरे मित्र श्री भूमानन्द जी ने उनकी परीक्षा करने के भाव से ही उनके हुक्के से दो कश पी कर देखा।

सिंध में हिन्दुओं की दो जातियाँ या प्रकार हैं। एक को आमिल कहते हैं और दूसरी को भाईबन्द। आमिल लोग प्रायः सरकारी नौकरी करते हैं। इनमें शिक्षा का अच्छा प्रचार है। इनकी स्त्रियाँ पायजामा पहनती और सिर पर सफ़ेद चद्दर ओढ़ती हैं। इनकी नाक में दो तीन मोतियोंवाली सोने की बाली रहती है। इनका केन्द्र हैदराबाद है। भाईबन्द व्यापारी लोग हैं। इनका केन्द्र सक्खर-शिकारपुर है। इनकी स्त्रियाँ लहँगा पहनती और सिर पर दुपट्टा ओढ़ती हैं। इनकी नाक में एक बहुत बड़ी नथुनी होती है। परन्तु अब पढ़ी-लिखी हिन्दू लड़कियों की पोशाक सब कहीं साड़ी होती जा रही है। कराची में मैंने अनेक युवतियाँ साड़ी पहने देखीं।

सिंधी लोग मांस बहुत खाते हैं। इनका डील-डौल भी अच्छा होता है। परन्तु ये बड़े मिलनसार और मृदु-प्रकृति होते हैं। व्यापार में इनकी बुद्धि ख़ूब चलती है। पृथ्वी के दूर दूर भागों में ये लोग पहुँचे हुए हैं। मुझे एक सिंधी सज्जन ऐसा मिला जो बचपन में घर से भाग कर मध्य-एशिया के अन्तर्गत ख़ुतन में चला गया था और

वहाँ से पूरे अट्ठाईस वर्ष के बाद स्वदेश लौटा था। परन्तु इन लोगों में एक बड़ा दोष है। इनके घर बड़े गंदे रहते हैं।

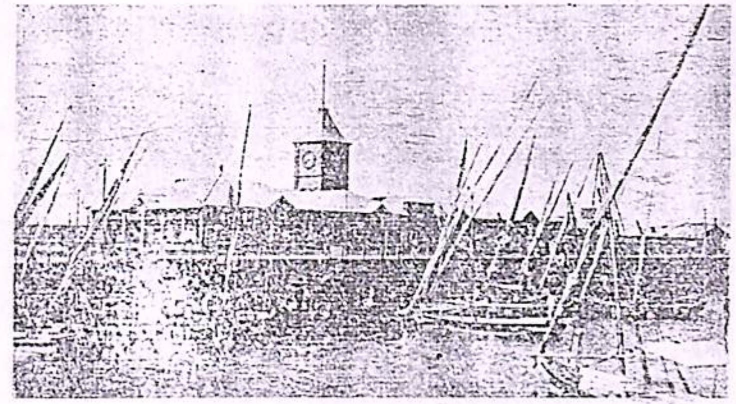
कराची-मार्केट—कराची में बड़े बड़े आढ़तियों की दूकानें हैं। ये लोग व्यापारियों का माल बेचकर अपनी आढ़त ले लेते हैं। तोरिया, कपास, सरसों, गेहूँ, जौ, सन, अलसी, ऊन, खाल, सोना, चाँदी आदि सभी चीज़ों का क्रय-विक्रय यहाँ होता है। जहाँ इनकी मंडी है, वहाँ सवेरे ही दलाल लोग इकट्ठे हो जाते हैं। मार्केट के खुलने और बन्द होने की सूचना एक घंटी बजाकर दी जाती है। मार्केट में एक अजीब दृश्य होता है। सैकड़ों आदमी जमा होते हैं। कोई कहता है, मैंने इतने सौ मन कपास ली और कोई कहता है, मैंने दी; कोई कहता है दो सौ बोरी तोरिया लिया और कोई कहता है, मैंने दिया। सौदे को पक्का करने के लिए लेनेवाला देनेवाले की छाती पर ज़ोर ज़ोर से हाथ मारते हुए कहता है—लिया, लिया, लिया और देनेवाला लेनेवाले की छाती पर उसी प्रकार हाथ मारकर कहता है—दिया, दिया, दिया। साथ साथ मुंशी लोग सौदों को लिखते जाते हैं। सब मनुष्यों के एक साथ बोलने से मार्केट में इतना कोलाहल उठता है कि कान पड़ी आवाज़ सुनाई नहीं देती। यह शोर सवेरे सूर्योदय से आरम्भ होकर साँझ को सूर्यास्त तक बराबर बना रहता है। आढ़तियों के फ़ोन मार्केट से उनके दफ़्तरों में लगे हुए हैं। दलाल लोग मार्केट से फ़ोन-द्वारा आढ़तियों को पूछ पूछकर व्यापारियों का माल बेचते जाते हैं। लाखों रुपये का सौदा एक दिन में हो जाता है। मार्केट खुलते समय और मार्केट बन्द होते समय वस्तुओं के जो भाव होते हैं उनकी सूचना चिट्ठियों, सर्कूलरों और तारों-द्वारा आढ़तिये लोग अपने व्यापारियों को देते रहते हैं। अच्छे अच्छे दैनिक पत्रों में भी मार्केट के भाव छप जाते हैं। मैंने जब तक कराची का यह मार्केट नहीं देखा था, 'खुला इतने रुपये, बन्द इतने रुपये, और गोशा इतने रुपये' इत्यादि व्यापारिक परिभाषाओं को नहीं समझ सकता था। यहाँ आकर मालूम हुआ कि 'खुला' से तात्पर्य मार्केट के खुलते समय के भाव से है, 'बन्द' का तात्पर्य मार्केट के बन्द होने के समय के भाव से, और 'गोशा' से तात्पर्य गोशा नाम की जापानी कम्पनी की ख़रीदारी के भाव से है। भारत का लगभग सारा निर्यात और आयात बम्बई और कराची इन दो-बन्दरों से ही होता है। इसलिए भारत के सारे व्यापारी अपना माल यहाँ ही भेजते हैं।

इस मार्केट के अतिरिक्त एक और मार्केट भी है। इसमें तनिक अधिक प्रतिष्ठित व्यापारी और आढ़तिये जाते हैं। इसका नाम 'टपाल' है। 'टपाल' गुजराती-भाषा में डाक-घर को कहते हैं। जहाँ यह मण्डी लगती है, वहाँ पहले डाक-घर था। इसलिए इस जगह का नाम ही टपाल पड़ गया है। यहाँ अच्छे-सुसभ्य लोग जाते हैं और दूसरे मार्केट जैसा कानों को बहरा कर देनेवाला शोर नहीं उठता।

मत समझिए कि मार्केट में माल तैयार पड़ा होता है। बिलकुल नहीं। माल तो देश के भिन्न-भिन्न स्थानों में होता है, परन्तु सौदा यहाँ हो जाता है। अनेक बार तो माल-वाल कुछ भी नहीं होता। न कोई कुछ देता है और न लेता है, केवल सट्टेबाज़ी में ही राव से रङ्क और रङ्क से राव हो जाते हैं।

बंसगार्डेन और अजायबघर—कराची-कारपोरेशन ने ठौर-ठौर पर बच्चों के खेलने के लिए छोटे-छोटे बग़ीचे बनवा रक्खे हैं। उनमें उनके झूलने और खसकने के लिए लकड़ी के आड़े तख़्ते और दूसरे खेल भी हैं। लोगों के स्वास्थ्य पर इन बग़ीचों का बड़ा हितकर प्रभाव पड़ता है। इनके अतिरिक्त लोगों के घूमने के लिए भी कई बाग़ हैं। एक बाग़ का नाम बंस-गार्डेन है। यह अच्छा रमणीक स्थान है। लोगों के बैठने के लिए घास के फ़र्श हैं। कई प्रकार के छायादार पेड़-पौधे हैं। इसी में कराची का अजायबघर है। अजायबघर देखने की चीज़ है। इसके द्वार के बाहर दोनों ओर ह्वेल मछली का एक एक जबड़ा रक्खा हुआ है। कुछ वर्ष हुए यह ह्वेल किसी प्रकार बहती हुई कराची के सागर-तट पर आ गई थी। एक एक जबड़ा साढ़े चौदह फ़ुट लम्बा है। अजायबघर के भीतर इस भीमकाय जन्तु का सारा पंजर धरा है। इसके मेरुदण्ड के छल्ले, पसलियाँ और दूसरी हड्डियाँ सब सुरक्षित रक्खी हुई हैं।

इसके अतिरिक्त संसार की भिन्न-भिन्न जातियों के मनुष्यों की मिट्टी की मूर्त्तियाँ, घोड़े और मनुष्य का हड्डी का ढाँचा, गर्भ में बच्चे की अवस्था के सभी नमूने, नाना प्रकार के साँप, अंडे, विविध प्रकार के जल-जन्तु, संसार की विभिन्न जातियों का शिर-परिच्छद और सागर से प्राप्त होनेवाले विचित्र प्रकार के नाना पदार्थ यहाँ देखने को मिलते हैं। यहाँ समुद्री नमक का एक ऐसा सुन्दर जमाव-सा रक्खा है जो देखने में रुई का सफ़ेद तोदा मालूम देता है। बंस-गार्डेन में लोग सवेरे-साँझ घूमने आते हैं।



[केमारी में नावों के ठहरने का बंदर, कराची]

गाँधीगार्डेन और चिड़ियाघर—टहलने के लिए दूसरा बाग़ यहाँ गाँधीवाटिका है। यह बहुत अच्छी जगह है। नारियल के पेड़ लगे हैं। सैर के लिए सड़कें भी साफ़-सुथरी हैं। यहाँ मैंने एक ताज़ा नारियल पिया। जो लोग समुद्रतट से दूर रहते हैं, उन्हें न नारियल का पेड़ देखना और न नारियल का पानी पीना नसीब होता है। टटके तोड़े हुए नारियल का पानी बड़ा स्वादिष्ट होता है। नारियल की तीन अवस्थायें होती हैं। पहली अवस्था में इसमें केवल पानी रहता है। फिर कुछ अधिक पक जाने पर उस पानी की मलाई बन जाती है। मलाई के कुछ और अधिक पक जाने से वह गरी बन जाती है। कुछ लोग पानी पीना पसन्द करते हैं, कुछ मलाई चाटते हैं और कुछ गरी खाते हैं। मेरे लिए टटका नारियल का पानी एक अनोखी चीज़ था।

गाँधीवाटिका में एक चिड़िया-घर भी है। इसमें सिंह, भेड़िया, हिरण, बत्तख़ आदि जन्तु तो वही थे जो लाहौर, लखनऊ आदि के चिड़िया-घरों में होते हैं, परन्तु दो बड़े समुद्री कछुवों का जोड़ा ऐसा था जो मेरे लिए नई चीज़ था। इतने बड़े कछुए मैंने पहले कभी नहीं देखे थे। एक कछुए की लम्बाई दो फ़ुट से कुछ ऊपर ही होगी।

गर्म पानी के झरने—जूनामार्केट के आगे मछली-मार्केट है। वहाँ से मग्गापीर या मगरपीर १३ मील है। 'बस' जाती है। साढ़े चार आने किराया लगता है। ३१ मार्च १९३५ को सवेरे मैं और श्री भूमानन्द जी वहाँ गये। सारा रास्ता शुष्क पथरीले प्रदेश में से होकर जाता है। कोई पौन घंटे में 'बस' वहाँ जा पहुँची। मग्गापीर से कुछ आगे गर्म पानी के दो झरने हैं। फोड़े-फुंसी, दाद और खुजली के रोगी उनमें जाकर स्नान करते हैं। कहते हैं, दो-चार बार नहाने से आराम हो जाता है। परन्तु मुझे तो वहाँ नहाने का साहस नहीं हुआ। बहुत-से रोगी नहा रहे थे। वहाँ नहाने से रोग दूर होने के बजाय छूत से रोग के हो जाने का ही डर था। हाँ, उन झरनों से कुछ दूर पर एक तीसरा झरना भी है। वहाँ किसी पारसी महाशय ने एक स्नानागार बना रक्खा है। उसका नाम 'मामाबाथ' है। वह बन्द है। वहाँ सब कोई मुफ़्त में नहीं नहा सकता। नहाने के लिए कदाचित् चार आने

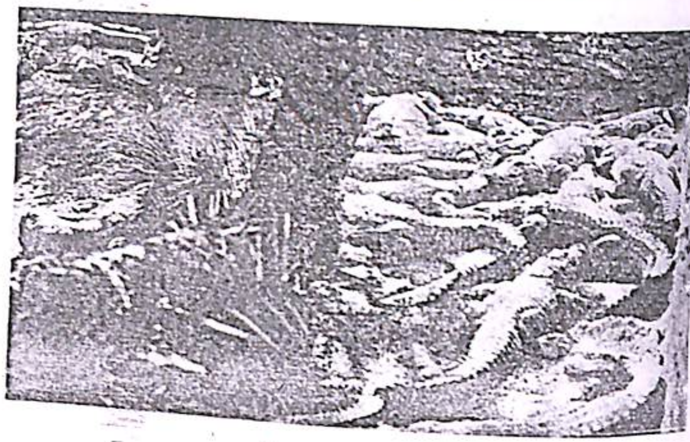
देने पड़ते हैं। पर उस समय उसका चौकीदार वहाँ मौजूद न था। द्वार पर ताला पड़ा था। इसलिए हम वहाँ भी स्नान न कर सके।

हीरानन्दकुष्ठआश्रम—इन झरनों से कुछ दूर आगे एक कुष्ठ-आश्रम है। यह किसी दयावान् सेठ की भूतदया का सुफल है। यहाँ ७० के क़रीब रोगी थे। स्त्रियाँ भी थीं। वे रोगी अपना सब काम आप करते थे। पूछने पर मालूम हुआ कि बिलकुल आराम तो किसी को नहीं होता, परन्तु पीड़ा बेशक बहुत कुछ कम हो जाती है। इन गलित-अङ्ग महादुखी मनुष्यों को देखकर बड़ी दया आती थी।

मगरपीर—यहाँ से लौट कर हम 'मग्गापीर' पर आये। यहाँ एक बड़ा जूहड़ है। इसमें पानी तो नहीं के बराबर है, हाँ, कीचड़ काफ़ी है। एक ओर कुछ पेड़ भी हैं। जूहड़ के इर्दगिर्द कोई छः फ़ुट ऊँची दीवार है। जूहड़ में तीस के लगभग मगरमच्छ हैं। वे बिलकुल निश्चेष्ट पड़े हैं। न हिलते हैं, न डुलते हैं। पता नहीं लगता, जीते हैं या मरे। इनमें सबसे पुराना मगर कोई ४० वर्ष का है। जूहड़ से कुछ परे एक टीले पर एक क़ब्र है। इसे मग्गापीर कहते हैं। लोग यहाँ मन्नतें मानते हैं और मांस का चढ़ावा चढ़ाते हैं। यह मांस जूहड़ के मगरों को खिलाया जाता है। कई निर्दय लोग तो जीता बकरा ही जूहड़ में फेंक देते हैं। मगर उसे अपने विकराल जबड़ों में पकड़ लेते हैं। वह छूटने का यत्न करता है और चिल्लाता है। उसकी मर्मान्तक वेदना को देखकर ये पीर-भक्त प्रसन्न होते हैं। जिस समय इन मगरों को मांस डाला जाता है, तभी इनमें कुछ चेष्टा देख पड़ती है। तभी ये हिलते-डुलते हैं। दूसरा कोई मनुष्य तो इन मगरों के निकट जाने का साहस नहीं कर सकता, परन्तु यहाँ एक विशेष मनुष्य है जो इनके पास जाता है और छड़ी से इनकी थूथनी पर हलकी-सी चोट करता है। तब ये अपना तीक्ष्ण दांतों से भरा हुआ लंबा जबड़ा खोल देते हैं। यहाँ अड़ोस-पड़ोस में कोई नदी भी नहीं। आश्चर्य है कि यहाँ ये मगर कैसे आ गये! इस जूहड़ से थोड़ी दूर पर एक और पोखरा है। इसमें काफ़ी पानी है। इसमें मगरों के तीस-चालीस छोटे-छोटे बच्चे हैं। इसमें भैंसें नहाती थीं। परन्तु मगर इन्हें कुछ नहीं कहते थे। शायद इसलिए कि वे अभी बहुत छोटे थे। सुना है कि जब कोई बच्चा बड़ा हो जाता है तब उसे यहाँ से उठा कर बड़े जूहड़ में ले जाकर छोड़ देते हैं। इन मगरों के कारण यहाँ की क़ब्र के मजावरों को अच्छी आमदनी हो जाती है।

कार्बन पेपर का कारख़ाना—कराची में एक कार्बन पेपर बनाने का कारख़ाना थोड़े समय से खुला है। इसके मैनेजर महोदय ने बड़ी कृपा से हमें इसकी सारी मशीनरी और क्रिया दिखाई। भारत में सारा कार्बन पेपर विदेश से ही आता है। शायद भारत में एक-मात्र यही कारख़ाना है। पहले तो सरकार से इसको प्रोत्साहन नहीं मिला, परन्तु अब कुछ काल से वह भी इसका बनाया कार्बन पेपर ख़रीदने लगी है। निज़ाम का हैदराबाद और दूसरी कई रियासतों के भी आर्डर आये हुए थे। यहाँ की मशीनें बड़ी सूक्ष्म हैं। बटर पेपर झिल्ली-सा बारीक़ होता है। मशीन उस पर एक समान स्याही लगाती है। वह मशीन के अन्दर ही सूखता है। स्याही ठीक लगी है या नहीं, इसकी जाँच करने के लिए यहाँ एक बहुत सूक्ष्म तराज़ू है। वह कोरे काग़ज़ और स्याही लगे हुए काग़ज़ के तौल का अन्तर बता देती है। काग़ज़ के शीटों की गिनती भी मशीन ही करती है। उनकी तह भी वही लगाती है और शीटों को एक ही साईज़ के टुकड़े में काट कर डिब्बों में बंद भी वही करती है। एक मशीन ऐसी है, जिसमें एक ओर तरल स्याही डाल दी जाती है और दूसरी ओर वह ठोस रूप में निकल आती है। कार्बन पेपर को गर्म और ठंडा करने के लिए एक विशेष मशीन है। उसमें गर्म और ठंडे सिलिण्डर हैं। काग़ज़ को उनमें से होकर जाना पड़ता है। यहाँ गत्ते और टीन के डिब्बे भी बनते हैं। सारा डिब्बा एक ही मशीन नहीं बनाती। एक एक भाग को बनाने के लिए अलग अलग मशीनें हैं। फिर उन सब भागों को मशीन-द्वारा जोड़ देने से डिब्बा तैयार हो जाता है। यहाँ दफ़्तरी काम के लिए फ़ीते भी बनाये जाते हैं।

फ़्रीर-हॉल—कराची में और देखने योग्य चीज़ें फ़्रीर-हाल, बोल्टन-मार्केट, हिन्दी-साहित्य-भवन, सेवा-सदन, जयसिंहानी का अकबर-आश्रम, हरिजन-शिल्प-विद्यालय, केमारी और डेनिस हाल हैं। फ़्रीर-हाल नगर से बाहर एक सुन्दर स्थान है। यहाँ सार्वजनिक पुस्तकालय है। हाल के चारों ओर पार्क अर्थात् नगरोद्यान है। इसमें फ़व्वारे लगे हैं। महाराजा और महारानी की बड़ी बड़ी मूर्तियाँ ऊँचे चबूतरों पर खड़ी हैं, जनता के विश्राम करने के लिए बेंचें लगी हैं। जगह साफ़-सुथरी है। सवेरे लोग इधर हवा खाने आते हैं।


[मग्गापीर, कराची]

यद्यपि सिंध की भाषा सिंधी है, जो अरबी अक्षरों में लिखी जाती है, परन्तु कराची में दूसरे प्रान्तों के लोगों की इतनी बहुतायत है कि यहाँ मराठी, गुजराती और हिन्दी के भी अलग अलग स्कूल हैं। मराठी और गुजराती भाषाओं के तो यहाँ पत्र भी निकलते हैं। शायद पाठकों को मालूम ही होगा कि भारत में बसनेवाले यहूदियों की मातृ-भाषा मराठी और पारसियों की गुजराती है। यहाँ हिन्दी-भाषियों की भी कमी नहीं। यहाँ का हिन्दी-साहित्य-भवन बड़ी उपयोगी संस्था है। इसके वाचनालय में पुस्तकों का बड़ा सुन्दर संग्रह है। पत्र-पत्रिकायें भी ख़ूब आती हैं।

कराची से लाहौर लौटते समय मैंने सौग़ात के तौर पर यहाँ से आसू हलवाई की दूकान का सोहनहलुआ, दो सुन्दर बड़ी बड़ी चितकबरी कौड़ियाँ, कोकम, कोकम का तेल और सीकाकाई ख़रीदा, क्योंकि ये चीज़ें लाहौर में नहीं मिलतीं। कोकम इमली की तरह का एक खट्टा फल होता है। गुजराती और मराठे लोग इसे दाल में डालते हैं। कोकम का तेल सफ़ेद रंग की ठोस चीज़ होती है। मरोड़ की बीमारी में गर्म करके थोड़ा-सा पिला देने से रोगी को आराम हो जाता है। सीकाकाई बबूल की फली जैसी होती है। इसको पानी में भिगो कर स्त्रियाँ केश धोती हैं। इससे बाल ख़ूब निखरते और बढ़ते हैं। सोहन-हलुआ वैसे तो कराची में बहुत लोग बनाते हैं, परन्तु आसू की दूकान इसके लिए विशेषरूप से प्रसिद्ध है। आसू मर चुका है, अब उसके उत्तराधिकारी दूकान चलाते हैं। मुझे तो आसू के हलुए और दूसरी दूकानों के हलुए में कोई विशेष अन्तर नहीं जान पड़ा। सोहनहलुआ एक अच्छी स्वादिष्ठ मिठाई है। कहते हैं, दो मास पड़ा रहने पर भी यह ख़राब नहीं होता। जैसे बंगालियों का रस-गुल्ला मशहूर है, वैसे ही सिंधियों का सोहनहलुआ मशहूर है।

अज्ञात दिशा की ओर

सिनेमा हाउस से निकल कर अहीन्द्र और निर्मल मिसेज़ बोस की ओर चले। रास्ते में अहीन्द्र ने निर्मल को मिसेज़ बोस की रहन-सहन और उनके आचरण एवं सौन्दर्य्य का परिचय दिया। अहीन्द्र के कवित्वमय वर्णन से निर्मल और भी आकर्षित हुआ। वह मिसेज़ बोस तथा उनकी कन्या रेखा से मिलने के लिए बहुत ही उत्कण्ठित हो उठा और एक टैक्सी पर बैठ कर अहीन्द्र के साथ चला।

अनुवादक—श्रीयुत ठाकुरदत्त मिश्र

दूसरा परिच्छेद

शुभ सूचना

टैक्सी आकर बालीगंज में एक सजे हुए घर के द्वार पर खड़ी हो गई। फाटक के सामने बादाम का एक बहुत बड़ा पेड़ था। उसी के बग़ल में एक मोटर और खड़ा था। फाटक के भीतर एक छोटा-सा चक्राकार बग़ीचा था। उस बग़ीचे की परिक्रमा करती हुई एक सड़क चली गई थी, जो अपने दो हाथ निकालकर गाड़ी खड़ी करने-वाले बरामदे से मिल गई थी। सड़क पर लाल बजरी बिछी थी। बग़ीचे में कुछ कुर्सियाँ और तिपाइयाँ पड़ी थीं। एक झाड़ में ५ बल्ब लगे थे, जो बहुत ही आकर्षक और नयनाभिराम थे। उन पाँचों में से एक बल्ब में बिजली की बत्ती जल रही थी। एक कुर्सी पर एक रमणी विराजमान थी, जो 'ऊँचे ख़याल' के लोगों के फ़ैशन की साड़ी पहने थी। उसके पैरों में मुलायम और बढ़िया स्लीपर पड़े हुए थे। उसके पास दो-चार पुरुष बैठे हुए थे, जो वेश-भूषा से बहुत शौकीन जान पड़ते थे। उन सबनें उसी स्त्री को घेरकर भौंरे के समान स्तवगान सा छेड़ रक्खा था। यही स्त्री मिसेज़ बोस के नाम से परिचित थी। उसका शायद सरयू, सरस्वती या इसी तरह का कोई और नाम था। उसके उस नाम से किसी का कोई मतलब था नहीं, इसलिए वह स्मृति के किसी अतीत लोक में अदृश्य होगया था।

फाटक के बाहर ही अहीन्द्र टैक्सी से उतर गया। टैक्सीवाले को भाड़ा देकर उसने निर्मल से कहा—देखते हो न, एक मोटर खड़ा है। चाहे तुम किसी समय भी आओ। यहाँ कोई न कोई मोटर या गाड़ी ज़रूर खड़ी मिलेगी। अच्छा, तुम्हारा परिचय मैं दूँगा प्रिंस कह कर। केवल निर्मल चौधरी कहने से उतना ज़ोर न बँधेगा। तुम्हें मैं कहूँगा प्रिंस चौधरी। ठीक है न ?

निर्मल ने हँस कर कहा—नहीं, नहीं, प्रिंस-फ्रिंस कहने की क्या ज़रूरत है ? केवल सीधा सीधा परिचय दे देना ही क्या अच्छा न होगा ?

अहीन्द्र ने कहा—अजी नहीं। इससे काम न चलेगा। तुम समझते नहीं हो। यहाँ मेरा क्या परिचय है, जानते हो ? यहाँ मुझे सब लोग कहते हैं हताशगंज के ज़मींदार अहीन्द्र सिंगी। यह परिचय मैंने बनाया नहीं। यहीं एक दिन मिसेज़ बोस ने मुझसे पूछा कि आप किस गंज के ज़मींदार हैं। मैंने उत्तर दिया कि मैं ज़मींदार नहीं हूँ। परन्तु उन्हें विश्वास नहीं पड़ा। वे बतलाने के लिए मुझसे बार बार आग्रह करने लगीं। अन्त में तंग आकर मुझे कहना ही पड़ा कि मैं हताशगंज का ज़मींदार हूँ। यह कहने से मेरा कोई हानि-लाभ नहीं है, परन्तु मिसेज़ बोस जब मेरे सम्बन्ध में समझ गईं कि यह ज़मींदार है तब उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ। इससे मैं तुम्हें आरम्भ से ही प्रिंस बनाकर ले चल रहा हूँ। समझे ?

निर्मल ने कहा—मैं तो केवल एक रात का मेहमान हूँ भाई। मेरे ऊपर उपाधि का भार लादने की कौन-सी ऐसी आवश्यकता है ? तुम यहाँ जम गये हो, इससे तुम्हें



नव क्षीरनिधि की उर्मियों से रजत झीने मेघसित ;
मृदु फेनमय मुक्तावली से तैरते तारक अमित !...
अज्ञात पथ, है दूर प्रिय चल भीगती मधु की रजनि !—नीरजा

चित्रकार
श्रीयुत पी० मुकर्जी

स्वभावतः ज़मींदारी लेनी ही पड़ी। मेरा मामला तो ऐसा है नहीं !

अहीन्द्र ने कहा—ऐसा न कहने से तुम्हें प्रतिकूल अवस्था में पड़ना पड़ेगा। यहाँ जो लोग आते हैं वे या तो किसी राजा के प्राइवेट सेक्रेटरी हैं या कुमार बहादुर हैं। यदि वह सब नहीं हैं तो बैरिस्टर या आनरेरी मजिस्ट्रेट ही हैं। इन सब रईसों के दल में जाकर तुम एक अभागे की तरह बैठोगे ? यह नहीं हो सकता।

निर्मल ने कहा—अच्छी बात है। इस सम्बन्ध में अधिक विवाद करने की आवश्यकता नहीं। तुम्हें जो पसंद हो वही करना।

फाटक बन्द था। उसे खोलकर अहीन्द्र और निर्मल भीतर घुसे। बग़ीचे में जाकर जैसे ही उन दोनों ने 'लान' पर पैर रक्खा, मिसेज़ बोस ने उनकी अभ्यर्थना करके कहा—आइए मिस्टर सिनहा।

अहीन्द्र ने कहा—ये मेरे मित्र प्रिंस चौधरी हैं...और ये ही मिसेज़ बोस हैं।

मिसेज़ बोस के पास जितने भी पुरुष बैठे थे वे सब चकित होकर निर्मल की ओर ताकने लगे। कुर्सी छोड़कर मिसेज़ बोस उठ खड़ी हुई और हाथ बढ़ाकर कहा—कहाँ के प्रिंस ?

अहीन्द्र ने कहा—कोचभूम के। यह जगह कूचविहार से ज़रा और उस तरफ़ है।

निर्मल बड़ी कठिनाई से अपनी हँसी रोक सका। उसने चुपके से अहीन्द्र को एक बार चुटकी काटकर बहुत ही मृदु स्वर से कहा—बदमाश नहीं तो।

मिसेज़ बोस ने दोनों से बैठने को कहा। अहीन्द्र और निर्मल के बैठ जाने पर मिसेज़ बोस ने कहा—देखिए, मिस्टर सिनहा, ये जो रतनबाबू हैं, मुझसे एक अभिनय करने को कह रहे हैं। या लोग इम्पायर या ग्लोब-थियेटर-हाल भाड़े पर लेना चाहते हैं। इनकी इच्छा है कि शकुन्तला के कुछ प्राचीन काल के दृश्य दिखलाये जायँ। इनका यह भी कहना है कि मुझे इस काम के लिए रेखा को उधार देना होगा। वह शकुन्तला बनेगी। यह सुनकर मेरी तो हँसी ही नहीं रोके रुकती। यह ज़रा-सी लड़की भला कभी शकुन्तला-सी लगेगी ? इसके सिवा मैं उसे तो [illegible] तरह छोड़ नहीं सकती हूँ। परन्तु यह हो सकता है [illegible] यदि वे लोग सचमुच कुछ करना चाहें तो मैं स्वयं य[illegible] साध्य चेष्टा करूँ।

अहीन्द्र इस इशारे का मतलब समझ गया। उ[illegible] कहा—यह तो बिलकुल ठीक बात है। रेखा भला क[illegible] शकुन्तला-सी जान पड़ेगी ? इससे तो अच्छा होगा [illegible] आप स्वयं शकुन्तला बनें। आप यदि सहमत हों तो [illegible] अभिनय के लिए आवश्यक सामग्रियों का प्रबन्ध करूँ। [illegible] ये जो मित्र प्रिंस हैं, एक कुशल चित्रकार हैं। सजाव[illegible] आदि का भार ये ले सकते हैं।

रतन बाबू तथा उनके एक मित्र ने यह बात छेड़ी थ[illegible] उन दोनों को तो अब मुँह तक खोलने का साहस न हुआ [illegible] उन्होंने सोचा कि अहीन्द्र ने तो बड़ी गहरी चाल चली [illegible] इससे पार पाना कठिन है। इसके होते हुए तो यहाँ कि[illegible] प्रकार की आशा ही न करनी चाहिए।

वे लोग तो रेखा को शकुन्तला बनाने के लि[illegible] इतना उत्सुक थे नहीं ! वे रेखा को केवल इसलि[illegible] खींचना चाहते थे कि उसे यदि किसी प्रकार रंगभूमि [illegible] ले आ सकते तो रेखा की माँ के हाथ कुछ रिज़र्व सी[illegible] बिक जातीं।

अहीन्द्र की बात सुनकर मिसेज़ बोस ने कहा—[illegible] बड़ा सुन्दर विचार है। सचमुच मिस्टर सिनहा, कीजि[illegible] न प्रबन्ध। मेरी भी बड़ी इच्छा है। देखो न, यहाँ कित[illegible] मंडलियाँ समय समय पर आती रहती हैं। ये सब सिवि[illegible] लाइन में किराये पर कोई थियेटर हाल लेकर धन औ[illegible] यश दोनों ही अर्जित कर लेती हैं। कोई ऐसी बात तो न[illegible] जान पड़ती कि प्रयत्न करने पर हम लोग इस मामले [illegible] सफल न हो सकेंगे। अहीन्द्र से यह कह चुकने के ब[illegible] मिसेज़ बोस ने निर्मल की ओर ताक कर कहा—आप[illegible] क्या धारणा है प्रिंस ? यदि इस तरह का आयोजन कि[illegible] जाय तो आपको भी अपने दल में सम्मिलित कर लेना [illegible] हम लोगों के लिए सम्भव होगा ?

निर्मल ने बहुत ही स्वाभाविक और उल्लासमय [illegible] में कहा—अवश्य।

बाबू का चेहरा उतर गया। उन्होंने सोचा—न, अब आशा नहीं है।

अहीन्द्र ने उन लोगों की ओर एक बार वक्र दृष्टि से देखकर कहा—अच्छी बात है, मैं कल ही पैकर कम्पनी से एक अच्छी-सी जिल्द बँधी हुई कापी ख़रीद लाऊँगा और उसमें शकुन्तला का पूरा ख़ाका तैयार करूँगा। आप बनेंगी शकुन्तला तो अनसूया और प्रियंवदा कौन बनेगा? इन दोनों का प्रबन्ध भी आप ही को कर लेना होगा। परन्तु सुषमा और सुन्दरता में उन्हें शकुन्तला के अनुकूल सहचरी होना चाहिए। मैं तो समझता हूँ कि रेखा को भरत का पार्ट दिया जाय। भरत के वेश में वह बहुत ही सुन्दर जान पड़ेगी। कमल की तरह मुलायम और आकर्षक उसका मुँह है। घुँघराले बालों की छोटी छोटी और चमकीली लटें मस्तक पर झूल रही हैं। सजधज के साथ जिस समय वह रंगभूमि में आवेगी, जान पड़ेगा कि सचमुच कोई भारतीय राजकुमार आगया है, और वह वन में विचरण कर रहा है। अभिनय तो है। मैं उसे उसका सारा पार्ट सिखा दूँगा। प्रिंस से भी बहुत कुछ सहायता मिल जायगी। परन्तु एक बात है। भला दुष्यन्त कौन बनेगा? दुष्यन्त का ठीक हो जाने पर कण्व मुनि और उनके दो शिष्य रह जायँगे। एक विदूषक भी तो चाहिए! इन सबका भी प्रबन्ध करना होगा।

एक बार निर्मल की ओर कटाक्षपात करके मिसेज़ बोस ने कहा—क्या प्रिंस दुष्यन्त बनने पर सहमत हैं? आप सचमुच बड़े सुन्दर दिखेंगे। इसके अतिरिक्त प्रिंस राजा बनेंगे। हा हा हा—कितना अच्छा होगा यह! आपकी क्या राय है मिस्टर सिनहा?

अहीन्द्र ने कहा—इसमें भी क्या कुछ पूछने की बात है? प्रिंस राजा बनेंगे, ऐसी बात होती ही और किस मण्डली में है।

"इसी लिए तो मैं कह रही हूँ" यह कह कर मिसेज़ बोस फिर हँसने लगीं। उनकी हँसी रुक भी न पाई थी कि एक परम रूपवती तरुणी अपने सौन्दर्य की छटा से उस स्थान को देदीप्यमान करती हुई 'लान' पर आकर खड़ी हो गई। श्रावण के घने काले मेघ के समान उसके केश झूल रहे थे। वह रमणी क्या थी, बिजली की शिखा थी। निर्मल चकितभाव से उसकी ओर ताकने लगा। आकाश की ज्योत्स्ना रमणी की मूर्ति धारण करके मानो भूमण्डल पर उतर आई है और 'लान' पर खड़ी है। उसके मुख-मण्डल पर केवल सुन्दरता की बिजली दौड़ रही थी।

निर्मल की विह्वल दृष्टि की ओर ताक कर मिसेज़ बोस ने कहा—यह मेरी लड़की रेखा है। देखिए तो प्रिंस, भला शकुन्तला बनने पर यह शोभित होगी?

निर्मल न जाने कैसे स्वप्नाभिभूत-सा हो उठा था। वह सोचने लगा—शकुन्तला! यही तो शकुन्तला है! इसी को देखकर तो कालिदास ने लिखा है—

चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्वयोगा
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु

रेखा ने पूछा—शकुन्तला क्या?

मिसेज़ बोस ने उत्तर दिया—कुछ नहीं। तुम बैठो न। आज ये कौन आये हैं, जानती हो? ये हैं प्रिंस चौधरी। ये कोचभूम के प्रिंस हैं। चलो, इन्हें ज़रा-सा गाना सुनाना होगा।

अहीन्द्र की ओर देखकर रेखा ने कहा—किन्तु आपसे मेरी छुट्टी है। आपने मुझसे क्या वादा किया था? आपने कहा था न कि तुम्हें बायस्कोप दिखलाने ले चलूँगा?

अहीन्द्र ने कहा—मिसेज़ बोस ने ही तो कहला भेजा था कि रेखा की तबीयत अच्छी नहीं है।

रेखा ने कहा—मा शायद मेरी अपेक्षा मेरी तबीयत का हाल अधिक जानती हैं।

मन ही मन ज़रा-सा दुःखी होकर अहीन्द्र ने कहा—अच्छा, तो इसके लिए चिन्ता करने की कौन-सी बात है? आज नहीं तो किसी और दिन सही। कहो तो कल ही जगह रिज़र्व कराऊँ।

मिसेज़ बोस ने कुछ कर्कश स्वर से पुकारा—रेखा!

रेखा ने कहा—क्या?

मिसेज़ बोस ने कहा—किसी चीज़ के लिए इस तरह उद्विग्न नहीं होना चाहिए। प्रिंस की तुमने ज़रा भी आवभगत भी न की। यही तुमने सीखा है? चलो, ज़रा दो-एक गाने तो गाओ।

मिसेज़ बोस उठने की चेष्टा कर रही थीं, इतने में रतन ने कहा—आप उठ रही हैं? परन्तु आपसे तो मुझे कुछ बातें करनी थीं। बहुत ज़रूरी बातें हैं। यदि ज़रा-सा समय निकाल कर सुन लेतीं!

अहीन्द्र ने कहा—अच्छा, मैं प्रिंस को लेकर रेखा के साथ-साथ चलता हूँ। आप ज़रा देर के बाद हो आइएगा।

"अच्छी बात है।" कह कर मिसेज़ बोस बैठ गईं। रेखा अहीन्द्र और निर्मल को लेकर कमरे में गई।

कमरा ख़ूब सजा हुआ था। बहुत अच्छे अच्छे कोच और कुर्सियाँ रक्खी थीं। एक कोने में एक पियानो रक्खा था। रेखा पियानो के पास जाकर बैठी। उसने एकाएक उसके नीरव हृदय पर आघात करके एक स्वर जाग्रत कर दिया। उसके हाव-भाव में ऐसी स्वाभाविक चञ्चलता थी कि निर्मल मुग्ध हो गया।

रेखा के सम्बन्ध में उसने अनुभव किया, मानो यह वन का एक पक्षी है। संसार में यह किसी से कोई मतलब नहीं रखती। इसे न तो किसी नियम या क़ानून की चिन्ता है और न यह किसी प्रकार के शिष्टाचार का ही पालन करने की ओर ध्यान देती है। जिस तरह इसका स्वर इतना तेज़ और महीन है, वैसी ही तेज़ी के साथ एक निमेषमात्र में यह मेरे हृदय तक पहुँच गई और उस पर अधिकार कर लिया।

अहीन्द्र ने ज़ोर से निर्मल का हाथ दबाया। उसके कान के पास मुँह ले जाकर उसने कहा—कहो, है न सुन्दरी?

निर्मल ने कहा—भाई, इसकी सुन्दरता के सम्बन्ध में क्या कहना है?

अहीन्द्र ने कहा—प्रेम में तो नहीं पड़ गये हो? प्रथम दर्शन में ही यह हाल है?

कुछ लज्जित होकर निर्मल ने कहा—दुत!

ठीक उसी समय उनकी ओर मुँह करके रेखा ने कहा—किस तरह का गीत गाऊँ? बतलाइए तो।

अहीन्द्र ने कहा—वही गीत गाओ न जिसमें पास आकर बैठने की बात है। वह बड़ा सुन्दर गीत है।

कटाक्ष में एक चञ्चल हँसी मिश्रित करके रेखा ने तुरन्त ही मुँह फेर लिया और वह गाने लगी। गीत के प्रारम्भिक अंश का भाव इस प्रकार था—

वह जब पास आकर बैठा था तब भी तू नहीं जागी। हे हतभागिनी, तुझे कौन-सी नींद घेरे हुए थी।

क्षण ही भर में उस कमरे की एक एक ईंट से वही सुर निकलने लगा। निर्मल की बाह्य चेतना लुप्त हो गई। उसके मन में यही बात आती, तू तो हतभागिनी नहीं है भाई। भाग्यहीन वह है जो तुम्हारे जागने की प्रतीक्षा में बैठा न रह कर यों ही बेवक़ूफ़ की तरह चला गया है। यह हँसी गान और प्रकाश! मनोरञ्जन के इस प्रकार के साधन वर्तमान रहते पर भी ऐसी अतृप्ति! निर्मल का चित्त निराशा से पूर्ण हो गया।

इस सब निरर्थक भावुकता तथा शब्द-जाल के सम्बन्ध में विचार करके बुद्धि को क्लेश देने से लाभ ही क्या है? इससे तो कहीं बढ़कर है इसकी लावण्यमय यौवन-श्री और पुष्प के समान कोमलबाहुलता...। यह तो पात्र है चुपचाप गले से लगाने की, उपभोग करने की! इस सम्बन्ध में किन्तु-परन्तु करना या युक्ति-तर्क ढूँढ़ना व्यर्थ है। अनुमति के लिए मुँह ताकते रहने की भी आवश्यकता नहीं है। नारी का रूप और उसका यौवन तो केवल पुरुष के भोग के ही लिए है। इस काम में यदि सफल न हो सका तो क्या आवश्यकता है निरर्थक एक एक शब्द और एक एक भाव सजा कर बेवक़ूफ़ की तरह कविता लिखने की।

रेखा की कण्ठलहरी क्रमशः एक के बाद दूसरा स्वर बदलने लगी। उसके साथ ही साथ निर्मल के हृदय में अतृप्ति की अग्नि भी धधक उठी। इतने में ही मिसेज़ बोस भी आ पहुँचीं। निर्मल की ओर ताक कर उन्होंने कहा—क्षमा कीजिएगा प्रिंस, मुझे आने में देरी हो गई। इन लोगों ने तो नाक में दम कर रक्खा था। आप लोग आगये। तब सोचा कि शायद अब इन लोगों से पिंड छूट जायगा, तो भी छुटकारा न मिला। उन लोगों का आग्रह तो देखिए। मुझसे कह रहे हैं कि हमारे साथ अभिनय करने के लिए अपनी लड़की को भेज दो।

गाना बन्द करके रेखा ने कहा—अभिनय करने कौन जायगा मा ?

मिसेज़ बोस ने कहा—कोई भी हो। तुम्हें क्या करना है ? तुम हर एक बात में टाँग न अड़ाया करो रेखा। तुम गा रही हो तो अपना गाओ न।

एक गीत और गा चुकने के बाद रेखा उठ खड़ी हुई। उसने कहा—बस, अधिक आनन्द भी अच्छा नहीं है। ठीक है न अहीन्द्र बाबू ? आप कहते हैं कि गाना सुनने से मुझे बड़ा आनन्द आता है, इसी से कह रही हूँ।

अहीन्द्र मुग्ध दृष्टि से रेखा की ओर ताक रहा था। उसने कोई उत्तर नहीं दिया, वह हँसने भर लगा।

रेखा एक सोफ़े पर बैठ गई। मिसेज़ बोस ने कहा—अच्छा, तो यह बताइए कि जो असल बात थी उसके सम्बन्ध में क्या हुआ ? कहीं घूमने चलने की बात थी न ? कर्सियांग या दारजिलिङ्ग ? इस तरफ़ चलना चाहो तो पुरी, उस तरफ़ तो आगरा, दिल्ली......

रेखा ने हँसकर कहा—मक्का, मदीना, नानकिन, कैन्टन।

मा ने कर्कश स्वर से पुकारा—रेखा !

रेखा ने कहा—तुम्हारी बात ही ऐसी थी। तुम तो एक-दम भूगोल की आवृत्ति करने लगीं। यदि चलना ही है तो कोई स्थान निश्चित कर लो। सबेरे कश्मीर चलने को कह रही थीं न ?

मा ने कहा—कश्मीर बहुत दूर है। वहाँ चलना असम्भव है ! बड़ा खर्च पड़ेगा। उतनी दूर चलने की ज़रूरत नहीं है। यहीं आस-पास कलकत्ते के बाहर कहीं चला जाय तो ठीक है।

रेखा ने कहा—तो चलिए अहीन्द्र बाबू, बरानगर या डायमंड हार्बर चलें। यह बात कहकर वह निर्मल की ओर ताकने लगी। निर्मल की दोनों ही आँखें उस समय भी मुग्ध भाव से उसी की ओर लगी थीं। वे उसकी रूप-माधुरी का अशेष भाव से पान कर रही थीं।

इस सम्बन्ध में बड़ी देर तक तर्क-वितर्क होता रहा। अन्त में बात तय हो गई। सोदपुर में निर्मल का एक बग़ीचा है, उसमें एक बँगला है। वह गङ्गा जी के ठीक कगार पर ही है। वहीं चलकर दो-एक सप्ताह व्यतीत किया जाय।

मिसेज़ बोस ने कहा—किन्तु प्रिन्स, आपको भी चलना चाहिए। केवल चलने से ही काम न चलेगा। वहाँ दस-पाँच दिन रहें। सब लोग एक साथ ही मिल-जुल कर रहें, तभी तो आनन्द आवेगा। ठीक है न ?

एक धीमी साँस लेकर निर्मल ने कहा—इसमें कौन-सी बात है ? यही सही।

मिसेज़ बोस ने कहा—तो यह बात पक्की रही। है न ?

निर्मल ने कहा—पक्की ही है।

बात जब पक्की हो गई तब रेखा झटपट उठी और अहीन्द्र जिस कोच पर बैठा था, उसी के हत्थे पर जाकर बैठ गई। अहीन्द्र के दोनों हाथ ज़ोर से पकड़कर रेखा ने बड़े आग्रह का भाव प्रदर्शित करते हुए कहा—किन्तु आपको बहुत-सी किताबें ले चलनी होंगी। काव्य, उपन्यास, नाटक आदि सब तरह की किताबें ले चलिएगा। ले चलिएगा न? यदि न ले चल सकेंगे तो मैं आपको पागल कर दूँगी।

अहीन्द्र ने रेखा का हाथ अपने हाथ में ले लिया। उसी तरह मुग्धभाव से उसकी ओर ताक कर उसने कहा—अच्छी बात है।

निर्मल सभी की ओर ध्यानपूर्वक देख रहा था। उसने मन ही मन कहा—वाह, अहीन्द्र ने कैसा जमा रक्खा है! परन्तु रेखा भी निरी भोली ही है। छुटपन में खेलने-कूदने के समय उसमें जो चञ्चलता थी वह आज भी बनी है, उसका मन आज भी उससे आगे नहीं बढ़ सका, मानो वह हिंडोले पर लेटी हुई अपने ही आनन्द में मग्न है। उसकी इच्छा के अनुकूल चलना क्या सम्भव है ? न, यह तो हँसी की बात है।

निर्मल के मन में रेखा के प्रति एक अवज्ञा का भाव जाग्रत हो उठा। उसके बाद ही उसने मिसेज़ बोस की ओर देखा। वह सोचने लगा, अवस्था कुछ अधिक हो गई है ! परन्तु इससे क्या ? इतनी अधिक अवस्था हो जाने पर भी अपनी सुन्दरता को पकड़कर बाँध रखने के लिए वह कितनी चेष्टा, कितना प्रयत्न करती है। इस समय भी इस रूप को स्थायी रखने का उसे इतना मोह है।

कवि और छाँवे

लेखक, श्रीयुत बालकृष्ण राव



श्रीयुत बालकृष्ण राव 'लीडर' के प्रसिद्ध सम्पादक श्रीयुत सी० वाई० चिन्तामणि जी के योग्य पुत्र हैं। तेलगू-भाषा-भाषी होते हुए भी इनका हिन्दी से विशेष अनुराग ही नहीं है, किन्तु ये हिन्दी के एक होनहार कवि भी हैं। इनकी जो कविता यहाँ छपी है वह एक उत्कृष्ट रचना है। आशा है, इससे कविताप्रेमियों का यथेष्ट मनोरञ्जन होगा।

विजन विपिन था, नीरव खग-मृग, निश्चल तरु थे;
तैर रहे थे मेघ व्योम में मन्थर गति से।
कलिका के कम्पित, सस्मित, सुरभित अधरों को
मन्द पवन पल्लव-शय्या पर चूम रहा था।

अरुण नयन थे अति, प्राची के, तरुण भानु था;
करुण, कान्तिहत, क्षीण प्रभा थी राकापति की।
विमल सरोवर के जल पर, शत-शत रवि-किरणें
खेल रही थीं, द्रवित स्वर्ण-सा उसे बनाकर।

वहीं, सरोवर के तट पर ही, था अशोक-तरु—
पल्लव-दल से लदी एक शाखा झुक झुककर
अपना ही प्रतिबिम्ब प्रेम से देख रही थी।

नव-जागृति की ज्योति लिये, किरणें द्रुत गति से,
किसलय, पल्लव, शाखा के आवरण हटाकर,
प्रकृति देवि के तरु-मन्दिर के अन्तःपुर में
सजनि, कर रही थीं प्रवेश कम्पित चरणों से।

छन छनकर, मृदु ज्योति लिये, ज्वाला को तजकर,
किरणें बढ़ीं समुत्सुक, तम की छटा देखने;
पर उनकी पद-ध्वनि सुनते ही, भय से कातर
तम विलीन हो गया शून्य में तीव्र वेग से,—
केवल कुछ पद-चिह्न रह गये छाया बनकर।

विजय-गर्व से तरु के चारों ओर फैलकर
किरणों ने भर दिया प्रकाश विमल, कण कण में;
दीप्त हो उठा निखिल वनान्तर मृदु आभा से;
चमक उठा शुचि शिलाखण्ड नव धवल ज्योति से,
तरुतल के सन्निकट तमावृत जो रक्खा था।

निविड़ निशा के अन्धगर्भ से स्वयं निकलकर,
चिर-अमृत सौन्दर्य-राशि मानो अनन्त की.
किसी अलौकिक अभिलाषा से प्रेरित होकर—
झट सीमित, जीवित, सदेह बनने को मानो—
व्याप्त हो गई शिलाखण्ड में सहसा आकर।

विस्मित नयनों से वन के खग-मृग ने देखा,
वन-देवी ही स्वयं विमल प्रस्तर-प्रतिमा बन—
मानो अपने प्रजावर्ग को दर्शन देने—
इस प्राचीन अशोक-वृक्ष के नीचे आकर,
कण-कण से अपना विस्तृत वैभव समेटकर
खड़ी हो गई बालारुण की स्निग्ध ज्योति में।

पुलकित होकर मन्द पवन ने चँवर डुलाया;
विहग वन्दना करने लगे मधुर कलरव कर;
भक्ति, प्रेम के भावों से भर, तरु ने झुक कर
चरणों पर बिखेर दी अञ्जलि पल्लवदल की।

किरणों ने मोहित हो प्रतिमा के अंगों को
अपने अद्भुत स्पर्शों से भर दिया कान्ति से।
स्वयं सजाकर लगीं देखने जब वे सुख से,
सुध-बुध खोकर तब सहसा प्रेमातिरेक से
लगीं चूमने प्रतिमा के शीतल अधरों को;
दीप्त हो उठे तब, सहसा वे मधुर हास से॥

वहीं निकट ही शिल्पकार भी स्वयं खड़ा था;
काँप रहे थे चरण, किन्तु अपलक नयनों से
देख रहा था वह अपने श्रम के प्रसाद को।

वह कवि था, प्रेमी था सुमनों का, विहगों का;
प्रकृति उपास्य देवि थी उसकी, वन मन्दिर था।
पवन उसे शुचि स्नेह-स्पर्श से शीतल करता;
भरकर मन में सुरभि-सुधा की मादक धारा,
सरस सुमन सुख से अचेत सा कर देते थे।
भर आते थे नयन, भक्ति से, कृतज्ञता से॥

पर ये अद्भुत भाव हृदय में ही रह रहकर
कर देते थे विकल कल्पनाओं से कवि को;
पल पल पर बनते-मिटते रहते थे सपने॥

इन असंख्य आकांक्षाओं की अद्भुत धारा
उमड़ पड़ी बस कवि के मन से अवसर पाकर;
गूँज उठा वन, सुना स्तब्ध होकर खग-मृग ने,
कवि कहता था "वनदेवी! मैं जब तक तेरी
बना न लूँ अपने हाथों से प्रस्तर-प्रतिमा,
पवन स्पर्श कर सके न मुझको, सुमन सूखकर
बदल जायँ काँटों में, मेरे दृष्टिपात से।

विहग मूक हो जायें जब मैं वन में आऊँ;
पशु मेरी पद-ध्वनि सुनकर भय से छिप जावें॥"

तब से अथक परिश्रम करके कवि निशिवासर
पूर्ण कर सका था सन्ध्या को अपनी कविता;
उसी समय आगई निशा आतुर चरणों से।

पीछे हटा, पूर्ण कर जब कवि उसे देखने,
देखा रजनी ने तब तक चुपके से आकर,
तम के अञ्चल में प्रतिमा को छिपा लिया था।

विकल प्रतीक्षा में प्रभात की, तारे गिनकर,
खड़े खड़े ही कवि ने सारी रात बिता दी;—
अब खग-मृग के साथ स्वयं अपनी ही कृति को
कवि आश्चर्य-भरे नयनों से देख रहा था।
काँप रहे थे चरण; अधर भी काँप रहे थे;
काँप रही थीं कोमल किसलय-दल सी पलकें;
बिखरे, काले केश, पवन के आघातों से,
दूर्वा-दल से लहर लहरकर काँप रहे थे।
जाने कब तक इसी भाँति कवि वहाँ खड़ा था;—
विहग और पशु भी स्थिर होकर रहे देखते॥

अधिक वेग से काँप उठा सहसा कवि का तन;
आगे बढ़ा सवेग एक पग, किन्तु ठिठककर
खड़ा रह गया; काँप उठे तरु अविदित भय से।

चमक उठा सहसा कवि का मुख तीव्र ज्योति से;
"देवि! देवि!" की ध्वनि से सहसा गूँज उठा वन।
कवि अचेत हो गिरा वहीं प्रतिमा के पद पर—
नयन बन्द थे, बद्ध प्रणति-अञ्जलि में कर थे॥

× × ×

एकत्रित हो मेघ छा गये तरु-शिखरों पर;
सूर्य वेग से मध्य गगन पर चढ़ आया था॥

नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथा समय प्रकाशित होंगे।]

१—हस्तसञ्जीवनम् (टीका-सहित संस्कृत)—संशोधक और प्रकाशक, श्रीयुत गणेशदत्त ज्योतिषी, पियरी कलाँ, काशी हैं।

२—कांकली—रचयिता, पं० जानकीवल्लभ ललित-ललाम शास्त्री, साहित्याचार्य; प्रकाशक, साहित्य-निकुञ्ज, मैगरा, (गया) हैं और मूल्य ।=) है।

३—हिन्दू विधवा या सती गौरव (उपन्यास)—लेखक, श्री के० सी० चटर्जी, प्रकाशक, आदर्श प्रेस, केसरगंज, अजमेर हैं और मूल्य १) है।

४—बाइसवीं सदी—लेखक, श्री राहुल सांकृत्यायन, प्रकाशक, साहित्य-सेवक-संघ, छपरा, हैं और मूल्य १) है।

५—नर-भक्षी बकासुर या बाल-विवाह—अनुवादक, डा० धनीराम प्रेम, एम० आर० सी० एस०, प्रकाशक, रतन-पब्लिशिंग-हाउस, बम्बई नं० १४ है और मूल्य ॥) है।

६-८—हिन्दी-भवन, लाहौर की प्रकाशित तीन पुस्तकें

(१) मीरा पदावली (पद्य)—सम्पादिका, श्रीमती विष्णुकुमारी श्रीवास्तव, हिन्दीप्रभाकर, और मूल्य १) है।

(२) पंखुड़ियाँ—लेखक, श्री पृथ्वीनाथ शर्मा, बी० ए०, एल-एल० बी०; और मूल्य १) है।

(३) सदाचार शिष्टाचार और स्वास्थ्य—लेखक, श्री माईदयाल जैन, बी० ए०, बी० टी०, और मूल्य ।=) है।

९-१४—श्री बुद्धदेव विद्यालङ्कार-द्वारा लिखित, गुरुदत्त-भवन, लाहौर से प्रकाशित ६ पुस्तकें

(१) शतपथ, एक पथ—मूल्य ।) है।
(२) स्वर्ग—मूल्य ।=) है।
(३) सोम।
(४) अथ ब्रह्मयज्ञ:—मूल्य ।=) है।
(५) अथ मरुत्सूक्तम्—मूल्य ।) है।
(६) शतपथ ब्राह्मण का भाष्य—मूल्य ? है।

१५—सदुपदेशसंग्रह—संकलयिता, श्री रामनारायण मिश्र, प्रकाशक, साहित्य-सागर-कार्यालय, सुइथाकलाँ, जौनपुर हैं और मूल्य ।=) है।

१६-२०—श्री संपतलाल लूणावत लिखित, श्री सम्भवनाथ जैन पुस्तकालय, ठि० निहाल धर्मशाला, सरदारपुरा, फलोदी (मारवाड़) से प्रकाशित ५ पुस्तकें

(१) महासुन्दरी—मूल्य ॥) है।
(२) धर्म-दृढ़ सती सुलसा—मूल्य ।) है।
(३) महासती मृगावती—मूल्य ≋) है।
(४) संक्षिप्त पद्यमय महावीर-जीवन—मूल्य)॥। है।
(५) श्री जैन-नित्य-स्मरण-माला—मूल्य -) है।

२१—प्रवासियों की सद्भावना—सम्पादक, प्रकाशक, श्री रामचन्द्र शर्मा कीर्तन-विशारद, मंडावर (बिजनौर) यू० पी० और मूल्य 'सदुपयोग' है।

२२—विद्यार्थी-सहचर—लेखक, श्री जगतनारायण, बी० एस-सी०, प्रकाशक, डायमण्ड जुबिली, थियोसोफिकल पब्लिशिङ्ग हाउस पटना हैं और मूल्य =)॥ है।

२३—तरंगिणी की कुछ तरंगें—लेखक, श्री किशोरीदास वाजपेयी, प्रकाशक, विकास प्रिंटिंग वर्क्स, अम्बाला रोड, सहारनपुर हैं।

२४—सरल हिन्दी संध्या—सम्पादक, पं० गंगाराम ऊथाना 'विशारद' मंत्री, संध्या-प्रचारिणी सभा, नसीराबाद (राजस्थान) हैं और मूल्य)॥ है।

२५—आदर्श चरित्र-संग्रह (गुजराती)—प्रकाशक,

सस्ता-साहित्य-वर्द्धक कार्यालय, अहमदाबाद और मूल्य १॥) है।

२६—रामायणनी-रत्नप्रभा गुजराती—लेखक, श्री रत्नीलाल, हरिजीवनदास पटेल, प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-वर्द्धक कार्यालय, अहमदाबाद और मूल्य 'सदाचार' है।

२७—श्रेय श्रीमद्भागवतांक—सम्पादक, आचार्य श्री बालकृष्ण गोस्वामी, श्री इन्द्र ब्रह्मचारी, प्रकाशक, श्री वृन्दावन भजनाश्रम है और इस अंक का मूल्य १॥≈) है।

२८—श्री काशी विद्यापीठ पञ्चाङ्ग १९८६ से ९१ तक—प्रकाशक, श्री वीरबलसिंह पीठस्थविर, काशी विद्यापीठ, है।

१—श्री सिद्ध-हेमचन्द्र-व्याकरणम् (संस्कृत)—ग्रन्थकार कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य, प्रकाशक—श्री सेठ आनन्द जी कल्याण जी, ज़वेरीवाद, अहमदाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या ६२३ और मूल्य साढ़े चार रुपया है।

विक्रम की १२ वीं शताब्दी में चालुक्य-वंशी महाराज सिद्धराज जयसिंह ने मालव-नरेश यशोवर्मा को जीतकर बड़ी धूमधाम से अपनी राजधानी पाटण नामक नगर में प्रवेश किया था। विजयश्री से गौरवान्वित महाराज सिद्धराज जयसिंह के लौटने पर नगरवासियों तथा तत्कालीन अनेक विद्वानों ने विजय-प्रशस्तियों-द्वारा उनका स्वागत किया था। इन विद्वानों में प्रमुख थे परम विद्वान् जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र जी। अपनी कीर्ति को चिरस्थायी बनाने की लालसा से महाराज सिद्धराज ने श्री हेमचन्द्राचार्य से एक नूतन व्याकरण की रचना के लिए प्रार्थना की। तदनुसार आचार्य ने प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की और अपने संरक्षक महाराज तथा अपने नाम के अनुसार ही ग्रन्थ का नाम 'सिद्ध-हेमचन्द्र-व्याकरण' रक्खा।

इस ग्रन्थ की रचना पूर्ववर्ती प्रचलित अनेक व्याकरणों के आधार पर की गई है। इसमें प्रथम सात अध्यायों में संस्कृत-भाषा के व्याकरण तथा अष्टम अध्याय में प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका पैशाची, तथा अपभ्रंश नामक छः भाषाओं के व्याकरणों का सन्निवेश करके यह ग्रन्थ सर्वांगपूर्ण बनाया गया है।

समालोच्य पुस्तक में केवल संस्कृत व्याकरणात्मक सात अध्यायों को ही स्थान दिया गया है। प्राकृत भाषाओं का व्याकरण-भाग, अष्टम अध्याय, अन्य लोगों के द्वारा सुसम्पादित तथा मुद्रित एवं सुलभ होने के कारण इस पुस्तक में सन्निविष्ट नहीं किया गया है।

इस ग्रन्थ का सम्पादन श्रीयुत मुनि हिमांशु विजय न्याय-काव्य-तीर्थ ने सुचारु रूप में तथा परिश्रम से किया है। भूमिका में ग्रन्थकार तथा उनकी अन्य कृतियों का संक्षिप्त परिचय भी दे दिया गया है। इसके अतिरिक्त अकारादि क्रम से सूत्रों की सूची, पाठभेद, विशिष्ट शब्द-कोश आदि, परिशिष्ट तथा सूत्रों पर श्री हेमचन्द्राचार्यकृत 'लघुवृत्ति' नामक सरल टीका एवं संपादककृत 'बाल-टिप्पणम्' नामक उपयोगी टिप्पणियों का समावेश करके पुस्तक को विद्यार्थियों एवं व्याकरणज्ञों के लिए उपयोगी तथा सर्वाङ्गपूर्ण बना दिया है। पुस्तक की छपाई शुद्ध तथा सुन्दर है। भूमिका में "उज्जयिनी-ग्रन्थभाण्डागारत आगत पुस्तकेष्वन्यतमं भोजेन राजा कृतं 'सरस्वतीकण्ठाभरणं' व्याकरणम् (?) एकदा सिद्धराजो ददर्श" इत्यादि लेख में 'सरस्वतीकण्ठाभरणम्' नामक भोजकृत ग्रन्थ को व्याकरण का ग्रन्थ बतलाया गया है, जो ठीक नहीं है। उक्त ग्रन्थ अलंकार का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है—व्याकरण का नहीं। हाँ, भोजकृत 'शब्दानुशासनम्' नामक व्याकरण-ग्रन्थ का उल्लेख अवश्य संस्कृत के सुविख्यात सूचीपत्र 'Catalogus Catalogarum'' में मिलता है। संभव है, राजा सिद्धराज ने भोज के व्याकरण को देखकर ही नूतन व्याकरण की रचना करने के लिए जैनाचार्य को कहा हो। प्रस्तुत पुस्तक का सम्पादन इतने परिश्रम तथा सुचारुरूप से किया गया है कि परीक्षार्थी विद्यार्थियों तथा विद्वानों के लिए यह परम संग्रहणीय हो गया है। संस्कृत-पुस्कालयों में भी इसकी एक एक प्रति का संग्रह होना वाञ्छनीय है। प्रकाशक तथा सम्पादक दोनों ही ग्रन्थ के ऐसे सुन्दर संस्करण को जनता के लिए सुलभ कर देने के लिए धन्यवाद के पात्र हैं।

२—प्रियप्रवास की समालोचना तथा टीका—लेखक, साहित्यरत्न बाबू केदारनाथ गुप्त बी० ए० तथा पंडित लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी हैं, प्रकाशक, विश्व-विद्यालय-परीक्षा—बुकडिपो, पानदरीबा, इलाहाबाद हैं। मूल्य ।≈) है।

'प्रियप्रवास' कविवर पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय जी का एक महाकाव्य है। यह ग्रन्थ संस्कृत के वर्णिक वृत्तों तथा संस्कृत-बहुल खड़ी बोली में लिखा होने के कारण हिन्दी की विभिन्न परीक्षाओं में बैठनेवाले विद्यार्थियों के लिए कठिन है। इसी बात को ध्यान में रख कर उक्त लेखकों ने इस पुस्तक की रचना की है। इसमें ग्रन्थकार का सामान्य परिचय तथा 'प्रियप्रवास' की विशद और विवेचनात्मक समालोचना की गई है, जिससे ग्रन्थ की विशेषताओं, त्रुटियों और चरित्र एवं प्रकृति-चित्रण-सम्बन्धी अनेक बातों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। अन्त में संस्कृत के कठिन शब्दों के अर्थ दे दिये गये हैं। यह पुस्तक विद्यार्थियों तथा परीक्षार्थियों के काम की है।

३—शरीर और व्यायाम—लेखक पंडित गणेशदत्त शर्मा गौड़, प्रकाशक, चाँद-प्रेस लिमिटेड, चन्द्रलोक, इलाहाबाद हैं। मूल्य २) है।

गत कुछ वर्षों से जनता का, विशेषकर विद्यार्थी-समाज का ध्यान शरीर-रक्षा एवं व्यायाम की ओर गया है। देश के लिए यह शुभ लक्षण है। व्यायाम-द्वारा शरीर को पुष्ट और जीवनोपयोगी बनाने के लिए अँगरेज़ी तथा हिन्दी में विभिन्न पद्धतियों की श्रेष्ठता को प्रमाणित करनेवाले अनेक ग्रन्थ निकल रहे हैं। कभी कभी तो इन ग्रन्थों में व्यायाम-विशेषज्ञों-द्वारा वर्णित इन पद्धतियों में इतना पारस्परिक विरोध पाया जाता है कि बेचारे नूतन व्यायाम-शिक्षार्थी के लिए यह निर्णय करना कि वह किस पद्धति को ग्रहण करे, कठिन हो जाता है। भोजन के समान व्यायाम भी प्रत्येक व्यक्ति की शक्ति, शरीर-गठन तथा दैनिक जीवन के अनुसार ही निर्धारित होना चाहिए। इस निर्णय के लिए दूसरों के अध्ययन की अपेक्षा उनके अनुभव ही अधिक उत्तम मार्ग-दर्शक तथा उपयोगी हो सकते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक भी एक ऐसे व्यायामज्ञ-द्वारा लिखी गई है, जो व्यायाम के स्वयं प्रेमी हैं। इसमें लेखक ने शरीर के प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्ग की रचना का तथा उनके कार्यों, उपयोगों और विभिन्न शक्तियों का प्राच्य और पाश्चात्य शरीर-विज्ञान के आधार पर विशद वर्णन किया है।

शरीर के विभिन्न अङ्गों को आरोग्य और सशक्त रखने के लिए हमें क्या करना चाहिए तथा क्या न करना चाहिए, यह भी संक्षेप में इसमें समझाया गया है। लेखक ने अपने ही देश की परीक्षित तथा प्रामाणिक हठ-योगासन-पद्धति को ग्रन्थ में स्थान देकर इसे उत्तम बना दिया है। इन आसनों तथा मुद्राओं को किस प्रकार किस क्रम से करना चाहिए तथा इनके करने से शरीर के किस-किस अवयव पर क्या क्या प्रभाव पड़ता है, इत्यादि बातें लेखक ने विस्तार से तथा चित्रों-द्वारा स्पष्टरूप से समझा दी हैं। भाषा सरल तथा शैली रोचक है। व्यायाम के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक विशेष रूप से उपयोगी है।

४—गुप्त-गायन—लेखक, मास्टर विश्वनाथ गुप्त, प्रकाशक, गुप्त संगीतालय, ३९११, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता हैं। मूल्य ।≈) है।

यह पुस्तक चलते तर्ज़ पर लिखे गये थियेट्रिकल गानों का संग्रहमात्र है। जिन नाटकों में ये गाने गाये गये हैं उनका नाम प्रत्येक गान के साथ दे दिया गया है। अन्त में कुछ भजनों की 'स्वर-लिपि' दे दी गई है। पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर गानों के साथ-साथ नाना वस्तुओं के विज्ञापन भी छपे हैं। इस प्रकार गानों और विज्ञापनों का यह सूचीपत्र थियेट्रिकल गानों के शौक़ीनों के लिए विशेष रोचक हो सकता है।

५—बुद्ध-वाणी—लेखक, श्रीयुत वियोगीहरि, प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-मण्डल, दिल्ली हैं। मूल्य १।≈) है।

भगवान् बुद्ध की अमर शिक्षाओं ने विश्व में जिस प्रकार उनके समय में धर्म-जिज्ञासुओं और आत्म-चिन्तक व्यक्तियों को अपनी ओर आकृष्ट किया और शान्ति प्रदान की थी, उसी प्रकार आज भी वे शिक्षायें अशान्त विश्व को अपनी ओर खींच रही हैं। लेखक ने धम्मपद, सुत्तनिपात, बुद्ध-चर्य्या, मज्झिमनिकाय आदि बौद्धग्रन्थों के स्वाध्याय के समय हृदय को प्रिय लगनेवाले जिन

कल्याणकर उपदेशों और वाणियों का संग्रह किया था, प्रस्तुत पुस्तक उसी का परिणाम है। इसके पाठ से आत्म-जिज्ञासु तथा धर्म-पिपासु जन अनेक शिक्षायें तथा आत्म-चिन्तन-सम्बन्धी निर्देश पा सकते हैं। सरल और सुन्दर भाषा में लिखी इस पुस्तक के पाठ से बौद्ध-साहित्य के अध्ययन के लिए स्फूर्ति प्राप्त होती है। पुस्तक उपादेय और संग्रहणीय है।

६—**वीरपाठावली**—लेखक, श्रीयुत कामताप्रसाद जैन, प्रकाशक, दिगम्बर-जैन-पुस्तकालय, कापड़ियाभवन, सूरत हैं। मूल्य ।।।) है।

इस पुस्तक में लेखक ने नवह कहानियों तथा लेखों को संकलित किया है। जैन बालकों को धर्मवीर बनाने और उनमें वीरभाव का संचार करने के उद्देश से यह संग्रह किया गया है।

कहानियाँ रोचक तथा जैन-धर्म के प्रवर्त्तकों और जैन-आचार्यों के महत्त्व को प्रकट करनेवाली हैं। इस पुस्तक के पाठ से जैनेतर सज्जन भी अनेक ऐसी बातों का परिचय प्राप्त कर सकते हैं जो जैन-धर्म के महत्त्व-प्रदर्शन के लिए जैन-ग्रन्थों में वर्णित हैं। राजा दशरथ का जैन-धर्मावलम्बी होना, सीता की मन्दोदरी के गर्भ से उत्पत्ति आदि अनोखी बातें इसके उदाहरण हैं। लेखक ने जैन होने के कारण अपनी टिप्पणी में भगवान् राम को भी जैन सिद्ध करने का प्रयत्न किया है तथा केवल 'श्रमण' शब्द के आधार पर वाल्मीकीय रामायण में जैन-धर्म का पाया जाना लिखा है, जो उनके धार्मिक पक्षपात का ही सूचक है, ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य के अनुसन्धान करने की प्रवृत्ति का नहीं।

पुस्तक की भाषा सरल तथा सुबोध है, परन्तु 'योग माड़कर', 'स्वीकारता दे दी' आदि प्रयोग कानों को खटकते हैं।

७—**संकीर्त्तन-सुधा**—प्रकाशक, संकीर्त्तन-कार्यालय, मेरठ हैं। मूल्य ।) है।

इस पुस्तक में भगवन्नाम-संकीर्त्तन के लिए उपयोगी पदों, चरणों तथा भजनों का संग्रह किया गया है। संग्रह करने में संग्रहकर्त्ता ने जनता की सुरुचि और कुरुचि का ध्यान नहीं रक्खा है। जहाँ एक ओर सूर, मीरा आदि के उच्च कोटि के भक्ति-रस-पूर्ण पदों का संग्रह है, वहाँ दूसरी ओर 'होली' और लिलहारी-लीला के बाज़ारू निकृष्ट पदों को भी इसमें स्थान दिया गया है। भक्ति तथा सात्त्विक भावों के प्रचार की दृष्टि से ऐसा करना हम अवाञ्छनीय समझते हैं। काग़ज़ और छपाई साधारण है।

८—**बुन्देल-वैभव पहला भाग**—(काव्य ग्रन्थ)—लेखक, श्रीयुत गौरीशंकर द्विवेदी, प्रकाशक, 'बुन्देल-वैभव', टीकमगढ़ हैं। पृष्ठ-संख्या २६५ और मूल्य ३) है।

इस ग्रन्थ में बुन्देलखण्ड के हिन्दी के ४० कवियों का संक्षिप्त परिचय तथा उदाहरण के रूप में उनके पद्यों का संकलन किया गया है। ग्रन्थ के प्रारम्भिक ११२ पृष्ठों में प्राक्कथन, भूमिका, हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति का संक्षिप्त इतिहास, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त परिचय, आदि का वर्णन हुआ है। जिसका अधिकांश ऐसे ग्रन्थ के अनुरूप नहीं है।

कवियों की जाति, उत्पत्तिस्थान आदि विषयों में मत-भेद होना स्वाभाविक है, किन्तु यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि लेखक ने इस पुस्तक को लिख कर एक प्रशंसनीय और अनुकरणीय कार्य किया है। हिन्दी-साहित्य के कितने सुकवियों तथा ग्रन्थकारों की कृतियाँ और नाम केवल हमारी निन्दनीय अकर्मण्यता और साहित्यिक उपेक्षा से विलुप्त हुए जा रहे हैं, तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी के ग्रन्थों की खोज तथा उसके आचार-विचार, एवं इतिहास पर प्रकाश डालनेवाले ग्राम्य-गीत, कहावत आदि अलिखित जन-साहित्य के संग्रह का कितना काम अभी तक अधूरा और उपेक्षित पड़ा है। हमें आशा है कि श्रीयुत द्विवेदी जी की भाँति अन्य साहित्यिक अपने अपने क्षेत्र में साहित्यिक खोज और संग्रह की स्फूर्ति इस पुस्तक से प्राप्त करेंगे।

पुस्तक सुन्दर काग़ज़ और आकार में छापी गई है। आशा है, 'बुन्देल-वैभव' के अन्य भाग भी शीघ्र शीघ्र प्रकाशित होंगे।

९—**प्रेम-दर्शन**—संपादक, श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार, प्रकाशक, गीता-प्रेस, गोरखपुर हैं। पृष्ठ-संख्या १७९ और मूल्य ।=) है।

परम भागवत देवर्षि नारद-कृत भक्ति-सूत्र आध्यात्मिक-साहित्य की विशेष विभूति हैं। उन्हीं सूत्रों की श्रीयुत पोद्दार जी ने हिन्दी में सरल तथा सुबोध हिन्दी-व्याख्या लिखी है। सूत्रों के भावों को विशद और स्पष्ट रूप से हृदयंगम कराने के लिए लेखक ने श्रीमद्भागवत, रामायण, सूरसागर तथा उपनिषद् के विषयोपयोगी उद्धरण देकर ग्रन्थ को और भी उपयोगी बना दिया है। पुस्तक ३ सुन्दर चित्रों से शोभित, शुद्ध और स्वच्छ छापी गई है। आध्यात्मिक साहित्य के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक मनन करने योग्य है।

१०—**दि स्टोरी आफ़ नोबुल प्राइज़ विनर्स इन लिटरेचर (अँगरेज़ी)**—लेखक, श्रीयुत ए० के० सेन, प्रकाशक, ईस्टर्न पब्लिशर्स, इलाहाबाद हैं। मूल्य २॥) है।

इसमें विश्व-साहित्य के 'नोबेल-प्राइज़' प्राप्त साहित्यिक महारथियों का संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त तथा उनकी पुस्तकों की तालिका दी गई है। इस पुस्तक के लेखक ने 'कलकत्ता रिव्यू,' 'पायोनियर' आदि अनेक पत्रिकाओं, विश्वकोश, तथा अन्य साधनों की सहायता से लिखा है।

पुस्तक के प्रारम्भ में 'नोबेल-प्राइज़' के प्रतिष्ठाता श्री अल्फ्रेड नोबेल का जीवन-वृत्तान्त, पुरस्कार के देने के समय की विधि, नोबेल-प्राइज़ के लिए प्रार्थना-पत्र देने के नियम आदि साधारणतया अनेक ज्ञातव्य बातों के समावेश होने के कारण इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है। प्रत्येक पुरस्कार-प्राप्त लेखक को जिन गुणों से पुरस्कार दिया गया है उनका पता उन निर्णयों के द्वारा जो इस पुस्तक में ज्यों-के-त्यों उद्धृत कर दिये हैं, स्पष्ट रूप से लग जाता है। विश्व-साहित्य के इन महारथियों तथा इनकी कृतियों का परिचय प्राप्त करने के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। लेखक ने पुस्तक के उद्धरणों तथा अपनी मनोरंजक शैली-द्वारा ज्ञातव्य विषयों को सुचारु क्रम में रखने में अच्छी सफलता प्राप्त की है। पुस्तक संग्रह करने योग्य है।

११—**धर्म और जातीयता**—लेखक, श्रीयुत योगिराज अरविन्द घोष, अनुवादक श्री देवनारायण द्विवेदी हैं। पता—हिन्दी पुस्तकालय, बनारस सीटी है। मूल्य १) है।

महामनीषी श्री अरविन्द के विचार-पूर्ण प्रौढ़ निबन्धों का हिन्दी-अनुवाद करके लेखक ने हिन्दी-भाषाभाषियों के लिए उन्हें इस पुतक के रूप में सुलभ कर दिया है। गीता, उपनिषद्, पुराण, साकार-निराकार, हमारी आशा, प्राच्य और पाश्चात्य, तथा भारतीय चित्रविद्या नामक निबन्धों की ओर हम हिन्दी-पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं। धर्म और जातीयता पर इतने प्रौढ़ और विचारोत्तेजक निबन्धों को पढ़कर अपने देश की सभ्यता, कला तथा संस्कृति के प्रति आपके हृदय में आदर तथा श्रद्धा के भाव उत्पन्न होंगे। अनुवादक महोदय अनुवाद-कार्य में पर्याप्त सफल हुए हैं। जहाँ किन्हीं पदों का उपयुक्त भाषान्तर नहीं हो पाया है वहाँ ज्यों के त्यों अँगरेज़ी पदों को रखकर उचित ही कि[या] है। मूल भावों की इसमें रक्षा ही हुई है। प्रत्येक भारती[य] को, विशेषकर नवयुवकों को इन निबन्धों का मनन कर[ना] चाहिए। पुस्तक उपयोगी तथा प्रचुर प्रचार के योग्य है।

१२—**वेदान्त या आत्म-विचार**—लेखक, रा[जा] बलदेवदास बिरला, प्रकाशक, ज्ञानमण्डल-यंत्राल[य], काशी हैं।

इस पुस्तक के प्रणेता राजा साहब ने व्यासकृत वेदा[न्त] सूत्रों पर प्रचलित भाष्यकारों के मार्ग का अनुसरण न कर उनका स्वतंत्र रूप से जो मनन और स्वाध्याय किया है उ[स] का परिणाम यह ग्रन्थ है। सूत्रों के 'शास्त्र,' 'वेद' आ[दि] शब्दों के प्रसिद्ध अर्थों को छोड़कर व्युत्पत्ति-निमित्त अर्थों-द्वारा उन पदों को अपने विचारानुकूल बना लि[या] है। 'शास्त्र' का अर्थ 'श्रुति' या ऋग्वेदादि न कर 'शास्यते ज्ञायते एभिः' इस व्युत्पत्ति के द्वारा मन-स[हित] पाँच इन्द्रियों को 'शास्त्र' माना है। 'वेद' का अर्थ वह ज्ञान किया गया है जो अनुभव से अपने हृदय [में] उत्पन्न होता है। श्री शंकराचार्य ने उपनिषदों में आ[ये] हुए 'प्राण,' 'आकाश' आदि पदों को ब्रह्मपरक सि[द्ध] करने के लिए भी सूत्रों का व्याख्यान किया है। पर[न्तु] श्रीयुत बिरला जी ने सूत्रों के अपनी स्वतंत्र उद्भाव[ना] से जो अर्थ किये हैं उनसे प्रतिपाद्य वस्तु की पुनरुक्ति [हो] जाती है। यद्यपि वेदान्त के सिद्धान्त से लेखक के विच[ारों] का समन्वय किया जा सकता है, तथापि वेदान्त-सूत्रों

स्वारस्य और पूर्ववर्त्ती भाष्यकारों की प्रणाली की रक्षा के स्थान पर लेखक के अर्थों में खींचातानी की झलक दीख पड़ती है।

सूत्रों पर स्वतंत्र बुद्धि से विचार करके लेखक ने अपनी मौलिकता और साहस का परिचय दिया है। प्रथम चार सूत्रों पर जिस प्रकार सूत्रों को रखकर उन पर स्वतंत्र व्याख्या की गई है, यदि वैसी ही सम्पूर्ण सूत्रों पर की जाती तो अधिक उत्तम होता। किन्तु ऐसा न करके लेखक ने अन्य अधिकरणों पर अपने विचार प्रकट किये हैं, प्रत्येक सूत्र की व्याख्या नहीं की है। इससे पूर्ववर्ती सूत्र से परवर्ती सूत्र का क्या सम्बन्ध है, तथा परवर्ती सूत्रों की क्या आवश्यकता है, आदि ज्ञातव्य बातों पर प्रकाश नहीं पड़ता।

लेखक की भाषा सरल और शैली प्रसाद-गुण-पूर्ण है। वेदान्त-सिद्धान्त की अनेक बातों का तथा लेखक के स्वतंत्र चिन्तन से उत्पन्न अनेक मनन-योग्य गवेषणाओं का आनन्द शास्त्र-रसिक लोग इससे उठावेंगे। पुस्तक के अन्त में मूल वेदान्त-सूत्र तथा प्रातः एवं सायंकाल के मंत्रों के दे देने से ग्रन्थ की उपयोगिता बढ़ गई है।

१३—सोम-सरोवर—लेखक, श्रीयुत चमूपति एम० ए०, प्रकाशक, हिन्दी-भवन-प्रेस, लाहौर हैं। मूल्य १।) है।

कांगड़ी के गुरुकुल-विश्वविद्यालय ने कुलपिता स्वामी श्रद्धानन्द जी की पुण्य-स्मृति के लिए 'श्रद्धानन्द-स्मारक-निधि' की स्थापना की है। प्रतिवर्ष दस या अधिक रुपये देकर कोई भी व्यक्ति इसका सदस्य बन सकता है। इन सदस्यों को 'स्वाध्याय-मंजरी' नामक ग्रन्थमाला के ग्रन्थ बिना मूल्य भेंट किये जाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक उक्त ग्रन्थमाला का छठा फूल है।

सामवेद के तृतीय 'पवमान-पर्व' का देवता पवमान सोम है। इसी पर्व का गंभीर मनन और विशद परिशीलन करके लेखक ने इस ग्रन्थ की रचना की है। सोम एक वनस्पति है। सोम का रस ऋषि लोग यज्ञों में पीते थे। किन्तु वेदों में, विशेष करके सामवेद के इस पर्व में लेखक ने 'सोम' पद से जो अर्थ लिया है वह एक वनस्पति के रस से सर्वथा भिन्न है।

वेद-मंत्रों में प्रयुक्त विभिन्न विशेषणों का 'सोम' पद से समन्वय करने पर लेखक का अर्थ न केवल उचित तथा स्वाभाविक ही प्रतीत होता है, अपितु इससे 'वेद' की उस अलौकिक वर्णनशैली, उसके उन विचित्र विशेषणों और अलंकारों के प्रयोग-द्वारा एक दुर्लभ ज्ञान को प्रकट करने की स्वतंत्रोन्मुखी शक्ति का तथा उसके उस सौन्दर्य का भी आभास मिलता है जिनके कारण 'वेदों' का इतना गौरव और भारतीय तत्त्ववेत्ताओं में इतनी महिमा है। अभी हाल में मार्च के 'कलकत्ता रिव्यू' में महामनीषी श्रीयुत अरविन्द घोष ने अपने 'भारतीय साहित्य का महत्त्व' नामक निबन्ध में वेद-मंत्रों के पदों और अलंकारों को ज्यों का त्यों रखकर जिस प्रकार की वेदार्थ करने की प्रणाली पर ज़ोर दिया है उसका व्यावहारिक बहुत कुछ स्वरूप हमें इस पुस्तक में मिला है।

लेखक ने प्रमाणित किया है कि पर्यालोच्य मंत्रों में 'सोम' का अर्थ वह 'रस' या वह 'दशा' है जो सब द्वेषों को नाश करनेवाली, महान् बन्धुत्व की प्रेरणा करनेवाली तथा अपनी पवित्रता से हिंसाओं तथा कृपणताओं को दूर करनेवाली है। ऋतम्भरा प्रज्ञा-प्राप्त ब्रह्मनिष्ठ योगी को भी 'सोम' कहा गया है। पुस्तक में अद्भुत, वीर और शान्त तरंगों में मन में चुभनेवाले शीर्षकों को रख कर लेखक ने अपने काव्यमय हृदय से वेद के कवित्व पर अच्छा प्रकाश डाला है।

प्रत्येक वेद-रसिक पुरुष को इस पुस्तक के पढ़ने से एक आनन्दमय स्फूर्ति का अनुभव होगा। वेद-विद्या के केन्द्र गुरुकुल विश्वविद्यालय के मुख्याधिष्ठाता की यह पुस्तक सर्वथा उनके गौरव के अनुरूप हुई है। जनता में तथा वेद-रसिक विद्वानों में हम इसका प्रचुर प्रचार चाहते हैं।

१४-१५—अजिताश्रम, आरा की दो पुस्तकें—

(१) देवेन्द्र-चरित—लेखक, श्रीयुत अजितप्रसाद एम० ए०, एल-एल० बी० हैं। मूल्य ।≈) है।

इस पुस्तक में स्वर्गीय श्रीयुत कुमार देवेन्द्रप्रसाद जी जैन की संक्षिप्त जीवनी है। इसके पढ़ने से श्रीयुत देवेन्द्र जी की उच्च मनस्विता और उनकी कार्यशीलता तथा अदृट लगन का चित्र आँखों के सामने नाचने लगता है। देवेन्द्र जी के व्यक्तित्व के संस्पर्श में आकर ही अनेक अजैन विद्वानों का ध्यान जैन-धर्म की ओर आकृष्ट हुआ। पुस्तक प्रकाशन, जैन-धर्म की शिक्षा और प्रचार के लिए श्री जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा, की स्थापना तथा बंगीय सार्वधर्म-परिषद् के शानदार आयोजन आदि अनेक कार्यों-द्वारा श्री देवेन्द्र की अपूर्व शक्तियों का आभास मिलता है। इस पुस्तक के पाठ से जैन-अजैन सभी नवयुवक श्री देवेन्द्र जी की समाज-सेवा और धर्म-सेवा के भावों से अनुप्राणित होकर कार्यशील बन सकते हैं। पुस्तक की भाषा सरल, सुन्दर और उत्साहजनक है।

(२) अजिताश्रम पाठावली (भाग १)—प्रकाशक श्रीयुत अभिनन्दनप्रसाद जिन्दल हैं। मूल्य ।=) है।

इस पुस्तक में जैन-चैत्यों में पूजन के समय कार्य आनेवाले स्तोत्रों तथा पूजा-विधि के मंत्रों या श्लोकों का संग्रह है। अन्त में हिन्दी के स्तोत्र तथा जैनोपयोगी भक्ति-पूर्ण पद भी संगृहीत हैं। पुस्तक शुद्ध और सुन्दर छपी है और जैन-धर्मावलम्बियों के लिए उपयोगी है।

१६—जैन तत्त्व-कलिका-विकास—लेखक, श्री जैनमुनि उपाध्याय आत्माराम जी, प्रकाशक, श्री मेहरचन्द लक्ष्मणदास अध्यक्ष, संस्कृत-पुस्तकालय, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर हैं। पृष्ठ-संख्या ३०८ और मूल्य २) है।

प्रस्तुत ग्रन्थ नौ कलिकाओं में विभक्त हैं इसमें जैन-धर्म तथा उसके सिद्धान्तों का विशद वर्णन किया गया है। इससे ग्रन्थकर्त्ता के गम्भीर मनन तथा जैन-धर्म के आकर ग्रन्थों पर उनके विस्तृत अधिकार का पूरा पता लग जाता है। इसके पाठ से जैन तथा अजैन सभी थोड़े ही प्रयत्न से जैन-सिद्धान्तों तथा जैनमन्तव्यों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। तीर्थंकर, गुरु, आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि का स्वरूप, ग्रामधर्म, राष्ट्रधर्म, पाखण्डधर्म, कुलधर्म आदि की विशद व्याख्या तथा गृहस्थ-धर्म, लोकनिरूपण, और मोक्ष का स्वरूप और उसकी प्राप्ति के उपायों का सुन्दर विवेचन इस पुस्तक में ग्रन्थकर्त्ता ने किया है। स्थान स्थान पर जैन-ग्रन्थों के मूल उद्धरण देकर विषय को प्रामाणिक कोटि का बना दिया है। मोक्ष-विषयक अष्टमी कलिका में 'ध्यान' का विवेचन योग-मार्ग से सम्बन्ध रखता है।

इस पुस्तक में कई एक विषय विशेष मनोरंजक हैं। उदाहरण के रूप में—कुलवधुओं की रक्षा के ये चार उपाय बतलाये गये हैं—(१) गृहकर्म विनियोग, (२) परिमितोऽर्थसंयोग, (३) अस्वातन्त्र्यम्, (४) तथा सदा च मातृतुल्य स्त्रीलोकेन (घर की बड़ी बूढ़ी मान्य स्त्रियों से) अविरोधन। इसी प्रकार अन्य बहुमूल्य बातें ग्रन्थ में हैं। पुस्तक की भाषा सुबोध तथा सुन्दर है और गेट अप भी उत्तम है। जैनधर्म से अनुराग रखनेवाले तथा जैनधर्म के जिज्ञासु महानुभावों को इस ग्रन्थ का संग्रह करना चाहिए।

१७—कर्त्तव्य-शिक्षण—लेखक तथा प्रकाशक,—पंडित विश्वेश्वरदयालु वैद्यराज, अनुभूत-योगमाला आफ़िस, बरालोकपुर, इटावा हैं। मूल्य ॥।) है।

लेखक ने इस पुस्तक में प्राचीन स्मृति-ग्रन्थों के आधार पर राजा-प्रजा के कर्त्तव्य, विभिन्न प्रकार के अपराधों के लिए विभिन्न दण्ड, राजकार्योपयोगी नाना विभागों का संगठन तथा उनके अधिकारियों के कर्त्तव्य, बालशिक्षण, स्वामी-सेवक-कर्त्तव्य, आचार और आश्रम-धर्म तथा खाद्या-खाद्य का वर्णन किया है। इस पुस्तक के पढ़ने से संस्कृत से अनभिज्ञ हिन्दी-भाषाभाषी सज्जन स्मृतियों के विभिन्न कालीन मन्तव्यों और तत्कालीन राजनैतिक तथा सामाजिक, अवस्था को बहुत कुछ जान सकते हैं।

पुस्तक में कहीं कहीं उद्धरणों के नीचे ग्रन्थों का नाम नहीं दिया गया है। इससे किस स्मृति का यह मत है, यह नहीं ज्ञात होता। पृष्ठ १०४ पर इसी प्रकार एक श्लोक का उद्धरण देकर ३० वर्ष के पुरुष को १२ वर्ष की कन्या से तथा २४ वर्ष के पुरुष को आठ वर्ष की कन्या से विवाह करने के विधान की पुष्टि की गई है। वैद्यराज जी को उचित था कि इस प्रकार के वचनों की जैसे—

"पञ्चविंशे ततो वर्षे, पुमान् नारी तु षोडशे" आदि वैद्यक शास्त्रसंमत वचनों की स्वतंत्र तथा युक्तिसंगत विवेचना करते। आठ वर्ष और बारह वर्ष की कन्याओं का क्रमशः २४ वर्ष के पुरुषों अथवा ३० वर्ष के पुरुषों से सम्बन्ध केवल स्मृति की दो पंक्तियों के आधार पर उचित नहीं ठहराया जा सकता। इसी प्रकार दण्डविधान के विषय में भी अनेक बातें विवादग्रस्त हैं।

पुस्तक की छपाई साधारण है। स्मृति के विभिन्न मतों को हिन्दी में पढ़ने की इच्छा रखनेवाले पाठकों के लिए पुस्तक उपयोगी हो सकती है।

१८—कृष्णाकुमारी (कविता)—लेखक, श्रीयुत अम्बिकादत्त त्रिपाठी, प्रकाशक, साहित्य-सागर-कार्यालय, सुइथाकलाँ, जौनपुर हैं। मूल्य ॥) है।

इस पुस्तक में लेखक ने उदयपुर के महाराना भीमसिंह की पुत्री श्री कृष्णाकुमारी के आत्मोत्सर्ग का पद्यों में वर्णन किया है। कविता साधारण है, पर घटना के मर्मस्पर्शिनी होने के कारण पुस्तक पढ़ने में मन लगता है। कन्याओं के प्रति समाज की उपेक्षा और अन्याय की ओर लेखक ने संकेत करके समाज के उद्बोधन की चेष्टा की है।

१९—राष्ट्रालोकः (संस्कृत)—लेखक, श्री मदमृतवाग्भवाचार्य, प्रकाशक, पंडित हरिभानुदत्त शास्त्री, अध्यक्ष, मातृभाषाप्रचारक ग्रन्थमाला विद्यालय, ग्वेकौड़ियाँ, अमृतसर हैं। मूल्य ≋) है।

संस्कृत के अनुष्टुप् छन्दों में लिखा यह छोटा-सा ग्रन्थ अपने ढंग का अनूठा है। राष्ट्र का लक्षण, कैसा राष्ट्र सुखी तथा कैसा दुःखी होता है, राष्ट्रसेवकों को क्या करना चाहिए एवं राष्ट्र की उन्नति और स्वाधीनता की भावना को उत्पन्न करनेवाले विषयों का इसमें समावेश हुआ है। इसमें राष्ट्र का लक्षण यह किया गया है कि 'समान संस्कृतिवाले निवासियों की पितृ-भूमि का नाम राष्ट्र है।' राष्ट्र की शिक्षा, शासन तथा अन्य तत्सम्बन्धी अनेक बातों पर विचारपूर्वक इस पुस्तक में आलोचना की गई है। संस्कृतज्ञ विद्वानों को इसका मनन करना चाहिए। देशभक्ति और राष्ट्र-दृष्टि से इस ग्रन्थ का प्रचार होना चाहिए। पुस्तक सुन्दर और उपादेय है।

२०—सन्ध्या-सुधासार—प्रकाशक, श्रीयुत कुँवर राधाकृष्ण तोपनीवाले, हिन्दी उपासनामन्दिर, अजमेर हैं। मूल्य =) है।

इसमें आर्यसामाजिक सन्ध्या के मन्त्रों का सरल हिन्दी में अर्थ, प्रार्थना के भजन तथा प्रारम्भ में सन्ध्या की उपयोगिता के विषय में छोटा-सा प्राक्कथन दिया गया है। प्रचार की दृष्टि से इसका मूल्य कम होना चाहिए था। ट्रैक्ट के रूप में बाँटने के लिए पुस्तक अच्छी है।

२१—उद्योत—प्रकाशक, श्रीयुत रघुनाथ गणेश नावलेकर, बी॰ ए॰, रिटायर्ड हेड मास्टर, हाईस्कूल, सागर (सी॰ पी॰) हैं। मूल्य =) है।

इसकी रचना सनातनधर्म की रक्षा तथा अछूतोद्धार की वर्तमान कार्यप्रणाली तथा उसके प्रतिष्ठाता तथा कार्यकर्ताओं का विरोध करने के लिए हुई है। लेखक की भाषा बड़ी अस्तव्यस्त तथा वाक्य-रचना बेढंगी है। विराम-चिह्नों का उपयोग भी यथा-स्थल नहीं किया गया है। अछूतोद्धार के नेता महात्मा गान्धी तथा उनके अनुयायी कटुशब्दों में कोसे गये हैं। संस्कृत के जो उद्धरण दिये गये हैं वे भी अशुद्ध छपे हैं। अपने वर्तमान रूप में तो पुस्तक सर्वथा रद्दी है। इसका पता निम्न उद्धरण से लग जायगा।

"यह सारा प्रपंच ईश्वर का विराट् स्वरूप है ऐसा हमारी श्रेष्ठतम माता जो श्रुति इसका उपदेश सिरसामान्य करके हे मित्रगणो! नमनपूर्वक विचार स्वरूपी उपहार आपके आगे हम रखते हैं उसका सप्रेम व सकौतुक स्वीकार करें"......आदि।

२२—सभा का खेल (पद्य)—लेखिका, श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान हैं। मूल्य ।) है। पता—उद्योग-मन्दिर, जबलपुर।

यह पुस्तक बाल-विनोद-माला का प्रथम पुष्प है। प्रकाशक महोदय ने लब्धप्रतिष्ठ कवियित्री श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान-द्वारा लिखित 'पतंग', 'सभा का खेल', 'अजय की पाठशाला', आदि शीर्षकों में बालोपयोगी सुन्दर कवितायें इस पुस्तक में रक्खी हैं। निःसन्देह पुस्तक बालकों के मनोविनोद का एक अच्छा साधन है। पुस्तक में 'बाँसुरीवाला' नामक कविता का १६ वाँ पद्य हमें कुछ खटक रहा है। पद्य इस प्रकार है—

काम बिगड़ता देख कृष्ण ने
गीता उन्हें सुनाई थी।
यों भाई के हाथों भाई
की हत्या सिखलाई थी॥

इस पद्य को पढ़कर कोमलमति बालकों के हृदय में धर्म-संस्थापक कृष्ण की कैसी मूर्ति उदय होगी, सहृदय पाठक ज़रा इस पर विचार करें। कम-से-कम हमें तो इस पद्य का ध्वनिगम्य अर्थ अच्छा नहीं लगा। हाँ, लेखिका यदि कृष्ण को धर्म-संस्थापक न मानती हों और उनके द्वारा कराये गये धर्मयशरूपी 'युद्ध' को केवल 'स्वार्थ' के लिए कराया गया 'हत्या-काण्ड' समझती हों तो दूसरी बात है। केवल इस स्थल को छोड़ कर बाक़ी सम्पूर्ण पुस्तक सुन्दर, सरल और बालकों का मनोरञ्जन करनेवाली है।

२३—पद्य-पुष्प—लेखक, श्रीयुत कुमार उदयरत्नसिंह प्रकाशक, बाबू रामानुग्रह नारायणसिंह, मीरगञ्ज, गया हैं। मूल्य =) है।

"प्रस्तुत पुस्तक एक ऐसे नवयुवक की रचनाओं का संग्रह है जो अवस्था में 'बच्चा' भी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। लेखक में प्रतिभा है, आवश्यकता है उसके संस्कृत होकर पनपने की।" भूमिका में लिखित 'वियोगी' जी के उपर्युक्त शब्दों से हम पूर्णतया सहमत हैं। कवि की आयु की ओर जो संकेत ऊपर किया गया है उसे दृष्टि में रखकर हम निःसंकोच कह सकते हैं कि कविताओं में हमें एक प्रतिभा-सम्पन्न उदीयमान कवि के दर्शन होते हैं। कवि-कर्म में 'निपुणता' और काव्यज्ञों के शिक्षानुसार 'अभ्यास' की उतनी ही आवश्यकता है जितनी प्रतिभा की। हमें विश्वास है कि कवि महोदय निकटभविष्य में निर्दोष तथा सरस काव्य-कुसुमों से मातृ-भाषा का पूजन करेंगे। तब तक सहृदय पाठक इस 'पद्य-पुष्प' का उचित आदर कर कवि को उत्साहित करेंगे।

—कैलाशचन्द्र, एम॰ ए॰

२४—भारत के स्त्री-रत्न (तीसरा भाग)—लेखक, श्री मुकुटबिहारी वर्मा, प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-मण्डल दिल्ली हैं। पृष्ठ-संख्या ३१८ और मूल्य ।।) है।

वर्मा जी ने इस पुस्तक में जैन-बौद्धकालीन आदर्श महिलाओं की क्रमशः ११ और २१ कहानियों का संग्रह किया है। इनके पढ़ने से स्त्रियों में अपने चरित्रगठन की पूर्णता आसानी से आ सकती है। वे अपना आचरण सुधार कर आदर्श-पद प्राप्त कर सकती हैं, किन्तु कहानियों का सम्बन्ध धार्मिक होने के कारण उन्हें जैन-धर्म से सम्बन्ध रखनेवाली स्त्रियाँ पूर्ण रीति से अपना सकती हैं, अन्य धर्मावलम्बी नहीं। दूसरी बात जो खटकनेवाली है वह यह कि पाठक को चार-पाँच कहानियों के पढ़ने के बाद यह मालूम होने लगता है कि सभी कहानियाँ कपोलकल्पित हैं, और वे केवल धर्म-प्रचारार्थ ही संग्रहीत की गई हैं। भाषा सरल है।

२५—सफल जीवन—लेखक, श्री छविनाथ पाण्डेय, बी॰ ए॰, एल-एल॰ बी॰, प्रकाशक, विद्या-मन्दिर, बनारस सिटी हैं। पृष्ठ-संख्या २५६ और मूल्य १॥) है।

पाण्डेय जी ने इस पुस्तक को सुन्दर गद्य में नवयुवकों के लिए लिखा है, उनकी सुविधा के लिए इसके १७ परिच्छेद करके एक एक बात को ऐसे ढङ्ग से उपमाओं के द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है कि कोई भी युवक केवल एक बार के पढ़ने से सब बातें भली भाँति समझ सकता है और भविष्य की कठिनाई से अपने को बचा सकता है। नवयुवकों को कार्य-क्षेत्र में आने के आरम्भ से लेकर अन्त तक जिन बुराइयों से बचते रहने पर उन्हें सफलता मिलती है उनका इस पुस्तक में पूर्ण विवेचन किया गया है। पुस्तक का मुख्य उद्देश है कि नवयुवक अपने जीवन को तभी सफल कर सकते हैं जब उनको अपनी रुचि के अनुकूल कार्य करने को मिल जाय और उनके दिल में जो कल्पनायें उठें उनके सफल बनाने का वे सतत प्रयत्न करते रहें; कभी निरुत्साह न हों। तभी वे सफलता प्राप्त कर सकते हैं। युवकों को अपने सहारे बढ़ने का प्रयत्न करना चाहिए, साधन उनको स्वयं मिल जायगा। जो दूसरों के भरोसे बैठे रहकर उन्नति की आशा करते हैं वे कभी भी अपने कार्य में सफलता नहीं पाते। पुस्तक की भाषा साहित्यिक होने पर भी सरल और सुबोध है। नवयुवकों की उलझन इसके पढ़ने से कम हो सकती है, इससे यह उनके बड़े काम की है।

२६—घर की राह—लेखक, श्री इन्द्र बसावड़ा, बी॰ ए॰, प्रकाशक, सरस्वती-प्रेस, बनारस सिटी हैं। पृष्ठ-संख्या २३० और मूल्य १।) है।

यह एक सामाजिक उपन्यास है। इसमें एक हरिजन अनाथ बालक और बालिका के जीवन का वर्णन किया गया है। लेखक ने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि "किसी भी मनुष्य से कोई भी धर्म ज़बर्दस्ती नहीं स्वीकार कराया जा सकता। हाँ, यदि वह स्वयं किसी धर्म को मानना चाहे तो बात अलग है। मनुष्य चाहे जितना भी सुख की दशा में रहे उसे अपने बचपन के साथी और अपनी मातृ-भूमि कभी नहीं भूल सकती। प्रत्येक मनुष्य को अपनी रुचि के अनुसार कार्य तलाशना चाहिए, इसी में उसकी सफलता का महत्त्व है"। इन्हीं बातों पर इसमें विशेष ज़ोर दिया गया है। इसकी कथा का सारांश यह है—

ढूंढ़ा उर्फ़ मुन्नू हरिजन बालक है। उसकी जाति-पाँत का पता नहीं है। फिर भी लोग उसे अछूत समझते हैं। वह गाँव के अस्पताल के पास लेटा मिलता है। वहाँ पर लड़कों की एक टोली खेलने जाती है और मुन्नू को मारती है। मुन्नू रोते रोते भागता है। उसके रोने की आवाज़ डाक्टर साहब सुनते हैं और लड़कों को कुछ सज़ा देकर वे अपनी पत्नी की इच्छा न रहने पर भी मुन्नू को अपने घर में रख लेते हैं। मुन्नू उनके बच्चों के साथ हिल-मिल जाता है। उसकी पढ़ाई का भी प्रबन्ध होता है, किन्तु उसका जी पढ़ने में नहीं लगता है। डाक्टर की लड़की और मुन्नू में विशेष प्रेम हो जाता है, जिसका शायद बुरा परिणाम सोचकर उसके मा-बाप का मुन्नू के प्रति खिंचाव हो जाता है। अन्त में इसी का बढ़ाव होने से मुन्नू को अधिक ग्लानि होती है और वह वहाँ से निकल भागता है। अब उसकी अवस्था काफ़ी बड़ी हो गई थी। रास्ते में उसे धर्माचारियों के ढोंग के भी नमूने देखने को मिलते हैं। वह भूख के मारे एक काछी के यहाँ केवल पेट पर काम करना चाहता है, पर उसे अपने को हरिजन बता देने पर वहाँ से निकलना पड़ता है। घूमते घूमते वह एक स्टेशन पर जाकर गाड़ी में बैठ जाता है, पर वहाँ से भी उसे टिकटचेकर धक्के देकर निकाल देता है। यही स्टेशन उसकी संगिनी मुन्नी का मिलना स्थल है। रात भर दोनों एक साथ निर्जन वन में फटे बिस्तर पर शयन करते हैं। सुबह मुन्नू से पहले उठकर मुन्नी भिक्षा के लिए जाती है, किन्तु अचानक मोटर से उसे सख़्त चोट लगती है और ईसाई-अस्पताल में लाई जाती है। मुन्नू सोकर उठने पर मुन्नी की जुदाई और भूख से बीमार पड़ जाता है और एक गंदी गली से उठाकर वह भी उसी अस्पताल में लाया जाता है। यहाँ स्वस्थ होने पर उसकी पढ़ाई आदि का उचित प्रबन्ध होता है और वह थोड़े ही दिन में उत्तम चित्रकार हो जाता है। मुन्नी का यहाँ उससे परिचय होता है। यहाँ पर दोनों के नाम आदि ईसाई ढङ्ग पर रहते हैं। किन्तु जब यहाँ के अधिष्ठाता इनको ईसाई बनाने का निश्चय करते हैं तब ये दोनों अलग-अलग वहाँ से भाग जाते हैं। मुन्नू अपनी पढ़ाई एक बड़े आर्ट-कालेज के प्रिंसिपल से मिलकर किसी तरह अपनी मेहनत से चलाना चाहता है, किन्तु कठिनता पड़ने पर उसे हरिजनों की मीटिंग में जाने का सौभाग्य प्राप्त होता है। यहाँ मंत्री महोदय की विशेष कृपा से उसे पढ़ने में काफ़ी सहायता मिलती है। थोड़े समय में वह ऐसा सुन्दर चित्र बनाता है कि उसे २,०००) इनाम मिलते हैं। एक दिन मंत्री महोदय के साथ हरिजन-आश्रम में जाने पर उसकी मुन्नी से मुलाकात हो जाती है और कुछ समय तक दोनों साथ रहकर फिर अपनी जन्म-भूमि में आते हैं। सभी प्राचीन स्थलों का स्मरण उन्हें आने लगता है। बड़ी खोज के बाद ये बालपन के अपने पुराने साथियों को पाते हैं और उनसे मिलकर असीम आनन्द का अनुभव करते हैं। घर की राह की यही कथा है।

पुस्तक की सारी बातें समयानुकूल हैं, किन्तु इसमें खटकनेवाली बात केवल इतनी है कि जिन डाक्टर और सभा के मंत्री ने एक हरिजन बालक के प्रोत्साहन का काफ़ी ध्यान रक्खा उनके चरित्र को भी लेखक ने कलुषित साबित करने का प्रयत्न किया है! यदि उसे विशुद्ध रहने दिया जाता तो पुस्तक की उपयोगिता घटती नहीं, वरन बढ़ती। भाषा सरल और वर्णन रोचक है।

२७-२८—चाँद प्रेस, इलाहाबाद, की दो पुस्तकें।

(१) साहित्य का सपूत—लेखक, श्री जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए० एल-एल० बी०, प्रकाशक, चाँद-प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या १६८ और मूल्य १॥) है।

श्रीवास्तव जी हास्य-रस के प्रसिद्ध नाटककार हैं। उनका यह नाटक तीन अंकों में विभक्त है। इसके मुख्य पात्र साहित्यानन्द जी, उनकी स्त्री सरला और लड़की चपला हैं। प्रतिद्वन्द्वी पात्रों में संसारीनाथ, यदुनाथ और रमाकान्त मुख्य हैं। संसारीनाथ और चपला का गुप्त प्रेम है और वे आपस में शादी भी करना चाहते हैं, किन्तु साहित्यानन्द को संसारीनाथ से घृणा है, इसलिए यह कार्य अधिक कठिन जान पड़ता है। यदुनाथ और रमाकान्त संसारीनाथ की सहायता करते हैं। साहित्यानन्द जी को साहित्य से प्रेम तो नहीं है, पर वे सम्पादक बनने के लिए कठिन से कठिन शब्दों का प्रयोग करते हैं। वे अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए पत्र भी निकालते हैं, जिसमें स्त्री के साथ सहानुभूति दिखलाने का विज्ञापन देते हैं। संसारीनाथ अपना नाम बदलकर एक स्त्री के नाम से उस पत्र में अपना लेख छपवाता है। इस पर सम्पादक जी उसकी तरफ़ विशेष आकर्षित होकर पत्र लिखते हैं। अपने मित्रों की सलाह से वह सम्पादक जी को भेंट करने के लिए चिट्ठी लिखता है कि हरे रङ्ग का टीका लगाकर अमुक बाग़ में आओ। ठीक समय पर वे जाते हैं। तब संसारीनाथ भी वहाँ टीका लगाकर वहाँ जाकर टहलता है और उसे उसके मित्र और स्त्री के पिता आकर आदर के साथ लिवा जाते हैं और मशहूर कर देते हैं कि संसारीनाथ सम्पादक हैं। उनके साथ उस स्त्री की शादी होने की तैयारी होती। इससे साहित्यानन्द को और भी जलन होती है। सरला को यह मालूम हो जाता है कि चपला और संसारीनाथ में प्रेम है और वह अपने पति से संसारीनाथ के साथ उसकी शादी करने को कहती है। वे इसलिए शादी करने को तैयार हो जाते हैं कि संसारीनाथ की शादी हो जाने पर उनकी शादी बिना किसी अड़चन के उस स्त्री के साथ हो जायगी। अतः चपला और संसारीनाथ की शादी हो जाती है। साहित्यानन्द की भी गुप्त रूप से शादी उनके इच्छानुसार स्त्री को देखकर होने की तैयारी होती है। वे अपने अपने नौकर को बनावटी स्त्री के रूप में देख बड़े प्रसन्न होते हैं, पर उनकी परीक्षा में वह बनावटी स्त्री अपनी दासी से उनके मुख में कारिख पुतवाती है और उनकी स्त्री के आने पर सारा भेद खुल जाता है। सब इस तरह साहित्यानन्द जी की हँसी उड़ाते हैं।

इस नाटक में आदि से अन्त तक हास्य-रस भरा पड़ा है। भाषा भी बड़ी मनोरंजक है। स्टेज पर खेलने में इससे दर्शकों को और भी मनोविनोद हो सकता है। यह एक सुन्दर रचना है। इसके अंक लगभग बराबर ही हैं, जिससे पाठकों को कुछ अरुचि पैदा हो सकती है। यदि अंकों की संख्या बढ़ाकर अधिक कर दी जाती तो अधिक उपयुक्त होता।

(२) देवी जोन—लेखक, श्री धनीराम जी प्रेम हैं। पृष्ठ-संख्या १७० और मूल्य १॥) है।

प्राचीन काल में अँगरेज़ों ने फ़्रांस को पराजित कर उसके अधिकांश भूभाग पर अधिकार कर लिया था। उस समय एक देहाती बालिका ने आकर राष्ट्र की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया था और युद्ध में अँगरेज़ों को हराकर अपने पराभूत राष्ट्र में नवजीवन का संचार किया था। इस पुस्तक में उसी देवी जोन का चरित वर्णित है और अन्त में उपसंहार की रचना करके लेखक ने उसके सम्बन्ध की सारी बातें और भी स्पष्ट कर दी हैं।

इस पुस्तक से देश-प्रेम की शिक्षा मिलती है और परस्पर झगड़े का जो परिणाम होता है उसका भी पूरा परिचय मिल जाता है। भाषा सरल तथा मुहावरेदार है।

२९—सुहाग की डिबिया—लेखक, श्री तारादत्त उप्रेती, प्रकाशक, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ हैं। पृष्ठ-संख्या १८६ और मूल्य १।) है।

इस पुस्तक में उप्रेती जी की लिखी नौ कहानियों का संग्रह है। पहली कहानी का नाम 'सुहाग की डिबिया' होने के कारण ही शायद इस पुस्तक का यह नाम रक्खा गया है। तीन कहानियाँ सचित्र और छः सादी हैं। कहानियों का विषय सामाजिक है। सभी कहानियों में सुशिक्षित युवती पात्रियाँ होने के कारण इनमें और भी उत्तमता आ गई है। इस पुस्तक की सभी कहानियों में वस्तु-वैचित्र्य

नहीं है, किसी किसी कहानी के उद्देश का अनुमान पाठक को आरम्भ से ही लग जाता है। तो भी कुछ कहानियाँ उत्तम कही जा सकती हैं। सभी कहानियों की भाषा सरल, सुपाठ्य और सुबोध है।

इसमें 'सुन्दरी' नामक एक कहानी है। इसके मुख्य पात्र पंडित सदानन्द दुबे हैं। इनकी ज्येष्ठ पत्नी की एक-मात्र पुत्री सुन्दरी है। उसकी विमाता का नाम वसंती है। सुन्दरी को उसकी विमाता कोसा करती है। सुन्दरी अपने पिता के घर में अधिक पढ़-लिख नहीं पाती, किन्तु सुयोग्य वकील पति की सहधर्मिणी का सौभाग्य प्राप्त होने पर वह पढ़ने-लिखने में काफ़ी उन्नति कर लेती है। किन्तु ईश्वर को उसका यह सौभाग्य नहीं रुचा। वह दो साल के बाद विधवा हो जाती है। अब उसके सास, श्वशुर सभी उसकी आलोचना कर कर अपने दिल का गुबार निकालने लगे। उसके पिता को जब इस बात का पता चला तब उन्होंने उसे अपने घर बुला लिया। सुन्दरी की अब ईश्वर-भक्ति की ओर विशेष रुचि हो गई थी। पिता के घर में उसकी इस भक्ति में कोई बाधा तो न थी, पर विमाता की उसके प्रति कुढ़न अवश्य थी। उसने पतिदेव को समझा-बुझा कर इस बात पर राज़ी कर लिया कि सुन्दरी का दूसरा विवाह कर दिया जाय। सुन्दरी को अपनी विमाता के इस प्रस्ताव से बड़ी ग्लानि हुई और वह ग्लानि के मारे बेहोश होकर ज़मीन पर गिर पड़ी। उसकी ऐसी दशा को अधिक देर तक उसकी विमाता न देख सकी और वह बहुत डर गई, यहाँ तक कि उसे ज्वर आ गया। और उसकी हालत बहुत ख़तरनाक हो गई। इस अवसर पर सुन्दरी ने बड़ी भक्ति के साथ उसकी सेवा करके उसको फिर से स्वस्थ किया। अब वह अपना वैर-भाव छोड़ उसे देवी की तरह मानने लगी।

इसी प्रकार इस पुस्तक की अधिकांश कहानियों में उच्च भावों की प्रधानता है। —गंगासिंह

३०—**डावर पञ्चाङ्ग**—यह डाक्टर एस० के० वर्म्मन कलकत्ता का सुन्दर पञ्चाङ्ग है। यह पञ्चाङ्ग प्रतिवर्ष बड़े सज-धज से प्रकाशित होता है और बिना मूल्य वितरित किया जाता है। इसमें ग्रह, उपग्रह, राशिफल, वर्षफल इत्यादि सभी बातें दर्ज रहती हैं; इसके अतिरिक्त विविध और अत्युपयोगी देशी ओषधियों आदि का भी वर्णन रहने से प्रत्येक प्राणी लाभ उठा सकता है। ऐसे उपयोगी पञ्चाङ्ग के अधिकाधिक प्रचार से जन-समाज का लाभ ही है।

३१—'शान्ति' का सती अङ्क—सञ्चालिका, श्रीमती, शान्तिदेवी, सम्पादक, श्रीजगदीशप्रसाद माथुर 'दीपक', प्रकाशक, श्रीवासुदेव वर्मा, शान्ति-कार्य्यालय, लाहौर हैं। वार्षिक मूल्य २) है और इस अङ्क का मूल्य ।=) है।

इस अङ्क में भारतीय सती स्त्रियों के उच्च आदर्श पर भली-भाँति प्रकाश डाला गया है। इसके पढ़ने से आज भी हमारी भारतीय बहनों के सामने पुराने उच्च आदर्श नाचने लगेंगे और वे अपनी प्राचीन बहनों की तरह आज भी भारतीयों को उच्च कार्य की ओर आगे बढ़ने में सहायता कर सकेंगी। इसके सिवा इस अंक में जिन कुरीतियों के कारण आज हमारी बहनों को दुख सहना पड़ता है उन पर भी काफ़ी प्रकाश डाला गया है। पढ़ी-लिखी बहनों को कम से कम इस अङ्क का अवश्य संग्रह करना चाहिए।

३२—दीपक—सम्पादक, श्रीनिगारामजी 'विशारद' सैयद क़ासिम अली 'साहित्यालंकार'; प्रकाशक, साहित्य-सदन अबोहर (पंजाब) हैं।

इस मासिक पत्र का वार्षिक मूल्य २) और एक अङ्क का मूल्य ≋) है। इस पत्र का मुख्य उद्देश ग्रामीण किसानों के सम्बन्ध की भिन्न-भिन्न बातों को प्रकाश में लाना है। इस अंक में उन पर काफ़ी विचार किया गया है। यदि इस पत्र का प्रकाशन इसी भाँति होता रहा तो इससे किसानों की बहुत सेवा हो सकेगी। किसानों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

३३—**स्वास्थ्य**—सम्पादक, श्री भो० गो० कौशिक वैद्य, प्रकाशक, बा० सूरजभान गुप्त, सुन्दर, शृङ्गार-इलेक्ट्रिक प्रेस, मथुरा हैं और भारत के लिए वार्षिक मूल्य २) तथा एक प्रति का मूल्य ≋) है। यह नया नया निकला है। यह स्वास्थ्य-सम्बन्धी एक उपयोगी पत्र है। स्वास्थ्य-सम्बन्धी लेखों के अतिरिक्त इसमें साहित्य के अन्य मनोरञ्जक विषयों के भी लेख रहते हैं। पत्र उपयोगी है।

३४—शिशु का विशेषांक—सम्पादक, श्री पंडित सुदर्शनाचार्य, बी० ए० और श्रीरामपदार्थ शिक्षार्थी, प्रकाशक, श्री सत्यवान आचार्य, शिशु-प्रेस, प्रयाग हैं। वार्षिक मूल्य २) और इस अंक का ॥) है।

'शिशु' बच्चों का पुराना पत्र है। पहले की भाँति यह अब भी सज-धज के साथ निकल रहा है। इसका यह जनवरी का अंक विशेषांक है। इस अंक में कुल १०३ पृष्ठ हैं। इसमें बालोपयोगी १२ कवितायें तथा २५ लेख और कहानियाँ हैं। यह अंक चित्रों से भी भरपूर है। इससे बालकों का भली भाँति मनोरंजन हो सकता है और उनको बहुत-सी नई बातें मालूम हो सकती हैं। उन्हें इसे एक बार ज़रूर पढ़ना चाहिए।

३५—'प्रताप' का कांग्रेस अंक—सम्पादक, श्री हरिशंकर विद्यार्थी, प्रकाशक, श्री युगलकिशोरसिंह, प्रताप प्रेस, कानपुर हैं। पृष्ठ-संख्या १०० और इस अंक का मूल्य ।) है।

मुख पृष्ठ पर राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल जी का रंगीन चित्र है। इस अंक में ६ कवितायें, ४ कहानियाँ और २२ लेख हैं। इसके सिवा इस अंक में १०० चित्रों से अधिक लीडरों के चित्र दिये गये हैं। सारे अंक में कांग्रेस के सम्बन्ध की ही चीज़ें छापी गई हैं। श्रीयुत बालकृष्ण शर्मा, प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकार, श्रीयुत श्रीप्रकाश एम० एल० ए० आदि सुलेखकों के सुन्दर विचारों का उत्तम संग्रह किया गया है। सम्पादक महोदय के इस परिश्रम का लाभ जनता को अवश्य उठाना चाहिए। इस अंक के पाठ से उसे कांग्रेस की अनेक नई बातें मालूम हो जायँगी।

३६—प्रभात का बेकारी अंक—सम्पादक, श्री वसिष्ठनारायण वर्मा, प्रकाशक, श्री चन्द्रशेखरप्रसाद, प्रभात प्रेस, चौक, बलिया हैं। पृष्ठ-संख्या १०२ और इस अंक का मूल्य ।=) है।

इस अंक में कुल मिलाकर १४ चित्र हैं। पंडित जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गांधी, बाबू राजेन्द्रप्रसाद आदि के शुभ सन्देश भी इस अंक में छापे गये हैं। इसके सभी लेख तथा कविताएँ बेकारी की समस्या से सम्बन्ध रखती हैं और उसके दूर करने का कुछ-न-कुछ उपाय बतलाती हैं। श्री पं० रामअनन्त पांडेय, श्री सीतलासहाय, पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी, पं० परशुराम चतुर्वेदी एम० ए०, एल-एल० बी० और बाबा राघवदास आदि प्रतिष्ठित लेखकों के लेखों का सुन्दर समावेश किया गया है। हमारे ग़रीब और बेकारों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

३७—**नटखट का नटखट अंक**—सम्पादक, श्री मदनमोहन अग्रवाल और श्री नरेन्द्र मालवीय, प्रकाशक, इन्द्र प्रिंटिंग वर्क्स, अलमोड़ा, यू० पी० हैं। पृष्ठ-संख्या १४४ और वार्षिक मूल्य ३) है।

यह नाना प्रकार के चित्रों द्वारा सजाया गया है। इसमें सभी प्रतिभाशाली लेखकों के लेख छापे गये हैं। प्रायः सभी लेखकों ने अपने लेखों में अपने बचपन की किसी-न-किसी बात की चर्चा सुन्दर ढंग से की है। बच्चों का ही नहीं, प्रौढ़ों का भी इस अंक से मनोविनोद हो सकता है। इस सुन्दर अंक के निकालने के लिए सम्पादक धन्यवाद के पात्र हैं।

सामयिक साहित्य

शिक्षा और बेकारी

वलिया से प्रकाशित होनेवाले साप्ताहिक 'प्रभात' ने हाल में ही अपना एक 'बेकारी अङ्क' प्रकाशित किया है। इसमें बेकारी की समस्या पर विचार करने के लिए यथेष्ट सामग्री एकत्र की गई है। उसके इस अङ्क में उपर्युक्त शीर्षक में काशी के दार्शनिक विद्वान् बाबू भगवानदास, एम० एल० ए०, का एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसका एक अंश इस प्रकार है—

विद्यार्थियों को विद्या कैसी सिखाई जाय, यह मसला हम लोग तय नहीं कर पाये है। 'अर्थ-विद्या'—जीविको-पार्जन का भी प्रबन्ध हो और जीविका का भी उद्धार हो, ऐसी शिक्षा होनी चाहिए। माता बड़ी आशा और उत्साह से शैशव काल में बच्चे की रक्षा करती है। पिता भी उत्साह के साथ २०–२१ वर्ष की उम्र तक उसे पढ़ने के कार्य में लगाता है, पर स्कूल या कालेज से वापस आने पर रोज़गार की कोई सूरत नहीं मिलती। बेकारों और निराशा दिखलाई पड़ती है। आये दिन अखबारों में ख़बर पढ़ने को मिलती है—बेरोज़गारी से ऊबकर अमुक नवयुवक रेल से कट कर मर गया, अमुक ज़हर खाकर मर गया, किसी ने फाँसी लगाकर आत्महत्या की इत्यादि। बेरोज़गारी की विकट समस्या उपस्थित है। परन्तु शासक-वर्ग उदासीन है। शासक-वर्ग के बिना यह समस्या हल नहीं होने की। पाश्चात्य देशों में इस समस्या को हल करने का विचार होता है और उसके लिए उपाय भी किया जाता है, पर यहाँ वह बात नहीं है। मनुस्मृति के पहले ही अध्याय में शिक्षा, दूसरे में गार्हस्थ्य जीवन और तीसरे में शासन का वर्णन है। शिक्षा कैसी होनी चाहिए, यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि समाज में उचित स्थान पाकर मनुष्य जीविकोपार्जन कर सके। आज-कल शिक्षा के उद्देश दो ही रह गये हैं एक 'लर्नेड प्रोफ़ेसन' (शिक्षित पेशा) और दूसरा क्लर्की (मुहर्रिरी)। रोज़गार की उपेक्षा की जाती है। सिर के ही बढ़ाने की फ़िक्र की जाती है, बाक़ी जिस्म सूखता जा रहा है—ऐसी हालत में ईश्वर ही रक्षा करे।

रोज़गार का कोई उपाय नहीं सूझता—आये दिन डकैतियों का समाचार पढ़ने में आता है। अब शासक-वर्ग भी वास्तविक रूप पहचानने लगा है कि इसका मूल कारण आर्थिक कठिनाई के सिवा दूसरा नहीं है।

योरप में व्यावहारिक शिक्षा का प्रबन्ध प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में किया जाने लगा है। रूस और जापान दो देश 'एजुकेशन एण्ड इकोनामिक आरगेनाइज़ेशन' (शिक्षा और आर्थिक प्रबन्ध का संग्रथन) ठीक ठीक कर पाये हैं। हर दूसरे तीसरे वर्ष वे बच्चों की जाँच करते हैं और उनकी प्रवृत्ति के अनुसार उन्हें शिक्षा दी जाती है। जापान में ११ हज़ार से ऊपर 'एग्रिकल्चर स्कूल' (कृषि-विद्यालय) हैं, जहाँ लड़कों को कृषि-सम्बन्धी उपयोगी शिक्षा दी जाती है। जापान एक छोटा-सा टापू है, वहाँ की यह हालत है। रूस में भी कृषि की उन्नति पर विशेष ध्यान दिया जाता है। रूस इस बात के लिए मशहूर है कि वहाँ बेकारी की समस्या नहीं है। वहाँ की यह हालत है कि काम करने के लिए मज़दूर नहीं मिलते। रूस में यद्यपि कई दोष हैं, पर दण्ड-शक्ति या शिक्षा-शक्ति से वहीं जगत्गुरु होने जा रहा है।

—

सिन्ध अब हिन्द कब ?

प्रयाग-विश्वविद्यालय के हिन्दी के प्रोफ़ेसर डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा बहुत दिनों से इस बात का आन्दोलन कर रहे हैं कि उत्तर-भारत के हिन्दी-भाषाभाषियों के प्रान्त का नाम 'सूबा हिन्द' रक्खा जाय। 'लखनऊ'-कांग्रेस के अवसर पर 'प्रताप' का जो कांग्रेस-अङ्क निकला है उसमें आपने उपर्युक्त शीर्षक लेख में अपने उक्त विचार पर फिर ज़ोर दिया है। आपके लेख का कुछ आवश्यक अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

इस सप्ताह समाचार-पत्रों में सिन्ध का स्वतन्त्र प्रान्त बन जाने का समाचार पढ़कर सहसा ख़याल आया कि आख़िर वह दिन कब आयेगा जब हिन्द का भी ठीक प्रान्त बन सकेगा। सम्भव है, बहुत-से पाठक हिन्द-प्रान्त का अर्थ न समझे हों। मेरा तात्पर्य हिन्दी-भाषी प्रदेश के ठीक नामकरण तथा सीमा-विभाग से है।

अँगरेज़ी शासन-काल में भी भारत की जातीय भूमियाँ या स्वाभाविक प्रान्तों का मुस्लिम कालीन इतिहास फिर से दोहराया गया। हमारे नये शासकों ने जिस क्रम से भारत के भिन्न-भिन्न भागों को अपने क़ब्ज़े में किया, वैसे ही अपने सुविधानुसार वे ब्रिटिश प्रान्तों का निर्माण करते गये। इन प्रान्तों के बनाने में देश के स्वाभाविक विभागों की पूर्ण रूप से उपेक्षा की गई। प्रारम्भ में ब्रिटिश भारत—बंगाल, बंबई और मदरास के नामों से तीन प्रेसीडेंसियों में विभक्त कर दिया गया था। यह अस्वाभाविक विभाग बहुत दिनों तक नहीं चल सका। सबसे पहले बंगाल प्रेसीडेंसी में परिवर्तन करने की आवश्यकता प्रतीत हुई और धीरे धीरे इस एक प्रेसीडेन्सी के स्थान पर आसाम, बंगाल, संयुक्तप्रान्त, बिहार-उड़ीसा के अधिक स्वाभाविक प्रान्त बनाने पड़े। अन्तिम प्रान्त (उड़ीसा) तो इसी सप्ताह बना है। बंबई प्रेसीडेंसी में सिन्ध, गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक की चार जाति भूमियाँ सम्मिलित हैं। इनमें सिन्ध अब उड़ीसा के साथ-साथ पृथक् प्रांत होगया है। गुजरात, महाराष्ट्र तथा कर्नाटक के स्वतन्त्र प्रांतों के रूप में विभक्त होने में अभी कुछ समय लगेगा, यद्यपि इनमें से प्रत्येक अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व और गौरव-पूर्ण इतिहास पर गर्व करने लगा है। तीसरी मदरास प्रेसीडेंसी अभी तक ज्यों की त्यों चली जा रही है। इस प्रेसीडेंसी में आन्ध्र, तामिल और मलय इन तीन जातीय भूमियों की चोटियाँ बँधी हुई हैं। तेलगू बोलनेवाले आन्ध्र लोगों में अपना स्वतन्त्र प्रांत बनाने का आन्दोलन दिन दिन ज़ोर पकड़ रहा है और वह समय दूर नहीं है जब आन्ध्र ब्रिटिश भारत में स्वतन्त्र प्रांत बन जायगा और इस तरह से ब्रिटिश भारत के अन्तिम अस्वाभाविक प्रांत मदरास प्रेसीडेंसी का भी स्वाभाविक रूप ग्रहण करने के लिए टूटना प्रारम्भ हो जायगा। प्रारम्भिक काल में ही ब्रिटिश भारत का सबसे अधिक स्वाभाविक प्रांत पंजाब रहा है। और मध्यप्रांत सबसे अधिक अस्वाभाविक। मध्यप्रांत मराठों और हिंदियों का जुड़वाँ प्रांत है। संक्षेप में हम यह पाते हैं कि ब्रिटिश भारत का प्रांतीय विभाग धीरे धीरे स्वाभाविक प्रादेशिक विभाग की ओर विकसित हो रहा है।

भारतवर्ष में जातीय भूमि अथवा स्वाभाविक प्रांतीय विभाग की दृष्टि से यदि सबसे अधिक दुर्गति है तो वह हिन्दी-भाषी प्रदेश की है। बंगाल, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र, उड़ीसा, तामिल आदि प्रत्येक प्रांत का एक स्वाभाविक नाम है। प्रत्येक प्रदेश की जनता अपने प्रांतीय व्यक्तित्व को अनुभव करती है तथा प्रत्येक प्रांत में कुछ प्रांतीय नेता हैं जो प्रांत के हित-अनहित की ओर ध्यान देते हैं। हिन्दी-प्रदेश का न तो अभी कोई ठीक नाम है, न प्रांतीय विभाग की स्वाभाविक सीमायें निर्धारित हो सकी हैं और न हिन्दी-प्रदेश के अपने नेता ही हैं—अखिल भारतवर्षीय नेता पैदा करने में यह प्रदेश अवश्य सबसे अधिक उपजाऊ है। किन्तु अब वह समय आगया है जब हिन्दुओं को अपना घर भी सँभालना चाहिए। हिन्दुओं का मुख्य केन्द्र संयुक्त-प्रांत है अतः इस आन्दोलन का प्रारंभ यहाँ से ही होना चाहिए। इस सम्बन्ध में नीचे लिखे दो प्रस्ताव मैं हिन्दी-जनता के सामने रखना चाहता हूँ, एक नाम के सम्बन्ध में और दूसरा प्रांतीय सीमाओं के सम्बन्ध में।

प्रांतीय कांग्रेस सभा ने संयुक्त-प्रांत का नाम 'हिन्द' रख

दिया है। यह नाम अत्यन्त उपयुक्त है, क्योंकि इससे प्रांत, निवासी तथा भाषा तीनों के नाम सार्थक ढंग से बन जाते हैं—प्रांत हिन्द, निवासी हिन्दी, भाषा हिन्दी—जैसे बंगाल बंगाली, पंजाब पंजाबी, गुजरात गुजराती, सिंध सिंधी आदि कि जोड़ियाँ बनती हैं। प्रांत के इस नाम में मुसलमानों को भी आपत्ति नहीं होगी, क्योंकि वास्तव में यह नाम उन्हीं का दिया हुआ है। भारतवर्ष से भ्रम होने का तर्क भी उचित नहीं है, क्योंकि समस्त देश के लिए भारत अथवा हिन्दुस्तान नाम चल रहा है। हिन्दुस्तान और हिन्द के अर्थ धीरे-धीरे स्पष्ट रीति से पृथक् हो जायँगे। संयुक्त-प्रांत के हिन्द नाम को अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस सभा से शीघ्र-से शीघ्र स्वीकृत करवा लेना चाहिए और समस्त हिन्दी-पत्रों को संयुक्त-प्रांत के स्थान पर हिन्द नाम का ही प्रयोग करना चाहिए। साथ ही इस बात का आन्दोलन भी प्रांत में होना चाहिए कि ब्रिटिश सरकार भी संयुक्त-प्रांत के नाम के इस परिवर्तन को स्वीकार करले। इस तरह हिन्दियों की मूल जातीय भूमि के अस्तित्व की उचित नींव पड़ सकेगी।

दूसरी समस्या हिन्द-प्रान्त की सीमाओं के सम्बन्ध में होगी। बंगालियों ने अपने प्रान्त की स्वाभाविक सीमाओं में लौट-पौट न होने देने के लिए जी-जान से कोशिश की थी और उसमें उन्हें सफलता भी हुई, क्योंकि उनकी माँगें उचित थीं। भारत की प्रत्येक जातीय भूमि का विभाग स्वाभाविक ढंग से है और यह ठीक ही है। मेरी समझ में बिहार और राजस्थान इन दो हिन्दी-भाषी प्रान्तों को इनके वर्तमान रूप में ही स्वतन्त्र प्रान्त रहने देना चाहिए, क्योंकि इनके पीछे ऐतिहासिक तथा शासन-सम्बन्धी सुविधायें कारण-स्वरूप हैं। हिन्द या संयुक्त-प्रान्त की सीमायें अवश्य कुछ अस्वाभाविक हैं। दिल्ली को स्वतन्त्र हिन्दी प्रान्त रखना अनुचित, अस्वाभाविक तथा अहितकर है। दिल्ली तथा पंजाब के अम्बाला, रोहतक, हिसार आदि के हिन्दी-भाषी ज़िले हिन्द प्रान्त में लौट आने चाहिए। हिन्दुस्तानी मध्यप्रान्त का स्वतंत्र अस्तित्व रखने के पीछे भी कोई कारण नहीं दिखलाई पड़ता। वास्तव में महाकोशल हिंद का ही एक भाग है। कांग्रेस महासभा को ब्रिटिश शासकों-द्वारा किये गये अस्वाभाविक प्रांतीय विभागों को आँख मीच कर नहीं मानना चाहिए। मध्य-भारत के देशी राज्यों में से इन्दौर को राजस्थान में डाल देना चाहिए तथा ग्वालियर, पन्ना, रीवा आदिको हिन्द में। कुछ लोग कहेंगे कि यह हिंद प्रांत बहुत बड़ा हो जायगा। किंतु यदि प्रांतीय स्वाभाविक एकता के कारण ३० लाख के सिन्ध के बराबर में सवा चार करोड़ का बंगाल प्रांत माना जा सकता है तो ६ करोड़ के हिंद प्रांत को भी ज़िन्दा रहने का अधिकार होना चाहिए। प्रबन्ध के सुभीते की दृष्टि से हम अपने प्रांत को महाकोशल, बघेलखण्ड, बुन्देल-खण्ड, अवध, काशी, ब्रज, सर हिंद आदि उप विभागों में विभक्त कर सकते हैं। लेकिन यह तो हमारी घरेलू समस्या है। अन्य प्रांतों को इसमें दख़ल देने का कोई अधिकार नहीं है।

वास्तव में हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं का कर्तव्य है कि अपनी जातीय भूमि के उचित नामकरण तथा सीमा-विभाग के प्रश्न को हाथ में लें और तब तक चैन से न बैठें जब तक इसमें सफलता न हो जाय। आसाम और बिहार को तो बंगाल ने अपनी मुक्ति के साथ ही मुक्त कर दिया था। उड़ीसा और सिन्ध दस-बारह वर्ष के निरन्तर आन्दोलन के बाद स्वतन्त्र होने में सफल हो सके हैं। आन्ध्र, तामिल, कर्नाटक, महाराष्ट्र तथा गुजरात अपने घरों को ठीक करने में व्यस्त हैं। किंतु हिंदियों की दीर्घ निद्रा अभी तक नहीं टूटी है। सिन्ध अब, हिन्द कब?

जवाहर के जौहर

पंडित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, एम० एल० ए० ने 'सैनिक' के 'जवाहर-अङ्क' में 'जवाहर के जौहर' शीर्षक एक लेख लिखा है। इससे पंडित जवाहरलाल नेहरू के राष्ट्रीय कार्यों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। लेख का कुछ अंश इस प्रकार है—

"पण्डित जवाहरलाल नेहरू का सबसे बड़ा जौहर तो यही है कि मोतीलाल के यहाँ जन्म लेकर और आनन्द-भवन में पलकर भी वे दीनों और सम्पन्नों के संग्राम की जलती हुई ज्वाला में कूद पड़े। कौन कहता है कि जवाहर का यह त्याग गौतम बुद्ध के त्याग से बढ़कर नहीं है! उन दिनों के राजाओं को भी वे सुख नसीब नहीं थे जो आज-कल बीच के दर्जे के लोगों को हासिल हैं, फिर स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल नेहरू के सुख-भोग तो आज-कल के राजाओं के सुख-भोगों से कहीं अधिक बढ़े-चढ़े थे। ऐसे सुखों में पले हुए जवाहर ने न सिर्फ़ वनों में तप करने के ही कष्ट सहे, परन्तु संयुक्त-प्रान्त की जेलों के नारकीय जीवन को भी हँसते हुए भोगा! गौतम बुद्ध ने अपनी रानी को भी छोड़ा, परन्तु जवाहर की—जवाहर की नहीं भारतीय जन-मन की रानी कमला पति के साथ जेल गई, और अन्त में सात समुद्र पार दूसरे देश में, समस्त देश को शोक-सागर में डुबोती हुई स्वर्ग को सिधारी! इस वज्राघात को सहकर भी जवाहर हवाई जहाज़ में उड़कर हिन्दुस्तान में आया और यहाँ आते ही अविचल योगी की भाँति कर्तव्य-धर्म में इस तरह जुट गया, मानो कुछ हुआ ही न हो। गीता के अर्जुन ने कृष्ण से पूछा था, स्थित-प्रज्ञ और समाधिस्थ योगी की भाषा क्या है? वह कैसे बोलता है? कैसे बैठता है? चलता कैसे है? भगवान ने इन प्रश्नों का उत्तर गीता के अठारह श्लोकों में दे पाया। परन्तु आज यदि कोई जिज्ञासु यही प्रश्न करे तो हम उससे कह सकते हैं कि जो भाषा जवाहर की है, जैसे वह बोलता, बैठता, और चलता है वही समाधिस्थ-स्थितप्रज्ञ योगी की समझो। गौतम बुद्ध ने मनुष्य के दुःख दूर करने के लिए समस्त सांसारिक सुखों को तिलांजलि दी थी। जवाहरलाल ने भी मनुष्य-मात्र को, समस्त मनुष्य-जाति के जीवन को सुखमय बनाने के लिए ही संकटमय तथा कंटकाकीर्ण रास्ते में क़दम रक्खा है। दोनों के जीवन में ही नहीं, दोनों के जीवनोद्देश में भी बहुत कुछ समता है।

हमारे मनो-मन्दिर में गांधी और जवाहर की जो प्रतिमायें प्रतिष्ठित हैं उनमें हम भिन्नता कम और समता अधिक पाते हैं। दोनों ही भारत की, सजीव, सजग, जाग्रत और स्वाभिमानी तथा स्वदेशाभिमानी भारत की महत्वाकांक्षाओं की प्रत्यक्ष प्रतिमायें हैं! और दोनों ही भारतीय संस्कृति के सर्वोत्कृष्ट आदर्श! यही कारण है कि जहाँ दोनों के अन्ध अनुयायी दोनों को एक-दूसरे के विरोधी के रूप में देखते हैं, ठीक वैसे ही जैसे कि एक ही गुरु के दो मूर्ख चेले, गुरु जी ही के दो पैरों को मेरा-तेरा कह कर लड़ते थे, वहाँ हम दोनों में कोई वैपरीत्य नहीं पाते! यही कारण है कि अभी तक दोनों में कभी विरोध का आभास तक नहीं दिखाई दिया, बल्कि दोनों में सुन्दर सङ्गीतमय सामञ्जस्य और सहयोग रहा है। दोनों में जो कुछ भिन्नता है भी वह इतनी अधिक भी नहीं कि उसकी स्पष्ट रूप-रेखा निश्चित की जा सके। सङ्केत के लिए, सम्भवतः यह कहा जा सकता है कि दोनों में अधिक-से-अधिक अन्तर, महर्षि और राजर्षि का, आध्यात्मिक और आधिभौतिक का, अन्तर है। गांधी ब्रह्मर्षि हैं तो जवाहर राजर्षि! गांधी आध्यात्मिक अधिक हैं और जवाहर आधिभौतिक!

हम यह मानते हैं कि साम्यवाद की पाश्चात्य विचारावली के अनुसार गांधीवाद और साम्यवाद में अनेक बातों में भारी विरोध भी है। गांधी मशीन वाद और उद्योग-वाद का विरोधी है और पाश्चात्य साम्यवाद उसका पक्षपाती! परन्तु हमारा कहना यह है कि हम नाम और रूप की इस माया को प्रधानता देने को तैयार नहीं हैं। हम असली तत्त्व को प्रधान और नाम तथा रूप को गौण समझते हैं। आख़िर, शब्दों का मूल्य ही क्या है? सार तत्व के सामने केवल शब्द निःस्सार है। तत्त्व बात तो यह है कि गांधी भी मनुष्य-समाज में सत्ता और सम्पत्ति के वैषम्य को, उनकी बुराइयों को मिटाना चाहता है। जवाहरलाल का साम्यवाद गांधीवाद के आध्यात्मिक साम्यवाद में व्यावहारिक साम्यवाद का प्रवेश कराना चाहता है। जवाहरलाल का साम्यवाद पार्थिव है, भौतिक है, व्यावहारिक है। यह ठीक ही कहा जाता है कि जवाहर-लाल जी की विचारावली (Ideology) समाजवादी है, लेकिन उनके साधन गांधीवादी। व्यवहार में जवाहरलाल भी सत्य और अहिंसा में उतना ही अमल करते हैं जितना महात्मा गांधी।

जवाहरलाल में अपने प्रकार का एक विचित्र तेज है। रूप और रंग, चल और चितवन में वह आत्मत्याग की प्रत्यक्ष जलती हुई जाज्वल्यमान ज्योति-सा दिखाई

देता है, उनकी गति, उसकी ध्वनि को सिंह से उपमा देना ग़लत है। वह तो मोटर के सर्वोत्तम एञ्जिन की तरह सदैव शक्ति से परिपूरित, परन्तु संयमित रहता है। लेकिन न तो वह कमाल-पाशा की तरह भूखा भेड़िया है, न हिटलर और मुसोलिनी की तरह सत्ताप्रिय! बाहर और भीतर वह भारतीय संस्कृति की सुन्दर प्रतिमूर्ति है। लक्ष्मण की-सी वीरोचित और युवकोचित आतुरता के साथ-साथ उसमें राम की-सी धीरोचित गम्भीरता भी है।

ये सब बातें एक ही दिशा की ओर संकेत करती हैं और वह यह कि जवाहर का दूसरा सबसे बड़ा जौहर यह है कि वह गांधी के आध्यात्मिक साम्यवाद का भौतिक साम्यवाद से सामञ्जस्य स्थापित कर रहा है और इतने सुचारु ढंग से कि दोनों का राग कभी बेसुरा नहीं होता।

परलोक का वर्णन

'जयाजी प्रताप' में इँग्लेंड के एक प्रसिद्ध लेखक श्री डेनिस ब्रेडले ने मृत्यु के बाद की परलोक से भेजी हुई कुछ बातें प्रकाशित हुई हैं। 'सरस्वती' के पाठकों के मनोरञ्जन के लिए हम उसे यहाँ उद्धृत करते हैं—

अपनी मृत्यु के पहले श्री डेनिस ब्रेडले ने अपने कुटुम्बियों से वादा किया था कि देहावसान के पश्चात् मैं परलोक की कुछ बातें बताऊँगा। उनकी अचानक मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् उनके पुत्र के सामने एक माध्यम—द्वारा डेनिस ब्रेडले ने कुछ प्रश्नों के उत्तर दिये, जो विलायत के एक प्रसिद्ध पत्र में प्रकाशित हुए हैं। उनके पुत्र श्री पेट्रिक ब्रेडले को विश्वास है कि ये उनके मृत पिता ने ही भेजे हैं।

मरने के कितने समय पश्चात् तुम (मिस्टर ब्रेडले) वहाँ पहुँच गये जहाँ तुम अब हो?

मरने से पहले मुझे वहाँ की झलक दीख पड़ी थी। जब मेरे प्राण निकल रहे थे तब मैं यहाँ आ गया था। तुम्हें याद होगा जब मैंने कहा था—यह बड़ा आश्चर्यजनक है और मैं मर गया था। उस समय मुझे इस विचित्र संसार का दृश्य दीख पड़ा था।

उस संसार का दृश्य कैसा है और वह कैसा लगता है? क्या तुम शब्दों में बयान कर सकते हो?

शब्दों में बयान करना तो आसान नहीं, किन्तु यहाँ के अनुभव ऐसे हैं जिनका मुक़ाबिला संसारी जीवन नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ समय का तो प्रश्न ही नहीं, जगह बिना सीमा के मालूम होती है।

क्या वहाँ पर रात और दिन होते हैं?

जिस इरादे से तुम पूछते हो वैसे नहीं होते। यहाँ सदा दिन अथवा प्रकाश रहता है, किन्तु कुछ अन्धेरे हिस्से भी हैं, जहाँ कोई जाना चाहे तो जा सकता है।

जाना चाहे? इससे तुम्हारा क्या आशय है? तुम कितनी तेज़ी से चल सकते हो?

यहाँ विचार से चलना होता है। कहीं जाने का विचार करो और तुम वहाँ पर हो। फ़ासला और समय कोई बाधा नहीं डाल सकते। यदि कोई आत्मा संसार में आकर भारतवर्ष देखना चाहे तो एक मिनट में देख सकता है और दूसरे मिनट में लन्दन पहुँच सकता है।

क्या आत्मायें चलती-फिरती नज़र आती हैं? अगर आती हैं तो क्या वे वायु पर चलती हैं या और किसी चीज़ पर?

मनुष्य और आत्मा में यह अन्तर है कि आत्मा स्वतन्त्र है और मनुष्य एक आत्मा है जो कि शरीर के कारावास में बन्द है, अतः यहाँ पर हम कोई शारीरिक गतिविधि (Physical movements) नहीं प्रकट करते, क्योंकि कोई शरीर ही नहीं है। अगर संसार में कोई समुद्र को लाँघना चाहे तो उसकी आत्मा उसके शरीर के साथ ही जायगी। लेकिन यहाँ आत्मा को आज़ादी है, किसी समुद्र के पार जाने का विचार करना ही वहाँ पहुँचना है।

मुझे यह सब बातें सुनकर ईर्ष्या होती है। अच्छा, जब तुम अपने नये संसार में पहुँचे तब क्या किया?

मैंने इंतज़ार किया। जब कोई संसार में जन्म लेता है, शनैः शनैः वह संसार की गति से परिचित होता जाता है। और उसके गूढ़ रहस्यों को समझने लगता है। किन्तु यहाँ आकर मनुष्य को संसार से बिलकुल अलग प्रत्येक बात का अनुभव पहले से ही जान पड़ता है। स्फूर्ति और नवीनता उसे स्थान-स्थान पर जान पड़ती है।

तब तुमने क्या किया?

मुझे मेरे मित्रों ने पहचान लिया। सबसे प्रथम मुझे मेरी बहन मिली जो मेरी बड़ी सहायक हो गई है।

लेकिन तुम्हारे नये संसार में लाखों आत्मायें होंगी जो कि शताब्दियों से वहाँ जमा होती होंगी। तब वहाँ अपने परिचितों को किस प्रकार तुम पहचान लेते हो?

जो आत्मायें संसार में एक-दूसरे को जानती थीं वे तुरन्त एक-दूसरे की ओर आकर्षित हो जाती हैं। यह एक बड़ी विचित्र बात है, जो शब्दों में बताई नहीं जा सकती। मैं अपनी माता से मिल चुका हूँ और सर आर्थर केनन डायल और कोनफ्यूशश से भी। कोनफ्यूशश जो पुराने ज़माने के फ़िलासफ़र थे, एक ख़ाकी रंग का साधुओं का-सा वस्त्र धारण किये थे।

क्या आपने यह पता लगाया है कि उन मनुष्यों की आत्मायें जो कि आत्महत्या कर लेते हैं, आप लोगों में मिल जाती हैं और क्या वे वहाँ पर ख़ुश रहती हैं?

दुनिया के बाहर एक काला हवाई कुर्रा है और इन आत्माओं को जब तक कि ये अपनी दुनिया में रहने का वक़्त पूरा नहीं कर लेतीं, यहाँ पर ही रहना पड़ता है।

क्या वहाँ पर कुछ राजनैतिक तरीक़े भी काम में लाये जाते हैं जैसे कि दुनिया में हैं?

हाँ, यहाँ पर राजनैतिक सभायें हैं जो यहाँ का सारा इन्तज़ाम करती हैं। यहाँ हमेशा अमन-चैन ही रहता है, क्योंकि यहाँ कभी लड़ाई-झगड़ा नहीं होता। यहाँ किसी को कोई दुःख नहीं है। यहाँ पुराने ज़माने की गूढ़ बातों को सिखाने के लिए एक बड़ा हाल है।

गूढ़ बातों को सिखाने के लिए हाल है?

यहाँ बड़े बड़े हाल हैं, जहाँ सब प्रकार की विद्याओं पर प्रकाश डाला जाता है। समस्त आविष्कार जिनसे कि दुनिया में सनसनी फैल जाती है, यहाँ की आत्माओं को पहले से ही मालूम हो जाते हैं। यहाँ कुछ लेबोरेटरियाँ भी हैं, जहाँ आत्मायें पृथ्वी पर फैलनेवाले रोगों के इलाज का पता लगाने की कोशिश करती हैं।

क्या आत्मायें दुनिया के आदमियों से वार्तालाप करने से ख़ुश होती हैं और क्या वे हमारी मदद करने की कोशिश करती हैं?

ज़रूर, उन्हें पृथ्वी के आदमियों से बातचीत करने में अच्छा मालूम होता है और वे उनकी मदद भी करती हैं। मनुष्यों ने ही अपने नास्तिक विश्वासों की वजह से आत्माओं से बातचीत करने के रास्ते बंद कर दिये हैं। एक वक़्त ऐसा आवेगा जब आत्माओं से बातचीत करना इतना आसान हो जायगा जैसा कि वायरलेस पर बात करना।

क्या वहाँ किसी क़िस्म का संगीत भी है और अगर है तो वहाँ से आता हुआ मालूम होता है?

संगीत जो मैंने अभी तक सुना है, मालूम होता है बहुत-से क़िस्म के बाजों से निकलता है। पर मैंने अभी तक कोई बाजा देखा नहीं है, मगर मैं इसका पता लगाऊँगा और तुमको फिर बताऊँगा।

ये सब बताने के बाद ब्राडले की आत्मा ने अपने पुत्र से बातचीत करने की इच्छा प्रकट की और उन्होंने अपने पुत्र से बहुत-सी ख़ानगी बातों पर वार्तालाप किया और अन्तिम विदा ली।

कौन अधिक समय तक जीता है—पशु-पक्षी या मनुष्य?

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक डाक्टर हेमचन्द्र जोशी और उनके भाई श्री इलाचन्द्र जोशी ने 'कलकत्ते' से 'विश्ववाणी' नाम की एक सुन्दर साप्ताहिक पत्रिका निकाली है। यह पत्रिका कई महीने से निकल रही है और अपने ढंग की एक है। इसके हाल के अंक में एक लेख पशु-पक्षी तथा मनुष्य की आयु का तुलनात्मक विवरण दिया गया है। उसका एक मनोरञ्जक अंश यह है—

बड़े आश्चर्य की बात है कि मानव-प्राणी अपने ज्ञान-विज्ञान के मद से ऐसा इतराया हुआ है कि अन्य प्राणियों को अत्यन्त तुच्छता की दृष्टि से देखता है, पर अभी तक

अपने स्वास्थ्य की उन्नति तथा दीर्घायु के सम्बन्ध में तनिक भी पशु-पक्षियों से आगे नहीं बढ़ा है। पशु-पक्षियों की बात तो दूर रही, छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े भी बहुधा मनुष्य की अपेक्षा दीर्घकाल तक जीवित रहते पाये गये हैं। एक अत्यन्त तुच्छ-जाति के क्षुद्र समुद्री कीड़े को ६०-७० और कभी-कभी १०० वर्ष तक जीवित रहते देखा गया है। हेम्बर्ग के एक वैज्ञानिक ने इस कीड़े को पानी से भरे हुए शीशे के एक बर्तन में ५० वर्ष से भी अधिक समय तक जीवित रक्खा था।

मछलियाँ दीर्घ काल तक जीवित रहती हैं। वाम मछली ६० वर्ष तक जीवित रहती है। सामन मछली १०० साल से भी अधिक समय तक ज़िन्दा रह सकती है। 'पाइक' जाति की मछली की आयु २०० वर्ष से अधिक होती है। इस जाति की एक मछली के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह २६७ वर्ष तक जीवित रही थी। पेरिस के एक तालाब की एक विशेष जाति की मछलियों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे सैकड़ों वर्षों से ज़िन्दा हैं।

मेंढक ३०-४० वर्ष तक जीवित रह सकते हैं। घड़ियालों की आयु भी दीर्घ होती है। पेरिस के एक अजायब-घर में कुछ घड़ियाल ऐसे हैं जिनकी अवस्था ७० वर्ष के क़रीब हो चुकी है, अभी तक उनमें बुढ़ापे का कोई चिह्न नहीं दिखाई देता। कछुओं की आयु घड़ियालों से भी लम्बी होती है। २०० वर्ष तक इनमें बुढ़ापा नहीं आता। कलकत्ते की पशुशाला में दो कछुए ऐसे हैं जिनकी आयु १०० वर्ष के क़रीब पहुँच चुकी है।

कछुओं के दीर्घ जीवन का एक कारण यह बताया जाता है कि उनके दिल की धड़कन बहुत धीमी होती है। पर यह कुछ ज़रूरी नहीं है। क्योंकि चिड़ियों के हृदय की धड़कन बहुत तेज़ होती है, तथापि उनकी आयु काफ़ी लम्बी होती है। तोतों के सम्बन्ध में यह देखा गया है कि यदि किसी अप्राकृतिक कारण से उनकी मृत्यु न हुई तो वे ८० या १०० वर्ष तक जीवित रह सकते हैं। हंस के सम्बन्ध में यह योरपीय कहावत प्रसिद्ध है कि वह तीन सौ वर्ष तक जीवित रहता है। यद्यपि इस कहावत की प्रामाणिकता के कोई वास्तविक उदाहरण अभी तक नहीं पाये गये हैं, तथापि यह निश्चित है कि हंस की उम्र काफ़ी बड़ी होती है। कौवे ७० या ८० वर्ष तक ज़िन्दा रहते हैं। गिद्धों को १०० से अधिक की आयु को पहुँचते देखा गया है। वियेना के प्राचीन शाही बाग़ में एक गिद्ध ११८ वर्ष की आयु में मरा था। एक बाज़ के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह १६२ वर्ष तक जिया था।

ब्रिटिश साम्राज्य की साम्राज्ञी कौन होगी ?

सम्राट् अष्टम एडवर्ड शादी करेंगे या आजीवन कुँआरे रहेंगे? यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर आज-कल इँग्लेंड के समाचार-पत्रों में खूब लिखा-पढ़ी हो रही है। विदेशी पत्रों के आधार पर 'नव-युग' में इस सम्बन्ध में कुछ ज्ञातव्य बातें प्रकाशित हुई हैं, जिन्हें हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

राजा एडवर्ड अष्टम अविवाहित दशा में राजगद्दी पर बैठे हैं। द्वितीय विलियम, प्रथम हेनरी, तृतीय हेनरी, द्वितीय रिचार्ड, पंचम हेनरी, सप्तम हेनरी, छठा एडवर्ड, एलिज़ाबेथ, प्रथम चार्ल्स, तृतीय जार्ज तथा वर्तमान सम्राट् की दादी विक्टोरिया ये सब अविवाहित ही राजगद्दी पर बैठे थे।

इन सबमें से केवल विलियम छठा एडवर्ड तथा एलिज़ाबेथ अन्त तक अविवाहित ही रहे थे।

विवाह के नियम

यदि वर्तमान राजा विवाह करना चाहें तो उन्हें १७७२ के राजवंश के विवाह के नियमानुसार ही विवाह करना पड़ेगा। तृतीय जार्ज-द्वारा बनाये हुए इस नियम का आशय यह था कि उत्तराधिकारी के अधिकारों पर भविष्य में कोई अनिष्ट न होने पावे।

इस नियमानुसार राज-कुटुम्ब के सभ्य २५ वर्ष की वय से पहले तथा राजा की अनुमति के बिना शादी नहीं कर सकते।

सम्राट् के अलावा अन्य सब राज-कुटुम्ब के लोगों की शादी की आज्ञा पार्लियामेंट से मिलनी चाहिए। इस प्रकार शादी की सूचना प्रिवी कौंसिल को मिलनी चाहिए तथा कोई भी राजवंशी सभ्य प्रिवी कौंसिल की ग्रेट सील में सम्राट् के हस्ताक्षर के बिना शादी नहीं कर सकता।

सम्राट् रोमन कैथोलिक से शादी नहीं कर सकता, यदि कर ले तो उसको राजगद्दी छोड़नी पड़ेगी।

रूढ़ि के अनुसार सम्राट् को किसी राजवंशी स्त्री के साथ शादी करनी चाहिए। परन्तु विवाह के नियमों में इस बात पर कोई प्रतिबंध नहीं है। शायद इस पर प्रतिबन्ध न लगाने का कारण प्रजाकीय भावना की उत्तेजना के लिए किया हो।

सम्राट् की इच्छा हो तो वह सामान्य कुलोत्पन्न किसी कुमारिका से भी शादी कर सकता है। अष्टम हेनरी ने चार आम स्त्रियों के साथ शादी की थी। तृतीय रिचार्ड ने वीर बीकनी आन के साथ शादी की थी। चतुर्थ एडवर्ड ने विधवा एलिज़ाबेथ वुडवील के साथ शादी की थी।

रानी विक्टोरिया ने अलबर्ट के साथ शादी की थी। शादी की इच्छा रानी विक्टोरिया की तरफ़ से प्रकट की गई थी। जब प्रिवी कौंसिल को सूचना देने का समय आया उस समय एक मित्र ने कहा, 'आप लोग घबराइए नहीं।' उत्तर में रानी विक्टोरिया ने कहा—अलबर्ट के सामने शादी का प्रस्ताव रखने का कार्य रहस्य-पूर्ण है।

जाननेवाले लोग जानते हैं कि यदि सम्राट् एडवर्ड को शादी करनी होती तो कभी कर चुके होते। तथापि अनेक तर्क-वितर्क हो रहे हैं। ऐसी कितनी राजकुमारियाँ हैं जो इँग्लेंड की भावी रानी बन सकती हैं।

हालेंड की प्रिन्सेस जुली आना इस लिस्ट में नहीं आ सकतीं, क्योंकि वे डच राजगद्दी की उत्तराधिकारिणी हैं, अतः उनके पति को उनके साथ ही रहना पड़ेगा।

इसके बाद ग्रीस की तीन राजकुमारियाँ हैं। सुन्दर इरीन कैन्टना डचेस की किसी दूर के रिश्ते से बहन लगती है। रूमानिया की महारानी की वह बहन लगती है। इसकी उमर ३१ वर्ष की है। इसके सुनहरी बाल हैं तथा आँखें भूरी हैं। फ़िलिप डी लाजनों ने इसका चित्र खींचा था। इसका कंठ मधुर है। यह बहुत-सी भाषायें जानती है।

१९३२ में जब इरीन अपने भाई ग्रीस के वर्तमान राजा के साथ स्काटलेंड में राजा से मिलने गई थीं इसने अपनी बहन के साथ ब्रिटेन में थर्ड क्लास में स[फ़र] किया था।

इरीन की छोटी बहन केथेराइन की उमर २३ [वर्ष] की है। उसने ग्रेम्लीनी के एक गवर्नेस की देख-रेख [में] शिक्षा ग्रहण की है। राजकुमारी मरीना के विवाह-प्रसं[ग] पर इरीन तथा केथेराइन मरीना की सखियों की है[सियत] से गई थीं।

इन दोनों बहनों के साथ उस प्रसंग पर ग्रीस के रा[जा] जार्ज की २७ वर्ष की पुत्री युजेनीआ भी उपस्थित थी। चार वर्ष पहले सम्राट् एडवर्ड उसको डेन्मार्क में मिले थे। उसके बालों का रंग काला है। उसकी आँखें भी काल[ी] हैं। उसको खेल-कूद का बड़ा भारी शौक है।

इसके उपरांत २३ वर्ष की रशिया की ग्रांड डचे[स] कीरा है। वह रशिया के बेताज-बादशाह ज़ार ड्यूक सीरि[ल] की पुत्री है।

नाज़ुक कीरा का जीवन अभी तक दुःखमय गुज़रा है। रशिया की क्रांति के समय इसको भागना पड़ा था। ... के राजकुमार से उसका प्रेम था, ऐसा कहा जाता है। यह अच्छी गायिका है। इसने काफ़ी सफ़र किया है।

उपर्युक्त उमर की स्केन्डेनेविया की एक ही राजकुमारी अविवाहित है। इसका नाम एलेकज़ांडरीन है। इसकी उमर २१ वर्ष की है। डेन्मार्क के राजा क्रिश्चियन की भतीजी है। इसके बाद केवल एक ही राजकुमारी रहती है जो ग्रंसविक लुम्यर्स की फ़्रेडरिका है। इसकी उमर २० वर्ष की है। यह क़ैसर की पौत्री है। यह रानी विक्टोरिया की प्रपौत्री भी होती है।

सम्राट् एडवर्ड अष्टम के लिए इतनी राजकुमारियाँ हैं।

यदि सम्राट् एडवर्ड प्रेम में फँस कर अपनी प्रजा को रानी दें तो इससे ब्रिटिश प्रजा अत्यन्त खुश होगी।

देखें! सम्राट् कब अपनी प्रजा की उत्कट इच्छा पूर्ण करते हैं।

कुछ इधर उधर की

गत १५ अप्रेल को अयोध्या में अखिल भारतीय वैष्णव-धर्म-महामण्डल की एक विशेष परिषद् श्री रामचरणदास महाराज की अध्यक्षता में हुई। इस परिषद् में लगभग ५,००० वैष्णव सम्मिलित हुए थे, जिनमें सैकड़ों महन्त और साधु थे। इस परिषद् में सबसे अधिक ज़ोर अस्पृश्यता-निवारण पर दिया गया। इस सम्बन्ध में महन्तों ने तो और अधिक उत्साह दिखाया, यहाँ तक कि उन्होंने अपने मंदिरों को हरिजनों के लिए खोल देने की घोषणा कर दी है। वैष्णव-धर्म-महामण्डल के इस कार्य की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

× × × ×

बहुत-से लोगों को यह शिकायत है कि हिन्दुस्तान से धार्मिकता का भाव उठता जा रहा है। इसका एक-मात्र कारण यह है कि हमारे धर्म के बाह्य आचार हमारे देश और समाज की नवीन प्रवृत्तियों के अनुकूल नहीं हैं। यदि हम उनको नवीन रूप दे दें तो वे फिर सजीव और आकर्षक हो उठें। अयोध्या के वैष्णवों ने इसका एक नमूना हमारे सामने उपस्थित किया है। वास्तव में साधु और महन्त समाज के नेता रहे हैं। उन्हें तो सुधारों की ओर सबसे पहले क़दम बढ़ाना चाहिए।

× × × ×

अस्पृश्यता-निवारण का इतना देशव्यापी आन्दोलन होते हुए भी कहीं कहीं हरिजनों पर अमानुषिक अत्याचार हो ही जाते हैं। उदाहरण के लिए जयपुर-रियासत की निज़ामाबाद-तहसील के चस्वारा नामक गाँव में उन्हें घी खाते देखकर उच्च जातीय हिन्दू भड़क उठे। हरिजनों को घी खाते देखना वे सहन नहीं कर सके। क़िस्सा यों है कि कुछ हरिजन गंगास्नान के बाद सहभोज में खाने बैठे और उन्हें घी भी दिया गया। सवर्णों ने उन्हें घी खाने से रोका और जब वे न माने तब उनका भोजन छीन लिया और उन्हें पीटना शुरू किया। यह एक नये प्रकार की धार्मिक माँग है, जो पहले-पहल सुनने में आई है।

× × × ×

ऐसी ही वे भी धार्मिक माँगें हैं जिनको लेकर कुछ नामधारी सनातनी ज़मीन-आसमान एक किये दे रहे हैं। कहते हैं, इन सनातनियों के एक दल ने स्वामी लालनाथ के नेतृत्व में लखनऊ के कांग्रेस-पंडाल पर गत १३ अप्रेल को धावा बोला था। उनकी माँग शायद यह थी कि कांग्रेस यह घोषणा कर दे कि वह धार्मिक मामलों में न पड़ेगी। पंडित जवाहरलाल नेहरू को जब इसकी सूचना मिली तब वे मुस्कराते हुए बोले—"कुछ सनातनी इस पंडाल पर क़ब्ज़ा करने आ रहे हैं, ठीक वैसे ही जैसे मुसोलिनी ने रोम पर किया था।" पर उपस्थित लोग इन सनातनियों की प्रतीक्षा ही करते रह गये।

× × × ×

बाद को मालूम हुआ कि सनातनी पहले दिन स्वामी लालनाथ के नेतृत्व में और दूसरे दिन उनके चेलों के नेतृत्व में कांग्रेस-पंडाल तक गये थे और उस द्वार से उसके अन्दर घुसने की कोशिश की जिधर से स्त्रियाँ जाती थीं। शायद इन्होंने सोचा हो कि वालंटियर उन्हें भी स्त्री समझेंगे और छोड़ देंगे या शायद यह सोचा हो कि वहाँ महिला-स्वयंसेविकायें होंगी और उन्हें बलपूर्वक द्वार से हटा देना आसान होगा। पर जब वे उन स्वयंसेविकाओं को हटा नहीं सके तब द्वार पर लेट गये। उसी समय किसी ने कहा कि यहाँ जो वालंटियर आ गये हैं उनमें कुछ हरिजन भी हैं। बेचारे सनातनी यह सुनते ही भाग खड़े हुए कि ये हरिजन उन्हें छू न लें। धर्म की मर्यादा का क्या सुन्दर स्वरूप दिखाया। कहते हैं, चलते-चलाते इन सनातनियों ने स्वयं-सेविकाओं के डंडे छीनने की कोशिश की और कहा कि स्त्री को हथियार नहीं बाँधना चाहिए। पर भीड़ को जब उत्तेजित होते देखा तब अपनी इस हरकत से बाज़ आये और चुपचाप वहाँ से चले भी गये। अब सोचने की बात यह है कि ऐसे आदमियों के हाथ में धर्म कब तक और कैसे सुरक्षित रह सकता है।

× × × ×

'प्रताप' के कांग्रेस-अङ्क में हिन्दी के एक परमप्रतापी लेखक ने उर्दू-साहित्य की प्रगति पर एक ज़ोरदार लेख लिखा है और बताया है कि इस समय उर्दू में जो जाग्रति और कर्म-परायणता है वह कहीं देखने को नहीं मिलती। इस सिलसिले में हिन्दी की आपने बड़ी निन्दा की है और लेख को निम्नलिखित सुन्दर शब्दों से समाप्त किया है—"और यहाँ हिन्दी संसार में गाली-गलौज, छिद्रान्वेषण और ईर्षा-द्वेष का राज है। यहाँ अभी तक यही हो रहा है कि अमुक लेखक ने अमुक का लेख चुरा लिया, अमुक सम्पादक निन्दनीय है। जो विद्वान् हैं, जिनमें प्रतिभा और प्रकाश है, वे हिन्दी की बात नहीं पूछते। खोखले दिमाग़वालों के हाथों में पड़ा हुआ हिन्दी-साहित्य प्रकाश और ताज़ा हवा न पाकर पीला और निर्जीव हुआ जा रहा है।"

अब प्रश्न यह है कि क्या इस लेख के लेखक ने जो बातें कही हैं वे व्यक्तिगत अनुभव पर अवलम्बित हैं। यदि व्यक्तिगत अनुभव पर लेखक ने यह सब लिखा है तो हमें लेख के साथ सहानुभूति है। यदि लेखक महोदय उन विद्वानों और प्रतिभावानों की एक सूची दे देते जो हिन्दी की बात नहीं पूछते तो उत्तम होता।

× × × ×

गांधी, टैगोर, जवाहरलाल, बाबू राजेन्द्रप्रसाद, मुंशी कन्हैयालाल आदि की गिनती शायद विद्वानों में भी की जायगी और प्रतिभावानों में भी। पर ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि ये लोग हिन्दी की बात नहीं पूछते। टैगोर अपने विश्वभारती में हिन्दी के लेखकों को बुला बुलाकर उनके व्याख्यान सुनते हैं। गांधी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के आजकल सभापति हैं। जवाहरलाल हिन्दी की पत्रिकाओं में लेख लिख रहे हैं। बाबू राजेन्द्रप्रसाद हिंन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति होने जा रहे हैं। श्रीयुत मुन्शी कन्हैयालाल हिन्दी में एक मासिक पत्र निकाल रहे हैं। क्या यह हिन्दी की बात पूछना नहीं हुआ? क्या बात किसी और तरह पूछी जाती है? पर 'प्रताप' के इस प्रतापी लेखक को तो शायद यह सिद्ध करना है कि हिन्दीवालों का दिमाग़ खोखला है। धन्य है!

× × × ×

लाहौर के श्री बनारसीदास गोपाल ने पंजाब-विश्वविद्यालय के एक प्रश्न-पत्र की ग़लत हिन्दी के सम्बन्ध में 'हिन्दी-मिलाप' में एक मनोरंजक पत्र छपवाया है। उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

"इस वर्ष पञ्जाब-यूनिवर्सिटी की अङ्गरेज़ी पेपर बी के अनुवाद के हिन्दी का जो "पीस" आया है वह नीचे उद्धृत किया जाता है—

"श्रीमाण जी हम अब जब तक जीयेंगे आपका साथ देंगे। व आपके विरोधियों को अपनी वैरी मानेंगे ४'

"ऐसा प्रतीत होता है कि परीक्षक महोदय ने किसी उर्दू-पुस्तक से एक पाठ निकाल कर अपनी सुपुत्री को दे दिया कि बेटी ज़रा इसका हिन्दी अनुवाद तो कर दो। यह नहीं सोचा कि बेटी गुनगुना कर बोलती है। 'देंगें' और 'मानेंगें' शब्दों में 'गे' के ऊपर जो अनुस्वार लगा है वह उस लड़की के नासिका-दोष का परिणाम है।

"आश्चर्य तो इस बात पर है कि जब हिंदी नहीं आती तो अनुवाद के लिए हिंदी पाठ देने का साहस ही क्यों किया जाता है। परीक्षार्थियों का क्या हाल होगा यह पाठकगण स्वयं ही विचार लें। अन्त में यूनिवर्सिटी के अधिकारिवर्ग से सविनय प्रार्थना है कि इस अवतरण पर किसी विद्वान् की सम्मति लेकर विद्यार्थियों को अन्याय से बचायें।"

लेखक की शिकायत उचित ही है।

पाठकों के पत्र

विरोधाभास

आज-कल की हिन्दी की कविताओं में विरोधाभास बहुत मिलता है। इसका कारण इसके सिवा और क्या हो सकता है कि आज-कल के कवि अलङ्कार-शास्त्र का अध्ययन नहीं करते। इसका सबसे सुन्दर उदाहरण 'सरस्वती' के ही गताङ्क में प्रकाशित श्री युत प्रो॰ मनोरञ्जन एम॰ए॰ की परिवर्तनशीर्षक कविता है। आपने एक सूची उन चीज़ों की तैयार की है जो आपके 'सूने से नभ में' आती हैं। इनमें बादल, बिजली, सूरज, चन्दा, उषा, अँधेरा, उजाला, तारे, दिन-रात सभी आ गये हैं। अब पता नहीं अभी और कौन-सी चीज़ बाक़ी है जिसके बग़ैर आपका नभ सूना है। इसी को कहते हैं विरोधाभास। आशा है, प्रोफ़ेसर साहब इधर ध्यान देंगे और आइन्दा पाठकों को इस प्रकार बेवक़ूफ़ बनाने की चेष्टा नहीं करेंगे।

—भालचन्द्रशर्मा, कान्ती

भारतीय ग्रामीण ऋणसमस्या

इस बार अप्रैल की 'सरस्वती' में भारतीय ग्रामीण ऋणसमस्या शीर्षक एक सुन्दर लेख प्रकाशित हुआ है। कृपया विद्वान् लेखक को मेरी ओर से बधाई दीजिए। वास्तव में ग्रामीणों के उद्धार का इसके सिवा कि वे शीघ्र ऋण-मुक्त कर दिये जायँ और कोई तरीक़ा नहीं है। चाहे यह ऋण सरकार अपने ऊपर ले ले, चाहे इसके भुगतान का कुछ ऐसा प्रबन्ध करे कि ग्रामीणों को यह अखरने न पावे। आशा है, इस सम्बन्ध में और भी विद्वान् लोग अपने विचार प्रकट करेंगे।

—गोपीचन्द श्रीवास्तव, लस्का

भूल-सुधार

इस वर्ष के मार्च महीने की 'सरस्वती' में कुमारी शान्तिदेवी का हाल प्रामाणिक रूप में प्रकाशित हुआ था—जिसमें चौबे जी की पत्नी लुगदीदेवी के स्वर्गवास की तिथि ४ अक्टूबर सन् १९२५ और देहलीवाली शांतिदेवी की जन्मतिथि ११ दिसम्बर सन् १९२५ बतलाई गई थी। अप्रैल मास की 'सरस्वती' में चौमू के श्री हनुमान शर्मा ने कुछ शास्त्र तथा आयुर्वेद आदि के प्रमाण देते हुए इस विषय में सन्देह प्रकट किया है। सम्भवतः उनका यह सन्देह सत्य होता। किन्तु जब मैंने मालूम किया तब ज्ञात हुआ कि चौबे जी की पत्नी का देहावसान तो कार्तिक कृष्ण २ संवत् १९८२ तदनुसार ता॰ ४ अक्टूबर सन् १९२५ को सुबह १०-१०॥ बजे हो गया था। किन्तु शांतिदेवी का जन्म मार्गशीर्ष सुदी ७ शनिवार ता॰ ११ दिसम्बर सन् १९२६ को दोपहर के १ बज कर ४० मिनट पर हुआ था, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि मार्च की 'सरस्वती' में सन् १९२६ के स्थान पर १९२५ प्रकाशित हो गया है, जिससे १ वर्ष का अंतर आता है। यह एक-मात्र प्रेस की भूल है। लुगदीदेवी की मृत्यु और शांतिदेवी के जन्म में १ वर्ष और लगभग ५० दिन का अंतर है, न कि पैंसठ दिन का।

—रामस्वरूप गर्ग, अजमेर

लखनऊ की कांग्रेस



[आकाश से लिया गया मोतीनगर का एक चित्र]

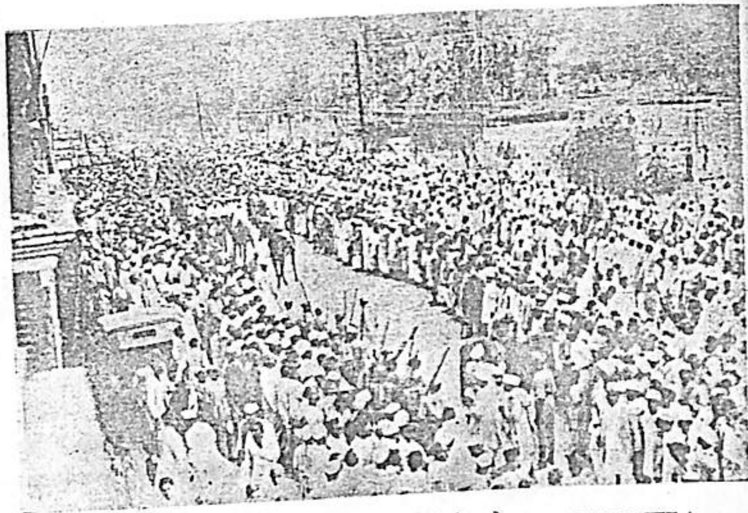
लेखक, श्रीनाथसिंह

लखनऊ के कांग्रेसमैनों की आपसी फूट के कारण बहुत-से लोगों की यह धारणा हो चली थी कि इस बार लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन होना असम्भव है। बहुत-से लोग अन्यत्र कांग्रेस करने की बात भी सोचने लगे थे। अकेले लखनऊ के ऊपर ज़िम्मेदारी होती तो वहाँ कांग्रेस का अधिवेशन होना वास्तव में सर्वथा असम्भव हो जाता, पर यह प्रश्न था संयुक्त-प्रान्त के सम्मान का, क्योंकि इसी प्रान्त ने लखनऊ में कांग्रेस को आमंत्रित किया था। इसलिए इस प्रान्त के कांग्रेसी नेताओं ने लखनऊवालों के पारस्परिक मतभेद को अपने प्रभाव से दबाने का प्रयत्न किया और जो कुछ समय बच रहा था उसके भीतर उन्होंने इस महोत्सव की व्यवस्था की। प्रान्तीय नेताओं के प्रयत्न से बनी हुई नवीन स्वागत-समिति ने थोड़े समय में जो कुछ कर दिखाया उसके लिए उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। लखनऊ-स्टेशन के पास ही दूर तक फैली हुई बेकार ऊँची-नीची कुछ भूमि और कुछ खेत थे। लखनऊ की दृष्टि से यह सबसे ख़राब ज़मीन कही जा सकती है। पर जल्दी में और कोई चुनाव न कर सकने के कारण स्वागत-समिति ने उसी से संतोष किया और देखते ही देखते उसे एक परम आकर्षक और प्रकाशमान बस्ती के रूप में परिणत कर दिया, जिसका नाम उसने स्वर्गीय राष्ट्रनेता पंडित मोतीलाल नेहरू के नाम पर 'मोती-नगर' रक्खा। यहाँ चौड़े रास्ते निकाले गये, बिजली और टेलीफ़ोन के तार लगाये गये, पानी के नल बिछाये गये, प्रतिनिधियों और दर्शकों के लिए निवास-स्थान बनाये गये और आराम और सुविधा के सब आवश्यक साधनों की भी सुविधा की गई।

परन्तु लखनऊवालों का पारस्परिक वैमनस्य इस सुन्दर मोती-नगर में गर्द, आँधी और धूप के रूप में प्रकट हुआ, जिससे आगन्तुकों को बेहद कष्ट का सामना करना पड़ा। पानी का यथेष्ट प्रबन्ध था। नलों में दिन भर पानी आता था और रास्तों में पानी की बैलगाड़ियों-द्वारा बराबर पानी का छिड़काव होता रहता था, फिर भी भूमि इतनी प्यासी थी और धूप इतनी तेज़ थी कि गर्द दबाई नहीं जा सकी और वह अन्त तक लोगों को परेशान करती रही।

कराची में जिस स्थान पर कांग्रेस हुई थी वह स्थान लखनऊ के इस स्थान से भी अधिक शुष्क था, पर वहाँ की स्वागत-समिति ने स्थान स्थान पर हरी घास और फ़ौवारे लगाकर उसे परम रमणीक बना दिया था। लखनऊ में भी यह सब किया जा सकता था, पर कदाचित् इसके लिए समय नहीं था। ढूँढ़ने से भी कहीं हरियाली न मिलती थी। कुछ गिनती के गमले मुख्य पंडाल और प्रदर्शनी के बीच में स्थापित पंडित मोतीलाल नेहरू की मूर्ति के चारों तरफ़ रक्खे थे और उनके पीछे एक बीमा-कम्पनी ने अपना विज्ञापन करने के उद्देश से एक फ़ौवारा लगवा दिया था। लखनऊ के उस गर्द-गुब्बार के बीच में यही दो वस्तुएँ आँखों को शीतलता प्रदान करने के लिए यथेष्ट समझी गई थीं। लखनऊ अपनी हरियाली और बाग़-बग़ीचों के लिए प्रसिद्ध है, पर मोतीनगर में मानो ये सब चीज़ें वर्जित थीं।

प्रदर्शनी की बाहरी दीवार पर ग्राम-धन्धों का परिचय देनेवाली तसवीरों की क़तार की क़तार अङ्कित की गई थी, पर वे भी मटमैले रंग की थीं और उस स्थान को रेगिस्तानी रूप देने में सहायक हो रही थीं। इस प्रकार देखने में ही नहीं, दिन की गर्मी और रात की ठंडक का अनुभव करने से भी वह स्थान मरु-भूमि-सा प्रतीत होता था। पर उसके भीतर जो चहल-पहलमय जीवन आरम्भ हुआ था वह उतना ही सरस और आकर्षक था इसलिए लोग यह अभाव तुरन्त भूल जाते थे। तो भी लोगों का कहना है कि यदि लखनऊवालों का आपसी वैमनस्य इस गहराई तक न पहुँच जाता तो मोतीनगर की कुछ और ही शान होती।



[लखनऊ शहर में राष्ट्रपति के स्वागत में निकाले गये जलूस का एक दृश्य। कहते हैं यह जलूस अभूतपूर्व था।]

धूप के कारण दिन में मोतीनगर में प्रायः सन्नाटा-सा छाया रहता था। ग्राम-उद्योग-प्रदर्शनी सवेरे-शाम खुलती थी और अधिकतर दूकानें भी दिन में बन्द रहती थीं। पर ज्यों-ज्यों धूप मंद पड़ने लगती थी, चहल-पहल बढ़ने लगती थी और शाम होते ही चारों तरफ़ बिखरी हुई बिजली की अगणित बत्तियाँ चमचमा उठती थीं, जिससे यह स्थान सचमुच मोतियों का नगर बन जाता था। उस समय लखनऊ के निवासियों का भी मोतीनगर में रेला होता था और इतनी भीड़ होती थी कि राह चलना मुश्किल हो जाता था। यह भीड़ प्रायः १२ बजे रात तक रहती थी और कुछ दूकानें तो दो बजे रात तक खुली रहती थीं।



[कुछ प्रमुख स्वयं-सेविकाएँ।]



[ज़नाना पार्क लखनऊ में स्वयंसेविकाओं की क़वायद। प्रधान नेत्री श्रीमती मोहिया खाँ दाहिनी ओर खड़ी हैं।]

ग्राम-उद्योग-प्रदर्शनी में प्रवेश चार आने के टिकट पर होता था। तो भी प्रदर्शनी के अन्दर बेहद भीड़ होती थी। इस प्रदर्शनी का उद्देश यह दिखाना था कि भारत के ग्रामों में अभी कहाँ कौन-से उद्योग-धंधे बाक़ी हैं और जब भारत में ग्रामीण जनता स्वावलम्बी थी तब उसकी क्या स्थिति थी। इसके लिए भारत के गाँवों में बनी हुई बहुत-सी चीज़ें लाकर यहाँ प्रदर्शित की गई थीं। पहले यहाँ कैसे महीन सूती कपड़े बनते थे, इसके भी कुछ नमूने खादी-विभाग में रक्खे गये थे। प्रदर्शनी में स्वदेशी वस्तुओं की बहुत-सी दूकानों के अलावा एक विशाल पंडाल भी था, जिसमें किसी-न-किसी का भाषण, या नृत्य या कविसम्मेलन या मुशायरा हुआ करता था। इस सिलसिले में भी बहुत-से लोग प्रदर्शनी में पहुँच जाते थे।

कांग्रेस का महत्त्व एक राष्ट्रीय मेला लगाने में ही नहीं है। उसकी सफलता या असफलता उन राजनैतिक विचारों और निर्णयों पर निर्भर है जो ऐसे अवसरों पर राष्ट्र के नेता जनता के सामने रखते हैं। लखनऊ-कांग्रेस पर



[ग्रामोद्योग प्रदर्शनी में महात्मा गांधी।]

हमें इस दृष्टि से भी विचार करना है।

यों तो सदा की भाँति इस वर्ष भी कांग्रेस ने बहुत-से उपयोगी प्रस्ताव पास किये हैं, पर मुख्य प्रस्ताव जिससे कांग्रेस के कार्य-क्रम में बहुत कुछ परिवर्तन होने की सम्भावना है, यह था कि कांग्रेस देश पर जो नवीन शासन-विधान लादा गया है उसको विफल बनाने के लिए क्या करे; वह कौंसिलों में जाय या न जाय, नवीन शासन-विधान में पद स्वीकार करे या न करे। कांग्रेस की कार्य्य-समिति में इस



[सेनापति श्री सम्पूर्णानन्द जी स्वयं-सेवक दल के पदाधिकारियों का महात्मा गांधी से परिचय करा रहे हैं।]



[राष्ट्रपति अपनी कुटी के द्वार पर। यह चित्र डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने खास तौर से 'सरस्वती' के लिए खींचा था।]

प्रश्न को लेकर घंटों वाद-विवाद हुआ। अन्त में कार्य-समिति ने एक प्रस्ताव इस आशय का पास किया कि कांग्रेस इस अधिवेशन में अभी कोई विचार न करे। इसे अभी छोड़ दिया जाय और समय आने पर जैसा उचित हो, किया जाय। इसका तात्पर्य यह हुआ कि इस सम्बन्ध में कांग्रेस किसी बन्धन में अभी से नहीं पड़ जाना चाहती। वह परिस्थिति के अनुसार कार्य करेगी। वह समय पड़ने पर कौंसिलों में जाकर मंत्रिपद स्वीकार भी कर सकती है और नहीं भी कर सकती। इस प्रस्ताव को लेकर विषय-निर्वाचिनी-समिति में और खुले अधिवेशन में भी बड़ी बहस रही। अन्त में यह प्रस्ताव दोनों जगहों से पास हो गया।

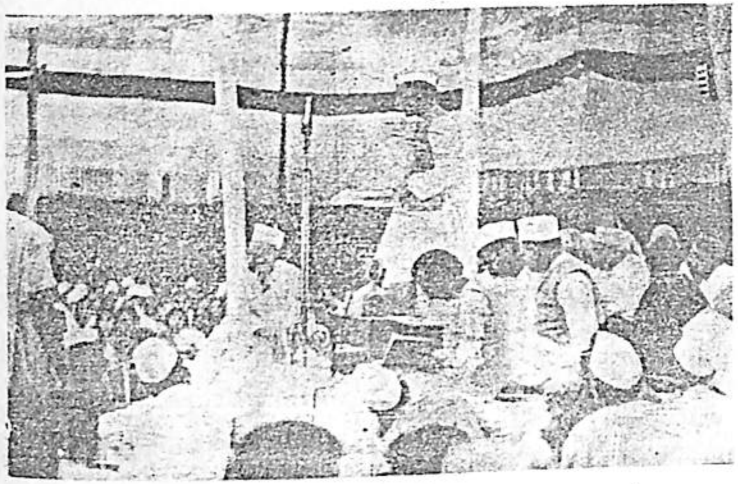
इससे यह तो अभी नहीं कहा जा सकता कि इस सम्बन्ध में कांग्रेस का क्या रुख होगा, पर इस प्रश्न को लेकर विषय-निर्वाचिनी-समिति और खुले अधिवेशन में जो भाषण हुए हैं उनसे उन प्रवृत्तियों का हम अनुमान कर सकते हैं जो इस समय देश में काम कर रही हैं। विषय-निर्वाचिनी-समिति में इस प्रश्न पर सबसे पहले मदरास के श्री सत्यमूर्ति बोले। श्री सत्यमूर्ति अच्छे वक्ता हैं। श्रोता को अपने साथ ले जाना वे जानते हैं। उनकी सम्मति यह है कि कांग्रेस कौंसिलों में जाय और पद स्वीकार करे। इस बात को उन्होंने बड़े ही ज़ोरदार और तर्कपूर्ण शब्दों में विषय-निर्वाचिनी-समिति के सामने रक्खा। उन्होंने यह कहा कि यदि कांग्रेस की आज्ञा मुझे मिनिस्टर बनने के लिए मिल गई और मैं मिनिस्टर बन गया तो मैं स्कूलों में राष्ट्रीय गानों का प्रचार करूँगा, उनकी इमारतों पर राष्ट्रीय झंडे उड़वाऊँगा, जो पाठ्यक्रम तैयार होंगे उनमें राष्ट्रीय दृष्टिकोण होगा। आपने यह भी इशारा किया कि यदि कांग्रेस ने पद न स्वीकार किया तो हाँ-हुज़ूर लोग उस पद का दुरुपयोग करेंगे और राष्ट्रीयता के बदले हमारे बालकों में गुलामी का भाव भरेंगे जिसका परिणाम यह होगा कि हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को हमारी सन्तति आगे न बढ़ा सकेगी। श्री शंकरदेव ने सत्यमूर्ति का समर्थन किया और इस बात पर ज़ोर दिया कि पद अवश्य ग्रहण करना चाहिए, उसके बिना उद्धार असम्भव है।

इन दो वक्ताओं ने विहार के स्वामी सहजानन्द को उत्तेजित कर दिया। स्वामी जी जब बोलने को खड़े हुए तब क्रोध से उनके होंठ फड़फड़ा रहे थे। गुस्से में स्वामी जी ने कांग्रेसमैनों को बहुत कुछ बुरा-भला कहा और कहा कि वे पानी की भाँति बराबर नीचे की ओर गिरते जा रहे हैं। उनसे अधिक ईमानदार तो माडरेट हैं। स्वामी जी ने इस प्रस्ताव को गंदगी से भरा घोषित किया। डाक्टर सत्यपाल ने स्वामी जी के रोष पर थोड़ा ठंडा जल-सा छिड़कते हुए कहा कि श्री सत्यमूर्ति ने हमारे सामने जो सुनहरी तसवीर रक्खी है उस पर मेरा विश्वास नहीं है, पर यह ज़रूर है कि पद-ग्रहण की नीति स्वीकार करके हम उन लोगों का जो सब तरह से हमें नुक़्सान पहुँचाते हैं और हमें बरबाद कर देना चाहते हैं, मुक़ाबिला कर सकते हैं और यह भी एक बड़ी ख़िदमत है।

बंगाल के श्री पी० सी० घोष ने इस प्रस्ताव का विरोध किया और कहा कि यह रवैया ठीक नहीं है। गत १५ वर्षों से कांग्रेस चक्कर खा रही है। वह असहयोग करती है। उससे ऊबती है तो कौंसिल में जाती है। कौंसिल से ऊबती है तो फिर असहयोग करती है। इस प्रकार हम कब तक अपनी शक्ति को बरबाद करते रहेंगे। श्री रविशङ्कर शुक्ल ने कहा कि इस प्रस्ताव को जो पद स्वीकार करने के पक्ष में हैं वे भी और जो नहीं हैं वे भी स्वीकार कर सकते हैं, क्योंकि इस प्रस्ताव से आप न कुछ स्वीकार ही करते हैं न अस्वीकार ही। इस निर्णय को अनुकूल परिस्थिति के लिए टालते हैं और फिर जब कार्य-समिति के सदस्य जिनमें महात्मा गांधी, जवाहरलाल आदि नेता हैं, यह कहते हैं कि इसे हमारे ऊपर छोड़ दो, हम समय आने पर निर्णय कर लेंगे तब हमें उनका विश्वास करना चाहिए और इसे आँख मूँद कर पास कर देना चाहिए।

कांग्रेस के सभापति पंडित जवाहरलाल नेहरू अब तक मौन थे। उनकी व्यक्तिगत सम्मति क्या है यह जानने के लिए लोग उत्सुक थे। श्री रविशङ्कर शुक्ल के वक्तव्य से लोगों ने अनुमान किया कि पंडित जवाहरलाल नेहरू भी कार्य-समिति से सहमत हैं, इसलिए पंडित जी ने इस सम्बन्ध में जनता का भ्रम दूर कर देना आवश्यक समझा। आपने इस अवसर पर जो कुछ कहा उसका सारांश यह है—"श्री रविशङ्कर ने मेरा भी ज़िक्र किया है। इससे मेरे कान खड़े हो गये हैं। मैं एक ख़ास और अजीब हालत में हूँ। मैं कल अपनी राय अपने भाषण में व्यक्त करूँगा, पर मुझे मुनासिब नहीं मालूम होता कि मैं चुप रहूँ और आप शक करें। पर आप यह न समझिए कि मैं आप पर कोई प्रभाव डालना चाहता हूँ। मैं अपने दिल को हलका करना चाहता हूँ। विवाद असल में सिद्धान्तों पर होना चाहिए। पदों को आप स्वीकार करें या नहीं। इस बहस में यह बात छिपी है कि आप अगर उसको लेना चाहते हैं तो आप मानो उस तरफ़ से अपना मुँह मोड़ते हैं, जिधर कांग्रेस पिछले १५ वर्षों से रही है। यह मेरी राय है। पर हमारे आपके सामने एक फ़र्ज़ है। वह यह कि हम कांग्रेस की ताक़त बनाये रहें, उसमें फूट न करें, क्योंकि हमारे दुश्मन बड़े बेरहम हैं। मेरी कोशिश यह रहेगी कि सब विचार के कांग्रेसमैन मिलकर एक साथ काम करें।"

श्री सुरेशचन्द्र बनर्जी और श्री विश्वम्भरदयाल त्रिपाठी इस प्रस्ताव के विरोध में बोले। पर श्री विश्वनाथम ने कहा कि पद-ग्रहण करना भी एक क्रान्तिकारी



[कांग्रेस-विषय-निर्वाचिनी समिति का एक दृश्य। पंडित जवाहरलाल नेहरू भाषण कर रहे हैं। बाबू राजेन्द्रप्रसाद, सेठ जमनालाल बजाज़, आचार्य कृपलानी, जयरामदास दौलतराम, श्रीमती सरोजनी नायडू आदि नेता मंच पर विराजमान हैं।]

काम है, क्योंकि इस नीति का अवलम्बन करके हम न तो कार्य करेंगे, न सरकार को कुछ करने देंगे। डाक्टर ख़ाँ ने कहा कि हम तो सिपाही हैं। दोनों दल मिलकर जो फ़ैसला कर दें वह हम मानने को तैयार हैं। काशी-विद्यापीठ के आचार्य नरेन्द्रदेव अस्वस्थ थे। पर आपने मानो यह अनुभव किया कि यदि यह प्रस्ताव स्वीकृत हो जायगा तो भारी अनर्थ होगा। इसलिए आप अस्वस्थ होते हुए भी विषय-निर्वाचिनी-समिति में पधारे और खड़े न हो सकने पर बैठे ही बैठे बोले—"इस प्रस्ताव को स्वीकार करके आप अपने साथ सारे देश को गुलामी के गड्ढे में डाल देंगे।" इसके बाद टी० प्रकाशन और श्री कृपलानी के भाषण हुए। कृपलानी जी ने कहा—"क्रान्तिकारी कौंसिलों में जाकर और आफ़िस लेकर भी क्रान्तिकारी बना रह सकता है। क्रान्तिकारी कार्यक्रम के लिए कौंसिलों में जाना ही नहीं पद-ग्रहण करना भी आवश्यक है। मुख्य बात तो वह शक्ति है जो आप किसी भी कार्य-क्रम में लगा सकते हैं।"

सैयद रज़ाअली ने कहा कि नये विधान में पद स्वीकार करने के लिए जो लोग लालायित हैं वे इस विधान को मौजूदा विधान से भी बुरा बता चुके हैं। और मज़ा यह देखिए कि उसी बुराई में फँसने जा रहे हैं।

प्रस्ताव के विरोधियों में से बहुतों ने कहा था कि कांग्रेस देश को भ्रम में क्यों रक्खे, उसे जो कुछ निर्णय करना हो अभी क्यों न कर दे। इसका उत्तर श्री गोविन्दवल्लभ पंत और मौलाना अबुल-कलाम आज़ाद ने दिया। पंत जी का भाषण तर्कपूर्ण था। आपके कहने का सारांश यह था कि अभी वक्त नहीं आया कि हम इसी वक्त कोई फ़ैसला कर दें। मौलाना अबुलकलाम ने कहा कि—"हम अपने हथियार दुश्मन को क्यों दिखा दें कि वह सावधान हो जाय।" इसका उत्तर पट्टाभि सीतारमैया ने दिया। ये महाशय कार्य-समिति के एक अच्छे विद्वान सदस्य हैं और इनका भाषण भी प्रभावशाली होता है। कार्य-समिति के सिर्फ़ यही एक ऐसे सदस्य थे जिन्होंने कार्य-समिति के प्रस्ताव का विरोध किया था। आपने कहा कि मौलाना ने कहा है कि अपना हथियार न दिखाओ, मानों हमारे हथियार छिपे हुए हैं—मानो हमारा सब काम खुल्लम-खुल्ला नहीं है। श्री सत्यमूर्ति की बात का जवाब देते हुए आपने कहा कि आप स्कूलों में राष्ट्रीय झंडे नहीं लगा सकते। स्कूल इन्स्पेक्टर आपकी आज्ञा नहीं मानेंगे, डाइरेक्टर आफ़ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन आपकी बात नहीं सुनेंगे। आप एक विचार रखते हैं। आपके विचार के पीछे एक भावना काम कर रही है। उसकी रक्षा होनी चाहिए।



[महात्मा गांधी, बाबू श्रीप्रकाश जी, सेठ जमनालाल बजाज़ और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद। कांग्रेस के खुले अधिवेशन में वन्दे मातरम् गान के समय खड़े होने पर।]

प्रस्ताव के विरोध में बोलनेवालों में पट्टाभि सीतारमैया का भाषण सबसे प्रभावशाली रहा और क्षण भर को ऐसा जान पड़ा जैसे उन्होंने अब तक के सारे किये-कराये पर पानी फेर दिया हो।

बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन ने श्री पट्टाभि सीतारमैया के इस वक्तव्य पर आपत्ति की। आपने कहा कि मैं इसको किसी हालत में अच्छा नहीं समझता कि जो कार्य-समिति का सदस्य हो वह उसके प्रस्ताव के ख़िलाफ़ कुछ बोले। कार्य-समिति की नीयत पर हमला करना मुनासिब नहीं है। परन्तु सभापति ने यह कहकर कि यह तो पैर में बेड़ी डालना हुआ, इस प्रश्न को टाल दिया। बिहार के बाबू मथुराप्रसाद ने कहा कि कौंसिल एक मशीन है। हमें इस मशीन को अपने क़ाबू में करना चाहिए और श्री कृष्णवल्लभसहाय ने कहा—"शब्दाडम्बर व्यर्थ है। जो करना हो साफ़ साफ़ कीजिए। पद स्वीकार कीजिए और उसके द्वारा जो हो सके रचनात्मक कार्य कीजिए।" विरोध में बोलनेवालों में श्री पटवर्धन भी थे। आपने कहा कि हम छः महीने और क्यों निद्रा में पड़े रहें। जो प्रस्ताव के पक्ष में बोले हैं वे सब आफ़िस लेने में विश्वास करते हैं।

इस प्रस्ताव के कई एक संशोधन पेश हुए थे और उनके सम्बन्ध में भी भाषण हुए थे। अन्त में बाबू राजेन्द्र-प्रसाद ने सबको उत्तर देते हुए विवाद को समाप्त किया। आपने कहा—"मैं कल से और पहले से सुन रहा हूँ कि कार्य-समिति ने जो प्रस्ताव रक्खा है उसमें वही अर्थ नहीं है, बल्कि उसके दिल में चोर है और वह आपको वक्त पर धोखा दे सकती है। इस तरह हमें एक दूसरे की नीयत पर शक नहीं करना चाहिए। हम वही फ़ैसला करेंगे जो मुल्क के लिए सबसे अच्छा होगा।"

मत लिये जाने पर सब संशोधन एक एक करके गिर गये और मूल प्रस्ताव पास हुआ।

विषय-निर्वाचिनी-समिति के बाद कांग्रेस के खुले अधिवेशन में भी इस प्रस्ताव पर लगभग ५ घंटे तक बहस हुई, जिसमें ऊपर जिनका ज़िक्र आ चुका है उनके अतिरिक्त सरदार शार्दूलसिंह, श्री सम्पूर्णानन्द, महामना मालवीय जी, सरदार वल्लभभाई पटेल आदि नेता बोले। शार्दूलसिंह ने कहा—"कांग्रेसवादी कौंसिलों में जाकर भूखी और नंगी जनता की समस्या हल नहीं कर सकते।" महामना मालवीय जी ने साम्प्रदायिक निर्णय के विरोध पर ज़ोर दिया और कहा कि "कांग्रेस ने गत ५० वर्षों के अन्दर अनिवार्य शिक्षा और कृषि-विस्तार आदि से सम्बन्ध रखनेवाली माँगें पेश कीं। आज इन माँगों की बात हमें नहीं सुनाई पड़ती, केवल झण्डा फहराने की बात सुनाई पड़ती है।" सरदार पटेल ने सखेद मालवीय जी के भाषण का विरोध किया और कहा कि "जिस समय गांधी जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह की स्वीकृति दी थी उस समय मालवीय जी ने

२० हज़ार स्वयंसेवक देने को कहा था पर वे स्वयंसेवक नहीं आये।" ख़ैर, भारी वादविवाद के बाद यह प्रस्ताव खुले अधिवेशन में भी पास हो गया।

यह विवाद बहुत लम्बा था। इसको यहाँ पूरा नहीं दिया जा सकता, पर ऊपर हमने संक्षेप में जो कुछ दिया है उससे कांग्रेस के अन्दर काम करनेवाली प्रवृत्तियों का पाठकों को परिचय मिल सकता है। बाबू राजेन्द्रप्रसाद, सरदार वल्लभभाई पटेल, आचार्य कृपलानी आदि नेता उस दल के हैं जो अब तक अपरिवर्तनवादी दल के नाम से विख्यात रहा है। कौंसिलों पर क़ब्ज़ा करने के लिए जब स्वराज्य-पार्टी का निर्माण हो रहा था तब इनमें से अधिकांश ने उसका तीव्र विरोध किया था। इससे कम-से-कम इतना तो स्पष्ट ही है कि ये लोग भी स्वराजियों की भाँति कौंसिलों में जाना आवश्यक समझ रहे हैं और बहुत सम्भव है कि वक्त पड़ने पर ये कौंसिलों में जायँ और पद भी ग्रहण करें। इसमें सन्देह नहीं कि पंडित जवाहरलाल नेहरू पद-ग्रहण की नीति के विरुद्ध हैं, पर उनके भाषण से यह स्पष्ट है कि वे कांग्रेस में फूट नहीं चाहते और वही करेंगे जिसमें सब विचार के लोग कांग्रेस में रह सकें। यह कार्य जितना कठिन है, उतना ही परिस्थिति को देखते हुए आवश्यक है, और यदि पंडित जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस की शक्ति को बिखरने से बचा सकेंगे तो यह उनकी सबसे बड़ी सफलता होगी।

लखनऊ की विषय-निर्वाचिनी-समिति का पण्डाल अब तक के उसके लिए बनाये गये पण्डालों से बहुत बड़ा था, और वह ख़ूब भर भी जाता था। पण्डाल अन्दर से बिलकुल सादा था। कांग्रेस के झण्डे का परिचय देनेवाली हरे, सफ़ेद और पीले रंग की एक लम्बी पट्टी उसके ऊपरी हिस्सों में दीवार के चारों तरफ़ लटकाई गई थी। नीचे चटाइयाँ बिछी थीं और उन पर दरियाँ पड़ी थीं। बीच में एक विशाल चबूतरा था जिस पर सभापति और कार्य-समिति के सदस्य तथा अन्य सम्मानित सदस्य बैठते थे। इनमें दिखाई पड़नेवालों में कुछ नाम ये हैं—पंडित जवाहरलाल नेहरू, बाबू राजेन्द्र-प्रसाद, महामना मालवीय जी, सरदार वल्लभभाई पटेल, श्री गंगाधरराव देशपांडे, श्री जयरामदास दौलतराम, डाक्टर अनसारी, श्रीमती सरोजनी नायडू, श्री भूलाभाई देसाई, श्री जमनालाल बजाज़, कवीश्वर शार्दूलसिंह, मिस्टर और मिसेज़ मुंशी, लाला दुनीचन्द, डाक्टर महमूद, श्री नरीमैन, मौलाना अबुलकलाम आज़ाद।

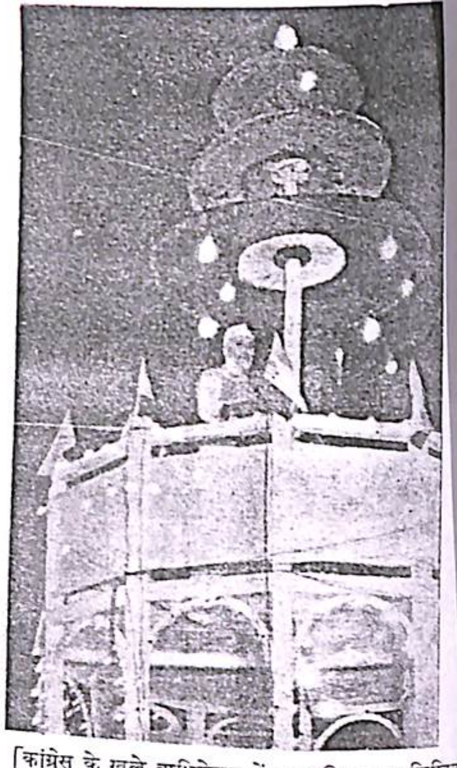
लाउड स्पीकरों का प्रबन्ध बड़ा सुन्दर था। इससे एक एक बात साफ़ साफ़ सुनाई पड़ती थी। विषय-निर्वाचिनी-समिति में उपस्थित लोगों को पानी पिलाने की बड़ी सुन्दर व्यवस्था थी। केशरिया वस्त्र धारण किये हुई स्वयं-सेविकायें लकड़ी के केसों में एक साथ आठ आठ गिलास लेकर चारों ओर पानी पहुँचाती थीं। यह प्रबन्ध लखीमपुर की जल-शाला की ओर से था। यह जलशाला उस शहर के कतिपय उत्साही नागरिकों ने क़ायम की है और उनका कहना है कि यह बड़ी सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। गर्द और धूप से बचने के लिए यह पण्डाल चारों ओर से वस्त्र और टाट से मढ़ दिया गया था, तो भी कभी कभी तेज़ हवा के झोंके इसे झकझोर देते थे और अन्दर धूल का एक हलका-सा बादल छा जाता था।

मुख्य पण्डाल बहुत बड़ा और खुला बनाया गया था। उसमें ५० हज़ार से ऊपर आदमियों के बैठने की व्यवस्था की गई थी। द्वार अत्यन्त सुन्दर बनाये गये थे और उन पर राष्ट्रीय चित्र अङ्कित थे। रात को इन द्वारों पर बड़ी सुन्दर रोशनी होती थी। द्वार से भीतर प्रवेश करने पर वृत्ताकार एक चौड़ा मार्ग मिलता था यह पण्डाल के चारों ओर गया था। इससे मोटरें अन्दर तक चली जाती थीं। यह पण्डाल बाहर एक टीन की दीवार से घिरा था। अन्दर कपड़े की दीवार का एक घेरा और था। टिकटों की जाँच-पड़ताल कई स्थानों पर होती थी। यह पण्डाल बिजली की रोशनी से जगमगाता रहता था और स्थान स्थान पर लाउड स्पीकर लगे थे। वक्ताओं के लिए बीच में एक सुन्दर मञ्च तैयार किया गया था, जिसमें हरे, सफ़ेद और पीले वस्त्रों की छतरियाँ एक के ऊपर दूसरी बड़े ही आकर्षक ढङ्ग से लगाई गई थीं। इसी पर खड़े होकर वक्ता लोग बोलते थे। और प्रायः इसी पर बैठकर पंडित जवाहरलाल नेहरू सभा का संचालन करते थे।

पहले दिन का कार्य-क्रम वन्दे मातरम् के मनोहर गायन के साथ आरम्भ हुआ। स्वागताध्यक्ष बाबू श्रीप्रकाश जी ने अपने भाषण में आगन्तुकों का स्वागत किया और कहा—"कांग्रेस के इतिहास में शायद एक ही दो बार पहले ऐसा मौक़ा पड़ा होगा जब स्वागत-कमिटी का सदर ख़ुद उस शहर का नहीं रहा जहाँ कांग्रेस का जलसा हुआ। स्वागत-कमिटी का सदर और स्वयंसेवक-दल का मुखिया बनारस यानी काशी के तीर्थस्थान से शायद इस वास्ते लाये गये हैं कि यह कहा जा सके कि गो हमारा इन्तज़ाम उन लोगों के लायक़ नहीं है जो राजाओं और नवाबों की मेहमानदारी करते रहे हैं लेकिन उनके लायक़ हो सकता है जो तीर्थयात्रियों के ही मेज़बान रहे हैं।"

पंडित जवाहरलाल नेहरू का भाषण बहुत लम्बा था, पर आपने उसे आदि से अन्त तक धैर्य के साथ पढ़ा और उपस्थित जन उसी धैर्य के साथ उसे सुनने में तल्लीन रहे। पंडित जी ने अपने भाषण में इस बात पर ज़ोर दिया कि भारतवर्ष की समस्या संसार की समस्या का एक अङ्ग है और उससे पृथक् कर वह नहीं सुलझाई जा सकती। आपने यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि संसार की समस्या और उसके साथ साथ भारत की भी एकमात्र समाजवाद के सिद्धान्तों को स्वीकार करने से हल हो सकती है। कौंसिलों में जाकर उन्हें बे-काम बना देने की नीति का आपने समर्थन किया पर पद-ग्रहण को आपने साम्राज्य-शाही के कलपुर्ज़ों के साथ शिरकत करना बतलाया। आपके भाषण का एक महत्त्वपूर्ण अंश इस प्रकार है—

हम देखते हैं कि आज-कल की दुनिया में दो बड़े बड़े गरोह हैं। एक तरफ़ साम्राज्यवाद और फ़ासिस्टवाद और दूसरी तरफ़ समाजवाद और राष्ट्रवाद। कहीं कहीं ये एक-दूसरे से कुछ मिलते-से मालूम होते हैं और उनको एकदम अलग करना मुश्किल है, क्योंकि फ़ासिस्टवाद के और साम्राज्यवाद के देशों में आपस का विरोध है और पराधीन देशों का राष्ट्रवाद कभी कभी थोड़ा-सा फ़ासिस्टवाद का रूप ले लेता है। लेकिन असल फ़र्क़ तो इन दोनों गरोहों में है, और अगर हम इसे याद रक्खें तो दुनिया की हालत और उसमें अपना स्थान समझने में हमें आसानी होगी।



[कांग्रेस के खुले अधिवेशन में राष्ट्रपति अपना लिखित भाषण पढ़ रहे हैं। यह चित्र रात को लिया गया था।]

हम लोग जो आज़ाद हिन्दुस्तान के लिए कोशिश कर रहे हैं, कहाँ हैं? ज़ाहिर है कि हम दुनिया की आगे बढ़नेवाली उन ताक़तों के साथ हैं जो साम्राज्यवाद और फ़ासिस्टवाद के ख़िलाफ़ खड़ी हैं। हमको भारत में एक साम्राज्यवाद का यानी अँगरेज़ी साम्राज्यवाद का ख़ास मुक़ाबिला करना है। यह सबसे पुराना है और आज की दुनिया में सबसे ज़्यादा फैला हुआ है। पर ताक़तवर होते हुए भी वह दुनिया के साम्राज्यवाद का केवल एक अङ्ग है। और यही हिन्दुस्तान की पूरी आज़ादी और उसका सम्बन्ध ब्रिटिश साम्राज्य से तोड़ने के लिए आख़िरी दलील है। भारत के राष्ट्रवाद में, भारत की आज़ादी में

और ब्रिटिश साम्राज्यवाद में मेल की कोई गुंजाइश नहीं है। और अगर हम इस साम्राज्यवाद के फंदे में फँसे रहेंगे तो हमारा नाम और हमारी हैसियत चाहे जो रहे और ऊपर ऊपर चाहे जितनी राजनीतिक ताक़त हमें मिल जाय, दर असल हम बँधे ही रह जायँगे, पीछे घसीटने-वाली ताक़तों से हमारा सम्बन्ध बना रहेगा और पूँजीवाद का माली स्वार्थ हमें दबाता रहेगा, आम जनता की बर-बादी इसी तरह जारी रहेगी और हमारा कोई ज़रूरी सामाजिक मसला हल न हो पायेगा। सच्ची राजनैतिक आज़ादी भी हमें कभी न मिल सकेगी, और बड़ी बड़ी सामाजिक तब्दीलियाँ तो हम कर ही न सकेंगे।

ज्यों-ज्यों यह बड़ी जंग दुनिया में फैली है, हमने देखा कि पूँजीवाद और साम्राज्यवादी देश गिरते जाते हैं और अपने को बचाने की कोशिश में सब ऐसी ताक़तों को जो कि पीछे ले जानेवाली हैं, उनको संघटित कर रहे हैं, फ़ासिस्टवाद के नाम से या नाज़ीवाद या जो 'राष्ट्रवादी' हुकूमतें कहलाती हैं। हिन्दुस्तान में भी कुछ वर्षों से हम यही ढंग देख रहे हैं और ज्यों ज्यों हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन बढ़ा है उतनी ही हमारे साम्राज्यवादी हुक्कामों ने हमारे संघटन को तोड़ने की कोशिश की है और अपने झंडे के नीचे देश को पीछे ले जानेवाली ताक़तों को इकट्ठा किया है। गोलमेज़ कान्फ़रेन्स ऐसी ही कोशिश थी। उससे हमारे हाकिमों को कुछ मदद ज़रूर मिली। हमें भी उससे एक फ़ायदा हुआ कि उन्होंने साफ़ साफ़ दिखा दिया कि देश में साम्राज्यवाद की तरफ़ कौन लोग हैं और उसके ख़िलाफ़ कौन हैं। अफ़सोस यह है कि हमने इस सबक़ से पूरा फ़ायदा नहीं उठाया। और हमको अब भी यह ख़्याल है कि हम इन साम्राज्यवादी गरोहों में से कुछ को हिन्दुस्तान की आज़ादी के हक़ में और साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ कर सकेंगे।

दूसरे दिन की कार्य्यवाही आरम्भ करते समय पंडित जी ने जलियाँवाला बाग़ की रोमाञ्चकारी घटना का ज़िक्र किया। यह घटना उसी तारीख़ को उसी समय घटी थी। पंडित जी ने उपस्थित जनता से खड़े होकर मृतकों की स्मृति में २ मिनट की ख़ामोशी की प्रार्थना की। पंडित जी की आज्ञा पाते ही ५० हज़ार से ऊपर की भीड़ तुरन्त ख़ामोश हो गई और सब लोग खड़े हो गये। उस समय इतनी ख़ामोशी छा गई थी कि पण्डाल के बाहर बहुत दूर पर एक कुएँ में डोल गिरने का शब्द पण्डाल में साफ़ साफ़ सुनाई पड़ रहा था। जो लोग विलायत से लौट कर आते हैं वे वहाँ के जनसमूहों की नियमबद्धता की बड़ी प्रशंसा करते हैं, परन्तु संगठित जन-समूह भारतवर्ष में भी चमत्कार दिखा सकते हैं। यह दो मिनट की ख़ामोशी इसका एक उत्तम उदाहरण था। दूसरे दिन का अधिवेशन दो बजे रात तक होता रहा और वह महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुआ जिसका कि हम ऊपर ज़िक्र कर आये हैं।

कांग्रेस के इस अधिवेशन में दो बातें स्पष्ट थीं। पहली तो यह कि सब विचार के कांग्रेसमैनों में समझौते की—मिलकर काम करने की—प्रवृत्ति थी। यह कदाचित् इस-लिए कि लोगों ने यह अनुभव कर लिया है कि कांग्रेस को प्रभावशाली बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें फूट न हो और उसकी शक्तियाँ बिखरने न पावें। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि इसमें किसी महान् व्यक्ति ने अपना प्रभाव डालकर किसी निर्णय को अपने इच्छानुसार स्वीकृत करवाने की चेष्टा नहीं की। महात्मा गांधी विषय-समिति में तो एक बार भी नहीं आये और खुले अधिवेशन में यद्यपि वे एक दिन उपस्थित थे, पर कुछ बोले नहीं। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी व्यक्तिगत राय प्रकट करते हुए यह स्पष्ट कह दिया था कि यह किसी पर प्रभाव डालने के लिए नहीं, बल्कि अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए मैं कह रहा हूँ। किसी ओर से कोई ज़िद नहीं थी। अल्प मतवाले कांग्रेस छोड़ने की धमकी न देकर उलटा उसमें अपना सुरक्षित स्थान बनाने का प्रयत्न कर रहे थे। इस प्रकार इस कांग्रेस ने वास्तव में वे निर्णय किये जो एक आदर्श प्रजातन्त्रात्मक संघ में हो सकते हैं और सभापति ने जिस उदारता और दूरदर्शिता के साथ नई कार्य-समिति का चुनाव किया है उससे यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि इस वर्ष सारे देश पर कांग्रेस का व्यापक प्रभाव पड़ेगा और वह उन कठिनाइयों का सामना करने में समर्थ होगी जो उसके सामने खड़ी हैं।

सम्पादकीय नोट

भारत के नये वायसराय

भारत के नये वायसराय लार्ड लिनलिथगो ने अपने गौरव-पूर्ण पद का कार्यभार १८ अप्रैल को दिल्ली में ले लिया। नया शासन-विधान आपके ही समय में कार्य में परिणत होगा। आप भारत के लिए नये नहीं हैं।



[लार्ड लिनलिथगो]

पिछले शाही कृषि-कमीशन के अध्यक्ष के रूप में आप भारत आ चुके हैं और उसके निवासियों के सबसे बड़े अंश का आवश्यक परिचय भी प्राप्त कर चुके हैं। अतएव आशा है कि कम से कम किसानों के हित के सम्बन्ध में आपके समय में कोई महत्त्व का कार्य अवश्य होगा। विलायत में किसानों के एक संघ में भाषण करते हुए आपने कहा भी है कि अगले पाँच वर्षों में वे भारतीय किसानों की भलाई का कोई स्थायी कार्य कर सकेंगे। परन्तु नये शासन-



[लेडी लिनलिथगो]

विधान के निर्माण में भी आप का पूरा हाथ रहा है। उसकी रचना के लिए पार्लियामेंट की जो ज्वाइंट सेलेक्ट कमिटी बैठी थी उसके आपही अध्यक्ष थे। अतएव उस

विधान की सारी बारीकियों से आप भले प्रकार परिचित हैं। और अब जब उक्त विधान कार्य-रूप में परिणत होगा तब इस अवसर पर आप वायसराय-पद का भार ग्रहण करने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति सिद्ध होंगे। जिन प्रतिबन्धों को भारतीय राजनीतिज्ञ सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और जिन्हें सरकारी राजनीतिज्ञ भारत के हित में बताते हैं उनकी इस गुत्थी को सुलझाने के लिए आपसे अधिक कार्यक्षम दूसरा व्यक्ति और कौन हो सकता है? ऐसी दशा में आपका वायसराय-पद के लिए निर्वाचित होना सभी दृष्टियों से उपयुक्त प्रतीत होता है। भगवान् करे, आपके शासनकाल में ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की प्रतिज्ञायें सार्थक हों तथा भारत आत्मशासन का सम्यक् अधिकार प्राप्त करे।

महायुद्ध की समस्या

जर्मनी ने लोकार्नो की सन्धि को भंग करके योरप के सन्धि-बन्धनों को शिथिल कर दिया है। सन्धि-पत्रों के विपरीत राइनलेंड में अपनी सेना भेजकर उसने प्रकट कर दिया है कि महायुद्ध के विजयी राष्ट्र पराजित राष्ट्रों को अब अधिक समय तक दबाये नहीं रख सकते। फलतः आस्ट्रिया ने भी घोषित कर दिया है कि वह भी अपनी सेना की संख्या में वृद्धि करेगा और सेंट जर्मन के सन्धिपत्र की कम से कम इस सम्बन्ध में उपेक्षा करेगा। तब तुर्की का डार्डेनेलीज़ की जल-प्रणाली में मोर्चाबन्दी की माँग करना सर्वथा उचित ही माना जायगा। इस प्रकार पिछले महायुद्ध के ये पराजित प्रमुख राष्ट्र आत्मरक्षा की दुहाई देकर महायुद्ध के बाद की गई सन्धियों को भंग करने को यत्नवान् हो रहे हैं। अवस्था से यही प्रकट होता है कि महायुद्ध के विजयी राष्ट्रों में पहले का सा ऐक्य नहीं रहा, अन्यथा इन राष्ट्रों को इस प्रकार की बातें करने का साहस न होता। यद्यपि यह निष्कर्ष अधिकांश में ठीक है, तथापि यह भी है कि महायुद्ध के विजयी राष्ट्र कम से कम इस समय ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना चाहते कि योरप में युद्ध छिड़ जाय। और उन राष्ट्रों में ग्रेटब्रिटेन जब तक अपनी सम्मति नहीं देगा तब तक योरप में युद्ध नहीं होगा। परन्तु वह तो मानो शान्ति भङ्ग न होने देने की शपथ ले चुका है। यही एक ऐसा शुभ लक्षण है, जिससे संसार ऐसी अशान्त अवस्था में भी शान्ति का उपभोग कर रहा है। परन्तु योरप की वर्तमान अनिश्चित अवस्था को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि ग्रेटब्रिटेन अपने प्रयत्न में सफल होगा। इस समय योरप के राजनीतिज्ञों के आगे इटली-अबीसीनिया और जर्मनी-फ्रांस के प्रश्न उपस्थित हैं और वे इन दोनों प्रश्नों के हल करने में टाल-मटूल की नीति से काम ले रहे हैं। आश्चर्य नहीं है कि वे इस समय अपने प्रयत्न में सफल हो जायँ, परन्तु इन प्रश्नों से सम्बन्धित राष्ट्रों पर उनके इस व्यवहार का अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा और भविष्य के भयावह विग्रह का यही कारण होगा। परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि उन लोगों ने ढील देकर इन दोनों प्रश्नों को इस समय महत्त्वहीन अवश्य बना दिया है।

इसी तरह एशिया के सुदूर भाग में जापान और रूस के संघर्ष की जो चर्चा छिड़ी हुई है वह भी शुष्क चर्चा ही रहेगी। रूस युद्ध का विरोधी है और जापान को भी अँगरेज़ों और संयुक्त-राज्य का डर है। इसके सिवा जापानियों में स्वयं ऐक्य का अभाव हो गया है, जो जापान की सेना के पिछले विद्रोह से भले प्रकार सिद्ध हो जाता है। फिर जापान में जो नया मंत्रिमण्डल बना है वह उतना बलवान् भी नहीं है। सरकारी शासक-मण्डली से वहाँ के सभी प्रमुख राजनीतिज्ञ तथा सैनिक अलग हो गये हैं या अलग कर दिये गये हैं। ऐसी दशा में इच्छा होते हुए भी जापान रूस से इस समय कदापि युद्ध नहीं करेगा। निस्सन्देह योरप की अपेक्षा एशिया के उस अञ्चल में युद्ध छिड़ जाने की अधिक सम्भावना है। परन्तु जापान की वर्तमान अवस्था को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि जापान-रूस का युद्ध होगा। इस समय युद्ध के ख़तरे की ऐसी ही शिथिल अवस्था है और कूटनीतिज्ञ उसे अपने भरसक कम से कम अभी कुछ समय तक प्रबल नहीं होने देंगे। उनकी इसी में भलाई है भी।

मुसलमानी राज्यों का संगठन

तुर्की, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और ईराक के मुसलमानी राज्यों में समझौता हो गया है और ये चारों देश एक-दूसरे के मित्र हो गये हैं। परन्तु इन राज्यों के संघ में अरब शामिल नहीं हुआ है, तथापि वह पीछे भी नहीं है। अभी हाल में नेज्द के सुलतान ने ईराक से अलग समझौता किया है और इसमें यमन भी शामिल हो गया है। इस प्रकार अरब के तीन राज्यों का एक अलग संघ क़ायम हुआ है। आश्चर्य नहीं कि आगे चलकर ये दोनों संघ मिल जायँ। परन्तु अभी इसकी आशा कम है। इसका एक कारण यह है कि अभी अरब के दो बड़े-बड़े भाग स्वाधीन नहीं हैं। फिर उन पर योरप के प्रबल राष्ट्रों का काफ़ी दबाव भी है। उनके अरब में कई तरह के हित तथा स्वार्थ हैं, जिनके कारण वे अरब के राज्यों को अपने चंगुल से बाहर नहीं हो जाने देना चाहते। इसमें सन्देह नहीं है कि अरब पहले की अपेक्षा अधिक महत्त्व प्राप्त कर गया है, परन्तु उसमें अभी ठोसपन का अभाव है। तथापि उनमें जो विलक्षण जाग्रति हुई है वह आशाजनक है और वह दिन दूर नहीं है जब हम अरब के राज्यों को अपने सहधर्मी दूसरे राज्यों की मित्र-मण्डली में समवेत पावेंगे। योरपीय महायुद्ध के फल-स्वरूप जहाँ मुसलमानी राज्यों में से तुर्की का साम्राज्य भंग हो गया है, वहाँ उसके स्थान में जो नये राज्य अस्तित्व में आये हैं उनमें तथा उनमें भी जो अब तक अत्यन्त दयनीय दशा को प्राप्त थे, राष्ट्रीयता की एक ऐसी लहर दौड़ गई है कि उनमें नव-जीवन का सञ्चार हो गया है। यही कारण है कि उन सबकी आज अति शीघ्रता से काया पलट रही है और वे अधिक साधन-सम्पन्न, सजीव तथा शक्तिशाली राष्ट्र बनने का उपक्रम कर रहे हैं। एशिया के एक बड़े अंश का यह जागरण एशिया के भविष्यत् गौरव का ही सूचक है।

इटली और अबीसीनिया

इटली और अबीसीनिया का भीषण संग्राम अभी तक जारी है। इटली अपने हवाई जहाज़ों की गोलाबारी से अबीसीनिया के रक्षित एवं अरक्षित नगरों को ध्वंस करने में लगा हुआ ही था कि पिछले दिनों से उसने ज़हरीली गैसों का भी प्रयोग करना शुरू कर दिया है। फलतः अबीसीनिया की सेनाओं के पैर उखड़ गये हैं और वे उत्तर तथा दक्षिण दोनों युद्ध-क्षेत्रों में बुरी तरह हारे हैं।

परन्तु इतने पर भी अबीसीनिया की फ़ौजें शत्रु का सामना करने से विमुख नहीं हो रही हैं, वरन दृढ़ता से उसका मुक़ाबिला बराबर किये जा रही हैं। वास्तव में यह हाथी-भेड़े की लड़ाई हो रही है। आश्चर्य है कि भेड़ा अभी तक डटा हुआ है। इटली जैसा आधुनिक शस्त्रास्त्रों से सज्जित प्रबल राष्ट्र अभी तक अबीसीनिया को पूर्णरूप से पददलित नहीं कर सका है। निःसन्देह अबीसीनिया के निवासी असाधारण योद्धा हैं और उन्होंने पिछले दिनों युद्ध-क्षेत्र में अपने शौर्य और वीर्य का महत्त्वपूर्ण परिचय दिया है। उन्हें अपनी स्वाधीनता का अभिमान है। और इस सारी अवस्था का श्रेय उनके सम्राट् हेल सेलासी को है, जिन्होंने अपने राष्ट्र के इस महान् संकटकाल में अपरिमित साहस और अप्रतिम बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है। आज सारे संसार की सहानुभूति को अपने पक्ष में करके उन्होंने जिस धैर्य के साथ शत्रु के आक्रमणों का अब तक वारण किया है उससे उनके गौरव की वृद्धि हुई है। परन्तु अब अबीसीनिया की सेनायें इटली के हवाई हमलों और ज़हरीली गैस के आगे नहीं ठहर रही हैं और दिन दिन यह प्रकट होता जा रहा है कि अबीसीनिया को इटली अब निगल जायगा। लोगों को यह झूठी आशा थी कि राष्ट्रसंघ के बीच में पड़ जाने से संसार के इस प्राचीन स्वतन्त्र राष्ट्र की रक्षा हो जायगी। परन्तु अब जर्मनी और फ्रांस की समस्या ने इस बात को भी स्पष्ट कर दिया है कि राष्ट्र-संघ अबीसीनिया की रक्षा नहीं कर सकेगा। अब तो उसकी अभिमन्यु की-सी दशा है और वह उसी तरह शत्रु का दृढ़ता से मुक़ाबिला भी कर रहा है। यदि उसके सौभाग्य से कोई अघटघटना घट गई तो उसकी रक्षा हो जायगी, अन्यथा उसकी स्वतंत्रता का विनाश प्रत्यक्ष है।

लखनऊ की कांग्रेस

लखनऊ में ४९ वीं कांग्रेस का अधिवेशन सफलता-पूर्वक हो गया। सफलतापूर्वक इसलिए कि कांग्रेस में फूट नहीं होने पाई और अपने-अपने मतभेदों को रखते हुए

कांग्रेस के कार्यकर्ता एकतापूर्वक राष्ट्र के उद्धार का कार्य करने को सन्नद्ध हैं। इसका सारा श्रेय जहाँ महात्मा गान्धी को है, वहाँ पण्डित जवाहरलाल नेहरू को कम नहीं है, जिन्होंने कांग्रेस के संकटकाल में अपना मतभेद भुलाकर कांग्रेस की एकता बनाये रखने का घोर प्रयत्न किया है। यह सन्तोष की बात है कि कांग्रेस के नेताओं ने कांग्रेस की वर्तमान शिथिलता से निराश न होकर उसके संगठन को पुनः दृढ़ करने की ओर ही ध्यान दिया है, न कि किसी-ऐसे कार्यक्रम के उपस्थित करने का प्रयत्न किया है, जिससे देश में पहले की ही भाँति कांग्रेस की शक्ति का फिर प्रदर्शन होता। अब जब सरकार नये सुधारों को कार्य में परिणत करने जा रही है तब कांग्रेस के सूत्रधारों का यही कर्तव्य है कि सुधारों के अनुसार परिवर्तित अवस्था को भले प्रकार अध्ययन करके वे अपनी उद्देश-सिद्धि के लिए नई कार्यप्रणाली का निश्चय करें। ऐसी दशा में हम सन्तोष के साथ कह सकते हैं कि लखनऊ में जो कुछ हुआ है वह सब बुद्धिमत्ता का ही कार्य माना जायगा। मिस्र में भी ऐसा ही हो चुका है। जब वहाँ की सरकार ने वहाँ के राष्ट्रीय वफ़द-दल का दमन कर उसे परास्त कर दिया था तब वफ़द-दल के नेताओं ने अपना आन्दोलन स्थगित करके उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करते हुए अपने अपने काम में लग गये थे। और जब पिछले दिनों उन्हें उपयुक्त अवसर प्राप्त हो गया तब उससे उन्होंने भरपूर लाभ उठाया और आज उनकी ब्रिटिश राजनीतिज्ञों से संधि की मित्रतापूर्ण बातचीत हो रही है। ऐसी दशा में कांग्रेस की वर्तमान संयमपूर्ण गम्भीर नीति उसकी सुबुद्धि और दृढ़ मनोवृत्ति का ही परिचायक है। फिर उसके सूत्रधार मिस्रियों की तरह एक-दम चुप भी बैठ नहीं रहना चाहते। तब निराश होने का कोई कारण नहीं है, और सो भी उस दशा में जब कांग्रेस के प्रमुख सूत्रधार युवक भारत के जागरूक प्रतिनिधि स्वयं पण्डित जवाहरलाल नेहरू हैं।

सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन

सर एस० राधाकृष्णन भारत के उन तीन-चार मनीषियों में हैं जिन्होंने अपनी अप्रतिम प्रतिभा से संसार को चकित किया है। हाल में इनकी नियुक्ति प्रसिद्ध आक्सफ़ोर्ड-विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर के रूप में हुई है। अभी तक ये आन्ध्र-विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर थे।

इनका जन्म ५ नवम्बर १८८८ को हुआ था। इन्होंने वेलोर के वोर्हीज-कालेज और मदरास के प्रेसीडेंसी-कालेज में शिक्षा पाई है। १९११ में ये मदरास के प्रेसीडेंसी-कालेज में फ़िलासोफ़ी के असिस्टेंट प्रोफ़ेसर बनाये गये। १९१६ तक इस पद पर बड़ी योग्यता से काम किया। फलतः ये प्रोफ़ेसर बना दिये गये और दो वर्ष तक उस पद का कार्य सम्पादन किया। १९१८ में ये मैसूर-विश्वविद्यालय में बुला लिये गये और वहाँ १९२१ तक फ़िलासफ़ी के प्रोफ़ेसर रहे। इसके बाद ये कलकत्ता-विश्वविद्यालय में आ गये और वहाँ दस वर्ष तक फ़िलासफ़ी की प्रोफ़ेसरी की। इसके बाद ये १९३१ में आन्ध्र-विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर हो गये। अब इस वर्ष इनकी नियुक्ति आक्सफ़ोर्ड में हुई है।

कलकत्ता-विश्वविद्यालय में काम करते समय इन्होंने भारतीय दर्शन-शास्त्र पर अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा था। इन्होंने अपना यह ग्रन्थ १९२३ में लिखा था और उनकी बदौलत ये संसार में दर्शन-शास्त्र के प्रामाणिक विद्वान् ही नहीं माने गये, किन्तु बाहर के विद्या-केन्द्रों से भाषण करने के लिए इनको सादर आमंत्रण मिलने लगा। १९२६-२७ में ये आक्सफ़ोर्ड के मैंचेस्टर-कालेज में 'अपटन लेक्चरर' बनाये गये। इसके साथ ही १९२६ में शिकागो-विश्वविद्यालय में हस्केल-लेक्चरर नियुक्त हुए। १९२९ में धर्म पर इन्हें मैनचेस्टर में हिबर्ट लेक्चर देने पड़े। १९२७ में इन्होंने इँग्लेंड और योरप की यात्रा की और जगह जगह फ़िलासफ़ी के विषय पर अनेक भाषण किये। १९२९-३० में ये फिर आक्सफ़ोर्ड बुलाये गये और वहाँ तुलना-मूलक धर्म पर भाषण किये। और अब फिर वहाँ विशेष सम्मान के साथ जा रहे हैं।

ये दर्शन और धर्म-विज्ञान के विलक्षण पण्डित हैं। ये जैसे प्रवीण लेखक हैं, वैसे ही प्रगल्भ वक्ता भी हैं। सरकार ने इन्हें सन् १९३१ में 'सर' की उपाधि देकर इनका सम्मान बढ़ाया। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में इनका लिखा हुआ भारतीय दर्शन पर निबन्ध छापा गया है। यही एक भारतीय विद्वान् हैं, जिनका लेख उस ग्रन्थ में स्थान प्राप्त कर सका है। वास्तव में ये दर्शन-शास्त्र के जगत्प्रसिद्ध पण्डित हैं और इन्होंने अपने इस व्यक्तित्व से अपनी जन्मभूमि भारत का मस्तक ऊँचा किया है। इनका पूरा नाम सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन है और ये आन्ध्र-देशवासी हैं।

बेकारी की समस्या

बेकारी की बीमारी से संसार के बड़े बड़े सम्पन्न राष्ट्र तक पीड़ित हैं। महायुद्ध के बाद से सारा सभ्य संसार इस महाव्याधि से ग्रस्त है। परन्तु संसार के क्षमतावान् राष्ट्रों ने उसकी उपेक्षा नहीं की और उसके उन्मूलन के काम में बराबर यत्नवान् रहे, और यद्यपि उन्हें अपने प्रयत्न में पूर्ण सफलता नहीं मिली, तथापि वे उसका ज़ोर बहुत कुछ कम कर सकने में अवश्य सफल-मनोरथ हुए हैं। अब रहे संसार के असमर्थ तथा साधनरहित राष्ट्र, सो उनकी दशा एक-दम अस्तव्यस्त हो गई है और वे बेकारी की मार से त्राहि त्राहि कर रहे हैं। इन्हीं में हमारे भारत की भी गिनती है। यहाँ बेकारी ने देशव्यापी होकर उसकी दशा को पूर्ण रूप से दयनीय बना दिया है।

बेकारी की भीषणता को देखकर सबसे पहले बंगाल की प्रान्तीय सरकार ने चिन्ता प्रकट की थी और सन् १९२३ में उसकी जाँच करने के लिए एक कमिटी नियुक्त की थी। यथासमय उसकी रिपोर्ट निकली, पर बेकारी दूर करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। उसके बाद सन् १९३४ में संयुक्त-प्रान्त में 'शिक्षितों की बेकारी' की जाँच करने के लिए एक कमिटी नियुक्त की गई। और यदि इसके अध्यक्ष सर तेजबहादुर सप्रू न बनाये जाते तो बहुत सम्भव था कि बंगाल की ही तरह यहाँ भी इसकी रिपोर्ट की वही हालत होती। परन्तु उनके ज़ोर देने से प्रान्तिक सरकार ने स्टाम्प की ड्यूटी बढ़ाकर तीन लाख रुपये साल में बेकारी दूर करने में ख़र्च करने का वचन दे दिया है। जहाँ कुछ नहीं था, वहाँ यही ग़नीमत है।

परन्तु क्या इस नाम-मात्र की व्यवस्था से यह महाव्याधि टस-से-मस हो सकेगी? विशेषज्ञों का कहना है कि इस संकट से देश की रक्षा करने के लिए सरकार को विशेष रूप से कोई विशेष सुधार करना होगा और वह मुख्य सुधार यह है कि सरकार यहाँ के किसानों की स्थिति दृढ़ कर दे एवं घरेलू उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन दे। ख़ाली शिक्षितों की बेकारी दूर करने या शिक्षा-प्रणाली में विशेष परिवर्तन करने से काम नहीं चलेगा। यह भी ठीक नहीं है कि बेकारी की जगह जगह जाँच करने में ही समय गँवाया जाय। जैसी स्थिति है उसको देखते तो आवश्यकता इस बात की है कि सरकार जल्दी से जल्दी कोई देशव्यापी प्रयत्न करे, जिससे यहाँ के बेकारों को कम-से कम सहारा तो मिले और वे इस बात का विश्वास तो करें कि उनकी रक्षा के लिए उपयोगी प्रबन्ध किया जा रहा है। जाँच-कमिटियों की जाँचों तथा कौंसिलों के वाद-विवाद से यह समस्या नहीं हल होगी।

सम्मेलन का संग्रहालय-भवन

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का जो संग्रहालय-भवन इलाहाबाद में बनकर अभी हाल में तैयार हो चुका था उसका उद्घाटन-कार्य महात्मा गान्धी के द्वारा ५ अप्रेल को हो गया। इस विशाल भवन को अस्तित्व में लाने का सारा श्रेय सम्मेलन के प्राण श्रीयुत पुरुषोत्तमदास जी टण्डन को है। इसके निर्माण में छब्बीस हज़ार रुपये लगे हैं। यह भवन सम्मेलन के अनुरूप ही निर्मित हुआ है। और जैसा कि टंडन जी का विचार है, जब इसका 'संग्रह' भी अस्तित्व में आ जायगा तब यह हिन्दी की एक सर्वश्रेष्ठ आदर्श संस्था के रूप में परिणत होगा। परन्तु यह काम एक आदमी का नहीं है। सभी हिन्दी-प्रेमियों को इसके भाण्डार को भरने के लिए आगे आना चाहिए। पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'सत्यनारायण-कुटीर' का निर्माण करके दूसरे लोगों के लिए पथ-प्रदर्शन का काम पहले से ही कर दिया है। आशा है, हिन्दी के प्रेमी इस संग्रहालय को दुर्लभ सामग्री से पूर्ण कर इसे राष्ट्र-भाषा के गौरव के उपयुक्त बनाने के कार्य में अग्रसर होंगे।

फ़ीजी के भारतीयों में शिक्षा-प्रचार

भारतीय उपनिवेशों में स्वार्थत्यागी कार्यकर्ताओं की कितनी आवश्यकता है, इसका पता निम्न विवरण से भले प्रकार लग जाता है। यह विवरण हमें फ़ीजी के एक प्रवासी शिक्षाप्रेमी ने लिखकर भेजा है।

फ़ीजी-द्वीप के प्रवासी भारतीयों में शिक्षा के प्रचार की बड़ी आवश्यकता है। शिक्षा देनेवाले ऐसे अध्यापकों की भी उसी प्रकार उन्हें आवश्यकता है जो यहाँ आयें और देश तथा राष्ट्र-भाषा के गौरव को सम्मुख रखकर शिक्षा-प्रचार के कार्य-क्रम को पूर्णरूप से अग्रसर करें ताकि घोर अन्धकार में पड़े रहनेवाले प्रवासी भारतीयों के बालकों-बालिकाओं का भविष्य समुज्ज्वल और प्रकाश-पूर्ण हो जाय।

निस्सन्देह फ़ीजी के भारतीय इस आवश्यकता का अनुभव वर्षों से कर रहे थे। सन् १९२७ से कई भारतीय नेताओं तथा उपदेशकों का फ़ीजी में आगमन भी हुआ। १९२७ के आगत महानुभावों में कांगड़ी के गुरुकुल-विश्वविद्यालय के स्नातक प्रोफ़ेसर अमीचन्द्र जी विद्यालंकार भी एक थे।

जब ये गुरुकुल-इन्द्रप्रस्थ के मुख्याधिष्ठाता का कार्य कर रहे थे, इनसे तथा श्रद्धेय पण्डित तोताराम सनाढ्य से फ़ीजी आने के लिए लिखा-पढ़ी हो रही थी। फ़ीजी आने के प्रश्न ने ही इनको इन्द्रप्रस्थ का गुरुकुल छोड़ने को बाध्य किया।

पण्डित जी ने फ़ीजी आना तो स्वीकार कर लिया, परन्तु आर्य-प्रतिनिधि-सभा ने अपना विचार निश्चित करने में विलम्ब कर दिया।

अन्त में १९२९ के दिसम्बर में वे सूवा (फ़ीजी की राजधानी) में आ गये और वहाँ के पंडित गोपेन्द्रनारायण जी 'पथिक' को भारत वापस चले जाने से ये वहाँ गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता नियुक्त हुए और लगभग तीन साल तक यही वहाँ के अधिष्ठाता रहे।

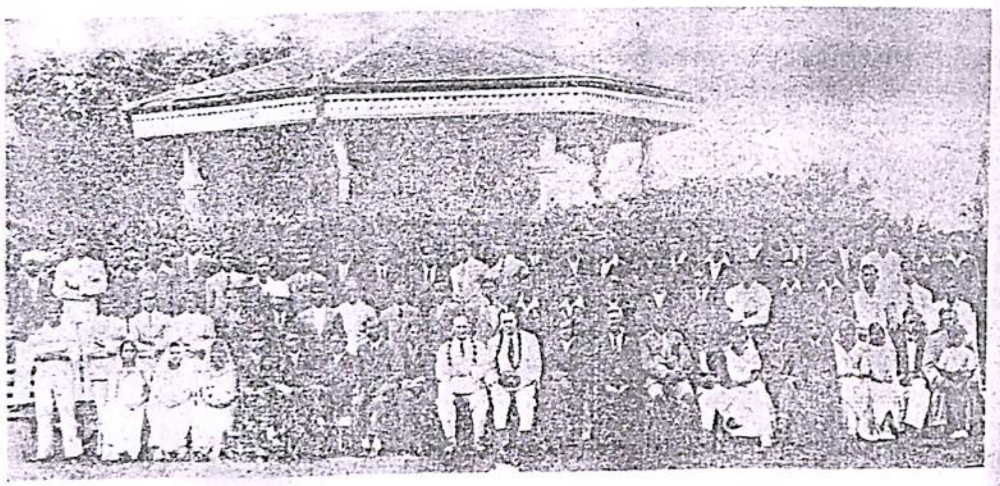
फ़ीजी का गुरुकुल अब एक आदर्श संस्था हो गया है। उसमें कई विभागों की स्थापना हुई है और बोर्डिङ्ग-हाउस का उत्तम प्रबन्ध भी हो गया है।

सन १९३१ में जब सूवा-आर्य-समाज समाबूला (जिस स्थान पर सन् १९०४ में आर्य-समाज की स्थापना हुई थी) में विशाल आर्यमन्दिर बनकर तैयार हुआ तब श्रीमती आर्य-प्रतिनिधि-सभा ने 'कन्या-महाविद्यालय' की स्थापना के कार्य को स्थगित कर इसी मन्दिर में आर्य-कन्या-पाठशाला की नींव डाली और प्रोफ़ेसर अमीचन्द जी को उसका मुख्य अध्यापक नियुक्त किया। यह वह समय था जब सूवा राजधानी में भी भारतीय कन्याओं के लिए एक भी स्कूल नहीं था। परन्तु पण्डित जी तथा उनकी धर्म-पत्नी श्रीमती सर्वावतीदेवी के अथक प्रयत्न से उक्त पाठशाला थोड़े ही समय में एक अप-टु-डेट स्कूल हो गया। कन्याओं की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी और इस समय १५० कन्यायें उक्त विद्यालय में विद्याध्ययन कर रही हैं।

फ़ीजी के सब कन्या-स्कूलों से आर्य-कन्या-पाठशाला में लड़कियों की संख्या अधिक है। भारतीय कन्याओं के लिए यह पाठशाला सदैव उल्लेखनीय तथा फ़ीजी के अर्वाचीन इतिहास में जगमगाती रहेगी। सन् १९३२ में आर्य-कन्या-पाठशाला के वार्षिक पारितोषिक-वितरणोत्सव के अवसर पर फ़ीजी के वर्तमान गवर्नर महोदय सर फ़्लेचर ने भाषण देते हुए इस पाठशाला के कार्य की उत्तमता के सम्बन्ध में प्रसन्नता प्रकट की थी। इस पाठशाला में कन्याओं को हस्त-कार्य, गृहप्रबन्ध तथा सिलाई आदि की शिक्षा पर बहुत ज़ोर दिया जाता है।



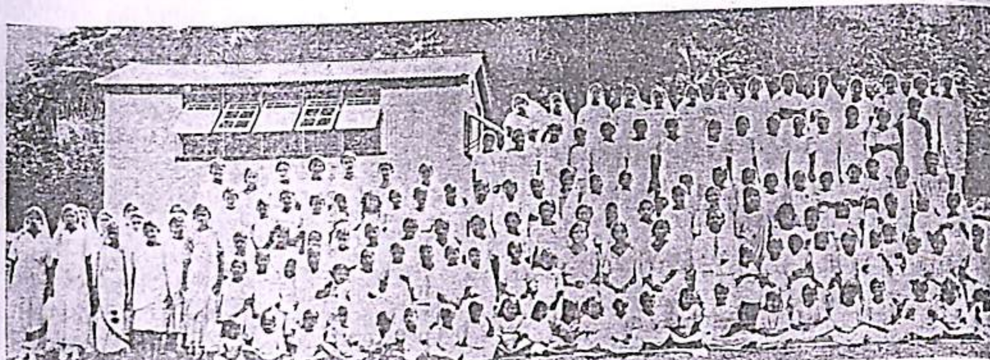
[बाईं ओर से फ़ीजी के प्रसिद्ध समाजसेवक श्रीयुत शंकर प्रताप और प्रोफ़ेसर अमीचन्द]



[फ़ीजी-टीचर्स-यूनियन का १९३४ के अधिवेशन के समय का चित्र]



आर्य-कन्या-पाठशाला की उच्च कक्षा। बीच में श्रीमती गोपालन और भूतपूर्व सहायक अध्यापिका श्रीमती कुन्दनसिंह बैठी हैं।



[आर्य-कन्या-पाठशाला की कन्यायें और अध्यापक-अध्यापिकायें]

पण्डित जी के सूवा राजधानी में आ जाने से केवल पाठशाला के ही कार्य की उन्नति नहीं हुई है, बल्कि सामाजिक प्रचार, नवयुवकों का संगठन और अन्य संस्थाओं के कार्यों की भी पर्याप्त उन्नति हुई है।

पण्डित जी की धर्मपत्नी श्रीमती सर्वावतीदेवी अपना अमूल्य समय कन्याओं की उन्नति में व्यतीत करती हैं और जो लोग अपनी कन्याओं को पढ़ाना उचित नहीं समझते थे वे भी अब इनकी प्रेरणा से अपनी कन्याओं को बड़े हर्ष के साथ पढ़ने को स्कूल में भेज रहे हैं। सन् १९३१ में यहाँ सनातन-धर्म-सभा के दो प्रचारक आये थे, जिससे आर्य-समाज और सनातन-धर्म में संघर्ष छिड़ गया था। दोनों पण्डितों ने यहाँ आकर आर्य-समाज पर बौछार करना प्रारम्भ कर दिया था। जब मामला अधिक बढ़ता हुआ दृष्टिगोचर होने लगा तब आर्य-समाज को बाध्य होकर शास्त्रार्थ स्वीकार करना पड़ा। अन्त में लेखबद्ध शास्त्रार्थ निश्चित हुआ और आर्यसमाज के एक पत्र ने जिसका उत्तर वे लोग नहीं दे सके, शान्ति स्थापित कर दिया। इसका भी श्रेय इन्हीं पण्डित जी को मिला।

पण्डित जी सन् १९२८ में 'टीचर्स एसोसिएशन' के प्रधान नियुक्त हुए थे, जिससे एसोसिएशन के अध्यापकों में पर्याप्त जागृति उत्पन्न हो गई है, और अन्त में सन् १९३० में फ़ीजी भर के लिए 'फ़ीजी टीचर्स यूनियन' नामक संस्था स्थापित की गई। यह पण्डित जी के ही उद्योग का फल है। सन् १९३३ से ये इस संस्था के प्रधान हैं। इन वर्षों के भीतर पण्डित जी ने फ़ीजी के अध्यापकों में नव जीवन का संचार कर दिया है। पण्डित जी हिन्दी-साहित्य के प्रचार के लिए काफ़ी प्रयत्न करते रहते हैं। और अब यहाँ के भारतीय नवयुवक हिन्दी-साहित्य की ओर अधिक संख्या में ध्यान देने लग गये हैं।

यदि भारत के पण्डित जी जैसे उत्साही विद्वान् भारतीय उपनिवेशों में जायँ तो वे अपने तथा प्रवासी भारतीयों दोनों के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे।

Printed and Published by K. Mittra at the Indian Press-Ltd., Allahabad.

भारतीय किसानों की कुछ समस्यायें

लेखक, श्रीयुत श्रीपतिसहाय, बी० ए०

ऋण, बढ़ती हुई आबादी, वैज्ञानिक ढङ्ग से खेती न कर सकना, लगान की ऊँची दर, अच्छी ख़ुराक का न मिलना और अनाज का बहुत अधिक सस्ता हो जाना आदि बहुत-सी बातें हैं जो हमारे देश के किसानों को उठने नहीं देतीं। इनकी विवेचना करते हुए लेखक ने इस लेख में बड़े उत्तम ढङ्ग से बताया है कि किसानों की स्थिति कैसे सुधारी जा सकती है।

समय समय पर मुझे किसानों की दरिद्रता और उनके क़र्ज़ के सम्बन्ध में अनेक लेख पढ़ने को मिले हैं। अभी अप्रेल मास की 'सरस्वती' में ही विद्वान् लेखक श्रीयुत शङ्करसहाय जी सक्सेना, एम० ए०, एम० काम०, ने भारतीय ग्रामीण ऋण-समस्या पर अपने सुन्दर और तर्कपूर्ण विचार प्रकट किये हैं। आपका कहना है कि इस समय ब्रिटिश भारत की ग्रामीण जनता पर लगभग ९०० करोड़ रुपयों का क़र्ज़ है, और अगर ब्रिटिश गवर्नमेंट देश की ग्रामीण जनता को इस ऋण से आज़ाद कर दे तो भारत के किसानों में नई जान आ जाय और वे भी अन्य देशों के किसानों की तरह वैज्ञानिक ढंग से खेती-बारी करने लगें।

इसमें सन्देह नहीं कि भारत के किसान गले तक ऋण-सागर में डूबे हुए हैं और उनकी आर्थिक दशा बहुत ही गिरी हुई है। सरकार का यह फ़र्ज़ है कि वह किसानों का सारा क़र्ज़ चुका दे। लेकिन केवल इतने से ही किसानों की दरिद्रता दूर न हो सकेगी। उनकी ग़रीबी के और देश के कृषि-व्यवसाय में बाधक होने के बहुत-से कारण हैं। ऋण-बोझ भी उनमें से एक है, लेकिन वह प्रधान नहीं है। हमारे मतानुसार कुछ दूसरे ही कारण हैं जो किसानों को ग़रीबी की जंज़ीरों में जकड़े हुए हैं। उन्हीं का वर्णन इस लेख का विषय है।

हम यह तो चाहते ही हैं कि देश के किसानों के ऊपर क़र्ज़ का जो असह्य बोझ लदा हुआ है उससे उन्हें मुक्त करने का उपाय सरकार करे। साथ-ही-साथ सरकार से हमारा अनुरोध है कि वह ऋण और ग़रीबी के कारणों को ही दूर करने का प्रयत्न करे। यदि ऐसा नहीं हुआ तो इस बात की बड़ी सम्भावना है कि कुछ ही दिनों में यही समस्या फिर आ खड़ी होगी और उस समय शायद उसका रूप और भी भीषण होगा।

किसानों की दरिद्रता का मुख्य कारण और कृषि की उन्नति के मार्ग में सबसे बड़ा रोड़ा जो है वह है देश की भूमि पर आबादी का असह्य भार। भारतवर्ष का रक़बा संयुक्त-राष्ट्र अमरीका का आधा है। लेकिन यहाँ की आबादी अमरीका की आबादी से तिगुनी है*। ब्रिटिश भारत में २२ करोड़ ८० लाख एकड़ भूमि में खेती होती है और उसके द्वारा २७ करोड़ २० लाख किसानों का निर्वाह होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि एक आदमी के पास एक एकड़ भी भूमि नहीं है। साफ़ ज़ाहिर है कि जब खेती की ज़मीन पर किसान-समुदाय का ऐसा भार है, जब उसके पास एक एकड़ भूमि भी नहीं, तब केवल किसानों को उनके वर्तमान ऋण से मुक्त कर देने से ही उनके जीवन में कोई नवीनता नहीं आ सकती। और न ऐसी दशा में एक बीघे ज़मीन पर वैज्ञानिक ढंग से खेती ही की जा सकती है। धन तो चाहिए ही, वैज्ञानिक ढंग से खेती करने के लिए विस्तृत खेतों की भी आवश्यकता है। भारतीय किसानों के पास इन दो चीज़ों में से एक भी नहीं है। एक या दो बीघे खेत के लिए अगर दो हज़ार रुपये ख़र्च करके एक कुआँ बनवाया जाय या हर साल एक बीघे में १०) की अँगरेज़ी खाद ही छोड़ी जाय तो ज़िन्दगी भर यह घाटा पूरा नहीं किया जा सकता।

लेकिन इस भूमि और पूँजी की कमी के अतिरिक्त वैज्ञानिक ढंग से खेती करने में हमारे देश के किसानों के सामने बहुत-सी रुकावटें हैं। उनका वर्णन हम आगे चल कर करेंगे। यहाँ तो हम केवल इसी बात पर विचार करना चाहते हैं कि यदि खेती की ज़मीन पर कृषकों का भार इसी प्रकार बना रहा, और भय तो इस बात का है कि यह भार बढ़ता ही जायगा, तो वे अपने को जीवित भी रख सकेंगे या नहीं। जो खेत केवल एक व्यक्ति के लिए भी काफ़ी नहीं है उस के द्वारा इस समय दो से अधिक व्यक्ति अपना निर्वाह करते हैं। सर डेनियल हाल का तख़मीना है कि प्रत्येक मनुष्य के लिए अगर वह खेती पर ही आश्रित है, कम-से-कम ढाई एकड़ ज़मीन चाहिए। एक एकड़ से कम की खेती में तो उसे पूरा साल भर खाने को नहीं मिल सकता। यदि हम मान लें कि एक बीघे में ज़्यादा-से-ज़्यादा आठ मन अनाज हुआ और अगर औसतन एक आदमी दोनों वक़्त मिलाकर एक सेर अनाज खाय, तो भी उसे साल में कम-से-कम एक मन अनाज ख़रीदना पड़ेगा। इसके लिए रुपया कहाँ से आवे? इसके अलावा अगर हम मान लें कि किसान ऋण-मुक्त है और किसी का एक पैसे का देनदार नहीं तो भी उसे कम-से-कम पाँच रुपये लगान और बीस रुपये अपनी ज़रूरियात और सामाजिक और धार्मिक कार्यों पर ख़र्च करने के लिए चाहिए। ऐसी दशा में जब तक उसकी आर्थिक वृद्धि के लिए दूसरे उपायों का अनुसरण नहीं किया जाता, उसकी दरिद्रता किस प्रकार मिटाई जा सकती है? इस देश में खेती करने योग्य जो ज़मीन है उस पर केवल ११ करोड़ ४० लाख आदमी अर्थात् वर्तमान ग्रामीण आबादी के केवल ५० प्रतिशत लोग सुख-पूर्वक अपना गुज़र-बसर कर सकते हैं।

लेकिन अब प्रश्न यह है कि फिर बाक़ी १४ करोड़ ८० लाख किसान कहाँ जायँ। आबादी के तेज़ी से बढ़ने के कारण खेती करने योग्य जितनी भी ज़मीन थी उस पर हल का हमला हो चुका है। जङ्गल, कछार, चरागाह, जो खेत बनाने योग्य थे वे सब जोत डाले गये हैं। पशुओं के लिए चरागाह भी नहीं छोड़े गये हैं। अब जो ज़मीन बच रही है वह ऊसर या बञ्जर है। इसलिए अब यह संभव नहीं कि खेती करने योग्य ज़मीन की मात्रा बढ़ाई जा सके। सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि खेती की ज़मीन से किसानों का भार कम किया जाय और देहातों की अतिरिक्त (Surplus) आबादी को अपनी जीविका के लिए दूसरा मार्ग दिखाया जाय। यदि ऐसा न किया गया तो किसानों की ग़रीबी कभी नहीं दूर हो सकेगी, और न ऋण ही कभी उनका पीछा छोड़ेगा।

ऋण के कारण बताते हुए आर्थिक जाँच-कमिटी कहती है—

"औसतन खेत छोटे हैं। चंद खेत ऐसे हैं जिन्हें जोत कर किसान आराम के साथ जीवन व्यतीत कर सकता है और अच्छी फ़सल में कुछ बुरी फ़सल के लिए भी बचा सकता है। लेकिन बहुत ज़्यादा खेत इतने छोटे हैं कि जब तक किसान के पास धनोपार्जन का कोई दूसरा साधन नहीं, उसके परिवार का और उसका निर्वाह होना असम्भव है। युक्त-प्रान्त के अधिकांश किसानों का जीवन एक फ़सल से लेकर दूसरी फ़सल तक आर्थिक संकट से सतत संग्राम करने में ही व्यतीत होता है।

"मिस्टर कृष्ण मिनन ने एशिया में संतान-निग्रह-कान्फ़रेंस में वक्तव्य देते समय कहा था—

"यह सब लोग मानते हैं कि भारतवर्ष की आबादी का बहुतांश उतना भोजन भी नहीं पाता है जितना जेलों में क़ैदियों को देने के लिए जेल मैनुअल (जेल नियमा-

---

* पिछले ३५ वर्षों में देश की आबादी कितनी बढ़ी।

वर्ष	आबादी
१९०१	२९,४३,६१,०५६
१९११	३१,५१,५६,३९६
१९२१	३१,८९,४२,४८०
१९३१	३५,२९,८६,८७६
१९३५	लगभग ३७½ करोड़

वली) में लिखा है। भारतीय जनता में कम-से-कम ७ करोड़ व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें नित्य भोजन नहीं मिलता। इस प्रकार जो जनता भूखी रहकर अपना जीवन व्यतीत करती है उसमें ज़्यादातर किसान और मज़दूर हैं। युक्त-प्रान्त में आहार की समस्या इतनी भीषण हो गई है कि मैंने स्वयं ऐसे कई ग्रामीणों को देखा है जो केवल महुआ खाकर अपना निर्वाह कर रहे हैं।"

बंगाल के स्वास्थ्य-विभाग के डाइरेक्टर डाक्टर ए० सी० वेन्टले का कथन है—

"बंगाल के किसान आज अधिकतर ऐसे भोजन पर अपना निर्वाह कर रहे हैं जिसे खाकर चूहे भी एक महीने से अधिक जीवित नहीं रह सकते। फलतः उनका स्वास्थ्य इतना ख़राब हो गया है कि उनमें मामूली शारीरिक बीमारियों को सहन कर सकने की भी शक्ति नहीं रह गई है।"

किसानों के इस दयनीय और कारुणिक दशा का मूल कारण ज़मीन का अकाल है।

किसानों की ग़रीबी का एक दूसरा कारण देश की व्यवसायहीनता है। यदि हम आज संसार के भिन्न-भिन्न राष्ट्रों को देखें तो यह प्रत्यक्ष रूप से मालूम हो जायगा कि व्यवसायी राष्ट्र कृषि-राष्ट्रों की अपेक्षा अधिक उन्नत हैं। व्यवसायी राष्ट्रों में बढ़ती हुई आबादी को हज़म कर जाने की शक्ति होती है। लेकिन यही आबादी का बढ़ना कृषि-प्रधान और व्यवसायहीन देशों के लिए संकट का कारण हो जाता है। इँग्लैंड की आबादी ४ करोड़ के लगभग है, मगर यदि वह केवल खेती पर ही निर्भर रहता तो वहाँ की आबादी के आधे लोग आज भूखों मरते होते। यही दशा अमरीका, जर्मनी, जापान तथा संसार के अन्य उन्नत राष्ट्रों की है। लेकिन भारतवर्ष इस विषय में बहुत बदनसीब रहा है। ग्राम-उद्योग-धन्धों के नष्ट हो जाने से देहाती जनता के लिए सिवा खेती करने के और कोई ज़रिया अपने जीवन-निर्वाह का नहीं रह गया। इससे खेती की भूमि पर किसानों का भार और बढ़ गया है। खेत छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट गये हैं। इधर भारतवर्ष ने ५० वर्षों से कुछ व्यावसायिक उन्नति करनी शुरू की है, लेकिन अभी इस क्षेत्र में बहुत कुछ किया जा सकता है। शक्कर के व्यवसाय को प्रोत्साहन देकर किसानों की दशा बहुत कुछ सुधारी जा सकती है। शीशे का व्यवसाय भी अभी काफ़ी उन्नति कर सकता है। इसके अतिरिक्त काग़ज़, चमड़े, लकड़ी तथा डेरी [दूध-घी] इत्यादि के व्यवसायों के भी उन्नति के लिए इस देश में काफ़ी क्षेत्र है। देश की सरकार यदि किसानों के लिए कुछ कर सकती है तो यही कि वह उक्त व्यवसायों को सहायता और प्रोत्साहन प्रदान करे। इससे गाँव की अतिरिक्त (Surplus) आबादी शहरों में खिंच आवेगी और खेती की ज़मीन पर से जन-समुदाय का भार हलका पड़ जायगा। इससे किसानों की बेकारी भी दूर की जा सकती है और साथ-ही-साथ खेती की भी उन्नति हो सकेगी। मृतप्राय ग्राम-उद्योग-धन्धों को पुनः जाग्रत करने से ग्रामीण जनता की दरिद्रता बहुत कुछ दूर की जा सकती है।

तीसरा कारण किसानों की दरिद्रता का लगान की ऊँची दर है। जब किसान भूखों मर रहे हों, उनसे एक पैसा भी बतौर लगान लेना उनके साथ अन्याय करना है। हमारा यह अनुभव है कि किसानों को ज़्यादातर लगान चुकाने के लिए ही क़र्ज़ लेना पड़ता है। क़र्ज़ के अलावा प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये परदेश में गये हुए ग्रामीणों-द्वारा देहातों में भेजे जाते हैं, जो सिर्फ़ खेती के घाटे को पूरा करने के लिए और सरकारी लगान अदा करने में ख़र्च होते हैं। केवल युक्त-प्रान्त में १९२९ में कलकत्ता, बम्बई, रंगून आदि नगरों से १३ करोड़ २५ लाख रुपया आया था, जिसका बहुतांश सरकारी लगान जमा करने में ख़र्च हुआ था। फिर भी अधिकतर किसानों के ऊपर एक-दो वर्षों के लगान का क़र्ज़ लदा ही रहता है और वे आजन्म महाजनों, तालुक़दारों और ज़मींदारों के ग़ुलाम बने रहते हैं।

सन् १९२९ में युक्त-प्रान्त की सरकार ने क़र्ज़ की मात्रा का अनुमान लगाने के लिए एक जाँच कमिटी नियुक्त की थी। उस कमिटी की रिपोर्ट में से हम यहाँ एक गाँव 'छीछा' की रिपोर्ट उद्धृत करते हैं—

"यह बहुत दरिद्र गाँव है। क़र्ज़ में डूबे हुए राजपूतों की पट्टी इस गाँव का मालिक है; लगान बहुत अधिक है। कुल किसान ४८ हैं, जिनमें ऊँची जाति के केवल २४ हैं। २४ किसानों में से २ बिलकुल क़र्ज़दार नहीं हैं। ६ एक साल के लगान या उससे कम के ऋणी हैं। और १६ ऐसे हैं जिन पर दो वर्ष से ज़्यादा लगान की मात्रा का क़र्ज़ बाक़ी है। ऊँची जातिवालों पर कुल क़र्ज़ १३ हज़ार ४ सौ ९० रुपया है, जिसमें से १६ सौ रुपये शादी-ब्याह के ख़र्च के लिए लिया गया है। बाक़ी सब क़र्ज़ खेती-किसानी के लिए। इनके अलावा २४ साधारण जाति के किसान हैं। खेतों का औसत ५ एकड़ है। इन चौबीसों में से ९ किसान ऋणी नहीं हैं। चार के ऊपर साल भर के लगान की मात्रा से कुछ कम क़र्ज़ है। चार के ऊपर एक वर्ष से अधिक और दो वर्ष से कम लगान के बराबर क़र्ज़ है तथा सात के ऊपर दो वर्ष से ज़्यादा लगान की मात्रा का क़र्ज़ है। इन चौबीसों के ऊपर १३६४) का क़र्ज़ है जिसमें से ५१०) सामाजिक और धार्मिक कार्यों के लिए लिये गये थे। इस हिसाब से १०० में केवल २३ किसान ऋण से मुक्त हैं। इस गाँव में लगान से पिसे हुए किसान बुरी हालत में हैं। अनेक व्यक्ति गाँव छोड़कर कलकत्ता या दूसरी जगह नौकरी करने चले गये हैं। सूद की दर २४) सैकड़ा है। आधा क़र्ज़ गाँव के बाहर बसनेवाले महाजनों का, और आधा ज़मींदारों और किसानों का है"।

इसके अतिरिक्त खेती एक ऐसा पेशा है जो अपनी सफलता के लिए बहुत अंशों में प्राकृतिक नियमों पर अवलम्बित है। यदि किसी वर्ष उपयुक्त वर्षा और धूप न हुई तो खेती नष्ट हो जाती है और किसानों की सारी मेहनत बेकार हो जाती है। पिछले ५ वर्षों से हम देख रहे हैं कि अनुकूल वर्षा न होने के कारण युक्त-प्रांत में कृषि-व्यवसाय को लगातार नुक़सान होता आ रहा है और अगर दो-तीन वर्ष ऐसा ही और हुआ तो हम एक भीषण दुर्भिक्ष के निकट पहुँच जायँगे। प्राकृतिक नियमों पर तो मनुष्य का कोई वश चल नहीं सकता, लेकिन आबपाशी इत्यादि का अच्छा इन्तज़ाम होने से यह कमी कुछ अंशों तक अवश्य पूरी की जा सकती है। हमारे देश का कृषि-व्यवसाय अन्य देशों के कृषि-व्यवसाय की अपेक्षा अवनत है, जिसका एक कारण यह है कि यहाँ आबपाशी का इन्तज़ाम इतना अच्छा नहीं हो सका है, जितना चाहिए। इसकी ज़िम्मेदारी सरकार के ऊपर है। सरकार को चाहिए कि वह नहरें और कुएँ बनवाये और देश के उस भाग में जहाँ पानी की कमी है, वैज्ञानिक साधनों से उसे पूरा करने का प्रयत्न करे। यह देखा गया है कि एक ही ज़िले के अन्दर जहाँ नहर का प्रबंध है वहाँ के किसान, जहाँ नहर नहीं है वहाँ के किसानों की अपेक्षा अधिक सम्पन्न हैं।

किसानों की ग़रीबी पर समय का भी बहुत प्रभाव पड़ा है। सन् १९३२ में युक्तप्रांत की सरकार ने रिवेन्यू अफ़सरों और कोआपरेटिव सोसाइटी के द्वारा क़र्ज़ के सम्बन्ध में जाँच करवाई थी। उस जाँच के आधार पर जो रिपोर्ट तैयार की गई थी उसमें लिखा है कि "........रुपये की क़ीमत एक-दम ५० फ़ी सदी बढ़ गई है। कृषक जिनके पास दो हज़ार की सम्पत्ति है और जिसने ५००) उधार लिया था, आज देख रहा है कि उसकी जायदाद सिर्फ़ एक हज़ार रुपये की रह गई है और उसको अपना क़र्ज़ अदा करने के लिए पहले से तिगुना अनाज बेचना पड़ता है।"

हम यह देख रहे हैं कि उस समय से आज तक किसानों को सिवा घाटे के मुनाफ़ा कभी नहीं हुआ। फ़सलें बराबर ख़राब होती रहीं और पैदावार कम हुई। अनाज का भाव बहुत गिर गया है, इसके कारण किसान के लिए सिवा क़र्ज़ लेकर लगान देने के और कोई चारा बाक़ी नहीं रह गया है।

लेकिन केवल बीमारी पहचान लेने से या उसके कारणों को जान लेने से डाक्टर अपने कर्तव्य से मुक्त नहीं हो जाता। उस बीमारी की दवा होनी चाहिए। यथासमय उसे रोकने और दूर करने के लिए उपचार करना चाहिए। नहीं तो एक दिन आयगा जब उसका अच्छा होना दूभर हो जायगा। हमारे देश के ग्रामीण किसानों की दशा कितनी गिर गई है, इसे अब बताने की आवश्यकता नहीं। उनकी ग़रीबी पराकाष्ठा पर पहुँच गई है। यदि अब भी उन्हें उठाने का प्रयत्न नहीं किया गया तो समय चूक जायगा। केवल लम्बी-चौड़ी तनख़्वाहें पाने-

वाले कर्मचारियों को नियुक्त कर देने से ही किसानों का दुःख न दूर होगा। अब उन्हें दिखावटी या शाब्दिक सहानुभूति की आवश्यकता नहीं है। कुछ क्रियात्मक रूप से करने की आवश्यकता है। वे स्वयं इतने निर्बल हो गये हैं कि खुद उठ सकेंगे, ऐसी आशा नहीं है। लेकिन उन्हें उठाते समय सावधानी से काम लेना चाहिए। अगर तरीक़ा ग़लत हुआ तो सब प्रयत्न निष्फल हो जायँगे। जितने उपचार आवश्यक हैं उन सबको एक साथ करना चाहिए। केवल एक के करने से अधिक लाभ होने की सम्भावना नहीं है। जिस क़र्ज़ के नीचे दबकर वे आहें भर रहे हैं उससे तो उन्हें मुक्त करना ही चाहिए, साथ-ही-साथ उनकी ग़रीबी दूर करने के लिए अन्य साधनों का भी प्रयोग करना चाहिए। अगर सरकार के कानों तक किसानों का आर्तनाद पहुँच रहा है और यदि उसके हृदय में किसानों की दशा से टीस पैदा हो रही है तो उसे अब बिना एक क्षण खोये हुए उनकी दशा को सँभालने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

सरकार किसानों के लिए क्या करे, यही संक्षेप में बता कर हम इस लेख को समाप्त करेंगे।

(१) देशी कारबार और ग्राम-उद्योग-धंधों को आर्थिक सहायता और प्रोत्साहन प्रदान करे, ताकि गाँव की अतिरिक्त आबादी को काम मिले और खेती की ज़मीन पर से जन-समुदाय का भार कम हो।

(२) विदेशी माल पर कर लगाकर उसको इस देश में आने से रोके, ताकि स्वदेशी व्यवसाय को उन्नत होने का मौक़ा मिले।

(३) लगान की दर कम करे और फ़सल ख़राब हो जाने पर किसानों को छूट दे।

(४) जहाँ पानी की कमी हो वहाँ नहर, तालाब, और कुएँ बनवाकर आबपाशी का प्रबन्ध करे।

(५) किसानों का वर्तमान क़र्ज़ अपने कोष से चुका दे।

(६) विवाह-सम्बन्धी क़ानून का पालन कराने में और सख़्ती से काम ले, ताकि आबादी की बाढ़ रोकी जा सके।

प्रश्न हो सकता है कि इन सब बातों के लिए रुपया कहाँ से आवेगा। इसका एक-मात्र उत्तर यह है कि जहाँ इच्छा है वहाँ मार्ग भी है।

गीत

लेखिका, श्रीमती तारा पांडे

मैं प्रिय दर्शन की दीवानी !—

× × × ×

मिथ्या सुख-दुख में, रही भूल
अपने प्रभु को भी गई भूल
अलि, कैसे मैं यह भेद कहूँ—
वह है उदार, पर अभिमानी ! ॥१॥

उसकी सुधि-छाई कण-कण में,
मोहक स्पर्श है तन-मन में,
पल पल जाती है प्यास बढ़ी—
सखि, वह करता निज मनमानी ! ॥२॥

जिसको कहते हैं निराकार—
योगी-जन का जो है अंधकार—
री ! वह असीम मेरा प्रियतम
है शून्य नहीं—सरबस दानी ! ॥३॥

सुनकर आत्मा की मृदु-पुकार
दुखियों की करुणामय गुहार—
रत्नाहित वह द्रुत है आता—
कैसे कह दूँ उसको मानी !

मैं प्रिय दर्शन की दीवानी ! ॥४॥



नवीन ईरान

लेखक, श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन

ईरान में नव जागरण हो रहा है। उसका बाह्य स्वरूप पाश्चात्य साँचे में ढलता जा रहा है पर उसके अन्तर में प्राचीन ईरान विकसित हो रहा है। श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन जापान से रूस और ईरान होते हुए लौटे थे। वहाँ आपने ईरान में पूर्व और पश्चिम का जो प्रगतिशील सम्मिलन देखा है उसी का इस लेख में आपने सुन्दरता के साथ वर्णन किया है।

ईरान ऐतिहासिक काल का सबसे बड़ा आदिम साम्राज्य है। उसके दारयोश और सेरोश महाप्रतापी सम्राटों की राज्य-सीमा पामीर से लेकर अबीसीनिया तक तथा मेसेडोनिया से लेकर सिन्ध के तट तक पहुँचती थी। इतना विशाल साम्राज्य उससे पहले पृथ्वी पर कोई नहीं स्थापित हुआ था। अपने विशाल साम्राज्य की सुव्यवस्था के लिए ईरानियों ने ही सर्वप्रथम बड़ी बड़ी सड़कें और डाक क़ायम किये थे। पायजामा उनकी ही पोशाक थी, जिसे योरप में सर्वप्रथम सिकन्दर ने धारण किया था, और आज वही पतलून के रूप में सारे संसार की पोशाक हो रहा है। इस्लाम के पैग़म्बर को भी यह ईरानी पोशाक इतनी पसन्द आई कि उन्होंने भी इसे अपनाया और फिर पीछे वह सारी इस्लामी दुनिया की जातीय पोशाक-सा बन गया। ईरान के राज्य-प्रबन्ध से बहुत-सी बातें पीछे के साम्राज्यों ने सीखीं। अरबों की सारी राज्य-व्यवस्था ख़लीफ़ा उमर के समय में ईरान से नक़ल की गई थी। और हिन्दुस्तान के मुसलमानी राज्य पर अरब की तो अत्यन्त क्षीण छाप, सिर्फ़ कठोरता, असहिष्णुता के रूप में ही थी, अन्यथा सुरुचि, कला-प्रेम, शासन-व्यवस्था सब कुछ ईरान की थी। दिल्ली के मुसलमान सुल्तानों और बादशाहों की जब मातृ-भाषा ही फ़ारसी थी तब फिर उन पर के ईरान के प्रभाव के बारे में अधिक कहने की आवश्यकता ही क्या है। हाँ, ईरान का बाह्य जगत् पर प्रभाव दो कालों में बँटा है, एक तो वह जब ईरान शुद्ध ईरान था, और दूसरा वह जब



[ईरानी नवदम्पती]

रान अरब का दास हो गया था। राजनैतिक तौर से
ी नहीं, सांस्कृतिक तौर से भी नव ईरान अपने पुराने
ुद्ध ईरान का उपासक है।

ईरान में झूठ बोलना आदत में शामिल-सा हो गया
है। यह पुस्तकों में भी मैंने पढ़ा था, और ईरान में मैंने देखा

भी। मैं सोचता था—जिस ईरानी जाति के बारे में उनके शत्रु यूनानी तक कहते थे कि ईरानी बच्चा झूठ बोलना नहीं जानता, ईरानी सच बोलने में अद्वितीय है, आज वे ही लोग ऐसे कैसे हो गये? ऐसी ही और भी कितनी ही निर्बलतायें हैं, जिन्हें ईरानियों के पूर्वज यदि जानते तो शायद जाति की जाति सन्तति-निग्रह करके अपने आपको ख़त्म कर डालने पर तैयार हो जाते। ऐसे दोष और जातियों में नहीं हैं, यह मैं नहीं कहता। मेरा तो कहना है—रास्त कुफ़्तार (= सत्यभाषण) को इस कड़ाई से पालन करनेवाली ईरानी जाति अपने आधुनिक रूप में कैसे परिवर्तित हो गई? मैं कितने ही दिनों तक इस बात पर भटकता रहा। और वहीं से मैंने अपना विचार एक जापानी मित्र को लिखा था—कोई भी संस्कृत जाति यदि अपने भूत-काल से चली आई संस्कृति से एक-दम नाता तोड़ ले, और जो कहीं उसे एक बर्बर जाति का अनुसरण भी करना पड़े, तो उसकी वही गति होगी जो ईरान की हुई है। ईरान सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अरबों के हाथ में चला गया। अरबों ने राज्य ही दख़ल नहीं किया, बल्कि उन्होंने ईरानियों को मजबूर किया कि वे पुराने ईरान से नाता तोड़ कर अपने को अरब के साँचे में ढालें। उनके सारे अग्नि-मन्दिर नष्ट कर दिये गये। हज़ार हज़ार वर्ष से अनवरत जलती हुई अग्नि बुझा दी गई। ईरानी बच्चे अपने बहादुर वीरों के कारनामों के गीत गाने बन्दकर अरबी योद्धाओं के गीत गाने पर मजबूर किये गये। जो ज़रतुश्ती धर्म ईरानी राष्ट्रीयता की आधार-शिला-सा बन गया था वह बिलकुल नष्ट कर दिया गया। दसवीं शताब्दी पहुँचते पहुँचते ईरान की आत्मा मर-सी चुकी थी। उसका इतिहास विस्मृति के गर्भ में पहुँच चुका था। ये कारण हैं जिनसे हम पुराने ईरान को उस पतितावस्था में देखते हैं।

लेकिन आज ईरान तेरह सौ वर्षों की गाढ़ निद्रा के बाद जागा है वह अच्छी तरह अनुभव कर रहा है कि वह कहाँ से कहाँ चला गया। वह उन कारणों को भी ढूँढ़ रहा है जिनसे उसका इतना भीषण ह्रास हुआ है। उसे यह स्पष्ट मालूम हो रहा है कि उसे फिर अपना आध्यात्मिक

सम्बन्ध पुराने ईरान से जोड़ना पड़ेगा। उसका उद्धार उसका आशामय भविष्य इसी पर निर्भर है कि वह नये वैज्ञानिक आविष्कारों और वेष-भूषा में तो पश्चिम का अनुसरण करे और भीतर उसकी आत्मा पुराने ईरान के रूप में ढले। और इन्हीं दोनों बातों की ओर वह बड़ी तीव्र गति से बढ़ रहा है।

ईरान में राष्ट्रीय पुनरुज्जीवन की ऐसी लहर पहले कभी नहीं उठी, यह तो नहीं कहा जा सकता। ईरान ने इस्लाम को सूफ़ी धर्म के रङ्ग में रँगना चाहा—यह ईरानी आत्मा का अरब के प्रति विद्रोह ही था। उसके हाफ़िज़, शम्सतब्रेज़, रूमी और ख़ैयाम इस विद्रोह के नेता थे। दसवीं शताब्दी में ही इस विद्रोह का झंडा फ़िर्दौसी ने गाड़ा था, जब उसने इस्लामी बुज़ुर्गों के गीत न गा कर जम्शेद (दारा) और नौशेरवाँ, रुस्तम और सोहराब का राग अलापना शुरू किया। लेकिन वह विद्रोह बहुत निर्बल था, ईरानी जन-समुदाय उससे उदासीन था, और अब तक रहा है। तभी तो मरने पर फ़िर्दौसी को सार्वजनिक क़ब्रिस्तान में दफ़न करने की इजाज़त नहीं मिली, और मजबूरन वह अपने घर के बग़ीचे में दफ़न किया गया। हज़ार साल तक शाहनामा बहुत लोकप्रिय रहा, ईरान में ही नहीं, भारत तक; सो भी काव्य-रसास्वाद तथा मनोरंजन के लिए, जातीय जोश को उभाड़ने के लिए नहीं। किन्तु आज शाहनामा नये ईरान का वेद है। फ़िर्दौसी तूसी उनका ऋषि है। फ़िर्दौसी की क़ब्र को लोग बिलकुल भूल गये थे। बड़ी मुश्किल से तूस शहर के खंडहरों को खोदकर वह निकाली गई; और ईरान ने अपनी खानों से सुन्दर संगमर्मर ले जाकर पुराने ईरानी समाधियों के नक़्शे पर उस पर एक भव्य समाधिगृह बनाया है। दरवाज़े पर शाहनामा के प्राचीन ईरानी वीरों और सम्राटों की मूर्तियाँ खोदी गई हैं। यह सरासर इस्लाम के ख़िलाफ़ है, लेकिन किसी का मजाल नहीं कि कोई उसकी चर्चा भी करे। दो साल पूर्व ईरान ने फ़िर्दौसी का हज़ारसाला जशन मनाया। तूस के जनशून्य खँडहर में एक बार फिर ईरान का शाहनशाह तूस-द्वारा तिरस्कृत फ़िर्दौसी की क़ब्र पर पूजोपहार अर्पण करने के लिए आया। इँग्लैंड,



[ईरानी वर-वधू]

फ़्रांस, जर्मनी, रूस, अमरीका, जापान आदि के प्रतिनिधि-



[ईरानी पुराने वेश में]

स्वरूप सैकड़ों विद्वान् वहाँ पहुँचे थे। हिन्दुस्तान के प्रतिनिधि भी वहाँ गये थे, किन्तु वे हिन्दुस्तानी संस्कृति के प्रतिनिधि न थे। उस समय हिन्दुओं को भी अपने प्रतिनिधि भेजने चाहिए थे; क्योंकि फ़िर्दौसी ने ईरानी संस्कृति को अस्त होता देख वहाँ के पुराने आर्यों का गौरव-गान किया था। फ़िर्दौसी को आज यदि ईरान अपने सर-आँखों पर चढ़ा रहा है, तो वह उसी के लिए।

यदि आप ईरान के शहरों की सड़कों के नामों को ही देखने लगें तो उसी से मालूम हो जायगा कि ईरान अपनी पुरानी संस्कृति की ओर किस प्रकार तेज़ी से दौड़ा जा रहा है। हिन्दुस्तान के मुसलमानों-द्वारा पिछले तीस वर्षों में लिखे ग्रन्थों को देखिए। आपको मालूम होगा—इन लोगों ने प्रतिज्ञा कर ली है कि जहाँ तक हो, हिन्दी-शब्दों को भाषा में आने न दिया जाय। और यदि आप ईरान की ओर देखें, तो वहाँ दूसरी ही बात दिखलाई पड़ेगी। वहाँ हज़ार वर्ष से आकर घुल-मिल गये अरबी शब्द भी कान पकड़कर निकाले जा रहे हैं। मेरे रहते रहते शहर कोतवाली का नाम 'नज़मिया' हटाकर उसकी जगह 'शहरबानी' रक्खा गया। सरकार की ओर से छपी स्कूली किताबों में "बिस्मिल्लाहिर्रहिमानिर्रहीम" को उड़ाकर "बनाम ख़ुदावन्द बख़्शिन्दा वो मेहबान्" लिखा गया है। ज़र्थुस्त्र जैसे पुराने ईरानी नामों का अरबी अक्षरों में लिखा जाना असम्भव होने से उन्हें रोमन-अक्षरों में लिखा जाने लगा है मानो ईरान से भी अरबी-लिपि को धता बताने का सूत्रपात हो चुका है; और ईरान भी कुछ वर्षों में तुर्की की तरह उसे निकाल फेंकनेवाला है। यदि यही मनोवृत्ति अब हिन्दुस्तानी संस्कृति, भाषा, लिपि के विषय में भारतीय मुसलमानों की हो जाय तो क्या हिन्दू-मुस्लिम-एकता कोई कठिन समस्या हो सकती है? और वस्तुतः वह एकता तब तक असम्भव है, जब तक ये भाव उनमें नहीं आते।

आज जो ईरान में राष्ट्रीयता का वह जोश उमड़ा हुआ है, उसका बहुत-सा श्रेय वहाँ के शाहनशाह (= शासानुशास) रज़ाशाह पह्लवी को है। अभी शासन की बागडोर हाथ में आये मुश्किल से एक दर्जन वर्ष हो रहे हैं, और उसमें भी पहले के चार वर्ष तो उन्हें अपने पैरों को मज़बूत करने में ही लगाने पड़े। पिछले सात-आठ वर्षों के भीतर ईरान ने जो किया है उसे देखकर बड़ा आश्चर्य होता है।

(१) ईरान के शहरों की टेढ़ी-मेढ़ी सड़कें और गन्दी गलियाँ वैसी ही थीं, जैसी बनारस की। लेकिन अब? सड़कें तो इतनी सीधी और चौड़ी कर दी गई हैं कि उनका मुक़ाबिला सिर्फ़ नई दिल्ली की सड़कें ही कर सकती हैं। सफ़ाई ख़ूब अच्छी। ये सभी सड़कें हाल में ही बनी या सुधारी गई हैं। सैकड़ों मस्जिदें और हज़ारों क़ब्रें जो सड़कों के रास्ते में आईं, तोड़ दी गईं। तेहरान, अस्फ़हान, शीराज़ और मशहद के भीतर जो क़ब्रिस्तान थे, ख़ाली कर कहीं वहाँ सार्वजनिक उद्यान बन गये हैं, और कहीं कोई दूसरी इमारत। जहाँ-तहाँ मुर्दे न गाड़े जायँ, इसके लिए शहरों में मुर्दों के दफ़नाने का काम सरकार ने अपने हाथ में ले लिया है। एक भारतीय तीर्थयात्री बड़ी गम्भीरता के साथ शाह के प्रति अपना क्रोध प्रकट करते हुए कह रहे थे—अजी जनाब! जानते हैं, मुर्दों को दफ़नाना क्यों इन्होंने अपने हाथ में लिया है? अरे! रज़ाशाह और कमालपाशा ने मिलकर सलाह की है कि मुर्दे जला दिये जायँ, गाड़ने से बहुत जगह घिरती है, बस इसी के लिए यह शुरू किया गया है। जब मुर्दा सरकारी हाथ में आ गया तब आगे चलकर जैसा चाहें, वैसा किया जा सकता है।

(२) जहाँ शाह पह्लवी से पूर्व औरतें सिर से पैर तक बुर्का ओढ़कर ही निकल सकती थीं, सात सात वर्ष की बच्चियों तक के लिए यह नियम अनिवार्य था, वहाँ ईरान में रहते समय (सितम्बर १९३५) मैंने किसी स्त्री को पर्दा किये नहीं देखा। भीतर सभी स्त्रियाँ योरपीय पोशाक पहनती हैं। बाल भी सबके कट गये हैं। एक भारतीय सज्जन ने जब मुझसे कहा कि शत-प्रतिशत केश कट गये हैं, तब मुझे विश्वास नहीं हुआ; किन्तु शीराज़ में शेख़ सादी की क़ब्र की ओर जाते समय रास्ते में मैंने पचीसों स्त्रियों को कपड़ा धोते देखा, और उन सबके बाल कटे हुए थे। मेरे वहाँ रहते समय पर्दा इतना ही था कि घर से बाहर जाते समय स्त्रियाँ अपने ऊपर एक काले रङ्ग की ओढ़नी ओढ़ लिया करती थीं, किन्तु उससे मुँह नहीं ढाँका जाता था; ललाट पर सिर्फ़ एक छज्जा-सा निकल आता था। और नये वर्ष से तो उस ओढ़नी का ओढ़ना भी क़ानूनन बन्द कर दिया गया है।

(३) ईरान में शाही फ़रमान निकाल कर योरपीय पोशाक का प्रचार किया गया है। स्त्रियों के लिए यद्यपि वैसी कड़ाई नहीं रक्खी गई, तो भी फ़ैशन की हवा इतनी ज़बर्दस्त चली कि स्त्रियाँ इसमें पुरुषों से एक क़दम आगे ही रहीं। पहले-पहल शाह ने अपनी छज्जेदार गोल टोपी से श्रीगणेश किया। पिछले साल से सिर पर हैट लगाना लाज़िमी कर दिया गया। इस सोलहों आने साहबी बाना से कुछ कठमुल्ले बहुत नाराज़ हुए, विशेषकर ईरान की काशी—मशहद के। मशहद अफ़ग़ानिस्तान की सरहद के



[ईरानी मुल्ला]

पास है। उन्होंने समझा होगा, अमानुल्लाह की गति यहाँ के शाह की भी की जाय, किन्तु शाह पह्लवी दूसरी ही मिट्टी का बना है। वह राष्ट्र की नब्ज़ पहचानता है, और एक ईरानी वृद्ध के कथनानुसार, उस पर ख़ुदा (= ख़्वदा = स्वधा) का हाथ है। उसके हाथ में सदा विजयपताका फहराती रहती है। जब मशहद के गवर्नर ने मुल्लों-मुजावरों के इस आन्दोलन की ख़बर शाह को फोन-द्वारा दी तब हुक्म आया—बेपर्वाह हो कड़ाई से काम करो। बात से न मानें तो गोली चलाओ। ज़ियारत में सभा हो रही थी। पग्गड़धारी मुल्ले उत्तेजित कर रहे थे—"मुसलमानो इस्लाम ख़तरे में। फ़िरंगी पोशाक क़ाफ़िरों की पोशाक है।

इसे पहनकर हम कैसे नमाज़ अदा कर सकते हैं ? कैसे मुहर्रम में मातम कर सकते हैं ? ख़ुदा के नाम पर तैयार हो जाओ।" गवर्नर ने समझाया—"ख़ुदा के वास्ते ऐसा मत करो। शाह पह्लवी जी कुछ कर रहा है, ईरान की भलाई के लिए, ईरान को सबल और समृद्ध बनाने के लिए। ईरान का हर एक नौजवान अपने शाह के हुक्म पर सिर हथेली पर रखकर खड़ा होने के लिए तैयार है। इस तरह की उत्तेजना फैलाना, तुम्हारे हक़ में अच्छा न होगा।" बात नहीं मानी गई। फ़ायर करने का हुक्म हुआ। कोई कहते हैं, पाँच हज़ार आदमी मारे गये, कोई कहते हैं, दो हज़ार, किन्हीं का अनुमान है कि हज़ार बारह सौ, और किन्हीं किन्हीं का कहना है—"अजी साहब ! चालीस-पचास आदमी मारे गये, बाक़ी भाग गये। डरा कर भगा देना—यही सरकार की मंशा थी।" ख़ैर ! शाह पह्लवी ने यह एक ऐसा अन्तिम पाठ पढ़ाया कि अब मुल्ले चीं नहीं करते। कोई भी बात करने में उन्हें दीवारों के कान होने का भय लगा रहता है।

मेरे सहयात्री एक भारतीय तीर्थाटक मुसलमान कह रहे थे—"अजी साहब ! आप जानते हैं, क्यों इस...ने अँगरेज़ी टोपी चलाई है" ? मैंने कहा—"फ़रमाइए"।

"अजी ! यह......चाहता था कि कोई मुसलमान नमाज़ न पढ़े, इसलिए पहले उस छज्जेदार पह्लवी टोपी को पहनने का हुक्म हुआ। आप जानते हैं, नंगे सिर पढ़ी नमाज़ को ख़ुदा क़बूल नहीं करता, और नमाज़ पढ़ते वक़्त पेशानी को ज़मीन छूना चाहिए। छज्जे के कारण पेशानी (= ललाट) ज़मीन तक नहीं पहुँच सकती थी। इसके कारण बहुतों ने नमाज़ पढ़नी छोड़ दी। लेकिन कुछ चतुर आदमियों ने टोपी के छज्जे को पीठ की ओर फेर कर नमाज़ पढ़नी शुरू की। यह ख़बर...शाह तक पहुँची। तब हुक्म निकला—सभी हैट पहनें। हैट में तो चारों ओर छज्जा रहता है, अब नमाज़ कैसे अदा हो सकती है।"

मैंने कहा—"मुल्ला लोगों के लिए पगड़ी और चोग़ा पहनने में कोई रुकावट नहीं। पक्के नमाज़ी लोग क्यों न मुल्ला बन जायँ ?"

उत्तर मिला—"मुल्ला बनना आसान नहीं है। देखते नहीं कि तेहरान-असफ़हान जैसे शहरों में भी सफ़ेद पगड़ी और काले चोग़े इने-गिने ही दिखाई देते हैं। उन्हें देख कर छिछोरे लड़के मज़ाक़ उड़ाते हैं। और तिस पर भी मुल्ला होने के लिए मजिस्ट्रेट से लैसन्स लेना पड़ता है। उसे सिद्ध करना पड़ता है कि वह इस्लामी शरीअत का आलिम है।"

हमारी मोटरलारी में चार-पाँच भारतीय तीर्थ-यात्री मुसलमान थे, और बाक़ी सात-आठ ईरानी हैटधारी। ग़नीमत यही थी कि वे हमारी बातचीत को समझ नहीं रहे थे, नहीं तो जिस तरह फ़र्र फ़र्र हमारे भारतीय भाई "मर्दूद", "क़ाफ़िर", "मुर्तिद्"......का प्रयोग कर रहे थे, उनकी वहीं चाँद गंजी हो जाती, और अगले ही पड़ाव पर पुलिस बड़े घर की ओर ले जाती।

ईरान की इन काफ़िराना हर्कतों को देखते-देखते हमारे बोरा (गुजराती) सहयात्रियों का दिल तो इतना पक गया था कि एक दामाद साहब कहने लगे—"अजी मुल्ला जी ! ये सब बातें देखकर तअज्जुब करने की नहीं। ये सब क़यामत के आसार हैं। रसूललिल्लाह को हुए साढ़े तेरह सौ वर्ष हो रहे हैं। अब तो उसका समय भी आ पहुँचा है। इसी लिए तुर्की, ईरान सभी कुफ़्र की ओर बहे जा रहे हैं।"

ससुर साहब ने फ़र्माया—"हाँ जी ! हज़रत नूह अलैहिस्सलाम् जिस वक़्त इसी तरह की ख़ुराफ़ातों को देखकर, कश्ती बना रहे थे, और कह रहे थे—भाइयो ! मत कुफ़्र की ओर जाओ। ख़ुदा के बताये रास्ते पर चलो वे लोग हँसी उड़ाते थे। आख़िर तूफ़ान आया, सारी दुनिया ग़र्क़ाब हो गई।"

मैंने कहा—"मुल्ला जी ! मैंने सुना है, जिस जोदी पर्वत पर हज़रत नूह अलैहिस्सलाम की नाव लगी थी वह भारत में ही था। यदि वह न भी रहा हो, तो भी अगला जोदी तो भारत में ही कहीं होगा। हमारे यहाँ के मुसलमान इन बुराइयों से बहुत दूर हैं। वे अपने धर्म के पक्के हैं, इसलिए ख़ुदा के क़हर से चाहे सारी पृथ्वी डूब जाय, परन्तु हमारे भारत पर तो ख़ुदा का वरदहस्त ज़रूर रहेगा।"

इतना लिखने से पाठकों को इसका आभास मिल सकता है कि ईरान कितना निडर होकर आगे बढ़ रहा है। भारत में किन्हीं किन्हीं मित्रों ने मुझसे पूछा-हैट-पतलून पर इतना ज़ोर देने की क्या ज़रूरत, जब दूसरे बहुत से काम उससे कहीं अधिक लाभदायक करने को हैं। लेकिन उन्हें यह मालूम नहीं कि ईरान हज़ारों रूढ़ियों से जकड़ा हुआ था। लोगों पर मुल्लों का बहुत प्रभाव था। ऐसी स्थिति में सबसे पहली ज़रूरत थीएक क्रान्तिकारी मनोवृत्ति की। और यह योरपीय लिबास उस मनोवृत्ति को जगाता है, मुल्लों के मन्सूबों को पग-पग पर चूर-चूर करता है। एक तरह हज़ार छोटे-छोटे सुधारों के लिए यह एक सुधार काफ़ी है।



[एक ईरानी परिवार]

(४) यद्यपि ईरान में अनिवार्य शिक्षा का अभी आरम्भ नहीं हुआ है, तो भी पिछले दस सालों में लड़के-लड़कियों के स्कूलों की संख्या बहुत बढ़ गई है; और सरकार अनिवार्य शिक्षा जारी करने की बात सोच भी रही है। हर साल सरकार सैकड़ों होनहार विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देकर योरप में शिक्षा के लिए भेज रही है। स्कूलों की पाठ्य-पुस्तकें नये दृष्टिकोण से लिखी जा रही हैं। और शिक्षण में वे सभी साधन बरते जा रहे हैं जिनसे नई पीढ़ी में ईरान के भूत और भविष्य के प्रति अटल भक्ति पैदा की जा सके।

(५) आर्थिक दृष्टि से भी ईरान बहुत उन्नति कर रहा है। वहाँ चीनी के कारख़ाने न थे, किन्तु अब कितने ही कारख़ाने चुकन्दर से चीनी बनाने के लिए बन चुके हैं। सूती और ऊनी कपड़ों के भी कारख़ाने खुले हैं और जो चीज़ें देश में बनाई जाती हैं, बाहरी प्रतियोगिता से बचाने के लिए वे चीज़ें बाहर से नहीं आने दी जातीं। आयात-निर्यात का प्रायः सारा व्यापार सरकार के हाथ में है, इससे सरकार को भी देश के काम के लिए काफ़ी रुपया मिलता है, और स्वदेशी उद्योग-धन्धों की भी रक्षा होती है।

(६) भीतर यातायात के मार्ग बहुत अच्छे हैं। मुल्क पहाड़ी तथा विरल बसा होने से ईरान में रेल निकालने में लाभ नहीं है, किन्तु पक्की सड़कें बनाने का वहाँ बहुत सुभीता है। सारे देश में एक छोर से दूसरे छोर तक सड़कों का ताँता बिछा हुआ है, जिन पर पाँच पाँच टन की छःपहिया लारियाँ रात-दिन दौड़ रही हैं। अमन-अमान की तो यह हालत है कि जहाँ दस ही वर्ष पहले ईरान में गाँव से दो फ़र्लांग भी बाहर जाना ख़तरे से ख़ाली न था—गाँव की तो बात ही क्या शहर की सड़कों पर भी रात बिरात निकलना सुरक्षित नहीं समझा जाता था, वहाँ आज जनशून्य पहाड़ी बियाबानों में रात-दिन मोटर दौड़ रहे हैं, मजाल नहीं कि कोई हाथ डाले। पाँच-पाँच सात-सात मील पर मार्ग की रक्षा के लिए नीली

वर्दीवाले सशस्त्र अग्निवा सिपाही तैनात हैं। वस्तुतः, शिक्षा-वृद्धि, आर्थिक उन्नति, और शान्ति-व्यवस्था ये तीन चीज़ें हैं, जिन्हें शाह पहलवी ने ईरान को प्रदान किया है, और इन्हीं के कारण सारा ईरान अपने शासक में अटल श्रद्धा रखता है। यह न होता तो पीढ़ियों से चली आई धर्म-रूढ़ियों के मर्म-स्थान पर आघात पहुँचानेवाले जो अनेक क्रान्तिकारी सुधार किये गये हैं उनसे कभी का घोर विद्रोह हो गया होता।

(७) शाह पहलवी से पहले ईरान की स्वतन्त्रता नाममात्र की थी। उत्तरी ईरान रूस के प्रभाव में था, और दक्षिणी ब्रिटिश के। अब वह वास्तविक अर्थ में स्वतन्त्र है।। उसकी स्थल और वायुसेना सुसंगठित है। जलसेना भी बढ़ाई और दृढ़ की जा रही है। पहलवी-शासन से पहले टूटी-फूटी स्थलसेना थी, वायुसेना और जलसेना का तो नाम भी न था। आज ईरान के सभी बड़े शहरों के बीच सप्ताह में दो बार हवाई जहाज़ चलते हैं तथा बेतार के तार लगे हैं।

बारह वर्ष के भीतर शाहंशाह रज़ाशाह ने ईरान का कायापलट दिया है, किन्तु अभी ईरान को उनकी और ज़रूरत है। दस-पन्द्रह वर्ष तक उनका जीवित रहना तो देश के लिए अनिवार्य है। उनके जीवन का एक एक क्षण ईरान के लिए अनमोल है। ईरानी यथार्थ में ही दारा, कोरोश, नौशेरवाँ की पंक्ति में रखकर उनकी पूजा करते हैं। पहलवी का काम कमालपाशा से भी बढ़कर है, क्योंकि उन्हें सामग्री उतनी अच्छी न मिली थी, जैसी कमालपाशा को।

भारतीयों को ईरान की प्रगति में ख़ास तौर से दिलचस्पी होनी आवश्यक है, क्योंकि नव ईरान उस पुरानी ईरानी संस्कृति को उज्जीवित कर रहा है जो भारतीय संस्कृति की सगी बहन है, वहाँ के छोटे-छोटे स्कूल के लड़के भी किताबों में पढ़ते हैं—"आर्य क़ौम मध्य-एशिया से जब अफ़ग़ानिस्तान में आई तब उसकी दो शाखायें हो गईं, पश्चिमीय शाखा की सन्तान हम हैं, और उसी आर्य नाम पर हमारे मुल्क का नाम ईरान पड़ा; और पूर्वीय शाखा हिन्दुस्तान में फैल गई।" नव ईरान अरब की अपेक्षा अब भारत की ओर अधिक आ रहा है।

फाल्गुन

लेखक, श्रीयुत गोविन्दवल्लभ पन्त

रवि-किरणें हो चली हैं प्रखर,
दीर्घ हुआ दिन-मान।
फूटे अङ्कुर शाखाओं पर,
मृदु तन, कोमल प्राण।
खिलने लगे रंग हैं जग में.
लोग रच रहे फाग।

कोयल मचल रही है मग में,
लेकर नव अनुराग।
खोज रही है गौरैया तृण,
हुआ वर्ष का अन्त।
महाकाल से फिर लेकर ऋण,
आता निकट बसन्त।

उदय-अस्त

लेखक, श्रीयुत पृथ्वीनाथ शर्मा, बी॰ ए॰ (आनर्स), एल-एल॰ बी॰

"क्या कोई हमारे मतलब की भी चीज़ आई है ?" दूकान में घुसते हुए मैंने एक फटे-से दरी के टुकड़े पर बैठे हुए दूकानदार से पूछा।

"आई तो थी"—दूकानदार अपने नीले होंठ खोलता हुआ और दो-चार बचे-खुचे पीले दाँत प्रदर्शित करता हुआ मुस्कुराया। झुर्रियों से घिरी हुई छोटी-छोटी आँखों से उसने एक बार मेरी ओर देखा और कहने लगा—"और बाबू जी थी भी एक गज़ब की चीज़। मुझे निश्चय है कि आपकी चित्र-शाला में एक भी वैसा चित्र नहीं होगा। चित्र की एक-एक लकीर से एक मँजे हुए उस्ताद के हाथ साफ़ दीखते हैं। कई दिनों तक तो मैंने आपका इन्तज़ार किया, पर जब आप न आये तब कल उसे बेच डाला।"

मैं कई वर्षों से पुराने हस्तलिखित चित्रों तथा पुस्तकों की तलाश में उस निर्जन से बाज़ार के कोने में छिपी उस बूढ़े कबाड़ी की दूकान पर प्रायः आता-जाता रहता था। इसलिए मेरी उससे काफ़ी जान-पहचान होगई थी। यद्यपि मेरे साथ उसका व्यवहार अधिकतर बेलाग ही होता था, तो भी कभी-कभी दाम बढ़ाने के लोभ से वह मुझ पर भी अपनी चतुर जिह्वा तथा उससे भी चतुर भावभंगी-द्वारा दाँव चलाने से न चूकता था। क्या आज भी वह वही खेल तो नहीं खेल रहा है, यह जानने के लिए मैंने पैनी दृष्टि से उसके चेहरे पर सचाई ढूँढ़ते हुए पूछा—"सच-मुच बेच डाली ?"

"जी साहब। भला आप भी हम पर सन्देह करते हैं। आपसे हमने कभी कुछ छिपाया भी है ? आधा दाम जो कल मिल गया था, अभी तक मेरी जेब में है और बाक़ी दाम लेकर ख़रीदार अभी आते ही होंगे।"

"तो चित्र तो अभी तुम्हारे पास ही पड़ा है न ?" मैंने उछल कर पूछा।

"जी, इससे तो इनकार नहीं।"

"दिखाओ तो ज़रा।"

अपने घुटनों पर हाथ रखकर जो चमगादड़ के चमड़े से मढ़े हुए मालूम देते थे, वह उठ खड़ा हुआ। और दूकान में इधर-उधर बिखरे पड़े पुराने कोट, वास्कट, चीनी के बर्तन, टूटे हुए जूते, लोहे-पीतल के तसले, चाक़ू, क़ैंचियाँ तथा अन्य कई ऐसी ही वस्तुओं से कहीं बचता तथा कहीं उलझता हुआ दूकान के अन्दर की ओर चल दिया। दूकान के अन्त में अख़बार के काग़ज़ में लिपटा हुआ एक चौखटा पड़ा था। उसे उठाकर उपरले काग़ज़ को उतारता हुआ लौट आया। उसे मेरे हाथ में पकड़ा कर दाँत निकालता हुआ बोला—"लीजिए साहब, ज़रा हृदय थाम कर देखिए।"

चित्र देखकर मैं खिल उठा। ऊँची कला का सच-मुच वह एक अछूता तथा अद्वितीय नमूना था। वह थी तो आधुनिक कूची की ही करामात, परन्तु उस कूची के स्वामी की अँगुलियों में अद्भुत चतुरता थी, स्वर्गीय जादू था। पाँच-छः वर्ष के बालक के चेहरे पर सरलता, चुलबुलाहट, करुणा तथा सुन्दरता का इतना अच्छा तथा स्वाभाविक सम्मिश्रण करने में बड़े बड़े पूर्वीय तथा पश्चिमीय कलाकारों में भी शायद ही कोई इतना सफल हो सका हो। उसके लाल लाल कलामय होंठों पर खेलती हुई हलकी मुस्कान, सागर से भी गहरी उसकी बड़ी बड़ी काली आँखें, ज्योतिर्मय उन्नत ललाट, और रेशम से भी कोमल भूरे भूरे बालों का चित्रण इतना सजीव था कि कला से अनभिज्ञ पुरुष भी उसकी एक झलक देखकर ही एक बार तो अवश्य झूम उठता। वह चित्र नहीं बल्कि किसी तपस्या का वरदान था।

"कितने में बेचा है इसे ?" चित्र से ध्यान हटाकर मैंने दूकानदार से पूछा।

"मिट्टी के मोल। केवल दो सौ रुपये में।"

दो सौ रुपये में ! यह अमूल्य स्वर्गीय विभूति इतने थोड़े दामों मेरे हाथ आ सकती थी, यह सोचकर मैं खेद से विकल हो उठा। रोकते रोकते भी एक बार मेरे मुँह से निकल ही गया, "क्या सचमुच तुम्हारा सौदा पक्का हो चुका है ?"

"हाँ जी"। दूकानदार के स्वर में भी खेद घुस पड़ा था—"और खरीदार भी आपकी भाँति एक बहुत पुराने ग्राहक हैं। यदि कोई और होता तो शायद मैं सौदे से फिर भी जाता। परन्तु अब विवश हूँ।"

मैंने एक बार फिर लालसा-पूर्ण नेत्रों से चित्र की ओर देखा। फिर उसे दूकानदार के हाथ में पकड़ाकर बाहर की ओर चल दिया। मैं अभी बाहर निकला ही था कि धीमे स्वर में दूकानदार ने पुकारा—"बाबू जी।"

"क्यों ?" मैं लौट पड़ा।

"मैं आपको बताना तो नहीं चाहता था"। मेरे ऊपर अहसानों का बोझा लादते हुए उसने कहना आरम्भ किया—"पर आपका बहुत नमक खा चुका हूँ, इसलिए छिपा नहीं सकता। ठीक ऐसा एक और भी चित्र है।"

"कहाँ ?" मैं ज़रा उत्तेजित हो उठा।

"जहाँ से यह खरीदा था।"

"परन्तु उसे तुम क्यों छोड़ आये ?"

"क्योंकि चित्र-स्वामी उस दिन उसे किसी भी दाम पर बेचने को तैयार न थे। पर वे बेचेंगे अवश्य। वे ऐसे दलदल में फँसे हैं जिसमें चित्र बेचे बिना छुटकारा पाना, मैं समझता हूँ, असम्भव है।"

यह कहकर उसने मुझे उनका नाम तथा पता बता दिया। दूकानदार को धन्यवाद देकर मैं दूकान से बाहर निकल आया। कलाई पर लगी हुई घड़ी की ओर देखा। छः बजने में अभी कुछ मिनट बाक़ी थे। इसलिए उसी समय घर पहुँचा। जेब में कुछ रुपये डाले और चित्र की खोज में निकल पड़ा।

[२]

शहर की ऊबड़-खाबड़ तंग और गंदी गलियों में स्थान स्थान पर लगे हुए कूड़े-कर्कट के ढेरों से टकराता, भूलता-भटकता लगभग एक घंटे के अनन्तर मैं कबाड़ी की बताई गली तक आख़िर जा ही पहुँचा। मैंने एक दृष्टि से उस बहुत ही तंग तथा अँधेरी परन्तु काफ़ी लम्बी गली की ओर देखा। गली के बाहर एक हलवाई की छोटी-सी दूकान थी। मैं उसी के पास पहुँचा—"क्या इस गली में कोई राजेन्द्रनाथ भी रहते हैं ?"

"जी, गली की दाईं ओर अन्त में उनका मकान है।"

अब तक अँधेरा हो चुका था। गली के दोनों ओर के मकानों से कहीं कहीं निकलती हुई ज्योति की लकीरों की सहायता से मैं गली के लगभग मध्य में जा पहुँचा। वहाँ पर गड़ी एक लालटेन जो शायद म्युनिसिपैलिटी की कृपा का फल थी, एक धुँधले-से प्रकाश-स्तम्भ का काम दे रही थी। लालटेन के दो ओर के शीशे तो ठीक थे, पर एक ओर शीशे के स्थान पर पुराना-सा काग़ज़ लगा रहा था और चौथी ओर का शीशा आधे से अधिक फूट चुका था। इसलिए कभी कभी पता नहीं, कहाँ से आकर हवा का एकाध झोंका उस ज्योति-शिखा से छेड़-छाड़ करके उजाले को और भी कम कर देता था। उस लालटेन के नीचे तीन-चार धूल से सने बालक खेल रहे थे और ताक़त की दवाइयों के विज्ञापनों में छपनेवाली प्रेमभरी गज़लों की कोई कोई कड़ी गुनगुना रहे थे।

"क्यों भई" ? एक लड़के के कन्धे पर हाथ रखते हुए मैंने पूछा—"राजेन्द्रनाथ जी कहाँ रहते हैं ?"

"उस पुराने-से मकान में जिसकी आधी खिड़की खुली है।" संकेत-द्वारा मकान बताते हुए उसने जवाब दिया।

मैं वहाँ जा पहुँचा और द्वार खटखटाया। जब दो बार खटखटाने से कुछ फल न निकला तब मैंने आहिस्ता से द्वार को धकेला। अन्दर से साँकल नहीं लगी थी, इसलिए द्वार खुल गया। मैंने अन्दर झाँका। कमरा ख़ाली पड़ा था और उसके एक कोने में एक अधखुले दरवाज़े के निकट रक्खा एक पुराना-सा मिट्टी के तेल का लैम्प टिमटिमा रहा था। मैंने कमरे के अन्दर मुँह किये ही एक आवाज़ लगाई, जो शायद गृह-स्वामियों तक पहुँच गई। क्योंकि ठीक उसी समय लैम्प के पास से निकलकर एक अधेड़ अवस्था की स्त्री मेरे सम्मुख आ खड़ी हुई। उसने अपने वेदना-भरे विशाल नेत्रों-द्वारा मुझ पर एक प्रश्न-सूचक दृष्टि दौड़ाई।

"क्या राजेन्द्रनाथ जी घर पर हैं ?" मैंने पूछा।

"हाँ"। उसने उदासीन परन्तु शिष्ट स्वर में जवाब दिया—"आपको उनसे कुछ काम है क्या ?"

"मैंने सुना है, उनके पास एक हस्तलिखित चित्र है। मैंने सीधा मतलब की बात पर आना ही ठीक समझा—"यदि उन्हें वह बेचना हो तो मैं उचित दाम पर ख़रीदने को तैयार हूँ।"

"चित्र ! तो ये चित्र की तलाश में आ रहे हैं।" उसके होंठ ज़रा थिरक उठे। उसने मेरी ओर ऐसे देखा मानो कोई चोर उसका अमूल्य ख़ज़ाना जिसे बचाने का उसके पास एक भी साधन न हो, लूटने आ गया हो। उस दृष्टि की विवशता ने मुझे आधे क्षण के लिए कँपा दिया। फिर एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर वह ऐसे बोलती गई मानो अपने आपसे बातें कर रही हो—"परन्तु उस चित्र को छिपाकर ही कब तक रख सकते हैं। उनकी शारीरिक ज्वाला को शान्त करने के लिए उन्हें यह मानसिक वेदना तो सहनी ही होगी। इस हृदय के टुकड़े को भी दूसरे के हाथों सौंपना ही होगा। उफ़ !"

यह कह कर वह रुक गई। अपने सिर को ज़रा झटका देकर हिलाया और बोली—"हाँ उन्हें वह बेचना है। आप अन्दर आ जाइए।"

कमरे में एक टूटी-फूटी लकड़ी की कुर्सी पड़ी थी। उस पर बैठने का मुझे आदेश करके वह लैम्प के पास-वाले द्वार में घुसती हुई अदृश्य हो गई।

मैं उस अर्द्ध-प्रकाशित कमरे में चुपके से बैठ गया। कमरे में बिलकुल सन्नाटा था। हाँ, कभी कभी मानो कहीं बहुत दूर से किसी के खाँसने तथा उत्तेजना-भरे शब्दों में होंठों होंठों में ही बातें करने का अस्पष्ट-सा स्वर उस सन्नाटे से टकराकर कमरे के वातावरण में विलीन हो जाता था। क्या जाने वह स्वर कौन-सी करुण कहानी कह रहा था ! कौन कह सकता था कि उस कमरे की चहारदीवारी में किन हृदयविदीर्ण चोटों की स्मृतियाँ छिपी हुई थीं ? आह आज यदि अतीत कहीं जिह्वा पा जाय तो पता नहीं, संसार के एक एक कोने से किन भावों का स्रोत वह निकले ? कह नहीं सकता मैं कितनी देर इन्हीं वास्तविकता-रहित बातों में उलझा रहा। अभी मैं इन्हीं विचारों में ही डूबा था कि वह आ गई।

"चलिए आपसे वे बात करना चाहते हैं।" उसके नेत्रों के आँसू अभी पूरी तरह सूख नहीं पाये थे।

मैं उठ खड़ा हुआ। उसके पीछे ऐसे चल पड़ा मानो कोई स्वप्न देख रहा हूँ। द्वार पार करके हम दूसरे कमरे में पहुँच गये। यह कमरा पहले कमरे से कुछ बड़ा था, परन्तु था लगभग अँधेरा ही। उसी लैम्प से फूटती हुई दो-चार किरणें केवल कमरे के आरम्भिक भाग को थोड़ा प्रकाशित अवश्य कर रही थीं।

[३]

"इन्हें अधिक रोशनी नहीं भाती।" मुझे उनकी चारपाई के पास पड़ी हुई एक पहले जैसी टूटी-फूटी कुर्सी पर बैठने का उसने संकेत किया और चारपाई की ओर मुँह करके पूछा—"क्या लैम्प ज़रा इधर ले आऊँ ?"

"हाँ।" एक बहुत ही क्षीण तथा ज़रा काँपती हुई आवाज़ में जवाब मिला।

आधे क्षण में ही उसने लैम्प को कमरे के मध्य में ला रक्खा। दीवार का आश्रय लेकर तकिये के सहारे बैठे हुए मनुष्य का चेहरा अब भले प्रकार दृष्टिगोचर हो रहा था। कितना करुण था वह मुख ! उसके होंठ लगभग श्वेत, बढ़ी हुई दाढ़ी और मूँछों में छिपे थे, कभी चित्ताकर्षक रही हुई आँखें अन्दर को धँस चुकी थीं, रक्तरहित पीत मस्तक पर कई-एक चिन्ता की रेखाओं के साथ साथ एक-दो हरी हरी नाड़ियाँ उस धुँधले प्रकाश में भी साफ़ दीख रही थीं। हाँ, नाक की तीक्ष्णता में कुछ फ़र्क नहीं आया था, नासिका अब भी एक उच्च व्यक्तित्व की साक्षी दे रही थी। कोई एक मिनट तक हम एक-दूसरे का निरीक्षण करते रहे। इसके अनन्तर कुछ बोलने के लिए मैं अभी मुँह ही खोलने जा रहा था कि राजेन्द्रनाथ जी सहसा बोल उठे—"क्या कहीं अजीतमोहन तो इधर नहीं भूल पड़े ?"

अपना नाम सुनकर मैं चौंक उठा। आश्चर्य से आँखें

फाड़ फाड़कर उस रुग्ण व्यक्ति की ओर देखने लगा, "हाँ, परन्तु"—

"तुम मुझे नहीं पहचानते यही पूछने जा रहे थे न। अब पहचान ही कौन सकता है" वे बीच में ही बोल उठे। कितनी वेदना थी उनके स्वर में! "क्या वह दिन याद है जब आज से बीस वर्ष पहले तुम उस महान् कलाकार हलधर के पास चित्रकारों पर कोड़े चलाने की कला सीखने जाया करते थे। उसी के स्थान पर एक क्षुद्र परन्तु उमङ्गों और स्वप्नों में खेलनेवाले चित्रकार से प्रायः तुम्हारी भेंट हुआ करती थी, जिसके साथ बैठकर तुम कभी कभी घंटों माईकल एंजेलो, डाक्टर विन्ची और ऐसे ही कितने उस्तादों की चर्चा छेड़े रखते थे। मैं वही क्षुद्र चित्रकार हूँ।"

"कमलेश्वर?" मुझे अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ। क्या मनुष्य इतना भी बदल सकता है? क्या यह वही कमलेश्वर है जिसका एक एक अङ्ग साँचे में ढला था, जिसकी कला पर इस युग का सबसे बड़ा चित्रकार हलधर भी पागल था, ईर्ष्या करता था? 'अजीत इसकी कला को ज़रा विकसित होने दो फिर देखना संसार किस तरह इस चित्रकार की आरती उतारता है' हलधर के ये बार बार कहे हुए शब्द सहसा मुझे स्मरण हो आये। आह खूब आरती उतर रही है!

"हाँ वही।" ज़रा खाँसते हुए कमलेश्वर ने जवाब दिया—"जब मैंने चित्रकारों के जगत् में प्रवेश किया तब अपना असली नाम छोड़कर इसी नाम को अपनाया था। पर आज से पाँच वर्ष पहले जब पता नहीं किस दैवी कोप ने मुझे उस जगत् से, उस स्वर्ग से धकेल कर बाहर फेंक दिया, तब मैंने उस नाम को भी वहीं छोड़ आना उचित समझा। जिस नाम ने राजसी ठाट देखे थे उसे क्यों इस दुख और वेदनाओं के संसार में अपने साथ खींच लाता?"

"पर आपको वह जगत् छोड़ना क्यों पड़ा?"

"इसलिए कि हाथों में तूलिका काँपने लगी और मन की एकाग्रता नष्ट हो गई।"

"अर्थात्।"

"मुझे भोला की बीमारी ने ग्रस लिया।" यह कह कर वे थोड़ा रुके। वे अभी और कुछ कहने ही जा रहे थे कि उनकी खाँसी जिसे वे बहुत देर से रोकते आ रहे थे, ज़ोर पकड़ गई। वे कई क्षण दिल दहलानेवाले स्वर में खाँसते रहे। उनकी पत्नी ने उनकी पीठ सहलाई। थोड़ा गर्म पानी पिलाया तब कहीं वह जाकर रुकी।

"जाओ वह चित्र तो उठा लाओ।" उन्होंने अपनी पत्नी को आज्ञा दी।

सामने अलमारी में से निकालकर उसने सुनहरे चौखटे में जड़ा वह चित्र अपने पति के हाथ में पकड़ा दिया।

कमलेश्वर के हाथ में आते ही मैंने उसे ज़रा उचक-कर देखा। ठीक पहले जैसा चित्र था। वही आत्मा थी, वही दिव्य ज्योति इसमें भी प्रज्वलित थी। रज़ाई से ढँके अपने घुटनों पर चित्र रखते हुए कमलेश्वर बोले—

"अजीत, इन दो चित्रों को अंकित करने के लिए मुझे चाँद और तारों के संसार से ऊँचे, बहुत ऊँचे उड़ना पड़ा था। अनन्त-सागर की अथाह गहराई तथा हाहाकारमयी लहरों में भटकना पड़ा था और पड़ा था अपने हृदय को पागल बनाना। इनको समाप्त करने पर मैं आनन्द से विह्वल हो उठा, हवा में तैरने लगा। उन दिनों हलधर जीते थे। मैं ये चित्र लेकर सीधा कला के उस परम पुजारी के पास पहुँचा।

"मुझे ठीक याद है, उस रात हलधर एक आराम-कुर्सी पर बैठे सुस्ता रहे थे। सामने अँगीठी जल रही थी और कमरा बिजली की हलकी ज्योति से प्रकाशित था। मुझे देखकर बोले, 'यह क्या लिये आ रहे हो?' मैंने कहा, अपने हृदय के दो टुकड़ों का मोल आँकवाने आया हूँ।

"वहाँ कई कुर्सियाँ पड़ी थीं उनमें से दो का सहारा देकर मैंने वे चित्र ठीक उनके सामने रख दिये। चित्रों की एक झलक देखते ही वे उछल पड़े। उठकर मुझे छाती से चिपटा लिया और बोले—'कमलेश्वर! तुम अमर हो गये। मेरी भविष्य-वाणी सत्य निकली। शीघ्र ही मैं एक प्रदर्शनी करने जा रहा हूँ। वहीं इन चित्रों का परिचय कलाकारों के जगत् में कराऊँगा और दिखाऊँगा कि कमलेश्वर के हाथ में कितना जादू है।' 'पर मैं इन्हें बेचूँगा नहीं', मैंने कहा। 'क्यों?' उन्होंने कहा। 'मैंने इन्हें बेचने के लिए नहीं बनाया। ये मेरी एकमात्र सन्तान मेरी नन्हीं लड़की की प्रतिमूर्तियाँ हैं। इनमें से एक मेरे पास और एक मेरी पत्नी के पास रहेगा।' मैंने कहा।

"भला वह लड़की आज-कल कहाँ है?" मैंने ज़रा उत्सुकता से पूछा।

"लड़की। वहीं जहाँ मैं कुछ दिनों में जा रहा हूँ"। उनकी आवाज़ टूटने लगी, पर उसे शीघ्र ही सँभाल कर वे बोले—"ख़ैर। आप इस चित्र का क्या दाम देंगे?"

दाम! इस करुण कहानी के बाद क्या कोई सहृदय उस चित्र को ख़रीद सकता था? परन्तु उन्हें रुपये की बहुत ज़रूरत थी। चित्र दिये बग़ैर शायद वे एक कौड़ी भी लेने से इनकार कर दें। उच्च कलाकारों के आत्माभिमान को मैं ख़ूब जानता था। इसलिए आधे क्षण के लिए असमंजस में पड़ गया। पर एक बार पूछना तो होगा ही। "कमलेश्वर! एक निवेदन करना चाहता हूँ"—मैंने विनम्र स्वर में कहा।

"कहो।"

"इस चित्र को तुमसे छीनने का साहस नहीं होता। इसलिए यदि एक छोटा भाई तुम्हारे चरणों में कुछ भेंट रक्खे तो स्वीकार करके क्या तुम उसे कृतकृत्य न कर दोगे?"

कमलेश्वर प्रभावित हो गये। एक बार मेरी ओर कृतज्ञता-भरी दृष्टि से देखा। फिर गहरे सोच में डूब गये। उनके हृदय में ममता और आत्माभिमान में युद्ध छिड़ गया था। उसी से निपटने के लिए वे कुछ समय चाहते थे। वे बहुत देर ऐसे ही अनिश्चित अवस्था में बैठे रहे। आख़िर कठोर आत्माभिमान ने कोमल ममता को मसल डाला। वे मेरी ओर देखकर बोले—"तुम्हारी कृपा के लिए अनेक धन्यवाद, पर मैं वह भेंट न स्वीकार कर सकूँगा। इसलिए मेरी परिस्थिति तथा अन्य सब बातों को भूलकर चित्र का उचित दाम बताइए।"

"पाँच सौ।" मैंने कहा।

कमलेश्वर ने मेरी ओर आश्चर्य से देखा—"मैं दया की भीख नहीं चाहता। मैंने पहला चित्र पचास में बेचा था। क्या सचमुच तुम घर से इतना दाम देने का निश्चय करके चले थे?"

"हाँ। इससे कम में यह चित्र ख़रीदना मैं पाप समझता हूँ।" मैंने जेब में हाथ डालकर वह नोटों का बंडल जो घर से लाया था, उनके आगे फेंक दिया। "गिन लीजिए, इतने दाम लेकर मैं निकला था।"

उन्होंने गिना। वे पूरे पाँच सौ के नोट थे। अब उन्हें विश्वास हो गया। उन्होंने अन्तिम बार चित्र को सतृष्ण नेत्रों से देखकर मेरे हाथ में दे दिया और नोट अपनी सिसकती हुई पत्नी के हाथ में। फिर थककर चारपाई पर लेट गये।

[४]

चित्र को लेकर मैं ऐसे चला मानो किसी का जीवित हृदय—अग्नि का एक अंगारा—बग़ल में दबाये हुए हो। मेरी अँगुलियां और शरीर के दूसरे भागों से जिनके साथ चित्र स्पर्श कर रहा था, सचमुच चिनगारियाँ फूट रही थीं। इस जलन से छुटकारा पाने के लिए मैं उतावली से घर की ओर बढ़ने लगा।

घर पहुँचकर मैंने उस चित्र को एक कोने में छिपा-कर रख दिया। दो-चार दिन तक जब जी ठिकाने हो जायगा तब इसे उचित स्थान पर लगा दूँगा, यह सोच कर मैं कमरे से बाहर आँगन में निकल आया। आँगन में दो ही एक दिन में अस्त होनेवाले चाँद की चाँदनी छिटकी हुई थी। उसकी किरणें आँगन के एक कोने में खिले दो ही एक-दिन में मुर्झानेवाले गुलाब के बड़े बड़े फूलों के कानों में कुछ कह रही थीं। शायद उन्हें अपने साथ ले डूबने का निमंत्रण देने आई थीं। आह उस दिन यह चाँद निकला था कितना प्यारा, किन उमंगों से खेलता हुआ और अब छिपने की घड़ियाँ गिन रहा है। हाँ! अभी कल ही तो ये फूल खिले थे। महक का समुद्र लेकर और लेकर हृदय में ख़लबली मचानेवाला सौन्दर्य। और अब जाने की फ़िक्र में मुर्झा रहे हैं। और कमलेश्वर। वे भी तो थोड़े दिन हुए अपने भविष्य से बेख़बर अपने स्वप्नों के

संसार में अठखेलियाँ करते फिरते थे। और आज! इस उदय-अस्त की उलझन ने मुझे और भी बेचैन कर दिया। भागकर अपने कमरे में आया। बिना कुछ खाये-पिये कपड़े बदलकर चारपाई की शरण ली।

पर नींद कहाँ! लगा चारपाई से शरीर रगड़ने। इसी झगड़े में जब लगभग दो घंटे बीत गये तब एक हलकी-सी झपकी आ गई। अस्त होनेवाला चाँद भूल गया, मुर्झाने-वाले पुष्प विस्मृति की गोद में जा छिपे, पर कमलेश्वर ने मेरा पीछा न छोड़ा। मेरे सिरहाने, पैताने, दायें, बायें, सभी ओर विवशता का 'नाच' नाचकर काठ-सा सूखा हाथ फैलाकर अपनी नन्हीं लड़की का चित्र माँगने लगे। मैं स्वप्न में भी विकल हो उठा, घबराकर उठ बैठा। फिर सारी रात जाग कर काटी। दूसरी रात भी यही हुआ। फिर तीसरी और चौथी भी।

अब मेरे लिए यह सब कुछ असह्य हो उठा। कुछ भी हो उनके आत्माभिमान को कितनी भी ठेस लगे मैं यह चित्र उन्हें लौटाकर ही आऊँगा। ऐसा निश्चय करके मैं चारपाई से उठते ही चित्र लेकर सीधा कमलेश्वर के मकान पर पहुँचा। पर द्वार के सामने पहुँचकर सहसा रुक गया। वहाँ ताला लग रहा था।

"आप किसे पूछते हैं?" साथवाले मकान से किसी ने सिर निकाल कर पूछा।

"राजेन्द्रनाथ जी को।"

"वे तो परसों गुज़र गये।"

"गुज़र गये!" मेरे आश्चर्य का ठिकाना न था। चाँद भी गया, फूल भी गये और कमलेश्वर भी गये। "और उनकी पत्नी?"

"वह कल से ग़ायब है।"

वह भी गई। मैं काँप उठा। एक बार उस बन्द द्वार की ओर देखा। फिर वापस चल पड़ा। और कर ही क्या सकता था? गया था हृदय की बेचैनी शान्त करने और लौटा उसमें एक भीषण तूफ़ान लेकर।

आश्चर्य

लेखक, श्रीयुत कुँवर सोमेश्वरसिंह, बी० ए०

हो जिसके रँग में रँगे हुए,
मन! तुम उससे शरमाते हो।
अर्पण जीवन कर चुके जिसे,
उससे निज साध छिपाते हो॥
ऐ नयन! तरसते रहते हो,
अति जिसे देखने को प्रतिपल।
तुम उसे देखकर झिप जाते,
कर देते निज जीवन निष्फल॥
जिसकी मृदु ध्वनि से भरी हुई,
है उर-तन्त्री की तान मृदुल।
उसको ही इस संगीत सुधा से,
वंचित रखते अरे! विकल॥
जिसके चरणों को धोने को,
हैं बहतीं आँसू की लड़ियाँ।
क्यों पोंछ नयन उसके समीप,
करते विह्वल जीवन-घड़ियाँ॥
जिसकी सुषमा से रँग स्वप्नों,
का इन्द्रजाल रचते रहते।
आश्चर्य उसी से कायर तुम,
हो दूर सदा भगते रहते॥

केशवचन्द्र सेन वक्ता के रूप में

लेखक, श्रीयुत नगेन्द्रनाथ गुप्त

श्री केशवचन्द्र सेन अपने समय में बहुत बड़े वक्ता माने जाते थे। कहते हैं वैसा वक्ता आज तक नहीं हुआ। इस लेख के लेखक महोदय भारत के उन वयोवृद्ध व्यक्तियों में हैं जिन्होंने केशवचन्द्र सेन की वक्तृता अपने कानों से सुनी थी। इस लेख में आपने अपने ऐसे ही व्यक्तिगत अनुभवों का वर्णन किया है।

गत शताब्दी के सातवें और आठवें दशक में केशवचन्द्र सेन की वक्तृता और भारत के महान् व्यक्तियों में गिनती थी। वे उन दिनों भारत में ब्राह्म समाज के नेता थे। उनकी व्यक्तिगत ख़ूबियाँ आश्चर्य-जनक थीं, उनके व्यवहार में अदम्य आकर्षण था और हाल में भारत को जिन महान् वक्ताओं का परिचय मिला है, वे निर्विवाद इन सबसे श्रेष्ठ वक्ता कहे जा सकते हैं। उनका क़द ऊँचा और शरीर भरापूरा था। मुखाकृति सुन्दर थी और ठुड्डी से दृढ़ता प्रकट होती थी। उनके व्यक्तित्व में एक विचित्र प्रकार का जादू-का-सा प्रभाव था। कई अवसरों पर मुझे उनसे वार्तालाप करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनके व्यवहार में सुरुचि और एक अनोखापन था, जिसकी स्मृति अब भी मेरे मस्तिष्क में ताज़ी है। मैंने भारतवर्ष के बहुतेरे भागों में बहुत-से भारतीयों और अन्य वक्ताओं को भाषण करते हुए सुना है, और मैं बिना हिचकिचाहट के ज़ोर के साथ यह कह सकता हूँ कि मैंने जितने भी वक्ता देखे हैं, केशव उन सबसे श्रेष्ठ थे। वे बिना प्रयत्न के धाराप्रवाह बोलते थे। वे लड़खड़ाते नहीं थे और उनकी मुद्रा गम्भीरतायुक्त होती थी। उनकी आवाज़ भी ख़ूब थी। बहुत बड़े बड़े जनसमूहों में भी वह सरलतापूर्वक श्रोताओं के पास पहुँचती थी। जैसा कि एक प्रसिद्ध अमरीकन पादरी ने कलकत्ता में एक बार कहा था, केशव की वाणी रुपहली थी, जो स्थिर भाव से धारा के समान प्रवाहित होती थी और स्वर्ग को स्तम्भित कर देती थी। वे अँगरेज़ी और बँगला में समान भाव से बोल सकते थे, यद्यपि उनके बँगला के भाषण श्रोताओं के हृदयों पर अँगरेज़ी के भाषणों की अपेक्षा अधिक प्रभाव डालते थे। मैंने अविरोध गति से उनके नेत्रों से जल बहते देखा है। वे एक सच्चे और आदर्श भक्त थे और उनका हृदय प्रेम-मार्ग का अनुसरण करता था।

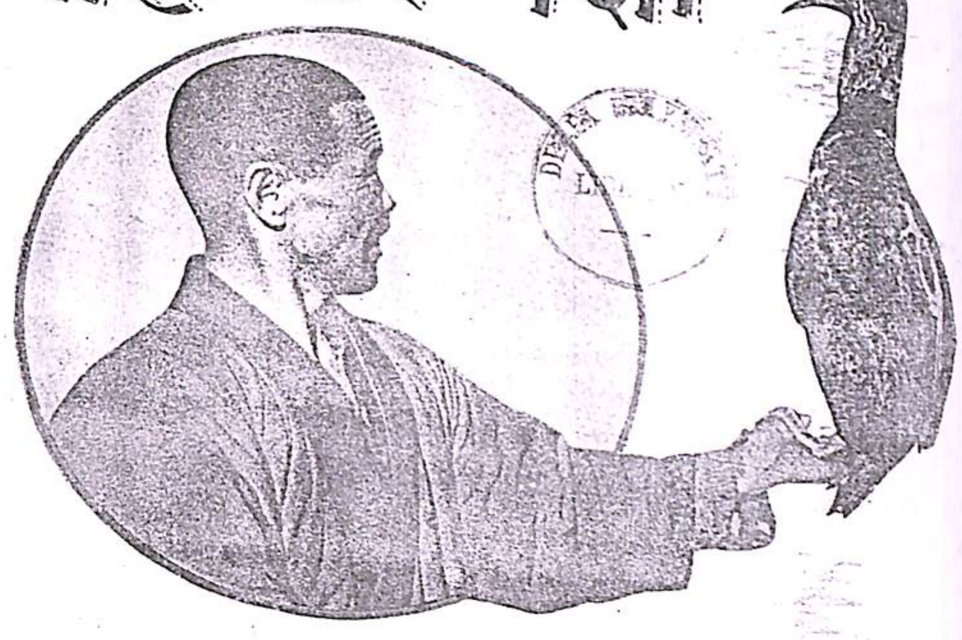
स्वामी विवेकानन्द ने एक बार मुझसे कहा था कि वास्तविक वाग्मिता एक प्रकार का कृत्रिम स्वप्न है जो श्रोताओं को वक्ता के अधीन कर देती है और वे उसकी इच्छा के अनुसार आन्दोलित होते हैं। मैंने केशवचन्द्र सेन की वाग्मिता का यह जादू देखा है। ब्राह्म समाज के वार्षिकोत्सव के समय केशवचन्द्र कलकत्ता के टाउनहाल में अँगरेज़ी में एक भाषण किया करते थे और दूसरा बँगला में नगर के उत्तरी भाग में बीडन गार्डन में करते थे। इन वार्षिक भाषणों की बड़ी प्रतीक्षा होती थी और इस प्रतिभावान् वाग्मी का भाषण सुनने के लिए सब वर्गों के लोग जमा होते थे। कलकत्ता के टाउनहाल में तीन हज़ार व्यक्ति बैठ सकते हैं और जब केशवचन्द्र सेन का उसमें व्याख्यान होता था तब एक इञ्च भी ख़ाली जगह नहीं बचती थी। अपने ऐसे ही एक वार्षिक व्याख्यान के बीच में एक बार वे भावावेश में आकर अपना दाहना हाथ सामने की ओर फैलाकर अत्यन्त गम्भीर भाव से बोले—"मैं ईश्वर को देख रहा हूँ। वह मेरे सामने खड़ा है।" तीन हज़ार व्यक्तियों का जन-समूह एक मनुष्य की भाँति ईश्वर का दर्शन करने को घूम पड़ा! उस समय प्रत्येक व्यक्ति जो वहाँ उपस्थित था, उनके प्रभाव में आ गया था।

इससे भी अधिक उल्लेखनीय प्रभाव उनके एक बँगला-व्याख्यान का पड़ा था। यह व्याख्यान उन्होंने १८८३ के आरम्भ में विडन गार्डन में किया था। यह उनका अन्तिम सार्वजनिक भाषण था। उस समय वे अस्वस्थ थे और उसके बाद ही अत्यन्त अस्वस्थ हो गये। एक वर्ष बीमार रहने के बाद ८ जनवरी १८८४ को उनका स्वर्गवास हो गया। केशव, उनके सहयोगियों और ब्राह्म समाज के सदस्यों का यह दस्तूर था कि वे अपने घर से नंगे पाँव निकलते थे और बाग़ तक एक जलूस बनाकर जाते थे। यह तीन मील का फ़ासला वे कीर्तन करते हुए तय करते थे। केशव एक एकतारा बजाते हुए जलूस के आगे आगे चलते थे। बाग़ के फाटक पर जो जनसमूह इस जलूस की प्रतीक्षा में खड़ा रहता था उसमें एक बार मैं भी शामिल था। मेरे पास ही एक अधेड़ और कुछ पागल-सा एक बङ्गाली ईसाई खड़ा था। उसने जलूस के आगे आगे जैसे ही केशव को आते हुए देखा, चिल्लाकर अँगरेज़ी में कहा—"ओह! एक अकेला आदमी कितनी शरारत कर सकता है?" यह स्पष्ट नहीं हो सका कि उसका तात्पर्य क्या था। सम्भवतः उसके दिमाग़ में यह बात रही हो कि केशव के प्रभाव और आन्दोलन के कारण बहुत कम बङ्गालियों ने ईसाई-मत को स्वीकार किया था। जलूस पर निगाह पड़ते ही मैं शीघ्रता के साथ उस स्थान के पास पहुँचा जहाँ से खड़े होकर केशव व्याख्यान करनेवाले थे। यहाँ मुझे बीस या इसी संख्या के लगभग वैष्णव मिले। ये लोग ऊँचे क़द के थे और इनका शरीर सुडौल था। ये गेरुआ वस्त्र धारण किये हुए थे और केशव पर बुरी तरह समस्त देशवासियों को ईसाई बना देने का अभियोग लगा रहे थे। ये लोग सुन्दर और स्वस्थ पुरुष थे, परन्तु इस समय इनके क्रोध की सीमा नहीं थी। जब केशव वहाँ आये, भीड़ ने उनको घेर लिया और शान्ति छा गई। उन्होंने दक्ष के यज्ञ में सती की मृत्यु, दैत्य-सेना के साथ शिव का आगमन, और त्रिशूल पर पार्वती के शरीर को रखकर उनका भयानक ताण्डव-नृत्य, देवताओं की घबराहट और विष्णु का सुदर्शन-चक्र से उस शरीर को खण्ड खण्ड करके कामाक्षा (आसाम) से हिङ्गलाज (बलूचिस्तान) तक ५१ पीठस्थानों में फेंकने का विषय लिया और इतने भावावेश के साथ इस विषय का वर्णन किया कि श्रोताओं का हृदय आन्दोलित हो उठा। उन्होंने कहा—"भाइयो! आइए! हम और आप मिलकर अपने इस खंडित देवता के खंड एकत्र करें और अपने अखण्ड देवता की रचना करें। मैं आप सबके चरण पकड़ूँगा और तब तक नहीं छोड़ूँगा जब तक यह कार्य हो न जायगा।"

केशव अपनी अद्वितीय प्रतिभा और भाषण-माधुरी के बल पर अपने तर्कों को विकसित कर रहे थे और मैं उन वैष्णवों के चेहरों की ओर देख रहा था। वे भाषण सुनने में तल्लीन थे और ब्रह्म एक है और अविभाज्य है, यह बात इस पौराणिक उदाहरण-द्वारा उनके सामने इतने सुन्दर रूप में आई कि उनके चेहरे चमक उठे, उनकी आँखों से आँसू बहने लगे और वे घास पर लोटने और 'हरि बोल! हरि बोल'! चिल्लाने लगे। समस्त भीड़ पर जादू का-सा असर हो गया और बहुत-से तो खुलकर रोने लगे। यह कहावत भी कि जो गाली देने आये थे, प्रशंसा करने के लिए बैठे रहे। इस दृश्य की महत्ता और इसके प्रभाव का वर्णन करने के लिए यहाँ यथेष्ट स्थान नहीं है।

यहाँ अपने जीवन के संध्याकाल में जब कि निशा पीछे से ढँकती चली आ रही है, मुझे इस वास्तविक इन्द्र-जाल का स्मरण हो आता है। मैं देखता हूँ कि केशव नारंगी के रङ्ग की चादर कंधे पर डाले खड़े हैं, शारीरिक कष्ट से उनके होंठ पीले पड़ गये हैं और उनके दोनों हाथ मनुष्यता का आह्वान करने के लिए बाहर बढ़े हुए हैं। नीचे घास पर वैष्णव लोट रहे हैं और 'हरि बोल' की रट लगा रहे हैं और चारों तरफ़ अश्रुपूर्ण और अपने अन्तरतम तक आन्दोलित अपार जनसमूह मौनभाव से खड़ा है। आज मैं अनुभव कर रहा हूँ जैसा कि मैंने उस समय भी अनुभव किया था कि शब्दों में कितनी शक्ति होती है और वे मनुष्य की चित्त-वृत्तियों को कहाँ तक प्रभावित कर सकते हैं।

माहीगीर पक्षी



[श्री इसोया के हाथ में कारमोरंत पक्षी]

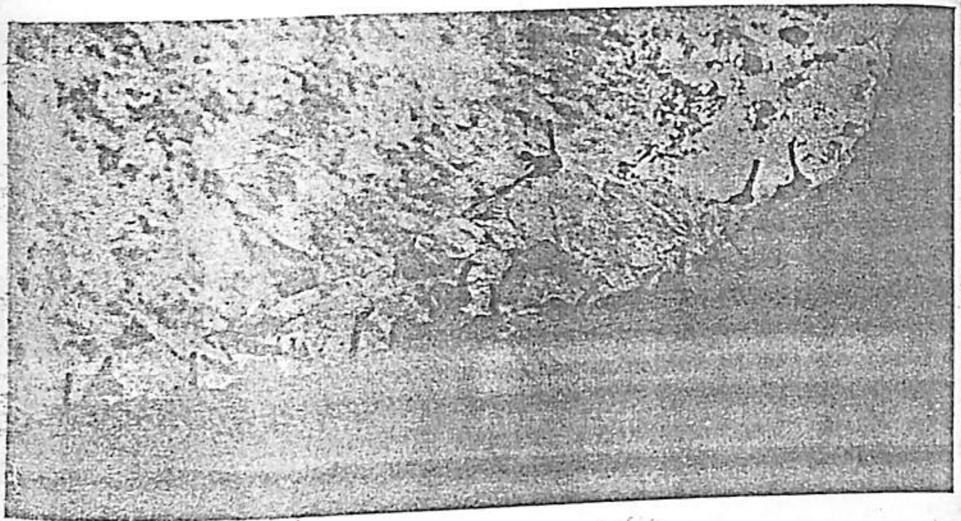
लेखक, श्रीयुत धर्मवीर, एम० ए०

जापान में एक प्रकार के पक्षी होते हैं जो घंटे में सैकड़ों मछलियाँ पकड़ सकते हैं। वहाँ के मछुए इन पक्षियों को पालते और इनसे मछलियाँ पकड़वा कर अच्छा व्यवसाय करते हैं। श्री धर्मवीर जी ने जब जापान की सैर की थी तब इन पक्षियों की करामात देखी थी। इस लेख में आपने उसी का वर्णन किया है।

श्री इत्तो ने बहुत ज़ोर मारा कि रात को हम नगोया नगर में ही ठहर जायँ। परन्तु जब उन्होंने देखा कि ये तो अपने निश्चय में बहुत पक्के हैं तब इजाज़त दे दी एक शर्त पर। लौटती बार नगोया में दो दिन ठहरना होगा। यह बात आसान थी। मंज़ूर कर ली गई।

दोपहर को नगोया से चलकर शाम से पहले गिफ़ू पहुँच गये। श्री इत्तो ने अपने एक मित्र को तार दे दिया था। वे आगे से स्टेशन पर मौजूद थे। उनसे हमने साफ़-साफ़ बता दिया कि गिफ़ू क्यों आये हैं। उन्होंने उत्तर दिया—"मैं आपको यक़ीन दिलाता हूँ कि जब भी कोई विदेशी सज्जन इधर आते हैं तभी हम उनके आने का मतलब समझ जाते हैं। हमारे सौभाग्य से नगारा नदी में परोंवाले मछुवे मछलियाँ पकड़ते हैं, वर्ना आप लोग शायद ही हमें दर्शन दें।"

"वाह साहब वाह!" मैंने कहा—"आप यह क्यों



[झोंपड़ी के बाहर भुस-भरे नक़ली कारमोरंत।]

कहते हैं कि हम इधर आये हैं तो सिर्फ़ इन विचित्र माही-गीरों को देखने के लिए? सबसे पहले तो हम आपके दर्शन कर रहे हैं! वे मछुवे तो हमें पता नहीं कब देखने को मिलेंगे या मालूम नहीं मिलेंगे भी कि नहीं, लेकिन आपके दर्शन तो इसी समय हो रहे हैं!"

जापानी मित्र हँस पड़ा। वह बोला—"यह ठीक है कि आप हमारे 'दर्शन' कर रहे हैं, परन्तु हम तो उस चीज़ के साधन-मात्र हैं जिसे देखने के लिए आप तोकियो से चलकर यहाँ आये हैं। ख़ैर, कुछ भी हो, मैं आपका कृतज्ञ हूँ कि आप किसी बहाने से भी यहाँ पधारे हैं।"

× × × ×

भारत के चिड़ियाघरों में आम तौर पर ऊदबिलाव को देखा है। पानी में पैसा वग़ैरह फेंकने पर वह डुबकी लगाता है और उसे मुँह में पकड़कर ऊपर ख़ुश्की पर ले आता है। या प्रयाग में त्रिवेणी के नज़दीक क़िले की दीवार के साथ मल्लाहों के कुछ ऐसे बच्चे देखे हैं जो पानी में दुअन्नी-चवन्नी फेंकने पर उसे आँख से देखकर पकड़ लाते हैं। चवन्नी का सिक्का पानी की तह तक नहीं जाने पाता कि मल्लाह का लड़का उसके पीछे-पीछे जाते हुए उसे रास्ते में ही दबोच लेता है।

बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को पकड़कर खाती हैं—यह प्रायः सुनने में आया है। परन्तु यह कभी न देखा-सुना था कि कोई मछली या जानवर छोटी मछलियाँ पकड़कर अपने मालिक के हवाले कर दे। नगारा नदी के किनारे ऐसे कई माँझी हैं जो ख़ुद मछलियाँ नहीं पकड़ते, बल्कि अपने पास रक्खे हुए जानवरों से यह काम लेते हैं।

कारमोरन्त-जानवर ढाई-तीन फ़ुट ऊँचा होता है। देखने में बत्तख़-सा मालूम पड़ता है, परन्तु इसकी चोंच बत्तख़-जैसी नहीं होती। पाँव वैसे ही झिल्लीदार होते हैं और इनकी ही सहायता से यह तैरता है। देखने में अच्छा ख़ूबसूरत मालूम देता है। मछुओं के पास ये कार-मोरन्त पालतू होते हैं। इनको माहीगीर सधाये रहते हैं। कश्ती में बैठने के वक़्त इन्हें पास रख लेते हैं।

रात हो चुकी थी। नगारा के किनारे ये मछुवे अपनी-अपनी कश्ती लिये दर्जनों की तादाद में खड़े थे। जापानी मित्र हमारे साथ था। किसी ने हमको फँसाने के लिए तङ्ग न किया जैसा कि श्रीनगर में झेलम नदी के किनारे पर डूँगेवाले माँझी तङ्ग किया करते हैं। कश्मीरी माँझी तो मुसाफ़िर के कान इस बुरी तरह से खाते हैं कि आदमी भविष्य के लिए कानों पर हाथ धरता है कि अब श्रीनगर कभी भूलकर भी न आऊँगा।

हम नाव में बैठे ही थे कि माँझी के बड़े लड़के ने चप्पू मारना शुरू किया। किश्ती चलने लगी। उसके पिता ने लम्बे-से बाँस के साथ लटकते हुए दो दीयों को जलाया। इन्हें दीये ही कहना चाहिए, क्योंकि तेल आदि न होने पर भी इनमें एक ऐसा मसाला था जिसे आग लगाने पर वह अच्छी तरह से जलने लगा। इनके अतिरिक्त काग़ज़ के लैम्प तो जल ही रहे थे। कश्ती के अन्दर और बाहर ख़ूब प्रकाश हो गया। दीयों के मुँह माँझी ने पानी की तरफ़ फेर दिये। पानी पर रोशनी पड़ने लगी। यह काफ़ी दूर तक जा रही थी। इन्हें जाते कुछ ही देर हुई थी कि इधर-उधर से मछलियाँ दौड़-दौड़कर आने लगीं।

कश्ती की दूसरी ओर माँझी के पालतू मछुवे तैर रहे थे। उनमें से हर एक के एक एक पैर में पतली-सी मज़बूत डोरी बँधी थी। माँझी ने उन्हें बाँस से इशारा किया। वे झटपट उधर से इधर आ गये और मछलियों को हड़प करने लगे। हमारे माँझी के पास सात कारमोरन्त थे। इन्होंने कुछ ही देर में तमाम मछलियाँ ख़त्म कर दीं। कुछ तो इनके डर के मारे इधर-उधर भाग गईं, परन्तु बाक़ी सब इनके गलों में जमा हो गईं।

हमें यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि ये जानवर भी कैसे हैं जो ख़ुद मछलियाँ पकड़ते हैं, परन्तु उन्हें खाते नहीं। पूछने पर मालूम हुआ कि यह काम करवाने से पहले माँझी इन कारमोरन्तों को ख़ूब अच्छी तरह से पेट-भर कर खिला देता है। यहाँ तक कि ये जानवर मछली की तरफ़ देखना भी नहीं चाहते। अब अगर ये मछलियाँ पकड़ते हैं तो सिर्फ़ खेल के ख़ातिर। आख़िर खेल भी जीवन का एक आवश्यक अङ्ग है; और जानवर के लिए यह वैसा ही आवश्यक है जैसा मनुष्य के लिए।

इस सम्बन्ध में प्रश्न करने पर माँझी ने यह भी बताया कि इन जानवरों से अगर यह काम न लिया जाय तो इनका स्वास्थ्य ख़राब होने लगता है। इसलिए इनसे आम तौर पर हर रोज़ ही मछलियाँ पकड़वाई जाती हैं।

"एक घंटे में एक कारमोरन्त कितनी मछलियाँ पकड़ लेता है?" मैंने पूछा।

"प्रायः एक सौ!" उसने उत्तर दिया।

"तो आप इतनी ज़्यादा मछलियाँ पकड़कर क्या करते हैं?"

"क्या करते हैं!" उसने मेरे वाक्य के अन्तिम शब्द दोहराते हुए आश्चर्य प्रकट किया। फिर कहा—"खाते हैं। ख़ुद खाते हैं, दूसरों को खिलाते हैं।"

"दूसरों को खिलाते हैं?" मैंने सवाल किया—"इसका मतलब?"

"आपको शायद यह मालूम नहीं कि इस ख़ास मछली को जो हम यहाँ पकड़ते हैं, त्राऊत (Trout) कहते हैं। इसकी माँग बाज़ार में इतनी ज़्यादा है कि हम उसे पूरा नहीं कर सकते। कई लोग इस मछली को बाहर भी भेजते हैं, क्योंकि इसका स्वाद ख़ास अपना होता है।"

"तब तो यह अच्छा व्यापार है"। मेरे मुँह से निकला,

"हाँ साहब। व्यापार तो अच्छा है, बशर्ते कि मछ-लियाँ पकड़ी जा सकें।"

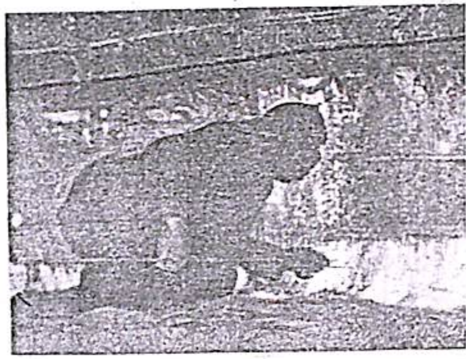
"क्यों"? मैंने प्रश्न किया—"क्या इन मछलियों को पकड़ने में तकलीफ़ होती है?"

"नहीं साहब।" उसने उत्तर दिया—"मछलियाँ पकड़ने में तकलीफ़ नहीं होती, कारमोरन्त पकड़ने में तक-लीफ़ होती है।"

"क्या ये कारमोरन्त यहाँ नहीं होते?" मैंने फिर पूछा।

"होते तो ये यहाँ ही हैं, लेकिन पकड़ने में नहीं आते।" उसने जल्दी से कहा, क्योंकि उधर कश्ती में सभी कारमोरन्त इकट्ठे होकर ख़ास आवाज़ कर रहे थे।

मेरा भी ध्यान उस तरफ़ चला गया। मैंने देखा, ये जानवर मछलियाँ उगलने का प्रयत्न कर रहे हैं, परन्तु कई गले के अन्दर से निकलती नहीं। तब माँझी और उसके लड़कों ने एक-एक कारमोरन्त को पहले पुचकारा और फिर धीरे से उसकी गरदन पकड़ी। ऐसा मालूम देता



[झोंपड़ी में बैठ कर सरेश लगी छड़ी से कारमोरंत पकड़ा जा रहा है।]

था कि कारमोरन्त के गले में एक बड़ी-सी थैली बन गई है, जिसमें मछलियाँ जमा हैं। इन माँझियों ने उन थैलियों को नीचे से ऊपर हिलाना शुरू किया। आहिस्ता-आहिस्ता मछलियाँ बाहर आने लगीं। जब कारमोरन्तों ने मछलियाँ निकाल दीं तब वहाँ एक ख़ासा बड़ा ढेर लग गया।

साढ़े आठ बज चुके थे जब हम किनारे पर उतरे। माँझी को तीन पेन देकर हम टैक्सी में सवार हुए। भूख भी लग रही थी; अब याद आया कि माँझी से यह तो पूछा ही नहीं कि कारमोरन्त कैसे पकड़े जाते हैं। यह बात ज्यों की त्यों बनी रही। भूख का ख़याल ही जाता रहा।

× × × ×

श्री इसोया पहली ही बार मिले थे, तो भी मुझ पर उनका गहरा असर हुआ। आँखें छोटी, सिर के बाल छोटे, दाढ़ी-मूँछें मुँड़ी हुई और नाक की बनिस्बत गाल ऊँचे उठे हुए। बात-बात में हँस देते। परन्तु जब हँसते तभी हँसने की आदत ज़ाहिर होती। यों देखने से ऐसा मालूम देता कि समस्त आयु ठंडी हवाओं में गुज़री है। चेहरे पर रूखापन बहुत था। लेकिन इसके मुक़ाबिले पर तबीयत में एक तरह की हरियाली बसी हुई थी।

सुबह का जलपान एक विश्रांतिगृह में किया। (श्री इसोया ने तो बहुत कहा कि इसका प्रबन्ध उनकी 'कुटिया' पर हो जायगा, परन्तु मैं जानता था कि उन्हें एक विदेशी आदमी के लिए खाना बनाने में कष्ट होगा। कष्ट इसलिए कि उन्हें विदेशियों के भोजन का कोई विशेष ज्ञान न था। इसके मुक़ाबिले पर रेस्तराँ में थोड़ी देर के बाद सभी चीज़ें मिल गईं)। टोस्ट और मक्खन, थोड़े-से कटे हुए टमाटर, दूध का एक प्याला और दो-एक नाशपातियाँ। बस, इस 'संक्षिप्त'-से नाश्ते के बाद टैक्सी ली और समुद्र के किनारे की तरफ़ चल पड़े।

हवा ठंडी थी। इसके अतिरिक्त सड़क के दोनों किनारों पर खेत लहलहा रहे थे। सभी हरे-भरे। आँखों को तरावट देने लगे। जापानियों में शैतान की-सी दिलेरी—पर दोष-रहित दिलेरी—बहुत ज़्यादा पाई जाती है। एक समय से ये लोग 'शेर की सवारी' कर रहे हैं; ख़तरे या संकट को जान-बूझ कर सिर पर लेते हैं। तोकियो के बाज़ारों में मोटरों, टैक्सियों, बसों आदि की इस क़द्र भीड़ होती है कि आदमी सड़क के एक किनारे से दूसरे किनारे पर नहीं जा सकता। वहाँ पर म्युनिसिपल क़ायदे के मुताबिक़ कोई मोटर या टैक्सीवाला अपनी गाड़ी को बीस-पचीस मील फ़ी घंटा की रफ़्तार से ज़्यादा नहीं चला सकता। लेकिन जापानी मोटर-ड्राइवर होते हैं कि ख़तरे को मोल लेते हैं। कई बार चालीस-पचीस मील की रफ़्तार से मोटर दौड़ाते हैं। यहाँ अबराकी की सड़क पर तो किसी प्रकार की भीड़ न थी, इसलिए मोटर-ड्राइवर सत्तर-अस्सी मील की रफ़्तार से क्यों न चलता! मैंने ज़रा सिर निकालकर नीचे ज़मीन की तरफ़ देखा तब ऐसा मालूम दिया जैसे टैक्सी के पहिये ही नहीं हैं और वह हवा में उड़ रही है।

क़रीब बीस मिनट में हम समुद्र के तट पर पहुँचे। बड़ी सड़क को छोड़कर एक तरफ़ हो लिये। पहले छोटी-छोटी कंकरियों का मैदान आया। उसके बाद पथरीली ज़मीन। तब किनारे पर खड़ी पहाड़ी के ऊपर चढ़ना था। चढ़ने के लिए कोई ख़ास रास्ता न था। सिर्फ़ एक पगडंडी थी जो ऐसा मालूम होता था कि पचास-साठ बार ऊपर-नीचे चढ़ने-उतरने से बन गई थी या बना ली गई थी।

ऊपर चढ़ते हमें अभी आध घंटा न हुआ था कि श्री इसोया एक जगह ठहर गये। लाठी को एक बड़े-से पत्थर के साथ टिका कर वे शायद दम लेने लगे। जब मैं निकट पहुँचा तब नीचे की तरफ़ इशारा करके बोले—"ज़रा समुद्र की तरफ़ तो देखिए। क्या शान है इसकी! किनारे के पत्थरों को बहाये लिये जा रहा है।"

"हाँ हाँ!" मैंने कहा—"मैं इसे बहुत देर से देखता चला आ रहा हूँ। इसी कारण आपसे ज़रा पीछे रह गया था। परन्तु यह तो बताइए कि इस पहाड़ी के पहलू में ये छप्पर कैसे हैं। क्या ये छप्पर ही हैं या कुछ और?"

"आप बहुत होशियार निकले।" श्री इसोया ने हँसते हुए कहा—"मैं चाहता था कि आप इन छप्परों की बाबत अभी कुछ न पूछते।"..........

"क्यों?" मैंने बात काटकर पूछा।

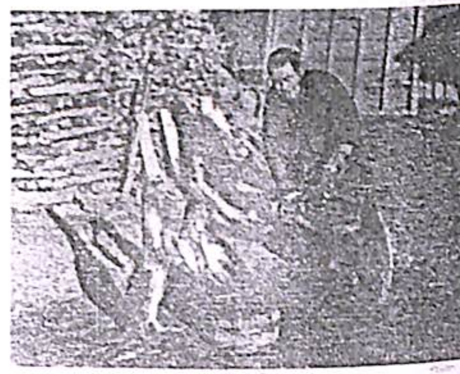
"इसलिए कि हम वहीं ही जा रहे हैं।" श्री इसोया ने उत्तर दिया।

"अच्छा तो ये छप्पर ही आपके शिकारगाह हैं। हूँ, अब समझा।"

× × × ×

हम छप्परों के ऊपर पहुँच गये तब भी श्री इसोया ने खड़े होने का नाम न लिया। मैं हैरान था जब उन्होंने एक खोह की तरफ़ मुँह किया और उसके अन्दर घुस गये। मैं उनके पीछे था। खोह के मुख पर पहुँचकर मैंने देखा कि नीचे जाने के लिए एक प्रकार की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। उतर गये। आगे घास-फूस और बाँसों का बना हुआ एक शटर या पर्दा था। उसे श्री इसोया ने एक तरफ़ हटा दिया। अन्दर दाख़िल हुए तब अपने आपको एक छोटी-सी कोठरी में पाया। इसके दायें-बायें, ऊपर और सामने बाँस और तिनकों के छप्पर और चटाइयाँ थीं। नीचे पहाड़ी की ज़मीन पर घास बिछी हुई थी। एक कोने में इसोया ने एक पर्दा लटका रक्खा था। उसके पीछे जाकर वे अपने हाथ में एक जानवर पकड़ लाये। मैं चकित हो गया कि इस पर्दे के पीछे इन्होंने कोई पिंजरा तो नहीं रख छोड़ा है। मेरे आश्चर्य को इसोया ने अपनी हँसी रोककर और भी बढ़ा दिया। मैंने सवाल किया—"यह क्या है?"

"कारमोरन्त।" श्री इसोया ने जवाब दिया।



[कारमोरंत-पक्षियों को भोजन करवाया जा रहा है।]

"कारमोरन्त तो है।" मैं बोला—"लेकिन इसे आपने यहाँ क्यों बन्द कर रक्खा है? और फिर हर रोज़ खाने-पिलाने का टंटा!"

अभी तक मिस्टर इसोया मुझसे ज़रा परे खड़े थे। अब वे नज़दीक आ गये। कारमोरन्त को उन्होंने मेरे हाथ में दे दिया। अब तो मेरी हँसी छूट गई। इसोया भी हँसने लगे।

यह कारमोरन्त सचमुच का पक्षी न था। असली कारमोरन्त की खाल लेकर उसमें भूसा भर दिया था। जब तक यह मुझसे ज़रा परे श्री इसोया के हाथ में रहा तब तक तो मैं इसे असली जानवर समझता रहा। परन्तु ज्यों ही यह मेरे हाथ में आया, इसकी असलियत ज़ाहिर हो गई। हँसी का कारण यह था कि श्री इसोया (और मैं भी) जानते थे कि आख़िर कुछ देर तक तो इस बनावटी कारमोरन्त ने मुझे धोखा दिया है।

उस बनावटी पक्षी को नीचे चटाई पर रखकर श्री इसोया फिर पर्दे के पीछे गये। अब की वे बहुत ही लम्बा और पतला बाँस लाये। इसके एक सिरे पर सरेश चिमटी हुई थी। बहुत दिन पड़े रहने से वह सूख गई थी। मैंने इसे हाथ में लेते हुए पूछा—"आप इससे क्या काम लेते हैं?"

"अभी बताता हूँ।" मिस्टर इसोया बोले।

वे चटाई पर बैठ गये। एक कोने की दो-तीन गाँठें



[झोंपड़ी से बाहर निकली हुई छड़ी और कारमोरंत ।]

खोल कर उन्होंने बाहर जाने का रास्ता बनाया । कोने में खड़े बाँस को मज़बूती से पकड़ कर वे बाहर हो गये । मैं उनके पीछे था । मैं भी बाहर जाने लगा तब वे बोले—"ज़रा होश सँभाल कर आइए । कहीं पाँव फिसल गया तो जान की ख़ैर नहीं ।"

अपने आपको मैंने रूखी पहाड़ी के पार्श्व पर खड़ा पाया । ज़्यादा से ज़्यादा दस-बारह इंच जगह होगी । सचमुच अगर यहाँ से आदमी का पैर फिसल जाय तो बस सीधा नीचे समुद्र में हो । हड्डियाँ तो टूटें या नहीं पर इतनी उँचाई का ख़याल ही आदमी का दम निकाल दे ।

श्री इसोया ने कोठरी के अन्दर रहते हुए कारमोरन्त के पाँव के साथ दो रस्सियाँ बाँध दी थीं । अब इन दोनों को लेकर उन्होंने समुद्र की तरफ़ तने हुए छप्पर के ऊपर एक बाँस में बाँध दिया और ख़ुद लौट कर कोठरी में आ गये । छप्पर के साथ नीचे चटाई पर बैठकर श्री इसोया ने सरेशवाले उस बाँस को हाथ में ले लिया । अब उन्होंने बताया—"छप्पर के ऊपर जिस प्रकार यह कारमोरन्त टाँग दिया गया है, उसी प्रकार अन्य कई कारमोरन्त इधर-उधर रख दिये जाते हैं । नवंबर-दिसम्बर के महीनों में ये जानवर उत्तर के बर्फ़ानी प्रदेशों से उड़कर यहाँ जापान के मैदानों में आ जाते हैं, क्योंकि यहाँ उनके लिए अपेक्षातया कम सर्दी होती है । इन पहाड़ियों के पार्श्वों में आकर ये प्रायः बैठा करते हैं, क्योंकि उनके बनावटी साथी उन्हें धोखा देने के लिए विद्यमान होते हैं । जिस समय ये आराम करने लगते हैं, हम लोग इस सरेशवाले बाँस को छप्पर के अन्दर से बाहर निकालते हैं और धीरे-धीरे उनमें से एक तक इस तरह पहुँचाते हैं कि उन्हें मालूम न दे । जब यह सरेश उसके परों से छूती है तब चिमट जाती है । ऐसी चिमटती है कि बस वह वहीं का हो जाता है, उड़ नहीं पाता और पकड़ लिया जाता है ।"

मैंने पूछा—"इस काम के लिए आप कितने घंटे बैठे रहते हैं ?"

"सारा-सारा दिन ।" श्री इसोया ने कहा—"सुबह दिन निकलने से पहले आते हैं और शाम को अँधेरा होने पर वापस जाते हैं । कई बार यहाँ ही रात गुज़ार देते हैं ।"

"लेकिन सर्दी तो यहाँ काफ़ी होती होगी ?" मैंने पूछा ।

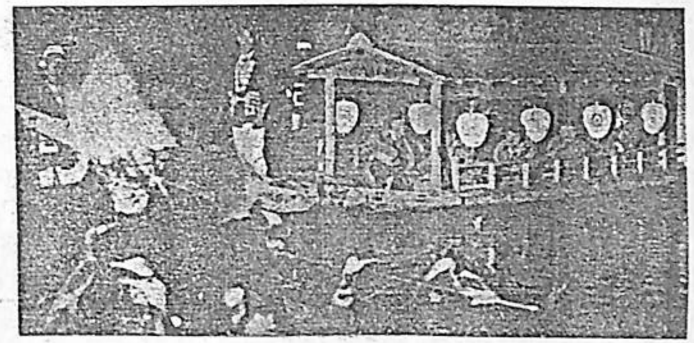
"काफ़ी से ज़्यादा ।" श्री इसोया ने उत्तर दिया—



[सीढ़ियों के रास्ते झोंपड़ी को ।]

"सिर-मुँह, हाथ-पाँव और बाक़ी का शरीर ख़ूब लपेट कर घर से निकलते हैं । फिर भी सर्दी काटा करती है । परन्तु जब यह सरेश-चिपटा बाँस लेकर बैठ जाते हैं तब सब सर्दी भूल जाते हैं; बल्कि कई बार तो भूख की भी सुध नहीं रहती ।"

"एक दिन में कितने कारमोरन्त हाथ आ जाते हैं ?" मैंने प्रश्न किया ।



[नगारा-नदी के किनारे कारमोरंत मछलियाँ पकड़ रहे हैं ।]

"इसके बारे में कोई कुछ नहीं कह सकता । कई बार तो दस-दस बारह-बारह पकड़ लेता हूँ । परन्तु कई दिन ऐसे भी देखे हैं कि छत्तीस घंटे गुज़र गये हैं और एक कारमोरंत भी हाथ नहीं आया ।"

"तब तो आपको बहुत निराशा होती होगी ।"

"हाँ ।" श्री इसोया बोले—"निराशा होती है । परन्तु उसके बाद जब एक कारमोरन्त भी पकड़ लेता हूँ तब उस निराशा से कहीं बढ़कर ख़ुशी होती है ।"

"इनको पकड़ने के बाद आप इन्हें कहाँ भेजते हैं ?" मैंने पूछा ।

"मछुवे ख़ुद ही इन्हें लेने के लिए यहाँ आ जाते हैं । हमें इन्हें भेजने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती । यह तो आप नगारा में देख ही आये हैं कि वे किस प्रकार इनकी मदद से आऊत मछली पकड़ते हैं ।"

"तब एक कारमोरन्त का कितना दाम मिलता है ?"

"यही बीस पेन ।*" श्री इसोया ने उत्तर दिया—"परन्तु अगर हम इनको सर्दियों में न बेचें और एप्रिल-मई तक घर से खिलाते रहें तब ये ज़्यादा क़ीमत के हो जाते हैं । क्योंकि उन दिनों मछुवे इनकी सहायता से मछलियाँ पकड़ते हैं इसलिए वे पचास-पचास पेन तक देते हैं ।"

"लेकिन अगर उन दिनों आपसे पालतू कारमोरन्त कोई न ख़रीदे तो ?"

इस सवाल को सुनकर श्री इसोया हँस पड़े । कहने लगे—"अभी तक तो ऐसा कभी हुआ नहीं, बल्कि इसके विरुद्ध यह कई बार देखने में आया है कि माहीगीरों के बार-बार माँग करने पर भी हमने कारमोरन्त नहीं बेचे और इनको पाला है । इसलिए कि जब ये पालतू हो जाते हैं तब इनको भुस-भरे बनावटी कारमोरन्तों के साथ छप्परों के बाहर रख देते हैं । ये उड़ते तो हैं नहीं, इस कारण अपने नवागत बन्धुओं को फँसाने में हमारी बहुत सहायता करते हैं ।"

यहाँ पहाड़ी के पहलू में बनी कोठरी में हम कुछ देर और ठहरते अगर टैक्सी का ड्राइवर ऊपर न आ जाता । उसके आने का मतलब साफ़ था । नियत समय हो चुका था, इसलिए वह याद दिलाने के लिए ऊपर आ गया । उसने कुछ कहा नहीं, तो भी मेरा ख़याल है कि वह इसी कारण ऊपर पहुँचा था ।

* जापानी सिक्का जिसका मूल्य क़रीब तेरह आने होता है ।
—लेखक

कण्टक

लेखक, कुँवर हरिश्चन्द्रदेव वर्म्मा 'चातक' कविरत्न

(१)

उस दिन गुलाब के नवल कुञ्ज से
चली एक सुन्दरी निकल,
'मानिनी रुको क्षण भर' कहता ही रहा –
हाय ? प्रेमिक विह्वल।
तब मैंने ही था रोक लिया
उलझा करके चंचल अंचल।
प्रेमी ने कहा 'धन्य कण्टक !
जीवन तेरा सब भाँति सफल'।

(२)

प्यारी के मुख की श्वास-सुरभि
चोरी कर इठलाते न फूल,
तो प्रात-पवन झकझोर उन्हें—
क्यों भरता आँखों बीच धूल !
बिम्बाफल भी यदि अधरों सी—
लाली न दिखाते कहीं भूल,
शुक चञ्चु-विद्ध तो क्यों करते ?
इससे तो अच्छे 'हमीं शूल'।

(३)

दुष्यन्त नृपति से विदा माँग—
चल दीं सखियाँ जब कुटी ओर,
बिरहिणि शकुन्तला ठिठकी सी—
कुछ पद चलकर प्रिय-छवि-विभोर।
बोली पग तल में लगा हाय !
मेरे यह कुश कण्टक कठोर।
अवलम्ब इस तरह ले मेरा—
देखा फिर से निज चित्त-चोर।

(४)

है व्यर्थ नहीं कुछ भी भू पर—
सबमें है थोड़ा बहुत सार।
मुझको ही देखा करते हैं—
यद्यपि सब मेरा तिरस्कार।
पर जब वियोग की कृशता का—
वर्णन कर कवि पाते न पार।
तब 'सूख हुआ काँटा शरीर'
देता मैं ही उनको विचार।

(५)

फूलों का साथी देख हमें—
कुछ कहते विधि से हुई भूल।
कुछ कहते ये उनके रक्षक—
मत फेंको विधि पर व्यर्थ धूल।
यह किन्तु किसी को ज्ञात नहीं—
हम प्रभु के भेजे हुए शूल—
परिचय लेने आये, जग में—
कितने हैं कोमल हृदय फूल ?।

(६)

मेरे सहवासी फूलों को—
जब लोग तोड़ते हैं आकर,
वे किसी वीर विजयी उर में—
माला पहनायेंगे जाकर।
तब हर्ष मुझे कितना होता—
जिह्वा होती तो चिल्लाकर—
कहता कि ले चलो मुझको भी—
होऊँ कृतार्थ दर्शन पाकर॥

नाटक

लेखक, श्रीयुत कुँवर राजेन्द्रसिंह

कुवर साहब की साहित्यिक लेखमाला का यह लेख नाटक पर है। इसमें उन्होंने नाटक की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए यह बताया है कि संसार के मुख्य मुख्य देशों की भाषाओं के साहित्य में नाटक का आविर्भाव कब से हुआ है।

इस लेख में यह दिखलाने की कोशिश की जायगी कि प्रत्येक देश में नाटक का कैसे संवर्द्धन हुआ और हमारे देश के नाटकों के सम्बन्ध में अन्य देशवालों की क्या राय है। "हिन्दी-शब्द-सागर" में नाटक शब्द के अर्थ ये दिये हुए हैं,—"रङ्गशाला में नटों की आकृति, हाव-भाव, वेष और वचन आदि द्वारा घटनाओं का प्रदर्शन—वह दृश्य जिसमें स्वाँग के द्वारा चरित्र दिखाये जायँ"। और भी —"वह ग्रंथ या काव्य जिसमें स्वाँग के द्वारा दिखाया जानेवाला चरित्र हो। दृश्य-काव्य, अभिनय-ग्रंथ"। अँगरेज़ी भाषा में ड्रामा (नाटक) शब्द का १५१५ से प्रयोग होता है। उस भाषा में इसका अर्थ है—वह लेख गद्य या पद्य में, जो मञ्च पर खेला जा सके, जिसमें क़िस्से का वर्णन वार्तालाप और कार्यों-द्वारा हो और जिसमें चेष्टाओं, भूषणों और दृश्यों की सहायता हो। १६६१ से यह एक कला मानी गई है। न तो उन अर्थों से जो नाटक-शब्द के कोष में बतलाये गये हैं, न इंसायक्लोपीडिया ब्रीटैनिका से और न फ़ेल्किस ई० शेलिङ्ग की पुस्तक 'दि इँग्लिश ड्रामा' से कोई भी सहायता यह समझने में मिलती है कि किस तरह की कविता को हम नाटक कह सकते हैं और इसके लिखने के नियम क्या हैं। अँगरेज़ी में इसका इतिहास मिलता है कि उनके नाटकों में पहले कैसे विचार और भाव होते थे और फिर शनैः शनैः उनमें कैसा कैसा परिवर्तन हुआ। अपने यहाँ का दूसरा ढङ्ग है। अपने यहाँ बतलाया गया है कि काव्य दो तरह के होते हैं—श्रव्य और दृश्य। यह दुःख की बात है कि इसका पता नहीं है कि इस विषय की सबसे प्राचीन पुस्तक जिसे भरत मुनि ने लिखा था, कब लिखी गई थी। चाहे जब लिखी गई हो, लेकिन हज़ारों वर्ष की बात होगी। अग्निपुराण में भी नाटक के विषय पर लेख है। उसमें एक तरह की कविता का नाम प्रकीर्ण कहा गया है और उसके दो भेद बतलाये गये हैं—श्राव्य और अभिनेय। अग्निपुराण के लेखक के मतानुसार दृश्यकाव्य व रूपक के २७ भेद हैं—उसी दृश्यकाव्य के एक भेद का नाम नाटक है। दृश्य के मुख्य दो विभाग हैं—रूपक और उपरूपक। रूपक के दस भेद हैं। ऊपर लिखे हुए भेदों के अनुसार नाटक रूपक का एक भेद है। चलती भाषा में नाटक-शब्द दृश्य-काव्यमात्र के अर्थ में बोला जाता है। साहित्यदर्पण के अनुसार "नाटक किसी ख्यातवृत्त (प्रसिद्ध आख्यान, कल्पित नहीं) को लेकर लिखना चाहिए। उसे बहुत प्रकार के विलास, सुख, दुःख तथा अनेक रसों से युक्त होना चाहिए। उसमें पाँच से लेकर दस तक अङ्क होने चाहिए। नाटक का नायक धीरोदात्त तथा प्रख्यात वंश का कोई प्रतापी पुरुष या राजर्षि होना चाहिए। नाटक के प्रधान व अङ्गी रस शृङ्गार व वीर हैं। शेष रस गौणरूप से आते हैं। शान्ति, करुणा आदि जिस रूपक में आते हैं वह नाटक नहीं कहला सकता......वियोगान्त नाटक संस्कृत अलङ्कार-शास्त्र के विरुद्ध है।......अभिनय चार प्रकार का होता है—आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक"। यह भी शब्दसागर में लिखा है कि रामायण, महाभारत, हरिवंश इत्यादि में नट और नाटक का उल्लेख है। पाणिनि ने 'शिलाली' और 'कृशाश्व' नामक दो नट सूत्रकारों के नाम लिये हैं...विद्वानों ने ज्योतिष की गणना के अनुसार शतपथ ब्राह्मण को ४,००० वर्ष से ऊपर का बतलाया है।

इन उपर्युक्त पंक्तियों के उद्धृत करने का अभिप्राय यह है कि यह पता चल जाय कि नाटक लिखने की प्रथा इस देश में इतनी पुरानी है कि आधुनिक इतिहास को पता लगाये नहीं लगता है। और दूसरी बात यह है कि पाठक-वृन्द को इन पंक्तियों के पढ़ने के बाद और देशों के नाटक का इतिहास समझने में सहायता मिलेगी। यह भी हम पर आक्षेप किया जाता है कि हम लोग पुरानी लकीर के फ़क़ीर हैं और यह समझ ही नहीं पाते हैं कि कोई नया ढङ्ग भी किसी चीज़ का हो सकता है। यह मिथ्या दोषारोपण है। स्वर्गीय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने लिखा है—"संस्कृत नाटक की भाँति हिन्दी नाटक में उनका अनुसन्धान करना या किसी नाटक में इनको यत्नपूर्वक रखकर नाटक लिखना व्यर्थ है, क्योंकि प्राचीन लक्षण रखकर आधुनिक नाटक आदि की शोभा सम्पादन करने से उलटा फल होता है और यत्न व्यर्थ हो जाता है"। वे पुरानी लकीर के फ़क़ीर नहीं थे।

अँगरेज़ी विद्वानों के दो मत हैं कि नाटक की उत्पत्ति कैसे हुई। एक मत के पक्षपातियों का यह कहना है कि गीतों और नाच से नाटक की उत्पत्ति हुई है। दूसरे पक्ष-वालों का यह कहना है—जिनमें प्रोफ़ेसर रिज़वे अग्रगण्य हैं कि नाटक इस इच्छा-द्वारा प्रेरित होते हैं कि हम उनको सम्मानित करें और उनको अमरत्व प्राप्त करने में सहायता दें जो इस दुनिया से चल बसे हैं जिसमें कि वे वहाँ से अपने कुटुम्बियों और सजातियों को रास्ता बतलायें और रक्षा करें। यह ख़ूब कही। आपका यह भी कहना है कि समाधियों के पास गाने और बजाने की प्रथा बहुत पुराने समय से है। आपके कथनानुसार इन्हीं रीतियों और रवाजों से नाटक की कला का संवर्द्धन हुआ है। हुआ चाहे जो कुछ हो, पर यह मत कुछ समझ में नहीं आता है।

अब भी बहुत लोगों का यह कहना है कि ग्रीसदेश के नाटकों का प्रभाव हिन्दुस्तान के नाटकों पर पड़ा था। यह अब भी विवादग्रस्त विषय समझा जाता है, परन्तु अब इस कथन की निर्मूलता सिद्ध हो रही है। इंसायक्लोपीडिया ब्रीटैनिका में लिखा है कि हिन्दुस्तानी नाटक उसी देश के हैं; और यह भी लिखा है कि सादृश्यता चाहे हो, परन्तु इसका कोई वास्तविक प्रमाण नहीं मिलता है कि कभी ग्रीसदेश के नाटकों का प्रभाव हिन्दुस्तान के नाटकों पर पड़ा था। हिन्दुस्तान के नाटकों का समय व्यतीत हो चुका था जब आधुनिक योरप का साहित्यकाल प्रारम्भ हुआ। केवल इस वजह से नहीं कि इंसायक्लोपीडिया में लिखा है या और किसी विदेशी ने कुछ कह दिया और हम ख़ुशी से फूले नहीं समाते हैं कि नाटक सबसे पहले यहीं लिखे गये थे, किन्तु हमारे हर्ष का कारण यह है कि भरतमुनि का इस विषय का इतना पुराना ग्रंथ है कि इतिहास ने अभी तक उसका पता नहीं लगा पाया है। आधुनिक खोज करनेवालों के प्रयत्नों को हम प्रशंसा की दृष्टि से देखते हैं, परन्तु यह नहीं है कि विदेशियों ने जिसे अच्छा कहा बस उसी को हम अच्छा कहने लगें और जिसको उन्होंने नहीं पसन्द किया उसके हम भी निन्दक बन गये। अस्तु कम-से-कम दिग्दर्शन के लिए यह आवश्यक है कि यह देखा जाय कि हमारे देश के नाटकों के विषय में विदेशी विद्वानों की क्या राय है। जो हम कहते हैं वही ये भी कहते हैं कि भरतमुनि ने नाटकों का आविष्कार किया था, और यह ज्ञान उन्होंने ब्रह्मा से पाया था, जिन्होंने वेदों से इस कला को संगृहीत किया था। अँगरेज़ी लेखकों ने नाट्य-शब्द के अर्थ ये बतलाये हैं कि वह नाच जिसके साथ वाक्य और अङ्गविक्षेप हो। नाट्य-शब्द के अर्थ अपनी भाषा में कई हैं—(१) नटों का काम, नृत्य, गीत और वाद्य (बाजा); (२) स्वाँग के द्वारा चरित्र-प्रदर्शन, अभिनय; (३) स्वाँग। यह भी अँगरेज़ों का कहना है कि नाट्य नाटक के निकट है। उनके कहने का मतलब यह है कि इसी नाट्य से नाटक की उत्पत्ति हुई है, और यह नृत्य इन्द्र की अप्सरायें देवताओं के सामने करती थीं। बाक़ी दो तरह के नृत्यों के आविष्कारकर्ता शिव जी को कहा है। अँगरेज़ों ने तो यह लिख भी दिया और यदि यही किसी हिन्दुस्तानी को लिखना होता तो बहुत हिचक और झिझक करके और अपने देश को असभ्य, अशिक्षित और अन्धविश्वासी कह करके और अपने को फ़ैशनेबुल, अपटुडेट और माडर्न प्रमाणित करके चार-छः शब्द लिखता। बीसवीं शताब्दी का प्रभाव

हमारे देश पर यह पड़ा है कि हम अपनी निगाहों में स्वयं गिर गये हैं और इसी का कारण यह है कि हम कहीं के भी नहीं रह गये हैं।

अपने यहाँ के कुछ विद्वानों का यह मत है कि नाटक की उत्पत्ति ऋग्वेद के सूक्तों से हुई है जो वार्तालाप के ढङ्ग के हैं। अँगरेज़ी लेखकों का यह कहना है कि इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि नाटक का स्रोत यह वेद-गायन ही है। जिन आधुनिक नाटकों में पौराणिक दृश्य हैं; विशेषतः जिनमें कृष्ण के उपाख्यान हैं, उनसे यह अनुमान किया जा सकता है कि नाटक की उत्पत्ति पुरानी मुग्धाभिनय की कला से हुई होगी। खोज करने-वाले अँगरेज़ों के मतानुसार गीतगोविन्द १२ वीं शताब्दी में लिखा गया था,—जिसमें तीन नायकों के स्वगत भाषण गीतकाव्य के ढंग के हैं। गीतगोविन्द इस ढंग के साहित्य का पुराना नमूना कहलाता है। कीथ का कहना है कि संस्कृत के नाटकों की उत्पत्ति महाकाव्य के आख्यानों से हुई है, जिसमें कृष्ण-चरित्र नाटक के ढंग से वर्णन किया गया है। कहा जाता है कि सन् ईसवी के दो सौ वर्ष बाद से हिन्दुस्तान के नाटक परमोच्च शिखर पर थे और तभी से उनका इतिहास मिलता है। सम्भव है कि इतिहास तभी से मिलता हो, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि इसके पहले यह कला हिन्दुस्तान में नहीं थी, क्योंकि कोई प्रथम प्रयत्न इतना सफल नहीं हो सकता है। यह भी वे कहते हैं कि सन् ईसवी के बाद की ११वीं शताब्दी हिन्दुओं के नाटकों की मुख्य शताब्दी थी और इसी समय के नाटकों की सूची में अत्यन्त निपुण लिखनेवालों के भी नाटक हैं।

प्रथम नाटक-लेखक इस देश का जिसके नाटक के केवल खण्ड मिलते हैं, बुद्ध-सम्प्रदाय का एक शिक्षक था, जिसका नाम अश्वघोष था और उसका समय सन् ईसवी के बाद की दूसरी शताब्दी कहा जाता है। इस नाटक का नाम सरीपुत्र प्रकरण कहा जाता है। इसके, और दो नाटकों के कुछ खण्ड मध्य-एशिया के तुर्फ़ान स्थान में मिले थे। फिर अँगरेज़ों ने कालिदास की प्रशंसा की है और यह लिखा है कि ये नवरत्नों में सबसे अधिक उज्ज्वल थे, जिनसे हिन्दुस्तानी नाटक को उच्चातिउच्च गौरव प्राप्त हुआ था। 'शकुन्तला' का पहला अनुवाद १७८९ में सर विलियम जोंस ने किया था और तभी पश्चिमीय संसार को हिन्दुस्तान के नाटकों का पता चला था। तब से 'शकुन्तला' का अनुवाद बहुत-सी भाषाओं में हुआ है। इसके विषय में कहा गया है कि यह परम सौन्दर्य की प्रेम-कथा है और संसार के साहित्य का एक अति उत्तम कृत्य है। 'विक्रम और उर्वशी' की भी बड़ी प्रशंसा की गई है, यद्यपि यह कहा गया कि यह 'शकुन्तला' के जोड़ का नहीं है। इसके एक अङ्क के विषय में लिखा है कि इसमें अनुपम सुन्दरता है। शूद्रक और हर्षदेव के नाटकों का संक्षिप्त में वर्णन करके यह कहा गया है कि भवभूति कालिदास के समान नाटक लिखने में निपुण थे, और यह भी लिखा है कि भवभूति की भाषा में कला की अधिक पूर्णता है और उन्होंने नियमों का भी अधिक पालन किया है। अपने देश का यह मत है कि कालिदास से अच्छी उपमायें और किसी संस्कृत के कवि ने नहीं दी हैं। अँगरेज़ी विद्वानों ने यहाँ के नाटकों की समालोचनायें की हैं। इसके बाद से उनका वह परिच्छेद प्रारम्भ होता है जिसमें उन्होंने यह दिखलाया है कि हिन्दुस्तानी नाटकों का पतन होना कब से प्रारम्भ हुआ। उनका कहना है कि क़रीब क़रीब ११वीं शताब्दी से लेकर १४ वीं शताब्दी तक वाला समय पतन का समय कहला सकता है, और इस समय का प्रारम्भ उसी समय से होता है जब से मुसलमानों के आक्रमण इस देश पर होने लगे। ठीक है। यह वही समय है जब से अपने देश की पुरानी पुस्तकें लुप्त होने लगीं। अब वह दिन आ गया है जब पुरानी पुस्तकों का सत्यता की तरह कहीं पता नहीं है। अस्तु; यह संक्षेप में अँगरेज़ी विद्वानों का मत है। बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिनसे हम सहमत नहीं हैं, परन्तु इस छोटे-से लेख में दिखलाना तो यह है कि हमारी नाटक-लेखन-कला को किस निगाह से और लोग देखते हैं। कम-से-कम यह तो पता चलता है कि भारत-वर्ष में ही सबसे पहले इस कला का आविष्कार हुआ था। अब तो यह मालूम होता है—"ख़्वाब था जो कुछ कि देखा जो सुना अफ़साना था।" यह नहीं है कि हमारे यहाँ

के इन्हीं दो-चार नाटकों का उल्लेख किया गया हो, किन्तु एक ही दो के नाम छाँट लिये गये हैं। जो कुछ इस विषय में लिखा गया है उसका यदि चतुर्थांश भी उद्धृत किया जाय तो एक स्वतन्त्र पुस्तक लिख जाय, और दूसरी यह भी बात है कि इस लेख का न यह अभिप्राय और न यह उद्देश है कि अपने और अन्य देशों के नाटकों की समालोचनायें एकत्र की जायँ। चाहा यह गया है कि एक त्वरित दृष्टि इस कला के संवर्द्धन पर डाली जा सके।

हिन्दुस्तानी नाटकों की तरह चीन के भी नाटकों की उत्पत्ति नृत्य और गीत से कही जाती है। चीन देशवालों का कहना है कि उनके यहाँ यह कला बहुत दिनों से थी। बहुत-से उनके नाटकों के सांकेतिक विषय फ़सल, युद्ध, शान्ति, समय इत्यादि थे। उनके यहाँ का एक मुखाभिनय उनके यहाँ की नृत्यकला का एक चिह्न हो गया है, जो इसका सूचक समझा जाता है कि ऊवाँग ने चीन को जीता था। चीनदेशवालों की इस कहावत से सन् ईसवी के पहले की १८ वीं शताब्दी का समय आता है। वहीं के और लोगों का कहना है कि सम्राट् वानटी ने नाटक का आविष्कार किया था। इनका समय सन् ईसवी के ५८० वर्ष पहले समझा जाता है, परन्तु अधिक संख्या में लोग यूएन-टसंग (सन् ईसवी के ७२० वर्ष पश्चात्) को नाटक का प्रथम लिखनेवाला मानते हैं। अँगरेज़ लेखक उनके समस्त नाटकों के समय को चार भागों में बाँटते हैं— (१) वह नाटक जो टि-आङ्ग-राजवंश के समय में लिखे गये थे। इनका समय सन् ईसवी के ७२०-९०७ वर्ष पश्चात् है। इन नाटकों में वीर विषय है। (२) वह नाटक जो सङ्ग-राजवंश के समय में लिखे गये थे। इनका समय ९६० से १११९ है। (३) यह वहाँ के नाटकों का मध्ययुग कहलाता है। यही उनके यहाँ नाटकों का सबसे बड़ा समय कहलाता है। यह वह समय है जब किन और यूएन राजवंशों की हुकूमत थी। इसका समय ११२५ से १३६७ तक था। इस समय के नाटक यूएन-पेन और टसैकी कहलाते हैं और इन्हीं से अँगरेज़ों को चीनदेश के नाटकों का पता चला। १७३५ में एक मिशनरी (प्रिमेर) ने एक दुःखान्त नाटक का पता योरप को दिया था। उस नाटक का नाम बड़ा विकट है—"टिचाव-ची-क्यू-यूल है", जिसका अर्थ—होता है "टिचाव घर का छोटा अनाथ"। उनके यहाँ के "पी पा की" नाटक की बड़ी धूम है। कहा जाता है कि यह १४वीं शताब्दी में लिखा गया था। (४) यह वह समय है जब मिङ्ग-राजवंश का अधिकार था। इसका काल १३६८-१६४४ था। इस समय में कोई बड़ा नाटक नहीं लिखा गया। कहा जाता है कि कल्पना की दृष्टि से चीन देश के नाटकों का स्थान ऊँचा है, परन्तु लिखने में उन सिद्धान्तों का निर्वाह न हो पाया। चीन देशवालों ने बारह श्रेणियों में अपने नाटकों का विभाग किया है। नाम नहीं दिये हुए हैं। अपने यहाँ की तरह उनके यहाँ भी इसकी बड़ी प्रशंसा है कि पुत्र को अपने पिता के प्रति जो कर्तव्य है उसका पालन करना चाहिए और उन साधुता की भी प्रशंसा है जिस पर दुष्टता का प्रभाव न पड़े। यही विषय प्रायः उनके नाटकों के होते हैं। वे समाज की कुरीतियों की कड़ी आलोचनायें अपने नाटकों में करते हैं। नाटक खेलनेवाले पहले मान की दृष्टि से नहीं देखे जाते थे, परन्तु अब वे विचार बदल रहे हैं।

जापान देश के नाटकों के विषय में कहा जाता है कि वह वही हैं जो कभी पहले थे। स्यात् उनके लिखने का अभिप्राय यह है कि साधारण श्रेणी की जनता का मनोरञ्जन हो जाय और उनमें साहित्य के स्वादु का अभाव है। उनसे साफ़ यह पता चलता है कि वह केवल चीन देश के नाटकों के प्रति रूप हैं। यह भी नहीं मालूम होता है कि कभी उस बन्धन से मुक्त होने का प्रयत्न किया गया है। विदेशी साहित्य की किसी शाखा या प्रशाखा से जहाँ किसी देश पर पूर्ण प्रभाव पड़ गया फिर उस रंग को फीका करने में बड़ी कठिनता हो जाती है। कहा जाता है कि छठी शताब्दी के अन्त में हाडाकवास्ट को जो चीन-जाति का था, यह आज्ञा दी गई कि वह जापान की जनता का मनोरञ्जन करने का प्रबन्ध करे जिससे देश का लाभ हो, और उसने ३३ 'खेल' लिखे थे। जापानी कहते हैं कि उनके नाटकों की उत्पत्ति 'सम्बेसो' नृत्य से हुई है, जिसका यह प्रभाव था कि वह पृथ्वी को ८०५ में नीचे दबती जाने से बचाता था। यह भी कहा जाता है कि ११०८ में एक स्त्री हुई है, जिसका नाम 'इस नोज़ेंजी' था और वही वहाँ के नाटकों की जन्मदात्री थी। इस पर भी मतभेद है। कहा जाता है कि वह मर्दाने कपड़े पहनकर केवल नाचती और भाव बताती थी। तीसरा मत यह है कि सरूका कंज़ाबुरो नाटकों का आविष्कारकर्ता हुआ है और उसने १६२४ में थियेटर खोला था। थियेटर एक ग्रीक शब्द का अनुवाद है, जिसका अर्थ उस भाषा में "देखने की जगह" है। जापान के नाटकों का विषय प्रायः पौराणिक होता है, और सुखान्त नाटकों में चाय पीनेवाले मकान का ज़िक्र आवश्यक-सा है, और भाषा कुछ भद्दी-सी होती है।

स्याम, मलाया और सुमात्रा द्वीपों के नाटक हिन्दुस्तान के नाटकों से मिलते-जुलते हैं और यही कहा जाता है कि भारत के साहित्य की प्रतिशाखा हैं। जवानी (जावाद्वीप-वासी) अपने उत्सवों के मौक़े पर जो गीत गाते हैं (इसी से उनके यहाँ के नाटकों की उत्पत्ति कही जाती है) उसे वे "tcharita" कहते हैं। यदि इस शब्द के पहले का "टी" अक्षर निकाल दिया जाय तो अपने भाषानुसार इसका उच्चारण 'चरित' होगा। यह चरित्र का अपभ्रंश है। देहात में अब भी 'चरित' ही कहते हैं। यह अपने देश का शब्द है। किसी शब्द को एक देश से दूसरे देश को जाने में और विशेषतः वहाँ रहने में रङ्ग-रूप में परिवर्तन करना ही पड़ता है। शब्दों को तो ख़ैर क्या कहना। हम सब विदेशों की यात्रा करके घर लौटने पर भी वही स्वाँग बनाये रहते हैं।

शेक्सपियर के बाद से नाटक का यही उद्देश समझा जाता है कि उससे लोगों का मनोरञ्जन हो और जिसका यह उद्देश न हुआ उसे आधुनिक दृष्टि से नाटक नहीं कह सकते। ग्रीस-देश के नाटकों की उत्पत्ति उन प्रथाओं के पालन करने से हुई थी जिनका उद्देश धार्मिक था। ग्रीक-भाषा में एक शब्द है जिसका नाटक के अर्थ में प्रयोग होता है। उसका अर्थ है, "एक चीज़ हो गई"। सन् ईसवी के ३६१ वर्ष पहले जब नाटक इटरूरिया से रोम में पहुँचे तब उनका उद्देश प्लेग के प्रकोप को रोकने का समझा जाता था। चौथी शताब्दी के मध्य से या उसके पहले से रोम इटली के ग्रीकों से परिचित था और उन्हीं से उसे यह मालूम हुआ होगा कि नाटकों की प्रदर्शनियाँ थीं। ग्रीस-देश के प्रभाव से एक पुराना आस्कन क़स्बे के नाटक का रोम में संवर्द्धन हुआ, जिसका नाम "Fabula Atellana" था। फिर एक तरह के नाटक को Satura कहते थे, जिसमें अभिनय के साथ बाँसुरी का संगीत होता था।

इटली में यों तो किसी किसी पुस्तक का वार्तालाप ऐसे ढंग का था जैसा कि नाटकों में होता है और इसकी उत्पत्ति धार्मिक गीतों से हुई थी, परन्तु तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी में वहाँ का ऐसा कोई लेख नहीं मिलता है जो नाटक कहा जा सके। १५वीं शताब्दी के लेख गूढ़ अर्थ लीलाओं पर निर्धारित थे। १४७१ में एक १७ वर्ष के नवयुवक ने एक देहाती लीला लिखी थी, जिसमें क्रिश्चियन विषय छोड़ दिया गया था, और पौराणिक विषय था। आधुनिक नाटकों के साहित्य का जन्मदाता अलबार्टिनो मुस्सैटो कहलाता है। इसका समय १२६१-१३३० था।

ग्रीस-देश में १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ से नाटक लिखे जाने लगे। उनके लिखने में पहले उस तरह के साहित्य की कमी थी जिसकी आवश्यकता नाटकों में होती है। वैज़नटियोज़ ने वैबीलोनिया नामक नाटक लिखा था, जिसमें उसने ग्रीस-देश के प्रान्तों की भाषा और रस्म-रवाज की अच्छी तसवीर खींची है।

स्पेन में भी इँग्लैंड की तरह बहुत पहले से नाटक लिखने की प्रथा है। वहाँ नाटकों का पता १४९९ से लगता है। एक पुर्तगाल के निवासी ने जिसका नाम गिलविसेंटी था, एक नाटक १५०२-३६ के बीच में लिखा था, जिसमें अपनी और स्पेन की भाषा दोनों का प्रयोग किया था। स्पेन-देश की भाषा में किसी तरह के सुखान्त लेख को नाटक कहते हैं। स्पेन के नाटकों का बड़ा प्रभाव पुर्तगाल के नाटकों पर था, जब तक उस देश ने १४ वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त कर ली। पुर्तगाल के नाटक-लेखकों में अल्सिनो माईसीनियो का नाम है। इसका समय १७२८-७० था। इसने बहुत-से 'खेल' लिखे थे। २०वीं शताब्दी का सबसे बड़ा लेखक जे० डेंटास था। इस विषय के जाननेवालों की

राय यह है कि यह सब होते हुए भी स्पेन-साहित्य पर अभीतक नाटकों का वास्तविक रङ्ग नहीं चढ़ा है।

१५३१ से नाटक के ढंग के लेखों का पता फ्रांस में चलता है। जो नाटक कहे जा सकते हैं उनका जन्म १५४० में हुआ था। फ्रांस के सुखान्त लेखों पर इटली के साहित्य का बड़ा प्रभाव था, क्योंकि उस शताब्दी का सबसे बड़ा सुखान्त कविता करनेवाला इटली में पैदा हुआ था। विगत जर्मन-युद्ध से फिर गद्य में नाटक लिखने की प्रथा ज़ोर पकड़ रही है। वर्तमान काल में जो सफलता फ्रांस के लेखकों को निबन्ध और उपन्यास लिखने में प्राप्त हुई, वैसी अभी नाटक लिखने में नहीं हुई है।

इँग्लेंड के भी नाटकों का पता १५वीं शताब्दी से चलता है। वहाँ भी गद्य में नाटक लिखे गये हैं। शेक्स-पियर के पहले बहुतों ने उस समय की रुचि के अनुसार अच्छे नाटक लिखे थे, परन्तु मालूम यह होता है कि संसार शेक्सपियर का रास्ता देख रहा था। नाटक लेखकों में उन्हें जो सफलता प्राप्त हुई वह शायद ही अब किसी को प्राप्त हो। उन्होंने औरों को रास्ता दिखला दिया कि नाटक कैसे लिखना चाहिए। जिस तरह उन्होंने अपने पात्रों को सजीवता दी है वह शायद वही कर सकते थे। अब बरनार्ड शा के लिए कहा जाता है कि शेक्सपियर के बाद से यही बड़े नाटक लिखनेवाले हुए हैं। निस्सन्देह आपके नाटक बहुत अच्छे होते हैं। आपके स्वभाव में कुछ विचित्रतायें हैं, जिनका समर्थन उनके मित्र भी नहीं कर पाते हैं।

अमरीका का साहित्य और देशों की अपेक्षा अभी नया है, और उस पर पहले इँग्लेंड का रंग था। वास्तव में अमरीका के नाटकों का समय विलियम डन्लप (जो अमरीका के रंग मञ्च के पिता कहलाते हैं) और रोवायल टेलर के समय से शुरू होता है। राज्य-परिवर्तन के पहले केवल दो ही नाटक लिखे गये थे।

जर्मनी में पहले नाटक विदेशी नमूनों पर लिखे जाते थे। १८ वीं शताब्दी में जातीय नाटक लिखा गया। जैकब विम्फ़लिंग (१४५०-१५८८) का पहला उद्योग नाटक-कला के संवर्द्धन की ओर कहा जा सकता है। जिसकी कमी शेक्सपियर ने इँग्लेंड में पूरी की थी उसी कमी को जर्मनी में गेटे ने की थी।

हालेंड में भी नाटक कला का १४ वीं शताब्दी के अन्त से और १५ वीं शताब्दी के प्रारम्भ से पता चलता है। पहले इनमें भी धार्मिक विषय होता था। फिर बाद को प्रहसन लिखे जाने लगे, जिनमें नित्य प्रति के जीवन की हँसी उड़ाई जाती थी। एक में उस आदमी का वर्णन है जिसने वृद्धावस्था में जवान बनने की दवा खाई थी। इस दृष्टि से आज-कल के अपने देश के समाचार-पत्र उस नाटक का नमूना बने हुए हैं। अश्लील विज्ञापन छापते हैं और नवयुवक उन्हें पढ़ते और दवायें मँगा करके स्वास्थ्य को और चौपट कर डालते हैं। अस्तु, डेन्मार्क के नाटकों का पता १६वीं शताब्दी से, नार्वे के १९वीं शताब्दी से, स्वीडेन के १५५० से पता चलता है। पोलेंड के लिए कहा जाता है कि वहाँ नाटक लिखने की कला बहुत देर में शुरू हुई। रूस में १७ वीं शताब्दी से नाटक लिखना प्रारम्भ हुआ।

यह संसार के मुख्य मुख्य देशों की नाटक-कला के संवर्द्धन की धुँधली और अपूर्ण आद्य रेखायें हैं। यदि यही काम कोई नाटक लेखन-कला जाननेवाला करता तो और अच्छी तरह से सम्पादित होता। "बिलकुल कुछ न होने से कुछ ही होना अच्छा है" और वही "कुछ" यह छोटा-सा लेख है।

यह लेख इंसायक्लोपीडिया के ड्रामा लेख के आधार पर लिखा गया है। शब्दसागर से भी सहायता मिली है।

एक छोटी लड़की की कहानी जिसे खेलने के लिए एक सत्तर वर्ष का बूढ़ा साथी मिला था

बिट्टन की वर्षगाँठ

लेखक, पण्डित मोहनलाल नेहरू

दो व्यक्तियों में सबसे बड़ा नाता आपस के मेल का होता है। उसके वास्ते इसकी ज़रूरत नहीं कि वे एक ही श्रेणी या एक ही अवस्था के हों। बूढ़े और बच्चे में भी यह नाता हो सकता है और मुझमें और बिट्टन में था भी।

उसकी अवस्था केवल सात वर्ष की थी और मेरी लगभग सत्तर के। फिर भी वह जब देखो, मेरे घर भाग आती, यद्यपि वहाँ उसे कोई बच्चा नहीं मिलता। बच्चों के स्थान की मैं ही पूर्ति करता। उसके वास्ते यह कोई नई बात न थी। जब से उसने होश सँभाला तब ही से वह ऐसा करती आ रही थी। उसे खेलाने के वास्ते उसके मा-बाप ने एक लड़का नौकर रक्खा था। दाई या आया रखने की चाहना होने पर भी वे नहीं रख सके थे। वह लड़का उसे गोद में लेकर मेरे बैठके में आ जाता और फिर मैं ही उससे खेला करता या उसे खिलाया करता। नौकर तो बहुधा खुद ही लड़कों में खेलने लगता।

मेरे घर और बिट्टन के घर के बीच केवल एक दीवार थी। मेरे छोटे-से घर में बाहर बैठका था। उसका घर बड़ा था। किसी ज़माने में ड्योढ़ी पर ड्योढ़ीदार बैठता होगा, मगर अब वह सूनी रहती थी। बिट्टन बहुधा मा को काम-काज या पढ़ने-लिखने में फँसा देख मेरे घर भाग आया करती। शुरू शुरू में तो वह पकड़ बुलाई जाती, किन्तु फिर मेरे सौभाग्य से उसके वास्ते यह रोक-टोक न रही। बल्कि जब कभी माता के काम-काज में वह हर्ज करती तब वे कहतीं, जा बाबा के पास खेल। अपने घर से दूध पीकर आती, मगर मैं उसे एक पैसे की जलेबी ज़रूर खिलाता।

मैं अकेला आदमी था। वह मेरे पेट पर बैठ जाती। उसे वह कमानीदार कुर्सी समझकर कूदा करती और न मालूम कहाँ कहाँ से याद करके प्रश्न करती। प्रश्नों की भरमार वह रोज़ ही मेरे बूढ़े दिमाग़ पर लाद देती और मैं भी उस परीक्षा में रोज़ ही पास हो जाता, एक प्रश्न भी बिना उत्तर दिये न छोड़ता।

मैं आरामकुर्सी पर पड़े हुक्क़ा पीता होता तो वह मेरे मुँह के पास धुँआ पकड़ती या उसे उड़ते देख खुश होती। मैं लेटा होता तो मेरे सिर पर वह हाथ फेरती और मुझे अपनी माता का हाथ फेरना याद आ जाता। वह मेरे माथे पर राख का टीका लगाती और कहती 'हमने तुम्हें साधू बना दिया बाबा' और खूब हँसती। उसकी इस हँसी का जो आनन्द था वह लिखने में नहीं आ सकता। आज तक मेरी आँखों के सामने बना है। वह मेरी सफ़ेद मूँछ-दाढ़ी में अपनी नन्हीं उँगलियों से कङ्घा करती और नोच भी लेती। मुझे उसमें भी आनन्द आता।

उसको मेरी पीठ पर चढ़कर घूमने का बड़ा शौक़ था और मैं उसके वास्ते घोड़ा बन जाता। मुझे और उसे इस बात में एक-सा ही आनन्द आता। शायद इसी वास्ते विद्वानों ने बूढ़े और बच्चों को एक ही श्रेणी में रक्खा है!

वह सुन्दर तो न थी, किन्तु बड़ी चतुर और समझदार लड़की थी। खेल-खेल में मैंने उसे बहुत कुछ सिखाया, और यद्यपि उसके वास्ते उसके मा-बाप ने एक शिक्षिका रख ली थी, फिर भी वह मुझसे रोज़ पढ़ती। घर पर पढ़ाने-वाली उसे अक्षरों और शब्दों से पढ़ाती, मैं तसवीरों से पढ़ाता। उसके वास्ते मैं कितनी ही तसवीरदार पुस्तकें ले आया था।

वह बीमार पड़ गई। मेरी पहुँच उस तक नहीं थी। उसके मा-बाप मेरी और उसकी घनिष्ठ मित्रता को जानते थे, फिर भी डाक्टर की आज्ञा के आगे वे लाचार थे। वह मुझे हर दम याद किया करती। उसके पिता ने मुझे बताया

और मेरा हृदय हर दम उसी में टँगा रहता। मगर हम एक दूसरे को न देख सकते। उसकी माता स्कूल की पढ़ी लड़की थी जो डाक्टर के सुर्ख़-सफ़ेद पर पूरा भरोसा रखती थी। बीमार को किसी से मिलने न दो, चाहे वह कुढ़ कर मर ही क्यों न जाय। वाह डाक्टर साहब क्या ख़ूब आज्ञा निकाली!

उसके दादा अमीर होते हुए भी मुझे अपने बराबर-वाला समझते थे, यद्यपि मैं केवल एक स्कूल-मास्टर था। परन्तु उसके पिता जो कालेज में अध्यापक थे, मुझ पेन-शनर को छोटे दर्जे का आदमी बना रक्खा था। मैं ही विट्टन की ख़ातिर उन्हें सलाम-बन्दगी कर लेता। उनका इसमें दोष न था। हमारी शिक्षा ही ऐसी है जो आदमी की बड़ाई-छुटाई विद्या पर नहीं, अवस्था पर नहीं, वरन पैसे या ओहदे पर बताती है और कम पैसेवाले में कितने ही दोष दिखा देती है।

वह सयानी हो चली थी। दसवीं वर्षगाँठ विजय-दशमी को आई थी। दिन ढल चला था। धूप की तेज़ी कम हो रही थी। वह नया रेशमी फ्राक पहनकर अपने घर के फाटक पर निकली। हाथों में सोने की चूड़ियाँ थीं और कानों में बुन्दे। मैं उस वक्त अपना बाँस का मोटा डंडा जो सदा ही मेरा साथी था, लेकर टहलने की ग़रज़ से निकला था।

"बाबा कहाँ जाते हो"? उसने पूछा।

"थोड़ी दूर टहलने"। मैंने कहा।

"मैं भी चलूँगी। हमें मेला दिखा लाओ"।

"अपनी अम्मा से पूछ आओ चलो"।

"पापा-मामा दावत में गये हैं। वहाँ से सिनेमा जायँगे। तुम्हारे साथ जाने को मना थोड़ी करेंगे। हम घर में अकेली हैं।" उसने कहा।

वह मेरे साथ हो ली। पहले भी ऐसा हो चुका था। मेरी नीयत दूर जाने की न थी। मैं ज़्यादा चल नहीं सकता था। मगर अब तो जैसा भी वह कहेगी करूँगा।

कहानियाँ सुनाते सुनाते मैं हलके हलके उसके साथ जा रहा था। एक जगह पर हमने देखा कि एक नीलकंठ ने गिरगट पर आक्रमण किया। गिरगट भागा और नील-कंठ ने चोंच मारी और दुम पकड़ी। उसे कुछ अक़्ल आ गई। वह नीलकंठ की गर्दन में लिपट गया और उसे छोड़ना पड़ा। फिर वह गर्दन उठाकर सामना करने लगा। कुछ देर दोनों पैतरे बदलते रहे। आख़िर में नीलकंठ को भागना ही पड़ा। सड़क चलती थी। मुक़ाबिले के कारण उसकी जान बच गई।

थोड़ा आगे चलकर विट्टन ने पूछा—"बाबा तुमने भूत कभी देखा है?"

मैंने कहा—"बेटी भूत कोई चीज़ होती तो मैं देखता। वह तो अपने दिल का भ्रम है।"

"वाह! हमारे तो पापा-मामा दोनों कहते हैं, भूत होता है"।

"नहीं बेटी, उनका मतलब यह है कि जो चीज़ हो चुकी वही भूत है। वह कोई आदमी थोड़े ही है जिससे डरो।"

"वे कहते हैं जब आदमी मर जाता है, भूत हो जाता है। हमें तो बड़ा डर लगता है बाबा।"

मैंने कहा—"मान लो, सच है तो क्या जब मैं मर जाऊँगा तब तुम मुझसे डरोगी?"

"नहीं।"

"तब फिर अगर भूत है भी तो डरो क्यों? अगर तुम आज इस शक्ल में मुझसे नहीं डरतीं तो कल क्यों डरो?"

हम बात-चीत करते जाते और बीच बीच में मैं उसके वास्ते खिलौने लेता जाता। समय का ख़याल ही न रहा। जब किसी बात में तुम मग्न हो जाओ तो समय भागता है। रात के आठ बज गये। चाँदनी खिली थी। मैंने इक्का किराये का किया और चलने को था कि देखता हूँ कि पीछे से सैकड़ों आदमी भागे आ रहे हैं। सब चिल्ला रहे हैं—"चल गई! चल गई"!

पहले से यह डर नहीं था कि मेले में झगड़ा हो जायगा, पर हो गया। जो लोग अपनी रक्षा के वास्ते तैयार नहीं रहते, और दुर्भाग्य से अधिकतर लोग उस तैयारी की तरफ़ ध्यान भी नहीं देते, वे भागें नहीं तो क्या करें? यों भी हम लोग बहुत डरपोक हो गये हैं, हथियार हाथ में लेना तो दूर उसकी सूरत देखते ही जान निकल जाती है। हमारा क़सूर भी नहीं। हमें यही सिखाया जाता है। मैंने जब से बंकिमचन्द्र-द्वारा लिखित लाठी के गुण पढ़े थे तब से मैं हरदम उसे हाथ में रखता था और उसने कितनी ही दफ़े मेरी जान बचाई थी। मैं किसी को बे वजह मारना बुरा समझता हूँ—हाँ, साँप तक को। परन्तु जब कभी साँप ने मुझ पर आक्रमण किया, इसी लाठी से मैंने उसका सिर कुचल दिया। मेरे घर पर डाकुओं ने चढ़ाई की। इसी लाठी-द्वारा मैं उन्हें रोके रहा जब तक सहायता नहीं आ गई। सच तो यह है कि बिना सामना किये आदमी किसी भी आफ़त का तुरन्त शिकार हो जाता है। सहायता भी दूसरे तब ही करते हैं जब तुम स्वयं अपनी सहायता करो। आज भी मेरी लाठी ने बड़ा काम किया।

इक्केवाला कोई गुण्डा था। ज़रा सन्नाटा पाकर इक्का रोका और बोला—"लाला इस लड़की के कड़े उतार दो, नहीं तो ख़ैरियत नहीं।" वह चिल्लाई, मगर जो कोई आदमी दिखाई भी देता वह भागा जा रहा था। सबको अपनी जान की पड़ी थी। इक्केवाले ने मुझे बूढ़ा समझकर यह माँग पेश की थी। गुण्डे मुक़ाबिला करनेवाले का सामना नहीं कर सकते। मैं मामूली बूढ़ों में न था। कुछ तो लाठी का ज़ोर, कुछ अपनी असली ग़ैर मामूली ताक़त का। उसे इक्का आगे ले जाने पर मजबूर किया और बस्ती के पास नम्बर देखकर उसे छोड़ दिया। वह हाथ-पैर जोड़ने लगा।

चाँदनी खिली थी। दूर से देखा कि विट्टन का नौकर दौड़ा आ रहा है।

"अरे बिटिया तुमने तो आज बड़ी फ़ज़ीहत कराई। बाबू जी बड़े नाराज़ हैं। लो, वे आ रहे हैं।"

शहर की लड़ाई का समाचार मेरे पहले ही घर पहुँच चुका था। विट्टन के पिता ने बिना मुझसे पूछे ही मुझे डाँट-फिटकार बताई। मैंने सब सुन लिया। सच तो कहते थे। मुझे कौन-सा हक़ था जो उनकी लड़की को मैं मेला दिखाने ले गया? दुख केवल इस बात का ज़रूर हुआ कि उस बच्चे को उन्होंने बहुत झिड़का-घुड़का, जिस पर वह फूट फूटकर रोने लगी। जो खिलौने उसके वास्ते मैं लाया था उन्हें सड़क पर फेंककर वे चले गये। दूसरे दिन उन्होंने मुझसे आँख नहीं मिलाई। शायद बच्चे से सब हाल सुना होगा। मगर मुझे तो वे अपने से नीचे दर्जे का आदमी समझते थे। क्षमा-प्रार्थना कैसे करते?

उत्साह नहीं

लेखक, श्रीयुत उमेशचन्द्र देव

बीता शिशिर, न आया फिर भी तरुओं में नूतन जीवन,
सूने-सूने से लगते हैं अपने सारे वन-उपवन!
खिंचे और रह गये, मदन के पाँचों शर इस वर्ष, वसन्त!
क्या कर गया निषेध तुम्हारा, कोई विरह-विधुर दुष्यन्त?

× × × ×

ना माधव, इस ओर न आना, इधर तुम्हारी राह नहीं,
'मधुशाला' की प्यास 'हलाहल' की उतनी परवाह नहीं,
हिम-सा शीतल रुधिर हमारा खौला दे, आये वह ग्रीष्म,
'कमला' गई हमें होली की चाह नहीं, उत्साह नहीं।

स्त्री के साथ कैसे निबाहा जा सकता है?

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी॰ ए॰

बहुत-से घरों में स्त्री पुरुष में प्रायः खटपट हो जाया करती है। इसका एक-मात्र कारण यह है कि स्त्री पुरुष दोनों एक दूसरे को समझने का प्रयत्न नहीं करते। इस लेख में श्री सन्तराम जी ने इस सम्बन्ध में बहुत-सी ज्ञातव्य बातें बतलाई हैं।

एक अमरीकन लेखक लिखता है कि मैंने अपने मित्रों को एक एक करके विवाह के फन्दे में फँसते देखा है। इससे मैं इस सिद्धान्त पर पहुँचा हूँ कि कार्यतः पुरुष इसलिए विवाह करते हैं कि उनके जीवन में एक समय ऐसा आ जाता है जो उनको प्रेम-बंधन में जकड़े जाने पर विवश कर देता है, और ठीक उसी समय संयोग कुछ स्त्रियों को ढकेलकर उनके समीप ले आता है। तब स्वभाव विवाहित पुरुष पर अधिकार प्राप्त कर लेता है और उसे मिस्र देश के प्राचीन मुर्दों की तरह सुरक्षित रखने के लिए कसकर बाँध देता है।

पुरुष का स्वभाव है कि जब तक किसी चीज़ को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक उसकी प्राप्ति के लिए लालायित रहता है। परन्तु उसको अधिकार में कर लेने पर फिर वह उससे उदासीन हो जाता है। जब तक उसका विवाह नहीं होता, वह स्त्री प्राप्त करने के लिए अथक यत्न करता है। उस समय उसकी उत्कण्ठा और प्रेम-प्रदर्शन की कोई सीमा नहीं होती। परन्तु विवाह हो जाने पर वह स्त्री की ओर से उदासीन होने लगता है। वह समझने लगता है कि चलो एक काम तो ख़त्म हुआ, अब मैं अपने जीवन के मुख्य कार्य में, अपनी लोक-यात्रा को सफल बनाने में, निश्चिन्त होकर लग सकता हूँ। अब उसके मन में स्त्री का विचार मुख्य नहीं रहता। वह धीरे धीरे उसके मन-मन्दिर में आगे आने के बजाय पीछे हटने लगती है और एक दिन आता है जब पुरुष उसका विचार छोड़कर संसार के दूसरे कार्यों में ही लीन रहने लगता है। ऐसे समय जब स्त्री पीछे से उठकर आगे आने की—पुरुष के हृदय में पहले का सा प्रधान स्थान पाने की—चेष्टा करती है तो पुरुष चिढ़ जाता है और खिझकर अपने मित्रों से कहता है—"मालूम नहीं, यह अब और क्या चाहती है। मैं इसको और बच्चों को अच्छा खाने को और अच्छा पहनने को देता हूँ। रहने के लिए बढ़िया मकान है। नौकर-चाकर हैं। फिर भी यह मेरे पीछे लगी रहती है। साँझ को जब थका-माँदा घर पहुँचता हूँ तब वह दो मिनट भी मुझे आराम से अकेला नहीं बैठने देती; सदा कुछ-न-कुछ फ़रमाइश होती ही रहती है। बहुत तङ्ग आ गया हूँ। स्त्रियों को और कोई काम ही नहीं।"

परन्तु स्त्री की प्रकृति इसके बिलकुल विपरीत है। वह जब कोई चीज़ प्राप्त कर लेती है तब उसे अपने अधिकार में रखने का भरसक यत्न करती है। विवाह के बाद पति में उसका अनुराग दिन-पर-दिन बढ़ने लगता है। वह पूर्णरूप से उसकी हृदयेश्वरी बनना चाहती है। पति पर उसका पूर्ण अधिकार रहे, उसके जीवन का एकमात्र यही उद्देश हो जाता है। वह एक क्षण के लिए भी उससे अलग नहीं रहना चाहती।

स्त्री और पुरुष की प्रकृति के इस अन्तर को न समझने से ही प्रायः घरों में खट-पट हुआ करती है। अज्ञानी पुरुष स्त्री की प्रकृति को समझने का यत्न नहीं करता, जिससे उन दोनों का दाम्पत्य-जीवन नीरस और निरानन्द हो जाता है। जन्म से मरण-पर्यन्त पुरुष के जीवन में स्त्री सदा मौजूद रहती है। वह अपने गर्भ से उसे शारीरिक जन्म देती है—पुरुष इसी लिए तो पुत्र और पुत्री को आत्मज और आत्मजा कहते हैं। स्त्री और पुरुष की आत्माओं के सच्चे संयोग से जो आत्मा का विकास होता है उसका

अनुभव भी बहुत-से पुरुषों को एक बार अवश्य होता है। पुरुष के जीवन के सभी कामों में स्त्री का प्रभाव बराबर बना रहता है और बहुत दूर तक पहुँचता है। आश्चर्य है कि फिर भी पुरुष कहते हैं—"त्रिया का चरित्र और पुरुष का भाग्य विधाता भी नहीं जानता, मनुष्यों का तो कहना ही क्या।"

पुरुषों का तो ऐसा विश्वास ही है, परन्तु स्त्रियाँ उनसे अधिक ज्ञान रखती हैं। वे जानती हैं कि हमारे भावों को पुरुष समझ सकते हैं, परन्तु उन्हें समझने का कोई पुरुष यत्न ही नहीं करता। वे ऐसे पुरुष के लिए लालायित रहती हैं जो उनके भावों को समझने का यत्न करता है। जब कोई स्त्री मनस्ताप के साथ पति से कहती है—"आपको स्त्रियों की बात का कुछ पता ही नहीं," तब वास्तव में वह उस समय उसे यह बताने का उद्योग करती है कि आप यदि यत्न करें तो मेरे भावों को समझ सकते हैं; फिर आपकी मेरे साथ सहानुभूति और एकतानता हो जायगी। वह पति पर प्रकट करती है कि आप अपनी नासमझी के कारण मेरे हृदय को लगनेवाली ठेस को नहीं देखते, जिससे मुझे दारुण मानसिक व्यथा होती है। परन्तु पति महाशय उस बेचारी की बात कहाँ सुनते हैं! इससे उनके पुरुषपन के वृथा गर्व को चोट लगती है; अन्यथा समझने को वे उसे ख़ूब समझते हैं। यदि इसका प्रमाण चाहिए तो स्त्री तनिक पति से अलग रहकर देखे। पति मुँह फुलाकर दौड़ता फिरेगा।

पत्नी के साथ न काट सकने का एक बड़ा कारण पुरुष को यह जान पड़ता है कि वह उससे बहुत अधिक माँग करती है। वह समझता है कि वह मुझ पर अधिकार रखना चाहती है। वह चाहती है कि मैं उसके पास रहूँ, उसकी चिन्ता रक्खूँ, और किसी दूसरी स्त्री से बात तक न करूँ। यदि मैं इन सब माँगों को पूरा करने लगूँ तो मेरे पास अपने काम-काज के लिए कोई समय ही न रह जायगा, और एक प्रकार से मैं उसका दास ही बन जाऊँगा। वह नाराज़ हो जाता है—वे आपस में झगड़ने लगते हैं। परिणाम क्या होता है? वह सुख की तलाश में किसी दूसरी स्त्री का द्वार खटखटाता है। कारण यह है कि पुरुष स्वभाव से ही प्यार कराना पसन्द करता है। यह बात अनेक बार देखी गई है और पति-पत्नी की खट-पट का परिणाम सदा ऐसा ही निकलता रहा है। दूसरी स्त्री के साथ भी ऐसे पुरुष की चिरकाल तक नहीं पटती; कुछ काल बाद वह उससे भी तङ्ग आ जाता है। बेचारे का अन्त बहुत दुःखमय होता है। बहुत थोड़े पुरुष ऐसे देखने में आये हैं जो भावुकता के वशीभूत न होकर विवेक-बुद्धि से काम लेते हों।

उदाहरणार्थ, ज्ञानप्रकाश एक दैनिक पत्र में काम करता था। उसकी आयु लगभग ३० वर्ष की थी जब उसने विवाह किया। उसकी स्त्री सत्यवती बड़ी चुस्त और मौजी थी। वह उससे पाँच वर्ष छोटी थी। दैनिक पत्र में मनुष्य को बहुत काम करना पड़ता है। रात के दो दो बजे तक दफ़्तर में बैठना पड़ता है। उनका विवाह हुए कई वर्ष हो चुके थे। परन्तु स्त्री को बहुत थोड़ा समय दे सकने पर भी वह जिस प्रकार उसे प्रसन्न रखता था, उसे देख आश्चर्य होता था।

गार्हस्थ्य-शान्ति का कारण पूछने पर उसने बताया था कि सत्यवती के साथ निर्वाह करने को मैं अपना काम समझता हूँ। इसलिए मैं इसका अभ्यास करता हूँ। प्रत्येक स्त्री पति पर अधिकार जमाना और उसे सोख जाना चाहती है। यह स्त्री की प्रकृति है। और इसी प्रकार प्रत्येक पुरुष स्त्री को ऐसा करने से रोकता है। यह पुरुष की प्रकृति है। परन्तु जो पुरुष इन बातों को जानता है वह बड़ी अच्छी तरह निर्वाह कर सकता है और उसका अपमान भी नहीं होने पाता। इसके लिए उसे उपायज्ञ तथा विवेकी होने की ज़रूरत है। इसके अतिरिक्त उसमें रसिकता भी होनी चाहिए। असल बात तो यह है कि यदि आप स्त्री का ही कोई एक शस्त्र उधार माँग लें और कभी कभी बहाने बनाया करें तो यह बहुत अच्छा रहेगा। ऐसे अनेक समय आते हैं जब सचाई को प्रकट न करना ही बुद्धिमत्ता होती है। यदि आपका संकल्प सचमुच स्त्री के साथ अच्छी तरह निर्वाह करने का है तो जो भी बात आप इसमें सहायता पाने के उद्देश से करते हैं वह सब उचित ही है। इस डर से कि स्त्री कहीं मुझे अपना दास

न बना ले, गृहस्थी की गाड़ी को छोड़कर मत भाग जाओ। घबराहट में मत पड़ो, ऐसा बर्ताव करो जिससे उसे सदा यही जान पड़े कि तुम उससे प्रेम करते हो। तब तुम बड़े मज़े से उसके साथ गुज़र कर सकोगे।

यदि हम मनुष्य की आत्मा के भीतर झाँककर देख सकें तो जहाँ हमें आनन्द प्राप्त होगा वहाँ डर भी लगेगा। परन्तु ऐसी शक्ति किसी में देखी नहीं गई। फिर भी स्त्री के भीतरी भावों को जानने का यत्न ज़रूर होते रहना चाहिए। जो पुरुष पत्नी के साथ बनाकर रखना चाहता है उसके लिए तो ऐसा करना विशेष रूप से आवश्यक है। इससे उसे इस मनुष्य-निर्मित संसार में स्त्री की कठिनाइयों और उसके वीर हृदय का सदय ज्ञान प्राप्त होगा। इन सब बातों से उसकी कार्यसिद्धि में बड़ी सहायता मिलेगी।

यह संसार पुरुष-निर्मित है और पुरुष अपने पुरुषत्व के गर्व के कारण अकड़ा फिरता है। सामूहिक रूप से वह पुरुष के साथ स्त्री की समता को स्वीकार नहीं करता, वरन पुरुष को भोक्ता और स्त्री को उसका भोग समझता है। परम्परा से पुरुषों की बड़ाई सुनते आने के कारण वह इतना अन्धा हो चुका है कि वह स्त्री की ठीक ठीक क़ीमत नहीं पहचान सकता, और सामान्यतः उसे प्रणयिनी या भोग-वस्तु से कुछ ही अधिक समझता है। अपने को पुरुष से श्रेष्ठ प्रकट करने की स्त्री की कोई चेष्टा उसे अस्वाभाविक जान पड़ती है। उसे सन्देह होने लगता है कि यदि मैं तनिक भी असावधान हुआ तो यह झट अपनी कुण्डली में जकड़कर मुझे हज़म कर जायगी।

पुरुषों के इस विचार का बड़ा कारण यह है कि पुरुष को हवाई क़िले खड़े करने का स्वभाव है। इसके विपरीत स्त्री वास्तविकता-मूलक है। कल्पना के क़िले तैयार करना पुरुष का विशेष गुण है, इस सचाई का एक प्रमाण यह भी है कि संसार में जितनी भी परियों और राक्षसों की कहानियों की पुस्तकें हैं वे सब पुरुषों की ही रचना हैं। इस समय भी पुरुष ही ऐसी कहानियाँ लिखते हैं। उदाहरणार्थ सहस्ररजनी, कथासरित-सागर, पंच-तंत्र के लेखकों और हंस क्रिश्चियन एण्डरसन, ब्रदर्स ग्रिम्म, एण्ड्रू लेङ्ग, होमर, वर्जिल, विष्णुशर्म्मा, रतनाथ सरशार के नाम हैं। इसके विपरीत, स्त्रियाँ भावुक और 'मानसिक' होती हुई भी वास्तव में ठोस वास्तविकता-मूलक हैं। वे अनादि-काल से पुरुषों के अधीन चली आई हैं। इसलिए अपने स्वामियों से काम लेने के लिए उन्हें वास्तविकता का अध्ययन मजबूरन करना पड़ा है। उनकी स्थिति ने विशेष बातों में उनको पुरुषों की अपेक्षा अधिक कड़ा और अधिक विवेचक बना दिया है। लगभग प्रत्येक स्त्री पुरुष का प्रबन्ध करना जानती है; यह ज्ञान उसे बिना सीखे जन्म से ही प्राप्त है।

यदि पुरुष एक बार पूर्णरूप से यह समझ ले कि उसकी मनुष्य-निर्मित विचार-रीतियाँ स्त्री के सहज ज्ञान की निश्चितता और बिजली की ऐसी द्रुतता के समान काम नहीं कर सकतीं, क्योंकि स्त्री के सहजज्ञान का आधार उसका अनादिकाल से यथार्थताओं का सामना करते आना है, तो उसके हृदय में स्त्री के लिए ज़रूर सम्मान का भाव पैदा हो जायगा, जिससे उनको एक दूसरे का साथी बनकर जीवन व्यतीत करने में सुविधा हो जायगी। अनेक बार ऐसा देखने में आया है कि पुरुष ने किसी दूसरे पुरुष के साथ मित्रता की है और उसके साझे में कोई काम करने का निश्चय किया है। जब उसने अपनी स्त्री से इसका ज़िक्र किया है तब उसने झट तिरस्कारपूर्वक कह दिया है—"लोग आपके भोलेपन का अनुचित लाभ उठाकर आपको मूर्ख बनाते हैं; आप उनको समझ नहीं सकते। आपका नया मित्र बातें तो ख़ूब करता है, परन्तु व्यापार में वह आपके गले पर एकदम छुरी चला देगा।" ख़ुद मेरी स्त्री ने मुझे एक बार एक मित्र के साथ मिलकर काम करने से इसी प्रकार रोका था। बाद को अनुभव से मुझे मालूम हुआ कि उसकी राय ठीक ही थी। सचमुच स्त्री का सहज ज्ञान एकदम ठीक परिणाम पर पहुँच जाता है।

कोई भी पुरुष यह पसन्द नहीं करता कि लोग उसे मूर्ख समझें। परन्तु यदि स्त्री के इस प्रकार कहने पर वह नाराज़गी प्रकट करता है तो उस समय स्त्री का एक दूसरा रूप प्रकट होता है। पुरुष के लिए उसके इस रूप का सहन करना बहुत ही कठिन होता है। वह उस पर क्रोध के अंगारे बरसाने लगती है और पुरुष के होश उड़ जाते हैं। स्त्री और प्रकृति में बड़ा भारी सादृश्य है। पुरुष की अपेक्षा स्त्री उसके निकट भी अधिक है। तूफ़ान, आँधी और भूकम्प प्रभृति नैसर्गिक कोपों के बाद जैसे प्रकृति बिलकुल शान्त हो जाती है, उसी प्रकार स्त्री भी एक बार क्रोध के अंगारे बरसाकर फिर पूर्ववत् शान्त हो जाती है। परन्तु इस प्रकार लड़ने-झगड़ने के बाद पुरुष जल्दी शान्त नहीं होता। पत्नी के साथ झपट हो जाने के बाद वह कई दिन तक दुःखित और अशान्त रहता है। बखेड़ा होने पर उसकी तबीयत बिगड़ जाती है, मस्तिष्क काम करना छोड़ देता है। यदि पुरुष एक बार स्त्री और प्रकृति के इस सादृश्य को समझ लेगा तो वह फिर पत्नी के क्रोध के सामने झुक जायगा और उसे क्षमा कर देगा। ऐसा करने में वह अपनी बड़ाई ही समझेगा। क्योंकि उसका भाव यह हो जायगा कि उसने अपने को बलवान् और क्षमाशील पुरुष प्रकट किया है।

गत पीढ़ी में जीवन की समस्याओं को सुलझाने और पुरुषों के साथ व्यवहार करने की स्त्रियों की रीति में बड़ा भारी परिवर्तन हो गया है। आज ऐसी स्त्रियों की संख्या बहुत बढ़ रही है जो जीवन में अपना मार्ग आप बनाती हैं और टुकड़े के लिए किसी पुरुष की मुहताज नहीं। इससे पुरुष की समस्या बहुत अधिक जटिल हो गई है, क्योंकि इससे उसे परम्परागत व्यवहार-रीति को छोड़कर नई कार्यपद्धति को ग्रहण करने की आवश्यकता हुई है। फिर भी स्त्री के भावों को समझने की चाबी मालूम करना उतना कठिन नहीं। यह इस प्रकार हो सकता है कि जिस स्त्री के साथ पुरुष को जीवन बिताना है उसके तात्त्विक स्त्रीपन को वह स्वीकार करता रहे, अर्थात् वह यह कभी न भूले कि अन्त को वह एक स्त्री ही है, और इसके साथ ही उसकी बुद्धि का भी उचित सम्मान करे, उसे बिलकुल नासमझ तथा पाँव की जूती ही न समझ ले।

आधुनिक स्त्री में स्त्रीपन पुराने नमूने की स्त्री से किसी अंश में भी कम नहीं। हो सकता है कि पुरुषों पर जादू चलाने के लिए जिस प्रकार पुराने ढङ्ग की स्त्री नयन-बाण छोड़ती थी या छिपकर स्पर्श कर देती थी या कोई दूसरा हाव-भाव दिखलाती थी, उस प्रकार नवीन स्त्री न करती हो। परन्तु जितना अधिक वह चतुर है, उतना ही अधिक वह प्रत्येक अवसर पर अपने स्त्रीपन के जन्मसिद्ध अधिकार का उपयोग करती है। यदि आप किसी ऐसी ही स्त्री से विवाह करते हैं तो आपका दुःखी या सुखी होना आपके उसके तात्त्विक गुण को समझने या न समझने पर निर्भर करेगा।

स्त्री के सम्बन्ध में एक सज्जन के विचार पिछली पीढ़ी के थे। परन्तु जिस स्त्री से उन्होंने विवाह किया वह नये ढङ्ग की थी। वे समझे हुए थे कि हम पति-पत्नी दोनों अभी दुध-मुँहे बच्चे हैं। जब तक हम एक दूसरे का मन न रक्खेंगे और एक दूसरे के साथ झूठ न बोलेंगे, हमारे घर में शान्ति न रहेगी। इसलिए जब भी कभी व्यापार में उन्हें घाटा होता तब वे अपनी स्त्री से उस बात को छिपाकर रखते; परन्तु स्त्री चाहती कि मैं सुख और दुःख दोनों में पति की साझेदार बनूँ। इसलिए पति के इस प्रकार बात छिपाने से वह बहुत कुपित होती। आरम्भ में उनको एक दूसरे से बहुत सुख मिलता था, परन्तु धीरे धीरे इसका अन्त हो गया और इसके साथ ही उनका आध्यात्मिक सुख भी क्षीण हो गया। कारण यह कि स्त्री के हृदय में उस पुरुष के प्रति सम्मान का भाव नष्ट हो जाता है जो उसे जीवन-सङ्गिनी मानकर उसके साथ समानता का व्यवहार नहीं करता। फलतः आज उनका जीवन बिलकुल नरकमय हो रहा है।

ऐसे भी पुरुष हैं जो सामने तो स्त्रियों की अत्यन्त प्रशंसा करते हैं, परन्तु एकान्त में कहते हैं—"स्त्रियाँ नरक का द्वार हैं।" वे स्त्रियों को ऐसी चीज़ समझते हैं जो पुरुष की तुष्टि के लिए भेजी गई हो। इन पुरुषों को तो वाराङ्गना और वारुणी चाहिए, तभी वे प्रसन्न रहते हैं।

ऐसे पुरुष रुपये के लिए प्रेम बेचनेवाली स्त्रियों को सन्तुष्ट रख सकते हैं, परन्तु इसे हम स्त्रियों के साथ निर्वाह करना नहीं कह सकते। यह भाव तो कुछ लोगों की इस उन्मत्त कल्पना को प्रकट करता है कि हृदय में सब स्त्रियाँ

वेश्यायें हैं। परन्तु ऐसा विश्वास रखनेवाले पुरुष उन बहुसंख्यक पुरुषों की अपेक्षा कुछ कम हास्यजनक नहीं जो प्रशंसा करके स्त्रियों को आकाश पर चढ़ा देते हैं। दोनों भावों में आंशिक सत्य है। स्त्रियाँ प्रेम में बड़ी उदार होती हैं, इसलिए कई नासमझ लोग उन्हें वेश्या समझने लगते हैं। उनको साध्वी और तपस्विनी मानना भी सचाई पर आँखें बन्द कर लेना है। यदि स्त्री के सामने दोनों स्थितियाँ रखकर उसे उनमें से अपने लिए कोई एक चुनने को कहा जाय तो वह देवी बनकर ऊँचे सिंहासन पर बैठने के बजाय पुरुष के घुटने पर बैठना अधिक पसन्द करेगी।

इसका कारण यह है कि स्त्री में मानुषी गुण बहुत अधिक है। उसे इस बात की आकांक्षा नहीं कि दूर दूर तक मेरी पूजा हो। वह चाहती है कि पुरुषपन की मज़बूत चादर मुझे अपने अन्दर लपेटकर अपने अधिकार में कर ले। उस रक्षक आवरण के भीतर रहकर, परित्राण को पाती हुई, वह अपने पुरुष की दिन भर के काम की थकावट को दूर कर सकती है और उसे सुख पहुँचा सकती है। परन्तु पति और पत्नी के लिए जीवन तभी आनन्दमय हो सकता है, जब पुरुष अपने हृदय की कोई भी बात उससे न छिपाये। यह एक ऐसी अवस्था है जिसमें विजयी होने के लिए पुरुष पहले अधीनता स्वीकार करता है। उसे अपनी इच्छा को पत्नी की इच्छा के विरुद्ध रखने दीजिए, चाहे गुप्तरूप से ही क्यों न हो; अपने पुरुष होने के गर्व में उसे ज़रा हठ करने दीजिए, फिर देखिए, स्त्री उसकी कट्टर विरोधी हो जायगी।

जिस स्त्री पर आपका प्रेम नहीं उसके साथ काटना एक बिलकुल दूसरी बात है; पर दोनों में अन्तर केवल दर्जे का ही है। चतुर पुरुष अपने उन्हीं गुणों को—अपने पुरुषपन को, अपने विवेक को, अपनी बुद्धि को—सभी स्त्रियों के सामने प्रकट करता है। और यदि वह बुद्धिमान् है तो सभी स्त्रियों के प्रति सच्ची कृतज्ञता का भाव प्रदर्शित करता है, क्योंकि अधिकांश स्त्रियाँ प्रशंसा से क़ाबू में रक्खी जा सकती हैं, उनकी आलोचना करने से वे विद्रोही बन जाती हैं।

सबसे बढ़कर बात यह है कि पुरुष को समझ लेना चाहिए कि पुरुष और स्त्री वस्तुतः ऐसे प्राणी हैं जो अपने आपमें अधूरे हैं, जीवन को पूर्ण बनाने के लिए उनका आपस में मिल जाना आवश्यक है। वस्तुतः यदि किसी पुरुष में इतनी आध्यात्मिक शक्ति हो कि वह प्रत्येक स्त्री में स्त्री-जाति का लुभावना और वाञ्छनीय अंश कुछ-न-कुछ देख सके तो यह सबसे अच्छी बात है।

एक पाश्चात्य विचारक ने स्त्रियों के साथ व्यवहार करने के लिए चार नियम बताये हैं। वे इस प्रकार हैं—पहला, रूपवती स्त्रियों के साथ ज्ञान की बातें करो। दूसरा, ज्ञानी स्त्रियों के साथ चपलता-पूर्वक निरर्थक बातें करो। तीसरा, तरुणी लड़कियों के साथ गम्भीर और प्रभावोत्पादक ढङ्ग से बातें करो। चौथा, बूढ़ी स्त्रियों के साथ धृष्टता और अविनय का व्यवहार करो। ज़रूरत पड़े तो उनके नाम लेकर भी बुलाओ।

ज्ञानवती स्त्रियों के साथ निरर्थक बातें करने और बूढ़ियों के साथ धृष्टता का व्यवहार करने में क्या रहस्य है, यह पाठक स्वयं ही सोचने का कष्ट करें।

अज्ञात दिशा की ओर

पूर्वकथा—मिसेज़ बोस एक परम सुन्दरी रमणी हैं। उनसे भी अधिक सौंदर्य उनकी एक-मात्र पुत्री रेखा में उमड़ता चला आ रहा है। अपने आपको हताशगंज का जमींदार कह कर इन पर प्रभाव डालने के बाद अहीन्द्र ने इनसे अपने मित्र निर्मल का परिचय कराया और उसे कोचभूमि का प्रिन्स बताया। इससे मा-बेटी दोनों उसकी ओर आकृष्ट हो गईं। अन्त में इन सब लोगों ने सोदपुर में गङ्गा के किनारे निर्मल के बगीचे में एक सप्ताह बिताना निश्चित किया।

अनुवादक—श्रीयुत ठाकुरदत्त मिश्र

तीसरा परिच्छेद
बसन्त की हवा

एक मंज़िला मकान था। वह ऊँची कुर्सी का था। पिछवाड़े की तरफ़ बरामदा था। उस बरामदे में आने पर गङ्गा जी के दर्शन होते थे। वहाँ गङ्गा का प्रवाह कुछ तेज़ था। तरङ्गें जल में नाच-नाचकर उसे प्रवाहित किया करती थीं। गङ्गा जी के उस पार एक घाट था, जो था तो पक्का, लेकिन पुराना हो जाने के कारण जगह-जगह पर उसकी ईंटें और मसाला निकल गया था। बड़े बड़े पेड़-पौधों के बीच से गाँव की दीवारों या खपड़ैल की झलक दिखाई पड़ती थी। अकेले बैठे बैठे जब तबीअत ऊबने लगे तब इस बरामदे में आकर बैठ जाइए, आपका हृदय कितनी ही विचित्रताओं से परिपूर्ण हो जायगा। ज़रा ही दूरी पर नदी का घुमाव था, और उस घुमाव के पास ही एक बहुत बड़ा रेता पड़ गया था। उस रेते के ऊपर ककड़ी-ख़रबूज़ा या तरह तरह की तरकारियाँ आदि बोकर किसानों ने उसे एक छोटे-से द्वीप के रूप में परिणत कर दिया था।

उस दिन दूसरे वक्त धूप जब बहुत कम हो गई तब निर्मल, अहीन्द्र, मिसेज़ बोस और रेखा बँगले के पिछवाड़े तार की रेलिंग फाँदकर नदी के तट पर आये। सब लोग खड़े खड़े गङ्गा जी की शोभा देख रहे थे। इतने में रेखा ने कहा—किनारे ही किनारे कुछ दूर तक घूम आऊँ, बड़ा अच्छा लगेगा। यह बात समाप्त करते ही उसने अहीन्द्र को खींच लिया और वहाँ से चल खड़ी हुई। मिसेज़ बोस ने पुकारा—उधर मत जा रेखा। आगे बढ़ने पर जूता-सहित पैर कीचड़ में धँस जायगा।

रेखा ने उस ओर ज़रा-सा झाँककर देखा तक नहीं। कुछ देर तक मिसेज़ बोस तन्मय भाव से रेखा की ओर ताकती रहीं, अन्त में उन्होंने निर्मल का हाथ ज़ोर से पकड़-कर कहा—इसका कहना ग़लत नहीं है। मेरी भी इच्छा होती है कि इसी तरह इधर-उधर दौड़कर खेलूँ-कूदूँ! ......मिसेज़ बोस ने एक लम्बी साँस ली। उस लम्बी साँस में अतीत यौवन की कितनी ही निराशायें पुञ्जी-भूत थीं!

निर्मल ने कहा—क्या जाओगी उधर? मिसेज़ बोस ने कहा—नहीं। अच्छा प्रिंस, हम आप उधर न जाकर बरामदे में ही चढ़ चलें। वहीं आराम से बैठेंगे। जल के पास आने पर मन में इतनी अशान्ति उत्पन्न हो जाती है, मन इस प्रकार हाहाकार से पूर्ण हो उठता है!...न जाने कितनी बातें हृदय में उदित होती हैं। मैं तो पागल-सी हो उठती हूँ, चञ्चल हो उठती हूँ। ऐसे तो साधारणतः चलने में मुझे कष्ट होता है, किन्तु यहाँ आने पर जी में आता है कि चलती ही रहूँ, इधर-उधर कूदती ही फिरूँ!

निर्मल एकाग्र दृष्टि से मिसेज़ बोस की ओर ताक रहा था। यौवन आज अतीत की आड़ में है। परन्तु इससे कोई हानि नहीं है। इस ढलती हुई अवस्था में भी इस तरह की कमनीयता, इस तरह का शान्त माधुर्य इस नारी को घेरे हुए है!...यह एक विचित्र पहेली के समान है! कैसी एक अलौकिक आभा लता के समान इसके अङ्ग अङ्ग पर फैली हुई है। इसके सामने रेखा! वह तो शान्त नदी के गम्भीर आवेग के समक्ष एक छोटे-से झरने का चञ्चल-नृत्य है! उसकी वक़त ही क्या है? वह तो केवल इस मतलब की है कि क्षण भर देखकर नेत्रों को तृप्त कर लो! देखते ही देखते छाया के समान वह जहाँ की तहाँ हो जाती है। इस तरह के क्षणिक आकर्षण के द्वारा घर-गृहस्थी तो चलाई नहीं जा सकती! उससे पिपासा की भी निवृत्ति नहीं होती। वह बहुत ही छोटी है। बहुत ही क्षणिक है!...निर्मल का चित्त प्रबल पिपासा से परिपूर्ण था। मिसेज़ बोस की ओर ताककर उसने कहा—आप इतनी ज़्यादा खिली हैं? इस नदी के तट पर, इस अस्तंगत सूर्य की रक्त वर्ण की आभा के मध्य में...

ज़ोर से निर्मल का हाथ पकड़कर मिसेज़ बोस ने कहा—आइए प्रिंस, आपको जो कुछ कहना हो, इस बरामदे में बैठकर कहिएगा। मेरा भी मन न जाने कैसा हो रहा है! आज मानो मेरे जीवन में नवीन वसन्त का उदय हुआ है!...

निर्मल ने कहा—आपमें रोमान्स ख़ूब है।

निर्मल का हाथ पकड़े हुए मिसेज़ बोस बरामदे में आई और एक आरामकुर्सी पर बैठ गई। एक कुर्सी खींचकर निर्मल भी उनके पास ही बैठ गया। बाद को वे दोनों ही चुप रहे, किसी के मुँह से कोई बात नहीं निकली। बड़ी देर के बाद मिसेज़ बोस का मुँह खुला। उन्होंने कहा—कुछ बातचीत क्यों नहीं कर रहे हैं प्रिंस?

निर्मल ने कहा—कभी कभी बिलकुल ख़ामोश रहना भी बड़ा अच्छा मालूम पड़ता है। इस तरह की ख़ामोशी में मानो हम लोग एक-दूसरे को बहुत समीप पाते हैं। बातचीत की हवा से मन के इस प्रकार के गाढ़ मिलन का भाव फट जाता है न!

मिसेज़ बोस ने निर्मल का हाथ अपने हाथ से दबाकर पकड़ लिया और कहने लगीं—यह भी ठीक कहते हो प्रिंस। इस तरह चुपचाप बैठे बैठे कितनी सुख की बातें हृदय में लाई जाती हैं! हृदय में कितने रङ्गीन स्वप्न नहीं उदित हो उठते!

मिसेज़ बोस निर्मल की ओर आग्रहपूर्वक ताकती रहीं। निर्मल ने भी उन्हीं के मुखमण्डल पर अपनी दृष्टि जमा दी। इस प्रकार बड़ी देर तक एक-दूसरे की ओर ताकने के बाद निर्मल ने मिसेज़ बोस का हाथ अपने हाथ से ज़ोर से पकड़ लिया। बड़ी देर तक आवेश में आँखें मूँदे रहने के बाद मिसेज़ बोस ने क्षीण स्वर से कहा—आह!

उधर सन्ध्या की गाढ़ स्तब्धता को घेरकर रेखा का कलहास्य रह रह कर जाग्रत हो उठता था। रेखा अहीन्द्र को खींचकर एक घाट के पास आई। घाट पर मछुओं की कई नौकायें बँधी हुई थीं। रेखा जाकर एक नौका पर बैठ गई और उसने अहीन्द्र से कहा—आइए न। वाह, शायद लज्जा मालूम पड़ रही है! कहीं कोई यह न समझ बैठे कि बाबू साहब भी कैसा लड़कपन कर रहे हैं!

अहीन्द्र ने मुँह से कोई भी बात नहीं निकाली। तट पर खड़ा होकर अनिमेष दृष्टि से वह रेखा की ओर ताकता रहा। एक बार चारों ओर देख लेने के बाद रेखा ने कहा—बाबूगिरी क़ायम रखने के लिए जीवन को कितने ही स्वाभाविक आनन्दों से वञ्चित रखना पड़ता है। अहीन्द्र बाबू! आया ख़याले शरीफ़ में!

रेखा की इस बात से अहीन्द्र लज्जित हो गया। वह नौका पर जाकर बैठ गया। रेखा ने हँस कर कहा—ऐं, यह क्या किया आपने? बाबूगिरी को तिलाञ्जलि दे दी? मैं आपके मित्र से कह दूँगी।

अहीन्द्र ने कुछ कहा नहीं। नदी के वक्ष में उस सरल हृदय का तरल हास्य संगीत के सुर के समान मधुर मालूम पड़ रहा था। उसके मन में यह बात आती कि इस सुर में आज यदि उसके जीवन का ही अन्त हो जाता... तो कोई दुःख नहीं था। सौभाग्य से ही वह यहाँ आया था, यही कारण है कि वह इस हँसी के सुर में डुबो कर जीवन को कृतार्थ कर सका था।

क्षण भर के बाद ही आकाश की ओर ताक कर रेखा ने कहा—वाह! कितना बड़ा चन्द्रमा उदित हुआ है? ज्योत्स्ना से अभी ही चारों दिशायें परिपूर्ण हो जायँगी। शायद आज पूर्णिमा है। आइए न अहीन्द्र बाबू, नौका की रस्सी खोलकर उस रेते पर घूम आवें। बड़ा आनन्द आयेगा। दूर से ही वह कितना सुहावना मालूम पड़ रहा है। वह मानो स्वप्न में बना हुआ परियों का राज्य है।

अहीन्द्र ने कहा—पागल हुई हो रेखा? नदी के जल की धारा जब इतनी तेज़ है, नाव छोड़ दें तो भला बहते बहते कहाँ जा लगेंगे?

रेखा ने कहा—आपने तो यों ही हिम्मत हार दी। धारा-वारा कुछ नहीं है। कितना शान्त जल है? नौका पर डाँड़ भी हैं। उठाइए न, चलिए घूम आवें।

अहीन्द्र ने कहा—केवल डाँड़ छप छप करने से ही तो नौका ठीक रास्ते से चलेगी नहीं। मल्लाहगिरी में पक्का हुए बिना कोई ठीक से नाव नहीं चला सकता। यदि ऐसी ही इच्छा है तो ज़रा-सा ठहर जाओ। मैं कोई मल्लाह ढूँढ़ ले आता हूँ।

रेखा ने मुँह टेढ़ा करके कहा—नहीं, उसमें उतना मज़ा नहीं आवेगा।

अहीन्द्र ने कहा—तो मुझे ही कर्णधार होना पड़ेगा? परन्तु बाद को बीच गङ्गा में यदि कहीं नौका उलट जाय?

रेखा ने हँसकर कहा—तो ठीक तो है। बहती रेते पर जाकर लगूँगी। कल सवेरे नींद खुलने पर देखूँगी कि एक रमेशचन्द्र मेरे पास बैठे हैं। रवि बाबू का भी उपन्यास लिखना सार्थक हो जायगा।

अहीन्द्र ने कहा—और मैं?

रेखा ने कहा—आप भी कितनी आशा-निराशा के बीच में चक्कर काटते फिरेंगे। इस प्रकार रोमांस के पात-पात पर घूमकर अन्त में एक दिन हम दोनों की मुलाक़ात फिर हो जायगी। यह कितने मज़े की बात होगी? जीवन ही परिवर्तित हो जायगा। परिवर्तन के बिना जीवन बहुत ही एकाङ्गी, बहुत ही नीरस और बहुत ही बीभत्स हो जाता है! इस जीवन से तो मुझे सचमुच बड़ी अरुचि हो गई है। हमारे जीवन में रक्खा ही क्या है? केवल बैठना, सोना और खाना। यही तो समस्त दिन का काम है। इससे अवसर मिल जाने पर वही रोज़ के बँधे हुए हिसाब से गा लेना होता है। भला बताइए तो इससे विरक्ति नहीं होती! यह आकाश! सन्ध्या का यह अन्धकार और प्रकाश! यह नदी का प्रवाह! ये सब क्या बिलकुल निरर्थक हैं, मिथ्या हैं? इन सबके साथ जीवन में क्या किसी दिन कोई परिचय न होगा? सचमुच तो ये सब नक़्शे में चित्र में अङ्कित की हुई वस्तुएँ नहीं हैं। इनमें भी प्राण हैं...। ज़रा सुनिए तो। नदी का यह कलकल गान! मनुष्य से प्रेम करने के लिए, उसके साथ स्नेह का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए आकुल भाव से मनुष्य को पुकार रहा है।...सचमुच, चलिए। इस नौका पर बैठ कर किसी लक्ष्यहीन दिशा में बह चलें! किसी तट की ओर चलने की कोई ज़रूरत नहीं। देखना चाहिए, इसका क्या परिणाम होता है!

अहीन्द्र ने कहा—मुझे साथ में लेकर बह चलोगी! जगत् के दो चिरन्तन प्रणयी और प्रणयिनी की तरह? यदि तुम ऐसा करने को कहो तो मैं तैयार हूँ।

रेखा ने कहा—दुत! ऐसा क्यों? यों ही...हम तुम दोनों मित्र इसी तरह बह चलेंगे!

अहीन्द्र ने उच्छ्वसित आवेग से रेखा का हाथ अपने हाथ में ले लिया। उसने कहा—तो क्या तुमने मुझे मित्र के रूप में ग्रहण कर लिया? बताओ रेखा, इस गङ्गा के वक्ष पर बैठकर—बताओ, बताओ।

रेखा ने बड़ी ही उतावली के साथ हाथ खींच लिया। उसने कहा—यह क्या? क्या आप भी अब उपन्यास के एक पात्र बन चले हैं? मैं देखती हूँ...

यह बात अहीन्द्र के कान तक नहीं पहुँच सकी। अधीर आवेग में उच्छ्वसित स्वर से उसने कहा—नहीं, बतलाओ, जवाब दो।

नदी के तट की ओर ध्यानपूर्वक देखकर रेखा ने अपने दोनों नेत्रों की दृष्टि को बहुत दूर तक प्रसारित कर दिया। तब उसने कहा—इसका क्या जवाब दूँ? आपको तो मित्र के रूप में ग्रहण कर चुकी हूँ बहुत दिन से। यदि यह बात न होती तो भला मैं कभी इस तरह

आपके साथ घूमने आती ? इस समय......इसी स्थान पर......

अहीन्द्र स्तब्ध हो गया। रेखा ने चञ्चल होकर पुकारा—मित्र !

अहीन्द्र ने कहा—मुझे पुकारती हो ?

रेखा ने कहा—हाँ, आपके सिवा मेरा और कौन मित्र यहाँ बैठा है ?

अहीन्द्र ने कहा—कहो, क्या कहती हो।

रेखा ने कहा—चुपचाप इस तरह बैठे रहने से काम न चलेगा मित्र। या तो मल्लाह बुलाइए यों हाथ में डाँड़ लीजिए। इस समय उस रेते पर मैं चलूँगी ही। देखिए न। वह कैसा सुहावना है ? प्रकाश और अन्धकार से घिरी हुई अस्पष्ट छाया के समान, मानो वास्तव में स्वप्न ही है। है न ?

अहीन्द्र ने देखा कि रेखा अपने संकल्प पर दृढ़ है। तब और कोई उपाय न देखकर वह तट पर इधर-उधर घूमने लगा। उसने सोचा कि यदि कोई मल्लाह मिल जाय ! अहीन्द्र के चले जाने पर रेखा ने अपने चमकदार और मुलायम जूतों को खोल कर नौका पर रख दिया और पैरों को बड़े ही उत्साह के साथ जल में डुबा कर नचाने लगी। ज़रा ही देर के बाद अहीन्द्र लौट आया। उसके साथ में एक छोकड़ा था। बहुत ही प्रसन्न होकर रेखा ने कहा—देखिए, आलस्य त्याग दिया। इसी से सिद्धि मिली न। लीजिए, अब झटपट नौका पर बैठ जाइए।

अहीन्द्र और वह छोकड़ा आकर नौका पर बैठ गये। तब नौका छोड़ दी गई। दूर के किसी मन्दिर में साँझ की आरती हो रही थी। वहाँ शंख और घंटा बज रहा था। मस्तक पर चन्द्रमा उदित था, उसके प्रकाश से समस्त आकाश-मण्डल द्योतित हो उठा था। इस ज्योत्स्ना से धवलित होकर गङ्गा जी की मन्द मन्द तरङ्गों को काटती हुई नौका रेते की ओर चली। रेखा आनन्द में मग्न होकर रवीन्द्र बाबू का गीत गाती हुई चली। इधर अहीन्द्र भी अपूर्व मादकता से परिपूर्ण रेखा की ओर मुग्ध दृष्टि से ताकता रहा।

—

चौथा परिच्छेद

कोकिल-कूजन

नौका जाकर रेते में लग गई। रेखा तुरन्त ही कूदकर तट पर आई। तेज़ी से दौड़कर वह छोटे छोटे पेड़-पौधों की आड़ में छिप गई। बाद को उसने लुका-छिपी खेलना आरम्भ कर दिया। लड़के ने नौका को देख रखने को कहकर अहीन्द्र ने रेखा का अनुसरण किया।

रेते में ताड़ के पत्तों से छाई हुई छोटी छोटी झोंपड़ियाँ थीं। किसानों ने ये झोंपड़ियाँ इस मतलब से बना रक्खी थीं कि फ़सल को काटकर उनमें सुरक्षित रख सकें। बात यह है कि फ़सल की सारी राशि एक साथ ले जाने में सदा सुविधा नहीं होती, इसलिए उन लोगों ने यह व्यवस्था कर रक्खी थी। चन्द्रमा के प्रकाश में ये झोंपड़ियाँ ऐसी जान पड़ती थीं, मानो परियों ने इन्हें अपने खेलने के लिए बना रक्खा है।

ज़रा दूर तक दौड़कर रेखा जल के पास ही एक स्थान पर बैठ गई। बैठते ही उसने गाना आरम्भ कर दिया। जल की गोद में एक विचित्र माधुर्य से परिपूर्ण होकर इस सुर की धारा ने एक स्वप्न पुरी की सृष्टि कर दी। उसके पास बैठकर अहीन्द्र मुग्ध दृष्टि से रेखा की ओर ताकता रहा।

गीत पर गीत गाते गाते रेखा थक गई। तब उसने गाना बन्द कर दिया। कुछ दूरी पर जूट की मिल थी। उसके आस-पास और भी बहुत-से मकान थे। वे सब मकान मानो बिजली की रोशनी की माला पहने हुए थे। किन्तु जूट की मिल में जो बिजली जल रही थी उसकी चमक उसके पास के मकानों की रोशनी से कहीं ज़्यादा थी। वह तो इतनी अधिक आकर्षक, इतनी अधिक चमकीली थी, मानो माला में बीच बीच में मणियाँ जड़ी हों। मिल के पास के मकानों से [illegible] का सुर भी सुनाई पड़ रहा था।

रेखा ने कहा—शायद वहाँ आदमी भी रहते हैं, केवल मशीन ही नहीं घड़ घड़ करती। है न अहीन्द्र बाबू ?

अहीन्द्र ने कहा—वह जूट की मिल है और उसके आस-पास जो मकान दिखाई पड़ रहे हैं वे सब साहबों के क्वार्टर हैं।

रेखा ने कहा—कैसे आनन्द की जगह में रहते हैं ये लोग ? हमारे देश के लोग ऐसी अच्छी जगह की क़द्र ही करना नहीं जानते। नदियों के तट पर श्मशान बनाते हैं और बीच गाँव में भीटे के पास ही घर बनाकर रहते हैं। और साहब लोग ? देखो न, अच्छी से अच्छी जगह चुनकर इन लोगों ने अड्डा जमाया है। संसार में जन्म लेना इन्हीं का सार्थक है। यह कहकर रेखा फिर आनन्द में मग्न होकर गाने लगी।

अहीन्द्र तन्मय होकर गीत सुनने लगा। रेखा के विराम लेते ही अहीन्द्र ने उसका हाथ पकड़कर गाढ़ स्वर में कहा—रेखा !

रेखा ने फिर कर उसकी ओर देखा। उसने कहा—आप हैं ? यह अच्छा ही हुआ।......मैं तो चौंक पड़ी थी ! परन्तु इस तरह क्यों पुकार रहे हैं अहीन्द्र बाबू ?

अहीन्द्र ने कहा—इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है रेखा। यह शान्त नदी का तट, यह चाँदनी रात, और इस तरह का मोहनी रूप धारण किये हुए तुम......तिस पर भी यह गीत......मेरा दिमाग़ भन्ना रहा है रेखा...।

रेखा ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह गम्भीर भाव से अहीन्द्र को देखने भर लगी।

अहीन्द्र ने फिर पुकारा—रेखा......।

रेखा ने कहा—आप क्या कहना चाहते हैं ? कह ही क्यों नहीं डालते ?

अहीन्द्र ने कहा—आज बाहर का जगत् न जाने कहाँ निकल गया है रेखा ? नदी के इस एकान्त रेते में और कोई नहीं है, केवल तुम हो और मैं हूँ।

रेखा ने गम्भीर कण्ठ से कहा—हाँ।

अहीन्द्र ने कहा—तुम्हारे हृदय की जो अत्यन्त ही गुप्त बात है उसे आज तुम मुझे बतला दो। बताओ रेखा, क्या तुमने मुझे मित्र के रूप में ग्रहण किया है ? बोलो रेखा, बोलो। अपने हृदय की यह अत्यन्त ही गुप्त बात मुझे बतलाओ इस सुनसान, इस एकान्त रेते में......

रेखा ने कहा—आज आपका कवित्व बहुत बढ़ गया है। अहीन्द्र ने कहा—यह कवित्व नहीं है रेखा। आज सारी दुनिया अपना बनावटी आवरण, अपने विलास-विभव का मिथ्या आडम्बर लेकर न जाने कहाँ दूर जाकर मिल गई है। आज तुम्हें इतने समीप, इतने एकान्त में पाया है, इससे मेरा मन बहुत ही आकुल हो उठा है।

रेखा ज़रा-सा खिसक गई। अहीन्द्र ने कहा—नहीं, नहीं, यहाँ से खिसक मत जाओ। तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं है। मैं केवल जानना चाहता हूँ—बताओ रेखा, बताओ। क्या तुमने कभी किसी को प्यार किया है ?

रेखा के मुँह पर रक्त की धारा तेज़ी से दौड़ पड़ी। उसने अपने आप को सँभालकर पूछा—इसका मतलब ?

अहीन्द्र ने कहा—इसका मतलब यह है कि तुम जिससे प्रेम करती हो, मुझे उसका नाम बतलाओ। तुम्हारे प्रेमी का नाम जानने की मुझे बड़ी इच्छा है।

उत्तेजना के मारे अहीन्द्र का कण्ठ-स्वर ज़ोर से काँप रहा था।

रेखा ने कहा—आप एक एक आदमी का नाम लेते जाइए।

अहीन्द्र ने कहा—मेरे जो नये मित्र हैं......प्रिंस ?

रेखा ने भौंहें सिकोड़कर कहा—उपाधि का बल होने के ही कारण शायद वे प्रेम-पात्र बनने के बहुत योग्य हैं ? हाय रे पुरुष......

अहीन्द्र ने कहा—तो......

रेखा ने हँस कर कहा—और नाम क्यों नहीं लेते ?

अहीन्द्र ने और भी कई नामों का उल्लेख किया। रेखा ने हँसी और व्यङ्ग्य के बाण से विद्ध करके उन नामों को छोड़ दिया। तब अहीन्द्र को कुछ साहस हुआ। उसने दोनों बाहुओं से रेखा को ज़ोर से आबद्ध करके कम्पित स्वर से कहा—मैं......? मैं......? मुझे ? बताओ रेखा ? बताओ। क्या तुम मुझसे प्रेम करती हो ?

रेखा को इससे बड़ी विरक्ति हुई। उसने अहीन्द्र को ठेल दिया और कूदकर वह दूर खड़ी हुई। उसने कहा—यह क्या है अहीन्द्र बाबू ? क्या यही मित्र का काम है ? राम ! राम !

अहीन्द्र विह्वल भाव से ताकता रहा। रेखा फिर उससे कहने लगी—आपको मैंने मित्र कहा है। आपको मैं पसन्द भी करती हूँ।......आप ही बताइए, आपके साथ मैं जिस तरह मिलती-जुलती हूँ, उस तरह मुझे और भी किसी से मिलते देखा है आपने ?

मैं जो आपसे इस तरह खुल कर मिलती-जुलती हूँ, इतनी अधिक घनिष्ठता प्रदर्शित करती हूँ, इसके लिए मा ने कितनी बार अप्रसन्नता भी प्रकट की, किन्तु उस ओर मैंने ध्यान ही नहीं दिया। परन्तु यदि आप इस मित्रता से भी कुछ अधिक चाहते हों तो आपको निराश होना पड़ेगा......

रेखा उठ खड़ी हुई। अहीन्द्र बेंत की मार खाये हुए कुत्ते के समान कुण्ठित होकर बैठा रहा। कई क्षणों के बाद उठकर उसने रेखा का हाथ ज़ोर से पकड़ लिया। उसने कहा—किन्तु मैं तो तुमसे प्रेम करता हूँ रेखा।

रेखा ने हँसकर कहा—सच कह रहे हो अहीन्द्र बाबू ?

"सच, बिलकुल सच। इस बात में ज़रा भी मिथ्या नहीं है। कितने दिन से मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। तुम्हें प्राप्त किये बिना मेरे दिन न कटेंगे। यह बात कहने का अवसर कभी नहीं पा सका। आज इस एकान्त स्थान में अवसर मिल गया है, कहने का साहस भी मुझमें आ गया,... तुम्हारा अपमान करने का मेरा उद्देश्य नहीं है रेखा ?

बातें करते करते अहीन्द्र ने रेखा को और भी ज़ोर से अपने बाहुओं के पाश में आबद्ध कर लिया। रेखा ने उस बन्धन को तोड़ने का प्रयत्न किया, परन्तु उसे वह तोड़ न सकी। अभी अभी ही उसने एक बहुत ही भाव-पूर्ण गीत गाया था। उस गीत का आशय यह था कि मेरे यौवन-रूपी निकुञ्ज में पक्षी कलरव करके कह रही है, सखी, जागो, जागो! उस गीत के सुर में इतनी मादकता थी, उसका भाव इतना हृदयहारी था कि उसने रेखा की समस्त शक्ति का हरण कर लिया। उसके रोम रोम में कम्पन होने लगा, वह भावों से अभिभूत हो उठी। चारों ओर से मानो मौलश्री का सौरभ आकर वायु की मादकता का विस्तार कर रहा था; कोयल की कुहक से चारों दिशायें परिपूर्ण हो उठी थीं,......वह ठीक ठीक समझ नहीं पाती थी कि किसकी बाहुओं का बन्धन मुझे इस तरह जकड़े हुए है! उसे ऐसा लग रहा था, मानो आज चिर तरुण के आलिङ्गन में चिर तरुणी आबद्ध हो गई है!......

एकाएक वह जाग-सी उठी। अहीन्द्र ने कहा—मुझसे प्रेम करती हो, मित्र से भी अधिक प्रेम करती हो रेखा ?

"यह क्या ? यह तुम हो अहीन्द्र बाबू ?" अहीन्द्र के बाहुपाश से मुक्त होने के लिए ज़ोर लगाकर रेखा ने प्रयत्न किया। अहीन्द्र उस समय अधीर था; प्रेम के नशे में चूर था! उसकी अवस्था उन्मत्त की-सी थी। रेखा की इस प्रकार की चेष्टा की ओर ज़रा भी ध्यान न देकर उसने उसे और भी ज़ोर से छाती से लगा लिया और उसके मुख-मण्डल पर चुम्बन की एक रेखा अङ्कित कर दी।

ज़ोर से धक्का देकर रेखा ने अहीन्द्र को अलग कर दिया और वह कूदती हुई झुरमुट की आड़ में छिपकर अदृश्य हो गई। अहीन्द्र विह्वल भाव से खड़ा रह गया। बाद को आकाश की ओर उसने दृष्टि डाली। उसके मन में आया, मानो यह पूर्णिमा का चन्द्रमा, नभोमण्डल के नक्षत्रगण उसी की ओर ताक रहे हैं। गङ्गा जी के उस पार के पेड़-पौधे तक उसका यह दुःसाहस देखकर मानो स्तम्भित से हो गये हैं।......आह, क्षण भर की दुर्बलता के कारण उसने यह क्या कर डाला ? रेखा ने उसे मित्र के रूप में ग्रहण किया है।......इस प्रकार की धृष्टता न करने के लिए उसे वह एक बार सावधान भी कर चुकी है! परन्तु फिर भी अहीन्द्र ने......

परन्तु इसमें उसका अपराध क्या है ? मनुष्य को विह्वल करनेवाली यह कैसी आवेशमय उजेली रात है ? कैसा मादकतामय रेखा का सुर है ? तिस पर भी तरुण अवस्था......! एक लम्बी साँस लेकर अहीन्द्र वहीं पर बैठ गया। बाद को बड़ी देर के बाद वह उठकर खड़ा हुआ! उसने पुकारा—रेखा।

प्रतिध्वनि काँपती हुई चली गई। किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। अहीन्द्र ने कितनी बार पुकारा—रेखा! रेखा!

कहीं से किसी की आहट नहीं मिली। अहीन्द्र का मन भय से आकुल हो उठा। वह सोचने लगा—यह एक निर्जन स्थान है। यहाँ खोजने पर भी किसी मनुष्य का दर्शन नहीं मिल सकता।......रेखा यहाँ से गई कहाँ ?

बड़ी उतावली के साथ वह उठकर खड़ा हो गया। रेते के चारों ओर वह खोजने लगा। रेखा वहाँ नहीं थी। नौका और वह लड़का ?... उसका भी तो पता नहीं लगता! यहाँ तो कोई भी नहीं दिखाई पड़ता!

किसानों की दो-चार नौकायें उस समय भी रेते में बँधी थीं। उन्हीं में से एक नौका उसने खोल ली और उसी पर बैठकर अहीन्द्र तट पर आया। नौका पर से उतर कर उसने एक बार चारों ओर देखा। उस समय वह बहुत ही कुण्ठित था। दबे पाँव से जाकर उसने बँगले में प्रवेश किया। बँगले में निस्तब्धता थी। फाटक के पास बैठा हुआ माली गा-गाकर रामायण पढ़ रहा था। अहीन्द्र ने बहुत ही मन्द स्वर से पूछा—बिटिया रानी लौटी हैं रे ? माली ने उत्तर दिया—जी हाँ। उन्हें लौट कर आये दो घंटे हो गये।

अहीन्द्र ने शान्ति की साँस ली। धीरे धीरे वह भीतर की ओर चला। दूर से घंटे की आवाज़ सुनाई पड़ी। टन टन करके ग्यारह बज रहे थे।

जाने किसकी सुधि बार-बार ?

लेखक, श्रीयुत नर्मदाप्रसाद खरे

जाने किसकी सुधि बार-बार
छलका जाती है मधुर प्यार।
आकुल आँखों में डोल-डोल,
पीड़ित प्राणों से बोल-बोल।
प्रतिपल अन्तर्पट खोल-खोल,
जीवन में करुणा घोल-घोल।
झंकृत कर उर के तार-तार
कोई कर जाता मुझे प्यार॥ जाने कि०
यह मादक सन्ध्या लाल-लाल,
कर जाती है मुझको उदास,
उल्लास बरसता था उस दिन—
जब हम दोनों थे पास-पास,—
रजनी भी हँसती आती थी,
छा जाती सुख-आभा अपार। जाने कि०
उस दिन की सुन्दर मदिर रात,
हम एक प्राण-पर युगल गात,
छिड़ गई अचानक एक बात,
ना जाने कब हो गया प्रात,—
मेरा यौवन दृग खोल-खोल
बह गया शून्य नभ को निहार। जाने कि०
वरदान छिपा था नयनों में,
मुसकाता मुख पर चन्द्र-हास,
वाणी में कोयल बैठी थी,—
मधुमास विहँसता आस-पास—
छवि-मूर्ति अङ्क में मेरे थी—
मैं हँसता पहने बाहु-हार। जाने कि०
लहरें जब बाहें भर-भर कर,
करतीं सागर का आलिंगन।
इस सुन्दर मंगल-वेला में,
क्यों हो जाते हैं सजल नयन ?
हँसता मुझ पर किसका अभाव
मेरा जीवन कर मुझे भार। जाने०





बाबू राजेन्द्रप्रसाद (सभापति)



श्रीयुत छगनलाल भारुका
(प्रधान मंत्री स्वागतसमिति)



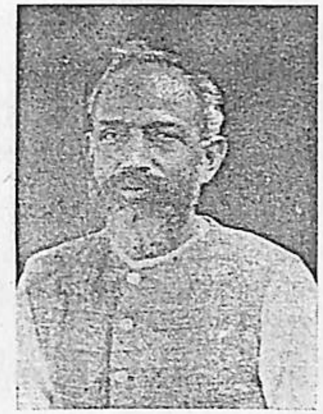
श्रीयुत ब्रजलाल बियाणी (स्वागताध्यक्ष)



राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरू
(जिन्होंने प्रथम बार सम्मेलन में भाग लिया)



महात्मा गांधी (सभापति
भारतीय साहित्य-परिषद्)



बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन
(महात्माजी के शब्दों में सम्मेलन के प्राण)

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

लेखक, श्रीनाथसिंह

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के २५ वें अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए जब मैं इलाहाबाद के स्टेशन पर पहुँचा तब देखा कि सम्मेलन के पहरुआ पंडित लक्ष्मीधर वाजपेयी किताबों के कई बण्डलों के साथ इक्के से उतर रहे हैं। पंडित लक्ष्मीधर वाजपेयी उन व्यक्तियों में हैं जिन्हें सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन उसी प्रकार खींच लेते हैं जैसे चुम्बक लोहे के टुकड़ों को खींच लेता है।

गाड़ी के जिस डिब्बे में हम बैठे, वाजपेयी जी के अतिरिक्त सज्जन भी मौजूद थे—बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, पंडित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, श्रीयुत जयचन्द्र विद्यालङ्कार, पंडित गांगेय नरोत्तम शास्त्री, श्रीयुत हिरण्यमय। सम्मेलन के प्रधान मंत्री सरदार नर्मदाप्रसादसिंह उसी ट्रेन से सेकण्ड क्लास में जा रहे थे।

श्रीयुत जयचन्द्र विद्यालङ्कार इतिहास-परिषद् के सभापति मनोनीत हुए थे और अपने छपे हुए भाषण की कुछ प्रतियाँ अपने साथ लिये जा रहे थे। इसलिए हमें रेल में ही आपके भाषण के पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हो गया। श्रीयुत जयचन्द्र जी भारतीय इतिहास के अच्छे पंडित हैं; भारतीय इतिहास की रूपरेखा नामक अपनी महत्त्व-पूर्ण रचना पर मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त कर चुके हैं। कुछ क्षणों के लिए हम जयचन्द्र जी के लिखित भाषण में तल्लीन हो गये और हमें जान पड़ने लगा मानो रेल की गड़गड़ाहट जयचन्द्र जी के इन शब्दों को दोहरा रही है—"अपने इतिहास का मनन करना—जीवित राष्ट्र

का एक आवश्यक चिह्न है। और उससे उलटा आत्म-विस्मृति एक भयानक रोग है।"

पण्डित गांगेय नरोत्तम शास्त्री ने हमें यहीं से अपनी ओर आकर्षित करना आरम्भ किया। शास्त्री जी स्वस्थ-शरीर और गौर वर्ण के नवयुवक हैं। आपके तैलसिक्त घुँघराले काले बाल, चौड़े मस्तक पर लाल चंदन की दीप-शिखा-सी चटक छाप और बड़े बड़े चंचल नेत्रों में बरेली के सुरमे की काली पतली रेखा आपकी अपनी ख़ास विशेषतायें थीं। यह हम लोगों का सौभाग्य था कि आप बहुत-सा माल-टाल लेकर बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन के साथ रेल के उस डिब्बे में आ विराजे थे और हमें खिलाते-पिलाते और हमारा मन बहलाते चल रहे थे।

सबेरे हमें इटारसी में उतर जाना पड़ा। यहाँ से हमें नागपुर-मेल पकड़ना था। उसके आने में कई घण्टे की देर थी, इसलिए हम पास के एक होटल में स्नान-भोजन आदि की सुविधा के ख़याल से चले गये। यहाँ यह लिखना उचित होगा कि जयचन्द्र जी के साथ उनकी पत्नी श्रीमती सुमित्रादेवी भी थीं। अस्वस्थ होते हुए भी आप सम्मेलन में इसलिए जा रही थीं कि आप सीमा-प्रान्त की रहनेवाली हैं और उस काले सर्कूलर के विरोध में अपने उद्गार प्रकट करने जा रही थीं जिसको जारी करके वहाँ की सरकार ने वहाँ की कन्याओं को हिन्दी पढ़ने के उनके जन्मसिद्ध अधिकार से वञ्चित कर दिया है। जयचन्द्र जी काफ़ी गम्भीर आदमी हैं। पर रेल के कर्मचारियों से आपने सपत्नीक होने के कारण एक मीठा विनोद किया। यह पूछे जाने पर कि क्या आपके पास मेल का टिकट है, आपने उत्तर दिया—'मेल और फ़ीमेल' दोनों का।

यहाँ हमारी 'वीणा'-सम्पादक श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर' से भेंट हुई। 'कुसुमाकर' जी लिपि-सुधार, शिवाबावनी के संशोधन आदि के सम्बन्ध में कुछ असन्तोष लिये मोटर-लारी से नागपुर जा रहे थे। वे हम लोगों के साथ होटल में खाने बैठे, पर लारीवाले ने हार्न बजा बजा कर उन्हें परेशान कर दिया और वे बिना भर-पेट खाये ही उठकर चले गये।

नागपुर-मेल में सवार होते ही बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन और पण्डित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल सम्मेलन की नियमावली सुधारने में लग गये और हम लोग आपस में विविध विषयों पर पण्डित गांगेय नरोत्तम शास्त्री के व्याख्यानों



श्री कन्हैयालाल मुंशी (संयोजक भारतीय साहित्य-परिषद्)



काका कालेलकर (संयोजक लिपिसुधारसमिति)



श्रीयुत जयचन्द्र विद्यालङ्कार (सभापति इतिहास-परिषद्)

का आनन्द लेने लगे। ज्यों-ज्यों नागपुर क़रीब आता गया, रेल की लाइन के दोनों ओर संतरों के बाग़ दिखाई पड़ने लगे और छोटे स्टेशनों पर जब गाड़ी खड़ी होती, छोटे-छोटे बालक अपने बग़ीचों से संतरे लेकर आते और पैसे के पाँच-पाँच तक बेच जाते। हम सोच रहे थे कि स्वागत-समिति हमें ख़ूब संतरे खिलायेगी, पर उसने हमें एक ऐसी जगह ठहराया जहाँ ढूँढ़ने से भी मुश्किल से संतरे मिलते थे।

सम्मेलन के पंडाल के पास ही एग्रीकल्चरल कालेज के बोर्डिंग हाउस में प्रतिनिधियों के ठहरने की व्यवस्था की गई थी। यह इमारत दूर तक फैली हुई और बहुत बड़ी थी। जितने प्रतिनिधि नहीं गये थे, उतने इसमें कमरे थे और प्रत्येक कमरे में एक पलँग, एक टेबुल, एक अलमारी और एक बिजली की बत्ती थी। आगन्तुकों से स्वयं-सेवक लोग कहते—"अपने मन का कमरा पसन्द कर लीजिए?" और इस प्रश्न के उत्तर में हमने बहुत-से लोगों को इस इमारत के कमरों के जंगल में भटकते और खो जाते भी देखा। कुछ लोगों ने धोखा भी खाया, जैसे मुंशी प्रेमचन्द जी ने। इस इमारत का प्रवेश-द्वार दो-मंज़िला था और वहाँ ऊपर भी दो-एक कमरे और एक बरामदा था। प्रेमचन्द जी ने ऊपर ही एक कमरा चुना।

यह कमरा उन्होंने क्या सोचकर चुना था, यह तो वे ही जानें, पर सवेरे जब हम खुले और ठंडे अहाते में क़तार की क़तार पड़े पलँगों से आँख मलते हुए उठते और प्रेमचन्द जी को गर्म बरामदे से हसरत-भरी निगाह से नीचे की ओर झाँकते हुए देखते तब हमें दुःख होता कि वे व्यर्थ ऊपर पड़े कष्ट सह रहे हैं। तपते दोपहर में उनका कष्ट कितना बढ़ जाता रहा होगा, इसकी पाठक स्वयं कल्पना कर सकते हैं।

उसी दिन शाम को आठ बजे स्थायी समिति की बैठक हुई, जिसमें महात्मा गांधी भी सम्मिलित होने आये। इस समिति में सम्मेलन की नियमावली पर विचार होना था, पर उसका कुछ कार्य बाक़ी था इसलिए उस पर विचार करना दूसरे दिन के लिए टाल दिया गया और छोटे-मोटे प्रस्तावों पर विचार करके स्थायी समिति भङ्ग हो गई।

दूसरे दिन सवेरे आठ बजे कनवोकेशन-हाल में भारतीय साहित्य-परिषद् का महात्मा गांधी के सभापतित्व में अधिवेशन आरम्भ हुआ।



श्रीयुत नरदेव शास्त्री (सभापति दर्शनपरिषद्)



श्रीमती कमला बाई किबे



श्रीयुत सीताराम सेकसरिया (महिला-पारितोषिक के प्रदाता)

इस संस्था का सूत्रपात इन्दौर में ही हो गया था, पर यहाँ हमें यह कुछ विकसित रूप में दिखाई पड़ा। इसके संयोजक गुजराती के प्रसिद्ध गल्पकार और विद्वान् श्रीयुत कन्हैयालाल मुंशी ने भारत की विभिन्न भाषाओं के अनेक साहित्यकारों को आमंत्रित किया था। परन्तु हिन्दीवालों के सिवा अन्य भाषा-भाषी इसमें बहुत कम दिखाई दिये। भारत की विभिन्न भाषाओं के साहित्यकारों को सम्पर्क में लाने का यह उद्योग बहुत पहले आरम्भ हो जाना चाहिए था। पर ख़ैर अब भी बहुत देर नहीं हुई है। हमें आशा है कि यह संस्था दिन-पर-दिन भारत के साहित्यकारों को अपनी ओर आकर्षित करती हुई उन्नति करती जायगी।

भारतीय साहित्य-परिषद् में हिन्दी और हिन्दुस्तानी को लेकर घंटों बहस चली। इस संस्था की सब कार्यवाही राष्ट्रभाषा के माध्यम-द्वारा होगी। पर राष्ट्रभाषा का नाम क्या हो? हिन्दी हो या हिन्दुस्तानी, यह प्रश्न तय न हो सका, इसलिए दोनों नाम रक्खे गये। स्वागताध्यक्ष के आसन से काका कालेलकर ने जो भाषण किया उसमें आपने यह कहा कि "पंडित जवाहरलाल जी जो उम्दा हिन्दी बोलते हैं वह आप लोगों के लिए आम-फ़हम होगी। हमारे लिए तो वह भी दुर्बोध हिन्दी है।" काका साहब का तात्पर्य यह था कि हिन्दी और भी आसान बनाई जाय। परन्तु स्वयं काका साहब ने आसान हिन्दी का कोई उदाहरण अपने भाषण में नहीं दिया। उदाहरण के लिए आपके इस वाक्य पर ध्यान दीजिए—"हमें बहु-भाषी लेखक, वक्ता, अध्यापक और वृत्त-विवेचक (पत्रकार) तैयार करने होंगे।" काका साहब ने यहाँ पत्रकार के लिए वृत्त-विवेचक एक नये शब्द की वृद्धि की है। मैंने श्री महादेव देसाई का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया और उन्होंने स्वीकार किया कि काका साहब का भाषण आवश्यकता से अधिक संस्कृत-मिश्रित है। सभापति के आसन से इस अधिवेशन में महात्मा गांधी ने जो भाषण किया उसकी निम्न पंक्तियाँ प्रत्येक भाषा के साहित्यकार को बिना अपनी ओर आकर्षित किये न रहेंगी—

"यदि हम श्रीनगर से लेकर कन्याकुमारी तक और



श्रीमती रामकुमारी चौहान, जिन्हें इस वर्ष सेकसरिया महिला-पारितोषिक प्राप्त हुआ है।



स्वामी केशवानन्द, साहित्यसदन अबोहर के प्राण

कराची से लेकर डिब्रूगढ़ तक जो प्रदेश है उसे एक देश मानते हैं और उसके लोगों को एक प्रजा समझते हैं तो उस प्रदेश के प्रत्येक भाग के साहित्यकार, भाषाशास्त्री इत्यादि आपस में क्यों न मिलें और भिन्न भिन्न भाषाओं-द्वारा हिन्दुस्तान की यथायोग्य सेवा क्यों न करें ?

"गुजराती के साहित्यकार अँगरेज़ी-साहित्य के जानने की इच्छा करते हैं, और इस इच्छा की पूर्ति के लिए प्रयत्न भी करते हैं। भले ही करें, लेकिन इससे अधिक नहीं तो इतना ही परिश्रम बँगला, तामिल, मलियाली, तेलगू इत्यादि जानने के लिए क्यों न करें ?"

उसी दिन शाम को लगभग ८ बजे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन वन्दे मातरम् गान के साथ एक खुले पंडाल में आरम्भ हुआ। पहले श्रीयुत ब्रजलाल बियाणी ने अपना स्वागत-भाषण पढ़ा। आपका भाषण छोटा पर तत्त्वपूर्ण था। अपने भाषण में सबसे मार्के की बात जो आपने कही वह यह है—

"भाषा के साथ उसकी लिपि का विचार भी आवश्यक है। नागरी-लिपि भारत की लिपियों में सर्वश्रेष्ठ है। नागरी-लिपि के प्रचार की आवश्यकता है, तथापि आज भारत में रोमन और उर्दू-लिपियों के भी पक्षपाती हैं। रोमन-लिपि भारतीयता के साथ कम सम्बन्ध रखती है, अतः भारत में उसके विकास के लिए क्षेत्र नहीं है और होने की आवश्यकता भी नहीं है, पर उर्दू का स्थान अलग है। अतः आज हिन्दी के लिए नागरी तथा उर्दू दोनों लिपियों का स्थान होना चाहिए।"

सभापति बाबू राजेन्द्रप्रसाद का भाषण काफ़ी बड़ा और विद्वत्तापूर्ण था और उसकी सबसे बड़ी ख़ूबी यह थी कि उसमें साहित्यिक और ग़ैर साहित्यिक दोनों प्रकार के लोगों की रुचि के अनुकूल सामग्री थी। हिन्दी-भाषा का विकास कैसे आरम्भ हुआ और अभी वह कहाँ तक और किस प्रकार विकसित हो सकती है, आदि बातें राजेन्द्र बाबू ने अपने भाषण में बड़े सुन्दर ढङ्ग से बताईं। पर जहाँ हिन्दी को सरल बनाने और उसके प्रचार पर आपने ज़ोर दिया, वहीं आपने यह भी स्वीकार किया कि हमारी राष्ट्रभाषा



श्रीयुत प्रयागदत्त शुक्ल (संयुक्त मंत्री - स्वागतसमिति)



श्रीरामनिवासजी गोएनका (अध्यक्ष भोजनसमिति)

वास्तव में राष्ट्रभाषा तभी हो सकती है जब उसका साहित्य भी उच्च कोटि का हो। आपके भाषण का एक महत्त्वपूर्ण अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

"हम हिन्दी-भाषियों का सौभाग्य है कि हिन्दी राष्ट्रभाषा मानी जाती है। साथ ही यही बात हम पर कर्तव्य का एक बहुत बड़ा बोझा भी लादती है। क्या हम हिन्दी को इस योग्य न बना देंगे कि इसका दावा केवल हिन्दी-भाषियों की संख्या पर ही अवलम्बित न रहकर अपने साहित्य के कारण भी यह सर्वमान्य हो जाय ? संख्या घटती-बढ़ती रहेगी, पर साहित्य के अमूल्य रत्न सदा के लिए अमूल्य होते हैं। उनका बाज़ार में चढ़ाव-उतार नहीं हुआ करता और न अर्थशास्त्र के वे नियम ही लागू होते हैं जो बहुतायत के कारण किसी वस्तु का दाम घटा दिया करते हैं। हम हिन्दी-प्रचार में अपना कर्तव्य-पालन करें और साथ ही हिन्दी का वह अमूल्य और स्थायी साहित्य भी निर्माण करें जो इसे राष्ट्रभाषा का पद देवे। सम्मेलन तभी सफल होगा जब इन दोनों अंगों को पूर्ण करने में वह पूरी सफलता पावेगा, और वह सफलता हमारे संकल्प और निष्ठा पर ही निर्भर है।"

शिवाबावनी को लेकर विषय-निर्वाचिनी समिति और खुले अधिवेशन में घंटों बहसें हुईं! इस विवादग्रस्त विषय पर विचार करने के अतिरिक्त नागपुर-सम्मेलन ने कई उपयोगी प्रस्ताव पास किये जिनमें एक प्रयाग में बनकर तैयार हुए संग्रहालय-भवन में देश में बिखरी पड़ी हिन्दी की निधियों को लाकर सुरक्षित करने के सम्बन्ध में भी है। यह वास्तव में एक ऐसा विषय है जिसकी ओर प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी का ध्यान जाना चाहिए।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के साथ नागपुर में दर्शन, साहित्य, विज्ञान और इतिहास की परिषदें भी हुईं। इन परिषदों में भी उपस्थिति अच्छी रही और बहुत-सी काम की बातें हो गईं। दर्शन-परिषद् के सभापति श्री नरदेव-शास्त्री थे। आपका भाषण बहुत गम्भीर था। इतिहास-परिषद् के सभापति श्रीजयचन्द्र विद्यालङ्कार के भाषण का ज़िक्र हम ऊपर कर आये हैं। विज्ञान-परिषद्

फा. ८



श्री नंदकिशोर चौरसिया (प्रचारमंत्री स्वागतसमिति)

में हम उपस्थित नहीं हो सके। साहित्य-परिषद् के सभापति श्रीयुत बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' थे। नवीन जी ने अपनी सभा-संचालन की योग्यता का इस परिषद् में बड़ा सुन्दर परिचय दिया। इस परिषद् में पढ़कर सुनाने के लिए जबलपुर के ब्योहार राजेन्द्रसिंह और अन्य कई सज्जन अपने निबन्ध लिखकर लाये थे। उपस्थित व्यक्तियों ने यह प्रस्ताव किया कि वे निबन्ध न पढ़े जायँ और दिलचस्प मौखिक भाषण हों। फलतः साहित्यकारों के मौखिक भाषण हुए। हमारी समझ में यह उचित नहीं हुआ। लोगों को निमंत्रित करके फिर उनसे निबन्ध न पढ़ने के लिए प्रार्थना करना इस निबन्ध-लेखन के कार्य को एक प्रकार से निरुत्साहित करना है। ख़ैर, उसके अभाव में जो भाषण हुए वे अत्यन्त सुन्दर हुए और साहित्य का मज़ा आ गया। श्रीमती कमलाबाई किबे का भाषण जितना स्वाभाविक था उतना ही मज़ेदार। पंडित माखनलाल चतुर्वेदी के भाषण का कहना ही क्या! वे इतना सुन्दर बोलते हैं कि श्रोता का हृदय तरंगित हो उठता है।

कवि-सम्मेलन के भी सभापति नवीन जी ही थे। यह कवि-सम्मेलन ११ बजे रात को उस समय आरम्भ हुआ जब सम्मेलन का अधिवेशन समाप्त हुआ था और लोग थक गये थे। पर कुछ कवितायें इतनी सुन्दर पढ़ी गई और नवीन जी ने इसका संचालन इतनी सुन्दरता से किया कि यह सम्मेलन सबेरे ५ बजे तक होता रहा और बाबू राजेन्द्रप्रसाद और बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन आदि गण्यमान्य व्यक्ति भी लगभग साढ़े तीन बजे तक बैठे रहे। बाबू भगवतीचरण वर्मा के हाथ मैदान रहा। आपने जो कविता पढ़ी उसका प्रभाव सबसे अधिक पड़ा। पंडित माखनलाल चतुर्वेदी ने अपने जेल-जीवन की एक रात का जिसमें किसी कोकिल की तान ने उन्हें बेचैन कर दिया था, बड़ा सुन्दर वर्णन किया। श्रीयुत फ़ातमी, श्रीमुकुटधर और स्वयं श्रीयुत नवीन जी ने जो कवितायें पढ़ीं वे ऐसी थीं कि उनके लिए लोगों को सबेरे तक जागना अखरा नहीं। नवीन जी ने अपने भाषण में आधुनिक कविता की विभिन्न धाराओं का बड़े ज़ोरदार शब्दों में समर्थन किया।

राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरू की उपस्थिति सम्मेलन के इस अधिवेशन के लिए एक ख़ास बात थी। पंडित जी ने बाक़ायदा प्रतिनिधि बनकर सम्मेलन के कार्यों में भाग लिया और दूसरे दिन लगभग साढ़े ग्यारह बजे रात को आपने एक अत्यन्त ओजपूर्ण प्रभावशाली भाषण किया। आपने ख़ास तौर से हिंदी के लेखकों को साहित्य-निर्माण के सम्बन्ध में बहुत-सी ज्ञातव्य बातें बताईं।

इस वर्ष ५००) का सेकसरिया महिला-पारितोषिक श्रीमती रामकुमारी चौहान को उनकी 'निःश्वास' नामक कृति पर प्रदान किया गया। श्रीमती रामकुमारी चौहान सम्मेलन में उपस्थित थीं। पुरस्कार पाने के बाद आपने एक कविता पढ़ी। २५१) का श्री मानसिंह-पुरस्कार 'रक्षा-बन्धन' के रचयिता श्री हरिकृष्ण प्रेमी को दिया गया। १,२००) का मंगलाप्रसाद-पारितोषिक आधा आधा पंडित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल और श्री रामदास गौड़ में बाँटा जानेवाला था। पर सभापति ने यह कहकर कि यह पुरस्कार नियम के अनुसार एक ही व्यक्ति को दिया जाना चाहिए उसे रोक दिया। सभापति ने यह निर्णय गौड़ जी के असन्तोष प्रकट करने पर किया था। सम्मेलन के इतिहास में यह पहला अवसर है जब मंगलाप्रसाद-समिति का निर्णय इस प्रकार अनियमित ठहराया गया हो।

इस सम्मेलन में भोजन के लिए प्रतिनिधियों को प्रतिबार ।) का टिकट लेना पड़ता था। भोजन स्वच्छ और सुस्वादु होता था और इस सिलसिले में वर्धा की कन्या-आश्रम की छात्राओं को धन्यवाद और बधाई देना सर्वथा उचित है। उन्होंने जिस परिश्रम और उत्साह से प्रतिनिधियों को भोजन पहुँचाया उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

अन्य आगन्तुकों में से जिन्होंने हमें अपनी ओर विशेषरूप से आकर्षित किया, कुछ के नाम इस प्रकार हैं— पंडित दुलारेलाल भार्गव, पंडित रामनरेश त्रिपाठी, पंडित हरिहर शर्मा और श्री हृषिकेश शर्मा, पंडित हरिभाऊ उपाध्याय, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल और श्रीयुत अज्ञेय जी। श्रीयुत अज्ञेय जी को छोड़कर शेष व्यक्तियों से 'सरस्वती' के पाठक परिचित ही हैं। अज्ञेय जी सौम्य स्वभाव के 'अपने ही चिन्तन में लीन' रहनेवाले नवयुवक साहित्यकार हैं। विविध अधिवेशनों में पहुँचने पर आप अपने मित्रों की भाँति मंच पर जाकर नेताओं के बीच में बैठने का प्रयत्न न करके सर्वसाधारण में जहाँ रिक्त स्थान देखते वहीं बैठ जाते। बिहार के बाबू मथुराप्रसाद और श्री गंगा-शरणसिंह तथा अबोहर के स्वामी केशवानन्द के सहज और सरल स्वरूप को हम वर्षों याद रक्खेंगे।

लेख समाप्त करने से पूर्व स्वागत-समिति के प्रधान मंत्री श्री छगनलाल भारुका को धन्यवाद देना आवश्यक है। आपने हमें अपनी 'कार' पर नागपुर शहर और उसके आस-पास के सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों की सैर कराई।

टंडन जी की कृपा से मुझे श्री चिन्तामणिराव मोरेश्वर ताँबे का दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ये झाँसी की रानी महारानी लक्ष्मीबाई के सगे छोटे भाई हैं। इस समय इनकी अवस्था ८२ वर्ष की है। जब रानी लक्ष्मीबाई मरीं तब ये २ वर्ष के थे। इन्होंने अपनी मा के मुख से बहन की वीरता की कहानियाँ सुनी थीं और उनका वर्णन करते हुए इनकी आँखें चमक उठती थीं। इनका परिवार अब भी सम्पन्न प्रतीत होता है। एक विशाल कमरे में अन्य ऐतिहासिक चित्रों के साथ रानी लक्ष्मीबाई का एक चित्र है, जो असली चित्र पर से बनाया गया है। वे बैंगनी साड़ी जिसमें सुनहरे बेलबूटे हैं, और नीले रंग का झूला पहने हैं। नथ में मोती जड़े हैं और गले में मोतियों और रत्नों की अनेक मालायें पड़ी हैं। मस्तक पर बिन्दी और गाल और ठुड्डी पर गोदना है। उनके चेहरे से अपार सौन्दर्य और तेज झलकता है।

मेज़ पर एक कटार पड़ी थी, जो रानी की छोटी बहन की शादी में इनके पिता ने दामाद को दी थी। रानी का चित्र और यह कटार देखकर श्रद्धा से हमारा मस्तक नत हो गया। इनके पुत्र श्री गोविन्द चिन्तामणि ताँबे हिन्दी और मराठी में महारानी लक्ष्मीबाई का एक प्रामाणिक जीवन-चरित लिख रहे हैं जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

अब जब हम नागपुर-सम्मेलन से लौट कर आये हैं, लोग पूछते हैं कि हम नागपुर में क्या कर आये। अनेक लोग यह कह रहे हैं कि सम्मेलन कांग्रेसवालों के हाथों में चला गया और साहित्यिक पीछे पड़ गये। ये दोनों बातें ग़लत हैं। कांग्रेस के सामने समस्त भारत के लिए एक भाषा और एक लिपि का प्रश्न है। ऐसी भाषा एक-मात्र हिन्दी और लिपि देवनागरी ही हो सकती है। यही कारण है कि कांग्रेस के कर्णधारों का ध्यान हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर गया है। उनकी यह इच्छा है कि हिन्दी में राष्ट्रभाषा के गौरव के अनुरूप साहित्यकार हों। राष्ट्रभाषा की मर्यादा को क़ायम रखने के लिए यह आवश्यक है कि अब हिन्दी के नवयुवक साहित्यकार आगे आवें। वे विश्व-साहित्य और अपने प्रान्तीय साहित्यों का अध्ययन करें। उठते हुए भारतीय राष्ट्र के स्वरूप का अनुभव करें, उसका सन्देश सुनें और उसे अपनी वाणी-द्वारा व्यक्त करें। जब हिन्दी में इस प्रकार का प्रयत्न आरम्भ हो जायगा तब हमारे साहित्यकारों को यह शिकायत न रह जायगी कि हम पीछे छूटे जा रहे हैं।

बापू के प्रति



लेखक, श्रीयुत सुमित्रानन्दन पन्त

तुम मांस-हीन, तुम रक्त-हीन,
हे अस्थि-शेष ! तुम अस्थि-हीन,
तुम शुद्ध-बुद्ध आत्मा केवल,
हे चिर पुराण ! हे चिर नवीन !
तुम पूर्ण इकाई जीवन की,
जिसमें असार भव-शून्य लीन;
आधार अमर, होगी जिस पर
भावी की संस्कृति समासीन !

तुम मांस, तुम्हीं हो रक्त-अस्थि,—
निर्मित जिनसे नव-युग का तन,
तुम धन्य ! तुम्हारा निःस्व-त्याग
है विश्व-भोग का वर-साधन !
इस भस्म-काम तन की रज से
जग पूर्ण-काम नव जग-जीवन,
बीनेगा सत्य-अहिंसा के
ताने-बानों से मानवपन !

सदियों का दैन्य-तमिस्र तूम,
धुन तुमने कात प्रकाश-सूत,
हे नग्न ! नग्न-पशुता ढँक दी
बुन नव-संस्कृत मनुजत्व पूत !
जग पीड़ित छूतों से प्रभूत,
छू अमृत-स्पर्श से, हे अछूत !
तुमने पावनकर, मुक्त किये
मृत-संस्कृतियों के विकृत भूत !

सुख-भोग खोजने आते सब,
आये तुम करने सत्य-खोज,
जग की मिट्टी के पुतले जन,
तुम आत्मा के, मन के मनोज !
जड़ता, हिंसा, स्पर्धा में भर
चेतना, अहिंसा, नम्र-ओज,
पशुता का पङ्कज बना दिया
तुमने मानवता का सरोज !

सहयोग सिखा शासित-जन को
शासन का दुर्वह हरा भार,
होकर निरस्त्र, सत्याग्रह से
रोका मिथ्या का बल-प्रहार;
बहु भेद-विग्रहों में खोई
ली जीर्ण-जाति क्षय से उबार,
तुमने प्रकाश को कह प्रकाश,
औ' अन्धकार को अन्धकार !

पशु-बल की कारा से जग को
दिखलाई आत्मा की विमुक्ति,
विद्वेष-घृणा से लड़ने को
सिखलाई दुर्जय प्रेम-युक्ति;
वर क्रान्ति-प्रसूति से की कृतार्थ
तुमने विचार-परिणीत उक्ति,
विश्वानुरक्त हे अनासक्त !
सर्वस्व-त्याग को बना भुक्ति।

उर के चरखे में कात सूक्ष्म
युग-युग का विषय-जनित विषाद,
गुंजित कर दिया गगन जग का
भर तुमने आत्मा का निनाद !
रँग-रँग खद्दर के सूत्रों में
नव जीवन-आशा, स्पृहा, ह्लाद,
मानवी-कला के सूत्रधार !
हर दिया यन्त्र-कौशल-प्रवाद !

जड़वाद-जर्जरित जग में तुम
अवतरित हुए आत्मा महान,
यन्त्राभिभूत-युग में करने
मानव-जीवन का परित्राण !
बहु छाया-बिम्बों में खोया
पाने व्यक्तित्व प्रकाशवान,
फिर रक्त-मांस-प्रतिमाओं में
फूँकने सत्य से अमर प्राण !

संसार छोड़कर ग्रहण किया
नर-जीवन का परमार्थ-सार,
अपवाद बने, मानवता के
ध्रुव-नियमों का करने प्रचार;
हो सार्वजनिकता जयी, अजित !
तुमने निजत्व निज दिया हार,
लौकिकता को जीवित रखने
तुम हुए अलौकिक, हे उदार !

मंगल-शशि-लोलुप मानव थे
विस्मित ब्रह्माण्ड-परिधि विलोक,
तुम केन्द्र खोजने आये तब
सबमें व्यापक, गत-राग-शोक;
पशु-पक्षी-पुष्पों से प्रेरित
उद्दाम-काम जन-क्रान्ति रोक,
जीवन-इच्छा को आत्मा के
वश में रख, शासित किये लोक !

था व्याप्त दिशावधि-ध्वान्त, भ्रान्त—
इतिहास विश्व-उद्भव प्रमाण,
बहु हेतु, बुद्धि, जड़, वस्तुवाद
मानव-संस्कृति के बने प्राण;
थे राष्ट्र, अर्थ, जन, साम्यवाद
छल-सभ्य जगत के शिष्ट-मान
भू पर रहते थे मनुज नहीं,
—बहु रूढ़ि-रीति प्रेतों-समान :—

तुम विश्व-मञ्च पर हुए उदित
बन जग-जीवन के सूत्रधार,
पट पर पट उठा दिये मन से,
कर नर-चरित्र का नवोद्धार;
आत्मा को विषयाधार बना,
दिशि-पल के दृश्यों को सँवार
गा-गा—एकोऽहं बहु स्याम,
हर लिये भेद, भव-भीति-भार !

ये राज्य, प्रजा, जन, साम्य-तन्त्र
शासन-चालन के भिन्न यान,
मानस, मानुपी, विकास शास्त्र
हैं तुलनात्मक, सापेक्ष ज्ञान;
भौतिक विज्ञानों की प्रसूति
जीवन-उपकरण-चयन प्रधान,
मथ सूक्ष्म-स्थूल जग, बोले तुम—
मानव मानवता का विधान !

एकता इष्ट, निर्देश किया,—
जग खोज रहा था जब समता,
अन्तर-शासन चिर राम-राज्य,
औ' बाह्य आत्महन अक्षमता:
हों कर्म-निरत जन, राग-विरत,
रति-विरति-व्यतिक्रम भ्रम-ममता,
प्रतिक्रिया-क्रिया साधन-अवयव,
है सत्य सिद्ध, गति-यति-क्षमता ।

साम्राज्यवाद था कंस, वन्दिनी
मानवता पशु-बलाक्रान्त,
शृङ्खला दासता, प्रहरी बहु
निर्मम शासन-पद, शक्ति-भ्रान्त;
कारा-गृह में दे दिव्य-जन्म
मानव-आत्मा को मुक्त, कान्त,
जन-शोषण की बढ़ती यमुना
तुमने की नत-पद-प्रणत, शान्त !

कारा थी संस्कृति विगत; भित्ति बहु
धर्म-जाति-गत रूप-नाम,
बन्दी जग-जीवन, भू विभक्त,
विज्ञान-मूढ़ जन प्रकृति-काम;
आये तुम मुक्त-पुरुष, कहने,—
मिथ्या जड़-बन्धन, सत्य राम !
नानृतं जयति सत्यं, मा भैः !
जय ज्ञान-ज्योति ! तुमको प्रणाम !

जीवन

जीवन काल के बहते दरिया के वक्ष पर खिलनेवाला फूल है, कमल की पंखुड़ियों पर चमकनेवाला शबनम का क़तरा है, सान्ध्य गगन को दीप्त करनेवाला तारक-चूर है और.........रंगे शफ़क़ है जो अंशुमाली के उदय होते ही मिट जाता है।

जीवन वायु का उच्छ्वास है, खिज़ाँ की पीली पत्ती है, पञ्चतत्त्वों का क्रम से संगठन है और एक मधुर स्वप्न है जिसमें हर चीज़ रंगीन दिखती है। जीवन.........पवन से मुक्त हुई एक लहर है, जो खमखाई आग भरी हिलोरों के साथ समुद्र के गर्भ में समा जाती है। जीवन किसी घायल पक्षी के बाज़ू से गिरा हुआ मायूसपंख है जो हवा के वेग में इधर-उधर उड़ता रहता है।

जीवन काल के बहते दरिया के वक्ष पर खिलनेवाला फूल है।

—दिनेशनंदिनी

परिवर्तन

लेखक, श्रीयुत दुर्गाप्रसाद भास्कर, एम० ए०, एल-एल० बी०

स्नोव्यू, डलहौज़ी
१४-३-३६

भाई नरेश,

तुम्हारा पत्र मिला। प्रभा ने जो कुछ तुम्हें लिखा है वह सत्य है। मैं अपने जीवन-पथ से भटक गया हूँ। शोक ! जिस रमेश पर तुम्हें इतना मान था वह परख में पूरा नहीं उतरा। उसकी संयम-नौका वायु के पहले ही थपेड़े से उलट गई। कैसे ? उसकी करुण कथा तुमसे कहता हूँ।

तुम जानते हो जब से माता जी का देहावसान हुआ है तब से प्रभा का स्वास्थ्य कुछ ख़राब रहता है। मैं पढ़ाई में मशग़ूल रहने के कारण उसका पूरा ख़याल न रख सका। इसलिए परीक्षा से फ़ारिग़ होते ही मैं उसे यहाँ ले आया।

यहाँ हमारे पड़ोस में बा०—रहते हैं, बड़े ही सज्जन पुरुष हैं। थोड़े ही दिनों में वे मुझसे अपने छोटे भाई का-सा स्नेह करने लगे। उनके परिवार में तीन प्राणी हैं। वे, उनकी धर्मपत्नी सुशीला और उनका एक दुध-मुँहा बच्चा शशि। बाबू जी की यह दूसरी शादी है। सुशीला और प्रभा समवयस्क-सी जान पड़ती हैं। उनकी आपस में बड़ी उनस हो गई है, और वह बच्चा तो हम सबके लिए खिलौना बन गया है।

बा०—यहाँ के फ़ौजी दफ़्तर में हेड क्लर्क हैं। दिन भर उन्हें आफ़िस में बिताना पड़ता है। इसलिए प्रभा और सुशीला दोनों दिन के अधिक भाग में इकट्ठी ही रहने लगीं। मुझे भी इसमें सुभीता था। प्रभा का दिल बहला रहने से मुझे अपने काम के लिए पूरा अवकाश मिल जाता था।

तुम जानते हो, मैं स्वभाव से ही स्त्रियों के सामने ज़रा सकुचाता हूँ। इसलिए हम दोनों परिवारों में इतनी घनिष्ठता होते हुए भी व्यावहारिक शिष्टाचार के सिवा सुशीला से मुझे बोलते भी झिझक लगती थी, पर कुछ दिनों के उपरान्त एक ऐसी घटना हो गई जिससे मेरी काया पलट गई।

एक दिन मैं अपने कमरे में बैठा एक पुस्तक पढ़ रहा था जब एकाएक शशि खिलखिलाता हुआ मेरे कमरे में चला आया और मेरी गोद में छिपने का उपक्रम करने लगा। सुशीला उसे पकड़ने के लिए उसके पीछे आई, पर मुझे देखकर ठिठक गई। उस अवस्था में अनायास ही मेरी दृष्टि उसके सुन्दर मुख पर पड़ी और वहीं रुक गई। मैं बहुत यत्न करने पर भी अपनी दृष्टि को उसके चेहरे से न हटा सका।

सुशीला के मुँह पर शर्म की लाली दौड़ गई। वह सम्भ्रान्त-सी वहाँ खड़ी की खड़ी रह गई। उसकी यह विचित्र दशा देखकर मैं बड़े प्रयत्न से अपने आपको सँभालते हुए उठा और बिना कुछ कहे शशि को उसकी गोद में दे दिया। सुशीला बच्चे को लेकर विद्युत् गति से कमरे के बाहर चली गई, पर मेरे मन की विचित्र अवस्था हुई। न जाने क्यों उसके प्रति मेरे विचारों ने एक विलक्षण रूप धारण कर लिया। हृदय में एक अननुभूत भाव ने प्रवेश किया। पता नहीं, उसके रूप में उस समय क्या मोहिनी, क्या वशीकरण, कैसा आकर्षण था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे हृदय और शरीर की कोई बलवती शक्ति मुझे सुशीला की ओर आकर्षित कर रही है। मैंने इन उठते हुए मनोभावों को अपने आगे पड़ी हुई पुस्तक के अध्ययन में डुबाना चाहा; पर सफल-मनोरथ न हुआ। हारकर मैं उठ बैठा और बाहर घूमने चला गया। पर मैं जिधर जाता था, विचारों का हुजूम मेरे साथ था। बहुत प्रयत्न करने पर भी मैं उनसे छुटकारा न पा सका।

उस दिन रात को मुझे नींद न आई। मैं बिछौने पर पड़ा हुआ अर्द्ध चेतनावस्था में स्वप्न-संसार में विचरण करने लगा। कभी देखता कि किसी निराले सरोवर के तट पर हम दोनों बच्चों की तरह बाँह में बाँह डाले घूम रहे हैं। कभी देखता कि सुशीला एक घने वृक्ष की छाया में सो रही है और मैं मन्त्रमुग्ध-सा उसके सुन्दर मुख को देखने में तल्लीन हूँ। एक बार ऐसा मालूम हुआ जैसे वह देवबाला-सी एक ऊँचे पर्वत-शिखर पर बैठी है और मुझे अपने पास आने को कहती है। मैं उसके पास पहुँचने का भगीरथ प्रयत्न करता हूँ, पर उस गिरिशिखर पर पहुँचना मेरे सामर्थ्य से बाहर था। मैं हारकर एक शिला-खण्ड पर बैठ जाता हूँ। तब वह मुस्कराती हुई स्वयं ही नीचे उतर कर मेरे पास आकर बैठ जाती है। फिर एकाएक वह शिलाखण्ड ग़ायब हो जाता है और हम दोनों एक अथाह खड्ड में गिर पड़ते हैं। एकाएक मैं बिछौने पर से उछल कर खड़ा हो गया और सहमी हुई दृष्टि से अपने चारों ओर देखने लगा। सवेरा हो चुका था। मैं अपने उद्विग्न मन को शान्त करने के लिए घर से कुछ दूर एक जल-प्रपात की ओर चल पड़ा।

सूर्य अभी बादलों के अन्तर्हित था। सवेरे का शीतल मन्द वायु अपने झकोरों से निर्जीव को भी सजीव बनाया चाहता था। पक्षी चहक रहे थे। मैं आत्मविस्मृत-सा चलता हुआ जलप्रपात पर पहुँचा और एक शिलाखण्ड पर बैठ गया। झरने की पतली धार अविराम गति से नीचे गिरकर एक मनोहर नाद पैदा कर रही थी। बालरवि की सुनहरी किरणें उसकी स्वच्छ धारा पर झलमला रही थीं। कुछ दूर एक छोटा-सा मैदान था, जिस पर हरी घास की मखमल बिछी थी। पहाड़ की ऊँची ऊँची चोटियाँ सब्ज़ साड़ी ओढ़े खड़ी थीं। सारा दृश्य एक अपूर्व चित्र था।

फिर एकाएक उठते हुए बादलों से घाटियाँ भर गईं। प्रकृति का वह मनोहर रंगीन चित्र मेरी आँखों से ओझल होने लगा। चारों तरफ़ कुहरे का एक सफ़ेद समुद्र-सा दिखाई पड़ने लगा। मेरे मन में अनायास ही यह विचार उठा, क्या इन उठते हुए बादलों की तरह सुशीला ने मेरे सुखी जीवन को एकाएक आच्छादित नहीं कर दिया?... तीन दिन मैं रोज़ खोया हुआ-सा सवेरे उठकर बिना प्रयोजन उस झरने पर चला जाता और साँझ को घर लौट आता। प्रभा को मेरे इस व्यवहार ने अचम्भे में डाल दिया। बहुत प्रयत्न करने पर भी वह मेरे मन की व्यथा का हाल न जान सकी। इन तीन दिनों में मैंने सुशीला को अपने मन से निकाल बाहर करने का भगीरथ प्रयत्न किया। सौ-सौ युक्तियों से अपने मन को समझाया, पर हज़ार कोशिश करने पर भी मैं सफल-मनोरथ न हो सका।

झरने की धारा कुछ दूर नीचे जाकर एक छोटे-से ताल में जा मिलती थी। ताल का स्वच्छ निर्मल जल किसी तपस्वी के चित्त की तरह शान्त स्थिर था। मैंने अपने उद्विग्न मन को उसके किनारे पर बैठकर शान्त करना चाहा। निर्मल जल में मछलियाँ इधर-उधर दौड़ रही थीं। कभी-कभी कोई बड़ी मछली तड़प कर ऊपर उठती और उसमें असंख्य जलरेखायें पैदा कर देती। कभी हवा का कोई प्रबल झोंका आकर अपने स्पर्श से उसके शान्त वक्षःस्थल को गुदगुदा कर उसमें छोटी-छोटी लहरें पैदा कर देता, जिस पर सूर्य की तिर्छी किरणें पड़ कर एक अनुपम दृश्य बनाने लगती थीं। मैं इस दृश्य के देखने में ऐसा तल्लीन था कि मुझे अपने शरीर की भी सुध-बुध न रही। सहसा मुझे जल में कोई अस्पष्ट मानव परछाईं-सी दिखाई दी। मैंने मुड़कर देखा। पता नहीं सुशीला कब से मेरे पीछे खड़ी थी। मैं सम्भ्रान्त-सा उठकर खड़ा हो गया। मेरा दिल ज़ोर से धड़कने लगा। कुछ देर तक शंकित भाव से आँखें नीची किये खड़ा रहा। फिर रुकते-रुकते अपनी आँखें ऊपर उठाकर सुशीला की ओर देखा। उसका सारा मुखमंडल आरक्त हो गया। मेरी आँखें स्वयं ही नीचे हो गईं। सुशीला ने भी सकुचाते हुए मेरी ओर देखा और सिर नीचा कर लिया। कुछ देर तक यही उपक्रम जारी रहा। हमारी आँखें ऊपर उठतीं, पर चार होते ही स्वयं नीचे हो जातीं।

एकाएक मेरे पैरों में गति हुई, मैंने आगे बढ़कर बेताबी से सुशीला का हाथ अपने हाथ में ले लिया। उसके स्पर्श मात्र से मेरा सारा शरीर सिहिर उठा। रग-रग में बिजली-सी दौड़ गई, पर उसी समय मेरे अपराधी हृदय ने मुझे

धिक्कारा। मैं घुटने टेक कर उसके पाँवों के पास बैठ गया और पश्चात्तापपूर्ण हृदय से कहा—"सुशीला, मेरा अपराध क्षमा करो, मैं अन्धा हो रहा था"।

सुशीला चुपचाप वहाँ खड़ी रही। उसके सुघर वक्षःस्थल का उतार-चढ़ाव उसके हृदय में मचे हुए आन्दोलन का पता दे रहा था। उसे चुप देखकर मैंने दुहरा कर कहा—"मुझसे भारी भूल हो गई है। मैं तुम्हारा अपराधी हूँ—जो कुछ दण्ड तुम देना चाहो मैं उसे सहर्ष सह लूँगा।" सुशीला प्यार से मेरा सिर सहलाने लगी। मैंने अपनी सहमी हुई आँखें ऊपर उठाईं। सुशीला की आँखें डबडबाई हुई थीं जैसे मेरी बेबसी को समझकर मुझसे कह रही हों—"इसमें तुम्हारा क्या अपराध है? मैं भी तो दोषी हूँ"। हम दोनों पश्चात्तापपूर्ण हृदय लिये हुए घर लौटे।

कुछ दिन और बीत गये। पर मेरे दिल को चैन न था। मैंने अब घर से बाहर निकलना बन्द कर दिया है कि कहीं सुशीला से साक्षात्कार न हो जाय। मैं चाहता हूँ कि उसे किसी तरह भूल जाऊँ, पर उसकी तसवीर मेरी मानसिक दृष्टि के सामने हर समय नाचती रहती है। मुझे अपने दायें-बायें, आगे-पीछे सब तरफ़ एक ही आकृति दिखाई देती है—सुशीला की। आठों पहर एक ही विचार मेरे दिल में चक्कर लगाता रहता है—उससे मिलने का। मैं अपने दिल को सौ-सौ युक्तियों से समझाता हूँ, पर नाकाम। अपने हृदय में इस बढ़ती हुई चाह को कुचल देना चाहता हूँ, पर यह मेरे बस की बात नहीं। मैं निरन्तर ईर्षा ज्वाला में जल रहा हूँ।

मित्र! मैं एक असहाय पक्षी-सा इस वेदना से तड़फ रहा हूँ, पर अपनी तड़फ को दूर करने का उपाय नहीं जानता।

व्यथित-हृदय

—रमेश

स्नोव्यू, डलहौज़ी

१९-३-३६

भाई नरेश,

जिस व्यथा का हाल मैंने तुम्हें अपने पिछले पत्र में लिखा था वह अब भयङ्कर रूप धारण कर मुझे विनाश

की ओर ले चली है। इसका क्या अन्त होगा मैं स्वयं नहीं जानता।

उस रोज़ बा०—सुशीला को साथ लिये मेरे कमरे में पहुँचे और सहज सरल स्वभाव से कहने लगे—"बस तुम्हें तो किताबों का रोग ही नहीं छोड़ता। कुछ घूम-फिर भी लिया करो। उठो, आज पार्क में चलें। सुशीला भी इन दिनों ज़रा सुस्त रहती है। उसका दिल भी बहल जायगा।"

सुशीला उस समय एक चित्र को देखने में तल्लीन होने का उपक्रम कर रही थी।

बा०—के इस निर्मल सरल व्यवहार को देखकर मेरे मन को गहरा आघात पहुँचा। मेरा सिर नदामत में झुक गया। हृदय में रह रहकर विचार उठने लगे—मैं कैसा पातकी हूँ। यह विश्वासघात! ऐसा अक्षम्य अपराध! एक ओर इतनी सज्जनता, दूसरी ओर ऐसी घोरतम नीचता! भगवान्, यह भी कैसा समय है?

"तुम चुप क्यों हो"? उन्होंने आग्रह से पूछा—"चलो उठो जल्दी करो"। मैंने सिरदर्द का बहाना किया, पर वे कब माननेवाले थे। मेरे कपड़े खूँटी पर से उतार लाये। छड़ी हाथ में देते हुए मुझे उठाने लगे। अधिक इनकार असंगत समझकर मैं भारी मन से उनके साथ हो लिया।

पार्क में पहुँचकर कुछ समय के लिए हम लोगों को छोड़कर वे किसी जड़ी की तलाश में चले गये। मैंने पहली बार अपनी दृष्टि ऊपर उठाकर सुशीला को देखा। उसका चेहरा निस्तेज हो रहा था, जैसे वह किसी आन्तरिक व्यथा से घुल रही हो। मेरे हृदय में शूल-सा उठा।

"सुशीला यह तुम्हें क्या हो गया है।" मैंने विकलता से पूछा। उसके मुर्झाये हुए मुँह पर हँसी की एक क्षीण रेखा-सी दिखाई दी। उसने कहा—"कुछ तो नहीं"। पता नहीं, इन तीन शब्दों के कहने के लिए उसको कितना प्रयत्न करना पड़ा था। मेरा हृदय टूक टूक हो गया। "सुशीला"! मैंने अपने उमड़ते हुए आँसुओं को रोकने का निष्फल प्रयास करते हुए कहा—"सुशीला"! मेरा गला भर आया। मैं और कुछ न कह सका। सुशीला ने अपनी आन्तरिक व्यथा को छिपाते हुए कहा—"समय को पह-

चाओ। इस तरह अधीर नहीं होना चाहिए। कभी कभी मिल लिया करो। इससे दिल कुछ हलका हो जाता है।"

उसके पश्चात् हम लोगों का तीन-चार बार साक्षात्कार हुआ। पर कभी ओस से भी किसी की प्यास बुझी है? तृष्णा अपना क़दम आगे आगे बढ़ाने लगी। हृदय में कई बार शतशः प्रतिज्ञायें कीं, पर मन को समझाना बड़ा कठिन काम है। मेरे पवित्र संकल्प पानी में उठती हुई उन लहरों के समान थे जो जितनी जल्दी उठती हैं उतनी जल्दी नष्ट हो जाती हैं—जिन्हें हवा का एक हलका-सा झोंका अस्त-व्यस्त कर देता है। एक दिन मैंने सुशीला को उस ताल पर एकान्त-मिलन की याचना की।

मैं अपराधी मन से निश्चित समय पर ताल की ओर चला। मेरा दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था, जैसे चोर चोरी करने जा रहा हो। सुशीला वहाँ पहले से मौजूद थी। उसे देखकर मेरा रोम रोम ख़ुशी से नाच उठा।

हम दोनों उस ताल के किनारे पर इधर-उधर टहलने लगे। बीच बीच में मैं दबी हुई ज़बान से कहता—"सुशीला"। वह अपनी मोटी मोटी आँखें ऊपर उठाती और फिर नीचे कर लेती।

पास ही एक लताकुंज था। मैंने प्यार से उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा—"चलो, वहाँ बैठें।" वह चुप-चाप मेरे साथ हो ली। मैंने पास से ही एक चौड़ा-सा पत्थर उठाकर उसके बैठने के लिए रख दिया। वह बिलकुल चुपचाप बैठी थी सिर से पाँव तक मोहिनी की तसवीर बनाये। मैंने विमोहित भाव से प्रेमपूर्वक पुकारा—"सुशीला"! उसने अपनी बड़ी बड़ी रसीली आँखें मेरी ओर घुमा दीं। उनमें वशीकरण था, वासनाओं का उन्माद था। मैं एकटक मुग्धभाव से उसका मुँह देखने लगा।

चन्द्रमा अपने पूरे यौवन पर था। पहाड़ों की हिमा-च्छादित चोटियों पर एक प्रकाश बरस रहा था। उस लता-वेष्ठित कुंज में चन्द्र-रश्मियाँ छन छन कर उसके सुन्दर मुख पर पड़ रही थीं। पहाड़ी झरना हृदय को उमड़ा देने-वाला प्रेम संगीत गा रहा था। ताल के उस पार की वनश्री अपूर्व थी। सारे का सारा दृश्य अनुपम था। जैसे प्रकृति ने उसे ऐसा बनाने के लिए अपने आपको लुटा दिया हो।

मैं तसवीर-सा बना कभी उस अनुपम दृश्य को देखता, कभी सुशीला के चन्द्रमुख को। उसकी आँखों में एक विचित्र प्रकार की प्रेमवासना झलकने लगी। मैंने सुशीला का हाथ अपने हाथ में ले लिया। उसके मुँह पर लालिमा दौड़ गई। मुझ पर एक बेसुधी-सी छाने लगी और मेरी आत्मा मूर्छित हो गई। लज्जा का बाँध टूट गया। धर्म-विचार ढीले पड़ गये। मैंने किसी उद्दाम वासना के वशीभूत होकर सुशीला को अपने भुजपाश में ले लिया।

सुशीला विद्युद्वेग से अपने आपको छुड़ाकर लता-कुंज से बाहर हो गई। उसकी साँस ज़ोर ज़ोर से चल रही थी। मेरे उन्माद का सारा नशा उतर गया। मैं अपराधी की भाँति एक ओर खड़ा हो गया। दिल चाहता था, यदि पृथ्वी फट जाय तो मैं उसमें अपना कलुषित मुँह लिये समा जाऊँ। आत्मग्लानि, लज्जा और पश्चात्ताप से मेरा सिर झुक गया। मनुष्य कितना दुर्बल है, कितना असमर्थ है—यह मैंने उस समय जाना। सुशीला ने पश्चात्ताप-पूर्ण वेदनामयी चितवन से मेरी ओर देखा और उसकी आँखों से दो मोती के आँसू चन्द्रमा की निखरी चाँदनी में गिर कर सदा के लिए मिट गये।

मैं विषाद और क्षोभ की मूर्ति बना घर लौटा। कमरे में दाख़िल होते ही प्रभा ने पूछा—"भैया! आप कहाँ थे? मैं कितनी देर से खड़ी आपका इन्तज़ार कर रही थी।"

मुझसे कोई उत्तर न बन पड़ा। "भैया"! प्रभा ने कुछ कहना चाहा, पर वह चुप हो गई और अपनी बड़ी बड़ी आँखों से मेरा दिल टटोलने लगी। मैं संकोच और लज्जा से गड़ा जा रहा था। मुझे ज्ञात था कि प्रभा मेरे व्यव-हार को संदिग्ध दृष्टि से देखती रही है। मैंने बड़े प्रयत्न से कहा—"योंही ज़रा घूमने गया था।" प्रभा ने मेरी ओर देखा, जैसे कह रही हो, मेरा मुँह न खुलवाओ, मुझसे कुछ छिपा नहीं है। मुझ पर घड़ों पानी पड़ गया।

मैंने कमरे का दरवाज़ा बन्द कर लिया और फूट फूट कर रोने लगा। मेरा अपराधी हृदय एक बार ईश्वर के चरणों में गिर कर दया और क्षमा की याचना करने लगा।

मित्रवर, जो भाव मेरे हृदय में यह सब कुछ लिखते हुए पैदा हो रहे हैं उन्हें मैं कैसे व्यक्त करूँ? मेरा रोम रोम मेरा तिरस्कार कर रहा है। अपने ही लिए मुझमें एक विरोधभाव-सा पैदा हो गया है। अपने इस गिरे हुए कार्य की कटु स्मृति सदा के लिए मेरे दिल में काँटे की तरह बनी रहेगी और सदैव मेरे जीवन-स्रोत को विषमय बनाती रहेगी।

स्नो-व्यू, डलहौज़ी

४. ४. ३६

मित्रवर!

आज मैं अपने प्रेम (?) के विशादमय अन्त की कहानी लिखता हूँ! यह मेरा अन्तिम पत्र होगा। ओह! यदि मैं जानता होता .... पर नहीं। इन सब बातों से अब क्या लाभ? उस दिन के बाद मैं तीन दिन तक घर से बाहर नहीं निकला। चौथे दिन सुशीला की एक चिट्ठी मिली। उसने मुझे अपने यहाँ पाँच मिनट के लिए बुलाया था। मैं कपड़े पहन कर घर से बाहर निकला। प्रभा ने मुझे सुशीला के घर जाते देखा, पर कुछ बोली नहीं। पिछले दिनों की मेरी अवस्था देखकर उसे कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई।

मैं सुशीला के कमरे में पहुँचा। वह एक आराम-कुर्सी पर पड़ी हुई मेरा इन्तज़ार कर रही थी। उसकी अवस्था देखकर मेरा कलेजा धक्-सा हो गया। इन तीन ही दिनों में उसका शरीर सूख कर काँटा हो गया था। चेहरा किसी मरणासन्न रोगी की तरह निष्प्रभ हो रहा था। उसकी चिर-सहचरी मुस्कान का स्थान किसी गहरी चिन्ता ने घेर लिया था।

मेरे ही कारण वह इस अवस्था को पहुँची है। यह सोचकर मेरे हृदय में एक शूल-सा उठा। मैंने आकुल-भाव से कहा—"सुशीला"। वह बिना कुछ उत्तर दिये वैसे ही पड़ी रही, जैसे किसी गहन विषय पर विचार कर रही हो।

मैंने अधीर होकर कहा—"सुशीला, यह तुम्हारी क्या अवस्था हो रही है?" उसने अपनी करुणोत्पादक दृष्टि ऊपर उठाई जैसे मैंने उस पर कोई भारी अत्याचार किया हो। उसकी आँखें जैसे मुझसे कह रही हों, मेरी विवशता का तुम उपहास उड़ाते हो। जानते हुए भी अनजान बनते हो। भला इसका मेरे पास क्या उत्तर था। मैंने आवेश के उमड़ते हुए आँसुओं को पीकर कहा—"सुशीला, मैं तुम्हारा अपराधी हूँ।" "अपराधी"! उसने चौंक कर कहा, उसकी आँखों से झर झर आँसू टपकने लगे।

मैंने वेदनामय स्वर से कहा—"सुशीला, मुझे क्षमा कर दो।" "क्षमा"! उसने दोहरा कर कहा। वह कुर्सी की बाँह पर अपना माथा टेककर सिसक सिसक कर रोने लगी और दीर्घकाल तक वैसे ही पड़ी रही। उसकी यह अवस्था देखकर वहाँ क्षण भर भी ठहरना मेरे लिए दूभर हो गया। ग्लानि, क्षोभ और निराशा की मूर्ति बना मैं वहाँ से बाहर चला गया। बाहर की खुली हवा में मुझे चेतनता प्राप्त हुई। मैं निश्चल होकर सारे घटनाक्रम पर विचार करने लगा। मैंने अपनी दृष्टि में अपने आपको दोषी पाया। उसका यही प्रायश्चित्त है कि मैं फिर कभी सुशीला को मुँह न दिखाऊँ। यह निश्चय कर मैं एक ओर चल पड़ा। बिना किसी संकल्प के, बिना यह जाने कि मैं किधर जा रहा हूँ।

चलता चलता मैं बहुत दूर निकल गया। पर मेरे पैर मुझे जितना आगे ले जा रहे थे, हृदय मुझे उतने ही वेग से पीछे खींचता था। मुझे ऐसा प्रतीत होता था जैसे मुझे एक अस्पष्ट वेदनामय स्वर से सुशीला कह रही हो, "लौट आओ, लौट आओ"। मेरे हृदय में अन्तर्द्वन्द्व-सा छिड़ गया। सुशीला की वह अस्पष्ट पुकार मेरे अन्तरात्मा में गूँजने लगी। उसका तिरस्कार करना मेरे सामर्थ्य के बाहर था। मेरे पैर स्वतः रुक गये। मैं निराश होकर एक शिलाखण्ड पर बैठ गया और दुःखी मन से अपनी इस अस्थिरता और बेबसी के लिए अपने आप को धिक्कारने लगा। पता नहीं, कितनी देर तक मैं खोया हुआ-सा वहाँ बैठा रहा।

सूर्यास्त का समय हो गया। आकाश पर रंगीन बादलों का जमघट हो चला था। धीरे-धीरे रात्रि ने अपनी श्याम-वर्ण चादर से संसार को ढँकना शुरू किया। पहाड़ों के लम्बे लम्बे साये उस अँधेरे को और भी प्रगाढ़ करने लगे। आकाश में तारे झिलमिलाने लगे। मैंने अनन्त आकाश

की ओर देखकर एक ठंडी साँस भरी और उठ बैठा। मेरे पैर मुझे स्वयं घर की ओर ले चले। हाय रे मन! तू कितना अस्थिर है?

निराश और व्यथित मन लिये हुए मैं घर लौटा हूँ। मित्रवर, इस समय मेरी अवस्था ठीक उस पथ-भ्रष्ट पथिक-सी है, जो किसी भयानक जंगल में, जिसका कोई ओर-छोर नहीं, रास्ता खोकर निविड़ अन्धकार में भटक रहा हो। चारों ओर नज़र दौड़ाता हूँ, पर मुक्ति का कोई मार्ग नहीं दिखाई देता। बस, अब मृत्यु का द्वार खटखटाने जा रहा हूँ। कदाचित् वह मेरे हृदय को शान्ति प्रदान कर सके। बस, अब अन्तिम विदा।

तुम्हारा
रमेश

स्नोव्यू, डलहौज़ी
५-४-३६

भाई नरेश,

प्रायः सुनता आया हूँ कि कभी कभी कोई छोटी-सी घटना भी हमारे जीवन को कुछ का कुछ बना देती है। पर आज इसकी यथार्थता का अनुभव कर रहा हूँ।

कल जब मैं अपनी जीवनलीला को समाप्त करने के लिए सब तैयारी कर चुका—अब तो उन भयानक क्षणों के ध्यान में आते ही शरीर में कपकपी-सी आ जाती है, तब उसी समय न जाने कैसे शशि खिलखिलाकर हँसता हुआ मेरे कमरे में आ पहुँचा। उसके खिले हुए चेहरे को देखकर मेरा उद्विग्न मन अनायास ही उसको प्यार करने के लिए तड़प उठा। मैंने उसे गोदी में उठा लिया। उसी समय बा०—यहीं आये और पुलकित स्वर में कहने लगे—"रमेश बाबू, आज शशि ने बातें करनी सीखी हैं। देखो न, कितना साफ़ साफ़—"चाचा", "पापा" कहता है। प्रभा रानी ज़रा बाहर तो आओ। सुशीला तुम बाहर क्यों खड़ी हो?" सुशीला ठिठकी हुई अन्दर पहुँची। मैं सम्भ्रान्त-सा एक ओर खड़ा हो गया।

"मैं कौन हूँ बेटा शशि"? उन्होंने उल्लासपूर्ण स्वर में पूछा। "पापा जी"। शशि ने अपनी तोतली बोली में उत्तर दिया। "और यह"। सुशीला की ओर संकेत कर उन्होंने पूछा। "पी पी जी" (बीबी जी)।

"और यह"। मेरी ओर संकेत कर पूछा। शशि सोच में पड़ गया। फिर एकाएक बोल उठा—"मामा जी"।

"नहीं बेटा चाचा जी कहो"। शशि ने सिर हिलाया और दोहरा कर कहा—"मामा जी" और अपनी ज़िद पर क़ायम रहा।

बा०—ने हँस कर कहा—"लो भई, इसने तो तुम्हारा रिश्ता ही बदल दिया। अब तो सुशीला के तुम देवर से भाई हो गये। यह सौदा तो तुम्हारे लिए घाटे का रहेगा।

शशि ने एक बार मुझे फिर पुकारा—"मामा जी" और मेरी ओर इस तरह आँखें मटका कर देखने लगा, जैसे मेरी स्वीकृति माँग रहा हो।

मैंने एक बार शशि को देखा और फिर सुशीला की ओर। अनायास ही मेरे हृदय में यह विचार उठा, क्या मैं सुशीला को बहन के रूप में नहीं देख सकता। और इस विचार-मात्र से ही मेरे नेत्रों से एक पर्दा-सा हट गया। मैंने शशि को अपनी छाती से लगा लिया और परिप्लावित हृदय से कहा—"हाँ, मैं तुम्हारा मामा हूँ।"

मैंने देखा सुशीला की आँखें चमक रही थीं। वह मुझे इस भाव से देख रही थी, जिसमें विशुद्ध भगिनी-प्रेम हिलोरें ले रहा था। हमारे दोनों के मनोभावों ने एक नया रूप धारण किया। मुझे सुशीला की प्रसन्न मूर्ति को देखकर इतना आनन्द हुआ जितना पहले कभी नहीं हुआ था। जो भाव हमारे हृदयों में उस समय तरंगें ले रहे थे उन्हें मैं यहाँ कैसे व्यक्त करूँ? मैं समझता हूँ कि यह घटना मेरे जीवन में एक अत्यन्त समुज्ज्वल स्मृति के रूप में सदा के लिए क़ायम रहेगी।

तुम्हारा वही
रमेश

हिन्दी-साहित्य में क्रांति की आवश्यकता

लेखक, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध काल में श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने हिन्दी-साहित्य में एक क्रांति मचा दी थी। रीतिकाल में हमारा साहित्य स्थिर, संकीर्ण और जीवन-रहित हो गया था। सभी कवि एक ही लकीर के फ़क़ीर बनकर नवीनता और व्यक्तिगत भावों की व्यंजना के गौरव को भूल गये थे। एक ही छन्द, एक ही भाव और अलङ्कारों के पीछे पड़कर कवियों ने साहित्य को रस-हीन और आकर्षण-रहित बना दिया था। भारतेन्दु जी ने इन बंधनों को तोड़कर, हिन्दी-साहित्य में एक नये जीवन का सञ्चार किया। नये नये छन्दों, भावों और विचारों का प्रयोग किया और साहित्य के संकुचित क्षेत्र को भी विस्तीर्ण बनाया। रीतिकाल की कविता का साधारण जीवन से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रह गया था। साहित्य और जीवन के इस विच्छेद को श्री भारतेन्दु जी ने नष्ट करने का सफल प्रयत्न किया और हिन्दी-साहित्य को एक नवीन युग में प्रवेश कराया। अब धीरे-धीरे हमारी कला और साहित्य में फिर एक प्रकार की कृत्रिमता आ गई है। भारतेन्दु जी के काल की सजीवता या ज़िन्दादिली जाती रही है। साहित्यिक रचनाओं का यथार्थ जीवन से अधिक सम्बन्ध नहीं रहा है। इसी लिए हमारे हिन्दी-साहित्य में फिर एक प्रभावशाली क्रांति की आवश्यकता है।

हमको आधुनिक हिन्दी-साहित्य के सब क्षेत्रों का सिंहावलोकन करना है। प्रथम, कविता को ही लीजिए। रीतिकाल में तो 'अलङ्कारवाद' की धूम थी, पर अब 'रहस्यवाद' की तूती बोल रही है। जिस कवि को देखिए वही 'अनन्त', 'अतीत', 'मधुबाला' और 'कनक-रश्मियों' के गीत गा रहा है। साधारण जीवन के सुख-दुःख की व्यंजना अब कविता के योग्य ही नहीं रही। जब तक 'पागल' और 'मतवाला' बनकर बिना सिर-पैर की बातें न लिखे तब तक उच्च कोटि का कवि कहलाना कदाचित् असम्भव ही है। यदि सभी लोग कविता को समझ लें तो 'रहस्य' ही क्या रहा!

हमारे देश के अधिकांश लोग किसान ही हैं। हमेशा मेहनत करते रहने पर भी उनको एक बार भरपेट भोजन मिल जाना ही बड़ी बात है। उनके कपड़ों और रहने की झोपड़ियों का हाल पूछना ही व्यर्थ है। यथार्थ में भारतवर्ष तो इन्हीं निर्धन, विद्याहीन साधारण किसानों का है। वे बेचारे कवियों की 'मधुबाला' के रहस्य को क्या समझ सकते हैं। उनको तो रूखी रोटी का राग ही जीवन का एक-मात्र सहारा है। 'अनन्त' की रहस्यमय, मन्द और मदिर मुस्कान के दर्शन करने का उनको अवसर ही नहीं मिलता।

रहस्यवादी कवियों को ध्यान रहे कि जब तक कविता का सम्बन्ध यथार्थ जीवन से न रहेगा तब तक वह जीवित नहीं रह सकती। प्रत्येक देश की कला और साहित्य में उसके मनुष्यों के विचारों और भावों की झलक रहती है और रहनी चाहिए। जिस साहित्य का जीवन से घनिष्ठ संसर्ग नहीं है वह एक मूलरहित वृक्ष के समान है, एक जलरहित सरिता के सदृश है। आज-कल जब कि हमारे देश में भिन्न-भिन्न प्रकार की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक जटिल समस्यायें उपस्थित हैं और प्रत्येक क्षेत्र में एक तीव्र क्रान्ति फैली हुई है, न जाने हमारे नवीन कवि-गण 'अनन्त' और 'मधुबाला' के राग किसके हित के लिए अलाप रहे हैं! एक परतन्त्र जाति, अत्यन्त निर्धन और निरक्षर देशवासी, लाखों 'अछूत' जिनके साथ पशुओं से भी बुरा व्यवहार किया जाता है, हज़ारों शिक्षित नवयुवक जिनको बेकारी ने डस कर मुर्दा बना दिया है—क्या कविता के लिए यह सब उपयुक्त विषय नहीं है? हमारे भारतवर्ष की कितनी करुण और दयनीय दशा है, किन्तु कवियों को उससे क्या मतलब! उनको तो अपनी छायावादी उड़ानों से अवकाश ही कहाँ है! किन्तु इन रहस्यवादी कवियों को ध्यान रहे कि उनकी रचनायें कभी जीवित नहीं रह सकतीं। एक जल से बाहर निकाली हुई मछली की भाँति वे मुर्झाकर साररहित हो जायँगी। मेरे विचार से तो आज-कल हिन्दी-साहित्य में 'रहस्यवाद' की नहीं, किन्तु 'रोटीवाद' की आवश्यकता है। लेकिन यह लिखने से मेरा

यह तात्पर्य नहीं है कि सब लोग किसी एक 'वाद' की ही धुनि बाँध लें—चाहे वह 'राष्ट्रवाद' हो या 'छायावाद'। साहित्य को एक बहती नदी के समान होना चाहिए। देश और काल के अनुसार उसकी भाव व विचार-धारा का प्रवाह होना ही स्वाभाविक है। 'अन्तर्राष्ट्रीय' तथा मानव-जीवन की गूढ़ एवं जटिल समस्याओं का समन्वय अथवा समावेश भी किया जा सकता है। किन्तु वह देश और काल के अन्तर्गत ही होना चाहिए।

कविवर श्री सुमित्रानन्दन पन्त जी के प्रति मेरा सदैव आदर-भाव रहा है। अपनी उत्तम रचनाओं से उन्होंने हिन्दी-साहित्य की अनुपम सेवा की है। श्रीमती महादेवी वर्मा की कवितायें भी अति प्रशंसनीय हैं। किन्तु मेरे विचार में वे देश और काल के अनुकूल नहीं हैं। उनकी रचनाओं में दुःखी किसान, अछूत और श्रमजीवियों के लिए स्थान नहीं है। आज-कल तो श्री मैथिलीशरण गुप्त जी की 'भारत-भारती' और 'किसान' जैसी पुस्तकों की आवश्यकता है। उनमें भारतवर्ष के जीवन की नाड़ी विद्यमान है, केवल सुन्दर कल्पनाओं की क्रीड़ा नहीं है।

अब कहानी और उपन्यासों के क्षेत्र को लीजिए। रचनाओं की संख्या में तो कमी नहीं है, और अन्य भाषाओं, विशेषकर बँगला के अनुवाद भी बहुत हो गये हैं। किन्तु अभाव है मौलिक प्रतिभा का। हमारे कुछ उपन्यास-लेखकों ने तो चोरी से या कहकर केवल अन्य विदेशी लेखकों की नक़ल की है और अपनी रचनाओं को देश और काल के अनुकूल नहीं बना पाये हैं। उनमें भारतवर्ष के यथार्थ जीवन की झलक नहीं है, और यदि है तो अति अल्प-संख्यक जनता के जीवन की। कुछ लेखकों ने कई सामाजिक समस्याओं पर उपन्यास अथवा कहानियाँ लिखी हैं। किन्तु उनमें कला का नितान्त अभाव है। कलाकार के स्थान पर उन्होंने एक सामाजिक शिक्षक अथवा सुधारक बनने का प्रयत्न किया है। अपनी रचनाओं में उन्होंने पाठकों को कुछ विशेष सन्देश व उपदेश देने की स्पष्टरूप से चेष्टा की है। मेरे विचार में श्री प्रेमचन्द जी ने भी अपने कुछ उपन्यासों में इसी बात की कोशिश की है। मैं किसी सामाजिक कुरीति के सम्बन्ध में लिखने के विरुद्ध नहीं हूँ। किन्तु किसी विषय में पाठकों को स्पष्टतया उपदेश देना कला के विपरीत है। साहित्यिकों का काम है किसी प्रकार के सजीव और सारगर्भित चित्र को खींच देना और पाठकों को उसके विषय में स्वतन्त्रतापूर्वक सोचने का अवसर देना। लेखक केवल अपनी भावनाओं का संकेत दे सकता है। अपने विचारों को पाठकों के मन और हृदय पर अंकित करने का उद्देश रखना कलाकार के लिए सर्वथा अनुचित है। उदाहरणार्थ, रूस के प्रसिद्ध लेखक तुर्गोनिव अथवा स्वीडन के योहान बोयर को लीजिए। अँगरेज़ी-साहित्य में टामस हार्डी और जान गाल्सवर्दी की रचनाओं को देखिए। उनके उपन्यासों में देश और काल से सम्बन्धित चित्र खींचे गये हैं; वे गम्भीर और तत्त्वपूर्ण हैं। किन्तु उनमें किसी प्रकार की लेक्चरबाज़ी नहीं की गई है। यह विशेषता हमारे देश के उपन्यास-लेखकों में बहुत ही कम पाई जाती है। हाँ, बंगाल के श्री शरच्चन्द्र चटर्जी की रचनायें अवश्य कलापूर्ण कहलाने के योग्य हैं। खेद है कि हमारे साहित्य में उच्च कोटि के उपन्यास-लेखकों की अभी कमी है। इस कमी को पूरा करना हिन्दी-साहित्यिकों का परम धर्म है।

नाटक-क्षेत्र में भी हमको कोई विशेष उत्साह नहीं हो सकता। हमारे नाटककारों में भी मौलिक प्रतिभा का अभाव है। बंगाली-साहित्य के नाटकों के अनुवाद तो बहुत हो चुके हैं, किन्तु हिन्दी-साहित्य में अभी ऐसे नाटक बहुत कम हैं जिनकी प्रशंसा मुक्तकंठ से की जा सकती हो। प्रसाद जी की रचनाओं की भाषा बहुत क्लिष्ट है, वर्तमान जीवन से उनका सम्बन्ध बहुत ही कम है और वे अभिनय के योग्य नहीं हैं। श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र ने कई नाटक लिख डाले हैं। किन्तु हिन्दी के बर्नर्ड शा बनने की कोशिश में उन्होंने कोई उत्तम तथा कलापूर्ण रचना अभी तक उपस्थित नहीं की है। अँगरेज़ी समालोचकों का भी विचार है कि शा के नाटकों में उपदेश की अधिकता के कारण कला का ह्रास हुआ है। हिन्दी में शा की नक़ल करने से कुछ लाभ नहीं हो सकता। मेरा व्यक्तिगत विचार है कि गाल्सवर्दी की रचनायें कला की दृष्टि से शा के नाटकों से बाज़ी मार ले गई हैं। उनमें सांकेतिक सार-पूर्णता और गंभीरता है। यथार्थ जीवन से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है।

किन्तु गाल्सवर्दी ने मानव-जीवन की गूढ़ जटिल और गम्भीर समस्याओं को हमारे सम्मुख उपस्थित नहीं किया है। रूस के प्रसिद्ध नाटककार चेकोफ़, इटली में पिरन्डलो, जर्मनी के गोइथ, शिलर और शूडरमैन; फ़्रांस के मेटर्लिंक इत्यादि साहित्यिकों के नाटकों में एक प्रकार का 'गहरापन' है जो अँगरेज़ी-साहित्य में कम पाया जाता है। योरप के कलाकारों का मनोवैज्ञानिक चित्रण बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उनकी रचनाओं को पढ़कर हमारा अन्तःकरण भी पुलकायमान हो जाता है। यह गुण हमारे हिन्दी के नाटकों में अभी नहीं है। जिन्होंने चेकोफ़ का 'चेरी आर्चर्ड' नामक ड्रामा या मेटर्लिंक का 'मोना वेना' नाटक पढ़ा है उनको मेरा भाव स्पष्ट हो जायगा।

किन्तु हमको किसी विशेष देश या कलाकार के नाटकों की नक़ल करने की आवश्यकता नहीं है। अपने प्राचीन साहित्य और सभ्यता के आधार पर ही हमको एक नवीन और सुन्दर साहित्यिक मन्दिर बनाना है। गत वर्ष अपनी योरप-यात्रा के समय मुझे इँग्लैंड के कई सुप्रसिद्ध कवियों से भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उन्होंने भारतवर्ष की कला और साहित्य के विषय में मुझसे बहुत कुछ पूछा, और इस बात पर बहुत ज़ोर दिया कि भारतवासियों को किसी अन्य देश की नक़ल नहीं करनी चाहिए, और विशेषकर साहित्यिक क्षेत्र में। हमको स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी कला और साहित्य की अभिवृद्धि और विकास में लगा रहना चाहिए। दूसरों के सद्गुणों को अपनाने में कोई हानि नहीं है। किन्तु सर्वाङ्ग नक़ल करना सर्वथा त्याज्य है। किसी पौधे को एक जगह से दूसरी जगह लगाना कोई बुद्धिमत्ता का कार्य नहीं है। इस प्रकार के पौधे सदा के लिए कमज़ोर हो जाते हैं। यही दशा कला और साहित्य की है। उनकी जड़ देश की सभ्यता में ही होनी चाहिए; उनके लिए देश की ही खाद और जल की आवश्यकता है। अन्य देशों से लाई हुई टहनी बाँधकर उनका पौधा कभी हरा-भरा नहीं रह सकता।

कदाचित् हिन्दी-साहित्य में अभी तक नाटक-कला की वृद्धि न होने का मुख्य कारण एक अच्छे देशी रंगमंच का अभाव है। कुछ दिनों पारसी-कम्पनियों ने योरप के रंगमंच की नक़ल की थी। लेकिन उनका असफल होना स्वाभाविक ही था। अब सिनेमा की लोक-प्रियता के कारण, हमारे देश में अच्छी नाटक-कम्पनियाँ नहीं रह गई हैं। इसी लिए हमारे साहित्यिकों का ध्यान नाटक-कला की ओर कम जाता है। उनकी रचनाओं के अभिनय का कोई मौक़ा ही नहीं है। योरप जाने के पूर्व मेरा विचार था कि पाश्चात्य देशों में भी सिनेमा के सामने ड्रामा का आदर नहीं रहा है। किन्तु पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि योरप में सिनेमा को थियेटर की अपेक्षा एक तुच्छ प्रकार का मनोरञ्जन समझते हैं। वहाँ के लोग अपने सामने जीवित नाटककारों को देखना पसन्द करते हैं। केवल मशीन के बने हुए चित्रों को देखने में उनको कोई विशेष आनन्द नहीं आता। भारतवर्ष में भी एक देशी थियेटर के निर्माण करने की आवश्यकता है। अभिनय दो या ढाई घंटे में ही समाप्त हो जाना चाहिए। उसी के अनुसार नाटकों की भी रचना की जाय। तभी हमारे हिन्दी-साहित्य में नाटक-कला का विकास हो सकता है।

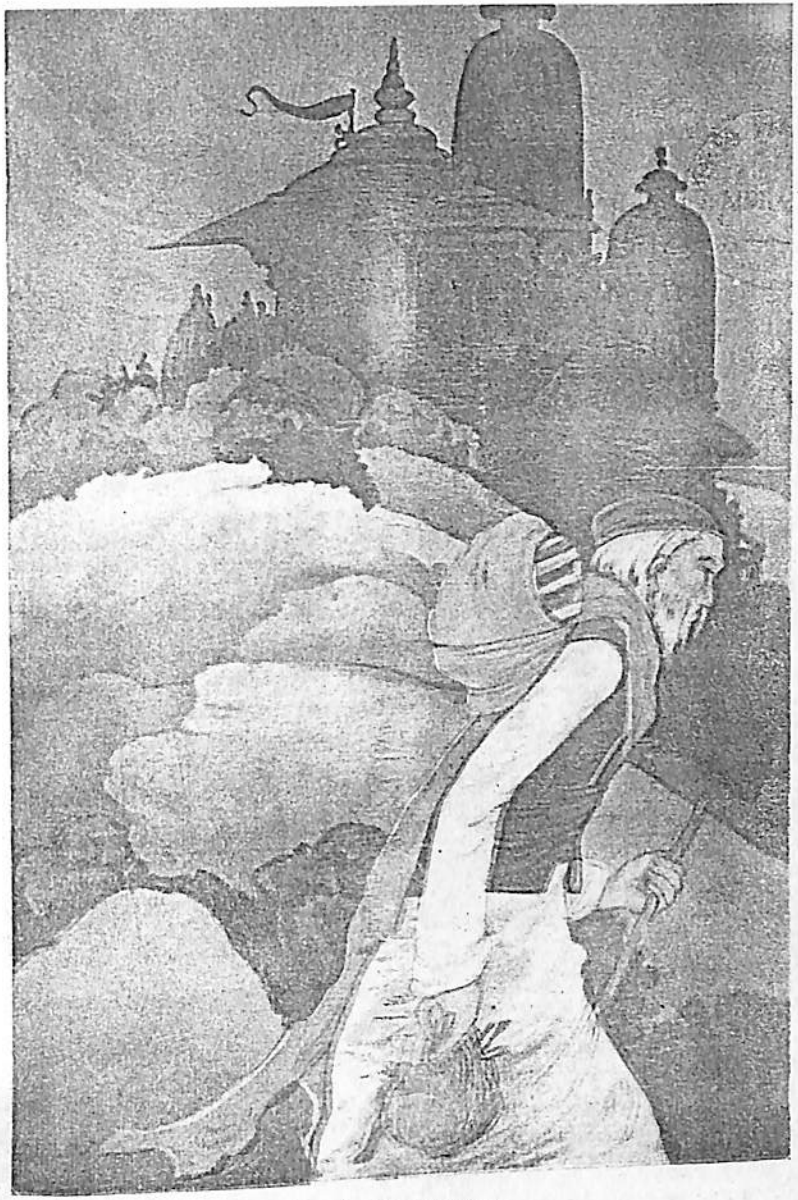
ऊपर लिखी हुई पंक्तियों में मैंने किसी विशेष साहित्यिक की रचनाओं की कड़ी आलोचना करने का प्रयत्न नहीं किया है। मेरा उद्देश तो हिन्दी-साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में केवल एक क्रांति-भाव फैलाना है। आशा है कि हिन्दी के साहित्य-सेवी मेरे विचारों पर उचित ध्यान देने की कृपा करेंगे।

श्री भरत

लेखक,
श्रीयुत पद्मकान्त मालवीय

बार-बार प्रणाम मेरा है उन्हें,
जो सदा करते स्मरण हैं राम का।
किन्तु उनका दास हूँ जो भूलकर,
भी भजन करते भरत के नाम का॥
लेखनी में शक्ति कुछ भी है नहीं,
और इच्छा है बड़ी यह बलवती।
आज हो गुणगान कुछ उनका यहाँ,
राम के प्रिय बंधु, अतिशय दृढ़व्रती॥
भरत-सा भाई मिले जिसको न क्यों,
राम-सा सम्मान जग में पा सके?
शक्ति मेरी क्या कि तुलसीदास जब,
चुप रहे, कुछ गुण न उनका गा सके॥
किन्तु पावन शब्द पावन हो गया,
भरत ने हैं किये शुभ काम वह।
जीव पावन क्यों न होगा तब भला,
जीभ पर जिसके रमा हो नाम वह॥
भरत जी-सा पुत्र जन कर कैकई,
पाप कर भी मोक्ष पद है पा गई।
फिर अमर कैसे न वह हो जायगा,
हृदय में जिसके वही छवि भा गई॥
राम-प्रेमी पिता को भी एक दिन,
अन्त में यह मानना ही था पड़ा।
'धर्म की शुभ दृष्टि से निश्चय भरत
प्राणप्रिय श्री राम से भी है बड़ा'॥
किन्तु दशरथ से नरेश सुजान ने,
भी किया अन्याय उस नरश्रेष्ठ पर।
भरत जी अन्त्येष्टि मत मेरी करें,
जब कहा ऐसा उन्होंने क्रोध कर॥
"भूल कर मेरी प्रशंसा ऐ प्रिये,
भरत के सम्मुख कभी करना नहीं।
है बड़ाई पर-पुरुष की भी सुनी,
क्या किसी ऐश्वर्यशाली ने कहीं"?
वन-गमन के समय सीता से कहा,
राम ने अन्याय कर यह अत्यधिक।
पर न निश्चित मार्ग से अपने कभी,
डिग सका वह सत्यप्रेमी, दृढ़ पथिक॥

देख आते भरत को वन में कहा,
लक्ष्मण ने हो सशंकित, राम से।
"हम सबों को मारने के ही लिए,
आ रहे हैं भरत अब निज धाम से॥"
"भरत के वध में नहीं कुछ पाप है",
बन्धु प्रेमावेश में यह कह दिया।
धर्म-प्रेमी, शीलयुत, त्यागी युवक,
पर न अत्याचार यों किसने किया?
और तो हैं और ही, वे क्षम्य हैं,
जो कहें सर आँख पर हम सब धरें।
किन्तु जीना कष्टकर है मृत्यु से,
जब कि मिथ्यारोप अपने ही करें॥
इस तरह निज रक्त संवर्धित स्वजन,
कर रहे अन्याय थे उस वीर पर।
क्या न औरों ने कहा होगा भला,
पर भरत ने सब सहा अति धैर्य धर॥
कुछ प्रयत्न बिना मिले निज राज्य को,
त्याग दे ऐसा पुरुष वह कौन है?
धन्य हो तुम भरत निश्चय धन्य हो,
देखकर यह त्याग पृथ्वी मौन है॥
वायु-सा निष्कलुष, निर्मल नीर-सा,
अद्वितीय चरित्र था उस वीर का।
रंग भी क्या सामना करता कहीं,
दुग्ध-से अति शुभ्र निर्मल नीर का?
कुल चराचर है रमित श्रीराम से,
राम के उर में रमे हैं श्री भरत।
राम से भी कुछ अधिक वे पागये,
भक्ति जिनकी भरत चरणों में सतत॥
भक्त का प्यारा दुलारा है सदा,
निज दुलारों से अधिक भगवान को।
भक्त-रिपु को वे क्षमा करते नहीं,
जो न लाते ध्यान निज अपमान को॥
राम-रवि हैं, रश्मियाँ सत्कर्म हैं,
जग जिन्हें पाकर प्रकाशित हो गया।
शुभ्र-गुण-आलय हिमालय भरत के,
स्पर्श से उनमें चढ़ा यौवन नया॥



ह्वेनसांग की भारत-यात्रा
[चित्रकार—श्रीयुत रामगोपाल विजयवर्गीय

जाग्रत नारियाँ



स्कूल की लड़कियों के लिए ९ निषेध

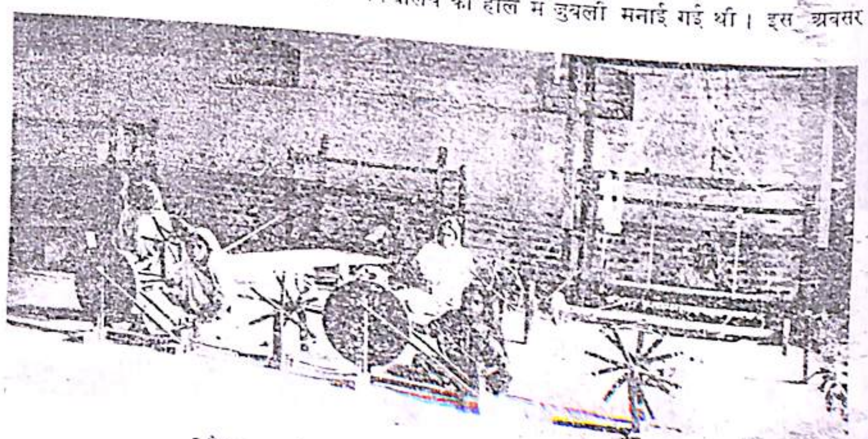
कुछ वर्ष पहले योरप के देशों में स्त्रियों की स्वाधीनता की कोई सीमा नहीं थी। वे किसी भी हद तक जा सकती थीं। परन्तु अब इटली और जर्मनी जैसे देशों में स्त्रियों के लिए अधिकारियों की ओर से निषेधात्मक आज्ञायें निकाली जा रही हैं। और तो और, तुर्की को भी पीछे क़दम हटाना पड़ा है। तुर्की के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर ने वहाँ की लड़कियों के लिए ९ निषेध जारी किये हैं। वे इस प्रकार हैं—

१—किसी प्रकार का शृङ्गार मत करो। २—दिखाऊ कपड़े मत पहनो। ३—ऊँची एड़ी के जूते मत पहनो। ४—किसी क़िस्म का आभूषण मत पहनो। ५—सिनेमाघरों में अकेली मत जाओ। ६—बाप या भाई के सिवा अन्य किसी पुरुष के साथ टहलने न जाओ। ७—यदि राह में कोई छेड़े तो स्कूल के अधिकारियों को इत्तला देने में मत झिझको। ८—स्कूल के अहाते के सिवा अन्यत्र खेलने मत जाओ। ९—प्रचलित स्कूली टोपी के सिवा और कोई वस्तु सिर पर मत धारण करो।

स्कूलों की लड़कियाँ इन निषेधों पर आपत्ति कर रही हैं, परन्तु जिन गुरुजनों ने इन्हें जारी किया है उनके पास इस प्रतिक्रिया के लिए यथेष्ट कारण होंगे। (मराठा)

जैन-महिलाओं में जाग्रति

भारत की जैन-महिलाओं में इधर अच्छी जाग्रति देखने में आरही है। शिक्षित और उत्साही जैन-महिलाओं ने जैन-स्त्रियों के लिए कतिपय उपयोगी संस्थाओं की स्थापना की है। बम्बई का जैन-महिला-विद्यालय और आरा का श्री जैन-बाला-विश्राम ऐसी ही संस्थायें हैं। जैन-महिला-विद्यालय की हाल में जुबली मनाई गई थी। इस अवसर



[जैन-बाला-विश्राम आरा (कर्वे की शिक्षा)]



[जैन-महिला-विद्यालय में गर्बा-नृत्य ।]

पर गुजराती-स्त्रीमंडल की ओर से एक गर्बा-नृत्य किया गया था। आरे का श्री जैन-बाला-विश्राम श्रीमती चंदाबाई जैन के अथक परिश्रम का फल है। यह संस्था १५ वर्षों से स्थापित है। इस समय इसमें ६८ छात्रायें हैं। कपड़ा बुनना, बेल-बूटेदार साड़ियाँ बनाना, तौलिया बनाना, दरी बनाना, निवार बनाना इत्यादि शिल्प-कार्य भली भाँति सीखती हैं। कपड़ा बुनने का काम विशेष रूप से सिखाया जाता है। जिन महिलाओं को कर्घे का काम सीखना हो, आरा के जैन-बाला-विश्राम को अवेदन-पत्र भेज सकती हैं। स्थान होने पर वे भर्ती की जा सकेंगी।

बिहार-महिला-विद्यापीठ

अन्य प्रान्तों के साथ साथ बिहार की महिलाओं में भी जाग्रति आरम्भ हुई है। उनकी बढ़ती हुई ज्ञान-पिपासा को शान्त करने के लिए हाल में बिहार-महिला-विद्यापीठ नाम की एक संस्था स्थापित हुई है। पटने के 'योगी' में बिहारी स्त्रियों के जागरण और इस संस्था का परिचय इस प्रकार छपा है—

आज से ७-८ वर्ष पूर्व बिहार में परदा-प्रथा का भूत इस प्रकार था कि पति पत्नी से दिन में, ससुर पतोहू से आवश्यकता पड़ने पर भी नहीं बोल सकते थे। स्त्रियाँ आपस में भी परदा रखती थीं। सन् १९२८ में दरभंगा-ज़िले के त्यागी युवक श्रीयुत पंडित रामनन्दन मिश्र ने इस तरह के परदे को बहुत ही हानिकारक समझा। उन्होंने अपनी पत्नी को परदे से बाहर कर साबरमती-आश्रम में ले जाना चाहा। उनके पिता जी ने ऐसा नहीं होने दिया और अपनी पतोहू को मायके भेज दिया। मिश्र जी साबरमती-आश्रम से स्वर्गीय श्री मगनलाल गांधी की पुत्री राधा बहन तथा स्वर्गीय श्री दलबहादुर गिरि की पुत्री दुर्गा बहन को लेकर वहीं जा पहुँचे। उन लोगों ने मिश्र जी की पत्नी को कई महीने तक पढ़ाया। वहाँ उन लोगों को बहुत ही कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। श्री मगनलाल गांधी भी आये, किन्तु अभाग्यवश पटने में उनकी असामयिक मृत्यु हो गई। अन्त में मिश्र जी की पत्नी परदे से बाहर निकलीं और साबरमती-आश्रम में गईं। कुछ दिनों के बाद मिश्र जी अपनी पत्नी को लेकर अपने ज़िले में आये और बिहार से इस अनिष्टकारी परदा-प्रथा को दूर करने के लिए मगन-आश्रम क़ायम किया। सन् १९३० ई० में सत्याग्रह-युद्ध छिड़ जाने के कारण यह आन्दोलन धीमा पड़ गया। १९३३ में मिश्र जी ने फिर से इसको जाग्रत किया और बिहार-महिला-विद्यापीठ नाम की संस्था की स्थापना की। उस समय यह संस्था लहेरियासराय में एक किराये के मकान में थी। शिक्षा प्राप्त करनेवालों में भी तीन लड़के और दो ही लड़कियाँ थीं। १९३४ के भूकम्प में वहाँ का मकान गिर गया और तब यह संस्था मगन-आश्रम के समीप उठा लाई गई। १९३५ के मार्च में एक महिला-सम्मेलन हुआ, जिससे समूचे प्रांत में इसकी जाग्रति हो गई। इन दिनों १६ छात्र और ४९ छात्रायें हैं। छात्राओं में ३३ कुमारियाँ, १३ विवाहितायें तथा ३ विधवायें हैं। इनमें २६ छात्राओं को भोजन-ख़र्च विद्यापीठ से मिलता है।

अध्यापकों की संख्या ६ एवम् अध्यापिकाओं की ४ है।

यहाँ की पढ़ाई का समय ६ वर्ष है। इतने दिनों में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा एवम् अँगरेज़ी की प्रवेशिका परीक्षा से एक श्रेणी नीचे तक की शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त छोटी छोटी बच्चियों एवम् बच्चों के लिए प्रत्यक्ष दर्शन तथा किसी भी श्रेणी की योग्यता न रखनेवाली छात्राओं के लिए एक विशेष क्लास भी है। छोटी छोटी बच्चियों को प्रत्यक्ष दर्शन-पद्धति के द्वारा शिक्षा दी जाती है, अन्य स्कूलों के सदृश रटाकर अक्षर-ज्ञान नहीं कराया जाता है। पढ़ाई के अतिरिक्त चित्रकारी, कुर्त्ता, कोट, क़मीज़ इत्यादि मशीन से सीना एवम् स्वेटर, मफ़लर, गुलूबन्द बुनना तथा कपड़े पर तरह तरह के फूल निकालने आदि की शिक्षा भी दी जाती है।

छोटी छोटी बच्चियों की देखभाल के लिए दो नर्सें भी हैं।

यहाँ की रहन-सहन सादी है। प्रतिमास कुल ख़र्च ७-८ रुपया ही पड़ता है। लड़कियाँ स्वयं तरकारी काट लेती हैं, रसोई परोस लेती हैं, चौका करती हैं, अपना बर्त्तन, कपड़ा एवम् अपनी कोठरियों को साफ़ करती हैं।

स्थान भी शहर से ४ मील दूर गाँव के बाहर मैदान में है। जलवायु भी बहुत स्वास्थ्यप्रद है।

इसके संचालन के लिए १५ आदमियों की एक संरक्षण समिति है।

बिहार-प्रान्त के जितने सरकारी अफ़सर हैं, सभी इसकी सहायता कर रहे हैं।

१०) सालाना चन्दा देनेवाले ७०६ सहायक बने हैं। बहुत-से अँगरेज़ भी इसके सहायक बने हैं।

सर गणेशदत्तसिंह ने २५०), शिक्षा-विभाग के मन्त्री सैयद अब्दुल अज़ीज़ ने २५०), दरभंगा के कलक्टर ने ३००) तथा एस० डी० ओ० ने पोखर के लिए ५००), श्री पी० आर० दास ने १,०००), डाक्टर टी० एम० बनर्जी ने ५००), डाक्टर गुह ने ५००), नरहन-स्टेट ने ५००) तथा लहेरियासराय के अशर्फ़ी महासेठ ने ३००) में आठ कट्ठा ज़मीन ख़रीद कर दिया है। इनके अलावा बहुत-से व्यक्तियों ने सहायता दी है। दरभंगा के महाराजा कुमार ने ५,०००) देने का वचन दिया है।

बिहार में इस प्रकार की संस्था एक यही है। अतः समूचे प्रान्त के सरकारी एवम् ग़ैरसरकारी सभी व्यक्ति इसकी सहायता कर रहे हैं।

यदि इसकी उन्नति इसी प्रकार बढ़ती गई तो यह समूचे हिन्दुस्तान की एक आदर्श संस्था हो जायगी और हिन्दुस्तान में स्त्रियाँ मूर्खा नहीं रहेंगी।

पंडित रामनन्दन जी अपने सभी राजनैतिक कार्यों को छोड़कर इसी के लिए बिहार भर में चक्कर लगाते रहते हैं, इनकी सुयोग्या पत्नी श्रीमती राजकिशोरी देवी इनका पूरा साथ दे रही हैं।



(अभी हाल में पंजाब में इंटर कालेजियेट वाद-विवाद हुआ था। उनमें प्रायः पंजाब के सभी महिला-कालेजों की छात्राओं ने भाग लिया था। इस प्रतियोगिता में फ़तेहचन्द-स्त्री-कालेज लाहौर की कुमारी कमल गोस्वामी (बाईं ओर) और कुमारी जारिया डेविड सर्व प्रथम आईं। उनका चित्र यहाँ हम सहर्ष प्रकाशित करते हैं। चित्र में वे अपनी जीती हुई ट्राफ़ी के सहित खड़ी हैं।)

सुधारक बहनों से महात्मा गांधी की अपील

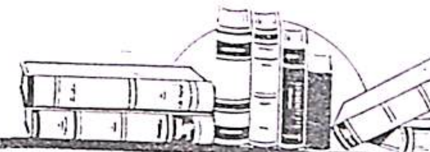
महात्मा गांधी ने हाल के 'हरिजन सेवक' में सुधारक बहनों से एक महत्त्वपूर्ण अपील की है, जिसका एक उपयोगी अंश इस प्रकार है—

एक बहन से गम्भीरतापूर्वक मेरी जो बातचीत हुई उससे मुझे भय होता है कि कृत्रिम सन्तति-निरोध-सम्बन्धी मेरी स्थिति को अभी तक लोगों ने काफ़ी अच्छी तरह नहीं समझा। कृत्रिम सन्तति-निरोध के साधनों का मैं जो विरोध करता हूँ वह इस कारण नहीं कि वे हमारे यहाँ पश्चिम से आये हैं। कुछ पश्चिमी चीज़ें तो हमारे लिए वैसी ही उपयोगी हैं जैसी कि वे पश्चिम के लिए हैं और कृतज्ञता के साथ मैं उनका प्रयोग भी करता हूँ। अतएव कृत्रिम सन्तति-निरोध के साधनों का मेरा विरोध तो केवल उनके गुण-दोष की दृष्टि से ही है।

लेकिन मैं तो, इसके अलावा, विशेष आधार पर भी भारत में सन्तति-निग्रह के कृत्रिम साधनों का विरोधी हूँ। भारत में नवयुवक यह नहीं जानते कि विषय-दमन क्या है। इसमें उनका कोई दोष नहीं है। छोटी उम्र में ही उनका विवाह हो जाता है, यह यहाँ की प्रथा है, और विवाहित जीवन में संयम रखने को उनसे कोई नहीं कहता। माता-पिता तो अपने नाती-पोते देखने को उत्सुक रहते हैं। बेचारी बाल-पत्नियों से उनके आस-पासवाले यही आशा करते हैं कि जितनी जल्दी हो वे पुत्रवती हो जायँ। ऐसे वातावरण में सन्तति-निरोधक कृत्रिम साधनों से तो कठिनाई और बढ़ेगी ही।

मैं तो विवाहित बहनों के लिए इस शिक्षा को बहुत घातक समझता हूँ। मेरी समझ में पुरुष की अपेक्षा स्त्री के लिए आत्म-संयम करना ज़्यादा आसान है। हमारे देश में ज़रूरत बस इसी बात की है कि स्त्री अपने पति तक से 'न' कह सके, ऐसी सुशिक्षा स्त्रियों को मिलनी चाहिए। स्त्रियों को हमें यह सिखा देना चाहिए कि वे अपने पतियों के हाथ की कठ-पुतली या औज़ार-मात्र बन जायँ, यह उनके कर्त्तव्य का अङ्ग नहीं है। और कर्त्तव्य की ही तरह उनके अधिकार भी हैं। जो लोग सीता को राम की आज्ञानुवर्त्तिनी दासी के रूप में ही देखते हैं वे इस बात को महसूस नहीं करते कि उनमें स्वाधीनता की भावना कितनी थी और राम हरएक बात में उनका कितना ख़याल रखते थे। भारत की स्त्रियों से सन्तति-निरोध के कृत्रिम साधन अख़्तियार करने के लिए कहना तो बिलकुल उलटी बात है। सबसे पहले तो उन्हें मानसिक दासता से मुक्त करना चाहिए, उन्हें अपने शरीर की पवित्रता की शिक्षा देकर राष्ट्र और मानवता की सेवा में कितना गौरव है, इस बात की शिक्षा देनी चाहिए। यह सोच लेना ठीक नहीं है कि भारत की स्त्रियों का तो उद्धार ही नहीं हो सकता, और इसलिए सन्तानोत्पत्ति में रुकावट डालकर अपने रहे-सहे स्वास्थ्य की रक्षा के लिए उन्हें सन्तति-निग्रह के कृत्रिम साधन ही सिखा देने चाहिए।

जो बहनें सचमुच उन स्त्रियों के दुःख से दुखी हैं, जिन्हें इच्छा हो या न हो, फिर भी बच्चों के झमेले में पड़ना पड़ता है, उन्हें अधीर नहीं होना चाहिए। वे जो कुछ चाहती हैं वह एक-दम तो कृत्रिम सन्तति-निरोध के साधनों के पक्ष में आन्दोलन से भी नहीं होनेवाला है। हरएक उपाय के लिए सवाल तो शिक्षा का ही है। इसलिए मेरा कहना यही है कि वह हो अच्छे ढङ्ग की।



नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१—रघुवंश—(पद्य) अनुवादक, श्रीयुत रामप्रसाद सारस्वत, एम० ए०, एल० टी०, प्रकाशक, गणेशाश्रम बुकडिपो, मदिया कटरा, आगरा हैं और मूल्य १।।।) है।

२—श्री अरविन्द और उनका योग—सम्पादक, श्रीयुत लक्ष्मण नारायण गर्दे, प्रकाशक, अरविन्द-ग्रन्थ-माला, ४ हयर स्ट्रीट, कलकत्ता हैं और मूल्य ।।) है।

३—हिन्दू-गौरव-गान— (कविता) संग्रहकर्त्ता, श्रीयुत बलवन्त मिश्र 'हिन्दी प्रभाकर', मिलने का पता—आनन्द-आश्रम, ग्राम-कूँड़ी, पो० बड़ागाँव, बनारस हैं और मूल्य ।।=) है।

४—पं० जवाहरलाल नेहरू—लेखक, श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति, प्रकाशक, विजय-पुस्तक-भंडार, अर्जुन-कार्यालय, नया बाज़ार, देहली हैं और मूल्य ।।) है।

५—श्री श्री रामकृष्ण परमहंसदेव का जीवन-चरित तथा उपदेश—प्रकाशक, श्री स्वामी वशिष्ठानन्द, सहकारी मंत्री, श्री श्री रामकृष्ण-शताब्दि-सभा, १० हिवेट रोड, इलाहाबाद (शाखा) और मूल्य ।।=) है।

६—रामराज्य—प्रकाशक, श्रीयुत जयतीलाल सोगर जी मेहता, सम्पादक, 'देशीराज्य', नाड़ियाद गुजरात हैं।

७—परम भक्त ध्रुव—रचयिता व प्रकाशक, श्रीयुत चतुर्वेदी रामचन्द्र शर्मा, विद्यार्थी, 'विशारद', हाई स्कूल खरगोन, होल्कर स्टेट हैं, और मूल्य ।≡) है।

८—मकरन्द—(कविता) लेखक, श्रीयुत मधुकुमार, प्रकाशक, श्रीयुत जी० पी० कुलश्रेष्ठ, सोरों, एटा हैं और मूल्य ।=) है।

९—पालिश और वार्निश (पहिला हिस्सा) लेखक, श्रीयुत जी० पी० सक्सेना, डी० टी० टी० सी० प्रकाशक, बाबू लालबहादुर सक्सेना, दयालबाग़, आगरा हैं और मूल्य ।=) है।

१०—कांग्रेस का इतिहास—(डाक्टर पट्टाभि सीतारामय्या लिखित History of the Congress का अनुवाद) हिन्दी-सम्पादक, श्रीयुत हरिभाऊ उपाध्याय प्रकाशक, सस्ता-साहित्यमंडल दिल्ली। पृष्ठ-६४७, मूल्य २।।) है।

११—हमारे राष्ट्रपति—लेखक, श्रीयुत सत्यदेव विद्यालङ्कार, प्रकाशक, सस्ता-साहित्यमंडल दिल्ली। पृष्ठ-संख्या ३=१ और मूल्य १) है।

१—कसक—लेखक, कविवर 'हृदयेश', प्रकाशक, दी आइडियल लिट्रेरी पब्लिशिङ्ग हाउस, कानपुर हैं। पृष्ठ-संख्या २००, छपाई-सफ़ाई सुन्दर, मूल्य २।।) है।

पिछले पंद्रह वर्षों के भीतर हिन्दी-कविता के क्षेत्र में इतनी बड़ी क्रान्ति हुई है कि इस अध्याय का उल्लेख इतिहास में स्वर्णाक्षरों में किया जायगा। भाषा, भाव, सङ्गीत, प्रवाह, चित्रण और कल्पना, जिस ओर दृष्टि डालिए, सर्वत्र उन्नति-क्रम का एक नया आभास दृष्टिगत होगा। जिन कवि-शिल्पियों ने अपनी सुन्दर साधनाओं द्वारा हिन्दी की काव्य-वाटिका को इस काल में सजाया है, उसमें सौन्दर्य-सृष्टि की है, उस शिल्पी-दल के एक सदस्य हमारे वर्णनीय कवि 'हृदयेश' जी भी हैं। 'कसक' इन्हीं की सुन्दर रचनाओं का संग्रह है। यह कवि वर्ड्सवर्थ की भाँति केवल मूक-प्रकृति का उपासक नहीं, यह तो उसका आनन्द, मानव-हृदय की कोमल अनुभूतियों को चिरसङ्गी बनाकर लिया चाहता है। उसके हृदय-देश में कितने ही वसन्त आकर पुष्प-वर्षा-द्वारा अपनी श्री बिखेर जाते हैं, कितने ही पावस

आकर वहाँ उमड़-घुमड़ कर रिमझिम वर्षा भी कर जाते हैं, कोयलें आकर मीठे सुरीले मादक स्वरों में कूक जाती हैं, हरे-भरे श्यामल दूर्वादलाच्छादित शैल-शृङ्ग और नैसर्गिक श्रीसम्पन्न शैल-उपत्यकायें भी आकर नयनों में छवि का शीतल-सुख निचोड़ जाती हैं, लेकिन कवि का वञ्चित हृदय आत्म-वेदना में डूबा हुआ है—

"वनकुंजों में कितने ही आते वसंत हैं जाते।
पर हृदय-कुंज की मेरे वे कलियाँ नहीं खिलाते।"

वह एक बार वसंत-श्री को देखता है, और फिर एक—निराशा में डूबी हुई केवल एक निःश्वास छोड़ देता है। दिल में अंदर टटोल कर देखता है तो वहाँ की तो सभी कलियाँ मुरझाई हुई हैं। उसे अपने हृदय का अभाव खटकता है। वह अपने हृदय और प्रकृति में चिर सामञ्जस्य स्थापित करना चाहता है। अंतर की अनुभूति और तन्मयता आगे चलकर उसे प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करा देती है। उस अवस्था में उसे एक प्रकार के अनुभव-जन्य संतोष का आभास मिलता है। उस समय वह पर्वत-चोटियों पर झुके हुए बादलों को बरसता देखकर कहता है—

उर में विषाद की कालिख भर काले बादल छाये।
पर्वत को गले लगाकर रोने को हैं झुक आये॥

मनुष्य के अन्तर्जगत् में जिन प्रवृत्तियों का प्रादुर्भाव होता है, उन्हीं के अनुसार बहिर्जगत् की मूर्तिमत्ता भी दृष्टिगोचर होने लगती है।

रूप की प्यासी आँखें लज्जा के कारण प्रियतम के सौन्दर्य्य को चुपचाप कनखियों से देखती हैं, इस पर कवि ने क्या ही प्यारी कल्पना की है—

देखकर यौवन नृपति ललाम, कनखियों ने झुक किया प्रणाम,
सलज्जित अभिवादन अभिराम, अब भी नृत्य-निरत-नयनों में
चल-चितवन का चंचल-पन।

शिशु के सम्बन्ध में उसकी सर्वथा नवीन और अनोखी कल्पना देखिए—

मधुर-यौवन की लघु तस्वीर, नवल-आशाओं के मधुमास,
भावनाओं के मृदु-संसार—प्रेम के कम्पित नव उच्छ्वास;
ललित-जीवन-लतिका के पुष्प—अरे! ओ! सुंदर शिशु
सुकुमार!!

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रत्येक पितृ-हृदय के वात्सल्य-भावों के सुकुमार आदर्शों का चित्र चित्रित है।

गंभीर और आदर्श मनुष्य अपनी व्यथा को हँसी के आवरण में छिपाये रहता है, वह इसी में अपनी शोभा समझता है। इसी को कवि ने सरल शब्दों में चित्रित किया है, जो देखने—नहीं, समझने की वस्तु है—

यह हँसी देखकर मेरी तुम समझ रहे सुख मेरा—
इस परदे में डाला है दारुण ज्वाला ने डेरा।
जैसे पर्वत के ऊपर हरियाली घास विलसती—
भीतर ही भीतर लेकिन अति दारुण ज्वाल धधकती,
वैसे ही मैं भी उर में हूँ ज्वालामुखी छिपाये—
क्या जानें किस धक्के से उद्गारित न वह हो जाये॥

कवि की इस अनुभूति को उसका प्रत्येक श्रोता और पाठक उसे अपने ही हृदय की सच्ची अनुभूति समझता है।

साहित्य का मानव-जीवन से बहुत निकटतम सम्बन्ध है। दोनों का पारस्परिक प्रभाव अन्योन्याश्रित है। कुछ पंक्तियाँ नमूने के रूप में यहाँ उद्धृत की जाती हैं।

व्यङ्गशरों की सहन तपस्या का प्रतिफल कब पाऊँगी,
सजनि! शशी-सी बन कलङ्किनी कब उर-दाह मिटाऊँगी:
किस विधि जीवन धरे मयूरी बिन देखे शुचि श्यामल घन?

प्रियतम के लिए कलङ्किनी बनना भी सौभाग्य है, प्रेमी के लिए वह कलङ्क भी शशि के समान उज्ज्वलता, स्निग्धता और शीतलता प्रदान करेगा। उक्त पंक्ति सांकेतिक है।

× × ×

रूप के लिए हुई यह हँसी, प्रणय के लिए बन गई न्याय!
एक का सुख लेकर कर दिया—दूसरे के वश में निरुपाय॥

\+ + +

साक़ी फेंको प्याले को आँखें कब पीने देंगी,
यह मस्ती, विष, मादकता, उफ़! यह क्यों जीने देंगी;
उलटो अवगुंठन, देखो फैला निज रूप उजाला,
किसमें कितनी चेतनता—बेहोश कौन मतवाला;

\+ + +

था पिया सरोजकली ने वारिज-वन में जितना जल,
बूँदों बूँदों बरसाया—ढरकाया करके छलछल;
दोनों आँखों से मेरी हैं चिनगारियाँ निकलतीं,
पल पल पर पल-पंखों से दो व्याकुल-मीन मचलतीं;
जब प्रखर-निराशा के शर उर में चुभ विष बोते हैं।
आँखों के उष्णोदक से धुल घाव शान्त होते हैं॥
असफलता से जीवन में जब घोर युद्ध छिड़ता है।
तब रोने की छाया में आहत को सुख मिलता है॥

इन पंक्तियों में आप देखेंगे कि इनका निर्माता कवि भावनाप्रधान है। इसकी कविता में अनुभूति की मात्रा कहीं अधिक है। कवि पहले अनुभूति की ओर से दार्शनिकता की ओर जाता है। उसे जिस वस्तु का जैसा अनुभव हृदय पर होता है उसका याथातथ्य यथार्थ चित्रण कर देता है। कल्पना की मिठास और करुणा की कोमलता यदि पाठक देखना चाहें तो उसे वे अवश्य पढ़ें। आधुनिक कवितायुग की वह एक अमूल्य भेंट है।

—प्रोफ़ेसर रामेश्वरप्रसाद, एम० ए०

२८—कल्पवृक्ष-कार्यालय उज्जैन की ७ पुस्तकें—

उज्जैन के डाक्टर दुर्गाशङ्कर जी नागर ने आध्यात्मिक-मण्डल नाम की एक संस्था की स्थापना की है। इसके द्वारा वे लोगों को घर बैठे ही हिपनाटिज़्म, मस्मेरिज़्म, योग एवं अध्यात्म विषयों की शिक्षा देते हैं, जिससे वे शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक बल प्राप्त करके अपने और दूसरों के शारीरिक और मानसिक दुःखों का अन्त करें। आध्यात्मिकमण्डल के हज़ारों सदस्य अपने अपने स्थान में प्राकृतिक चिकित्सा-द्वारा जनसाधारण का कल्याण कर रहे हैं। उनके इस मण्डल की पचीस शाखाओं की स्थापना हो चुकी है। नागर जी 'कल्पवृक्ष' नाम का एक मासिक पत्र भी निकालते हैं। इसके सिवा आध्यात्मिक चिकित्सा-प्रणाली के प्रचार के लिए अनेक पुस्तकें तथा लेख लिखे हैं। यहाँ उनकी कुछ पुस्तकों का परिचय दिया गया है—

(१) प्रार्थनाकल्पद्रुम—रचयिता डाक्टर दुर्गाशङ्कर जी नागर हैं, पृष्ठ-संख्या १११ और मूल्य केवल ।) है।

लेखक महोदय ने अपनी इस पुस्तक में यह बतलाया है कि ईश्वर की प्रार्थना करने का स्थान कैसा हो, प्रार्थना कैसी करे, कब करे और कौन से लोग प्रार्थना करने के अधिकारी हैं। उनका कहना है कि दयामय प्रभु ही शांति का अक्षय भण्डार है, सब दशाओं में हमें उसे पुकारना चाहिए, उसी पर निर्भर रहना चाहिए, उसी से प्रार्थना करनी चाहिए, क्योंकि प्रार्थना से वे बातें सिद्ध होती हैं जिन्हें संसार स्वप्न में भी ख़याल में नहीं ला सकता। लेखक महोदय ने लिखा है कि स्वयं मेरा पन्द्रह-बीस वर्षों का अनुभव है। मेरे जीवन-पथ पर अग्रसर करने का कोई मुख्य साधन हुआ है तो वह ईश्वर-प्रार्थना ही है। मुझे अपने विद्यार्थी-जीवन में कठिनाइयों के समय मुझे परमात्मा की अदृष्ट सहायता मिलती थी और अब भी मिलती है। इसका मुझे पूर्ण अनुभव है। प्रार्थना के बल पर असाध्य मरणासन्न रोगियों को नव-जीवन प्राप्त हुआ है। एक नहीं सैकड़ों प्रमाण मेरे पास हैं। प्रार्थना में सफलीभूत होने के लिए प्रार्थना करनेवाले का चरित्र शुद्ध होना चाहिए। उसे सब व्यसनों से मुक्त होना चाहिए। उसकी जीवन-चर्या शुद्ध और सात्त्विक होनी चाहिए। सेवापरायणता उसके जीवन का मन्त्र हो तो उसके जीवन में किसी बात की कमी न होगी और उसके द्वारा अनेकों का कल्याण होगा। इस पुस्तक की रचना गद्य-पद्य-मय है और इसमें निम्नाङ्कित विषयों की विवेचना विद्वत्तापूर्ण सुन्दर रूप से की गई है। विचार-शक्ति, एकाग्रता, ध्यान और प्रार्थना के नियम, भावना-रहस्य, आध्यात्मिक-चिकित्सा, शान्तिदायिनी प्रार्थना, ब्रह्मचर्य और पवित्र जीवन की भावना, प्रार्थना-द्वारा अन्य प्राणियों को सहायता देना, सब प्रकार की शुभेच्छाओं को पूर्ण करनेवाली प्रार्थना, आत्मिक उन्नति की प्रार्थना, प्रार्थना का प्रभाव और रहस्य, मैं हूँ, डाली होय कबूल, दुःख में सुख, भाई में भगवान्, ॐ गायन, ॐ आनन्दम् आत्मसमर्पण, वैष्णव जन, तथा मेरी भावना इत्यादि।

(२) सूर्य-किरण-चिकित्सा—लेखक, श्रीयुत गोविन्द राव जी बापू जी टोंगू हैं। पृष्ठ-संख्या २०० और मूल्य १॥) है।

सूर्य किरण-चिकित्सा-प्रणाली हमारे यहाँ बहुत प्राचीन काल में प्रचलित थी, किन्तु हमारे अवनति-काल में अन्य अमूल्य विद्याओं के साथ इस विद्या का भी लोप हो गया।

इधर कुछ वर्षों से पाश्चात्य डाक्टरों और वैज्ञानिकों ने इस विद्या का पता लगाया और असाध्य से असाध्य कठिन रोगों का सूर्य-किरणों की सहायता से निर्मूल करने में सफलीभूत हुए। इस चिकित्सा-प्रणाली की दो विशेषतायें हैं—सरलता और सस्तापन। इस चिकित्सा-प्रणाली के लिए केवल छः-सात रंगीन बोतलों में स्वच्छ जल भर कर पाँच-छः घण्टे धूप में रखने से ही ओषधि तैयार हो जाती है। विशेषता तो यह है कि अपढ़ व्यक्ति भी ओषधि आसानी से तैयार कर सकता है।

इस प्रणाली-द्वारा एक प्रकार का तैल भी तैयार होता है। उसके प्रयोग से मस्तिष्क की सारी बीमारियाँ दूर होती हैं, असमय में पके बाल फिर काले हो जाते हैं तथा आँखों की ज्योति बढ़ती है। रंगीन काँचों-द्वारा नाना प्रकार के रोगों को धूप तथा दीपक की रोशनी-द्वारा दूर करने की प्रक्रिया का भी इसमें वर्णन है। जो लोग डाक्टरों या वैद्यों को रुपये देने में असमर्थ हैं और अपने अमूल्य समय की बचत भी चाहते हैं उनको सूर्य-किरण-चिकित्सा-प्रणाली का श्रद्धा के साथ स्वयं अनुभव करना चाहिए। इस पुस्तक में रोग-लक्षण और उनका उपचार, नाड़ी-परीक्षा, मूत्र-परीक्षा, सूर्य-प्रकाश और उसका शरीर पर प्रभाव, सूर्य-किरणों का वस्त्र पर प्रभाव, रंग और उनके गुण तथा अन्त में अपने पन्द्रह वर्ष के अनुभवों का वर्णन कर पुस्तक की उपयोगिता को और भी बढ़ा दिया है। सूर्य-किरण-चिकित्सा की यह पुस्तक प्रत्येक घर में रखने के योग्य है।

(३) ध्यान से आत्म-चिकित्सा—यह पुस्तक श्री अर्नेस्ट ई० मण्डे की एक पुस्तिका का हिन्दी-रूपान्तर है। रूपान्तरकार श्रीयुत व्योमचन्द्र जी तथा डाक्टर दुर्गाशङ्कर जी नागर हैं। पृष्ठ-संख्या ६७ और मूल्य ।।) है।

यह पुस्तक बारह ध्यान-सोपानों में विभक्त है। श्रद्धा, भक्ति, प्रेम और एकाग्रता के साथ मनन करनेवालों के लिए ध्यान से आत्म-चिकित्सा करने का पहला ध्यान 'सान्त्वना', दूसरा 'दृढ़ विश्वास' तीसरा 'इच्छा-शक्ति को बढ़ानेवाला' और चौथा 'सुख देनेवाला' इत्यादि हैं। पहले ध्यान में 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' सब कुछ ब्रह्म ही है। मैं परमात्मा का एक अंश हूँ। वह मेरा पिता है, मैं उसका पुत्र हूँ। फिर भी मेरा शरीर रुग्ण क्यों है? दूसरे में आरोग्यता की दृढ़ता, तीसरे में पदार्थ की अस्थिरता का वर्णन है। चौथे ध्यान में उपनिषद् कहता है कि सर्व यद-यमात्मा। सब कुछ आत्मा है। मैं केवल शरीर ही नहीं, मांस और रक्त का, अस्थि और नसों का, मैं हूँ और दावा रखता हूँ सर्वशक्ति के साथ सम्बन्ध का। पाँचवें ध्यान में स्वास्थ्य मेरा जन्मसिद्ध स्वत्व है, इसका वर्णन है। सर्वात्म दृष्टि होने से न मृत्यु, न रोग, न दुःख ही पास फटक सकता है। जिसने आत्मा को जान लिया उसे सर्व प्रकार से सभी वस्तुएँ मिल जाती हैं। छठें ध्यान में मनुष्य में निस्सर्ग-सिद्धि का कथन है। सातवें ध्यान में विचार-शक्ति पर प्रकाश डाला गया है। आठवें ध्यान में अस्वीकृतियों का तथा नवें ध्यान में स्वीकृतियों का सुन्दर रूप से विवेचन किया गया है। दसवें ध्यान में प्रेम और भय का दिग्दर्शन कराया गया है। ग्यारहवें और बारहवें ध्यान में आत्म-संयम और एकाग्रता पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। वास्तव में यह एक अनूठी पुस्तक है। इसका आकलन करने से तत्त्व का बोध है, जिससे शरीर और मन दोनों को स्वास्थ्य और शान्ति प्राप्त होती है।

(४) प्राण-चिकित्सा—रचयिता, डाक्टर दुर्गाशङ्कर जी नागर हैं। पृष्ठ-संख्या १२५ और मूल्य १) है।

मनुष्य के अन्दर एक ऐसी शक्ति छिपी हुई है जिसे प्राण-शक्ति कहते हैं। रोग-निवारण में इस शक्ति का उपयोग होता है। यह विद्या प्राणों से सम्बन्ध रखती है और प्राण-विनिमय करना इस विद्या के उपयोग का तरीक़ा है। कितने ही प्राणियों का कल्याण इसके द्वारा किया गया है। इसी विद्या को मेस्मेरिज़्म कहते हैं। डाक्टर दुर्गाशङ्कर जी नागर इस विद्या के पारंगत हैं और इसके द्वारा बहुतों का कल्याण किया है। अपने विषय की हिन्दी में यह एक उपयोगी पुस्तक है। प्राण-तत्त्व में शरीर के तीन तरह के रोगों का निदान किया गया है। पहला व्याधि अर्थात् स्थूल शरीर के रोग, दूसरा आधि अर्थात् सूक्ष्म शरीर के रोग, तीसरा उपाधि। आधि, व्याधि और उपाधि के क्रम से रोगों की विवेचना इस पुस्तक में की गई है। प्राण-विनिमय में यह बतलाया गया है कि किस प्रकार रोगियों के रोग को स्वस्थ उपचारक मेस्मेरिज़्म तथा मार्जन-द्वारा दूर करते हैं।

इसमें भूत लगने का भ्रम आदि का विवेचन सुन्दर रूप से किया गया है। प्रेतात्माओं से बातचीत करने के यन्त्रों का भी वर्णन सुन्दर रूप से किया गया है। इस पुस्तक में प्राणमय उपचार में उपचार के साधन, मार्जन अर्थात् पास करने की रीति, प्रबल और निर्बल शरीर, वस्तुओं को अभिमंत्रित करना और विद्युत्शक्ति का उपयोग करना, पानी को मैग्नेटाइज़ करना आदि बताया गया है और काग़ज़ में शक्ति भरने के प्रयोग के द्वारा रोगियों के अनेक रोगों को दूर करने के तरीक़े पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। प्राण-चिकित्सा का रहस्य अन्तर मन में ही है। अन्तर मन में सब सामर्थ्य है। मानस-शास्त्र का यह नियम है कि अन्तर मन पर जो जो विचार अंकित किये जाते हैं, उसी को वह अपने मन और शरीर में प्रत्यक्ष उत्पन्न कर दिखाता है। अन्तर मन सर्व प्रकार से नवीन बनाया जा सकता है। और प्रत्येक आदत और रोग का कारण अन्तर मन के अन्तस्तल में होने से दृढ़ संकल्प बल से वह वहाँ से समूल हटाया जा सकता है। दुर्बलता, भय, शङ्का, रोग, निरुत्साह और निराशा, अपवित्रता एवं निष्फलता के विचारों से स्वास्थ्य ख़राब होता है और भयंकर हानि होती है। इसके विपरीत आशा, प्रसन्नता, प्रेम, सुख-सौन्दर्य, स्वास्थ्य के विचारों से बल-वीर्य, उत्साह और आरोग्य का शरीर में संचार होता है। अन्तस्तल के सर्वोत्कृष्ट परम तत्त्व में मन को अखण्ड लीन करने से मन को असाधारण आनन्द और सुखद स्थिति प्राप्त होती है। मन से सर्व अनर्थ की सम्पूर्ण निवृत्ति होकर परमानन्द की प्राप्ति होती है। इस पुस्तक के द्वारा दीन जनता का महत् उपकार किया जा सकता है। यह विद्या भी अपूर्व है। जो लोग अख़बारों में सिद्ध कवच, त्रिकालदर्शी अँगूठी, इत्यादि के चक्कर में पड़ कर रुपया बरबाद करते हैं उनके लिए इस पुस्तक में पूरा मसाला मिलेगा और वे स्वयं अपने और अन्यों के कष्टों को दूर कर सकेंगे।

(५) अलौकिक चिकित्सा-विज्ञान—अनुवादक, पंडित रामलाल जी पहाड़ा हैं, सम्पादक और प्रकाशक डाक्टर दुर्गाशङ्कर जी नागर (सी० आई०) हैं। पृष्ठ-संख्या १६३ और मूल्य १) है।

अमेरिका में योग-प्रचार करनेवाले बाबा रामचरक जी की अँगरेज़ी पुस्तक के आधार पर इस पुस्तक का प्रणयन हुआ है। इसका मुख्य उद्देश मानसोपचारक उत्पन्न करना है। उपचारक कैसा होना चाहिए, इस पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। शरीर के प्राकृतिक नियम—भोजन को ख़ूब चबा चबा कर खाना, यथेष्ट जल का प्रयोग, शुद्ध श्वासोच्छ्वास, व्यायाम, नित्य स्नान, ईश्वरोपासना और यथेष्ट निद्रा लेने आदि के सम्बन्ध में ख़ूबी के साथ विवेचन किया गया है। उपचारकों को उपदेश किया गया है कि "लोगों को प्रकृति माता की गोद में पुनः लौटाने का प्रयत्न करो।" वे इस प्रेम-मय गोद से बहुत दूर भटक कर गोते खा रहे हैं। तर्कहीन क्रियाशील मन सदैव सुधार-स्थापन, पाचन, आत्मसातत्व, मलमूत्रोत्सर्ग इत्यादि कामों का संपादन किया करता है। कोषों, कोषसमूहों, ग्रन्थियों, अवयवों आदि के बौद्धिक कार्य भी प्रत्युत्पन्नमतियुक्त मन के निरीक्षण में होते रहते हैं। प्रत्येक मानवीय शरीर में कोष-जीवन की विचित्र सृष्टि की रचना है। आध्यात्मिक चिकित्सा के अन्दर शरीर में अनेक मन हैं। कोषों का 'मन' अवयव के 'मन' के और अवयव का मन शरीर भर के साधारण मन के अधीन है। यह भौतिक शरीर सूक्ष्म जीवों—कोषों से बना हुआ है। इन सूक्ष्म जीवों में कुछ अंश में स्फुटित मन रहता है। इन जीवों के मन में अपने विशेष कामों के लिए विचित्र योग्यता रहती है। यह सब विषय इस पुस्तक में विस्तार के साथ बताया गया है। मानसिक चिकित्सा के तीन रूपों—पहला प्राणमय चिकित्सा, दूसरा मनोमय-चिकित्सा, तीसरा आध्यात्मिक चिकित्सा—की विवेचना बहुत ही ख़ूबी के साथ की गई है। इनमें आध्यात्मिक चिकित्सा सर्वोत्तम है। प्राणमय चिकित्सा के सिद्धान्तों के ज्ञान से उपचारकों में प्राण का प्राप्त करना, संचय करना, और उचित प्रयुज्य करने की विधि आ जाती है। प्राण चिकित्सा का साधारण सिद्धान्त यह है कि प्राण का परस्पर विनिमय नाना प्रकार से हो सकता है और रोगियों

के रोग को प्राण प्रेषित करके दूर किया जा सकता है। "हाथ फेर कर रोगी की पीड़ा दूर करने की विधि से प्राचीन काल के भारतवासी, मिस्र-देशवासी, यहूदी और चीनी पूर्ण परिचित थे। प्राण चिकित्सा की अभ्यास-प्रकरण में पूरी व्याख्या की गई है। प्राणमय-उपचार-प्रकरण में हाथों की तैयारी, प्राण साधारण-उपचार-द्वारा शरीरान्तर्गत सारे अवयवों तथा कोषों की सारी बीमारियों के निवारण करने की प्रणाली का वर्णन अति उत्तमता से किया गया है। दूरस्थ चिकित्सा और अपने आँख की प्राण चिकित्सा, प्राण-वितरण, शूल-दमन, रक्तसंचार अभिसरण, स्वयम् विद्युतान्वित करना, मस्तिष्कोत्तेजन, योगियों का महान् आध्यात्मिक श्वासोच्छ्वास करने की विधि तथा शरीर के सात संजीवन केन्द्रों में प्राणधारा भेज कर निकम्मे शरीर के कायापलट करने आदि का भी सुन्दर वर्णन किया गया है। सूचनात्मक उपचार किन किन तरीक़ों से होता है, रोगियों को क्या करना चाहिए, इन बातों का दिग्दर्शन अच्छी तरह से कराया गया है। पुस्तक अपने विषय की एक ही है।

(६) संकल्प-सिद्धि—रचयिता, स्वामी ज्ञानाश्रम जी महाराज, सम्पादक और प्रकाशक, डाक्टर दुर्गाशङ्कर जी नागर हैं। पृष्ठ-संख्या १८९ और मूल्य ॥=) है।

मनुष्य-मात्र की उन्नति तथा अवनति का सारा दारोमदार उसके अच्छे और बुरे दृढ़ सङ्कल्प पर ही विशेष रूप से निर्भर करता है। मनुष्य के अच्छे विचार उसकी उन्नति के पथ का उसे अनुगामी बनाता है और बुरे विचार क्षणिक आनन्ददायी होने पर भी रसातल के गड्ढे में गिराता है। हमारे विचार ही हमें धनी अथवा दरिद्री, सुखी अथवा दुखी बनाने में सहायक होते हैं। यदि हम अपने विचारों को उचित मार्ग पर चलाना जान लें और चला सकें तो हम समस्त दुःखों से छुटकारा पाकर परमानन्दमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं। लोग रोगी के पास प्रायः बुरे विचार अथवा सन्देहात्मक ही विचार पेश किया करते हैं। उनको चाहिए कि वे कृपया रोगी को धैर्य धरने और शीघ्र अच्छा होने की ही बातें किया करें। इस प्रकार विचार-विषय की विवेचना उदाहरणों-द्वारा तर्क के साथ इस पुस्तक में की गई है। इसके सिवा विचारों के उत्पत्ति-स्थान, मस्तिष्क का वर्णन तथा उसकी निर्बलता की निवृत्ति के उपायों पर भी प्रकाश डाला गया है। उत्तम विचारों की उत्पत्ति के उपायों की विवेचना उदाहरणों-द्वारा अत्यन्त ख़ूबी के साथ की गई है। यह पुस्तक प्रत्येक बालक, बालिका, स्त्री तथा पुरुष के मनन करने के योग्य है।

(७) प्राकृतिक आरोग्य-विज्ञान—अनुवादक, नारायण गोविन्द नागर, सम्पादक और प्रकाशक डाक्टर दुर्गाशङ्कर नागर हैं। पृष्ठ-संख्या ३४ और मूल्य ।) है।

यह पुस्तक डाक्टर के० रामस्वामी, एम० ए०, पी० एच० डी० की 'हेल्थ-कल्चर' का हिन्दी-रूपान्तर है। मनुष्य का आनन्दमय और दुःखमय जीवन उसके स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य पर निर्भर करता है। हमारी माताओं को ऋतुओं के अनुसार खाद्य अखाद्य पदार्थों की अनभिज्ञता तथा लापरवाही के कारण बालकों को लाड़-प्यार में, बाज़ारों की सड़ी-गली मिठाइयों का विशेष रूप से सेवन कराकर, बाल्यावस्था में ही उनकी आरोग्यता की नींव को खोखली बना देती हैं। किशोरावस्था में अभिभावकों तथा अध्यापकों की देख-रेख की ढिलाई के कारण भी उनमें बहुत-सी बुराइयाँ जीवन भर के लिए अपना घर बना लेती हैं। इस पुस्तक में आरोग्य एवं रोग की व्याख्या विशद रूप से की गई है। मानसिक आरोग्यता भी शारीरिक आरोग्यता के साथ रहती है। बुरे चरित्र के लोग कदापि निरोगी नहीं रह सकते। शरीर और आत्मा का गहरा सम्बन्ध है। रोगी का प्रथम कर्तव्य यह है कि रोग की अवस्था में मल को उदर में अधिक संचित न होने दे। शरीर के भीतर जो मल सञ्चित हो जाता है, वह विष के तुल्य रहता है। उसको बाहर निकालना अत्यावश्यक है। प्रकृति स्वयं अपने चार मार्गों—फेफड़े, त्वचा, गुदा और मूत्रेन्द्रिय के द्वारा दूषित मल को निकाल फेंकती है। भोजन के नियम, उपवास, शारीरिक व्यायाम की बारह क्रियायें, प्राणायाम, श्वास-क्रिया-द्वारा रोग-निवारण, प्रकृति से रोग-रहित परिमाण आकर्षित करना, मनोविकारों को दमन करना, इच्छा-शक्ति, प्रत्युत्पादिक शक्ति को परिवर्तन करना, मानसिक प्रतियोग क्रियायें, विचार अथवा वस्तु और विविध प्रकार के स्नान विषयों पर बहुत ही ख़ूबी के साथ इस पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। निर्बल तथा रोगग्रस्त मनुष्यों के यह बड़े काम की पुस्तक है।

—पंडित रामनारायण मिश्र

९—पुरानी दुनिया—लेखक, श्रीयुत रामचन्द्र वर्मा, प्रकाशक, गंगा-ग्रंथागार, ३६ लाटूश रोड, लखनऊ हैं। पृष्ठ संख्या २३३ और मूल्य १॥) है।

वर्मा जी ने इस पुस्तक की रचना का ढंग कथात्मक रक्खा है। इससे इसका पारायण करते समय पाठकों की रुचि उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। इसमें पश्चिमी देशों के प्राचीन इतिहास का अधिक वर्णन किया गया है और कथात्मक शैली-द्वारा पाठकों का ध्यान वास्तविक घटनाओं की ओर ही आकर्षित करने का प्रयत्न किया गया है। विषय और समय के क्रमानुसार यह पुस्तक तीन भागों में विभक्त है—प्राचीन पूर्व, यूनान और रोम। इस क्रम के होने से पाठकों के दिमाग़ में इन देशों की प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं और उनके समय का ख़ाका भले प्रकार खिंच जाता है। इसके पढ़ने से हमें इन देशों की सभ्यता के प्राचीन कशमकश और दाँव-पेचों का पूरा पता लग जाता है। वास्तव में इतिहास के ज्ञान के लिए यह अपने ढंग की एक उपयोगी पुस्तक है।

१०—बाईसवीं सदी—लेखक, श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन, प्रकाशक, साहित्य-सेवा-संघ, छपरा हैं। पृष्ठ-संख्या १७४ और मूल्य १) है।

श्री राहुल जी ने इस पुस्तक में अपने जीवन के बहुत-से अनुभवों का वर्णन करने का प्रयत्न किया है। इस पुस्तक में एक ऐसी व्यवस्था का वर्णन किया गया है जिसके द्वारा आदमियों को कम-से-कम परिश्रम करना पड़े और वे सब बराबर खाते-पीते सुखी रहें। राहुल जी ने विषयानुसार इसको १६ अध्यायों में विभक्त किया है और उनको वर्णनात्मक ढंग पर लिखा है।

लेखक महोदय की राय है कि भिन्न भिन्न पैदावारों की दृष्टि से ग्रामों की स्थापना होनी चाहिए। उनमें कम-से-कम १,००० आदमियों के रहने, खाने, सोने आदि की सारी व्यवस्था साथ-साथ हो। सब लोग एक ही चीज़ की पैदावार बढ़ाने पर जी-जान से तैयार हों। लड़कों के तीन साल तक अलग पालन-पोषण की व्यवस्था हो, जिसमें उन्हें भिन्न भिन्न प्रकार के चित्रों आदि से संसार की व्यावहारिक चीज़ों का ज्ञान कराया जाय। फिर वे स्कूल में भर्ती किये जायँ और कोई एक ही भाषा सीखें। किन्तु जब वे १४ वर्ष से ऊपर के हो जायँ तब उन्हें विश्व की कोई एक भाषा का ज्ञान कराया जाय। हानिकारक जानवर विनष्ट कर दिये जायँ। वे जानकारी के लिए अजायबघरों में रक्खे जायँ। कोयले से चलनेवाली मशीनें पानी के द्वारा पैदा की हुई बिजली की शक्ति से चलाई जायँ और धुआँ आदि का नाम भी न रहे। सफ़ाई में ख़र्च न किया जाय, बल्कि पानी के ऐसे बड़े बड़े नलों का आविष्कार हो जो बात की बात में गंदगी को बहाकर एक निश्चित स्थान पर डाल दें, जहाँ उसकी खाद बनाई जाय। ऐसी सरायों की संस्थापना की जाय, जहाँ मुसाफ़िर बिना किसी अड़चन के आराम कर सकें और उन्हें ख़र्च भी न करना पड़े। खाने में फलों की अधिकता तथा अन्य पदार्थों की कमी हो इत्यादि।

इसी प्रकार की बातों का इसमें वर्णन किया गया है। इसके पढ़ने से लोगों की समझ में साम्यवाद की दलीलें आ सकती हैं। यह पुस्तक हिन्दी में अपने ढंग की एक उपयोगी पुस्तक है। नवयुवकों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

११—कन्या-शिक्षा-दर्पण—लेखिका, श्रीमती पार्वती-देवी, प्रकाशक, काशी-पुस्तक-भंडार, बनारस सिटी हैं। पृष्ठ-संख्या ८३ और मूल्य ।।) है।

इस पुस्तक में बालिकाओं की रहन-सहन, स्वास्थ्य और सफ़ाई आदि पर पूर्ण रीति से प्रकाश डाला गया है। वर्णित वस्तु के समझाने के लिए उदाहरणों से भी काम लिया गया है, जिससे लड़कियों की समझ में वह बात आसानी से आ जाय। लड़कियों को धर्म, कसरत, संगीत, शिक्षा, चिट्ठी-पत्री लिखने का ढंग भी इसमें बताया गया है। साधारण हिसाब-किताब लिखना,

लिखना, बड़े-छोटे को पत्र लिखना, और हिन्दुस्तानी प्रचलित रक़में आदि सब बताया गया है। इन बातों को जानकर हमारी बहनें अपने गृहस्थी का कार्य आसानी से कर सकेंगी। अतः उन्हें एक बार इस पुस्तक को अवश्य पढ़ना चाहिए। इसकी भाषा भी सरल तथा सुबोध है।

१२—गोराबादल की कथा—सम्पादक, पंडित अयोध्याप्रसाद शर्मा, 'विशारद,' प्रकाशक, तरुण-भारत-ग्रन्थावली-कार्यालय, दारागञ्ज, प्रयाग हैं। पृष्ठ-संख्या ४४ और मूल्य ।=) है।

शर्मा जी ने जटमलकृत इस रचना का सम्पादन करके हिन्दी-साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण कमी की पूर्ति की है। श्रीयुत रामकुमार जी वर्मा ने इसकी पांडित्यपूर्ण भूमिका लिखकर इसका महत्त्व बढ़ाया है। इस पुस्तक में छप्पय, चौपाई, दोहे आदि भिन्न भिन्न छन्दों का प्रयोग किया गया है। भाषा भी तत्कालीन राजस्थानी है, जिसका समझना हिन्दी-भाषा-भाषियों के लिए कुछ कठिन था। पर पुस्तक के अन्त में शब्दार्थ दे दिये गये हैं, जिससे कठिनाई बहुत कुछ दूर हो गई है। इस पुस्तक को पढ़कर पाठक गोराबादल के साहस-पूर्ण कार्यों का भलीभाँति परिचय प्राप्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त इसके द्वारा भारतीय इतिहास पर एक महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है, जिससे हिन्दी-भाषी जनता अपने पूर्वजों की वीरता और उनके आत्माभिमान का ज्ञान प्राप्त कर सकती है। प्राचीन साहित्य के प्रेमियों को इसका अवश्य संग्रह करना चाहिए।

१३—चींटी और दीमक—लेखक, श्रीयुत लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी, प्रकाशक, श्री मध्यभारत-हिन्दी-साहित्य-समिति, इन्दौर हैं। पृष्ठ-संख्या १६० और मूल्य ।।।) है।

चींटी और दीमक दो छोटे-से जीव हैं, जिनको भारत के सभी लोग जानते हैं। लेखक ने पाश्चात्य विद्वानों की खोज के आधार पर इनके विषय में अनेक अनोखी बातें लिखी हैं, जिनके पढ़ने से इन नन्हें-से जीवों की अद्भुत करामात पाठकों की समझ में आसानी से आसकती है। इनकी उत्पत्ति, निवास-गृह, और कार्यों का सविस्तर वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। इस विषय की जानकारी रखने के लिए लोगों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। इससे इनकी उपयुक्तता और चालाकी को जानकर लोग स्वयं अपना सुधार करने में समर्थ हो सकते हैं। पुस्तक की भाषा सरल और बोधगम्य है। बालकों के लिए यह पुस्तक विशेष रूप से उपयोगी है।

—गंगासिंह

१४—बनारसी एक्का—लेखक, श्रीयुत कृष्णदेवप्रसाद गौड़, एम० ए०, एल० टी०, 'बेढब' 'बनारसी', प्रकाशक, साहित्य-सेवक कार्यालय, काशी, हैं। पृष्ठ-संख्या १४० है और मूल्य १) ।

हास्य मानव-साहित्य का सजीव और आवश्यक अङ्ग है। अभी तक हिन्दी-साहित्य में शिष्ट, मनोवैज्ञानिक तथा सजीव हास्य की ओर जितने भी लेखक उन्मुख हुए हैं उनमें श्री अन्नपूर्णानन्द वर्मा, श्री भूपनारायण दीक्षित तथा श्री गौड़ ही ऐसे हैं जिन्हें हम 'अप टू दि मार्क' पाते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक यद्यपि गौड़ जी की प्रथम रचना है, फिर भी हमें उसमें लेखक की सजीव हास्य-प्रवृत्ति तथा हास्य की ओर उनकी स्वाभाविक रुझान का काफ़ी परिचय मिलता है। गौड़ जी से हम सहमत हैं कि हमारा दैनिक जीवन हास्य की अनेक धाराओं से भरा पड़ा है; लेकिन उसमें से सजीव हास्य निकालना और उसे साहित्य में उपस्थित करना भी तो एक कला है। हास्य का ध्येय ही हास्य है और उसकी कला उसी में है।

पुस्तक में गौड़ जी की १४ कहानियाँ प्रस्तुत की गई हैं। सभी कहानियाँ अपने ढङ्ग पर लिखी गई हैं। सभी में हास्य का अतिशयोक्तिक पुट है। हास्य-रचना के अनेक पहलुओं में से लेखक ने अतिशयोक्ति को ही अच्छा समझा है और उसी का इसमें सुन्दर प्रदर्शन भी है। हमें यह लिखते हुए सन्तोष हो रहा है कि इन कहानियों के प्लाट जीवन की घटनाओं से चुने गये हैं और इनमें लेखक का अनुभव तथा अनुभूति भी सन्निहित है। 'बनारसी एक्का', 'चप्पल की कहानी', 'चिकित्सा का चक्कर' तथा 'कविता का कचूमर' शीर्षक कहानियाँ हमें भली मालूम हुईं। 'चिकित्सा का चक्कर' तो लेखक की नायाब रचना है और उसमें उनके व्यक्तिगत जीवन का बीमार पहलू साफ़ नज़र आता है। डाक्टर होते हुए हमारा भी यही अनुभव है कि भारत के सैकड़ों मरीज़ों को रोज़ ही ऐसे अवसर आते हैं।

इन कहानियों में सजीवता है और शिष्ट हास्य भी। लेखक में हास्य-रस की यथोचित प्रवृत्ति है। हम तो उनसे अनुरोध करेंगे कि वे अपने लासानी तरीक़े से हिन्दी के इस क्षेत्र में आवें। हम उनका स्वागत करते हैं।

डाक्टर रविप्रतापसिंह श्रीनेत

१५—प्रभा—इसके लेखक श्री गणेशीलाल जी माथुर बी० ए०, एम० एफ़ हैं। आप उन भावुक भक्तों में हैं जिन्होंने अपने जीवन का प्रवाह ईश्वर-भक्ति की ओर ही झुका दिया है। प्रभा को लिखकर आपने सन्तजनों पर बड़ा ही अनुग्रह किया है। इसमें वेद, पुराण, गीता आदि धार्मिक ग्रन्थों के चुने हुए मतों का संकलन है। जीव क्या है, उसका उस सर्वशक्तिमान् से क्या सम्बन्ध है, शुद्ध ज्ञान तभी हो सकता है जब अन्तःकरण शुद्ध होगा, मन को वश में करना ही परम-पद को प्राप्त करना है आदि विषयों पर धार्मिक ग्रन्थों के उद्धरणों की सहायता से सुन्दर विवेचन किया गया है। सांसारिक माया-जाल में फँसे जीवों के लिए यह पुस्तक अनुपम वस्तु है, जिसके अध्ययन से उनके हृदय का अन्धकार दूर हो जायगा और उनके हृदय में उस सर्वशक्तिमान् की ज्योति का आभास दीखेगा। आशा है, भक्तजन तथा सर्वसाधारण प्रभा से लाभ उठावेंगे। लेखक को राममन्दिर, रामबाग, इलाहाबाद के पते पर लिखने से मुफ़्त मिल सकती है।

—माधवप्रसाद शर्मा

१६—हैहय-क्षत्रिय-मित्र का (हीरालाल-अंक)—संपादक, श्री गोरखप्रसाद डी० एस० सी०, प्रकाशक, हैहय-क्षत्रिय-सभा, ४३० मुट्ठीगंज प्रयाग है, पृष्ठ-संख्या १९७ और मूल्य १) है।

डाक्टर हीरालाल हिन्दी के महान् प्रेमियों में थे। 'हैहय-क्षत्रिय-मित्र' का यह अंक उन्हीं की स्मृति में 'हीरालाल-अंक' के नाम से निकला है। हिन्दी के सुलेखकों के जो लेख इसमें छापे गये हैं उनसे स्वर्गीय डाक्टर हीरालाल के जीवन का पाठक को पूरा परिचय मिल जाता है। वे कितने प्रतिभाशाली तथा विशिष्ट विद्वान् थे तथा उनकी कितनी उन्नति हुई एवं उनका कितना उच्च व्यक्तित्व था, यह सब इस अंक के प्रामाणिक लेखों का पारायण करने से भले प्रकार जाना जा सकता है। विद्वान् सम्पादक ने जो लेख और कवितायें इसमें छापी हैं, सभी उत्तम हैं। साथ ही डाक्टर साहब के भिन्न भिन्न समयों के जो चित्र संग्रह किये गये हैं उनसे यह अंक और भी उपयोगी हो गया है। 'हैहय-क्षत्रिय-मित्र' का यह अंक वास्तव में डाक्टर साहब के सर्वथा उपयुक्त निकला है और यह हैहय-क्षत्रियों के लिए तो उपयोगी है ही, अन्य जातियों के हिन्दी-प्रेमी भी इसके पाठ से लाभ उठा सकते हैं। इस अंक में डाक्टर गंगानाथ झा, श्री काशीप्रसाद जायसवाल श्री राहुल सांकृत्यायन और श्री जयचन्द विद्यालंकार जैसे व्यक्तियों के लेख छापे गये हैं। ऐसा सुन्दर और उपयोगी विशेषांक निकालने के लिए इसके सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद वास्तव में बधाई के पात्र हैं।

१७—विशाल भारत का 'राष्ट्रीय अंक'—सम्पादक, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, संयुक्त सम्पादक, श्री ब्रजमोहन वर्मा, प्रकाशक, 'विशाल भारत' कार्यालय, १२०।२ अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता हैं। वार्षिक मूल्य ६) तथा एक अंक का ॥=) है।

अप्रैल के इस राष्ट्रीय अंक के प्रायः सभी लेख और कवितायें राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत हैं। बाबू राजेन्द्रप्रसाद, श्री श्रीप्रकाश एम० एल० ए०, श्री कृष्णदत्त पालीवाल एम० एल० ए०, कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, प्रो० ब्रजनारायण, श्री सम्पूर्णानन्द, श्री मैथिलीशरण गुप्त आदि विद्वानों के सुन्दर लेखों और कविताओं का इसमें संकलन किया गया है। इस अंक में ७ कवितायें, ४ सचित्र लेख और २४ सादे लेखों का संकलन है। राष्ट्र के विषय में दिलचस्पी रखनेवाले लोगों के लिए यह अंक अधिक उपयोगी है।

[illegible]

हमारे देश में बहुत-से लोग अब भी ऐसे हैं जो यह विश्वास करते हैं कि रुपया परिश्रम से नहीं, बल्कि किसी-न-किसी देवता या साधु को प्रसन्न करने से प्राप्त हो सकता है। ऐसे लोग प्रायः धोखा खा जाते हैं। गत १३ मई की बात है, लाहौर के दो दूकानदारों ने कहीं से सुना कि लाहौर में एक ऐसा फ़क़ीर आया है जो रात को आसमान से रुपये बरसाता है। वे तुरन्त उसकी तलाश में निकल पड़े। सौभाग्य से उन्हें फ़क़ीर मिल गया। दूकानदारों ने उसके चरणों पर मस्तक रख दिये और कहा महाराज—"मेरे आँगन में एक रात बरसा दो।" फ़क़ीर ने उनसे कहा—"तुम्हारे पास जो नक़दी हो वह मेरे हवाले करो और तब प्रार्थना करो तो तुम्हारी प्रार्थना सुनी जायगी।" दूकानदारों ने ऐसा ही किया। उनके पास २२ रुपये थे। वे फ़क़ीर की जेब में गये। बदले में फ़क़ीर ने मंत्र पढ़े और चूरन दिया। दूकानदार लोग घर आये और बजाय एक रात के तीन रात आसमान की ओर टकटकी लगाये बैठे जागते रहे। पर एक पैसा भी न गिरा।

× × × ×

यह फ़क़ीर अब पकड़ा गया है और उस पर इन भोले दूकानदारों के ठगने का अभियोग लगाया गया है। इसमें शक नहीं कि यह फ़क़ीर ठग है, पर ये दूकानदार भोले नहीं कहे जा सकते। आख़िर इन्होंने भी तो फ़क़ीर को ठगने का ही प्रयत्न किया था। यदि फ़क़ीर में सचमुच ऐसी शक्ति होती तो ये दूकानदार २२) के बदले में हज़ारों पर हाथ साफ़ करना चाहते थे। एक प्रकार से फ़क़ीर ने इन्हें कम ही सज़ा दी। मज़ा तो तब आता जब वह इनके घरों में दस-बीस पत्थर फेंक देता।

× × × ×

लैंसडाउन के पास एक गाँव में एक तेंदुए ने बड़ा उपद्रव मचा रक्खा है। वह क़रीब छः बच्चों की जान ले चुका है और १०-१२ को घायल कर चुका है। कहते हैं, वह इतना धृष्ट हो गया है कि दिन डूबते ही घरों में घुस जाता है और स्त्रियों पर हमला कर देता है। भारतवर्ष की स्त्रियों के हाथ में अब जो एकमात्र अस्त्र बच रहा है वह शायद झाड़ू है। कतिपय कहानी-लेखकों ने गुंडों पर स्त्रियों-द्वारा इस अस्त्र का प्रयोग करवाया है। हमारा ख़याल है, पति भी इस अस्त्र से डराये जा सकते हैं। पर उपर्युक्त अवसरों के लिए यह अस्त्र बे-काम है। गाँववाले भी लाठी के सिवा और कोई अस्त्र नहीं रख सकते। और लाठी भी ऐसे अवसरों पर बहुत काम नहीं देती। कम-से-कम उन गाँवों में जहाँ ऐसे बनैले पशुओं या डाकुओं का भय हो, सरकार को आत्मरक्षा के लिए अस्त्र-शस्त्र रखने का अधिकार लोगों को देना चाहिए। पर शायद सरकार सोचती है कि इस प्रकार कम ही जानें जाती हैं। क्योंकि यदि गाँववालों को हथियार मिल गये तो वे एक-दूसरे पर उनका प्रयोग करके स्थिति और भी बिगाड़ लेंगे।

× × ×

भारत-सरकार के होम-मेम्बर सर हेनरी क्रेक हाल में अंडमान से लौटे हैं। उस सम्बन्ध में आपके अनुभव जानने के लिए शिमले में पत्रकारों ने आपको जा घेरा। आपने पत्रकारों से अंडमान का वर्णन करते हुए कहा—"यह पृथ्वी पर नरक होने के बजाय क़ैदियों के लिए स्वर्ग है।" इस बात को लेकर भारत के प्रायः सभी पत्रों में विवाद उठ खड़ा हुआ है और लोग पूछ रहे हैं कि "यदि अंडमान स्वर्ग है तो नर्क कहाँ है?" जो भारतीय क़ैदी अंडमान में हैं वे वहाँ रहना नहीं चाहते। तब यह मानना पड़ेगा कि वे उसे स्वर्ग नहीं समझते।

× × ×

सच बात यह है कि सर हेनरी क्रेक साहब पत्रकारों से बातें कर रहे थे। और बहुत सम्भव है कि उस समय उनमें साहित्यिकता चेत गई हो जैसे पण्डित रामनरेश त्रिपाठी में चेती थी जब वे कश्मीर गये थे। श्रीनगर की 'मल-भरी गलियाँ, पुरीष-भरे घर-द्वार' देखकर त्रिपाठी जी चिल्ला उठे थे कि "यदि स्वर्ग है यही तो फिर कौन-सा नरक है!" अपनी अपनी दृष्टि तो है। जिस कश्मीर को संसार स्वर्ग कहता है उसे त्रिपाठी जी ने नरक कहा और जिस अंडमान को संसार नरक कहता है उसे क्रेक साहब ने स्वर्ग घोषित किया। बहुत सम्भव है कि क्रेक साहब ने जब यह सुना हो कि त्रिपाठी जी कश्मीर को नरक कहते हैं तभी से वे स्वर्ग की खोज में लग गये हों और अब उसे ढूँढ़ निकाला।

× × ×

काशी के प्रसिद्ध चित्रकार श्री केदारनाथ शर्मा बिहारी के दोहों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए प्रत्येक दोहे पर व्यङ्ग्य चित्र बना रहे हैं। उनमें से कुछ चित्र यहाँ हम दोहों के साथ छापते हैं। आशा है, पाठकों का इनसे यथेष्ट मनोरञ्जन होगा।



जदपि लौंग ललितौ तऊ, तू न पहिर इक आँक।
सदा संक बढ़ियै रहै, रहै चढ़ी सी नाक॥



नित प्रति एकत ही रहत, बैस बरन मन एक।
चहियत जुगल किसोर लखि, लोचन जुगल अनेक॥



मोर चन्द्रिका स्याम सिर, चढ़ि कत करति गुमान।
लखिबी पायन पै लुठत, सुनियत राधामान॥

चिट्ठी-पत्री

विरोधाभास

'सरस्वती' के एक बुद्धिमान् पाठक श्रीमान् भालचन्द्र शर्मा ने विरोधाभास पर एक छोटा-सा किन्तु विद्वत्तापूर्ण नोट लिखा है जिसे मई की 'सरस्वती' में स्थान मिला है।

श्रीमान् शर्मा जी ने अपने नोट के प्रारम्भ में एक बड़ी खोज की बात लिखी है। उनका कहना है कि "आज-कल की हिन्दी की कविताओं में विरोधाभास बहुत मिलता है।" 'मूक गान', 'नीरव नाद' 'अस्फुट झंकार' इत्यादि से परिचित हिन्दी-संसार के लिए यह कोई नई बात नहीं है, किन्तु अपनी उस खोज के बाद वे जिस नतीजे पर पहुँचे हैं वह कुछ विचित्र अवश्य है। वर्तमान हिन्दी-कविता में विरोधाभास का बाहुल्य देखकर वे पूछते हैं—"इसका कारण इसके सिवा और क्या हो सकता है कि आज-कल के कवि अलंकारशास्त्र का अध्ययन नहीं करते।" सचमुच, कितने दूर की सूझी है। पता नहीं, हिन्दी-कविता में विरोधाभास की अधिकता को देखकर कोई भी इस नतीजे पर कैसे पहुँच सकता है कि आज-कल के कवियों को अलंकारशास्त्र का अध्ययन नहीं है। क्या कविता में विरोधाभास का होना वे कोई दोष समझते हैं? यदि हाँ तो मुझे बाध्य होकर कहना पड़ेगा कि वे ग़लती पर हैं।

किन्तु सबसे अधिक कमाल किया है श्री शर्मा जी ने विरोधाभास का उदाहरण बतलाने में। उनकी राय में अप्रेल की 'सरस्वती' में प्रकाशित मेरी 'परिवर्त्तन'-शीर्षक कविता इसका सबसे सुन्दर उदाहरण है। "मेरे इस सूने से नभ में बादल आते, बिजली आती" में उनको विरोधाभास दिखलाई पड़ता है। पता नहीं, कैसे। 'मेरे इस सूने से घर में तुम आते हो'—इसमें न जाने विरोधाभास कहाँ से टपक पड़ा। यदि मैं यह भी कहता कि तुम्हारे आने पर भी घर सूना ही रह जाता है तो भी एक बात थी हालाँ कि वैसा कहने में भी मैं कोई दोष नहीं देखता, किन्तु हमारे शर्मा जी ने समझा वैसा ही।

शर्मा जी बड़े ही भोलेपन से पूछते हैं—"अब पता नहीं अभी और कौन-सी चीज़ बाक़ी है जिसके बग़ैर आपका नभ सूना है।" क्यों महाशय जी, "नभ सूना है" और "और नभ सूना-सा है" में क्या कोई अंतर आपको नहीं जान पड़ता, फिर भी आप इस प्रकार लिखते हैं मानो ये दोनों बातें एक ही हों। अब ये छोटी-छोटी-सी बातें कहाँ तक समझाई जायँ।

बात तो सीधी यह है कि नभ का सूनापन मेरा वर्ण्य विषय नहीं है! मैं तो परिवर्तन पर लिख रहा हूँ जिसका उदाहरण प्रत्यक्ष प्रकृति से देते हुए मैं अन्त में इस नतीजे पर पहुँचता हूँ कि—

"यों होता रहता परिवर्तन, परिवर्तन ही जग का जीवन,
तुम मौत जिसे बतलाते हो वह भी तो है बस परिवर्तन।
मन सोच न कर, चुपचाप तमाशा देख नियति जो दिखलाती।"

नियति के इस तमाशे से ही मेरा मतलब है और यह तमाशा हुआ करता है 'मेरे इस सूने-से नभ में' जिसमें बादल, बिजली, सूरज, चन्दा, उषा, अँधेरा, उजाला, तारे, दिन-रात सभी आते रहते हैं। नभ को शून्य सभी कहते हैं, हालाँ कि मैं निश्चयात्मक रूप से कुछ भी कहने में असमर्थ होने के कारण उसे 'सूना-सा' कहता हूँ, क्योंकि इतनी चीज़ों के आते-जाते रहने पर भी नभ सूना ही रह जाता है अथवा नहीं, इसमें इस कविता में मुझे कोई बहस ही नहीं है।

—मनोरञ्जन

सामयिक साहित्य

हमारा शब्द-कोष कैसा हो?

हम हिन्दी-भाषा-भाषी जितने शब्दों से काम चलाते हैं वे यथेष्ट नहीं हैं। भाषा की पूर्णता के लिए हमें और भी शब्दों की आवश्यकता है। ये शब्द कहाँ से मिल सकते हैं? २४वें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी ने इस प्रश्न के उत्तर में अपने भाषण में बहुत-सी महत्त्व-पूर्ण बातें कही हैं। उनके भाषण का तत्सम्बन्धी अंश इस प्रकार है—

हिन्दू-संस्कृति संस्कृत-द्वारा ही सारे भारत में फैली है और आज भी संस्कृत-शब्दों का ज्ञान स्वतंत्र रूप से और इन गुजराती, मराठी, आसामी, तामिल, तेलगू, मलयालम और कनड़ प्रान्तीय भाषाओं-द्वारा अहिन्दी प्रान्तों में बहुत फैला हुआ है। इसलिए ऐसे संस्कृत के शब्दों के हिन्दी में लेने से उन प्रान्तों के निवासियों के लिए हिन्दी को हम सुगम बना देते हैं। हमारे सामने यह जटिल प्रश्न है कि हम न तो इन प्रान्तों के हिन्दुओं को छोड़ सकते हैं और न उत्तर-भारत के मुसलमानों से हिन्दी को अलग रख सकते हैं। यदि हम ऐसा करेंगे तो उसका फल यह होगा कि जहाँ हम एक ओर हिन्दी-भाषियों की संख्या बढ़ायेंगे और हिन्दी का प्रचार व्यापक बनायेंगे, दूसरी ओर उनकी संख्या जहाँ आज है वहाँ घटायेंगे और उसका प्रचार दक्षिण में बढ़ा कर उत्तर में कम कर देंगे। इसलिए बुद्धिमत्ता इसमें है कि शब्द-भाण्डार को बढ़ाया जाय।

शब्द-भाण्डार बढ़ाने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि फ़ारसी की लुग़त निकाल कर उसके सभी शब्दों को हिन्दी-कोष में जोड़ दिया जाय, बल्कि जो शब्द हिन्दी में प्रचलित हो गये हैं उनको बहिष्कृत नहीं किया जाय। जो अरबी-फ़ारसी के शब्द गुजराती, मराठी, बंगाली, पंजाबी और दक्षिण की भाषाओं में आ गये हैं और उनके ठीक पर्यायवाची शब्द हिन्दी में नहीं मिलते हैं उनको भी हिन्दी में ले लिया जाय। इनके अतिरिक्त ऐसे नये शब्द जो नये भावों को व्यक्त करते हैं उनको भी लेने में हिचकना नहीं चाहिए। उदाहरणार्थ, मुग़ल बादशाही के ज़माने से ही कचहरियों में महकमा माल और शासन-संबन्धी बहुतेरे शब्द हिन्दुस्तान की सभी भाषाओं में प्रचलित हो गये हैं। यदि उनके पर्यायवाची संस्कृत-शब्द हिन्दी में प्रचलित नहीं हैं और सुगमतापूर्वक समझे नहीं जा सकते तो कोई कारण नहीं कि उनको न रक्खा जाय और उनके स्थान पर संस्कृत के शब्द धर्मशास्त्रों से खोज कर निकाले जायँ। एक बहुत छोटा, पर अर्थपूर्ण शब्द "शर्त" है। किसी भी हिन्दी जाननेवाले को इसके समझने में कठिनाई नहीं होती है और इस अर्थ का द्योतक दूसरा शब्द संस्कृत से खोज कर निकाला जाय तो वह मुखमार्जन वस्त्रखंड जैसा लम्बा न भी हो तो भी समझने में तो उतना ही कठिन होगा। ऐसा प्रयत्न मेरी समझ में व्यर्थ परिश्रम है, जो इससे बेहतर काम में लगाया जा सकता है। यह पंडितों और विद्वानों का काम है कि ऐसा संग्रह तैयार करें जिसमें इस प्रकार के सभी शब्दों का समावेश हो जाय।

अँगरेज़ी राज्य में बहुत-से अँगरेज़ी शब्द भी प्रचलित होते जा रहे हैं। ट्रेन, स्टेशन, टाइम, प्लेटफ़ार्म, टिकट, लालटेन, डिक्री इत्यादि बहुतेरे शब्द जो आ चुके हैं और आते ही जा रहे हैं, इनका बहिष्कार करके ट्रेन के स्थान पर 'लौह पथ-चालित वाष्प-यान' और प्लेटफ़ार्म की जगह 'लौह पथ-चालित वाष्प-यान स्थापन-स्थल' कहने में समय और लिखने में समय और स्थान की ही हानि नहीं है, उन नवगढ़न्त शब्दों के अर्थ निकालना भी कम कठिन नहीं है। इसलिए ऐसे प्रचलित विदेशी शब्दों को रखना

और नये शब्दों को ले लेना ही सुगम है। यदि हम टिकट की हिन्दी 'मूल्य-पत्रिका' बनायें और स्टेशन पर माँगें तो वह मिलेगा भी नहीं। प्रांतीय भाषाओं में ऐसे बहुत-से शब्द हैं जिनके अर्थ बहुत सुन्दर और सुगम हैं। यदि वह आज हिन्दी में प्रचलित नहीं हैं तो उनको भी अपनाना हमारा काम है। जिस तरह हमने 'लागू', 'चालू', 'बाज़ू' आदि शब्दों को अपना लिया है, उसी तरह इस दिशा में हमारे प्रयत्न और अधिक होने चाहिए।

विशेष करके जब राजनैतिक और वैज्ञानिक नये शब्द सभी भारतीय भाषाओं में गढ़े जा रहे हैं, बहुत अच्छा हो अगर सभी भाषाओं में नये शब्द यथासाध्य एक ही होवें, जैसे, कौंसिलों के लिए 'धारासभा' 'व्यवस्थापिका सभा' इत्यादि कितने ही शब्द काम में लाये जाते हैं। जनता को सुगमता और हिन्दी-प्रचार में सुविधा हो यदि सभी भारतीय भाषाओं में इस प्रकार के शब्द एक ही हो जायँ। इसमें कोई कठिनाई भी नहीं होनी चाहिए, क्योंकि ये सभी नये हैं और हाल में गढ़े गये हैं। यदि हिन्दी तथा सभी प्रान्तीय भाषाओं के विद्वान् मिलकर ऐसे नये शब्दों की जगह एक ही शब्द प्रचलित करें और सभी समाचारपत्र उनका व्यवहार करने लगें तो वे शीघ्र ही स्वीकृत हो जायँगे।

शब्दों का एक और ख़ज़ाना है, जिससे हम हिन्दी की शब्दावली बढ़ा सकते हैं, और वह ख़ज़ाना ग्राम्य बोली में प्रचलित शब्दों का है। उनमें बहुत-से ऐसे शब्द हैं जिनका अर्थ सुन्दर और व्यापक है और जिनके ठीक पर्यायवाची शब्द सुसंस्कृत-हिन्दी में बहुत करके नहीं मिलते हैं। घरों में व्यवहार की जितनी चीज़ें हुआ करती हैं उन सबके लिए शब्द हैं। गाँवों में खेती के जितने सामान हैं, बुनाई, कताई के जितने यन्त्र हैं, सबके एक एक अंग के लिए अलग-अलग नाम प्रचलित हैं। डाक्टर ग्रियर्सन की 'बिहार पेज़ेन्ट लाइफ़' नामक पुस्तक में इस प्रकार चरखे के प्रत्येक अंग का नाम दिया हुआ है। हम अगर कपड़े के पुतलीघर में जाकर देखें तो हमें पता लगेगा कि वहाँ भी बुनाई का प्रायः वही तरीका है जो किसी भी बुनकर के घर में हम देखते हैं। केवल एक के स्थान पर बहुतेरे पुर्ज़े काम करते हैं और उनको मनुष्य नहीं चलाते, भाफ़ अथवा बिजली चलाती है। ऐसी अवस्था में हम अपने पुराने शब्दों को ही क्यों न व्यवहार में लावें? अँगरेज़ी में बहुतेरे पुराने शब्द नये यंत्रों के लिए आज भी व्यवहार में आते हैं।

ग्रामीण भाषा में नये शब्द गढ़ने की भी अच्छी शक्ति है। रूमाल, ट्रेन, प्लेटफ़ार्म के लिए मैंने सुसंस्कृत हिन्दी के पर्यायवाची शब्दों का उदाहरण ऊपर दिया है। ग्रामीण भाषा में मोटरकार के लिए सिकंदर हवागाड़ी, बायसिकिल के लिए पैरगाड़ी, मैचिस के लिए दियासलाई, रेलवे सिगनल के लिए सिकंदर, लोफ़ के लिए पावरोटी इत्यादि कितने ही बहुत-से अच्छे शब्द बन गये हैं, जो अब पुस्तकों में भी काम में लाये जा रहे हैं। इतना ही नहीं, संज्ञाओं से क्रिया और क्रिया से संज्ञा बना लेने की भी जितनी शक्ति इन ग्रामीण बोलियों में है, उतनी हमारी पुस्तकों की भाषा में आज नहीं पाई जाती। यही कारण है कि आवश्यकता पड़ने पर उन बोलियों में शब्दों का अभाव नहीं रहता है। गाँवों के लोग ज़रूरत पड़ते ही शब्द बना भी लेते हैं। जैसे, लोटने से लोटास, बकने से बकवास, साबुन से सबुनाना, मिट्टी से मटिआना, पानी से पनिआना, गुस्सा से गुस्साना, धक्के से धकिआना, शर्म से शर्माना, घृणा से घिनाना आदि। ज़रूरत पड़ने पर हमारी पुस्तकों की भाषा में भी इन शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। यद्यपि हमारे यहाँ भी कुछ आचार्यों ने ऐसा प्रयत्न किया है, जैसे—

'और जो नारी स्वामी को निन्दती है' (पं० सदल मिश्र-नासिकेतोपाख्यान); 'अग्य का बूँद किस तरह जुगालता है' (पं० पद्मसिंह शर्मा—पद्मपराग); 'तिय कित कमनैती पढ़ी, बिन जिह भौंह कमान' (बिहारीलाल) इनमें निन्दा से 'निन्दती', 'जुगाली' से 'जुगालता', 'कमान' से 'कमनैती' शब्द बनाये गये हैं। लेकिन ऐसे प्रयत्न इतने कम हुए हैं और ये व्यवहार में इतने कम लाये गये हैं कि नहीं के बराबर हैं।

देहाती बोलियों की शक्ति केवल क्रियाओं और संज्ञाओं तक ही सीमाबद्ध नहीं है। कहावतों और मुहावरों पर ख़याल दौड़ाने से भी उनकी शक्ति का पता चलता है। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि आज हिन्दी में जिन कहावतों का प्रचार है उनमें अधिकांश देहात की ही हैं और हमारी सुसंस्कृत हिन्दी अँगरेज़ी या दूसरी भाषाओं की कहावतों या मुहावरों के अनुवाद को अपने के अलावा अपनी नई कहावतें या मुहावरे निर्माण करने में बहुत कम समर्थ हुई है। इस ओर भी हम लोगों का ध्यान जाना चाहिए।

साथ ही अपने देशवासियों के दैनिक जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले नये शब्दों के रचने या प्रचलित शब्दों के अपनाने में पूरी दिलचस्पी नहीं दिखलाने से भी हम न तो हिन्दी को पूर्णरूप से राष्ट्रभाषा बना सकेंगे और न भावों को व्यक्त कर सकने की क्षमता की दौड़ में ही सफल हो सकेंगे।

मैं चाहता हूँ कि हिन्दी को व्यापक और सर्वदेशीय भाषा 'राष्ट्रभाषा' बनाने के लिए उसकी शब्दावली बढ़ाई जाय और इसमें संकोच और संकीर्णता न करके जहाँ से ऐसे अच्छे शब्द मिल सकें जिनका सुगमता से प्रचार हो सकता हो, हम ले लेवें। तभी यह भाषा हिन्दुस्तान भर की राष्ट्रीय भाषा होने का दावा साबित कर सकेगी। सभी प्रचलित भाषायें इसी प्रकार से उन्नति करती हैं और यही रास्ता है, जिस पर चल कर हिन्दी अपना नाम सार्थक कर सकेगी। ऐसा होने से हिन्दी-उर्दू का झगड़ा भी बहुत अंशों में मिट जायगा और यदि उर्दू केवल फ़ारसी-अरबी की ओर ही अपनी दृष्टि रखकर दूसरे शब्दों का बहिष्कार करेगी तो उसकी उन्नति का स्रोत सूख जायगा और वह संकुचित भाषा बन जायगी। यदि हिन्दी ने भी इस घातक नीति का अवलम्बन किया तो उसकी उन्नति का स्रोत भी उसी प्रकार सूख जायगा और वह हज़ार प्रयत्नों से भी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकेगी।

डाक्टर अम्बेडकर हिन्दू-धर्म में क्यों नहीं रहना चाहते

हाल में डाक्टर अम्बेडकर महात्मा गांधी से मिलने गये थे। वहाँ उनसे महात्मा गांधी के सेक्रेटरी श्री महादेव देसाई ने ऊपर लिखा प्रश्न किया। उत्तर में डाक्टर साहब ने जो कुछ कहा वह देसाई जी के हस्ताक्षर से 'हरिजनसेवक' में प्रकाशित एक लेख से नीचे उद्धृत किया जाता है—

डाक्टर अम्बेडकर हिन्दू-धर्म में क्यों नहीं रहना चाहते, यह बात खुद उन्हीं ने मुझे संक्षेप में इस तरह बताई—

"रत्नागिरि-ज़िले के एक छोटे-से गाँव दपोली में मैं पैदा हुआ था और अपने बचपन में जो कुछ शिक्षा मैं वहाँ पा सकता था वह मैंने प्राप्त की। लेकिन जब आप यह जानेंगे कि वहाँ मुझे अपनी जाति के अन्य बालकों के साथ स्कूल से बाहर बैठना पड़ता था तब आप सहज ही यह कल्पना कर सकते हैं कि वहाँ कितनी शिक्षा मुझे मिल सकी होगी। किसी भी कक्षा के क्यों न हों, दलित जातियों के सभी बालकों को सबसे अलग एक साथ बैठना पड़ता था और उन्हें पढ़ाने की फ़िक्र कोई भी नहीं करता था। अध्यापक सिर्फ़ यह पूछ लेते थे कि हमने अपना पाठ पढ़ लिया, और बस। वहाँ से मेरे पिता ने मुझे सतारा भेज दिया और मैं सतारा के हाईस्कूल में पढ़ने लगा। यहाँ मुझे एक अलग बेंच पर बैठना पड़ता था। तक़दीर साथ देती तो मैं संस्कृत का अभ्यास करता, परन्तु संस्कृत के पण्डित जी ने मुझे अपने यहाँ नहीं लिया, इससे मुझे फ़ारसी लेनी पड़ी। मेरे पिता एक अवकाश-प्राप्त फ़ौजी अफ़सर थे, जिन्हें ५० रुपया महीना पेंशन मिलती थी। इस लिहाज़ से वे मध्यम श्रेणी के बहुत-से हिन्दुओं से ज़्यादा प्रतिष्ठित थे, लेकिन इतने पर भी हम किसी नाई से बाल नहीं बनवा सकते थे। कुटुम्ब के पाँच-छः जनों की हजामत मेरी बहन ही बनाया करती थी। सतारा की इन कठिनाइयों से तंग आकर मैं बम्बई गया, और एलफ़िंस्टन कालेज में दाख़िल हो गया। कालेज में भर्ती होने के बाद श्रीमान् बड़ौदा-नरेश की मुझ पर दृष्टि पड़ी और उन्होंने मुझे छात्रवृत्ति लगा दी। बी० ए० पास कर लेने पर मुझसे बड़ौदा जाने के लिए कहा गया और वहाँ एक फ़ौज में मुझे लेफ़्टिनेंट बना दिया गया। तब जहाँ मेरी जाति के अन्य फ़ौजी लोग रहते थे, मुझे भी वहीं अपने रहने की व्यवस्था करनी पड़ी।"

इसके बाद महाराजा बड़ौदा ने छात्रवृत्ति पाकर अमेरिका जाने और कोलम्बिया-विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की डिग्री प्राप्त करके वापस बड़ौदा आने की बात हुई। उन्होंने कहा —

"आप क्या समझते हैं कि वहाँ मेरी किस तरह के स्वागत की प्रतीक्षा हो रही थी? बड़ौदा-जैसे बड़े शहर में मेरे रहने को कोई कमरा या मकान नहीं मिल सका। मैंने चाहा कि मुझे कालेज का प्रोफ़ेसर बना दिया जाय जिसमें रहने को सरकारी मकान मिल जाय. किन्तु श्रीमान् बड़ौदा-नरेश ने मुझे राजस्वविभाग में ही रखना पसन्द किया। क्योंकि, जैसा उन्होंने कहा, वे यह चाहते थे कि मुझे राजस्व-सम्बन्धी अच्छी जानकारी हो जाय। अतः अपने लिए मकान-तलाश करने का काम मुझ पर छोड़ दिया गया। इसके लिए मैं इधर-उधर बहुत-कुछ भटका, लेकिन कोई नतीजा न निकला। आख़िर बहुत दौड़-धूप के बाद एक पारसी-धर्मशाला में जाकर टिका. जहाँ का चौकीदार इस शर्त पर मुझे वहाँ टिकाने को तैयार हुआ कि मैं अपना कोई फ़र्ज़ी पारसी नाम वहाँ के लिए रख लूँ। यही मैंने किया भी। लेकिन शीघ्र ही पारसियों को इस बात का पता लग गया, और एक दिन लाठियाँ लिये हुए उनकी एक भीड़ आ पहुँची। उन्होंने मुझे धमकी दी कि मैं तुरन्त धर्मशाला छोड़ दूँ, नहीं तो मुझे अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा। मैंने उनसे प्रार्थना की कि कम-से-कम शाम तक तो वे मुझे और वहाँ रहने दें। इसके बाद मैं मिस्टर सैम्युअल जोशी के पास गया। उन्होंने एक बार मुझे अपने साथ रहने को कहा था, लेकिन जब मैं सचमुच रहने के लिए उनके पास जा पहुँचा तब उन्हें इसके लिए बिलकुल अनिच्छुक पाया। बड़ौदा की लाइब्रेरी के लाइब्रेरियन स्वर्गीय श्री कुदालकर मेरे परम मित्र थे। वे मुझे आश्रय देने के लिए तैयार हुए, लेकिन साथ ही यह भी कहा कि मैं उनके यहाँ रहने को गया नहीं कि उनके घर पर काम करनेवाले सब नौकर तुरन्त काम छोड़ने का नोटिस दे देंगे। मैंने देखा कि ऐसी हालत में यहाँ से चले जाने के सिवा और कोई चारा नहीं। इसलिए मैंने महाराजा साहब को अपनी सारी कष्ट-कहानी लिखी और बड़ौदा छोड़ कर चल दिया। मुझसे फिर बड़ौदा जाने के लिए कहा गया। मैं गया और ६ रुपया प्रतिदिन देकर २० दिन तक सरकारी गेस्टहाउस में रहा, लेकिन कोई लाभ न हुआ। यहाँ तक कि महाराजा साहब से भी मुलाकात न हुई और मुझे लाचार होकर लौट आना पड़ा।

"आप कहेंगे, ये तो सब पुरानी बातें हैं। लेकिन सिर्फ़ १५ दिन पहले ही क्या हुआ, यह मैं आपको बताऊँ। सोलापुर में हमारी एक परिषद् थी, जिसके लिए मुझे वहाँ जाना पड़ा। एक टैक्सी-ड्राइवर हमें पहुँचाने के लिए तैयार हुआ और इसके लिए उसने हमसे १५ रुपये पेशगी भी ले लिये, लेकिन वह रुपये लेकर कहीं चला गया और कोई ताँगेवाला हमें अपने ताँगेपर बिठाकर ले जाने को तैयार नहीं हुआ। उन्होंने तो हमारा पूरा-पूरा बहिष्कार किया। और, क्या आप समझते हैं कि बम्बई में नाई हमारी हजामत बनाते हैं? चूँकि हिन्दू नाई हम लोगों के बाल नहीं बनाते, इसी लिए हमें मुसलमान नाइयों के पास जाना पड़ता है और वे हमसे मनमाने पैसे लेते हैं। क्या बम्बई में कोई ऐसा हिन्दू-होटल है, जहाँ हम ठहर सकें? मगर जाने दो इन बातों को। मैं आपसे सच कहता हूँ कि जिस दिन मुझे बड़ौदा में इधर से उधर भटकना पड़ा उस दिन मुझे कितना रोना आया यह मैं ही जानता हूँ, और अब भी जब कभी मुझे बड़ौदा के उन दिनों की याद आ जाती है तब मेरी आँखों में आँसू भर आते हैं। फिर भी मैं आपको यह बतला दूँ कि महाराजा बड़ौदा ने मेरे लिए जो कुछ भी किया उसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।"

लन्दन में भूतों के दर्शन

भूतों के दर्शनों की बातें हमारे ही देश में नहीं प्रचलित हैं। लन्दन भी ऐसी कथाओं से अछूता नहीं है। कलकत्ते की 'विश्ववाणी' ने हाल की संख्या में इस सम्बन्ध में एक रोचक लेख प्रकाशित किया है, जिसका एक अंश यह है—

कभी-कभी इन भूतों-भरी सड़कों पर भारी दुर्घटनायें हो जाती हैं और अगर आप सड़क के किनारे की किसी काफ़ी या चाय की दूकान पर जाकर बैठें तो टैक्सी ड्राइवरों की अनेक अद्भुत कहानियाँ सुन पायेंगे। १९३० की शरद्-ऋतु में कालिन्सन और रिड्ले नाम के दो अँगरेज़ मैंचेस्टर और शेफ़ील्ड के बीच की सड़क पर बेहोश पड़े पाये गये। उनके पास ही एक टूटी हुई मोटर-साइकिल भी पड़ी थी। रिड्ले मर गया, लेकिन कालिन्सन ने पुलिसवालों को बताया कि वह मोड़ से आती हुई मोटरलारी से बचने का प्रयत्न कर रहा था जब उसकी साइकिल उलट गई और यह दुर्घटना हुई। कालिन्सन से कहा गया कि वहाँ पर तो कोई भी मोड़ नहीं है, लेकिन वह बराबर यही कहता रहा कि "मैंने तो मोड़ पर से आती हुई एक मोटरलारी अवश्य देखी थी!"

ठीक इसी स्थान पर सोलह दुर्घटनायें पहले हो चुकी थीं। इस स्थान के पास ही रहनेवाले एक व्यक्ति ने बताया कि अक्सर उसके घर के आदमी किसी के पैरों की आवाज़ रात को सुना करते हैं। अनेक बार उसका कुत्ता भौंकता और चीखता हुआ बाहर गया है और फिर घबराया हुआ लौटा है। उसने खुद बिजली की रोशनी की मदद से पता लगाने का प्रयत्न किया, परन्तु असफल रहा। पैरों की आवाज़ के सम्बन्ध में इस आदमी ने बताया कि किसी भारी आदमी के चलने की आवाज़ होती है, जो उसके घर के पिछले दरवाज़े के पास आकर क्षण भर के लिए रुक जाती है। इस स्थान के बारे में न कोई कहानी ही प्रचलित है और न इन घटनाओं का कोई सन्तोषजनक कारण ही बताया जा सकता है।

ग्रीष्म-ऋतु की एक सुहावनी सन्ध्या को एक घोड़ा-गाड़ी में लैंगरहर्स्ट से फ़्रैंट जाते हुए तीन व्यक्तियों ने एक मोटरगाड़ी आती हुई देखी। उनसे डेढ़ सौ क़दम की दूरी पर आकर वह ग़ायब हो गई। इसे न केवल ड्राइवर ने बल्कि दोनों मुसाफ़िरों ने भी अच्छी तरह से देखा था।

ब्रैडफ़ोर्ड में स्टान कौर्नर के पास मोटर में सफ़र करनेवालों ने अनेक बार एक स्त्री को बीच सड़क में लेटे हुए देखा है। वह एक नर्स की पोशाक पहने रहती है। लेकिन मोटर रोकने पर किसी स्त्री के लेटे रहने का कोई चिह्न वहाँ नहीं मिला।

इससे भी विचित्र कहानी हार्टफ़ोर्डशायर के पास साउथ मिम्स नामक स्थान की है। पहले इस स्थान पर लुटेरे उत्पात मचाया करते थे, लेकिन अभी हाल की घटना है कि एक आदमी इस स्थान से होकर मोटर में जा रहा था। अचानक एक शख़्स सड़क के बीच में आकर खड़ी हो गई और उसने हाथ उठाकर मोटर रोकने का इशारा किया। मोटर के रोकने पर ड्राइवर ने देखा कि वहाँ कुछ भी नहीं है। यह केवल एक उदाहरण है। अनेक बार इस तरह की घटनायें इस स्थान पर हुई हैं। एक बार तो इसी प्रकार रोके जाने पर एक स्त्री बेहोश तक हो गई थी। एक दिन इसी सड़क से होकर एक पादरी साहब जा रहे थे। उनका कहना है कि अचानक एक आदमी को रास्ता रोककर खड़े हुए देखने पर उन्हें जान लेकर भागना पड़ा।

डाके के पास एक सड़क है जहाँ एक शख़्स एक घोड़े के साथ सड़क के बीच से आकर गाड़ियों का रास्ता रोक देता है। इसके साथ एक विचित्र बात यह है कि यह आदमी दोनों घुटनों तक ज़मीन के अन्दर धँसा हुआ दिखाई देता है।

एक दूसरे स्थान पर कोई व्यक्ति तेज़ी के साथ मोटर-साइकिल पर आता हुआ दिखाई दिया है। वह इतने ज़ोर के साथ आता है कि यह मालूम होता है कि सामने से आनेवाली मोटरगाड़ी से टकराये बिना न रहेगा। लेकिन नज़दीक आते ही धुएँ की भाँति ग़ायब हो जाता है।

क्या कुमारी शान्तिदेवी के पुनर्जन्म की कहानी सच्ची है?

पूर्व-जन्म की बात बतानेवाली दिल्ली की प्रसिद्ध बालिका कुमारी शान्ति के बयान को सबने ज्यों का त्यों सच मान लिया है। परन्तु श्री बालचन्द नाहटा पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते और उन्होंने मानस-शास्त्र की दृष्टि से इस बात की खोज की है। आप जिस परिणाम पर पहुँचे हैं वह हम यहाँ 'नवयुग' से उद्धृत करते हैं—

(१) 'सती शांतिदेवी' नामक पुस्तक पढ़ते समय—जिसकी भूमिका में चौबे केदारनाथ जी ने लिखा है कि 'पुस्तक का अक्षर अक्षर सत्य है'—मुझे निम्न स्थल खटके थे। (१) वह मेरी आत्मा है आत्मा को पहचान लिया (पृष्ठ २४) और (२) परलोक की बात (पृष्ठ ३९)—इन दोनों के सम्बन्ध में शांति ने जो हमारे प्रश्नों का उत्तर दिया है वह इनसे भिन्न है और घटना की बनावट सिद्ध करता है।

(२) शांति से उसके इस जन्म के बचपन की बातें पूछी गईं तब वह ठीक ठीक कुछ भी नहीं बता सकी। पिछले जन्म की तो प्रायः सारी बातें याद हों और इस जन्म की ख़ास ख़ास भी नहीं, इस बात को बुद्धि स्वीकार नहीं करती। वह पिछले जन्म में कुछ कुछ पढ़ना-लिखना भी जानती थी—ऐसा चौबे केदारनाथ जी के प्राइवेट पत्र से मालूम हुआ है—किन्तु इस जन्म में उसे अक्षर-ज्ञान साधारण बच्चों की तरह ही हुआ है। पिछले जन्म के रक्खे हुए रुपयों का स्थान उसे स्मरण रह सकता है, किन्तु प्रयत्नपूर्वक पढ़ी हुई विद्या स्मरण नहीं हो सकती, यह कैसे माना जा सकता है?

(३) बच्चे को पेट में भगवान् जी डाले देते हैं—यह उत्तर साबित करता है कि उसे प्रौढ़त्व का कुछ भी ज्ञान नहीं है। भला जो ११ वर्ष तक (पिछले जन्म में) गृहस्थ रह चुकी हो और दो दो बच्चों को जन्म दे चुकी हो उसे पति-पत्नी-सम्बन्ध जैसी नैसर्गिक बात का पता न हो जो स्वयं उसके शरीर के साथ संगठित हो चुकी है। यह किस प्रकार संभव हो सकता है कि जो बातें ऊपरी हैं वे तो ज़रूर स्मरण रह जायँ और जिसका उसके शरीर और मन के साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध रहा हो वह एक-दम विस्मरण हो जाय!

(४) किसी भी प्रश्न के उत्तर में और बातचीत के सिलसिले में कहीं भी हमने उसमें कोई प्रौढ़त्व के लक्षण नहीं देखे। वही बच्चों का-सा भोलापन, अज्ञानता और चंचलता देखने में आई। यद्यपि प्रश्नों का उत्तर वह बहुत सोच सोचकर देती थी, तथापि उसके उत्तर बाल-सुलभ अज्ञानता से भरे हुए होते थे।

(५) उसे प्रश्नों का उत्तर देने का चस्का-सा लगा हुआ प्रतीत होता था और इसी लिए वह किसी भी प्रश्न का उत्तर देने के लिए उद्ग्रीव बनी रहती थी और कितना भी पूछने पर उकताती नहीं थी, किन्तु महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर देने में वह असमर्थ पाई गई।

(६) जो बयान उसके अब तक प्रकाशित हो चुके हैं उनसे अधिक वह और कुछ भी नहीं बता सकी, बल्कि जगह-बजगह स्वयं बिना पूछे ही उन बातों को दुहराया है और कई जगह उसके बयानों में अन्तर भी पड़ता है। परलोक-सम्बन्धी बातें कुछ तो ग्रंथों की और कुछ यों ही सुनी-सुनाई को विकृत-सी करके बतलाया है तथा चौथे लोक में कृष्ण जी द्वारा ५६५ नम्बर का घर सुना जाना साफ़ प्रकट करता है कि उस पर बाहर का काफ़ी प्रभाव पड़ा हुआ है। प्रमाणस्वरूप पटियाला की 'ज्ञान की आँखें' वाली घटना लीजिए। यह रहस्य तो उसके पिता जी के द्वारा अपने आप खुल गया या इसी प्रकार के और भी न जाने कितने रहस्य छिपे हुए होंगे, कौन कह सकता है?

(७) जब उसे मथुरा ले जाया गया तब साथ में प्रधानतः वही लोग थे जिनका आन्तरिक भाव यही था कि किसी प्रकार पुनर्जन्म का सिद्धान्त सच्चा सिद्ध हो। इस हालत में शांति की कोई सन्दिग्ध चेष्टा भी उनके द्वारा अपने रंग में रँगी जा सकती थी। मथुरा-यात्रा में कोई मनो-विज्ञानी या मनो-विश्लेषण-विद्या का पंडित भी उनके साथ नहीं था, जो उसकी गति-विधि को सूक्ष्मता और तटस्थता के साथ लक्ष्य करता और इस प्रकार की खोजों में आमतौर से होनेवाली भूलों से बचाता। प्रिंसिपल किशनचन्द जी की बात ग़लत कही जानी प्रकट हुई है उन्हें अब तक किसी ने भी प्रकाशित नहीं किया। यदि वैज्ञानिक खोज का उद्देश होता तो कोई भी बात छिपाई नहीं जाती।

(८) शांति के दादा जी का मथुरा आना-जाना तथा चौबे केदारनाथ जी का बारम्बार देहली आना और मुहल्ले के चीरा खाने से निकलना उनका उस मुहल्ले के हल-वाइयों की दूकान पर बैठना और शांति का किसी प्रकार भी उनके सम्पर्क में आना ऐसी विचित्र घटनाओं के गढ़ उठने में अत्यन्त सहायक हो सकता है। चौबे केदारनाथ जी का उस मुहल्ले से गुज़रना 'सती शांतिदेवी' नामक पुस्तिका के पृष्ठ ३८ के वर्णन से भी प्रमाणित होता है। शांति जिस स्कूल में पढ़ती है वह उसी मुहल्ले में स्थित है।

(९) मनोविज्ञान का साधारण विद्यार्थी भी जानता है कि जिस तरह से अत्यन्त साधारण-सी बात के द्वारा भी कैसे विचित्र कथानक गठित हो उठे हैं जिनमें से कितनों—एक का तो रहस्य यदि घटना-क्रम से अपने आप नहीं खुल जाता तो खोज के द्वारा उनका निष्कर्ष निकालना अत्यन्त कठिन ही नहीं, किसी किसी हालत में तो असंभव भी हो जाता है।

उपर्युक्त कारणों से ऐसा प्रतीत होता है कि शांति ने पूर्वजन्म के सम्बन्ध में जो कुछ लोगों के सामने कहा है वह उसे कहीं बाहर से प्राप्त हुआ है। वह रटी हुई बातों के सिवा और अधिक उल्लेख-योग्य कोई बात हमें नहीं बता सकी। हाँ, यह पता लगाने में हम असमर्थ रहे कि उसे यह रटना कहाँ से और कैसे प्राप्त हो सकी। हो सकता है कि हमें जिन जिन बातों से उसके बनावटी होने का संदेह हुआ है उनके सिवा कोई ऐसी बात भी हो जो पुनर्जन्म को सिद्ध करती हो या जिस बात का संदेह करके हम उसका पता लगाने में असमर्थ रहे हैं वह सही हो अर्थात् उसे किसी ने भी कुछ न रटाया हो या उसे कोई ख़ास बात बाहर से न प्राप्त हुई हो, पर जो कुछ सामग्री हमारे सामने आई है उससे हम इस निर्णय पर नहीं पहुँच सकते कि शांति को 'जातिस्मरणज्ञान' हुआ है या इस घटना से पुनर्जन्म की सिद्धि होती है।

हरद्वार में प्रतिवर्ष हैज़ा क्यों फैलता है?

हरद्वार हमारा एक बड़ा तीर्थ है। परन्तु प्रायः प्रतिवर्ष यात्रियों को वहाँ से हैज़े के कारण भागना पड़ता है। वहाँ हैज़ा क्यों फैलता है, इस सम्बन्ध में श्री ब्रह्मदत्त शर्मा ने 'प्रताप' में एक लेख छपवाया है। लेख का आवश्यक अंश यह है—

पिछले दिनों में अधिक लू चलने तथा गर्मी अधिक होने के कारण हरद्वार में हैज़े का प्रकोप हो गया और तीन-चार दिन में ही ५० से अधिक मृत्युएँ हुईं! इसी बीच में म्युनिसिपलिटी के स्वास्थ्य-विभाग की ओर से एक विज्ञप्ति प्रकाशित की गई कि आज-कल गंगाजल में हैज़ा के कीड़ों का समावेश है अतः यात्रियों को गंगाजल का सेवन न करना चाहिए। गंगाजल में हैज़ों के कीड़ों के समाविष्ट होने का दोषी कौन है, इस सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूँ। बात यह है कि हरद्वार में जो मुर्दाघाट है, वह इस समय शहर के बीच में है। पहले जब वह बनाया गया था तब शहर से बाहर १॥ मील के फ़ासले पर था। पर अब इस १० वर्ष के बीच में हरद्वार की आबादी कई गुनी अधिक बढ़ गई है। इस प्रकार वह स्थान अब नगर के बीचोंबीच में आ गया है। स्वास्थ्य-विभागवालों ने शहर के बाहर एक ओर हैज़ा-अस्पताल बनाया है। इसमें मरे हुए बीमार इसी मुर्दाघाट पर जलाये जाते हैं। बीमारी की अधिकता के दिनों में तो इन मुर्दों को अधजला हुआ ही छोड़ दिया जाता है! इस प्रकार वह गंगाजल में बहकर ब्रह्मकुण्ड में आनेवाली लाश गंगाजल को हैज़ा के कीटाणुओं से युक्त बना दे तो कोई आश्चर्य नहीं है। ऐसी हालत में यदि स्वास्थ्य-विभागवाले हरद्वार के बीच से यह श्मशान-घाट हटा दें तो सारा दुःख ही दूर हो जाय। इस श्मशान-घाट के अलावा बीच गंगा में एक कुण्ड भी है, जिसमें मरे हुए साधु बोरियों में बाँध कर डाल दिये जाते हैं। इससे भी गंगाजल के दोषयुक्त होने की सम्भावना है। गंगा-तट पर बने हुए प्रायः सभी मकानों की गन्दी नालियाँ भी इसी गंगा की धारा में गिरती हैं।

हरद्वार के प्रसिद्ध राजवैद्य पण्डित शिवचन्द्र जी ने कई बार इस आवश्यक विषय की चर्चा की। हिन्दी अँगरेज़ी पत्रों तथा प्रान्तीय सरकार का भी ध्यान इस ओर दिलाया, जिस पर मेडिकल डिपार्टमेंट के डायरेक्टर तथा सर सीताराम ने भी बोर्ड से सिफ़ारिश की कि सांक्रमिक रोग के अस्पताल के रोगी श्मशानघाट पर न जलाये जायँ। बोर्ड की दो मीटिंगों में प्रस्ताव पेश भी हुए, परन्तु मेंबरों ने उस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। हमें प्रसन्नता है कि वर्तमान हेल्थ आफ़िसर मिस्टर आर० डी० बनर्जी ने इस गन्दगी को दूर करने के लिए कुछ प्रयत्न करना प्रारम्भ किया है।

सम्पादकीय नोट

डाक्टर अन्सारी का स्वर्गवास

डाक्टर मुख्तार अहमद अन्सारी की मृत्यु से भारत ने अपना एक नररत्न खो दिया है। वे राष्ट्रीय विचार के ऊँचे दर्जे के लोकनेता थे और इन्होंने कांग्रेस का आजीवन साथ दिया। वे साम्प्रदायिकता से सदा दूर रहे। महात्मा गांधी का इन पर पूर्ण विश्वास था और इन्हीं के ज़ोर देने पर सन् १९३४ में सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित हुआ था और बम्बई की कांग्रेस में कौंसिल-प्रवेश का प्रोग्राम स्वीकार किया गया था। यदि ये जीवित रहते तो सम्भवतः इनकी प्रेरणा से नये शासन-विधान के जारी होने पर कांग्रेसी लोग सरकारी मंत्रिपद भी ग्रहण करते। ये ऐसे ही प्रभावशाली व्यक्ति थे। ऐसे अवसर पर इनकी मृत्यु हो जाने से कांग्रेस के विधान-पक्षीय दल की विशेष रूप से हानि हुई है। ये उन इने-गिने मुसलमान नेताओं में सर्वप्रधान थे जिन्होंने कांग्रेस के पक्ष का बराबर साथ दिया है। इनकी मृत्यु पर सारे देश के सभी पक्ष के लोगों ने शोक प्रकट किया है।

इनका जन्म २५ दिसम्बर १८८० में संयुक्त-प्रान्त के ग़ाज़ीपुर ज़िले के युसुफ़पुर गाँव में हुआ था। इनके पिता हाजी अब्दुल रहमान एक सम्पन्न ज़मींदार थे। छोटी आयु में इनकी शिक्षा बनारस में हुई थी। इलाहाबाद में एफ़० ए० पास करने के बाद ये हैदराबाद (दक्षिण) जाकर निज़ाम-कालेज में दाखिल हो गये और मदरास-यूनिवर्सिटी से इन्होंने बी० ए० पास किया।

निज़ाम-रियासत से वज़ीफ़ा मिलने पर ये १९०० में विलायत चले गये। एडिनबरा-यूनिवर्सिटी से एम० डी० और एम० एस० और लन्दन-यूनिवर्सिटी से एल० आर० सी० पी० की डिग्रियाँ प्राप्त करके ये लन्दन में चिकित्सा का काम करने लगे।

सार्वजनिक-जीवन का अनुराग इनमें विद्यार्थी-अवस्था में ही पैदा हो चुका था। १८९९ में जब ये मदरास में मेडिकल कालेज के छात्र थे, तभी पहली बार कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे। १९११ में देहली में डाक्टरी शुरू करने के साथ ही ये सार्वजनिक कार्यों में योग-दान देने लग गये थे और डाक्टरी प्रैक्टिस के समान ही राजनैतिक क्षेत्र में भी अग्रणी नेताओं में स्थान प्राप्त करने में आपको अधिक समय नहीं लगा।

१९१२-१३ में तुर्की-बालकन-युद्ध के समय 'आल इण्डिया मेडिकल मिशन' इनके नेतृत्व में तुर्की भेजा गया। १९१७–१८ में होमरूल के आन्दोलन में भी इन्होंने प्रमुख भाग लिया। १९१५ में अली-बन्धुओं और मौलाना आज़ाद आदि के नज़रबन्द किये जाने पर एक नज़रबन्द-सहायक-फ़ण्ड खोला गया था, जिसके ये सभापति थे। १९१८ में देहली में कांग्रेस के साथ आल-इण्डिया मुस्लिम लीग का जो अधिवेशन हुआ था उसके स्वागताध्यक्ष थे। इनका स्वागत-भाषण सरकार-द्वारा ज़ब्त कर लिया गया था। १९१९ में गांधी जी ने रौलट-एक्ट के विरुद्ध जो सत्याग्रह-आन्दोलन शुरू किया था उसमें इन्होंने गांधी जी का पूरा साथ दिया। अमृतसर की कांग्रेस में भी ये सम्मिलित हुए थे और उसके बाद प्रायः सभी अधिवेशनों में उपस्थित होकर उनकी कार्यवाही में प्रमुख भाग लेते रहे। गया में, १९२२ में, कांग्रेस के साथ होनेवाली ख़िलाफ़त कान्फ़रेंस के ये सभापति हुए थे। १९२३ में कांग्रेस-द्वारा नियुक्त सत्याग्रह-जाँच-कमिटी के ये सभासद थे। इन्होंने कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध सत्याग्रह एवं विधायक-कार्यक्रम के पक्ष में अपना मत प्रकट किया था। १९२२ में देहली में हुए कांग्रेस के विशेषाधिवेशन की स्वागत-समिति के ये अध्यक्ष हुए

थे। अपने उस भाषण में इन्होंने सत्याग्रह-जाँच-कमेटी की रिपोर्ट में पेश किये विचारों को ही विस्तार के साथ प्रकट किया था।

हिन्दू-मुस्लिम-एकता में इनकी दृढ़ आस्था थी। दोनों को एक करने के यत्न में ये सदा लगे रहे। १९२३ में स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी के साथ मिलकर इन्होंने एक साम्प्रदायिक समझौता तैयार किया था, जिसको 'लाजपत-अन्सारी-पैक्ट' नाम दिया गया था। १९२४ में गांधी जी के उपवास के बाद मोतीलाल जी के सभापतित्व में देहली में जो एकता-सम्मेलन हुआ था उसके संयोजकों में ये भी एक थे। उसके बाद १९२७–२८ में नेहरू-रिपोर्ट के रूप में और १९३२ में मालवीय जी द्वारा किये गये उद्योग में भी इन्होंने पूरा हाथ बँटाया था।

इनकी इन सेवाओं के पुरस्कार-स्वरूप देश-वासियों ने १९२७ में मदरास में होनेवाले कांग्रेस-अधिवेशन का इनको सभापति चुना था।

१९३० के सत्याग्रह-आन्दोलन में ये अपने मकान पर ही देहली में कांग्रेस की ग़ैर-क़ानूनी-कार्य-समिति की बैठक करते हुए २७ अगस्त को गिरफ़्तार किये गये थे। उस समय कार्य-समिति के ये ही सभापति या राष्ट्रपति थे। मालवीय जी, प्रेसिडेण्ट पटेल और डाक्टर विधान-चन्द्र राय आदि भी इनके साथ ही गिरफ़्तार किये गये थे। छः मास की इनको सज़ा हुई थी। गांधी-इर्विन-पैक्ट होने पर ये २५ जनवरी १९३१ को रिहा किये गये।

राष्ट्रवादी मुसलमानों के माने हुए नेता होने पर भी दूसरी गोलमेज़-परिषद् के लिए ये निमंत्रित नहीं किये गये। १९३२ के आन्दोलन के प्रारम्भिक दिनों में मौलाना मुहम्मदअली की बरसी की सभा में इनका भाषण हुआ और दूसरे दिन ये गिरफ़्तार कर लिये गये। छः मास की सज़ा हुई। जेल में इनकी सेहत कुछ बिगड़ गई। इसलिए जेल से छूटने पर ये विलायत गये। वहाँ चुप नहीं रहे, किन्तु भारत के सम्बन्ध में इन्होंने वहाँ विशेष आन्दोलन किया।

जुलाई १९३३ की पूना-परिषद् के बाद कौंसिल-प्रवेश-वादियों की संख्या देश में बढ़ने लगी और सत्याग्रह स्थगित करके १९२३-२४ में देशबन्धु दास ने जैसे 'स्वराज्य-दल' का संगठन किया था, वैसा ही एक दल बनाकर कौंसिलों का कार्य-क्रम शुरू करने की चर्चा की जाने लगी। १९२३ में कौंसिल-प्रवेश के ये कट्टर विरोधी थे, किन्तु अब ३१ मार्च १९३४ को इनके ही मकान पर इनके ही सभापतित्व में कुछ नेताओं की सभा होकर 'स्वराज्य-दल' को फिर से संगठित करने का निश्चय किया गया। राँची में २-३ मई को इसी सम्बन्ध में नेताओं का एक सम्मेलन और हुआ और १८-१९ मई को पटना में महासमिति की बैठक होकर कांग्रेस-पार्लमेंटरी-बोर्ड की स्थापना की गई। ये उसके अध्यक्ष बनाये गये और मालवीय जी के साथ इन पर उसको संगठित करने का कार्य सौंपा गया। बम्बई की कांग्रेस से महासमिति के इस निश्चय को स्वीकार कराने और असेम्बली के चुनाव की लड़ाई में कांग्रेस को शानदार विजय प्राप्त कराने के लिए इन्होंने विशेष उद्योग किया।

योरप में तानाशाही

इस समय योरप में तानाशाही का ही बोलबाला है। ग्रेट ब्रिटेन तथा फ़्रांस की साम्राज्यवादी सरकारें उनके औद्धत्य का सामना नहीं कर पाती हैं और संसार की शान्ति न भंग होने देने के लिए उन्हें अपमान सहकर भी चुप रह जाना पड़ता है। इटली के मुसोलिनी ने सात महीने के भीषण संग्राम के बाद अबीसीनिया को पददलित कर उसे अपने अधिकार में कर लिया है। उसने इस युद्ध में ज़हरीली गैसों का उपयोग कर तथा वायुयानों से बम बरसा कर विजय प्राप्त की है और ऐसा करके उसने इस सम्बन्ध के अन्तर्राष्ट्रीय समझौते का भी उपमर्दन किया है। परन्तु न तो राष्ट्र-संघ, न ग्रेट ब्रिटेन या फ़्रांस ही उसे अबीसीनिया पर अत्याचार करने से रोक सके। इसी तरह जर्मनी के तानाशाह हर हिटलर ने भी वर्सेलीज़ तथा लोकार्नो के सन्धिपत्रों की अवहेलना कर राइनलैंड के सैन्यवर्जित प्रदेश में अपनी सेनायें स्थापित कर वहाँ क़िलाबन्दी करनी शुरू कर

दी है। और इन दोनों तानाशाहों ने इस प्रकार मनमानी कार्रवाई करके यह बात भले प्रकार स्पष्ट कर दी है कि वे जो चाहें कर सकते हैं और उनका प्रतीकार करने का साहस योरप के किसी राष्ट्र में नहीं है। वे यह बात भले प्रकार जानते हैं कि राष्ट्र-संघ तो केवल क़ानूनी कार्रवाई करने के सिवा और कुछ कर-धर नहीं सकता, क्योंकि उसके प्रमुख समर्थक ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस में न पहले जैसा सहयोग है और न उनमें से कोई संसार की शांति भंग करने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेना चाहता है। ऐसी दशा में तानाशाहों के लिए मार्ग साफ़ है और वे अपना प्रभुत्व बढ़ाने के लिए स्वच्छन्दतापूर्वक कोई भी साहस का कार्य आसानी से कर सकते हैं। यही सब देख-भालकर योरप के छोटे राष्ट्र सशंकित हुए हैं और उनमें अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए सनसनी-सी फैल गई है। वे डर गये हैं कि अबीसीनिया के बाद उनमें से किसी का भी नंबर आ सकता है और प्रबल राष्ट्रों का उन पर भी मौक़ा आते ही आक्रमण हो सकता है। इसी से आस्ट्रिया ने सैन्य बढ़ाने के लिए घोषणा की है और तुर्की दरेदानियाल की मोर्चाबन्दी करने को उतावला हो रहा है। इसी तरह अन्य छोटे राष्ट्र भी अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए चिन्तित हो उठे हैं और वे चाहते हैं कि राष्ट्र-संघ अपना कर्तव्य पालन करने में अधिक दृढ़ता से काम ले। परन्तु राष्ट्र-संघ को अब तक के प्रयत्नों में ज़रा भी सफलता नहीं मिली है और न भविष्य में उसके प्राप्त होने की आशा है। बेशक वह अबीसीनिया के मामले को छेड़े हुए है और जर्मनी के मामले में भी काफ़ी दिलचस्पी ले रहा है और इन दोनों के सम्बन्ध में प्रायः सभी छोटे सदस्य राष्ट्र इस बात पर ज़ोर दे रहे हैं कि राष्ट्र-संघ न्यायनिष्ठा का परित्याग न करे। परन्तु ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस में पहले की तरह मतैक्य न होने के कारण राष्ट्र-संघ के कुछ किये-कराये न हो रहा है और न होने की सम्भावना ही है। ऐसी दशा में यही कहा जायगा कि अब योरप में पहले की प्रजातन्त्रशाही का ज़ोर नहीं रहा, वरन अब वहाँ तानाशाहों की तूती बोल रही है। और यह स्थिति योरप के लिए वास्तव में भयप्रद है।

जर्मनी की आकांक्षा

जर्मनी ने राइनलैंड के सैन्यवर्जित प्रदेश में वर्सेलीज़-सन्धिपत्र की शर्तों के विरुद्ध सेनायें भेजकर यह व्यक्त किया है कि इस समय फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन में पहले का-सा सहयोग नहीं है अन्यथा वह ऐसा साहस कभी न करता। फलतः जर्मनी की इस अन्यायमूलक कार्रवाई का समुचित उत्तर नहीं दिया जा सका। तथापि उसके इस कांड का योरप के सभी देशों पर पूरा प्रभाव पड़ा है। यहाँ तक कि वहाँ के सभी छोटे-बड़े राष्ट्र सशंक ही नहीं हो उठे हैं, किन्तु आत्मरक्षा की तैयारी के काम में तत्परता के साथ जुट भी गये हैं। इसके सिवा फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन से जर्मनी की गम्भीर राजनैतिक बातचीत हो रही है। फ्रांस के साथ-साथ ब्रिटेन भी जर्मनी से यह जानना चाहता है कि वह योरप के भिन्न भिन्न स्वतन्त्र देशों की वर्तमान सीमाओं को स्वीकार करता है या नहीं और उसके उपनिवेशों के सम्बन्ध में क्या विचार हैं। जर्मनी ने इन प्रश्नों का उत्तर यद्यपि अभी तक नहीं दिया है, तथापि यह तो प्रकट ही है कि जर्मनी अपने देश की वर्तमान सीमाओं से सन्तुष्ट नहीं है। वह अपने डैंज़िग और पूर्वी प्रशा को ही जर्मनी में नहीं मिलाना चाहता, किन्तु आस्ट्रिया आदि उन देशों को भी जहाँ जर्मन बसे हुए हैं, अपने अधिकार में करना चाहता है। इसके सिवा वह अपने पहले के उपनिवेश भी चाहता है।

परन्तु जर्मनी की इन आकांक्षाओं की पूर्ति होनी सम्भव नहीं है। आस्ट्रिया, ज़ेकोस्लेवेकिया आदि देश स्वाधीन रहना चाहते हैं और उनकी स्वाधीनता की रक्षा करने के लिए ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और इटली आदि वचनबद्ध ही नहीं हैं, किन्तु उसके लिए वे कायतः तैयार भी हैं। अब रहे उपनिवेश सो न तो दक्षिण-अफ़्रीका पूर्वी अफ़्रीका को न आस्ट्रेलिया न्यूगिनी को और न जापान प्रशान्त महासागर के टापुओं को जर्मनी को देने को तैयार है। ऐसी दशा में यदि जर्मनी ने अपनी पूरी तैयारी कर ली है तो उसे युद्ध का ही आश्रय लेना पड़ेगा। कदाचित् इसी से वह इटली और यूगोस्लेविया तथा आस्ट्रिया की ओर अधिकाधिक झुक रहा है और फ्रांस को दबाये रखने के

लिए वह ब्रिटेन की ओर भी अपना मित्रता का हाथ बढ़ाये हुए है।

इस सारी अवस्था ने वास्तव में योरप की राजनीति को पूर्णरूप से जटिल बना दिया है। आश्चर्य है कि इस जटिलता को दूर करने में न तो राष्ट्र-संघ सक्षम है, न फ्रांस या ग्रेट ब्रिटेन ही है। वास्तव में योरप में परस्पर अविश्वास का भाव बहुत बढ़ गया है और वहाँ के सभी छोटे-बड़े राष्ट्र भविष्य के महायुद्ध के लिए शीघ्रता के साथ तैयार हो रहे हैं।

अबीसीनिया का पराभव

सात महीने के युद्ध के बाद इटली ने अबीसीनिया को पददलित कर डाला। अबीसीनिया के वीर सम्राट् हेल सेलासी स्वदेश छोड़कर भाग गये और उनकी सेनायें तितर-बितर हो गईं तथा उनकी राजधानी अदीस अबाबा पर इटलीवालों का अधिकार हो गया। इस प्रकार विरोध का अभाव हो जाने पर इटली के सर्वेसर्वा मुसोलिनी ने अबीसीनिया को इटली के साम्राज्य के अन्तर्गत मान लिया और विजयी सेनापति जनरल बडोग्लिओ को अबीसीनिया का वायसराय नियुक्त कर इटली के बादशाह को अबीसीनिया का सम्राट् घोषित किया है। यह सब कुछ हुआ और इटली अबीसीनिया में दिन-प्रति-दिन दृढ़ता से अपनी सत्ता स्थापित करता जा रहा है, तथापि राष्ट्र-संघ अभी अबीसीनिया को एक स्वतन्त्र राष्ट्र ही मानता जा रहा है और इटली को उसका विजेता नहीं स्वीकार कर रहा है। इस प्रकार अबीसीनिया के अधिकारच्युत सम्राट् अब इटली के साथ काग़ज़ी युद्ध कर रहे हैं और पहले की भाँति राष्ट्र-सङ्घ भी उनका साथ बराबर दिये जा रहा है। परन्तु राष्ट्र-सङ्घ की अबीसीनिया के पक्ष में यह क़ानूनी गोलाबारी पहले की ही भाँति अब भी व्यर्थ सिद्ध होगी। वास्तव में अबीसीनिया अब सारा-का-सारा इटली का हो गया है और राष्ट्र-सङ्घ की कोई भी कार्रवाई उसे उसके सम्राट् को नहीं दिला सकती। यह बात पहले से ही प्रकट थी। दुःख है कि सम्राट् हेल सेलासी राष्ट्र-सङ्घ की अकर्मण्यता को नहीं जानते थे और उन्हें भारी धोखा हुआ। उनकी इस भारी ग़लती से अफ़्रीका के एक अति प्राचीन स्वाधीन देश की स्वाधीनता का बड़ी निर्दयता से अपहरण हुआ है।

स्टेलिन और जापान

अबीसीनिया को युद्ध में पराजित कर तथा उसको अपने शासनाधीन कर मुसोलनी ने इटली की पूर्व-पराजय का बदला अच्छी तरह ले लिया है। अब कहा जाता है कि रूस के तानाशाह स्टेलिन रूस की पिछली हार का बदला जापान से चुकाना चाहते हैं। चीन के मंचूरिया, जेहोल प्रान्तों को अपने अधिकार में करके जापान इस समय काफ़ी बदनाम है और उसकी संसार की किसी एक भी शक्ति से मैत्री का बन्धन नहीं है। अतएव संघर्ष के लिए इससे बढ़कर और कौन-सा अवसर हो सकता है? इधर जापान ने उत्तरी चीन के सैन्यरहित प्रदेशों में नई सेनायें यह कहकर भेजी हैं कि वहाँ बोल्शेविक चीनियों के आक्रमण की आशंका है। चीन की राष्ट्रीय सरकार ने जापान की इस कार्रवाई का विरोध किया है। परन्तु जापान को चीन की कहाँ परवा है? वह तो मंचूरिया की तरह मंगोलिया को भी हड़प लेना चाहता है। रूस से संघर्ष होने का यही कारण होगा। उसके तानाशाह पिछले दिनों यह घोषित भी कर चुके हैं कि रूस मंगोलिया की स्वाधीनता की हर तरह रक्षा करेगा। इसके सिवा मंचूको की सीमा पर जापानी सैनिक जो धावे करते रहते हैं वे भी बन्द हो जाने चाहिए। रूस के इन आरोपों का उत्तर जापान ने अब दिया है। जापान ने कहा है कि मंचूको की सीमा पर रूस ने जो जंगी तैयारी की है वह अवाञ्छनीय है और वह आशंकाजनक है। जहाँ पहले ६०-७० हज़ार सैनिक रहते थे वहाँ अब उनकी दो लाख से भी अधिक संख्या हो गई है। इसके सिवा हवाई जहाज़ों की भी काफ़ी अधिक संख्या हो गई। अब रही सीमोल्लंघन की बात, सो अभी सीमा ही कहाँ निश्चित है? अतएव न तो ऐसे आरोप करना चाहिए और न ऐसी आशंकाजनक सैनिक तैयारी ही होनी चाहिए, क्योंकि जापान शान्ति का इच्छुक है। परन्तु इन राजनैतिक घोषणाओं से ही इस बात का संकेत मिलता है कि बात बहुत बढ़ गई है और आश्चर्य नहीं है

कि किसी एक बात को लेकर रूस के स्टेलिन पिछली पराजय का कलंक धोने के लिए जापान से किसी दिन भिड़ न जाय, क्योंकि इस समय रूस की सामरिक तैयारी भी ख़ूब बढ़ी-चढ़ी है।

नीमियर-कमिटी की रिपोर्ट

नये शासन-सुधार अगले साल से कार्यरूप में परिणत हो जायँगे। इससे देश की शासन-प्रणाली में बड़ा भारी परिवर्तन हो जायगा और ग्यारह प्रान्तों का शासन-कार्य केन्द्रीय सरकार से एक प्रकार से सर्वथा स्वतन्त्र हो जायगा। परन्तु इस परिवर्तन से उन प्रान्तों का शासन-व्यय बहुत बढ़ जायगा, जिसके लिए केन्द्रीय सरकार को उनकी आर्थिक सहायता करनी पड़ेगी। फलतः इसकी जाँच के लिए सर ओटो नीमियर साहब की अध्यक्षता में सरकार ने एक जाँच-कमिटी की नियुक्ति की थी। इस कमिटी ने जाँच करके जो रिपोर्ट प्रकाशित की है उससे प्रकट होता है कि अधिक शासन-व्यय की मद में किस प्रान्त को कितनी रक़म सहायता के रूप में दी जायगी। ग्यारह प्रान्तों में से ८ प्रान्तों को २ करोड़ रुपये प्रतिवर्ष सहायता के रूप में दिये जायँगे। और यह क्रम कदाचित् अगले दस वर्ष तक चलेगा। रिपोर्ट के अनुसार ४५ लाख रुपया आसाम को, ७५ लाख रुपया बंगाल को, २५ लाख रुपया बिहार को, १५ लाख रुपया मध्यप्रदेश को, १ करोड़ १० लाख रुपया पश्चिमोत्तर-सीमाप्रान्त को, ५० लाख रुपया उड़ीसा को, १ करोड़ ५ लाख रुपया सिन्ध को और २५ लाख रुपया संयुक्त-प्रान्त को मिलेगा। इस अधिक व्यय का भार वहन करने के लिए केन्द्रीय सरकार को प्रान्तों के आय-कर का छः करोड़ रुपया पाँच वर्ष तक मिलता रहेगा। और उसके बाद जब उसे रेलवे से इतनी ही आय होने लगेगी तब आय-कर की आमदनी प्रान्तों को फिर मिलने लगेगी। परन्तु नीमियर साहब के इस बँटवारे से भारतीय राजनीतिज्ञ सन्तुष्ट नहीं हैं। फिर उनकी इस रिपोर्ट पर वर्तमान असेम्बली के सदस्य भी विचार नहीं कर सकेंगे। यह कार्रवाई सचमुच आदर्श कार्रवाई मानी जायगी! नये शासन-सुधारों का यह प्रारम्भिक सूत्र-पात जब ऐसा है तब वे कैसे होंगे, इसका अनुमान करना सरल होता जाता है।

असेम्बलियों का अगला चुनाव

नई प्रान्तिक असेम्बलियों का चुनाव लड़ने के लिए लोग ज़ोरों से तैयारियाँ कर रहे हैं। इस चुनाव में भाग लेने के लिए कांग्रेस ने अभी से तैयारी शुरू कर दी है। बम्बई, मदरास, संयुक्त-प्रान्त, बिहार आदि में इस सम्बन्ध में उसका कार्य शुरू भी हो गया है और कांग्रेसी उम्मेदवार खड़े करने और बाक़ायदा चुनाव लड़ने के लिए कमिटियाँ भी संगठित हो गई हैं। बाक़ी रहे बङ्गाल, पञ्जाब आदि प्रान्त सो उनमें भी शीघ्र ही ऐसी कमिटियाँ बन जायँगी। इधर राष्ट्रपति पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अपना दौरा शुरू कर दिया है, और चुनाव में कांग्रेसी उम्मेदवारों के पक्ष में वोट देने के लिए वे जगह जगह अपने भाषणों-द्वारा लोगों पर प्रभाव डाल रहे हैं। कांग्रेस सबसे अधिक संगठित संस्था है, इसके सिवा जनता पर उसका प्रभाव भी है, अतएव चुनाव में उसके जीतने की पूरी आशा है।

परन्तु जिन प्रान्तों में मुसलमानों की प्रमुखता है, वहाँ कांग्रेस को चुनाव में सफलता प्राप्त करने की उतनी सम्भावना नहीं है। मुसलमानों की उग्र साम्प्रदायिकता के कारण वहाँ के हिन्दुओं में भी साम्प्रदायिक भावना का ज़ोर है और वे सर्वांश में कांग्रेस का साथ नहीं देंगे। ऐसे प्रान्तों में कांग्रेस के विजयी होने की कम आशा है। इसके लक्षण भी दिखाई पड़ने लगे हैं। पञ्जाब में भाई परमानन्द हिन्दू-महासभा के नाम पर अगला चुनाव लड़ने की तैयारी कर रहे हैं। इधर संयुक्त-प्रान्त में महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय के नेतृत्व में राजा-रईसों, नरम दलवालों तथा हिन्दू-सभावालों को मिलाकर कांग्रेस के विरुद्ध चुनाव लड़ने की तैयारी की जा रही है। बङ्गाल में साम्प्रदायिक निर्णय के प्रश्न ने वहाँ के कांग्रेसियों को हिन्दू-महासभावालों का साथी बना दिया है। इस प्रकार जान पड़ता है कि कांग्रेस को अगले चुनाव में कम-से-कम इन उपर्युक्त प्रान्तों में भारी संघर्ष से सामना करना पड़ेगा।

उधर मुसलमानों में भी एका नहीं दिखाई देता, और उनमें भी कई दल हो गये हैं। पञ्जाब में उनके तीन दल हो गये हैं—एक सर फ़ज़ली हुसेन का यूनियनिस्ट दल है, दूसरा अहरार-दल है और तीसरा ज़फ़रअली साहब का इत्तिहादे मिल्लतवालों का दल है। जिन्ना साहब चाहते हैं कि मुसलमान मिलकर चुनाव लड़ें, पर उनकी बात, जान पड़ता है, नहीं मानी गई है और मुसलमानों के भिन्न भिन्न दल अपना-अपना संगठन स्वतंत्र रूप से कर रहे हैं, जिससे जान पड़ता है कि इस बार के चुनाव में मुसलमानों में भी काफ़ी कशम-कश होगी। चाहे जो हो, इस समय देश के सभी श्रेणी के लोकनेता अपने अपने दलों का संगठन अगला चुनाव लड़ने की बात को अपने सामने रख कर ही कर रहे हैं और इस सम्बन्ध की उनकी मतभिन्नता से उनका और उनके दलों का हित भले ही हो जाय, देश का नहीं होने का।

साम्प्रदायिक समस्या का हल

देशी रियासतों में साम्प्रदायिक दंगों का अभाव नहीं है। फलतः वहाँ के भी निवासी इस समस्या को हल करने के लिए चिन्तित हुए हैं। अभी हाल में इस समस्या को हल करने के लिए कश्मीर की प्रजा-सभा (लेजिस्लेटिव कौंसिल) के एक सदस्य पण्डित जिआलाल किलम ने १४ शर्तों का एक नया प्रस्ताव किया है। उनके प्रस्ताव की कुछ महत्त्वपूर्ण शर्तें ये हैं—(१) अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के धर्म और धार्मिक स्थानों की रक्षा की गारंटी मिलनी चाहिए; (२) पिछड़ी जातियों के लोगों के लिए एक चौथाई सरकारी नौकरियाँ रक्षित रहनी चाहिए; (३) सरकारी नौकरियों की भर्ती का एक बोर्ड क़ायम होना चाहिए, जो राज्य की भिन्न भिन्न जातियों के लोगों में सरकारी नौकरियाँ उनके अनुपात से उनमें बाँट दिया करे; (४) किसी ख़ास जाति पर लागू होनेवाला कोई क़ानून तब तक प्रजा-सभा में उपस्थित न किया जाय जब तक सभा के उस जाति के सदस्यों में से पाँच में से चार सदस्य उसका समर्थन न करें; (५) राज्य के मंत्रियों में से आधे मंत्री अल्पसंख्यक जातियों में से बनाये जायँ। इसी तरह की उनकी और भी शर्तें हैं और वे सभी विचारपूर्ण और उपयुक्त हैं। परन्तु इस समय जब सारे भारत का राजनैतिक वायुमण्डल साम्प्रदायिकता के विष से विषाक्त हो रहा है तब देशी राज्यों में इस प्रश्न के सम्बन्ध में कोई उपयुक्त समझौते के कार्य में परिणत होने की सम्भावना नहीं है। तथापि ऐसे प्रयत्न वाञ्छनीय हैं और इसके लिए श्रीयुत किलम महोदय सर्वथा प्रशंसा के पात्र हैं। उन्हें अपने इस प्रस्ताव के विचारों के प्रचार का प्रयत्न करना चाहिए। इससे हानि नहीं, देश का हित ही होगा।

संयुक्त-प्रान्त में ग्राम-सुधार

ग्राम-सुधार के सम्बन्ध में भारत-सरकार ने जो आयोजन किया था उसने अभी तक व्यापक रूप नहीं धारण किया है, तथापि उसके अनुसार प्रायः सभी प्रान्तों में कुछ-न-कुछ काम अवश्य हो रहा है। हमारे प्रान्त में प्रान्तीय सरकार ग्रामोद्धार के काम में ९ लाख रुपये २ वर्षों में व्यय करने का निश्चय कर चुकी है। उसका ग्राम-सुधार का काम अभी मैदान के ४५ ज़िलों में किया जायगा। ऐसे प्रत्येक ज़िले में इस काम के लिए ७२ गाँव चुने जायँगे।

इसके लिए एक अस्थायी कार्यकर्ता-मण्डल नियुक्त किया गया है, जिसमें ४५ निरीक्षक और २७० संगठनकर्ता रक्खे गये हैं। यह मण्डल २ वर्ष के लिए नियुक्त किया गया है। मण्डल के लोगों को सफ़ाई, तन्दुरुस्ती, खेती, सहयोग की विशेष शिक्षा दी गई है। दो वर्ष में इस मण्डल पर २,२६,८००) व्यय होगा। वैतनिक कार्यकर्ताओं के सिवा प्रत्येक ज़िले में २ अवैतनिक संगठनकर्ता भी नियुक्त किये गये हैं। यह ग्रामोद्धार का कार्य श्रीयुत सी० एस० वेङ्कटाचार के तत्त्वावधान में हो रहा है।

उपर्युक्त योजना के अनुसार ३,२४० गाँवों में कार्य शुरू किया जायगा। प्रचार के लिए इन गाँवों में समाचार-पत्र, सामयिक पत्र, ग्राम-सुधार-सम्बन्धी छपे हुए निबन्ध कम-से-कम प्रतिसप्ताह मुफ़्त बाँटे जायँगे। इस मद में ३६,०००) ख़र्च करने का अनुमान किया गया है। ३·२८ लाख रुपये खेती के सुधार के लिए अलग कर दिये गये हैं। ३·१६ लाख रुपये स्वास्थ्य-सुधार के काम में व्यय

करने का अनुमान किया गया है। इस प्रकार मुख्यतः इन तीन मदों के अनुसार ही सुधार का कार्य होगा। निस्सन्देह, इस प्रयत्न से ग्रामीणों का बहुत कुछ हित हो सकेगा। खेद इतना ही है कि यह सरल कार्यक्रम भी अभी परीक्षा की सीमा में ही रहेगा। ऐसे कार्यों को तो कार्य का रूप देने में शीघ्रता से काम लेना चाहिए था। परन्तु हमारी सरकार की ऐसी परम्परा नहीं है। इसी से ग्राम-सुधार की बातें अभी समाचार-पत्रों में ही अधिकतर पढ़ने को मिलती हैं।

स्वर्गीय श्रीयुत महादेवप्रसाद सेठ

'मतवाला' के प्रवर्तक तथा सम्पादक श्रीयुत महादेवप्रसाद सेठ का मिर्ज़ापुर में अभी हाल में ही स्वर्गवास हो गया। 'मतवाला' को साप्ताहिक रूप में कलकत्ते से प्रकाशित करके उन्होंने हिन्दी में एक दिन जो चहल-पहल पैदा कर दी थी उससे लोगों को उनकी कार्यकुशलता का पूरा प्रमाण तभी मिल गया था। परन्तु हिन्दी के दुर्भाग्य से 'मतवाला' चल नहीं सका और जब सेठ जी उसे कलकत्ते से मिर्ज़ापुर ले आये तब तक वह अपने पैमाने से बहुत गिर चुका था। यहाँ मिर्ज़ापुर में सेठ जी के कांग्रेस-कार्य में संलग्न हो जाने से अन्त में 'मतवाला' का प्रकाशन बन्द हो गया। 'मतवाला'-द्वारा सेठ जी ने हिन्दी में पत्रों का एक नया आदर्श उपस्थित किया था और उसका उस समय लोगों ने अनुधावन भी किया था। उस नई प्रवृत्ति का प्रवर्तन करके सेठ जी यश के भागी हुए थे और इसके लिए उनका नाम हिन्दी के पत्रकारों के इतिहास में आदर के साथ लिखा जायगा। सेठ जी हिन्दी के प्रेमी और देशभक्त थे। दुःख की बात है, उनकी असमय में ही मृत्यु हो गई।

कृषक-शिक्षण का एक नया आयोजन

पूना-ज़िले की देहात में हाल में किसानों की शिक्षा की एक अभिनव व्यवस्था की गई थी। इसके प्रवर्तक पूना के श्रीयुत जी० एन० कानिटकर बी० ए० हैं। उन्होंने चिंचवाद के समीप 'स्वावलम्बन राष्ट्रीय पाठशाला' में किसानों को शिक्षा देने के लिए उनका एक कैम्प खोला था। यह कैम्प ७ आक्टोबर १९३५ को खुला था और दिसम्बर १९३५ तक अर्थात् दो महीने तक खुला र इस कैम्प का विज्ञापन समाचारपत्रों-द्वारा पहले ही दिया गया था, जिससे भिन्न भिन्न गाँवों के कोई १ किसानों ने उसमें भाग लेने की स्वीकृति पहले से ही लि कर भेज दी थी। परन्तु कैम्प में कुल ११८ किसानों ने भाग लिया। वे १८ वर्ष की उम्र से लेकर २५ वर्ष उम्र तक थे। उनमें अधिकांश ७ वें दर्जे तक मराठी थे। कुछ मेट्रिकुलेशन दर्जे तक अँगरेज़ी भी पढ़े थे। उ केवल एक या दो ही निरक्षर थे। जो ११८ किसान अ थे उनमें ७८ अन्त तक कैम्प में मौजूद रहे।

कैम्प में खेती, फलों की खेती, खादों का उपये भूमि को उपजाऊ बनाना, फ़सलों की उपज बढ़ाना, तैयार करना, चरखा कातना, क़ानून का साधारण ज्ञ फ़र्स्ट-एड, हिन्दी की उपदेशजनक कविताओं तथा वीरका का पाठ, ग्राम-संगठन, लाठी का खेल, क़वायद अ विषयों की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया था। पूना के कति विशेषज्ञों ने कैम्प में जाकर अपने अपने विषयों पर भाष किये और उन्हें श्रोताओं को सरलतापूर्वक समझाय व्याख्यानदाताओं में श्रीयुत एन० सी० केलकर, श्री का कालेलकर, श्री जी० आर० करन्दीकर, श्री एस० डी० दे आदि महानुभाव थे। पत्रकारों, प्रोफ़ेसरों, वकीलों, डाक्ट असेम्बली के सदस्यों और धर्मोपदेशकों आदि सभी ने कृषक-शिक्षण के महत्त्वपूर्ण कार्य से सहयोग किया था प्रत्येक मङ्गल को कैम्पवासी पड़ोस के किसी गाँव की या करते थे। इस प्रकार कैम्प के उद्देशों का इस यात्रा अलग प्रचार हुआ।

कैम्प के कार्यकाल की समाप्ति के बाद उसके शिक्ष क्रम में भाग लेनेवालों को सार्टिफ़िकेट दिये गये त उनसे कहा गया कि जो कुछ उन्होंने यहाँ रहकर सीखा है उसकी शिक्षा साल भर में वे कम-से-कम ११ किसा को अवश्य दें। इस कार्य के लिए कोई ३००) एक किया गया था। इस नये प्रयोग में कार्यकर्ताओं को आशातीत सफलता हुई है, अतएव इसके प्रवर्तक कानिटकर महोदय १९३६ में तीन बार शिक्षण-कैम्पों का प्रदर्श चाहते हैं—एक अप्रैल में, दूसरा मई में और नवम्बर में। निःसन्देह यह नया प्रयत्न उपयोगी है अन्य प्रान्तों के राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं को भी अपने यहाँ ऐसे शिक्षण-कैम्पों को खोलकर किसानों को त बनाने का काम करना चाहिए।

पुनर्जन्म का एक नया प्रमाण

कन्नौज के पण्डित महेश्वरप्रसाद भट्टाचार्य को पुनर्जन्म टनाओं के विवरण संग्रह करने का बड़ा शौक है। क पुनर्जन्म के विषय में जितने लेख समाचार-पत्रों काशित हुए हैं, क़रीब क़रीब उन सबका संग्रह उनके है। उनके अलावा उनके पास पुनर्जन्म के ऐसे उदा- के भी विवरण हैं जो समाचार-पत्रों में नहीं प्रकाशित है। अभी हाल में फ़तेहगढ़ के बाबू उमेशचन्द्र माथुर गवती देवी का पुनर्जन्म-सम्बन्धी जो विवरण १३ के 'लीडर' में छपवाया है उसकी जाँच भट्टाचार्य जी द की थी। उसका सिलसिलेवार वर्णन भट्टाचार्य जी लिख भेजा है, जो उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है। चार्य जी लिखते हैं—

कार्यवश मैं फ़तेहगढ़ गया था। स्वर्गीय पण्डित शिव- वकील के मकान पर कुछ सज्जन मुझसे पुनर्जन्म के पर बात-चीत करने लगे। उस समय एक आदमी ने कहा कि समर्थी अहीर की लड़की इसी तरह की बातें बतलाती है। समर्थी अहीर पड़ोस में ही रहता मैंने उनको बुलाया। उसने आकर कहा कि मेरी ती तो इस तरह अक्सर बका करती है और भोलेपुर रफ़ भागती है। फ़तेहगढ और भोलेपुर में क़रीब १॥ का फ़ासिला है। वहीं फ़तेहगढ़ का रेलवे स्टेशन है। उस अहीर से कहा कि तुम उस लड़की को मेरे पास । वह बकती नहीं है, जो कुछ कहती है सब ठीक मैं भोलेपुर ले जाकर उसकी जाँच करूँगा। यह बात र उसकी मा घबरा गई और कहने लगी कि मैं लड़की को भोलेपुर नहीं भेजूँगी। मेरी लड़की छीन ली जायगी। मा को बहुत समझाने-बुझाने वह लड़की मेरे पास लाई गई, मगर लड़की मुझे देखकर बहुत संकोच में पड़ गई। वह भयभीत-सी मालूम होती थी। मैंने उससे ३-४ सवाल किये, मगर उसने एक का भी जवाब नहीं दिया और चुप खड़ी रही। तब मैंने उसके बाप के सहारे सवाल करना शुरू किया। उस बालिका ने बतलाया—

(१) मैं भोलेपुर में रहती थी। (२) मेरे २ लड़के १ लड़की है। मेरा एक लड़का कन्नौज में रहता है। (३) मेरे मकान के बाहर सीमेन्ट का चबूतरा है। (४) मेरे मकान में मेरा रुपया गड़ा है। (५) मैं मिश्राइन हूँ। (६) मेरा दूसरा मकान सड़क के पास है। (७) मेरे यहाँ आलू का रोज़गार होता है। लड़की का पिता कहने लगा कि यह लड़कों के नाम बतलाती थी। मुझे याद नहीं रहे। जब उसकी मा से पूछा गया तब उसने जान-बूझ कर नाम नहीं बतलाये, क्योंकि वह नहीं चाहती थी कि उसकी लड़की भोलेपुर जाय और वहाँ उसकी जाँच हो। लड़की का पिता समर्थी समझदार आदमी है। मैंने उसको भोलेपुर लड़की को ले चलने के लिए तैयार कर लिया। जब मैं भोलेपुर लड़की के साथ पहुँचा तब मैं वहाँ के कुछ शिक्षितों से मिला और उनसे सहायता चाही। मैंने उनसे कहा कि ऐसा मकान तलाश करो जिसमें सीमेन्ट का चबूतरा हो और उसके रहनेवाले जाति के ब्राह्मण मिश्र भी हों। २-३ घंटे की मेहनत के बाद १ मकान का पता लगा। उसमें सीमेन्ट का चबूतरा है और वह मिश्र का है, उनके यहाँ आलू का रोज़गार भी होता है। (भोलेपुर में आलू का रोज़गार घर घर होता है) हम लोग लड़की को लेकर मकान पर पहुँचे। लड़की को सीमेन्ट के चबूतरे पर बैठा दिया और घर की औरतों ने उससे सवाल पूछना शुरू किये। मगर भगवती-देवी कुछ भी उत्तर नहीं देती थी। इतने में श्रीमती गंगा-देवी जो अध्यापिका हैं और भगवतीदेवी के कथनानुसार उसकी पूर्वजन्म की लड़की हैं, मेरे पास आईं। मेरे नोटों को देखकर वे चकित होकर कहने लगीं कि इसमें तो ज़रा भी शक नहीं रह जाता कि यह भगवती-देवी मेरी मा हैं, क्योंकि आप जो नोट करके लाये हैं वह सब मिलता है। मेरी मा को यहाँ सब मिश्राइन कहते थे। इसके बाद गंगादेवी ने अपनी छोटी-सी मा को गोद

में उठा लिया और उससे सवाल करने लगीं। इस पर उसने जवाब दिया कि मैं सब हाल इसलिए नहीं बतलाती हूँ कि मेरी मा मुझको मारेगी। उसने कहा है कि वहाँ कुछ बतलाना नहीं। जब गंगादेवी ने उसको समझाया और कहा कि मा तुमको किस तरह मारेगी। तुम तो अपने घर आ गई हो। अब तुम मा के पास जाकर क्या करोगी? तुम यहीं हमारे पास रहना। यह सुनकर भगवतीदेवी हँसी और निडर होकर सब हाल बतलाने लगी। उसने गंगादेवी का नाम बतलाया, लड़कों के नाम बतलाये। यह ख़बर गाँव में फैली तब क़रीब ५०० के स्त्री-पुरुष वहाँ इकट्ठे हो गये। बड़ा गड़बड़ मचा। मैंने लोगों को शान्त किया। फ़तेहगढ़ स्टेशन के पोस्ट आफ़िस में पंडित रामकृष्ण क्लर्क हैं। इसकी सूचना उनको दी गई। उनके आने पर लड़की ने उनको फ़ौरन पहचान लिया और उनकी गोद में चली गई। मैंने पंडित रामकृष्ण जी से पूछा कि भगवती बतलाती है कि उसने एक कोने में रुपया गाड़ा था। उन्होंने उत्तर में कहा कि मैंने रुपया खोद लिया है। वह बर्तन मौजूद है, जिसमें रुपया गाड़ा गया था। इस पर मैंने उनको यह सलाह दी कि बहुत-से दूसरे बर्तनों के बीच उस बर्तन को रख दो और भगवती से पूछो कि कौन-से बर्तन में उसने रुपया गाड़ा था। बहुत-से लोगों के सामने उसने उस बर्तन को पहचान लिया। इसी तरह उसके के जो कपड़े रक्खे हुए थे, बहुत-से दूसरे कपड़ों के साथ उसके सामने लाये गये। उसने अपने कपड़ों को उस ढेर से निकाल लिया। पंडित रामकृष्ण ने मुझे बतलाया कि जिस समय मेरी मा का देहान्त हुआ था उस समय मैं कन्नौज पोस्ट आफ़िस में था। तार मिलने पर जब मैं मकान पर पहुँचा तब मेरी मा का देहान्त हो चुका था। इसी लिए भगवतीदेवी बतलाती है कि मेरा १ लड़का कन्नौज में है। दूसरे मकान की बात जो भगवतीदेवी कहती थी वह भी ठीक थी। वह मकान पंडित रामकृष्ण ने बेच डाला है। भगवतीदेवी की उम्र इस समय ३ वर्ष ८ महीने की है और पंडित रामकृष्ण की माता का देहान्त ६० वर्ष की अवस्था में हुआ था, जिसको ४ वर्ष और ६ महीने समय होता है। इस तरह ठीक १० महीना का पड़ता है, जो भगवतीदेवी ने गर्भ में व्यतीत किये। भग देवी का दूसरा लड़का जो कानपुर रेलवे में नौक मौजूद न था। उसका भी नाम भगवती देवी ने पुत्त बतलाया था। मेरे सामने १ पड़ोसी ने भगवतीदे पूछा कि मेरा मकान कहाँ है। उसने फ़ौरन ब दिया। इसी तरह जब एक औरत ने सवाल किया भगवतीदेवी ने कहा कि तुम मेरी चाची हो। दर वह उसकी चाची थी।

भारतीय चाय

'इंडियन टी-सेस कमेटी' की ओर से हमें भारतीय के सम्बन्ध में बहुत सा साहित्य प्राप्त हुआ है। उसने चाय के सम्बन्ध में कई ज्ञातव्य बातें मालूम हुईं, उदाहरण के लिए, भारतीय चाय की संसार में बड़ी है। दुनिया में जितनी चाय पी जाती है उसका अ भारत उत्पन्न करता है। चीन को छोड़कर शेष संसा २,००,००,००,००,००० प्याले चाय प्रतिवर्ष पी ज है। इस समय भारतवर्ष में लगभग ५,००० चाय बग़ीचे हैं, जो १,००,००० एकड़ भूमि को घेरे हैं। अधि बग़ीचे आसाम में हैं। शेष पंजाब, बंगाल मदरास और आ कोर आदि में हैं। कुल मिलाकर लगभग १०,००,० मनुष्य इस व्यवसाय में लगे हुए हैं। चाय पीना आधु सभ्यता का एक आवश्यक अङ्ग हो गया है। चाय सं में पानी को छोड़कर सबसे सस्ता पेय पदार्थ है। यह होते हुए भी भारत में जहाँ इसकी खेती पिछले सौ वर्ष होती आ रही है, चाय का बहुत कम सेवन किया जाता इसलिए उक्त कमिटी ने इस सम्बन्ध में विशेष रूप आन्दोलन आरम्भ किया है। यदि भारतीयों में : पीने का शौक उत्पन्न हो गया जैसा कि इस कमिटी अनुमान है तो इस व्यवसाय की भारत में अभी और उन्नति होगी।